॥ श्रीः ॥

श्रीमद्भगवद्गीता.

चिद्घनानंदी "गूढार्थदीपिका" भाषाटीकोपेता

जिसको

परममान्य श्रीमन्निखिलगुणगणालङ्कृतविद्वद्गणशिरोवतंस श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य पूज्यपाद श्रीस्वामी चिद्घनानन्द-गिरिजी महोदयने सर्वसांसारिक लोगोंके उपकारार्थ 'श्रीमच्छांकरभाष्य" के अनुसार पदच्छेद-अन्वयांक-तथा-पदार्थ सहित निर्मित किया।

और

खेमराज श्रीकृष्णदासनें
बंबई

निज "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् मुद्रणयन्त्रालयमें
मुद्रितकर प्रसिद्ध किया।

कार्तिक संवत् १९७८ शक १८४३.

यह पुस्तक खेमराज श्रीकृष्णदासने बंबई खेतवाडी ७वीं गली खम्बाटा लेन निज
"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेसमें अपने लिये छापकर यहीं प्रकाशित किया।

युद्ध प्रसंग
अर्जुन
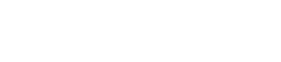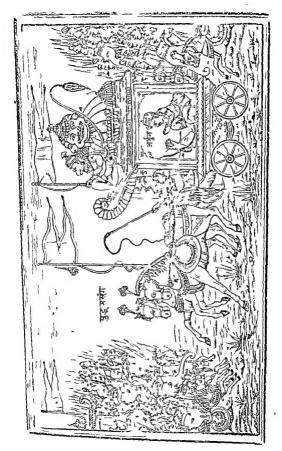
प्रस्तावना.

आज हम बडे आनंदसे समस्त सज्जनोंको विदित करते हैं कि, चिदानन्दमय ब्रह्मकी अनादिसिद्धशक्तिद्वारा प्रपंचित अनन्त कोटिब्रह्माण्डात्मक संसारमें अनंतजन्मार्जित सुकृतदुष्कृतकर्मोंमे उच्चनीच गतिको प्राप्त होनेवाले असंख्यात जीवोंको इस भवपाशसे मुक्त होकर सच्चिदानन्द परब्रह्ममय होना यही परम उत्तम कर्तव्य है. अब यह विचार करना चाहिये कि, मोक्षरूप पदार्थ सबकोही सहजसाध्य नहीं है. किंतु प्रबलतरसंस्कारसाध्य है. वे संस्कार स्वस्ववर्णाश्रमोचित धर्मानुष्ठानद्वारा शमदमादिसाधनसंपत्तिप्राप्तिपर्यंत उपचित होकर चित्तकी शुद्धि करते हैं. चित्तशुद्धि होनेके उपरान्त सद्गुरुका उपाश्रयण करके उनके मुखारविन्दसे उपदिष्ट हुए उपनिषदादि वाक्योंके अर्थतात्पर्यका विचार करनेसे तत्त्वपदार्थबोध उत्पन्न होता है. जिसके अनन्तर स्वकीय विचारैकगम्य "अहं ब्रह्मास्मि" इस वाक्यार्थकी उपस्थिति जब दृढतर होती है तब पूर्णब्रह्मतत्त्व प्राप्त होता है वही मोक्षोपाय है. अब मोक्षसिद्धिके अर्थ उपनिषदादि वेदान्तवाक्योंका अर्थबोध होना आवश्यक है. सब उपनिषद्ग्रन्थ मिलकर अतिविस्तीर्ण वेदांतशास्त्र है. सबका विचार साधारणप्रज्ञपुरुषोंको होना अतिदुर्घट है. इस अभिप्रायसे संपूर्ण उपनिषदोंका सार सार संग्रह करके श्रीभगवान् श्रीकृष्णजीने अर्जुनको उपदेश दिया है. वह भगवदुक्ति "श्रीमद्भगवद्गीता" इस नामसे सुप्रसिद्ध है. यह भगवद्गीता श्रीमान् वेदव्यासजीने श्रीकृष्णार्जुनसंवादरूपसे श्रीमन्महाभारतके भीष्मपर्वमें निवेशित करी है इस भगवद्गीतामें "तत् त्वम् असि" इन तीन पदोंका अर्थनिर्णयके अर्थ

तीन षट्क (छः छः अध्यायोंका एक एक भाग ऐसे मिलकर अठारह अध्याय) हैं. इस शास्त्रका मुख्य उद्देश संपूर्ण प्राणिमात्रोंको स्ववर्णाश्रमोक्त धर्माचरणपूर्वक परमात्मतत्त्वज्ञानसे मोक्षसंपादन कराना यही है। ऐसा यह परमोपयोगी भगवद्गीताशास्त्र सर्व सज्जनोंसे संमानित इस भूमंडलमें सुप्रसिद्धही है. इस भगवद्गीताशास्त्रके ऊपर अद्यावधि बहुत आचार्योंने भाष्यरचनाकरके उपनिषदर्योंका आभ्यंतरिक सारअंश प्रकटकिया है. जिसके द्वारा अनेक सज्जनोंको परमार्थका लाभ हुआ है. ऐसेही अनेकानेक विद्वज्जनोंने सविस्तर टीकायें निर्माण करके भाष्योक्तार्थका अनुसरण किया है परंतु कालमाहात्म्यसे संस्कृतविद्याके अध्ययन अध्यापनके प्रचारका ह्रास होनेसे सर्वसाधारण लोगोंको यथार्थ सारअर्थका बोध होना दुर्लभ हुआ यह विचार करके परममान्य श्रीमन्निखिलगुणगणालंकृतविद्वद्गणशिरोवतंस श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य पूज्यपादश्रीस्वामि चिद्घनानंद गिरिजी महोदयने सर्व सांसारिक लोगोंके उपकारार्थ श्रीमच्छांकरभाष्यके पदपदार्थानुकूल यह "गूढार्थदीपिका" नामक भाषाटीका निर्माणकरके सब सांसारिक लोगोंके ऊपर महान् अनुग्रह किया है. अब हम बडे आनंदसे उक्त महोदयको जितने धन्यवाद दें उतनेही थोडे हैं. इन महात्मापुरुषने इस भूमंडलमें अवतार लेकरके शास्त्रका पुनरुज्जीवन किया है. प्रथमतः इन्होंने "न्यायप्रकाश" ग्रंथ निर्माण करके न्यायशास्त्रके प्रेमियोंको न्यायशास्त्रोक्त प्रमाण प्रमेय ऐसे सुबोध करदियेहैं कि, केवलभाषाजाननेवाले समस्त जिज्ञासुजन अनायाससेही न्यायशास्त्रमें पारंगत होसकते हैं और "आत्मपुराण" ग्रंथका भाषांतर करके उपनिषदोंका संपूर्ण अर्थ साधारण लोकोंको करतलामलकवत् सुलभ करदिया है. और यह गीता "गूढार्थदीपिका" भाषाटीका निर्माणकरके समस्त शास्त्रसिद्धांतको सर्व लोकोंके अर्थ सुलभ करदिया है और "तत्त्वा-

नुसंधान" नामक ग्रंथ निर्माण करके वेदान्तसिद्धान्तको सुस्पष्ट करदिया है. ऐसे२और भी अनेक २ ग्रंथ निर्माणकरके जगतके ऊपर उपकारपरंपरा करी है. हमारे ऊपर भी इन परमोपकारी महात्मा पुरुपका बड़ाही अनुग्रह है. यह हम बड़े आनन्दसे मान्य करतेहैं. कारण इन महात्मा श्रीस्वामीचिद्घनानन्दजी महाराजजीने अपने अलौकिक बुद्धिवैभवसे पूर्वोक्तग्रंथोंको निर्माण करके सर्व लोगोंको इनका लाभ होवे इस उद्देशसे पूर्णकृपाकरके सर्व अधिकारपूर्वक मुझको ये सर्व ग्रंथ मुद्रणकरके प्रसिद्धकरनेके अर्थ दिये हैं. मैंने भी महाराजकी आज्ञानुसार छपवाय कर प्रसिद्ध किये हैं. स्वामीजीने पूर्णअनुग्रहसे इन ग्रंथोंके पुनर्मुद्रणादि सर्व अधिकार मुझको दिये हैं वे भी मैंने स्वीकार करके राजपट्टारूढकरके संरक्षण किये हैं, स्वामीजीके पूर्णप्रतापसे इस "गूढार्थदीपिका"भापाटीकाकी छह आवृत्ति हार्थोहाथ बिकगई हैं. अब यह सातवी आवृत्ति मैंने छापके प्रसिद्ध की है. हमारे बहुतसे अनुग्राहक ग्राहकोंकी उत्कण्ठासे अबकी बार हमने इस पुस्तकको बुकसाइजमें छापा है और टीकामें आयेहुए श्रुति स्मृति पुराणादिकोंके वाक्योंको इस" "चिह्नके भीतर रखने पदच्छेद आदिकी व्यवस्था करने आदिसे सर्वाङ्गसुन्दर बनाया है । आशा है गुणी ग्राहक लोग इसका औरभी आदर करैंगे । हम इहां श्रीस्वामीजीके स्थानापन्न वर्त्तमान स्वामीजीसे सविनय निवेदन करते हैं कि इस यन्त्रालयके साथ वह वैसीही कृपा रखेंगे जैसी उक्त स्वामीजीकी रही है, और भविष्यमें उत्तमोत्तम ग्रन्थोंकी भाषाटीका बनाकर लोगोंका उपकार करैंगे । अब मुझको यह बात निवेदन करनेको बड़ा खेद होता है ! ! कि कलिकाल बड़ा विकराल है ! इसमें बड़े बड़े मान्यलोगभी लोभके फंदमें फँसकर अपनी श्रेष्ठताको और सुकीर्तिको मलिन करते हैं. उदाहरणसेही सज्जनोंको विदित होजायगा कि,—मैंने इस "गीतागूढार्थदीपिका" को छपाकरके राजनियमानुसार रजिस्टरकराके प्रसिद्ध किया है. तिसपरभी हमारे

छपेहुए पुस्तकसे लाभ होनेसे लोभके बडेबडे मान्यवर महाशयोंने इस ग्रन्थको छापनेका उद्योग किया. जब हमने उनको अंजन दिया, तब उन्होंने आँख खोलकर सचेत हो हमारेपास प्रतिज्ञापूर्वक प्रार्थना की है कि, आजसे हम आपके रजिस्टर कियेहुए कोईभी ग्रन्थ नहीं छापेंगे यह हमसे जो आपके रजिस्टरपुस्तक छपानेका अपराध हुआ है इसको आप क्षमा करेंगे यह कहा और अन्य प्रेसमें छपेहुए फार्मभी हमको देदिये यह एक उदाहरणार्थ लिखा है. औरभी ऐसे कितनेक प्रतिष्ठित व्यापारियोंने जो हमसे ऐसे २ व्यवहार किये हैं उनकोभी हमने सचेत किया है, तथापि बड़े बड़े लोग अभीतक लोभवशीभूत हो अपनी सुकीर्तिको तिलांजलि देनेमें उद्यत होते हैं ! क्या यह कलिकालका कौतुक है ! कारण, ऐसी ध्वनि आई है कि, किसी उच्च कुलके महाशयने हमारे रजिस्टरकियेहुए आत्मपुराणको बड़ेभारी लोभकी आशाकरके छपवाया है पर अभीतक वह प्रकाशित नहीं किया है. कियाभी हो तो अभी तक गुपचुपमें है. परन्तु हम यही सूचितकर रखते हैं कि, इसबातका उन्होंने पूर्ण विचार करनाचाहिये कि, पाप करनेपर सशास्त्र (राजशासन)प्रायश्चित्त लिये विना शुद्धि होती नहीं. अंतमें हम सादर विनयपूर्वक सब व्यापारी महाशयोंको निवेदन करते हैं कि, अब ऐसा साहस कोई नहीं करें, यदि किसीने कुछ कियाभी है तो उनको यथार्थफल मिलचुका है, भविष्यत्में कोई ऐसा काम करें तो उनकोभी यथार्थ फल दिये विना नहीं रहाजायगा. अब समस्त सज्जनोंसे सविनय प्रार्थना है कि, इस ग्रन्थको अवश्य संग्रह करके श्रीभगवदुक्तवेदान्तसिद्धान्तका परिज्ञान संपादन करके अपने जन्मको साफल्य करें इति शम् ।

आपका प्रेमाकांक्षी–

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयाध्यक्ष–बंबई.

॥ श्रीः ॥

स्वामिश्रीचिद्घनानन्दगिरिकृत-

पदच्छेदान्वयाङ्कपदार्थ-भाषाटीकासहिता ।

शंकरं शंकराचार्यं व्यासं नारायणात्मकम् ॥
सरस्वतीं च ब्रह्माणं प्रणमामि पुनः पुनः ॥ १ ॥
प्रकाशितब्रह्मतत्त्वं प्रकृष्टगुणशालिनम् ॥
प्रणवस्योपदेष्टारं प्रणमाम्यनिशं गुरुम् ॥ २ ॥
श्रीकृष्णचरणद्वंद्वं प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥
प्रायः प्रत्यक्षरं कुर्वे गीतागूढार्थदीपिकाम् ॥ ३ ॥

अर्थ—यह श्रीशंकररूप जो श्रीशंकराचार्य हैं तिनोंकूं तथा नारायणरूप जो व्यासभगवान् हैं तिनोंकूं तथा सरस्वतीदेवीकूं तथा ता सरस्वतीके भर्त्ता ब्रह्माकूं मैं बारंबार नमस्कार करताहूं ॥ १ ॥ और जिन श्रीगुरुवोंनें हमारे हृदय विषे ब्रह्मतत्त्व प्रकाश करा है । तथा जे गुरु विवेक-वैराग्यादिक उत्तम गुणोंकरिकै युक्त हैं तथा जे गुरु हम अधिकारी जनोंके प्रति प्रणवमंत्रका उपदेश करणेहारे हैं । ऐसे श्रीगुरुकूं मैं बारंबार नमस्कार करताहूं ॥ २ ॥ और या गीताशास्त्रका कर्त्ता जो श्रीकृष्ण-भगवान हैं तिन श्रीकृष्णभगवान्के दोनों चरणकमलोंकूं बारंबार प्रणाम

करिके मैं मुमुक्षुजनोंके प्रति श्रीगीताजीके प्रति अक्षरोंका अर्थ निश्चय करावणेवास्तै श्रीशंकराचार्यकृत भाष्य तथा स्वामीशंकरानन्दनकृत टीका तथा स्वामीमधुसूदनकृत टीका तथा नीलकंठपंडितकृत टीका या चारोंके अभिप्रायकूं लेके यह " गीतागूढार्थदीपिका "नामः टीका करताहूं॥ ३॥

इस लोकविषे महान् तप, बल, तेज शक्तिकरिकै संपन्न तथा सर्व विद्यावोंका समुद्र तथा संपूर्ण सर्वज्ञोंका भूषणरूप तथा साक्षात् नारायणरूप तथा परमकृपालु ऐसे जो श्रीव्यासभगवान् हैं सो व्यासभगवान् आगे उत्पन्न होणेहारे अधिकारी जनोंकी बुद्धिकी मंदताकूं देखि करिकै तिन अधिकारी जनोंके प्रति धर्मादिक सर्व पुरुषार्थकी प्राप्ति करणेवासतै ता पुरुषार्थकी प्राप्तिके साधनोंकूं कथन करणेहारे वेदराशिका ऋग्, यजुः साम और अथर्वण या भेदकरिकै चारि प्रकारका विभाग करते भये। तथा तिन ऋगादिक चारि वेदोंविषे स्थित जो ऐतरेयादिक अनेक शाखा हैं तिन शाखावोंविषे एक एक शाखाकूं अपणे पैल वैशंपायनादिक शिष्य-प्रशिष्यादिद्वारा वधावते भये। इस प्रकार तिन ऋगादिक वेदोंके प्रवृत्त हुए भी तिन वेदोंका अर्थ परम सूक्ष्म है तथा अत्यन्त गूढ है तथा अत्यन्त दुर्विज्ञेय है यातैं ता वेद अर्थके जानणेविषे जिन अधिकारी पुरुषोंकी बुद्धि समर्थ नहीं है ऐसे अधिकारी पुरुषोंऊपरि अनुग्रह करिकै सो श्रीव्यास-भगवान् तिन अधिकारी पुरुषोंके प्रति धर्मादिक सर्व पुरुषार्थोंकी प्राप्ति करणेवासते तिन धर्मादिक सर्व पुरुषार्थोंके साधनोंकूं कथन करणेहारी तथा शतसहस्र १००००० श्लोकाकरिकै युक्त भारत नामा संहिताकूं रचते भये। और जैसे सर्व नक्षत्रमालाके मध्यविषे चन्द्रमंडल स्थित होवैहै तैसे ता भारत नामा संहिताके मध्यविषे सो श्रीव्यासभगवान् केवल मुमुक्षु जनोंके प्रति कार्यप्रपंचसहित अनादि अविद्याकी निवृत्तिद्वारा विदेहकैवल्यरूप फलकी प्राप्तिवासतै जीवब्रह्मके अभेदकूं प्रतिपादन करणेहारी तथा श्रीकृष्णभगवान् अर्जुनका संवादरूप तथा अद्वैतरूप अमृतकी वर्षा

करणेहारी तथा सप्तशत ७०० श्लोकरूप गीताउपनिषद् नामा ब्रह्मविद्या स्थापन करते भये। ता गीतारूप ब्रह्मविद्याका अज्ञानसहित सर्व प्रपंचका अभावरूप तथा सत् चित् आनन्दस्वरूप तथा जीवतें अभिन्न अद्वितीय ब्रह्मरूप मोक्ष ही परम प्रयोजन है । तिसी अद्वितीय ब्रह्मरूप मोक्षकूं शास्त्रोंविषे विष्णुका परमपद कहैं हैं। और तिसी अद्वितीय ब्रह्मरूप मोक्षकी प्राप्तिवासते सृष्टिके आदिकालविषे सर्वज्ञ ईश्वरनैं, कर्म, उपासना और ज्ञान या तीन कांडोंकरिकै युक्त ऋगादिक वेद उत्पन्न करे हैं। और यह अष्टादश अध्यायरूप भगवद्गीता भी ऋगादि वेदरूप है। यांतें यह भगवद्गीता भी षट्षट् अध्यायरूप तीन षष्ठोंकरिकै यथाक्रमतें कर्म, उपासना और ज्ञान या तीन कांडरूप है। तहां षट् अध्यायरूप प्रथम षट्कविषे तौ कर्मनिष्ठा कथन करी है । और षट् अध्यायरूप द्वितीय षट्कविषे तौ भगवद्भक्तिनिष्ठारूप उपासना कथन करी है और षट् अध्यायरूप–तृतीय षट्कविषे तौ ज्ञाननिष्ठा कथन करी हैं। तहां मध्यके षट्कविषे स्थित जो भगवद्भक्तिनिष्ठा है सा भगवद्भक्तिनिष्ठा कर्मनिष्ठाकी प्राप्तिविषे प्रतिबंधक जो पापरूप विघ्न हैं तिन सर्व विघ्नोंकूं नाश करणेहारी है। यातें सा भगवद्भक्तिनिष्ठा कर्मनिष्ठाविषे तथा ज्ञाननिष्ठाविषे दोनोंविषे अनुगत है। याकारणतैं ही सा भगवद्भक्तिनिष्ठा कर्ममिश्रा, शुद्धा और ज्ञानमिश्रा या भेदकरिकै तीन प्रकारकी होवै है। तहां या गीताके प्रथम षट्कविषे स्थित सा भगवद्भक्तिनिष्ठा कर्ममिश्रा कही जावै है । और द्वितीय षट्कविषे स्थित सा भगवद्भक्तिनिष्ठा शुद्धा कही जावै है और तृतीय षट्कविषे स्थित सा भगवद्भक्तिनिष्ठा ज्ञानमिश्रा कही जावै है। तहां कर्मनिष्ठाकरिकै मिली हुई भगवद्भक्तिनिष्ठाका नाम कर्ममिश्रा है । और ज्ञाननिष्ठाकरिकै मिली हुई भगवद्भक्तिनिष्ठाका नाम ज्ञानमिश्रा है और केवल भगवद्भक्तिनिष्ठाका नाम शुद्ध है । इस प्रकार यह भगवद्गीता ऋगादिक वेदोंकी न्याईं तीनकांडरूप है । तहां यह गीताके प्रथम षट्करूप कर्मकांड

विषे कर्मोंके तथा तिन कर्मोंके त्यागके निरूपणरूप मार्गकरिकै अनेक प्रकारकी युक्तियोंसे त्वंपदका अर्थरूप कूटस्थ शुद्ध आत्माका निरूपण करा है। और द्वितीय पट्करूप उपासनाकांडविषे भगवद्भक्तिनिष्ठाके वर्णनरूप मार्गकरिकै तत्पदार्थरूप परमात्मा देवका निरूपण करा है। तृतीय पट्करूप ज्ञानकांड विषे तिन शोधित तत्त्वंपदार्थोंका अभेदरूप महावाक्योंका अर्थ निरूपण करा है। इस प्रकारसे तीन पट्करूप तीन कांडोंका परस्पर सम्बन्ध संभवै है । और पूर्व पूर्व अध्यायके अर्थका उत्तरोत्तर अध्यायके अर्थसाथि जिस जिस प्रकारका सम्बंध सम्भवै है। सो सो सम्बंध तिस तिस अध्यायके निरूपणकालविषे कथन करेंगे । अब या अष्टादश अध्यायरूप भगवद्गीताविषे जो जो मोक्षके साधन विस्तारकरिकै निरूपण करे हैं तिन सर्व साधनोंका प्रथम संक्षेपतें निरूपण करें हैं। यह अधिकारी पुरुष प्रथम स्वर्गादिक फलकी प्राप्ति करणेहारे,काम्यकर्मोंका परित्याग करिके तथा नरकादिक दुःखोंकी प्राप्ति करणेहारे हिंसादिक निषिद्ध कर्मोंका परित्याग करिके फलकी इच्छातें रहित केवल निष्काम कर्मोंकूं करै। तिन निष्काम कर्मोंविषे भी परमेश्वरके नामोंका जप तथा स्तुति आदिक परमधर्मरूप हैं। ता निष्काम कर्मोंकरिकै तथा परमेश्वरके जप स्तुति आदिकों करिकै या अधिकारी पुरुषका चित्त प्रतिबंधकरूप सर्व पापोंतें रहित होइकै विचार करणेयोग्य होवै है। तिसतें अनंतर या अधिकारी पुरुष विषे नित्यअनित्य वस्तुका विवेक उत्पन्न होवै है। तिस विवेकतें अनंतर इस लोकके विषयसुखोंविषे तथा स्वर्गादिक लोकोंके विषयसुखोंविषे दोषदृष्टिपूर्वक वशीकार नामा वैराग्य उत्पन्न होवै है। तिस वैराग्यकी प्राप्तितें अनंतर शम, दम, श्रद्धा, समाधान, उपरति और तितिक्षा या षट्संपत्तिकी प्राप्तिकरिकै सर्वका परित्यागरूप सन्यास प्राप्त होवै है। ता संन्यासतें अनंतर या अधिकारी पुरुषकूं मोक्षकी प्राप्तिकी इच्छारूप मुमुक्षुता प्राप्त होवै है। ता मुमुक्षुताकी

प्राप्तितैं अनंतर यह अधिकारी पुरुष श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके समीप जावै है। तिसतैं अनंतर यह अधिकारी पुरुष ता ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखतैं वेदांतशास्त्रका श्रवण करै हैं। तथा ता श्रवण करे हुए अर्थका मनन करै है। ता श्रवणमननविषे ही सर्व उत्तरमीमांसाशास्त्रका उपयोग है। ता श्रवणमननकी परिपक्वतातैं अनंतर यह अधिकारी पुरुष निदिध्यासनकूं प्राप्त होवै है। ता निदिध्यासनविषे ही संपूर्ण योगशास्त्रका उपयोग है तहां श्रवणकरिकै वेदांतशास्त्ररूप प्रमाणगत असंभावनाकी निवृत्ति होवै है। और मननकरिकै आत्मरूप प्रमेयगत असंभावनाकी निवृत्ति होवै है। और निदिध्यासनकरिकै देहादिकों विषे आत्मत्वबुद्धिरूप विपरीतभावनाकी निवृत्ति होवै है। तिसतैं अनंतर ता असंभावनादिक दोषोंतैं रहित चित्त विषे गुरूपदिष्ट महावाक्यतैं ब्रह्मात्माका साक्षात्कार उत्पन्न होवै है। ता ब्रह्मात्मसाक्षात्कारके उत्पन्न हुए या अधिकारी पुरुषके अविद्याकी निवृत्ति होवै है। ता आवरणशक्तिप्रदान अविद्याके निवृत्त हुएतैं अनंतर या अधिकारी पुरुषके भ्रम तथा संशय निवृत्त होवै हैं। तथा भावी जन्मोंकी प्राप्ति करणेहारे सर्व संचितकर्म नाशकूं प्राप्त होवैं हैं। और ता आत्मसाक्षात्कारके प्रभावतैं आगामी कर्मोंकी उत्पत्ति ही होवै नहीं। परन्तु प्रारब्धकर्मरूप विक्षेपके वशतैं या अधिकारी पुरुषकी वासना निवृत्ति होवै नहीं। जिस कारणतैं सा वासना सर्वतैं बलवती है। ऐसी बलवती वासना भी संयमरूप उपायकरिकै निवृत्त होवै है। तहां धारणा, ध्यान और समाधि या भेदकरिकै सो संयम तीन प्रकारका होवै है। ता संयमकी प्राप्तिवास्तै ही प्रथम यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार या पांचोंका उपयोग होवै है। और या अधिकारीपुरुषकूं ईश्वरके प्रणिधानतैं सा समाधि शीघ्रही प्राप्त होवै है ता समाधिकरिकै या अधिकारी पुरुषका मनोनाश होवै है। तथा वासनाक्षय होवै है। और तत्त्वज्ञान, मनोनाश और वासनाक्षय या तीनोंका

एककालविषे अभ्यास कियेतैं या अधिकारी पुरुषकूं जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति होवैहै। इसी जीवन्मुक्तिकी प्राप्तिवास्तै श्रुतिविषे विद्वत्संन्यासका कथन करा है। और पूर्व सविकल्पसमाधिकरिकै निरोधकूं प्राप्त भया जो चित्त है ता निरुद्धचित्तविषे तीन भूमिकावाली निर्विकल्प समाधि उत्पन्न होवै है। तहां प्रथम भूमिकाविषे तौ यह विद्वान् पुरुष अपनी इच्छातैं उत्थानकूं प्राप्त होवै है। और द्वितीयभूमिकाविषे सो विद्वान पुरुष दूसरें किसीकरिकै बोधन करा हुआ उत्थानकूं प्राप्त होवै है। और तृतीय भूमिकाविषे सो विद्वान पुरुष अपणी इच्छाकारिकै तथा किसी दूसरेकरिकै उत्थानकूं प्राप्त होवै नहीं। किंतु सर्व कालविषे ताकी ब्रह्माकारवृत्ति रहै है। ऐसे निर्विकल्पसमाधिवान् पुरुषकूंही शास्त्रविषे ब्राह्मण कहै हैं। तथा ब्रह्मविद्वरिष्ठ कहैं हैं। तथा गुणातीत कहै हैं। तथा स्थितप्रज्ञ कहैं हैं। तथा विष्णुभक्त कहैं हैं तथा अतिवर्णाश्रमी कहैं हैं। तथा जीवन्मुक्ति कहैं हैं। तथा आत्मरति कहैं हैं। ऐसा जीवन्मुक्त पुरुष कृतकृत्यभावकूं प्राप्त भया है यातैं शास्त्र भी ता जीवन्मुक्त पुरुषतैं निवृत्त होवै है। तात्पर्य यह। ता जीवन्मुक्त पुरुषऊपरि शास्त्रका कोईभी विधि निषेध नहीं है। किंवा " यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ॥ तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मनः " ॥ अर्थ, यह जिस अधिकारी पुरुषकी परमात्मादेवविषे परमभक्ति है तैसी ही गुरुविषे परम विभक्ति है। तिस अधिकारी पुरुषके बुद्धिविषैही यह शास्त्र प्रतिपादित अर्थ प्रकाशमान होवै है, इति ॥ या श्रुतिप्रमाणतैं शरीरमनवाणीकृत भगवद्भक्तिका सर्व अवस्थाओंविषे उपयोग सिद्ध होवै है। तहां पूर्व पूर्व भूमिकाविषे करी हुई सा भगवद्भक्ति उत्तर उत्तर भूमिकाकी प्राप्ति करै है ता भगवद्भक्तितैं बिना विघ्नोंकी बाहुल्यतातैं फलकी प्राप्ति होणी अत्यंत दुर्लभ है। यह वार्त्ता " पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोपि सः। अनेकजन्मसंसिद्धः " इत्यादिक भगवान्के वचनोंतैं ही सिद्ध होवै है। पूर्व पूर्व

जन्मोंविषे उत्पन्नभये जो संस्कार हैं ते संस्कार अचिंत्यशक्तिवाले हैं तिन पूर्वसंस्कारोंके प्रभावतैं जो कोई पुरुष आकाशफलपातकी नाईं पूर्व ही कृतकृत्यभावकूं प्राप्त होवै है तिस पुरुषके वासतै भी शास्त्रका आरंभ करा जावै नहीं। जिस वास्तै पूर्वसिद्धिसाधनोंके अभ्यासतैं भगवत्कृपा अत्यंत दुर्विज्ञेय है। इस प्रकार पूर्वभूमिकाके सिद्ध हुए भी उत्तर उत्तर भूमिकाकी प्राप्तिवासतै यह अधिकारी पुरुष भगवद्भक्तिकूं अवश्यकरिकै करै। ता भगवद्भक्तितैं विना सा उत्तरभूमिका सिद्ध होवै नहीं। किंवा। जैसे पूर्व अवस्थाविषे ता भगवद्भक्तिके फलकी कल्पना होवै है। तैसे जीवन्मुक्तिदशाविषे ता भगवद्भक्तिके फलकी कल्पना होवै नहीं। किंतु ता जीवन्मुक्त विद्वान् पुरुषविषे जैसे अद्वेष्टृत्व, अदंभित्व आदिक धर्म स्वभावभूत होइके रहै है। तैसे सा भगवद्भक्ति भी स्वभावभूत होईके रहै है। यह वार्त्ता "तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते" इत्यादिक वचनोंकरिकै श्रीभगवान्नें प्रतिपादन करी है। या कारणतैं सो जीवन्मुक्त विद्वान् पुरुष ही मुख्य प्रेमभक्ति कह्या जावै है। इत्यादिक सर्व मोक्षके साधन श्रीकृष्णभगवान्नैं या गीताशास्त्रविषे कथन करे हैं। तिन मोक्षके साधनोंकूं देखिकरिकै श्रीमच्छंकराचार्यनैं तथा स्वामी शंकरानंदनैं तथा स्वामी मधसूदननैं तथा नीलकण्ठ पंडितनैं बहुत उत्साहपूर्वक या गीताशास्त्र ऊपरि संस्कृत टीका करी हैं। तिन संस्कृत टीकावोंतैं यद्यपि व्याकरणादिक साधन सम्पन्न मुमुक्षु जनोंकूं या गीताशास्त्रके अर्थका बोध होइ सकै है, तथापि तिन संस्कृत टीकावोंतैं व्याकरणादिक साधनोंतैं रहित केवल भाषाके पठन करणेहारे मुमुक्षु जनोंकूं या गीताशास्त्रके अर्थका बोध होइ सकै नहीं। यातैं तिन मुमुक्षु जनोंके प्रति या गीताशास्त्रके अर्थका बोध करावणेवासतै हम तिन संस्कृत टीकावोंके अभिप्रायकूं लैके यह **गीतागूढार्थदीपिका** नामा प्राकृत टीकाका आरम्भ करैं हैं।

। इति । तहां निष्काम कर्मोंका जो अनुष्ठान है तिसकूंही शास्त्रविषे मोक्षका मूलरूप करिके कथन करा है । और शोक मोहादिक पापरूप असुरता मोक्षकी प्राप्तिविषे प्रतिबंधक है । काहेतें तिन शोक मोहादिक असुरोंकी प्राप्तितें ही यह पुरुष अपणे वर्णाश्रमके धर्मतें भ्रष्ट होवै है तथा शास्त्रनिषिद्ध कर्मविषे प्रवृत्त होवै है तथा फलकी इच्छापूर्वक अहंकार सहित नाना प्रकारकी क्रियाकूं करै है । इस प्रकार शोक मोहादिक पाप रूप असुरों करिकै नित्यही युक्त हुआ यह पुरुष मोक्षरूप पुरुषार्थकूं न प्राप्त होइकै जन्म मरणादिक अनेक दुःखोंकूं प्राप्त होवै हैं । सो दुःख स्वभावतैंही सर्व प्राणियोंके द्वेषका विषय है । यातैं ता दुःखकी निवृत्तिवास्ते ता दुःखके साधनरूप शोक मोहादिक अवश्य करिकै त्याग करणे योग्य है । और या अनादि संसारविषे अनेक जन्मों करिकै ते शोकमोहादिक दुःखके कारण दृढताकूं प्राप्त हुए हैं। यातैं तिन शोकमोहादिकोंका त्याग करणा अत्यन्त कठिन है । और तिन शोक मोहादिकोंकी निवृत्तितैं विना मोक्षकी प्राप्ति होवै नहीं । यातैं ते हमारे शोकमोहादिक किस उपाय करिकै नाशकूं प्राप्त होवैंगे, इस प्रकारकी उत्कट इच्छावान् जो मुमुक्षु जन है, ताके बोध करणेवास्तै श्रीकृष्णभगवान् या गीताशास्त्रकूं कथन करता भया । ता गीताशास्त्रविषे "अशोच्यानन्वशोचस्त्वम्" इत्यादिक श्लोकोंकरिकै शोकमोहादिक असुरोंकी निवृत्तिके उपायका उपदेश करिकै अपणे वर्णाश्रमके धर्मोंके अनुष्ठानतैं तुम मोक्षरूप पुरुषार्थकूं प्राप्त होवो । या प्रकारका जो भगवान्‌का उपदेश है सो उपदेश सर्व मुमुक्षुजनोंके प्रति साधारण है केवल एक अर्जुनके प्रति सो उपदेश नहीं है ॥ शंका—श्रीकृष्णभगवान्‌का जो कदाचित् सर्व मुमुक्षु जनोंके प्रति साधारण ही उपदेश होवै तौ या गीताशास्त्रविषे श्रीकृष्णभगवान्‌का तथा अर्जुनका संवादरूप आख्यायिका किसवास्तै रक्खी है ॥ समाधान—जैसे उपनिषदोंका उपदेश सर्व मुमुक्षु जनोंके

प्रति साधारण हुआ भी तिन उपनिषदोंविषे जो जनकयाज्ञवल्क्यादि-
कोंका संवादरूप आख्यायिका हैं ते आख्यायिका तिस तिस उपनिषद्रूप
ब्रह्मविद्याकी स्तुतिवासतै हैं तैसे या गीताशास्त्रविषे जो श्रीकृष्णभगवान्
अर्जुनका संवादरूप आख्यायिका है सा आख्यायिका भी या गीतारूप
ब्रह्मविद्याकी स्तुतिवासतै है। ता स्तुतिका यह प्रकार है। सर्व लोकविषे
प्रसिद्ध है महानुभाव जिसका ऐसा जो अर्जुन है। सो अर्जुन राज्य
गुरु, पुत्र, मित्र आदिक पदार्थोंविषे मैं इनोंका हूं ये मेरे हैं या प्रकारकी
बुद्धिकरिकै स्नेहकूं प्राप्त होता भया। ता स्नेहकरिकै उत्पन्न भया जो
शोक, मोह ता शोकमोह करिकै नष्ट होइगया है, विवेकविज्ञान जिसका
ऐसा सो अर्जुन पूर्वस्वभावतैं ही क्षत्रियोंके धर्मरूप युद्धविषे प्रवृत्त हुआ
भी ता शोकमोहके प्रभावतैं ता धर्मयुद्धतैं उपराम होता भया। तथा
संन्यासियोंका धर्मरूप जो भीक्षा वृत्तितैं जीवन है ते भिक्षाजीवनादिक धर्म
यद्यपि क्षत्रिय राजावोंकूं शास्त्रकरिकै निषिद्ध हैं तथापि सो अर्जुन ता
शोकमोहके वशतैं ता भिक्षाजीवनरूप परधर्मके करणेवासतै प्रवृत्त होता
भया। इस प्रकार सो अर्जुन ता शोकमोहके वशतैं महान् अनर्थविषे
मग्न होता भया। ऐसा अर्जुन श्रीकृष्णभगवान्‌के उपदेशतैं या गीतारूप
ब्रह्मविद्याकूं प्राप्त होइकै ता शोकमोहतैं रहित होइकै पुनः अपणे युद्धरूप
धर्मविषे प्रवृत्त होता भया। ता करिकै सो अर्जुन कृत्यकृत्यभावकूं प्राप्त होता
भया। ऐसे महान् प्रयोजनकी प्राप्ति करणेहारी यह गीतारूप ब्रह्मविद्या
है यातैं यह गीतारूप ब्रह्मविद्या अत्यन्त श्रेष्ठ है। या प्रकार या गीतारूप
ब्रह्मविद्याकी स्तुति करणेवासतै श्रीकृष्णभगवान् अर्जुनका संवादरूप
आख्यायिका या गीताशास्त्रविषे स्थित हैं। यातैं अर्जुन शब्दकरिकै
या गीताशास्त्रके उपदेशका अधिकारी मात्र कथन करा है। या कार-
णतैं ही युद्धरूप स्वधर्मविषे पूर्व अर्जुनकी प्रवृत्ति हुए भी ता युद्धरूप
स्वधर्मतैं निवृत्तिका कारणरूप शोक मोह " कथं भीष्ममहं संख्ये " इत्या-

दिक वचनोंकरिकै अर्जुननैं दिखाये हैं । या प्रकार आगे कथन करेंगे। तहां युद्धरूप स्वधर्मविषे विवेकतैं विना ही अर्जुनकी किस निमित्ततैं प्रवृत्ति भई है या प्रकारकी जिज्ञासाके हुए "दृष्ट्वा तु पांडवानीकम्" इत्यादिक वचन करिकै परसेनाकी चेष्टा ही ता प्रवृत्तिविषे निमित्त कथन करा है । तिस अर्थकी सिद्धिवासतै "धर्मक्षेत्रे" इत्यादि श्लोक-करिकै धृतराष्ट्रका प्रश्न संजयके प्रति है । और "धृतराष्ट्र उवाच" यह वैशंपायनका वचन जन्मेजयके प्रति है । तहां पूर्व पांडवोंके जयके अनेक प्रकारके कारणोंकूं श्रवण करिकै अपणे पुत्रोंके राज्यतैं भ्रष्टपणेतैं भयभीत हुआ सो धृतराष्ट्र अपने पुत्रोंके जयकी इच्छा करता हुआ या प्रकार संजयसे पूँछता भया–

धृतराष्ट्र उवाच ।

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः॥
मामकाः पांडवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

(पदच्छेदः) धर्मक्षेत्रे । कुरुक्षेत्रे । समवेताः । युयुत्सवः । मामकाः । पांडवाः । च । एव । किम् । अकुर्वत । संजय ॥१॥

(पदार्थः) हे संजय। धर्मक्षेत्ररूप कुरुक्षेत्रविषे एकठे हुए तथा युद्धकी इच्छा करते हुए मेरे पुत्र तथा पांडुराजाके पुत्र क्या करते भये ॥ १ ॥

भाषाटीका–जैसे उत्तम भूमिरूप क्षेत्र व्रीहि यवादिक अन्नके उत्पत्तिका तथा वृद्धिका कारण होवै है तैसे पूर्व अविद्यमान धर्मके उत्पत्तिका जो कारण होवै तथा पूर्व विद्यमान धर्मके वृद्धिका जो कारण होवै अथवा धर्मके क्षयतैं जो रक्षा करणेहारा होवै ताका नाम धर्मक्षेत्र है । और कुरुदेशके अंतर जो स्थित होवै ताका नाम कुरुक्षेत्र है । इस प्रकार निवासमात्र करणेकरिकै धर्मकी तथा धर्मके फलकी प्राप्ति करणे-हारा जो धर्मक्षेत्ररूप कुरुक्षेत्र है सो श्रुति स्मृति आदिक सर्व शास्त्रोंविषे प्रसिद्ध है । तहां श्रुति ॥ " यदनु कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां

भूतानां ब्रह्मसदनम्, इति " । अर्थ-यह जो कुरुक्षेत्र सर्व देवताओंका देवजयनरूप है । तथा सर्व भूतप्राणियोंकूं ब्रह्मरूप मोक्षके प्राप्तिका स्थानरूप है, इति ॥ यह श्रुति जाबालउपनिषद्विषे बृहस्पतिने याज्ञवल्क्यके प्रति कथन करी है। और "कुरुक्षेत्रं देवजनम्" यह श्रुति शतपथ ब्राह्मणविषे कथन करी है। इत्यादिक श्रुतिस्मृतिप्रमाण करिकै सिद्ध जो कुरुक्षेत्र है ता धर्मक्षेत्ररूप कुरुक्षेत्रविषे युद्धकी इच्छा करिकै इकट्ठे हुए जो दुर्योधनादिक मेरे पुत्र हैं तथा युधिष्ठिरादिक पांडव हैं ते सर्व क्या कार्य करते भये । शंका-(युयुत्सवः) या विशेषण करिकै धृतराष्ट्रनैं अपने पुत्रोंविषे तथा पांडवोंविषे युद्ध करनेकी इच्छा कथन करी । और या लोकविषे यह नियम है जिस पुरुषकूं जिस कार्य करणेकी पूर्व इच्छा होवै है सो पुरुष तिस इच्छाके अनुसार तिसी कार्यविषे प्रवृत्त होवै है अन्य कार्यविषे प्रवृत्त होवै नहीं । यातैं ता पूर्व युद्धकी इच्छाके अनुसार तिन दुर्योधनादिकोंकी युद्धरूप कार्यविषे ही प्रवृत्ति होवैगी अन्य किसी कार्यविषे तिनोंकी प्रवृत्ति होवैगी नहीं । याते तिनोंका परस्पर किस प्रकारका युद्ध होता भया या प्रकारका प्रश्नही ता धृतराष्ट्रकूं करणेयोग्य था । ता प्रश्नका परित्याग करिकै मेरे पुत्र तथा पांडव क्या कार्य करतेभये यह जो धृतराष्ट्रनैं प्रश्न करा है सो असंगत है । समाधान ता धृतराष्ट्रके प्रश्नका यह अभिप्राय है ते हमारे दुर्योधनादिक पुत्र तथा युधिष्ठिरादिक पांडव पूर्व उत्पन्न हुई युद्धकी इच्छाके अनुसार युद्धकूं ही करते भये अथवा किसी निमित्त करिकै ता युद्धकी इच्छाके निवृत्त हुए कोई दूसरा ही कार्य करतेभये । तहां युद्धकी इच्छाकी निवृत्तिविषे दो प्रकारका कारण संभवै है, एक तौ दृष्टभय दूसरा अदृष्टभय । तहां भीष्म अर्जुनादिक महान् शूरवीरोंके दर्शनतैं उत्पन्न भया जो भय है सो दृष्टभयरूप युद्धकी निवृत्तिका कारण प्रसिद्ध ही है । यातैं सो दृष्टभयरूप निमित्त ता धृतराष्ट्रनैं कथन करा नहीं । और दूसरे अदृष्टभयरूप कारणके कथन करणेवास्तै ता धृत-

राष्ट्रनैं कुरुक्षेत्रका धर्मक्षेत्र यह विशेषण दिया है। ऐसे धर्मक्षेत्ररूप कुरुक्षेत्र विषे प्राप्तहुए जो युधिष्ठिरादिक पांडव हैं ते पांडव पूर्वही धर्मात्मा होनेतैं जो कदाचित् दोनों पक्षोंविषे होणेहारे हिंसाजन्य अधर्मतैं भयभीत होईकै ता युद्धतैं निवृत्त होई जावैंगे तौ हमारे दुर्योधनादिक पुत्र अवश्यकरिकै राज्यकूं प्राप्त होवैंगे। अथवा पूर्व स्वभावतैं ही पापात्मा जो हमारे दुर्योधनादिक पुत्र हैं। तिन हमारे पुत्रोंका ता धर्मक्षेत्ररूप कुरुक्षेत्रके प्रभावतै जो कदाचित् अंतःकरण शुद्ध हुआ होवैगा। ता चित्तकी शुद्धिकारिकै पश्चात्तापकूं प्राप्त हुए ते हमारे पुत्र पूर्व कपट करिकै लिये हुए राज्यकूं जो कदाचित तिन पांडवोंके ताई देदेवैंगे तौ ते हमारे पुत्र युद्धतैं विनाही नाशकूं प्राप्त हुए। इस प्रकार अपणे पुत्रोंकूं राज्यकी प्राप्तिविषे तथा पांडवोंकूं राज्यकी अप्राप्तिविषे अत्यंत दृढ उपायकूं नहीं देखता हुआ जो धृतराष्ट्र है ता धृतराष्ट्रका सो महान् उद्वेग ही ता प्रश्नका बीज है। तहां (हे संजय) या संबोधनकारिकै ता धृतराष्ट्रनैं यह अर्थ बोधन करा। रागद्वेषादिक दोषोंकूं जो भली प्रकारकरिकै जय करै है ताका नाम संजय है। ऐसे रागद्वेषतैं रहित आप हो। यातैं पक्षपाततैं रहित होइकै आप हमारे प्रति सर्व वृत्तांत कथन करो। इहां यद्यपि (मामकाः किमकुर्वत) या प्रकारके वचनमात्रकरिकेही ता धृतराष्ट्रके प्रश्नकी सिद्धि हो सकै है काहेतैं, ते युधिष्ठिरादिक पांडवभी ता धृतराष्ट्रके ही संबंधी हैं यातैं (पांडवाः) यह कहना व्यर्थ है। तथापि (पांडवाः) या शब्दके भिन्न कहने कारिकै ता धृतराष्ट्रनैं तिन पांडवोंविषे ममत्वका अभाव दिखाइकै तिन पांडवोंविषे अपणे द्रोहकूं सूचन करा ॥ १ ॥

हे जनमेजय ! इस प्रकार कृपारूप नेत्रोंतैं रहित तथा लोकप्रसिद्ध नेत्रोंतैं रहित तथा अपणे पुत्रोंके स्नेहमात्रकरिके युक्त ऐसा धृतराष्ट्र है ता धृतराष्ट्रके प्रश्नकूं श्रवण करिके तथा ता धृतराष्ट्रके अभिप्रायकूं जाणिकरिकै सो धर्मात्मा संजय ता धृतराष्ट्रके प्रति यह वचन कहता भया–

संजय उवाच ।

दृष्ट्वा तु पांडवानीकं व्यूढंदुर्योधनस्तदा ॥
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥२॥

(पदच्छेदः) दृष्ट्वा । तु । पांडवानीकम् । व्यूढम् । दुर्योधनः । तदा । आचार्यम् । उपसंगम्य । राजा । वचनम् । अब्रवीत् ॥२॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! तां संग्रामके आरंभकालविषे राजा दुर्योधन व्यूह रचनायुक्त पांडवोंकी सेनाकूं देखिकरिके द्रोणाचार्यके समीप जाइके याप्रकारका वचन कहता भया ॥ २ ॥

भा० टी०—तहां युधिष्ठिरादिक पांडवोंविषे भीष्मादिक वीर पुरुषोंतैं दृष्टभयकी संभावनामात्र भी होवै नहीं । और बांधवोंकी हिंसाजन्य पापरूप अदृष्टतैं जो अर्जुनकूं भय प्राप्त हुआ था सो केवल भ्रांतिकरिकै हुआ था सो अर्जुनका अदृष्टभय भी श्रीभगवान्नें ब्रह्मविद्याके उपदेशतैं निवृत्त करा । या प्रकार पांडवोंकी उत्कृष्टता बोधन करणेवासतै संजयनें (दृष्ट्वा तु) यह तु शब्द कथन करा है । तहां हमारे दुर्योधनादिक पुत्र धर्मक्षेत्रके कुरुक्षेत्रके प्रभावतैं शुभबुद्धिवाले होइकै पांडवोंके ताईं राज्य समर्पण करैंगे याप्रकारकी शंकाकरिकै तूं ग्लानिकूं मत प्राप्तहोउ याप्रकार ता धृतराष्ट्रकै संतोष करावणेवासतै सो संजय प्रथम ता दुर्योधनके दुष्ट स्वभावका वर्णन करै है । (दृष्ट्वेति) हे धृतराष्ट्र ! धृष्टद्युम्नादिक शूरवीर पुरुषोंनैं व्यूहरचना करिकै स्थापन करी जो पांडवोंकी सेना है ता सेनाकूं सो दुर्योधन राजा अपणे नेत्रोंसैं प्रत्यक्ष देखिकरिकै धनुर्विद्याके संप्रदायकी प्रवृत्ति करणेहारे द्रोणाचार्यके समीप आप ही जाइकै यह वक्ष्यमाण वचन कहता भया । ता द्रोणाचार्यकूं अपणे समीप बुलाइकै सो वचन नहीं कहता भया । तहां सो दुर्योधन राजा ता द्रोणाचार्यके समीप आप ही जाता भया या कहणेकरिकै ता दुर्योधनविषे पांडवोंकी सेनाके दर्शनतैं उत्पन्न भया भय सूचन करा । तहां सो दुर्योधन यद्यपि

भयकरिकै अपणी रक्षावासतै ता द्रोणाचार्यके समीप जाता भया । तथापि सो दुर्योधन राजनीतिविषे बहुत कुशल है यातैं आचार्यके समीप शिष्यनैं आप ही चलिकै जाणा या प्रकार आचार्यकी महानताके व्याजकरिकै अपणे भयकूं गुह्य राखता भया । या प्रकारके अर्थके बोधन करणेवासतैं संजयनैं दुर्योधनका राजा यह विशेषण दिया है । यद्यपि द्रोणाचार्यके प्रति सो राजा दुर्योधन कहता भया इतने कहणेमात्रकरिकै ही निर्वाह होइ सकै है । वचन या पदके कहणेका कछु प्रयोजन नहीं है, तथापि वचन या पदके कहणेकरिकै ता वाक्यविषे संक्षिप्तत्व, बहुअर्थप्रतिपादकत्व इत्यादिक अनेक गुणवत्व कथन करा । अथवा सो दुर्योधन राजा केवल वचनमात्र ही कहता भया । किंचित्मात्र भी अर्थ नहीं कहता भया । यह अर्थ वचनपदकरिकै सूचन करा ॥ २॥

तहां जिस प्रकारका वचन वा दुर्योधननैं द्रोणाचार्यके समीप जाइकै कथन करा था ता वचनका (*पश्यैतां*) इसतैं *आदि* लैके (*तस्य संजनयन् हर्षम्*) इसतैं पूर्वग्रंथकरिकै विस्तारतैं निरूपण करैं हैं । तहां या द्रोणाचार्यके अत्यंत प्रिय शिष्य जो पांडव हैं तिन पांडवोंविषे या द्रोणाचार्यका अत्यंत स्नेह है । यातैं यह द्रोणाचार्य हमारे पक्षविषे स्थित होइके तिन पांडवोंके साथि युद्ध नहीं करैगा । या प्रकारकी संभावना अपणे मनविषे करिकै सो दुर्योधन राजा तिन पांडवोंऊपरि ता द्रोणाचार्यका क्रोध उत्पन्न करणेवासतै ता द्रोणाचार्यके समीप तिन पांडवोंकी अवज्ञाकूं कथन करता हुआ या प्रकारका वचन कहता भया—

पश्यैतां पांडुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ॥
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ ३॥

(पदच्छेदः) ॥ पश्य । एताम् । पांडुपुत्राणाम् । आचार्य । महतीम् । चमूम् । व्यूढाम् । द्रुपदपुत्रेण । तव । शिष्येण धीमता ॥ ३ ॥

(पदार्थः) हे आचार्य ! पांडुराजाके पुत्रोंकी इस महान् सेनाकूं तूं देख जो सेना तुम्हारे बुद्धिमान शिष्य द्रुपदपुत्रनैं व्यूहरचनायुक्त करी है ॥ ३ ॥

भा० टी०–हे आचार्य ! आपसरीखे महानुभाव पुरुषोंकी भी अवज्ञाकरिकै तथा भयतैं रहित होइकै अत्यंत समीप स्थित जो यह पांडवोंकी सेना है सा सेना अनेक अक्षौहिणी संख्यावाली होणेतैं महान् है या कारणतैं ही सा सेना निवृत्त करनेकूं अशक्य है। ऐसी पांडवोंकी सेनाकूं आप नेत्रोंकरिकै प्रत्यक्ष देखो मैं आपका शिष्य हूं। यातैं मैं केवल आपके आगे प्रार्थना करता हूं कोई आपकूं आज्ञा नहीं करता। ता हमारी प्रार्थनाकूं अंगीकार करिकै जब आप ता पांडवोंकी सेनाकूं देखोगे तबी तिन पांडवोंके अवज्ञाकूं आपही निश्चय करौगे। शंका–तिन पांडवोंनैं करी जो हमारी अवज्ञा है सा अवज्ञा निवृत्त करणेकूं अशक्य है यातैं सा अवज्ञा हमारेकूं सहारणही उचित है। या प्रकारकी द्रोणाचार्यके शंकाके हुए तिस अवज्ञाके निवृत्त करणेका उपाय आपकूं अत्यंत सुगम है या प्रकारका उत्तर सो दुर्योधन ता द्रोणाचार्यके प्रति कथन करै है (व्यूढां तव शिष्येण इति) हे आचार्य ! तुम्हारेतैं धनुर्विद्या सीखाहुआ जो द्रुपद राजाका पुत्र धृष्टद्युम्न नामा तुम्हारा बुद्धिमान् शिष्य है। ता द्रुपदपुत्रनैं यह पांडवोंकी सेना शकटाकार तथा पद्मादि आकार करी हुई है और शिष्यकी अपेक्षाकरिकै गुरुविषे अधिकताही होवै है यह वार्त्ता सर्व लोकशास्त्रविषे सिद्ध है यातैं आपकूं तिनोंकी अवज्ञाके निवृत्त करणेका उपाय अत्यंत सुगम है। इहां धृष्टद्युम्नैं सा पांडवोंकी सेना व्यूहरचनायुक्त करी है या प्रकारका द–

नहीं कथन करिकै द्रुपदपुत्रनैं सा सेना व्यूहरचनायुक्त करी है या प्रकारका वचन जो दुर्योधननैं कथन करा है सो द्रोणाचार्यके प्रति द्रुपदराजाका पूर्वका वैर सूचन करिकै क्रोधकी उत्पत्ति करणेवासतै सो वचन कथन करा है। और ता द्रुपदपुत्रका बुद्धिमान् यह जो विशेषण दुर्योधननैं कथन करा है सो ता द्रुपदपुत्रकी आपनैं उपेक्षा कदाचित् भी नहीं करणी या प्रकार ताकी उपेक्षाके अभावका बोधन करणेवासतै दिया है। यातैं हे आचार्य ! दूसरे सर्व कार्योंका परित्याग करिकै आप शीघ्र ही चलिकै ता सेनाकूं देखो। अथवा या श्लोकके पदोंकी इस प्रकार योजना करणी (पांडुपुत्राणाम्) या पदका (आचार्य) या पदके साथि तथा (चमूम्) या पदके साथि संबंध करणा। इस प्रकार तिन पदोंकी योजना करणेतैं यह अर्थ सिद्ध होवै है हे पांडुपुत्रोंके आचार्य ! तिन पांडवोंकी सेनाकूं तूं देख तिन पांडवोंविषे ही तुम्हारा अत्यन्त स्नेह है यातैं तिन पांडवोंका ही तूं आचार्य है हमारा तूं आचार्य नहीं है। और तुम्हारे शिष्य द्रुपदपुत्रनैं यह सेना व्यूहरचनायुक्त करी है। या कहणेकरिकै ता दुर्योधननैं यह अर्थ सूचन करा तुम्हारे नाश करणेवासतै उत्पन्न हुआ भी यह द्रुपदपुत्र तुमनैं ही इसकूं धनुर्विद्या पढाई यातैं यह तुम्हारी मूढताही हमारे अनर्थका कारण है। और सो द्रुपदपुत्र बुद्धिमान् है या कहणे करिकै ता दुर्योधननैं यह अर्थ सूचन करा ॥ इस द्रुपदपुत्रनैं अपणे शत्रुवोंतैं ही तिन शत्रुवोंके मारणेका उपायरूप धनुर्विद्या ग्रहण करी है या कारणतैं यह द्रुपदपुत्र अत्यंत बुद्धिमान् है। हे आचार्य ! ऐसे अपणे शिष्योंकी सेनाकूं देखिकरिकै आपकूं ही आनन्द होवैगा। जिस कारणतैं आप भ्रांति युक्त हो। भ्रांतितैं रहित दूसरे किसीकूं ता सेनाके दर्शनतैं आनन्द होवैगा नहीं। जिसकूं यह पांडवोंकी सेना मैं दिखावों। यातैं आपही चलिकै तिन पांडवोंकी सेनाकूं देखो। इस प्रकार ता द्रोणाचार्यकूं पांडवोंकी सेना दिखावता हुआ सो दुर्योधन ता

आचार्यविषे अपणे गूढद्वेषकूं बोधन करता भया । इतने कहणेंकरिकै संजयनैं ता धृतराष्ट्रके प्रति यह अर्थ बोधन करा । धर्मक्षेत्रविषे प्राप्त होईकैभी जिन तुम्हारे दुर्योधनादिक पुत्रोंकूं अपणे आचार्यविषे भी ऐसी द्वेषबुद्धि हुई है वे दुर्योधनादिक ता धर्मक्षेत्रके प्रभावतैं पश्चात्तापकूं प्राप्त होइकै तिन पांडवोंकूं युद्ध करेतैं विना ही राज्य देदेवैंगे या प्रकारकी सम्भावना तुमनैं कदाचित् भी नहीं करणी ॥ ३ ॥

सर्व शूरवीरोंविषे अप्रसिद्ध ऐसा जो द्रुपदपुत्र है ता एक द्रुपदपुत्रकरिकै व्यूहरचनायुक्त करी हुई जो यह पांडवोंकी सेना है ता पांडवोंकी सेनाकूं हम सर्वोंविषे कोई एक साधारण शूरवीर भी जय करि लेवैगा । तुम तिन पांडवोंकी सेनातैं किस वासतै भय करते हो ऐसी द्रोणाचार्यकी शंकाके हुए सो दुर्योधन राजा (अत्र शूराः) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै तिन पांडवोंकी सेनाविषे स्थित शूरवीरोंके नाम वर्णन करै हैं–

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ॥
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४ ॥
धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ॥
पुरुजित्कुंतिभोजश्च शैब्यश्च नरपुंगवः ॥ ५ ॥
युधामन्युश्च विक्रांत उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ॥
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) अत्र । शूराः । महेष्वासाः । भीमार्जुनसमाः । युधि । युयुधानः । विराटः । च । द्रुपदः । च । महारथः ॥ ४ ॥ धृष्टकेतुः । चेकितानः । काशिराजः च वीर्यवान् । पुरुजित् । कुन्तिभोजः । च । शैब्यः । च । नरपुंगवः ॥ ५ ॥ युधामन्युः । च । विक्रान्तः । उत्तमौजाः । च । वीर्यवान् । सौभद्रः । द्रौपदेयाः । च । सर्वे । एव । महारथाः ॥ ६ ॥

नहीं कथन करिकै द्रुपदपुत्रनैं सा सेना व्यूहरचनायुक्त करी है या प्रकारका वचन जो दुर्योधननैं कथन करा है सो द्रोणाचार्यके प्रति द्रुपदराजाका पूर्वका वैर सूचन करिकै क्रोधकी उत्पत्ति करणेवास्तै सो वचन कथन करा है । और ता द्रुपदपुत्रका बुद्धिमान् यह जो विशेषण दुर्योधननैं कथन करा है सो ता द्रुपदपुत्रकी आपनैं उपेक्षा कदाचित् भी नहीं करणी या प्रकार ताकी उपेक्षाके अभावका बोधन करणेवास्तै दिया है । यातैं हे आचार्य ! दूसरे सर्व कार्योंका परित्याग करिकै आप शीघ्र ही चलिकै ता सेनाकूं देखो । अथवा या श्लोकके पदोंकी इस प्रकार योजना करणी (पांडुपुत्राणाम्) या पदका (आचार्य) या पदके साथि तथा (चमूम्) या पदके साथि संबंध करणा । इस प्रकार तिन पदोंकी योजना करणेतैं यह अर्थ सिद्ध होवै है हे पांडुपुत्रोंके आचार्य ! तिन पांडवोंकी सेनाकूं तूं देख तिन पांडवोंविषे ही तुम्हारा अत्यन्त स्नेह है यातैं तिन पांडवोंका ही तूं आचार्य है हमारा तूं आचार्य नहीं है । और तुम्हारे शिष्य द्रुपदपुत्रनैं यह सेना व्यूहरचनायुक्त करी है । या कहणेकरिके ता दुर्योधननैं यह अर्थ सूचन करा तुम्हारे नाश करणेवास्तै उत्पन्न हुआ भी यह द्रुपदपुत्र तुमनैं ही इसकूं धनुर्विद्या पढाई यातैं यह तुम्हारी मूढताही हमारे अनर्थका कारण है । और सो द्रुपदपुत्र बुद्धिमान् है या कहणे करिकै ता दुर्योधननैं यह अर्थ सूचन करा ॥ इस द्रुपदपुत्रनैं अपणे शत्रुवोंतैं ही तिन शत्रुवोंके मारणेका उपायरूप धनुर्विद्या ग्रहण करी है या कारणतैं यह द्रुपदपुत्र अत्यंत बुद्धिमान् है । हे आचार्य ! ऐसे अपणे शिष्योंकी सेनाकूं देखिकरिकै आपकूं ही आनन्द होवैगा । जिस कारणतैं आप भ्रांति युक्त हो । भ्रांतितैं रहित दूसरे किसीकूं ता सेनाके दर्शनतैं आनन्द होवैगा नहीं । जिसकूं यह पांडवोंकी सेना मैं दिखावों । यातैं आपही चलिकै तिन पांडवोंकी सेनाकूं देखो । इस प्रकार ता द्रोणाचार्यकूं पांडवोंकी सेना दिखावता हुआ सो दुर्योधन ता

आचार्यविषे अपणे गूढद्वेषकूं बोधन करता भया । इतने कहणेंकरिकै संजयनैं ता धृतराष्ट्रके प्रति यह अर्थ बोधन करा । धर्मक्षेत्रविषे प्राप्त होईकैभी जिन तुम्हारे दुर्योधनादिक पुत्रोंकूं अपणे आचार्यविषे भी ऐसी द्वेषबुद्धि हुई है ते दुर्योधनादिक ता धर्मक्षेत्रके प्रभावतैं पश्चात्तापकूं प्राप्त होइकै तिन पांडवोंकूं युद्ध करेतैं विना ही राज्य देदेवैंगे या प्रकारकी सम्भावना तुमनैं कदाचित् भी नहीं करणी ॥ ३ ॥

सर्व शूरवीरोंविषे अप्रसिद्ध ऐसा जो द्रुपदपुत्र है ता एक द्रुपदपुत्रकरिकै व्यूहरचनायुक्त करी हुई जो यह पांडवोंकी सेना है ता पांडवोंकी सेनाकूं हम सर्वोंविषे कोई एक साधारण शूरवीर भी जय करि लेवैगा । तुम तिन पांडवोंकी सेनातैं किस वासतै भय करते हो ऐसी द्रोणाचार्यकी शंकाके हुए सो दुर्योधन राजा (अत्र शूराः) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै तिन पांडवोंकी सेनाविषे स्थित शूरवीरोंके नाम वर्णन करै हैं-

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ॥
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४ ॥
धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ॥
पुरुजित्कुंतिभोजश्च शैब्यश्च नरपुंगवः ॥ ५ ॥
युधामन्युश्च विक्रांत उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ॥
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) अत्र । शूराः । महेष्वासाः । भीमार्जुनसमाः । युधि । युयुधानः । विराटः । च । द्रुपदः । च । महारथः ॥ ४ ॥ धृष्टकेतुः । चेकितानः । काशिराजः च वीर्यवान् । पुरुजित् । कुन्तिभोजः । च । शैब्यः । च । नरपुंगवः ॥ ५ ॥ युधामन्युः । च । विक्रान्तः । उत्तमौजाः । च । वीर्यवान् । सौभद्रः । द्रौपदेयाः । च । सर्वे । एव । महारथाः ॥ ६ ॥

(पदार्थः) इस पांडवोंकी सेनाविषे युद्धविषे भीमअर्जुनके समान तथा महान् धनुषोंवाले ऐसे शूरवीर बहुत विद्यमान् हैं तिनोंके ये नाम हैं महारथीरूप युयुधान नामा राजा तथा विराट नामा राजा तथा द्रुपद नामा राजा ॥ ४ ॥ तथा विशेष पराक्रमवाला धृष्टकेतु नामा राजा तथा चेकितान नामा राजा तथा काशिराजा तथा सर्व मनुष्यों-विषे श्रेष्ठ पुरुजित् नामा राजा तथा कुंतिभोज नामा राजा तथा शैब्य नामा राजा ॥५॥ तथा विशेष पराक्रमवाला युधामन्यु नामाराजा तथा वीर्यवाला उत्तमौजा नामा राजा तथा सौभद्र नामा राजा तथा द्रौपदीके पांच पुत्र यह सर्वही महारथी हैं ॥ ६ ॥

भा०टी०—हे आचार्य! या पांडवोंकी सेनाविषे केवल एक धृष्टद्युम्न नामा द्रुपदपुत्र ही शूरवीर नहीं है जिसकरिकै या पांडवोंकी सेनाकी हम उपेक्षा करि देवैं । किंतु या पांडवोंकी सेनाविषे दूसरे भी बहुत शूरवीर हैं । यातैं तिनोंके जय करणेवासतै हमारेकूं अवश्यकरिक प्रयत्न करणाचाहिये। तिनोंकी उपेक्षा करणी योग्य नहीं है । अब तिन शूरवीरोंके विशेषणोंका कथन करै हैं (महेष्वासाः इति) इषु नाम बाणोंका है । ते इषु(बाण) चलाइयें जिनोंकरिकै तिनोंका नाम इष्वास है ऐसे धनुष हैं । ते इष्वास (धनुष) महान् हैं जिन शूरवीरोंके तिन शूरवीरोंका नाम महेष्वासाः है, तात्पर्य यह । ते शूरवीर बाणोंकरिकै दूरसेही परसेनाके भगावणे विषे कुशल हैं इति । शंका-ते शूरवीर महान् धनुषोंवाले तो हैं परन्तु तिनों विषे युद्धकरणेकी कुशलता नहीं होवैगी । ऐसी द्रोणाचार्यकी शंकाके हुए सो दुर्योधन राजा उत्तर कहे है (भीमार्जुनसमा युधि इति) हे आचार्य ! सर्व लोकविषे प्रसिद्ध है पराक्रम जिनोंका ऐसे जो भीम अर्जुन हैं ता भीम अर्जुनके समान ही जिन शूरवीरोंका युद्ध विषे पराक्रम है। शंका-ऐसे पराक्रम वाले कौन कौन शूरवीर हैं । ऐसी द्रोणाचार्यकी शंकाके हुए सो दुर्योधन राजा ता द्रोणाचार्यके प्रति तिन शूरवीरोंके नामोंका कथन करै है । (युयुधान इति) अतिशयकरिके जो युद्धकूं करै है ताका नाम

युयुधान है ऐसा सात्यकि नामा राजा है । और शत्रुओंकूं जो विशेषकरिके भ्रमण करावै है ताका नाम विराट है । और द्रु नाम वृक्षका है । पद नाम चिह्नका है । ता वृक्षका है ध्वजाविषे चिह्न जिसके ताका नाम द्रुपद है । यह तीनों महारथी हैं ॥ ४ ॥ और शत्रुवोंकूं भयकी प्राप्ति करणेहारेका नाम धृष्ट है । केतु नाम ध्वजाका है । भयका कारण है ध्वजा जिसकी ताका नाम धृष्टकेतु है । और चिकितान नामा राजाका जो पुत्र होवै ताका नाम चेकितान है और काशीका जो राजा होवै ताका नाम काशीराज है ते तीनों राजे वीर्यवान् हैं । तेजबलकरिके युक्त शत्रुवोंकूं भी जो विविध प्रकारतें भगाइ देवै ताका नाम वीर है । तिस वीर पुरुषका जो कर्म होवै ताका नाम वीर्य है सो वीर्य जिस विषे वर्त्तमान होवै ताका नाम वीर्यवान् है । और पुरु नाम बहुतोंका है । तिन बहुत शूरोंकूं जो जय करै है ताका नाम पुरुजित् है । और कुंतीके पिताका नाम कुंतिभोज है । और शिबि नाम राजाके विषे जो उत्पन्न होवै ताका नाम शैब्य है । ते तीनों राजा नरपुंगव हैं । सर्व नरोंविषे जो श्रेष्ठ होवै ताका नाम नरपुंगव है॥ ५॥ और युधा नाम युद्धका है और मन्यु नाम क्रोधकाहै । युद्धविषे है क्रोधका वेग जिसका ताका नाम युधामन्यु है यह युधामन्यु पंचाल देशका राजा है । सो युधामन्यु विक्रांत है विषेश करिके जाकेविषे पराक्रम रहै है ताका नाम विक्रांत है । और ओजस् नाम बलका है । उत्तम् है ओजस् जिसका ताका नाम उत्तमौजा है सो उत्तमौजा नामा राजा भी पंचाल देशका राजा है । कैसा है सो उत्तमौजा नामा राजा वीर्यवान् है । अथवा वीर्यवान् नरपुंगव विक्रांत ये तीनों विशेषण युयुधानादिक सर्व राजाओंके जानने। और सुभद्राका जो पुत्र होवै ताका नाम सौभद्र है ऐसा अभिमन्यु है और द्रौपदीके जो प्रतिविंध्यादिक पंच पुत्र हैं तीनोंका नाम द्रौपदेय है और । (द्रौपदेयाश्च) या पदविषे स्थित जो चकार है ता चकारकरिके पूर्व उक्त राजाओंते भिन्न पांडव राजा घटोत्कच आदिक सर्व राजोंका ग्रहण करणा ।

और युधिष्ठिरादिक पंच पांडव अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। यातैं दुर्योधननैं तिन पंचपांडवोंकी गिणती करी नहीं। अथवा (भीमार्जुन समा युधि) या वचन करिके वा दुर्योधननैं युयुधानादिक सर्व शूरवीरोंविषे भीम अर्जुनकी उपमा दई है। यातैं भीमार्जुन यह पद पांचों पांडवोंका उपलक्षक है। इस प्रकार युयुधान राजातैं आदि लैके द्रौपदीके पंच पुत्रों- पर्यंत कथन करे जो सप्तदश राजा तिनोंतैं भिन्न दूसरे भी तिनोंके संबंधी शूरवीर बहुत हैं। ते सब शूरवीर महारथी हैं। रथी अथवा अर्धरथी इन्होंविषे कोई है नहीं। इहां(महारथाः) या शब्दकरिकै अतिरथी- काभी ग्रहण करणा तहां महारथी,अतिरथी,रथी, अर्धरथी या चारोंका शास्त्रविषे या प्रकारका लक्षण कथन कराहै। तहां श्लोक। "एको दशसहस्राणि योधयेयस्तु धन्विनाम्। शस्त्रशास्त्रप्रवीणश्च महारथ इति स्मृतः॥ अमितान्योधयेयस्तु संप्रोक्तोऽतिरथस्तु सः। रथस्त्वेकेन यो योद्धा तन्न्यूनोऽर्धरथःस्मृतः"। अर्थ, यह-जो पुरुष एकलाही धनुषवालें दशसहस्र शूरवीरोंके साथि युद्ध करै है तथा शस्त्रशास्त्रविषे अत्यंत कुशल होवै है ता पुरुषकूं महारथी कहैं हैं। और जो पुरुष एकलाही असंख्यात शूरवीरोंके साथ युद्ध करै है तथा शस्त्रशास्त्रविषे अत्यंत कुशल होवै है ता पुरुषकूं अतिरथी कहै हैं। और जो पुरुष एक शूरवीरके साथिही युद्ध करै है ताकूं रथी कहैं हैं। और जो पुरुष ता रथीतैंभी न्यून बलवाला होवै ताकूं अर्धरथी कहैं हैं॥ ६॥

हे दुर्योधन ! इन पांडवोंकी सेनाविषे महान् शूरवीरोंकूं देखिकै जो कदाचित् तुम्हारेकूं भय होता होवै तौ इन पांडवोंके साथि शत्रुपणेका परित्याग करिकै तुम मित्रता करो या प्रकारके द्रोणाचार्यके अभिप्रायकी आशंका करिकै सो दुर्योधन ता द्रोणाचार्यके प्रति अपणी सेनाविषे स्थित शूरवीरोंके नामोंका वर्णन करै है-

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम॥
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते॥७॥

(पदच्छेदः) अस्माकम् । तु । विशिष्टाः । ये । तान् । निबोध । द्विजोत्तम । नायकाः । मम । सैन्यस्य । संज्ञार्थम् । तान् । ब्रवीमि । ते ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे सर्व ब्राह्मणोंविषे श्रेष्ठ आचार्य ! हम सर्वोंके मध्यविषे जे श्रेष्ठ योद्धा हैं तिन योद्धावोंकूं आप निश्चय करो मेरी सेनाके जो प्रधान, नायक हैं तिनोंविषे यत्किंचित् नायकोंकूं नामतें उच्चारण करिके मैं तुम्हारे ताई कथन करताहूं ॥ ७ ॥

भा०टी०—हे आचार्य । हमारी सेनाविषे जो योद्धा विद्या, बल, पौरुष, कुल, शील, इत्यादिक गुणोंकरिकै श्रेष्ठ है । तथा जे योद्धा हमारी सेनाकूं तिस तिस स्थानविषे लेजाणेहारे मुख्य नायक हैं । ते सर्व योद्धा यद्यपि असंख्यात हैं तथापि तिन सर्व योद्धावोंविषे यत्किंचित् योद्धावोंकूं नामतें उच्चारण करिकै तिनोंतैं भिन्न सर्व योद्धावोंके लखावणेवासतै मैं आपके प्रति कथन करताहूं । ते सर्व योद्धा आपकूं पूर्वही ज्ञात है । यातै किसी अज्ञात योद्धावोंके जनावणे वासतै मैं आपके प्रति तिन योद्धावोंके नाम कथन करता नहीं किंतु, पूर्वही ज्ञात योद्धावोंके स्मरण करणेवासतै मैं तिनोंके नामोंकूं कथन करताहूं। इहां (अस्माकंतु) या पदविषे स्थित जो तु शब्दहै ता तुशब्द करिकै ता दुर्योधननैं अंतर उत्पन्न हुए भयका बाहिर नहीं प्रगट करणा या प्रकारकी अपणी ढीठता बोधन करी । और (हे द्विजोत्तम) या विशेषणके कहणेकरिकै सो दुर्योधन ता द्रोणाचार्यकी स्तुति करता हुआ अपणे युद्धरूप कार्यविषे ता द्रोणाचार्यकी प्रवृत्तिकूं संपादन करता भया । और ता द्रोणाचार्यके द्वेषपक्षविषे तो सो दुर्योधन (हे द्विजोत्तम) या विशेषणकरिकै यह अर्थ बोधन करता भया तूं ब्राह्मण होणेतैं युद्धविषे कुशल है नहीं यातैं जो कदाचित् तूं हमारेतैं विमुख होइकै पांडवोंके पक्षविषे भी जावैगा, तौभी भीष्मादिक श्रेष्ठ क्षत्रिय हमारे पक्षविषे विद्यमान हैं । यातैं तुम्हारेतैं विना

निश्चय करिकै युक्त हैं। तथा शूल, चक्र, गदा, खड्ग इत्यादिक नानाप्रकारके शस्त्र हैं युद्धके साधन जिन्होंके या कारणतें ही ते सर्व शूरवीर युद्धविषे बहुत कुशल हैं। इहां (शूराः) इत्यादिक विशेषणोंकरिकैं ता दुर्योधननैं अपणी सेनाविषे पांडवोंकी सेनातैं बाहुल्यता कथन करी । तथा अपनेविषे ता सेनाकी अनन्य भक्ति कथन करी । तथा अपनी सेनाकी शूरता तथा युद्धविषे अत्यन्त उद्यम तथा अत्यन्त कुशलता कथन करी। ऐसी हमारी सेना इन पांडवोंकी सेनाते अधिक बलवाली है, इति ॥ ९ ॥

हे दुर्योधन ! जैसे तुम्हारी सेनाविषे शस्त्रअस्त्रविद्याविषे कुशल भीष्मादिक अनेक शूरवीर हैं तैसे पांडवोंकी सेनाविषे भी शस्त्रअस्त्रविद्याविषे कुशल अनेक शूरवीर है यातें ते दोनों सेना समानही हैं । ऐसी द्रोणाचार्यकी शंकाके हुए सो दुर्योधन राजा दूसरे प्रकारतैंभी तिन पांडवोंकी सेनातैं अपणी सेनाविषे अधिकता वर्णन करै है—

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ॥
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) अपर्याप्तं । तत् । अस्माकम् । बलम् । भीष्माभिरक्षितम् । पर्याप्तं । तु । इदम् । एतेषाम् । बलम् । भीमाभिरक्षितम् ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे आचार्य ! हमारी सा सेना अनंत है तथा भीष्मकरिकै सर्व ओरतें रक्षण करी है और याँ पांडवोंकी यह सेना तो न्यून है तथा भीमकरिकै रक्षण करी है ॥ १० ॥

भा ० टी०—हे आचार्य ! यह हमारी सेना एकादश अक्षौहिणी संख्यावाली है । तथा सर्व लोकविषे प्रसिद्ध है महिमा जिसकी तथा अत्यन्त सूक्ष्म है बुद्धि जिसकी ऐसा जो भीष्म है ता भीष्मकरिकै सा हमारी सेना सर्व ओरतैं रक्षण करी है । यातैं सा हमारी सेना तिन पांडवोंकी

सेनातैं प्रबल है । और यह पांडवोंकी सेना तौ सप्त अक्षौहिणी संख्या-वाली होणेतैं हमारी सेनातैं न्यून है । तथा अत्यन्त चपलबुद्धिवाले दुर्बल भीमसेनकरिकै सर्व ओरतैं रक्षण करी हुई है । यातैं यह पांडवोंकी सेना हमारी सेनातैं अत्यन्त दुर्बल है । अथवा "अपर्याप्तं तत् अस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितं पर्याप्तं तु इदम् एतेषां बलं भीमाभिरक्षितम्" या दशमें श्लोकके पदोंकी या प्रकारतैं योजना करणी "सो पांडवोंकी सेना हमारे पराजय करणेवासतै समर्थ नहीं है । जिस वासतैं सा पांडवोंकी सेना भीष्माभिरक्षित है । क्या महान् पराक्रम-वाला तथा सूक्ष्मबुद्धिवाला जो भीष्म है सो भीष्मपितामह, हमोंनैं स्थापन करा है जिस पांडवोंकी सेनाके निवृत्त करणेवासैत । या कारणतैं सा पांडवोंकी सेना भीष्माभिरक्षित है । और यह हमारी सेना तौ इनै पांडवोंके पराजय करणेविषे समर्थ है । जिसकारणतैं यह हमारी सेना भीमाभिरक्षित है । क्या अत्यंत दुर्बल हृदय जिसका तथा अत्यतं स्थूल है बुद्धि जिसकी ऐसा सो भीमसेन है । सो "भीमसेन" इन्होंनैं स्थापन करा है जिस हमारी सेनाके निवृत्त करणेवासतैं । या कारणतैं यह हमारी सेना भीमाभिरक्षित है । यातैं ऐसी दुर्बल पांडवोंकी सेनातैं हमारेकूं किंचि-त्मात्रभी भय है नहीं" । इहां प्रथम व्याख्यानविषे "भीष्मेण अभिर-क्षितं भीष्माभिरक्षितम्" तथा "भीमेन अभिरक्षितं भीमाभिरक्षितम्" या तृतीयात्पुरुषसमासकरिकै 'भीष्माभिरक्षितम्' यह दुर्योधनकी सेनाका विशेषण है । और "भीमाभिरक्षितम्" यह पांडवोंकी सेनाका विशेषण है । और दूसरे व्याख्यानविषे तौ "भीष्मः अभिरक्षितो यस्मै तत् भीष्मा-भिरक्षितं तथा भीमः अभिरक्षितो यस्मै तत् भीमाभिरक्षितम्" या प्रका-रके बहुव्रीहिसमासकरिकै "भीमाभिरक्षितम्" यह पांडवोंकी सेनाका विशेषण है । और "भीष्माभिरक्षितम्" यह दुर्योधनकी सेनाका विशेषण है ॥ १० ॥

हे दुर्योधन ! या पांडवोंकी सेनाकी अपेक्षा करिकै अपणी सेनाकूं प्रबल जानिकै जो तूं भयतै रहित है तौ किसवासतै तू बहुत कल्पना करता है, ऐसी आशंकाके हुए सो दुर्योधन राजा कहै है—

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ॥
भीष्ममेवाभिरक्षंतु भवंतः सर्व एव हि ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) अयनेषु । च । सर्वेषु । यथाभागम् । अवस्थिताः । भीष्मम् । एव । अभिरक्षंतु । भवंतः । सर्वे । एव हि ॥ ११ ॥

(पदार्थः) जिसे कारणतैं द्रोणाचार्यादिक तुम सर्व योद्धा व्यूहरचनायुक्त सेनाके प्रवेशमार्गोंविषे अपणे अपणे स्थानविषे स्थित हुए यां भीष्मपितामहकूं ही सर्वओरतैं रक्षण करो ॥ ११ ॥

भा० टी०—'अयनेषु च' या पदविषे स्थित जो चकार है सो चकार पूर्व कर्त्तव्यकी अपेक्षा करिकै कर्त्तव्यविशेषका बोधक है युद्धके प्रारंभकालविषे योद्धापुरुषोंके यथायोग्य युद्धभूमिविषे पूर्वउत्तरादिक दिशाओंके विभाग करिकै जो स्थितिके स्थान नियम करे जावैं हैं तिन स्थानोंका नाम अयन है । और सर्व सेनाका पति तौ ता सर्व सेनाकूं अपणे आश्रित करिकै ता सर्व सेनाके मध्यविषे स्थित होवै है । सो इस हमारी सेनाका पति भीष्मपितामह है । सो भीष्मपितामह युद्धके अत्यंत अभिनिवेशतैं अपणे सन्मुखदेशकी तरफ तथा अपणे पृष्ठदेशकी तरफ तथा अपणे वामभागदक्षिणभागकी तरफ देखता नहीं यातैं द्रोणाचार्यादिक तुम सर्व योद्धा अपणे भिन्न भिन्न रणभूमिनकूं परित्याग करिकै अपणे अपणे यथायोग्य स्थानविषे स्थित हुए या भीष्मपितामहका ही सर्व ओरतैं रक्षण करो । जिसकरिकै कोई परसेनाका शत्रु किसी मार्गद्वारा आईकै या भीष्मपितामहका हनन नहीं करै । इस प्रकार सावधान होइकै रक्षण करो । जब तुम सर्व योद्धा या भीष्मपितामहका रक्षण करौगे तबही ता भीष्मपितामहकी कृपातैं हम सर्वोंका रक्षण होवैगा ॥ ११ ॥

हे संजय ! या प्रकारके वचन जब ता दुर्योधन राजानैं कथन करे तिसतैं अनंतर ते भीष्मादिक योद्धा क्या कार्य करते भये । या प्रकारकी ता धृतराष्ट्रकी शंकाके हुए कोई हमारी स्तुति करो अथवा कोई हमारी निंदा करो इस दुर्योधन राजाके वास्तै यह हमारा देह अवश्यकरिकै पतन होवैगा या प्रकारके अभिप्रायकरिकै सो भीष्मपितामह ता दुर्योधनके चित्तविषे हर्ष उत्पन्न करता हुआ सिंहनादकूं तथा शंखके शब्दकूं करता भया या प्रकारका उत्तर सो संजय ता धृतराष्ट्रके प्रति कथन करै है—

तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ॥
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥ १२ ॥

(पदच्छेदः) तस्य । संजनयन् । हर्षम् । कुरुवृद्धः । पितामहः । सिंहनादम् । विनद्य । उच्चैः । शंखम् । दध्मौ । प्रतापवान् ॥ १२ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! महान् प्रतापवाला तथा कुरुवंशविषे वृद्ध ऐसा भीष्मपितामह तिस दुर्योधन राजाके हर्षकूं उत्पन्न करता हुआ सिंहनादकूं करिकै उच्चैः स्वरतैं शंखकूं बजावता भया ॥ १२ ॥

भा० टी०—हे धृतराष्ट्र ! पांडवोंकी सेनाकूं देखिकरिकै उत्पन्न हुआ है भय जिसकूं तथा ता भयकी निवृत्ति करणेवास्तै कपटकरिकै ता द्रोणाचार्यके शरणकूं प्राप्त हुआ तथा इस कालविषेभी यह दुर्योधन हमारे साथि कपट करै है या प्रकारके असंतोषैं वाणीमात्रकरिकैभी जिसका आचार्यनैं आदर नहीं करा । तथा ता द्रोणाचार्यकी उपेक्षाकूं जानिके (अयनेषु च सर्वेषु) इत्यादिक वचनोंकरिकै भीष्मपितामहकी स्तुति करीहै जिसनैं ऐसा जो दुर्योधन राजा है, ता दुर्योधनके भयकी निवृत्ति करणेहारा तथा दुर्योधन राजाके जयका सूचन करणेहारा ऐसा जो बुद्धिविषे स्थित उल्लासरूप हर्ष है ता हर्षकूं उत्पन्न करता हुआ सो भीष्मपितामह महान् सिंहनादकूं करिकै उच्चैःस्वरतैं शंखकूं बजावता भया

इहां संजयनैं भीष्मके कुरुवृद्ध, पितामह, प्रतापवान् यह तीनों विशेपण दिये हैं। तहां (कुरुवृद्धः) या प्रथम विशेपण करिकै तौ ता भीष्मविषे द्रोणाचार्यके तथा दुर्योधन राजाके अभिप्रायका ज्ञान सूचनकरा जिसवासतै लोकविषे वृद्ध पुरुषों विषेही पुत्रादिकोंके अभिप्रायका ज्ञान होवै है और (पितामहः) या द्वितीय विशेपणकरिकै जैसे द्रोणाचार्यनैं या दुर्योधनादिकोंकी उपेक्षा करीहै तैसे हमारेकूं इन्होंकी उपेक्षा करणी योग्य नहीं है या प्रकारका अभिप्राय सूचन करा। और तीसरा (प्रतापवान्) या विशेपणकरिकै यह अर्थ सूचन करा। उच्चैः स्वरतैं सिंहनादपूर्वक जो भीष्मनैं शंखकूं बजाया है सो भीष्मके शंखका शब्द पांडवोंकी सेनाकूं अवश्यकरिकै भयकी प्राप्ति करेगा ॥ १२ ॥

अब ता सेनापति भीष्मकी प्रवृत्तितैं अनंतर जिस प्रकार सर्व योद्धाओंकी प्रवृत्ति होती भई ताकूं संजय निरूपण करै है—

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः॥
सहसैवाभ्यहन्यंत स शब्दस्तुमुलोऽभवत् १३

(पदच्छेदः) ततः। शंखाः। च। भेर्यः। च। पणवानकगोमुखाः। सहसा। एव। अभ्यहन्यंत। सः। शब्दः। तुमुलः। अभवत् ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र! ता सेनापति भीष्मकी प्रवृत्तितैं अनंतर ता दुर्योधनकी सेनाविषे अनेकशंख तथा अनेकभेरी तथा अनेक पणव तथा अनेक आनक तथा अनेक गोमुख शीघ्र ही बजते भये सो शंखादिकोंकी शब्द महान् होताभया ॥ १३ ॥

भा० टी०—हे धृतराष्ट्र! ता सेनापति भीष्मके शंखके शब्दकूं श्रवण करिकै उत्पन्न हुआ है युद्ध करणेका उत्साह जिन्होंविषे ऐसे जो द्रोणाचार्यादिक योद्धा हैं ते सर्व योद्धा अपणे अपणे शंखोंकूं शीघ्रही बजावते भये। तथा दूसरे सेनाचर पुरुष भेरी, पणव, आनक, गोमुख इत्यादिक वादि-

त्रोंकूं शीघ्रही बजाते भये। तिन शंख भेरी आदिकोंका सो ध्वनिरूप शब्द महान् होता भया। वा महान् शब्दकूं श्रवण करिकैभी तिन पांडवोंकूं किंचित्मात्रभी क्षोभ नहीं होता भया। इहां पणव नाम मृदंगका है। आनक नाम नगारेका है। गोमुख नाम रणसिंहाका है, इति ॥ १३ ॥

इस प्रकार दुर्योधन राजाकी सेनाकी प्रवृत्तिकूं कथन करिकै अब पांडवोंकी सेनाकी प्रवृत्तिकूं सो संजय कथन करै हैं—

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यंदने स्थितौ॥
माधवः पांडवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः॥१४॥

(पदच्छेदः) ततः। श्वेतैः। हयैः। युक्ते। महति। स्यंदने। स्थितौ। माधवः। पांडवः। च। एव। दिव्यौ। शंखौ। प्रदध्मतुः १४

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र! भीष्मादिकोंके शंखादिकोंके शब्द श्रवणतै अनंतर श्वेतवर्णवाले अश्वोंकरिकै युक्त तथा महान् ऐसे रथविषे स्थिर जो श्रीकृष्णभगवान् हैं तथा अर्जुन है ते दोनों दिव्य शंखोंकूं बजावते भये ॥ १४ ॥

भा० टी०—या श्लोकके अक्षरोंका अर्थ स्पष्टही है। ताका भावार्थ यह है कि, यद्यपि पांडवोंकी सेनाविषेअर्जुनकी न्याईं तथा भगवान्की न्याईं दूसरेभी सर्व योद्धा अपणे अपणे रथोंविषे स्थित थे। यातैं केवल अर्जुनका तथा कृष्णभगवान्काही रथस्थत्वरूपविशेषण संभव नहीं। तथापि (ततःश्वेतैर्हयैर्युक्ते) इत्यादिक विशेषणयुक्त रथविषे जो अर्जुनकी तथा भगवान्की स्थिति कथन करी है। सो दूसरे रथोंतैं ता अर्जुनके रथकी उत्कृष्टता बोधन करणेवास्तै कथन करी है यातैं अग्निदेवतानैं अर्जुनके ताईं दिया जो रथ है सो रथ किसीभी शत्रुकरिकै चलायमान होइसकै नहीं, ऐसे महान् रथविषे स्थित जो अर्जुन तथा कृष्णभगवान् हैं ते दोनों किसीभी शत्रुंकरिकै जीते जावैं नहीं, इति ॥ १४ ॥

अब सो अर्जुन तथा श्रीकृष्णभगवान् जिन शंखोंकूं बजावत भये हैं तिन शंखोंके नाम तथा भीमादिकोंके शंखोंके नाम दो श्लोकोंकरिकै वर्णन करैं हैं–

पांचजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः ॥
पौंड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः ॥१५॥

(पदच्छेदः) पांचजन्यम् । हृषीकेशः । देवदत्तम् । धनंजयः । पौंड्रम् । दध्मौ । महाशंखम् । भीमकर्मा । वृकोदरः ॥ १५ ॥

(पदार्थः) श्रीकृष्णभगवान् पांचजन्य नामा शंखकूं बजावता भया तथा अर्जुन देवदत्त नामा शंखकूं बजावता भया और लोकोंकूं भयकी प्राप्ति करणेहारे हैं कर्म जिसके तथा वृकंकी न्याई है उदर जिसका ऐसा भीमसेन पौंड्रनामा महाशंखकूं बजावता भया ॥ १५ ॥

भा० टी०–पंचजनातैं जो उत्पन्न होवे ताकूं पांचजन्य कहे हैं ता पांचजन्य नामा शंखकूं हृषीकेश बजावता भया । और देवताओंनें दिया हुआ जो शंख है ताका नाम देवदत्त है ता देवदत्त नामा शंखकूं धनंजय बजावता भया । इहां संजयनैं श्रीकृष्णभगवान्कूं जो हृषीकेश नाम करिकै कथन करा है ताका यह अभिप्राय है हृषीकेश या नाम- विषे हृषिक और ईश ये दो पद हैं तहां हृषीक नाम इंद्रियोंका है ईश नाम प्रेरकका है ते दोनों पद मिलकै सर्व इंद्रियोंकूं अपणे अपणे कार्यविषे प्रवृत्त करणेहारे अंतर्यामी ईश्वरकूं कथन करैंहैं।ऐसा सर्वका अंतर्यामी कृष्णभगवान् जिन पांडवोंकी सहायताविषे है तिन पांडवोंकूं तुम्हारे दुर्योधनादिक पुत्र जय करि सकैंगे नहीं । और ता संजयनैं अर्जुनकूं जो धनंजय नामकरिकै कथन करा है ताका यह अभिप्राय है सर्व दिशाओंके जयकालविषे सर्व राजाओंकूं जीतिकरिकै अर्जुन धनकूं लेआवता भया है । या कारणतैं ता अर्जुनकूं धनंजय कहैं हैं । ऐसा महान् पराक्रमवाला अर्जुन तुम्हारे पुत्रोंतैं जीत्या जावैगा नहीं ।

और वा संजयनैं भीमसेनका जो वृकोदर यह विशेषण दिया है ताका यह अभिप्राय है वृककी न्याईं वा भीमसेनविषे वहुत अन्नके पचावणेकी सामर्थ्य है यातैं सो भीमसेन अत्यंत् वलवान है ॥ १५ ॥

अनंतविजयं राजा कुंतीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६॥

(पदच्छेदः) अनंतविजयम् । राजा । कुंतीपुत्रः । युधिष्ठिरः । नकुलः । सहदेवः । च । सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥

(पदार्थः) कुंतिका पुत्र राजा युधिष्ठिर अनंतविजय नामा शंखकूं वजावता भया और नकुल तथा सहदेव ये दोनों यथाक्रमतैं सुघोष और मणिपुष्पक या दोनों शंखोंकूं वजावते भये ॥ १६ ॥

भा०टी०—नाशतैं रहित विजयप्राप्त होवै जिसतैं ताका नाम अनंतविजय है ऐसे अनंतविजय नामा शंखकूं कुंतीका पुत्र राजा युधिष्ठिर वजावता भया इहां कुंतीमातानैं महान् तप करिकै धर्मराजाका आराधान करा था। ता धर्मराजातैं कुंतीकूं युधिष्ठिर पुत्रकी प्राप्ति भईथी । यातैं यह युधिष्ठिर राजा महावलवान् है । या प्रकार वा युधिष्ठिरके प्रभावका बोधन करणे वासते संजयनैं ता युधिष्ठिरका कुंतीपुत्र यह विशेषण दिया है । और जो युधिष्ठिर राजसूययज्ञका कर्ता है । यातैं राजाशब्दकी मुख्य अर्थता इस युधिष्ठिरविषेही घटै है । या प्रकारके अर्थका बोधन करणेवास्तै संजयनै ता युधिष्ठिरका राजा यह विशेषण दिया है । और युद्धविषे जयरूप फलका भागी हुआ जो स्थित होवै ताकूं युधिष्ठिर कहैं हैं । वा युधिष्ठिरपदकरिकै संजयनैं यह अर्थ सूचन करा या संग्रामविषे जयरूप फलका भागी हुआ यह युधिष्ठिरही स्थित होवैगा । वाके प्रतिपक्षी दुर्योधनादिक वा जयरूप फलके भागी हुए या संग्रामविषे स्थित होवैंगे नहीं इति । इहां दो श्लोकोंकरिकै पांचजन्य, देवदत्त, पौंड्र, अनंतविजय, सुघोष, मणिपुष्पक ये षट् शंखोंके नाम कथन करे । वा करिकै संजयनैं

यह अर्थ बोधन करा या पांडवोंकी सेनाविषे अपणे अपणे नामोंकरिकै प्रसिद्ध इतने शंख हैं और दुर्योधन राजाकी सेनाविषे तौ अपणे नामकरिकै प्रसिद्ध एकभी शंख नहीं है। यातैं यह पांडवोंकी सेना तुम्हारे दुर्योधनादिक पुत्रोंकी सेनातैं अत्यंत प्रबल है ॥ १६ ॥

अब धृतराष्ट्रकूं जो अपणे पुत्रोंके जयकी आशा है ता आशाके निवृत्त करणेवासतै सो संजय ता पांडवोंके पक्षविषे वर्त्तमान दूसरे राजाओंकी एकसंमतिकूं दो श्लोकोंकरिकै कथन करै है–

काश्यश्च परमेष्वासः शिखंडी च महारथः ॥
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः १७॥
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ॥
सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक् पृथक् १८

(पदच्छेदः) काश्यः । च । परमेष्वासः । शिखंडी । च । महारथः । धृष्टद्युम्नः । विराटः । च । सात्यकिः । च । अपराजितः ॥ १७ ॥ द्रुपदः । द्रौपदेयाः । च । सर्वशः । पृथिवीपते । सौभद्रः । च । महाबाहुः । शंखान् । दध्मुः । पृथक् पृथक् १८॥

(पदार्थः) हे पृथिवीका पति धृतराष्ट्र ! महान् धनुषवाला जो काशीका राजा है तथा महारथी जो शिखण्डी है तथा धृष्टद्युम्न जो है तथा विराट राजा जो है तथा शत्रुवोंकरिकै नहीं जीत्या हुआ जो सात्यकि राजा है ॥ १७ ॥ तथा द्रुपद राजा जो है तथा द्रौपदीके जो पंच पुत्र हैं तथा महान् बाहुवाला जो सुभद्राका पुत्र है यह सर्व योधा भिन्न भिन्न अपणे अपणे शंखोंकूं बजावते भये ॥ १८ ॥

भा० टी०–हे धृतराष्ट्र ! श्रीकृष्णभगवान्सहित अर्जुनादिक पंच पांडवोंकी प्रवृत्तिकूं देखिकरिकै तिन पांडवोंके पक्षपाति काशीराजा तथा धृष्टद्युम्न तथा विराट राजा तथा सात्यकि राजा तथा द्रुपदराजा तथा द्रौपदीके प्रति विंध्यादिक पंचपुत्र तथा सुभद्राका पुत्र अभिमन्यु ये सर्व

योद्धा भिन्न भिन्न अपणे अपणे शंखोंकूं बजावते भये । इहां मुखविषे स्थित श्मश्रुरूप वालोंतैं रहितपणेका नाम शिखंड है सो शिखंड जिसविषे होवै ताका नाम शिखंडी है । सो शिखंडी पंचाल देशका राजा है । और धृष्टद्युम्न या नामविषे धृष्ट और द्युम्न ये दो पद हैं तहां शत्रुवोंकूं पीडा करणेहारेका नाम धृष्ट है द्युम्न नाम बलका है । शत्रुवोंकूं पीडा करणेहारा है बल जिसका ताकूं धृष्टद्युम्न कहै हैं । और सत्यक नामा राजाका जो पुत्र होवै ताका नाम सात्यकि है । और जानुपर्यन्त जिसकी बाहु विशाल होवैं ताकूं महाबाहु कहैं है । तहां (परमेष्वासः) यह विशेषण काशीराजाका है । और (महारथः) यह विशेषण शिखंडी राजाका है। और (अपराजितः) ये विशेषण सात्यकि राजाका है । और (महाबाहुः) यह विशेषण सुभद्राके पुत्रका है । अथवा परमेष्वासः महारथः अपराजितः महाबाहुः ये चारों विशेषण काशीराजावैं आदि लैके सर्व राजाओंके जानणे ॥ १७ ॥ १८ ॥

ता अर्जुनादिक पांडवोंके शंखोंके शब्दकूं श्रवण कारिकै तिन दुर्योधनादिकोंकी किस प्रकारकी स्थिति होती भई या प्रकारकी धृतराष्ट्रकी शंकाके हुए संजय कहै है—

शब्द तिन पांडवोंकूं किंचित्मात्र भी क्षोभकी प्राप्ति नहीं करता भया और पांडवोंकी सेनाविषे स्थित जो पांचजन्य, देवदत्त, पौंड्र इत्यादिक शंख हैं तिन शंखोंके बजावणेतें उत्पन्न भया जो ध्वनिरूप शब्द है सो ध्वनिरूप महान् शब्द अपणी प्रतिध्वनिरूप शब्दकरिकै आकाशकूं तथा पृथिवीकूं तथा पूर्वादिक दिशाओंकूं तथा पर्वतकी गुहाओंकूं पूर्ण करता हुआ। तुम्हारे संबंधी दुर्योधनादिकोंके तथा सेनापति भीष्मादिकोंके हृदयोंकूं भेदन करता भया। तात्पर्य यह जैसे शस्त्रकरिकै हृदय देशाके भेदन कियेतें पीडा होवै है। तिसी प्रकारकी पीडाकूं सो शब्द उत्पन्न करता भया। इहां (पृथिवीं चैव) या मूलश्लोकके पदविषे स्थित जो चकार है ता चकारकरिकै पूर्वादिक सर्व दिशाओंका तथा पर्वतकी गुहाओंका ग्रहण करा है। (एव) यह शब्द श्लोकके पाद पूर्णतावास्तै है ॥ १९ ॥

पूर्वश्लोकविषे धृतराष्ट्रके पुत्रपौत्रादिक संबंधियोंविषे भयकी प्राप्ति कथन करी अब पांडवोंविषे तिन दुर्योधनादिकोंतें विपरीत निर्भयताका निरूपण करैं हैं—

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्त्तराष्ट्रान् कपिध्वजः॥
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पांडवः ॥ २० ॥
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ॥

(पदच्छेदः) अथ। व्यवस्थितान्। दृष्ट्वा। धार्तराष्ट्रान्। कपिध्वजः। प्रवृत्ते। शस्त्रसंपाते। धनुः। उद्यम्य। पांडवः ॥ २० ॥ हृषीकेशं। तदा। वाक्यम् इदम्। आह। महीपते।

(पदार्थः) हे पृथिवीके पति धृतराष्ट्र ! ता भयकी उत्पत्तित अनन्तरभी युद्धके उद्यमकरिकै स्थित धृतराष्ट्रके संबंधियोंकूं देखिकरिकै तिस कालविषे शस्त्रप्रहारके प्रवर्त्तमान हुए कपिध्वज अर्जुन गांडीव नामा धनुषकूं हाथविषे उठाइके श्रीकृष्णभगवान्के प्रति यह वक्ष्यमाण वचन कहता भया ॥ २० ॥

भा० टी०—हे धृतराष्ट्र ! पांडवोंके शंखोंके महान् शब्दोंकूं श्रवण करिकै तुम्हारे दुर्योधनादिकोंके चित्तविषे उत्पन्न भया जो भय है ता भयकरिकै यद्यपि तिन दुर्योधनादिकोंकूं ता युद्धतैं भागणाही प्राप्त भया था। तथापि ते दुर्योधनादिक अपणे ढीठ स्वभावतैं ता युद्धतैं नहीं भागते भये उलटा युद्धके उद्यम करिकै युक्त हुए ता रणभूमिविषेही स्थित होते भये । ऐसे दुर्योधनादिकोंकूं नेत्रोंसैं देखिकरिकै ता कालविषे सो कपिध्वज अर्जुन युद्ध करणेवासतै गांडीव नाम धनुषकूं अपणे हस्तविषे उठाइके अपणे सारथी हृषीकेशभगवान्‌के प्रति या प्रकारका वचन कहता भया। इहां सर्व लोकविषे प्रसिद्ध है पराक्रम जिसका ऐसा जो हनुमान् है ताकूं कपि कहैं हैं सो हनुमान् कपि है ध्वजाविषे जिसके ताकूं कपिध्वज कहैं हैं । ता कपिध्वज विशेषणके कहणे करिकै संजयनैं यह अर्थ बोधन करा। जिस हनुमानकी सहायता करिकै श्रीरामचंद्रनैं रावणादिक सर्व असुरोंकूं हनन करा है । ऐसा हनुमान जिस अर्जुनकी ध्वजाविषे स्थित है। जिस अर्जुनकूं किसीभी योद्धातैं भय होवैगा नहीं और नेत्रादिक सर्व इंद्रियोंका प्रवर्तक होणेतैं सर्व अन्तःकरणकी वृत्तियोंका जो ज्ञाता होवै ताकूं हृषीकेश कहैं हैं। ऐसे अन्तर्यामी श्रीकृष्णभगवान्‌के प्रति सो अर्जुन या प्रकारका वचन कहता भया ता कृष्णभगवान्‌की संमतितैं विना सो अर्जुन तिस कालविषे स्वतंत्र होइकै किंचित्‌मात्र भी कार्यकूं नहीं करता भया । इहां (हे महीपते) या संबोधनकरिकै संजयने धृतराष्ट्रके प्रति यह अर्थ सूचन करा । ये अर्जुनादिक पांडव जिस कार्यका आरंभ करते हैं सो प्रथम विचार करिके ही करते हैं । विचारतैं विना किसी कार्यविषे भी प्रवृत्त होते नहीं। यातैं ये पांडव राजनीतिविषे तथा धर्मविषे अत्यन्त कुशल हैं । और तुम्हौंनै जो इन पांडवोंका राज्य लिया है सो विचार कियेतैं विना ही लिया है यातैं तुम्हारेविषे राजनीति तथा धर्म दोनों नहीं हैं । यातैं तुम्हारा

कदाचित् भी जय होणेहार नहीं है किंतु नीतिधर्मवाले इन पांडवोंका ही जय होवैगा ॥ २० ॥

अब अढाई श्लोककरिकै ता अर्जुनके वचनका निरूपण करैं हैं—

अर्जुन उवाच ।

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ २१ ॥

(पदच्छेदः) सेनयोः । उभयोः । मध्ये । रथम् । स्थापय । मे । अच्युत ॥ २१ ॥

(पदार्थः) हे अच्युत ! दोनों सेनाओंके मध्यभागविषे मेरे रथकूं स्थापन करो ॥ २१ ॥

भा० टी०—हे श्रीकृष्णभगवन् ! यह जो हमारी सेना है । तथा हमारे प्रतिपक्षी दुर्योधनादिकोंकी जो यह सेना है तिन दोनों सेनाओंके मध्यदेशविषे या हमारे रथकूं आप स्थित करो । या प्रकारकी आज्ञा सो अर्जुन श्रीभगवान्‌के प्रति करता भया । इतने कहणेकरिकै यह अर्थ सूचन करा । परमेश्वरके जो अनन्य भक्त हैं तिन भक्तोंकूं या लोकविषे कोई भी कार्य दुर्घट नहीं है । जिस कारणतें साक्षात् परमेश्वर भी तिन भक्तोंकी आज्ञाकूं अंगीकार करैं हैं : यातैं इन पांडवोंका निश्चयकरिकै जय होवैगा ॥ शंका—हे अर्जुन ! या दोनों सेनावोंके मध्यविषे जो मैं *तुम्हारे रथकूं स्थापन करौंगा तौ यह दुर्योधनादिक शत्रु हमारेकूं रथतैं* नीचे गिराइ देवैंगे । या प्रकारकी श्रीकृष्णभगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन कहै है (अच्युत इति) हे भगवन् ! सर्व देशविषे तथा सर्व काल-विषे तथा सर्व वस्तुविषे जो नाशकूं नहीं प्राप्त होवै हैं ताकूं अच्युत कहैं हैं ऐसे अच्युत आप हो । ऐसे आपकूं कौन पुरुष नीचे गिरावनेमें समर्थ है किंतु ऐसा कोई भी पुरुष समर्थ नहीं है । यहां (हे अच्युत) या संबोध-नकरिकै अर्जुननें श्रीकृष्णभगवान्‌विषे निर्विकारता बोधन करी । और निर्विकारविषे क्रोधादिक विकार संभवें नहीं यातैं मेरे रथकूं आप स्था-पन करो या प्रकारकी आज्ञा करनेकरिके श्रीभगवान्‌विषे संभावना करा

जो अर्जुनऊपरि क्रोध है ता क्रोधकूं भी अच्युत या संबोधनकरिकै अर्जुननैं निवृत्त करा ॥ २१ ॥

हे अर्जुन ! या दोनों सेनाओंके मध्यविषे तो मैं तुम्हारे रथकूं ले जाताहूं परंतु तहां रथके ले जाणे करिकै तुम्हारा कौन प्रयोजन सिद्ध होवैगा सो अपणा प्रयोजन तूं हमारेप्रति कथन कर जिस वास्तै प्रयोजनतैं विना मंद पुरुषोंकीभी प्रवृत्ति होवै नहीं तौ बुद्धिमान् पुरुषोंकी प्रयोजनतैं विना किस प्रकार प्रवृत्ति होवैगी ! किंतु नहीं होवैगी । ऐसी श्रीकृष्णभगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन ताका प्रयोजन कथन करै है—

यावदेतान्निरीक्षेहं योद्धुकामानवस्थितान् ॥
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे ॥ २२ ॥

(पदच्छेदः) यावत् । एतान् । निरीक्षे । अहम् । योद्धुकामान् अवस्थितान् । कैः मया । सह । योद्धव्यम् अस्मिन् । रणसमुद्यमे ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! जितने देशविषे स्थित होईकै मैं अर्जुन युद्धकी कामनावाले तथा रणभूमिविषे स्थित इन भीष्मादिक योद्धावोंकूं भलीप्रकार देखौं तितने देशविषे हमारे रथकूं ले जाइकै स्थित करो । इस युद्धरूप व्यापारविषे मैंने किनोंके साथि युद्ध करणा योग्य है ॥२२॥

भा० टी०—हे भगवन् ! हमारे साथि युद्ध करनेकी है कामना जिनोंकूं ऐसे जो युद्धभूमिविषे स्थित ये भीष्मद्रोणादिक वीर पुरुष हैं तिन भीष्मद्रोणादिक सर्व योद्धावोंकूं जितने देशविषे जाइकैं मैं देखणेविषे समर्थ होवौं तितने देशविषे या हमारे रथकूं आप स्थित करो । अथवा (यावत्) यह पद कालका वाचक है । क्या जितने कालपर्यंत इन भीष्मादिक सर्व योद्धावोंकूं मैं भली प्रकारसैं देखौं तितने कालपर्यंत या हमारे रथकूं दोनों सेनावोंके मध्यविषे आप स्थित करो, इति । इहां (योद्धुकामान्) या विशेषण करिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन करा ये

भीष्मद्रोणादिक केवल युद्धकीही कामनावाले हैं। यातै हमारे साथी कदाचित्भी ये मित्रभाव करेंगे नहीं । और (अवस्थितान्) या विशेषणकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन करा हमारे भयकरिकै ये भीष्मद्रोणादिक या रणभूमितैं कदाचितभी चलायमान नहीं होवैंगे, इति। शंका- हे अर्जुन ! तूं तौ युद्धके करणेहारा है कोई युद्धके देखणेहारा तूं नहींहै। यातैं भीष्मद्रोणादिक योद्धावोंके देखणेकरिकै तुम्हारा कौन प्रयोजन सिद्ध होवेगा ? ऐसी भगवानकी शंकाके हुए सो अर्जुन तिन्नोंके देखणेका प्रयोजन कथन करै है। (कैर्मया सह योद्धव्यं इति) इहां (सह) या पदका (कैः मया) या दोनों पदोंके साथि संबंध संभवै है ताकरिकै यह अर्थ सिद्ध होवैहै। बांधवोंकाही परस्पर युद्धका उद्यम हुआ है जिसविषे ऐसी जो यह रणभूमि है तिसविषे स्थित जो ये हमारे प्रतिपक्षी भीष्मद्रोणादिक हैं तिनोंविषे किस योद्धाके साथि हमारेकूं युद्ध करना योग्य है । तथा तिन भीष्मद्रोणादिक सर्व योद्धावोंविषे किस योद्धाकूं हमारे साथि युद्ध करणा योग्य है या प्रकारका एक महान् कौतुक है वा कौतुकका ज्ञानही या दोनों सेनाओंके मध्यविषे रथ स्थित करनेका प्रयोजन है॥२२

हे अर्जुन ! ये भीष्मद्रोणादिक बांधवही युद्धके संकल्पका परित्याग करिकै तुम दोनोंका परस्पर मित्रभाव करावैंगे तूं युद्धका संकल्प किसवासतै करता है। ऐसी श्रीकृष्णभगवान्की शंकाके हुए सो अर्जुन कहै है-

योत्स्यमानानवेक्षेहं य एतेऽत्र समागताः ॥
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः॥ २३ ॥

(पदच्छेदः) योत्स्यमानान् । अवेक्षे । अहम् । ये । एते । अत्र समागताः । धार्तराष्ट्रस्य । दुर्बुद्धेः । युद्धे । प्रियचिकीर्षवः ॥२३॥

(पदार्थः) दुर्बुद्धिवाले धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनके युद्धविषे प्रियकी इच्छा करते हुए जे ये भीष्मद्रोणादिक यां कुरुक्षेत्रभूमिविषे प्राप्त हुए हैं

तिनै युद्धकी कामनावाले भीष्मद्रोणादिक योद्धावोंकूं मैं अर्जुन भली-प्रकार देखौं ॥ २३ ॥

भा० टी०–हे भगवन् ! अपणी रक्षा करणेहारे उपायकी अज्ञानरूप जो दुर्बुद्धि है ता दुर्बुद्धिकरिकै युक्त जो यह धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन है ता दुर्योधनके केवल युद्धकरिकैही प्रियकी इच्छा करते हुए जो ये भीष्मद्रोणादिक योद्धा या धर्मक्षेत्ररूप कुरुक्षेत्रविषे प्राप्त हुए हैं, तिन युद्धकी इच्छावाले भीष्मद्रोणादिकोंकूं जैसे मैं भली प्रकारतैं देखौं तैसे मेरे रथकूं आप स्थित करो । इहां (युद्धे प्रियचिकीर्षवः) या विशेषणके कहणेकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन करा ये भीष्मद्रोणादिक वृद्ध पुरुषभी केवल युद्धकरिकैही या दुर्योधनके हितकी इच्छा करते हैं । ता दुर्योध-नकी दुर्बुद्धि आदिकोंकी निवृत्ति करिकै या दुर्योधनके हितकी इच्छा करते नहीं । ऐसे भीष्मद्रोणादिकोंनैं हम दोनोंकी मित्रता क्या करावणी है, इति । और (योत्स्यमानान्) या विशेषणके कहणेकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन करा या भीष्मद्रोणादिकोंकी केवल हमारे साथि युद्ध करनेकीही इच्छा है कोई हमारे साथि मित्रभाव करनेकी इनोंकूं इच्छा है नहीं । यातैं इनोंके साथि युद्ध करणेवास्तैं हमारेकूं प्रथम इनोंका देखणा उचित है ॥ २३ ॥

इस प्रकार अर्जुनकरिकै प्रेरणा करा हुआ सो श्रीकृष्णभगवान् अहिंसारूप परम धर्मकूं आश्रयण करिकै ता अर्जुनकूं अवश्यकरिकै ता युद्धतैं निवृत्त करैगा । या प्रकारके धृतराष्ट्रके अभिप्रायकी शंकाकरिकै ता शंकाके निवृत्त करणेकी इच्छावान् सो संजय ता धृतराष्ट्रके प्रति या प्रकारका वचन कहत भया । या प्रकारका वचन वैशंपायन जनमेजयकी प्रति कथन करै है–

संजय उवाच ।

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ॥
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ २४

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ॥
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति॥२५॥

(पदच्छेदः) एवम् । उक्तः । हृषीकेशः । गुडाकेशेन । भारत । सेनयोः । उभयोः । मध्ये । स्थापयित्वा। रथोत्तमम्२४ भीष्मद्रोणप्रमुखतः । सर्वेषाम् । च । महीक्षिताम् । उवाच । पार्थ । पश्य । एतान् । समवेतान् । कुरून् । इति ॥२५॥

(पदार्थः । हे धृतराष्ट्र ! इस प्रकार गुडाकेश अर्जुन करिकै कह्या हुआ हृषीकेश भगवान् दोनों सेनाओंके मध्यदेशविषे भीष्मद्रोण दोनोंके सन्मुख तथा सर्व राजावोंके सन्मुख ता उत्तम रथकूं स्थापन करिकै हे पार्थ । इन एकटे हुए कौरवोंकूं तूं देख यां प्रकारका वचन कहता भया ॥ २४ ॥ २५ ॥

भा० टी०-हे (भारत) यह धृतराष्ट्रका संबोधन है । तासंबोधन करिकै संजयनैं यह अर्थ सूचन करा तुम्हारी भरतराजाके वंशविषे उत्पत्ति हुई है । ता अपणे भरतवंशकी मर्यादाकूं विचार करिकै भी तुम्हारेकूं अपणे संबंधियोंका द्रोह परित्याग करणे योग्य है ॥ इहां अर्जुनकूं गुडाकेश नाम करिकै कथन करा ता गुडाकेश शब्दका यह अर्थ है । 'गुडाकायाः ईशः गुडाकेशः' । अर्थ, यह-गुडाका नाम निद्राका है ता निद्राका जो ईश होवे क्या जिसनैं निद्राकूं अपणे वश-वर्ती करी होवे ताका नाम 'गुडाकेश है' इति । अथवा गुडावत् केशाः यस्य स गुडाकेशः । अर्थ, यह- "अंगुष्ठतर्जनीयोगो गुडा नाम्नी समुद्रिका" । या शास्त्रके वचनतैं हस्तके अंगुष्ठका जो तर्जनी अंगुलीके साथि संबंध है ताका नाम गुडा मुद्रिका है । ता गुडामुद्रिकाके परिमाण हैं अग्र केश जिसके ताका नाम गुडाकेश है; इति । अथवा 'गुडं अकति व्याप्नोतीति गुडाकः शिवः स शिवः ईशो यस्य स गुडाकेशः' अर्थ, यह-"गुडो गोलेक्षुपाकयोः" कोशके वचनतैं गुडशब्द गोलका

वाचक है। तथा लोकप्रसिद्ध गुडका वाचक है। तहां जैसे अग्नि करिकै तपे हुए लोहपिंडकूं सो अग्नि अंतरबाहिर व्यापक करिकै रहै है तैसे या ब्रह्मांडरूप गोलकूं अंतरबाहिर व्याप्त करिकै जो स्थित होवै ताका नाम गुडाक है। ऐसा शिवभगवान् है। तहां श्रुतिः—"विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवम्" ॥ अर्थ, यह—सर्व विश्वकूं व्याप्त करणेहारा जो एक शिव है ता शिवकूं अपणा आत्मारूप जानिकै यह पुरुष मोक्षकूं प्राप्त होवे है। ऐसा गुडाकनामा शिव है ईश जिसका ताका नाम गुडाकेश है,। इति। अथवा 'गुडवन्मधुरस्सन् भक्तान् अकति प्राप्नोतीति गुडाकः शिवः। स शिवः ईशो यस्य स गुडाकेशः' अर्थ, यह—जैसे यह लोकप्रसिद्ध गुड मधुर होवे है तैसे मधुर हुआ जो भक्तजनोंकूं प्राप्त होवै ताका नाम गुडाक है। ऐसा शिव भगवान है। तहां श्रुतिः—" स्वादुष्किलायं मधुमानुतायम्" इति। ऐसा शिवभगवान् है ईश जिसका ताका नाम गुडाकेश है, इति। और हृषीक नाम इंद्रियोंका है। तिन सर्व इंद्रियोंकूं जो अपणे अपणे कार्यविषे प्रवृत्त करै ताका नाम हृषीकेश है ऐसे हृषीकेशभगवान्के प्रति जब ता गुडाकेश अर्जुननैं दोनों सेनावोंके मध्यविषे रथके स्थापन करणेकी आज्ञा करी तब सो कृष्णभगवान् यह अर्जुन हमारा भृत्य होइकै मेरेकूं स्वामीकूं नीचकर्मरूप सारथीपणेविषे प्रेरणा करता है या प्रकारका दोष आरोपण करिकै ता अर्जुनऊपरि क्रोध नहीं करता भया। जिस वास्तै सो कृष्णभगवान् सर्वदा भक्तजनोंके अधीन रहे है। तथा ता अर्जुनकूं युद्धतैं निवृत्तभी नहीं करता भया। किंतु ता अर्जुनके वचनकूं मानिकै तिन दोनों सेनावोंके मध्यदेश विषे भीष्मद्रोण दोनोंके सन्मुख तथा सर्व राजावोंके सन्मुख ता अर्जुनके उत्तम रथकूं स्थापन करता भया। इहां यद्यपि सर्व राजावोंके सन्मुख ता रथकूं स्थापन करता भया इतनेमात्र कहणेकरिकैही भीष्मद्रोणादिक सर्व राजाओंका ग्रहण होइसकै है यातैं भीष्मद्रोणका पृथक् कहणा अनुचित है। तथापि सर्व राजाओंविषे ता भीष्मद्रो-

णकी अत्यंत प्रधानता बोधन करणेवासतै तिन दोनोंका पृथक् ग्रहण करा है । तहां रथकूं स्थापन करता भया इतने कहणेकरिकैही यद्यपि निर्वाह होइ सकैहै तथापि दूसरे सर्व रथोंतै ता रथविषे उत्कृष्टता बोधन करणेवासतै ता रथका उत्तम यह विशेषण दिया है । ता रथकी उत्कृष्टताविषे यह हेतु है एक तौ सो१) रथ अग्नि देवतानैं दिया है । और दूसरा साक्षात् २) श्रीकृष्णभगवान् ता रथके चलावणेधारा सारथी है ।३) और तीसरा साक्षात् अर्जुन जिस रथ-विषे स्थित है । और४) चतुर्थ हनुमान् जिस रथकी ध्वजाविषे स्थित है इतने हेतुवोंकारिकै ता रथविषे सर्व रथोंतैं उत्कृष्टता है । ऐसे उत्तम रथकूं दोनोंके सेनावोंके मध्यविषे स्थापन करिकै सर्वके अंतर गुह्य अभि-प्रायकूं जानणेहारा सो श्रीकृष्णभगवान् या अर्जुनकूं इन संबंधियोंके दर्श-नतैं शोकमोहकी प्राप्ति भई है या प्रकार जानिकै उपहास सहित ता अर्जुनके प्रति या प्रकारका वचन कहता भया । हे पार्थ ! कुरुवंश विषे है उत्पत्ति जिनोंकी ऐसे जो ये भीष्मादिक एकठे हुए हैं तिनोंकूं तूं भलीप्रकारतेदेख इहां (हे पार्थ) या प्रकारके संबोधनकारिकै भगवान्नैं यह अर्थ सूचन करा पृथा नामा माताका जो पुत्र होवै ताका नाम पार्थ है । सा पृथा अपणे स्त्रीस्वभावतैं सर्वदा शोकमोहकरिकै युक्त है । ता पृथाका तूं पुत्र है । यातैं तुम्हारेविषेभी सो शोक मोह प्राप्त भया है । या प्रकार अर्जुनके उप-हासकूं पार्थ या शब्दकरिकै सूचनकरता हुवा श्रीभगवान् अपणेविषे हृषी-केश शब्दका अर्थरूप अंतर्यामीपणा बोधन करता भया इति । अथवा (हे पार्थ)या सम्बोधनकरिकै भगवान्नैं अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन करा हमारे पिताकी भगिनी जो पृथा है तिस पृथाका तू पुत्र है । यातै तूं हमारा संबंधी है । यातैं यह कृष्णभगवान् हमारे सारथीपणेकूं छोडिकै दुर्योधनके पक्षविषे स्थित होवेगा या प्रकारकी चिंता तुमनैं कदाचित्भी नही करणी । किंतु हमारे सारथीपणेविषे तूं निश्चित होइकै इन भीष्मद्रो-णादिकोंकूं निःशंक होइकै देख । इहां इन भीष्मद्रोणादिकोंकूं तूं देख

या वचनपर्यंत जो भगवान्‌का कहना है ताका यह अभिप्राय है मैं तुम्हारे सारथीपणेविषे अत्यंत सावधान हूं। और तूं तो अब ही शोक मोहके बशतैं रथीपणेका परित्याग करा चाहता है । यातैं सेनाके दर्शनकरिके तुम्हारा कौन प्रयोजन सिद्ध भया या प्रकार ता अर्जुनकूं धैर्यकी प्राप्ति करणेवास्तै सो वचन भगवान्‌ने कथन करा है। अन्यथा सो भगवान दोनों सेनावोंके मध्यविषे रथकूं स्थापन करता भया इतनाही वचन कहणा योग्य था ॥ २४ ॥ २५ ॥

ता दोनों सेनावोंके मध्यविषे स्थित होइकै सो अर्जुन क्या देखता भया। या प्रकारकी धृतराष्ट्रकी शङ्काके हुए सो संजय कहै है—

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थःपितॄनथपितामहान्॥
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा२६॥
श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ॥

(पदच्छेदः) तत्र। अपश्यत्। स्थितान्। पार्थः। पितॄन्। अथ। पितामहान्। आचार्यान्। मातुलान्। भ्रातॄन्। पुत्रान् पौत्रान् सखीन्। तथा ॥ २६ ॥ श्वशुरान्। सुहृदः च। एव। सेनयोः। उभयोः। अपि।

(पदार्थः) या सेनाकूं देखो ऐसी भगवानकी आज्ञाके हुए सो अर्जुन दोनों सेनावोंविषे स्थित पितृव्योंकूं तथा पितामहोंकूं तथा आचार्योंकूं तथा मातुलोंकूं तथा भ्रातावोंकूं तथा पुत्रोंकूं तथा पौत्रोंकूं तथा सखावोंकूं ॥ २६ ॥ श्वशुरोंकूं तथा सुहृदोंकू ही देखता भया ॥

भा०टी०—हे धृतराष्ट्र ! ता कृष्णभगवान्‌नैं युद्धके आरम्भ करावणे वास्तै जब ता अर्जुनके प्रति सेना देखनेकी आज्ञा करी तब ही सो अर्जुन दोनों सेनावोंविषे स्थित जो योद्धा हैं तिनोंकूं देखता भया। तहां परसेनाविषे सो अर्जुन अपने भूरिश्रवादिक पितृव्योंकूं देखता भया तथा भीष्म सोमदत्त आदिक पितामहोंकूं देखता भया। तथा द्रोण कृप

आदिक आचार्योंकूं देखता भया । तथा शल्य शकुनी आदिक मातुलोंकूं देखता भया । तथा दुर्योधन आदिक भ्राताओंकूं देखता भया । तथा लक्ष्मण आदिक पुत्रोंकूं देखता भया तथा तिनलक्षणादिक पुत्रोंके पुत्रोंकूं देखता भया । तथा अपने समान अवस्थावाले अश्वत्थामा जयद्रथ आदिक सखावोंकूं देखता भया । तथा कृतवर्मा भगदत्त आदिक सुहृदोंकूं देखता भया ! इहां (सुहृदः) या शब्दकरिकै दूसरेभी जितनेक उपहार करणेहारे मातामहादिक हैं तिन सर्वोका ग्रहण करना । इस प्रकार जैसे परसेनाविषे सो अर्जुन अपने पितृव्यादिक संबंधियोंकूंही देखता भया । तैसे अपनी सेनाविषेभी तिन पितृव्यादिक संबंधियोंकूं देखता भया । इहां अपने पिताके भ्राताका नाम पितृव्य है । और अपनी मावाके भ्राताका नाम मातुल है माताके पिताका नाम मातामह है ॥ २६ ॥

इस प्रकार सर्व संबंधियोंके दर्शन हुएतैं अनंतर यह संबधियोंकी हिंसा महान् अधर्मरूप है या प्रकारकी मोहरूप विपरीतबुद्धिकरिकै नष्ट हुआ है विवेक जिसका तथा यह युद्धविषे स्थित हिंसा शास्त्रविहित होणेतैं धर्मरूप है या प्रकारके यथार्थ ज्ञानका प्रतिबंधन करणेहारा तथा ममताबुद्धि है कारण जिसका ऐसा जो शोकमोहरूप चित्तका वैक्लव्य है ताकरिकै निवृत्त होइगया है विवेक जिसका ऐसा जो अर्जुन है ता अर्जुनकूं पूर्व आरंभ करे हुए युद्धरूप स्वधर्मतैं उपराम होणेकी इच्छा महान् अनर्थके देणेहारी उत्पन्न होती भई । या अर्थकूं अब निरूपण करै हैं ।

तान्समीक्ष्य स कौंतेयः सर्वान्बंधूनवस्थितान्२७
कृपयापरयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ॥

(पदच्छेदः) तान् । समीक्ष्य । सः । कौंतेयः । सर्वान् । बंधून् । अवस्थितान् ॥ २७ ॥ कृपया । परया । आविष्टः । विषीदन् । इदम् । अब्रवीत् ।

(पदार्थः) सो कुन्तीका पुत्र अर्जुन तौ युद्धभूमिविषे स्थित तिन सर्व बांधवोंकूं भलीप्रकार देखिकरिकै ॥ २७ ॥ परम कृपाकरिकै व्याप्त हुआ विषादकूं प्राप्त हुआ याँ प्रकारका वचन कहता भया ॥

भा० टी०—हे धृतराष्ट्र ! तिन सर्व बांधवोंकू देखिकरिकै स्वतःसिद्ध कृपाकरिकै व्याप्त हुआ सो अर्जुन उपतापरूप विषादकूं प्राप्त हुआ, या प्रकारका वचन श्रीभगवान्‌के प्रति कहता भया। इहाँ ता अर्जुनविषे स्वतःसिद्ध कृपाके बोधन करणेवासतै ता कृपाका परा यह विशेषण दिया है अथवा (कृपया परयाविष्टः) या वचनविषे कृपया अपरया अविष्टः या प्रकारका पदच्छेद करणा। या पक्षविषे ता वचनका ऐसा अर्थ करणा अपणी सेनाविषे तौ ता अर्जुनकी पूर्वभी कृपा होती भई। और तिस कालविषे तौ ता अर्जुनकी कौरवोंकी सेनाविषेभी अपरा नामः दूसरी कृपा होती भई। इहां (विषीदन्निदमब्रवीत्) या वचनकरिकै विषाद वचन उच्चारण या दोनोंविषे समानकालपणा कथन करा। ता करिकै ता वचन उच्चारणकालविषे गद्गद कंठता तथा अश्रुपात इत्यादिक विषादके कार्योंकी स्थिति बोधन करी। काहेतें या लोकविषे विषादवान् पुरुषके वचनविषे यह वार्त्ता प्रसिद्ध देखणेविषे आवै है और (कौंतेयः) या पदका अभिप्राय तौ पूर्व श्लोकविषे कहे हुए पार्थपदके अभिप्रायकी न्याई जानि लेणा। कुंतीकूंही पृथा नामकरिकै कथन करैं हैं॥ २७ ॥

अब श्रीकृष्णभगवान्‌के प्रति सो अर्जुनका वचन (अर्जुन उवाच) इसतें आदि लेकै (एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये) इस वाक्यतें पूर्व ग्रंथ करिकै संजय कथन करै हैं। तहां स्वधर्मविषे प्रवृत्तिका कारणरूप जो तत्त्वज्ञान है ता तत्त्वज्ञानका प्रतिबन्धक जो अपणे शरीरविषे तथा परशरीरविषे यह मेरे है या प्रकारका आत्मीयत्व अभिमान है ता अभिमानकरिकै युक्त तथा केवल अनात्मपदार्थोंकूं जानणेहारा तथा इस युद्धकरिकै हमारा तथा इन बांधवोंका अवश्य नाश होवेगा या प्रकार देखणेहारा

ऐसा जो अर्जुन है ता अर्जुनकूं महान् शोक प्राप्त होता भया ता अर्जुनके शोककूं ता शोककरिकै व्याप्त लिंगोंके कथनपूर्वक तीन श्लोकोंकरिकै निरूपण करैं हैं।

अर्जुन उवाच।

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥ २८॥
सीदंति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ॥
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥ २९॥

(पदच्छेदः) दृष्ट्वा । इमम् । स्वजनम् । कृष्ण । युयुत्सुम् । समुपस्थितम् ॥ २८॥ सीदंति मम । गात्राणि । मुखम् । च परिशुष्यति । वेपथुः । च शरीरे । मे रोमहर्षः च । जायते ॥ २९॥

(पदार्थः) हे कृष्ण ! यां रणभूमिविषे प्राप्त हुए तथा युद्धकी इच्छावाले ईन बांधवोंकूं देखिकरिकै हमारे हस्तपादादिक अंग व्यथाकूं प्राप्त होवैंहैं तथा मेरा मुखभी सूकता जावै है तथा हमारे शरीरविषे कंप उत्पन्न होवै है तथा हमारे रोम खडे होवैं हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥

भा० टी०–हे कृष्णभगवन् ! युद्धकी इच्छा करिकै या रणभूमिविषे प्राप्त भये जो ये भीष्मादिक हमारे बांधव हैं तिनोंको देखिकरिकै हमारे चित्तविषे उत्पन्न भया जो शोक है ता शोककरिकै ये हमारे हस्तपादादिक अंग बहुत व्यथाकूं प्राप्त होवैंहैं। तथा यह हमारा मुखभी सूकता जावै हैं। तथा यह हमारे शरीरविषे कंप उत्पन्न होवै है। तथा हमारे रोम खडे होवैं हैं। इहां यद्यपि (मुखं च शुष्यति) इतने कहण करिकेही निर्वाह होइ सकै है तथापि श्रमादिक निमित्तोंतें जो मुखका शोषण होवैहै तिसकी अपेक्षाकरिकै शोकजन्य मुखके शोषणविषे अधिकता कथन करणेवासते (परिशुष्यति) इहां परि या शब्दका कथन करा हैं, इति ॥ २८ ॥ २९ ॥

किञ्च—

गांडीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ॥
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ३० ॥
निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ॥

(पदच्छेदः) गांडीवम् । स्रंसते । हस्तात् । त्वक् । च । एव । परिदह्यते । न । च । शक्नोमि । अवस्थातुम् । भ्रमति । इव । च । मे । मनः । ॥ ३० ॥ निमित्तानि । च । पश्यामि । विपरीतानि । केशव ॥

(पदार्थः) हे केशव ! मेरे हस्ततैं गांडीव धनुष नीचे पडया जावै है तथा मेरी त्वचा दाहकूं प्राप्त होवै है । तथा मेरा मनभी भ्रमण करै है यातैं अपने शरीरके स्थित करणेकूं भी मैं नहीं समर्थ होवों हूं॥३०॥ तथा मैं विपरीतैं निमित्तोंकूभी देखतोंहूं ॥

भा०टी०—हे भगवन् ! या शोककरिकै यह गांडीव धनुषभी हमारे हस्ततैं नीचे पडया जाता है । तथा हमारी त्वचाभी अत्यन्त दाहकूं प्राप्त होवै है । यह हमारा धनुष नीचे पडया जावै है । या वचनके कहणे करिकै अर्जुननैं अपणी अधैर्यरूप दुर्बलता बोधन करी । और मेरी त्वचा दाहकूं प्राप्त होवै है या वचनके कहणेकरिकै अर्जुननैं अपणे अन्तरका संताप सूचन करा और इस कालविषे मैं अपणे शरीरके स्थित करणेविषेभी समर्थ नहीं हूं इतने कहणे करिकै अर्जुननैं अपणे मूर्च्छा अवस्थाकूं सूचन करा । जिस कारणतैं मूर्च्छा अवस्थाविषेही यह पुरुष अपणे शरीरके स्थित करणेविषे समर्थ नहीं होवै है । अब ता मूर्च्छा अवस्थाकी प्राप्तिविषे हेतु कहै हैं । (भ्रमतीव च मे मनः इति) यह मेरा मन भ्रमण करता पुरुषकी न्यांई भ्रमण करै है सो भ्रमण करता पुरुषकी सादृश्यतारूप जो मनका कोई विकारविशेष है, तिसकूं (इव) या शब्दकरिकै कथन करा है । सो इही विकारविशेष मूर्च्छाकी पूर्व अवस्था होवै है । (न च शक्नोमि) या वचन

विषे स्थित जो चकार है सो हेतुका वाचक है ताका यह अर्थ है। जिसवासतै हमारा मन तः मूर्च्छा कि पूर्व अवस्थाकूं प्राप्त भया है इस वासतै मैं या अपणे शरीरकूं अभी स्थित करणेविषे समर्थ नहीं हूं अब ता शरीरके स्थित करणेकी असामर्थ्यविषे दूसराभी निमित्त कथन करैं हैं। (निमित्तानीति) हे भगवन् ! थोडेही कालविषे दुःखकी प्राप्तिकूं सूचन करणेहारे जो वामनेत्रका स्फुरणादिक विपरीत निमित्त हैं तिनोंकूंभी मैं अनुभव करता हूं । इसकारणतैंभी मैं स्थित होणेकूं समर्थ नहीं होता । यहां अठावीसवें श्लोकविषे (दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण) या वचनविषे स्थित जो (कृष्ण) यह संबोधन है। ताकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन करा । मैं अर्जुन अनात्मवेत्ता होणेतैं दुःखी हूं । या कारणतैं मैं शोकजन्य क्लेशकूं अनुभव करता हूं और "कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः। तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते" ॥ अर्थ यह—कृष्धातु सत्तावाचक है और णप्रत्यय आनन्दका वाचक है ता सत्ता और आनन्द दोनोंका एकताभावरूप परब्रह्म कृष्ण या नामकरिकै कह्या जावैहै इति । या शास्त्रके वचनतैं आप सत् आनन्दरूप होणेतैं शोकमोहादिक विकारोंतैं रहित हो । तात्पर्य यह अपणे बांधवोंका दर्शन जैसे हमारेकूं भया है तैसे आपकूंभी तिन बांधवोंका दर्शन भया है । परन्तु हमारे न्याई आपकूं शोकमोहादिक विकार प्राप्त हुए नहीं यह आपविषे महान् विशेषता है यातैं आपकी न्यांई हमारेकूंभी शोकतैं रहित करो यह सर्व अर्थ ता अर्जुननैं (हे कृष्ण) या संबोधनकरिकै सूचन करा । तहां तुम्हारे शोककूं निवृत्त करणेका हमारेविषे सामर्थ्य नहीं है ऐसी भगवान्‌की शंकाके निवृत्त करणेवासतै सो अर्जुन (हे केशव) या संबोधनकरिकै ता भगवानविषे अपणे शोक निवृत्त करणेका सामर्थ्य सूचन करता भया । तहां केशो वाति अनुकंप्यतया गच्छतीति केशवः । अर्थ यह—जगतकूं उत्पन्न करणेहारे ब्रह्माका

नामक है और जगत्के संहार करणेहारे रुद्रका नाम ईश है तिन दोनोंकूं अपणे अनुग्रहका पात्र जानिकरिकै जो प्राप्त होवै ताका नाम केशव है । ऐसे आपकूं हमारे शोकके निवृत्ति करणेविषे किंचिन्मात्रभी प्रयत्न नहीं है। अथवा (कृष्ण) या संबोधनकरिकै अर्जुननैं श्री भगवान्‌विषे भक्तजनोंके दुःखका निवर्त्तकपणा बोधन करा । और (केशव) या संबोधन करिकै केशी आदिक दुष्ट दैत्योंकी निवृत्तिकरिकै सर्वदा भक्तजनोंकी प्रतिपालकता सूचन करी । ऐसा आपका स्वभाव है। यातैं हमारेकूं भी शोककी निवृत्तिकरिकै अवश्य पालन करोगे ॥ ३० ॥

तहां समीचीन प्रवृत्तिका कारणरूप जो तत्त्वज्ञान है ता तत्त्वज्ञानका प्रतिबंधक जो शोक है ता शोकका पूर्व मुखशोपणादिक लिंगोंद्वारा तीन श्लोकोंकरिकै निरूपण करा अब ता शोककरिकै जन्य जो विपरीत प्रवृत्तिका कारणरूप विपरीत बुद्धि है ता विपरीत बुद्धिका निरूपण करै हैं-

न च श्रेयोनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे॥ ३१॥

(पदच्छेदः) न च। श्रेयः । अनुपश्यामि । हत्वा । स्वजनम् । आहवे ॥ ३१ ॥

(पदार्थः) इस युद्धविषे अपणे बांधवोंकूं हननं करिकै मैं अपणे श्रेयकूं नहीं देखता हूं ॥ ३१ ॥

भा० टी०-हे भगवन् । इस युद्धविषे इन भीष्मादिक बांधवोंके मारणे करिकै मैं अपणे श्रेयकूं देखता नहीं । यहां पुरुषार्थका नाम श्रेयहै। और यह पुरुष जिस पदार्थके प्राप्तिकी प्रार्थना करै है ता पदार्थका नाम पुरुषार्थ है। सो पुरुषार्थरूप श्रेय दो प्रकारका होवै है एक तौ दृष्टश्रेय होवै है और दुसरा अदृष्टश्रेय होवै है । तहां इस लोकके जो राज्यादिक सुख हैं तिन्होंका नाम दृष्टश्रेय है । और स्वर्गादिक सुखोंका नाम अदृष्टश्रेय है ता दोनों प्रकारके श्रेयोंकी प्राप्ति इन बांधवोंके मारणे करिकै मैं देखता नहीं॥

शंका–हे अर्जुन । इस युद्धविषे स्वजनोंके मारणेकरिकै श्रेयकी प्राप्ति तौ होवै है परन्तु सो श्रेयरूप फलकी प्राप्ति बहुत विचार कियेतैं अनन्तर, प्रतीत होवै है थोडे विचार कियेतैं प्रतीत होवै नहीं । ऐसी भगवान्‌की शंकाके निवृत्त करणेवासतै अर्जुन (अनुपश्यामि) या वचनविषे (अनु) यह शब्द कथन करा है, ता अनुशब्दका पश्चात् यह अर्थ होवै है । और पूर्व वृत्तांतकी अपेक्षा करिकैही पश्चात् कह्या जावै है यातैं यह अर्थ सिद्ध होवै है बहुत विचार कियेतैं पश्चातभी मैं बांधवोंके मारणेकरिकैं अपणे श्रेयकूं देखता नहीं । और (स्वजनं) या कहणेकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन करा जो अपणे संबंधी नहीं हैं तिन्होंका युद्धविषे हनन करिकैभी मैं अपणे श्रेयकूं देखता नहीं । काहेतैं शास्त्रविषे यह कह्या है–श्लोक ॥ " द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमंडलवार्तिनौ । परिव्राड योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ॥" अर्थ यह इस लोकविषे दो प्रकारके पुरुषही सूर्यमंडलविषे स्थित होवै हैं । एक तौ योग कारिकै युक्त संन्यासी और दूसरा युद्ध विषे सन्मुख हुआ जो पुरुष मरणकूं प्राप्त हुआ है, इति । इत्यादिक शास्त्रके वचन करिकै युद्धविषे मृत्युकूं प्राप्त हुए योद्धाकूंही स्वर्गादिक श्रेयकी प्राप्ति कथन करी है । हनन करता पुरुषकूं किंचितमात्रभी श्रेयकी प्राप्ति शास्त्रने कथन करी नहीं यातैं आपणे अस्वजनोंके मारणेकरिकैंभी जब श्रेयकी प्राप्ति नहीं होवै है तब अपणे स्वजनोंके मारणेकरिकै ता श्रेयकी प्राप्ति कैसी होवेगी । किंतु नहीं होवैगी यह सर्व अर्थ अर्जुननैं (स्वजनं) या शब्दकरिकैं सूचन करा । और सिद्धसाधनरूप दोषकी निवृत्ति करणेवासतै अर्जुननैं (आहवे) यह पद कथन करा है । काहेतैं (आहवे) यह युद्धका वाचक पद जो नहीं कहते तौ युद्धतैं विना बांधवोंकी हिंसा करिकै श्रेयकी प्राप्ति कोईभी शास्त्रवेत्ता पुरुष अंगीकार करता नहीं । तिसी अर्थकूं अर्जुननैंभी सिद्ध करा यातैं सिद्ध अर्थका साधनरूप सिद्धसाधनदोष अर्जुनकूं प्राप्त होता ता दोषकी निवृत्ति करणेवासतै अर्जुननैं (आहवे) यह पद कथन करा है । तात्पर्य यह–युद्धतैं

विना संबन्धियों के मारणेकरिकै श्रेयकी प्राप्तिकूं कोईभी पुरुष अंगीकार करता नहीं। और मैं तौ युद्धविषेभी संबंधियोंके मारणेकरिकै श्रेयकी प्राप्ति देखता नहीं ॥ ३१ ॥

हे अर्जुन ! युद्धविषे अपणे स्वजनोंके मारणेकरिकै स्वर्गादिकरूप अदृष्ट प्रयोजनकी प्राप्ति तौ मत होवै परन्तु युद्धविषे तिन स्वजनोंके मारणेकरिकै तुम्हारेकूं विजय, राज्य, विषयसुख या दृष्टप्रयोजनकी प्राप्ति तौ निर्विवाद है। ऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन कहै हैं—

न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ॥
किं नो राज्येन गोविंद किं भोगैर्जीवितेन वा॥३२

(पदच्छेदः) न । कांक्षे । विजयम् । कृष्ण । न । च । राज्यम् । सुखानि । च । किं । नः । राज्येन । गोविंद । किं । भोगैः । जीवितेन । वा ॥ ३२ ॥

(पदार्थः) हे कृष्ण ! मैं विजयकूं नहीं चाहता तथा राज्यकूं भी नहीं चाहता तथा सुखोंकूं भी नहीं चाहता । हे गोविंद हमारेकूं इस राज्यकरिकै क्या फल होवैगा तथा विषयसुखोंकरिकै क्या फल होवैगा तथा विजयकरिकै क्या फल होवैगा किंतु तिन्होंकी प्राप्तिकरिकै किंचित्मात्रभी फल नहीं होवैगा ॥ ३२ ॥

भा० टी०—हे कृष्णभगवन् ! अपणे बांधवोंकी हिंसा करिकै प्राप्त होणेहारी जो विजय है तिस विजयकी प्राप्तिकी मैं इच्छा करता नहीं। तथा ता विजयतैं पश्चात् प्राप्त होणेहारा जो राज्य ता राज्यकी प्राप्तिकीभी मैं इच्छा करता नहीं। तथा ता राज्यकी प्राप्तितैं पश्चात् प्राप्त होणेहारे जो विषयजन्य सुख हैं तिन विषयसुखोंके प्राप्तिकीभी मैं इच्छा करता नहीं। इतनै कहणेकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन करा, या लोकविषे तिस तिस फलकी इच्छावान् पुरुषही तिस तिस फलकी प्राप्तिके उपायविषे प्रवृत्त होवै हैं फलकी इच्छातैं रहित पुरुष ता फलके उपायविषे प्रवृत्त

होवै नहीं जैसे भोजनरूप फलके प्राप्तिकी इच्छावान् पुरुषही ता भोजनरूप फलकी प्राप्तिके उपायरूप अन्नपाक विषे प्रवृत्त होवै है। भोजनकी इच्छातें रहित पुरुष ता अन्नके पकावणे विषे प्रवृत्त होवै नहीं । तैसे विजय, राज्य, विषयसुख इन फलोंकी प्राप्तिकी जिस पुरुषकूं इच्छा होवै सो पुरुष तिन विजयादिक फलोंकी प्राप्तिके उपाय-रूप युद्धविषे प्रवृत्त होवै और हमारेकूं तौ तिन विजयराज्यादिक फलोंके प्राप्तिकी इच्छा है नहीं यातैं इस युद्धरूप उपायविषे हमारी प्रवृत्ति संभवै नहीं। शंका–हे अर्जुन ! अन्य दुर्योधनादिकोंके इच्छाका विषयरूप जो ये विजय, राज्य, सुख आदिक हैं तिन्होंविषे तुम्हारेकूं इच्छाका अभाव किस वासतै हुआहै ऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन कहैहै(किं नो राज्ये-नेति)हे गोविंद! धर्म अधर्मके स्वरूपकूं नहीं जानणेहारे जो ये दुर्योधनादिक हैं तिन्होंकूं इन राज्यसुखादिकोंविषे इच्छा होवो परन्तु धर्म अधर्मके स्वरूपकूं जानणेहारे जो हम हैं तिन हमारेकूं या प्रसिद्ध राज्यकरिकै तथा विषय-सुखोंकरिकै तथा जीवनका साधनरूप विजयकरिकै किस प्रयोजनकी प्राप्ति होवैगी किंतु तिन राज्यादिकोंकरिकै हमारा किंचित्‌मात्रभी प्रयोजन सिद्ध नहीं होवैगा। तात्पर्य यह–विजय,राज्य, भोग इन तीनोंकी प्राप्तितैं विना ही वनविषे निवास करणेहारे जो हम हैं तिन हमारा तिस संतोषकरिकैही या जगत्‌विषे कीर्तिपूर्वक जीवन होवैगा। यातैं इन राज्यादिकोंके प्राप्तिकी हमारेकूं इच्छा है नहीं । यहां (हे गोविंद) या संबोधनकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन करा–गो नाम इन्द्रियोंका है तिन इंद्रियोंकूं अधिष्ठानरूप करिकै जो नित्यही प्राप्त होवै ताका नाम गोविंद है। ऐसे अन्तर्यामी स्व-रूप हमारे इस लोकके राज्यादिक फलोंतैं वैराग्यकूं भलीप्रकार जाणतेहो ३२

हे अर्जुन ! धर्मशास्त्रविषे यह वचन कह्या है– "वृद्धौ च मातापि-तरौ भार्या साध्वी सुतः शिशुः । अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्त्तव्या मनुरब्रवीत्" अर्थ–अपणे वृद्ध जो माता पिता हैं तथा पतिव्रता जो स्त्री है तथा बाल्य अवस्थावाले जो पुत्र हैं, ये सर्व बांधव; इस पुरुषनैं न करणे योग्य अनेक

कार्योंकूं करिकभी भरणपोषण करणेयोग्य हैं। यह वार्ता मनुभगवान् कहताभया है" इत्यादिक शास्त्रोंके वचनतैं वृद्ध मातापितादिक संबंधियोंके भरणपोषणवासतै कराहुआभी अधर्म या पुरुषके दोषवासतै होवै नहीं यातैं जो कदाचित् तुम्हारेकूं इन राज्यसुखादिकोंतैं वैराग्यभी होवै तौ भी इन अपणे संबंधियोंके राज्यसुखादिकोंवासतै तुम्हारेकूं इस युद्धविषे प्रवृत्त होणा चाहिये । ऐसी भगवानकी शङ्काके हुए अर्जुन कहै है—

येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ॥
त इमेवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च॥३३॥

(पदच्छेदः) येषाम् । अर्थे । कांक्षितम् । नः । राज्यम् । भोगाः । सुखानि । च । ते । इमे । अवस्थिताः । युद्धे। प्राणान्। त्यक्त्वा । धनानि । च ॥ ३३ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! हमारेकूं जिन बांधवोंके वासतै राज्य तथा विषय तथा सुख अपेक्षित है ते य बांधव अपणे प्राणोंकी आशाकूं तथा धनकी आशाकूं त्याग करिकै इस युद्धविषे स्थित हुए है ॥ ३३ ॥

भा०टी०—हे भगवन् ! एकाकी पुरुषकूं तौ ये राज्यादिक अपेक्षित होवै नहीं। और जिन बांधवोंके वासतै हमारेकूं यह राज्य अपेक्षित है तथा सुखके साधनरूप विषय अपेक्षित हैं तथा विषयजन्य सुख अपेक्षित है ते ये हमारे बांधव अपणे प्राणोंकी आशाकूं छोडि करिकै तथा धनकी आशाकूं छोडिकरिकै मरणेवासतै इस युद्ध भूमिविषे स्थित हुए हैं यातैं अपणे स्वार्थवासतै तथा अपणे संबंधियोंके स्वार्थवासतै इस युद्धरूप कार्यविषे हमारी प्रवृत्ति संभवती नहीं । यहां पूर्वश्लोकविषे यद्यपि भोगशब्दकरिकै विषयजन्य सुखका ग्रहण करा था तथापि इस श्लोकविषे भोगोंतै सुखकूं भिन्न ग्रहण करा है। यातै यहां भोगशब्दकी लक्षणावृत्तिकरिकै सुखकेसाधनरूप स्पर्शादिक विषयोंका ग्रहण करणा और(प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च)या वचनविषे प्राणोंका त्याग तथा धनका

त्याग कथन करा है सो जीवित अवस्थाविषे प्राणोका त्याग तथा धनका त्याग संभवता नहीं । यातै प्राणशब्दकी लक्षणावृत्तिकरिकै प्राणकी आशाका ग्रहण करणा । और धन शब्दकी लक्षणावृत्तिकरिकै धनकी आशाका ग्रहण करणा । तिन प्राणादिकोंके आशाका परित्याग जीवित अवस्थाविषे भी संभव होइसकै है । तहां अपणे प्राणोंके त्याग हुएभी अपणे बांधवोंके सुखवासतै धनकी आशा संभव होइसकै है । या शंकाकी निवृत्ति करणेवासतै प्राणोंतै भिन्न धनका ग्रहण करा है ॥ ३३ ॥

हे अर्जुन ! जिन बांधवोंके सुखवासतै तुम्हारेकूं यह राज्यादिक अपेक्षित है ते तुम्हारे बांधव इस युद्धविषे आये नहीं । ऐसी भगवान्‌की शंकाके निवृत्ति करणेवासतै सो अर्जुन तिन बान्धवोंका विशेषकरिकै वर्णन करै है—

आचार्याःपितरःपुत्रास्तथैव च पितामहाः ॥
मातुलाःश्वशुराःपौत्राःश्यालाःसंबंधिनस्तथा ॥३४॥

(पदच्छेदः) आचार्याः । पितरः । पुत्राः । तथा एव । च । पितामहाः । मातुलाः । श्वशुराः । पौत्राः । श्यालाः । संबंधिनः तथा ॥ ३४ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! इस युद्धभूमिविषे कोई तौ हमारे आचार्य हैं तथा कोई पितर हैं तथा कोई पुत्र है तथा कोई पितामह हैं तथा कोई मातुल हैं तथा कोई श्वशुर हैं तथा कोई पौत्र हैं तथा कोई श्याल हैं तथा कोई संबन्धी हैं ॥ ३४ ॥

भा० टी०—इस श्लोकका अर्थ स्पष्टही है ताका अभिप्राय यह है इस युद्धभूमिविषे जितनेक योद्धा एकट्ठे हुए हैं ते सर्व योद्धा हमारे संबंधी ही हैं तिन संबंधियोंतैं भिन्न कोई है नहीं ते सर्व संबंधी तौ अभी मरणेकूं तयार हुए है । यातै किस संबंधीके राज्यसुखादिकोंवासतै मैं इस युद्धविषे प्रवृत्त होवौं ॥ ३४ ॥

हे अर्जुन ! जो कदाचित कृपाकरिकै तूं इन भीष्मद्रोणादिकोंकूं नहीं हनन करैगा तौभी यह भीष्मद्रोणादिक राज्यके लोभकरिकै तुम्हारेकूं अवश्य हनन करैंगे यातैं तुमही इन भीष्म द्रोणादिकोंकूं हनन करिकै राज्यकूं भोगो । ऐसी भगवानकी शंकाके हुए अर्जुन कहै है—

एतान्न हंतुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ॥
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किंनु महीकृते ॥ ३५ ॥

(पदच्छेदः) एतान् । न । हंतुम् । इच्छामि । घ्नतः । अपि । मधुसूदन । अपि । त्रैलोक्यराज्यस्य । हेतोः । किंनु । महीकृते ॥ ३५ ॥

(पदार्थः) हे मधुसूदन ! मेरेकूं हनन करते हुए भी इन आचार्यादिकोंकूं मैं तीन लोकके राज्यकी प्राप्तिवासतै भी हनन करणेकूं नहीं इच्छा करता तौ इस पृथिवी मात्रके राज्यकी प्राप्तिवासतै मैं इन्होंके हननकी इच्छा कैसे करौंगा ॥ ३५ ॥

भा० टी०—हे मधुसूदन ! भगवन् ! तीक्ष्ण शस्त्रोंकरिकै हमारेकूं हनन करणेहारेभी जो यह पूर्व उक्त आचार्यादिक हैं तिन्होंके हनन करणेकी इच्छामात्र भी मैं नहीं करता तौ तिन आचार्यादिकोंकूं मैं तीक्ष्ण शस्त्रोंकरिकै किस प्रकार हनन करौंगा किंतु नहीं हनन करौंगा । किंवा तिन आचार्यादिकोंके हनन करणेकरिकै जो कदाचित् हमारेकूं भूमि, स्वर्ग और पाताल या तीन लोकोंके राज्यकी प्राप्ति होइ जावे तौ भी मैं इन आचार्यादिकोंके हननकी इच्छा करता नहीं तौ इस पृथिवी-मात्रके राज्यकी प्राप्तिवासतै मैं इन आचार्यादिकोंकूं नहीं हनन करौंगा याके विषे क्या कहणा है । इहां (हे मधुसूदन) या संबोधनकरिकै अर्जुननै श्रीभगवान्‌विषे वैदिक मार्गका प्रवृत्तकरणा सूचना करा । ऐसे वैदिक मार्गके प्रवर्त्तक होइकै आप हमारेकूं आचार्यादिकोंके हन-नविषे किस वासतै प्रवृत्त करते हो ॥ ३५ ॥

हे अर्जुन ! आचार्यादिकोंके मारणेविषे जो तूं दोष मानता है तौ तिन आचार्य आदिकोंकूं छोडिकै दूसरे धृतराष्ट्रके दुर्योधनादिक पुत्रोंकूं तुम हनन करो काहेतैं इन दुर्योधनादिकोंनैं तुम्हारेकूं लाक्षागृहविषे दाहादिकोंकरिकै बहुत प्रकारके दारुण दुःखोंकी प्राप्ति करी है यातैं तिन दुर्योधनादिकोंके हनन करणेविषे तुम्हारी प्रीति संभवै है । ऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन कहे हैं-

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ॥
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥३६॥

(पदच्छेदः) निहत्य । धार्तराष्ट्रान् । नः । का । प्रीतिः । स्यात् । जनार्दन । पापम् । एव । आश्रयेत् । अस्मान् । हत्वा । एतान् । आततायिनः ॥ ३६ ॥

(पदार्थः) हे जनार्दन ! इन दुर्योधनादिकोंकूं हनन करिकै हमारेकूं कौन प्रीति होवैगी किंतु कोईभी प्रीति नहीं होवैगी उलटा इन आततायियोंकूं हनन करिकै हमारेकूं पाप ही आश्रयण करैगा ॥ ३६ ॥

भा०टी०-हे जनार्दन । धृतराष्ट्रके पुत्र जो यह दुर्योधनादिक है ते हमारे भ्राता हैं तिन भ्राताओंकूं हनन करिकै हमारेकूं कौन सुख होवैगा । किंतु तिन्होंके हनन करिकै हमारेकूं किंचित् मात्रभी सुखकी प्राप्ति नहीं होवैगी । तात्पर्य यह । मूढजनोंके प्रीतिका विषय जो क्षणमात्रवर्त्ति सुखाभास है ता सुखाभासके लोभ करिकै बहुत कालपर्यंत नरकके प्राप्तिका हेतुरूप यह बांधवोंकी हिंसा हमारेकूं करणेयोग्य नहीं है । यहां जो सुखरूपतातैं रहित होवै तथा सुखकी न्याईं प्रतीत होवै ताकूं सुखाभास कहे हैं । ऐसे विषयजन्य सुख हैं इति । और (हे जनार्दन) या संबोधनकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन करा । हे भगवन् ! यह दुर्योधनादिक जो कदाचित् मारणेही योग्य होवैं तौभी आपही इन्होंकूं हनन करो जिस कारणतैं प्रलयकालविषे सर्व जनोंके हननक-

रिकैभी आपकूं किंचित्मात्रभी पापका स्पर्श होता नहीं इति । शंका-हे अर्जुन ! शास्त्रविषे यह वचन कह्याहै "अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः ॥ क्षेत्रदारापहारी च षडेते आततायिनः" अर्थ-अग्निके देणेहारा तथा विषके देणेहारा तथा शस्त्र जिसके हाथविषे है तथा पर धनके हरण करणेहारा तथा पराये क्षेत्रके हरण करणेहारा तथा परस्त्रीके हरण करणेहारा यह षट् आततायी कहे जावैं हैं इति । और इन दुर्योधनादिकोंविषे तौ सो षट् प्रकारकाही आततायीपणा है । और दूसरे शास्त्रविषे यह कह्या है । श्लोक " आततायिनमायांतं हन्यादेवाविचारयन् ॥ नाततायिवधे दोषो हंतुर्भवति कश्चन " । अर्थ यह-अकस्मात्तैं आया हुआ जो आततायी पुरुष है तिस आततायी पुरुषकूं यह बुद्धिमान् पुरुष तिसी कालविषेही हनन करै ताके हनन करणेविषे किंचित् मात्रभी विचार नहीं करै । जिस कारणतैं तिस आततायी पुरुषके हनन करणेविषे ता हनन करणेहारे पुरुषकूं किंचित्मात्रभी दोष होवै नहीं इति । या शास्त्रके वचनतैं आततायीके मारणेकरिकै दोषाभाव प्रतीत होवै है यातैं यह दुर्योधनादिक आततायी तुम्हारेकूं अवश्य हनन करणे योग्य हैं । ऐसी भगवान्की शंकाके हुए अर्जुन कहै है। (पापमेवेति) इन दुर्योधनादिक आततायियोंकूं भी हनन करिकै स्थित हुए हमारेकूं पाप अवश्य आश्रयण करैगा अथवा इन्होंके हनन करिकै हमारेकूं केवल पापही आश्रयण करैगा । दूसरा कोई दृष्टप्रयोजन तथा अदृष्टप्रयोजन प्राप्त होवैगा नहीं और 'आततायिनं हन्यात्' यह पूर्व उक्त वचन यद्यपि आततायी पुरुषोंके हननका विधान करै है तथापि सो वचन अर्थशास्त्रका है धर्मशास्त्रका सो वचन है नहीं ता अर्थशास्त्रतैं धर्मशास्त्र बलवान् होवैहै । और धर्मशास्त्र तौ प्राणिमात्रकी हिंसा करणेका निषेध करै है । सो धर्मशास्त्र यह है । " स एव पापिष्ठतमो यः कुर्यात्कुलनाशनम् " इति ॥ " न हिंस्यात्सर्वाभूतानि" ॥ अर्थ यह-जो पुरुष अपणे कुलका नाश करै है सोईही पुरुष अत्यन्त पापिष्ट जानणा । और यह बुद्धिमान् पुरुष सर्व भूत-

प्राणियोंकी हिंसा नहीं करै इति । यह धर्मशास्त्र पूर्व उक्त अर्थशास्त्रतैं बलवान् है। यातैं इन बांधवोंका हनन करणा हमारेकूं योग्य नहीं है। अथवा (पापमेवाश्रयेत्) इत्यादिक अर्द्ध श्लोकका या प्रकारतैं दूसरा व्याख्यान करणा । शंका—हे अर्जुन ! दुर्योधनादिकोंके हनन करणेकेविषे यद्यपि तुम्हारेकूं प्रीति नहीं है तथापि तुम्हारेकूं हनन करणेविषे इन दुर्योधनादिकोंकूं प्रीति है यातैं यह दुर्योधनादिक तुम्हारेकूं अवश्यकरिकै हनन करैंगे ऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन कहै है (पापमेवेति पापम् । एव । आश्रयेत् । अस्मान् हत्वा । एतान् आततायिनः॥ अर्थ यह—हमारेकूं हननकरिकै स्थित हुए इन दुर्योधनादिक आततायियोंकूं केवल पापही आश्रयण करैगा । दूसरा कोई सुख इन्होंकूं प्राप्त नहीं होवैगा। तात्पर्य यह । यह दुर्योधनादिक पूर्व तो आततायी हैंही और नहीं युद्ध करणेहारे हमारेकूं हनन करिकै अबीभी यह दुर्योधनादिकही पापी होवैंगे । इस विषे हमारेकूं कोई पापका संबन्ध है नहीं यातैं हमारेकूं किंचिन्मात्रभी हानिकी प्राप्ति नहीं ॥ ३६ ॥

तहां अन्य प्राणियोंकी हिंसा करणेविषे कोई फल है नहीं उलटी अनर्थकीही प्राप्ति होवै है यातैं किसीभी प्राणीकी हिंसा करणेयोग्य नही है । यह वार्त्ता (न च श्रेयोनुपश्यामि) इस वचनतैं आदि लेके अबपर्यंत अर्जुननैं कथन करी । अब ता वार्त्ताकी समाप्ति करै हैं—

तस्मान्नार्हा वयं हंतुं धार्तराष्ट्रान्स्वबांधवान् ॥
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव॥३७॥

(पदच्छेदः) तस्मात् । न । अर्हाः । वयम् । हंतुम् । धार्तराष्ट्रान् । स्वबांधवान् । स्वजनम् । हि । कथम् । हत्वा । सुखिनः । स्याम । माधव ॥ ३७ ॥

(पदार्थः) हे माधव ! तिसै कारणतैं हम अपणे बांधव धृतराष्ट्रके दुर्योधनादिक पुत्रोंकूं हनन करणेकूं नहीं योग्य हैं जिसै कारणतैं अपणे

बांधवोंकूं हननं करिकै हम कैसें सुखी होवैंगे किंतु नहीं सुखी होवैंगे ॥ ३७ ॥

भा० टी०–इहां (तस्मात्) या तत् शब्दकरिकै पूर्व कथन करा जो बांधवोंकी हिंसा करणेविषे अदृष्टरूप फलका अभाव तथा अनर्थकी प्राप्ति तिन दोनोंका ग्रहण करणा ताकरिकै यह अर्थ सिद्ध होवै है जिस कारणतैं बांधवोंकी हिंसा करिकै स्वर्गादिरूप अदृष्टफलकी प्राप्ति होवै नहीं उलटी महान् अनर्थकी प्राप्ति होवै है तिस कारणतैं हम अपणे दुर्योधनादिक बांधवोंके हनन करणेकी इच्छा करते नहीं । शंका–हे अर्जुन ! बांधवोंके हनन करिकै स्वर्गादिरूप अदृष्टसुखकी प्राप्ति मत होवो तथापि इस लोकका अदृष्ट सुख तौ तुम्हारेकूं अवश्यकरिकै प्राप्त होवैगा ऐसी भगवान्की शंकाकरिकै अर्जुन कहै है (स्वजनं हीति) हे माधव ! अपणे संबंधियोंके सुखवास्तैही श्रेष्ठ पुरुषोंकी प्रवृत्ति होवै है, यातैं अपणे संबंधियोंकूंही हनन करिकै हम किस प्रकार सुखकूं प्राप्त होवैंगे । किंतु उलटे दुःखकूंही प्राप्त होवैंगे । इहां (हे माधव) या संबोधनकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचना करा । मा नाम लक्ष्मीका है धव नाम पतिका है, लक्ष्मीका जो पति होवै ताका नाम माधव है । ऐसा लक्ष्मीका पती होईकै आप हमारेकूं लक्ष्मीतैं रहित बांधवोंकी हिंसारूप निंदित कर्मविषे प्रवृत्त करणे योग्य नहीं हो ॥ ३७ ॥

हे अर्जुन ! युद्धविषे अपणे बांधवोंकी हिंसा करिकै जो कदाचित् किसी दृष्टअदृष्टसुखकी प्राप्ति नहीं होती होवै उलटी दोषकीही प्राप्ति होवै तौ उन भीष्मादिक महान् पुरुषोंकी ता कुलके क्षय करणेविषे तथा स्वजनोंकी हिंसा करणेविषे किसवास्तै प्रवृत्ति होती है । ऐसी भगवान्की शंकाके हुए अर्जुन कहै है –

यद्यप्येते न पश्यंति लोभोपहतचेतसः ॥
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ ३८ ॥

पदच्छेदः) यद्यपि । एते । न । पश्यंति। लोभोपहतचेतसः। कुलक्षयकृतम् । दोषम् । मित्रद्रोहे । च । पातकम् ॥ ३८ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् लोभग्रस्तचित्तवाले यह भीष्मादिक यद्यपि कुलके नाशकृत दोषकूं तथा मित्रोंके द्रोहविषे पातककूं नहीं देखते तथापि हम ताकूं देखते हैं ॥ ३८ ॥

भा०टी०—हे भगवन् ! प्राप्त हुए पदार्थके त्यागकूं नहीं सहारणेका नाम लोभ है ता लोभकरिकै इन भीष्मादिकोंका चित्त ग्रस्त होइ रह्या है. या कारणतें यह भीष्मादिक कुलके नाश करणेकरिकै प्राप्त होणेहारे दोषकूं तथा अपणे मित्रोंके साथि द्रोह करणेकरिकै प्राप्त होणेहारे पातककूं यद्यपि विचारकरिकै देखते नहीं तथापि हम ता दोषकूं तथा पातककूं भलीप्रकार जाणते हैं। यातें इन भीष्मादिकोंकी तौ यद्यपि युद्धविषे प्रवृत्ति संभवै है तथापि ता युद्धविषे हमारी प्रवृत्ति संभवती नहीं। इतने कहण करिकै अर्जुननैं या शंकाकी निवृत्ति करी सा शंका यह है हे अर्जुन ! यह भीष्मादिक जो शिष्ट पुरुष हैं तिन्होंकी अपणे बांधवोंके हनन विषे प्रवृत्ति देखणेमैं आवै है और जो जो शिष्ट पुरुषोंका आचार होवै है सो सो वेदमूलकही होवै है। जैसे श्राद्धादिक कर्मोंविषे प्रवृत्तिरूप शिष्ट पुरुषोंका आचार वेदमूलक होवै है । और ता शिष्ट पुरुषोंके आचारके अनुसारही दूसरे पुरुषोंकी प्रवृत्ति होवै है यातें भीष्मादिक शिष्ट पुरुषोंकी अपणे बांधवोंके हननविषे प्रवृत्तिकूं देखिकरिकै तुम्हारेकूंभी तिसी विषे प्रवृत्त होणा चाहिये । या भगवान्‌की शंकाकी अर्जुननैं (लोभोपहतचेतसः) या विशेषणके कहणेकरिकै निवृत्ति करी काहेतें जिस शिष्ट पुरुषोंके आचारविषे लोभादिक दोष कारण नहीं होवैं किंतु केवल धर्म बुद्धिही कारण होवै । तिसी आचारविषे वेदमूलकता कल्पना करी जावै है। और सोइही शिष्ट पुरुषोंका आचार इतर जीवोंकूं अङ्गीकार करणे योग्य होवै है । और जिस शिष्ट पुरुषके आचार विषे केवल लोभादिक दोषही कारण होवै तां शिष्ट पुरुषके आचारविषे वेदमूलकता कल्पना करी

जावै नहीं। और सो लोभादिक पूर्वक शिष्ट पुरुषोंका आचार इतर पुरुषोंकूं अंगीकार करणे योग्यभी नहीं है। और इन भीष्मादिकोंका जो बांधवोंके हनन करणेविषे प्रवृत्ति रूप आचार है ताके विषेभी केवल लोभादिक दोषही कारण हैं यातैं सो इन भीष्मादिकोंका आचार वेदमूलक नहीं है। ऐसे इन भीष्मादिकोंके लोभमूलक आचारकूं ग्रहण करिकै हम बांधवोंके हनन करणेविषे कैसे प्रवृत्त होवैंगे किंतु हम ताके विषे कदाचित्भी नहीं प्रवृत्त होवैंगे ॥ ३८ ॥

हे अर्जुन ! यद्यपि यह भीष्मादिक लोभतैं युद्धविषे प्रवृत्त हुए हैं तथापि धर्मशास्त्रविषे यह कह्या है। "आहूतो न निवर्तेत यूतादपि रणादपि" इति। "विजितं क्षत्रियस्य" इति। अर्थ, यह–क्षत्रिय राजाकूं जो कोई पुरुष जूवा खेलणेवासतै तथा युद्ध करणेवासतै आडकै बुलावै तौ सो क्षत्रिय ता जूवातैं तथा युद्धतैं निवृत्त नहीं होवै किंतु ता पुरुषके साथि जूवा तथा युद्ध अवश्यकरिके करै। और युद्ध करिकै इकठा करा हुआ जो धन है सो धनही क्षत्रियका धर्म्य धन है इति। इत्यादिक धर्मशास्त्रके वचनोंकरिकै क्षत्रिय राजाका युद्धधर्म सिद्ध होवै है। तथा युद्ध करिकै इकठा करा हुआ धनही धर्म्य धन सिद्ध होवैहै। और तुम्हारेकूं इन भीष्मादिकोंनैं युद्ध करणेवासतै बुलाया है यातैं तुम्हारेकूं इस युद्ध विषे अवश्य प्रवृत्त होणा चाहिये ऐसी भगवान्की शंकाके हुए अर्जुन कहै है–

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ॥
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९ ॥

(पदच्छेदः) कथम्। नं। ज्ञेयम्। अस्माभिः। पापात्। अस्मात्। निवर्तितुम्। कुलक्षयकृतम्। दोषम्। प्रपश्यद्भिः। जनार्दन ॥ ३९ ॥

(पदार्थः) हे जनार्दन ! कुलकेनाशकृत् दोषकूं जानणेहारे हमोंनै पापके हेतुरूप इस युद्धतैं निवृत्त होणेवासतै कैसें नहीं विचार करणा योग्य है किंतु अवश्य विचार करणा योग्य है ॥ ३९ ॥

भा० टी०–हे जनार्दन ! आपणे कुलके नाश करणेतैं उत्पन्न होणेद्वारा जो दोष है ता दोषकूं भली प्रकारतैं जानणे हारे जो हम हैं तिन हमोंनैं पापकी प्राप्ति करणेहारे इस युद्धतैं निवृत्त होणेवासतै क्या नहीं विचार करणा योग्य है . किंतु ता युद्धतैं निवृत्त होणेवासतै हमारेकूं अवश्य विचार करणा योग्य है । और " किमकार्यं दुरात्मनाम् " । अर्थ, यह दुरात्मा पुरुषोंकूं कौन कार्य करणे योग्य नहीं है किंतु दुरात्मा पुरुषोंकूं सर्व करणे योग्य है । या न्यायकूं अंगिकार करिकै यह दुर्योधनादिक जैसे राज्यके लोभ करिकैं अपने कुलका नाश करैं हैं । तथा अपणे मित्रोंके साथि द्रोह करैं हैं तैसे हमारेकूं करणा योग्य नहीं है । और " आहूतो न निवर्तेत" यह जो धर्मशास्त्रका वचन आपने पूर्व कह्या था सो वचन केवल लोभमूलक है यातैं सो वचन " स एव पापिष्ठतमो यः कुर्यात्कुलनाशनम्" या वचन करिकै बाधित है यातैं ता लोभमूलक वचनकूं अंगीकार करिकै हमारी युद्धविषे प्रवृत्ति संभवै नहीं इहां यह तात्पर्य है जिस पुरुषकूं जिस कार्यविषे यह कार्य हमारे श्रेयका साधन है या प्रकारका ज्ञान होवै है सो पुरुषही तिस कार्यविषे प्रवृत्त होवै है यातें यह जान्या जावै है । श्रेयसाधनताज्ञानही पुरुषोंका प्रवर्त्तक है और जिसके साथि कदाचित्भी अश्रेयका संबंध नहीं होवै ताका नाम श्रेय है । जो ऐसा अंगीकार करिये तौ शत्रुके मारणेवासतै करा जो श्येनयज्ञ है ता श्येनयज्ञकूंभी धर्मरूपता होनी चाहिये । काहेतें शत्रुके मरणरूप श्रेयकी साधनता ता श्येनयज्ञविषेभी है परन्तु सो शत्रुका मरणरूप श्रेय अश्रेयका असंबंधी नहीं है । किंतु श्येनयज्ञकरिकै शत्रुकूं मारणहारे पुरुषकूं नरकरूप अश्रेयकी प्राप्ति होवै है । यातैं सो शत्रुका मरणरूप श्रेय नरकरूप अश्रेयके संबंधवालाही है । यातैं ता श्येनयज्ञ विषे

धर्मरूपता संभवै नहीं। यह वार्ता अन्य शास्त्रविषेभी कही है। तहां श्लोक—"फलतोपि च यत्कर्म नानर्थेनानुबध्यते। केवलप्रीतिहेतुत्वात् तद्धर्म इति कथ्यते"। अर्थ यह—जो कर्म अपणे फलकी प्राप्तितैंभी अनर्थके साथि संबंधवाला नहीं होवै किंतु केवल सुखकाही हेतु होवै ता कर्मकूं धर्म या नाम करिकै कथन करै है इति। यातैं जैसे श्येनयज्ञ यद्यपि "श्येनेनाभिचरन् यजेत" इत्यादिक शास्त्रकरिकै विधान करा है। तथापि ता श्येनका शत्रुका मरणरूप फल नरकरूप अश्रेयके संबंधवाला है यातैं श्रेष्ठ पुरुषोंकी ता श्येनयज्ञविषे प्रवृत्ति होवै नहीं। तैसे यह युद्धभी "आहूतो न निवर्त्तेत" इत्यादिक शास्त्रके वचनोंकरिकै यद्यपि विधान करा है तथापि ता युद्धके विजयराज्यादिक फल "स एव पापिष्ठतमो यः कुर्यात्कुलनाशनम्" इत्यादिक वचनोंकरिकै कथन करा जो कुलके नाशतैं पाप है ता पापरूप अश्रेयके संबंधवालेही हैं। यातैं ते विजयराज्यादिक फल श्रेयरूप नहीं हैं। ऐसे विजयराज्यादिकोंकी प्राप्तिवासतैं हमारेकूं इस युद्धविषे प्रवृत्त होणा योग्य नहीं है ॥ ३९ ॥

तहां युद्धके फलरूप जो विजयराज्यादिक है ते अश्रेयरूप होणेतैं हमारी इच्छाके विषय नहीं हैं यातैं तिन विजयराज्यादिकोंकी प्राप्तिवासतैं हमारेकूं इस युद्धविषे प्रवृत्त होणा योग्य नहीं है। यह अर्थ पूर्व श्लोक विषे कथन करा। अब तिसी अर्थकूं पुनः दृढ करणेवासतैं सो अर्जुन तिन विजयराज्यादिकोंविषे अनर्थका संबंधीपणा कथनकरिकै अश्रेयरूपता वर्णन करैहै पंच श्लोकों करिकै—

कुलक्षये प्रणश्यंति कुलधर्माः सनातनाः ॥
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोभिभवत्युत ॥ ४० ॥

(पदच्छेदः) कुलक्षये। प्रणश्यंति। कुलधर्माः। सनातनाः। धर्मे। नष्टे। कुलम्। कृत्स्नम्। अधर्मः। अभिभवति। उत ॥ ४० ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! कुलके नाश हुए परंपरासैं प्राप्त कुलके सर्व धर्म नाशकूं प्राप्त होवै हैं । और धर्मके नाश हुए बाकी रहे सर्व ही कुलकूं अधर्म अपणे वश करि लेवै है ॥ ४० ॥

भा० टी०—अपणे वंशपरंपराकरिकै प्राप्त तथा अपणे कुलके अनुसार तथा जातिके अनुसार करणेयोग्य ऐसे जो अग्निहोत्रादिक धर्म हैं तिन धर्मोंकी प्रवृत्ति करणेहारे जो वृद्ध पुरुष हैं तिन वृद्ध पुरुषोंका जबी नाश होवै है तबी तिन कर्त्ता पुरुषोंके अभाव होणेतैं ते अग्निहोत्रादिक सर्व कुलके धर्म नाशकूं प्राप्त होवैं है । और तिन वृद्ध पुरुषोंके नाशकरिकै तिन सर्व धर्मोंके नाश हुएतैं अनंतर शिक्षा करणेहारे वृद्ध पुरुषोंके अभावतैं बाकी रहे हुए स्त्रीबालकादि रूप कुलकूं अनाचाररूप अधर्म अपणे वश करि लेवैहै इति ॥ ४० ॥

किंच—

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यंति कुलस्त्रियः ॥
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥ ४१ ॥

(पदच्छेदः) अधर्माभिभवात् । कृष्ण । प्रदुष्यंति । कुलस्त्रियः । स्त्रीषु । दुष्टासु । वार्ष्णेय । जायते । वर्णसंकरः ॥ ४१ ॥

(पदार्थः) हे कृष्ण ! ता अधर्मके वशपणेतैं कुलीन सर्व स्त्रियां व्यभिचारिणी होवै हैं हे वार्ष्णेय ! तिन व्यभिचारिणी स्त्रियोंविषे वर्णसंकरपुत्र उत्पन्न होवै हैं ॥ ४१ ॥

भा० टी०—हे कृष्ण ! ता अधर्मकी वृद्धितैं अनंतर हमारे पतियोंनें धर्मका उल्लंघन करिकै जो कुलका नाश करा है तौ हमारेकूं पतिव्रताधर्मका उल्लंघन करिकै व्यभिचार करणेविषे कौन दोष होवगा । या प्रकारकी कुतर्ककरिकै युक्त हुई ते कुलकी स्त्रियां व्यभिचारकर्मविषे प्रवृत्त होवै हैं । अथवा धर्मशास्त्रविषे पतिके धर्म अधर्मका फल स्त्रीकूंभी कथन करा है । यातैं कुलके नाश करणे करिकै पापकूं प्राप्त हुए जो पति हैं तिन पतित पतियोंके संबंधतैं तिन स्त्रियोंकी व्यभिचारकर्मविषे

प्रवृत्ति होवै है । तिन व्यभिचारिणी स्त्रियोंविषे ऊंच जातिवाले पुरुषोंके संबंधतैं अथवा नीच जातिवाले पुरुषोंके संबंधतैं वर्णसंकरपुत्र उत्पन्न होवैं हैं ॥ ४१ ॥

किंच–

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ॥
पतंति पितरो ह्येषां लुप्तपिंडोदकक्रियाः ॥ ४२ ॥

(पदच्छेदः)संकरः । नरकाय । एव । कुलघ्नानाम् ।कुलस्य। च । पतंति । पितरः । हि । एषाम् । लुप्तपिंडोदकक्रियाः ॥४२॥

(पदार्थः) किंच कुलका संकर कुलके नाश करणेहारे पुरुषोंके नरकवासतै ही होवे है तथा इन कुलके नाश करणेहारे पुरुषोंके पितरभी पिंडजलक्रियातैं रहित हुए नरकविषे पडैं हैं ॥ ४२ ॥

भा॰ टी॰–हे भगवन् ! कुलविषे उत्पन्न भया जो वर्णसंकर है सो वर्णसंकर कुलके नाश करणेहारे पुरुषोंकूं नरककी प्राप्तिवासतैही होवै है । किंवा सो वर्णसंकर केवल कुलके नाश करणेहारे पुरुषोंके नरक वासतै नहीं होवै है । किन्तु ता वर्णसंकरकरिकै तिनोंके पितरोंकूंभी नरककी प्राप्ति होवै है । या अर्थकूं कहैं हैं । (पतंतीति) अपणे पितरोंवासतै पिंडक्रियाके करणेहारे तथा जलक्रियाके करणेहारे जो पुत्र हैं ते पुत्र पीछे रहे नहीं यातैं निवृत्त हो गई हैं पिंडक्रिया तथा जलक्रिया जिनोंकी ऐसे जो कुलके नाश करणेहारे पुरुषोंके पितर हैं ते पितर नरककी प्राप्तिवासतै स्वर्गतैं नीचे पडै है । इहां यद्यपि इतिहासपुराणादिकोंविषे यह वार्त्ता कथन करी है । एक कालविषे परशुराम सर्व क्षत्रियोंकूं हनन करता भया । तिसतैं अनंतर तिन क्षत्रियोंकी स्त्रियां ब्राह्मणोंतैं पुत्रोंकूं उत्पन्न करती भई । जो कदाचित् अन्य पुरुषतैं उत्पन्न हुए पुत्रकी दी हुई पिंडक्रिया तथा जलक्रिया पिताकूं नहीं प्राप्त होवी होवै तौ वे क्षत्रिय राजाओंकी स्त्रियां ब्राह्मणोंतैं पुत्रोंकूं किसवा-

सवै उत्पन्न करती भई हैं। यातैं यह जान्या जावै है जैसे स्त्रीरूप क्षेत्र विषे वीर्यरूप बीजकी प्राप्ति करणेहारे बीजपति पुरुषकूं ता पुत्रके दिये हुए पिंडादिक प्राप्त होवै हैं वैसे ता स्त्रीरूप क्षेत्रके पति पुरुषकूंभी ता पुत्रके दिये हुए पिंडादिक प्राप्त होवै हैं तथापि श्रुतिविषे बीजपति पुरुषकूंही ता पुत्रके दिये हुए पिंडादिकोंकी प्राप्ति कथन करी है। क्षेत्रपति पुरुषकूं ता पुत्रके दिये हुए पिंडादिकोंकी प्राप्ति कथन करी नहीं। तहां श्रुति। "न शेषो अग्ने अन्यजातमस्ति" ॥ अर्थ यह। हे अग्ने अपणी स्त्रीविषे अन्य पुरुषतैं उत्पन्न भया जो पुत्र है सो पुत्र होवै नहीं इति। किंवा यह वार्त्ता यास्कमुनिनैंभी कथन करी है। "अन्योदर्यो मनसापि न मंतव्यो ममायं पुत्रः" इति। अर्थ यह। अपणी स्त्रीविषे अन्य पुरुषतैं उत्पन्न भया जो पुत्र है ता पुत्रकूं या क्षेत्रपति पितानैं यह हमाराही पुत्र है या प्रकार मनकरिकैंभी नहीं जानणा इति। किंवा श्रुतिविषे अपणे वर्त्तमान पिताका संशयभी कथन करा है। तहां श्रुति। "ये यजामहे इति योऽहमस्मि स सन्यजे" इति। अर्थ यह। जे हम हैं ते हम यजन करते हैं। हम ब्राह्मण हैं अथवा अब्राह्मण हैं यह वार्त्ता हम जानते नहीं। काहेतैं लोकप्रसिद्ध वर्त्तमान जो यह पिता है सो पिता इसी पितातैं मैं उत्पन्न भया हूं अथवा किसी अन्य पितातैं मैं उत्पन्न भया हूं या प्रकारके संशयकरिकै ग्रस्त हैं यातैं यहही हमारा पिता है या प्रकारका निश्चय संभवै नहीं। यातैं जे हम हैं ते हम यजन करते हैं इति। इत्यादिक श्रुतिवचनोंकरिकै बीजपति पिताकूंही पिंडादिकोंकी प्राप्ति सिद्ध होवै है। क्षेत्रपति पिताकूं पिंडादिकोंकी प्राप्ति सिद्ध होवै नहीं। और स्त्रीरूप क्षेत्रविषे अन्य पुरुषतैं पुत्रकी उत्पत्तिकूं कथन करणेहारे जो स्मृति आदिक शास्त्रोंके वचन हैं तिन वचनोंका इस लोकविषे वंशके स्थापन करणेविषे तात्पर्य है। कोई क्षेत्रपति पुरुषकूं ता पुत्रके दिये हुए पिंडादिकोंकी प्राप्तिविषे तिन वचनोंका तात्पर्य नहीं है। यातैं वर्णसंकरपुत्रोंके उत्पन्न हुएतैं कुलनाश

करणेहारे पुरुषोंके पितर पिंडादिक क्रियातैं रहित होइकै अवश्य नरकविषे पड़े हैं। यह यद्यपितैं आदि लेके सर्व अर्थ (पतन्ति पितरो हि एषाम्) या वचनविषे स्थित हि, या शब्दकरिकै अर्जुननैं सूचन करा इति ॥ ४२ ॥

किंच–

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ॥
उत्साद्यंते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः॥४३॥

(पदच्छेदः) दोषैः । एतैः । कुलघ्नानाम् । वर्णसंकरकारकैः । उत्साद्यंते । जातिधर्माः । कुलधर्माः । च । शाश्वताः ॥ ४३ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! कुलके हनन करणेहारे पुरुषोंके वर्णसंकरके करणेहारे इन दोषोंनैं परंपरातैं प्राप्त जातिके धर्म तथा कुलके धर्म नाश करते हैं ॥ ४३ ॥

भा० टी०–हे भगवन् ! जे पुरुष यह कार्य हमारेकूं करणेयोग्य है तथा यह कार्य हमारेकूं नहीं करणे योग्य है या प्रकारके विचारका परित्याग करिकै कामक्रोधलोभादिकोंके वश हुए कुलधर्मोंके प्रवर्त्तक पुरुषोंका हनन करते हैं, तिन पुरुषोंका नाम कुलघ्न है ! तिन कुलघ्न पुरुषोंके वर्णसंकरकी उत्पत्ति करणेहारे जो पूर्व उक्त दोष हैं तिन दोषोंनैं श्रुतिस्मृतिमूलक तथा परंपरातैं प्राप्त जो क्षत्रियत्वादिक जातिप्रयुक्त धर्म हैं तथा कुलके जो असाधारण धर्म हैं ते सर्व धर्म नाश करते हैं इति ४३

किंच–

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ॥
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥४४॥

(पदच्छेदः) उत्सन्नकुलधर्माणाम् । मनुष्याणाम् । जनार्दन । नरके । अनियतम् । वासः । भवति । इति । अनुशुश्रुम ॥ ४४ ॥

(पदार्थः) हे जनार्दन ! नष्ट करे हैं कुल जातिआदिकोंके धर्म जिनोंनैं ऐसे मनुष्योंका नरकविषे अवधितैं रहित निवास होवै है इसप्रकार हम आचार्योंके मुखतैं श्रवण करते भये हैं ॥ ४४ ॥

भा०टी०-हे जनार्दन ! जे पुरुष लोभके वश होइकै अपणे कुलका हनन करिकै अपणे कुलके धर्मोंकूं तथा जातिके धर्मोंकूं नष्ट करै हैं तिन पुरुषोंका युगमन्वन्तरादिक अवधितै रहित रौरवादिक नरकोंविषे निवास होवै है । यह वार्त्ता हम केवल अपणी बुद्धिकी कल्पनातै नहीं कहते किंतु पूर्व आचार्योंके मुखतै तथा महान् ऋषियोंके मुखतै यह वार्त्ता हम श्रवण करते भये है । तहां श्लोक " प्रायश्चित्तमकुर्वाणाः पपेष्व-भिरता नराः । अपश्चात्तापिनः पापान्निरयान् यांति दारुणान् " ॥ अर्थ यह—जे पुरुष पापोंविषे प्रीतिवाले है तथा ता पापकीनिवृत्तिवासतै प्राय-श्चित्तकूं करते नही तथा पश्चात्तापकूंभी नहीं करते ते पुरुष ता पापके वशतै दारुण नरकोंकूं प्राप्त होवैं है इति । इत्यादिक अनेक वचन पापी पुरुषोंकूं नरककी प्राप्ति कथन करे है । इहां (नरके नियतम्) या वच-नविषे ककारके उत्तर अकारका लोप मानिकै अनियतं ऐसा पदच्छेद करा है । ता अनियतपदका पूर्व अर्थ कथन करा । और जो अकारका लोप तहां न अंगीकार करिये तौ नियतं या प्रकारका पदच्छेद करणा ता नियतपदका अवश्यकरिकै यह अर्थ करणा । क्या ऐसे मनुष्योंकूं नरकविषे अवश्यकरिकै निवास होवै है इति ॥ ४४ ॥

तहां अपणे बांधवोंकी हिंसाविषे है परिअवसान जिसका ऐसा जो युद्ध करणेका निश्चय है सो निश्चयभी सर्व प्रकारतै अत्यंत पापिष्ठ है तौ यह युद्धरूप कर्म अत्यन्त पापिष्ठ है याकेविषे क्या कहणा है । या अर्थके कहणेवासतै ता युद्धके निश्चय करणेकरिकै अपणेकूं धिक्कार करता हुआ सो अर्जुन कहै है—

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्॥
यद्राज्यसुखलोभेन हंतुं स्वजनमुद्यताः ॥ ४५॥

(पदच्छेदः) अहो । बतं । महत्पापम् । कर्तुंम् । व्यवसिताः। वयम् । यंत । राज्यसुखलोभेन । हंतुम् । स्वजनम् । उद्यताः ॥४५॥

(पदार्थः) बडा आश्चर्य है बडा खेद है जो हम महान् पापकूं करणेवास्तै निश्चयवाले हुए हैं जो हम राज्यसुखके लोभकरिकै अपणे बांधवोंकूं हननं करणेवास्तै उद्यमवाले हुए हैं सोईही महान् पाप है ४५

भा०टी०—हे भगवन्! यह हमारेकूं बडा आश्चर्य होताहै तथा बडा खेद होताहै।जो हम विचारवान् होकै भी इस महान् पापके करणेवास्तै प्रयत्नवाले हुए हैं, सो कौन पाप है जिसके करणेवास्तै तुम प्रयत्नवाले हुए हो। ऐसी भगवान्की शङ्का करिकै अर्जुन कहे है। (यदिति) राज्यकी प्राप्तिकरिकै प्राप्त होणेहारा जो क्षणभंगुर विषयसुख है ता विषयसुख विषे जो लंपटतारूप लोभ है ता लोभ करिकै जो हम अपणे भ्रातापुत्रादिक बांधवोंकूं तीक्ष्ण शस्त्रोंकरिकै हनन करणेवास्तै उद्यमवाले हुए हैं सोईही महान् पाप है इसतें परे दूसरा कोई पाप है नहीं। तात्पर्य यह जो तुम्हारी ऐसी बुद्धि है तौ युद्धका अभिनिवेश करिकै तूं इहां किसवास्तै आया है या प्रकारका वचन आपने कहना नहीं। काहेतें विचारतें विनाही कार्यकूं करणेहारा जो मैं हूं तिस हमने यह बहुत उद्धतपणा कराहै ४५

हे अर्जुन! तुम्हारेकूं यद्यपि युद्धादिकोंतें वैराग हुआ है तथापि भीमसेनादिकोंकूं ता युद्ध करणेकी बहुत उत्कट इच्छा है। यातें बांधवोंका नाश तौ अवश्यकरिकै होवैगा। पुनः तुम्हारेकूं क्या कार्य करणे योग्य है। ऐसी भगवान्की शङ्का करिकै अर्जुन कहै है—

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ॥
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥४६॥

(पदच्छेदः) यदि । माम् । अप्रतीकारम् । अशस्त्रम् । शस्त्रपाणयः । धार्तराष्ट्राः । रणे । हन्युः । तत् । मे । क्षेमतरम् । भवेत् ॥ ४६ ॥

(पदार्थः) जबी प्रतीकारतें रहित तथा शस्त्रोंतें रहित हमारेकूं यह शस्त्रोंवाले धृतराष्ट्रके पुत्रादिक इस युद्धभूमिविषे हनन करैंगे सो हनन हमारा अत्यंत क्षेमरूप होवैगा ॥ ४६ ॥

भा० टी०—हे भगवन् ! अपणे प्राणोंकी रक्षावास्तै करेहुएकी जो प्रतिक्रिया है ताका नाम प्रतीकार है। जैसे अपणे प्राणोंकी रक्षा करणेवास्तै ताडन करणेहारे पुरुषकूं जो ताडन करणा है ताका नाम प्रतीकार है। ता प्रतीकारतै रहित का नाम अप्रतीकार है। अथवा इन बांधवोंकूं मैं हनन करौंगा या प्रकारके निश्चयमात्रकरिकै प्राप्त भयाजो पाप है ता पापकी निवृत्ति करणेहारा जो शरीरके नाशतै विना अन्य प्रायश्चित्त हैं ता प्रायश्चित्तका नाम प्रतीकार है ता प्रतीकारतै जो रहित होवै ताका नाम अप्रतीकार है ऐसा अप्रतीकार जो मै हूं या कारणतैही मै शस्त्रोंतै रहित हूं। ऐसी प्रतीकारतै रहित तथा शस्त्रोंतै रहित मेरेकूं जो कदाचित् शस्त्र है हाथविषे जिनोंके ऐसे यह धृतराष्ट्रके दुर्योधनादिक पुत्र इस युद्धभूमिविषे हनन करेंगेतौ सो हमारा हनन हमारेकूं अत्यंत हित रूप होवैगा। काहेतै "अहिंसा परमो धर्मः" इत्यादिक वचनों करिके कथन करा जो सर्व भूतप्राणियोंकी अहिंसा रूप धर्म है सो अहिंसारूप अपणे प्राणोतैभी उत्कृष्ट है काहेतै इन प्राणोके धारणतै अनेकप्रकारके पापकी उत्पत्ति होवै है और ता अहिंसाधर्मतै कोई पाप उत्पन्न होवै नहीं उलटा महान् पुण्य उत्पन्न होवै है। यांतै इस जीवनकी अपेक्षाकरिकै सो हमारा मरणही अत्यंत हितरूप है और अपणे बांधवोंके मारणेके संकल्पकरिकै उत्पन्न भया जो पाप है ता पापकी निवृत्ति करणेहारा दूसरा कोई प्रायश्चित्त है नहीं। किंतु यह हमारा मरणही ता पापके निवृत्तिका प्रायश्चित्त है। या कारणतैभी यह हमारा मरणही हमारा अत्यंत हितरूप है। इहां किसी पुस्तकविषे (तन्मे प्रियतरं भवेत्) या प्रकारका पाठभी होवै है। ता पाठकाभी यह पूर्व उक्त अर्थही जानि लेना। अथवा (तन्मे क्षेमतरं भवेत्) या वचनका इस प्रकारका अर्थ करणा। सो मरण हमारेकूं क्षेमकी प्राप्तिवास्तैही होवैगा काहेतैं शास्त्र विषे क्षेमका यह स्वरूप कथन करा है। "अप्राप्तप्रापणं योगः क्षेमस्तु स्थितरक्षणम्"। अर्थ यह—अप्राप्तवस्तुकी जो प्राप्ति है ताका नाम

योग है । और पूर्वस्थित वस्तुका जो रक्षण है ताका नाम क्षेम है इति । और क्षेमतैंभी जो अधिकक्षेम होवैं ताका नाम क्षेमतर है। सो इहां प्रसंगविषे यह क्षेमतर है । अपणे कुलके नाश करणेतैं उत्पन्न होणेहारा जो दोष है तथा ता दोषकरिकै प्राप्त होणेहारी जो नरककी प्राप्ति है तथा इस लोकविषे प्राप्त होणेहारी जो अपकीर्ति है इत्यादिक सर्व अनर्थोंकी निवृत्तिपूर्वक जो पूर्वकृत पुण्यकर्मोंके नाशका अभाव है सोईही क्षेमतर है सो क्षेमतर हमारेकूं इस मरणतैंही प्राप्त होवैगा । यातैं इन बांधवोंके साथि युद्ध करणेतैं हमारा मरण ही श्रेष्ठ है इति ॥ ४६ ॥

तिसतैं अनंतर क्या वृत्तांत होता भया ऐसी धृतराष्ट्रकी शंका करिकै सञ्जय कहै है—

सञ्जय उवाच ।

एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत ॥
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥ ४७ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अर्जुनविषादो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

(पदच्छेदः) एवम् । उक्त्वा । अर्जुनः । संख्ये । रथोपस्थे । उपाविशत । विसृज्य । सशरम् । चापम् । शोकसंविग्नमानसः ४७॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! शोककरिकै पीडित है मन जिसका ऐसा अर्जुन संग्राम विषे इस प्रकारका वचन कहिकेंरिकै शरसहित धनुषकूं परित्याग करिकै रथके ऊपरि बैठता भया ॥ ४७ ॥

भा० टी०—हे धृतराष्ट्र ! अपणे बांधवोंके विनाशरूप निमित्ततैं उत्पन्न भया जो शोक है ता शोककरिकै पीडित है मन जिसका ऐसा सो अर्जुन ता संग्राम विषे कृष्णभगवान्‌प्रति ता पूर्व उक्त वचनकूं कहि करिकै तथा शरसहित धनुषका परित्याग करिकै ता रथके ऊपरि स्थित होता भया इति ॥ ४७ ॥

इति श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वामिउद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां प्रथमोऽध्यायः॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

तहां सर्व प्राणियोंकी अहिंसा तथा भिक्षा अन्नका भोजन यही हमारा परम धर्म है या प्रकारकी बुद्धि करिकै अर्जुनकी युद्धतैं विमुखताकूं श्रवण करिकै अपणे दुर्योधनादिक पुत्रोंके राज्यकी अचलताकूं निश्चय करिकै स्वस्थ हुआ है चित जिसका ऐसा जो धृतराष्ट्र है ता धृतराष्ट्रकी हर्षकरिकै उत्पन्न भई जो आकांक्षा (तिसतैं अनंतर क्या वृत्तांत होता भया या प्रकारकी) है ता आकांक्षाके निवृत्त करणेकी इच्छावान् सो संजय ता धृतराष्ट्रके प्रति या प्रकारका वचन कहता भया । यह वार्त्ता वैशंपायन जनमेजयके प्रति कहै हैं—

संजय उवाच ।

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ॥
विषीदंतमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥

(पदच्छेदः) तम् । तथा । कृपया । आविष्टम् । अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् । विषीदंतम् । इदम् । वाक्यम् । उवाच । मधुसूदनः ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र! पूर्व उक्त कृपानैं व्याप्त करा हुआ तथा अश्रुकरिकै पूर्ण तथा आकुल हैं नेत्र जिसके तथा विषादकूं प्राप्त हुआ ऐसा जो अर्जुनहै ताके प्रति श्रीकृष्णभगवान् यह वक्ष्यमाण वचन कहता भया ॥ १

भा० टी०—यह भीष्म दुर्योधनादिक हमारे संबंधी हैं या प्रकारका व्यामोह है कारण जिसविषे ऐसा जो स्नेहविशेष है ता स्नेहका नाम कृपा है ता कृपानैं व्याप्त करा हुआ जो अर्जुन है । इहां (कृपयाविष्टम्) इतने कहणेकरिकै अर्जुन विषे व्याप्तिरूप क्रियाका कर्मपणा कथन करा । और ता स्नेहरूप कृपाविषे ता व्याप्तिरूप क्रियाका कर्त्तापणा कथन करा । ता कहणेकरिकै ता कृपाविषे आगंतुकपणा निवृत्त करा । ऐसी स्वभावसिद्ध कृपानैं सो अर्जुन व्याप्त करा है । या कारणतैंही सो अर्जुन विषादकूं प्राप्त हुआ है तहां स्नेहके विषयरूप जो अपणे

बांधव हैं, तिन बांधवोंके नाशकी शंका है कारण जिसका ऐसा जो शोकरूप चित्तका व्याकुलीभाव है ताका नाम विषाद है । इहां (विषीदंतम्) या शब्द करिकै ता विषादविषे प्राप्तिरूप क्रियाका कर्मपणा कथन करा । और अर्जुनविषे ता प्राप्तिरूप क्रियाका कर्त्तापणा कथन करा । ता कहणेकरिकै तिस विषादविषे आगंतुकपणा सूचन करा । कदाचित् उत्पन्न होणेहारे पदार्थकूं आगंतुक कहैं हैं ऐसे आगंतुक विषादके वशतैं अश्रुरूप जलकरिकैं पूर्ण हुए हैं नेत्र जिसके तथा वस्तुके दर्शनकी असामर्थ्यरूप आकुलता करिकै युक्त हैं नेत्र जिसके ऐसा जो अर्जुन है ता अर्जुनके प्रति सो मधुसूदन भगवान् अनेक प्रकारकी युक्तियोंसहित यह वक्ष्यमाण वचन कहता भया । ता अर्जुनकी सो भगवान् उपेक्षा नहीं करता भया । इहां संजयनैं कृष्णभगवान्का जो (मधुसूदनः) यह नाम कथन करा है ता करिकै संजयनैं धृतराष्ट्रके प्रति यह अर्थ सूचन करा "मध्वाख्यम् असुरं सूदयतीति मधुसूदनः" । अर्थ यह—मधुनामा असुरकूं जो नाश करै है ताकूं मधुसूदन कहैं हैं । ऐसा दुष्टोंके संहार करणेहारा कृष्णभगवान् अपणे स्वभावके अनुसार ता अर्जुनके प्रतिभी तुम्हारे दुर्योधनादिक दुष्ट पुत्रोंके हनन करणेकाही उपदेश करैगा । अथवा अपणे मधुसूदन नामके सार्थक करणेवासतै सो कृष्णभगवान् अर्जुनकूं निमित्तमात्र करिकै आपही तुम्हारे दुष्ट पुत्रोंकूं हनन करैगा । यातैं तुमनैं अपणे पुत्रोंके जयकी आशा कदाचित् भी नहीं करणी ॥ १ ॥

अब ता कृष्णभगवान्के वचनका दो श्लोकोंकरिकै कथन करैं हैं—

श्रीभगवानुवाच ।

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ॥
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्त्तिकरमर्जुन ॥२॥

(पदच्छेदः) कुतः । त्वा । कश्मलम् । इदम् । विषमे । समुपस्थितम् । अनार्यजुष्टम् । अस्वर्ग्यम् । अकीर्तिकरम् । अर्जुन ॥२॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इस भययुक्त स्थानविषे तुम्हारेकूं यह कश्मल किस हेतुतें प्राप्त भया है कैसा है सो कश्मल श्रेष्ठ पुरुषोंकरिकै असेवित है तथा स्वर्गका विरोधी है तथा अकीर्ति करणेहारा है ॥२॥

भा० टी०– 'श्रीभगवानुवाच' या वचनविषे स्थित जो भगवान्पद है ता भगवान्पदका शास्त्रविषे यह अर्थ कथन करा है । श्लोक- "ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः । वैराग्यस्याथ मोक्षस्य पण्णां भग इतीरणा" ॥ अर्थ–यह संपूर्ण जो ऐश्वर्य है १ तथा संपूण जो धर्म है २ तथा संपूर्ण जो यश है ३ तथा संपूर्ण जो श्री है ४ तथा संपूर्ण जो वैराग्य है ५ तथा संपूर्ण जो ज्ञान है ६ या षटोंका नाम भग है इति । ते ऐश्वर्यादिक षट्भग प्रतिबंधतें रहित हुए नित्यही जिसविषे रहैं ताका नाम भगवान् है । अथवा भगवान्शब्दका यह अर्थ है । श्लोक– " उत्पत्तिं च विनाशं च भूतानामागतिं गतिम् । वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति" अर्थ यह । जो सर्वज्ञ पुरुष सर्व भूतोंक उत्पत्तिकूं तथा ता उत्पत्तिके कारणकूं जानै है । तथा तिन सर्व भूतोंके नाशकूं तथा ता नाशके कारणकूं जानै है । तथा जो सर्वज्ञ पुरुष सर्वभूतोंके संपदारूप आगतिकूं तथा सर्व भूतोंके आपदा रूप गतिकूं जानैं है तथा जो सर्वज्ञ पुरुष विद्याकूं तथा अविद्याकूं जानै है सो सर्वज्ञ पुरुष भगवान् या नाम करिकै कहणेयोग्य है इति । ऐसा श्रीकृष्णभगवान् अर्जुनके प्रति या प्रकारका वचन कहता भया । हे अर्जुन ! स्नेहरूप कृपा तथा पूर्व उक्त विषाद तथा अश्रुपात यह तीनों हैं कारण जिसके तथा शिष्ट पुरुषोंकरिकै निंदित होणेतें अत्यन्त मलिन है स्वरूप जिसका ऐसा जो यह युद्धरूप स्वधर्मतें निवृत्तरूप कश्मळ इस युद्धभूमिविषे सर्व क्षत्रियोंतें श्रेष्ठ तुम्हारेकूं किस हेतुतें प्राप्त भया है । तात्पर्य यह । सो युद्धरूप स्वधर्मतें निवृत्तिरूप कश्मल तुम्हारेकूं मोक्षकी इच्छारूप हेतुतें प्राप्त भया है । अथवा स्वर्गकी इच्छारूप हेतुतें प्राप्त भया है । अथवा कीर्तिकी इच्छारूप हेतुतें प्राप्त भया है इति । अब या तीनों हेतुओंकूं यथाक्रमतें अनार्यजुष्टं, अस्वर्ग्यं, अकीर्तिकरं, या तीन विशेषणोंकरिकै श्रीभगवान्

निषेध करै हैं । (अनार्यजुष्ट) इत्यादिक अर्धश्लोककरिकै, हे अर्जुन ! अपणे वर्णआश्रमके धर्मोंकरिकै अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा मोक्षकी इच्छा करणेहारे जो अशुद्ध अंतःकरणवाले मुमुक्षुजन हैं ऐसे मुमुक्षुजनोंनैं तौ यह स्वधर्मतैं निवृत्तिरूप कश्मल कदाचित्भी सेवन करणेयोग्य नहीं है। और सर्व कर्मोंके संन्यासका अधिकारी तौ शुद्ध अंतःकरणवालाही होवै है। यह वार्त्ता आगे कथन करैंगे यातैं मोक्षकी इच्छारूप हेतुतैं तथा कश्मलकी प्राप्ति संभवै नहीं । और यह स्वधर्मतैं निवृत्तिरूप कश्मल स्वर्गकी प्राप्ति करणेहारे धर्मका विरोधी है यातैं स्वर्गकी इच्छावान् पुरुषनैंभी सो कश्मल सेवन करणेयोग्य नहीं है। और सो कश्मल इस लोकविषे कीर्त्तिका अभाव करणेहारा है अथवा अपकीर्त्ति करणेहारा है यातैं इसलोककै कीर्त्तिकी इच्छावान् पुरुषोंनेभी सो कश्मल सेवन करणेयोग्य नहीं है। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। मोक्षकी इच्छावान् पुरुषोंनैं तथा स्वर्गकी इच्छावान् पुरुषोंनैं तथा कीर्त्तिकी इच्छावान् पुरुषोंनैं यह स्वधर्मतैं निवृत्तिरूप कश्मल सर्वथा परित्याग करणेयोग्य है। और तूं तौ मोक्षकी तथा स्वर्गकी तथा कीर्त्तिकी इच्छावान् हुआभी इस कश्मलकूं सेवन करता है। यातैं यह तुम्हारा बहुत अनुचित व्यवहारहै२

हे भगवन् ! अपणे बांधवोंकी सेनाके देखणेकरिकै उत्पन्न भया जो अधैर्य है ता अधैर्यके वशतैं धनुषमात्रकूंभी धारण करणेविषे असमर्थ जो मैं हूं तिस हमारेकूं अबी क्या करणेयोग्य है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं—

क्लैब्यं मास्मगमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ॥
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप॥३॥

(पदच्छेदः) क्लैब्यम् । मास्मगमः। पार्थ । नं। एतत् । त्वयि । उपपद्यते । क्षुद्रम् हृदयदौर्बल्यम् । त्यक्त्वा । उत्तिष्ठ । परंतप ॥ ३ ॥

(पदार्थः) हे पृथाके पुत्र ! तूं क्लीवभावकूं मत प्राप्त होउ तैं अर्जुनविषे यहं क्लीबभाव नहीं बनि सकता है परंतप या क्षुद्र हृदयके दौर्बल्यकूं परित्याग करिकै तूं युद्धवासतै उठि खडा होउ ॥ ३ ॥

भा०टी०—हे पृथाके पुत्र ! ओज तेज आदिकोंका भंगरूप जो अधैर्य है ता अधैर्य रूप जो क्लीबभाव है ता क्लीबभावकूं तूं मत प्राप्त होउ। इहां (हे पार्थ) या संबोधन करिकै भगवान्नै अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन करा पृथा मातानैं देवताका आराधन करिकै ता देवताके प्रसादतैं तुम्हारेकूं पाया था। यातैं तुम्हारेविषे बलकी अधिकता अत्यंत प्रसिद्ध है ऐसा पृथाका पुत्र तूं इस क्लीबभावके योग्य नहीं है। अब अर्जुनपणे करिकैभी ता क्लीबभावकी अयोग्यता निरूपण करैं हैं। (नैतदिति) साक्षात् महेश्वरके साथिभी युद्ध करणेहारा तथा सर्व लोकविषे प्रसिद्ध महान् प्रभाववाला ऐसा जो तूं अर्जुन है तिस तुम्हारेविषे यह अधैर्यरूप क्लीबभाव कदाचितभी बनता नहीं। शंका—हे भगवन् ! (न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः) अर्थ यह। मेरा मन भ्रमण करता है यातैं मैं अपणे शरीरके स्थित करणेविषेभी समर्थ नहीं हूं। यह अपणां वृत्तांत पूर्वही मैंने आपके प्रति कथन करा था यातैं अबी हमारेकूं आप वारंवार किस वासतै कहते हो ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं। (क्षुद्रम् इति) हे अर्जुन जिसकूं हृदयका दौर्बल्य कहैं हैं। ऐसा जो मनका भ्रमणादिरूप अधैर्य है सो अधैर्य स्वाश्रयपुरुषके क्षुद्रपणेका कारण होणेतै क्षुद्ररूपहै। अथवा सो भ्रमणादिरूप अधैर्य सुगमही निवृत्त करा जावै है यातैं क्षुद्ररूप है। ऐसे क्षुद्र अधैर्यकूं विचारके बलतै शीघ्रही परित्याग करिकै इस स्वधर्मरूप युद्धके करणेवासतै तुम सावधान होवो। इहां (हे परंतप) या अर्जुनके संबोधन कहणे करिकै भगवान्नें अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन करा। "परं शत्रुं तापयतीति परंतपः" ॥ अर्थ यह—अपणे शत्रुओंकूं जो संतापकूं प्राप्त करै ताका नाम परंतपहै ऐसा परंतप होइकैभी अत्यंत क्षुद्र अधैर्यरूप शत्रुका नाश नहीं करणा यह बहुत आश्चर्यकी

वार्त्ता है । यातैं अपणे परंतप नामके सार्थक करणेवासतै तुम्हारेकू ता अधैर्यरूप शत्रुका नाश अवश्य करणे योग्य है ॥ ३ ॥

हे भगवन् ! जो मैं इस युद्धका परित्याग करता हूं सो कोई शोकमोहादिकोंके वशतैं नहीं करताहूं किंतु इस युद्धविषे धर्मरूपता है नहीं उलट अधर्मरूपता है या कारणतैं मैं इस युद्धका परित्याग करताहूं । या प्रकारके अर्जुनके अभिप्रायकूं संजय कथन करै है—

अर्जुन उवाच ।

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ॥
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) कथम् । भीष्मम् । अहम् । संख्ये । द्रोणम् । च । मधुसूदन । इषुभिः । प्रतियोत्स्यामि । पूजार्हौ । अरिसूदन ॥ ४ ॥

(पदार्थः) हे मधुसूदन हे अरिसूदन इस रणभूमिविषे मैं अर्जुन पूजाके योग्य भीष्मकूं तथा द्रोणकूं बाणोंकरिकै किस प्रकार हनन करौंगा किंतु नहीं हनन करौंगा ॥ ४ ॥

भा० टी०—हे भगवन् ! हमारे कुलविषे वृद्ध तथा गुणों करिकै वृद्ध जो यह भीष्मपितामह हैं तथा धनुर्विद्याका गुरु जो यह द्रोणाचार्य है यह दोनों अपणे पिताकी न्याईं पुष्प चंदन अक्षतादिकोंकरिकै पूजन करणेयोग्य हैं । ऐसे भीष्मद्रोणादिक वृद्धोंके साथि क्रीडास्थानविषे आनंदकी प्राप्तिवासतै लीलायुद्ध करणाभी हमारेकूं उचित नहीं हैं तो इस रणभूमिविषे तीक्ष्ण शस्त्रों करिकै तिन भीष्मद्रोणादिकोंका हनन करणा हमारेकूं किस प्रकार उचित होवैगा ? किंतु तिन भीष्मादिकोंका हनन करणा हमारेकूं उचित नहीं है । इहां यह तात्पर्य है । यह दुर्योधनादिक भीष्मपितामहकूं तथा द्रोणाचार्यकूं छोडिकरिकै तौ हमारे साथि युद्ध करैंगे नहीं किंतु भीष्मद्रोणकूं सम्मुख करिकै हमारे साथि युद्ध करेंगे। तहां भीष्म द्रोणाचार्यके साथि युद्ध करणा धर्म तो है नहीं, काहेतें वेद करिकै विधान करा हुआ जो बलवान् अर्थ है ताका नाम धर्म है ।

या प्रकारका धर्मका लक्षण जैसे भीष्मद्रोणादिकोंके पूजनविषे घटै है तैसे तिनोंके साथि युद्ध करणेविषे सो लक्षण नहीं यातें सो युद्ध धर्मरूप नहीं है शंका–हे अर्जुन ! जैसे वृद्धपुरुषोंके साथि युद्ध करणेका शास्त्रविषे विधान नहीं करा है यातें ता युद्धविषे धर्मरूपता नहीं संभवती तैसे ता युद्धका शास्त्रविषे निषेधभी तो नहीं करा है यातें ता युद्धविषे अधर्मरूपताभी नहीं संभववती। शास्त्रकरिकै निषिद्धही अधर्म होवै है। समाधान–हे भगवन् ! शास्त्रविषे यह कहा है श्लोक। "गुरुं हुंकृत्य तुंकृत्य विप्रान्निर्जित्य वादतः। श्मशाने जायते वृक्षः कंकगृध्रोपसेवितः। अर्थ यह–जो पुरुष अपणे गुरुके प्रति हुंकारशब्द कहै है तथा तुंकारशब्द कहै है तथा साधु ब्राह्मणोंकूं विवादतैं जय करै है सो पुरुष मरिकरिकै श्मशानभूमिविषे कंक गृध्र आदिक पक्षियोंकरिकै सेवित वृक्षशरीरकूं प्राप्त होवै है इति। इत्यादिक शास्त्रोंके वचनोंनैं शब्दमात्रकरिकैभी गुरुका द्रोह निषेध करा है। जबी शब्दमात्र करिकै गुरुका द्रोहभी अधर्मरूप हुआ तबी तिन भीष्मद्रोणादिक गुरुवोंके साथि तीक्ष्ण शस्त्रों करिकै युद्ध करणा अधर्मरूप है। याके विषे क्या कहणा है। इहां (हे मधुसूदन हे अरिसूदन) यह दो संबोधन भगवान्के जो अर्जुनने कहे हैं तिन दोनोंका अर्थ एकही है काहेतें मधुनामा असुरकूं जो हनन करै है ताकूं मधूसूदन कहै हैं। और शत्रुरूप अरियोंकूं जो हनन करै है ताकूं अरिसूदन कहै हैं यातें एकवार कहे हुए अर्थका पुनः कथन करणेविषे यद्यपि अर्जुनकूं पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै है तथापि सो अर्जुन तिस कालविषे शोककरिकै व्याकुल था यातें ता अर्जुनकूं पूर्व उत्तर अर्थका स्मरण रह्या नहीं यातें पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै नहीं स्वस्थचित्तवाले पुरुषविषेही सो पुनरुक्तिदोष दिया जावै है। अथवा मधुसूदन अरिसूदन या दो संबोधनों करिकै अर्जुननैं भगवान्के प्रति यह अर्थ सूचन करा। हे भगवन् ! आपभी तौ मधुअसुरादिक शत्रुओंकूंही हनन करते हो अपणे मित्रोंकूं हनन

करते नहीं । यातें पूजाके योग्य भीष्मद्रोणादिक गुरुओंकूं तुम हनन करो या प्रकारका वचन कहणा तुम्हारेकूं उचित नहीं है ॥ ४ ॥

हे अर्जुन ! भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य इत्यादिकोंविषे जा पूज्यता है सा पूज्यता गुरुपणे करिकै है ता गुरुपणेतैं विना तिन्हकी पूज्यताविषे दूसरा कोई कारण है नहीं सो गुरुपणा यद्यपि पूर्वकालविषे तिन भीष्मद्रोणादिकोंविषे रह्या था तथापि इस कालविषे तिन भीष्मद्रोणादिकोंकूं गुरुरूप करिकै अंगीकार करणा तुम्हारेकूं उचित नहीं है। काहेतैं धर्मशास्त्रविषे यह कह्या है। श्लोक । "गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः । उत्पथं प्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते" अर्थ यह—जो गुरु अहंकारादिक दोषोंकरिकै उन्मत्तभावकूं प्राप्त भया है तथा जो गुरु शास्त्रविहित करणे योग्य अर्थकूं तथा शास्त्रनिषिद्ध अकरणे योग्य अर्थकूं जाणता नहीं तथा जो गुरु शास्त्रनिषिद्ध मार्गविषे प्रवृत्त होवै है ऐसे गुरुका शिष्यनैं परित्यागही करणा इति । यह सर्व लक्षण इन भीष्मद्रोणाचार्यादिकोंविषे घटैं हैं काहेतै यह भीष्मद्रोणादिक युद्धके गर्वकरिकै महान् उन्मत्तभावकूं प्राप्त हुए हैं । और इन भीष्मद्रोणादिकोंनैं कपट करिकै राज्यका ग्रहण करा है तथा अपणे शिष्योंके साथि द्रोह करा है यातें यह भीष्मद्रोणादिक कार्य अकार्यके ज्ञानतैंभी रहित हैं या कारणतेंही शास्त्रनिषिद्ध मार्गविषे वर्त्तणेहारे है । ऐसे भीष्मद्रोणादिकोंका हनन करणाही श्रेष्ठ है। ऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन कहै है—

गुरूनहत्वा हि महानुभावाञ्छ्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीहलोके॥ हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुंजीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५॥

(पदच्छेदः) गुरून् । अहत्वा । हि । महानुभावान् । श्रेयः। भोक्तुम् । भैक्ष्यम् । अपि । इह । लोके । हत्वा । अर्थकामान् । तु। गुरून् । इह । एव । भुंजीय । भोगान् । रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! जिसे कारणते महानुभाव गुरुओंकूं न हननै करिकै इस लोकविषे भिक्षाअन्नकूं भोजन करणाभी श्रेष्ठ है इन अर्थकोंमवाले "भी गुरुओंकूं हननैं करिकै मैं इस लोकविषे "ही रुधिरलिप्तैं विषयोंकूं भोगौंगों ॥ १५ ॥

भा०टी०—हे भगवन् ! भीष्मद्रोणाचार्यादिक गुरुओंकूं न हनन करिकै हमारा परलोक तौ अवश्यकरिकै सिद्ध होवैगा । और इस लोकविषे तौ तिन भीष्मद्रोणादिक गुरुओंकूं न हनन करिकै राज्यतै रहित हुए हम राजाओंकूं शास्त्रनिषिद्ध भिक्षाअन्नभी भोजन करणेकूं अत्यंत श्रेष्ठ है । परन्तु तिन भीष्मद्रोणादिक गुरुओंकूं हनन करिकै हमारेकूं यह राज्यभी श्रेष्ठ नहीं है । काहेतै शास्त्रविषे यह कह्या है । श्लोक ।"अकृत्वा परसंतापमगत्वा खलमंदिरम् । अक्लेशयित्वा चात्मान यदल्पमपि तद्बहु" । अर्थ यह—दूसरे प्राणियोंकूं संतापकी प्राप्ति न करिकै तथा वेदविरुद्ध नास्तिकोंके मंदिरकूं न जाइ करिकै तथा अपणे आत्माकूं क्लेशकी प्राप्ति नहीं करिकै इस पुरुषकूं जो अल्प पदार्थकीभी प्राप्ति होवै सा अल्प पदार्थकी प्राप्तिभी इस पुरुषनै बहुत करिकै मानणी इति । यातै इन भीष्मद्रोणादिकोंके मारणेकरिकै प्राप्त होणेहारा जो राज्य है ता राज्यतै हम इन भीष्मादिकोकूं न मारिकै या भिक्षाअन्नकूंही बहुत करिकै मानते है । यह सर्व अर्थ अर्जुननैं (हि) याशब्दकरिकै सूचन करा । शंका—हे अर्जुन । " गुरोरप्यवलिप्तस्य" या पूर्व उक्त वचन करिकै इन भीष्मद्रोणादिकोविषे गुरुपणेका अभाव हम कथन करि आये है यातै वारंवार तू इन्होंविषे गुरुबुद्धि किसवासतै करताहैऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए सो अर्जुन कहै है । (महानुभावानिति) हे भगवन् । श्रवण, अध्ययन,तप आचार इत्यादिक श्रेष्ठ गुणोंकरिकै महान् है प्रभाव जिन्होंका ऐसे जो यह भीष्म द्रोणादिक हैं तिन भीष्मादिकोंनै कालकामादिकभी अपणे वश करे है ऐसे महान् पुण्यवाले भीष्मादिकोंकूं पूर्व उक्त क्षुद्र पापकर्मका स्पर्शमात्र भी होवै नहीं । यातै यत्किंचित् अनुचित कर्मकूं देखिकरिकै ऐसे महानु-

भाव पुरुषोंविषे गुरुत्वबुद्धिका परित्याग करणा हमारेकूं योग्य नहीं है। अथवा (हिमहानुभावान्) यह एकही पद है ताका यह अर्थ करणा। "हिमं जाड्यमपहंतीति हिमहा आदित्यो अग्निर्वा तस्येव अनुभावःसामर्थ्यं येषां ते हिमहानुभावाः तान्" । अर्थ यह—जडतारूप जो हिम है ता हिमकूं जो नाश करै ताका नाम हिमहा है ऐसा सूर्य भगवान् है अथवा अग्नि है ता सूर्यभगवान्के तथा अग्निके समान हैं सामर्थ्य जिन्होंका तिन्होंका नाम हिमहानुभाव है। ऐसे अतितेजस्वी भीष्मद्रोणादिकोंकूं वे पूर्व उक्त क्षुद्र पाप दोषकी प्राप्ति करै नहीं। यह वार्त्ता अन्य शास्त्रविषे भी कथन करी है । श्लोक । " धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम्। तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा " । अर्थ यह—ईश्वर पुरुषोंका शीघ्रही धर्ममर्यादाका उलंघन देखणेविषे आवता है सो धर्ममर्यादाका उल्लंघन तिन तेजस्वी पुरुषोंकूं दोषकी प्राप्तिवासतै होवै नहीं । जैसे शुद्ध अशुद्ध सर्व पदार्थोंकूं भक्षण करणेहारा जो अग्नि है तिस अग्निकूं सो अशुद्ध वस्तुका भक्षण दोषकी प्राप्तिवासतै होवै नहीं इति । तैसे इन भीष्मद्रोणादिक तेजस्वी पुरुषोंकूं ते पूर्व उक्त अनुचित कर्म दोषकी प्राप्तिवासतै होवै नहीं ॥ शंका—हे अर्जुन ! यह भीष्म द्रोणादिक जबी अपणे अर्थके लोभ करिकै इस युद्धविषे प्रवृत्त होवैंगे तभी वेचा है अपणा आत्मा जिन्होंनै ऐसे इन भीष्मद्रोणादिकोंविषे सो पूर्व उक्त माहात्म्य किस प्रकार संभवैगा। यह वार्त्ता भीष्मपितामहनैं आपही युधिष्ठिरके प्रति कथन करी है । तहां श्लोक । " अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् । इति सत्यं महाराज बद्धोस्म्यर्थेन कौरवैः" । अर्थ यह—हे महाराज युधिष्ठिर ! यह पुरुष अपणे अर्थकाही दास होवै और सो अर्थ किसी भी पुरुषका दास होता नहीं यह जो वार्त्ता शास्त्रविषे कही है सा वार्त्ता सत्य है। या कारणतैंही मैं अपणे अर्थके लोभकरिकै इन कौरवोंके साथि बांध्या हुआ हूं इति । यातैं अर्थके लोभवाले इन भीष्मद्रोणादिकोंविषे सो पूर्व उक्त माहात्म्य संभवता नहीं । ऐसी भगवान्की शंकाके हुए सो अर्जुन कहै

है। (हत्वेति) हे भगवन् ! ते भीष्मद्रोणादिक यद्यपि अर्थकी कामनावाले हैं तथापि ते भीष्मद्रोणादिक हमारी अपेक्षाकरिकै तौ गुरुही हैं । यह अर्थ अर्जुननैं पुनः गुरुशब्दके कथनकरिकै सूचन करा । ऐसे अर्थकामनावालेभी गुरुवोंकूं हनन करिकै मैं केवल विषयोंकूही भोगौंगा ता गुरुवोंके मारणेकरिकै मैं मोक्षकूं तौ प्राप्त होवौंगा नहीं ते विषयभोगभी केवल इस लोकविषेही हमारेकूं प्राप्त होवैंगे । परलोकविषे ते विषयभोग हमारेकूं प्राप्त होवैंगे नहीं । इस लोकविषेभी श्रेष्ठ पुरुषोंकरिकै आनिंदित ते विषयभोग हमारेकूं प्राप्त नहीं होवैंगे । किंतु अयशरूपी रुधिरकरिकै व्याप्त होणेतैं अत्यन्त निंदित ते विषयभोग हमारेकूं प्राप्त होवैंगे तात्पर्य यह । इन भीष्मद्रोणादिक गुरुवोंके मारणे करिकै जबी इस लोकविषेभी हमारेकूं इस प्रकारका दुःख होवैगा तबी परलोकके दुःखका मैं क्या वर्णन करौं । अथवा (अर्थकामान्) यह विषयरूप भोगोंका विशेषण जानना, ता पक्षविषे यह अर्थ करना। इन भीष्मद्रोणादिक गुरुवोंका हनन करिकै मैं केवल अर्थकामरूप विषयोंकूंही भोगौंगा परन्तु तिन्होंके मारणेकरिकै हमारेकूं कोई धर्मकी तथा मोक्षकी प्राप्ति होवैगी नहीं ॥५॥

हे अर्जुन ! भिक्षाअन्नका भोजन करणा क्षत्रियोंकूं शास्त्रकरिकै निषिद्ध है और युद्ध करणा तौ क्षत्रियोंकूं शास्त्रकरिकै विधान कराहै यातैं स्वधर्म होणेतैं युद्धही तुम्हारेकूं श्रेयकी प्राप्ति करणेहारा है । ऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन कहै है–

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ॥ यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) नचं । एतत् । विद्मः । कतरत् । नः । गरीयः । यद्वा । जयेम । यदि वा । नः । जयेयुः । यान् । एव । हत्वा । न । जिजीविषामः । ते । अवस्थिताः । प्रमुखे । धार्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! हमारेकूं भिक्षा और युद्ध इन दोनोंके मध्य-विषे कौन धर्म श्रेष्ठ है इस वार्त्ताकूं हम नहीं जानते हैं और युद्धविषे प्रवृत्त हुएभी क्या हम जीतेंगे अथवा हमारेकूं यह कौरव जीतेंगे किंवा जिनें भीष्मादिक बांधवोंकूं हननें करिकै हम जीवनेंकीभी इच्छा नहीं करते हैं ते भीष्मद्रोणादिक बांधवही हमारे सम्मुख स्थित हुए हैं ॥ ६

भा०टी०-हे भगवन् ! भिक्षाअन्नका भोजन तथा युद्ध ता दोनोंधर्मोंविषे हमारेकूं कौन धर्म श्रेष्ठ है। क्या हिंसातैं रहित होणेतैं भिक्षाका अन्नही श्रेष्ठहै अथवा स्वधर्म होणेतैं युद्धही श्रेष्ठ है या वार्त्ताकूं हम जानि सकते नहीं। शंका–हे अर्जुन ! भिक्षा अन्नका भोजन तथा युद्ध या दोनों धर्मोंविषे स्वधर्म होणेतैं युद्धही तुम्हारेकूं श्रेष्ठ है। ऐसी भगवान्की शंकाके हुए अर्जुन कहै है (यद्वेति) हे भगवन् ! जो कदाचित् हम युद्ध विषे प्रवृत्त भी होवैं तौभी हमही इन भीष्मद्रोणादिकोंकूं जय करेंगे अथवा यह भीष्म-द्रोणादिकही हमारेकूं जय करेंगे इस वार्त्ताकूंभी हम जाणते नहीं। जो कदाचित् यह भीष्मद्रोणादिकही हमारेकूं जीतेंगे तौ अन्तविषे हमा-रेकूं भिक्षा माँगिकैही भोजन करणा पडेगा। अथवा हमारा मरण होवैगा इन दोनों वार्त्ताओंविषे एक वार्त्ता तौ अवश्यकरिकै होवैगी यातैं ता युद्धतैं प्रथमही भिक्षा माँगिकै भोजन करणा हमारेकूं श्रेष्ठ है। शंका हे अर्जुन ! हमारा जय होवैगा अथवा इन भीष्मद्रोणादिकोंका जय होवैगा या प्रकारका संशय तूं किसवास्तै करता है मैं कृष्णभगवान् तुम्हारी सहायताविषे हूं यातैं तुम्हाराही निश्चयकरिकै जय होवैगा। ऐसी भग-वान्की शंकाके हुए अर्जुन कहै है (यानेवेति) हे भगवन् ! जो कदाचित् आपकी सहायताकरिकै हमारा जयभी होवै तौभी सो जय अंततैं हमारा पराजयही है। काहेतैं जिन भीष्मादिक बांधवोंकूं हनन करिकै हम अपणे जीवनमात्रकीभी इच्छा नहीं करते तौ तिन्होंकूं हनन करिकै हम विषयभोगोंकी इच्छा कैसे करेंगे किंतु नहीं करेंगे ते भीष्मद्रोणादिकही हम युद्धविषे मरेंगे या प्रकारका निश्चय करिकै हमारे

सम्मुख स्थित हुए है । ऐसे प्रिय बांधवोंकूं नाश करिकै जो जय होणा है सो जयभी पराजयरूपही है यातैं भिक्षाअन्नके भोजनतैं इस युद्धविषे श्रेष्ठता नहीं है इति । इहां किसी टीकाकारनैं (न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो) या प्रथम पादका यह अर्थ कथन करा है। हमारे मध्य विषे कौन सेना अधीक है या वार्ताकूं हम जानते नहीं सो यह अर्थ संभवता नही । काहेतैं इस श्लोकतैं आगले श्लोकविषे (पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः) या वचन करिकै अर्जुननैं धर्मविषेही संशय दिखाया है । ता वचनके अनुसार इस श्लोकविषेभी भिक्षाअन्न और युद्ध या दोनों धर्मोंविषेही अर्जुनका संशय संभवै है । सेनाकी अधिकताविषे संशय संभवै नहीं । किंवा-(न चैतद्विद्मः) या वचनकरिकै जो सेनाके अधिकताका संशय अंगीकार करिये तौ ता सेनाके अधिकताके संशयकरिकैही जयका संशय सिद्ध होइ सकै है। यातैं (यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः) या द्वितीयपादकरिकै कथन करा जो जयका संशय है सो व्यर्थ होवैगा या कारणतैं प्रथम व्याख्यानही बहुत टीकाकारोंकूं संमत है ॥ ६ ॥

इहां पूर्वग्रंथकरिकै संसारके दोषोंका निरूपण करा ताकरिकै अधिकारी पुरुषके विशेषण कथन करे । तहां (न च श्रेयोनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे)३१ इस वचनविषे रणविषे मरणकूं प्राप्त हुए शूरवीरकूं योगयुक्त संन्याससियोंके समान योगक्षेमकी प्राप्ति कथन करी ता कहणे करिकै "अन्यत् श्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयः" या कठवल्ली श्रुतिकरिकै सिद्ध मोक्षरूप श्रेयका कथन करा ता मोक्षरूप श्रेयतैं इतर पदार्थोंविषे अर्थतैं अश्रेयरूपता कथन करी ता कहणेकरिकै नित्य अनित्य वस्तुका विवेक दिखाया और(न कांक्षे विजयं कृष्ण)३२ इस श्लोक करिकै इस लोकके विषयजन्य सुखतैं वैराग्य दिखाया और(अपि त्रैलोक्यराजस्य हेतोः)३५ या वचन करिकै स्वर्गादिक लोकोंके विषयजन्य सुखतैं वैराग्य दिखाया । और नरके नियतं वासो भवति) ४४ या वचनकरिकै या स्थूल शरीरतैं भिन्नकरिकै

आत्माका स्वरूप दिखाया । और (किं नो राज्येन गोविंद०) ३२ या वचन करिकै मनका निग्रहरूप शम दिखाया । और (किं भोगैर्जीवितेन वा) ३२ या वचनकरिकै इंद्रियोंका निग्रहरूप दम दिखाया और (यद्यप्येते न पश्यंति) ३८ या वचनकरिकै निर्लोभता दिखाई और (तन्मे क्षेमंतरं भवेत्) ४६ या वचनकरिकै तितिक्षा दिखाई इस प्रकार या गीता शास्त्रके प्रथम अध्यायका अर्थ संन्यासके साधनोंको सूचन करै है । और इस द्वितीय अध्यायविषे तौ (श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके) ५ या वचनकरिकै भिक्षाअन्नके भोजनकरिकै उपलक्षित संन्यासका निरूपण करा । अब ब्रह्मसाक्षात्कारकी प्राप्ति वास्तै श्रुतिनें कथन करा जो ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप शिष्यका गमन है ताका निरूपण करैं हैं काहेतैं जिस पुरुपनें संसारके सर्व दोषोंकूं जान्या है तथा जो पुरुष इस लोकके तथा परलोकके विषयजन्य सुखोंतैं अत्यंत वैराग्यको प्राप्त भया है तिसतैं अनन्तर जो पुरुष विधिपूर्वक ब्रह्मवेत्ता गुरुके शरणकूं प्राप्त भया है ऐसे साधन संपन्न पुरुषकूंही ब्रह्मविद्याके ग्रहण करणेका अधिकार है । तहां पूर्वग्रंथविषे भीष्मद्रोणादिकोंके संकटके वशतैं "व्युत्थायाऽथ भिक्षाचर्यं चरंति" या श्रुतिकरिकै सिद्ध भिक्षाचर्याविषे अर्जुनकी अभिलाषा दिखाई अब विधिपूर्वक ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप अर्जुनका गमनभी तिन भीष्मद्रोणादिकोंके संकटके व्याज करिकैही निरूपण करैं हैं—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ॥ यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः । पृच्छामि । त्वाम् । धर्मसंमूढचेताः । यत् । श्रेयः । स्यात् । निश्चितम् । ब्रूहि । तत् । मे । शिष्यः । ते । अहम् । शाधि । माम् । त्वाम् । प्रपन्नम् ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! कार्पण्यदोषकरिकै तिरस्कारकूं प्राप्त हुआ है स्वभाव जिसका तथा धर्मविषयक संशयकरिकै व्याप्त हुआ है चित्त जिसका ऐसा मैं अर्जुन तुम्हारेप्रति श्रेय पूछता हूं यातैं जो निश्चित श्रेय होवै सो हमारेप्रति कथन करो मैं तुम्हारा शिष्य हूं यातैं तुम्हारे शरणकूं प्राप्त हुए हमारेकूं आप शिक्षा करो ॥ ७ ॥

भा०टी०–इस लोकविषे जो पुरुष यत्किंचित् धनकी हानिकूंभी नहीं सहारि सकैहै ता पुरुषकूं कृपण कहैहैं ता कृपण पुरुषकेसमान होणेतै मोक्ष-रूप पुरुषार्थकी प्राप्तितैं रहित सर्व अनात्मवेत्ता अज्ञानी पुरुष कृपण हैं। तहां श्रुति । "यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणः" । अर्थ यह–हे गार्गि, अधिकारी मनुष्य शरीरकूं प्राप्त होइकै जो पुरुष इस अक्षर आत्माकूं न जानिकरिकै इस लोकतैं जावै है सो अज्ञानी पुरुष कृपणही है इति । तहां स्मृति । "कृपणोऽजितेंद्रियः" । अर्थ यह–जिस पुरुषनैं अपणे इन्द्रियोंकूं नहीं जीत्या है सो पुरुष कृपणही है इति । इत्यादिक श्रुतिस्मृतियोंके प्रमाणतैं अज्ञानी पुरुषोंविषे ही कृपणता सिद्ध होवै है । ऐसे कृपण पुरुषोंविषे रहणेहारा जो देहा-दिक अनात्मपदार्थोंका अध्यास है ता अध्यासका नाम कार्पण्य है ता कार्पण्यकरिकै उत्पन्न भया जो इस जन्मविषे यहही हमारे बांधव हैं तिन्हके नाश हुए हम जीविकरिकै क्या करेंगे या प्रकारका अभिनिवेश-रूप ममतालक्षणदोष है ता दोषकरिकै तिरस्कारकूं प्राप्त हुआ है युद्धका उद्यमरूप स्वभाव जिसका ऐसा जो मैं अर्जुन हूं । तथा धर्मविषे निर्णय करणेहारे प्रमाणके अदर्शनतै क्या इन भीष्मद्रोणादिकोंका हनन करणाही हमारा धर्म है अथवा इन भीष्मादिकोंका पालन करणा हमारा धर्म है तथा क्या पृथिवीका परिपालन करणा हमारा धर्म है अथवा पूर्व प्राप्त वनविषे निवासही हमारा धर्म है इत्यादिक अनेक संश-योंकरिकै व्याप्त है चित्त जिसका ऐसा जो मैं अर्जुन हूं सो मैं अर्जुन तुम्हारेप्रति अपणा श्रेय पूछता हूं । यातैं जो परमपुरुषार्थरूप श्रेय एकां-

तिकरूप तथा आत्यंतिकरूप निश्चयकरिकै होवै सो श्रेय आप हमारे प्रति कथन करो । तहां स्वसाधनोंतैं अनंतर अवश्यभावीपणेका नाम एकांतिकपणाहै और एकवार उत्पन्न हुएका पुनः कदाचित्‌भी नाश नहीं होणा याका नाम आत्यंतिकपणा है । जैसे लोकविषे औषधके किये हुए कदाचित् रोगकी निवृत्ति नहींभी होवै है । और जो कदाचित वा औषधकरिकै रोगकी निवृत्ति होवैभी है तौभी पुनः रोगकी उत्पत्ति करिकै सा रोगकी निवृत्ति नाश होइ जावै है । इस प्रकार यागके किये हुएभी किसी प्रतिबंधके वशतैं स्वर्गकी प्राप्ति नहींभी होवै है । और वा यागकरिकै प्राप्त हुआभी स्वर्ग दुःख करिकै मिश्रितही होवै है । तथा नाशकूं प्राप्त होवै है । यातैं रोगकी निवृत्तिविषे तथा स्वर्गकी प्राप्तिविषे सो एकांतिकपणा तथा आत्यंतिकपणा संभवता नहीं । और ब्रह्मात्मसाक्षात्कारतैं अनंतर सो परमपुरुषार्थरूप श्रेय अवश्यकरिकै प्राप्त होवै है । यातैं ता श्रेयविषे एकांतिकपणाभी है । और एकवार प्राप्त हुआ सो श्रेय कदाचित्‌भी नाशकूं प्राप्त होवै नहीं । यातैं ता श्रेयविषे आत्यंतिकपणाभी है ऐसे श्रेयका हमारेप्रति उपदेश करो । शंका—हे अर्जुन ! श्रुतिविषे यह कह्या है । "नापुत्रायाशिष्याय वै पुनः" । अर्थ यह—जो पुरुष पुत्रभावतैं तथा शिष्यभावतैं रहित होवै ता पुरुषके प्रति ब्रह्मविद्याका उपदेश नहीं करणा इति । और तूं तौ हमारा सखा है । हमारा शिष्य तूं है नहीं । यातैं तुम्हारे प्रति मैं कैसे श्रेयका उपदेश करौं । ऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन कहै है (शिष्यस्तेहमिति) हे भगवन् ! आपकी शिक्षाके योग्य होणेतैं मैं आपका शिष्यही हूं मैं आपका सखा नहीं हूं काहेतैं समानज्ञानवाले पुरुषोंकाही परस्पर सखाभाव होवै है न्यून अधिक ज्ञानवाले पुरुषोंका परस्पर सखाभाव होवै नहीं । और मैं तुम्हारी अपेक्षाकरिकै अत्यंत न्यूनज्ञानवाला हूं । यातैं मैं आपका सखा नहीं हूं किंतु शिष्य हूं यातैं तुम्हारे शरणकूं प्राप्त हुआ जो मैं हूं तिस मैं शिष्यकूं आप कृपा करिकै श्रेयका उपदेश करो । शिष्यभावतैं रहितपणेकी शंकाक-

रिकै आप हमारी उपेक्षा मत करौ । इतनेकरिकै ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप शिष्यके गमनकूं बोधन करणेहारी इन दोनों श्रुतियोंका अर्थ निरूपण करा ते दोनों श्रुति यह हैं । " तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् इति ।भृगुर्वै वारुणिर्वरुणं पितरमुपससार अधीहि भगवो ब्रह्मेति" ॥ अर्थ यह–ब्रह्मसाक्षात्कारकी प्राप्तिवासतै यह अधिकारी पुरुष अपणे हस्तोंविषे समिदादिक भेटकूं लेकरिकै श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके समीप जावै इति । और वरुणका पुत्र भृगुऋषि ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिवासतै अपणे वरुणपिताके समीप जाता भया तहां जाइकै हे भगवन् ! हमारे प्रति ब्रह्मका उपदेश करौ या प्रकारका प्रश्न करता भया इति । यह वरुणभृगुका संवाद आत्मपुराणके दशम अध्यायविषे हम विस्तारतैं निरूपण करि आये है इति ॥ ७ ॥

हे अर्जुन ! तूं सर्व शास्त्रोंका वेत्ता पंडित है यातैं तूं आपही श्रेयका विचार कर तूं हमारा शिष्य किसवासतै होता है ऐसी भगवान्की शंका के हुए अर्जुन कहै है–

नहि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिंद्रियाणाम् ॥ अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥ ८ ॥

(पदच्छेदः) नंहि । प्रपश्यामि । मम । अपनुद्यात् । यत् । शोकम् । उच्छोषणम् । इंद्रियाणाम् । अवाप्य । भूमौ । असंपत्नम् । ऋद्धम् । राज्यम् । सुराणाम् । अपि । च । आधिपत्यम् ॥ ८ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! जो श्रेय हमारे इंद्रियोंके संताप करणेहारे शोककूं निवृत्त करै तिस श्रेयकूं मैं नहीं देखताहूं इस भूमिविषे शत्रुवोंतैं रहित तथा धनधान्यकरिकै युक्त राज्यकूं प्राप्त होइकै तथा देवतावोंके अधिपतिपणेकूं भी प्राप्त होइकै मैं ता श्रेयकूं नहीं देखता हूं ॥ ८ ॥

भा० टी०–हे भगवन् ! जो श्रेय प्राप्त होइकै हमारे शोकके निवृत्त करै ता श्रेयकूं मैं जानता नहीं या कारणतैं हमारे प्रति आप ता श्रेयका उपदेश करो । इतने कहणेकरिकै अर्जुननैं या श्रुतिका अर्थ सूचन करा " सोहं भगवः शोचामि तं मां भगवाञ्छोकस्य पारं तारयतु इति" । अर्थ यह–हे भगवन् ! सनत्कुमार आत्मवेत्ता पुरुष शोककूं तरै है यह वार्ता हमनैं आपसरीखे विद्वान् पुरुषोंके मुखतैं श्रवण करी है । और मैं नारद तौ शोककूं प्राप्त होता हूं यातैं मैं आत्मवेत्ता नहीं हूं । ऐसे मैं नारदकूं आप शोकके पारकूं प्राप्त करौ । तात्पर्य यह । ब्रह्मविद्याका उपदेश करिकै हमारे शोककूं आप नाश करो इति । यह सनत्कुमारनारदका संवाद आत्मपुराणके त्रयोदश अध्यायविषे हम विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं । शंका–हे अर्जुन । ता शोकके नहीं निवृत्त हुएभी तुम्हारी क्या हानि है । ऐसी भगवान्‌की शंकाकरिकै अर्जुन ता शोकका विशेषण कहै है (इंद्रियाणामुच्छोषणमिति) हे भगवन् ! *सो शोक सर्व कालविषे हमारे इंद्रियोंकूं संतापकी प्राप्ति* करणेहारा है ऐसे शोकके विद्यमान हुए हमारी महान् हानि है यातैं ता शोककी निवृत्ति अवश्य करी चाहिये । शंका–हे अर्जुन! जो तूं इस युद्ध विषे प्रवृत्त होवैगा तौ तुम्हारे शोककी निवृत्ति अवश्य करिकै होवैगी । तहां इस युद्धविषे जो तुम्हारा जय होवैगा तौ राज्यकी प्राप्तिकरिकै तुम्हारे शोककी निवृत्ति होवैगी और जो तूं युद्धविषे मृत्युकूं प्राप्त होवैगा तौ स्वर्गकी प्राप्तिकरिकै तुम्हारे शोककी निवृत्ति होवैगी । यातैं इस युद्धकूं छोडिकै शोकके निवृत्तिवासतै तूं दूसरा उपाय किसवासतै खोजता है । ऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन कहै है । (अवाप्य भूमाविति) हे भगवन् ! या भूमिविषे शत्रुवोंतैं रहित तथा धनधान्यादिक पदार्थोंकरिकै युक्त ऐसे राज्यकूं प्राप्त होइकै तथा इंद्रतैं आदि लैके हिरण्यगर्भपर्यंत सर्व देवतावोंके ऐश्वर्यकूं प्राप्त होइकै जो कदाचित् मैं स्थित होवौं तौभी जो श्रेय हमारे शोककूं निवृत्त करणेहारा है ता श्रेयकूं मैं

देखता नहीं यातैं सो शोकके निवृत्त करणेहारा श्रेय इस युद्धतै कोई भिन्नही है। तात्पर्य यह। इस लोकके विषयभोगोंविषे तथा स्वर्गादिक लोकोंके विषयभोगोंविषे श्रुतिप्रमाणकरिकै तथा युक्तिरूप अनुमानप्रमाण करिकै अनित्यताही सिद्ध होवै हैं। यातैं तिन अनित्य भोगोंतैं शोककी निवृत्ति संभवै नहीं उलटा ते भोग तीन कालविषे या पुरुषकूं शोककीही प्राप्ति करै हैं। तहां न प्राप्त हुए ते भोग अपणी इच्छाकरिकै या पुरुषकूं शोककी प्राप्ति करैं हैं। और प्राप्तिकालविषे ते भोग पराधीनताकरिकै तथा नाशके भयकरिकै या पुरुषकूं शोककी प्राप्ति करैं हैं। और अपणे नाशकालविषे ते भोग वियोगकरिकै या पुरुषकूं शोककी प्राप्ति करैं हैं। ऐसे शोकके करणेहारे अनित्य भोगोंकरिकै शोककी निवृत्ति संभवै नहीं। तहां श्रुति-"तद्यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयते,एवमेवामुत्रपुण्यजितो लोकः क्षीयते" इति। अर्थ यह-जैसे कर्मकरिकै प्राप्त होणेवै इस लोकके पदार्थ नाशकूं प्राप्त होवै है तैसे पुण्यकर्मकरिकै प्राप्त होणेवै स्वर्गादिक लोकोंके पदार्थभी नाशकूं प्राप्त होवै है इति। या श्रुतिकरिकै सर्व भोगोंविषे अनित्यताही सिद्ध होवै है। और इस लोकके तथा परलोकके सर्व पदार्थ अनित्य होणेकूं योग्य हैं। कार्य होणेतैं जो जो कार्य होवै है सो सो अनित्यही होवै है। जैसे प्रसिद्ध घटादिक पदार्थ है या प्रकारके अनुमानरूप युक्तिकरिकैभी तिन सर्व भोगोंविषे अनित्यताही सिद्ध होवै है। और इस लोकके पदार्थोंका नाश तौ सर्व लोकोंकूं प्रत्यक्षही प्रतीत होवै है। ऐसे अनित्य पदार्थोंकी प्राप्तिकरिकै शोककी निवृत्ति संभवै नहीं यातैं शोककी निवृत्ति-वास्तै हमारेकूं युद्ध करणा योग्य नहीं है। इतनकरिकै इस लोक परलोकके भोगोंका वैराग्य अधिकारीका विशेषणरूप करिकै वर्णन करा ॥ ८ ॥

हे संजय ! इस प्रकारके वचनोंकूं कहिकरिकै सो अर्जुन क्या करता भया ऐसी धृतराष्ट्रकी आकांक्षाके हुए संजय कहै है—

संजय उवाच ।

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतपः ॥
न योत्स्य इति गोविंदमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥९॥

(पदच्छेदः) एवम् । उक्त्वा । हृषीकेशम् । गुडाकेशः । परंतपः । न । योत्स्ये । इति । गोविंदम् । उक्त्वा । तूष्णीम् । बभूव । ह ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! शत्रुवोंकूं संताप करणेहारा तथा निद्राकूं जीतणेहारा अर्जुन हृषीकेश भगवान्‌के प्रति ईस प्रकारके वचन कहिकरिकै अन्तविषे मैं नहीं युद्ध करौंगा या प्रकारका वचन ता गोविंदके प्रति कथन करिकै तूष्णींभावकूं प्राप्त होता भया ॥ ९ ॥

भा० टी०—गुडाक नाम निद्राका है ता निद्राकूं जो अपणे वश करैहै ताकूं गुडाकेश कहै हैं । दूसरे गुडाकेश शब्दके अर्थ प्रथम अध्यायविषे कथन करि आये हैं । ऐसे निद्रारूप आलस्यतैं रहित तथा अपणे शत्रुवोंकूं संतापकी प्राप्ति करणेहारा जो अर्जुन है सो अर्जुन हृषीक नामा इंद्रियोंके प्रवर्त्तक अन्तर्यामी कृष्णभगवान्‌के प्रति ते पूर्व उक्त वचन कहिकरिकै अन्तविषे मैं इन भीष्मद्रोणादिकोंके साथि कदाचित् भी युद्ध नहीं करौंगा । या प्रकारका वचन ता गोविन्दके प्रति कहिकरिकै तूष्णींभावकूं प्राप्त होता भया । इहां गोविंद शब्दका या प्रकारका अर्थ शास्त्रविषे कथन करा है । गोभिर्वेदांतवाक्यैरेव विंदते लभ्यते इति गोविंदः । अर्थ यह—गोशब्द " तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि " इत्यादिक वेदांतवाक्योंका वाचक है । तिन वेदांत वाक्योंकरिकैही जो प्राप्त होवै ताकूं गोविंद कहै हैं। अथवा "गां वेदलक्षणां वाणीं विंदतीति गोविंदः" अर्थ यह—ऋग्, यजुष्, साम, अथर्वण या चारि वेदरूप वाणीकूं जो भली प्रकारतैं जानैं है ताकूं गोविंद कहै हैं । इतने कहणेकरिकै सर्व वेदोंके उपादानकारणत्वरूपकरिकै कृष्णभगवान्‌विषे सर्वज्ञता सूचन करी । और इसश्लोक आदिविषे (एवमुक्त्वा) या वचनकरिकै सो

अर्जुन (कथं भीष्ममहं संख्ये) इत्यादिक वचनोंकरिकै युद्धके स्वरूपकी अयोग्यता कथन करता भया। और तिसतै अनन्तर (न योत्स्ये) या वचनकरिकै सो अर्जुन ता युद्धके फलके अभावकूं कथन करता भया। तिसतै अनन्तर सो अर्जुन तूष्णीभावकूं प्राप्त होता भया। तात्पर्य यह। युद्ध करणेवासतैं अर्जुननैं जो पूर्व नेत्रादिक बाह्य इंद्रियोंका दर्शनादिरूप व्यापार करा था ता सर्व व्यापारकी निवृत्तिकरिकै निर्व्यापार होता भया यहही अर्जुनका तूष्णींभाव जानणा केवल वाणीमात्रका निरोध तूष्णीभाव नहीं जानणा। इहां (बभूव ह) या वचनविषे स्थित जो हशब्द है, ता हशब्दकरिकै यह अर्थ सूचन करा स्वभावतैंही आलस्यतैं रहित तथा सर्व शत्रुओंकूं संताप करणेहारा जो अर्जुन है तिस अर्जुनविषे आगंतुक आलस्य तथा शत्रुओंका अतापकत्व कदाचित्‌भी नहीं राहि सकैगा ॥ इति। और सर्वज्ञताकूं सूचन करणेहारा जो गोविन्दपद है तथा सर्वशक्तिसंपन्नताकूं सूचन करणेहारा जो हृषीकेश पद है तिन दोनों पदोंकरिकै ता कृष्णभगवान्‌विषे अर्जुनके शोकमोहकी निवृत्ति करणेमें आयासका अभाव सूचन करा। तात्पर्य यह। सर्व शक्तिसंपन्न सर्वज्ञ कृष्णभगवान्‌कूं अत्यन्त अल्प शोकमोहकी निवृत्ति करणेविषे क्या परिश्रम होवै है ॥ ९ ॥

तहां युद्धकी उपेक्षावान् अर्जुनकी भगवान्‌नैभी उपेक्षाही करी होवैगी या प्रकारकी जो धृतराष्ट्रकी दुराशाके निवृत्त करणेवासतै सो संजय ता धृतराष्ट्रके प्रति युद्धविषे अर्जुनकी उपक्षा देखिकरिकैभी सो कृष्णभगवान ता अर्जुनकी उपेक्षा नहीं करता भया या प्रकारका वचन कहै–

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ॥
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदंतमिदं वचः ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) तम्। उवाच। हृषीकेशः। प्रहसन्। इव। भारत। सेनयोः। उभयोः। मध्ये। विषीदंतम्। इदम्। वचः ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! सो कृष्णभगवान् दोनों सेनावोंके मध्यविषे विषादकूं प्राप्त हुए तिस अर्जुनके प्रति प्रहास करते हुएकी न्याई यह वक्ष्यमाण वचन कहता भया ॥ १० ॥

भा० टी०—हे भरतवंशविषे उत्पन्न हुआ धृतराष्ट्र ! पूर्वयुद्धका उद्यम करिके दोनों सेनावोंके मध्यविषे आइके ता उद्यमके विरोधी मोहरूप विषादकूं प्राप्त भया जो अर्जुन है ता अर्जुनका सो अनुचित आचरण प्रगट करिके लज्जारूप समुद्रविषे डुबावते हुएकी न्याई सो अंतर्यामी भगवान् ता अर्जुनके प्रति परम गंभीर है अर्थ जिसका तथा अनुचित आचरणकूं प्रकाश करणेहारा जो 'अशोच्यान' इत्यादिक वक्ष्यमाण वचन है ता वचनकूं कहता भया । इहां (प्रहसन्निव) या वचनविषे स्थित जो (इव) यह शब्द है ताका यह अभिप्राय है । अन्य पुरुषका अनुचित आचरण प्रगट करिके ताकी लज्जाकूं उत्पन्न करणा याका नाम प्रहास है । और सा लज्जा दुःखरूपही होवै है यातें जो पुरुष जिस पुरुषके द्वेषका विषय होवै है, सो पुरुषही तिस पुरुषके प्रहासका मुख्य विषय होवै है । और अर्जुन तौ भगवान्के द्वेषका विषय है नहीं किंतु सो अर्जुन भगवान्के कृपाका विषय है और अर्जुनके अनुचित आचरणका जो प्रकाश करणा है सोभी ता अर्जुनकी लज्जाके उत्पत्तिका हेतु नहीं है किंतु सो अनुचित आचरणका प्रकाश ता अर्जुनके विवेकके उत्पत्तिका हेतु है यातें अर्जुनविषे सो प्रहास गौण है मुख्य नहीं । तात्पर्य यह । जैसे कोई पुरुष अपणे शत्रुके लज्जाकी उत्पत्ति करणे वासतै ताके अनुचित आचरणका प्रकाश करै है तैसे सो श्रीकृष्णभगवान्भी अर्जुनके विवेककी उत्पत्ति करणे वासतें ता अर्जुनके अनुचित आचरणकूं प्रकाश करता भया और लज्जाकी उत्पत्ति तौ अनुचित आचरणके प्रकाशतें अनंतर अवश्यही होवैं है यातैं सा लज्जाकी उत्पत्ति होवो अथवा नहीं होवो परंतु ता लज्जाकी उत्पत्ति करणेविषे भगवान्का तात्पर्य नहीं है केवल विवेककी उत्पत्तिविषेही भगवान्का तात्पर्य है।या सर्व अर्थका इवशब्दकरिकै सूचन

करा । और (सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदंतं) यह जो अर्जुनका विशेषण कह्या है ताका यह अभिप्राय है, युद्धके आरंभतैं पूर्वही अपणे गृहविषे स्थित हुआ तूं जो कदाचित् युद्धकी उपेक्षा करता तौ यह तुम्हारा अनुचित आचरण नहीं कह्या जाता । परंतु तूं तौ महान् उत्साहपूर्वक इस युद्धभूमिविषे आइकै इस युद्धकी उपेक्षा करताभया है यातैं यह तुम्हारा बहुत अनुचित आचरण कह्या जावै है इति । यह वार्त्ता 'अशोच्यान्' इत्यादिक वचनोंविषे आगे स्पष्ट होवैगी ॥ १० ॥

तहां अर्जुनकी युद्धरूप स्वधर्मविषे पूर्वस्वभावतैं उत्पन्न हुईभी प्रवृत्ति दो प्रकारके मोहकरिकै तथा ता मोहजन्य शोककरिकै प्रतिबन्ध होती भई । यातैं पुनः या युद्धरूप स्वधर्मविषे अर्जुनकी प्रवृत्ति करावणेवासतै या अर्जुनका सो दो प्रकारका मोह अवश्यकरिकै दूर करणेकूं योग्य है तहां सर्व संसारधर्मौतैं रहितस्व प्रकाश परमानंदस्वरूप आत्माविषे स्थूल सूक्ष्म दोनों शरीर तिन दोनों शरीरोंका कारणरूप अविद्या या तिनों उपाधियोंके अविवेककरिकै जो मिथ्यारूप संसारविषे सत्यत्व तथा आत्मधर्मत्व आदिक प्रतीति है सो प्रथम मोह है सो मोह सर्व प्राणिमात्रविषे रहै है यातैं सो मोह साधारण है और युद्धरूप स्वधर्मविषे हिंसादिकोंकी बाहुल्यताकरिकै जो अधर्मत्वकी प्रतीति है सो दूसरा मोह है । यह दूसरा मोह करुणादिक दोषकरिके केवल अर्जुनकूंही प्राप्त भया है यातैं दूसरा मोह असाधारण है । तहां स्थूल सूक्ष्म कारण या तीन उपाधियोंके विवेककरिकै प्राप्त भया जो शुद्ध आत्मस्वरूपका बोध है सो बोध प्रथम मोहका निवर्तक है यातैं सो बोध सर्व प्राणीमात्रकूं साधारण है । और युद्धविषे यद्यपि हिंसादिक होवैं हैं तथापि सो युद्ध क्षत्रिय राजावोंका स्वधर्म है यातैं ता युद्धविषे अधर्मरूपता नहीं है या प्रकारका जो बोध है सो बोध दूसरे मोहका निवर्तक है यह दूसरा बोध केवल अर्जुनके प्रतिही है यातैं यह दूसरा बोध असाधारण है इस प्रकार दो प्रकारके बोधकरिकै जबी दो प्रकारके मोहकी निवृत्ति होवै है तबी ता मोहरूप

कारणके निवृत्ति हुएतैं अनंतर ताके शोकरूप कार्यकी आपही निवृत्ति होइ जावै है । ता शोककी निवृत्तिविषे किसी दूसरे साधनकी अपेक्षा होवै नहीं । या प्रकारके अभिप्रायकरिकै सो श्रीकृष्णभगवान् ता दोनों प्रकारके मोहका कथन करता हुआ ता अर्जुनके प्रति कहै है-

श्रीभगवानुवाच ।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ॥
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचंति पंडिताः ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) अशोच्यान् । अन्वशोचः । त्वम् । प्रज्ञावादान् । च । भाषसे । गतासून् । अगतासून् । च । न । अनुशोचंति । पंडिताः ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! शोक करणेके अयोग्य भीष्मद्रोणादिकोंकूं तूं शोक करता है तथा बुद्धिमान् पुरुषोंकरिकै नहीं कहणे योग्य वचनोंकूं तूं कथन करता है और पंडित पुरुष तौ प्राणोंतैं रहित बांधवोंकूं तथा प्राणयुक्त बांधवोंकूं नहीं शोक करते ॥ ११ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! आत्मदृष्टिकरिकै तथा शरीरदृष्टिकरिकै शोक करणेके योग्य नहीं जो यह भीष्मद्रोणादिक हैं तिन्होंका तूं पंडित होइकैभी शोक करता है ते भीष्मद्रोणादिक हमारे निमित्त मृत्युकूं प्राप्त होते हैं । तिन भीष्मद्रोणादिकोंतै विना मैं राज्यसुखादिकोंकूं क्या करौंगा या प्रकारका शोक (दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण) इत्यादिक वचनोंकरिकै तूं करता भया है सो शोक करणा तुम्हारेकूं उचित नहीं हैं। काहेतैं शोक करणेके अयोग्य पदार्थोंविषे शोचत्वबुद्धिरूप भ्रम पशु पक्षी आदिक सर्व प्राणिमात्रविषे साधारण है और तूं तौ अत्यंत पंडित होइकैभी तिस भ्रमकूं प्राप्त भया है यातैं तुम्हारेकूं यह भ्रम होणा अत्यंत अनुचित है । और (कुतस्त्वा कश्मलमिदं) इत्यादिक मेरे वचनोंकरिकै तुम्हारेकूं यह हमनें बहुत

अनुचित करा है या प्रकारके विचारकी प्राप्ति होणी चाहती थी और तूं आपभी बुद्धिमान् है ऐसा बुद्धिमान् हुआभी तूं बुद्धिमान् पुरुषोंकरिकै नहीं कहणे योग्य (कथं भीष्ममहं संख्ये) इत्यादिक वचनोंकूं कथन करता है परन्तु लज्जाकरिकै तूष्णीभावकूं तूं प्राप्त होता नहीं इसतैं: परे दूसरा क्या अनुचित व्यवहार होवै है यातैं युद्धतैं निवृत्तिरूप अधर्मविषे जो धर्मत्व बुद्धिरूप भ्रांति है तथा युद्धरूप धर्मविषे जो अधर्मत्वबुद्धिरूप भ्रांति है सा असाधारण भ्रांतिः तै अत्यंत पंडितकूं उचित नहीं है । अथवा (प्रज्ञावादांश्च भाषसे) या वचनका यह अर्थ करणा देहतैं भिन्न करिकै आत्माकूं जानणेहारे जो प्रज्ञावान् पुरुष हैं तिन प्रज्ञावान् पुरुषोंके (नरके नियतं वासः, पतंति पितरो ह्येषां) इत्यादिक वचनमात्रोंकूंही तूं कथन करता है परन्तु तिन प्रज्ञावान् पुरुषोंकी न्याई तिन वचनोंके यथार्थ तात्पर्यकूं तूं जाणता नहीं । जो तूं शास्त्रके वचनोंका यथार्थ तात्पर्य जाणता तौ तूं शोकमोहकूं प्राप्त नहीं होता । शंका—हे भगवन् ! वसिष्ठादिक जो महान् पुरुष हुए हैं तिनोंनैंभी अपणे पुत्रादिक बांधवोंके मरणेकरिकै महान् शोक करा है यातैं अपणे बांधवोंके मरणेविषे शोक करणा अनुचित नहीं है किंतु शिष्टाचारकरिकै प्राप्त होणेतैं सो शोक करणा उचित है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए भगवान् कहैं हैं । (गतासूनिति) हे अर्जुन ! विचार करिकै उत्पन्न भया है आत्माके वास्तव स्वरूपका ज्ञान जिन्होंकूं ऐसे जो पंडित हैं ते पंडित पुरुष प्राणोंतैं रहित बांधवोंके शरीरोंका तथा प्राणयुक्त बांधवोंके शरीरोंका शोक करते नहीं । तात्पर्य यह । मृत्युके प्राप्त हुए यह हमारे बांधव सर्व पदार्थोंका परित्याग करिकै जाते भये हैं ते हमारे बांधव अबी क्या करते होवैंगे तथा किस स्थानविषे स्थित होवैंगे । और यह जीवते हुए हमारे बांधव तिन मरे हुए संबंधियोंके वियोगकरिकै कैसे जीवैंगे । या प्रकारके व्यामो-

हकूं ते पंडित पुरुष प्राप्त होवे नहीं काहेतै तिन ब्रह्मवेत्ता पंडित पुरुषोंकूं समाधिकालविषे तौ तिन बांधवोंकी प्रतीतिही नही होवै है और समाधितै उत्थानकालविषे यद्यपि तिन ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंकूं बांधवोंकी प्रतीति होवै है तथा वे ब्रह्मवेत्ता पुरुष ता व्युत्थानकाल विषे तिन बांधवोंकूं मिथ्यारूप करिकैं निश्चय करै है । और जैसे रज्जुरूप अधिष्ठानके साक्षात्कारकरिकै सर्पभ्रमके निवृत्त हुएतैं अनंतर ता सर्पभ्रमजन्य भयकंपादिक आपही निवृत्त होइ जावै है। और जैसे पित्तदोषयुक्त रसनाइंद्रियवाले पुरुषकूं कदाचित् गुडविषे तिक्त रसकी प्रतीति हुएभी ता गुडविषे मधुररसके निश्चय बलवान् होणेतैं तिक्त रसकी इच्छा करिकै ता पुरुषकी गुडविषे प्रवृत्ति होवै नहीं तैसे शोकके अविषय पदार्थोंविषे जो शोचत्वबुद्धिरूप भ्रम है सो भ्रमभी अधिष्ठान आत्माके अज्ञानकरिकै करा हुआ है । जबी अधिष्ठान आत्माके साक्षात्कारकरिकै ता अज्ञानकी निवृत्ति होवै है तबी ता अज्ञानका कार्यरूप शोचत्वभ्रम आपही निवृत्ति होइ जावै है और वसिष्ठादिक महान् पुरुषोंनै प्रारब्धकर्मकी प्रबलतातै जो शोकमोहादिक करे है ते शोकमोहादिक शिष्टाचाररूप करिकै ग्रहण करे जावै नहीं। काहेतैं शिष्ट पुरुषनै धर्मबुद्धिकरिकै अनुष्ठान करा जो अलौकिक व्यवहार है सोईही शिष्टाचार कह्या जावै है यह शिष्टाचारका लक्षण तिन वसिष्ठादिकोंके शोकमोहादिकोंविषे घटता नहीं काहेतै ते शोकमोहादिक पशु पक्षी आदिक सर्व प्राणियोंविषे स्वभावतैही प्राप्त हैं यातै तिन्होंविषे अलौकिकरूपता संभवै नही और तिन वसिष्ठादिकोंनै कोई धर्मबुद्धि करिकै शोकमोहादिक करे नहीं यातै तिन शोकमोहादिकोंविषे शिष्टाचाररूपता संभवै नहीं और या प्रकारके शिष्टाचारके लक्षणका परित्यागकरिकै जो सामान्यतै शिष्ट पुरुषोंके व्यवहारमात्रकूंही प्रमाण मानिये तौ शिष्ट पुरुषोंकी जो मलमूत्रादिकोंका परित्यागरूप स्वाभाविक चेष्टा है सा स्वाभाविक चेष्टाभी

शिष्टाचाररूपकरिकै ग्रहण करी चाहिये । और वा स्वाभाविक चेष्टाकूं कोई भी बुद्धिमान् पुरुष शिष्टाचाररूपकरिकै ग्रहण करता नहीं यातैं वसिष्ठादिकोंके शोकमोहकूं देखिकरिकै तुम्हारेकूं शोकमोह करणा योग्य नहीं है ॥ ११ ॥

अब (नत्वेवाहं) इत्यादिक ओगणीस १९ श्लोकोंकरिकै (अशोच्यानन्वशोचस्त्वं) इस वचनका अर्थ विस्तारतैं निरूपण करैं हैं । और तिसतैं अनंतर (स्वधर्ममपि चावेक्ष्य) इत्यादिक अष्ट श्लोकोंकरिकै (प्रज्ञावादांश्च भाषसे) इस वचनका अर्थ विस्तारतैं निरूपण करैंगे काहेतैं साधारण असाधारण यह पूर्व उक्त दो प्रकारका मोह भिन्न भिन्न प्रयत्नकरिकैही निवृत्त होवै है एक प्रयत्नकरिकै निवृत्त होवै नहीं । तहां स्थूल शरीरतैं आत्माका भेद सिद्ध करणेवासतैं प्रथम आत्माविषे नित्यत्व सिद्ध करैं हैं–

नत्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ॥
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥ १२ ॥

(पदच्छेदः) न । तु । एव । अहम् । जातु । न । आसम् । न । त्वम् । न । इमे । जनाधिपाः । न । च । एव । न । भविष्यामः । सर्वे । वयम् । अतः । परम् ॥ १२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं कृष्ण भगवान् इसतैं पूर्व कदाचित्भी नहीं होता भया हूं यह नहीं कह्या जावै है तथा तूं अर्जुन इसतैं पूर्व कदाचित्भी नहीं होता भया है यहभी नहीं कहा जावै है । तथा यह सर्व राजे इसतैं पूर्व कदाचित्भी नहीं होते भये हैं यहभी नहीं कह्या जावै है किंतु मैं तूं यह सर्व राजे पूर्व होतेही भये हैं तथा इसतैं आगे हम सर्व नहीं होवैंगे यहभी नहीं कह्या जावै है किंतु हम सर्व आगेभी होवैंगे ॥ १२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जैसे सर्व जगत्का कारण मैं कृष्णभगवान् इसतैं पूर्व कदाचित्भी नहीं होता भया हूं यह कह्या जावै नहीं किंतु इसतैं पूर्वभी मैं होता भया हूं तैसे तूं अर्जुन तथा यह भीष्मद्रोणादिक सर्व राजे इसतैं पूर्व कदाचित्भी नहीं होवे भये हैं यह कह्या जावै नहीं किंतु तूं अर्जुन तथा यह भीष्मद्रोणादिक सर्व राजे इसतैं पूर्वभी होते भये हैं। इतने कहणेकरिकै आत्माविषे प्रागभावका अप्रतियोगीपणा दिखाया। और मैं कृष्णभगवान् तथा तूं अर्जुन तथा यह भीष्मद्रोणादिक सर्व राजे इसतैं आगे कदाचित्भी नहीं होवैंगे यह कह्या जावै नहीं किंतु इसतैं आगेभी हम सर्व होवैंगेही। इतने कहणेकरिकै आत्माविषे प्रध्वंसाभावका अप्रतियोगीपणा दिखाया या कहणेतैं यह अर्थ सिद्ध भया भूतकालविषे तथा भविष्यत् कालविषे तथा वर्त्तमानकालविषे जो विद्यमान होवै है ताकूं नित्य कहैं हैं यह नित्यका लक्षण आत्माविषेही घटै है। या स्थूल देहविषे घटता नहीं यातैं यह आत्माही नित्य होणेतैं यह आत्मा स्थूल शरीरतैं विलक्षणही सिद्ध होवै है। इसी विलक्षणताकूं (नत्वेवाहं) या वचनविषै स्थित तु या शब्दकरिकै सूचन करा है इति ॥ १२ ॥

हे भगवन् ! चेतनता धर्मकरिकै विशिष्ट जो यह स्थूल देह है सो स्थूल देहही आत्मा है या प्रकार चार्वाक नास्तिक मानैं हैं। या स्थूल देहकूं आत्मा मानणेमैं तिन्होंके मतविषे मैं स्थूल हूं मैं गौर हूं मैं चलता हूं इत्यादिक ज्ञानोंकी प्रामाण्यताभी बाधतै रहित सिद्ध होवै है। या देहतैं जो आत्माकूं भिन्न मानिये तौ यह सर्व ज्ञान अप्रमाणरूप होवैंगे यातैं या स्थूल देहतैं आत्मा भिन्न नहीं है किंतु स्थूलत्व गौरत्व आदिक धर्मोवाला यह स्थूल देहही आत्मा है किंवा या स्थूल शरीरतैं जो आत्माकूं भिन्नभी अंगीकार करिये तौभी ता आत्माविषे जन्ममरणका अभाव संभवै नहीं काहेतैं देवदत्तनामा पुरुष जन्मकूं प्राप्त भया है तथा देवदत्तनामा पुरुष मरणकूं प्राप्त भया है या प्रकारकी प्रतीति

सर्व जनोंकूं होवै है यातैं देहके जन्मसाथि आत्माकाभी जन्म संभवै है तथा देहके मरणसाथि आत्माकाभी मरण संभवै है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहै हैं-

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ॥
तथा देहांतरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) देहिनः। अस्मिन्। यथा। देहे। कौमारम्। यौवनम्। जरा।तथा।देहांतरप्राप्तिः। धीरः। तत्र। न।मुह्यति १३॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जैसे देही आत्माकूं इस देहविषे कौमार यौवन जरा यह तीन अवस्था प्राप्त होवै हैं तैसे दूसरे देहकीभी प्राप्ति होवै है तिसविषे धीर पुरुष नहीं मोहकूं प्राप्त होवै है ॥ १३ ॥

भा० टी०-भूत, भविष्यत, वर्त्तमान या तीन कालोंविषे स्थित जितनेक जगत्मंडलवर्त्ती देह हैं ते सब देह जिसके होवै ताकूं देही कहै हैं सो एकही देही आत्मा विभु होणेतैं सर्व देहोंके साथि संबंधवाला है यातै ता एक चेतन आत्माकरिकैही सर्व शरीरोंविषे नाना प्रकारकी चेष्टा सिद्ध होइ सकै है। देह देहविषे आत्माके भेद मानणेमैं किंचित्मात्रभी प्रमाण नहीं है। या अर्थके सूचन करणेवासतैही (देहिनः) या पदविषे एकवचनका कथन करा है। और पूर्वश्लोकविषे जो (सर्वे वयं) यह बहुवचन कथन करा था ता बहुवचनका शरीरोंके भेदविषे तात्पर्य है कोई आत्माके भेदविषे ता बहुवचनका तात्पर्य नहीं है यातै पूर्वउत्तर वचनोंका विरोध होवै नहीं। ऐसे एक देही आत्माके जैसे इस वर्त्तमान स्थूलदेहविषे बाल्य अवस्था, यौवन अवस्था, वृद्ध अवस्था यह परस्पर विरुद्ध तीन अवस्था होवैं हैं तिन बाल्यादिक तीन अवस्थावोंके भेदक-करिकै ता देही आत्माका भेद होवै नहीं काहेतैं जो मैं पूर्व बाल्य अवस्था विषे अपणे माता पिताकूं अनुभव करता भया हूं सोइही मैं अभी वृद्ध अवस्थाविषे अपणे पुत्र पौत्रादिकोंका अनुभव करता हूं। या प्रत्यभिज्ञा-

ज्ञानके बलतें बाल्य अवस्थाके आत्माका तथा वृद्ध अवस्थाके आत्माका अभेदही सिद्ध होवै है। और बाल्य अवस्थाके शरीरका तथा वृद्ध अवस्थाके शरीरका भेद तौ सर्वकूं प्रत्यक्षही प्रतीत होवै है यातें देहके भेदकरिकै आत्माका भेद होवै नहीं। इसी प्रकार जन्मादिक विकारोंतें रहित आत्माकूं इस शरीरतें अत्यन्त विलक्षण शरीरकी प्राप्ति स्वप्नविषे तथा योगके प्रभावजन्य ऐश्वर्यविषे होवै हैं तहां तिस तिस देहोंके भेदकी प्रतीति हुएभी सोई ही मैं हूं या प्रकारके प्रत्यभिज्ञाज्ञानके बलतें आत्माकी एकताही सिद्ध होवै है। जो कदाचित् यह स्थूल देहही आत्मा होवै तौ बाल्य यौवनादिक अवस्थावोंके भेदकरिकै देहके भेद सिद्ध हुए सोई मैं हूं या प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञान नहीं होणा चाहिये। काहेतें अन्यविषे रहे हुए संस्कार अन्य पुरुषके प्रत्यभिज्ञाज्ञानके कारण होवैं नहीं किंतु एक अधिकरणविषे वर्त्तमान हुए संस्कारोंका तथा प्रत्यभिज्ञाज्ञानका परस्पर कारणकार्यभाव होवै है। किंवा बाल्य, यौवन, वृद्ध या तीन अवस्थावोंके भेद हुएभी तीन अवस्थारूप धर्मोंका आश्रय जो देह है सो देह बाल्य अवस्थातें लैके वृद्ध अवस्थापर्यंत एकही रहै है ता देहकी एकताकूंही सो प्रत्यभिज्ञाज्ञान विषय करै है। आत्माके एकताकूं सो प्रत्यभिज्ञाज्ञान विषय करै नहीं। या प्रकारका वचन जो सो चार्वाकादिकोंका है सो संभवै नहीं काहेतें स्वप्नविषे जाग्रत्के देहतें भिन्नही देह होवै है। और योगके प्रभावतें योगी पुरुष अनेक देहोंकूं रचै है। तहां धर्मीरूप देहोंकाही भेद है यातें तहां सोईही मैं हूं या प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञान नहीं होणा चाहिये। और सोईही मैं हूं या प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञान तौ स्वप्नद्रष्टा पुरुषकूं तथा योगी पुरुषकूं भी होवै है यातें देहोंकी एकताकूं सो प्रत्यभिज्ञाज्ञान विषय करै नहीं। इसी अभिप्रायकरिकै बाल्यादिक अवस्था तथा स्वप्नद्रष्टा योगी पुरुषके देह यह दो प्रकारके दृष्टान्त दिये हैं यातें जैसे मरुमरीचिकादिकोंविषे जलादिकोंकी बुद्धि भ्रान्तिरूप होवै है तैसे मैं स्थूल हूं मैं गौर हूं मैं चलता हूं इत्यादिक बुद्धियांभी

भ्रांतिरूपही है काहेतें अधिष्ठान वस्तुके ज्ञानतें तिन दोनों बुद्धियोंका बाध होइ जावै है । जिसका अधिष्ठानके ज्ञानकरिकै बाध होवै है सो भ्रान्तिही होवै है। यह वार्त्ता (न जायते) इत्यादिक वचनोंविषे आगे स्पष्ट होवैगी ! इतने कहणेकरिकै देहतैं भिन्न हुआभी आत्मा ता देहके उत्पन्न हुए ता देहके साथि उत्पन्न होवै है तथा देहके नाश हुए ता देहके साथि नाश होवै है यह वादीका पक्षभी खंडन हुआ जानणा काहेतै ता " पक्षविषे यद्यपि बाल्य यौवनादिक अवस्थावोंके भेद हुएभी सोईही मैं हूं या प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञान धर्मीरूप देहकी एकताकूं लैकै संभव होइसके है तथापि जिस स्वप्नविषे तथा योग्यजन्य ऐश्वर्यविषे धर्मीरूप देहोंकाही भेद होवै है । तिस स्थलविषे सोईही मैं हूं इस प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञान ता वादीके मतविषे नहीं संभवैगा । और तहांभी सो प्रत्यभिज्ञाज्ञान तौ होवै है यातैं देहके उत्पत्तिनाशके साथि आत्माका उत्पत्तिनाश मानणा अत्यन्त विरुद्ध है अथवा (देहिनोस्मिन्) या श्लोकका यह दूसरा अर्थ करणा । जैसे जन्मादिक विकारोंतैं रहित एकही आत्माकूं कौमारादिक तीन अवस्थावोंकी प्राप्ति होवै है तैसे इस देहतैं प्राणोंके उत्क्रमणतै अनन्तर दूसरे देहकी प्राप्ति होवै है । तहां जैसे बाल्यादिक अवस्थावोंकी प्रतिकालविषे सोईही मैं हूं या प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञान होवै है तैसे मरणतै अनन्तर दूसरे देहके प्राप्त हुए सोईही मैं हूं या प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञान होवै नहीं यातैं सोईही मैं हूं या प्रकारके प्रत्यभिज्ञाज्ञानकरिकै यद्यपि तहां पूर्व उत्तर देहोंविषे आत्माकी एकता सिद्ध होवै नहीं तथापि युक्ति करके तहां आत्माकी एकता सिद्ध होई सकै है । सा युक्ति यह है मावाके उदरतें बाहिर निकस्या हुआ जो बालक है तिस बालककूं इसी कालविषे हर्ष, शोक, भय आदिकोंकी प्राप्ति होवै है तिन हर्षशोकादिकोंकी प्राप्तिविषे दूसरा तौ कोई कारण संभवता नहीं । किंतु केवल पूर्वजन्मके संस्कारही तिन हर्षशोकादिकोंके कारण हैं । जो कदाचित् पूर्वजन्मके संस्कार नहीं अंगिकार करिये तौ मावाके उदरतें बाहिर निकस्या जो बालक है ता

बालककी उसी कालविषे माताके स्तन्यपानादिकोंविषे प्रवृत्ति होवै है सा नहीं होणी चाहिये काहेतैं चेतन प्राणियोंकी जो जो प्रवृत्ति होवै है सा सा प्रवृत्ति यह वस्तु हमारे इष्टका साधन है या प्रकारके इष्टसाधनताज्ञान करिकै जन्य होवै है। इष्टसाधनताज्ञानतैं विना कोईभी प्रवृत्ति होवै नहीं यातैं बालककी जो माताके स्तन्यपानविषे प्रथम प्रवृत्ति है ता प्रवृत्तितैं पूर्व यह स्तन्यपान हमारे इष्टका साधन है या प्रकारका इष्टसाधनताज्ञान ता बालककूं अवश्य मान्या चाहिये। और ता जन्मविषे ता बालककूं सो इष्टसाधनताज्ञान अनुभवरूप तौ संभवता नहीं किंतु सो इष्टसाधनताज्ञान स्मृतिरूप मानणा होवैगा। और जो जो स्मृतिरूप ज्ञान होवै है सो सो पूर्व अनुभवजन्य संस्कारोंतैंही होवै हैं संस्कारोंतैं विना स्मृतिज्ञान होवै नहीं। यातैं ता बालककूं पूर्वजन्मोंविषे यह माताका स्तन्यपान हमारे क्षुधाकी निवृत्तिरूप इष्टका साधन है या प्रकारका अनुभव बहुतवार हुआ है तिन अनुभवजन्य संस्कारोंतैंही ता बालककूं जन्मकालविषे सो स्मरणरूप इष्टसाधनताज्ञान होवै है।यह अंगीकार करणा होवैगा। और ते संस्कारभी अनुबुद्ध हुए स्मृतिज्ञानकूं उत्पन्न करैं नहीं किंतु उद्बुद्ध हुएही ते संस्कार स्मृतिज्ञानकूं उत्पन्न करैं हैं। जो अनुबुद्ध संस्कारोंतैंभी वस्तुकी स्मृति होती होवै तौ सर्वकालविषे ता वस्तुकी स्मृति होणी चाहिये। यातैं जन्मकालविषे ता बालकके पूर्वजन्मके संस्कारोंका उद्बोधन करणेहारा पुण्यपापरूप अदृष्टतैं विना दूसरा कोई संभवता नहीं। किंतु जिन पूर्वजन्मोंके पुण्यपापरूप अदृष्टोंनैं यह वर्त्तमान शरीर दिया है। ते पुण्यपापरूप अदृष्टही ता जन्मकालविषे पूर्वजन्मके संस्कारोंकूं उद्बुद्ध करैं हैं। और ते पूर्वजन्मके संस्कार तथा पुण्यपापरूप अदृष्ट आत्मारूप आश्रयतैं विना स्वतंत्र रहैं नहीं यातैं पूर्वजन्मविषे आत्माकी विद्यमानता अंगीकार करी चाहिये। या प्रकारकी युक्तिकरिकैही पूर्व उत्तर शरीरविषे आत्माकी एकता सिद्ध होवै है इति। अथवा। (देहिनोस्मिन्) या श्लोकका यह तीसरा अर्थ करणा—जैसे तैं

एकही देह आत्माका क्रमतै देहके बाल्यादिक अवस्थावोंकी उत्पत्ति विनाश हुएभी नित्य होणेतै भेद नहीं होवै है तैसे विभु होणेतै एकही आत्माकूंएकही कालविषे सर्व देहोंकी प्राप्ति होवै है तहां आत्माकूं जो देहादिकोंकी न्याई मध्यम परिमाणवाला मानियें तौ आत्माविषेदेहादिकोंकीन्याई अनित्यता प्राप्त होवैगी और आत्माकूं जो अणुपरिमाणवाला मानियें तौ सर्व शरीरविषे व्यापक सुखदुःखकी प्रतीति नही होणी चाहिये तिन दोनों दोषोंकी निवृत्ति करणेवास्तै आत्माकूं विभु मान्या चाहिये। और सर्व शरीरोंविषे 'अहम् अस्मि अहम् अस्मि' या प्रकारकी एकाकार प्रतीति देखणेविषे आवै है। यातैं सर्व शरीरोंविषे तू एकही आत्मा व्यापक है। इस प्रकार सर्व शरीरोंविषे आत्माकी एकताके सिद्ध हुएभी यह भीष्मद्रोणादिक वध्य है और मैं अर्जुन इन्होंका घातक हूं या प्रकारकी भेदकल्पनाकूं करिकै जो तूं मोहकूं प्राप्त भया है ताकेविषे तुम्हारा अविद्वान्‌पणा ही हेतु है। और जो विद्वान् पुरुष सर्व शरीरोंविषे आत्माकी एकताकूं जानै है ते विद्वान् धीर पुरुष ताकेविषे मोहकूं प्राप्त होवै नही। काहेतैं मैं इन्होंका हनन करणेहारा हूं और हमारेकरिकै यह हनन होवैगे या प्रकारका भेददर्शन ता विद्वान् पुरुषकूं होता नहीं। या कहणेकरिकै भगवाननैं यह अनुमान सूचन करा, वादियोंके विवादका विषयरूप जो यह भीष्मद्रोणादिक सर्व देहहैं ते सर्व देह एक भोक्ता आत्मा वाले हैं देहत्व धर्मवाले होणेतैं तुम्हारे बाल्ययौवनादिक देहोंकी न्याईं, इति। तहां श्रुतिभी कहै है। "एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतांतरात्मा इति" अर्थ यह–एकही आत्मादेव सर्वभूतप्राणियोंविषे व्यापक है तथा काष्ठोंविषे अग्निकी न्याई गुह्य है। तथा सर्वभूतप्राणियोंका अन्तर आत्मा है इति। इतने कहणकरिकै आत्माविषे नित्यपणा तथा विभुपणा सिद्ध करा ताकरिकै इतने मत खंडन करे तहां चार्वाक नास्तिक तौ या स्थूल देहकूंही आत्मा मानैं हैं। और तिन चार्वाकोंके एकदेशियोंविषे कोईक तौ इंद्रियोंकूंही आत्मा मानैं हैं और कोईक मनकूंही आत्मा मानैं

हैं और कोईक प्राणोंकूंही आत्मा मानैं हैं और सौगत तौ क्षणिक विज्ञान कूंही आत्मा मानै हैं। और दिगम्बर तौ देहतैं भिन्न तथा स्थिर स्वभाववाला तथा देहके समान परिमाणवाला आत्माकूं मानैं हैं। और मध्यम परिमाणवालेविषे नित्यता संभवै नहीं यातैं नित्य तथा अणुपरिमाणवाला आत्मा है या प्रकार दिगम्बरोंके एकदेशी मानै हैं। सिद्धान्तमें आत्माकूं नित्य तथा विभु मानणेविषे ते सर्व मत खंडन होइ जावै हैं इति ॥१३॥

हे भगवन्! आत्मा नित्य है तथा विभु है या अर्थविषे तौ हम विवाद करते नहीं परन्तु सर्व देहोंविषे आत्मा एक है या अर्थकूं हम नहीं सहारि सकते हैं काहेतैं बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार या नव गुणोंवाला नित्य विभु आत्मा होवै है सो आत्मा शरीर शरीरविषे भिन्न भिन्न होवै है या प्रकार वैशेषिक अंगीकार करै हैं। इसीही पक्षकूं दूसरे तार्किक मीमांसक आदिकभी अंगीकार करै हैं। और आत्माकूं निर्गुण मानणेहारे *सांख्यशास्त्रवाले तौ आत्मा सुखदुःखादिक गुणोंवाला है या* अर्थविषे यद्यपि विवाद करै है तथापि शरीर शरीरविषे आत्मा भिन्न भिन्न है या अर्थ विषे ते सांख्यशास्त्रवालेभी विवाद करते नहीं। जो कदाचित् सर्व शरीरोंविषे एकही आत्मा अंगीकार करिये तौ एक शरीरविषे सुखकी प्राप्ति हुए सर्व शरीरोंविषे सुखकी प्राप्ति होणी चाहिये तथा एक शरीरविषे दुःखकी प्राप्ति हुए सर्व शरीरोंविषे दुःखकी प्राप्ति होणी चाहिये। और एक शरीरविषे सुखदुःखकी प्राप्ति हुए सर्व शरीरोंविषे सुखदुःखकी प्राप्ति देखणे विषे आवती नहीं यातैं शरीर शरीरविषे भिन्न भिन्न आत्मा मान्या चाहिये। इस प्रकार आत्माके भेद सिद्ध हुए भीष्मद्रोणादिकोंतैं भिन्न मैं आत्मा यद्यपि नित्य हूं तथा विभु हूं तथापि मै आत्मा सुखदुःखादिक गुणोंवाला हूं यातैं तिन भीष्मद्रोणादिक बांधवोंके देहके नाश हुए हमारेविषे सुखका वियोग तथा दुःखका संबंध अव-

श्वकरिकै होवैगा यातै हमारेकूं शोक मोह करना अनुचित नहीं है किंतु उचित है । इस प्रकारके अर्जुनके अभिप्रायकी शंकाकरिकै सो श्रीभगवान् लिंगदेहके विवेक करणे वासतै कहै हैं-

मात्रास्पर्शास्तु कौंतेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ॥
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥१४॥

(पदच्छेदः) मात्रास्पर्शाः । तु । कौंतेय । शीतोष्णसुखदुःखदाः । आगमापायिनः । अनित्याः । तान् ॥ तितिक्षस्व । भारत ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे कुंतीके पुत्र हे भरतवशंविषे उत्पन्न हुआ अर्जुन ! अनियतस्वभाववाळे जो इन्द्रियोंके विषयोंके साथि संबंध हैं ते उत्पत्तिनाशवान् अंतःकरणकूंही शीतउष्णकी प्राप्तिद्वारा सुखदुःखकी प्राप्ति करणेहारे हैं तिन्हांकूं तूं सहनकर ॥ १४ ॥

भा० टी ०-जिन्होंकारिकै विषय जाने जावैं है तिन्होंका नाम मात्रा है ऐसे नेत्रादिक इंद्रिय हैं नेत्रादिक इंद्रियोंकरिकैही रूपादिक विषय जाने जावें हैं तिन नेत्रादिक इंद्रियोंके जे रूपादिकविषयोंके साथि यथायोग्य संबंध हैं तिन्होंका नाम मात्रास्पर्श है । अथवा नेत्रादिक इंद्रियोंकरिकै जन्य जो तिस तिस विषयाकार अंतःकरणकी परिणामरूप वृत्तियां हैं तिन्होंका नाम मात्रास्पर्श है । अथवा कौषीतकिउपनिषद् विषे वागादिक दश इंद्रियोंकूं प्रज्ञामात्रा कहा है और नामादिक दश विषयोंकूं भूतमात्रा कहा है तिन वागादिक दश इंद्रियोंका तथा नामादिक दश विषयोंका इहां मात्राशब्दकरिकै ग्रहण करणा । तिन इंद्रियविषयरूप मात्रावोंके जो परस्पर विषयविषयीभावसंबंध हैं तिन्होंका नाम मात्रास्पर्श है । अथवा मात्रा यह तृतीयाविभक्त्यंत प्रमाताका वाचक भिन्न पद जानणा । ता प्रमाताके साथि जो विषय इंद्रियोंके संबध हैं तिनोंका नाम मात्रास्पर्श है । और आगम नाम उत्पत्तिका है और अपाय नाम नाशका है सो आगम तथा अपाय जिसका होवै ताका

नाम आगमापायी हैं ऐसे आगमापायी अंतःकरणकूंही ते मात्रास्पर्श शीतउष्णादिकोंकी प्राप्तिद्वारा सुखदुःखकी प्राप्ति करें हैं। सर्वत्र व्यापक नित्य आत्माकूं वे मात्रास्पर्श सुखदुःखकी प्राप्ति करैं नहीं काहेतें सो नित्य आत्मा निर्गुण है तथा निर्विकार है। तहां श्रुति। "साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च"। अर्थ यह—यह आत्मादेव सबका साक्षी है तथा चेतन है तथा अद्वितीय है तथा निर्गुण है तथा निष्क्रिय है इति। ऐसे निर्विकार नित्य आत्माकूं अनित्य अन्तःकरणके सुखदुःखादिक धर्मोंकी आश्रयता संभवै नहीं काहेतें धर्म और धर्मी या दोनोंका अभेदही होवै है अभेदतें विना दूसरा कोई तिन्होंका संबंध संभवता नहीं सो नित्य अनित्यका अभेद कहणा अत्यंत विरुद्ध है यातें ते सुखदुःखादिक आत्माके धर्म नहीं हैं। और सुखदुःखादिरूप साक्ष्य पदार्थोंविषे साक्षी आत्माका धर्मपणा कदाचित्भी संभवै नहीं यातें यह अर्थ सिद्ध भया। सुखदुःखादिक धर्मोंका आश्रय केवल अंतःकरणही है आत्मा तिन सुखदुःखादिक धर्मोंका आश्रय नहीं है सो अन्तःकरण शरीर शरीरविषे भिन्न भिन्न है ता अंतःकरणके भेदकूं अङ्गीकार करिकैही कोई सुखी है, कोई दुखी है इत्यादिक व्यवस्था संभव होइसकै है यातें सुखदुःखादिकोंकी व्यवस्थाके अनुपपत्तितें शरीरशरीरविषे आत्माका भेद मानणा अत्यंत असङ्गत है। किंवा सर्व जगत्का प्रकाश करणेहारा तथा जन्मादिक विकारोंतें रहित जो आत्मा है सो आत्मा सत्रूप करिकै तथा स्फुरणरूपकरिकै सर्व पदार्थोंविषे अनुगत हुआ प्रतीत होवै है यातें ता सत्तास्फुरणरूप आत्माके भेदविषे कोईभी प्रमाण नहीं है उलटा "एको देवः सर्वभूतेषु गूढः" इत्यादिक अनेक श्रुतियां आत्माके अभेदविषेही प्रमाण हैं। किंवा। सुखदुःखादिकोंकी उत्पत्तिविषे अंतःकरणकूं कारणता है। यह वार्ता नैयायिकोंकूं तथा सिद्धांतीकूं दोनोंकूं अंगीकार है। तहां नैयायिक तौ मनरूप अन्तःकरणकूं सुखदुःखादिक धर्मोंका निमित्तकारण मानैं हैं। और आत्माकूं सुखदुःखादिकोंका समवायिकारण मानैं हैं। और सिद्धां

तविषे अन्तःकरणकूंही सुखदुःखादिकोंका उपादानकारण मान्या है। तहां " साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च" इत्यादिक श्रुतियोंनैं आत्माकूं निर्गुण कह्या है यातैं निर्गुण आत्माविषे गुणकी समवायिकारणता कहणी श्रुतितै विरुद्ध है। और अन्तःकरणतें विना दूसरे किसी पदार्थविषे सुखदुःखादिकोंकी समवायिकारणता संभवै नहीं। और निमित्तकारणताकी अपेक्षा करिकै समवायिकारणता श्रेष्ठभी होवै है यातैं नैयायिकोंनैभी अन्तःकरणकूंही सुखदुखादिकोंका समवायिकारण मान्या चाहिये। किंवा। केवल युक्तिकरिकैही अन्तःकरणविषे सुखदुःखादिक धर्मोंकी उपादानकारणता सिद्ध नहीं है। किंतु श्रुतिप्रमाणकरिकैभी सिद्ध है। तहां श्रुति। " कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धा अश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं एवेति"। मन अर्थ यह–इच्छा, संकल्प, संशय, श्रद्धा, अश्रद्धा धैर्य, अधैर्य, लज्जा, वृत्तिज्ञान, भय यह सर्व मनरूपही हैं इति। यह श्रुति कामादिक विकारोंका मनके साथि अभेद कथन करती हुई मनकूं तिन कामादिक विकारोंका उपादानकारणत्व कथन करै है। ता श्रुतिविषे कामादिक विकार सुखदुःखादिक धर्मोंकेभी उपलक्षक है। और आत्माकूं तौ स्वप्रकाशज्ञान आनंदरूपताकरिकै अनेक श्रुतियोंनैं कथन करा है। यातैं आत्माकूं तिन सुखदुःखादिक धर्मोंकी आश्रयता संभवै नहीं यातैं नैयायिकादिकोंनैं जो आत्माविषे विकारीपणा तथा भेद अंगीकार करा है सो केवल भ्रांतिकरिकैं अंगीकार करा है हे अर्जुन! आगमापायी होणेतैं तथा दृश्य होणेतै नित्य द्रष्टा आत्मातै भिन्न जो यह अन्तःकरण है ता अंतःकरणविषे सुखदुःखकी उत्पत्ति करणेहारे जो मात्रास्पर्श हैं ते मात्रास्पर्श नियतस्वभाववाले नहीं है किंतु अनियतस्वभाववाले हैं काहेतैं एक कालविषे सुखकूं उत्पन्न करणेहारे जो शीतउष्णादिक हैं तेही शीत उष्णादिक अन्यकालविषे दुःखकूंही उत्पन्न करैं है। इसी प्रकार किसी कालविषे दुःखकूं उत्पन्न करणेहारे जो शीतउष्णादिक हैं तेही शीतउष्णादिक अन्यकालविषे सुखकूंही उत्पन्न करैं हैं। यातैं ते मात्रास्पर्श अनि-

यत स्वभाववाले हैं । इहां शीतउष्णका ग्रहण आध्यात्मिक आधिभौतिक, आधिदैविक या तीन प्रकारके सुखदुःखके ग्रहणकाभी उपलक्षक हैं । तहां ज्वरादिक व्याधियोंकरिकै अन्तःकरणविषे उत्पन्न भया जो दुःख है ताकूं आध्यात्मिक दुःख कहैं हैं। और सिंहसर्पादिक भूतोंकरिकै उत्पन्न भया जो दुःख है ताकूं आधिभौतिक दुःख कहै हैं । और जल अग्नि ग्रहादिकोंकरिकै उत्पन्न भया जो दुःख है ताकूं आधिदैविक दुःख कहैं हैं । इस प्रकार सुखकेभी तीन भेद जानि लेणे । यातें हे अर्जुन ! अत्यंत अस्थिर स्वभाववाले तथा ते निर्विकार आत्मातें भिन्न विकारी अंतःकरणकूं सुखदुःखकी प्राप्ति करणेहारे ऐसे जो भीष्मद्रोणादिकोंके संयोगवियोगरूप मात्रास्पर्श हैं तिन मात्रास्पर्शों कूं तूं सहन कर । तात्पर्ययह । यह मात्रास्पर्श में अविकारी आत्माकी किंचितमात्रभी हानि करवे नहीं या प्रकारके विवेककरिकै तूं तिन मात्रास्पर्शोंकी उपेक्षा कर । दुःखादिक धर्मवाले अंतःकरणके तादात्म्य अध्यास करिकै तूं अपणे आत्माकूं दुःखी मत मान यहही तिन मात्रास्पर्शोंका सहन है । इहां (हे कौंतेय हे भारत) या दोनों संबोधनोंकरिकै श्रीभगवान्नें अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन करा मातृकुल तथा पितृकुल या दोनों कुलोंकरिकै अत्यंत शुद्ध जो तूं अर्जुन है तिस तुम्हारेकूं या प्रकारका अज्ञान उचित नहीं है इति । और किसी टीकाविषे (आगमापायिनः) यह विशेषण मात्रास्पर्शोंकाही कथन करा है । आगमापायी होणेतें ते मात्रास्पर्श अनित्य हैं या प्रकार ताका अर्थ करा है । परन्तु इस व्याख्यानविषे (शीतोष्णसुखदुःखदाः) या वचनकरिकै कथन करी जो सुखदुःखकी प्राप्ति सा सुखदुःखकी प्राप्ति ते मात्रास्पर्श किसकूं करैं हैं या प्रकारकी जिज्ञासाके हुए अंतःकरणकूं सुखदुःखकी प्राप्ति करैं हैं या प्रकारके अर्थतें अंतःकरणका ग्रहण होवै है । और पूर्व व्याख्यानविषे (आगमापायिनः) यह शब्द अन्तःकरणकाही वाचक है यातैं ता शब्दतैंही अन्तःकरणकी प्राप्ति है ॥ १४ ॥

हे भगवन्! अंतःकरणकूं जो सुखदुःखका आश्रय अंगीकार करोगे तौतिस अंतःकरणकूंही कर्ताभोक्तापणेकी प्राप्तिकरिकै चेतनरूपता अंगीकार करणी होवैगी। ता अंतःकरणकूंही जबी चेतनरूपता सिद्ध हुई तबी ता अंतःकरणतैं भिन्न तथा ता अंतःकरणकूं प्रकाश करणेहारे भोक्ता आत्माविषे कोई प्रमाण है नहीं यातैं केवल नाममात्रविषे विवाद सिद्ध होवैगा तिन नामोंके अर्थविषे कोई विवाद होवेगा नहीं किसी वादीनैं तिसकूं अंतःकरण नाम-करिकै कथन करा। किसी वादीनैं तिसकूं आत्मा नाम करिकै कथन करा। और ता अंतःकरणतैं भिन्न जो चेतन आत्मा अंगीकार करोगे तौ वेदांतसिद्धांतविषे अंगीकार करी जो बंधमोक्ष दोनोंकी समानाधिकरणता है सा सिद्ध नहीं होवैगी किंतु ता बंधमोक्षता भिन्न भिन्न अधिकरण सिद्ध होवैगा। तहां सुखदुःखका आश्रय होणेतैं अंतःकरण तौ बंधका अधिकरण होवैगा और ता अंतःकरणतैं भिन्न आत्मा मोक्षका अधिकरण होवैगा ऐसी अर्जुनकी शंकाके निवृत्त करणे-वासतै श्रीभगवान् कहै हैं–

यं हि न व्यथयंत्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ॥
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १५ ॥

(पदच्छेदः) यम्। हि। न। व्यथयंति। एते। पुरुषम्। पुरुषर्षभ। समदुःखसुखम्। धीरम्। सः। अमृतत्वाय। कल्पते ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे पुरुषोंविषे श्रेष्ठ अर्जुन! समानें हैं दुःखसुख जिसकूं ऐसे जिस धीर पुरुषकूं यह मात्रास्पर्श जिस कारणतैं नहीं व्यथा करते तिस कारणतैं सो धीर पुरुष मोक्षकी प्राप्तिवासतै योग्य होवैहै ॥ १५ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन! "अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिर्भवति"। अर्थ यह-स्वप्न अवस्थाविषे सूर्यादिक ज्योतियोंके अभाव हुए यह आत्मा पुरुषही स्वयंज्योति है इति। या श्रुतिप्रमाणतैं स्वप्रकाशरूपकरिकै सिद्धजो चेतन आत्मा है सोचेतन आत्मा अपणे परिपूर्णरूपकरिकै सर्वशरीररूप पुरियोंविषे

निवास करैहै याकारणतै श्रुतिभगवती ता चेतन आत्माकूं पुरुष या नामकरिकै कंथन करै है। अथवा अष्ट पुरोंविषे जो निवास करै है ताका नाम पुरुष है ते अष्टपुर यह है। श्लोक–"कर्मेंद्रियाणि खलु पंच तथा पराणि ज्ञानेन्द्रियाणि मनआदिचतुष्टयं च॥ प्राणादिपंचकमथो वियदादिकं च कामश्च कर्म च तमः पुनरष्टमी पूः" इति। अर्थ यह–वागादिक पंच कर्मइन्द्रिय १ तथा श्रोत्रादिक पंच ज्ञानइन्द्रिय २ तथा मन आदिक अंतःकरणचारि ३ तथा प्राणादिक पंचप्राण ४ तथा आकाशादिक पंचभूत ५ तथा काम ६ तथा कर्म ७ तथा तम ८ या अष्टोंका नाम पुर है। इहां तम शब्दकरिकै कारण अज्ञान ग्रहण करणा इति। तहां श्रुति। "स वायं पुरुषः सर्वासु पूर्षु परिवाशयः" अर्थ यह–यह चेतन आत्मा शरीरादिरूप सर्व पुरियोंविषे निवास करता हुआ पुरुष संज्ञाकूं प्राप्त होवै है इति। ऐसे स्वयंज्योति आत्माकूं अनात्म अंतःकरणके धर्मरूपकरिकै तथा दृश्यरूपकरिकै यह दुःखसुख समान नहीं है या कारणतै ता आत्माकूं समदुःखसुख कहै है। इहां दुःखसुखका ग्रहण पूर्व उक्त अंतःकरणके कामसंकल्पादिक सर्व धर्मोंका उपलक्षक है तहां श्रुति। "एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य न वर्धते कर्मणा नो कनीयान्"। अर्थ यह–ब्रह्मरूप ब्राह्मणका यह नित्य महिमा है जो पुण्यकर्मकरिकै सुखरूप वृद्धिकूं नहीं प्राप्त होवै है। और पापकर्मकरिकै दुःखरूप कनिष्ठताकूं नहीं प्राप्त होवै है इति। या श्रुतिनै आत्माविषे सुख दुःख दोनो धर्मोंका निषेध करा है। ता करिकै काम संकल्पादिक सर्व धर्मोंका निषेधभी जानि लेणा। और सो स्वयंज्योति आत्मा अपणे चिदाभास द्वारा बुद्धिके साथि तादात्म्य अध्यासकूं प्राप्त होइकै ता बुद्धिकूं शुभ अशुभ कार्य विषे प्रेरणा करै है यातै ता बुद्धिके प्रेरक साक्षी आत्माकूं धीर या नामकरिकै कथन करै है। "धियमीरयतीति धीरः इति"। तहां श्रुति। "सधीः स्वप्नो भूत्वेमं लोकमतिक्रामति"। अर्थ यह–बुद्धिरूप उपाधिवाला यह आत्मादेव स्वप्नकूं प्राप्त होइकै इस जाग्रत्का परि-

त्याग करै है इति इतने कहणेकरिकै आत्माविषे बंधकी प्रसक्ति दिखाई। जिस अधिकरणविषे जो वस्तु स्वभावतैं होवै नहीं तिस अधिकरणविषे तिस वस्तुका आरोप करणा याका नाम प्रसक्ति है । यह वार्त्ता दूसरे शास्त्रविषेभी कथन करी है । तहां श्लोक । "यतो मानानि सिध्यंति जाग्रदादित्रयं तथा । भावाभावविभागश्च स ब्रह्मास्मीति बोध्यते" । अर्थ यह—जिस स्वयंज्योति आत्मातैं प्रत्यक्षादिक सर्व प्रमाण सिद्ध होवैं हैं तथा जाग्रदादिक तीन अवस्था सिद्ध होवैं हैं तथा यह भावपदार्थ है यह अभाव है इत्यादिक भेद सिद्ध होवैं हैं सो साक्षी आत्माही "ब्रह्मास्मि" इत्यादिक महावाक्योंने बोधन करा है इति । ऐसे सम दुःखसुख धीर-पुरुषकूं पूर्व उक्त सुखदुःखके देणेहारे मात्रास्पर्श जिस कारणतैं वास्तवतैं व्यथाकी प्राप्ति करते नहीं काहेतैं सो स्वयंज्योति पुरुष सर्व विकारोंका प्रकाशक होणेतैं तिन विकारोंके योग्य नहीं है । तहां श्रुति । "सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः । एकस्तथा सर्वभूतांत-रात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्य इति"।अर्थ यह—जैसे सर्व लोकोंका चक्षु जो सूर्य भगवान् है सो सूर्यभगवान् चक्षुके विषय बाह्य दोषों करिकै लिपायमान होवै नहीं तैसे एक अद्वितीयरूप सर्वभूतोंका अन्तरआत्मा बाह्य लोकदुःखोंकरिकै लिपायमान होवै नहीं इति । इस कारणतैं सो धीर पुरुष अपणे स्वरूपभूत ब्रह्मात्माके एकताज्ञानकरिकै सर्व दुःखोंके उपदानकारणरूप अज्ञानकी निवृत्तिपूर्वक अद्वितीय स्वप्रकाश परमानन्द-रूप मोक्षकी प्राप्तिवासतै योग्य होवै है। जो कदाचित् यह स्वयंज्योति आत्मा आरोपित बंधका आश्रय नहीं होवै किंतु स्वाभाविक बंधका आश्रय होवै तौ धर्मीकी निवृत्तितैं विना स्वाभाविक धर्मोंकी निवृत्ति होवै नहीं । जैसे अग्निरूप धर्मीकी निवृत्तितैं विना ताके उष्णादिक स्वाभाविक धर्मोंकी निवृत्ति होवै नहीं तैसे आत्मारूप धर्मीकी निवृत्तितैं विना ता स्वा-भाविक बंधरूप धर्मकी कदाचित्भी निवृत्ति नहीं होवैगी । और आत्मा तौ नित्य है यातैं ता आत्माकी कदाचित्भी निवृत्ति संभवै नहीं यातैं

आत्मा कदाचित्‌भी मुक्त नहीं होवैगा। यह वार्ता अन्य शास्त्रविषे भी कथन करी है। तहां श्लोक। "आत्मा कर्त्रादिरूपश्चेन्मा कांक्षीस्तर्हि मुक्तताम्। नहि स्वभावो भावानां व्यावर्तेतौष्ण्यवद्रवेः"। अर्थ यह—आत्मा जो कदाचित् स्वभावतैंही कर्तृत्वभोक्तृत्वादिरूप बंधवाला होवै तौ हे शिष्य तूं मुक्तपणेकी इच्छा मत कर काहेतें भावपदार्थोंका जो स्वाभाविक धर्म होवै है सो धर्म ता भावपदार्थरूप धर्मीकी निवृत्तितें विना कदाचित्‌भी निवृत्त होवै नहीं। जैसे सूर्यका स्वाभाविक धर्म जो उष्णता है सो उष्णतारूप धर्म सूर्यरूप धर्मीकी निवृत्तितें विना निवृत्त होवै नहीं इति। किंवा आत्माविषे स्वाभाविक बंधके अंगीकार किये किसीकूंभी मोक्षकी प्राप्ति नहीं होवैगी। सो यह वार्ता "विमुक्तश्च विमुच्यते ज्ञानादेव तु कैवल्यम्" इत्यादिक ज्ञानतैं मोक्षकी प्राप्तिकूं कथन करणेहारी अनेक श्रुतियोंतैंभी विरुद्ध है। शंका आत्माविषे जो कदाचित् स्वाभाविक बंध हम अंगीकार करैं तौ यह पूर्व उक्त दोष हमारेकूं प्राप्त होवै परंतु ता आत्माविषे सो बंध हम स्वाभाविक अंगीकार करते नहीं किंतु ता आत्माविषे बुद्धि आदिक उपाधिकृत बंध है। तहां श्रुति। "आत्मेंद्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः"। अर्थ यह—इंद्रियमनरूप उपाधिकरिकै युक्त आत्मा भोक्ता होवै है या प्रकार बुद्धिमान् पुरुष कथन करैं हैं इति। इस प्रकार आत्मा विषे उपाधिकृत बंधके अंगीकार किये हुए आत्मारूप धर्मीके विद्यमान हुएभी ता औपाधिक बंधकी निवृत्ति करिकै मुक्तिकी प्राप्ति होइ सकै है। समाधान—हे वादी! या तुम्हारे कहणेकरिकै यह अर्थ सिद्ध होवै है जो वस्तु अपणे धर्मोंकूं अन्य वस्तुविषे स्थितरूप करिकै प्रतीत करावै है ता वस्तुका नाम उपाधि है। जैसे रक्तवर्णवाला जपाकुसुम अपणे रक्तवर्णकूं समीपवर्ति स्फटिकमणिविषे स्थित रूपकरिकै प्रतीत करावै है यातैं ता जपाकुसुमकूं उपाधि कहैं हैं तैसे यह बुद्धि आदिकभी अपणे सुखदुःखादिक धर्मोंकूं आत्माविषे स्थितरूप करिकै प्रतीत करावै है यातैं यह बुद्धि आदिकभी उपाधि हैं। और जो धर्म उपाधिकृत होवै है सो धर्म असत्यही

होवै है । जैसे जपाकुसुमरूप उपाधिकृत जो स्फटिकमणिविषे रक्तता है सा रक्तता असत्यही है तैसे बुद्धि आदिक उपाधिकृत जो आत्माविषे कर्तृत्वभोक्तृत्वादिक बंध है सो बंधभी असत्यही होवैगा । इस प्रकार बंधविषे औपाधिकता मानि करिकै असत्यरूपताकूं अंगीकार करणेहारा तूं वादी हमारे सिद्धान्तरूप मार्गविषे प्राप्त भया है यातैं तूं हमारे अनुकूल है प्रतिकूल नहीं यातैं यह अर्थ सिद्ध भया वास्तवतैं कर्तृत्वभोक्तृत्वादिक सर्व संसारधर्मोंके संबंधतैं रहित आत्माविषेभी अंतःकरणादिक उपाधिके वशतैं जो तिन संसारधर्मोंके संबंधकी प्रतीति है यह ही आत्माविषे बंध है और अपणे वास्तव स्वरूपके ज्ञान करिकै जबी अपणे स्वरूपके अज्ञानकी निवृत्ति होवै है तथा ता अज्ञानके कार्यरूप बुद्धि आदिक उपाधियोंकी निवृत्ति होवै है तथा ता उपाधिकृत सर्वभ्रमकी निवृत्ति होवै है तबी सर्व दृश्यप्रपंचके संबंधतैं रहित होणेतैं शुद्धरूप तथा स्वप्रकाश परमानन्दरूपताकरिकै सर्वत्र परिपूर्णरूप जो आत्मा है ता आत्मादेवका स्वतःही कैवल्यरूप मोक्ष होवै है । यातैं बंध मोक्ष या दोनोंका भिन्न भिन्न अधिकरण नहीं है किंतु एकही आत्मा दोनोंका अधिकरण है । या कहणेतैं अन्तःकरण आत्मा या प्रकारके नाममात्रविषेही विवाद है । तिन दोनों नामोंका अर्थ एकही है । यह जो पूर्ववादीनैं कहा था सोभी खंडन हुआ जानणा काहेतैं प्रकाश्य और प्रकाशक या दोनोंकी एकता संभवै नहीं । जैसे प्रकाश्य जो घटादिक पदार्थ हैं तथा प्रकाशक जो दीपकादिक हैं तिन दोनोंकी एकता संभवै नहीं वैसे प्रकाश्यरूप जो अंतःकरणादिक हैं तथा प्रकाशक जो साक्षी आत्मा है तिन दोनोंकीभी एकता सम्भवै नहीं किंतु प्रकाश्य पदार्थ प्रकाशकतैं भिन्नही होवै है जो कदाचित् एकही पदार्थकूं प्रकाश्यरूप तथा प्रकाशकरूप मानिये तौ एकही पदार्थविषे प्रकाशरूप क्रियाका कर्तापणा तथा कर्मपणा प्राप्त होवैगा सो अत्यन्त विरुद्ध है । एकही वस्तुविषे एक क्रियानिरूपित कर्तापणा तथा कर्मपणा कहांभी देखणेविषे आवता नहीं । शंका—एकही वस्तुविषे जो प्रकाश्यता तथा प्रका-

शकता नहीं होवै तौ आत्माविषेभी सा प्रकाश्यता तथा प्रकाशकता कैसे सम्भवैगी। समाधान-स्वयंज्योति आत्माविषे हम केवल प्रकाशकताही अंगीकार करते हैं। घटादिक पदार्थोंकी न्याई आत्माविषे प्रकाश्यता हम अंगीकार करते नहीं। और आत्माविषे जो अंतःकरणादिकोंका प्रकाशकपणा है सो स्वप्रकाशज्ञानरूपतातैं भिन्न नहीं है किंतु सो प्रकाशकपणा स्वप्रकाश ज्ञानरूपताही है। ऐसा प्रकाशकपणा आत्मातैं भिन्न अंतःकरणादिकोंविषे संभवता नहीं। शंका—बुद्धिकी वृत्तियोंतैं भिन्न दूसरा कोई ज्ञान है नहीं यातैं बुद्धिकी वृत्तियांही ज्ञानरूप हैं। समाधान—ज्ञान सर्व देशविषे तथा सर्व कालविषे अनुगत है तथा भेद करणेहारे धर्मोंतैं रहित है यातैं सो ज्ञान विभु है तथा नित्य है तथा एक है। और बुद्धिका परिणामरूप वृत्तियां तौ परिच्छिन्न हैं तथा अनित्य हैं तथा अनेक हैं। ऐसे विभु नित्य एक ज्ञानकूं परिच्छिन्न अनित्य अनेक वृत्तिरूपता संभवै नहीं। शंका—ज्ञानकूं जो नित्य तथा एक अंगीकार करौगे तौ हमारेविषे पूर्वला घटज्ञान नाश हुआ है और अबी पटज्ञान उत्पन्न भया है या प्रकारकी प्रतीति ज्ञानके उत्पत्तिनाशकूं तथा भेदकूं विषय करणेहारी असंगत होवैगी। समाधान—सा प्रतीति ज्ञानके उत्पत्तिनाशकूं विषय करती नहीं किंतु ता साक्षीआत्मारूप ज्ञानका जो घटादिक विषयोंके साथि वृत्तिद्वारा संबंध है ता संबंधके उत्पत्तिनाशादिकोंकूं सा प्रतीति विषय करै है। जो ऐसा नहीं अंगीकार करिये तौ तिस तिस ज्ञानकी उत्पत्ति तथा नाश तथा भेद आदिकोंकी कल्पना करणेविषे अत्यंत गौरवदोषकी प्राप्ति होवैगी यातैं सो साक्षी आत्मारूप ज्ञान नित्य है तथा विभु है तथा एक अद्वितीयरूप है। तहां श्रुति। " नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात् आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः महदद्भुतमनंतमपारं विज्ञानघन एव तदेव ब्रह्मपूर्वमनपरमनंतरमबाह्यमयमात्मा ब्रह्मसर्वानुभूरिति "। अर्थ यह—द्रष्टा आत्माका स्वरूपभूत जो ज्ञानरूप दृष्टि सा दृष्टि नाशतैं रहित है यातैं ता दृष्टिका किसी अवस्थाविषे

अभाव होवै नहीं । और यह ज्ञानस्वरूप आत्मा आकाशकी न्याईं सर्वत्र व्यापक है तथा नित्य है । और यह ज्ञानस्वरूप आत्मा महान्रूप है तथा अनंत है तथा अपार है तथा विज्ञानघन है । और यह ज्ञानस्वरूप ब्रह्म कारणतें रहित है तथा कार्यतें रहित तथा अंतरपणेतें रहित है तथा बाह्यपणेतें रहित है यह ज्ञानस्वरूप आत्मा ब्रह्मरूप है इति । इत्यादिक अनेक श्रुतियां आत्माकूं विभु, नित्य प्रकाश ज्ञान स्वरूपकरिकै कथन करै है । इतने कहणेकरिकै अविद्यारूप कारणउपाधितैंभी आत्माका भेद सिद्ध हुआ यातैं यह अर्थ सिद्ध भया स्थूलसूक्ष्मकारणरूप असत्य उपाधियोंकरिकै करा हुआ जो आत्माविषे बंधभ्रम है ता बंधभ्रमकी जबी आत्माके ज्ञानकरिकै निवृत्ति होवै है तबी या स्वयंज्योति पुरुषकूं मोक्षकी प्राप्ति होवै है या हमारे सिद्धांतविषे पूर्व उक्त किंचिन्मात्रभी दोषकी प्राप्ति होवै नहीं । इहां (हे पुरुषर्षभ) या संबोधनकरिकै भगवाननैं अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन करा स्वप्रकाशचैतन्यरूपताकरिकै जो तुम्हारे विषे पुरुषपणा है तथा परमानंद रूपताकरिकै जो तुम्हारेविषे सर्व द्वैतप्रपंचको अपेक्षाकरिकै श्रेष्ठतारूप ऋषभपणा है ता अपणे पुरुषपणेकूं तथा ऋषभपणेकूं नहीं जानता हुआही तूं शोककूं प्राप्त हुआ है यातैं ता शोकके निवृत्तिका कोई दूसरा उपाय है नहीं किंतु ता अपणे स्वरूपके ज्ञानतैंही तुम्हारे शोककी निवृत्ति होवैगी । तहां श्रुति । "तरति शोकमात्मवित्" । अर्थ यह—आत्मवेत्ता पुरुष शोकतें रहित होवै है इति। या श्लोकविषे (पुरुषं) इस एकवचनकरिकै सांख्यशास्त्रके मतका खंडन करा काहेतें ते सांख्यशास्त्रवाले अनेक पुरुषोंकूं अंगीकार करैं हैं इति १५

हे भगवन् ! यद्यपि चेतन आत्मा पुरुष एकही है तथापि वा पुरुषविषे सत्यरूप जडपदार्थोंका जो द्रष्टापणारूप संसार है सो संसार असत्य नहीं है किंतु सो संसार सत्य है वा संसारके सत्य हुए शीतउष्णादिक सुखदुःखके कारणोंके विद्यमान हुए ता सुखदुःखका भोगभी अवश्यकरिकै होवैगा । और सत्य वस्तुकी ज्ञानतें निवृत्ति होवै नहीं । जो सत्य

वस्तुकीभी ज्ञानतैं निवृत्ति होवै तौ सत्यात्माकीभी ज्ञानतैं निवृत्ति होणी चाहिये यातैं पूर्व कथन करी हुई मात्रास्पर्शोंकी तितिक्षा कैसे संभवैगी तथा यह पुरुष मोक्षकी प्राप्तिवासतै कैसे योग्य होवैगा । समाधान–हे अर्जुन ! जैसे शुक्तिविषे कल्पित जो रजत है ता रजतकी शुक्तिरूप अधिष्ठानके ज्ञानतैं निवृत्ति होवै है तैसे या सर्व द्वैतप्रपंचकूं आत्माविषे कल्पित होणेतैं ता अधिष्ठान आत्माके ज्ञानकरिकै ता कल्पित प्रपंचकी निवृत्ति बनि सकै है । शंका–हे भगवन् ! जैसे आत्माकी प्रतीत होवै है तैसे अनात्म प्रपंचकीभी प्रतीति होवै है यातैं आत्मा अनात्मा दोनोंकी तुल्यप्रतीति के हुए आत्माकी न्याईं अनात्मजगत्भी सत्य किसवासतै नहीं होवै । तथा अनात्मजगत्की न्याईं आत्माभी असत्य किस वासतै नहीं होवै । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीकृष्णभगवान् तिन दोनोंविषे विशेषता वर्णन करैं हैं–

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ॥
उभयोरपि दृष्टोंतस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥१६॥

(पदच्छेदः) न । असतः । विद्यते । भाव । न । अभावः । विद्यते । सतः । उभयोः । अपि । दृष्टः । अन्तः । तु । अनयोः । तत्त्वदर्शिभिः ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! असत्वस्तुकी सत्ता नहीं संभवै है तथा सत्वस्तुका अभाव नहीं संभवै है इन सत् असत् दोनोंकी भी मर्यादा तत्त्वदर्शी पुरुषोंनैं देखीहै ॥ १६ ॥

भा० टी०–कालकृत परिच्छेद देशकृत परिच्छेद वस्तुकृत परिच्छेद या तीन प्रकारके परिच्छेदोंवाला जो पदार्थ होवैहै सो पदार्थ असत् कह्या जावै है। ऐसे घटादिक अनात्म पदार्थ है । तहां प्रागभावका तथा प्रध्वंसाभावका जो प्रतियोगीपणा है ताका नाम कालपरिच्छेद है । जैसे घटकी उत्पत्तितैं पूर्व ता घटका मृत्तिकाविषे प्रागभाव रहै है ता प्रागभावका

प्रतियोगीपणा ता घटविषे है। और ता घटके नाशतें अनन्तर ता घटका प्रध्वंसाभाव ता घटके कपालोंविषे रहै है और ता प्रध्वंसाभावका प्रतियोगीपणा ता घटविषे है यातें सो घट कालकृत परिच्छेदवाला है। घटके नाश हुएतें अनन्तर जो ठीकरे रहैं है तिन्होंका नाम कपाल है और अत्यंताभावका प्रतियोगीपणा है ताका नाम देशपरिच्छेद है। जैसे जिस देशविषे घट रहै है ता देशकूं छोडिकै अन्य सर्व देशविषे ता घटका अत्यंताभाव रहै है। ता अत्यंताभावका जो प्रतियोगीपणा ता घटविषे रहै है, यातें सो घट देशकृत परिच्छेदवाला है। तहां वेदांतसिद्धांतविषे यद्यपि जो पदार्थ कालकृत परिच्छेदवाला होवै है सो पदार्थ नियमकरिकै देशकृत परिच्छेदवालाभी होवै है। यातैं कालकृत परिच्छेदके ग्रहण करणेकरिकैही देशकृत परिच्छेदकाभी ग्रहण होइ सकै है। ता देशकृत परिच्छेदका भिन्न ग्रहण करणा संभवै नहीं। तथापि नैयायिक पृथ्वी, जल, तेज, वायु या चारोंके परमाणुवोंकूं तथा मनकूं मूर्त्तद्रव्य मानैं हैं तथा नित्य मानै हैं यातैं ते नैयायिक तिन परमाणुवोंविषे तथा मनविषे केवल देशकृत परिच्छेदही अंगीकार करै हैं कालकृत परिच्छेद अंगीकार करैं नहीं। या कारणतें इहां कालकृत परिच्छदतें देशकृत परिच्छेद भिन्न ग्रहण करा है और सजातीय भेद विजातीय भेद स्वगतभेद या तीन प्रकारके भेदोंका नाम वस्तुकृत परिच्छेद है। जैसे एक वृक्षका दूसरे वृक्षतें जो भेद है ता भेदकूं सजातीय भेद कहैं हैं और तिसी वृक्षका पाषाणादिकोंतें जो भेद है ता भेदकूं विजातीयभेद कहैं हैं। और तिसी वृक्षका अपणे पत्रपुष्पफलादिकोंतें जो भेदहै ता भेदकूं स्वगतभेद कहैं हैं। अथवा जीवईश्वरका भेद १ जीवजगत्का भेद २ जीवोंका परस्पर भेद ३ ईश्वरजगत्का भेद ४ जगत्का परस्पर भेद ५ या पंच प्रकारके भेदका नाम वस्तु परिच्छेद है यद्यपि वेदांतसिद्धांतविषे जो पदार्थ कालकृत परिच्छेदवाला तथा देशकृत परिच्छेदवाला होवै है सो पदार्थ नियमकरिकै वस्तुपरिच्छेदवालाभी होवैहै यातें कालकृत देशकृत परिच्छेदके ग्रहण कियेतें वस्तुकृत परिच्छेद-

काभी ग्रहण होइ सके है ता वस्तुकृत परिच्छेदका भिन्न ग्रहण करणा उचित नहीं है। तथापि नैयायिकोंके मत विषे आकाश, काल, दिशा यह तीनों नित्य हैं तथा विभु हैं यातें तिन आकाशादिकोंविषे ते नैयायिक कालकृत परिच्छेद तथा देशकृत परिच्छेद मानते नहीं परन्तु तिन आकाशादिकोंविषे ते नैयायिक वस्तुकृतपरिच्छेद तौ अंगीकार करे हैं या कारणतैं कालकृत परिच्छेद देशकृत परिच्छेद यो दोनों परिच्छेदोंतैं वस्तुकृत परिच्छेदकूं भिन्न ग्रहण करा है। इस प्रकारके तीन परिच्छेदोंवाला होणेतैं असत्रूप जो शीतउष्णादिक सर्व प्रपंच है ता असत् प्रपंचका सत्तारूप भाव संभवै नहीं। इहां सत्ताशब्दकरिकै तीन परिच्छेदोंतैं रहिततारूप पारमार्थिकपणेका ग्रहण करणा। जैसे घटत्व और घटत्वका अभाव यह दोनों धर्म परस्पर विरोधि होणेतैं एक अधिकरणविषे कदाचित्भी रहते नहीं। तैसे परिच्छिन्नत्वरूप असत्त्व तथा अपरिच्छिन्नत्वरूप सत्त्व यह दोनों धर्मभी परस्पर विरोधि होणेतैं एक अधिकरणविषे कदाचित् भी रहते नहीं। तात्पर्य यह। अनात्मरूप जितनाक दृश्य प्रपंच है सो दृश्य प्रपंच सर्वत्र अनुगत है नहीं यातैं किसी कालविषे तथा किसी देशविषे तथा किसी वस्तुविषे तादृश्य प्रपंचका अनिषेध होवै नहीं किंतु ता दृश्य प्रपंचका सर्व देशकालवस्तुविषे निषेधही होवै है जैसे घटका अपणी उत्पत्तितैं पूर्वकालविषे तथा नाशतैं उत्तर कालविषे तथा अपणे अधिकरणकूं छोडिकै अन्य सर्व देशविषे तथा पटादिक वस्तुवोंविषे 'घटो नास्ति' याः प्रकारका निषेधही होवै है। और जो सत् वस्तु है सो सर्वत्र अनुगत है। यातैं ता सत् वस्तुका किसी कालविषे तथा किसी देशविषे तथा किसी वस्तुविषे कदाचित्भी निषेध होवै नहीं। यातैं जैसे एकही रज्जुविषे प्रतीति भये जो सर्प, दण्ड, जलधारा, माला आदिक हैं तिन कल्पित सर्पादिकोंविषे सा रज्जु तौ 'अयं सर्पः, अयं दंडः' या प्रकार इदंरूपकरिकै अनुगत हुई प्रतीति होवै है। यातैं सा रज्जु तिन कल्पित सर्पदंडादिकोंविषे अनुगत

है और ता सर्पकी प्रतीतिविषे दंडकी प्रतीति होवै नहीं और ता दंडकी प्रतीतिविषे सर्पकी प्रतीति होवै नहीं यातैं ते कल्पित सर्पदंडादिक परस्पर व्यभिचारी होणेतैं अनुगत नहीं है। या कारणतैंही ते अनुगत सर्पदंडादिक ता अनुगत रज्जुविषे कल्पित हैं तैसे ' सन् घटः, सन्, पटः ' या प्रकार सर्व पदार्थोंविषे सत् वस्तु जो अनुगत होइकै प्रतीति होवै है यातै सो सत् वस्तु सर्वत्र अननुगत है। और घट, पट नहीं है तथा पट, घट नहीं है या प्रकार घटपटादिक पदार्थ परस्पर व्यभिचारी होणेतैं अननुगत हैं या कारणतैं यह अननुगत घटपटादिक प्रपंच ता अनुगत सत् वस्तुविषे कल्पित है। शंका—हे भगवन् ! अनुगतपणेतैं रहित व्यभिचारी वस्तुकूं जो कल्पित मानौगे तौ सत् वस्तुभी कल्पित होवैगा काहेतैं सो सत् वस्तु भी शशशृंग वंध्यापुत्रादिक तुच्छ पदार्थोंतैं व्यावृत्त होणेतैं व्यभिचारीही है ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं । (नाभावो विद्यते सतः इति) हे अर्जुन ! सत् अधिकरणविषे रहणेहारा जो भेद है ता भेदके प्रतियोगीपणेका नामही वस्तुपरिच्छेद है ! जैसे घटरूप सत् वस्तुविषे रहणेहारा जो पटका भेद है ता भेदका प्रतियोगीपणा ता पटविषे है यहही ता पटविषे वस्तुपरिच्छेद है और शशशृंग वंध्यापुत्रादिक असत् पदार्थोंविषे सत्‌रूपता है नहीं यातै तिन शशशृंगादिक असत् पदार्थोंतैं सत् वस्तुका भेद अंगीकार किये हुएभी ता सत् वस्तुविषे वस्तुपरिच्छेदकी प्राप्ति होवै नहीं और स्वप्रकाश नित्यविभुरूप एकही सत् वस्तु सर्वत्रकौंहित 'घटः व्यापक हैं यातैं ता सत् वस्तुविषे किसी सत् व्यक्तिका भेद संभवै नहीं। सन्,पटः सन्'इत्यादिक प्रतीति सर्व लोकोंकूं होवै है । यातैं सत् वस्तुविषे घटादिक पदार्थोंविषे रहणेहारे भेदका प्रतियोगीपणा संभवता नहीं । ऐसे देशकालवस्तुपरिच्छेदतैं रहित सत् वस्तुका देशाकलवस्तुकृत परिच्छिन्नत्व रूप अभाव संभवै नहीं काहेतैं जैसे घटत्व और घटत्वका अभाव यह दोनों धर्म परस्पर विरोधी होणेतैं एक अधिकरणविषे रहते नहीं तैसे परिच्छिन्नत्व अपरिच्छिन्नत्व यह दोनों धर्मभी परस्पर विरोधी होणेतैं एक अधि-

करणविषे रहैं नहीं। शंका–जिसविषे देशकालवस्तुपरिच्छेदका निषेध करते हो ऐसी कोई सत् वस्तु है नहीं किंतु सत्ता नामा एक परा जाति है सा सत्ताजाति द्रव्य, गुण, कर्म या तीन पदार्थोंविषे तौ समवायसंबंधकरिकै रहै है। और तिन द्रव्यादिकोंविषे रहणेहारे जो सामान्य, विशेष समवाय यह तीन पदार्थ हैं तिन्होंविषे सा सत्ताजाति सामानाधिकरण्यसंबंधकरिकै रहै है। या कारणतैंही तिन द्रव्यादिक षट् पदार्थोंविषे 'द्रव्यं सत्, गुणः सन्' इत्यादिक सत् व्यवहार होवै है यातैं उत्पत्तितैं पूर्व वर्त्तमान् प्रागभावके प्रतियोगी होणेतैं असत्‌रूप जो घटादिक हैं तिन असत् घटादिकोंकाही कुलालदण्ड चक्रादिक कारणोंके व्यापारतैं सत्त्व होवै है और तिन सत्‌रूप घटादिकोंकाही मृत्तिकादिक कारणोंके नाशतैं अभावभी होवै है यातैं असत् पदार्थका भाव नहीं होवै है और सत् वस्तुका अभाव नहीं होवै है या प्रकारका आपका वचन संभवता नहीं। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (उभयोरपीति) हे अर्जुन ! सत् वस्तुका तथा असत् वस्तुका जो अन्त है। क्या जो सत् वस्तु होवै है सो सर्व कालविषे सत्‌ही होवैहै कदाचित्‌भी असत् होवै नहीं और जो असत्‌वस्तु होवै है सो सर्व कालविषे असत्‌ही होवै है कदाचित्‌भी सत् होवै नहीं या प्रकारकी नियमरूप जो मर्यादा है सो मर्यादारूप अन्त वस्तुके यथार्थ स्वरूपकूं जानणेहारे ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंनेही विचारपूर्वक श्रुतिस्मृतियुक्तियोंकरिकै निश्चय करा है। कुतार्किक नैयायिकादिकोंनैं सो मर्यादारूप अन्त निश्चय करा नहीं। इहां श्रुतिस्मृतिप्रमाणतैं विरुद्ध तर्कका नाम कुतर्क है तिन कुतर्कोंकूं कथन करणेहारे वादियोंकूं कुतार्किक कहै हैं ऐसे कुतार्किक पुरुषोंविषे सो पूर्व उक्त विपरीतभ्रम संभव होइ सकै हैं। इहां श्लोकविषे (अन्तस्तु) या वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है ता तुशब्दका निश्चयरूप अवधारण अर्थ है तिस तुशब्दका (अंतः) या पदके साथि जो अन्वय करिय तौ यह अर्थ सिद्ध होवै है सत् वस्तु सत्‌ही होवै है और असत् वस्तु असत्‌ही होवै है या प्रकार ता सत् असत्‌का नियमही तत्त्वदर्शी

पुरुषोंनैं देख्या है ता सत् असत् वस्तुका अनियम देख्या नहीं इति । और तिस तुशब्दका (तत्त्वदर्शिभिः) या पदके साथि जो अन्वय करिये तौं यहं अर्थ सिद्ध होवै है । तत्त्वदर्शी पुरुषोंनैंही ता सत् असत् वस्तुका नियम देख्या है। अतत्त्वदर्शी पुरुषोंनैं सो नियम देख्या नहीं इति । वहां श्रुति। "सदेवसौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयमिति ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति" । अर्थ यह-हे प्रियदर्शन । यह दृश्यमान प्रपंच अपणी उत्पत्तितैं पूर्व सत् वस्तुरूपही होता भया है सो सत् वस्तु एक अद्वितीयरूपही होता भया इति । या प्रकार छांदोग्य उपनिषद्के षष्ठ अध्यायके आदिविषे कथन करिकै ताके अंतविषे यह कह्या है । यह सर्व जगत् आत्मास्वरूपहीहै सो आत्माही सत्यरूप है । हे श्वेतकेतु ! सो सत् वस्तु आत्मा तूं है इति । यह श्रुति सजातीय, विजातीय, स्वगत भेदतै रहित एक अद्वितीय वस्तुकूंही कथन करै है और "वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्" । अर्थ यह-घटशरावादिक विकार केवल वाणीमात्र होणेतैं मिथ्या हैं तिन घटशरावादिक विकारोंका कारण रूप मृत्तिकाही सत्य है इति यह श्रुति परस्पर व्यभिचारीरूप घटशरावादिक विकारोंविषे मिथ्यापणेकूंही कथन करै है । तथा "अन्नेन सौम्यशुंगेनापो मूलमन्विच्छ अद्भिः सौम्यशुंगेन तेजोमूलमन्विच्छ तेजसा सौम्यशुंगेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सौम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठा इति" । अर्थ यह-हे प्रियदर्शन श्वेतकेतु ! या पृथिवीरूप कार्य करिकैं तूं जलरूप कारणकूं निश्चय कर । तथा जलरूप कार्यकरिकै तूं तेजरूप कारणकूं निश्चय कर । तथा ता तेजरूप कार्यकरिकै तूं सत्वस्तुरूप कारणकूं निश्चय कर । हे श्वेतकेतु ! यह सर्व प्रजा ता सत्वस्तुतैंही उत्पन्न होवै है । तथा ता सत्वस्तुविषेही स्थित होवै है तथा ता सत्वस्तुविषेही लयकूं प्राप्त होवै है इति । यह श्रुति ता सत् वस्तुविषेही पृथिवी आदिक सर्व विकारोंका कल्पितपणा कथन करै है । "सदेव सौम्येदमग्रआसीत्" इत्यादिक सर्व श्रुतियोंका अर्थ आत्मपुराणके

द्वादश अध्यायविषे हम विस्तारतैं कथन करि आये हैं । किंवा । 'द्रव्यं सत्, गुणः सन्' इत्यादिक प्रतीतियोंका विषय जो सत्ता है सा सत्ता पराजातिरूप है या प्रकारका वचन जो नैयायिकोंनैं कथन करा है सो तिन्होंका कहणा अत्यंत असंगत है काहेतैं सन् सन् यह सत्ताकूं विषय करणेहारी प्रतीति द्रव्यादिक सर्व पदार्थमात्रविषे समान होवैहै । केवल द्रव्य, गुण, कर्म या तीन पदार्थोंविषे सा प्रतीति होवै नहीं । यातैं सन् सन् या प्रकारकी प्रतीतिकरिकै द्रव्य गुणकर्ममात्रविषे रहणेहारी सत्ताजातिकी कल्पना होई सकै नहीं । और एकरूप प्रतीति एकरूप विषयकरिकैही सिद्ध होवै है । ता एकरूप प्रतीतिविषे संबंधका भेद तथा स्वरूपका भेद कल्पना करणा अनुचित है । जैसे अनेक घटोंविषे 'अयं घटः, अयं घटः' या प्रकारकी जो एकरूप प्रतीति है सा एकरूप प्रतीति घटस्वरूप एकरूप विषय करिकैही सिद्ध होइ सकै है । यातैं घटव्यक्तियोंविषे ता घटत्वधर्मके संबंधका भेद कल्पना करणा अनुचित है । तैसे सन् सन् यह एकरूपप्रतीति द्रव्य, गुण, कर्म या तीन पदार्थोंविषे तौ समवायसंबंध विशिष्ट सत्ताकूं विषय करै है और सामान्य, विशेष, समवाय या तीन पदार्थोंविषे सामानाधिकरण्यसंबंधविशिष्ट सत्ताकूं विषय करै है या प्रकार संबंधका भेद कल्पना करणा उचित नही है । और विषयकी एकतारूपताके अभाव हुएभी जो कदाचित् प्रतीतिकी एकरूपता अंगीकार करौगे तौ तुम्हारे मतविषे किसीभी जातिकी सिद्धि नहीं होवैगी । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया नैयायिकोंनैं अंगीकार करी जो सत्ताजाति है सा सत्ताजाती 'घटः सन्, पटः सन्' इत्यादिक सत् व्यवहारोंका साधक नहीं है किंतु ज्ञात अज्ञात अवस्थाकूं प्रकाश करणेहारा तथा स्वतःस्फुरणरूप एकही सत्वस्तु अपणे तादात्म्य अध्यासकरिकै सर्व पदार्थोंविषे सन् सन् या प्रकारके सत् व्यवहारका साधक होवै है । किंवा । 'सन् घटः, सन् पटः' इत्यादिक प्रतीतियां घटपटादिक व्यक्तियोंविषे सत्ताव्यक्तिके अभेदमात्रकूं विषय करैं हैं तिन घटपटादिक व्यक्तियोंविषे सत्ताजातिके सम-

वायिपणेकूं ते प्रतीतियां विषय करै नहीं । काहेतें अभेदकूं विषय करणे-हारी जो प्रतीति है ता प्रतीतिका भेदघटित समवायसंबंधकारिकै निर्वाह होई सकै नहीं । इस प्रकार 'द्रव्यं सत्, गुणः सन्' इत्यादिक प्रतीति-योंकरिकै ता एक सत् वस्तुका द्रव्यादिक सर्व पदार्थोंके साथि अभेद-सिद्ध हुए ता एक सत् वस्तुके साथि अभिन्न होणेतें तिन द्रव्यगुणादिक पदार्थोंका परस्परभी भेद सिद्ध होवै नहीं । तिन द्रव्यादिकोंके भेदके असिद्ध हुए तिन द्रव्यगुणादिक धर्मियोंविषे सत्ताजातिरूप धर्मभी कल्पना करा जावै नहीं । यातें सत् वस्तुरूप धर्मीविषे द्रव्यगुणादिक पदार्थोंका अभेदही अंगीकार करणेयोग्य है । सो जड चेतनका अभेद वास्तवतैं तौ संभवै नहीं किंतु आध्यासिकअभेदही संभवै है । किंवा । नैयायिकोंनैं विभुरूप कालपदार्थका सर्व पदार्थोंके साथि संबंध अंगीकार करा है ता कालके संबंधकूं ग्रहण करिकैही 'घटः सन्, पटः सन्' इत्यादिक सर्व व्यवहार संभव होई सकै है ता कालसंबंधतें भिन्न सत्ताजातिरूप पदार्थके मानणेविषे कोई प्रमाण है नहीं । यातें यह अर्थ सिद्ध भया जैसे किसी देशविषे तथा किसी कालविषे अघटरूप जो पटादिक पदार्थ हैं तिन पटादिक पदार्थोंकूं अन्य देशविषे तथा अन्य कालविषे घटरूपता होवै नहीं । और जैसे किसी देशविषे तथा किसी कालविषे घटरूपकरिकै स्थित जो घट है ता घटकी अन्य देशविषे तथा अन्य कालविषे अघटरूपता साक्षात् ईश्वरकरिकैभी सिद्ध होइ सकै नहीं। तैसे किसी देशविषे तथा किसी कालविषे असत्रूपकरिकै विद्यमान जो पदार्थ है ता असत् पदार्थका अन्य देशविषे तथा अन्य कालविषे सत्त्व सिद्ध होइ सकै नहीं । तैसे किसी देशविषे तथा किसी कालविषे सत्रूप-करिकै विद्यमान जो पदार्थ है ता सत् पदार्थका अन्य देशविषे तथा अन्य कालविषे असत्त्व सिद्ध होइ सकै नहीं । यातें सत्, असत् दोनोंका नियतरूपही अंगीकार करणेकूं योग्य है यातें एकही सत् वस्तु मायाक-

ल्पित असत्की निवृत्ति करिकै मोक्षरूप अमृतकी प्राप्तिके योग्य होवै है। तथा सत् वस्तुमात्रकी दृष्टिकरिकै पूर्व उक्ततितिक्षाभी संभव होइ सकै है इति ॥ १६ ॥

हे भगवन्! पूर्व कथन करा जो देशकालवस्तुपरिच्छेदतैं रहित सत् वस्तु है सो सत् वस्तु ज्ञानरूप स्फुरणतैं भिन्न है अथवा अभिन्न है। तहां प्रथम भेदपक्ष तौ संभवै नहीं काहेतैं ता सत् वस्तुकूं जो ज्ञानरूप स्फुरणतैं भिन्न अंगीकार करौगे, तौ सो सत्वस्तु भेदरूप वस्तुपरिच्छेदवाला होवैगा। ता परिच्छिन्नताकी प्राप्तिरूप दोषकी निवृत्ति वासतै सो सत् वस्तु ज्ञान रूप स्फुरणतैं अभिन्न है यह दूसरा पक्ष अंगीकार करणा होवैगा। और जैसे 'अयं सर्पः' या प्रतीतिकरिकै रज्जुविषे जो सर्पका अभेद प्रतीत होवै है सो अभेद वास्तवतैं है नहीं किंतु सो अभेद आध्यासिक है। तैसे ता सत् वस्तुविषे ज्ञानरूप स्फुरणा जो आध्यासिक अभेद अंगीकार करौगे तौ ता ज्ञानरूप स्फुरणतैं वास्तवतैं भिन्न हुआ सो सत् वस्तु घटादिक पदार्थोंकी न्याई जड होवैगा। यातैं ता जडता दोषकी निवृत्ति वासतै ता सत् वस्तुविषे ज्ञानरूप स्फुरणका वास्तव अभेद अंगीकार करणा होवैगा। ता वास्तव अभेदके अंगीकार किये हुएभी ता सत् वस्तुविषे पुनः देशकालवस्तुपरिच्छेदकी प्राप्ति होवैगी काहेतैं हमारेविषे पूर्वला घटका ज्ञान नाश हुआ है अभी पटका ज्ञान उत्पन्न भया है। या प्रकारकी प्रतीति सर्वलोकोंकूं होवै है ता प्रतीतितैं ज्ञानरूप स्फुरणका उत्पत्ति तथा नाश सिद्ध होवै है और 'अहं घटं जानामि' अर्थ यह—मैं घटकूं जानता हूं या प्रकारकी प्रतीतिभी सर्व लोकोंकूं होवै है या प्रतीतितैं अहं शब्दके अर्थविषे ता ज्ञानरूप स्फुरणकी आश्रयता सिद्ध होवैहै और घटविषे ता ज्ञानरूप स्फुरणकी विषयता सिद्ध होवै है। यातैं सो ज्ञानरूप स्फुरण देशकालवस्तुपरिच्छेदवालाही सिद्ध होवै है। ऐसे परिच्छिन्न ज्ञानरूप स्फुरणतैं जबी ता सत् वस्तुका वास्तवतैं अभेद हुआ तबी ता सत् वस्तुविषेभी सो देशकालवस्तुपरिच्छेद प्राप्त होवैगा यातैं सो

सत् वस्तु देशकालवस्तुपरिच्छेदतैं रहित है यह आपका वचन संभवता नहीं। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहै हैं-

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ॥
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥ १७॥

(पदच्छेदः) अविनाशि । तु । तत् । विद्धि । येन । सर्वम् । इदम् । ततम् । विनाशम् । अव्ययस्य । अस्य । न । कश्चित् । कर्तुम् । अर्हति ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस सत्रूप स्फुरणनैं यह सर्व दृश्यप्रपंच व्याप्त कराहै तिस सत्रूपस्फुरणकूं तूं परिच्छेदरूप विनाशते रहित ही जान जिस कारणतै इस अपरिच्छिन्न सत्रूप स्फुरणका परिच्छिन्नतारूप विनाशकूं कोईभी करणेकूं नहीं समर्थ है ॥ १७ ॥

भा० टी०—देशकृत परिच्छेद, कालकृत परिच्छेद, वस्तुकृत परिच्छेद या तीन प्रकारके परिच्छेदोंकानाम विनाश है सो विनाश जिसकूं प्राप्त होवै है ताका नाम विनाशी है ऐसे परिच्छिन्न पदार्थ है तिन विनाशि पदार्थोंतै जो विलक्षण होवै ताका नाम अविनाशि है क्या तीन प्रकारके परिच्छेदतैं रहित वस्तुका नाम अविनाशि है।हे अर्जुन! या सत् वस्तुरूप स्फुरणकूं तूं इस प्रकारका अविनाशि जान कैसा है सो सत् वस्तुरूप स्फुरण जिस एक अद्वितीय नित्य विभुरूप स्फुरणनै स्वतः सत्तास्फूर्तितै रहित यह सर्वदृश्यप्रपंच व्याप्त करा है। जैसे रज्जुरूप अधिष्ठाननैं अपणे इदम्अंशकरिकै कल्पित सर्प, दंड, जलधारादिक व्याप्त करीते हैं तैसे जिस सत् वस्तुरूप स्फुरणनैं अपणी सत्तास्फूर्तिके अध्यासकरिकै यह सर्व दृश्यप्रपंच व्याप्त करा है ऐसे सत् वस्तुरूप स्फुरणकूं तूं परिच्छिन्नतारूप विनाशतैं रहितही जान । काहेतैं परिच्छेदरूप नाशतैं रहित तथा सर्वदा अपरोक्षरूप ऐसा जो सर्वत्र व्यापक सत्रूप स्फुरण है ता सत् वस्तुरूप स्फुरणके परि-

च्छिन्नतारूप विनाशकूं कोई आश्रय अथवा कोई विषय अथवा कोई इंद्रिय अर्थका संबंधरूप हेतु करणेविषे समर्थ होवै नहीं काहेतैं कल्पितवस्तु अकल्पित वस्तुके परिच्छेदकूं करि सकैं नहीं । जैसे रज्जुविषे कल्पित सर्प दंडादिक अकल्पित परिच्छेदकूं करि सकै नहीं तैसे सत् वस्तुरूप स्फुरणविषे कल्पित जो विषय इंद्रियादिक हैं ते विषय इंद्रियादिक ता अकल्पित स्फुरणके परिच्छेदकूं करिसकें नहीं और जो वादी ता सत् वस्तुरूप स्फुरणविषे परिच्छिन्नपणेका आरोप अंगीकार करै सो औपाधिक परिच्छिन्नपणा हमारेकूंभी अंगीकार है । परन्तु ता स्फुरणविषे वास्तवतैं परिच्छिन्नपणा है नहीं । किंवा 'अहं घटं जानामि'। अर्थ यह—मैं घटकूं जानता हूं या ज्ञानविषे अहंकार तौ आश्रयरूपकरिकै प्रतीत होवै है । और घट विषयरूपकरिकै प्रतीत होवै है । और उत्पत्तिनाशवाली कोई अंतःकरणकी वृत्ति तौ सर्वत्र व्यापक सत्रूप स्फुरणके अभिव्यंजकतारूपकरिकै प्रतीत होवै है ता अभिव्यंजकवृत्तिरूप उपाधिके उत्पत्तिनाशकरिकैही ता वृत्ति उपहित सत्रूप स्फुरणविषे उत्पत्तिनाश प्रतीत होवै है । वास्तवतैं ता सत्रूप स्फुरणका उत्पत्तिनाश होवै नहीं । अथवा । आत्मा मनका संयोग ज्ञानका कारण होवै यह नैयायिकोंनैभी अंगीकार करा है।ता संयोगरूप उपाधिके उत्पत्तिनाश करिकैही ता संयोग उपहित सत्रूप स्फुरणविषे सो उत्पत्तिनाश प्रतीत होवै है वास्तववैं ता स्फुरणका उत्पत्तिनाशहोवै नहीं।जैसे मीमांसकोंके मतविषे स्वभावतैं उत्पत्तिनाशतैं रहित जो वर्णात्मक शब्द है ता शब्दविषे ध्वनिरूप उपाधिके उत्पत्तिनाशका आरोप होवै है । और जैसे नैयायिकोंके मतविषे वास्तवतैं उत्पत्ति नाशतैं रहित जो आकाश है ता आकाशविषे घटरूप उपाधिके उत्पत्तिनाशका आरोप होवै है । तैसे वेदांतसिद्धांतविषेभी वास्तवतैं उत्पत्तिनाशतैं रहित जो ज्ञानरूप स्फुरण है ता स्फुरणविषे अन्तःकरणकी वृत्तिरूप उपाधिके उत्पत्तिनाशका आरोप होवै है । अथवा आत्मामनका संयोगरूप उपाधिके उत्पत्तिनाशका ता स्फुरणविषे आरोप होवै है वास्तववैं ता सत्वस्तुरूप स्फुरणका उत्पत्ति नाश होवै नहीं ।

और यद्यपि ता सत्वस्तुरूप स्फुरणविषे यह अहंकार कल्पित है यातैं ता कल्पित अहंकारविषे ता स्फुरणकी आश्रयता संभवै नहीं। तथापि ता अहंकारकी वृत्तिके साथि ता स्फुरणका तादात्म्य अध्यास है या कारणतैं ता वृत्तिके आश्रयरूप अहंकारके आश्रित हुआ सो स्फुरण प्रतीत होवै है वास्तवतैं सो अहंकार ता स्फुरणका आश्रय नहीं है काहेतैं सुषुप्ति अवस्थाविषे ता अहंकारके अभाव हुएभी ता अहंकारके सूक्ष्म वासनायुक्त अज्ञानकूं प्रकाश करणेहारा चैतन्य स्वतःही स्फुरण होवै है। जो कदाचित् सुषुप्ति अवस्थाविषे सो चैतन्य स्वतः स्फुरणरूप नहीं होवै है। तौ इतने कालपर्यंत मैं किंचित्मात्रभी नहीं जानता भया या प्रकारका अज्ञानविषयक स्मरण जो सुषुप्तितैं उठे हुए पुरुषकूं होवै है सो नहीं होणा चाहिये। और या प्रकारका स्मरण तौ सर्व पुरुषोंकू होवै है यातैं यह जान्या जावैहै सुषुप्तिअवस्थाविषे अज्ञानकूं प्रकाशकरणेहारा चैतन्य स्वतःस्फुरणरूप है ता स्फुरणरूप अनुभवकरिकैही जाग्रत् अवस्थाविषे सो अज्ञान विषयक स्मरण होवैहै। किंवा केवलजाग्रत् अवस्थाके स्मरणकी अनुपपत्तितैंही सुषुप्ति अवस्थाविषे चैतन्यरूप स्फुरणकी सिद्धि नहीं होवै है। किंतु साक्षात् श्रुतिप्रमाणकरिकैभी ता ज्ञानरूप स्फुरणकी सिद्धि होवै है। तहां श्रुति। 'यद्वैतन्न पश्यति पश्यन्वैतद्द्रष्टव्यं न पश्यति नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात्''। अर्थ यह-सुषुप्ति अवस्थाविषे यह आत्मादेव द्वैतप्रपंचकूं जो नहीं देखता है सो अपणे चैतन्यरूप स्फुरणके अभाव हुएतैं नहीं देखता है यह वार्त्ता कही जावै नहीं किंतु वा सुषुप्ति अवस्थाविषे यह आत्मादेव अपणे चैतन्यरूप स्फुरणकरिकै देखता हुआभी तहां द्वैतप्रपंचका अभाव होणेतैं ता द्वैतप्रपंचकूं देखता नहीं काहेतैं ता द्रष्टा आत्माका स्वरूपभूत जो स्फुरणरूप दृष्टि है सा दृष्टि नाशतैं रहित है यातैं ता स्फुरणरूप दृष्टिका किसीभी अवस्थाविषे अभाव होवै नहीं इति। यह श्रुति सुषुप्तिअवस्थाविषे स्वप्रकाशरूप स्फुरणके सद्भावकूं तथा नित्यताकूं कथन करै है। किंवा। जैसे अहंकारादिक वा

ज्ञानरूप स्फुरणविषे कल्पित हैं तैसे घटादिक विषयोंके अज्ञात अवस्थाकूं प्रकाश करणेहारा जो सत् वस्तुरूप स्फुरण है ता स्फुरणविषे ते घटादिक विषयभी कल्पित हैं। काहेतें जो घट हमनें पूर्व नहीं जान्या था सोईही घट अबी हमनें जान्या है या प्रकारके अनुभवकरिकैंही सा घटकी अज्ञात अवस्था सिद्ध होवै है। और जो ज्ञान अज्ञात वस्तुका प्रकाश करै है सो ज्ञानही प्रमाज्ञान होवै है। या प्रकार अज्ञात अर्थका ज्ञापकत्वरूप प्रमाज्ञानंका लक्षण सर्व शास्त्रवाले अंगीकार करैं हैं। या कारणतेंही नैयायिकोंनैं 'यथार्थानुभवः प्रमा' या प्रमाके लक्षणविषे पूर्वज्ञात अर्थकूं विषय करणेहारी स्मृतिके निवारण करणेवासतें अनुभव यह पद कथन करा है। तहां घटादिक विषयोंविषे जो अज्ञातपणा है सो अज्ञातपणा नेत्रादिक इंद्रियोंकरिकै जान्या जावै नहीं काहेतें ता अज्ञातपणेके जानणेंविषे नेत्रादिक इंद्रियोंका सामर्थ्य है नहीं। और सो घटादिकोंका अज्ञातपणा अनुमानप्रमाणकरिकैंभी जान्या जावै नहीं काहेतें जैसे पर्वतविषे स्थित अग्निके जनावणेहारा धूमरूप लिंग होवै है तैसे ता अज्ञातपणेके जनावणेहारा कोई लिंग है नही। तहां जो वादी ता अज्ञातपणेकी सिद्धि वासतै या प्रकारका अनुमान करै यह घट पूर्व अज्ञात था इदानींकालविषे ज्ञात होणेतें सो या प्रकारके अनुमानकरिकैंभी सो घटका अज्ञातपणा सिद्ध होवै नहीं काहेतें जहां एकही घटविषे व्यवधानतें रहित 'अयं घटः' 'अयं घटः' या प्रकारके अनेकज्ञान होवैं हैं तहां प्रथम ज्ञानकूं छोडिकै द्वितीयतृतीय आदिक ज्ञानोंका विषय जो घट है ता घटविषे इदानींकालविषे ज्ञातपणारूप हेतु तौ रहै है परन्तु पूर्व अज्ञातपणारूप साध्य रहै नहीं काहेतें ता स्थलविषे पूर्व पूर्व ज्ञानकरिकै ज्ञात घटकूंही उत्तर उत्तर ज्ञान विषय करै है यातें साध्यके अभाववाले घटविषे रहणेहारा सो हेतु व्यभिचारी है ता व्यभिचारी हेतुतें पूर्व अज्ञातत्वरूप साध्यकी सिद्धि होइ सकै नहीं। किंवा। इदानीं ज्ञातत्वरूप हेतुका पूर्व अज्ञातत्वरूप साध्यतें भेद सिद्ध होवै नहीं। काहेतें जो

पूर्व अज्ञात हुआ इदानींकालविषे ज्ञात होवै है ताकूंही इदानींकाल-विषे ज्ञान कहैं हैं और जो हेतु अपणे साध्यतैं अभिन्न होवै है सो हेतु सिद्धसाधनतादोषवाळा होवै है । या कारणतैभी ता दुष्ट हेतुवैं अज्ञातत्वरूप साध्यकी सिद्धि होवै नहीं । किंवा । घटादिकोंकी अज्ञात अवस्थाके ज्ञानतैं विना तिन घटादिकोंविषे स्वविषयक प्रत्यक्षज्ञानके प्रति कारणता ग्रहण करी जावै नही काहेतैं जिस वस्तुविषे जिस कार्यतैं नियम करिकै पूर्ववर्त्तिपणेका ज्ञान होवै है तिसी वस्तुविषे ता कार्यकी कारणता ग्रहण करी जावै है । जैसे मृत्तिकाविषे घट-रूपकार्यतैं पूर्ववर्त्तिपणेके ज्ञान हुएतैं अनंतरही ता मृत्तिकाविषे घटके कारणताका ज्ञान होवै है। पूर्ववर्त्तिपणेके ज्ञानतैं विना कारणताका ज्ञान होवै नहीं यातै ता घटके प्रत्यक्ष ज्ञानतैं पूर्वता घटके अज्ञात अवस्थाका ज्ञान अवश्य अंगीकार करा चाहिये । किंवा । ता घटके अज्ञात अवस्थाका ज्ञान जो नहीं होता होवै तो मैं घटकूं नहीं जानता हूं या प्रका-रके सर्व लोकोंके अनुभवका विरोध होवैगा यातैं यह अर्थ सिद्ध भया अज्ञातरूप स्फुरण अपणे स्वयंज्योतिरूपकरिकै प्रकाशमान हुआ अपणे विषे कल्पित घटादिक पदार्थोंकूंभी प्रकाश करै है यातै, ता अज्ञातरूप स्फुरणविषेही तिन घटादिक पदार्थोंका कल्पितपणा सिद्ध होवै है। जो कदाचित् सो अज्ञातरूप स्फुरण तिन घटादिक पदार्थोंकूं प्रकाश नहीं करता होवै तो तिन घटादिक पदार्थोंकूं स्वभावतैं जड होणेतैं तिन घटा-दिकोंका अज्ञातपणा तथा ता अज्ञातपणेका ज्ञान दोनों नहीं सिद्धहोवैंगे । और ता सत् वस्तुरूप स्फुरणविषे जो अज्ञातपणा है सो अपणेविषे कल्पित अज्ञानकरिकैही है। यह वार्त्ता (अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यंति जंतवः) या वचनकरिकै श्रीभगवान् आपही आगे कहेंगे । इतने कहणेकरिकै ता सत् वस्तुरूप स्फुरणविषे विभुपणा सिद्ध करा । तहां श्रुति । "महद्भूत-मनंतमपारं विज्ञानघन एवेति सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म इति" । अर्थ यह—सो सत् वस्तुरूप स्फुरण महानरूप है तथा अनंत है तथा अपार तथाविज्ञानघन है तथा

सत्य है तथा ज्ञानरूप है तथा अनंत है इति । यह श्रुति ता सत् वस्तुरूप स्फुरण विषे महत्पणा तथा अनंतपणा कथन करै है । वहां ता ज्ञानरूप स्फुरणविषे कल्पित जो यह सर्व जगत्‌है ता सर्व जगत्‌के साथि ता स्फुरणका जो कल्पित तादात्म्यसंबंध है यहही ता स्फुरणविषे महत्पणा है और देशकालवस्तुपरिच्छेदतैं जो रहितपणा है यहही ता स्फुरणविषे अनंतपणा है इतने कहणेकरिकै शून्यवादियोंका मतभी खंडन करा काहेतैं अधिष्ठानवस्तुतैं विना कोईभी भ्रम होवै नहीं । तथा अधिष्ठानतैं विना ता भ्रमका बाधभी होवै नहीं । और शून्यवादियोंके मतविषे कोई सत् वस्तु अधिष्ठानतैं है नहीं यातैं तिन्होंका मत असंगत है । तहां श्रुति । "पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परागतिः" । अर्थ यह–स्वयंज्योतिरूप पुरुषतैं परे कोईभी वस्तु है नहीं । किंतु सो स्वयंज्योति पुरुषही या सर्व जगत्‌का अवधिरूप है तथा परागतिरूप है इति । यह श्रुति सर्व जगत्‌के बाधका अवधिरूपकरिकै ता स्वयंज्योति पुरुषका कथन करै है । यह वार्त्ता भगवान् भाष्यकारोंनैंभी कथन करी है । "सर्वं विनश्यद्वस्तुजातं पुरुषांतं विनश्यति पुरुषो विनाशहेत्वभावान्न विनश्यति" अर्थ यह–या स्थूल प्रपंचतैं आदिलैके अव्याकृतपर्यंत जितनेक नाशवान् वस्तु हैं ते सर्व वस्तु चैतन्यरूप पुरुषपर्यंत नाशकूं प्राप्त होवैं है । और तिस पुरुषके नाश करणेहारा कोई कारण है नहीं यातैं सो पुरुष नाशकूं प्राप्त होवै नहीं इति । इतने कहणेकरिकै क्षणिकविज्ञानवादियोंका मतभी खंडन करा काहेतैं जो कदाचित् आत्मा क्षणिक होवै तौ जो मैं बाल्य अवस्थाविषे अपणे मातापिताकूं अनुभव करतभया सोईही मैं अबी वृद्ध अवस्थाविषे ता मातापिताकूं स्मरण करता हूं या प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञान सर्व प्राणियोंकूं होवै है सो नहीं होणा चाहिये।काहेतैं जो पुरुष जिसवस्तुकूं देखै है सोईही पुरुष कालांतरविषे तिस वस्तुकूं स्मरण करै है । अन्यपुरुषकरिकै देखी हुई वस्तुका अन्य पुरुषकूं स्मरण होवै नहीं यातैं सो आत्मा क्षणिक नहीं यातैं यह अर्थ सिद्धभया सर्वत्र व्यापक तथा एक अद्वितीy-

यरूप जो स्वप्रकाश स्फुरणरूप सत् वस्तु है सो स्फुरणरूप सत् वस्तु पूर्व उक्त देशकालादिक सर्वपरिच्छेदतैं रहित है यातैं ता सत् वस्तुका अभाव कदाचित् भी नहीं होवै है । यह जो श्रीभगवान्नैं कह्या है सो यथार्थ कह्या है इति ॥ १७ ॥

पूर्व आपनैं स्फुरणरूप सत् वस्तुकूं अविनाशी कह्या सो संभवता नहीं काहेतें जैसे पान, काथा, चूना,सुपारी या चारोंका समुदायरूप जो तांबूल है तिस तांबूलविषे रक्तता उत्पन्न होवै है तैसे पृथिवी, जल,तेज,वायु या चारि भूतोंका समुदायरूप जो यह स्थूल शरीर है ता स्थूल शरीरविषे एकचैतन्यता धर्म उत्पन्न होवै है यातैं सो चैतन्यरूप स्फुरण या स्थूल शरीरकाही धर्म है और यह स्थूल शरीर तौ क्षणक्षणविषे नाशकूं प्राप्त होवै है यातैं ता शरीररूप धर्मीके नाश हुए ता ज्ञानरूप स्फुरणकाभी अवश्य करिकै नाश होवैगा या प्रकारकी भूतचैतन्यवादियोंकी शंकाके हुए तिन भूतचैतन्यवादियोंके खण्डन करणेवासतैं श्रीभगवान् (नासतो विद्यते भावो) या पूर्व कहे हुए वचनका अर्थ अबी विस्तारतैं निरूपण करैं हैं-

अंतवंत इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ॥
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥१८॥

(पदच्छेदः) अंतवंतः । इमे । देहाः । नित्यस्य । उक्ताः । शरीरिणः । अनाशिनः । अप्रमेयस्य । तस्मात् । युध्यस्व । भारत ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे भारत ! नित्य तथा शरीररूप उपाधिवाला तथा नाशतैं रहित तथा प्रमेयभावतैं रहित ऐसा जो स्फुरणरूप आत्मा है ता एक आत्माकेही यह नाशवान् सर्व देह कथन करै हैं तिसै कारणतैं तूं युद्ध कर ॥ १८ ॥

भा० टी०-वृद्धिक्षयवाले होणेतैं शरीर नामकरिकै प्रसिद्ध तथा नाशरूप अंतवाले जो यह प्रत्यक्ष देह हैं । इहां (देहाः) या बहुवचनकरिकै

स्थूल सूक्ष्म कारणरूप जितनेक विराट् सूत्र अव्याकृत नामा समष्टि व्यष्टि शरीर हैं तिन सर्व शरीरोंका ग्रहण करणा। और नित्य तथा विनाशतैं रहित तथा आध्यासिकसम्बन्धकरिकै शरीरवाला ऐसा जो स्वप्रकाश स्फुरणरूप आत्मा है ता एकही आत्माके ते स्थूल सूक्ष्म कारणरूप सर्व शरीर दृश्यरूप हैं तथा भोगरूप हैं यातें श्रुतिभगवतीनैं तथा ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंनैं ते सर्व देह दृश्यत्वरूपकरिकै तथा भोग्यत्वरूपकरिकै ता एकही आत्माके सम्बन्धी कथन करे हैं। तहां तैत्तिरीय श्रुतिविषे अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय या पंच कोशोंकी कल्पना करिकै तिन सर्व कोशोंका अधिष्ठानरूप तथा अकल्पित पुच्छप्रतिष्ठारूप ब्रह्म कथन करा है। तहां पंचीकृत पंचमहाभूत जो हैं तथा तिन पंचमहाभूतोंका कार्यरूप जो सर्व मूर्त्त पदार्थोंका समुदायरूप विराट् है सो अन्नमयकोश है। यह स्थूल समष्टि है। और ता स्थूल समष्टिका कारणरूप जो अपंचीकृत पंचमहाभूत हैं तथा तिन अपंचीकृत भूतोंका कार्यरूप जो सर्व अमूर्त्त-पदार्थोंका समुदायरूप सूत्रनामा हिरण्यगर्भ है सो सूक्ष्म समष्टि है। तहां "त्रयं वा इदं नाम रूपं कर्मेति" या बृहदारण्यक उपनिषद्की श्रुतिनैं ता सूक्ष्म समष्टिकूं नाम, रूप, कर्म यह तीन रूप कह्या है तहां सो सूक्ष्म समष्टि अपणेविषे स्थित कर्मरूपताकरिकै जबी क्रियाशक्तिमात्रकूं ग्रहण करै है तबी प्राणमय संज्ञाकूं प्राप्त होवै है। और सो सूक्ष्म समष्टि अपणेविषे स्थित नामरूपताकरिकै जबी ज्ञानशक्तिमात्रकूं ग्रहण करै है तबी मनोमय संज्ञाकूं प्राप्त होवै है और सो सूक्ष्म समष्टि अपणेविषे स्थितरूप स्वरूपताकरिकै तिस क्रियानाम दोनोंका आश्रय होणेतैं जबी कर्तृत्व-मात्रकूं ग्रहण करै है तबी विज्ञानमय संज्ञाकूं प्राप्त होवै है। या प्रकार सो एकही हिरण्यगर्भनामा लिंगशरीररूप कोश प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय यह तीन कोशरूप होवैहै और ता हिरण्यगर्भरूप लिंगशरीरकाभी कारणरूप तथा सर्व प्रपंचके वासनारूप संस्कारोंका आश्रयरूप ऐसा जो अव्याकृत नामा माया उपहितचैतन्य आत्मा है सो आनन्दमयकोश है। ते अन्नमयादिक

सर्व एकही आत्माके शरीर श्रुतिनै कहे हैं। तहां श्रुति। "तस्यैष एव शारीर आत्मा यः पूर्वस्येति"। अर्थ यह-पूर्व अन्नमयकोशका जो सत्यज्ञान अनन्तरूप शारीर आत्मा कथन करा है तिस प्राणमयकोशकाभी सोईही शारीर आत्मा है शरीरविषे जो विद्यमान होवै ताका नाम शारीर है इति। या प्रकारका श्रुतिवचन मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय या तीन कोशोंविषेभी जानि लेणा यह पंचकोशोंकी प्रक्रिया आत्मपुराणके दशम अध्यायविषे हम विस्तारतैं कथन करि आये हैं। अथवा (अंतवंत इमे देहाः) या श्लोकके पदोंकी या प्रकारतैं योजना करणी। तीन लोकविषे वर्त्तमान सर्व प्राणियोंके संबंधी जो स्थावरजंगमरूप देह हैं ते सर्व देह एकही स्वयंज्योति आत्माके श्रुतिनै कथन करे है तहां श्रुति। "एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतांतरात्मा। कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च" अर्थ यह-एक अद्वितीय आत्मादेव सर्व शरीरोंविषे गूढ होइकै स्थित है तथा सर्वव्यापी है तथा सर्व भूतोंका अन्तरआत्मा है तथा पुण्यपापरूप कर्मोंका फलप्रदाता है। तथा सर्व भूतोंका अधिष्ठान है तथा बुद्धि आदिक सर्व संघातका साक्षी है तथा चैतन्यरूप है तथा अद्वितीयरूप है तथा निर्गुण है तथा निष्क्रिय है इति। यह श्रुति स्थावरजंगमरूप सर्व शरीरोंके संबंधवाले एक नित्य विभु आत्माकूं कथन करै है। शंका-हे भगवन् ! जिवनेपर्यंत यह काल रहै है तितनपर्यंत स्थायी होणा याका नाम नित्यपणा है। सो यह नित्यपणा कालके साथि आत्माका नाश अंगीकार किये हुए भी अविद्यादिकोंकी न्याई ता आत्माविषे संभव होइ सकै है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहै हैं। (अनाशिनः इति) हे अर्जुन! देशकालवस्तुपरिच्छेदवाले जो अविद्यादिक हैं ते अविद्यादिक अधिष्ठान आत्माविषे कल्पित होणेतैं यद्यपि अनित्य हैं तथापि तिन अविद्यादिकोंविषे सो यावत्काल स्थायित्वरूप गौण नित्यपणा प्रतीत होवै है। तीन कालविषे अबाध्यत्वरूप मुख्य नित्यत्व तिन अविद्यादिकोंविषे है नहीं।

और देशकालवस्तुपरिच्छेदतैं रहित होणेतैं अकल्पित जो आत्मा है ता आत्माके नाशका कोई कारण है नहीं यातैं ता आत्माविषे मुख्यही कूटस्थरूप नित्यत्व है । अविद्यादिकोंकी न्याईं परिणामिरूप नित्यत्व तथा यावत्कालस्थायित्वरूप नित्यत्व ता आत्माविषे है नहीं । शंका—ऐसे सर्व देहोंके सम्बन्धवाले चैतन्य आत्माविषे कोई प्रमाण है अथवा नहीं है तहां ता चैतन्य आत्माविषे कोई प्रमाण नहीं है यह द्वितीयपक्ष तौ संभवै नहीं काहेतैं जो वस्तु किसी प्रमाणजन्य ज्ञानका विषय नहीं होवै है सो वस्तु असत्यही होवै है । जैसे वंध्यापुत्र तथा शशशृंग किसी प्रमाणजन्य ज्ञानके विषय नहीं हैं यातैं असत्यही हैं जैसे प्रमाणजन्य ज्ञानका अविषय होणेतैं सो चैतन्य आत्माभी असत्यही होवैगा । तथा ता आत्माके साक्षात्कारवासतै जो शास्त्रका आरंभ है सो भी व्यर्थही होवैगा । इत्यादिक सर्व दोषोंकी निवृत्ति करणेवासतै ता देही आत्माविषे कोई प्रमाण है यह प्रथम पक्ष अवश्य करिकै अंगीकार करणा होवैगा । किंवा । ' शास्त्रयोनित्वात्' या सूत्रके व्याख्यानविषे भगवान् भाष्यकारोंनैंभी ता आत्माकी सिद्धिविषे एक उपनिषद्रूप शास्त्रही प्रमाण कह्या है । तथा " तंत्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि " या श्रुतिनैंभी ता आत्माकी सिद्धिविषे उपनिषद्रूप प्रमाण कथन करा है यातैं प्रमाणका विषय होणेतैं ता चैतन्यरूप आत्माविषे सो भेदरूप वस्तुपरिच्छेद अवश्य करिकै प्राप्त होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्री भगवान् कहैं है । (अप्रमेयस्येति) हे अर्जुन! जैसे घटपटादिक सर्व पदार्थोंकूं प्रकाश करणेहारा जो सूर्य भगवान् है ता सूर्यभगवान्कूं अपणे प्रकाशवासतै घटादिक पदार्थोंकी अपेक्षा होवै नहीं तैसे प्रमाणप्रमेयादिक सर्व जगत्कूं प्रकाश करणेहारा जो स्वप्रकाश चैतन्यरूप आत्मा है ता चैतन्य आत्माकूं अपणे प्रकाश करणेवासतै प्रमाणादिकोंकी अपेक्षा होवै नहीं या कारणतैं सो आत्मादेव अप्रमेय है तहां श्रुति । " एकधैवानुद्रष्टव्यमेतदप्रमेयं ध्रुवमप्रमेयं न तत्र सूर्यो भाति न चंद्रतारकं नेमा विद्युतो भांति कुतोयमग्निः तमेव भान्तमनुभाति सर्वं

तस्य भासा सर्वमिदं विभाति । येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात विज्ञातारमरे केन विजानीयात् ''। अर्थ यह–यह चैतन्यआत्मा एक प्रकारकरिकैही देखणे योग्य है तथा यह आत्मादेव अप्रमेय है तथा कूटस्थ है तथा अप्रमेय है । और ता स्वयंज्योति आत्माविषे सूर्यभी प्रकाश करै नहीं तथा चन्द्रमा तारागणभी प्रकाश करै नहीं तथा विद्युत्भी प्रकाश करै नही तथा यह अग्निभी प्रकाश करै नहीं और ता स्वयंज्योति आत्माके प्रकाशकूं आश्रयणकरिकैही पश्चात् यह सूर्यचन्द्रमादिक सर्व पदार्थ प्रतीत होवै है तथा ता आत्मादेवके स्वयंज्योति प्रकाशकरिकैही यह सूर्यचन्द्रमादिक सर्व जगत् प्रकाशमान होवै है। और जिस स्वयंज्योति आत्माकरिकै यह लोक या सर्व पदार्थोंकूं जानै हैं तिस सर्वके द्रष्टा विज्ञाता आत्माकूं यह जीव किस प्रमाणकरिकै जानि सकैगा किंतु किसी भी प्रमाणकरिकै जानि सकै नहीं इति। ऐसे स्वयंज्योति आत्माकूं अपणे प्रकाशवासतै किसीभी प्रमाणकी अपेक्षा है नहीं किंतु अपणेविषे कल्पित जो अज्ञान है तथा ता अज्ञानका कार्य है ता कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्तिवासतै ता स्वयंज्योति आत्माकूं कल्पित वृत्तिविशेषकी अपेक्षा है काहेतै जैसा यक्ष होवै तैसाही तिसका बलि होवै है या शास्त्रके न्यायतै कल्पित वस्तुका कल्पित वस्तुही विरोधी सिद्ध होवै है यातै कल्पित अंतःकरणकी वृत्तिकरिकै कल्पित कार्य सहित अज्ञानकी निवृत्ति संभवै है। और कल्पित सर्व प्रपंचकी निवृत्ति करणेहारी सा अंतःकरणकी वृत्तिविशेष केवल तत्त्वमसि आदिक वाक्यमात्रतैंही उत्पन्न होवै है प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंकरिकै उत्पन्न होवै नहीं यातें ता वृत्तिविशेषकी उत्पत्तिवासतै शास्त्रका आरंभभी सफल है। और सो चैतन्यस्वरूप आत्मादेव सर्व कालविषे स्वतःही प्रकाशमान है तथा सर्व कल्पनाका अधिष्ठान है तथा सर्व दृश्यप्रपंचका प्रकाशक है। ऐसे स्वप्रकाश अधिष्ठान आत्माविषे वंध्यापुत्र शशशृंगादिकोंकी न्याईं असत्यरूपता संभवै नहीं । और'' एकमेवाद्वितीयं सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म'' इत्यादिक शास्त्र

अद्वितीयब्रह्मतें भिन्न सर्व जगत्विषे कल्पितपणेकूं कथन करता हुआ अंपणेविषेभी कल्पितरूपताकूं बोधन करै है। जो कदाचित् सो शास्त्र अपणे विषे कल्पितपणेकूं नहीं बोधन करैगा तौ सो शास्त्र सद्वितीय ब्रह्मकूं अद्वितीयरूपकरिकै बोधन करता हुआ आपही अप्रमाणरूप होवैगा और कल्पित वस्तु अकल्पित वस्तुके परिच्छेदकूं करै नहीं यह वार्त्ता पूर्व कथन करि आये हैं यातें ता स्वप्रकाश आत्माविषे भेदरूप वस्तुपरिच्छेदकीभी प्राप्ति होवै नहीं । किंवा । सर्वकालविषे आत्माकी स्वप्रकाशता केवल श्रुति प्रमाणकरिकैही सिद्ध नहीं है किंतु भगवान् भाष्यकारोंनैं युक्तितैंभी सा आत्माकी स्वप्रकाशता सिद्ध करी है । सा युक्ति यह है—जिस पुरुषकूं जिस वस्तुविषे संशय, विपर्यय, व्यतिरेकप्रमा या तीनोंविषे एकभी नहीं होवै है तिस पुरुषकूं तिस वस्तुविषे तिन संशयादिकोंका विरोधी ज्ञान अवश्यकरिकै होवै है । या प्रकारका नियम सर्वत्र देखणेविषे आवै है जैसे जिस पुरुषकूं जिस घटविषे घट है अथवा नहीं है या प्रकारका संशय तथा घट नहीं है या प्रकारका विपर्यय तथा घट नहीं है या प्रकारकी व्यतिरेकप्रमा या तीनोंविषे एकभी नहीं होवै है तिस पुरुषकूं तहां तिन संशयादिक तीनोंका विरोधी 'घटोऽस्ति' या प्रकारका ज्ञान अवश्यकरिकै होवै है जो कदाचित् सो विरोधी ज्ञान तहां नहीं होवै तौ तिन संशयादिक तीनोंविषे कोई एक अवश्य होणा चाहिये। और आत्माविषे तौ किसीभी पुरुषकूं मैं हूं अथवा नहीं हूं या प्रकारका संशय तथा मैं नहीं हूं या प्रकारका विपर्यय तथा मैं नहीं हूं या प्रकारकी व्यतिरेकप्रमा या तीनोंविषे एकभी होवै नहीं यातें तिन सर्व पुरुषोंकूं सर्वकालविषे तिन संशयादिकोंका विरोधी आत्माके वास्तवस्वरूपका ज्ञान अवश्य कहणा होवैगा। जो कदाचित् सो आत्माके स्वरूपका ज्ञान नहीं होवै तौ तिन संशयादिक तीनोंविषे कोई एक अवश्य करिकै होणा चाहिये और आत्माविषे तें संशयादिक होवे नहीं यातैं सो आत्मा सर्व कालविषे स्वप्रकाशरूप है इति । किंवा । वेदांतसिद्धांतविषे सो स्वप्रकाशज्ञान

आत्माके आश्रित रहै नहीं किंतु ता स्वप्रकाशज्ञानरूपही आत्मा है। जो कदाचित् आत्माकूं ता ज्ञानका आश्रय मानिये तौ जो वस्तु जिस ज्ञानका आश्रयरूप कर्त्ता होवै है सोईही वस्तु तिस ज्ञानका विषयरूप कर्म होवै नहीं किंतु ज्ञानका कर्त्ता तथा कर्म भिन्न भिन्न होवै है यातें ता ज्ञानकरिकै आत्माकी सिद्धि नहीं होवैगी । किंवा । आत्माकूं जो ज्ञानतें भिन्न मानिये तौ जो जो पदार्थ ज्ञानतें भिन्न होवै है सो सो पदार्थ जडही होवै है । जैसे ज्ञानतें भिन्न होणेतें घटादिक पदार्थ जडरूप हैं तैसे ज्ञानतें भिन्न होणेतें आत्माभी जडरूप होवैगा । और जो जो पदार्थ जड होवैं हैं सो सो पदार्थ कल्पित होवैं हैं जैसे जड होणेतें घटादिक पदार्थ कल्पित हैं तैसे जड होणेतें आत्माभी कल्पित होवैगा । आत्माके कल्पित हुए शून्यवादकी प्राप्ति होवैगी यातें आत्मा ज्ञानतें भिन्न नहीं है। किंतु आत्मा स्वप्रकाश-ज्ञानस्वरूपही है । ऐसा स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप हुआभी यह आत्मा अविद्यारूप उपाधिके संबंधतें साक्षी कह्याजावै है। और वृत्तिमत् अंतः-करणरूप उपाधिके संबंधतें प्रमाता कह्या जावै है । तिसी प्रमाताके यह चक्षुआदिक इंद्रिय करण होवैं हैं। और सोईही प्रमाता तिन चक्षुआदिक इंद्रियोंद्वारा अंतःकरणके वृत्तिरूप परिणामके साथि बाह्य घटादिक पदार्थोंकूं व्याप्य करिकै तिन घटादिकोंके आकार होवै है । तिस अंतः-करणके एकही वृत्तिरूप परिणामविषे घटावच्छिन्न चैतन्य तथा अंतः-करणावच्छिन्न चैतन्य दोनों एकताभावकूं प्राप्त होवैं हैं । जैसे गृहविषे घटके प्राप्त हुए ता गृहाकाशकी तथा घटाकाशकी एकता होवै है। तैसे वृत्तिरूप उपाधिके तथा घटरूप उपाधिके एकदेशविषे स्थित हुए ता वृत्तिउपहित चेतनकी तथा घटउपहित चेतनकी एकता होवैहै । तिसतें अनंतर सो घटावच्छिन्न चैतन्य प्रमाता चैतन्यके अभेदतें अपणे अज्ञानकूं नाश करता हुआ अपरोक्ष होवैहै ।और अपणा उपाधिरूप जो घट है ता घटकूं अपणे तादात्म्य अध्यासतें सो चैतन्य प्रकाश करै है। और अत्यंत

स्वच्छ जो अंतःकरणकी परिणामरूप वृत्ति है ता वृत्तिकूं ता वृत्तिउपहित चैतन्य प्रकाश करै है। इस प्रकार अंतःकरण, वृत्ति, घट या तीनोंकी अपरोक्षता होवै है। 'अहं जानामि घटम्' यह तीनोंके अपरोक्षताका आकार है। इस प्रकार अंतरबाहिर स्थित सर्व अनात्मपदार्थोंकूं प्रकाशकरणेहारा चैतन्य यद्यपि एकरूप है तथापि घटादिक बाह्य पदार्थोंके प्रकाश करणेविषे ता चैतन्यकूं अंतःकरणके वृत्तिकी अपेक्षा रहै है। या कारणतैंहीं ता चैतन्य विषे प्रमातापणा है। और अंतःकरणके तथा ता अंतःकरणकी वृत्तियोंके प्रकाश करणे विषे ता चैतन्यकूं किसी वृत्तिकी अपेक्षा है नहीं या कारणतैंही ता चैतन्यविषे साक्षीरूपता है। जो कदाचित सो चैतन्य अंतःकरणके वृत्तिकूं घटादिकोंकी न्याईं दूसरी वृत्तिकी अपेक्षाकरिकै प्रकाश करेगा तौ ता दूसरी वृत्तिकूं तीसरी वृत्तिकी अपेक्षाकरिकै प्रकाश करैगा ता तीसरी वृत्तिकूं चतुर्थ वृत्तिकरिकै प्रकाश करैगा। या प्रकार वृत्तियोंकी धारा मानणेविषे अनवस्थादोषकी प्राप्ति होवैगी यातैं सो साक्षी आत्मा अपणे स्वरूपतैंही अंतःकरणकूं तथा ताके वृत्तियोंकूं प्रकाश करै है। तिनोंके प्रकाशविषे वृत्तिकी अपेक्षा करै नहीं यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। जिसकारणतैं पूर्व उक्त श्रुतियुक्तियोंकरिकै यह स्वप्रकाश स्फुरणरूप आत्मा सर्वदा नित्य है तथा सर्वत्र व्यापक है तथा जन्ममरणरूप संसारतैं रहित है तथा सर्व पदार्थोंका प्रकाशक है तथा सर्वदा एकरूप है। तिस कारणतैं ऐसे अविनाशी आत्माके नाशकी शंका करिकै अपणे युद्धरूप धर्मविषे पूर्व प्रवृत्त हुए तुम्हारेकूं तिस युद्धतैं उपराम होणा योग्य नहीं है। या प्रकारका वचन श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति कहै हैं (तस्मायुद्धचस्व भारत) इति। तात्पर्य यह। स्वप्रकाशज्ञानरूप आत्मा तौ कदाचित्भी नाश होवै नहीं। और यह भीष्मद्रोणादिकशरीर तौ मिथ्यारूप हैं तथा अनित्य हैं। यातैं ते शरीर आपही नष्ट हुए जैसे हैं। ऐसे अनित्य शरीरोंके हननतैं निवृत्त होइकै तूं अपणे स्वधर्मकूं नाश मत कर इति। इहां (युद्धचस्व) या वचनकरिकै भगवान्नैं अर्जुनके प्रति युद्धरूप कर्मका विधान नहीं करा।

किंतु ता वचनकरिकै भगवान्नै पूर्व प्राप्त युद्धका अनुवाद मात्र करा है काहेतैं आत्मज्ञानके उपदेशप्रसंगमैं ता युद्धरूप धर्मकी विधि संभवै नही । किंतु, भगवानके उपदेशतैं विनाही सो अर्जुन पूर्व युद्धविषे प्रवृत्त हुआ था । परन्तु शोकमोहके वशतै सो अर्जुन ता युद्धतैं निवृत्त होता भया । सो शोकमोह भगवान्के उपदेशजन्यज्ञानतैं निवृत्त होता भया । यातैं 'अपवादाऽपवादे उत्सर्गस्य स्थितिः' या न्यायकरिकै (युद्धयस्व) यह भगवान्का वचन अनुवादरूपही है विधिरूप नहीं । इहां पूर्व प्राप्त युद्धका शोकमोह अपवाद है और ता शोकमोहका विचारजन्यज्ञान अपवाद है । ता शोकमोहरूप अपवादके विचारजन्य ज्ञानरूप अपवादके विद्यमान हुए तहां पूर्वप्राप्त युद्धरूप उत्सर्गकीही स्थिति होवै है । जैसे भोजन करणेविषे प्रवृत्त हुआ क्षुधावान् पुरुष किसी अशुद्धि आदिकोंकी शंकाकरिकै ता भोजनतैं निवृत्त होइ जावै और कोई धर्मात्मा पुरुष ताके शंकाकी निवृत्ति करिकै ता पुरुषके प्रति तूं भोजन कर या प्रकारका वचन कहै। इहां तूं भोजन कर या प्रकारका वचन विधिरूप नहीं है किंतु पूर्व प्राप्त भोजनका अनुवादरूप है । पूर्व अप्राप्त अर्थके बोधन करणेहारा वचनही विधिरूप होवै है । और कोईक ग्रंथकार तौ (युद्धयस्व) या वचनकूं विधिरूप मानिके मोक्षकी प्राप्तिविषे ज्ञान कर्म दोनोका समुच्चय अंगीकार करे हैं सो तिनोंका कहणा असंगत है । काहेतैं (युद्धयस्व) या वचनकूं मोक्षकी प्राप्ति ज्ञान कर्म दोनोंके समुच्चयतैं होवै है यह अर्थ प्रतीत होवै नहीं और ज्ञान कर्मका समुच्चय आगे विस्तारतैं खंडन करेंगे ॥ १८ ॥

हे भगवन् ! (अशोच्यानन्वशोचस्त्वम्) इत्यादिक वचनोंकरिकै भीष्मद्रोणादिक बांधवोंके नाश जन्य शोकके निवृत्ति हुएभी तिन भीष्मद्रोणादिकोंके नाशकरणेतैं उत्पन्न होणेहारा जो पाप है ता पापके निवृत्त करणेका कोई उपाय है नहीं । और जो आप यह कहो जहां शोक नहीं होवै है तहां पापभी नहीं होवै है। सो यह नियम संभवता नहीं । काहेतैं किसी पुरुषनैं अपने शत्रु ब्राह्मणका हनन करा । तहां ता शत्रु ब्राह्मणके

हनन करणेविषे ता पुरुषकूं शोक तो होवै नहीं। यातें ता पुरुषकूं ता ब्रह्महत्याजन्य पापभी नहीं होणा चाहिये। और शोकके नहीं हुएभी ता पुरुषकूं पाप तो अवश्यकरिकै होवै है। यातें भीष्मद्रोणादिकोंकूं हनन कर्त्ता जो मैं अर्जुन हूं तथा तिनोंके हनन करणेविषे हमारेकूं प्रेरणा करणेहारे जो आप हो तिन हम दोनोंकूंही ता बांधवोंकी हिंसातें पाप अवश्यकरिकै होवैगा यातें तूं युद्ध कर, यह जो वचन पूर्व आपनें कथन करा है सो असंगत है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कठवल्लीउपनिषद्के मंत्रकरिकै ता शंकाकी निवृत्ति करैं हैं—

य एनं वेत्ति हंतारं यश्चैनं मन्यते हतम् ॥
उभौ तौ न विजानीतो नायं हंति न हन्यते॥१९॥

(पदच्छेदः) यः। एनम्। वेत्ति। हंतारम्। यः। च। एनम्। मन्यते। हतम्। उभौ। तौ। न। विजानीतः। न। अयम्। हंति। न। हन्यते ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष इस आत्माकूं हननकर्त्ता जानै है तथा जो पुरुष इस आत्माकूं हनन हुआ मानै है वे दोनों पुरुष आत्माकूं नहीं जानते हैं काहेतें यह आत्मा किसीकूंभी नहीं हनन करै है तथा आपभी नहीं हननकूं प्राप्त होवै है ॥ १९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पूर्व हमनें कथन करा जो अविनाशी अप्रमेयरूप देही आत्मा है। ता आत्माकूं जो पुरुष मैं इस वस्तुका हनन करणेहारा हूं या प्रकार हननरूप क्रियाका कर्त्ता जानै है। और जो पुरुष इस आत्मादेवकूं देहके हनन करिकै मैं हनन हुआ हूं या प्रकार हननक्रियाका कर्मरूप जानै है, ते दोनों पुरुष देहाभिमानी होणेतें कर्त्ताकर्मभावतें रहित अधिकारी आत्माकूं शास्त्र प्रमाणतें देहादिकोंतें भिन्न करिकै जानते नहीं। क्यूं नहीं जानते जिस कारणतें यह आत्मादेव किसीभी प्राणीकूं हनन करता नहीं। तथा आपभी किसी

करिकै हनन होता नहीं । ऐसे हनन क्रियाके कर्त्ताकर्मभावतैं रहित आत्मादेवकूं जे मूढ पुरुष ता हननक्रियाका कर्तारूप तथा कर्मरूप माने है ते मूढ पुरुष आत्माके वास्तव स्वरूपकूं जानते नहीं । ' इहां यद्यपि (य एनं वेत्ति हंतारं हतं वा) इतनें वचनमात्र कहणेकरिकैही ता पूर्व उक्त अर्थकी सिद्धि होइ सकै है । यातै (य एनं वेत्ति हंतारं यश्चैनं मन्यते हतम्) यह दोवार पदोंकी आवृत्ति करणी निष्फल है तथापि सा पदोंकी आवृत्ति वाक्यके अलंकारवासतै है इति । अथवा (य एनं वेत्ति हंतारम्) या वचनकरिकै नैयायिकोंका कथन करा है । काहेतै ते नैयायिक आत्माकूंही हननादिक क्रियावेंका कर्ता माने हैं और (यश्चैनं मन्यते हतं) या वचनकरिकै चार्वाकोंका कथन करा है । काहेतै ते चार्वाकादिक शरीरादिरूप आत्माकूं नाशवान् माने है । ते नैयायिक तथा चार्वाक दोनों आत्माके वास्तव स्वरूपकूं जानते नहीं । या प्रकार तिन वादियोंके भेद जनावणेवासतै सा दोवार पदोंकी आवृत्ति करी है इति । अथवा जे पुरुष आत्माकूं हननक्रियाका कर्त्ता जानेहैं ते पुरुष अत्यंत शूरवीर हैं और जे पुरुष ता आत्माकूं हननक्रियाका कर्म मानै है ते पुरुष अत्यंत कायर है या प्रकारके भेद जनावणेवासतै सा दोवार पदोकी आवृत्ति करी है इति । इहां (य एनं वेत्ति हंतारं यश्चैनं मन्यते हतम्) या श्लोकके पूर्वार्द्धविषे "हंता चेन्मन्यते हंतुं हतश्चेन्मन्यते हतम् "या कठवल्ली श्रुतिके पूर्वार्द्धका अर्थ निरूपण करा । श्रुतिका तथा श्लोकका उत्तरार्ध एकसरीखाही है ॥ १९॥

हे भगवन् ! यह आत्मादेव ता हननरूप क्रियाका कर्त्तारूप तथा कर्मरूप किस कारणतैं नहीं होवे है ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए यह आत्मा देव जन्मादिक सर्व विकारतैं रहितहै यातैं वाहननरूप क्रियाका कर्त्तारूप तथा कर्मरूप होवै नहीं । या प्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् ता कठवल्ली उपनिषद्के द्वितीय मंत्र करिकै कथन करै हैं—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ॥ अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ २० ॥

(पदच्छेदः) न। जायते। म्रियते। वा। कदाचित्। न। अयम्। भूत्वा। भविता। वा। न। भूयः। अजः। नित्यः। शाश्वतः। अयम्। पुराणः। न। हन्यते। हन्यमाने। शरीरे॥२०॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह आत्मादेव नहीं जन्मे है तथा नहीं मरे है तथा यह आत्मा कदाचित्भी पूर्व नहीं होइकरिके पुनः उत्पत्तिमान् नहीं होवै है जिस कारणतें यह आत्मादेव अज है तथा अनित्य है तथा शाश्वत है तथा पुराण है ऐसा आत्मा शरीरके हनने हुएभी नहीं हनने होवै है ॥ २० ॥

भा० टी०—जन्म, अस्ति, वृद्धि, विपरिणाम, अपक्षय, विनाश, यह षट् भावविकार शास्त्रविषे कथन करे हैं तिन षट् विकारोंविषे आद्यके जन्मरूप विकारका तथा अंतके नाशरूप विकारका श्रीभगवान् खंडन करे हैं (न जायते म्रियते वेति) हे अर्जुन ! यह आत्मादेव जन्मकूं प्राप्त होवै नहीं। काहेतें यह आत्मादेव किसीभी कालविषे पूर्व नहीं होइकै पश्चात् उत्पत्तिवाला होता नहीं। जो पदार्थ पूर्व नहीं होइकै पश्चात् होवै है, सो पदार्थही उत्पत्तिरूप विक्रियाकूं प्राप्त होवै है। जैसे घटादिक पदार्थ पूर्व नहीं होइकै पश्चात् होवै हैं । यातें ते घटादिक पदार्थ उत्पत्तिरूप विकारवालेभी हैं । और यह आत्मादेव तौ पूर्वकालविषेभी विद्यमान है। यातें यह आत्मादेव उत्पत्तिरूप विकारकूं प्राप्त होवै नहीं । या कारणतें यह आत्मादेव अज है और यह आत्मादेव मरणरूप विकारकूंभी प्राप्त होवै नहीं। काहेतें यह आत्मादेव पूर्वकालविषे विद्यमान होइकै कदाचित्भी उत्तरकालविषे अविद्यमान होवै नहीं। जो पदार्थ पूर्वकालविषे विद्यमान होइकै उत्तरकालविषे नहीं विद्यमान होवै है सो

करिकै हनन होता नहीं । ऐसे हनन क्रियाके कर्त्ताकर्मभावतैं रहित आत्मादेवकूं जे मूढ पुरुष ता हननक्रियाका कर्तारूप तथा कर्मरूप माने हैं ते मूढ पुरुष आत्माके वास्तव स्वरूपकूं जानते नहीं । इहां यद्यपि (य एनं वेत्ति हंतारं हतं वा) इतनैं वचनमात्र कहणेकरिकैही ता पूर्व उक्त अर्थकी सिद्धि होइ सकै है । यातैं (य एनं वेत्ति हंतारं यश्चैनं मन्यते हतम्) यह दोवार पदोंकी आवृत्ति करणी निष्फल है तथापि सा पदोंकी आवृत्ति वाक्यके अलंकारवासतैं है इति । अथवा (य एनं वेत्ति हंतारम्) या वचनकरिकै नैयायिकोंका कथन करा है । काहेतैं ते नैयायिक आत्माकूंही हननादिक क्रियावोंका कर्ता माने हैं और (यश्चैनं मन्यते हतं) या वचनकरिकै चार्वाकोंका कथन करा है । काहेतैं ते चार्वाकादिक शरीरादिरूप आत्माकूं नाशवान् माने हैं । ते नैयायिक तथा चार्वाक दोनों आत्माके वास्तव स्वरूपकूं जानते नहीं । या प्रकार तिन वादियोंके भेद जनावणेवासतैं सा दोवार पदोंकी आवृत्ति करी है इति । अथवा जे पुरुष आत्माकूं हननक्रियाका कर्त्ता जानैहै ते पुरुष अत्यंत शूरवीर हैं और जे पुरुष ता आत्माकूं हननक्रियाका कर्म मानै है ते पुरुष अत्यंत कायर हैं या प्रकारके भेद जनावणेवासतैं सा दोवार पदोंकी आवृत्ति करी है इति । इहां (य एनं वेत्ति हंतारं यश्चैनं मन्यते हतम्) या श्लोकके पूर्वार्द्धविषे "हंता चेन्मन्यते हंतुं हतश्चेन्मन्यते हतम् "या कठवल्ली श्रुतिके पूर्वार्द्धका अर्थ निरूपण करा । श्रुतिका तथा श्लोकका उत्तरार्ध एकसरीखाही है ॥ १९ ॥

हे भगवन् ! यह आत्मादेव ता हननरूप क्रियाका कर्त्तारूप तथा कर्मरूप किस कारणतैं नहीं होवै है ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए यह आत्मा देव जन्मादिक सर्व विकारतैं रहितहै यातैं ताहननरूप क्रियाका कर्त्तारूप तथा कर्मरूप होवै नहीं । या प्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् ता कठवल्ली उपनिषद्के द्वितीय मंत्र करिकै कथन करै हैं-

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ॥ अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ २० ॥

(पदच्छेदः) न । जायते । म्रियते । वा । कदाचित् । न । अयम् । भूत्वा । भविता । वा । न । भूयः । अजः । नित्यः । शाश्वतः । अयम् । पुराणः । न । हन्यते । हन्यमाने । शरीरे ॥ २० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह आत्मादेव नहीं जन्मे है तथा नहीं मरे है तथा यह आत्मा कदाचित्भी पूर्व नहीं होइकरिकै पुनः उत्पत्तिमान् नहीं होवै है जिस कारणतैं यह आत्मादेव अज है तथा अनित्य है तथा शाश्वत है तथा पुराण है ऐसा आत्मा शरीरके हनन हुएभी नहीं हनन होवै है ॥ २० ॥

भा० टी०—जन्म, अस्ति, वृद्धि, विपरिणाम, अपक्षय, विनाश यह षट् भावविकार शास्त्रविषे कथन करे हैं तिन षट् विकारोंविषे आद्यके जन्मरूप विकारका तथा अंतके नाशरूप विकारका श्रीभगवान् खंडन करे हैं (न जायते म्रियते वेति) हे अर्जुन ! यह आत्मादेव जन्मकूं प्राप्त होवै नहीं। काहेतैं यह आत्मादेव किसीभी कालविषे पूर्व नहीं होइकै पश्चात् उत्पत्तिवाला होता नहीं। जो पदार्थ पूर्व नहीं होइकै पश्चात् होवै है, सो पदार्थही उत्पत्तिरूप विक्रियाकूं प्राप्त होवै है। जैसे घटादिक पदार्थ पूर्व नहीं होइकै पश्चात् होवै हैं । यातें ते घटादिक पदार्थ उत्पत्तिरूप विकारवालेभी हैं । और यह आत्मादेव तौ पूर्वकालविषेभी विद्यमान है। यातें यह आत्मादेव उत्पत्तिरूप विकारकूं प्राप्त होवै नहीं । या कारणतैं यह आत्मादेव अज है और यह आत्मादेव मरणरूप विकारकूंभी प्राप्त होवै नहीं। काहेतें यह आत्मादेव पूर्वकालविषे विद्यमान होइकै कदाचित्भी उत्तरकालविषे अविद्यमान होवै नहीं ।जो पदार्थ पूर्वकालविषे विद्यमान होइकै उत्तरकालविषे नहीं विद्यमान होवै है सो

पदार्थही मरणरूप विकारकूं प्राप्त होवै है । जैसे घटादिक पदार्थ पूर्वकाल-विषे विद्यमान होइकै उत्तरकालविषे अविद्यमान होवै है । याते ते घटा-दिक पदार्थ नाशरूप विकारकूंभी प्राप्त होवै हैं । और यह आत्मादेव तौ ता उत्तरकालविषेभी विद्यमान है यातै यह आत्मादेव मरणरूप विकारकूं प्राप्त होवै नहीं । या कारणतै यह आत्मादेव नित्य है विनाश होणेके योग्य नहीं है । इहां (न जायते म्रियते वा) या वचनकरिकै आत्माके जन्ममरणके अभावकी प्रतिज्ञा करी । और (कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः) या वचनविषे स्थित पदोंकी दो प्रकारतै योजना करिके ता प्रति-ज्ञाका उपपादन करा और (अजो नित्यः) या वचनकरिके ता प्रति-ज्ञाका उपसंहार करा । इहां जन्मादिक षट्विकारोंविषे जन्मरूप जो आ-दिका विकार है तथा मरणरूप जो अंतका विकारहै तिन दोनो विकारोके निषेधकरिकै यद्यपि तिन दोनों विकारोंके मध्यवर्त्ति तथा तिन दोनों विका-रोंके व्याप्त जो चारि विकार हैं, तिनोंका निषेध होइ सकै है । तथापि इहां नहीं कथन करे जो गमन आगमनादिक विकार है तिन सर्व विकारोंके निषेधके जनावणेवासते श्रीभगवान् अपक्षय, वृद्धि या दोनो विकारोंका शाश्वत पुराण या दोनों शब्दोंकरिके निषेध करै हैं (शाश्वत इति) तहां यह आत्मादेव कूटस्थतारूप नित्यतावाला है । यातै या आत्मादेवका स्वरूपतैं अपक्षय होवै नही । और यह आत्मादेव निपुणहै । यातैं या आत्मादेवका गुणतैभी अपक्षय होवै नहीं । या कारणतैं यह आत्मादेव शाश्वत है । जो वस्तु अपक्षय अपचयतै रहित होके सर्व कालविषे विद्यमान होवै है ता वस्तुका नाम शाश्वत है । ऐसा यह आत्मादेवही है । शंका–हे भगवन् । यह आत्मादेव अपक्षयकूं तौ मत प्राप्त होवै तौभी वृद्धिकूं किसवासतै नहीं प्राप्त होवैं । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए भगवान् कैंहै है (पुराण इति) हे अर्जुन । यह आत्मादेव इसतै पूर्वभी नवीनही था । कोई इस लोकविषे यह आत्मादेव नवीन अवस्थाकूं प्राप्त भया नहीं । यात यह आत्मादेव पुराण है । तात्पर्य यह । सर्व काल-

विषे यह आत्मादेव एकरूप है इति । और या लोकविषे जो पदार्थ किसी उपचयरूप नवीन अवस्थाकूं प्राप्त होवै है। सो पदार्थही वृद्धिकूं प्राप्त होवै है । जैसे शरीरादिक पदार्थ हैं और यह आत्मादेव तौ सर्व कालविषे एकरूपही है यातें यह आत्मादेव अपचयकूं तथा उपचयकूं प्राप्त होवै नहीं । या कारणतें यह आत्मादेव वृद्धिकूं प्राप्त होवै नहीं इहां ज्वरादिक रोगोंकरिकै जो शरीरके अवयवोंकी क्षीणता है ताका नाम अपचय है । और अन्नादिकोंके भक्षणकरिकै जो शरीरके अवयवोंकी वृद्धि है ताका नाम उपचय है । इहां अस्ति, विपरिणाम यह दोनों विकार जन्म, नाश या दोनों विकारोंके अंतर्भूत हैं। यातें तिन दोनों विकारोंका पृथक् निषेध करा नहीं । ता जन्ममरणके निषेध करिकै अस्ति, विपरिणाम या दोनोंका निषेधभी जानि लेणा । हे अर्जुन! जिस कारणतें यह आत्मादेव जन्मादिक सर्व विकारोंतें रहित है । तिस कारणतें शस्त्रादिक उपायोंकरिकै या शरीरके हनन हुएभी ता शरीरके कल्पित सम्बन्धवाला हुआभी यह आत्मादेव किसीभी उपाय करिकै हननकूं प्राप्त होवै नहीं । जैसे घटरूप उपाधिके नाश हुएभी आकाशका नाश होवै नहीं । तैसे देहादिक उपाधियोंके नाश हुएभी आत्माका नाश होवै नहीं तहां श्रुति "अविनाशी वाऽरेऽयमात्मा" । अर्थ यह-हे मैत्रेयी ! यह आत्मादेव विनाशतें रहित है ॥ २० ॥

पूर्व (य एनं वेत्ति हंतारं) या श्लोकविषे (नायं हंति न हन्यते) या वचनकरिकै आत्मा नहीं तौ किसीकूं हनन करता है और नहीं किसी करिकै हत होता है या प्रकारकी प्रतिज्ञा करी थी । तहां आत्मा किसी करिकैभी हनन नहीं होता है या प्रतिज्ञाका तौ पूर्व श्लोकविषे विस्तारतें उपपादन करा । अब आत्मा किसीकूंभी हनन नहीं करता है या प्रतिज्ञाका उपपादन करता हुआ श्रीभगवान् पूर्व प्रसंगका उपसंहार करें हैं-

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ॥
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हंति कम् ॥२१॥

(पदच्छेदः) वेद । अविनाशिनम् । नित्यम् । यः । एनम् । अजम् । अव्ययम् । कथम् । सः । पुरुषः । पार्थ । कम् । घातयति । हंति । कम् ॥ २१ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! जो पुरुष इस आत्मादेवकूं अविनाशीरूप, नित्यरूप अजरूप अव्ययरूप जाने है सो पुरुष किसकूं हनन करे है तथा किसे प्रकारकरिकै हनन करे है और सो पुरुष किसकूं हननें करावै है तथा किस प्रकारकरिकै हनन करावै है किंतु सो पुरुष न किसीकूं हनन करे है तथा न किसीका हनन करावै है ॥ २१ ॥

भा० टी०—विनाश होणेका नहीं है स्वभाव जिसका ताकूं अविनाशी कहे हैं। ऐसा विनाशरूप अंतविकारतें रहित जो आत्मा है ताके अविनाशीपणेविषे हेतु कहे हैं (अव्ययम् इति) नहीं विद्यमान है अवयवोंका अपचयरूप तथा गुणोंका अपचयरूप व्यय जिसविषे ताका नाम अव्यय है । या लोकविषे पटादिक पदार्थोंका तंतु आदिक अवयवोंके अपचयकरिकै तथा रूपादिक गुणोंके अपचयकरिकै विनाश देखणेविषे आवै है । और यह आत्मादेव तौ निरवयव होणेतें अवयवोंके अपचयतें रहित है तथा निर्गुण होणेतें गुणोंके अपचयतें रहित है।यातें या आत्मादेवका कदाचित्भी विनाश संभवै नहीं । या कहणेतें यह अनुमान सिद्ध भया । आत्मा अविनाशी होणेकूं योग्य है अव्यय होणेतें जो पदार्थ अविनाशी नहीं होवै है सो पदार्थ अव्ययभी नहीं होवै है जैसे पटादिक पदार्थ हैं इति । शंका—हे भगवन् ! आत्मा विनाशी होणेकूं योग्य है जन्य होणेतें घटादिकोंकी न्याई या प्रकार जन्यत्व हेतुकरिकै आत्माविषे विनाशीपणेका अनुमानभी होइ सकै है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके निवृत्त करणेवास्तै श्रीभगवान् आत्माविषे ता जन्यत्वहेतुकी

असिद्धि कथन करैं हैं । (अजम् इति) जो कदाचित्‌भी जन्मकूं नहीं प्राप्त होवै ताका नाम अज है। ऐसा जन्मरूप आद्यविकारतैं रहित आत्मा है ; ता अजपणेविषे हेतु कहैं हैं । (नित्यम् इति) जो सर्वकालविषे विद्यमान होवै ताका नाम नित्य है, और या लोकविषे जो पदार्थ पूर्व नहीं विद्यमान होवै है ता पदार्थकाही जन्म देखणेविषे आवै है । जैसे घटपटादिक पदार्थ अपणी उत्पत्तितैं पूर्व नहीं विद्यमान हुएही पश्चात् जन्मकूं प्राप्त होवै हैं । और यह आत्मादेव तौ सर्व कालविषे विद्यमान है । यातैं या आत्मादेवका कदाचित्‌भी जन्म संभवै नहीं। या कहणेकरिकै यह अनुमान सिद्ध भया । आत्मा जन्मतैं रहित होणेकूं योग्य है । नित्य होणेतैं जो पदार्थ जन्मतैं रहित नहीं होवै है सो पदार्थ नित्यभी नहीं होवै है जैसे घटादिक पदार्थ हैं इति । अथवा । अविनाशी या पदकरिकै बाधतैं रहित सत्यवस्तुका ग्रहण करणा । और नित्य या शब्दकरिकै सर्वत्र व्यापक वस्तुका ग्रहण करणा । ताकेविषे हेतु कहैं है। (अजं अव्ययम् इति) इहां जन्मतैं रहित वस्तुका नाम अज है । और नाशतैं रहित वस्तुका नाम अव्यय है। और या लोकविषे जो पदार्थ उत्पत्तिमान् होवै है तथा नाशवान् होवै है सो पदार्थ सत्यरूप तथा सर्वत्र व्यापक होवै नहीं । जैसे उत्पत्तिनाशवान् घटादिक पदार्थ सत्यरूप नहीं हैं तथा सर्वत्र व्यापकभी नहीं हैं ।और यह आत्मादेव तौ उत्पत्तिनाशतैं रहित है । यातैं यह आत्मादेव सत्यरूप है तथा सर्वत्र व्यापक है । या कहणेकरिकै यह अनुमान सिद्ध भया । आत्मा अविनाशी तथा नित्य होणेकूं योग्य है अज तथा अव्यय होणेतैं जो पदार्थ अविनाशी तथा नित्य नहीं होवै है सो पदार्थ अज तथा अव्ययभी नहीं होवै है जैसे घटादिक पदार्थ हैं इति । इस प्रकार अविनाशीरूप तथा नित्यरूप तथा अजरूप तथा अव्ययरूप जो यह आत्मादेव है ता आत्मादेवकूं जो पुरुष गुरुशास्त्रके उपदेशतैं मैं जन्मादिक सर्व विकारोंतैं रहित हूं तथा बुद्धि आदिक सर्व पदार्थोंका प्रकाशक हूं तथा सर्व

द्वैतप्रपंचतैं रहित हूं तथा परमानंदबोधरूप हूं या प्रकार साक्षात्कार करै है, सो विद्वान पुरुष किसकूं हनन करै है तथा किस प्रकारकरिकैं हनन करै है । किंतु सो विद्वान पुरुष किसकूंभी हनन करता नहीं ।तथा किसी प्रकारकरिकैंभी हनन करता नहीं । और सो विद्वान् पुरुष किसकूं हनन करावै है । तथा किस प्रकारकरिकै हनन करावै है किंतु सो विद्वान् पुरुष किसकूंभी हनन करावता नहीं । तथा किसी प्रकारकरिकैंभी हनन करावता नहीं । काहेतैं जन्मादिक सर्व विकारोंतैं रहित तथा कर्त्ता-पणेतैं रहित जो विद्वान् पुरुष है ता विद्वान पुरुषकूं ता हननरूप क्रिया विषे साक्षात्कर्त्तापणा तथा प्रयोजककर्त्तापणा संभवै नहीं । तहां श्रुति । " आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पुरुषः । किमिच्छन्कस्य कामाय शरी-रमनुसंज्वरेत् " । अर्थ यह–यह विद्वान् पुरुष जभी परिपूर्ण अद्वितीय ब्रह्म मैं हूं या प्रकार आत्माकूं जानै है तभी यह विद्वान् पुरुष किस वस्तु-की इच्छा करता हुआ किसके प्रयोजनवासतै या शरीरकूं संताप करैगा किंतु नहीं करैगा इति। यह श्रुति शुद्ध आत्माके जानणेहारे विद्वान् पुरु-षविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व आदिक संसारके अभावकूं बोधन करै है। तात्पर्य यह । शुद्ध आत्माके ज्ञानकरिकै या विद्वान् पुरुषके अज्ञानकी निवृत्ति होवै है । ता अज्ञानके निवृत्त हुए अहं मम अध्यासकी निवृत्ति होवै है । ता अध्यासके निवृत्ति हुए रागद्वेषादिकोंकी निवृत्ति होवै है । ता रागद्वेषादिकोंके निवृत्त हुए कर्तृत्व भोक्तृत्व आदिकोंकी निवृत्ति होवै है। इस प्रकार आत्माका ज्ञानही सर्व अनर्थोंके निवृत्तिका कारण है । यहां इस श्लोकविषे श्रीभगवान्का यह अभिप्राय है । वास्तवतैं विचारकरिकैं देखिये तौ यह आत्मादेव सर्व विकारोंतैं रहित है यातैं कोईभी किसी कार्यकूं करता नहीं तथा करावता नहीं । तथापि यह मूढ पुरुष अज्ञानके वशतैं स्वमकी न्याईं अपणे आत्माविषे कर्तृत्वादिक धर्म मानै है । यह वार्त्ता (उभौ तौ न विजानीतः) या गीताके वचनकरिकै पूर्व कथन करि आये हैं । तहां श्रुतिभी । "ध्यायतीव लेलायतीव" ।

अर्थ यह—वास्तवतैं सर्व विकारोंतै रहित यह आत्मादेव बुद्धिरूप उपाधि जभी ध्यान करै है तभी ध्यान करताकी नाईं प्रतीत होवै है और बुद्धिरूप उपाधि जभी चलायमान होवै है तभी चलायमान हुएकी न्याईं प्रतीत होवै है इति । इसी कारणतैं सर्व शास्त्र अविद्वान् अधिकारीके वासतैही कथन करैं हैं विद्वान् पुरुषके वासतै कोईभी शास्त्र है नहीं । काहेतैं सो विद्वान् पुरुष तौ आत्मज्ञानकरिकै अज्ञानरूप मूलसहित अध्यासके निवृत्ति हुए आत्माविषे कर्तृत्वादिक मानता नहीं । जैसे स्थाणुके वास्तव स्वरूपकूं जानणेहारा पुरुष ता स्थाणुविषे चोरपणा मानता नहीं । तैसे आत्माके अकर्तृत्वादिक वास्तव स्वरूपकूं जानणेहारा सो विद्वान् पुरुष ता आत्माविषे कर्त्तापणा मानता नहीं । यातैं यह सिद्ध भया । सर्व विकारोंतैं रहित होणेतैं तथा अद्वितीयरूप होणेतैं सो विद्वान् पुरुष हननादिक क्रियाकूं न करता है न करावता है । तहां श्रुति "आनंदं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चनेति" । अर्थ यह—ब्रह्मके स्वरूपभूत आनंदकूं जानणेहारा विद्वान् पुरुष किसीतैंभी भयकूं प्राप्त होवै नहीं इति । इहां भयका निषेध सर्व विकारोंके निषेधका उपलक्षक है । इस प्रकार वास्तवतैं आत्माविषे कर्तृत्वादिकोंके अभाव हुएभी सो अर्जुन अपणेविषे ता हननरूप क्रियाका कर्तापणा आरोपण करिकै तथा श्रीभगवान्‌विषे ता हननरूप क्रियाका प्रयोजककर्त्तापणा आरोपण करिकै अपणेविषे तथा भगवान्‌विषे ता हिंसाजन्य दोषकी शंका करता भया । और श्रीभगवान्‌भी ता अर्जुनके अभिप्रायकूं जानि करिकै ता अर्जुनविषे हननरूप क्रियाके कर्त्तापणेका निषेध करता भया और अपणेविषे ता हननरूप क्रियाके प्रयोजककर्त्तापणेका निषेध करता भया । तहां जो पुरुष आप तौ तिस क्रियाकूं करै नहीं और तिस क्रियाविषे दूसरेकूं प्रेरणा करै है ता पुरुषकूं प्रयोजककर्त्ता कहैं हैं । तात्पर्य यह—यह आत्मादेव वास्तवतैं सर्व विकारोंतै रहित है । यातैं अपणेविषे ता हननरूप क्रियाका कर्त्तापणा आरोपण करिकै तथा हमारेविषे ता हननरूप क्रियाका प्रयोज-

कर्त्तापणा आरोपण करिकै तुमनै पापके प्राप्तिकी शंका कदाचित्भी नहीं करणी इति । इहां श्रीभगवान्नै आत्माविषे अविक्रियता दिखाइकै कर्तृत्वका निषेध करा । तिसतै यह जान्या जावै है । श्रीभगवान्का सर्व कर्मोंके निषेधविषे तात्पर्य है । केवल हननरूप क्रियाके निषेधविषे तात्पर्य नहीं है । यातै मूलश्लोकविषे जो केवल हननक्रियाका निषेध करा है सो निषेध सर्व कर्मोंके निषेधका उपलक्षक है । पूर्व प्रसंगविषे हननरूप क्रियाही प्राप्त है । या कारणतै भगवान्नै ता हननरूप क्रियाका निषेध करा है । परन्तु ता हननरूप क्रियाके निषेध करिकै सर्व कर्मोंका निषेधही भगवान्कूं संमत है । काहेतैं अविक्रियत्वरूप हेतु आत्माविषे जैसे हननरूप क्रियाका निषेध करै है तैसे दूसरे सर्व कर्मोंकाभी निषेध करै है । केवल हननरूप क्रियाका निषेध करै नहीं । या कारणतैही (तस्य कार्यं न विद्यते) या वचनकरिकै श्रीभगवान् आपही सर्व कर्मोंका निषेध आगे कथन करैगा । या कहणेकरिकै या प्रकारकी मूढ जनोंकी शंकाकाभी खण्डन हुआ जानणा । सा शंका यह है-(कं घातयति हंति कं) या वचन करिकै भगवान्नैं केवल हननरूप क्रियाका निषेध करा है दूसरे कर्मोंका निषेध करा नहीं । यातैं ता हननरूप कर्मतै भिन्न दूसरे कर्म तौ भगवान्कूंभी कर्त्तव्यतारूपकरिकै अंगीकार है इति । सो यह वादीकी शंका संभवै नहीं । काहेतै (तस्मायुद्ध्यस्व भारत) या वचनकरिकै हननरूप कर्मका तौ भगवान्नैं आपही विधान करा है । यातै (कं घातयति हंति कं) या वचनका आत्मा वास्तवतैं हननक्रियाका कर्त्ता नहीं है यह अर्थही अंगीकार करणा होवैगा । सो आत्माविषे वास्तवतै कर्त्तापणेका अभाव जैसे हननरूप क्रियाविषे है तैसे दूसरे कर्मोंविषेभी समान है इति ॥ २१ ॥

हे भगवन्! पूर्व उक्त श्रुतियुक्तियोंकरिकै यद्यपि आत्माविषे तौ अविनाशीपणाही सिद्ध होवै है, तथापि या स्थूल शरीरोंविषे सो अविनाशीपणा है नहीं। किंतु यह शरीर नाशवान् है और तिन शरीरोंके नाश करणेका साधन यह

युद्ध है । यातैं अनेक पुण्यकर्मोंके साधनरूप जो यह भीष्मद्रोणादिकोंके शरीर हैं तिन शरीरोंका युद्ध करिकै नाश करणा हमारेकूं कैसे उचित होवैगा । किंतु तिन भीष्मद्रोणादिकोंके शरीरका नाश करणा हमारेकूं उचित नहीं है ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहे हैं—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ॥ तथा शरीराणि विहायजीर्णान्य-न्यानि संयाति नवानि देही ॥ २२ ॥

(पदच्छेदः) वासांसि । जीर्णानि । यथा । विहाय । नवानि । गृह्णाति । नरः । अपराणि । तथा । शरीराणि । विहाय । जीर्णानि । अन्यानि । संयाति । नवानि । देही ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जैसे यह पुरुष जीर्ण वस्त्रोंकूं परित्याग करिकै दूसरे नवीन वस्त्रोंकूं ग्रहण करे है तैसे यह देहीभी इन जीर्ण शरीरोंकूं परित्याग करिकै दूसरे नवीन शरीरोंकूं प्राप्त होवै है ॥ २२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जैसे विक्रियातैं रहित हुआही यह पुरुष पूर्वले निकृष्ट जीर्ण वस्त्रोंका परित्याग करिकै दूसरे उत्कृष्ट नवीन वस्त्रोंका ग्रहण करे हैं, तैसे उत्तम धर्मोंकूं करणेहारे यह भीष्मद्रोणादिक देहीभी अवस्थाकरिकै तथा तपकरिकै कृश हुए या भीष्मादिक नामोंवाले शरीरोंका परित्याग करिकै पूर्व सम्पादन करे हुए पुण्यकर्मोंके फल भोगणे-वास्तै सर्वतैं उत्कृष्ट देवतादिक शरीरोंकूं प्राप्त होवै हैं। तहां श्रुति । ' अन्यन्नवतरं कल्याणतरं रूपं कुरुते पित्र्यं वा गांधर्वं वा दैवं वा प्राजापत्यं वा ब्राह्मं वा इति'' अर्थ यह—यह जीवात्मा पूर्वले शरीरका परित्याग करिकै पुण्यकर्मोंके वशतैं पितृलोकविषे अथवा गंधर्वलोकविषे अथवा देवलोकविषे अथवा प्रजापतिलोकविषे अथवा ब्रह्मलोकविषे दूसरे उत्कृष्ट देवताशरीरकूं प्राप्त होवै हैं इति । इतने कहणे-करिकै यह अर्थ सिद्ध भया । जीवत्कालपर्यंत करा जो धर्मका

ता अनुष्ठानजन्य क्लेशकरिकै अत्यंत कृश शरीरवाले हुए जो यह भीष्म-द्रोणादिक हैं ते भीष्मद्रोणादिक इस वर्त्तमान शरीरके नाशतैं विना ता धर्मानुष्ठानके फल भोगणेविषे समर्थ होइ सकैं नहीं। किंतु तिन स्वर्गादिक सुखोंकी प्राप्तिविषे प्रतिबंधक जो यह वर्त्तमान शरीर हैं तिन वर्त्तमान शरीरोंके नाशतैं अनन्तरही ते भीष्मद्रोणादिक तिन स्वर्गादिक सुखोंके भोगणेविषे समर्थ होवैंगे। तातैं धर्मयुद्धकरिकै जवी तूं इन भीष्मद्रोणादिकोंके वर्त्तमान शरीरोंकूं नाश करैगा, तवी यह भीष्मद्रोणादिक या जीर्ण शरीररूप प्रतिबंधतैं रहित होइकै स्वर्गादिक लोकोंविषे दिव्य शरीरकूं प्राप्त होइकै नानाप्रकारके सुखोंकूं प्राप्त होवैंगे । सो यह तिन भीष्मद्रोणादिकोंऊपरि तुम्हारा महान् उपकार है। यातैं तिन भीष्मद्रोणादिकोंका महान् उपकार करणेहारा जो यह युद्ध है ता युद्धविषे तिन भीष्मद्रोणादिकोंका अपकारत्वबुद्धिरूप भ्रमकूं तूं मत कर इति । या प्रकारका भगवान्का अभिप्राय (अपराणि अन्यानि संयाति) या तीन पदोंके कहणेतैं जान्या-जावै है । और किसी टीकाविषे तो या श्लोकका यह अभिप्राय वर्णन करा है । जैसे यह देवदत्तादि नामवाला पुरुष पूर्वले जीर्ण वस्त्रोंका परित्याग करिकै दूसरे नवीन वस्त्रोंका ग्रहण करै है । तैसे यह देही आत्माभी पूर्वले जीर्ण शरीरोंका परित्याग करिकै दूसरे नवीन शरीरोंकूं प्राप्त होवै है। तहां जैसे आगमन तथा निर्गमन तथा नामरूपादिकोंकी विचित्रता तथा शिथिलता इत्यादिक सर्व विकार तिन वस्त्रोंविषेही होवैं हैं; ता पुरुषविषे वे विकार होवैं नहीं । तैसे उत्पत्तिनाशादिक सर्व विकार या शरीरोंविषेही होवै हैं । निरवयव आत्माविषे ते उत्पत्तिनाशादिक विकार होवैं नहीं । इतने कहणेकरिकै आत्माविषे देहइंद्रियादिकोंतैं भिन्नपणा तथा सर्व विकारोंतें रहितपणा तथा नित्यपणा सूचन करा इति ॥ २२ ॥

हे भगवन् ! जैसे अग्निकरिकै गृहके दाह हुए ता गृहविषे स्थित पुरुषकाभी दाह होइ जावै है तैसे या स्थूल देहके नाश हुए ता देहके भीतर

स्थित आत्माकाभी नाश होवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहै हैं–

नैनं छिंदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ॥
न चैनं क्लेदयंत्यापो न शोषयति मारुतः ॥ २३ ॥

(पदच्छेदः) न । एनम् । छिंदंति । शस्त्राणि । न । एनम् । दहति । पावकः । न । च । एनम् । क्लेदयंति । आपः । न । शोषयति । मारुतः ॥ २३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इस आत्माकूं खड्गादिक शस्त्रभी नहीं छेदन करैं हैं तथा इस आत्माकूं अग्निभी नहीं दाह करे है तथा इस आत्माकूं जलभी नहीं गील सकै है तथा इस आत्माकूं वायुभी नहीं शोषण करै है ॥ २३ ॥

भा॰ टी॰–हे अर्जुन ! जैसे खड्गादिक तीक्ष्ण शस्त्र या स्थूल शरीरकूं छेदन करे हैं। तैसे इस आत्माकूं ते तीक्ष्ण शस्त्रभी छेदन करि सकते नहीं। और जैसे अत्यन्त प्रज्वलित अग्नि या शरीरकूं भस्म करे हैं तैसे सो प्रज्वलित अग्नि या आत्माकूं भस्म करि सकै नहीं। और जैसे अत्यन्त वेगवाला जल या शरीरकूं गीला करिकै ताके अवयवोंकी शिथिलतारूप क्लेदन करे हैं। तैसे सो अत्यन्त वेगवाला जलभी या आत्माकूं क्लेदन करि सकै नहीं। और जैसे अत्यन्त प्रबल वायु या शरीरादिकोंका नीरसतारूप शोषण करे है। तैसे सो अत्यन्त प्रबल वायुभी या आत्माकूं शोषण करि सकै नहीं। यहां यद्यपि जितनेक नाश करणेहारे पदार्थ हैं तिन सर्व पदार्थोंका आत्माविषे निषेध वांछित है। यातें केवल शस्त्रादिकोंकाही निषेध करणा उचित नहीं है। तथापि युद्धके समयविषे वे शस्त्रादिकही प्राप्त हैं, यातें भगवान्नें तिन शस्त्रादिकोंकाही निषेध करा है। सो शस्त्रादिकोंका निषेध नाश करणेहारे सर्व पदार्थोंके निषेधका उपलक्षक है अथवा या लोकविषे पृथिवी, जल, अग्नि वायु या चारोंविषेही नाशकी

कारणता देखनेमें आवै है । आकाशविषे किसीभी पदार्थके नाशकी कारणता देखणेविषे आवती नहीं । यातैं इहां पृथिवी, जळ, तेज, वायु या चारी भूतोंकाही कथन करा है । आकाशका कथन करा नहीं । और या लोकविषे जितनेक नाशके कारण हैं ते सर्व पृथिवी आदिक चारि भूतोंके अंतरभूतही हैं । यातैं पृथिवी आदिक चारि भूतोंके हैं निषध करिकै नाश करणेहारे सर्व पदार्थोंका निषेध सिद्ध होइ सकै । तहां खङ्गादिक शस्त्र पृथिवीविशेषका विकाररूप होणेतैं पृथिवी-रूपही हैं ॥ २३ ॥

हे भगवन् ! आत्माकूं शस्त्रादिक नाश नहीं करि सकते या प्रकारकी प्रतिज्ञामात्रकरिकै अर्थकी सिद्धि होवै नहीं । किंतु किसी हेतुतैंही अर्थकी सिद्धि होवै है । यातैं आत्माकूं ते शस्त्रादिक नाश नहीं करि सकते या प्रतिज्ञाविषे कौन हेतु है ! ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन शस्त्रादिकोंकूं आत्माके नाश करणेकी असामर्थ्यताविषे तथा आत्माकूं तिन शस्त्रादिजन्य नाशकी अयोग्यताविषे हेतु कहै हैं-

अच्छेद्योयमदाह्योयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ॥
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः ॥ २४ ॥

(पदच्छेदः) अच्छेद्यः । अयम् । अदाह्यः । अयम् । अक्लेद्यः । अशोष्यः । एव च । नित्यः । सर्वगतः । स्थाणुः । अचलः । अयम् । सनातनः ॥ २४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह आत्मा अच्छेद्य है तथा यह आत्मा अदाह्य है तथा अक्लेद्य है तथा अशोष्य है तथा यह आत्मा नित्य है तथा सर्वगत है तथा स्थाणु है तथा अचल है तथा सनातन है ॥ २४ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन । जिस कारणतैं यह आत्मा छेदन करणेकूं अशक्य है तिस कारणतैं या आत्माकूं खङ्गादिक शस्त्र छेदन करि सकते नहीं । और जिस कारणतैं यह आत्मा दाह करणेकूं अशक्य है

तिस कारणतैं या आत्माकूं अग्नि दाह करि सकता नहीं । और जिस कारणतैं यह आत्मा क्लेदन करणेकूं अशक्य है तिस कारणतैं या आत्माकूं जल क्लेदन करि सकता नहीं और जिस कारणतैं यह आत्मा शोपण करणेकूं अशक्य है तिस कारणतैं या आत्माकूं वायु शोषण कर सकता नहीं। इस प्रकार यथाक्रमतैं अच्छेद्यादिक चारि हेतुवोंकी पूर्व श्लोकउक्त प्रतिज्ञाविषे योजना करणी। इहां (एव च) या वचनविषे स्थित जो एव यह शब्द है। सो एवशब्द अच्छेद्यत्वादिक चारोंके साथि संबंधकूं प्राप्त हुआ आत्माविषे छेद्यत्वादिक धर्मोंकी व्यावृत्ति करे है। क्या आत्मा अच्छेद्यही है नतु छेद्य है इस प्रकार अदाह्यत्वादिक धर्मोंविषेभी जानिलेणा और च यह शब्द तिन अच्छेद्यत्वादिक चारोंके समुच्चय करावणेवासतै है। शंका–हे भगवन् ! जिन अच्छेद्यत्वादिक हेतुवोंके बलतैं आत्माविषे शस्त्रादिकृत छेदनादिकोंका अभाव सिद्ध करते हो तौ अच्छेद्यत्वादिक हेतु आत्माविषे रहते नहीं। यातैं तिन अच्छेद्यत्वादिक हेतुवोंकरिकै आत्माविषे छेदनादिकोंका अभाव किस प्रकार सिद्ध होवैगा ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन अच्छेद्यत्वादिक हेतुवोंकी सिद्धि करणेवासतैं श्लोकके उत्तरार्धकरिकै हेतुका कथन करै हैं। (नित्यः इति) हे अर्जुन ! जो पदार्थ पूर्व अपरभाववाला होवै है सो पदार्थ अनित्य होवै । जैसे घटादिक पदार्थ पूर्व अपरभाववाले हैं यातैं अनित्य हैं और यह आत्मादेव तौ पूर्व अपरभावतैं रहित है यातैं नित्य है। नित्य होणेतैंही यह आत्मादेव उत्पत्तितैं रहित है और जो पदार्थ सर्वत्र व्यापक नहीं होवै है सो पदार्थ अनित्यही होवै है जैसे घटादिक पदार्थ सर्वत्र व्यापक नहीं हैं यातैं अनित्यही हैं तैसे यह आत्मादेवभी जो कदाचित् सर्वत्र व्यापक नहीं होवैगा तौ अनित्यही होवैगा। यद्यपि नैयायिकोंनैं पृथिवी आदिकोंके परमाणुवोंकूं अव्यापक मानिकैभी नित्यही मान्या है यातैं जो अव्यापक होवै है सो अनित्यही होवै है या प्रकारका नियम संभवै नहीं । तथापि वेदांतसिद्धांतविषे ते नित्य परमाणु

अंगीकार नहीं हैं यातैं ता नियमका भंग होवै नहीं और यह आत्मादेव तौ अस्तिभातिप्रिय रूपकरिकै सर्वत्र व्यापक है या कारणतैं यह आत्मादेव नित्य है । या कहणेकरिकै यह अनुमान सिद्ध भया । यह आत्मा नित्य होणेकूं योग्य है । सर्वत्र व्यापक होणेतैं जो पदार्थ नित्य नहीं होवै है सो पदार्थ सर्वत्र व्यापकभी नहीं होवै है । जैसे घटादिक पदार्थ हैं इति । सर्वत्र व्यापक होणेतैं यह आत्मादेव प्राप्तिका विषयभी नहीं है । और या लोकविषे जो जो पदार्थ विकारी होवै है सो सो पदार्थ सर्वत्र व्यापक होवै नहीं । जैसे घटादिक पदार्थ विकारी हैं यातैं सर्वत्र व्यापकभी नहीं हैं तैसे यह आत्मादेवभी जो कदाचित् विकारी होवैगा तौ सर्वत्र व्यापक नहीं होवैगा । और यह आत्मादेव तौ स्थाणु है क्या अविकारी है । या कारणतैं यह आत्मादेव सर्वत्र व्यापक है या कहणेतैं यह अनुमान सिद्ध भया यह आत्मा सर्वत्र व्यापक होणेकूं योग्य है । अविकारी होणेतैं जो जो पदार्थ सर्वत्र व्यापक नहीं होवै है सो सो पदार्थ अविकारीभी नहीं होवै है जैसे घटादिक पदार्थ हैं इति । इतने करिकै आत्माविषे विकार्यत्वका निषेध करा और या लोकविषे जो जो पदार्थ चलनरूप क्रियावाला होवै है सो सो पदार्थ विकारही होवै है । जैसे घटादिक पदार्थ चलनरूप क्रियावाले हैं यातैं विकारी हैं, तैसे यह आत्मादेवभी जो कदाचित् चलनरूप क्रियावाला होवैगा तौ विकारही होवैगा और यह आत्मादेव तौ ता चलनरूप क्रियातैं रहित अचल है । या कारणतैं यह आत्मादेव विकारीभी नहीं है या करणेकरिकै यह अनुमान सिद्ध भया यह आत्मा अविकारी होणेकूं योग्य है अचल होणेतैं जो जो पदार्थ अविकारी नहीं होवै है सो सो पदार्थ अचलभी नहीं होवै है जैसे घटादिक पदार्थ हैं इति । इतने कहणे करिकै आत्माविषे संस्कार्यत्वका निषेध करा । इहां पूर्व अवस्थाका परित्याग करिके जो दूसरी अवस्थाकी प्राप्ति है ताका नाम विक्रिया है । और अवस्थाके एक हुएभी जो चलनमात्र है ताका नाम क्रिया है । यातैं अविक्रिय-

स्वरूप साध्यकी तथा अचलत्वरूप हेतुकी एकता सिद्ध होवै नहीं। जिस कारणतैं यह आत्मादेव नित्य सर्वगत स्थाणु अचलरूप है तिस कारणतैं यह आत्मादेव सनातन है. क्या सर्वदा एकरूप है किसीभी क्रियाका कर्मरूप नहीं है। तात्पर्य यह–जो पदार्थ क्रियाजन्य फलवाला होवै है ता पदार्थका नाम कर्म है । सो क्रियाजन्य फल उत्पत्ति, प्राप्ति, विकृती, संस्कृति या भेदकरिकै चारि प्रकारका होवै है तौ चारि प्रकारके फलके योगतैं यथाक्रमतैं सो कर्मभी उत्पाद्य, प्राप्य, विकार्य, संस्कार्य या भेदतैं चारि प्रकारका होवै है । तहां यह आत्मादेव नित्य है यातैं उत्पाद्यरूप कर्मभी नहीं है। अनित्य घटादिकही उत्पाद्यरूप होवैं। और यह आत्मादेव सर्वत्र व्यापक है यातैं प्राप्यरूप कर्मभी नहींहै । परिच्छिन्न धामादिकही प्राप्यरूप होवैंहैं और यह आत्मादेव स्थाणुरूपहै यातैं विकार्यरूप कर्मभी नहीं है। स्थाणुभावतैंरहित विक्रियावाले क्षीरादिकही विकार्यरूप होवैं हैं और यह आत्मादेव चलनरूप क्रियातैं रहित अचल हैं यातैं संस्कार्यरूप कर्मभी नहीं है । क्रियावाले दर्पणादिक पदार्थही संस्कार्यरूप होवैंहैं इति । तहां श्रुति–"आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यःवृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकः निष्कलं निष्क्रियं शांतम् इति" अर्थ यह–यह आत्मादेव आकाशकी न्याई सर्वत्र व्यापक है तथा नित्य है तथा महान् वृक्षकी न्याईअचल हुआ स्थित है तथा अपणे स्वप्रकाशस्वरूपविषे स्थित है तथा एक अद्वितीयरूप है तथा निरवयव है तथा क्रियातैं रहित है तथा शांतस्वरूप है इति । इत्यादिक श्रुतियां या आत्मादेवकूं नित्य, सर्वगत, स्थाणु, अचलरूपकरिकै कथन करैं हैं । तथा "यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अंतरो योऽप्सु तिष्ठन्नद्भ्योंतरो यस्तेजसि तिष्ठंस्तेजसोंतरो यो वायौ तिष्ठन्वायोरंतरः इति" । अर्थ यह–जो आत्मादेव पृथिवीविषे स्थित हुआ ता पृथिवीतैंभी अंतर है। तथा जो आत्मादेव जलोंविषे स्थित हुआ तिन जलोंतैंभी अंतर है तथा जो आत्मादेव अग्निरूप तेज विषे स्थित हुआ ता तेजतैंभी अंतर है । तथा जो आत्मादेव वायु-

विषे स्थित हुआ ता वायुतैंभी अंतर है इति । इत्यादिक श्रुतियां सर्वत्र व्यापकआत्माकूं सर्वका अंतर्यामिरूपकरिकै कथन करती हुई ता आत्मा-विषे शस्त्रादिकृत छेदनादिकोंकी अविषयता कथन करैं हैं । तात्पर्य यह- जो पदार्थ तिन शस्त्रादिकोंके अंतर नहीं स्थित होवै है, तिस पदार्थकूंही ते शस्त्रादिक छेदनादिक करैं हैं । और यह आत्मादेव तौ तिन शस्त्रादिक जड पदार्थोंकूं सत्तास्फूर्ति देणेहारा होणेतैं तिन शस्त्रादिकोंकाभी प्रेरक अंत-र्यामि है । यातैं इस आत्मादेवकूं ते शस्त्रादिक किसप्रकार छेदनादिक करैंगे किंतु नहीं करैंगे इति । इस अर्थविषे "येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः" इत्या-दिक श्रुतियांभी प्रमाणरूप जानि लेणी । इस अर्थकूं या गीताके सप्तम अध्यायविषे श्रीभगवान् आपही प्रगट करैंगे ॥ २४ ॥

किंवा । इस आत्माविषे छेद्यत्व दाह्यत्व आदिकोंकूं विषय करणे-हारा कोई प्रमाणभी है नहीं । या कारणतैंभी इस आत्माविषे तिन छेद्यत्व दाह्यत्व आदिकोंका अभाव है या प्रकारके अर्थकूं अव्यक्तोयं इत्यादिक अर्ध श्लोककरिकै श्रीभगवान् कथन करैं हैं-

अव्यक्तोयमचिंत्योयमविकार्योयमुच्यते ॥
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥ २५ ॥

(पदच्छेदः) अव्यक्तः । अयम् । अचिंत्यः । अयम् । अवि-कार्यः । अयम् । उच्यते । तस्मात् । एवम् । विदित्वा । एनम् । न । अनुशोचितुम् । अर्हसि ॥ २५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! वेदभगवान्नैं यह आत्मा अव्यक्त कह्या है तथा यह आत्मा अचिंत्य कह्या है तथा यह आत्मा अविकार्य कह्या है तिस कारणतैं तूं इस आत्माकूं इस प्रकारका जानिकरिकै शोक करणेकूं नहीं योग्य है ॥ २५ ॥

भा० टी०-जो पदार्थ नेत्रादिक इंद्रियजन्य ज्ञानका विषय होवै है सो पदार्थ प्रत्यक्ष कह्या जावै है । प्रत्यक्ष होणेतैं सो पदार्थ व्यक्त

कह्या जावै है। जैसे रूपादिक गुणोंवाले घटादिक पदार्थ हैं। और यह आत्मादेव तौ रूपादिकगुणोंतैं रहित होणेतैं नेत्रादिक इंद्रियजन्य ज्ञान का विषय है नहीं। या कारणतैं यह आत्मादेव अप्रत्यक्ष है। अप्रत्यक्ष होणेतैं यह आत्मादेव अव्यक्त कह्या जावै है। या कारणतें प्रत्यक्षप्रमाण ता आत्माके छेद्यत्वादिकोंकूं ग्रहण करिसकै नहीं। शंका--हे भगवन्! आत्माविषे प्रत्यक्षप्रमाणके अप्रवृत्त हुएभी अनुमानप्रमाण प्रवृत्त होवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं (अचिंत्योयम् इति) जो पदार्थ अनुमानप्रमाणजन्य ज्ञानका विषय होवै है सो पदार्थ चिंत्य कह्या जावै है। जैसे पर्वतादिकोंविषे स्थित अग्नि आदिक पदार्थ अनुमानजन्य ज्ञानके विषय होणेतैं चिंत्य कहे जावै हैं और यह आत्मादेव तौ तिन अग्नि आदिक अनुमेय पदार्थोंतैं विलक्षण है क्या अनुमानजन्य ज्ञानका विषय नहीं है। यातैं यह आत्मादेव अचिंत्य कह्या जावै है। तात्पर्य यह। जो पदार्थ किसीभी स्थानविषे प्रत्यक्ष होवै है तिस पदार्थकाही अन्य स्थानविषे अनुमान होवै है। सर्वथा अप्रत्यक्ष पदार्थका अनुमान होवै नहीं। जैसे गृहादिक स्थानोंविषे प्रत्यक्ष जो अग्नि है ता अग्निकी धूमविषे व्याप्ति निश्चयकरिकै यह पुरुष पर्वतविषे धूमकूं देखिकरिकै यह पर्वत अग्निवाला है या प्रकारका अनुमान करै है। और जो पदार्थ किसीभी स्थानविषे प्रत्यक्ष नहीं होवै है ता पदार्थके व्याप्तिका ज्ञानही संभवता नहीं। यातैं ता पदार्थका अनुमानभी होवै नहीं। और या आत्माका तौ नेत्रादिक इंद्रियोंकरिकै प्रत्यक्ष होवै नहीं। यातैं अनुमान प्रमाणकरिकैभी ता आत्माके छेद्यत्वादिकोंका ग्रहण होइ सकै नहीं इति शंका--हे भगवन्! जो पदार्थ किसीभी स्थलविषे प्रत्यक्ष होवै है ता पदार्थकाही अन्य स्थलविषे अनुमान होवै है सर्वथा अप्रत्यक्ष पदार्थका अनुमान होवै नहीं। यह जो आपने नियम कह्या सो संभवता नहीं काहेतै नेत्रादिक इंद्रियोंका तथा धर्म अधर्मका किसीभी स्थलविषे प्रत्यक्ष होता नही। परन्तु तिनोंविषेभी अनुमानकी विषयता

तौ देखणेमें आवती है ता अनुमानका यह प्रकार है रूपादिकोंकी प्रतीति करणकरिकै साध्य होणेकूं योग्य है क्रिया होणेतैं जा जा क्रिया होवै है सा सा करणकरिकै साध्य होवै है जैसे छेदनरूप क्रिया कुठाररूप करणकरिकै साध्य है इति। या प्रकारके अनुमानतै रूपादिकोंकी प्रतीतियोंका करणरूपकरिकै नेत्रादिक इंद्रियोंकी सिद्धि होवै है। तथा यह पुरुष धर्मवान् है सुखी होणेतैं। तथा यह पुरुष अधर्मवान् है दुःखी होणेतैं इति। या अनुमानतै धर्मअधर्मकी सिद्धि होवै है। तैसे सर्वथा अप्रत्यक्ष आत्माविषेभी अनुमानकी विषयता बनि सकै है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान उत्तर कहैं हैं (अविकार्योयम्) इति। हे अर्जुन! नानाप्रकारकी विक्रियावाले जो इंद्रियादिक पदार्थ हैं ते इंद्रियादिक पदार्थही अपणे कार्यकी अन्यथा अनुपपत्तिकरिकै कल्प्यमान हुए अर्थापत्ति प्रमाणका तथा अनुमानप्रमाणका विषय होवैं हैं। और यह आत्मादेव तौ सर्व विक्रियातैं रहित है या कारणतैं यह आत्मादेव अर्थापत्तिप्रमाणका तथा अनुमानप्रमाणका विषय होवै नहीं और अनुमानकी न्याई लौकिक शब्दभी प्रत्यक्षादि प्रमाण पूर्वकही होवै है। यातैं ता प्रत्यक्षप्रमाणके निषेध हुए ता लौकिक शब्दका भी अर्थतैंही निषेध सिद्ध होवै है इति। शंका—हे भगवन! प्रत्यक्ष, अनुमान, अर्थापत्ति लौकिक शब्द यह चारों प्रमाण ता आत्माविषे छेद्यत्व दाह्यत्व आदिकोंकूं मत ग्रहण करे तथापि वेदप्रमाण तिन छेद्यत्वादिकोंकूं ग्रहण करैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान उत्तर कहै हैं (उच्यते इति) हे अर्जुन! वेद भगवान तौ यह आत्मादेव अच्छेद्य अव्यक्तरूपकरिकै प्रतिपादन करीता है। यातैं लक्षणावृत्तिकरिकै निर्विकार आत्माकूं प्रतिपादन करणेहारा जो वेदभगवान् ता आत्माके छेद्यत्वादिक धर्मोंकूं कैसे प्रतिपादन करैगा। यातैं आत्माविषे छेद्यत्व दाह्यत्व आदिक धर्मोंकूं विषय करणेहारा कोईभी प्रमाण है नहीं। या कारणतैं यह आत्मादेव अच्छेद्य अदाह्यरूप है इति। इहां (नैनं छिंदंति शस्त्राणि) इस श्लोककरिकै शस्त्र आदिकोंकेविषे

आत्माके नाश करणेका असामर्थ्य कथन करा। और (अच्छेद्योय-मदाह्योयं) इस श्लोककरिकै ता आत्माविषे छेदन दाहादिरूप क्रियाके कर्मपणेकी अयोग्यता निरूपण करी । और (अव्यक्तोयमचिंत्यो यम्) या अर्ध श्लोककरिकै ता आत्माविषे छेद्यत्वादिकोंकूं ग्रहण करणे-हारे प्रमाणोंका अभाव कथन करा । या कारणतैं इहां पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै नहीं । और (वेदाविनाशिनं नित्यं) इत्यादिक श्लोकोंविषे भगवान् भाष्यकारोंनें अर्थतें तथा शब्दतैं पुनरुक्तिदोषकी निवृत्ति करी नहीं ताकेविषे भाष्यकारोंका यह अभिप्राय है यह आत्मादेव अत्यंत दुर्बोध है । यातैं श्रीकृष्णभगवान वारंवार प्रसंगकूं पाइके तिसी आत्मा-देवकूं शब्दांतरकरिकै निरुपण करैं हैं । काहेतैं या अधिकारी पुरुषोंके संसारकी निवृत्ति करणेवासत यह आत्मवस्तु किसी प्रकारकरिकैभी जो इन अधिकारी पुरुषोंके बुद्धिविषे आरूढ होवै तौ श्रेष्ठ है इति । यातैं दुर्विज्ञेय आत्मवस्तुके पुनःपुनः कथन करणेविषे पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै नहीं । लोकप्रसिद्ध वस्तुके पुनःपुनः कथन करणेविषेही पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै है इति । इहां किसी टीकाविषे अव्यक्त, अचिंत्य, अविकार्य या तीनों पदोंका या प्रकारका अर्थ कथन करा है प्रत्यक्षप्रमाणका विषय जो यह स्थूल शरीर है ताका नाम व्यक्त है तास्थूल शरीरतैं यह प्रत्यक् आत्मा भिन्न है यातैं यह प्रत्यक् आत्मा अव्यक्त कह्या जावै है और रूपादि-कोंके प्रकाशरूप कार्यकरिकै अनुमानकरणेयोग्य जोचक्षु आदिकोंका समुदाय लिंगशरीरहै ता लिंगशरीरका नाम चिंत्यहै ता लिंगशरीरतैंभी यह आत्मादेव भिन्न है यातैं यह आत्मादेव अचिंत्य कह्या जावै है। और स्थूलसूक्ष्म-रूप कार्यभावकरिकै स्थित होणेयोग्य जो त्रिगुणात्मक मूलाज्ञानरूप कारणशरीर है जो अज्ञानरूप कारणशरीर केवल साक्षीकरीकेही गम्य है ता कारणशरीरका नाम विकार्य है ता कारणशरीरतैंभी यह आत्मा भिन्न है यातैं यह आत्मादेव अविकार्य कह्या जावै है । इस प्रकार गुरुशास्त्रनैं अधिकारी पुरुषके प्रति स्थूलसूक्ष्मकारणशरीरके निषेधमुख-

करिके यह आत्मादेव उपदेश करीता है । कोई गोशृंगग्राहिका न्याय करिके इस प्रकारका यह आत्मा है या प्रकार विधिमुखकरिकै कथन करीता नहीं तहां किसीने पूछा हमारी गौ कौन है आगेतैं किसी पुरुषनैं ता गौकूं शृंगतैं पकडिकरिकै यह तुम्हारी गौ है या प्रकार गौ दिखाई याका नाम गोशृंगग्राहिका न्याय है इति । इस प्रकार पूर्व उक्त अनेक प्रकारकी युक्तियोंकरिकै आत्माकी नित्यता तथा निर्विकारताके सिद्ध हुए तुम्हारेकूं शोक करणा उचित नहीं है या प्रकारका उपसंहार श्रीभगवान् करैं हैं (तस्मादेवं) इत्यादिक अर्ध श्लोककरिकै हे अर्जुन ! यह जो पूर्व हमने तुम्हारेप्रति नित्य निर्विकार आत्माका स्वरूप कथन करा है ता आत्माके स्वरूपका साक्षात्कारही शोकके कारणरूप अज्ञानका निवर्त्तक है। ऐसे आत्मासाक्षात्कारके प्राप्त हुए तुम्हारेकूं सो शोक करणा उचित नहीं है । कारणके निवृत्त हुए ताके कार्यकीभी अवश्यकरिकै निवृत्ति होवै है । तात्पर्य यह–ऐसे निर्विकार नित्य आत्माकूं न जाणिकरिकै जो तूं पूर्व शोक करता भया है सो तुम्हारेकूं युक्त था परंतु अबी हमारे उपदेशतैं आत्माके वास्तव स्वरूपकूं जानिकरिकै तुम्हारेकूं शोक करणा उचित नहीं है । तहां श्रुति । "तरति शोकमात्मवित्" । अर्थ यह–आत्माके वास्तव स्वरूपकूं जानणेहारा विद्वान् पुरुष सर्व शोकोंतैं रहित होवै है ॥ २५ ॥

तहां पूर्वप्रसंगविषे आत्मा जन्ममरणादिक विकारोंतैं रहित है या कारणतैं तूं शोक करणेकूं योग्य नहीं है । यह वार्त्ता भगवान्नैं अर्जुनकेप्रति कथन करी । अब ता आत्माविषे जन्ममरणादिक विकारोंकूं अंगीकार करिकैभी तूं शोक करणेकूं योग्य नहीं है या अर्थकूं श्रीभगवान् दो श्लोकोंकरिकै प्रतिपादन करे हैं। तहां आत्मा विज्ञानस्वरूप है तथा क्षणक्षणविषे विनाशकूं प्राप्त होवै है या प्रकारका आत्मा सौगत मानैं हैं इति । और यह स्थूल देहही आत्मा है सो स्थूल देहरूप आत्मा स्थिर हुआभी क्षण क्षणविषे परिणामकूं प्राप्त होवै है तथा जन्मकूं प्राप्त होवै है तथा नाशकूं

प्राप्त होवै है तथा प्रत्यक्षप्रमाणकरिकै सिद्ध है । या प्रकारका आत्मा लोकायतिक मानैं हैं इति । और आत्मा देहतैं भिन्न हुआभी देहके साथिही जन्मै है तथा देहके साथही नाश होवै है । या प्रकारका आत्मा कोईक दूसरे मानैं हैं इति । और सृष्टिके आदिकालविषे जैसे आकाशकी उत्पत्ति होवै है । तैसे आत्माकीभी उत्पत्ति होवै है और देहोंके भेद हुएभी सो आत्मा कल्पपर्यंत स्थिर रहै है । इस कल्पके अंतविषे सो आत्मा नाशकूं प्राप्त होवै है या प्रकारका आत्मा कोई दूसरे मानैं हैं इति । और आत्मा नित्य है सो नित्यही आत्मा जन्मकूं तथा मरणकूं प्राप्त होवै है या प्रकारका आत्मा तार्किक मानैं हैं । तिन तार्किकोंका यह अभिप्राय है । अपूर्व देहइंद्रियादिकोंके संबंधका नाम जन्म है । और पूर्व देहइंद्रियादिकोंके संबंधकी निवृत्तिका नाम मरण है यह जन्ममरण दोनों धर्मअधर्मकरिकै जन्य हैं यातैं ता धर्मअधर्मका आधाररूप जो नित्य वस्तु है ता नित्य वस्तुकेही यह जन्ममरण मुख्य हैं । और शरीरादिक अनित्यवस्तुविषे जो धर्म अधर्मकी आधारता मानिये तौ वा आश्रयके नाशतैं ता धर्मअधर्मका भी नाश होवैगा यातैं करे हुए कर्मोंकी फलके भोगतै विनाही निवृत्तिरूप कृतहानिदोष तथा नकरे हुए कर्मोंका फलभोगरूप अकृताभ्यागमदोष या दोनों दोषोंकी प्राप्ति होवैगी यातैं अनित्यवस्तुविषे ता धर्मअधर्मकी आधारता संभवै नहीं यातैं शरीरादिक अनित्य वस्तुके ते जन्ममरण मुख्य नहीं हैं किंतु गौण हैं । या प्रकारका आत्मा तार्किक मानैं हैं । और कोईक शास्त्रवाले तौ यह मानैं है जैसे श्रोत्ररूप नित्य आकाशका कर्णशष्कुलीरूप उपाधिके जन्मतैं जन्म होवै । और ता कर्णशष्कुलीरूप उपाधिके नाशतैं नाश होवै है । ते जन्ममरण दोनों औपाधिक होणेतै अमुख्य हैं । तैसे नित्य आत्माकाभी देहरूप उपाधिके जन्मतैं जन्म होवै है । तथा देहरूप उपाधिके मरणतैं मरण होवै है । ते जन्ममरणरूप दोनों औपाधिक होणेतैं अमुख्य हैं मुख्य नहीं इति । इस प्रकार कोईक वादी आत्माकूं अनित्य मानैं हैं । और कोईक वादी ता आत्माकूं नित्य

मानैं हैं। तहां आत्मा अनित्य है या पक्षविषेभी श्रीभगवान् आत्माके शोकका निषेध करैं हैं-

अथ चैन नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ॥
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ॥ २६ ॥

(पदच्छेदः) अथ। च। एनम्। नित्यजातम्। नित्यम्। वा। मन्यसे। मृतम्। तथापि। त्वम्। महाबाहो। न। एवम्। शोचितुम्। अर्हसि ॥ २६ ॥

(पदार्थः) अनित्यपक्षविषे भी जो तूं इस आत्माकूं नित्यही जन्म्या हुआ तथा नित्यही मरा हुआ मानता होवैं तथापि हे महाबाहो अर्जुन ! तूं इस प्रकारका शोक करणेकूं नहीं योग्य है। ॥ २६ ॥

भा०टी०-हे अर्जुन ! यह आत्मादेव अत्यन्त दुर्बोध है यातैं वारंवार ता आत्माके श्रवण हुए भी ता आत्माके निश्चय करणेकी असामर्थ्यतातैं पूर्व कथन करे हुए हमारे पक्षका नहीं अंगीकार करिकै जो तूं किसी दूसरे पक्षका अंगीकार करता होवै ता दूसरे पक्षविषेभी आत्मा अनित्यहै या अनित्य पक्षकूं आश्रयण करिकै जो तूं इस आत्मादेवकूं नित्यही जन्म्या हुआ तथा नित्यही मरा हुआ मानता होवै तहां विज्ञानरूप आत्मा क्षणिक है या क्षणिक पक्षविषे तौ नित्य या शब्दका प्रतिक्षण यह अर्थ करणा। क्या आत्माकूं क्षणक्षणविषे जो तूं जन्म्या हुआ तथा मरा हुआ मानता होवै इति। और ता क्षणिक पक्षतैं भिन्न दूसरे पक्षोंविषे तौ ता नित्यशब्दका आवश्यक होणेतैं नियत यह अर्थ करणा। क्यों यह देवदत्त नामा पुरुष जन्म्या है तथा यह देवदत्तनामा पुरुष मरा है या प्रकारकी लौकिक प्रतीतिके पक्षतै नियमकरिकै जो तूं आत्माका जन्ममरण कल्पना करता होवै तथापि हे महाबाहो अर्जुन ! (अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्) या प्रकारके शोक करणेकूं तूं योग्य नहीं है काहेतैं जैसे भीष्मद्रोणादिक आत्मा नित्यही जन्म मरणवाले

हैं तैसे तूं आपभी नित्यही जन्ममरणवाला है। इहां (हे महाबाहो !) या संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नें अर्जुनका उपहास सूचन करा । जैसे या लोकविषे जो कोई पुरुष किसी निकृष्ट कर्मकूं करै है तिस कालविषे ता पुरुषके मातापितादिक वृद्ध पुरुष ता पुरुषके प्रति तूं हमारे कुलविषे बहुत सुपुत्र उत्पन्न हुआ है या प्रकारका वचन कहै हैं सो वचन ता पुरुषके उपहासकूंही सूचन करै है। तैसे अत्यंत बहिर्मुख पुरुषोंनें अंगीकार करा जो आत्माका अनित्यपणा है ता अनित्यपणेकूं सो अर्जुन अंगीकार करता भया। ता कालविषे श्रीभगवान्नें (हे महाबाहो) यह अर्जुनका संबोधन दिया है। यातें (हे महाबाहो) या संबोधन करिकै भगवान्नें अर्जुनका उपहास सूचन करा है इति । अथवा (हे महाबाहो) या संबोधनके कहणेकरिकै श्रीभगवान्नें अर्जुन ऊपरि अपणी कृपा सूचन करी क्या सर्व पुरुषोंविषे श्रेष्ठ जो तूं अर्जुन है तिस तुम्हारेविषे आत्मा अनित्य है या प्रकारकी कुदृष्टि संभवती नहीं इति । तहां विज्ञानरूप आत्मा क्षणिक है इस पक्षविषे तथा यह स्थूल देहही आत्मा है या पक्षविषे तथा देहके साथही आत्मा जन्ममरणकूं प्राप्त होवै है या पक्षविषे दूसरे जन्मका तौ अभावही है यातें इन तीनों पक्षोंविषे पापका भय संभवता नहीं और पापके भयकरिकै तूं शोककूं करता है। इन तीनों पक्षोंविषेभी आत्मा क्षणिक है या पक्षविषे तौ दृष्टदुःखभी संभवै नहीं काहेतें जिस बांधवोंके नाशके दर्शनतें सो दृष्टदुःख होवै है सो बांधवोंके नाशका दर्शन ता क्षणिक आत्माविषे संभवताही नहीं । यह क्षणिकपक्षविषे दूसरे पक्षोंतें अधिकता है। और ता क्षणिक पक्षतें भिन्न दूसरे पक्षोंविषे तौ दृष्टदुःख तथा ता दृष्टदुःखजन्य शोक संभव होइ सकै है । या अर्थके जनावणे वास्तेंही श्रीभगवान्नें (एवं) यह शब्द कथन करा है । क्या ता पक्षविषे दृष्टदुःखजन्य शोकके संभव हुएभी अदृष्टदुःखजन्य शोककरणा सर्व प्रकारतें तुम्हारेकूं उचित नहीं है इति ॥ २६ ॥

हे भगवन् ! पूर्व उक्त तीन पक्षोंविषे यद्यपि शोक करणा उचित नहीं है तथापि जिस पक्षविषे सृष्टिके आदिकालतैं लेके प्रलयपर्यंत आत्मा स्थिर रहै है तथा जिस तार्किकके पक्षविषे आत्मा सर्वदा नित्य है तिन दोनों पक्षोंविषे दृष्टदुःख तथा अदृष्टदुःख यह दोनों प्रकारका दुःख संभवै है यातैं ता दृष्टअदृष्टदुःखके भयकरिकै मैं शोक करता हूं ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् द्वितीय श्लोककरिकै ताका उत्तर कहै हैं–

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥
तस्मादपरिहार्येर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २७ ॥

(पदच्छेदः) जातस्य । हि । ध्रुवः । मृत्युः । ध्रुवम् । जन्म । मृतस्य । च । तस्मात् । अपरिहार्ये । अर्थे । न । त्वम् । शोचितुम् । अर्हसि ॥ २७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिसे कारणतैं जन्मकूं प्राप्त हुए आत्माका अवश्यकरिकै मृत्यु होवै है तथा मरणेकूं प्राप्त हुएका अवश्य करिकै जन्म होवै है तिस कारणतैं निवृत्त करणेकूं अशक्य जन्ममरणरूप अर्थविषे तूं शोक करणेकूं नहीं योग्य है ॥ २७ ॥

भा० टी०–पूर्वजन्मोंविषे करे जो पुण्यपापरूप कर्म हैं तिन कर्मोंके वशतैं प्राप्त भया है शरीरइंद्रियादिकोंका संबंधरूप जन्म जिसकूं ऐसा जो स्थिर स्वभाववाला यह आत्मा है, ता आत्माका तिन प्रारब्धकर्मोंके नाशतैं अनंतर तिन देहइंद्रियादिकोंके संबंधका निवृत्तिरूप मरण अवश्यकरिकै होवै है काहेतैं या लोकविषे जिन जिन पदार्थोंका कर्मके वशतैं संयोग होवै है तिन तिन पदार्थोंका अंतविषे अवश्यकरिकै वियोग होवै है । और जिस आत्माका सो मरण होवै है तिस आत्माका पूर्व शरीरविषे करे हुए पुण्यपापकर्मोंके फल भोगणेवासतैं अवश्यकरिकै जन्म होवै है । इहां यद्यपि मृत्युकूं प्राप्त हुएका अवश्यकरिकै जन्म होवै है या प्रकारका नियम

का जीवन्मुक्त पुरुषविषे व्यभिचार होवै है काहेतैं जीवन्मुक्त पुरुषका मृत्यु तौ होवै है परन्तु ता जीवन्मुक्त पुरुषका पुनः जन्म होवै नहीं तथापि संचितकर्मवाले पुरुषका मरणतैं अनंतर अवश्यकरिकै जन्म होवै है या अर्थविषे श्रीभगवान्का तात्पर्य है—जीवन्मुक्त पुरुषके ज्ञानरूप अग्निकरिकै सर्व संचित कर्म भस्म होइजावै हैं यातैं ता जीवन्मुक्त पुरुषकूं मरणतैं अनंतर पुनः जन्मकी प्राप्ति होवै नहीं इति। तिस कारणतैं निवृत्त करणेकूं अशक्य ऐसा जो यह जन्ममरणरूप अर्थ है ता अर्थ विषे तूं विद्वान् शोक करणेकूं योग्य नहीं है। यह वार्त्ता श्रीभगवान् (ऋतेपि त्वान्न भविष्यंति सर्वे) या वचन करिकै आगे कथन करैंगे। तात्पर्य यह—जो कदाचित् तुमनै युद्धकरिकै नहीं हनन करे हुए यह भीष्मद्रोणादिके जीवतेही रहें तो तिन भीष्मद्रोणादिकोंके साथि युद्ध करणेविषे तुम्हारेकूं शोककरणा उचित होवै परंतु यह भीष्मद्रोणादिक तौ तुम्हारे युद्धतैं विना आपही कर्मके क्षयतैं मृत्युकूं प्राप्त होवैगे तिन भीष्मद्रोणादिकोंके मृत्युके निवृत्त करणेविषे तुम्हारा सामर्थ्य है नहीं यातैं तुम्हारेकूं दृष्टदुःखजन्य शोककरणा उचित नहीं है इति। इस प्रकार अदृष्टदुःखजन्य शोककी शंकाविषेभी (तस्मादपरिहार्येर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि) यहही उत्तर जानि लेणा। इहां इस लोकविषे बांधवोंके मरणजन्य जो दुःख है ताका नाम दृष्टदुःख है और परलोकविषे पापकर्मजन्य जो दुःख है ताका नाम अदृष्टदुःख है वहां अदृष्टदुःखजन्य शोकपक्षविषे (अपरिहार्येर्थे) या वचनका यह अर्थ करणा। जैसे ब्राह्मणकूं अग्निहोत्रादिक कर्म नियमतैं करणे योग्य हैं वैसे क्षत्रिय राजाकूं युद्धरूप कर्मभी नियमतैं करणे योग्य हैं। और जैसे ज्योतिष्टोमादिक यज्ञोंविषे पशुवोंकी हिंसा करणेतैं दोष होवै नहीं तैसे युद्धविषेभी बांधवादिकोंकी हिंसा करणेतैं दोष होवै नहीं। तहां गौतमस्मृति। "न दोषो हिंसायामाहवे इति"। अर्थ यह—युद्धविषे हिंसाके करणेतैं दोष होवै नहीं इति। यह सर्व वार्त्ता (स्वधर्ममपि चावेक्ष्य) इस श्लोकविषे आगे स्पष्ट होवैगी यातैं जैसे

वेदनै विधान करे जो अग्निहोत्रादिक कर्म है तिन विहित कर्मोंके न करणेतैं ब्राह्मणकूं प्रत्यवायकी प्राप्ति होवै है या कारणतै ते अग्निहोत्रादिक कर्म परित्याग करणेकूं अशक्य हैं तैसे वेदविहित होणेतैं परित्याग करणेकूं अशक्य जो यह युद्धरूप अर्थ है ता युद्धरूप अर्थविषे तूं अदृष्ट-दुःखके भयकरिकै शोक करणेकूं योग्य नहीं है इति । किंवा । अग्निहोत्रादिक नित्यकर्मोंकी न्याई जो कदाचित् युद्धकूं नित्यकर्मरूप नहीं अंगीकार करिये किंतु ता युद्धकूं केवल काम्यकर्मरूपही अंगीकार करिये तहां याज्ञवल्क्यस्मृति—"य आहवेषु युध्यंते भूम्यर्थमपराङ्मुखाः । अकूटैरायुधैर्यांति ते स्वर्गं योगिनो यथा" । अर्थ यह—जे योद्धा पुरुष भूमिके राजकी प्राप्तिवासतै युद्धविषे कपटतैं रहित शस्त्रोंकरिकै युद्ध करै हैं तथा ता युद्धतैं विमुख होते नहीं ते योद्धा पुरुष योगी पुरुषोंकी न्याई स्वर्गकूं प्राप्त होवै है इति । या वचनकरिकै युद्धविषे काम्यकर्मरूपता प्रतीत होवै है। तथा (हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्) या भगवानूके वचनतैंभी ता युद्धविषे काम्यकर्मरूपताही प्रतीत होवैहै तथापि प्रारंभ करा हुआ काम्यकर्मभी अवश्यकरिकै समाप्त करणेयोग्य होवै हैं यातैं सो प्रारंभ करा हुआ काम्यकर्मभी नित्यकर्मके तुल्यही होवै है और यह युद्धरूप कर्मभी पूर्व तुमनै प्रारंभ करा है यातैं इस युद्धविषे काम्यकर्मरूपताके अंगीकार किये हुएभी नित्यकर्मकी न्याई यह युद्धरूप कर्म तुम्हारेकूं परित्याग करणेकूं अशक्य है इति । अथवा । (अथ चैनं नित्यजातं) यह श्लोक तथा (जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः) यह श्लोक यह दोनों श्लोक आत्माके नित्यत्वपक्षविषेही हैं। आत्माके अनित्यत्वपक्षविषे ते दोनों श्लोक नहीं हैं काहेतैं परम आस्तिक जो अर्जुन है ता अर्जुनविषे वेदबाह्य नास्तिकोंके मतका अंगीकार करणा संभवता नहीं या पक्षविषे ता श्लोकके अक्षरोंकी या प्रकारतैं योजना करणी । जो वस्तु वास्तवतैं नित्य हुआही देहइंद्रियादिकोंके सम्बन्धके वशतैं जन्मे हुएकी न्याई प्रतीत होवै वाका नाम नित्यजात है । ऐसे वास्तवतैं नित्य हुए आत्माकूंभी

जो तूं जन्म्या हुआ मानै तथा वास्तववैं नित्य हुए आत्माकूंभी जों तूं मरा हुआ मानै तौभी तूं शोक करणेकूं योग्य नही है इति। इस प्रकारकी प्रतिज्ञा प्रथम श्लोकविषे करिकै ता प्रतिज्ञाकी सिद्धि करणेवास्तै द्वितीय श्लोक करिकै हेतु कहें हैं । (जातस्य हि इति) यद्यपि नित्य-वस्तुका जन्ममरण संभव नहीं तथापि उपाधिके जन्ममरणतैं ता नित्य-वस्तुविषेभीं जन्ममरणका व्यवहार पूर्व कथन करि आये है । दूसरा सर्व अर्थ स्पष्टही है ॥ २७ ॥

तहां पूर्व प्रसंगविषे सर्व प्रकारतैं आत्माके अशोच्यत्वका निरूपण करा । अब आत्माकूं शोकका अविषय हुएभी भूतोंका समुदायरूप इन भीष्मद्रोणादिक शरीरोंका उद्देश करिकै मैं शोक करता हूं या प्रकारकी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता शंकाकी निवृत्ति करैं हैं–

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ॥
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ २८ ॥

(पदच्छेदः) अव्यक्तादीनि । भूतानि । व्यक्तमध्यानि। भारत। अव्यक्तनिधनानि । एव । तत्र । का । परिदेवना ॥ २८ ॥

(पदार्थः) हे भारत ! यह शरीर आदिकालविषे अव्यक्त है तथा मध्यकालविषे व्यक्त हैं तथा मरणकालविषेभी अव्यक्तही हैं ऐसे शरीरों-विषे दुःखजन्य प्रलाप क्यों करणा है ॥ २८ ॥

भा० टी०–हे भारत ! पृथिवी आदिक पंच भूतोंका समुदायरूप जो यह भीष्मद्रोणादिक नामवाले स्थूलशरीर हैं ते यह शरीर अपणी उत्पत्तितैं पूर्व प्रतीत होवैं नहीं । और यह शरीर जन्मतैं अनंतर तथा मरणतैं पूर्व मध्यकालविषे प्रतीत होवैं हैं । और मरणतैं अनंतरभी यह शरीर प्रतीत होवै नहीं । यातैं यह शरीर आदिकालविषे तथा अंतका-लविषे तौ अव्यक्त हैं तथा मध्यकालविषे व्यक्त हैं । नहीं प्रतीत होणेका नाम अव्यक्त है और प्रतीत होणेका नाम व्यक्त है । जैसे स्वप्नके

पदार्थ तथा इंद्रजालके पदार्थ तथा रज्जुसर्पादिक अपणी प्रतीतिके समानकालविषेही स्थित होवैं है अपणी प्रतीतितैं पूर्वउत्तरकालविषे स्थित होवै नहीं तैसे यह शरीरभी केवल मध्यकालविषेही प्रतीत होवैं हैं पूर्व उत्तर कालविषे प्रतीत होवै नहीं । और "आदावंते च यन्नास्ति वर्तमानेपि तत्तथा"।अर्थ यह–जो पदार्थ आदिकालविषे तथा अंतकालविषे नहीं होवैहै सो पदार्थ मध्यकालविषेभी नहीं होवैहै जैसे स्वप्नादिकोंके पदार्थ आदि अंत कालविषे नहीं हैं यातैं मध्यकालविषेभी नहीं हैंतैसे यह शरीरभी आदि कालविषे तथा अंतकालविषे है नहीं यातैं मध्यकालविषेभी नहीं हैं । ऐसे मिथ्यारूप अत्यंत तुच्छ शरीरोंविषे दुःखजन्य प्रलाप करणा तुम्हारेकूं उचित नहीं है जैसे स्वप्नविषे अपणे बांधवोंकूं तथा धनकूं प्राप्त होइके जाग्रत् अवस्थाविषे तिन बांधव धनादिकोंके नाशकरिकै कोई मूढ पुरुषभी शोक करता नहीं । तैसे या अनित्य भीष्मद्रोणादिक शरीरोंका उद्देश करिके तुम्हारेकूं शोक करणा योग्य नहीं है इति । अथवा । भूतशब्द करिकै आकाशादिक पंचमहाभूतोंका ग्रहण करणा ता पक्षविषे या श्लोकके पदोंकी इस प्रकार योजना करणी । अव्याकृतनामा जो अविद्याउपहित चैतन्य है ताका नाम अव्यक्त है सो अव्यक्त है पूर्व अवस्था जिन आकाशादिक भूतोंकी तिन आकाशादिक भूतोंका नाम अव्यक्तादि है । तथा नामरूपकरिकै प्रगटरूप है स्थिति अवस्था जिन आकाशादिक भूतोंकी तिन आकाशादिक भूतोंका नाम व्यक्तमध्य है । और जैसे घटशरावादिक कार्योंका मृत्तिकारूप उपादानकारणविषे लय होवैं है तैसे अव्यक्तरूप अपणे कारणविषे निधन क्या प्रलय है जिन आकाशादिक भूतोंका तिन आकाशादिक भूतोंका नाम अव्यक्तनिधन है । तहां श्रुति " तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्तन्नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियत इति " । अर्थ यह–यह आकाशादिक प्रपंच अपणी उत्पत्तित पूर्व अव्याकृतरूप होता भया सो अव्याकृतरूप प्रपंच सृष्टिकालविषे नामरूपकरिके प्रगट होता भया इति । इत्यादिक श्रुति मायाउपहित चैतन्यरूप अव्यक्तकूंही

आकाशादिक सर्व प्रपंचका उपादानरूप तथा आधाररूप कथन करें हैं। और ता उपदानरूप अव्यक्तकूं या आकाशादिक प्रपंचके लयकी स्थानरूपता तौ अर्थतैंही सिद्ध होवै है काहेतैं कार्यका अपणे उपादान-कारणविषेही लय देखणेमें आवैं है । उपादानकारणकूं छोडिकै किसी अन्य पदार्थविषे कार्यका लय होवै नहीं यातै यह अर्थ सिद्ध भया अज्ञानकरिकै कल्पित होणेतैं अत्यंत तुच्छ जो यह आकाशादिक पंच-भूत हैं तिन भूतोंका उद्देश करिकैभी जबी तुम्हारेकूं शोक करणा उचित नहीं भया तबी तिन आकाशादिक भूतोंका कार्यरूप जो यह भीष्म-द्रोणादिक शरीर हैं तिन शरीरोंका उद्देशकरिकै शोक करणा उचित नहीं है. याकेविषे क्या कहणा है इति । अथवा आकाशादिक पंचभूत तथा तिन्होंके कार्य शरीरादिक अपणे अव्यक्तरूपकरिकै सर्वदा विद्यमान हैं किसीभी कालविषे तिन्होंका नाश होवै नहीं यातैं तिन्होंके उद्देशकरिकै प्रलाप करणा तुम्हारेकूं उचित नहीं है । इहां (हे भारत) या संबोध-नकरिकै भगवान्नै अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन करा तूं शुद्धवंशविषे उत्पन्न हुआ है यातैं तूं शास्त्रके अर्थकूं निश्चय करणे योग्य है ता शास्त्रके अर्थकूं तूं क्यूं नहीं निश्चय करता इति ॥ २८ ॥

हे भगवन् ! या लोकविषे शास्त्रके अर्थकूं जानणेहारे बहुत विद्वान् पुरुषभी शोक करते हुए देखणे विषे आवते है यातै तूं विद्वान् होइकै शोक किसवासतै करता है या प्रकारका उपालंभ वारंवार हमारेकूं आप किसवासतै देते हो । किंवा शास्त्रविषे कह्या है । " वक्तुरेव हि तज्जा-ड्यं श्रोता यत्र न बुद्ध्यते " अर्थ यह—जहां श्रोता बोधकूं नहीं प्राप्त होवै तहां वक्ताकीही जडता जानणी इति । यातैं तुम्हारे वचनके अर्थ-का नहीं बोध होणाभी हमारेकूं दोष नहीं है । समाधान—हे अर्जुन ! जैसे तुम्हारेकूं आत्माके अज्ञानतैंही शोक हुआ है वैसे अन्यभी विद्वानोंकूं जो शोक होवें है सोभी आत्माके अज्ञानतैंही होवै है । और जैसे अन्य पुरुषोंकूं आत्माके प्रतिपादक शास्त्रोंके अर्थका जो नहीं बोध हुआ

है सो अपणे अंतःकरणके दोषतैं नहीं हुआ है कोई वक्ता पुरुषके दोषतैं नहीं । तैसे तुम्हारेकूं जो हमारे वचनके अर्थका बोध नहीं भया है सोभी अपणे अंतःकरणके दोषतैं नहीं भया है याकेविषे कोई हमारा दोष नहीं है यातैं तुम्हारे पूर्व उक्त दोनों दोष संभवते नही । या प्रकारके अभिप्राय करिकै श्रीभगवान् आत्माके दुर्विज्ञेयत्वाकूं निरूपण करैं हैं–

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ॥ आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥ २९ ॥

(पदच्छेदः) आश्चर्यंवत् । पश्यँति । कंश्चित् । एँनम् । आँश्चर्यंवत् । वंदति । तथा । एवं । चं । अंन्यः । आश्चर्यंवत् । चं एँनम् । अंन्यः । शृंणोति । श्रुत्वा । अंपि । एँनम् । वेदं । नं । चं । एव । कश्चिंत् ॥ २९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! कोईंक पुरुष इसं आत्माकूं आंश्चर्यवत् देखता है तंथा अंन्य कोई पुरुष इस आत्माकूं आश्चँर्यवत् ही कंथन करै है तंथा अंन्य कोईं पुरुष इस आत्माकूं आंश्चर्यवत् श्रंवण करै है तंथा कोईंक पुरुष ईंस आत्माकूं श्रंवणकरिकै भी नंहीं जांनै है ॥ २९ ॥

भा० टी०–(एनम्)या पदकरिकै कथन करा जो आत्मारूप कर्म है । तथा (पश्यति) या पदकरिक कथन करी जो दर्शनरूप क्रिया है । तथा (कश्चित्) या पदकरिकै कथन करा जो अधिकारी पुरुषरूप कर्त्ता है । या तीनोंकाही (आश्चर्यवत्) यह विशेषण है । तहां प्रथम आत्मा रूप कर्मविषे आश्चर्यवत्रूपता निरूपण करैं हैं । हे अर्जुन ! यह आत्मादेव आश्चर्यवत् है क्या अद्भुत पदार्थके समान है । तथा अविद्याकरिकै कल्पित नानाप्रकारके विरुद्धकर्मवाला हुआ प्रतीत होवै है या कारणतैं यह आत्मादेव वास्तवतैं सर्वदा विद्यमान हुआ भी अविद्यमान हुएकी न्याईं प्रतीत होवैहै । तथा यह आत्मादेव वास्तवतैं स्वप्रकाश-

चैतन्यरूप हुआभी जडकी न्याई प्रतीत होवै है । तथा यह आत्मादेव वास्तवतैं आनन्दरूप हुआभी दुःखी हुएकी न्याई प्रतीत होवै है । तथा यह आत्मादेव वास्तवतैं सर्व विकारोंतैं रहित हुआभी विकारवान्की न्याई प्रतीत होवै है । तथा यह आत्मादेव वास्तवतैं नित्य हुआभी अनित्यकी न्याई प्रतीत होवै है । तथा यह आत्मादेव वास्तवतैं प्रकाशमान् हुआ भी अप्रकाशमान्की न्याई प्रतीत होवै है । तथा यह आत्मादेव वास्तवतैं ब्रह्मतैं अभिन्न हुआभी भिन्न हुएकी न्याई प्रतीत होवै है । तथा यह आत्मादेव वास्तवतैं सर्वदा मुक्त हुआभी बद्ध हुएकी न्याई प्रतीत होवै है । तथा यह आत्मादेव वास्तवतैं अद्वितीयरूप हुआभी सद्वितीयकी न्याई प्रतीत होवै है । इसतैं आदिलैके अनेक प्रकारकी आश्चर्यवत् रूपता आत्माविषे है । ऐसे आश्चर्यवत् आत्माकूं शमदमादिक साधनसम्पन्न तथा अंत्यशरीरवाला कोईक पुरुषही गुरुशास्त्रके उपदेशतैं अविद्यारचित सर्व द्वैतप्रपंचका निषेध करिकै परमात्माके स्वरूपमात्रकूं विषय करणेहारी तथा महावाक्यरूप वेदांतकरिकै जन्य तथा सर्व पुण्यकर्मोंकी फलरूप ऐसी अंतःकरणकी वृत्तिविषे साक्षात्कार करै है । अब दर्शनरूप क्रियाविषे आश्चर्यवत्रूपता निरूपण करै हैं । (पश्यति) या शब्दका अर्थरूप जो आत्माकी दर्शनरूप क्रिया है । सा दर्शनरूप क्रियाभी आश्चर्यवत् है । काहेतैं जो अंतःकरणका वृत्तिरूप ज्ञान स्वरूपतैं मिथ्यारूप हुआभी सत्य आत्माका अभिव्यंजक है । तथा जो ज्ञान अविद्याका कार्यरूप हुआभी ता अविद्याकूं नाश करै है । तथा जो ज्ञान अविद्यारूप कारणकूं नाश करता हुआ ता अविद्याका कार्य होणेतैं अपणेकूंभी नाश करै है । इसतैं आदिलैके अनेक प्रकारकी आश्चर्यवत्रूपता ता ज्ञानरूप दर्शनविषे है इति अब ता दर्शनरूप क्रियाके विद्वान्रूप कर्त्ताविषे आश्चर्यवत्रूपता निरूपण करै हैं । (कश्चित्) या शब्दकरिकै कथन करा जो आत्मसाक्षात्कारवान् पुरुष है सो विद्वान् पुरुषभी आश्चर्यवत् है । काहेतैं यह विद्वान् पुरुष आत्मसाक्षात्कारकरिकै अविद्यातैं तथा अविद्याके कार्यतैं रहित

हुआभी प्रारब्धकर्मकी प्रबलतातैं अज्ञानी पुरुषकी न्याईं व्यवहार करै है। तथा यह विद्वान् पुरुष सर्वदा समाधिविषे स्थित हुआभी व्युत्थानकूं प्राप्त होवै है । तथा यह विद्वान् पुरुष व्युत्थानकूं प्राप्त हुआभी पुनः समाधिकूं अनुभव करै है । इसतैं आदिलैके अनेक प्रकारकी आश्चर्यवत्रूपता ता विद्वान् पुरुषविषे है इति । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया जो आत्मा तथा जिस आत्माका ज्ञान तथा जिस आत्माके जानणेहारा पुरुष यह तीनों आश्चर्यरूप हैं, तिस परम दुर्विज्ञेय आत्माकूं तूं विनाही प्रयत्नतैं किसप्रकार जानि सकैगा । किंतु प्रयत्नतैं विना ता आत्माका जानणा अत्यन्त कठिन है इति । इस प्रकार उपदेश करणेहारे ब्रह्मवेत्ता पुरुषके अभावतैंभी आत्मा दुर्विज्ञेय है । काहेतैं जो विद्वान् पुरुष आप आत्माकूं अपरोक्ष जाने है । सो विद्वान् पुरुषही दूसरे अधिकारी पुरुषके प्रति तिस आत्माका उपदेश करि सकै है । और जो पुरुष आपही आत्माकूं नहीं जानता, सो अज्ञानी पुरुष दूसरे किसीके प्रति आत्माका उपदेश करि सकै नहीं । और जो विद्वान् पुरुष आत्माकूं अपरोक्ष जाने है, सो विद्वान् पुरुष विशेषकरिकै तौ समाधि युक्तही होवै है यातैं सो समाधिविषे जुड्या हुआ ब्रह्मवेत्ता पुरुष दूसरे अधिकारी पुरुषोंके प्रति किस प्रकार आत्माका उपदेश करैगा । किंतु नहीं करैगा । जिस कारणतैं चित्तकी बाह्यवृत्तितैं विना उपदेश करणा संभवता नहीं । और जिस ब्रह्मवेत्ता पुरुषका चित्त ता समाधितैं व्युत्थानकूं प्राप्त हुआ है, सो ब्रह्मवेत्ता पुरुष यद्यपि अधिकारीजनोंके प्रति आत्माके उपदेश करणेविषे समर्थ है तथापि सो ब्रह्मवेत्ता पुरुष दूसरे अधिकारी पुरुषोंकूं जानणा कठिन है । और जो कदाचित् यह अधिकारी पुरुष जिस किसी प्रकारकरिकै ता ब्रह्मवेत्ता पुरुषकूं जानैभी तौभी सो ब्रह्मवेत्ता पुरुष लाभ पूजा ख्याति आदिक प्रयोजनकी अपेक्षा करै नहीं । यातैं सो ब्रह्मवेत्ता पुरुष ता अधिकारी पुरुषके प्रति आत्माका उपदेश नहीं करैगा । औरसो ब्रह्मवेत्ता पुरुष

जो कदाचित् जिस प्रकारतैं कृपामात्रकरिकै ता अधिकारी पुरुषके प्रति आत्माका उपदेश करैभी तौभी ऐसा कृपालु ब्रह्मवेत्ता पुरुष ईश्वरकी न्याई अत्यंत दुर्लभ है। या प्रकारके अभिप्रायकरिकै श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति कहे हैं। (आश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः इति) हे अर्जुन! इस आत्मादेवकूं अन्य पुरुष आश्चर्यवत् कथन करे है। इहां (अन्यः) या शब्दकरिकै सर्व अज्ञानी जनोंतैं विलक्षण पुरुषका ग्रहण करणा। कोई आत्माके देखणेहारे पुरुषतैं भिन्न पुरुषका ग्रहण नहीं करणा। काहेतैं जो पुरुष जिस वस्तुकूं जाने है सो पुरुषही तिस वस्तुका कथन करै है तिस वस्तुके ज्ञानतैं विना तिस वस्तुका कथन संभवै नहीं। यातैं आत्माके जानणेहारे पुरुषतैं भिन्न पुरुषका जो अन्य शब्दकरिकै ग्रहण करिये तौ वदतोव्याघात दोषकी प्राप्ति होवैगी इति। इहांभी(एनम्) या शब्दकरिकै कथन करा जो आत्मारूप कर्म है तथा (वदति) या शब्दकरिकै कथन करी जो वदनरूप क्रिया है तथा (अन्यः) या शब्दकरिकै कथन करा जो ता वदनरूप क्रियाका कर्ता है या तीनोंकाही आश्चर्यवत् यह विशेषण जानणा। तहां आत्मारूप कर्मविषे तथा विद्वान् पुरुषरूप कर्ता विषे आश्चर्यवत्‌रूपता इसी श्लोकविषे पूर्व कथन करि आये हैं सो इहांभी जानि लेणा। अब वदनरूप क्रियाविषे आश्चर्यवत्‌रूपता निरूपण करे हैं। हे अर्जुन! सर्व शब्दोंका अवाच्य जो आत्मादेव है ता आत्मादेवका जो कथन है सो कथनभी आश्चर्यवत् है। तहां श्रुति—"यतो वाचो निवर्त्तंते अप्राप्य मनसा सह"। अर्थ यह—मनसहित वाणीभी जिस आत्माकूं न प्राप्त होइके जिस आत्मातैं निवृत्त होइ आवे है इति। तात्पर्य यह अविद्या अंतःकरणादिके विशिष्ट अर्थविषे है शक्ति जिनोंकी तथा भागत्यागलक्षणाकरिकै कल्पित है संबंध जिनोंका ऐसे जो तत् त्वं आदिक शब्द हैं तिन शब्दोंकरिकै सर्व धर्मोंतैं रहित शुद्ध आत्माका जो निर्विकल्पक साक्षात्काररूप प्रतिपादन है सो अत्यंत आश्चर्यरूप है। जिस कारणतैं लोकविषे किसी जातिगुणादिक धर्मोंकूं अंगीकार करिकैही शब्द

अपणे अर्थकूं बोधन करै है। जातिगुणादिक धर्मोंतैं विना किसीभी अर्थकूं शब्द बोधन करता नहीं इति । अथवा। सुपुप्त पुरुपके उठावणेहारे वचनकी न्याईं इन तत्त्वमसि आदिक वाक्योंनैं शक्तिरूप संबंधतैं विनाही तथा लक्षणारूप संबंधतैं विनाही तथा अन्य किसी संबंधतैं विनाही जो शुद्ध आत्मा प्रतिपादन करीता है सो अत्यंत आश्चर्यवत् है। जिस कारणतैं शब्दका सामर्थ्य किसी पुरुपतैंभी चिंतन करा जावै नहीं । शंका—शक्तिलक्षणादिक संबंधतैं विनाही सो शब्द जो कदाचित् अपणे अर्थका बोधन करता होवै तौ तिस शब्दतैं किसी दूसरे पदार्थकाभी बोध होणा चाहिये। ता शब्दके संबंधका अभाव सर्व पदार्थोंविषे तुल्यही है । समाधान—यह दोप लक्षणाअंगीकारपक्षविपेभी तुल्यही है । काहेतैं शक्यअर्थके संबंधका नाम लक्षणा है। सा शक्यसंबंधरूप लक्षणाभी अनेक पदार्थोंविपे रहे है। यातैं तिन सर्व पदार्थोंका बोध होणा चाहिये । जैसे गंगाविपे ग्राम है या वचनविपे स्थित जो गंगापद हैं ता गंगापदकी तीरविपे लक्षणा होवै है। तहां गंगापदका शक्य अर्थ जो जलका प्रवाह है ता जलके प्रवाहका जैसे तीरके साथि संयोगसंबंध है तैसे तौ जलविपे रहणेहारे मत्स्य नौकादिक अनेक पदार्थोंके साथि संयोगसंबंध है । शंका—यद्यपि शक्य अर्थका संबंध अनेक पदार्थोंके साथि होवै है तथापि जिस अर्थके बोध करावणेविपे वक्ता पुरुपका तात्पर्य होवै है, तिसीही अर्थका ता शब्दतैं बोध होवै है। तिसतैं अन्य अन्य अर्थका बोध होवै नहीं । समाधान—सो वक्ता पुरुपका तात्पर्यभी सर्व श्रोतापुरुपोंके प्रति तुल्यही है। यातैं तिन सर्व श्रोता पुरुपोंकूं ता वक्ताके तात्पर्यतैं तिसी अर्थका बोध होणा चाहिये। सो ऐसा देखणेविपें आवता नहीं । शंका—तिन सर्व श्रोता पुरुपोंविपे कोई एक श्रोताही ता वक्ता पुरुपके तात्पर्यविशेपकूं निश्चय करे है ते सर्व श्रोता पुरुप तिस तात्पर्यकूं निश्चय करिसकै नहीं। समाधान—या तुम्हारे कहणेतैं यह अर्थ सिद्ध होवै है। ता श्रोता पुरुपविपे स्थित जो कोई निर्दोपत्वरूप

विशेष धर्म है सो धर्मही ता वक्ता पुरुषके तात्पर्यका निश्चय करावणेहारा है इति। सो तात्पर्यका निश्चायक निर्दोषत्वरूप विशेष धर्म हमारे मंत विषेभी किसीतैं निवृत्त करा जावै नहीं। यातैं जिस शुद्ध अंतःकरणवाले अधिकारी पुरुषकूं वक्ताके तात्पर्य निश्चयपूर्वक भागत्यागलक्षणाकरिकै तत्त्वमसि आदिक महावाक्यके अर्थका बोध तुमोंनैं अंगीकार करीवा है तिसी शुद्ध अंतःकरणवाले अधिकारी पुरुषकूंही ' तत्त्वमसि' आदिक शब्दविशेष शक्तिलक्षणादिरूप संबंधतैं विनाही अखंड चैतन्यवस्तुका साक्षात्कार उत्पन्न करे है। यातैं इस हमारे शक्तिलक्षणादिक संबंधके अंगीकारपक्षविषे किंचित्मात्रभी दोषकी प्राप्ति होवै नहीं। उलटा इस हमारे पक्षविषे " यतो वाचो निवर्तन्ते" या श्रुतिका अर्थभी संकोचतैं विनाही सिद्ध होवै है। और लक्षणाअंगीकारपक्षविषे तौ या श्रुतिका जिस आत्माकूं शक्तिवृत्तिकरिकै वचन बोधन नहीं करे है या प्रकारका संकोच करणा होवै है इति। यहही भगवान्‌का अभिप्राय वार्त्तिककार सुरेश्वराचार्यनैंभी "अगृहीत्वैव संबंधमभिधानाभिधेययोः। हित्वा निद्रां प्रबुध्यंते सुषुप्तेर्बोधिताः परैः" इत्यादिक श्लोकोंकरिकै वर्णन करा है। तिन श्लोकोंका यह अभिप्राय है—शब्दकी अचिंत्यशक्ति होवै है। यातैं जैसे सुषुप्तिकूं प्राप्तहुए पुरुषोंकूं ता कालविषे शब्द अर्थ या दोनोंके शक्तिलक्षणादिक संबंधोंका ज्ञान है नहीं। तथापि ते सुपुप्त पुरुष अन्य पुरुषोंने हे देवदत्त ! इत्यादिक शब्दोंकरिकै बोधन करे हुए ता सुषुप्तितैं जाग्रत्‌कूं प्राप्त होवैं हैं। तैसे यह शुद्ध अंतःकरणवाले अधिकारी पुरुषभी शक्तिलक्षणादिक संबंधके ज्ञानतैं विनाही तत्त्वमसि आदिक वाक्योंतैं अद्वितीय ब्रह्मकूं साक्षात्कार करै हैं इसतैं आदिलैके अनेक प्रकारकी आश्चर्यवत्‌रूपता ता वदनरूप क्रियाविषे है इति। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। वचनका विषय आत्मा तथा ता वचनका वक्ता विद्वान् पुरुष तथा सा वचनरूप क्रिया यह तीनों अत्यंत आश्चर्यरूप हैं। या कारणतैं सो आत्मादेव अत्यंत दुर्विज्ञेय है इति। अब श्रोता पुरुषकी दुर्लभताकूं कथन

करिकैंभी ता आत्माकी दुर्विज्ञेयता निरूपण करें हैं । (आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद इति) हे अर्जुन ! आत्माकूं साक्षात्कार करणेहारा तथा आत्माका कथन करणेहारा जो मुक्त पुरुष है, ता मुक्त पुरुषतें भिन्न जो मुमुक्षु जन है, सो मुमुक्षु जन समित्पाणि होइकै विधिपूर्वक ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप जाइकै जो इस आत्माकूं श्रवण करे है क्या सर्व वेदांतवाक्योंके तात्पर्यका विषयरूपकरिकै निश्चय करे है सोभी अत्यंत आश्चर्यवत् है । और ता ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखतें आत्माका श्रवण करिकैभी मनन–निदिध्यासनकी परिपक्वताकरिकै जो आत्माका साक्षात्कार करणा है सोभी आश्चर्यवत् है। सो साक्षात्कारकी आश्चर्यरूपता (आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनं) या वचनकरिकै पूर्वकथन करि आये हैं । और पूर्वकी न्यांई इहांभी श्रवणका विषय आत्मा तथा श्रवणरूप क्रिया तथा श्रवणकर्त्ता पुरुष या तीनोंकाही आश्चर्यवत् यह विशेषण जानना । तहां आत्माविषे तथा श्रवणरूप क्रियाविषे तौ पूर्व उक्त आश्चर्यवत्‌रूपताही जानि लेणी। और श्रवणकर्त्ता पुरुषविषे तौ यह आश्चर्यरूपता है । पूर्व अनेक जन्मोंविषे अनुष्ठान करे जो पुण्यकर्म है तिनपुण्यकर्मोंकरिकै निवृत्त होइ गया है पापरूप मल जिसके मनका तथा गुरुशास्त्रके वचनोंविषे अत्यंत है श्रद्धा जिसकी ऐसे उत्तम अधिकारी पुरुषोंकी जो इस लोकविषे दुर्लभता है सा दुर्लभताही ता श्रोता पुरुषविषे आश्चर्यरूपता है । यह वार्ता श्रीभगवान् आपही "मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये । यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः" इति । या श्लोकविषे आगे कथन करेंगे । तहां श्रुतिभी– "श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वंतोपि बहवो यं न विदुः आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा आश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः " इति । अर्थ यह–यह आत्मादेव बहुत पुरुषोंकूं तौ श्रवणवासतें नहीं प्राप्त होता । और बहुत पुरुष तौ श्रवण करते हुएभी इस आत्माकूं जानि सकते नहीं । और इस आत्मादेवका वक्ता पुरुषभी बहुत आश्चर्यरूप है और इस आत्मादेवकूं प्राप्त होणेहारा पुरुषभी बहुत कुशल है । और ब्रह्मवेत्ता

कुशल गुरुकरिकै उपदेश करा हुआ इस आत्माके जानणेहारा विद्वान् पुरुषभी आश्चर्यरूप है इति । शंका–हे भगवन् ! जो अधिकारी पुरुष ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखतैं वेदांतशास्त्रका श्रवण मनन निदिध्यासन करैगा सो अधिकारी पुरुष ता आत्माकूं अवश्यकरिकै साक्षात्कार करैगा । याके विषे क्या आश्चर्य है ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्री भगवान् उत्तर कहे हैं (न चैव कश्चित् इति) या वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार पूर्ववचनविषे स्थित (एनं वेद) या दोनोंके अनुषंगवासतै है। पूर्ववचनविषे स्थित पदका उत्तरवचनविषे संबंध करणेका नाम अनुषंग है । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । कोइक पुरुष ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखतैं श्रवणादिकोंकूं करता हुआभी किसी प्रतिबंधके वशतैं इस आत्माकूं जानि सकता नहीं । जबी श्रवणादिकोंकूं करता हुआभी कोईक पुरुष इस आत्माकूं नहीं जानि सके है तबी श्रवणादिकोंकूं नहीं करणेहारे पुरुष इस आत्माकूं नहीं जानै हैं याके विषे क्या कहणा है । यह वार्त्ता वार्त्तिककार भगवान्नैंभी कथन करी है। तहां श्लोक। "कुतस्तज्ज्ञानमिति चेत्तद्धि बंधपरिक्षयात् । असावपि च भूतो वा भावी वा वर्त्ततेऽथवा" इति । अर्थ यह–सो आत्माका ज्ञान किसतैं प्राप्त होवै है ऐसी शिष्यकी शंकाके हुए सो आत्माका ज्ञान प्रतिबंधके नाशतैं प्राप्त होवै है सो प्रतिबंधभी भूतप्रतिबंध, भावीप्रतिबंध, वर्त्तमानप्रतिबंध यह तीन प्रकारका होवै है। तहां श्रवणादिकालविषे पूर्वदृष्ट अनात्मपदार्थोंका वारंवार स्मरण होणा याका नाम भूतप्रतिबंधहै। और जन्मादिकोंकी प्राप्ति करणेहारा जो कोई प्रबल अदृष्टविशेष है ताका नाम भाविप्रतिबंध है और विषयासक्ति, मंदबुद्धि कुतर्क विपरीत अर्थविषे दुराग्रह यह चारि प्रकारका वर्त्तमानप्रतिबंध है इति । या तिनों प्रतिबंधोंविषे एक प्रतिबंधभी जिस अधिकारी पुरुषविषे है सो अधिकारी पुरुष श्रवणादिकोंकूं करता हुआभी आत्माकूं जानि सकै नहीं । जैसे वामदेवकूं भावी प्रतिबंधके वशतैं श्रवणादिकोंकरिकै तिस जन्मविषे ज्ञान हुआ नहीं किंतु दूसरे जन्मविषे माताके उदरमें ता

प्रतिबंधके नाश हुएतैं वा वामदेवकूं आत्मज्ञानकी प्राप्ति हुई है । यह वार्त्ता आत्मपुराणके प्रथम अध्यायविषे हम विस्तारतैं कथन करि आये है। और "ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः" या स्मृतिनैं पापकर्मरूप प्रतिबंधके नाशतैं अनंतरही या अधिकारी पुरुषोंकूं ज्ञानकी प्राप्ति कथन करी है। और तिन सर्वप्रतिबंधोंका नाश होणा अत्यंत दुर्लभ है। या कारणतै यह आत्मादेव दुर्विज्ञेय है इति। इहां (श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्) या वचनका जो यह पूर्व उक्त अर्थ नहीं करिये किंतु इस आत्मादेवकूं श्रवणकरिकैभी कोईभी पुरुष जानि सकता नहीं या प्रकारका जो अर्थ करिये तौ "आश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः"। या श्रुतिके साथि या गीताके वचनकी एकवाक्यता सिद्ध नहीं होवैगी। तथा "यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः" या भगवान्‌के वचनकाभी विरोध होवैगा इति। अथवा।(न चैव कश्चित्) या अंत्यके वचनका "कश्चित् एनं न पश्यति कश्चित् एनं न वदति कश्चित एनं न शृणोति कश्चित् श्रुत्वापि एनं न वेद" या प्रकारका सर्वत्र संबंध करणा ताकरिकै यह पंच प्रकार सिद्ध होवैं हैं। कोईक पुरुष इस आत्मादेवकूं केवल जानेही है कथन करि सके नहीं ॥ १ ॥ और कोइक पुरुष तौ इस आत्मादेवकूं जानैभी है तथा कथनभी करै है ॥ २ ॥ और कोईक पुरुष तौ वचनकूं श्रवणभी करै है तथा ता वचनके अर्थकूंभी जानै है ॥ ३ ॥ और कोईक पुरुष वचनकूं श्रवणकरिकैभी ताके अर्थकूं जानता नहीं ॥ ४ ॥ और कोइक पुरुष तौ दर्शन कथन श्रवण इन सर्वतै बहिर्भूत होवै हैं ॥ ५ ॥ तहां अविद्वान्‌पक्षविषे असंभावना विपरीतभावनाकरिकै प्रतिबद्ध होणेतैंही ता दर्शन , वेदन श्रवणविषे आश्चर्यरूपता है। दुसरा सर्व अर्थ स्पष्ट है इति। और किसी टीकाविषे तौ (आश्चर्यवत्पश्यति) या श्लोकका यह अर्थ करा हैं। पूर्व श्लोकविषे कथन करा जो भूतभौतिक प्रपंच है ता प्रपंचकूं कोईक अलवेत्ता पुरुष आश्चर्यवत् देखै हैं। तात्पर्य

यह। स्वप्न ऐंद्रजालिक पदार्थोंके तुल्य देखै है इति। और अन्य विद्वान् पुरुष इस प्रपंचकूं आश्चर्यवत् कथन करै है। तात्पर्य यह। सत् असत्तैं विलक्षण या प्रपंचकूं लोक अप्रसिद्ध अनिर्वचनीयरूपकरिकै कथन करै है इति। और अन्य पुरुष इस प्रपंचकूं आश्चर्यवत् श्रवण करै है। तात्पर्य यह। अनात्मरूपकरिकै प्रसिद्ध जो यह प्रपंच है ता प्रपंचविषे 'इमे लोका इमे देवा इमे वेदा इदं सर्वं यदयमात्मा' इत्यादिक श्रुतिकरिकै जो प्रत्यक्आत्मरूपताका श्रवण है सोभी आश्चर्यरूप है इति। और कोइक पुरुष तौ इस प्रपंचका श्रवणकरिकै तथा स्वप्नादिक दृष्टांतोंवैं कथन करिकै तथा साक्षात्कारकरिकैभी वास्तववैं जानता नहीं॥ २९॥

पूर्वश्लोकोंविषे कथन करा जो सर्व प्राणियोंके प्रति साधारण भ्रमकी निवृत्तिका साधनरूप विचार ता विचारकी अबी समाप्ति करै हैं—

देही नित्यमवध्योयं देहे सर्वस्य भारत॥
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि॥ ३०॥

(पदच्छेदः) देही। नित्यम्। अवध्यः। अयम्। देहे। सर्वस्य। भारत। तस्मात्। सर्वाणि। भूतानि। न। त्वम्। शोचितुम्। अर्हसि॥ ३०॥

(पदार्थः) हे भारत! सर्व प्राणियोंके देहके नाश हुएभी यह देही आत्मा नाश होवै नहीं यह वार्त्ता जिस कारणतैं नियत है तिस कारणतैं तूं अर्जुन इन सर्व भूतोंका शोक करणेकूं नहीं योग्य है॥ ३०॥

भा० टी०—हे अर्जुन! ब्रह्मातैं आदिलेके चींटीपर्यंत जितनेक प्राणी हैं तिन सर्व प्राणियोंके देहके नाश हुएभी यह लिंगदेहरूप उपाधिवाला आत्मा नाशकूं प्राप्त होवै नहीं। जैसे घटरूप उपाधियोंकेनाश हुए भी तिन घटोंविषे स्थितआकाश नाश होवै नहीं तैसे तिन देहोंकेनाश हुएभी यह आत्मादेव नाश होवै नहीं। जिस कारणतैं यह वार्त्ता नियमपूर्वक है तिस कारणतैं भीष्मद्रोणादिक भावकूं प्राप्त हुए जो यह स्थूलसूक्ष्मरूप आकाशादिक

सर्व भूत हैं तिन भूतोंके उद्देशाकरिकै तूं शोक करणेकूं योग्य नहीं है। तात्पर्य यह। इस स्थूल शरीरका तौ अवश्यकरिके नाश होवैगा। ता नाशके निवृत्त करणेविषे कोईभी समर्थ नहीं है। या कारणतैं इस स्थूल शरीरका शोक करणा तुम्हारेकूं उचित नहीं है। और सूक्ष्म लिंगदेह तौ आत्माकी न्याईं शस्त्रादिकोंकरिकै नाश होता नहीं यातैं ता लिंगदेहकाभी शोक करणा तुम्हारेकूं उचित नहीं है। यातैं स्थूलदेह लिंगदेह तथा आत्मा या तीनोंका शोक करणा संभवता नहीं ॥ ३० ॥

इस प्रकार स्थूलशरीर तथा सूक्ष्मशरीर तथा तिन दोनों शरीरोंका कारणरूप अविद्या या तीन उपाधियोंके अविवेककरिकै मिथ्यारूप संसार विषे सत्यत्व तथा आत्मधर्मत्व आदिकोंकी प्रतीतिरूप तथा सर्वप्राणि-योंका साधारण जो अर्जुनका भ्रम है ता अर्जुनके भ्रमकी निवृत्ति करणे-वास्तै श्रीभगवान् ता अर्जुनके प्रति स्थूल सूक्ष्म कारण या तीन उपा-धियोंतैं भिन्नकरिकै आत्माका स्वरूप कथन करता भया। अबी युद्धरूप स्वधर्मविषे हिंसादिकोंकी बाहुल्यताकरिकै अधर्मत्वबुद्धिरूप तथा करुणा-दिक दोषोंकरिकै जन्य ऐसा जो अर्जुनका असाधारण भ्रम है ता असा-धारण भ्रमके निवृत्त करणेवास्तै श्रीभगवान् ता अर्जुनके प्रति ता हिंसा प्रधान युद्धविषेभी स्वधर्मताकरिकै अधर्मपणेका अभाव कथन करैं हैं-

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकंपितुमर्हसि ॥
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते॥३१॥

(पदच्छेदः) स्वधर्मम्। अपि। च। अवेक्ष्य। न। विकं-पितुम्। अर्हसि। धर्म्यात्। हि। युद्धात्। श्रेयः। अन्यत्। क्षत्रियस्य। न। विद्यते ॥ ३१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अपणे क्षत्रियके धर्म देखिकरिकै भी तूं युद्धतैं चलायमान होणेकूं नहीं योग्य है जिस कारणतैं क्षत्रिय राजाकूं धर्मरूप युद्धतैं दूसरा श्रेयका साधन नहीं विद्यमान है ॥ ३१ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! पूर्व उक्त रीतिसैं केवल परमार्थतत्त्वका विचार करिकैही तूं युद्धतैं निवृत्त होणेकूं योग्य नहीं है किंतु क्षत्रिय राजावोंका जो युद्धतैं पीछे नहीं हटणा या प्रकारका अपराङ्मुखत्व धर्म है ता अपराङ्मुखत्वरूप स्वधर्मकूं शास्त्रतैं विचार करिकैभी तूं ता स्वधर्मरूप युद्धतैं अधर्मत्वकी भ्रांतिकरिकै निवृत्त होणेकूं योग्य नहीं है। यातैं (यद्यप्येते न पश्यंति) इस वचनतैं आदिलैके (नरके नियतं वासो भवति) इस वचनपर्यंत तिन सर्व वचनोंकरिकै जो तुमनैं युद्ध विषे पापकी कारणता कथन करी थी तथा (कथं भीष्ममहं संख्ये) इत्यादिक वचनोंकरिकै जो तुमनैं युद्धविषे गुरुवोंके वध करणेका तथा ब्राह्मणोंके वध करणेका निषेध करा था सो यह सर्व वार्त्ता तुमनैं धर्मशास्त्रके अविचारतैं कथन करी थी। काहेतैं जिस कारणतै अपराङ्मुखत्वरूप धर्मसहित जो युद्ध है ता युद्धतैं क्षत्रिय राजाकूं दूसरा कोई श्रेयका साधनहै नहीं किंतु यह युद्धही पृथिवीके जयद्वारा प्रजाका रक्षण तथा ब्राह्मणोंकी शुश्रूषा इत्यादिक क्षत्रियोंके धर्मका निर्वाह करणेहारा है यातैं क्षत्रिय राजावोंकूं सर्व धर्मोंतैं सो युद्धही श्रेष्ठ धर्म है इति। यह वार्त्ता पाराशरऋषिनैंभी कही है। तहां श्लोक। "क्षत्रियो हि प्रजा रक्षन् शस्त्रपाणिः प्रदंडवान्। निर्जित्य परसैन्यानि क्षितिंधर्मेण पालयेत्"। अर्थ यह–क्षत्रिय राजा अपणे प्रजाका रक्षण करै तथा शस्त्रोंकूं हस्तविषे धारण करै। तथा दुष्ट जनोंकूं दंड देवै। तथा अन्य शत्रुवोंके सैन्योंकूं जीतिकरिकै धर्मकरिकै पृथिवीका पालन करै इति। यह वार्त्ता मनुभगवाननैंभी कही है। तहां श्लोकद्वय। "समोत्तमाधमै राजा चाहूतः पालयन् प्रजाः। न निवर्तेत संग्रामात् क्षात्रं धर्ममनुस्मरन् ॥ १ ॥ संग्रामेष्वनिवर्तित्वं प्रजानां चैव पालनम्। शुश्रूषा ब्राह्मणानां च राज्ञः श्रेयस्करं परम्"॥२॥ अर्थ यह–अपणे प्रजावोंका पालन करता हुआ यह क्षत्रिय राजा अपणे समान जातिवाले क्षत्रियोंनैं तथा उत्तम जातिवाले ब्राह्मणोंनैं तथा अधम जातिवाले वैश्यादिकोंनैं संग्राम करणेवासतैं बुलाया हुआ

अपणे क्षत्रियके धर्मकूं स्मरण करता हुआ वा संग्रामतैं निवृत्त नहीं होवै॥ १॥ और संग्रामतैं निवृत्त नहीं होणा तथा प्रजाका पालन करणा तथा ब्राह्मणोंकी शुश्रूषा करणी यह तीनों धर्म राजाके परमश्रेयके करणेहारे हैं ॥ २ ॥ इत्यादिक स्मृतिवचनोंतैं क्षत्रिय राजाका युद्धही श्रेष्ठ धर्म सिद्ध होवे है इहां यद्यपि युद्धतै भिन्न दूसरेभी अनेक धर्म क्षत्रियके श्रेयके साधनरूप हैं यातैं युद्धतैं भिन्न दूसरा कोई धर्म क्षत्रियके श्रेयका साधन नहीं है। या प्रकारका कहणां संभवता नहीं। तथापि क्षत्रिय राजाके सर्व धर्मोंविषे वा युद्धरूप धर्मकी श्रेष्ठता कहणेवासतै श्रीभगवान्नैं सो वचन कथन करा है। कोई दूसरे धर्मोंके निषेध करणेवासतैं सो वचन भगवान्नैं नहीं कह्या। इतने कहणेकरिकै युद्धतैंभी अत्यंत श्रेष्ठ कोई दूसरा धर्म है यातैं ता धर्मके करणेवासतै युद्धतै निवृत्ति संभव होइसकै है या प्रकारके शंकाकीभी निवृत्ति करी। तथा (न च श्रेयोनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे) या प्रकारके अर्जुनके वचनकाभी खंडन करा इति ॥ ३१ ॥

हे भगवन्! यद्यपि क्षत्रिय राजाका धर्म होणेतै सो युद्ध अवश्यकरिकै हमारेकूं करणे योग्य है। तथापि भीष्मद्रोणादिक गुरुवोंके साथि सो युद्ध करणा हमारेकूं उचित नहीं है। जिस कारणतैं अपणे गुरुवोंके साथि युद्ध करणा अत्यंत निंदित कर्म है ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं–

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ॥
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभंते युद्धमीदृशम्॥३२॥

(पदच्छेदः) यदृच्छया । च । उपपन्नम् । स्वर्गद्वारम् । अपावृतम् । सुखिनः । क्षत्रियाः । पार्थ । लभंते । युद्धम् । ईदृशम् ॥ ३२ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! प्रयत्नतैं विना ही प्राप्त हुआ तथा प्रतिबंधतैं रहित स्वर्गका साधनरूप इसँ प्रकारके युद्धकूं जे क्षत्रिय राजे प्राप्त होवैं हैं वे क्षत्रिय सुखकूंही प्राप्त होवैं हैं ॥ ३२ ॥

भा० टी०—हे पृथाके पुत्र अर्जुन ! तुम हमारेसाथि युद्ध करो या प्रकारकी प्रार्थनारूप प्रयत्नतैं विनाही प्राप्त भया जो यह युद्ध है कैसा है यह युद्ध भीष्मद्रोणादिक वीरपुरुष प्रतिपक्षी होइकै जिस युद्धके करणेहारे हैं तथा जो युद्ध कीर्ति, राज्यकी प्राप्ति इत्यादिक दृष्टफलोंका साधन है ऐसे युद्धकूं जे क्षत्रिय राजे प्राप्त होवै हैं ते क्षत्रिय राजे परम सुखकूंही प्राप्त होवैं है। काहेतैं ता युद्ध करिकै जो कदाचित् जय होवै है तौ विनाही प्रयत्नतैं इस लोकविषे यशकी तथा राज्यकी प्राप्ति होवै है। और जो कदाचित् ता युद्धतैं पराजय होवै है । तौ अत्यंत शीघ्रही स्वर्गकी प्राप्ति होवै है । याही अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करे हैं (स्वर्गद्वारमपावृतं इति) । कैसा है यह युद्ध प्रतिबंधतैं रहित स्वर्गकी प्राप्तिका साधनरूप है क्या व्यवधानतैं विनाही स्वर्गकी प्राप्ति करणेहारा है। यद्यपि ज्योतिष्टोमादिक यज्ञभी स्वर्गकी प्राप्ति करणेहारे हैं तथापि ते ज्योतिष्टोमादिक यज्ञ स्वर्गरूपफलकी प्राप्तिविषे इस वर्त्तमान शरीरकें नाशकी तथा प्रतिबंधके अभावकी अपेक्षा करे हैं यातैं ते ज्योतिष्टोमादिक यज्ञ चिरकालके पीछेही ता स्वर्गरूप फलकी प्राप्ति करे हैं । युद्धकी न्याई शीघ्रही स्वर्गकी प्राप्ति करैं नहीं । इहां (स्वर्गद्वारमपावृतं) इस वचनकरिकै भगवाननैं जैसे श्येनयज्ञके करणेतैं प्रत्यवाय होवै है तैसे युद्धके करणेतैंभी प्रत्यवाय होवैगा या प्रकारकी अर्जुनकी शंका निवृत्त करी । तहां 'श्येनेनाभिचरन् यजेत' इत्यादिक वचनोंकरिकै यद्यपि ते श्येनयज्ञादिक विधान करे हैं तथापि ते श्येनयज्ञादिक अपणे फलके दोषकरिकै दुष्ट हैं । काहेतैं तिन श्येनयज्ञादिकोंका फलरूप जो शत्रुका मरण है, सो शत्रुका मरणरूप फल ' न हिंस्यात्सर्वाभूतानि ब्राह्मणं न हन्यात्' इत्यादिक शास्त्रकरिकै निषिद्ध है यातैं सो शत्रुका

हननरूप फल प्रत्यवायका जनक है । और ता श्येनयज्ञके फलविषे कोई विधिवचनभी है नहीं यातैं विधियुक्त अर्थविषे निषेधका अवकाश होवै नहीं । या प्रकारके न्यायकीभी तहां प्राप्ति होवै नहीं । और युद्धका फल जो स्वर्ग है सो स्वर्ग किसी शास्त्रकरिकै निषिद्ध है नहीं । किंतु सो स्वर्ग शास्त्रकरिकै विहित है । यह वार्त्ता मनुभगवान्नैंभी कथन करी है । तहां श्लोक । " आहवेषु मिथोन्योन्यं जिघांसंतो महीक्षितः । युद्धमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यांत्यपराङ्मुखाः " अर्थ यह-युद्धविषे परस्पर हनन करणेकी इच्छावाले जे क्षत्रिय राजे हैं ते क्षत्रिय राजे यथाशक्ति परिमाण परस्पर युद्ध करते हुए तथा ता युद्धतैं पीछे मुख नहीं करते हुये स्वर्गकूं प्राप्त होवै हैं इति । किंवा । जैसे ' अग्नीषोमीयं पशुमालभेत' या वचनतैं विधान करी जो यज्ञविषे पशुकी हिंसा ता हिंसाकूं ' न हिंस्यात्सर्वाभूतानि ' यह निषेध स्पर्श करि सकै नहीं । तैसे यह युद्धभी शास्त्रकरिकै विधान करा है यातैं ता युद्धकूंभी सो निषेध स्पर्श करि सकै नहीं । तात्पर्य यह । ' न हिंस्यात्सर्वाभूतानि' यह तौ सामान्यशास्त्र है । और ' अग्नीषोमीयं पशुमालभेत' यह विशेष शास्त्र है । तहां सामान्यशास्त्रकी अपेक्षा करिकै विशेषशास्त्र बलवान् होवै है यातैं ता विशेषशास्त्रकरिकै सामान्यशास्त्रका संकोच करा जावै है । यातैं शास्त्रविहित युद्ध यज्ञादिकोंतैं भिन्नस्थलविषे किसीभी प्राणीकी हिंसा करणी नहीं । या प्रकार ता सामान्यशास्त्रका संकोच करणा संभवै है । जो कदाचित् 'न हिंस्यात्सर्वाभूतानि' या सामान्य शास्त्रके अर्थका इस प्रकारका संकोच नहीं करिये तौ ' अग्नीषोमीयं पशुमालभेत ' इत्यादिक सर्व वचन व्यर्थ होवैंगे यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । जैसे अग्नीषोमीय पशुकी हिंसा शास्त्रविहित होणेतैं प्रत्यवायका जनक होवै नहीं तैसे युद्धविषे स्थित हिंसाभी शास्त्रविहित होणेतैं प्रत्यवायका जनक होवै नहीं इति । और युद्धविषे भीष्मद्रोणादिक गुरुवोंके हननकरिकै जो दोष कथन करा था सोभी संभवै नहीं । काहेतें यह भीष्मद्रोणादिक यद्यपि तुम्हारे गुरु हैं तथापि

ते भीष्मद्रोणादिक आततायि हैं यातैं तिन्होंके हनन करणेतैं दोष होवै नहीं । यह वार्त्ता मनु भगवान्नैंभी कथन करी है । तहां श्लोक । "गुरु वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् । आततायिनमायांतं हन्यादेवाविचारयन् । नाततायिवधे दोषो हंतुर्भवति कश्चन" । अर्थ यह–अपणा गुरु होवै अथवा बालक होवै अथवा वृद्ध होवै अथवा शास्त्रवेत्ता ब्राह्मण होवै परंतु आततायि होवै सो आततायि पुरुष जिस कालविषे अपणे संन्मुख प्राप्त होवै तिसी कालविषे यह बुद्धिमान् पुरुष विचारतैं विनाही ता आततायि पुरुषकूं हनन करै ता आततायिके हनन करणेतैं इस पुरुषकूं दोषकी प्राप्ति होवै नहीं इति । आततायिका लक्षण प्रथम अध्यायविषे कथन करि आये हैं यातैं इन भीष्मद्रोणादिकोंके हननकरिकै तुम्हारेकूं किंचित्मात्रभी दोषकी प्राप्ति होवैगी नहीं । इहां (सुखिनः क्षत्रियाः) या वचनकरिकै युद्धकर्त्ता पुरुषकूं सुखकी प्राप्ति कथन करी । ता करिकै (स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनःस्याम माधव)अर्थ यह–अपणे बांधवोंकूं मारिकै मैं सुखकूं नहीं प्राप्त होवौंगा या अर्जुनके वचनका खंडन करा इति ॥ ३२ ॥

हे भगवन् ! जिस पुरुषकूं जिस कर्मके फलकी इच्छा होवै है सो पुरुषही तिस फलकी प्राप्तिवासतै तिस कर्मविषे प्रवृत्त होवै है । फलकी इच्छावैं विना किसीकीभी प्रवृत्ति होवै नहीं यह वार्त्ता सर्व लोकविषे प्रसिद्ध है । और हमारेकूं ता युद्धके फलकी इच्छा है नहीं । या कारणतैंही (न कांक्षे विजयं कृष्ण अपि त्रैलोक्यराज्यस्य) या प्रकारका वचन पूर्व हम कथन करि आये हैं । यातैं फलकी इच्छातैं रहित हमारेकूं सो युद्ध करणा उचित नहीं है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता अर्जुनके प्रति ता युद्धके नहीं करणेकरिकै दोषकी प्राप्तिका कथन करे हैं–

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ॥
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि३३

(पदच्छेदः) अथ । चेत् । त्वम् । इमम् । धर्म्यम् । संग्रामम् । न । करिष्यसि । ततः । स्वधर्मं । कीर्तिम् । च । हित्वा । पापम् अवाप्स्यसि ॥ ३३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो कदाचित् तू इस धर्मरूप संग्रामकूं नहीं करैगा तौ तिस संग्रामके नहीं करणेतैं तू अपणे धर्मकूं तथा कीर्तिकूं परित्याग करिकै पापकूं प्राप्त होवैगा ॥ ३३ ॥

भा० टी०— पूर्व युद्धकी कर्त्तव्यता कथन करी ता युद्धकी कर्त्तव्यता-रूप प्रथम पक्षकी अपेक्षा करिकै युद्धकू नहीं करणा यह दूसरा पक्ष है ता दूसरे पक्षके बोधन करणेवास्तै इस श्लोकके आदिविषे (अथ) यह शब्द कथन करा है । तहां भीष्मद्रोणादिक वीर पुरुष हैं प्रतियोगी जिसके ऐसा जो यह संग्राम है सो युद्धरूप संग्राम हिंसादिक दोषोंतैं रहित है यातैं धर्म्यरूप है । अथवा श्रेष्ठ पुरुषोंके धर्मतैं अविरुद्ध है यातैं धर्म्यरूप है । ते श्रेष्ठ पुरुषोंके धर्म मनुभगवान्नैं यह कहे हैं । यह क्षत्रिय राजा रणभूमिविषे युद्ध करता हुआ कपटतैं रहित आयुधोंकरिकै शत्रुवोंकूं हनन करै । तथा रथतैं विना समान पृथिवीविषे स्थित शत्रुकूंभी नहीं हनन करै । तथा नपुंसक शत्रुकूंभी नहीं हनन करै । तथा जो शत्रु मैं तुम्हारा हूं या प्रकारका वचन कहै तिसकूंभी नहीं हनन करै । तथा जो शत्रु निद्रा-विषे सोया होवै । तथा जो शत्रु वस्त्रोंतैं रहित नग्न होवै । तथा जो शत्रु आयुधोंतैं रहित होवै । तथा जो दूसरेके साथि केवल युद्ध देखणेवास्तै आया होवै । तथा जो परीक्षा करणेहारा होवै । तथा जो रोगी होवै । तथा जो पुरुष भययुक्त होवै । तथा जो पुरुष युद्धतैं पीछे भागा होवै । इत्यादिक शत्रुपुरुषोंकूं यह योद्धा पुरुष हनन करै नहीं । इत्यादिक श्रेष्ठ पुरुषोंके धर्मोंका उल्लंघन करिकै जो पुरुष युद्ध करै है सो पुरुष ता युद्धके स्वर्गादिक फलकूं प्राप्त होवै नहीं । किंतु सो पुरुष केवल पापकूंही प्राप्त होवै है । और तूं अर्जुन तौ दुर्योधनादिक शत्रुवोंनैं युद्ध करणेवास्तै बुलाया हुआभी जो सद्धर्मकरिकै युक्त इस युद्धरूप संग्रामकूं नहीं करैगा

क्या धर्मतैं अथवा लोकतैं भयभीत हुआ जो तूं इस युद्धतैं पीछे फिरैगा तौ " निर्जित्य परसैन्यानि क्षितिं धर्मेण पालयेत्" इत्यादिक शास्त्रकरिकै विधान करे हुए युद्धके नहीं करणेतैं अपणे धर्मका त्याग करिकै क्या अपणे धर्मका नहीं अनुष्ठान करिकै तथा यह अर्जुन साक्षात् महादेवादिक ईश्वरोंके साथभी युद्ध करता भया है, यातैं यह अर्जुन महान् पराक्रमवाला है । या प्रकारकी अपणी कीर्त्तिका परित्याग करिकै " न निवर्तेत संग्रामात्" इत्यादिक शास्त्रकरिकै निषिद्ध जो संग्रामतैं निवृत्तिरूप आचरण है ता निषिद्ध आचरणजन्य पापकूं ही तूं केवल प्राप्त होवैगा । किसी धर्मकूं अथवा किसी कीर्त्तिकूं तूं प्राप्त होवैगा नहीं इति । अथवा (स्वधर्मं हित्वा पापमवाप्स्यसि) या वचनका यह दूसरा अर्थ करणा-पूर्व अनेक जन्मोंविषे तुमनै इकट्ठे करे जो पुण्यरूप धर्म हैं तिन धर्मोंका परित्याग करिकै तूं केवल राजकृत पापकूंही प्राप्त होवैगा । तात्पर्य यह जो कदाचित् तू इस युद्धतैं पीछे फिरैगा तौभी यह दुर्योधनादिक दुष्ट अवश्यकरिकै तुम्हारा हनन करैंगे। और इस युद्धतैं पीछे हठिकरिकै जो तूं इन दुर्योधनादिकोंके हस्ततैं मरैगा तौ बहुत जन्मोंविषे इकट्ठे करे हुए अपणे पुण्यकर्मोंका परित्याग करिकै इन दुर्योधनादिकोंनैं करे हुए पापकर्मोंकू ही तूं प्राप्त होवैगा सो ऐसा करणा तुम्हारेकूं उचित नहीं है । यह वार्त्ता मनुभगवान्नैंभी कथन करी है । तहां श्लोक । " यस्तु भीतः परावृत्तः संग्रामे हन्यते परैः । भर्तुर्यद्दुष्कृतं किंचित् तत्सर्वं प्रतिपद्यते ॥ १ ॥ यच्चास्य सुकृतं किंचिदमुत्रार्थमुपार्जितम् । भर्त्ता तत्सर्वमादत्ते परावृत्तहतस्य तु" ॥ २ ॥ अर्थ यह—संग्रामविषे भयभीत होइकै पीछे हट्याहुआ जो पुरुष शत्रुपुरुषोंनैं हनन करता है सो पुरुष हनन करणेहारे पुरुषके सर्व पापोंकूं प्राप्त होवै है ॥ १ ॥ और युद्धतैं पीछे फिरिकै हननकूं प्राप्त हुए तिस पुरुषनैं स्वर्गादिकोंकी प्राप्तिवास्तै जितनैंकी पुण्यकर्म करे थे ते सर्व पुण्यकर्म सो हनन करणेहारा पुरुष लै जावै है ॥ २ ॥ यह वार्त्ता याज्ञवल्क्यमुनिनैंभी कही है "राजा सुकृतमादत्ते हतानां विपलायिनाम्"

अर्थ यह—युद्धतैं पीछे फिरिकै हननकूं प्राप्त हुए जो योद्धा हैं तिन योद्धा पुरुषोंके सर्व पुण्यकर्मोंकूं सो हनन करणेहारा राजा लै जावै है इति । इतनै कहणे करिकै पूर्व अर्जुननैं (पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः । एतान्न हंतुमिच्छामि घ्नतोपि मधुसूदन) या प्रकारके वचन कहे थे । तिन सर्व वचनोंका खंडन करा ॥ ३३ ॥

इस प्रकार पूर्व श्लोकविषे युद्धके परित्याग करणेकरिकै अर्जुनकूं कीर्तिरूप इष्टकी तथा धर्मरूप इष्टकी अप्राप्ति कथन करी । तथा पापरूप अनिष्टकी प्राप्ति कथन करी । तहां पापरूप अनिष्ट तौ बहुत कालतैं पीछे परलोकविषे दुःखरूप फलकी प्राप्ति करै है और शिष्टपुरुषोंनैं करी जो निंदा है सो निंदारूप अनिष्ट तौ अबही दुःखरूप फलकी प्राप्ति करै है । तथा बुद्धिमान् पुरुषोंनै सो निंदाजन्य दुःख सहन करणेंकूंभी अशक्य है । यह वार्त्ता श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति कथन करै हैं—

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यंति तेऽव्ययाम्॥
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥३४॥

(पदच्छेदः) अकीर्तिम् । च । अपि । भूतानि । कथयिष्यंति । ते । अव्ययाम् । संभावितस्य । च । अकीर्तिः । मरणात् । अतिरिच्यते ॥ ३४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तथा देव ऋषि मनुष्य तुम्हारी दीर्घकालपर्यंत अकीर्तिकूं भी कथन करैंगे और गुणवाने पुरुषकी अकीर्ति मरणतैंभी अधिक है ॥ ३४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो तूं इस युद्धतैं निवृत्त होवैगा तौ देवता ऋषि मनुष्य इसतें आदिलैके जितनेक भूतप्राणी हैं ते सर्व प्राणि परस्पर कथाप्रसंगविषे यह अर्जुन धर्मात्मा नहीं है तथा शूरवीरभी नहीं है या प्रकारकी तुम्हारी अकीर्त्तिकूं दीर्घकालपर्यंत कथन करैंगे । इहां (च अपि) यह दोनों पद पूर्व कथन करे हुए कीर्तिके नाशका तथा धर्मके

नाशका समुच्चय करावणेवासतै हैं ताकरिकै यह अर्थ सिद्ध होवै है इस युद्धतै निवृत्त होणेकरिकै तूं कीर्त्ति धर्म दोनोंका परित्याग करिकै केवल पापकूंही प्राप्त नहीं होवैगा। किंतु अकीर्त्तिकूंभी तूं प्राप्त होवैगा। तथा केवल तूंही ता अकीर्त्तिकूं प्राप्त नहीं होवैगा। किंतु दूसरे देव ऋषि मनुष्यादिक प्राणीभी तुम्हारी अकीर्त्तिकूं कथन करैंगे इति। शंका–हे भगवन् ! युद्धविषे अपणे मरणेका संदेह रहे है। यातैं ता मरणके निवृत्त करणेवासतै अपणी अकीर्त्तिभी सहारणेकूं योग्य है जिस कारणतैं अपणे आत्माकी रक्षा करणी अत्यंत अपेक्षित है यह वार्त्ता महाभारतके शांतिपर्वविषेभी कथन करी है तहां श्लोक। "साम्ना दानेन भेदेन समस्तैरुत वा पृथक्। विजेतुं प्रयतेतारीन् न युद्धेन कदाचन ॥ १ ॥ अनित्यो विजयो यस्मात् दृश्यते युद्ध्यमानयोः। पराजयश्च संग्रामे तस्माद्युद्धं विवर्जयेत् ॥ २ ॥ त्रयाणामप्युपायानां पूर्वोक्तानामसंभवे। तथा युद्धेत संयत्तो विजयेत रिपून्यथा" ॥ ३ ॥ अर्थ यह–साम, दान, भेद या तीन उपायोंकरिकै अथवा एक एक उपायकरिकै यह बुद्धिमान् पुरुष अपणे शत्रुवोंके जय करणेवासतै प्रयत्न करै ॥ १ ॥ जिस कारणतैं युद्ध करणेहारे पुरुषोंका संग्रामविषे नियमतैं जय देखणेविषे आवता नहीं। किंतु बहुत स्थलविषे पराजयही देखणेमें आवता है। तिस कारणतैं यह बुद्धिमान् पुरुष युद्धकूं नहीं करै ॥ २ ॥ और पूर्व कथन करे जो साम, दान, भेद यह तीन उपाय तिन तीनों उपायोंका जहां असंभव होवै तहां यह पुरुष ऐसा सावधान होइकै युद्ध करै जिसकरिकै अपणे शत्रुवोंकूं जयकरि लेवै ॥ ३ ॥ यातैं मरणतैं भयकूं प्राप्त हुए पुरुषकूं अकीर्त्तिजन्य दुःख क्या करैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता शंकाकी निवृत्ति करै हैं। (संभावितस्य इति) हे अर्जुन ! यह पुरुष अत्यंत धर्मात्मा है तथा अत्यंत शूरवीर है इत्यादिक अनेक गुणोंकरिकैं जिस पुरुषकूं लोकोंनैं श्रेष्ठ मान्या है, तिस पुरुषका नाम संभावित है। ऐसे संभावित पुरुषकी

जो लोकविषे अकीर्ति है सो अकीर्ति मरणतैभी अधिक है यातैं तिस अकीर्तितैं ता संभावित पुरुषका मरणही श्रेष्ठ है। और तूं अर्जुनभी धर्मनिष्ठाकरिकै तथा महादेवादिक ईश्वरोंके साथि युद्ध करिकै लोकविषे बहुत संभावित हैं यातैं तूं अकीर्तिजन्य दुःखकूं नहीं सहन करि सकैगा और पूर्व कथन करा जो शांतिपर्वका वचन है, सो वचन तौ अर्थशास्त्ररूप है। यातैं 'न निवर्तेत संग्रामात्' इत्यादिक धर्मशास्त्रतैं सो वचन दुर्बल है ॥ ३४ ॥

हे भगवन्! या लोकविषे शत्रुमित्रभावतैं रहित जे उदासीन पुरुष हैं ते उदासीन पुरुष हमारेकूं युद्धतैं विमुख हुआ देखिकै हमारी निंदा करैंगे सो करते रहैं। परंतु यह भीष्मद्रोणादिक जो महारथी पुरुष हैं वे भीष्मद्रोणादिक पुरुष हमारेकूं युद्धतैं निवृत्त हुआ देखिकै यह अर्जुन बहुत करुणायुक्त है या प्रकार हमारी स्तुतिही करैंगे। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं–

भयाद्रणादुपरतं मंस्यंते त्वां महारथाः ॥
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ३५॥

(पदच्छेदः) भयात्। रणात्। उपरतम्। मंस्यंते। त्वाम्। महारथाः। येषाम्। च। त्वम्। बहुमतः। भूत्वा। यास्यसि। लाघवम्। ॥ ३५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! यह भीष्मद्रोणादिक महारथी तुम्हारेकूं भयतैं रणतैं उपराम हुआ मानैंगे तथा जिन भीष्मादिकोंकूं तूं बहुत गुणयुक्त होता भया ऐसो होइकै तिन भीष्मद्रोणादिकोंकेही लाघवताकूं प्राप्त होवैगा ॥ ३५ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन! जो तूं युद्धकूं नहीं करैगा। तौ यह भीष्मद्रोणादिक महारथी यह अर्जुन कर्णादिक शूरवीरोंकी भयतैं इस युद्धतैं निवृत्त हुआ है कोई दयाकरिकै युद्धतैं निवृत्त नहीं भया है या प्रकार

तुम्हारेकूं मानैंगे। शंका—हे भगवन् ! ते भीष्मद्रोणादिक पूर्व हमारेकूं धर्म, पराक्रम, धैर्य इत्यादिक गुणोंकरिकै श्रेष्ठ मानते हैं। यातैं अबी ते भीष्म द्रोणादिक हमारेकूं कर्णादिक शूरवीरोंकी भयकरिकै युद्धते निवृत्त हुआ कैसे मानैंगे। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहे हैं (येषां त्वं बहुमतः) इति। हे अर्जुन ! जिन भीष्मद्रोणादिकोंनैं पूर्व तुम्हारेकूं यह अर्जुन धर्म, पराक्रम, धैर्य इत्यादि अनेक गुणोंकरिकै युक्त है या प्रकार मान्या है ते भीष्मद्रोणादिक महारथीही अबी तुम्हारेकूं कर्णादिकोंके भयकरिकै युद्धतैं उपराम हुआ मानैंगे। यातैं जिन भीष्मद्रोणादिकोंनैं पूर्व तुम्हारेकूं श्रेष्ठकरिकै मान्या थां। अभी इस युद्धतैं निवृत्त होइकै तूं तिन भीष्मद्रोणादिकोंकेही अनादररूप लाघवकूं प्राप्त होवैगा ३५

हे भगवन् ! हमारेकूं युद्धतैं निवृत्त हुआ देखिकै यह भीष्मद्रोणादिक महारथी हमारेकूं श्रेष्ठ मत मानैं। परन्तु हमारी युद्धतैं निवृत्ति होणी हमारे दुर्योधनादिक शत्रुवोंकूं बहुत अनुकूल है। यातैं ते दुर्योधनादिक शत्रु तौ हमारेकूं युद्धतैं निवृत्त हुआ देखिकै श्रेष्ठ करिकै मानैंगे। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहे हैं—

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यंति तवाहिताः॥
निंदंतस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥३६॥

(पदच्छेदः) अवाँच्यवादान्। चँ। बँहून्। वदिष्यंति। तँव। अँहिताः। निंदँतः। तँव। सामर्थ्यँम्। तँतः। दुःखँतरम्। नुँ किम्॥ ३६॥

(पदार्थः) हे अर्जुन। तुम्हारे दुर्योधनादिक शत्रुभी तुम्हारे सामर्थ्यकूं निंदते हुए नहीं कँहणेयोग्य अनेक प्रकारके वचनोंकूं कथन करैंगे तिसँतैं परे अधिक दुख क्यों है॥ ३६॥

भा० टी०—हे अर्जुन। जभी तूं इस युद्धतैं निवृत्त होवैगा तभी सर्व लोकविषे प्रसिद्ध जो तुम्हारा सामर्थ्य है ता सामर्थ्यकी निंदा करते हुए

यह दुर्योधन कर्ण विकर्णादिक तुम्हारे शत्रुभी नहीं कथन करणेकूं योग्य जो अनेक प्रकारके धिक्कारशब्द हैं तिन शब्दोंकूं कथन करैंगे। शंका-हे भगवन् ! भीष्मद्रोणादिकोंके नाश होणेकरिकै उत्पन्न होणेहारा जो अत्यंत कष्टरूप दुःख है ता दुःखकूं नहीं सहन करता हुआ इस युद्धतै निवृत्त हुआ मैं अर्जुन तिन शत्रुवोंनैं करी हुई जो हमारे सामर्थ्यकी निंदा है ता निंदाजन्य दुःखकूं सहारि सकौंगा ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहै हैं (ततो दुःखतरं नु किं) इति हे अर्जुन ! लोकनिंदातैं प्राप्त भया जो दुःख है ता दुःखतै कौन अधिक दुःख है ? किंतु ता निंदाजन्य दुःखतै अधिक कोईभी दुःख नहीं है। यातै ता निंदाजन्य दुःखकूं तूं नहीं सहारिसकैगा ॥ ३६ ॥

हे भगवन् ! जो मैं इस युद्धविषे भीष्मद्रोणादिक गुरुवोंकूं हनन करौंगा तौ मध्यस्थ पुरुष हमारी निंदा करैंगे। और जो मैं इस युद्धतै निवृत्त होवौंगा तौ यह दुर्योधनादिक शत्रु हमारी निंदा करैंगे । यातैं इस युद्धके करणेपक्षविषे तथा इस युद्धके नहीं करणेपक्षविषे ता निंदाजन्य दुःखकी प्राप्ति तुल्यही है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् जयपक्षविषे तथा पराजयपक्षविषे तुम्हारेकूं निश्चयकरिकैही लाभकीही प्राप्ति है यातै युद्ध करणेवास्तैही तुम्हारेकूं उठ्या चाहिये या प्रकारका वचन अर्जुनके प्रति कथन करै हैं-

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्॥
तस्मादुत्तिष्ठ कौंतेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥३७ ॥

(पदच्छेदः) हतः । वा । प्राप्स्यसि । स्वर्गम् । जित्वा । वा । भोक्ष्यसे । महीम् । तस्मात् । उत्तिष्ठ । कौंतेय । युद्धाय । कृतनिश्चयः ॥ ३७ ॥

(पदार्थः) हे कुंतीके पुत्र अर्जुन ! जो कदाचित् तूं युद्धविषे मृत होवैगा तौ स्वर्गकूं प्राप्त होवैगा अथवा इन शत्रुवोंकूं जीतिकै तूं इस

पृथिवीकूं भोगेगा तिसै कारणतैं निश्चययुक्त होइकै तूं इसै युद्धवासतै उठी खडा होउ ॥ ३७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! इस युद्धविषे जो कदाचित् तूं इन दुर्योधनादिक शत्रुवोंतैं मृत्युकूं प्राप्त होवैगा तौ तूं अवश्यकरिकै स्वर्गकूं प्राप्त होवैगा और जो कदाचित् तूं इन दुर्योधनादिक शत्रुवोंकूं जीतैगा तौ तूं शत्रुरूप कंटकोंतैं रहित इस पृथिवीके राज्यकूं भोगैगा।जिस कारणतैं पराजयपक्ष विषे तथा जयपक्षविषे या दोनों पक्षविषे तुम्हारेकूं लाभकीही प्राप्ति है। तिस कारणतैं कै तौ मैं इन दुर्योधनादिक शत्रुवोंकूं जीतौंगा कै तौ मैं मृत्युकूं प्राप्त होवैंगा या प्रकारका दृढ निश्चय करिकै तूं इस युद्धकरणेवासतै उठि खडा होउ । इतनै कहणेकरिकै अर्जुनके" न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयः" इत्यादिक सर्व वचनोंका खंडन करा इति ॥ ३७ ॥

हे भगवन् ! जो कदाचित् मैं स्वर्गकी प्राप्तिवासतैं इस युद्धकूं करौंगा तौ ज्योतिष्टोमादिक यज्ञोंकी न्याई इस युद्धकूं नित्य कर्मरूपता नहीं संभवैगी । किंतु काम्यकर्मरूपता होवैगी । और जो कदाचित् मैं इस पृथिवीके राज्यकी प्राप्तिवासतैं इस युद्धकूं करौंगा तौ ता युद्धके विधान करणेहारे शास्त्रकूं अर्थशास्त्ररूपता प्राप्त होवैगी । ताकरिकै तिस शास्त्रविषे धर्मशास्त्रकी अपेक्षाकरिकै दुर्बलता सिद्ध होवैगी । यातैं काम्यकर्मरूप युद्धके न करणेकरिकै हमारेकूं कैसे पाप होवैगा किंतु नहीं होवैगा । तथा राज्यरूप दृष्ट अर्थकी प्राप्ति करणेहारे तिन गुरुब्राह्मणोंके हननरूप युद्धविषे कैसे धर्मरूपता होवैगी किंतु नहीं होवैगी । यातैं (अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यम्) या पूर्व श्लोकका अर्थ असंगत है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहै हैं—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ॥
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥३८॥

(पदच्छेदः) सुखदुःखे । समे । कृत्वा । लाभालाभौ । जयाजयौ । ततः । युद्धाय । युज्यस्व । न । एवम् । पापम् । अवाप्स्यसि ॥ ३८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सुखदुःख दोनोंकूं तथा लाभअलाभ दोनोंकूं तथा जय अजय दोनोंकूं समान करिकै तिसतैं अनंतर तूं युद्ध करणेवासतैं तयार होउ इस प्रकार युद्ध करता हुआ तूं पापकूं नहीं प्राप्त होवैगा ॥ ३८ ॥

भा० टी०— इष्ट अनिष्ट पदार्थोंकी प्राप्तिविषे जो रागद्वेषतैं रहित होणा है याका नाम समताभाव हैं। तहां सुखविषे तथा ता सुखके कारणरूप लाभविषे तथा ता लाभके कारणरूप जयविषे रागकूं न करिकै इस प्रकार दुःखविषे तथा ता दुःखके कारणरूप अलाभविषे तथा ता अलाभके कारणरूप अजयविषे द्वेषकूं न करिकै तूं इस युद्ध करणेवासतै तयार होउ । इस प्रकार सुखकी कामनाका परित्याग करिकै तथा दुःखके निवृत्तिकी कामनाका परित्याग करिकै केवल स्वधर्मबुद्धिकरिकै जो तूं इस युद्धकूं करैगा तौ इन गुरुब्राह्मणोंके हननजन्य पापकूं तथा नित्यकर्मके नहीं करणेजन्य पापकूं तूं प्राप्त होवैगा नहीं । और जो पुरुष इस लोकके फलकी अथवा परलोकके फलकी कामनाकरिकै युद्धकूं करै है सो पुरुष गुरुब्राह्मणादिकोंके नाशजन्य पापकूं अवश्य प्राप्त होवै है । और जो पुरुष ता युद्धकूं नहीं करै है सो पुरुष ता नित्यकर्मके न करणेजन्य पापकूं होवै है यातैं फलकी इच्छातैं विना केवल स्वधर्म जानिकै युद्धके करणेतैं यह पुरुष ता दोनों प्रकारके पापकूं प्राप्त होवै नहीं । और "हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् " या वचनकरिकै जो हमनैं पूर्व युद्धके फलका कथन कराहै सो आनुषंगीक फलका कथन कराहै । यातैं ता पूर्व वचनकाभी विरोध होवै नहीं । यह वार्त्ता आपस्तंबऋषिनैंभी कथन करीहै । "तद्यथाऽऽम्रे फलार्थे निर्मिते छाया गंध इत्यनूत्पद्येते एवं धर्मं चर्यमाणमर्था अनूत्पद्यंते नोचेदनूत्पद्यंते न धर्म-

हानिर्भवतीति" । अर्थ यह–जैसे इस लोकविषे आम्रफलोंकी प्राप्तिवासतें लगाया हुआ जो आम्रका वृक्ष है ता वृक्षकी छाया तथा सुगंध अवश्य करिकै प्राप्त होवै है । तहां छाया सुगंधकी प्राप्ति ता वृक्षका आनुषंगिक फल है । तैसे यह धर्म हमारेकूं अवश्य करणेयोग्य है या प्रकार स्वधर्मबुद्धि करिकै करा हुआ जो धर्म है ता धर्मकारिकै राज्यस्वर्गादिक अर्थभी अवश्यकरिकै प्राप्त होवैं हैं परंतु ते राज्य स्वर्गादिक पदार्थ ता धर्मका आनुषंगिक फलरूप हैं । जो कदाचित् ते राज्यस्वर्गादिक अर्थ नहींभी प्राप्त होवैं तौ भी ता करे हुए धर्मकी हानि होवैं नहीं इति । यातैं युद्धकूं विधान करणेहारा शास्त्र अर्थशास्त्ररूप नहीं है । किंतु धर्मशास्त्ररूप है । इतनैं कहणेकरिकै श्रीभगवान्‌नै (पापमेवाश्रयेदस्मान्) इत्यादिक अर्जुनके वचनोंका खंडन करा ॥ ३८ ॥

हे भगवन् ! स्वधर्मबुद्धिकरिकै युद्धकरणेहारे पुरुषकूं जो आपनैं पापका अभाव कह्या सो सत्य है । तथापि हमारेप्रति युद्ध करणेका उपदेश करणा आपकूं उचित नहीं है । काहेतैं पूर्व आपनैं (य एनं वेत्ति हंतारं,कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हंति कम्) इत्यादिक वचनोंकरिकै विद्वान् पुरुषविषे सर्व कर्मोंका निषेध कथन करा है । और अकर्त्ता अभोक्ता शुद्धस्वरूप मैं हूं तथा इस युद्धकूं करिकै मैं ताके फलकूं भोगूंगा या प्रकारका ज्ञानभी संभवता नहीं। जिस कारणतैं अकर्तृत्वबुद्धिका तथा कर्तृत्वबुद्धिका परस्पर विरोध है । एक अधिकरणविषे एक कालमैं ते दोनों बुद्धि होवैं नहीं और जैसे प्रकाश तथा अंधकार या दोनोंका समुचय होवै नहीं, तैसे ज्ञान तथा कर्म या दोनोंकाभी समुचय होवै नहीं । यह अर्जुनका अभिप्राय (ज्यायसीचेत्) या श्लोकविषे आगे स्पष्ट होवेगा । यातैं एकही मैं अर्जुनके प्रति ज्ञानका उपदेश तथा कर्मका उपदेश संभवता नहीं। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्री भगवान् विद्वत् अवस्थाके तथा अविद्वत् अवस्थाके भेदकरिकै एकही पुरुषके ज्ञानका उपदेश तथा कर्मका उपदेश संभव होइ सकै है या प्रकारका उत्तर कहै हैं–

एषा तेभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु ॥
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबंधं प्रहास्यसि३९॥

(पदच्छेदः) एषा । ते । अभिहिता । सांख्ये । बुद्धिः । योगे । तु । इमाम् । शृणु । बुद्ध्या । युक्तः । यया । पार्थ । कर्मबंधम् । प्रहास्यसि ॥ ३९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! हमनैं तुम्हारे ताईं यह पूर्व उक्त बुद्धि ब्रह्मविषे कथन करी अभी कर्मयोगविषे इस वक्ष्यमाण बुद्धिकूं तूं श्रवण कर जिसै बुद्धिकरिकै युक्त हुआ तूं कर्मबंधकूं परित्याग करैगा ॥ ३९ ॥

भा०टी०—देहादिक सर्व उपाधियोंतैं भिन्न करिकै परमात्माका वास्तव स्वरूप प्रतिपादन करिये जिसकरिकै ताका नाम संख्य है ऐसा उपनिषद्रूप शास्त्र है ता उपनिषद्करिकै जो वस्तु प्रतिपादन करिये ता वस्तुका नाम सांख्य है ऐसा जीवका वास्तव स्वरूप परमात्मा देव है । ऐसे सांख्य नामा परमात्मादेवविषे (नत्वेवाहं जातु नासम्) इस श्लोकतैं आदिलैके (स्वधर्ममपि चावेक्ष्य) इस श्लोकतैं पूर्व एकविंशति (२१) श्लोकोंकरिकै ज्ञानरूप बुद्धि हमनैं तुम्हारेप्रति कथन करी। कैसी है सा बुद्धि जन्ममरणादिक सर्व अनर्थोंके निवृत्तिका कारण है । ऐसी आत्मज्ञानरूप बुद्धि जिस अधिकारी पुरुषकूं प्राप्त भई है । तिन विद्वान् पुरुषके प्रति कदाचित्भी हमनैं कर्मोंकी कर्त्तव्यता कथन करी नहीं । काहेतैं (तस्य कार्यं न विद्यते) या वचनकरिकै तिस विद्वान् पुरुषविषे सर्व कर्मोंके कर्तव्यताका अभाव आगे हमनैं कथन करणा है । जो कदाचित् अभी तौ मैं ता विद्वान् पुरुषविषे कर्मोंकी कर्त्तव्यताका कथन करौं और आगे ता विद्वान् पुरुषविषे सर्व कर्मोंकी कर्त्तव्यताका अभाव कथन करौं तौ हमारे पूर्व उत्तर वचनोंका विरोध होवैगा यातैं विद्वान् पुरुषविषे कर्मोंकी कर्त्तव्यतामें हमारा तात्पर्य नहीं है किंतु हमारा यह तात्पर्य है । इस प्रकार आत्माके उपदेश किये हुएभी जो कदाचित् अपणे चित्तके दोषतैं तुम्हा-

रेकूं सा ब्रह्मात्माकारबुद्धि नहींउत्पन्न होवै तौ ताचित्तके दोषकी निवृत्तिकरिकै आत्मसाक्षात्कारकी प्राप्तिवासतै तुम्हारेकूं निष्कामकर्मयोगही अनुष्ठान करणे योग्य है । तिस कर्मयोगविषे करणे योग्य जो (सुखदुःखे समे कृत्वा) या श्लोकविषे कथन करी हुई फलकी इच्छाका त्यागरूप बुद्धि है ता बुद्धिकूं अभी मैं विस्तारकरिकै कथन करता हूं। तूं तिस बुद्धिकूं श्रवणकर "। इहां (योगे तु) या वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तुशब्द पूर्व कथन करी हुई ज्ञानरूप बुद्धिविषे कर्मयोगविषयत्वके अभावकूं सूचन करे है । यातें यह अर्थ सिद्ध भया । जिस अधिकारी पुरुषका अंतःकरण शुद्ध हुआ है ता अधिकारी पुरुषके प्रति तौ आत्मज्ञानकाही उपदेश करणा योग्य है। और जिस पुरुषका अंतःकरण शुद्ध नहीं भया है। ता पुरुषके प्रति तौ कर्मकाही उपदेश करणा योग्य है। यातैं ज्ञान तथा कर्म या दोनोंके समुच्चयकी शंकाकरिकै विरोधकी प्राप्ति होवै नहीं इति । अब फलका कथन करिकै वा कर्मयोगविषयक बुद्धिकी स्तुति करे हैं (बुद्ध्या यया इति) जिस व्यवसायात्मक बुद्धिकरिकै तिन निष्कामकर्मोंविषे जुड्या हुआ तूं कर्मजन्य अंतःकरणकी अशुद्धिरूप बंधकूं परित्याग करैगा इहां यह तात्पर्य है । पापकर्मजन्य जो अंतःकरणकी अशुद्धिरूप ज्ञानका प्रतिबंध है सो प्रतिबंध तौ धर्मरूप कर्मकरिकैही निवृत्त होवै है । दूसरे किसी उपायकरिकै सो प्रतिबंध निवृत्त होवै नहीं । तहां श्रुति । " धर्मेण पापमपनुदति " । अर्थः यह— यह अधिकारी पुरुष निष्कामकर्मरूप धर्मकरिकै पापकूं निवृत्त करे है इति । और श्रवण मननादिरूप जो विचार है सो विचार तौ पापकर्मरूप प्रतिबंधतैं रहित पुरुषके असंभावना विपरीतभावनारूप प्रतिबंधकूं निवृत्त करै है । यातैं पापकर्मरूप प्रतिबंधकी निवृत्ति करणे वासतैं सो श्रवणादिरूप विचार उपदेश करा जावे नहीं । और इदानीं कालविषे तुम्हारा अंतःकरण अत्यंत मलिन है यातैं अभी तुमनैं बहिरंगसाधनरूप कर्मही करणे योग्य है । इस कालविषे तुम्हारेमें श्रवणादिकोंकी योग्यताभी

उत्पन्न भई नहीं तौ ज्ञानकी योग्यता तुम्हारेविषे किस प्रकार होवैगी.? किंतु इस कालविषे ज्ञानकी योग्यता तुम्हारेमें हैं नहीं । यहही वार्त्ता (कर्मण्येवाधिकारस्ते) या श्लोकविषे आगे कथन करैगे । इतने कहणेकरिकै सांख्यबुद्धिके श्रवणादिरूप अंतरंगसाधनोंकू छोडिकै भगवानूनें अर्जुनके प्रति कर्मरूप बहिरंगसाधन किसवासतै उपदेश करीते हैं या प्रकारकी शंकाकाभी खंडन करा ॥ ३९ ॥

हे भगवन् । " तमेतं वेदानुवचने ब्राह्मणा विविदिषंति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन" इति। या श्रुतिनें विविदिषाकी प्राप्तिवासतै तथा ज्ञानकी प्राप्तिवासतै यज्ञ दान तपादिक कर्मोंका विधान करा है । तहां यज्ञदानादिक कर्मोंकरिकै साक्षात् तौ विविदिषाकी तथा ज्ञानकी प्राप्ति होवै नहीं किंतु अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा ता विविदिषाकी तथा ज्ञानकी प्राप्ति होवै है । या कारणतैं आपनैं हमारे प्रति कर्मोंका अनुष्ठान विधान करया है । और श्रुतिनैं तौ कर्मके फलकूं नाशवान् कह्या है । तहां श्रुति । "तद्यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते" अर्थ यह—जैसे इस लोकविषे कर्मकरिके जन्य होणेतैं यह गृहादिक पदार्थ नाशकूं प्राप्त होवै हैं । तैसे परलोकविषे पुण्यकर्म करिकै जन्य होणेतैं स्वर्गादिक पदार्थभी नाशकूं प्राप्त होवै हैं इति । किंवा जैसे स्वर्गकी प्राप्तिवासतै करे हुए ज्योतिष्टोमादिक यज्ञ हैं ते यज्ञ काम्यकर्मरूपही होवै हैं। तैसे ज्ञानकी प्राप्तिवासतै अथवा ज्ञानकी इच्छारूप विविदिषाकी प्राप्तिवासतै करे हुए जो यज्ञदानादिक कर्म हैं ते कर्मभी काम्यकर्मरूपही होवैंगे और जो जो काम्यकर्म होवै हैं सो सो सर्व अंगोंकी संपूर्णतापूर्वक अनुष्ठान करा हुआही फलका हेतु होवै है । किंचित् अंगकी वैगुण्यताकरिकै सो काम्यकर्म फलकी प्राप्ति करै नहीं । यातै यत्किंचित् अंगोंकी न्यूनअधिकताकरिकै तिन यज्ञदानादिक कर्मोंविषे वैगुण्यदोषकी प्राप्तिभी संभवै है । और " यज्ञेन दानेन" या श्रुतिनैं विधान करे जो यज्ञदानादिक कर्म हैं ते सर्व कर्म एक पुरुषनैं अपणे शत वर्ष आयुषकी समाप्तिपर्यंतभी

करणेकूं अशक्य है । यातें (कर्मबंधं प्रहास्यसि) या वचनकरिकै आपनें कथन करा जो कर्मयोगका फल है ता फलके प्राप्तिकी आशा हमारेकूं होती नहीं। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहै हैं-

नेहाभिक्रमनाशोस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ॥
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥४०॥

(पदच्छेदः) न । इह । अभिक्रमनाशः । अस्ति । प्रत्यवायः । न । विद्यते । स्वल्पम् । अपि । अस्य । धर्मस्य । त्रायते । महतः । भयात् ॥ ४० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इस निष्कामकर्मयोगविषे कर्मके फलका नाश नहीं होवै है तथा प्रत्यवायभी नहीं होवै है तथा इस निष्कामधर्मका यत्किंचित् धर्म भी इस पुरुषकूं महान् भयतें रक्षा करै है ॥ ४० ॥

भा० टी०-यज्ञदानादिक कर्मोनें जिस फलका प्रारंभ करीता है ता फलका नाम अभिक्रम है । तहां 'तद्यथेह' या श्रुतिवचनकरिकै कथनकरा जो ता फलका नाश है सो फलका नाश इस निष्काम कर्मरूप योगविषे कदाचित्भी होवै नहीं । काहेतें 'तद्यथेह कर्मचितः' या श्रुतिनें तौ कर्मकरिकै प्राप्त लोकका नाश कथन करा है । तहां लोकशब्द केवल भोग्यपदार्थों-काही वाचकहै और निष्कामकर्मरूप योगका फलरूप जो चित्तकी शुद्धिहै सा चित्तकी शुद्धि पापोंका क्षयरूपहै यातें ता चित्तकी शुद्धिरूप फलविषे ता लोक शब्दकी अर्थरूपता है नहीं । या कारणतें वा चित्तशुद्धिरूप फलका स्वर्गादिकोंकी न्याई क्षय संभवै नहीं । किंवा तत्त्वसाक्षात्कारपर्यंत रहणे-हारी जो विविदिषा है सा विविदिषाही तिन यज्ञदानादिक कर्मोंका फल-रूप है । और सो तत्त्वसाक्षात्कार व्यवधानतें विनाही अज्ञानकी निवृत्ति रूप फलका जनक है । जैसे । सूर्यादिकोंका प्रकाश व्यवधानतें विनाही अंधकारकी निवृत्ति करै है । यातें सो तत्त्वसाक्षात्कार अज्ञानकी निवृत्ति-रूप फलकूं न उत्पन्न करिकै नाश होवै नहीं। किंतु अज्ञानकी निवृत्तिरूप

फलकूं उत्पन्न करिकैही सो तत्त्वसाक्षात्कार नाश होवै है । जैसे सूर्यादिकोंका प्रकाश अन्धकारकूं नाश करिकैही निवृत्त होवै है । या प्रकारके अभिप्रायकरिकैही श्रीभगवान्नैं (नेहाभिक्रमनाशोस्ति) या प्रकारका वचन कह्या है। यह वार्ता अन्य शास्त्रविषेभी कथन करी है। तहां श्लोक " तद्यथेहेति या निंदा सा फले नतु कर्मणि । फलेच्छां तु परित्यज्य कृतं कर्म विशुद्धिकृत्" अर्थ यह । " तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते " या श्रुतिवचननैं कथन करी जो निंदा है सो निंदा स्वर्गादिक फलविषयकही है। कोई यज्ञदानादिक कर्मविषयक सा निंदा नहीं है । जिस कारणतैं फलकी इच्छाका परित्याग करिकै करे हुए ते यज्ञदानादिक कर्म या अधिकारी पुरुषके अन्तःकरणकी शुद्धि करणेहारे हैं इति । तथा तिन यज्ञदानादिक कर्मोंके अंगोंकी न्यूनअधिकतारूप वैगुण्यकरिकै करा हुआ जो तिन कर्मोंका वैगुण्यरूप प्रत्यवाय है सो प्रत्यवायभी इस निष्कामकर्मरूप योगविषे है नहीं । काहेतैं ' तमेतं वेदानुवचनेन' या श्रुतिनैं यज्ञदानादिक नित्यकर्मोंकाही प्रतिबंधक पापोंकी निवृत्तिद्वारा विविदिषाविषे उपयोग कथन करा है। तिन नित्यकर्मोंविषे सर्व अंगोंकी संपूर्णताका नियम होवै नहीं । और ' तमेतं वेदानुवचनेन ' या श्रुतिनैं यज्ञदानादिक काम्यकर्मोंकाभी ता विविदिषाविषे उपयोग कथन करा है। या पक्षके अंगीकार किये हुएभी फलकी इच्छातैं रहित होणेतैं तिन यज्ञदानादिक काम्यकर्मोंकूंभी नित्य कर्मकीही तुल्यता है काहेतैं काम्यकर्मरूप जो अग्निहोत्र है तथा नित्यकर्मरूप जो अग्निहोत्र है । तिन दोनों अग्निहोत्रोंविषे स्वरूपतै तौ कोई विशेषता है नहीं । किंतु जो अग्निहोत्र स्वर्गादिक फलकी इच्छापूर्वक करा जावै है । ता अग्निहोत्रविषे काम्यकर्मरूपताका व्यवहार होवै है और जो अग्निहोत्र स्वर्गादिक फलकी इच्छातैं विना करा जावै है ता अग्निहोत्रविषे नित्यकर्मरूपताका व्यवहार होवै है । इस प्रकार स्वर्गादिक फलकी इच्छा करिकै तथा ता इच्छाके अभावकरिकैही ता अग्निहोत्रविषे काम्यकर्मरूपता तथा नित्यकर्मरूपता सिद्ध होवै है । यातैं यह

अर्थ सिद्ध भया । स्वर्गादिक फलकी प्राप्तिवासतै करे हुए जो यज्ञदानादिक कर्म है तिन सकाम कर्मौविषे तौ यथाविधिपूर्वक सर्व अंगोंकी पूर्णता करणेकाही नियम है । जो कदाचित् यह सकाम पुरुष यथाविधिपूर्वक तिन कर्मोंके सर्व अंगोंकी पूर्णता नहीं करैगा तौ ते यज्ञदानादिक कर्म वैगुण्यभावकूं प्राप्त हुए ता फलकी प्राप्ति नहीं करैंगे । और फलकी इच्छातैं रहित होइकै केवल अन्तःकरणकी शुद्धिवासते करे हुए जो यज्ञदानादिक कर्म हैं तिन यज्ञदानादिक निष्काम कर्मोंकी तौ यजमानरूप कर्त्तातैं भिन्न प्रतिनिधि आदिकोंकरिकैभी समाप्ति होइ सकै है । यातैं तिन निष्काम कर्मौविषे अंगोंका वैगुण्यजन्य प्रत्यवाय होवै नहीं इहां यजमान पुरुष किसी रोगादिक निमित्ततैं जिस कर्मके करणेविषे समर्थ नहीं होवै । तिस कर्मकूं जिस ब्राह्मणद्वारा समाप्त करावै है ता ब्राह्मणका नाम प्रतिनिधि है इति । किंवा । ' तमेतं वेदानुवचनेन ' या श्रुतिनै विधान करे जो अन्तःकरणकी शुद्धिवासतै यज्ञदानादिक धर्म हैं ता धर्मके मध्यविषे संख्याकरिकै अथवा अंगोंकरिकै अत्यन्त स्वल्प जो धर्म भगवत्के आराधनवासतै अनुष्ठान करा है सो स्वल्प धर्मभी या अधिकारी पुरुषकूं जन्ममरणरूप संसारके महान् भयतैं रक्षा करे है । यह वार्त्ता स्मृतिविषेभी कथन करी है तहां श्लोक । " सर्वपापप्रसक्तोपि ध्यायन्निमिषमच्युतम् । भूयस्तपस्वी भवति पंक्तिपावनपावनः " अर्थ यह—सर्व पापकर्मौविषे प्रीतिवाला हुआभी यह पुरुष अनन्य होइकै एक निमेषमात्रभी अच्युतपरमात्मादेवका ध्यान करता हुआ ता ध्यानके प्रभावतैं पुनः तपस्वी होवै है तथा पंक्तिके पवित्र करणेहारे पुरुषोंकाभी पवित्र करणेहारा होवै है इति । और 'तमेतं वेदानुवचनेन ' या श्रुतिवचनविषे सर्व कर्मोंके समुच्चयका विधान करणेहारा कोई वचन है नहीं। यातैं अंतःकरणके अशुद्धिकी न्यून अधिकताकरिकै तिन यज्ञदानादिक कर्मोंके अनुष्ठानकी न्यूनअधिकताभी संभव होइ सकै है । यातैं (कर्मबंधं प्रहास्यसि) यह हमारा वचन यथार्थ है ॥ ४० ॥

अब इस पूर्वश्लोकविषे कथन करे हुए अर्थके स्पष्ट करणेवासतै 'तमेतं वेदानुवचनेन' या श्रुतिनैं विधान करे जो यज्ञदानादिक कर्महैं तिन कर्मोंविषे एक अर्थता निरूपण करे हैं–

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनंदन ॥
बहुशाखा ह्यनंताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥४१॥

(पदच्छेदः) व्यवसायात्मिका । बुद्धिः । एका । इह । कुरुनंदन । बहुशाखाः । हि । अनंताः । च । बुद्धयः । अव्यवसायिनाम् ४१

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इस श्रेयके मार्गविषे आत्मतत्त्वकी निश्चयरूप बुद्धि एकही विवक्षित है और सकाम पुरुषोंकी बुद्धियां तो बहुत शाखावाली है तथा अनंत हैं ॥ ४१ ॥

भा॰टी॰–हे अर्जुन ! इस मोक्षरूप श्रेयके मार्गविषे अथवा 'तमेतंवेदानुवचनेन' इस श्रुतिवचनविषे ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास या चारी आश्रमोंकूं आत्मतत्त्वकी निश्चयरूप बुद्धि एकही सिद्ध करणेकूं विवक्षित है। काहेतैं वेदानुवचनेन, यज्ञेन, दानेन, तपसा, अनाशकेन या पदोंके अंतविषे स्थित जो तृतीयाविभक्ति है ता तृतीयाविभक्तिनैं तिन वेदानुवचनादिकोंविषे परस्पर निरपेक्षसाधनरूपता बोधन करी है । तहां गुरुके मुखतैं वेदोंके अध्ययन करणेका नाम वेदानुवचन है। सो वेदोंका अध्ययन ब्रह्मचारीके सर्व धर्मोंविषे प्रधान धर्म है । यातैं ता वेदानुवचनकरिकै ब्रह्मचारीके, सर्व धर्मोंका ग्रहण करणा तथा यज्ञ, दान, यह दोनों गृहस्थके सर्व धर्मोंविषे प्रधान धर्म हैं । यातैं ता यज्ञदानकरिकै गृहस्थके सर्व धर्मोंका ग्रहण करणा और कृच्छ्रचांद्रायणका नाम तप है सो तप वानप्रस्थके सर्व धर्मोंविषे प्रधान धर्म है । यातैं ता तपकरिकै वानप्रस्थके सर्व धर्मोंका ग्रहण करणा । तहां मृत्युका कारण जो अनशनव्रत है ताकी निवृत्ति करणेवासतै तिस तपका अनाशक यह विशेपण दिया है इस प्रकार सर्व भूतप्राणियोंकूं अभय दान तथा प्रणवादिक मंत्रोंका

ज़प इत्यादिक संन्यासीके धर्मभी जानि लेणे इति । और भगवान् भाष्यकारोंनैं तौ या श्लोकका यह व्याख्यान करा है सांख्यविषयक तथा योगविषयक जो बुद्धि है सा बुद्धि एकही फलका जनक होणेतैं एक है। और सा बुद्धि निर्दोषवेदवाक्योंतैं जन्य होणेतैं व्यवसायात्मिका है क्या सर्व विपरीतबुद्धियोंका बाधक है और अव्यवसायी अज्ञानी पुरुषोंकी जो बहुत शाखावाली अनंत बुद्धियां हैं ते सर्व बुद्धियां विपरीत होणेतैं ता व्यवसायात्मिक बुद्धिकरिकै बाध्य हैं इति । और किसी टीकाविषे तौ यह अर्थ करा है । परमेश्वरके आराधनकरिकैही मैं इस संसारसमुद्रकूं तरौंगा या प्रकारकी निश्चयरूपा एकनिष्ठा बुद्धिही इस कर्मयोगविषे होवै है इति । सर्व प्रकारतैं ज्ञानकांडके अनुसारकरिकै (स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्) या वचनका अर्थ भली प्रकारतैं सिद्ध होवै है। और कर्मकांडविषे तौ तिस तिस स्वर्गादिक फलकी कामनावाले अव्यवसायी पुरुषोंकी बुद्धियां तौ बहुत शाखावाली होवैं है । क्या कामनावोंके अनेक भेदतैं ते बुद्धियांभी अनेक भेदवाली होवैं हैं । तथा कर्मफल गुणफल आदिकोंकूं विषय करणेहारी उपशाखावोंके भेदतैं ते बुद्धियां अनंत होवै हैं इति । तहां (अनंता हि) या वचनविषे स्थित जो हि यह शब्द है सो हि शब्द तिन सकाम पुरुषोंके बुद्धियोंविषे अनंतरूपताकी प्रसिद्धि बोधन करणेवासतै है । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । अंतःकरणकी शुद्धि करणेवासतै जो निष्काम कर्म हैं तिन निष्काम कर्मोविषे सकाम कर्मोकी अपेक्षाकरिकै महान् विलक्षणता है॥ ४१ ॥

हे भगवन् ! जैसे निष्काम अधिकारी पुरुषोंकूं सा व्यवसायात्मिका बुद्धि प्राप्त होवै है तैसे सकाम पुरुषोंकूं सा व्यवसायात्मिका बुद्धि क्यूं नहीं प्राप्त होती ? किंतु तिन सकाम पुरुषोंकूंभी सा व्यवसायात्मिका बुद्धि प्राप्त होणी चाहिये। जिस कारणतैं शास्त्ररूप प्रमाण तौ तिन दोनोंकूं तुल्यही प्राप्त है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् प्रतिबंधके

वर्ते तिन सकाम पुरुषोंकूं सा व्यवसायात्मिका बुद्धि नहीं प्राप्त होवे है । यां प्रकारका उत्तर तीन श्लोकोंकरिकै कथन करैं हैं-

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदंत्यविपश्चितः ॥
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥४२॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ॥
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥ ४३ ॥
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ॥
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥४४॥

(पदच्छेदः) याम् । इमाम् । पुष्पिताम् । वाचम् । प्रवदंति । अविपश्चितः । वेदवादरताः । पार्थ । न । अन्यत् । अस्ति । इति । वादिनः ॥ ४२ ॥ कामात्मानः । स्वर्गपराः। जन्मकर्मफलप्रदाम् । क्रियाविशेषबहुलाम् । भोगैश्वर्यगतिप्रति । ॥ ४३ ॥ भोगैश्वर्यप्रसक्तानाम् । तया । अपहृतचेतसाम्। व्यवसायात्मिका । बुद्धिः । समाधौ । न । विधीयते ॥४४॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! ते विचारहीन पुरुष जिस प्रसिद्ध कर्मकांडरूप वाणीकूं कथन करैं हैं कैसी है सा वाणी अविचारतैं रमणीक है तथा जन्मकर्मफलके देणेहारी है तथा भोगऐश्वर्यके प्राप्तिवास्तैं अग्निहोत्रादिक कर्मोंकूं विस्तारतैं प्रतिपादन करणेहारी है ऐसी वाणीकूं कहणेहारे ते विचारहीन पुरुष कैसे हैं वेदके अर्थवादोंविषे प्रीतिमान् हैं तथा कर्मके फलतैं भिन्न कोई ज्ञानका फल नहीं है" या प्रकार कथन करणेहारे हैं तथा कामरूप हैं तथा स्वर्गही है उत्कृष्ट जिन्होंकूं तथा भोगऐश्वर्य विषे है आसक्ति जिन्होंकी तथा तां वाणीकरिकै आच्छादित हुआ है चित्त जिन्होंका ऐसे बहिर्मुख पुरुषोंके अंतःकरणविषे सा व्यवसायात्मिका बुद्धि नहीं होवै है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! "स्वाध्यायोऽध्येतव्यः"। अर्थ यह–या अधिकारी पुरुषनैं वेद अध्ययन करणा इति। या अध्ययनविधितैं प्राप्त होणेकरिकै अत्यंत प्रसिद्ध जो यह कर्मकांडरूप वाणी है कैसी है सा वाणी जैसे निर्गंध पुष्पोंकरिकै युक्त पलाशका वृक्ष दूरतैं रमणीक लागै है तैसे यह वाणी अविचारतैंही रमणीक लागै है काहेतैं ता वाणीकरिकै केवल स्वर्गादिक फलोंका तथा यज्ञादिक साधनोंका तथा तिन दोनोंके परस्पर संबंधकाही ज्ञान होवै है। कोई निरतिशय आनंदरूप फलकी प्राप्ति होवै नहीं। शंका–हे भगवन् ! ता कर्मकांडरूप वाणीतैं निरतिशयानंदरूप फलकी प्राप्ति नहीं होती याकेविषे क्या कारण है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (जन्मकर्मफलप्रदाम् इति) अपूर्व शरीर-इंद्रियादिकोंका संबंधरूप जो जन्म है। तथा ता जन्मके अधीन तिस तिस वर्णआश्रमके अभिमानजन्य जो अग्निहोत्रादिक कर्म हैं। तथा तिन कर्मोंके अधीन जो पुत्रपशुस्वर्गादिरूप नाशवान् फल हैं ता जन्म-कर्मफल तीनोंकूंही घटीयंत्रकी न्याई विच्छेदतैं रहित यह कर्मकांडरूप वाणी प्राप्त करै है इति। शंका–हे भगवन् ! सा वाणी तिन जन्मादि-कोंकोही प्राप्ति करै है यह वार्त्ता कैसे जानी जावे। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं। (भोगैश्वर्यगतिं प्रति क्रियाविशेषबहुलां इति) अमृतका पान तथा उर्वशी आदिक अप्सरावोंके साथि विहार तथा पारिजातवृक्षका सुगन्ध इत्यादिक पदार्थोंकी प्राप्तिजन्य जो भोग है तथा ता भोगका कारणरूप जो देवतादिकोंका स्वामीपणारूप ऐश्वर्य है। ता भोग ऐश्वर्य दोनोंकी प्राप्तिके प्रति साधनभूत जो अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास, ज्योतिष्टोम इत्यादिक क्रियाविशेष है। तिन क्रियाविशेषों-करिकै जा वाणी बहुत विस्तारकूं प्राप्त होइरही है। क्या :भोग·ऐश्वर्य या दोनोंके साधनभूत क्रियाविशेषोंकूं जा वाणी अत्यंत विस्तारतें प्रतिपादन करणेहारी है सो कर्मकांडविषे ज्ञानकांडकी अपेक्षा करिकै अत्यंत विस्तारपणा सर्वत्र प्रसिद्धही है। ऐसी कर्मकांडरूप वाणीकूं परमार्थरूप

स्वर्गादिक फलपरता अंगीकार करैं है । शंका—हे भगवन् ! ता कर्मकांड रूप वाणीकूं स्वर्गादिरूप फलपरता कौन अंगीकार करैं हैं । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे है (अविपश्चितः इति) जे पुरुष विचारजन्य तात्पर्यज्ञानतें रहित है ते पुरुषही ता वाणीकूं स्वर्गादिरूप फलपरता मानैं हैं। या कारणतैंही ते सकाम पुरुष वेदविषे स्थित जो "अक्षयं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति" । अर्थ यह—चातुर्मास्ययज्ञके करणेहारे पुरुषकूं अक्षय सुकृत होवै है इत्यादिक अर्थवाद है ते अर्थवाद यथार्थही हैं या प्रकारका मिथ्या विश्वास करिके संतोषकूं प्राप्त हुए हैं । या कारणतैही ते सकाम पुरुष या प्रकारके वचन कहैं हैं कर्मकांडकी अपेक्षा करिकै कोई ज्ञानकांड भिन्न नहीं है किंतु सो ज्ञानकांड कर्मकांडकाही शेषरूप है तहां ज्ञानकांडविषे स्थित जो तत्पदार्थके बोधक वचन हैं ते वचन तौ देवताके स्वरूपकूं बोधन करे हैं और त्वं पदार्थके बोधक जो वचन है ते वचन तौ कर्म कर्ता यजमानके स्वरूपकूं बोधन करै है। और तत्त्वंपदार्थके अभेदकूं बोधन करणेहारे जो वचन है ते वचन तौ कर्मकर्त्ता पुरुष साक्षात् ईश्वररूप है या प्रकार ता कर्मकर्त्ता पुरुषकी स्तुति करै है। इस प्रकार संपूर्ण वेद कर्मपरही है। और कर्मका फलरूप जो स्वर्गादिक है तिन स्वर्गादिकोंकी अपेक्षाकरिकै दूसरा कोई ज्ञानका निरतिशय आनंदरूप फल है नहीं । इस प्रकार ते सकाम पुरुष अनेक प्रकारकी कल्पना करिकै सर्व प्रकारतें ज्ञानकांडतें विरुद्ध अर्थकेही कहणेहारे हैं । शंका—हे भगवन् ! ते बहिर्मुख सकाम पुरुष निरतिशय आनंदरूप मोक्षविषे किसवास्तै द्वेष करै है ऐसी अर्जुनकी शंका के हुए श्रीभगवान् कहे हे (कामात्मानःइति) हे अर्जुन ! कामनावोंके विषयरूप जो अनेक प्रकारके विषय है तिन विषयों करिकै जिनोंका चित्त सर्वदा व्याकुल होइ रह्या है या कारणतें ते काममय पुरुष साक्षात् मोक्षविषेभी द्वेष करै हैं। शंका—हे भगवन् ! ते सकाम पुरुष जैसे दूसरे विषयोंकी कामना करै है तैसे निरतिशय आनंद-

रूप मोक्षकी कामना किसवासतै नहीं करते ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं (स्वर्गपराः इति) हे अर्जुन ! उर्वशी, नंदनवन, अमृत इत्यादिक विषयोंकरिकै युक्त जो स्वर्ग है सो स्वर्गही है सर्वतैं उत्कृष्ट जिनोंकूं ता स्वर्गतै भिन्न दूसरा कोई पुरुषार्थ है नहीं । इसप्रकार मानणेहारे भ्रांत पुरुषोंविषे विवेकवैराग्यादिक साधनोंका अभाव है । यातैं ते भ्रांत पुरुष मोक्षकी कथामात्रकूंभी सहारि नहीं सकते तौ तिन मूढ पुरुषों विषे मोक्षकी इच्छा कहांतैं होणी है इति । इस प्रकार पूर्व उक्त भोग ऐश्वर्य दोनोंविषे क्षयपणा सातिशयता इत्यादिक दोषोंके अदर्शनकरिकै अत्यंत आसक्त हुआ है अंतःकरण जिनोंका तथा ता कर्मकांडरूप वाणी करिकै आच्छादित होइ गया है विवेकज्ञान जिनोंका तथा ' अक्षयं वै ' इत्यादिक अर्थवादवचन केवल स्तुतिपर हैं । प्रमाणांतरकरिकै अबाधित जो तात्पर्यका विषयभूत अर्थ है ता अर्थविषेही वेदोंकूं प्रमाणरूपता है या प्रकारके प्रसिद्ध अर्थकूंभी जे पुरुष जानणेविषे समर्थ नहीं, हे ऐसे सकाम पुरुषोंके समाधिनामा अंतःकरणविषे सा व्यवसायात्मिका बुद्धि नहीं होवै है । अथवा समाधि या शब्दकरिकै परमात्माका ग्रहण करणा ता परमात्माविषयक सा व्यवसायात्मिका बुद्धि तिन पुरुषोंकी होवै नहीं इति । "समाधीयतेऽस्मिन् सर्वं स समाधिः" या प्रकारकी व्युत्पत्ति करिकै अंतःकरणविषे तथा परमात्माविषे ता समाधिशब्दकी अर्थरूपता संभव होइ सकै है । और किसी टीकाकारनें तौ समाधिशब्दका यह अर्थ करा है मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारके स्थितिका नाम समाधि है । ता समाधिके निमित्त तिन पुरुषोंकी सा व्यवसायात्मिका बुद्धि नहीं उत्पन्न होवै है इति । इहां यह अभिप्राय है यद्यपि स्वर्गादिक फलकी प्राप्ति करणेहारे जो काम्य अग्निहोत्रादिक हैं ते अग्निहोत्रादिक कर्म अंतःकरणकी शुद्धिवासतै करणे योग्य अग्निहोत्रादिकोंतैं विलक्षण नहीं हैं । तथापि स्वर्गादिक फलकी इच्छारूप दोषके वशतैं ते काम्य अग्निहोत्रादिक कर्म अंतःकरणके शुद्धिकूं संपादन करैं नहीं । यद्यपि भोगोंके

अनुकूल जो अंतःकरणकी शुद्धि है सा अंतःकरणकी शुद्धि तिन सकाम पुरुषोंमैंभी होइ सकै है तथापि सा अंतःकरणकी शुद्धि आत्मज्ञानके उपयोगी है नहीं । इसी अर्थके बोधन करणेवासतै श्रीभगवान्नैं (भोगैश्वर्यप्रसक्तानां) यह वचन पुनः कथन करा है। और फलकी इच्छातैं विना करे हुए जो अग्निहोत्रादिक कर्म हैं ते निष्काम कर्म तौ आत्मज्ञानके उपयोगी अंतःकरणके शुद्धिकूंही संपादन करैं हैं । यातैं निष्काम विपश्चित् पुरुषोंके फलविषे तथा सकाम अविपश्चित् पुरुषोंके फलविषे महान् विलक्षणता सिद्ध होवै है।इसी वार्त्ताकूं आगे विस्तारकरिकै निरूपण करैंगे॥ ४२ ॥ ४३॥४४॥

हे भगवन् । तिन सकाम पुरुषोंकूं अपणे अंतः करणके दोषतैं सा व्यवसायात्मिका बुद्धि मत प्राप्त होवै। परन्तु ता व्यवसायात्मिका बुद्धिकरिकै अग्निहोत्रादिक कर्मोंकूं करणेहारे जो निष्काम पुरुष हैं तिन निष्काम पुरुषोंकूं तिन अग्निहोत्रादिक कर्मोंके स्वभावतैं स्वर्गादिक फलकी प्राप्ति अवश्य होवैगी । यातैं आत्मज्ञानका प्रतिबंध सकाम निष्काम दोनोंविषे समानही है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं-

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ॥
निर्द्वंद्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्४५

(पदच्छेदः) त्रैगुण्यविषयाः । वेदाः । निस्त्रैगुण्यः। भव। अर्जुन। निर्द्वंद्वः । नित्यसत्त्वस्थः । निर्योगक्षेमः । आत्मवान् ॥ ४५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह कर्मकांडरूप वेद त्रैगुण्यकूं विषय करणेहारे हैं तूं तिस त्रैगुण्यतैं रहित होउ तथा द्वंद्वधर्मोतैं रहित होउ तथा नित्यँ सत्वविषे स्थित होउ तथा योगक्षेमतैं रहित होउ तथा आत्मवान् होउ ॥ ४५ ॥

भा० टी०—सत्व, रज, तम या तीन गुणोंका जो कार्य होवै ताका नाम त्रैगुण्यहै ऐसा यह काममूलक संसारहै सो काममूलक संसारहै प्रकाश्यतारूपकरिकै विषय जिनोंका तिनोंका नाम त्रैगुण्यविषया ऐसे यह कर्मकांडरूप वेद हैं।

क्या जो पुरुष जिस फलके प्राप्तिकी कामनावाला है तिस पुरुषके प्रति यह वेद तिसी फलके बोधन करणेहारेहैं । तात्पर्य यह । जो पुरुष जिस फलकी इच्छा करिकै जिस कर्मका अनुष्ठान करै है । तिस पुरुषकूं सो कर्म तिसी फलकी प्राप्ति करै हैं । तिस तिस फलकी कामनातैं विना कोईभी कर्म तिस तिस फलकी प्राप्ति करै नहीं । यातै अन्वयव्यतिरेककरिकै या पुरुषकी कामनाही फलकी प्राप्तिविषे कारण है । यातै हे अर्जुन ! तूं निस्त्रैगुण्य होउ क्या स्वर्गादिक फलकी कामनातैं रहित होउ । ता फलकी कामनातैं रहित तुम्हारेकूं संसारकी प्राप्ति होवैगी नहीं । इतने कहणे करिकै निष्काम पुरुषोंकूंभी अग्निहोत्रादिक कर्मोंके स्वभावतैही स्वर्गादिक संसारकी प्राप्ति होवैगी ऐसी अर्जुनकी शंकाका खण्डन करा इति । शंका– हे भगवन् ! शीत उष्णादिकोंकी निवृत्ति करणेवासतै वस्त्रादिक पदार्थोंकी अपेक्षा अवश्य संभवै है ता अपेक्षाके विद्यमान हुए निष्कामता कैसे होवैगी ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए, श्रीभगवान् कहैं हैं (निर्द्वंद्वः इति) इहां (निस्त्रैगुण्यो भव) या वचनविषे स्थित जो भव यह शब्द है ता भवशब्दका उत्तरपदोंविषे सर्वत्र सम्बन्ध करणा । हे अर्जुन ! (मात्रा स्पर्शास्तु) या श्लोकविषे पूर्व कथन करी जो युक्ति है ता युक्तिकरिकै शीत उष्ण, सुख दुःख, मान अपमान, शत्रु मित्र इत्यादिक सर्व द्वंद्वधर्मोंतै तूं रहित होउ । क्या तिन सर्व द्वंद्वधर्मोंके सहन स्वभाववाला तूं होउ इति । शंका–हे भगवन् ! नहीं सहारणे योग्य जो दुःख है सो दुःख किसप्रकार सहारा जावैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (नित्यसत्त्वस्थः इति) नित्य क्या अचल ऐसा जो धैर्यनामा सत्त्व है ता सत्त्व विषे जो स्थित होवै ताका नाम नित्यसत्त्वस्थ है । ऐसा नित्यसत्त्वस्थ तूं होउ । तात्पर्य यह । जिस पुरुषका सो सत्त्व, रज, तम, दोनोंकरिकै तिरस्कारकूं प्राप्त होवै है सो पुरुष शीतउष्णादिजन्य पीडाकरिकै मैं अभी मरौंगा या प्रकारका अपणेकूं मानता हुआ स्वधर्मतैं विमुख होवै है तूं अर्जुन तो ता रज, तम दोनोंका तिरस्कार

करिकै केवल ता सत्वधर्मकूं आश्रयण कर इति । शंका—हे भगवन् ! शीतउष्णादिकोंके सहन किये हुएभी क्षुधा तृषाकी निवृत्ति करणेवासतै पूर्व नहीं प्राप्त हुए अन्नादिक पदार्थोंके प्राप्तिवासतै तथा पूर्व प्राप्त हुए अन्नादिक पदार्थोंके रक्षण करणेवासतै अवश्य प्रयत्न करणा होवैगा ता प्रयत्नके विद्यमान् हुए सो नित्य सत्वस्थपणा कैसे होवैगा किंतु नहीं होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (नियोंगक्षेमः इति) हे अर्जुन । पूर्व अप्राप्त वस्तुकी जो प्राप्ति है ताका नाम योग है और पूर्व प्राप्त वस्तुकी जो रक्षण है ताका नाम क्षेम है ता योग क्षेम दोनोंतैं तूं रहित होउ । क्या चित्तके विक्षेपका हेतु जो पदार्थोंका परिग्रह है ता परिग्रहतैं तूं रहित होउ । शंका—हे भगवन् ! ता योग क्षेमतैं जो मैं रहित होवोंगा तो मैं किस प्रकार जीवोंगा । किंतु हमारा जीवन नहीं होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तूं अपणे जीवनकी चिंता मतकर सर्वका अंतर्यामी परमेश्वरही तुम्हारे योगक्षेमादिकोंका निर्वाह करैगा या प्रकारका उत्तर कहैं हैं । (आत्मवान् इति) आत्मा क्या परमात्मा ध्येयतारूपकरिकै तथा योगक्षेमादिकोंका निर्वाहकर्ता-रूपकरिकै विद्यमान है जिस पुरुषका ताका नाम आत्मवान् है ऐसा आत्मवान् तूं होउ । क्या सर्व कामनावोंका परित्याग करिकै परमेश्वरका आराधन करणेहारा जो मैं हूं तिस हमारे देहकी यात्रामात्र-वासतै अपेक्षित जो अन्नवस्त्रादिक पदार्थ हैं तिन सर्व पदार्थोंकूं सो अंतर्यामी ईश्वरही संपादन करैगा याप्रकारका निश्चय करिकै तू निश्चित होउ इति । अथवा आत्मवान् होउ क्या अप्रमत्त होउ ॥ ४५ ॥

हे भगवन् ! स्वर्गादिक फलविषयक सर्व कामनावोंका परित्याग करिकै कर्मोंकूं करता हुआ मैं अर्जुन तिस तिस कर्मकरिकै प्राप्त होणे योग्य जो स्वर्गादिक आनंद है तिन सर्वआनंदोंतैं रहित होवोंगा । जिस कारणतैं कामनातैं विना तिन स्वर्गादिक आनंदोंकी प्राप्ति होती नहीं । यह वार्ता पूर्व आप कथन करिआये हो । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ब्रह्मानंदके प्राप्त हुएतैं सर्व आनंद प्राप्त होवैं हैं या प्रकारका उत्तर कहैं हैं।

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ॥
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ ४६ ॥

(पदच्छेदः) यावान् । अर्थः । उदपाने । सर्वतः । संप्लुतोदके । तावान् । सर्वेषु । वेदेषु । ब्राह्मणस्य । विजानतः ॥ ४६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जैसे अल्प जलवाले स्थानोंविषे जितनाकि स्नानपानादिरूप प्रयोजन सिद्ध होवै हैं सर्व ओरतें महान् जलवाले तलावविषेते स्नानपानादिक सर्वही प्रयोजन सिद्ध होवैं हैं तैसे सर्व वेदउक्त काम्यकर्मोंविषे जितनेक हिरण्यगर्भके लोकपर्यंत आनंद प्राप्त होवैं हैं तितने सर्व आनंद ब्रह्मसाक्षात्कारवान ब्रह्मवेत्ता पुरुषकूं होवै हैं ॥ ४६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जैसे पर्वततै निकसे हुए जो अनेक जलके झरणे हैं ते सर्व जलके झरणे किसी नीची भूमिविषे जाइके एकठे होवै हैं ताकी तलाव संज्ञा होवै है । तहां एक एक झरणेके जलतें यथाक्रमतें सिद्ध होणेहारे जो स्नान , पान वस्त्रप्रक्षालन आदिक प्रयोजन हैं ते स्नानपानादिक सर्व प्रयोजन तिन झरणोंके जलोंके समूहरूप महान् तलावविषे सिद्ध होवैं है काहेतें तिन सर्व झरणोंके जलोंका तिस तलावविषेही अंतर्भाव है । तैसे वेदोंविषे कथन करे हुए जितनेक अग्निहोत्र, ज्योतिष्टोम, अश्वमेध आदिक काम्य कर्म हैं तिन अग्निहोत्रादिक काम्यकर्मोंकरिकै इस सकाम पुरुषकूं क्रमतें प्राप्त होणेहारे जो स्वर्गलोकतें आदिलैके ब्रह्मलोकपर्यंत विषयजन्य आनंद हैं ते सर्व आनंद इस ब्रह्मसाक्षात्कारवान् ब्रह्मवेत्ता पुरुषकूं एकही कालविषे प्राप्त होवैं हैं काहेतें भूमिलोकतें आदिलैके ब्रह्मलोकपर्यंत जितनेक विषयजन्य क्षुद्र आनंद हैं ते सर्व आनंद ब्रह्मानंदके अंशरूप हैं यातें ते सर्व क्षुद्र आनंद वा ब्रह्मानंदके अंतर्भूतही हैं । तहां श्रुति । "एतस्यैवानंदस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजिवंति" । अर्थ यह—ब्रह्मातें आदिलैके सर्व प्राणिमात्र इस ब्रह्मानंदके अंशमात्रकूं अंगीकारकरिकै आनंदपूर्वक जीवते हैं इति । यद्यपि एक अद्वितीय

ब्रह्मानंदविषे अंशअंशीभाव संभवता नहीं तथापि जैसे एकही आकाशविषे घटादिक उपाधियोंके वशतैं अंश अशीभाव व्यवहार होवै है तैसे एकही ब्रह्मानंदविषेअविद्याकृत अंतःकरणादिक उपाधियोंके वशतैं अंशअंशीभावव्यवहार होवै है । वास्तवतैं सो अंशअंशीभाव है नहीं । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया निष्काम कर्मोंकरिकै जबी तुम्हारा अंतःकरण शुद्ध होवैगा तबी तुम्हारेकूं आत्मज्ञानकी प्राप्ति होवैगी । ता आत्मज्ञानकरिकै तुम्हारेकूं ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति होवैगी । ता ब्रह्मानन्दविषेही हिरण्यगर्भादिक सर्व आनंदोंका अंतर्भाव है । यातैं ता ब्रह्मानंदकी प्राप्तिकरिकै तुम्हारेकूं तिन सर्व आनन्दोंकी प्राप्ति होवैगी । यातैं तिन विषयजन्य क्षुद्र आनन्दोंकी प्राप्तिवासतै तुम्हारेकूं तिन काम्यकर्मोंके करणेका कछु प्रयोजन नहीं है । यातैं ता ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति करणेहारे आत्मज्ञानकी प्राप्तिवासतै तूं निष्काम कर्मोंकूं कर इति । और किसी टीकाकारने तौ इस श्लोकके पदोंकी इस प्रकार योजना करिकै यह अर्थ करा है । (यावान् । अर्थः । उदपाने । सर्वतः संप्लुतोदके । तावान् । सर्वेषु । वेदेषु । ब्राह्मणस्य । विजानतः इति) जैसे सर्व ओरतैं महान् जलवाले महान् तलावविषे इस पुरुषके स्नानपानादिक सर्व प्रयोजन एक घटमात्र जलकरिकैही सिद्ध होवैं हैं । कोई ता महान् तलावके सर्व जलके खरच करणेतैं ते स्नानपानादिक सर्व प्रयोजन सिद्ध होवै नहीं । इस प्रकार शुद्ध चित्तवाले मुमुक्षु जनका सो सर्व प्रयोजन सर्व वेदोंविषे उपनिषद्रूप वेदके एकदेशके श्रवणमात्रकरिकैही सिद्ध होवै हैं तिन मुमुक्षु जनोंकूं ता अपणे प्रयोजनकी सिद्धिवासतै कोई सर्व वेदोंके अर्थके अनुष्ठानकी अपेक्षा रहै नहीं । जिस कारणतैं एक जन्मकरिकै सर्व वेदोंके अर्थका अनुष्ठान करणा संभवता नहीं इति । या दोनों व्याख्यानोंविषे प्रथम व्याख्यान बहुत टीकाकारोंकूं संमत है । और यह दूसरा व्याख्यान किसी एक टीकाकारनें करा है । परंतु ता प्रथम व्याख्यानविषे श्लोकके पूर्वार्धविषे ' अनेकस्मिन् यथा तथा भवति' या चारि पदोंका अध्याहार करणा होवै है । और श्लोकके उत्तरार्द्धविषे

स्थित दार्ष्टांतिक भागविषे पूर्वार्धतैं यावान् तावान् या दोनों पदोंका अनुषंग करणा होवै है। सो पदोंका अध्याहार तथा अनुषंग इस दूसरे व्याख्यानविषे करणा होवै नहीं। तहां पूर्व अश्रुत पदका जो वाक्यविषे संबंध करणा है याका नाम अध्याहार है। और पूर्व वाक्यविषे स्थित पदका उत्तरवाक्यविषे संबंध करणा याका नाम अनुषंग है॥ ४६॥

हे भगवन्! ते निष्काम कर्म स्वतंत्र होइकै तौ ता ब्रह्मानंदकी प्राप्ति करते नहीं किंतु अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा आत्मज्ञानका संपादन करिकैही ते निष्काम कर्म ता ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति करैं हैं। यातैं जिस आत्मज्ञानकरिकै साक्षात्ही ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति होवै है। सो आत्मज्ञानही हमारेकूं प्रथम संपादन करणे योग्य है ता आत्मज्ञानकूं छोडिकै बहुत प्रयत्न करिकै सिद्ध होणेहारे तथा बहिरंग साधनरूप ऐसे निष्काम कर्मोंके करणेका कछु प्रयोजन नहीं है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् अबी तुम्हारेकूं तिन निष्काम कर्मोंविषेही अधिकार या प्रकारका उत्तर कहे हैं—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन॥
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥ ४७॥

(पदच्छेदः) कर्मणि। एव। अधिकारः। ते। मा। फलेषु। कदाचन। मा। कर्मफलहेतुः। भूः। मा। ते। संगः। अस्तु अकर्मणि॥ ४७॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! तुम्हारा कर्मविषेही अधिकार होवो कर्मके फलोंविषे कदाचित्भी तुम्हारा अधिकार मत होवो तूं कर्मोंके फलका उत्पादक मत होउ तथा कर्मके नहीं करणेविषे तुम्हारी प्रीति मत होवै॥ ४७॥

भा॰ टी॰–हे अर्जुन! आत्मज्ञानकी उत्पत्तिके अयोग्य अशुद्ध अंतःकरणवाला जो तूं है तिस तुम्हारेकूं अबी अंतःकरणकी शुद्धि करणेहारे निष्काम कर्मोंविषेही अधिकार होवो। क्या हमारेकूं अबी यह

निष्काम कर्मही करणेयोग्य है या प्रकारका बोध होवो । ज्ञाननिष्ठारूप वेदांतवाक्योंके विचारविषे सो कर्त्तव्यताका बोध अबी तुम्हारेकूं मत होवो इस प्रकार कर्मोंके करणेहारे तुम्हारेकूं तिन कर्मोंके स्वर्गादिक फलों विषे तिन कर्मोंके अनुष्ठानतैं पूर्वकालविषे तथा तिन कर्मोंके अनुष्ठानके उत्तरकालविषे तथा तिन कर्मोंके अनुष्ठानकालविषे कदाचित्‌भी अधिकार मत होवै । क्या इन कर्मोंके स्वर्गादिक फल हमनैं भोगणे है या प्रकारका बोध कदाचित्‌भी तुम्हारेकूं मत होवै । शंका—हे भगवन् ! हमनैं इस कर्मके स्वर्गादिक फलकूं भोगणा है या प्रकारकी बुद्धिके अभाव हुएभी ते कर्म अपणे सामर्थ्यतैंही स्वर्गादिक फलोंकी प्राप्ति करैंगे ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् फलकी कामनातैं विना ते कर्म ता फलकी प्राप्ति नहीं करें हैं या प्रकारका उत्तर कहे हैं (मा कर्मफलहेतुर्भूः इति) हे अर्जुन ! फलकी कामनाकरिकै तिन कर्मोंकूं करता हुआ यह पुरुष तिन फलोंका उत्पादक होवै है । और तूं अर्जुन तौ वा फलकी कामनातैं रहित होइकै वा कर्मके फलका उत्पादक मत होउ । जिस कारणतैं निष्काम पुरुषोंनैं भगवत् अर्पणबुद्धिकरिकै करे हुए कर्म स्वर्गादिक फलकी प्राप्ति करते नहीं । यह वार्त्ता पूर्व कथन करि आये हैं इति । शंका—हे भगवन् ! जो कदाचित् ते कर्म अपणे सामर्थ्यतैं फलकी प्राप्ति नहीं करते होवैं तौ ऐसे निष्फल कर्मोंके करणेकाही क्या प्रयोजन है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं (मा ते संगोस्त्वकर्मणि इति)जो कदाचित् स्वर्गादिक फलके प्राप्तिकी इच्छा नहीं होवै तौ दुःखरूप कर्मोंके करणेकाही क्या प्रयोजन है या प्रकारकी तिन कर्मोंके न करणेविषे तुम्हारी प्रीति मत होवै इति ॥ ४७ ॥

अब इस पूर्व कथन करे हुए अर्थकाही विस्तारतैं निरूपण करैं हैं—

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय ॥
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते४८

(पदच्छेदः) योगस्थः । कुरु । कर्माणि । संगम् । त्यक्त्वा । धनंजय । सिद्ध्यसिद्ध्योः । समः । भूत्वा । समत्वम् । योगः । उच्यते ॥ ४८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तूं योगविषे स्थित हुआ फलकी इच्छाकूं परित्याग करिकै तथा फलकी प्राप्ति अप्राप्ति दोनोंविषे हर्षविषादतें रहित होइकै कर्मोंकूं कर सो हर्षविषादतें रहितपणाही योग कह्या जावै है ॥ ४८ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! तूं योगविषे स्थित होइकै स्वर्गादिक फलकी इच्छारूप संगका परित्याग करिकै तथा मैं इस कर्मका कर्त्ता हूं या प्रकारके कर्तृत्व अभिनिवेशका परित्याग करिकै कर्मोंकूं कर। अब ता संगके त्यागका उपाय कथन करै हैं (सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा इति) हे अर्जुन ! तिन वेदयुक्त कर्मोंके स्वर्गादिक फलकी प्राप्तिविषे तूं हर्षका परित्याग करिकै तथा तिन स्वर्गादिक फलोंकी अप्राप्तिविषे विषादका परित्याग करिकै केवल ईश्वरआराधन बुद्धिकरिकै तिन कर्मोंकूं कर । शंका–हे भगवन् ! पूर्व आपनैं योगशब्दकरिकै कर्मोंका कथन करा था और अबी आपनैं योगविषे स्थित होइकै तूं कर्मोंकूं कर या प्रकारका वचन कह्या है यातें आपके पूर्वउत्तर वचनोंका अभिप्राय मैं जानि सकता नहीं । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं (समत्वं योग उच्यते) हे अर्जुन ! कर्मोंके फलकी प्राप्तिविषे तथा कर्मोंके फलकी अप्राप्तिविषे जो हर्षविषादतें रहितपणारूप समत्व है । सो समत्वही इहां (योगस्थः कुरु कर्माणि) या वचनविषे स्थित योगशब्दकरिकै कथन करा है । ता योगशब्दकरिकै कोई कर्मोंका कथन करा नहीं। यातें पूर्व उत्तर वचनोंका विरोध होवै नहीं इति । तहां पूर्व (सुखदुःखे समे कृत्वा)

या श्लोकविषे जय अजय दोनोंकी समता करिकै केवल युद्धमात्रकी कर्त्तव्यता कथन करी थी। जिस कारणतैं पूर्वप्रसंगविषे युद्धकीही कर्त्तव्यता प्राप्त थी। और इहां तौ दृष्टअदृष्टरूप सर्व फलोंका परित्याग करिकै अपणे वर्णआश्रमके सर्व कर्मोंकी कर्त्तव्यता कथन करी है यातैं पूर्वउत्तर वचनोंविषे पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै नहीं इति ॥ ४८ ॥

हे भगवन्! क्या केवल कर्मोंका अनुष्ठानही पुरुषार्थरूप है। जिस कारणतैं सर्वकालविषे निष्काम कर्मोंकूंही पुरुषनैं करणा या प्रकारका उपदेश वारंवार आपनै किया है। किंवा। "प्रयोजनमनुद्दिश्य मंदोपि न प्रवर्तते"। अर्थ यह किंचित् फलरूप प्रयोजनकूं न उद्देशकरिकै मूढ पुरुषभी किसी कार्यविषे प्रवृत्त होवै नहीं इति। इस लोकप्रसिद्ध न्यायतैंभी तिन निष्काम कर्मोंविषे प्रवृत्ति संभवै नहीं। यातैं फलकी कामनता विना निष्फल कर्मोंके करणेतैं फलकी कामनाकरिके कर्मोंका अनुष्ठान करणाही श्रेष्ठ है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहै हैं—

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय ॥
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥ ४९ ॥

(पदच्छेदः) दूरेण। हि। अवरम्। कर्म। बुद्धियोगात्। धनंजय। बुद्धौ। शरणम्। अन्विच्छ। कृपणाः। फलहेतवः॥४९॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! जिस कारणतैं निष्काम कर्मतैं सो सकाम कर्म अत्यन्त दूरताकरिकै अधम है तिस कारणतैं परमात्मबुद्धिनिमित्त निष्काम कर्मयोगके करणेकूं तूं इच्छा कर जे पुरुष फलकी कामनावाले हैं ते पुरुष कृपण हैं॥ ४९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन! जिस कारणतैं आत्मज्ञानरूप बुद्धिका साधनरूप जो निष्काम कर्मयोग है ताका नाम बुद्धियोग है, ता बुद्धियोगतैं सो जन्ममरणका हेतुरूप सकाम कर्म अत्यन्त दूरताकरिकै अधम है। अथवा परमात्माविषयक जो बुद्धिरूप योग है ताका नाम बुद्धियोग है ता

बुद्धियोगतैं यह संपूर्ण कर्म अधम है। तिस कारणतैं सर्व अनर्थोंकी निवृत्ति करणेहारी जो परमात्मविषयक बुद्धि है ता बुद्धिकी प्राप्तिवास्तै प्रतिबंधक पापकर्मोंकी निवृत्तिद्वारा जो निष्काम कर्मयोग है ताके करणेकी तूं इच्छा कर इति। हे अर्जुन ! स्वर्गादिक फलकी कामनावाले जे पुरुष तिन सकाम कर्मोंकूं करैं हैं ते पुरुष कृपण हैं। क्या ते सकाम पुरुष सर्वदा जन्म मरणादिरूप घटीयंत्रके भ्रमणकरिकै नानाप्रकारकी दीन दशावोंकूं प्राप्त होवैं हैं। तहां श्रुति। " यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणः "। अर्थ यह—हे गार्गि ! इस भारतखण्डविषे अधिकारी मनुष्य-शरीरकूं पाईकै जो पुरुष इस अक्षर परमात्मादेवकूं न जानिकरिकै इस मनुष्यलोकतैं जावै है सो पुरुष कृपणही जानणां इति। हे अर्जुन ! ऐसे अधिकारी मनुष्यशरीरकूं पाइकै तूंभी ऐसा कृपण मत होउ किंतु जन्ममर-णादिक सर्व अनर्थोंकी निवृत्ति करणेहारा जो आत्मज्ञान है ता आत्मज्ञानकूं अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा उत्पन्न करणेहारा जो निष्कामकर्मरूप योग है ता निष्काम कर्मयोगकूंही तूं कर। इहां (कृपणाः) या पदके कहणकरिकै श्रीभगवान्नैं अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन करा जैसे इस लोकविषे कोईक कृपण पुरुष अनेक प्रकारके दुःखोंकूं सहन करिकै तथा नाना प्रकारके छल कपटकरिकै धनकूं एकठा करैं हैं ते कृपण पुरुष इस लोकके यत्किंचित् विषयजन्य सुखके लोभकरिकै ता धनका दान करवे नहीं। या कारणतैं ते कृपण पुरुष ता धनके दानादिकोंकरिकै जन्य महान् सुखकूं अनुभव करि सकते नहीं। किंतु ता धनके इकट्ठे करणेविषे करे जो पापकर्म है तिन पापकर्मोंके नरकादिक दुःखोंकूंही ते कृपण पुरुष अनुभव करैं हैं। यातें ते कृपण पुरुष अपणी हानि आपही करैं हैं। तैसे यह सकाम पुरुषभी महान् दुःखोंकूं सहन करिकै तिन कर्मोंकूं करैं हैं परंतु स्वर्ग, धन, पुत्र, पशु इत्यादिक अल्प फलोंके लोभ करिकै ते सकाम पुरुष तिन कर्मोंकरिकै मोक्षरूप परमानन्दकूं प्राप्त होवैं नहीं किंतु अनेक दुःखोंकरिकै मिले हुए तिन स्वर्गादिक तुच्छ फलोंकूंही प्राप्त होवैं हैं

या कारणतैं ते सकाम पुरुष अपणी हानि आपही करै हैं। ऐसे सकाम पुरुषोंकी दौर्भाग्यताका तथा मूढताका बुद्धिमान् पुरुषोंकूं बहुत शोक होवै है। यह सर्व अर्थ श्रीभगवान्नैं कृपणपदकरिकै सूचन करा ॥ ४९ ॥

इस प्रकार ता बुद्धियोगके अभाव हुए दोषका निरूपण करा । अब ता बुद्धियोगके विद्यमान हुए गुणका निरूपण करैं हैं-

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ॥
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥५०

(पदच्छेदः) बुद्धियुक्तः । जहाति । इह । उभे । सुकृतदुष्कृते । तस्मात् । योगाय । युज्यस्व । योगः । कर्मसु । कौशलम् ॥५०॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस कारणतें इन कर्मोंविषे समत्वबुद्धियुक्त पुरुष पुण्य पाप दोनोंकूं परित्याग करै है तिस कारणतैं ता समत्वबुद्धिरूप योगके वासतै तूं उद्यमवाला होउ जिस कारणतें सो योगही तिन कर्मोंविषे कुशलपणा है ॥ ५० ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! शास्त्रनैं विधान करे जो अग्निहोत्रादिक कर्म हैं तिन कर्मोंके फलकी प्राप्तिविषे तथा फलकी अप्राप्तिविषे हर्षविषादतें रहिततारूप समत्वबुद्धिकरिकै युक्त जो अधिकारी पुरुष है। सो अधिकारी पुरुष जिस कारणतैं पुण्यपाप दोनोंकूं अंतःकरणकी शुद्धि ज्ञानकी प्राप्तिद्वारा परित्याग करै है तिस कारणतें ता समत्वबुद्धिरूप योगकी प्राप्तिवासतै तूं दृढ उद्यमवाला होउ। जिस कारणतें सो समत्वबुद्धिरूप योगही तिन कर्मोंविषे प्रवर्त्तमान पुरुषका कुशलपणा है। तात्पर्य यह । वास्तवतें बंधके हेतुरूप जो कर्म है तिन कर्मोंकाभी जो समत्वबुद्धिरूप योग मोक्षविषे उपयोग सिद्धकरै है। यहही ता समत्वबुद्धिरूप योगविषे महान् कुशलता है इति। इतने कहणेकरिकै भगवान्नैं अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन करा । समत्वबुद्धिकरिकै युक्त जो कर्मयोग है सो कर्मयोग आप कर्मरूप हुआभी अपणे सजातीय दुष्ट कर्मोंका नाश करै है। यातैं सो

कर्मयोग महान् कुशल है । और तूं अर्जुन तौ चेतनरूप हुआभी अपणे सजातीय दुर्योधनादिक दुष्टोंका नाश करता नहीं । यातैं तूं कुशल नहीं है इति । अथवा इस श्लोकका यह दूसरा अर्थ करणा । बुद्धियुक्तः । जहाति । इह । उभे । सुकृतदुष्कृते । तस्मात् । योगाय । युज्यस्व । योगः । कर्मसु । कौशलम् इति । इन समत्वबुद्धियुक्त कर्मोंके किये हुए अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा परमात्मसाक्षात्कारकरिकै युक्त हुआ यह पुरुष जिस कारणतैं पुण्यपाप दोनोंकूं परित्याग करै है तिस कारणतैं तूं समत्व बुद्धियुक्त कर्मयोगकी प्राप्तिवासतै उद्यमवाला होउ । जिस कारणतैं सर्व कर्मोंके मध्यविषे सो समत्वबुद्धियुक्त कर्मयोग दुष्ट कर्मोंके निवृत्त करणे विषे बहुत चतुर है ॥ ५० ॥

हे भगवन् ! इस अधिकारी पुरुषकूं पापकर्मकी निवृत्ति तौ अपेक्षित है परंतु पुण्यकर्मोंकी निवृत्ति अपेक्षित है नहीं । जो पुण्यकर्मोंकीभी निवृत्ति होवैगी तौ पुरुषार्थकीही हानी होवैगी । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् स्वर्गादिक तुच्छ फलके त्याग कियेतैं परम पुरुषार्थकी प्राप्ति-रूप फलका कथन करै हैं—

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ॥
जन्मबंधविनिर्मुक्ताः पदं गच्छंत्यनामयम् ॥५१॥

(पदेच्छेदः) कर्मजम् । बुद्धियुक्ताः । हि । फलम् । त्यक्त्वा । मनीषिणः । जन्मबंधविनिर्मुक्ताः । पदम् । गच्छंति । अनामयम् ॥ ५१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस कारणतै ते समत्वबुद्धियुक्त पुरुष कर्मजन्य फलकूं त्यागिकरिकै आत्मसाक्षात्कारवाले होवैं है तथा जन्मरूप बंधतैं रहित हुए अविद्यादिक रोगोंतै रहित मोक्षरूप पदकूं प्राप्त होवैं हैं तिस कारणतैं तुंभी ऐसा होउ ॥ ५१ ॥

पुरुष है तिस अधिकारी पुरुषकूं किस कालविषे आत्मज्ञानकी प्राप्ति होवै है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं—

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ॥
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥५३॥

(पदच्छेदः) श्रुतिविप्रतिपन्ना । ते । यदा । स्थास्यति । निश्चला । समाधौ । अचला । बुद्धिः । तदा । योगम् । अवाप्स्यसि ॥ ५३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पूर्व नाना फलोंके श्रवण करिकै संशयकूं प्राप्त हुई तुम्हारी बुद्धि जिसै कालविषे परमात्मादेवविषे निश्चल हुई तथा अचल हुई स्थित होवैगी तिसै कालविषे तूं जीव ब्रह्मके अभेदज्ञानकूं प्राप्त होवैगा ॥ ५३ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! नहीं विचार करा है वास्तव तात्पर्य जिनोंका ऐसे जो स्वर्गादिक नाना प्रकारके फलोंके श्रवण हैं तिन श्रवणोंकरिकै प्राप्त हुए जो नाना प्रकारके संशय विपरीत भावना हैं तिन संशयविपरीतिभावनावों करिकै पूर्व विक्षेपकूं प्राप्त हुई जो तुम्हारी बुद्धि है सा तुम्हारी बुद्धि जिसकालविषे अंतःकरणकी शुद्धितैं प्राप्त हुए विवेकजन्य पदार्थोंविषे दोषदर्शन करिकै ता विक्षेपका परित्याग करिकै अन्तरपरमात्मा देवविषे निश्चल हुई क्या जाग्रत् स्वप्नदर्शनरूप विक्षेपतैं रहित हुई तथा ता परमात्मादेवविषे अचल हुई क्या सुषुप्ति, मूर्च्छा, स्तब्धभाव इत्यादिक लयरूप चलनतैं रहित हुई स्थित होवैगी. क्या लयविक्षेपरूप दोनोंका परित्याग करिकै जबी ता परमात्मादेव विषे एकाग्रभावकूं प्राप्त होवैगी । अथवा (निश्चला. अचला) या दोनों पदोंका यह अर्थ करणा (निश्चला) क्या असंभावना विपरीतभावनातैं रहित हुई । तथा (अचला) क्या दीर्घकाल आदर, निरंतर, सत्कार इन चारोंके सेवन करिकै विजातीय वृत्तियोंकरिकै नहीं दूषित हुई

ऐसी सा बुद्धि जिस कालविषे वायुतैं रहित दीपककी न्याईं ता परमात्मादेवविषे स्थित होवैगी तिसी कालविषे तत्त्वमसि आदिक वाक्योंतैं जन्य जीवब्रह्मके अभेदसाक्षात्काररूप योगकूं तूं प्राप्त होवैगा । तिस ज्ञानकालविषे दूसरा कोई कर्त्तव्य है नहीं । यातैं तिस कालविषे तूं कृतकृत्य होवैगा । तथा स्थितप्रज्ञ होवैगा इति ॥ ५३ ॥

तहां ईस प्रकारके अवसरकूं प्राप्त होइकै सो अर्जुन जीवन्मुक्त पुरुषके जे लक्षण हैं तेही लक्षण मुमुक्षुजनोंके मोक्षका उपायरूप हैं या प्रकार मानता हुआ ता स्थितप्रज्ञके लक्षणके जानणेवासतैं या प्रकारका प्रश्न करै हैं–

अर्जुन उवाच ।

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ॥
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्५४

(पदच्छेदः) स्थितप्रज्ञस्य । का । भाषा । समाधिस्थस्य । केशव । स्थितधीः । किम् । प्रभाषेत । किम् । आसीत । व्रजेत किम् ॥ ५४ ॥

(पदार्थः) हे केशव । समाधिविषे स्थितप्रज्ञ पुरुषका लक्षण क्या है तथा समाधितैं उठ्या हुआ सो स्थितप्रज्ञ किस प्रकार भाषण करै है तथा किसप्रकार बाह्य इंद्रियोंका निग्रह करै है तथा किसे प्रकार विषयोंकूं प्राप्त होवै है ॥ ५४ ॥

भा०टी०–निश्चल हुई है मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारकी प्रज्ञा जिसकी ताका नाम स्थितप्रज्ञ है। सो स्थितप्रज्ञ पुरुष दो प्रकारकी अवस्थावाला होवै हैं एक तौ समाधिविषे स्थित होवै है और दूसरा ता समाधितैं उत्थान हुए चित्तवाला होवै है या कारणतैंही वा स्थितप्रज्ञ पुरुषका समाधिस्थ यह विशेषण कथन करा है । ऐसे समाधिविषे स्थित स्थितप्रज्ञ पुरुषका कौन लक्षण है क्या सो समाधिविषे स्थित स्थितप्रज्ञ पुरुष किस लक्षणकरिकै (दूसरे पुरुषोंनैं जानीता है। इति प्रथमप्रश्नः ॥ १ ॥ और ता समा-

धितै व्युत्थानकूं प्राप्त हुआ है चित्त जिसका ऐसी दूसरी अवस्थावाला सो स्थितप्रज्ञ पुरुष अपणी स्तुतिविषे तथा निंदाविषे हर्षपूर्वक तथा द्वेषपूर्वक वचनकूं किस प्रकार कथन करै है। इति द्वितीयप्रश्नः ॥ २ ॥और ता समाधितै उत्थानकूं प्राप्त हुए चित्तके निग्रह करणेवासतै सो स्थितप्रज्ञ पुरुष नेत्रादिक बाह्य इंद्रियोंके निग्रहकूं किस प्रकार करे है इति तृतीयप्रश्नः॥ ३ ॥ और तिन बाह्य इंद्रियोंके निग्रहके अभावकालविषे सो स्थितप्रज्ञ पुरुष किस प्रकार विषयोंकूं प्राप्त होवै है । इति चतुर्थप्रश्नः ॥ ४ ॥ तात्पर्य यह । ता व्युत्थानचित्तवाले स्थितप्रज्ञ पुरुषके भाषण, आसन, व्रजन यह तीनों अज्ञानी पुरुषोंके भाषणादिकोंतैं किस प्रकारके विलक्षण है इति। इस प्रकार अर्जुनके चारि प्रश्न सिद्ध होवै है । तहां समाधिविषे स्थित स्थितप्रज्ञविषे तौ प्रथम एक प्रश्न है और समाधितैं उत्थानचित्तवाले स्थितप्रज्ञविषे तीन प्रश्न हैं । तहां (हे केशव) या संबोधनके कहणेकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन करा सर्वका अंतर्यामी होणेतैं आपही इस रहस्य अर्थके कहणेविषे समर्थ हो ॥ ५४ ॥

अब श्रीभगवान् इन चारि प्रश्नोंके यथाक्रमतै उत्तरोंकूं इस द्वितीय अध्यायकी समाप्ति पर्यंत कथन करै है तहां एक श्लोककरिकै प्रथम प्रश्नका उत्तर कहै है—

श्रीभगवानुवाच ।

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्पार्थ मनोगतान् ॥
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥५५

(पदच्छेदः) प्रजहाति । यदा । कामान् । सर्वान् । पार्थ । मनोगतान् । आत्मनि । एव । आत्मना । तुष्टः । स्थितप्रज्ञः । तदा । उच्यते ॥ ५५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस कालविषे सो समाधिस्थ पुरुष अपणे मनविषे स्थित सर्व कर्मोंकूं परित्याग करै है तथा आत्माविषे आत्माक-

रिकै ही तृप्त होवै है तिसै कालविषे सो समाधिस्थ पुरुष स्थितप्रज्ञ कह्या जावै है ॥ ५५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! कामसंकल्प आदिक जो मनकी वृत्तियां विशेष हैं जिन कामसंकल्पादिक वृत्तियोंकूं अन्य शास्त्रविषे प्रमाण, विपर्यय विकल्प, निद्रा, स्मृति या भेदकरिकै पंच प्रकारका कथन करा है तिन कामसंकल्पादिक सर्व वृत्तियोंकूं जिस कालविषे यह विद्वान् पुरुष कारणके बाधकरिकै परित्याग करै है क्या जिस कालविषे तिन कामसंकल्पादिक सर्व वृत्तियोंतें रहित होवै है तिस कालविषे सो समाधिस्थ विद्वान् पुरुष स्थितप्रज्ञ कह्या जावै है। अब तिन कामसंकल्पादिकोंविषे अनात्मवस्तुकी धर्मरूपता कथन करिकै परित्याग करणेकी योग्यता निरूपण करै हैं (मनोगतान् इति) हे अर्जुन ! ते कामसंकल्पादिक सर्व धर्म मनकेही हैं आत्माके धर्म हैं नहीं। जो कदाचित् ते कामसंकल्पादिक आत्माकेही स्वाभाविक धर्म होवैं तौ जैसे अग्निका स्वाभाविक धर्म जो उष्णता है सो उष्णताधर्म अग्निके विद्यमान हुए कदाचित्भी निवृत्ति होवै नहीं तैसे आत्माके विद्यमान हुए ते कामसंकल्पादिक धर्म कदाचित्भी निवृत्ति होवैंगे नहीं। यातैं ते कामसंकल्पादिक आत्माके धर्म नहीं हैं किंतु मनकेही धर्म हैं। यातैं ता कारणरूप मनके परित्यागकरिकै ते कामसंकल्पादिक धर्म परित्याग करणेकूं शक्य हैं ते कामसंकल्पादिक मनकेही धर्म हैं या अर्थविषे "कामः संकल्पो विचिकित्सा" इत्यादिक श्रुतिही प्रमाणरूप हैं । इतने कहणेकरिकैही बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म इन अष्टोंकूं आत्माका धर्म मानणेहारे नैयायिकोंका मतभी खंडन करा इति। शंका—हे भगवन् । ता समाधिस्थ स्थितप्रज्ञ विद्वान्का मुख प्रसन्न हुआ प्रतीत होवै है ! और सा मुखकी प्रसन्नता अंतरके संतोषतें विना होवै नहीं यातैं ता मुखकी प्रसन्नतारूप हेतुतैं ता स्थितप्रज्ञ पुरुषका संतोषविषे अनुमान करा जावै है । सो संतोषविशेष सर्व वृत्तियोंके परित्याग किये हुए किस प्रकार संभवैगा। ऐसी अर्जुनकी

शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं । (आत्मन्येवात्मना तुष्टः) इति । हे अर्जुन! सो विद्वान् पुरुष परमानन्दस्वरूपआत्माविषेही परमपुरुषार्थकी प्राप्तितैं तृप्तिकूं प्राप्त हुआ है। कोई अनात्म तुच्छ पदार्थोंविषे सो विद्वान् पुरुष तृप्तिकूं प्राप्त हुआ नहीं। ता परमानन्दस्वरूपआत्माविषेभी स्वप्रकाशचैतन्यरूपकरिकैभासमान आत्माकरिकैही तृप्तिकूं प्राप्त हुआहैकोई मनकी वृत्तिविशेष करिकैतृप्तिकूं प्राप्त हुआ नहीं यातैं ता स्थितप्रज्ञ पुरुषविषेमनकी वृत्तितैंविनाभी सो संतोषविशेषसंभव होइ सकै है। तहां श्रुति। "यदा सर्वे प्रमुच्यंते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः। अथमर्त्योऽमृतोभवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते"। अर्थ यह—इस पुरुषके मनविषे स्थित जे कामसंकल्पादिक हैं ते सर्व कामसंकल्पादिक जिस कालविषे निःशेषतैं निवृत्तहोवै है। तिस कालविषे यह जीव अमृतभावकूं प्राप्त होवै है। तथा इसी शरीरविषे आनंद स्वरूप ब्रह्मकूं अनुभव करै है इति यातैं यह अर्थ सिद्ध भया सो समाधिविषे स्थित स्थितप्रज्ञपुरुष इस प्रकारके लक्षणवाचक शब्दोंकरिकै कथन करा जावै है। यह प्रथम प्रश्नका उत्तर सिद्ध हुआ इति ॥५५॥

अब समाधितैं उत्थानकूं प्राप्त हुए स्थितप्रज्ञके भाषण,आसन गमन या तीनोंविषे मूढ पुरुषोंके भाषणादिकोंतैं विलक्षणताकूं कथन करता हुआ श्रीभगवान्(किं प्रभाषेत)या द्वितीय प्रश्नके उत्तरकूं दो श्लोकोंकरिकै कथन करैं हैं—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः॥
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥५६॥

(पदच्छेदः) दुःखेषु । अनुद्विग्नमनाः । सुखेषु । विगतस्पृहः । वीतरागभयक्रोधः । स्थितधीः । मुनिः । उच्यते ॥५६॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! दुःखोंविषे नहीं उद्वेगकूं प्राप्त हुआ है मन जिसका तथा विषयसुखोंविषे निवृत्त हुई है स्पृहा जिसकी तथा निवृत्त हुए हैं रागभयक्रोध जिसके ऐसा मननशील पुरुष स्थित कह्या जावै है ॥ ५६ ॥

भा० टी०—आध्यात्मिक दुःख, आधिभौतिक दुःख, आधिदैविक दुःख यह तीन प्रकारके दुःख होवैं हैं । तहां शोकमोहादिक आधियोंकरिकै जन्य जो दुःख हैं तथा ज्वरशूलादिक व्याधियोंकरिकै जन्य जो दुःख हैं तिन दुःखोंकूं आध्यात्मिक दुःख कहैं हैं और व्याघ्रसर्पादिकोंकरिकै जन्य जो दुःख हैं तिन दुःखोंकूं आधिभौतिक दुःख कहैं हैं। और अति वायु अति वृष्टि अग्नि आदिकोंकरिकै जन्य जो दुःख हैं तिन दुःखोंकूं आधिदैविक दुःख कहैं हैं । ते सर्व दुःख रजोगुणका परिणामरूप तथा संतापरूप अंतःकरणकी वृत्तिविशेषरूप होवैं हैं । तथा पापकर्मरूप प्रारब्धकरिकै प्राप्त होवै हैं । ऐसे दुःखोंके प्राप्तिविषे तिन दुःखोंके निवृत्त करणेकी असामर्थ्यताकरिकै नहीं प्राप्त हुआ है उद्वेगकूं मन जिसका ताका नाम अनुद्विग्नमना है । और जे अविवेकी पुरुष हैं तिन अविवेकी पुरुषोंकूं तौ ता दुःखकी प्राप्तिकालविषे या प्रकारका उद्वेग होवै है मैं बहुत पापात्माहूं ऐसे दारुण दुःखोंकूं भोगणेहारा मैं दुरात्माकूं धिक्कार है। ऐसे मेरे दुःखकूं कौन निवृत्त करेगा इति । इस प्रकारकी अनुतापरूप जो भ्रांतिहै ता भ्रांतिरूप जो तमोगुणका परिणामरूप अंतःकरणकी वृत्तिविशेष है ताका नाम उद्वेग है सो उद्वेग तिन अविवेकी पुरुषोंकूं दुःखरूप फलकी प्राप्तिकालविषे जैसे होवै है तैसे जो कदाचित् सो उद्वेग तिन अविवेकी पुरुषोंकूं पापकर्मोंके करणकालविषे होता तौ तिन पापकर्मोंके प्रवृत्तिका प्रतिबंधक होणेतैं सो उद्वेग सफल होता परंतु तिन पापकर्मोंके करणकालविषे तिन अविवेकी पुरुषोंकूं सो उद्वेग होता नहीं और तिन पापकर्मोंके दुःखरूप फलके भोगकालविषे उत्पन्न हुआभी सो उद्वेग जैसे गृहकूं अग्निके लागे हुए ता अग्निके शांति करणेवासतै कूपका खोदणा निष्फल होवै है तैसे निष्फलही होवै है काहेतें तिन पापरूप कारणके विद्यमान हुए सो दुःखरूप कार्य अवश्यकरिकै उत्पन्न होवै है । ता कालविषे उद्वेगमात्रकरिकै ता दुःखकी निवृत्ति होइ सकै नहीं । और ता दुःखके पापरूप कारणके विद्यमान हुए भी हमारेकूं किसवासतैं दुःख उत्पन्न होवै है। या प्रकारका

कोईभी प्राणी नहीं है किसीभी उपायकरिकै यह हमारा सुख नाशकूं नहीं प्राप्त होवै । इत्यादिरूप जो उत्फुल्लतारूप अंतःकरणकी तामसी वृत्ति विशेष है ताका नाम हर्षहै सो हर्षरूप स्पृहाभी भ्रांतिरूपही है । यहही स्पृहाशब्दका अर्थ श्रीभगवान् (न प्रहृष्येत् प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्) या श्लोकविषे आगे कथन करेंगे । सो हर्षरूप भ्रांतिभी ता विद्वान् पुरुषविषे संभवै नहीं । पुनः कैसा है सो विद्वान् पुरुष निवृत्त होइ गये हैं राग भय क्रोध जिसके वहां यह विषय बहुत सुंदर है या प्रकारके शोभनबुद्धिरूप अध्यासकरिकै जन्य जो रंजनरूप अंतःकरणकी वृत्तिविशेष है जिसकूं अत्यंत अभिनिवेश कहें हैं ताका नाम राग है । और ता रागका विषय जो पदार्थ है ता पदार्थके नाश करणेहारे किसी कारणके प्राप्त हुए ता कारणके निवृत्त करणेविषे अपणेकूं असमर्थ मानणेहारे पुरुषकी जो दीनतारूप अंतःकरणकी वृत्तिविशेष है ताका नाम भय है । और ता रागके विषयरूप प्रिय वस्तुके नाश करणेहारे किसी कारणके प्राप्त हुए ता कारणके निवृत्त करणेविषे अपणेकूं असमर्थ मानणेहारे पुरुषकी जो प्रज्वलनरूप अंतःकरणकी वृत्तिविशेष है ताका नाम क्रोध है । ते राग, भय, क्रोध, तीनों भ्रमरूपही हैं । ऐसे भ्रमरूप राग, भय, क्रोध तीनों निवृत्त होइ गये हैं जिसतैं ताका नाम वीतरागभयक्रोधहै इस प्रकारका मननशील संन्यासी स्थितप्रज्ञ कह्या जावै है । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया इस प्रकारका स्थितप्रज्ञ पुरुष अपणे अंतर अनुभवकूं प्रगट करिकै अपणे शिष्योंके प्रति शिक्षा करणे वास्तै उद्वेगतैं रहितपणेकूं तथा स्पृहातैं रहितपणेकूं तथा रागभयक्रोधतैं रहितपणेकूं कथन करणेहारे जो वचन हैं तिन वचनोंकूंही कथन करै है । क्या हमारे न्याईं दूसराभी मुमुक्षु दुःखोंविषे उद्वेग नहीं करै तथा सुखोंविषे स्पृहा नहीं करै तथा रागभयक्रोधतैं रहित होवै इति ॥ ५६ ॥

किंच—

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ॥
नाभिनंदति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५७॥

(पदच्छेदः) यः । सर्वत्र । अनभिस्नेहः । तत् । तत् । प्राप्य । शुभाशुभम् । न । अभिनंदति । न । द्वेष्टि । तस्य । प्रज्ञा । प्रतिष्ठिता ॥ ५७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो विद्वान् पुरुष देहादिक सर्व पदार्थोंविषे स्नेहतैं रहित है तथा तिसै तिसै प्रिय अप्रिय विषयकूं प्राप्त होइकै नहीं प्रशंसा करै है नहीं द्वेष करै है तिसै विद्वान् पुरुषकी प्रज्ञा स्थिरतैं होवै है॥ ५७॥

भा० टी०—जो विद्वान् मुनि अपणे देहजीवनादिक सर्व पदार्थोंविषे अनभिस्नेह है । इहां जिसके विद्यमान हुए अन्य वस्तुकी हानि तथा वृद्धि अपणेविषे आरोपण करी जावै ऐसी जो ता अन्य वस्तुविषयक अंतःकरणकी तामसी वृत्तिविशेष है जिसकूं प्रेम कहै हैं ताका नाम स्नेह है ता स्नेहके वशतैंही यह लोक अपणे स्त्री पुत्र धनादिक पदार्थोंकी हानि वृद्धिकूं अपणेविषे मानै है । ता स्नेहतैं सर्व प्रकारतैं जो रहित होवै ताका नाम अनभिस्नेह है । ऐसा अनभिस्नेह विद्वान् पुरुषभी परमानंदस्वरूप आत्मादेवविषे तौ सर्व प्रकारतैं स्नेहवाला होवै । काहेतैं देहादिक अनात्मपदार्थोंके स्नेहका जो परित्याग है सो अंतरआत्माके स्नेहवासतैंही है । आत्माके स्नेहतैं विना बाह्य पदार्थोंके स्नेहका परित्याग करणा निष्फल है इति । और जो विद्वान् पुरुष पुण्यकर्मरूप प्रारब्धनै प्राप्त करे जो सुखके कारणरूपविषयहैं तिनप्रिय विषयोंकूं प्राप्त होइकै हर्षविशेषपूर्वक तिनविषयोंकी प्रशंसा नहींकरैहै और पापकर्मरूप प्रारब्धनैं प्राप्तकरे जो दुःखके कारणरूप विषयहैं तिन अप्रिय विषयोंकूं प्राप्त होइकै सो विद्वान् पुरुष असूयापूर्वक तिन अप्रिय विषयोंकी निंदा नहीं करै है। तात्पर्य यह—अज्ञानी पुरुषोंके सुखके हेतुरूप जो अपणे स्त्रीपुत्रादिक पदार्थ हैं ते पदार्थ तिन अज्ञानी पुरुषोंके

प्रति शुभ विषय हैं तिन शुभ विषयोंके गुण कथन करणेविषे प्रवृत्त करणे-
हारी जो तिन अज्ञानी पुरुषोंके अंतःकरणकी भ्रांतिरूप तामसीवृत्तिविशेष
है ताका नाम अभिनंदन है । तहां तिन स्त्रीपुत्रादिक पदार्थोंके गुणोंका
कथन अन्य पुरुषोंके प्रीतिवासतै है नहीं यातें व्यर्थही है । इस प्रकार
अन्य पुरुषके जो विद्याप्रतिष्ठादिक गुण हैं । ते विद्यादिकगुण ईर्षाकी
उत्पत्तिद्वारा तिन अज्ञानी पुरुषोंके दुःखकेही कारण हैं । यातें ते अन्य
पुरुषके विद्यादिक गुण तिन अज्ञानी पुरुषोंके प्रति अशुभ विषय हैं ।
तिन अशुभ विषयोंकी निंदादिकोंविषे प्रवृत्त करणेहारी जो तिस अज्ञानी
पुरुषके अंतःकरणकी भ्रांतिरूप वृत्तिविशेष है ताका नाम द्वेष है सो
द्वेषभी तमोगुणकाही परिणाम है । और ता अज्ञानी पुरुषनें करी जो
निंदा है सा निंदा ता अन्य पुरुषके विद्यादिक उत्कृष्टताकूं निवारण करि
सकै नहीं । यातें सा निंदा व्यर्थही है । यातें सो अभिनंदन तथा द्वेष
दोनों भ्रांतिरूप हैं तथा तमोगुणका परिणाम है । ऐसा अभिनंदन तथा
द्वेष दोनों ता भ्रांतितें रहित तथा शुद्ध अंतःकरणवाले स्थितप्रज्ञ पुरुष-
विषे कैसे संभवैंगे किंतु नहीं संभवैंगे । और ते द्वेषादिक तामसी वृत्तिही अंतः-
करणकूं चलायमान करणेहारी हैं। तिन द्वेषादिकोंके अभाव हुए ता स्नेहतें
रहित तथा हर्ष विषादतें रहित विद्वान् मुनिकी सा आत्मतत्त्वविषयक
प्रज्ञा प्रतिष्ठितही होवै है क्या मोक्षरूप फलविषे पर्यवसानवाली होवै है ।
सोईही मुनि स्थितप्रज्ञ कह्या जावै है । इस प्रकार दूसराभी मुमुक्षु सर्व
पदार्थोंविषे स्नेहतें रहित होवै । तथा प्रिय विषयोंकूं प्राप्त होइकै तिनोंकी
प्रशंसा नहीं करै । तथा अप्रिय विषयोंकूं प्राप्त होइकै तिनोंकी निंदा
नहीं करै । यातें यह अर्थ सिद्ध भया । जैसे अज्ञानी पुरुष शुभ
अशुभ पदार्थोंकी प्राप्तिकालविषे प्रशंसारूप वचनोंकूं तथा निंदारूप
वचनोंकूं कथन करै है तैसे सो विद्वान् पुरुष ता शुभ अशुभ पदार्थोंकी
प्राप्तिकालविषे प्रशंसारूप वचनोंकूं तथा निंदारूप वचनोंकूं कथन करता

नहीं । किंतु ता शुभ अशुभ दोनोंकी प्राप्तिविषे सो विद्वान् पुरुष उदासीनही रहै है ॥ ५७ ॥

अब (किमासीत) या तृतीय प्रश्नके उत्तरकूं श्रीभगवान् षट् श्लोकोंकरिकै कथन करैंहैं । तहां प्रारब्धकर्मके वशतै समाधितैं उत्थानकरिकै विक्षेपकूं प्राप्त भये जो इंद्रिय हैं। तिन इंद्रियोंकूं पुनः अंतर्मुख करिकै समाधिवासतैहै ता स्थितप्रज्ञ पुरुषकी स्थिति होवै है या अर्थके निरूपण करणेवासतै श्रीभगवान् कहै हैं—

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ॥
इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥५८॥

(पदच्छेदः) यदा । संहरते । च । अयम् । कूर्मः । अंगानि । इव । सर्वशः । इंद्रियाणि । इंद्रियार्थेभ्यः । तस्य । प्रज्ञा । प्रतिष्ठिता ॥ ५८॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जैसे कूर्म अपणे शिरपादादिक अंगोंकूं संकोच करै है तैसे यहै विद्वान् पुरुष जिस कालविषे अपणे सर्व इंद्रियोंकूं शब्दादिक विषयोंतैं पुनः संकोचै करै है तिस कालविषे तिस विद्वान् पुरुषकी प्रज्ञा स्थित होवै है ॥ ५८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जैसे कूर्म दूसरेके भयतैं अपणे शिरपादादिक सर्व अंगोंकूं अपणे शरीरविषेही संकोच करि लेवै है । तैसे समाधितैं उत्थानकूं प्राप्त हुआ यह विद्वान् पुरुष जिस कालविषे रागादिक दोषोंकी प्राप्तिके भयतैं तथा समाधिके विघ्नोंके भयतै अपणे श्रोत्रादिक सर्व इंद्रियोंकूं शब्दादिक सर्व विषयोंतैं पुनः संकोच करि लेवै है तिस कालविषे तिस विद्वान् पुरुषकी सा प्रज्ञा प्रतिष्ठित होवै है । तहां पूर्वले दो श्लोकोंकरिकै समाधितैं व्युत्थानदशाविषेभी ता विद्वान् पुरुषविषे सर्व तामस वृत्तियोंका अभाव कथन करा । और अबी इस श्लोककरिकै पुनः समाधिअवस्थाविषे तिन सकल वृत्तियोंका अभाव कथन करा है इतनी पूर्वतैं इहां विलक्षणता है ॥ ५८ ॥

हे भगवन् ! शब्दादिक विषयोंतैं जो श्रोत्रादिक इंद्रियोंकी निवृत्ति है सा निवृत्ति जो कदाचित् स्थितप्रज्ञताका हेतु होवै तौ रोगादिक निमित्तके वशतैं मूढ पुरुषोंके श्रोत्रादिक इंद्रियोंकीभी शब्दादिक विषयोंतैं निवृत्ति देखणेविषे आवै है यातैं ते रोगादिकोंवाले सर्व मूढ पुरुष स्थितप्रज्ञ होणे चाहिये । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहै हैं—

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ॥
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ ५९ ॥

(पदच्छेदः)विषयाः । विनिवर्तते । निराहारस्य । देहिनः । रसवर्जम् । रसः । अपि । अस्य । परम् । दृष्ट्वा । निवर्तते ॥५९॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इंद्रियोंकरिकै विषयोंके ग्रहण करणेविषे असमर्थ रोगी पुरुषके शब्दादिकै विषय निवृत्त होइ जावै हैं परंतु तिन विषयोंका राग निवृत्त होवै है नही और इस स्थितप्रज्ञ पुरुषका तौ परब्रह्मकूं साक्षात्कार करिकै सो राग भी निवृत्त होइ जावै है ॥ ५९ ॥

भा० टी०—श्रोत्रादिक इंद्रियोंकरिकै शब्दादिक विषयोंके ग्रहण करणेविषे असमर्थ ऐसा जो देहाभिमानवाला रोगी मूढ पुरुष है । अथवा काष्ठकी न्याई सर्व इंद्रियोंकी चेष्टातै रहित जो तपस्वी है तिन रोगी आदिक मूढ पुरुषोंकेभी ते शब्दादिक विषय निवृत्त होइ जावैं हैं परंतु तिन अज्ञानी पुरुषोंका तिन शब्दादिक विषयोंका राग निवृत्त होवै नहीं किंतु सो विषयोंका राग तिस कालविषेभी तिन अज्ञानी पुरुषोंकूं बन्या रहै है । और इस स्थितप्रज्ञ विद्वान् पुरुषका तौ परमानन्दस्वरूप ब्रह्म मैं हूं या प्रकारके साक्षात्कारकरिकै ते शब्दादिक विषय तथा तिन विषयोंका राग दोनों निवृत्त होइ जावैं है । यह वार्त्ता (यावानर्थ उदपाने) या श्लोकविषे पूर्व कथन करि आये हैं। यातैं रागसहित विषयोंकी निवृत्तिही ता स्थितप्रज्ञका लक्षण है ता लक्षणकी रोगादिग्रस्त मूढ पुरुषविषे अतिव्याप्ति होवै नहीं यातैं यह अर्थ सिद्ध भया जिस कारणतैं परमात्मादेवके

यथार्थ साक्षात्कारतैं विना रागसहित विषयोंकी निवृत्ति होवैं नहीं तिस कारणतैं यह अधिकारी पुरुष तिन रागसहित विषयोंके निवृत्त करणेहारी यथार्थज्ञानरूप जो प्रज्ञा है ता प्रज्ञाकी स्थिरताकूं अवश्य करिकै संपादन करै ॥ ५९ ॥

तहां तिस प्रज्ञाकी स्थिरताविषे बाह्य इंद्रियोंका निग्रह तथा अन्तर मनका निग्रह'यह दोनों असाधारण कारण हैं । तिन दोनोंके अभाव हुए ता प्रज्ञाका नाश देखणेविषे आवै है। इस अर्थके कहणेवासतै प्रथम बाह्य इंद्रियोंके नहीं निग्रह करणेविषे दोषका वर्णन करै हैं—

यततो ह्यपि कौंतेय पुरुषस्य विपश्चितः ॥
इंद्रियाणि प्रमाथीनि हरंति प्रसभं मनः ॥ ६० ॥

(पदच्छेदः) यततः । हि । अपि । कौंतेय । पुरुषस्य । विपश्चितः । इंद्रियाणि । प्रमाथीनि । हरंति । प्रसभम् । मनः ॥६०॥

(पदार्थः) हे कुंतीके पुत्र अर्जुन ! यत्न करणेहारे विवेकी पुरुषके मनकूं भी यह अत्यंत बलवान् श्रोत्रादिक इंद्रिय बलात्कारतै विकारकूं प्राप्त करैं हैं ॥ ६० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! वारंवार शब्दादिक विषयोंविषे दोषदर्शनरूप यत्नकूं करणेहारा जो अत्यन्त विवेकी पुरुष है ता विवेकी पुरुषके क्षणमात्र निर्विकार किये हुए मनकूंभी यह श्रोत्रादिक इंद्रिय नाना प्रकारके विकारोंकी प्राप्ति करैं हैं शंका—हे भगवन् ! ता विकारका विरोधी जो विवेक है ता विवेकके विद्यमान हुए तिस विवेकी पुरुषके मनकूं ते इंद्रिय विकारकी प्राप्ति नहीं करिसकैंगे । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन इंद्रियोंका प्रभाव कथन करैं हैं (प्रमाथीनि इति) हे अर्जुन ! यह श्रोत्रादिक इंद्रिय अत्यन्त बलवान् हैं। यातैं यह इंद्रिय ता विवेकके पराभव करणेविषे समर्थ हैं यातैं ता विचारवान् पुरुषरूप स्वामीके देखते हुए तथा ता विवेकरूप रक्षकके विद्यमान हुएभी तिन

सर्वोका पराभव करिकै यह श्रोत्रादिक इंद्रिय ता विवेकजन्य प्रज्ञाविषे प्राप्त हुए मनकूं ता प्रज्ञातै निवृत्त करिकै अपणे शब्दादिक विषयों- विषेही बलात्कारतैं प्राप्त करै है इहां (यततोहि) या वचनविषे स्थित जो हि यह शब्द है ता हि शब्दकरिकै भगवान्नैं यह लोकप्रसिद्धि बोधन करी। यह वार्त्ता लोकविषेभी प्रसिद्ध है। जैसे कोई बलवान् शत्रु धनी पुरुषोंकूं तथा ता धनके रक्षक पुरुषोंकूं तिरस्कार करिकै तिन्होंके देखते हुएही बलात्कारसैं तिन्होंके धनादिक पदार्थ ले जावैं है तैसे यह श्रोत्रादिक इंद्रियभी शब्दादिक विषयोंके समीपताकूं प्राप्त होइकै तिन विवेकादिकोंका पराभव करिकै बलात्कारसै मनकूं तिन विषयोंविषे ले जावै है ॥ ६० ॥

हे भगवन् ! वे श्रोत्रादिक इंद्रिय जो ऐसे बलवान् है तो तिन इंद्रियोका निरोध हमारेसै कैसे होइ सकैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन इंद्रियोंके निरोधका उपाय कथन करैं है-

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः॥
वशे हि यस्येंद्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६१ ॥

(पदच्छेदः) तानि । सर्वाणि । संयम्य । युक्तः । आसीत । मत्परः । वशे । हि । यस्य । इंद्रियाणि । तस्य । प्रज्ञा । प्रतिष्ठिता ॥ ६१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन । हमारा अन्य भक्त तिन सर्व इंद्रियोकूं वशीकरिकै निगृहीतमनवाला हुआ स्थित होवै जिसं पुरुषके यह इंद्रिय वशिवर्ती हैं तिसं पुरुषकी सो प्रज्ञा स्थिर होवै है ॥ ६१ ॥

भा० टी०-ज्ञानके साधनरूप जो श्रोत्रादिक पंच ज्ञानइन्द्रिय हैं तथा क्रियाके साधनरूप जो वागादिक पंच कर्म इंद्रिय हैं तिन सर्व इंद्रि- योकूं अपणे वशि करिकै क्या शब्दादिक विषयोतै तिन इंद्रियोंका निरोधकरिकै यह विवेकी पुरुष मनके निग्रहवाला हुआ स्थित होवै

क्या बाह्य अन्तर सर्व व्यापारोंतैं रहित हुआ स्थित होवै। शंका-हे भगवन् ! पूर्व आपनैं तिन इंद्रियोंकूं महान् बलवान् कह्या था ऐसे बलवान् इंद्रियोंकूं अपणे वशी करणा कैसे संभवैगा ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (मत्परः इति) हे अर्जुन ! सर्व प्राणीमात्रका आत्मारूप जो मैं वासुदेव हूं सो मैं वासुदेवही सर्वतैं उत्कृष्ट हूं जिस पुरुषकूं ता पुरुषका नाम मत्पर है ऐसा मेरा अनन्य भक्तही तिन इंद्रियोंकूं अपणे वशि करै है। तहां श्लोक। "न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित्" अर्थ यह--सर्व प्राणीमात्रका आत्मारूप जो वासुदेव है ता वासुदेवके अनन्य भक्तोंकूं किसीभी कार्यविषे अशुभकी प्राप्ति होवै नहीं किंतु सर्व कार्य ताके निर्विघ्न समाप्त होवै हैं इति। यह वार्त्ता लोकविषेभी प्रसिद्ध है जैसे इस पुरुषनैं जबपर्यंत किसी बलवान् महाराजाका आश्रय नहीं लिया है तबपर्यंतही तिस पुरुषकूं अन्य शत्रु दुःखकी प्राप्ति करै हैं और यह पुरुष जबी ता बलवान् महाराजाके आश्रयकूं प्राप्त होवै है तबी यह पुरुष अबी महाराजाके आश्रयकूं प्राप्त भया है या प्रकार मानिकरिकै ते शत्रु आपही तिस पुरुषके वशि होइ जावैं हैं तैसे यह अधिकारी पुरुषभी जबपर्यंत सर्वांतर्यामी ईश्वरके शरणकूं प्राप्त नहींभया है तबपर्यंतही यह श्रोत्रादिक इंद्रिय ता अधिकारी पुरुषकूं बहिर्मुख करैं हैं और यह अधिकारी पुरुष जबी ता अंतर्यामी ईश्वरके शरणकूं प्राप्त होवै है तबी यह अधिकारी पुरुष अबी अंतर्यामी ईश्वरके शरणकूं प्राप्त भया है या प्रकार मानिकरिकै ते इंद्रिय आपही ता अधिकारी पुरुषके वशीभावकूं प्राप्त होवै हैं। यह सर्व अर्थ (वशे हि) या वचनविषें स्थित हि या शब्दकरिकै भगवान्नें सूचन करा ऐसे भगवद्भक्तिके महान् प्रभावकूं आगे विस्तार करिकै निरूपण करैंगे अब श्रीभगवान् तिन इंद्रियोंके वशि करणेका फल कथन करैं हैं (वशे हि इति) हे अर्जुन ! जिस विद्वान् पुरुषके ते श्रोत्रादिक इंद्रिय वशि

होवै हैं तिसी विद्वान् पुरुषकी सा शास्त्रजन्य प्रज्ञा स्थिरताकूं प्राप्त होवै है यातें (किमासीत) या तृतीय प्रश्नका यह उत्तर सिद्ध भया। सो विद्वान् पुरुष श्रोत्रादिक सर्व इंद्रियोंकूं अपणे वशि करिकै स्थित होवै है ॥ ६१ ॥

हे भगवन् ! मनविषे जो अनर्थकी कारणता है सो बाह्य इंद्रियोंकी प्रवृत्तिद्वाराही है स्वभावतें मनविषे अनर्थकी कारणता है नहीं यातेंजिस पुरुषनैं श्रोत्रादिक बाह्य इंद्रियोंका निग्रह करा है तिस पुरुषकूं दांतोंतें रहित करे हुए सर्पकी न्याईं मनके नहीं निग्रह किये हुएभी किसी अनर्थकी प्राप्ति होवै नहीं किन्तु बाह्य प्रवृत्तिके अभावकरिकैही सो पुरुष कृतकृत्य होवै है यातें पूर्व श्लोकविषे (युक्त आसीत) या वचनकरिकै आपनैं कथन करा जो मनका निग्रह है सो व्यर्थही कथन करा है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् सर्व इंद्रियोंके निग्रहवान् पुरुषकूंभी मनके नहीं निग्रह किये हुए सर्व अनर्थोंकी प्राप्ति दो श्लोकों करिकै कथन करै हैं-

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ॥
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥ ६२॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ॥
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥६३॥

(पदच्छेदः) ध्यायतः। विषयान्। पुंसः। संगः। तेषु। उपजायते। संगात्। संजायते। कामः। कामात्। क्रोधः। अभिजायते ॥ ६२ ॥ क्रोधात्। भवति। संमोहः। संमोहात्। स्मृतिविभ्रमः। स्मृतिभ्रंशात्। बुद्धिनाशः। बुद्धिनाशात्। प्रणश्यति ॥६३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! शब्दादिक विषयोंकूं मनकरिकै ध्यान करते हुए पुरुषका तिन विषयोंविषे संग उत्पन्न होवै है ता संगतें काम उत्पन्न होवै है तो कामतें क्रोध उत्पन्न होवै है ॥ ६२ ॥

ताँ क्रोधतैं संमोह होवै है ताँ संमोहतैं स्मृतिका विभ्रंश होवै है तां स्मृतिके भ्रंशतैं बुद्धिका नाश होवै है ताँ बुद्धिके नाशतैं नाशकूं प्राप्त होवै है ॥ ६३ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जो पुरुष अपणे श्रोत्रादिक बाह्य इंद्रियोंकूं शब्दादिक विषयोंतैं निरोध करिकैभी मनकरिकै वारंवार तिन शब्दादिक विषयोंका चिंतन करै है तिस पुरुषका तिन विषयोंविषे अवश्यकरिकै संग उत्पन्न होवै है। इहां यह विषय हमारे सुखके साधन हैं या प्रकारका शोभन अध्यासरूप जो प्रीतिविशेष है ताका नाम संग है । और ता सुख साधनताज्ञानरूप संगतैं तिस पुरुषका तिन विषयोंविषे काम उत्पन्न होवै है। इहां यह विषय हमारेकूं कब प्राप्त होवैगा या प्रकारकी तृष्णाविशेषका नाम काम है । और किसी अन्य पुरुषकरिकै हननकूं प्राप्त हुआ जो सो तृष्णारूप काम है तिस कामतैं ता हनन करणेहारे अन्य पुरुषविषयक अभिज्वलनरूप क्रोध उत्पन्न होवै है और ता अभिज्वलनरूप क्रोधतैं कार्य अकार्यके विवेकका अभावरूप संमोह उत्पन्न होवै है और ता संमोहतैं गुरुशास्त्रकरिकै उपदिष्ट अर्थका अनुसन्धानरूप स्मृतिका विभ्रंश होवै है। और ता स्मृतिके विभ्रंशतैं अद्वितीय आत्माकार मनकी वृत्तिरूप बुद्धिका नाश होवै है । तात्पर्य यह–विपरीतभावनाकी वृत्तिरूप दोष करिकै प्रतिबंध होणेतैं ता बुद्धिकी उत्पत्तिही नहीं होवै है । तथा उत्पन्न हुई ता बुद्धिका फलकी प्राप्ति करणेविषे अयोग्यताकरिकै विलय होइ जावै है । यहही ता बुद्धिका नाश है इति । और ता बुद्धिके नाशतैं सो पुरुष नाशकूं प्राप्त होवै है क्या सर्व पुरुषार्थके अयोग्य होवै है । काहेतैं इस लोकविषेभी जो पुरुष पुरुषार्थके अयोग्य होवे है सो पुरुष यह मरा हुआहै या प्रकारके लोकोंके व्यवहारका विषय होवै है । तैसे सर्व पुरुषार्थके अयोग्य हुआ यह पुरुष मृत हुआही जानणा यातैं यह अर्थ सिद्ध भया जो पुरुष मनके निग्रहकूं न करिकै केवल बाह्य इंद्रियोंकाही निग्रह करै है तिस पुरुषकूंभी जबी महान् अन-

र्थकी प्राप्ति होवै है तबी मन इंद्रिय दोनोंके निग्रहतै रहित पुरुषकूं महान् अनर्थकी प्राप्ति होवै है याकेविषे क्या कहणाही है । यातैं यह अधिकारी पुरुष महान् प्रयत्नकरिकैभी ता मनका निग्रह करै ता मनके निग्रहतैं-विना केवल बाह्य इंद्रियोंके निग्रहमात्रकरिकै सा स्थितप्रज्ञता प्राप्त होवै नहीं ॥ ६२ ॥ ६३॥

तहां पूर्व श्लोकविषे बाह्य इंद्रियोंके निग्रह किये हुए भी मनके नहीं निग्रह किये हुए दोषकी प्राप्ति कथन करी । अब मनके निग्रह किये हुए बाह्य इंद्रियोंके नही निग्रह हुएभी ता दोषकी प्राप्ति होवै नही या अर्थकूं कथन करते हुए श्रीभगवान् (किं व्रजेत) या चतुर्थ प्रश्नके उत्तरकूं अष्ट श्लोकोंकरिकै कथन करैं है—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ॥
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥६४॥

(पदच्छेदः) रागद्वेषवियुक्तैः । तु । विषयान् । इंद्रियैः । चरन् । आत्मवश्यैः । विधेयात्मा । प्रसादम् । अधिगच्छति ६४

(पदार्थः)हे अर्जुन ! मनके निग्रहवाला पुरुष तौ रागद्वेषतै रहित तथा मनके अधीन ऐसे इंद्रियोंकरिकै विषयोंकूं ग्रहण करता हुआभी चित्तके स्वच्छताकूंही प्राप्त होवै है ॥ ६४ ॥

भा० टी०—जिस पुरुषनैं मनका निग्रह नहीं करा है, सो पुरुष बाह्य श्रोत्रादिक इंद्रियोंका निग्रह करिकैभी रागद्वेषयुक्त मनकरिकै शब्दादिक विषयोंका चिंतन करताहुआ जैसे पुरुषार्थतैं भ्रष्ट होवै है तैसे मनके निग्रहवाला पुरुष ता पुरुषार्थतै भ्रष्ट होवै नहीं । या प्रकारकी विलक्षणता बोधन करणे वासतै श्रीभगवानूनैं (रागद्वेषवियुक्तैस्तु) या वचनविषे स्थित तु यह शब्द कथन करा है । हे अर्जुन ! जिस पुरुषनैं अपणे मनका निग्रह करा है सो पुरुष तौ ता वशीकृत मनके अधीन वर्तणेहारे तथा रागद्वेषतैं रहित ऐसे श्रोत्रादिक इंद्रियोंकरिकै शास्त्रविहित शब्दा-

दिक विषयोंकूं ग्रहण करता हुआभी प्रसादकूंही प्राप्त होवै है इहां परमात्माके साक्षात्कारकी योग्यतारूप जो चित्तकी स्वच्छता है ताका नाम प्रसाद है। जे इंद्रिय रागद्वेषकरिकै युक्त होवैं हैं ते इंद्रियही दोषके करण होवैं हैं। और यह विद्वान् पुरुष जबी मनकूं अपणे वशि करै है तबी रागद्वेष दोनों निवृत्त होइ जावैं हैं और तिस रागद्वेषके अभाव हुए ता रागद्वेषके अधीन इंद्रियोंकी प्रवृत्ति होवै नहीं। और प्रारब्धकर्मोंके विद्यमान हुए तिन शब्दादिक विषयोंकी प्रतीति निवृत्त करी जावै नहीं यातैं शास्त्रविहित शब्दादिके विषयोंकी प्रतीति मात्र ता विद्वान् पुरुषकूं दोषकी प्राप्ति करै नहीं। इतने कहणेकरिकै या शंकाकीभी निवृत्ति करी तिन शब्दादिक विषयोंका स्मरणमात्रभी जबी अनर्थका कारण है तबी तिन शब्दादिक विषयोंका भोग तौ महान् अनर्थका कारण होवैगा। यातैं अपने प्राणोंकी रक्षाकरणेवासतै तिन शब्दादिक विषयोंकूं भोगता हुआ सो विद्वान् पुरुष ता अनर्थकूं क्यों नहीं प्राप्त होवैगा ? किंतु सो विद्वान् पुरुषभी अवश्यकरिकै अनर्थकूं प्राप्त होवैगा इति। शंका। यातैं (किं व्रजेत) या चतुर्थ प्रश्नका यह उत्तर सिद्ध भया रागद्वेषतैं रहित तथा अपणे वशवर्त्ती ऐसे श्रोत्रादिक इंद्रियोंकरिकै सो विद्वान् पुरुष शास्त्रविहित शब्दादिक विषयोंकूं प्राप्त होवै है ॥६४॥

तहां पूर्व श्लोकविषे सो मनके निग्रहवाला पुरुष प्रसादकूं प्राप्त होवै है। यह वार्त्ता कथन करी। वहां ता चित्तकी स्वच्छतारूप प्रसादके प्राप्त हुए कौन फल प्राप्त होवैं हैं ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता प्रसादके फलका कथन करैं हैं—

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते॥
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥६५॥

(पदच्छेदः) प्रसादे। सर्वदुःखानाम्। हानिः। अस्य। उपजायते। प्रसन्नचेतसः। हि। आशु। बुद्धिः। पर्यवतिष्ठते॥६५॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! ता प्रसादके प्राप्त हुए इस विद्वान् संन्यासीके सर्व दुःखोंका नाश होवै है जिस कारणतैं ता स्वच्छचित्तवाले संन्यासीकी बुद्धि शीघ्रही स्थिर होवै है ॥ ६५ ॥

भा०टी०–ता चित्तकी स्वच्छतारूप प्रसादके प्राप्त हुए इस विद्वान् संन्यासीके अज्ञानजन्य आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक सर्व दुःखोंका नाश होवै है। जिस कारणतैं ता स्वच्छचित्तवाले संन्यासीकी ब्रह्म आत्मा या दोनोंके अभेदकूं विषय करणेहारी बुद्धि शीघ्रही स्थिर होवै है। काहेतैं असंभावना तथा विपरीतभावना यह दोनोंही ता बुद्धिकी स्थिरताविषे प्रतिबंधक होवैं हैं । ते असंभावना विपरीतभावना दोनों ता विद्वान् पुरुषविषे है नहीं। यातैं प्रतिबंधवैं रहित हुई सा बुद्धि शीघ्रही स्थिरभावकूं प्राप्त होवै है। इहां यद्यपि चित्तकी स्वच्छतारूप प्रसादके प्राप्त हुएभी साक्षात् आध्यात्मिकादिक दुःखोंकी निवृत्ति होवै नहीं किंतु परंपराकरिकै तिन दुःखोंकी निवृत्ति होवै है।तहां चित्तके प्रसादतैं बुद्धिकी स्थिरता होवै है। ता बुद्धिकी स्थिरतातैं ता बुद्धिके विरोधी अज्ञानकी निवृत्ति होवै है। तिस अज्ञानकी निवृत्तितैं ता अज्ञानके कार्यरूप सकल दुःखोंकी हानि होवै है।इस प्रकारकी परंपराकरिकै तिन दुःखोंकी निवृत्ति होवै है। यातैं चित्तके प्रसाद हुए सर्व दुःखोंका नाश कथन करणा संभवता नहीं। तथापि ता चित्तके प्रसादकी प्राप्तिवासतैं प्रयत्नकी अधिकता बोधन करणेवासतैं ता चित्तके प्रसादविषे सर्व दुःखोंके नाशकी कारणता कथन करी है यातैं किंचित्मात्रभी विरोधकी प्राप्ति होवै नहीं ॥ ६५ ॥

तहाँ पूर्व श्लोकविषे अन्वयमुखकरिकै कथन करा जो अर्थ है तिसी अर्थकूं अब व्यतिरेकमुखकरिकै दृढ करै हैं–

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना॥
न चाभावयतःशांतिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥६६॥

(पदच्छेदः) न । अस्ति । बुद्धिः । अयुक्तस्य । न । च । अयुक्तस्य । भावना । न । च । अभावयतः । शांतिः । अशांतस्य। कुतः । सुखम् ॥ ६६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! चित्तके जयतैं रहित पुरुषकूं बुद्धि नहीं उत्पन्न होवै है तथा ता अयुक्त पुरुषकूं भावना नहीं उत्पन्न होवै है तथा ता भावनातैं रहित पुरुषकूं शांति नहीं उत्पन्न होवै है वा शांतिरहित पुरुषकूं सुख कहांतैं होवै ॥ ६६ ॥

भा० टी०—जिस पुरुषनैं अपणे चित्तकूं नहीं वशि करा है ता पुरुषका नाम अयुक्त है । ऐसे अयुक्त पुरुषकूं श्रवणमननरूप वेदांतविचारकरिकै जन्य आत्मविषयक बुद्धि उत्पन्न होवै नहीं । और ता बुद्धिके अभाव हुए तिस अयुक्त पुरुषकूं विजातीय वृत्तियोंके व्यवधानतैं रहित सजातीय वृत्तियोंका प्रवाहरूप निदिध्यासनरूप भावना उत्पन्न होवै नहीं। और ता निदिध्यासनरूप भावनातैं रहित पुरुषकूं कार्यसहित अविद्याके निवृत्त करणेहारी तथा तत्त्वमसि आदिक वेदांतवाक्योंतैं जन्य तथा जीव ब्रह्मके अभेदकूं विषय करणेहारी साक्षात्काररूप शांति नहीं उत्पन्न होवै है । और ता आत्मसाक्षात्काररूप शांतितैं रहित पुरुषकूं मोक्षानंदरूप सुख प्राप्त होवै नहीं ॥ ६६ ॥

शंका—हे भगवन् ! ता अयुक्त पुरुषविषे सा बुद्धि किस कारणतैं नहीं उत्पन्न होती ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान ता बुद्धिकी न उत्पत्तिविषे कारण कथन करैं हैं—

इंद्रियाणां हि चरतां यन्मनोनुविधीयते ॥
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवांभसि॥ ६७॥

(पदच्छेदः) इंद्रियाणाम् । हि । चरताम् । यत् । मनः । अनुविधीयते । तत् । अस्य । हरति । प्रज्ञाम् । वायुः । नावम् । इव । अंभसि ॥ ६७ ॥

(पदार्थः)हे अर्जुन! जिस कारणतैं अपणे अपणे विषयोंविषे प्रवर्त्तमान इंद्रियोंके मध्यविषे जिस एक इंद्रियकूं लक्ष्य करिकै यह मन प्रवर्त्त होवै है सो इंद्रियभी इस साधक पुरुषकी प्रज्ञाकूं हरण करै है जैसें जलविषे स्थित नौकाकूं प्रतिकूल वायु हरण करै है ॥ ६७ ॥

भा० टी०—अपणे अपणे शब्दादिक विषयोंविषे प्रवर्त्तमान ऐसे जो नहीं वश करे हुए श्रोत्रादिक इंद्रिय हैं तिन श्रोत्रादिक इंद्रियोंके मध्यविषे जिस एक इंद्रियके अनुसारी हुआभी यह मन प्रवृत्त होवै है । सो मनैं सहित एक इंद्रियभी इस साधक पुरुषकी अथवा तिस मनकी शास्त्रजन्य आत्मविषयक प्रज्ञाकूं निवृत्त करि देवैहै।जैसे जलविषे स्थित नौकाकूं प्रतिकूल वायु पाषाणादिकोंविषे ले जाइके नाश करि देवै है वैसे सो एक इंद्रियभी या अधिकारी पुरुषके प्रज्ञाकूं बहिर्मुखताकरिकै नाश करि देवै है । तात्पर्य यह । राग द्वेषयुक्त मनकी सहायताकूं लैके अपणे विषयविषे प्रवृत्त हुआ एक इंद्रियभी जबी इस अधिकारी पुरुषकी ता प्रज्ञाकूं नाश करै है तबी ते सर्व इंद्रिय इस अधिकारी पुरुषके प्रज्ञाकूं नाश करैं हैं याकेविषे क्या कहणा है । तहां प्रतिकूल वायुकूं जलविषेही नौकाके हरणकरणेका सामर्थ्य है पृथिवीविषे स्थित नौकाके हरण करणेका सामर्थ्य है नहीं । इस अर्थके सूचन करणेवास्तै दृष्टांतविषे (अंभसि) यह पद कथन करा है । इस प्रकार दार्ष्टांतिकविषे जलके समान जो मनकी चंचलता है ता चंचलताके विद्यमान हुएही ता इंद्रियकूं तिस प्रज्ञाहरण करणेका सामर्थ्य होवै है । और पृथिवीके समान जो मनकी स्थिरता है ता स्थिरताके विद्यमान हुए ता इंद्रियकूं तिस प्रज्ञाके हरण करणेका सामर्थ्य होवै नहीं इति । इहां अन्य टीकावोंविषे (यत् तत्) या दोनों शब्दोंतैं मनका ग्रहण करिकै यह अर्थ करा है । विषयोंविषे प्रवृत्त इंद्रियोंकूं लक्ष्य करिकै जो मन तिन इंद्रियोंके अनुसारी वर्तै है सो मन इस पुरुषके प्रज्ञाकूं हरण करै है ॥ ६७ ॥

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ॥
इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६८॥

(पदच्छेदः)तस्मात् । यस्य । महाबाहो । निगृहीतानि । सर्वशः । इंद्रियाणि । इंद्रियार्थेभ्यः । तस्य । प्रज्ञा । प्रतिष्ठिता ॥६८॥

(पदार्थः) तिस कारणतें हे महान् बाहुवाला अर्जुन ! जिस पुरुषके वे सर्व इंद्रिय अपणे शब्दादिक विषयोंतें निवृत्त हुए हैं तिस पुरुषकीही सो प्रज्ञा स्थिर होवै है ॥ ६८ ॥

भा० टी०—हे महान् बाहुवाले अर्जुन ! जिस कारणतें बहिर्मुख हुए यह इंद्रिय इस पुरुषकी प्रज्ञाकूं नाश करैहैं तिस कारणतें जिस पुरुषके यह मनसहित श्रोत्रादिक सर्व इंद्रिय अपणे अपणे शब्दादिक विषयोंतें निग्रहकूं प्राप्त हुए हैं । तिस तत्त्ववेत्तारूप सिद्ध पुरुषकीही अथवा मुमुक्षुरूप साधक पुरुषकीही सो आत्माविषय प्रज्ञा स्थिर होवै है । इंद्रियोंके निग्रहतैंरहित पुरुषकी सा प्रज्ञा स्थिर होवै नहीं । इहां (हेमहाबाहो)या संबोधनकरिकै श्रीभगवाननैं यह अर्थ सूचन करा तूं अर्जुन सर्व बाह्य शत्रुवोंके निवारण करणेविषे समर्थ है यातैं अंतर इंद्रियरूप शत्रुवोंके निवृत्त करणेविषेभी तूं समर्थ है इति । तहां मनसहित इंद्रियोंका संयमतत्त्ववेत्ता स्थितप्रज्ञ पुरुषका तौ लक्षणरूप है और मुमुक्षु जनके प्रति सो मन सहित इंद्रियोंका संयम वा प्रज्ञाकी प्राप्तिका साधनरूप है या कारणतैंही (तस्य) या शब्दकरिकै तत्त्ववेत्ताका तथा मुमुक्षुका दोनोंका ग्रहण करा है यातैं मुमुक्षु जननैं अपणे प्रज्ञाकी स्थिरता करणेवासतै अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक तिन इंद्रियों-का संयम करणा ॥६८॥

अब तौ स्थितप्रज्ञके सर्व इंद्रियोंका संयम स्वतःही सिद्ध है इस अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ॥
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः६९

(पदच्छेदः) या। निशा। सर्वभूतानाम्। तस्याम्। जागर्ति। संयमी। यस्याम्। जाग्रति। भूतानि। सा। निशा। पश्यतः। मुनेः। ॥ ६९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! जा साक्षात्काररूप प्रज्ञा सर्व अज्ञानी जनोंकी रात्रि है ता प्रज्ञारूप रात्रिविषे इंद्रियोंके संयमवाला पुरुष जागता है और जिस अविद्यारूप निद्राविषे यह सर्व अज्ञानी पुरुष जागते हैं सो अविद्या साक्षात्कारवान् स्थितप्रज्ञकी रात्रि है ॥ ६९ ॥

भा० टी०—वेदांतवाक्योंकरिकै जन्य जो मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारकी साक्षात्काररूप प्रज्ञा है सा प्रज्ञा अज्ञानी पुरुषोंके प्रति अप्रकाशरूप है यातैं सा आत्मसाक्षात्काररूप प्रज्ञा विन अज्ञानी पुरुषोंके प्रति लोकप्रसिद्ध रात्रिकी न्याईं रात्रिरूप है ता ब्रह्मविद्यारूप सर्व अज्ञानी जनोंकी रात्रिविषे मनसहित इंद्रियोंके संयमवाला स्थितप्रज्ञ पुरुष अज्ञानरूप निद्रातैं जाग्रत हुआ सावधान वर्त्ते है। और जिस द्वैतदर्शनरूप अविद्यारूप निद्राविषे सोये हुए यह अज्ञानी पुरुष स्वप्नकी न्याईं नानाप्रकारके व्यवहारोंकूं करैं हैं सो अविद्या आत्मसाक्षात्कारवान् स्थितप्रज्ञकी लोकप्रसिद्ध रात्रिकी न्याईं रात्रिरूप है। तात्पर्य यह—जबपर्यंत यह पुरुष निद्रातैं जाग्रत् नहीं होता तबपर्यंतही नानाप्रकारके स्वप्नका दर्शन होवै है ता निद्रातैं जाग्रत् हुएतैं अनंतर स्वप्नोंका दर्शन होवै नहीं काहेतैं बाधापर्यंतही भ्रमकी विद्यमानता होवै है। बाधके उत्तर कालविषे सो भ्रम रहै नहीं जैसे यह सर्प नहीं है किंतु रज्जु है या प्रकारके बाधपर्यंतही ता सर्पभ्रमकी स्थिति होवै है ता बाधके हुए सो सर्पभ्रम रहै नहीं तैसे या अधिकारी पुरुषकूं जबपर्यंत तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति नहीं भई तबपर्यंतही यह संसारभ्रम रहै है। और तत्त्वज्ञानके प्राप्त हुए सो संसारभ्रम निवृत्त होइ जावै है यातै ता ज्ञानकालविषे ता विद्वान् पुरुषका ता भ्रमजन्य कोईभी व्यवहार होवै

नहीं इति । यह वार्त्ता वार्त्तिकग्रंथके कर्त्ता सुरेश्वराचार्यनैंभी कथन करी है । तहां श्लोकत्रयम्–" कारकव्यवहारे हि शुद्धं वस्तु न वीक्ष्यते । शुद्धे वस्तुनि सिद्धे च कारकव्यावृतिस्तथा ॥ १ ॥ काकोलूकनिशेवायं संसारोऽज्ञात्मवेदिनोः । या निशा सर्वभूतानामित्यवोच त्स्वयं हरिः ॥ २ ॥ बुद्धतत्त्वस्य लोकोयं जडोन्मत्तपिशाचवत् । बुद्धतत्त्वोपि लोकस्य जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥" अर्थ यह–कर्त्ता करण इत्यादिक कारकोंके व्यवहार हुए शुद्ध आत्मवस्तु देखी जावै नहीं । और ता शुद्ध आत्मवस्तुके सिद्ध हुए तिन सर्व कारकोंकी निवृत्ति होइ जावै इति ॥ १ ॥ किंवा जैसे काक पक्षीकी जो यह लोकप्रसिद्ध रात्रि है सा रात्रि उलूकपक्षीकी है नहीं किंतु उलूकपक्षी ता लोकप्रसिद्ध रात्रिविषे नानाप्रकारके खानपानादिक व्यवहार करै है । और ता उलूकपक्षीकी जो यह लोकप्रसिद्ध दिन रूप रात्रि है सो दिन ता काकपक्षीकी रात्रि नहीं है किंतु ता दिन विषे सो काक, नानाप्रकारके खानपानादिक व्यवहार करै है तैसेही अज्ञानी पुरुषकूं तथा आत्मवेत्ता पुरुषकूं यह संसार है । यह वार्त्ता (या निशा सर्वभूतानां) या वचनकरिकै श्रीकृष्णभगवान् आपही कहता भया है इति ॥ २ ॥ किंवा जिस पुरुषनैं अपणे वास्तवस्वरूपकूं जान्या है तिस विद्वान् पुरुषकूं यह सर्व लोक जड उन्मत्त पिशाचकी न्याईं प्रतीत होवै है और तिन सर्व लोकोंकूंभी सो विद्वान् पुरुष जड उन्मत्त पिशाचकी न्याईंप्रतीव होवै है इति ॥ ३ ॥ यातैं यह अर्थ सिद्ध भया जिस पुरुषकूं जिस वस्तुका विपरीत दर्शन होवै है तिस पुरुषकूं तिस वस्तुका सम्यक्दर्शन होवै नहीं काहेतैं सो वस्तुका विपरीतदर्शन ता वस्तुके सम्यक्दर्शनके अभावकरिकैही जन्य होवै है । और जिस पुरुषकूं जिस वस्तुका सम्यक्दर्शन होवै है तिस पुरुषकूं तिस वस्तुका विपरीवदर्शन होवै नहीं काहेतैं ता विपरीतदर्शनका कारणरूप जो ता वस्तुका अदर्शन है सो वस्तुका अदर्शन ता वस्तुका सम्यक्दर्शनकरिकै निवृत्त होइ जावै है जैसे जिस पुरुषकूं रज्जुविषे यह सर्प है, या प्रकारका विपरीतदर्शन

हुआ है तिस पुरुषकूं तिस कालविषे यह रज्जु है या प्रकारका सम्यक्दर्शन होवै नहीं । और जिस पुरुषकूं यह रज्जु है या प्रकारका सम्यक्दर्शन हुआ है तिस पुरुषकूं तिस कालविषे यह सर्प है या प्रकारका विपरीतदर्शन होवै नहीं तैसे आत्माके वास्तवस्वरूपकूं जानणेहारे विद्वान् पुरुषकूं प्रपंचविषयक विपरीतदर्शन होवै नहीं । और प्रपंचविषयक विपरीतदर्शनवाळे अज्ञानी पुरुषोंकूं आत्माका सम्यक्दर्शन होवै नहीं। तहांश्रुति-" यत्र वा अन्यदिव स्यात्तत्रान्योऽन्यत्पश्येत इति । यत्रत्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत् इति "। अर्थ यह-जिस अविद्याकालविषे यह अद्वितीय आत्मा द्वैतकी न्याई होवै है तिस अविद्याकालविषे यह पुरुष अपणेकूं अन्य मानिकै अपणेतैं भिन्न अन्य पदार्थोंकूं देखै है इति । और जिस विद्याकालविषे इस विद्वान् पुरुषकूं यह सर्व जगत् अपणा आत्मारूपही होता भया है तिस विद्याकालविषे यह विद्वान् पुरुष किस कारणकरिकै किस पदार्थकूं अपणेतैं भिन्न देखै किंतु सो विद्वान् पुरुष अपणेतै भिन्न किसी पदार्थकूंभी देखता नहीं इति ।' यह दोनों श्रुतियां यथाक्रमतैं अविद्याकी व्यवस्थाकूं तथा विद्याकी व्यवस्थाकूं कथन करे हैं यातैं तत्त्वदर्शी विद्वान पुरुषविषे अविद्याकृत क्रियाकारकादिक व्यवहार कदाचित्भी संभवे नहीं यातैं ता स्थितप्रज्ञ विद्वान् पुरुषका सो इंद्रियोंका संयम स्वभावतैंही सिद्ध है मुमुक्षुकी न्याई कोई प्रयत्नसाध्य नहीं है ॥ ६९ ॥

तहां ता स्थितप्रज्ञ विद्वान् पुरुषका इंद्रियोंका संयम जैसे स्वभावतैंही सिद्ध है तैसे ता स्थितप्रज्ञ विद्वान् पुरुषके सर्व विषयोंकी शांतिभी स्वभावतैंही सिद्ध है । या अर्थकूं श्रीभगवान् दृष्टांतकरिकै निरूपण करै हैं—

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशंति यद्वत् ॥ तद्वत्कामा यं प्रविशंति सर्वे स शांतिमाप्नोति न कामकामी॥ ७० ॥

(पदच्छेदः) आपूर्यमाणम् । अचलप्रतिष्ठम् । समुद्रम् । आपः। प्रविशंति । यद्वत् । तद्वत् । कामाः । यम् । प्रविशंति । सर्वे । सः । शांतिम् । आप्नोति । न । कामकामी ॥ ७० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस प्रकार सर्व नदियोंकरिकै पूर्ण करे हुए तथा अचल प्रतिष्ठावाले समुद्रकूं वर्षाके जल प्रवेश करे हैं तिस प्रकार जिस स्थितप्रज्ञ पुरुषकूं सर्व शब्दादिक विषय प्रवेश करैं हैं सो स्थितप्रज्ञ पुरुषही सर्व विक्षेपकी निवृत्तिरूप शांतिकूं प्राप्त होवै है विषयोंकी कामनावाला पुरुष ता शांतिकूं नहीं प्राप्त होवै है ॥ ७० ॥

भा० टी०—श्रीगंगा, यमुना, गोदावरी, सिंधु, सरस्वती इत्यादिक सर्व नदियोंके जलोंकरिकै सर्व ओरतैं पूर्ण हुआ जो समुद्र है ता समुद्रकूंही वृष्टि आदिकोंतैं उत्पन्न हुए सर्व जल प्रवेश करै हैं । तिन सर्व जलोंके प्रवेश हुएभी सो समुद्र अचलप्रतिष्ठही रहै है । नहीं परित्याग करी है अपणी मर्यादा जिसनैं ताका नाम अचलप्रतिष्ठ है अथवा मैनाकादिक पर्वतोंका नाम अचलहै तिन मैनाकादिक पर्वतोंकी है स्थिति जिसविषे ताका नाम अचलप्रतिष्ठ है । इतने कहणेकरिकै ता समुद्रके गंभीरताकी अधिकता वर्णन करी । ऐसे महान् गंभीर समुद्रविषेही ते सर्व जल प्रवेश करै है परन्तु तिन जलोंके प्रवेश करणेतैं सो समुद्र किंचिद्मात्रभी क्षोभकूं प्राप्त होवै नहीं । यह वार्त्ता सर्व लोकोंकूं अनुभवसिद्ध है तैसे निर्विकाररूपकरिकै स्थित जिस स्थितप्रज्ञ पुरुषकूं वह अज्ञानी पुरुषोंकी कामनाके विषय शब्दादिक विषय प्रारब्धकर्मके वशतैं प्राप्त होवैं हैं परंतु ते शब्दादिक विषय जिस विद्वान् पुरुषकूं विकारकी प्राप्ति करि सकते नहीं । ऐसा महान् समुद्रके समान सो स्थितप्रज्ञ विद्वान् पुरुषही लौकिक वैदिक सर्व कर्मोंकी निवृत्तिरूप तथा कार्यसहित अविद्याकी निवृत्तिरूप शांतिकूं प्राप्त होवै है और जो पुरुष तिन शब्दादिक विषयोंके प्राप्तिकी इच्छावाला है सो पुरुष ता शांतिकूं प्राप्त होवै नहीं किंतु सो विषयासक्त पुरुष सर्व कालविषे वा लौकिक वैदिककर्मरूप विक्षेपकरिकै महान् क्लेश-

रूप समुद्रविषे मग्न होवै है। इतनेकरिकै यह अर्थ कह्या गया—जिस पुरुषकूं गुरुशास्त्रके उपदेशतै आत्मसाक्षात्कारकी प्राप्ति भई है तिस ज्ञानवान पुरुषकूंही फलरूप विद्वत्संन्यास प्राप्त होवै है तथा तिस ज्ञानवान् पुरुषकूंही सर्व विक्षेपकी निवृत्तिरूप जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति होवै है । तथा विषयभोगोंके प्राप्त हुएभी निर्विकारताही होवै है ॥ ७० ॥

जिस कारणतै विषयोंकी कामनावाला पुरुष ता शांतिकूं प्राप्त होवै नहीं तिस कारणतै प्राप्त हुएभी तिन विषयोंकूं यह विवेकी पुरुष परित्याग ही करै या अर्थकूं श्रीभगवान् कहै हैं—

विहाय कामान्यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः ॥
निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधिगच्छति॥७१ ॥

(पदच्छेदः) विहाय । कामान् । यः । सर्वान् । पुमान् । चरति । निःस्पृहः । निर्ममः । निरहंकारः । सः । शांतिम् । अधिगच्छति ॥ ७१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! जो पुरुष सर्व कामोंकूं परित्याग करिकै निःस्पृह हुआ तथा निर्मम हुआ तथा निरहंकार हुआ विचरै है सो स्थितप्रज्ञ तौ शांतिकूं प्राप्त होवैहै ॥ ७१ ॥

भा० टी०— गृह, क्षेत्र, धन आदिक जितनेक बहिरले काम हैं तथा मनोराज्यरूप जितनेक अन्तरले काम हैं तथा वासनामात्ररूप जितनेक काम हैं ऐसे तीन प्रकारके कामोंकूं जो पुरुष मार्गविषे चलते हुए तृणोंके स्पर्शकी न्याईं तुच्छ जानिकै उपेक्षा करि देवै है तथा जो पुरुष अपणे शरीरके जीवनमात्रकी इच्छातैंभी रहित है तथा जो पुरुष शरीर इंद्रियादिक संघातविषे यहही मैं हूं या प्रकारके अभिमानरूप अहंकारतैं रहित है अथवा विद्या, उत्तम आश्रम आदिकोंकी प्राप्ति करिकै जन्य जो अपणेविषे उत्कृष्टता बुद्धिरूप अहंकार है ता अहंकारतैं रहित है निरहंकार होणेतैं जो पुरुष निर्मम है क्या शरीरके निर्वाहवासतै आरब्धकर्मनैं प्राप्त करे जो

कंथा कौपीनादिक है तिनोंविषेभी यह हमारे है या प्रकारके अभिमानतें जो पुरुष रहित है इस प्रकार सर्व पदार्थोंकी उपेक्षाकरिकै तथा निःस्पृह होइकै तथा निरहंकार होइकै तथा निर्मम होइकै जो पुरुष प्रारब्धकर्मके वशतै शास्त्रविहित भोगोंकूं भोगै है अथवा अपणी इच्छापूर्वक जहां तहां विचरै है सो इस प्रकारका स्थितप्रज्ञ पुरुष सर्व संसारदुःखोंकी उपरामतारूप कार्यसहित अविद्याकी निवृत्तिरूप शांतिकूं आत्मज्ञानके बलतैं प्राप्त होवै है। या प्रकारका व्रजन ता स्थितप्रज्ञ पुरुषका होवै है । इतने कहणेकरिकै (किं व्रजेत) या चतुर्थ प्रश्नका उत्तर सिद्ध भया ॥ ७१ ॥

तहां पूर्वग्रंथविषे चारि प्रश्नोंके चारि उत्तरोंके व्याजकरिकै स्थितप्रज्ञ पुरुषके सर्व लक्षणोंकूं मुमुक्षु जननैं अवश्य सम्पादन करणा यह अर्थ निरूपण करा । अब निष्कामकर्मयोगका फलरूप जो सांख्य निष्ठा है ता सांख्यनिष्ठाकी फलके निरूपणकरिकै स्तुति करता हुआ श्रीभगवान् ताका उपसंहार करै है–

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ॥
स्थित्वास्यामंतकालेपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥७२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां श्रीभीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) एषा । ब्राह्मी । स्थितिः । पार्थ । न । एनाम् । प्राप्य । विमुह्यति । स्थित्वा । अस्याम् । अन्तकाले । अपि । ब्रह्मनिर्वाणम् । ऋच्छति ॥ ७२ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! यह जो ब्रह्मविषयक स्थिति है इसकूं प्राप्त होइकै कोईभी पुरुष नहीं मोहकूं प्राप्त होवै है इस स्थितिविषे अंत्यवस्थाविषे स्थित होइकै भी यह पुरुष ब्रह्म निर्वाणकूं प्राप्त होवै है ॥ ७२ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! पूर्व हमनें तुम्हारे प्रति स्थितप्रज्ञ पुरुषके लक्षणोंके व्याजकरिकै कथन करी हुई तथा (एषा तेभिहिता सांख्ये बुद्धिः) इस वचनकरिकै कथन करी हुई जो सर्व कर्मोंके संन्यासपूर्वक परमात्माकी ज्ञानरूप स्थिति है। कैसी है सा स्थिति । प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मकूं विषय करणेहारी है यातैं ता स्थितिकूं ब्राह्मी कहैं हैं । ऐसी ब्रह्म-निष्ठारूप स्थितिकूं जो कोई पुरुष प्राप्त होवै है सो पुरुष पुनः कदाचित् भी अज्ञानरूप मोहकूं प्राप्त होवै नहीं काहेतैं सो अज्ञान अनादि है क्या उत्पत्तितैं रहित है यातैं आत्मज्ञानकरिकै एकवार नाशकूं प्राप्त हुआ सो अज्ञान पुनः कदाचित्‌भी उत्पन्न होवै नहीं । ऐसी ब्रह्मनिष्ठारूप स्थिति-विषे जो कोई पुरुष अंत्य अवस्थाविषेभी स्थित होवै है सो पुरुषभी ब्रह्म-निर्वाणकूं प्राप्त होवै है क्या ब्रह्मविषेही आनंदकूं प्राप्त होवै है । अथवा ब्रह्मरूप आनंदकूं मैं ब्रह्मरूप हूँ या प्रकार अभेदरूपकरिकै प्राप्त होवै है। इहां (निर्वाणं) यह पद आनंदका बोधक है । और किसी टीकाविषे तौ (ब्रह्मनिर्वाणं) यह दोनों पद भिन्न मानिकरिकै यह अर्थ करा है ता ब्राह्मीस्थितिविषे स्थित होइकै सो विद्वान् पुरुष ब्रह्मकूं प्राप्त होवै है । शंका–जैसे स्वर्गादिक लोक गमनरूप क्रियाकरिकै प्राप्त होवैं हैं तैसे सो ब्रह्मभी गमनरूप क्रियाकरिकै प्राप्त होता होवैगा । ऐसी शंकाके हुए ता शंकाके निवृत्त करणेवासतै ता ब्रह्मका विशेषण कहैं हैं (निर्वाणम् इति) " निर्गतं वानं गमनं यस्मिन्प्राप्ये ब्रह्मणि तन्निर्वाणम् " अर्थ यह–निवृत्त होइ गई है गमनरूप क्रिया जिस ब्रह्मविषे ताका नाम निर्वाण है । तहां श्रुति " न तस्य प्राणा उत्क्रामंत्यत्रैव सम-वलीयंते ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति " अर्थ यह–मरणकालविषे जैसे अज्ञानी पुरुषोंके प्राण इस शरीरतैं उत्क्रमण करैं हैं तैसे तिस ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी पुरुषके प्राण इस शरीरतैं बाहिर उत्क्रमण करते नहीं किंतु ते प्राण इस शरीरके भीतरही लयभावकूं प्राप्त होवैं हैं। और यह विद्वान् पुरुष ब्रह्मरूप हुआही ब्रह्मकूं प्राप्त होवै है इति । इहां (अंतकालेपि) या वचनविषे

स्थित जो (अपि) यह शब्द है । ता अपि शब्दकरिकै श्रीभगवान्नैं यह कैमुतिक न्याय सूचन करा । यह अधिकारी पुरुष जबी अंत्यअवस्थाविषेभी ता ब्रह्मनिष्ठाविषे स्थित होइकै ता आनंदस्वरूप ब्रह्मकूंही प्राप्त होवै है तबी जो पुरुष ब्रह्मचर्यआश्रमतैंही संन्यासकूं करिकै मरणपर्यंत ता ब्राह्मीस्थितिविषे स्थित हुआ है सो पुरुष ता ब्रह्मकूं प्राप्त होवै है याके विषे क्या कहणा है । तहां श्लोक । " विज्ञाय चरमावस्थां देवताभ्यो नृपोत्तमः । खट्वांगो नाम राजर्षिर्मुहूर्ते मुक्तिमेयिवान् इति" । अर्थ यह—सर्व राजावोंविषे श्रेष्ठ खट्वांग नामा राजऋषि अपणी अंत्य अवस्थाकूं देखिकै देवतावोंके उपदेशतैं एक मुहूर्तमात्रविषे कैवल्यमुक्तिकूं प्राप्त होता भया इति । अब इस द्वितीय अध्यायविषे विस्तारतैं निरूपण करा जो अर्थ है ता सर्व अर्थका संक्षेपतैं निरूपण करणेहारा श्लोक कथन करैं हैं । " ज्ञानं तत्साधनं कर्म सत्त्वशुद्धिश्च तत्फलम् । तत्फलं ज्ञाननिष्ठैवेत्यध्यायेऽस्मिन्प्रकीर्तितम्" । अर्थ यह—इस भगवद्गीताके द्वितीय अध्यायविषे, आत्मज्ञानका कथन करा है तथा ता ज्ञानका परंपरा साधनरूप निष्काम कर्म कथन करा है । और ता निष्काम कर्मका अंतःकरणकी शुद्धिरूप फल कथन करा है । और ता अंतःकरणके शुद्धिका ज्ञाननिष्ठारूप फल कथन करा है इतने पदार्थ इस द्वितीय अध्यायविषे कथन करे हैं ॥ ७२ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वामिचिद्घनानंदगिरिपूज्यपादशिष्येणस्वामिचिद्घनानंदनगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां श्रीमगवद्गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां सर्वगीतार्थसूत्रनाम द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ २ ॥

अथ तृतीयाध्यायप्रारंभः।

तहां इस भगवद्गीताके प्रथम अध्यायकरिकै उपोद्घात करा जो संपूर्ण गीताशास्त्रका अर्थ है सो संपूर्ण गीताशास्त्रका अर्थ सूत्ररूप द्वितीय अध्यायकरिकै सूचन करा है सो प्रकार दिखावैं हैं । या अधिकारी पुरुषकूं प्रथम निष्काम कर्मनिष्ठा होवै है । तिसतैं अनन्तर अंतःकरणकी शुद्धि होवै है । तिसतैं अनंतर शमदमादिक साधनपूर्वक सर्व कर्मोंका संन्यास होवै है तिसतैं अनंतर वेदांतवाक्योंके विचार सहित भगवद्भक्ति-निष्ठा होवै है । तिसतैं अनंतर तत्त्वज्ञान निष्ठा होवै है । तिसतैं अनन्तर तिस तत्त्वज्ञाननिष्ठाका त्रिगुणात्मक अविद्याकी निवृत्तिपूर्वक जीवन्मुक्ति-रूप फल होवै है । सो जीवन्मुक्तिरूप फल प्रारब्धकर्मके फलभोगपर्यंत रहै है । ता प्रारब्धकर्मके समाप्त हुएतैं अनन्तर विदेहमुक्ति होवै है तहां जीवन्मुक्तिदशाविषे परम पुरुषार्थके आलंबन करिकै इस पुरुषकूं पर वैराग्यकी प्राप्ति होवै है । ता पर वैराग्यकी प्राप्तिविषे दैवीसंपदनामा शुभ वासना उपयोगी होवै है यातैं सा शुभवासना तौ ग्रहण करणे योग्य है । और आसुरीसंपदनामा अशुभ वासना ता परवैराग्यकी प्राप्तिविषे विरोधी है । यातैं सा अशुभ वासना परित्यागकरणे योग्य है तहां दैवी संपदाका असाधारण कारण सात्त्विकी श्रद्धा है । और आसुरीक संपदाका असाधारण कारण राजसी तथा तामसी श्रद्धा है इस प्रकार ग्रहण करणेके योग्य तथा परित्याग करणेके योग्य पदार्थोंका विभाग करिकै सर्व गीताशास्त्रके अर्थकी परिसमाप्ति होवै है सो सर्व अर्थ इस गीताके सूत्ररूप द्वितीय अध्यायविषे सूचन करा है । तहां इस गीताके द्वितीय अध्यायविषे (योगस्थः कुरु कर्माणि) इत्यादिक वचनोंकरिकै सूचन करी जो अंतःकरणके शुद्धिका साधनरूप निष्काम कर्मनिष्ठा है सा निष्काम कर्मनिष्ठा सामान्यरूप करिकै तथा विशेषरूपकरिकै इस गीताके तृतीय और चतुर्थ या दोनों अध्यायोंविषे निरूपण करी है । तिसतैं अनंतर (विहाय कामान्यः सर्वान्)

इत्यादिक वचनोंकरिकै सूचन करी जो शुद्ध अंतःकरणवाले अधिकारी पुरुषकूं शमदमादिक साधनसंपत्तिपूर्वक सर्व कर्मोंके संन्यासकी निष्ठा है सा सर्वकर्मसंन्यासनिष्ठा इस गीताके पंचम और षष्ठ या दोनों अध्यायोंविषे निरूपण करी है इतने करिकै त्वंपदार्थका निरूपण सिद्ध भया। तिसतै अनंतर (युक्त आसीत मत्परः) इत्यादिक वचनोंकरिकै सूचन करी जो वेदांतवाक्योंके विचार सहित अनेक प्रकारकी भगवद्भक्तिनिष्ठा है सा भगवद्भक्तिनिष्ठा इस गीताके सप्तम, अष्टम, नवम, दशम, एकादश और द्वादश या पट् अध्यायोंविषे निरूपण करी है। इतने करिकै तत्पदार्थका निरूपण सिद्ध भया तहां पूर्व पूर्व अध्यायका उत्तरोत्तर अध्यायके साथि संबंधरूप जो अवांतर संगति है तथा अवांतर प्रयोजनोंका भेद है ते दोनों तिस तिस अध्यायके व्याख्यानविषे हम निरूपण करेंगे। तिसतैं अनन्तर (वेदाविनाशिनं नित्यम्) इत्यादिक वचनोंकरिकै सूचन करी जो तत्त्वंपदार्थका अभेद ज्ञानरूप तत्त्वज्ञाननिष्ठा है सा तत्त्वज्ञाननिष्ठा इस गीताके त्रयोदश अध्यायविषे प्रकृतिपुरुषके विवेकद्वारा निरूपणकरीहै। तिसतै अनंतर(त्रैगुण्यविषयेवदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन) इत्यादिक वचनोंकरिकै सूचन करी जो त्रैगुण्यनिवृत्तिरूप ता ज्ञाननिष्ठाका फल है सो फल इस गीताके चतुर्दश अध्यायविषे निरूपण करा है सो त्रैगुण्यकी निवृत्तिही जीवन्मुक्ति है यह वार्ता गुणातीत पुरुषके लक्षणोंके कथनकरिकै निरूपण करी है तिसतैं अनंतर (तदा गंतासि निर्वेदम्) इत्यादिक वचनोंकरिकै सूचन करी जो परवैराग्यनिष्ठा है सा परवैराग्यनिष्ठा इस गीताके पंचदश अध्यायविषे संसाररूप वृक्षके उच्छेदनद्वारा निरूपणकरी है। तिसतै अनन्तर (दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः) इत्यादिक वचनोंविषे स्थितप्रज्ञ पुरुषके लक्षणकरिकै सूचन करी जो तिस परवैराग्यकी उपयोगी दैवी संपदा है सा दैवीसंपदा तौ ग्रहण करणे योग्य है। और (यामिमां पुष्पितां वाचम्) इत्यादिक वचनोंकरिकै सूचनकरिकै जो ता परवैराग्यकी विरोधी आसुरी संपदा है सा आसुरी संपदा परित्याग करणे योग्य है

यह सर्व वार्त्ता इस गीताके षोडश अध्यायविषे कथन करी है । तिसतैं अनंतर (निर्द्वंद्वो नित्यसत्त्वस्थः) इत्यादिक वचनोंकरिकै सूचन करी जो ता दैवी संपदाका असाधारणकारणरूप सात्विकी श्रद्धा है सा सात्विकी श्रद्धा इस गीताके सप्तदश अध्यायविषे राजसी तामसी श्रद्धाकी निवृत्तिपूर्वक कथन करी है इस प्रकार त्रयोदश अध्यायतैं आदिलैके सप्तदश अध्यायपर्यंत पंच अध्यायोंविषे फलसहित ज्ञाननिष्ठा निरूपण करी है तिसतैं अनंतर इस गीताके अष्टादश अध्यायविषे पूर्व कथन करे हुए सर्व अर्थका उपसंहार करा है इस प्रकारसैं सर्व गीताके अर्थका परस्पर संबंध सिद्ध होवै है इति । तहां पूर्व द्वितीय अध्यायविषे सांख्यबुद्धिकूं आश्रयण करिकै श्रीभगवाननैं (एषा तेऽभिहिता सांख्ये) इत्यादिक वचनोंकरिकै ज्ञाननिष्ठा कथन करी थी तथा योगबुद्धिकूं आश्रयण करिकै श्रीभगवान्नैं (योगे त्विमां शृणु) इसतैं आदि लैकै (कर्मण्येवाधिकारस्ते मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि) इस वचनपर्यंत सर्व वचनोंकरिकै कर्मनिष्ठा कथन करी थी परंतु ज्ञाननिष्ठा तथा कर्मनिष्ठा या दोनों निष्ठावोंके अधिकारीका भेद श्रीभगवान्नैं स्पष्ट करिकै कथन करा नहीं । शंका–तिन दोनों निष्ठावोंका एकही अधिकारी है काहेतें ज्ञान और कर्म या दोनोंका समुच्चयही मोक्षके प्राप्तिका हेतु है । समाधान–ज्ञान और कर्म या दोनोंका समुच्चय अंगीकार करिकै तिन दोनोंकी एक अधिकारिता श्रीभगवान्कूं वांछित है नहीं । काहेतें (दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं ज्ञाननिष्ठाकी अपेक्षा करिकै कर्मनिष्ठाविषे निकृष्टता कथन करी है और (यावानर्थ उदपाने) या वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं आत्मज्ञानके फलविषे सर्व कर्मोंके फलका अंतर्भाव दिखाया है और स्थितप्रज्ञ पुरुषका लक्षण कहिकरिकै श्रीभगवान्नैं (एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ) या वचन करिकै प्रशंसासहित ज्ञानके फलका उपसंहार करा है। और (या निशा सर्वभूतानाम् इत्यादिक

वचनोंकरिकै श्रीभगवान्नें ज्ञानवान् पुरुषकूं द्वैतदर्शनके अभावतैं कर्मोंके अनुष्ठानका असंभव कथन करा है और जैसे लोकविषे अंधकारकी निवृत्तिविषे केवल प्रकाशमात्रकूंही कारणता होवै है तैसे अविद्याके निवृत्तिरूप मोक्षफलविषेभी केवल ज्ञानमात्रकूंही कारणता है और श्रुतिभी ज्ञानमात्रतैंही मोक्षकी प्राप्तिका कथन करै है। तहां श्रुति। "तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय" । अर्थ यह यह अधिकारी पुरुष आनंदस्वरूप आत्माकूं साक्षात्कारकरिकै संसाररूप मृत्युकूं नाश करै है और मोक्षकी प्राप्तिवास्तैं आत्मसाक्षात्कारतैं विना दूसरा कोई मार्ग है नहीं इति। यातैं ज्ञान और कर्म या दोनोंका समुच्चय संभवै नहीं तथा एक अधिकारिकताभी संभवै नहीं। शंका जैसे प्रकाश तथा अंधकार यह दोनों परस्पर विरोधी है यातैं तिन दोनोंका समुच्चय संभवै नहीं। तैसे आत्मज्ञान तथा कर्म यह दोनोंभी परस्पर विरोधी हैं यातैं तिन दोनोंकाभी समुच्चय संभवै नहीं यातैं ज्ञान तथा कर्म इन दोनोंका भिन्न भिन्नही अधिकारी होवैं हैं। समाधान–ज्ञान तथा कर्म इन दोनोंका भिन्न भिन्नही अधिकारी होवै है यह वार्त्ता यद्यपि सत्य है तथापि एकही अर्जुनके प्रति ज्ञान और कर्म इन दोनोंका उपदेश करणा संभवता नहीं काहेतैं जो देहाभिमानी पुरुष कर्मका अधिकारी होवै है तिस पुरुषके प्रति ज्ञाननिष्ठाका उपदेश करणा योग्य नहीं होवै है। और जो देहाभिमानतैं रहित पुरुष ज्ञानका अधिकारी होवै है तिस पुरुषके प्रति कर्मनिष्ठाका उपदेश करणा योग्य नहीं होवै है। शंका एकही पुरुषके प्रति विकल्पकरिकै ज्ञान तथा कर्म या दोनोंका उपदेश संभव होइ सकै है। समाधान–समान स्वभाववाले पदार्थोंकाही विकल्पकरिकै विधान होवै है जैसे होमविषे समान स्वभाववाले व्रीहियवादिक पदार्थोंका विकल्पकरिकै विधान होवै है परन्तु उत्कृष्ट निकृष्ट पदार्थोंका विकल्पकरिकै विधान होवै नहीं। और आत्मज्ञानकी अपेक्षाकरिकै कर्मों

विषे निकृष्टता तथा कर्मोकी अपेक्षाकरिकै आत्मज्ञानविषे उत्कृष्टता (दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय) इत्यादिक वचनोंकरिकै स्पष्टही है यातैं ज्ञान तथा कर्म या दोनोंका विकल्प संभवै नहीं । किंवा कार्यसहित अविद्याकी निवृत्तिकरिकै उपलक्षित जो ब्रह्मानंदरूप मोक्ष है ता मोक्षविषे कर्मोके स्वर्गादिक फलकी न्याई न्यून अधिकता संभवै नहीं या कारणतैभी ज्ञान और कर्म या दोनोका समुच्चय संभवै नहीं यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । ज्ञाननिष्ठा तथा कर्मनिष्ठा या दोनों निष्ठावोंका जो कदाचित् भिन्न भिन्न अधिकारी मानिये तो एक पुरुषके प्रति तिन दोनो निष्ठावोंका उपदेश संभवै नहीं । और तिन दोनों निष्ठावोंका जो कदाचित एकही अधिकारी मानिये तौ परस्पर विरुद्ध तिन दोनो निष्ठावोंका समुच्चय नहीं संभवैगा । तथा कर्मकी अपेक्षाकरिकै ता आत्मज्ञानविषे श्रेष्ठताभी नहीं सिद्ध होवैगी । और ज्ञान तथा कर्म या दोनोंका जो कदाचित् विकल्प अंगीकार करियें तौ सर्वतें उत्कृष्ट तथा परिश्रमतें विनाही सिद्ध होणेहारा जो आत्मज्ञान है ता आत्मज्ञानका परित्याग करिकैं बहुत परिश्रमकरिकै सिद्ध होणेहारा तथा अत्यंत निकृष्ट ऐसे कर्मका अनुष्ठान कोईभी पुरुष करैगा नहीं इस प्रकारका विचारकरिकै अत्यंत व्याकुल हुई है बुद्धि जिसकी ऐसा सो अर्जुन श्रीभगवान्‌के प्रति या प्रकारका वचन कहता भया-

अर्जुन उवाच ।

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ॥
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव॥ १ ॥

(पदच्छेदः) ज्यायसी। चेत् । कर्मणः । ते । मता । बुद्धिः । जनार्दन । तत् । किम् । कर्मणि । घोरे । माम् । नियोजयसि । केशव ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे जनार्दन ! तुम्हारेकूं जबी निष्कामकर्मतैं आत्मविषयक बुद्धि श्रेष्ठरूपकरिकै अभिमत है तबी हे केशव ! हिंसारूप घोर कर्म विषे तूं हमारेकूं किसवासतै प्रेरणा करता है ॥ १ ॥

भा०टी०—हे जनार्दन ! जो कदाचित् तुम्हारेकूं निष्काम कर्मोतैं आत्मतत्त्वविषयक बुद्धि अत्यंत श्रेष्ठरूपताकरिकै अभिमत है तौ हे केशव! हिंसादिक अनेक आयासों करिकै युक्त इस युद्धरूप घोरकर्मविषे मैं अत्यंत भक्तकूं (कर्मण्येवाधिकारस्ते) इत्यादिक वचनोंकरिकै आप वारंवार किसवासतै प्रेरणा करते हो तहां " सर्वजनैरर्द्यते याच्यते स्वाभिलषितसिद्धये इति जनार्दनः " अर्थ यह—अपणे मनवांछित पदार्थोंकी प्राप्ति वासतै सर्व जनोंनें जिसके प्रति याचना करीती है ताका नाम जनार्दन है । अथवा ' जनं जननं तत्कारणमज्ञानं च स्वसाक्षात्कारेणार्दयति हिनस्तीति जनार्दनः ' । अर्थ यह—जन्मकूं तथा जन्मके कारण अज्ञानकूं जो अपने साक्षात्कारकरिकै नाश करै है ताका नाम जनार्दन है। इहां (हे जनार्दन !) या संबोधनकरिकै अर्जुनने यह अर्थ सूचन करा। ऐसे याचना करणेहारे भक्तजनोंके प्रति आप मनवांछित पदार्थोंकी प्राप्ति करणेहारे हो यातैं अपणे श्रेयके निश्चय करणेवासतै जो हमारी आपके प्रति याचना है सो कोई अनुचित नहीं है इति । और (हे केशव) या संबोधनकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन करा । सर्वका ईश्वर तथा सर्व इष्ट पदार्थोंकी प्राप्ति करणेहारे जो आप भगवान् हो तिस एक आपकेही (शिष्यस्तेऽहं शाधि माम्) इत्यादि प्रार्थनापूर्वक शरणकूं प्राप्त भया जो मैं भक्त अर्जुन हूं तिस हमारे साथि वंचना करणी आपकूं उचित नहीं है ॥ १ ॥

हे अर्जुन ! मैं कृष्णभगवान् किसीभी प्राणीके साथि वंचना करता नहीं तौ तैं अत्यंत प्रिय भक्तके साथि मैं किस प्रकार वंचना करौंगा किंतु नहीं करौंगा और तूं हमारेविषे ता वंचना करणेका कौन चिह्न देखता है, ऐसी भगवान्की शंकाके हुए अर्जुन श्रीभगवान्के प्रति कहै है—

व्यामिश्रेणैव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे॥
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) व्यामिश्रेण । इव । वाक्येन । बुद्धिम् । मोहयसि इव । मे । तत् । एकम् । वद । निश्चित्य । येन । श्रेयः । अहम् । आप्नुयाम् ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! मिले हुए वचनकी न्यांई वचनकरिकै आप हमारे बुद्धिकूं मोहकर्त्ताकी न्याईं मोहकी प्राप्ति करते हो तिस एक अधिकारकूं आप निश्चयकरिकै कथन करो जिसकरिकै मैं अर्जुन मोक्षकूं प्राप्त होवौं ॥ २ ॥

भा०टी०—हे भगवन् !(त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन) इत्यादिक वचनोंकरिकै आप पूर्व किसी स्थलविषे तौ वेदनिष्ठाका परित्याग करावते भये हो । और (कर्मण्येवाधिकारस्ते) इत्यादिक वचनोंकरिकै पूर्व किसी स्थलविषे तौ आप तिसी वेदनिष्ठाका ग्रहण करावते भये हो और (निर्द्वंद्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्) इत्यादिक वचनोंकरिकै पूर्व किसी स्थलविषे तौ आप निवृत्तिमार्गका उपदेश करते भयेहो । और (धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते) इत्यादिक वचनोंकरिकै पूर्व किसी स्थलविषे तौ आप प्रवृत्तिमार्गका उपदेश करते भये हो इस प्रकार ज्ञाननिष्ठाकूं तथा कर्मनिष्ठाकूं प्रतिपादन करणेहारे जो आपके वचन हैं ते आपके वचन यद्यपि मिलेहुए अर्थकूं कथन करते नहीं किन्तु भिन्न भिन्न अर्थकूं कथन करते हैं तथापि मैं अर्जुनकूं अपणे बुद्धिके दोषतें ज्ञाननिष्ठा तथा कर्मनिष्ठा या दोनोंका एकही अधिकारी है अथवा भिन्न भिन्न अधिकारी हैं या प्रकारके संशयकरिकै मिले हुए अर्थके वाचक प्रतीत होवैं हैं यह अर्थ अर्जुननैं (व्यामिश्रेणैव) या वचनविषे स्थित इव या शब्द करिकै सूचन करा इति । हे भगवन् ! ऐसे ज्ञान तथा कर्मनिष्ठाके प्रतिपादक व्यामि-

श्रित वाक्योंकरिकै आप मैं मंदबुद्धि अर्जुनके अंतःकरणकूं मानों मोहकी प्राप्ति करते हो। इहां (मोहयसीव) या वचनविषे स्थित जो इव यह शब्द है ता इव शब्दकारिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन करा। आप परम कृपालु हो यातैं आप हमारे मोहके निवृत्त करणेवासतैही प्रवृत्त हुए हो कोई हमारेकूं मोह करणेवासते आप प्रवृत्त हुए नहीं तथापि आपके वचनोंकूं श्रवण करिकै हमारेकूं जो भ्रमरूप मोह भया है सो अपणे अंतः-करणके दोषतैं भया है इति। हे भगवन्! ज्ञान तथा कर्म या दोनोंका जो कदाचित् एकही पुरुष अधिकारी होवै तौ परस्पर विरुद्ध होणेतैं ता ज्ञान तथा कर्म दोनोंका समुच्चय नहीं संभवैगा और ज्ञान तथा कर्म यह दोनों एक अर्थके हेतु हैं नहीं यातें तिन दोनोंका विकल्पभी संभवै नहीं और पूर्व उक्त रीतिसैं जो कदाचित् आप ज्ञान तथा कर्म या दोनोंके अधिकारीका भेद मानते होवै तौ एकही मैं अर्जुनके प्रति परस्पर विरुद्ध ज्ञाननिष्ठा तथाकर्म निष्ठा या दोनोंका उपदेश संभवता नहीं। और जैसे एकही पुरुष एकही कालविषे परस्पर विरुद्ध स्थिति तथा गमन या दोनोंके करणेविषे समर्थ होवै नहीं तैसे एकही मैं अर्जुन एकही कालविषे परस्पर विरुद्ध ज्ञाननिष्ठा तथा कर्मनिष्ठा या दोनोंके अनुष्ठान करणेविषे समर्थ नहीं हूं यातैं ज्ञा-नका अधिकार तथा कर्मका अधिकार या दोनोंविषे एक अधिकारकूं आप निश्चयकरिकै हमारेप्रति कथन करो जिस अधिकारसैं निश्चयपूर्वक आपके वचन कारिकै मैं अर्जुन ज्ञान तथा कर्म या दोनोंके मध्यविषे एक ज्ञानका अथवा कर्मका अनुष्ठान करिकै मोक्षरूप श्रेयकूं प्राप्त होवौं। इहां ज्ञाननिष्ठा और कर्मनिष्ठा या दोनोंनिष्ठावोंका जो एक अधिकारी अंगिकार करियें तौ तिन निष्ठावोंका विकल्प तथा समुच्चय संभवै नहीं यातैं तिन दोनों निष्ठावोंके अधिकारिके भेदजानणेवासतै यह दो श्लोकोंकरिकै अर्जुनका प्रश्न है यह सिद्ध भया ॥ २ ॥

इस प्रकार जबी अर्जुननैं ज्ञाननिष्ठा तथा कर्मनिष्ठा या दोनों निष्ठा-वोंके अधिकारीके भेदका प्रश्न करा तबी सो श्रीभगवान् ता अर्जुनके प्रश्नके अनुसार उत्तरकूं कहता भया—

श्रीभगवानुवाच ।

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयाऽनघ॥
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥ ३॥

(पदच्छेदः) लोके । अस्मिन् । द्विविधा । निष्ठा । पुरा । प्रोक्ता । मया । अनघ । ज्ञानयोगेन । सांख्यानाम् । कर्मयोगेन । योगिनाम् । ३

(पदार्थः) हे पापतैं रहित अर्जुन । इस लोकविषे पूर्व अध्यायविषे हमनै दो प्रकारकी निष्ठा कथन करी थी तहां तत्त्ववेत्ता पुरुषोंकूं ज्ञानरूप योगकरिकै सा निष्ठा कही थी और कर्मयोगवान् पुरुषोंकूं कर्मरूप योगकरिकै सा निष्ठा कथन करी थी ॥ ३ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन । अधिकारीरूपकरिकै अंगीकार करे जो, शुद्ध अंतःकरणवाले तथा, अशुद्ध अंतःकरणवाले दो प्रकारके जन हैं तिन दो प्रकारके जनरूप इसलोकविषे ज्ञानपरतारूप तथा कर्मपरतारूप दो प्रकारकी स्थितिरूप निष्ठा पूर्व अध्यायविषे मैं कृष्णभगवान्नैं तुम्हारे प्रतिस्पष्टरूपकरिकै कथन करी थी यातैं ज्ञाननिष्ठा तथा कर्मनिष्ठा या दोनों निष्ठावोंविषे एक अधिकारिकी शंकाकरिकै तूं ग्लानिकू मत प्राप्त होउ इहां (हे अनघ) क्या हे पापोंतैं रहित या संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं ता अर्जुनविषे ब्रह्मविद्याके उपदेशकी योग्यता सूचन करी काहेतैं (ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः) इत्यादिक शास्त्रोंके वचनोंनैं पापकर्मतैं रहित पुरुषोंविषेही आत्मज्ञानके उत्पत्तिकी योग्यता कथन करी है इति । और सा एकही स्थितिरूप निष्ठा साध्य अवस्था तथा साधन अवस्था या दोनों अवस्थावोंके भेदकरिकै दो प्रकारकी होवै है कोई दोनोंही निष्ठा स्वतंत्र है नही । या अर्थके बोधन करणवास्तै श्रीभगवान्नें (निष्ठा) या पदविषे एकवचन कथन करा है जो कदाचित् स्वतंत्र दोनों निष्ठा भगवान्कूं अभिमत होतीयां तौ निष्ठे या प्रकारके द्विवचनकूं भगवान् कथन करता। इसी अर्थकूं (एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति) या वचन

करिकै श्रीभगवान् आगे कथन करैगा इति। अब तिसीही स्थितरूप निष्ठाकूं दो प्रकारतारूपकरिकै वर्णन करें हैं। (ज्ञानयोगेन सांख्यानां इति) प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मकूं विषय करणेहारी जो बुद्धि है ताका नाम सांख्या है ता सांख्या नामा बुद्धिकूं जो प्राप्त हुए हैं तिन्होंका नाम सांख्य है। क्या जिन पुरुषोंनें ब्रह्मचर्य आश्रमतेंही संन्यासकूं धारण करा है।तथा जिन पुरुषोंनें वेदांतके श्रवणमननादिकोंकरिकै आत्म वस्तुकूं निश्चय करा है तथा जे पुरुष ज्ञान भूमिकाविषे आरूढ हुए हैं ऐसे शुद्धअंतःकरणवाले सांख्यनामा पुरुषोंकूं (तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः)इत्यादिक वचनोंकरिकै पूर्व ज्ञानरूप योगकरिकैही सा निष्ठा कथन करी है । इहां "युज्यते ब्रह्मणा अनेन स योगः" । अर्थ यह–यह अधिकारी पुरुष जिस करिकै ब्रह्मके साथि जुडै है ताका नाम योग है इति । और यह अधिकारी पुरुष ता ज्ञानकरिकै ही ब्रह्मके साथि अभेदभावकूं प्राप्त होवै है यातें सो ज्ञानही योगरूप है इति । और जिन पुरुषोंका अंतःकरण शुद्ध नहीं भया है तथा जे पुरुष ज्ञानभूमिकाविषे आरूढ नहीं भए हैं ऐसे कर्मोंके अधिकारीरूप योगी पुरुषोंकूं अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा ज्ञानभूमिकाविषे आरूढहोणेवास्तै (धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते) इत्यादिक वचनोंकरिकै कर्मरूप योगकरिकैही पूर्व सा निष्ठा कथन करी है इहां 'युज्यते अंतःकरणशुद्ध्या अनेन स योगः' । अर्थ यह–यह अधिकारी पुरुष जिसकरिकै अंतःकरणकी शुद्धिके साथि जुडै है ताका नाम योग है इति । ऐसे अंतःकरणकी शुद्धि करणेहारे निष्काम कर्म हैं यातें ते निष्कामकर्मही योगरूप हैं या कहणेतें यह अर्थ सिद्ध भया । ज्ञान और कर्म या दोनोंका पूर्व उक्त प्रकारतें समुच्चय तथा विकल्प संभवै नहीं किंतु प्रथम निष्काम कर्मोंकरिकै शुद्ध हुआ है अंतःकरण जिन्होंका ऐसे अधिकारी पुरुषोंकूं सर्व कर्मोंके संन्यासकरिकै ही आत्मज्ञानकी प्राप्ति होवै है यातें चित्तकी शुद्धिरूप तथा चित्तकी अशुद्धिरूप दो अवस्थावोंके भेदकरिकै एकहीतें अर्जुनके प्रति हमनें (एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धि-

योगे त्विमां शृणु) इत्यादिक वचनोंकरिकै सा दोप्रकारकी निष्ठा कथन करीहै यातैं भूमिकाके भेदकरिकै एकही पुरुषके प्रति ज्ञान और कर्म या दोनोंका उपयोग संभव होइ सकै है यातैं ज्ञान और कर्म या दोनोंके अधिकारके भेद हुए भी उपदेशकी व्यर्थता होवै नहीं इति । इसी अर्थके जनावणेवासतै श्री भगवान् इस तृतीय अध्यायविषे अशुद्ध चित्तवाले पुरुषकूं ता चित्तकी शुद्धिपर्यंत निष्कामकर्मोंकें अनुष्ठानकी कर्त्तव्यता (न कर्मणामनारंभात्) इसतैं आदिलैके (मोघं पार्थ स जीवति) इस वचनपर्यंत त्रयोदश श्लोकोंकरिकै कथन करैगा । और जिन पुरुषोंका चित्त शुद्ध हुआ है ऐसे ज्ञानवान् पुरुषोंकू तौ वे कर्म किंचित्मात्र भी अपेक्षित नहीं हैं या अर्थकूं (यस्त्वात्मरतिः) इत्यादिक दो श्लोकोंकरिकै कथन करैंगे । और तिसतैं अनंतर (तस्मादसक्तः) इत्यादिक वचनोंकरिकै तौ बंधके हेतुरूप कर्मोंकूंभी फलकी इच्छातैं राहित्यरूप कौशल्यताकरिकै अंतः करणकी शुद्धि तथा ज्ञानकी उत्पत्ति-द्वारा मोक्षकी ही कारणता संभवै है यह अर्थ कथन करैंगे । तिसतैं अनंतर (अथ केन प्रयुक्तोयम्) या अर्जुनके प्रश्नका उत्थापन करिकै कामदोषकरिकैही काम्य कर्मोंकूं अंतःकरणके शुद्धिकी कारणता नहीं है यातैं ता कामतैं रहित होइकै कर्मोंकू करता हुआ तूं अर्जुन अंतःकरणकी शुद्धिकरिकै ज्ञानका अधिकारी होवैगा । यह अर्थ श्रीभगवान् इस तृतीय अध्यायकी समाप्तिपर्यंत कथन करैगा ॥ ३ ॥

तहां जैसे मृत्तिका, दंड, चक्र और कुलाल आदिक कारणोंके अभाव हुए घटरूप कार्यकी उत्पत्तिही होवै नहीं तैसे निष्काम कर्मरूप कारणके अभाव हुए ज्ञानरूप कार्यकी उत्पत्तिही होवै नहीं या अर्थकूं श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति कथन करैं हैं-

न कर्मणामनारंभान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ॥
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) न । कर्मणाम् । अनारंभात् । नैष्कर्म्यम् । पुरुषः । अश्नुते । न । च । संन्यसनात् । एव । सिद्धिम् । समधिगच्छति ॥ ४

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह अधिकारी पुरुष निष्काम कर्मोंके न करणेतैं निष्कर्मभावकूं नहीं प्राप्त होवै है तथा संन्यासतैं भी ज्ञाननिष्ठाकूं नहीं प्राप्त होवै है ॥ ४ ॥

भा० टी०—"तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषंति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन" या श्रुतिनैं आत्मज्ञानकी प्राप्तिवासतैं कथन करे जो अपणे अपणे वर्ण आश्रमके अनुसार वेदाध्ययन, यज्ञ, दान, तप, इत्यादिक कर्म हैं तिन नित्यनैमित्तिक कर्मोंकूं जो पुरुष निष्काम होइकै करै है तिस पुरुषका अंतःकरण शुद्ध होवै नहीं। और अंतःकरणकी शुद्धितैं विना यह पुरुष आत्मज्ञानकी प्राप्तिके योग्य होवै नहीं यातैं निष्काम कर्मोंके नहीं करणेतैं सो अशुद्धचित्तवाला पुरुष सर्व कर्मोंतैं रहिततारूप नैष्कर्म्यकूं प्राप्त होवै नहीं क्या ज्ञानरूप योग करिकै ता निष्ठाकूं प्राप्त होवै नहीं इति शंका—हे भगवन् ! श्रुतिविषे सर्व कर्मोंके संन्यासतैंही ता ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्ति कथन करी है तथा तिन कर्मोंकरिकै ज्ञाननिष्ठाके प्राप्तिका निषेध भी कथन करा है । तहां श्रुति । " एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छंतः प्रव्रजंति इति न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैकेऽमृतत्वमानशुः" । अर्थ यह—संन्यासियोंकूं प्राप्त होणेयोग्य जो अद्वितीयब्रह्मरूप लोक है ता ब्रह्मके प्राप्तिकी इच्छा करते हुए यह अधिकारी पुरुष संन्यासकूं ग्रहण करै है इति । और पूर्व कोईक विद्वान पुरुष ब्रह्मभावकी प्राप्तिरूप मोक्षकूं अग्निहोत्रादिक कर्मोंकरिकै तथा पुत्रादिक प्रजाकरिकै तथा सुवर्णादिक धनकरिकै नहीं प्राप्त होते भए हैं किंतु एक त्यागकरिकैही ता मोक्षरूप अमृतकूं प्राप्त होते भए हैं इति । यातैं सर्व कर्मोंके संन्यासतैंही सा ज्ञाननिष्ठा प्राप्त होइ सकै है । ता ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्तिवासतैं कर्मोंकूं करणा व्यर्थ है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (न च संन्यसनात् इति) हे अर्जुन ! निष्काम कर्मोंके अनुष्ठान करिकै अंतःकरणकी शुद्धि करेतैं विनाही

किया हुआ जो संन्यास है ता संन्यासतैं सो अशुद्ध अंतःकरणवाला पुरुष मोक्षरूप फलकी प्राप्ति करणेहारी ज्ञाननिष्ठारूप सिद्धिकूं प्राप्त होवै नहीं तात्पर्य यह । निष्काम कर्मोंकि अनुष्ठानकरिके जन्य जो चित्तकी शुद्धि है ता चित्तशुद्धित विना प्रथम संन्यासही नहीं संभवै है । काहेतैं " यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्" अर्थ यह–यह अधिकारी पुरुष जिस दिनविषे सर्व विषयसुखोंतैं वैराग्यकूं प्राप्त होवै तिसी दिनविषे संन्यासकूं ग्रहण करै इति । या श्रुतिनें वैराग्यवान् पुरुषकूंही संन्यासका अधिकारी कह्या है । सो वैराग्य अशुद्धचित्तवाले पुरुषकूं होवै नहीं । और सो अशुद्धचित्तवाला पुरुष जो कदाचित 'दंडग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत्' अर्थ यह। दंडादिक चिह्नोंके ग्रहणमात्रकरिके यह पुरुष नारायणरूप होवै है इत्यादिक प्ररोचक वचनोंकूं श्रवण करिके औत्सुक्यमात्रकरिके संन्यासकूं ग्रहण भी करै है । तौ भी ता अशुद्धचित्तवाले पुरुषकूं सो संन्यास ज्ञाननिष्ठारूप फलकी प्राप्ति करै नहीं । उलटा प्रत्यवायकीही प्राप्ति करै है । इहां कार्यके अधिकारका तथा फलका न विचार करिके ता कार्यविषे प्रवृत्त करणेहारा जो आह्लादविशेष है ताका नाम औत्सुक्य है तिस औत्सुक्यकूं कुतूहल कहै हैं । और पूर्व सर्व कर्मोंके त्यागरूप संन्यासकरिके मोक्षकी प्राप्तिकूं कथन करणेहारे जो श्रुतिवचन कहे थे ते श्रुतिवचन शुद्धचित्तवाले पुरुषपरि है अशुद्धचित्तवाले पुरुषपरि हैं नहीं ॥ ४ ॥

तहां निष्काम कर्मोंके अनुष्ठानकरिके जिस पुरुषका चित्त शुद्ध नहीं भया है सो पुरुष सर्वदा बहिर्मुखही रहै है या अर्थकूं श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति कहैं हैं–

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ॥
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥५ ॥

(पदच्छेदः) न । हि । कश्चित् । क्षणम् । अपि । जातु । तिष्ठति । अकर्मकृत् । कार्यते । हि । अवशः । कर्म । सर्वः । प्रकृतिजैः । गुणैः ॥ ५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस कारणतैं कोईभी अज्ञानी पुरुष कदाचित् क्षणमात्र भी कर्मोंकूं नहीं करता हुआ नहीं स्थित होवै है जिस कारणतैं प्रकृतिजन्य सत्त्वादिक गुणोंनैं अस्वतंत्र सर्व अज्ञानी जनोंके प्रति लौकिक वैदिक कर्म कराइते हैं ॥ ५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जिस पुरुषनैं मनसहित इन्द्रियांकूं अपणे वश नहीं कराहै ऐसा अजित इंद्रिय कोई भी पुरुष जिस कारणतैं कदाचित् एक क्षणमात्र कालपर्यंतभी खानपानादिक लौकिक कर्मोंकूं तथा अग्निहोत्रादिक वैदिक कर्मोंकूं नहीं करता हुआ स्थित होवै नहीं किंतु ऐसा अजित इन्द्रिय पुरुष तिन लौकिक वैदिक कर्मोंकूं करता हुआही स्थित होवै है तिस कारणतैं ता अशुद्धचित्तवाले पुरुषकूं सर्व कर्मोंका संन्यास करणा संभवता नहीं इति। हे भगवन् ! सो अशुद्धचित्तवाला अविद्वान् पुरुष तिन लौकिक वैदिक कर्मोंकूं नहीं करता हुआ नहीं स्थित होवै है याकेविषे क्या कारण है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं (कार्यते हि इति) हे अर्जुन ! मूलप्रकृतितैं उत्पन्न भये जो सत्त्व, रज, तम, यह तीन गुण हैं। अथवा प्रकृति नाम स्वभावका है ता स्वभावरूप प्रकृतितैं उत्पन्न भये जो रागद्वेषादिक गुण है तिन प्रकृतिजन्य गुणोंनैं जिस कारणतैं चित्त-शुद्धितैं रहित अस्वतंत्र सर्व प्राणियोंके प्रति ते लौकिक वैदिक सर्व कर्म कराइते हैं अथवा कायिक वाचिक मानसिक यह सर्वकर्म कराइते है। तिस कारणतैं अशुद्धचित्तवाला कोईभी अविद्वान पुरुष तिन कर्मोंकूं नहीं करता हुआ स्थित होवै नहीं किन्तु तिन प्रकृतिजन्य गुणोंकरिकै चलायमान करा हुआ यह पराधीन अज्ञानी पुरुष सर्व कालविषे तिन कर्मोंकूं करता हुआही स्थित होवै है ऐसे अशुद्धचित्तवाले पुरुषकूं सर्व कर्मोंका संन्यास करणा संभवता नहीं । जभी ता अशुद्धचित्तवाले पुरुषकूं सो संन्यासही नहीं संभवै है तभी ता अशुद्धचित्तवाले पुरुषकूं ता संन्यासजन्यज्ञाननिष्ठा नहीं संभवै है याकेविषे क्या कहणा है ॥ ५ ॥

किंवा जिस पुरुषनै निष्काम कर्मोके अनुष्ठानतै अपणे चित्तकूं शुद्ध नहीं करा है किन्तु औत्सुक्यमात्रकरिकै प्रथम संन्यासकूंही ग्रहण करा है ऐसा अशुद्धचित्तवाला पुरुष ता संन्यासके फलकूं प्राप्त होवै नहीं या अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करै हैं–

कर्मेंद्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ॥
इंद्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) कर्मेंद्रियाणि । संयम्य । यः । आस्ते । मनसा । स्मरन् । इंद्रियार्थान् । विमूढात्मा । मिथ्याचारः । सः । उच्यते ॥ ६ ॥

(पदार्थः)हे अर्जुन ! जो मूढात्मा पुरुष वागादिक कर्मइंद्रियोंकूं निग्रह करिकै, शब्दादिक विषयोंकूं मन करिकै स्मरण करता हुआ स्थित होवै है सो पुरुष मिथ्या आचारवाला कह्या जावै है ॥ ६ ॥

भा० टी०–रागद्वेषकरिकै दूषित है अंतःकरण जिसका ऐसा अशुद्ध अन्तःकरणवाला जो पुरुष केवल औत्सुक्यमात्रकरिकै वाक् पाणि पाद आदिक कर्म इंद्रियोका निरोध करिकै क्या बाह्य-इंद्रियोंकरिकै तिन कर्मोंकूं नही करता हुआ रागद्वेषकरिकै प्रेरित मनकरिकै शब्दस्पर्शादिक विषयोंकूं स्मरण करता हुआ स्थित होवै होवै है । आत्मतत्त्वकूं स्मरण करता हुआ स्थित होता नहीं । क्या हमनै सर्व कर्मोंका संन्यास करा है या प्रकारके अभिमान करिकै जो पुरुष सर्व कर्मोंतै रहित हुआ स्थित होवै है सो पुरुष मिथ्या आचारवाला कह्या जावै है । तात्पर्य यह । जिस पुरुषका अंतःकरण शुद्ध हुआ नहीं यातैं ज्ञाननिष्ठारूप फलकी प्राप्तिके अयोग्य हुआ सो पुरुष पाप आचरणवाला कह्या जावै है इति । यह वार्त्ता धर्मशास्त्र विषेभी कही है।तहां श्लोक "त्वंपदार्थविवेकाय संन्यासः सर्वकर्मणाम्।श्रुत्ये-हविहितो यस्मात्तत्त्यागी पतितो भवेत्" । अर्थ यह–जिस कारणतैं इस

अधिकारी लोकविषे श्रुतिभगवतीनैं त्वंपदार्थ आत्माके विचार करणेवास्तैंही सर्व कर्मोंका संन्यास विधान करा है तिस कारणतैं जो अशुद्ध चित्तवाला पुरुष औत्सुक्यमात्रतैं ता संन्यासकूं ग्रहण करिकै त्वंपदार्थ आत्मा विचार करता नहीं सो बहिर्मुख संन्यासी पतित होवै है इति । यातैं अशुद्ध अंतःकरणवाला पुरुष ता संन्यासतैं ज्ञाननिष्ठारूप सिद्धिकूं प्राप्त होवै नहीं यह जो वार्त्ता श्रीभगवान्नैं कथन करी है सो यथार्थ है ॥६॥

तहां चित्तशुद्धितैं विना केवल औत्सुक्यमात्रकरिकै जो सर्व कर्मोंका संन्यास है ता संन्यासकूं न करिकै यह अधिकारी पुरुष अपणे चित्तकी शुद्धिवास्तै शास्त्र विहित निष्काम कर्मोंकूंही करै । या अर्थकूं श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति कथन करै है–

यस्त्विंद्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ॥
कर्मेंद्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) यः । तु । इंद्रियाणि । मनसा । नियम्य । आरभते । अर्जुन । कर्मेंद्रियैः । कर्मयोगम् । असक्तः । सः । विशिष्यते ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष मनसहित श्रोत्रादिक ज्ञान इंद्रियोंकूं रोकिकरिकै फलइच्छातैं रहित हुआ वागादिक कर्मइंद्रियोंकरिकै निष्काम कर्मोंकूं करै है सो पुरुष अशुद्धचित्तवाले संन्यासीतैं अत्यंत श्रेष्ठ है ॥७॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जो अधिकारी पुरुष श्रोत्र, त्वक्, चक्षु रसना और घ्राण या पंच ज्ञानइंद्रियांकूं मनसहित रोकिकरिकै क्या पापके उत्पत्तिका हेतु जो शब्दादिक विषयोंकी आसक्ति है ता विषयासक्तितैं तिन श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं निवृत्ति करिकै अथवा विवेकयुक्त मनकरिकै तिन श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं रोकिकरिकै वाक्, पाणि आदिक कर्मइंद्रियोंकरिकै शास्त्रविहित कर्मोंकूं करै है परन्तु ता कर्मोंके फलकी इच्छा करता नहीं सो निष्काम कर्मोंके करणेहारा अधिकारी पुरुष पूर्व उक्त अशुद्ध

अंतःकरणवाले मिथ्याचार संन्यासी तें बहुत श्रेष्ठ है। इसी विलक्षणताके जनावणेवास्तैं श्रीभगवान्नैं मूलश्लोकविषे (यस्तु) यह तु शब्द कथन करा है। तात्पर्य यह। हे अर्जुन ! या महान् आश्चर्यकूं तूं देख। तिन दोनों पुरुषोंकूं यद्यपि परिश्रम तौ तुल्यही होवै है तथापि एक पुरुष तौ वागादिक कर्म इंद्रियोंकूं रोकिकरिकै मनसहित श्रोत्रादिक ज्ञानइंद्रियोंकूं विषयोंविषे प्रवृत्त करता हुआ परम पुरुषार्थरूप फलतैं रहित होवै है। और दूसरा पुरुष तौ मनसहित श्रोत्रादिक ज्ञानइंद्रियोंकूं शब्दादिक विषयोंतें निवृत्तिकरिकै वागादिककर्मइंद्रियोंकरिकै कर्मोंकूं करता हुआभी परम पुरुषार्थकूं प्राप्त होवै है यातै चित्तशुद्धितें रहित संन्यासीतैं सो निष्काम कर्मोंके करणेहारा पुरुष बहुत श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

जिस कारणतें अशुद्ध अंतःकरणवाले संन्यासीतैं निष्काम कर्मोंके करणेहारा पुरुष बहुत श्रेष्ठ है। तिस कारणतें तूं मनसहित ज्ञानइंद्रियोंकूं रोकिकरिकै वागादिक कर्मइंद्रियोंकरिकै नित्यनैमित्तिक कर्मोंकूं कर या अर्थकूं श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति कथन करै हैं—

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ॥
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥ ८॥

(पदच्छेदः) नियतम्। कुरु। कर्म। त्वम्। कर्म। ज्यायः हि। अकर्मणः। शरीरयात्रा। अपि। च। ते। न। प्रसिद्ध्येत्। अकर्मणः॥ ८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तूं नित्यनैमित्तिक कर्मोंकूंही कर जिस कारणतैं कर्मोंके न करणेतैं कर्मही श्रेष्ठ है तथा कर्मोतैं रहित तुम्हारे शरीरकी यात्रा[13]भी नहीं सिद्ध होवैगी ॥ ८ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन। अंतःकरणकी शुद्धि करणेहारे कर्मोंके अनुष्ठानतैं रहित जो तूं है सो तूं स्वर्गादिक फलोंकी इच्छातैं रहित होइकै श्रुतिकरिकै प्रतिपादित तथा स्मृतिकरिकै प्रतिपादित संध्या उपासनादिक

नित्यकर्मोंकूं तथा ग्रहण श्राद्धादिक नैमित्तिक कर्मोंकूंही कर। शंका–हे भगवन् ! अशुद्ध अंतःकरणवाले पुरुषनैं किस कारणतै कर्महीकरणेकूं योग्य है ! ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः इति) जिस कारणतैं तिन नित्यनैमित्तिक कर्मोंके नहीं करणेतैं तिन नित्यनैमित्तिक कर्मोंका कारणही अत्यंत श्रेष्ठ है तिस कारणतैं अशुद्ध अंतःकरणवाले पुरुषनैं फलकी इच्छातैं रहित होइकै ते नित्यनैमित्तिक कर्मही अवश्यकरिकै करणे। यद्यपि " संन्यास एवात्यरेचयत् " या श्रुतिनैं धर्मादिक सर्व साधनोंतैं संन्यासकूंही श्रेष्ठरूपकरिकै कथन करा है यातैं संन्यासतैं कर्मोंविषे श्रेष्ठता कथन करणी संभव नहीं तथापि जीवन्मुक्तिके सुखवासतैं ब्रह्मवेत्ता पुरुषनैं करा जो विद्वत्संन्यास है। तथा आत्मज्ञानकी प्राप्तिवासतैं शुद्धचित्तवाले मुमुक्षु जननैं करा जो विविदिषा संन्यास है ता दोनों प्रकारके संन्यासविषेही सा श्रुति धर्मादिक सर्व साधनोंतै श्रेष्ठता कथन करै है। और इहां प्रसंगविषे जो संन्यासतैं कर्मोंविषे श्रेष्ठता कथन करी है सो अशुद्धचित्तवाले पुरुषनैं केवल औत्सुक्यमात्रकरिकै करा जो संन्यास है ता संन्यासतैं निष्काम कर्मोंविषे श्रेष्ठता कथन करी है कोई संन्यासकी निंदाविषे भगवानका तात्पर्य नहीं है। तहां धर्म, सत्य, तप, दम, शम, दान, प्रजनन, आहिआग्नि, अग्निहोत्र यज्ञ और मानस या एकादश साधनोंतैं संन्यासकी अधिकता आत्मपुरा-

पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरंति" इति । अर्थ यह–पुत्रएषणाका तथा वित्तएषणाका तथा लोक-एषणाका परित्याग करिकै वैराग्यवान् ब्राह्मण संन्यासपूर्वक भिक्षावृत्तिकूं करैं हैं इति । तहां स्मृति । " चत्वार आश्रमा ब्राह्मणस्य त्रयो राजन्य-स्य द्वौ वैश्यस्य इति " । अर्थ यह–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास यह चारि आश्रम ब्राह्मणके होवैं है । और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, यह तीन आश्रम क्षत्रियके होवैं है और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ यह दो आश्रम वैश्यके होवैं है। तहां अन्य स्मृति । " मुखजानामयं धर्मो वैष्णवं लिंग-धारणम् । बाहुजातोरुजातानां नायं धर्मो विधीयते" । अर्थ यह–पर-मेश्वरके मुखतै उत्पन्न भये जो ब्राह्मण हैं तिन ब्राह्मणोंकाही यह दंडा-दिकचिह्नधारणपूर्वक संन्यास धर्म है। परमेश्वरके बाहुतै उत्पन्न भये जो क्षत्रिय हैं तथा परमेश्वरके ऊरुस्थलतै उत्पन्न भये जो वैश्य हैं तिन क्षत्रिय वैश्योंकूं यह लिंगसंन्यास विधान नहीं करा है इति । इत्यादिक अनेक श्रुतिस्मृतिवचनोंविषे ब्राह्मणकूंही संन्यास आश्रमका अधिकार कथन करा है क्षत्रियवैश्यकूं संन्यासका अधिकार कथन करा नहीं या प्रकारके अभिप्रायकरिकैही श्रीभगवान्नै अर्जुनके प्रति युद्धादिक कर्मोंतै विना तुम्हारे शरीरके खानपानादिक व्यवहारभी सिद्ध नही होवैंगे या प्रकारका वचन कथन करा है ॥ ८ ॥

हे भगवन् ! " कर्मणा बध्यते जंतुर्विद्यया च विमुच्यते" । अर्थ यह-यह जीव कर्मोंकरिकै तौ संसारविषे बंधायमान होवै है । और विद्याकरिकै या संसारतैं मुक्त होवै है इति । या स्मृति वचनकरिकै तिन सर्व कर्मोंविषे बंधकी हेतुताही सिद्ध होवै है यातै मुमुक्षु जननै ते बंधके हेतुभूत कर्म कर-णेकूं योग्य नहीं है ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता अर्जुनके प्रति काम्यकर्मोंकूंही बंधकी हेतुता है ईश्वर अर्पण बुद्धिकरिकै करे हुए कर्मोंकूं बंधकी हेतुता नही है या प्रकारका उत्तर कथन करै है–

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबंधनः।
तदर्थं कर्म कौंतेय मुक्तसंगः समाचर ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः)यज्ञार्थात् । कर्मणः । अन्यत्र । लोकः । अयम् । कर्मबंधनः । तदर्थं । कर्म । कौंतेय । मुक्तसंगः । समाचर ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह लोक परमेश्वरके आराधनअर्थ कर्मतें अन्य कर्मविषेही कर्मकरिकै बंधायमान होवै है यातैं तू फलकी इच्छातैं रहित होइकै तो परमेश्वर आराधन अर्थ कर्मकूं भली प्रकार कर ॥ ९ ॥

भा०टी०—" यज्ञो वै विष्णुः " अर्थ यह—विष्णुभगवान् यज्ञरूप हैं । या श्रुतितैं यज्ञ नाम परमेश्वरका वाचक सिद्ध होवै है ता परमेश्वरके आराधनवास्तै जो नित्यनैमित्तिक कर्म करते हैं तिन कर्मोंका नाम यथार्थ कर्म है ऐसे निष्काम कर्मोंतैं भिन्न जो स्वर्गादिक फलोंकी प्राप्तिवास्तै काम्य कर्म हैं तिन काम्य कर्मोंविषे प्रवृत्त हुए यह कर्मोंके अधिकारी जनही तिन काम्य कर्मोंकरिकै बंधायमान होवैं हैं । और परमेश्वरके आराधन अर्थ करे जो कर्म हैं तिन निष्काम कर्मोंकरिकै यह अधिकारी जन बंधायमान होवैं नहीं यातैं "कर्मणा बध्यते जंतुः" यह पूर्व उक्त स्मृतिभी केवल काम्यकर्मोंविषेही बंधनकी हेतुता कथन करै है निष्काम कर्मोंविषे बंधनकी हेतुता कथन करै नहीं यातैं हे अर्जुन ! तूं स्वर्गादिक फलोंकी इच्छातैं रहित होइकै केवल परमेश्वरके आराधन अर्थ श्रद्धाभक्तिपूर्वक तिन नित्यनैमित्तिक कर्मोंकू कर ॥ ९ ॥

किंवा भगवान् प्रजापतिके वचनतैंभी या अधिकारी पुरुषनैं ते कर्मही करणेकूं योग्य हैं या अर्थकूं श्रीभगवान् चारि श्लोकोंकरिकै अर्जुनके प्रति कथन करैं हैं—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ॥
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) सहयज्ञाः। प्रजाः। सृष्ट्वा। पुरा। उवाच प्रजापतिः। अनेन। प्रसविष्यध्वम्। एषः। वः। अस्तु। इष्टकामधुक् ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! कल्पके आदिविषे प्रजापति यज्ञके अधिकारी प्रजाकूं उत्पन्न करिकै यह वचन कहता भया है, प्रजा इस यज्ञकरिकै तुम वृद्धिकूं प्राप्त होवो जिस कारणतें यह यज्ञही तुम्हारेकूं मनवांछित फलोंकी प्राप्ति करणेहारा होवो ॥ १० ॥

भा० टी०—श्रुतिस्मृतियोंकरिकै विधान करे जो स्ववर्णआश्रमके यज्ञादिरूप कर्म हैं तिन कर्मोंकेसहित जे वर्तमान होवैं तिन्होंका नाम सहयज्ञ है अर्थात् कर्मोंके अधिकारियोंका नाम सहयज्ञ है ऐसे यज्ञादिरूप कर्मोंके अधिकारी ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य या त्रैवर्णिक प्रजाकूं सृष्टिके आदिकालविषे रचिकरिकै परम कृपालु भगवान् प्रजापति ता त्रैवर्णिक प्रजाके प्रति या प्रकारका वचन कहता भया। हे प्रजा! अपणे अपणे वर्ण आत्मकरिकै उचित जो यह यज्ञादिरूप धर्म है ता यज्ञादिरूप धर्मकरिकै तुम उत्तरउत्तरकालविषे वृद्धिकूं प्राप्त होवो। शंका—इस यज्ञादिरूप धर्मकरिकै किस प्रकार वृद्धि होवै है ऐसी शंकाके हुए प्रजापति कहै हैं (एष वोस्त्विष्टकामधुक् इति) हे प्रजा! यह यज्ञादिरूप धर्मही तुम अधिकारी जनोंकूं मनवांछित फलोंकी प्राप्ति करणेहारा होवो इति। शंका—(सहयज्ञाः) या वचनविषे करा जो यज्ञका ग्रहण है सो यज्ञका ग्रहण अवश्य करणे योग्य नित्यनैमित्तिक कर्मोंकाही उपलक्षक है काम्यकर्मोंका उपलक्षक है नहीं काहेतें तिन कर्मोंके नहीं करणेतें प्रत्यवायकी प्राप्ति आगे कथन करणी है। सा प्रत्यवायकी प्राप्ति नित्यनैमित्तिक कर्मोंके नहीं करणेतेंही होवै है काम्य कर्मोंके नहीं करणेतें कोई प्रत्यवायकी प्राप्ति होवै नहीं किंवा इस गीता शास्त्रविषे तिन काम्यकर्मोंके कहणेका कोई प्रसंगभी है नहीं उलटा (मा कर्मफलहेतुर्भूः) इस वचनकरिकै तिन काम्य कर्मोंका निषेधही करा है

यातैं निष्काम कर्मोंके प्रसंगविषे यह यज्ञादिरूप धर्म तुम्हारेकूं मनवांछित फलोंकी प्राप्ति करैगा यह फलका कथन असंगत है। समाधान—काम्य कर्मोंकी न्याईं तिन नित्यनैमित्तिक कर्मोंकाभी सो आनुषंगिक फल संभव होई सकै है या वार्त्ता आपस्तंब ऋषिनैभी कथन करी है। 'तद्यथाम्रे फलार्थे निर्मिते छायागंधे इत्यनूत्पद्येते एवं धर्म चर्यमाणमर्था अनूत्पद्यंते नोचेदनूत्पद्यंते न धर्महानिर्भवतीति'। अर्थ यह—जैसे किसी पुरुषनैं फलोंकी प्राप्तिवासतै लगाया हुआ जो आम्रका वृक्ष है ता आम्रवृक्षके छाया सुगंध यह दोनों आनुषंगिक फल ता लगावणेहारे पुरुषकूं अवश्य प्राप्त होवै हैं तैसे या अधिकारी पुरुषनैं स्वधर्म जानिकरिकै करे जो नित्यनैमित्तिक कर्म हैं तिन कर्मोंतै अनंतर ता कर्मकर्त्ता पुरुषकूं मनवांछित पदार्थोंकी प्राप्तिरूप आनुषंगिक फल अवश्य होवै है जो कदाचित् ता कर्मकर्त्ता पुरुषकूं सो आनुषंगिक फल नहींभी प्राप्त होवै तौभी ता नित्यनैमित्तिकरूप धर्मकी हानि होवै नहीं जिस कारणतैं अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा मोक्षरूप परम फल ता पुरुषकूं अवश्यकरिकै प्राप्त होवैहै इति। शंका—काम्यकर्मोंकी न्याईं जो कदाचित् नित्यकर्मोंकाभी फल अंगीकार करौगे तौ काम्यकर्मोंतैं नित्यकर्मोंविषे विलक्षणता सिद्ध नहीं होवैगी। समाधान—काम्यकर्म तथा नित्यकर्म या दोनोंविषे फलकी कारणताके समान हुएभी फलकी इच्छाकरिकै करे हुए कर्मकूं काम्यकर्म कहैं हैं। और फलकी इच्छातैं रहित होइकै करे हुए कर्मकूं नित्यकर्म कहैं हैं या रीतिसैं तिन काम्यकर्मोंतैं नित्यकर्मोंविषे विलक्षणता संभवै है और अनिच्छित फलकीभी वस्तुके स्वभावतैंही उत्पत्ति अंगीकार किये हुए तिन दोनोंविषे विशेषता संभवै नहीं इस वार्त्ताकूं आगे विस्तारकरिकै निरूपण करैंगे यातैं यह यज्ञादिरूप धर्म तुम्हारेकूं मन वांछित फलोंकी प्राप्ति करणेहारा होवो यह वचन असंगत नहीं है किंतु यथार्थ है। तहां स्मृति। "संध्यामुपासते ये तु सततं संशितव्रताः। विधूतपापास्ते यांति ब्रह्मलोकमनामयम्"। अर्थ यह—जे पुरुष निरंतर श्रद्धाभक्तिपूर्वक संध्याकूं

उपासना करै हैं ते पुरुष सर्वपापोंतैं रहितहोइकै रोगादिक विकारोंतैं रहित ब्रह्मलोककूं प्राप्त होवै है इति । इत्यादिक अनेक वचनोंकरिकै संध्या-उपासनादिक नित्यकर्मोंका ब्रह्मलोकादिकोंकी प्राप्तिरूप आनुषंगिक फल कथन करा है ॥ १० ॥

हे भगवन् ! यज्ञादिरूप धर्मकूं मनवांछित फलोंके प्राप्तिकी हेतुता किस प्रकार है ऐसी शंकाके हुए सो प्रजापति ता प्रकारकूं निरूपण करै है—

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयंतु वः ॥
परस्परं भावयंतः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) देवान् । भावयत । अनेन । ते । देवाः । भावयंतु । वः । परस्परम् । भावयंतः । श्रेयः । परम् । अवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे प्रजा । तुम अधिकारी इस यज्ञादिरूप धर्मकरिकै इंद्रादिक देवतावोंकूं संतुष्ट करो तिसतैं अनंतर ते इंद्रादिक देवता तुम्हारेकूं संतुष्ट करैं इस प्रकार परस्पर संतुष्ट करते हुए तुम दोनों परम श्रेयकूं प्राप्त होवोगे ॥ ११ ॥

भा० टी०—हे प्रजा ! तुम सर्व यजमान इस यज्ञादिरूप धर्म करिकै इंद्रादिक देवताओंकूं संतुष्ट करो । और ता यज्ञविषे हवि-र्भागोंकरिकै तुम्हांनै संतुष्ट करे हुए जो इन्द्रादिक देवता हैं ते इंद्रा-दिक देवता जलकी वृष्टि आदिकोंतैं अन्नकी उत्पत्तिद्वारा तुम यजमानोंकूं संतुष्ट करैं । इस प्रकार परस्पर संतुष्ट करते हुए तुम प्रजा तथा इंद्रादिक देवता दोनोंही मनवांछित अर्थरूप परम श्रेयकूं प्राप्त होवोगे तहां तुम्हारेकूं संतुष्ट करणेतैं इंद्रादिक देवता तौ तृप्तिरूप परमश्रेयकूं प्राप्त होवैंगे । और इन्द्रादिक देवतावोंकूं संतुष्ट करणेतैं तुम प्रजा स्वर्गरूप परमश्रेयकूं प्राप्त होवोगे॥ ११ ॥

किंवा वा यज्ञादिकरूप धर्म करिकै तुम्हारेकूं केवल परलोकविषे स्थित स्वर्गादिरूप फलकीही प्राप्ति नहीं होवैगी किंतु इस लोकविषे स्थित अन्न, सुवर्ण, पशु आदिक फलकीभी प्राप्ति होवैगी या अर्थकूं प्रजापति कथन करैं हैं–

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यंते यज्ञभाविताः ॥
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः ॥१२॥

(पदच्छेदः) इष्टान् । भोगान् । हि । वः । देवाः । दास्यंते । यज्ञभाविताः । तैः । दत्तान् । अप्रदाय । एभ्यः । यः । भुंक्ते । स्तेनः । एव । सः ॥ १२ ॥

(पदार्थः) जिसे कारणतै यज्ञकरिकै संतुष्ट हुए यह देवता तुम्हारे ताई मनवांछित भोगोंकूं देवैंगे तिस कारणतैं तिन देवतावोंनैं दिये हुए भोगोंकूं इन देवतावोंके ताईं नैं देकरिके जो पुरुष भोगै है सो पुरुष चौरें ही है ॥ १२ ॥

भा० टी०–हे प्रजा ! इस प्रकार श्रौत स्मार्त यज्ञरूप धर्मकरिकै संतुष्ट हुए जो इंद्रादिक देवता हैं ते इंद्रादिक देवता तुम कर्मकर्त्ता यजमानोंके ताईं अन्न, पशु, सुवर्ण इत्यादिक मनवांछित भोगोंकूं देवैंगे । और जैसे कोई पुरुष किसी अन्य पुरुषके प्रति ऋण देवै है तैसे तिन इंद्रादिक देवतावोंनैं तुम्हारे ताईं दिये जो अन्नादिक भोग हैं तिन भोगोंकूं तिन इंद्रादिक देवतावोंके ताईं न दे करिकै अर्थात् इंद्रादिक देवतावोंके उद्देशकरिकै व्रीहियवादिक पदार्थोंका त्यागरूप जो वैश्वदेव, अग्निहोत्र जातेष्टि इत्यादि नित्यनैमित्तिक याग हैं तिन्होंकूं न करिकै जो पुरुष केवल अपणे देहइंद्रियादिकोंकी पुष्टि करणेवासतै तिन अन्नादिक पदार्थोंकूं भोगै है सो पुरुष तिन देवतावोंका चौरही है तथा कृतघ्न है काहेतैं तिस पुरुषनैं देवतावोंके अन्नादिक पदार्थोंकूं तौ हरण करा है और यज्ञादिकोंकरिकै तिन देवतावोंके ऋणकी निवृत्ति करी नहीं ॥ १२ ॥

किंवा तिन यज्ञादिक कर्मोंके न करणेतैं या अधिकारी पुरुषकूं केवल चौरभावकी तथा कृतघ्नताकी प्राप्ति होवै नहीं किंतु तिन यज्ञादिक कर्मोंके नहीं करणेतै या अधिकारी पुरुषकूं प्रत्यवायकीभी प्राप्ति होवै है या अर्थकूं अन्वयव्यतिरेक करिकै निरूपण करे हैं–

यज्ञशिष्टाशिनः संतो मुच्यंते सर्वकिल्बिषैः ॥
भुंजते ते त्वघं पापा ये पचंत्यात्मकारणात् ॥१३॥

(पदच्छेदः) यज्ञशिष्टाशिनः । संतः । मुच्यंते । सर्वकिल्बिषैः । भुंजते । ते । तु । अघम् । पापाः । ये । पचंति । आत्मकारणात् ॥ १३ ॥

(पदार्थः) जे पुरुष यज्ञके शेष अन्नकूं भोजन करैं हैं ते शिष्ट पुरुष सर्व पापोंनै परित्याग करते हैं तथा जें पापात्मा पुरुष केवल अपणे वासतैंही अन्नकूं पकावैं है वे पुरुष पापकूं भोजन करैं हैं ॥ १३ ॥

भा० टी०–जे अधिकारी पुरुष ऋषियज्ञ, वेदयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, भूतयज्ञ, या पंच यज्ञोंकूं करिकै परिशेषतै रहे हुए अमृतरूप अन्नकूं भोजन करैं हैं ते पुरुषही शिष्ट कहे जावैं हैं काहेतैं श्रद्धाभक्तिपूर्वक वेदविहित कर्मोंके करणेहारे पुरुषकूंही शास्त्रविषे शिष्टा कह्या है ऐसे शिष्ट पुरुष सर्व पापोंनै परित्याग करते हैं । तात्पर्य यह–प्रमादकरिकै करे हुए जो पाप हैं तथा पंचसूनारूप निमित्ततैं उत्पन्न हुए जो पाप हैं तथा विहित कर्मोंके न करणेकरिकै प्राप्त भये जो पाप हैं तिन सर्व पापोंतैं ते पुरुष रहित होवैं हैं इति । इतनैं कहणे करिकै तिन यज्ञादिकोंके करणेहारे पुरुषकूं पापकी प्राप्तिका अभाव कथन करा । अब तिन यज्ञादिक कर्मोंके नही करणेहारे पुरुषकूं प्रत्यवायकी प्राप्तिका कथन करैं हैं (भुंजते ते तु इति) तिन पंचमहायज्ञोंकूं नहीं करते हुए जे पापात्मा पुरुष केवल अपणे उदरके भरणकरणे वासतेंही अन्नकूं पकावैं हैं देवता अतिथि आदिकोंके वासतै अन्नकूं पकावते नहीं ते पुरुष केवल पापकूं

ही भोजन करैं हैं अन्नकूं भोजन करते नहीं। यद्यपि तिन पापात्मा पुरुषोंकी दृष्टिकरिकै तौ सो अन्न है तथापि शास्त्रकी दृष्टिकरिकै तथा देवतावोंकी दृष्टिकरिकै सो अन्न पापरूपही है इति। इहां (पापाः अघं भुंजते) या वचनकरिकै यह अर्थ बोधनकरा जे पुरुष तिन पंचयज्ञोंकूं न करिकै केवल अपणे उदरके भरण करणेवासतेही अन्नकूं पकावैं हैं ते पुरुष पूर्वही पंचसूनाकृत पापवाले तथा प्रमादकृत हिंसाजन्य पापवाले हुएभी पुनः वैश्वदेवादिक नित्यकर्मोंके नहीं करणेंजन्य दूसरे पापकूं प्राप्त होवैं हैं इति। तहां स्मृति। "कंडनी पेषणी चुल्ली उदकुंभी च मार्जनी। पंचसूना गृहस्थस्य ताभिः स्वर्गं न विंदति। पंचसूनाकृतं पापं पंचयज्ञैर्व्यपोहति"। अर्थ यह—गृहस्थ पुरुषोंके गृहविषे जीवोंकी हिंसा होणेके पंचस्थान होवे हैं एक तौ ऊखलविषे अन्नके कूटणेतैं जीवोंकी हिंसा होवै है और दूसरा पाषाणकी चक्कीविषे अन्नके पीसणेतैं जीवोंकी हिंसा होवै है। और तीसरा अन्नके पकावणेवासतै चुल्लीविषे अग्निके जगावणेतैं जीवोंकी हिंसा होवै है। और चौथा पात्रोंविषे जलके भरणेतैं जीवोंकी हिंसा होवै है। और पंचमां मृत्तिकाजलादिकोंसैं घरके मार्जन करणेतैं जीवोंकी हिंसा होवै है ता पंच प्रकारकी जीवहिंसाकरिकै यह गृहस्थ पुरुष स्वर्गकूं प्राप्त होता नहीं। और तिन पंच हिंसास्थानोंतैं उत्पन्न भये जो पाप हैं ते पाप पंचयज्ञोंकरिकै निवृत्त होवैं हैं इति। ते पंचयज्ञ यह हैं—तहां श्लोक। "ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा। नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत्"। अर्थ यह—यह ब्राह्मणादिक गृहस्थ पुरुष दिनदिनविषे ऋषियज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, पितृयज्ञ, यह पंच यज्ञ यथाशक्ति करे इन पंच यज्ञोंका परित्याग कदाचित्भी नहीं करै इति। तहां वेदका पठन पाठन करणा तथा संध्योपासन करणा याका नाम ऋषियज्ञ है। और अग्निहोत्रादिकोंका करणा याका नाम देवयज्ञ है। और बलि, वैश्वदेवकूं करणा याका नाम भूतयज्ञ है। और गृहविषे प्राप्त हुए अतिथिका अन्नादिकों करिकै संतोष करणा याका नाम मनुष्ययज्ञ

है और श्राद्ध तर्पणकूं करणा याका नाम पितृयज्ञ है इति । तिन यज्ञोंके नहीं करणेहारे गृहस्थ पुरुषोंकूं दोषकी प्राप्ति पाराशरस्मृतिविषेभी कथन करि है । तहां श्लोक। "वैश्वदेवहीना ये आतिथ्येन विवर्जिताः । सर्वे ते नरकं यांति काकयोनिं व्रजंति ते । काष्ठभारसहस्रेण घृतकुंभशतेन च। अतिथिर्यस्य भग्नाशस्तस्य होमो निरर्थकः" । अर्थ यह—जे ब्राह्मणादिक गृहस्थ वैश्वदेव करणेतैं रहित है तथा अतिथिके प्रति भोजन देणेतैं रहित हैं ते पुरुष मरिकरिकै नरककूं प्राप्त होवै हैं तिसतैं अनंतर काकयोनिकूं प्राप्त होवै हैं इति । किंवा जिस गृहस्थ पुरुषके गृहतैं अतिथि पुरुष अन्नादिकोंकी प्राप्तितै विना निराश चल्या जावै है तिस गृहस्थ पुरुषने काष्ठोंके सहस्र भारोंकरिकै तथा घृतके शतकुंभोंकरिकै करा हुआ जो होम है सो होम ता पुरुषकूं किंचितमात्रभी फलकी प्राप्ति करै नहीं इति। अतिथिका लक्षण पाराशरस्मृतिविषे यह कह्या है। तहां श्लोक । "दूराध्वोपगतं श्रांतं वैश्वदेव उपस्थितम् । अतिथिं तं विजानीयान्नातिथिः पूर्वमागतः ॥ चौरो वा यदि चांडालः शत्रुर्वा पितृघातकः । वैश्वदेवे तु संप्राप्ते सोऽतिथिः सर्वसंगमः ॥ न पृच्छेद्गोत्रचरणे स्वाध्यायं च व्रतानि च । हृदयं कल्पयेत्तस्मिन्सर्वदेवमयो हि सः ॥ " अर्थ यह—जो पुरुष दूर मार्गतैं चलिके आया होवै तथा थक्या होवै तथा वैश्वदेवके करणेके कालविषे प्राप्त होवै ताकूं अतिथि जानणा। और जो अपने पुरोहितादिक पूर्वही तहां प्राप्त हैं ते पुरोहितादिक अतिथि नहीं कहे जावैं हैं इति । और वैश्वदेव करणेके कालविषे ब्राह्मणादिक गृहस्थ पुरुषोंके गृहविषे जो कोई अन्नार्थी चौर आवै अथवा चांडाल आवै अथवा शत्रु आवै अथवा पिताके हनन करणेहारा आवै सो अन्नार्थी पुरुष अतिथि जानणा तथा सर्व सत्संगादिकोंका कारण जानणा इति । किंवा यह गृहस्थ पुरुष गृहविषे प्राप्त हुए ता अन्नार्थी अतिथिका गोत्र नहीं पूछै तथा वेदकी शाखादिकभी नहीं पूछै ऋग्वेदादिकोंका अध्ययनभी नहीं पूछै । तथा ब्रह्मचर्यादिक व्रतभी नहीं पूछै किंतु सो गृहस्थ पुरुष ता अतिथिविषे

यह अतिथि सर्वदेवमय विष्णु रूप है या प्रकारकी भावना करिकै ता अतिथिके प्रति अन्नादिक देवै इति यातैं जे ब्राह्मणादिक गृहस्थ पुरुष पूर्व उक्त पंचयज्ञोंकूं न करिकै केवल अपणे उदर भरणेवास्तैंही अन्नकूं पकावै हैं ते पुरुष अन्नरूपें करिकै स्थित पापकूंही भोजन करैं हैं ॥१३॥ किंवा केवल पूर्व उक्त प्रजापतिके वचनमात्रतैंही ते यज्ञादिक कर्म करणेकूं योग्य नहीं हैं किंतु या जगत्‌रूप चक्रकी प्रवृत्तिका हेतु होणेतैंभी ते यज्ञादिक कर्म करणेकूं योग्य हैं या अर्थकूं श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति तीन श्लोकोंकरिकै कथन करैं हैं—

अन्नाद्भवंति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ॥
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥१४॥

(पदच्छेदः) अन्नात् । भवंति । भूतानि । पर्जन्यात् । अन्नसंभवः । यज्ञात् । भवति । पर्जन्यः । यज्ञः । कर्मसमुद्भवः ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अन्नतैं शरीर उत्पन्न होवै है और ता अन्नका जन्म जलकी वृष्टितैं होवै है और सा जलकी वृष्टि अपूर्वरूप धर्मतैं उत्पन्न होवै है और सो अपूर्वरूप धर्म कर्मतैं उत्पन्न होवै है ॥ १४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! भोजनद्वारा पुरुष स्त्रियोंके शरीरविषे प्राप्त होइकै *शुक्रशोणितरूपकरिकै परिणामकूं प्राप्त भया जो व्रीहियवादिक अन्न* है तिस अन्नतैंही सर्व मनुष्यादिक प्राणियोंके शरीर उत्पन्न होवैं हैं । और ता व्रीहियवादिके अन्नकी उत्पत्ति जलकी वृष्टितैं होवै हैं । यह वार्त्ता सर्व प्राणियोंकूं प्रत्यक्ष सिद्ध है और कारीरी इष्टि अग्निहोत्र आदिकोंतें उत्पन्न भया जो धर्म है जिस धर्मकूं शास्त्रविषे अपूर्व अदृष्ट या नामकरिकै कथन करैं हैं । ता धर्मरूप यज्ञतैं सा जलकी वृष्टि उत्पन्न होवै है । तहां मनुस्मृति । "अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः" अर्थ यह—वैदिक अग्निविषे प्रातःसायंकालमैं श्रद्धाभक्ति

पूर्वक पाई हुई जो घृतादिक पदार्थोंकी आहुति है सा आहुति सूक्ष्म रूपकरिकै आदित्यविषे स्थित होवै है ता आहुतिविशिष्ट आदित्यतैं मेघोंद्वारा जलकी वृष्टि उत्पन्न होवै है ता जलकी वृष्टितैं व्रीहियवादिक अन्न उत्पन्न होवे हैं । और ता अन्नतैं यह मनुष्यादिक शरीर उत्पन्न होवैं हैं इति । और सो धर्मरूप यज्ञ अग्निहोत्र कारीरी इष्टि आदिक कर्मोंतैं उत्पन्न होवै है ॥ १४ ॥

किंच-

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ॥
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ १५॥

(पदच्छेदः) कर्म । ब्रह्मोद्भवम् । विद्धि । ब्रह्म । अक्षरसमुद्भवम् । तस्मात् । सर्वगतम् । ब्रह्म । नित्यम् । यज्ञे । प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! ता अग्निहोत्रादिक कर्मकूं तू वेदतैं उत्पन्न हुआ जान और तो वेदकूं परमात्मादेवतैं उत्पन्न हुआ जान तिसी कारणतैंही सर्व अर्थका प्रकाशक तथा नाशतैं रहित सो वेद ता धर्मरूप यज्ञविषे स्थित है ॥ १५॥

भा० टी०-ब्रह्म नाम वेदका है सो वेदरूप ब्रह्म है प्रमाण जिसविषे ताका नाम ब्रह्मोद्भव है तिस अग्निहोत्रादिक कर्मकूं तूं ब्रह्मोद्भव जान । तात्पर्य यह-वेदनैं विधान करा जो अग्निहोत्रादिक कर्म है ता कर्मकूंही तूं अपूर्वरूप धर्मका साधन जान दूसरे पाखण्डशास्त्रोंनैं प्रतिपादन करे हुए कर्मोंकूं तुमनैं ता अपूर्वरूप धर्मका साधन जाणना नहीं इति । शंका-हे भगवन् ! तिन पाखण्डशास्त्रोंकी अपेक्षाकरिकै वेदविषे कौन विलक्षणता है जिस विलक्षणताकरिकै वेदप्रतिपादित अर्थही धर्मरूप होवै है । दूसरे पाखंडशास्त्रप्रतिपादित अर्थ धर्मरूप नहीं होवैं हैं । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता वेदविषे दूसरे पाखंडशास्त्रोंतैं विलक्षणता कथन करैं

हैं । (ब्रह्माक्षरसमुद्भवं इति) हे अर्जुन ! भ्रम, प्रमाद, करणाऽपाटव, विप्रलिप्सा इत्यादिक सर्व दोषोंतैं रहित जो परमात्मा देव है ता अक्षर परमात्मादेवतैंही पुरुषके निःश्वासोंकी न्याईं विनाही प्रयत्नतैं सो ऋग्, यजुष्, साम, अथर्वणरूप वेद प्रादुर्भाव हुआ है या कारणतैं भ्रम प्रमाद आदिक दोषोंकी शंकाकैं रहित हुए ते अपौरुषेय वेदोंके वचनही धर्मरूप अतींद्रिय अर्थविषयक प्रमाकी जनकताकरिकै प्रमाणरूप हैं । भ्रम प्रमाद आदिक दोषोंवाले पुरुषोंकरिकै रचित पाखंडवाक्य ता अतींद्रिय धर्मविषयक प्रमाकूं उत्पन्न करैं नहीं यातैं ते पाखंडशास्त्र ता धर्मविषे प्रमाणरूप हैं नहीं । इहां अन्य पदार्थविषे अन्य बुद्धिका नाम भ्रम है और अवश्य करणेयोग्य अर्थकूंभी नहीं करणा याका नाम प्रमाद है । और नेत्रादिक करणोंविषे वस्तुके यथार्थ ग्रहण करणेकी नहीं शक्ति होणी याका नाम करणाऽपाटव है । अन्य लोकोंके वंचन करणेकी इच्छाका नाम विप्रलिप्सा है इति । तहां अक्षरपरमात्मा देवतैंही वेदोंका प्रादुर्भाव होवै है यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कही है । तहां श्रुति । " अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि इति "। अर्थ यह–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वणवेद यह चारि वेद इस महान् परमात्मा देवके निःश्वासरूप हैं ते चारों वेद इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक सूत्र अनुव्याख्यान, व्याख्यान या भेदकरिकै अष्ट प्रकारके हैं इति । इतिहास, पुराण आदिक अष्टोंका अर्थ आत्मपुराणके सप्तम अध्यायविषे हम विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं । इस प्रकार साक्षात्परमात्मा देवतैंही उत्पन्न होणेतै सर्व अर्थका प्रकाशक तथा अविनाशी जो वेद है सो वेद अतींद्रिय धर्मरूप यज्ञविषे अपणे तात्पर्यकरिकै स्थित होवै है यातैं पाखंडशास्त्रकरिकै प्रतिपादित निकृष्ट धर्मका परित्याग करिकै या अधिकारी पुरुषनें वेदप्रतिपादित धर्मही अनुष्ठान करणा ॥ १५ ॥

हे भगवन् ! इस प्रकार वेदादिकोंकी उत्पत्ति होवो ता कहणेकरिकै इहां प्रसंगविषे क्या फल सिद्ध होवै है ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं है-

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ॥
अघायुरिंद्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) एवँम् । प्रँवर्तितम् । चंक्रम् । नँ । अनुँवर्तयति । इहं । यः । अघायुः । इंद्रियारामः । मोघम् । पार्थ । सः । जीवँति ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इस लोकविषे जो अधिकारी पुरुष ईस प्रकार प्रवृत्त हुए चक्रकूं नहीं अंगीकार करैहै सो पाप जीवन इंद्रियाराम पुरुष व्यर्थही जीवता है ॥ १६ ॥

भा०टी०-हे अर्जुन ! प्रथम सर्वज्ञ परमेश्वरतैं सर्व अर्थकूं प्रकाश करणेहारे नित्य निर्दोष वेदका प्रादुर्भाव होवै है तिसतैं अनंतर ता वेदोक्त कर्मोंका ज्ञान होवै है । ता कर्मोंके ज्ञानतैं अनंतर तिन कर्मोंके अनुष्ठानतैं अपूर्व रूप धर्मकी उत्पत्ति होवै है । तिस धर्मकी उत्पत्तितैं अनंतर जलकी वृष्टि होवै है तिस जलकी वृष्टितै व्रीहियवादिक अन्न उत्पन्न होवै है ता अन्नतैं मनुष्यादिक भूत उत्पन्न होवैं हैं तिसतैं अनंतर तिन मनुष्यादिकोंकी पुनः कर्मोंविषे प्रवृत्ति होवै है । इस प्रकार सर्व जगत्के निर्वाह करणेवासतै परमेश्वरनैं प्रवृत्त करा जो यह चक्र है तिस चक्रकूं जो अधिकारी पुरुष नहीं अंगीकार करै है सो पुरुष पापरूप जीवनवाला होणेतैं व्यर्थही जीवता है अर्थात् तिस पुरुषके जीवनैतै मरणही श्रेष्ठ है काहेतैं ता शरीरका परित्याग करिकै दूसरे जन्मविषे ता पुरुषकूंभी कदाचित् धर्मका अनुष्ठान संभव होइ सकै है । तथा इस जन्मविषे वेदविहित कर्मोंके न करणेतैं जो पापका संग्रह होवै है तिसतैंभी रहित होवै है यातैं ता पुरुषके जीवनतैं मरणही श्रेष्ठ है । शंका-हे भगवन् ! ता पूर्व उक्त चक्रकूं

नहीं अंगीकार करणेहारा जो ब्रह्मवेत्ता पुरुष हैं तिसकाभी जीवन निष्फल होवैगा ऐसी अर्जुनकी शंकाके निवृत्त करणेवास्तै श्रीभगवान् ता अज्ञानी पुरुषका विशेषण कहैं हैं (इंद्रियाराम इति) श्रोत्रादिक इंद्रियोंकरिकै शब्दादिक विषयोंविषे जो पुरुष रमण करै है ताका नाम इंद्रियाराम है ऐसा विषयलंपट पुरुष केवल कर्मोंकाही अधिकारी होवै है तिन कर्मोंका अधिकारी हुआभी जो पुरुष तिन कर्मोंकूं नहीं करै है सो पुरुष तिन विहित कर्मोंके न करणेतैं केवल पापकाही संग्रह करता हुआ व्यर्थही जीवै है । और जीवन्मुक्त विद्वान् पुरुष इंद्रियाराम है नहीं यातैं तिन कर्मोंके न करणेतैं सो विद्वान् पुरुष प्रत्यवायकूं प्राप्त होवै नहीं ॥ १६ ॥

किंवा जो पुरुष इंद्रियाराम नहीं है तथा परमार्थ वस्तुकूं सर्वदा देखणेहारा है सो विद्वान् पुरुष इस जगत्‌रूप चक्रके हेतुभूत कर्मोंका नहीं अनुष्ठान करता हुआभी प्रत्यावयाकूं प्राप्त होवै नहीं जिस कारणतैं सो विद्वान् पुरुष कृतकृत्यभावकूं प्राप्त हुआ है या अर्थकूं श्रीभगवान् दो श्लोकोंकरिकै कथन करै हैं—

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ॥
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥१७॥

(पदच्छेदः) यः । तु । आत्मरतिः । एव । स्यात् । आत्मतृप्तः । च । मानवः । आत्मनि । एव । च । संतुष्टः । तस्य । कार्यम् । न । विद्यते ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः जो मनुष्य आत्माविषे प्रीतिवाला ही होवै है तथा आत्माकरिकैही तृप्त होवै है तथा आत्माविषेही संतुष्ट होवै है तिस पुरुषकूं किंचित्‌मात्रभी कार्य नहीं कर्तव्य होवै है १७॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो पुरुष इंद्रियाराम होवै है सो विषयलम्पट पुरुष स्रक्, चन्दन, वनिता आदिक विषयोंकी प्राप्ति करिकैही रतिकूं अनुभव करै है तथा सो पुरुष मनोहर अन्नपानादिक पदार्थोंकी

प्राप्तिकरिकैही तृप्तिकूं अनुभव करै है तथा सो इंद्रियाराम पुरुष सुवर्ण पुत्र, पशु आदिक पदार्थोंकी प्राप्तिकरिकै तथा रोगादिकोंकी अप्राप्ति-करिकैही तुष्टिकूं अनुभव करै है तिन पदार्थोंकी अप्राप्त हुए तिन इंद्रि-याराम रागी पुरुषोंविषे यथाक्रमतें अरति,अतृप्ति अतुष्टिही देखणेविषे आवै है इहां रति,तृप्ति,तुष्टि यह तीनों मनकी वृत्तिविशेष है ते तीनों साक्षीरूप अनुभवकरिकै सिद्ध है । और जिस विद्वान् पुरुषकूं परमानंदस्वरूप पर-मात्मा देवकी प्राप्ति भई है सो विद्वान् पुरुष द्वैतदर्शनके अभावतें तथा विषयसुखोंविषे तुच्छबुद्धिवाला होणेतें तिन विषयसुखोंकी इच्छा करता नहीं । यह वार्ता (यावानर्थ उदपाने) इस श्लोकविषे पूर्व कथन करिआये है या कारणतें सो ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुष आनंदस्वरूप आ-त्माविषेही रति करै है स्त्री आदिक विषयोंविषे रति करै नहीं । शंका हे भगवन् ! आनंदस्वरूप आत्माविषे तौ सर्व प्राणीमात्रकी निरुपाधिक प्रीति है ता अपणे आत्माके वास्तैही स्त्रीपुत्रादिकोंविषे प्रीति होवै है यातें ता आत्मरति विद्वान् पुरुषविषे अज्ञानी पुरुषोंतें विलक्षणता सि-द्धहोवै नहीं ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (आत्मतृप्तः इति) हे अर्जुन ! सो विद्वान् पुरुष परमानंदस्वरूप आत्माकरिकैही तृप्त होवै है अज्ञानी पुरुषकी न्याई सोविद्वान् पुरुष कोई मनोरम स्त्रि-योंकरिकै तथा मिष्ट अन्नकरिकै तृप्त होवै नहीं । शंका–हे भगवन् ! जिस पुरुषका जठराग्नि रोगादिकों करिकै मन्द हुआ है तथा धातुक्षय होइ गया है सो पुरुष मिष्ट अन्नकरिकै तृप्त होवै नहीं तथा मनोरम स्त्रियों-विषेभी रमण करता नहीं यातें तिस रोगी पुरुषतें ता विद्वान् पुरुषविषे विलक्षणता सिद्ध नहीं होवैगी ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (आत्मन्येव च संतुष्टः इति)हे अर्जुन ! सो विद्वान पुरुष केवल आनंदस्वरूप आत्माविषेही संतोषकूं प्राप्त हुआ है दूसरे किसी अनात्म पदार्थोंविषे सो विद्वान पुरुष संतोषकूं प्राप्त होवै नहीं और रोगादिकोंकरिकै जिस पुरुषका जठराग्नि मंद हुआहै तथा धातुक्षय हुआहै सो पुरुष तौ ता

जठराग्निके प्रज्वलित करणेवासतै तथा धातुकी वृद्धि करणेवासतै नाना प्रकारके औषधोंके अर्थ जहां तहां भ्रमण करै है आनदस्वरूप आत्माविषे सो अज्ञानी पुरुष संतोषकूं प्राप्त होवै नहीं इति । इसी विलक्षणताके बोधन करणेवासतै श्रीभगवाननै (यस्त्वात्मरतिः) या वचनविषे तु यह शब्द कथन करा है । तहां श्रुति । "आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः" अर्थ यह—ब्रह्मवेत्तावोंविषे श्रेष्ठ यह विद्वान पुरुष आनंदस्वरूप आत्माविषे क्रीडा करै है तथा ता आत्माविषेही रति करै है तथा ता आत्माविषेही क्रियावान् होवै है इति । ऐसे ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुषविषे कर्मोंके अधिकारीपणेका कोई हेतु है नहीं या कारणतै ता विद्वान पुरुषकूं कोईभी लौकिक, वैदिक, कार्य कर्त्तव्य नहीं है किंतु सो ब्रह्मवेत्ता पुरुष कृतकृत्यही है । इहां (मानवः) या पदकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन करा जो कोईभी मनुष्यमात्र इस प्रकार आत्मरति होवै है तथा आत्मतृप्त होवै है तथा आत्मसंतुष्ट होवै है सोईही मनुष्य कृतकृत्यभावकूं प्राप्त होवै है ता कृतकृत्यभावकी प्राप्तिविषे ब्राह्मणत्व आदिक उत्तम जातिका किंचित्मात्रभी उपयोग नही है ॥ १७ ॥

हे भगवन् ! आत्मसाक्षात्कारवान् पुरुषकूं भी स्वर्गादिक सुखोंकी प्राप्तिवासतै अथवा मोक्षकी प्राप्तिवासतै अथवा प्रत्यवायकी निवृत्तिवासतै अवश्यकरिकै ते कर्म करणे योग्य है ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहै हैं—

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ॥
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥१८॥

(पदच्छेदः) न । एव । तस्य । कृतेन । अर्थः । न । अकृतेन । इह । कश्चन । न । च । अस्य । सर्वभूतेषु । कश्चित् । अर्थव्यपाश्रयः ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिस विद्वान पुरुषकूं कर्मकरिकै कोईभी प्रयोजन नहीं है तथा कर्मके न करणेकरिकै इस लोकविषे कोईभी अर्थ नहीं है जिस कारणतै इस विद्वान पुरुषकूं सर्व भूतोंविषे कोईभी प्रयोजनका संबंध नहीं है ॥ १८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो पुरुष आत्मरति है तथा आत्मतृप्त है तथा आत्मसंतुष्ट है तिस आत्मवेत्ता पुरुषकूं नित्यनैमित्तिक कर्मोंकरिकै कोईभी अभ्युदयरूप प्रयोजन तथा निःश्रेयसरूप प्रयोजन है नहीं काहेतै तिस विद्वान् पुरुषकूं स्वर्गादिरूप अभ्युदयके प्राप्तिकी तौ इच्छामात्रभी नहीं है। और मोक्षरूप निःश्रेयस तौ कर्मोंकरिकै साध्यही नहीं है। तहां श्रुति। " परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतःकृतेन इति "। अर्थ यह—यह अधिकारी ब्राह्मण पुण्यकर्मकरिकै रचित स्वर्गादिक लोकोंकूं अनित्यता सातिशयता आदिक दोषोंवाला जाणिकै तिन स्वर्गादिक लोकोतैं वैराग्यकूं प्राप्त होवै। जिस कारणतै आत्मरूप नित्य मोक्ष नित्यनैमित्तिक कर्मोंकरिकै प्राप्त होवै नहीं इति। इहां (नैव तस्य) या वचनविषे स्थित जो एव यह शब्द है सो एव शब्द ता आत्मरूप नित्यमोक्षविषे ज्ञानसाध्यताकीभी निवृत्ति सूचन करै है अर्थात् सो आत्मरूप नित्यमोक्ष जैसे कर्मोंकरिकै साध्य नहीं है तैसे ज्ञानकरिकै भी साध्य नहीं है काहेतै सो आत्मरूप मोक्ष वास्तवतै तौ या जीवोंकूं नित्यही प्राप्त है तथापि ता आत्माका जो अज्ञान है सो अज्ञानही ता मोक्षकी अप्राप्ति है। सो अज्ञान तत्वज्ञानमात्रकरिकै निवृत्ति होवै है ता तत्वज्ञानकरिकै अज्ञानके निवृत्त हुए ता विद्वान् पुरुषकूं कर्मोंकरिकै सिद्ध होणेहारा तथा तत्वज्ञानकरिकै सिद्ध होणेहारा कोईभी प्रयोजन बाकी रहै नहीं इति। शंका—हे भगवन् ! नित्यनैमित्तिक कर्मोंके नहीं करणेतै शास्त्रविषे प्रत्यवायकी प्राप्ति कथन करी है यातैं ता विद्वान् पुरुषनै भी प्रत्यवायकी निवृत्ति करणेवासतै ते नित्य नैमित्तिक कर्म अवश्य करणे योग्य है ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं (नाकृतेनेह कश्चन इति) हे

अर्जुन ! तिस ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुषकूं नित्यनैमित्तिक कर्मोंके न करणेक-रिकै इस लोकविषे किंचित्मात्रभी निंदारूप अनर्थ तथा प्रत्यवायकी प्राप्ति-रूप अनर्थ होवै नहीं इति। तहां इस श्लोकके पूर्वार्द्धकरिकै कथन करे हुए सर्व अर्थविषे (न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः) या उत्तरार्द्धकरिकै युक्तिका कथन करैं हैं। हे अर्जुन ! जिस कारणतैं इस ब्रह्मवेत्ता पुरुषकूं ब्रह्मातैं आदिलैके स्थावरपर्यंत सर्व भूतोंविषे कोईभी प्रयोजनका संबंध नहीं है। अर्थात् किसीभी भूतविशेषकूं आश्रयकरिकै कोई क्रियासाध्य अर्थ है नहीं। तिस कारणतैं इस ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुषकूं तिन नित्यनैमित्तिक कर्मोंका करणा तथा तिन कर्मोंका नहीं करणा यह दोनों निष्प्रयोजन हैं। तहां श्रुति। " नैनं कृताऽकृते तपतः " इति। अर्थ यह—इस ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुषकूं कर्मोंका करणा तथा कर्मोंका नहीं करणा यह दोनों तपाय-मान करैं नहीं इति। शंका—हे भगवन् ! इस ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुषकूं भी मोक्षकी प्राप्तिविषे इंद्रादिक देवता नाना प्रकारके विघ्न करैंगे यातें तिन विघ्नोंकी निवृत्ति करणेवासतै ता ब्रह्मवेत्ता पुरुषनैं भी तिन देवतावोंका आराधनरूप कर्म अवश्य करना चाहिये। समाधान—हे अर्जुन ! आत्म-ज्ञानतैं पूर्वही ते देवता विघ्न करैं हैं। आत्मज्ञानकी प्राप्तितैं उत्तर मोक्षकी प्राप्तिविषे ते देवता विघ्न करणेविषे समर्थ होवै नहीं। तहां श्रुति। "तस्य ह न देवाश्च नाभूत्या ईशत आत्मा ह्येषां स भवति "। अर्थ यह—जिस कारणतैं सो ब्रह्मवेत्ता पुरुष इन देवतावोंका आत्मारूप है तिस कारणतैं यह इंद्रादिक देवता तिस ब्रह्मवेत्ता पुरुषके पराभव करणेविषे समर्थ होवैं नहीं इति। यातैं ता ब्रह्मवेत्ता पुरुषकूं विघ्नोंकी निवृत्ति करणे-वासतै सो देवतावोंका आराधनरूप कर्मभी कर्त्तव्य नहीं है इति। ऐसा ब्रह्मवेत्ता पुरुष सप्त भूमिकावोंके भेदकरिकै वसिष्ठभगवान्नैंभी निरूपण करा है। तहां श्लोक। "[१] ज्ञानभूमिः शुभेच्छाख्या प्रथमा परिकीर्तिता। [२] विचारणा द्वितीया स्यात्तृतीया [३] तनुमानसा। [४] सत्त्वापत्तिश्चतुर्थी स्यात्ततो-[५] ऽसंसक्तिनामिका। [६] पदार्थाभावनी षष्ठी सप्तमी [७] तुर्यगा स्मृता॥ " अर्थ

यह-शुभइच्छा १, विचारणा २, तनुमानसा ३, सत्त्वापत्ति ४, असंसक्ति ५, पदार्थाभावनी ६, और तुरीया ७ यह भूमिका ज्ञानकी होवैं हैं तहां नित्यअनित्यवस्तुका विचार तथा इस लोक परलोकके विषयसुखोंतैं वैराग्य तथा शमदमादि षट्कसंपत्ति या तीनों साधनपूर्वक जो फलपर्यंत मोक्षकी इच्छा है जिसकूं मुमुक्षुता कहैं हैं ताका नाम शुभइच्छा है ॥ १ ॥ तिसतैं अनंतर श्रोत्रिय ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप जाइकै वेदांतवचनोंका श्रवण करणा तथा श्रवण करे हुए अर्थका मनन करणा याका नाम विचारणा है ॥ २ ॥ तिसतैं अनंतर निदिध्यासनरूप अभ्यासतैं मनकी एकाग्रता करिकै ता मनविषे जो सूक्ष्म वस्तुके ग्रहण करणेकी योग्यता है याका नाम तनुमानसा है ॥ ३ ॥ यह तीनों भूमिका ज्ञानके प्राप्तिका साधनरूप हैं । और या तीनों भूमिकावोंविषे यह सर्व जगत् भेदकरिकै विशिष्ट हुआ प्रतीत होवै है । यातैं यह तीनों भूमिका जाग्रत् अवस्था या नामकरिकै कही जावैं हैं । यह वार्त्ताभी वसिष्ठभगवान्नैं कथन करी है । तहां श्लोक । " भूमिकात्रितयं त्वेतद्राम जाग्रदिति स्थितम् । यथावद्भेदबुद्धचेदं जगज्जाग्रति दृश्यते " अर्थ यह-हे रामचंद्र ! जैसे जाग्रत अवस्थाविषे यह जगत् यथावत् भेदबुद्धिकरिकै देख्या जावै है तैसे या तीन भूमिकावोंविषेभी यह सर्व जगत् यथावत् भेदबुद्धिकरिकै देख्या जावै है । यातैं शुभइच्छा, विचारणा, तनुमानसा यह तीनों भूमिका जाग्रत अवस्था या नामकरिकै कही जावै हैं इति । तिसतैं अनंतर या अधिकारी पुरुषकूं 'तत्त्वमसि' आदिक वेदांतवाक्योंतैं निर्विकल्पक ब्रह्मात्मैक्यविषयक साक्षात्कार होवै है याका नाम सत्त्वापत्ति है ॥ ४ ॥ और ता सत्त्वापत्ति नामा चतुर्थ भूमिकाविषे यह सर्व जगत् स्वप्नकी न्याईं मिथ्यारूपकरिकै प्रतीत होवै है । या कारणतैं सा फलरूप सत्त्वापत्ति स्वप्नअवस्था या नामकरिकै कही जावै है । यह वार्त्ताभी वसिष्ठ भगवान्नैं कथन करी है । तहां श्लोक । अद्वैते स्थैर्यमायाते द्वैते प्रशममागते । पश्यति स्वप्नवल्लोकं चतुर्थी भूमिका मता" । अर्थ यह-जिस

कालविषे अद्वैतकी स्थिरता प्राप्त होवै है तथा द्वैतकी निवृत्ति होवै है तथा यह विद्वान् पुरुष सर्व जगत्कूं स्वप्नकी न्यांई मिथ्या देखै है । तिस कालविषे चतुर्थी भूमिका कही जावै हैं इति। ता चतुर्थी भूमिकाकूं प्राप्त हुआ योगी पुरुष ब्रह्मवित् या नामकरिकै कह्या जावै है । और पंचमी, षष्ठी, सप्तमी यह तीनों भूमिका तौ जीवन्मुक्तिकेही अवांतर भेद हैं । तहां सविकल्पक समाधिके अभ्यासकरिकै निरुद्ध हुआ जो मन है ता निरुद्ध मनविषे जो निर्विकल्पक समाधि अवस्था है ताका नाम असंसक्ति है ॥ ५ ॥ ता असंसक्ति नाम पंचमी भूमिकाकूं सुषुप्ति या नामकरिकै कथन करैं हैं । और ता पंचमी भूमिकावाला योगी पुरुष आपही समाधितैं व्युत्थानकूं प्राप्त होवै है यातैं सो पंचमी भूमिकावाला योगी पुरुष ब्रह्मविद्वर या नामकरिकै कह्या जावै है । तिसतै अनंतर ता असंसक्ति नामा पंचमी भूमिकाके परिपक्वताकरिकै चिरकाल पर्यंत स्थिर हुई जो सा निर्विकल्पक समाधि अवस्था है ताका नाम पदार्थाभावनी है ॥ ६ ॥ सा पदार्थाभावनी नाम षष्ठी भूमिका गाढसुषुप्ति या नामकरिकै कही जावै है। ता पदार्थाभावनी नामा षष्ठी भूमिकाकूं प्राप्त हुआ सो योगी पुरुष आपही समाधितैं उठै नहीं । किंतु दूसरे शिष्यादिकोंके प्रयत्नकरिकै ही सो योगी पुरुष समाधितैं व्युत्थानकूं प्राप्त होवै है। सो षष्ठी भूमिकावाला योगी पुरुष ब्रह्मविद्वरीयान् या नामकरिकै कह्या जावै है। यह वार्त्ता भी वसिष्ठभगवाननैं कथन करी है। तहां श्लोक। "पंचमीं भूमिकामेत्य सुषुप्तिपदनामिकाम् । षष्ठीं गाढसुषुप्त्याख्यां क्रमात्पतति भूमिकाम्" ।अर्थ यह-यह योगी पुरुष सुषुप्ति नामा पंचमी भूमिकाकूं प्राप्त होइकै क्रमतैं गाढ सुषुप्तिनामा षष्ठी भूमिकाकूं प्राप्त होवै है इति । और जिस समाधि अवस्थातैं यह योगी पुरुष आपभी व्युत्थानकूं प्राप्त होवै नहीं । तथा अन्य शिष्यादिकोंकरिकैभी व्युत्थानकूं प्राप्त होवै नहीं किंतु सर्वथा भेददर्शनके अभावतैं तद्रूपही होवै है । तथा अपणे प्रयत्नबिनाही परमेश्वरकरिकै प्रेरणा करे हुए प्राणवायुके वशतैं तथा प्रारब्धकर्मके वशतैं जिस विद्वान् पुरुषके

देहका व्यवहार अन्य लोकही सिद्ध करैहैं तथा जो विद्वान् पुरुष सर्वदा परिपूर्ण परमानंदघन हुआ स्थित होवै है, ऐसी अवस्था तुरीया नामा सप्तमी भूमिका कही जावै है ॥ ७ ॥ ता सप्तमी भूमिकाकूं प्राप्त हुआ सो योगी पुरुष ब्रह्मविद्वरिष्ठ या नामकरिकै कह्या जावै है। इन सप्त भूमिकावोंके संग्रहका यह श्लोक है। "चतुर्थी भूमिका ज्ञानं तिस्रः स्युः साधनं पुरा । जीवन्मुक्तेरवस्थास्तु परास्तिस्रः प्रकीर्तिताः"। अर्थ यह-शुभइच्छा, विचारणा, तनुमानसा यह पूर्वली तीन भूमिका तौ साधनरूप हैं । और सत्वापत्ति नामा चतुर्थी भूमिका ज्ञानरूप है । और असंसक्ति, पदार्थाभावनी, तुरीया यह तीन भूमिका जीवन्मुक्तिकी अवस्थाविशेष हैं इति। इन सप्त भूमिकावोंके कहणेका इहां प्रसंगविषे यह प्रयोजन है। जो पुरुष शुभइच्छा, विचारणा, तनुमानसा या साधनरूप प्रथम तीन भूमिकावोंकूंभी प्राप्त भया है । सो पुरुषभी जबी कर्मोंका अधिकारी नहीं है तबी चतुर्थी भूमिकावाला ज्ञानवान् पुरुष तथा उत्तर तीन भूमिकावाला जीवन्मुक्त पुरुष तिन कर्मोंका अधिकारी नहीं है याकेविषे क्या कहणा है ॥ १८॥

जिस कारणतैं तूं अर्जुन इस प्रकारका ज्ञानवान् है नहीं किंतु केवल कर्मोंकाही तूं अधिकारी है तिस कारणतैं फलकी इच्छातैं रहित होइकै तूं नित्यनैमित्तिक कर्मोंकूंही कर या प्रकारके अर्थकूं श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति कथन करै हैं-

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ॥
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ १९ ॥

(पदच्छेदः) तस्मात् । असक्तः । सततम् । कार्यम् । कर्म । समाचर । असक्तः । हि । आचरन् । कर्म । परम् । आप्नोति । पूरुषः ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिस कारणते तूं फलकामनातैं रहित होइकै सर्वदा अवश्य करणेयोग्य नित्यनैमित्तिक कर्मकूं भलीप्रकारतैं कर जिस

कारणतैं यह पुरुष फलकी कामनातैं रहित होइकै तिस कर्मकूं करता हुआ मोक्षकूंही प्राप्त होवै है ॥ १९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जिस कारणतैं तूं ज्ञानवान् है नहीं किंतु केवल कर्मोंकाही अधिकारी है । तिस कारणतैं "यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात्" इत्यादिक श्रुतियोंनैं विधान करेहुए तथा (तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषंति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन) इस श्रुतिनैं आत्मज्ञानविषे उपयोग कथनकरचा है जिन्होंका ऐसे जे नित्यनैमित्तिक कर्म हैं तिन कर्मोंकूं तूं फलकी इच्छातैं रहित होइकै श्रद्धाभक्तिपूर्वक निरंतर कर जिस कारणतैं यह पुरुष फलकी इच्छातैं रहित होइकै निरन्तर तिन नित्यनैमित्तिककर्मोंकूं करताहुआ अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा तथा आत्मज्ञानद्वारा मोक्षकूंही प्राप्तहोवैहै ॥ १९ ॥

हे भगवन् ! ज्ञानके प्राप्तिकी इच्छावान् पुरुषकूंभी ता ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्तिवास्तै श्रवणमननिदिध्यासनके अनुष्ठान अर्थ सर्वकर्मोंका त्यागरूप संन्यास शास्त्रविषे विधान करचा है यातैं केवल ज्ञानवान् पुरुषकूंही तिन कर्मोंका अनधिकार नहीं है किंतु ता ज्ञानके प्राप्तिकी इच्छावान् विरक्तपुरुषकूंभी तिन कर्मोंका अनधिकारही है यातैं ज्ञानके प्राप्तिकी इच्छावान् तथा विरक्त ऐसा जो मैं अर्जुन हूं तिस मैं अर्जुननेभी ते कर्म परित्यागकरणेकूंही योग्य हैं । ऐसी अर्जुनकी शंकाकूं श्रीभगवान् क्षत्रियराजाकूं संन्यासका अनधिकार प्रतिपादन करिकै निवृत्त करै हैं—

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ॥
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥ २० ॥

(पदच्छेदः) कर्मणा । एव । हि । संसिद्धिम् । आस्थिताः । जनकादयः । लोकसंग्रहम् । एव । अपि । संपश्यन् । कर्तुम् । अर्हसि ॥ २० ॥

(पदार्थः)हे अर्जुन ! जिस कारणतै पूर्व जनकादिक क्षत्रियराजे कर्मकरिकै ही ज्ञाननिष्ठाकूं प्राप्त होवेभयेहैं तिस कारणतैं तूंभी कर्मही करणेकूं योग्यहै किंवा लोकसंग्रहकूं देखताहुआ भी तूं कर्मकरणेकूं ही योग्य है ॥ २० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! श्रुतिस्मृतिविषे प्रसिद्ध जे जनकराजा अजातशत्रुराजा अश्वपतिराजा भगीरथराजा इत्यादिक क्षत्रियराजे हैं ते जनकादिक विद्वान् राजेभी नित्यनैमित्तिककर्मोंकरिकैही अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा श्रवणमननादिकोंकरिकै साध्य ज्ञाननिष्ठाकूं प्राप्त होवेभये हैं। कोई कर्मोकेत्यागकरिकै ता ज्ञाननिष्ठाकूं नहीं प्राप्त होते भये हैं । यह वार्त्ता जिसकारणतै यथार्थहै तिस कारणतैं तूं क्षत्रिय अर्जुनभी ज्ञानकी इच्छावाला हुआ अथवा विद्वान् हुआ सर्वप्रकारतैं कर्महीकरणेकूं योग्यहै। कर्मोके त्याग करणेकूं तू योग्य नहीं है काहेतैं (ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरंति) यह जो संन्यासआश्रमका विधायक श्रुतिवचन है ता वचनविषे ब्राह्मणकाही संन्यासविषे अधिकार कथनकऱ्याहै क्षत्रियवैश्यका अधिकार कथन कऱ्या नहीं। जैसे (स्वाराज्यकामो राजा राजसूयेन यजेत) इस वचनविषे राजसूययज्ञविषे क्षत्रियराजाकाही अधिकारकथनकऱ्याहै ब्राह्मणादिकोंका अधिकार कथनकऱ्या नहीं । और (चत्वार आश्रमा ब्राह्मणस्य त्रयो राजन्यस्य द्वौ वैश्यस्य) अर्थ यह-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास यह च्यारि आश्रम ब्राह्मणकेही होवै हैं। और संन्यासकूं छोडिकै तीन आश्रम क्षत्रियराजाके होवैं हैं। और ब्रह्मचर्य गृहस्थ यह दो आश्रम वैश्यके होवैं है इति । इत्यादिक अनेक श्रुतिस्मृतिवचनोंविषे क्षत्रियवैश्यकूं संन्यासके अभावका कथन कऱ्याहै । तिन श्रुतिवचनोंके तात्पर्यकूं जानणेहारे ते जनकादिकक्षत्रियराजे नित्यनैमित्तिककर्मोंकरिकैही ज्ञाननिष्ठाकूं प्राप्त होते भये हैं। तिन कर्मोंके त्यागरूपसंन्यासकरिकै ते जनकादिक ज्ञाननिष्ठाकूं नहीं प्राप्त होवे भये हैं इति । किंवा (सर्वे राजाश्रिता धर्मा राज

धर्मस्य धारकः)। अर्थ यह—श्रुतिस्मृतिकरिकै प्रतिपादित सर्वधर्म राजाके आश्रित रहैं हैं। तथा यह राजाही सर्वधर्मका धारणकरणेहारा होवै है। या स्मृतिवचनतैं सर्व वर्णआश्रमके धर्मोंका प्रवर्तकपणा क्षत्रियराजाविषे सिद्ध होवै है या कारणतैंभी यह क्षत्रियराजा अवश्यकरिकै कर्मोंकूं करै। या अर्थकूं श्रीभगवान् कहै हैं (लोकसंग्रहमेवापीति) लोकोंकूं आपणे-आपणेधर्मविषे प्रवृत्त करणा तथा अधर्मतैं निवृत्त करणा याका नाम लोकसंग्रह है। ता लोकसंग्रहकूं देखताहुआभी तथा पूर्वजनकादिक क्षत्रियराजावोंके शिष्टाचारकूं देखता हुआभी तूं अर्जुन नित्यनैमित्तिककर्मोंके करणेकूंही योग्य है। तात्पर्य यह—क्षत्रियजन्मकी प्राप्तिकरणेहारे कर्मोंनैं आरंभ कर्या है शरीर जिसका ऐसा जो तूं अर्जुन है सो तूं अर्जुन विद्वान्हुआभी जनकादिकोंकी न्याईं प्रारब्ध कर्मके बलकरिकै ता लोकसंग्रहके वास्तै कर्मकरणेकूंही योग्य है। कोई कर्मोंके त्यागकरणेके योग्य तूं नहीं है। जिसकारणतैं कर्मोंके संन्यासकरणे योग्य ब्राह्मणशरीर तुम्हारेकूं प्राप्तभया नहीं इति। इसी प्रकारके श्रीभगवान्के अभिप्रायकूं जानणेहारे भगवान् भाष्यकारोंने ब्राह्मणकूंही संन्यासविषे अधिकार है अन्य-क्षत्रियादिकोंकूं संन्यासविषे अधिकार नहीं है या प्रकारका निर्णय कर्या है। और (सर्वाधिकारविच्छेदि ज्ञानं चेदभ्युपेयते। कुतोधिकारनियमो व्युत्थाने क्रियते बलात्) अर्थ यह—सर्व अधिकारका विच्छेद करणेहारा ज्ञान जबी क्षत्रियवैश्यकूं अंगीकार करतेहो तबी संन्यासविषे ब्राह्मणकाही अधिकार है क्षत्रियवैश्यका नहीं है। या प्रकारका संन्यासके अधिकारका नियम बलात्कारसैं किसवास्तै अंगीकार करते हो किंतु यह नियमभी नहीं मान्या चाहिये इति। इत्यादिकवचनोंकरिकै जो वार्तिककारनैं क्षत्रियवैश्यकूंभी संन्यासका अधिकार सिद्ध कर्या है सो प्रौढिवादतैं सिद्ध कर्या है। सर्वथा अनुपपन्नअर्थकूंभी आपणीप्रज्ञाके बलतैं सिद्धकरदेणा याका नाम प्रौढिवाद है। अथवा क्षत्रियवैश्यकूं संन्यासका प्रतिपादनकरणेहारे वचनोंका भरतऋषभादिकोंकी न्याईं अलिंगविद्वत्संन्यासविषे तात्-

यहै इति । सर्व प्रकारतैं दंडादिकचिह्नपूर्वक विविदिषासंन्यासविषे एक ब्राह्मणकाही अधिकार है क्षत्रियादिकोंका है नहीं ॥ २० ॥

हे भगवन् ! जो कदाचित मैं अर्जुन तिन कर्मोंकूं करौंभी तौभी दूसरेलोक तिन कर्मोंकूं किसप्रकार करैंगे । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् दूसरे लोक श्रेष्ठपुरुषोंके आचारके अनुसारही प्रवृत्त होवैं हैं याप्रकारका उत्तर कहैं हैं-

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ॥
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ २१ ॥

(पदच्छेदः) यत् । यत् । आचरति । श्रेष्ठः । तत् । तत् । एव । इतरः । जनः । सः । यत् । प्रमाणम् । कुरुते । लोकः । तत् । अनुवर्त्तते ॥ २१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! श्रेष्ठपुरुष जिस जिसकर्मकूं करै है तिसी तिसी कर्मकूं ही दूसरे जनभी करैहैं और सो श्रेष्ठपुरुष जिसकूं प्रमाण करै है तिसकूंही दूसरेलोग भी प्रमाण करैं हैं ॥ २१ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! सर्वलोकोंविषे प्रधानभूत जे राजादिक श्रेष्ठ पुरुष हैं ते राजादिकश्रेष्ठपुरुष जिसजिस शुभकर्मकूं अथवा अशुभकर्मकूं करैं हैं तिसी तिसी शुभ कर्मकूं अथवा अशुभकर्मकूं तिन राजादिकोंके आज्ञाविषे चलणेहारे दूसरे जनभी करैं हैं । तिन राजादिकोंतैं स्वतंत्र होइकै ते दूसरे जन किंचित्मात्रभी कार्यकूं करैं नहीं । शंका-हे भगवन्! ते दूसरेलोक शास्त्रकूं भलीप्रकारतैं विचारकरिकै शास्त्रतैं विरुद्ध राजादिक श्रेष्ठपुरुषोंके आचारकूं परित्यागकरिकै केवलशास्त्रविहित आचारकूं किसवास्तै नहीं करते ऐसी अर्जुनकी शंकाकेहुए तिन दूसरे लोगोंकूं श्रेष्ठाचारकी न्याईं प्रमाणताका निश्चयभी तिनश्रेष्ठपुरुषोंके अनुसारही होवै है याप्रकारका उत्तर श्रीभगवान् कथन करैं हैं (स यत्प्रमाणं कुरुते, इति) हे अर्जुन ! ते राजादिकश्रेष्ठपुरुष जिस लौकिकपदार्थकूं अथवा

वैदिकपदार्थकूं प्रमाणरूपकरिकै अंगीकारकरैं हैं तिसीही लौकिकपदार्थकूं तथा वैदिकपदार्थकूं दूसरेलोकभी प्रमाणरूपकरिकै अंगीकार करैं हैं। ते दूसरेलोक तिन राजादिकश्रेष्ठपुरुषोंतैं स्वतंत्रहोइकै किसीभी पदार्थकूं प्रमाणरूपकरिकै अंगीकार करते नहीं। यातैं हे अर्जुन। सर्वलोकोंविषे प्रधानभूत जो तूं राजाहै तिस तुमनैं लोकोंके संरक्षणवासतै अवश्यकरिकै कर्मकरणेकूं योग्य है। तुम्हारी शुभकर्मविषे प्रवृत्तिकूं देखिकरिकै दूसरेलोकभी अवश्यकरिकै तिन शुभकर्मोंविषे प्रवृत्तहोवैंगे। जिसकारणतैं राजादिक प्रधानपुरुषोंके अनुसारही दूसरे सर्वलोकोंके व्यवहार होवैं हैं ॥ २१ ॥

हे अर्जुन! दूसरे लोकोंकूं शुभकर्मविषे प्रवृत्तकरणेवासतै राजादिकश्रेष्ठपुरुषोंनै अवश्यकरिकै शुभकर्मोंविषे प्रवृत्तहोणा या अर्थविषे मैं कृष्णभगवान्ही दृष्टांत हूं इस अर्थकूं तीन श्लोकोंकरिकै श्रीभगवान् कहैं हैं—

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ॥
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त्त एव च कर्मणि ॥२२॥

(पदच्छेदः) नँ । मे । पार्थं । अस्ति । कर्त्तव्यम् । त्रिषु । लोकेषु । किंचन । नँ । अनवाप्तम् । अवाप्तव्यम् । वर्ते । एव । चँ । कर्मणि ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! हमारेकूं तीन लोकोंविषे किंचित् मात्रभी करणेयोग्य नहीं है जिस कारणतैं हमारेकूं पूर्व अप्राप्तफल किंचित्मात्रभी प्राप्तहोणेयोग्य नहीं है तौभी मैं कर्मविषे प्रसिद्ध वर्त्तताही हूं ॥ २२ ॥

भा० टी०—जैसे गृहके स्वामीकूं ता गृहविषे स्थित सर्व पदार्थ प्राप्तही हैं तैसे सर्वब्रह्मांडका स्वामी जो मैं कृष्णभगवान् हूं तिस हमारेकूं ता ब्रह्मांडविषे स्थित सर्व पदार्थ प्राप्तही हैं। कोईभी पदार्थ

हमारेकूं अप्राप्त नहीं है। और लोकविषे पूर्व अप्राप्तवस्तुकी प्राप्तिवासतैंही प्रयत्न करैं हैं। पूर्वप्राप्तवस्तुकी प्राप्तिवासतै कोईभी प्रयत्न करतानहीं। यातैं तीन लोकोंविषे किसी पदार्थके प्राप्तिका उद्देशकरिकै हमारेकूं किंचित्मात्रभी कर्तव्य नहीं है। तौभी मैं कृष्णभगवान् वेदविहित शुभकर्मोंविषे प्रवृत्त होताही हूं। तिन शुभकर्मोंका मैं कदाचित्भी परित्याग करता नहीं। तिन शुभकर्मोंविषे हमारी प्रवृत्ति तुम्हारेकूंभी प्रत्यक्षही सिद्धहै। इसीप्रसिद्धिके बोधनकरणेवासतै श्रीभगवान्नैं (वर्त्त एव च) या वचनविषे स्थित च यह शब्द कथनकरयाहै। और (हे पार्थ) या संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचनकरया। शुद्ध क्षत्रियवंशविषे उत्पन्न होणेतैं तूं अर्जुन ! हमारेसमानही शूरवीर है। यातैं हमारेन्याई तुम्हारेकूं भी शुभकर्मोंविषे प्रवृत्तहोणाही उचित है॥ २२॥

हे भगवन् ! आप शुभकर्मोंविषे प्रवृत्तहोइकै दूसरे लोकोंकूंभी विनशुभकर्मोंविषे प्रवृत्तकरणा या प्रकारके लोकसंग्रह करणेका कोई फल है नहीं। यातैं सो लोकोंका संग्रहभी तुम्हारेकूं करणे योग्य नहीं है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं-

यदि ह्यहं न वर्त्तेयं जातु कर्मण्यतंद्रितः॥
मम वर्त्मानुवर्त्तंते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥२३॥

(पदच्छेदः) यदि। हि। अहम्। न। वर्त्तेयम्। जातु। कर्मणि। अतंद्रितः। मम। वर्त्म। अनुवर्त्तंते। मनुष्याः। पार्थ। सर्वशः॥ २३॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो कदाचित् मैं कृष्ण भगवान् आलसतैंरहित होइकै शुभकर्मविषे नहीं प्रवर्त्तहोवौं तौ कर्मके अधिकारी मनुष्य हमारे मार्गकूंही सर्वप्रकार करिकै अंगीकार करैंगे॥ २३॥

भा०टी०-हे अर्जुन ! मैं अभी कृतार्थ हुआहूं कर्मोंके करणेकरिकै अभी हमारेकूं किंचित्मात्रभी अर्थ सिद्धकरणेयोग्य नहीं रह्या या प्रकारकी

कृतकृत्यबुद्धिकरिकै जो कदाचित् मैं कृष्णभगवान् आलसतैं रहित होइकै शुभकर्मोंविषे नहीं प्रवृत्तहोवौंगा तो जितनेककर्मोंके अधिकारी मनुष्य हैं ते सर्वमनुष्य हमारेकूं शुभकर्मोंतैं रहित हुआ देखिकै आपभी शुभकर्मोंतैं रहित होवैंगे। काहेतैं यह कृष्ण भगवान् सर्वज्ञ हैं या प्रकारकी हमारेविषे सर्वज्ञत्वबुद्धि करिकै यह सर्व अधिकारी मनुष्य सर्व प्रकारतैं हमारेही मार्गकूं अंगीकार करैं ॥ २३ ॥

हे भगवान् ! सर्वमनुष्योंविषे श्रेष्ठ जो आपहो तिस आपके शुभकर्मोंके त्यागरूप मार्गकूं अंगीकार करणा इन अधिकारी मनुष्योंकूं उचितही है । ताकरिकै तिन अधिकारीमनुष्योंकूं कौन दोष है । ऐसी अर्जुनकी शंकाकेहुए श्रीभगवान् उत्तर कहैंहैं—

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ॥
संकरस्य च कर्त्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥ २४ ॥

(पदच्छेदः) उत्सीदेयुः । इमे । लोकाः । न । कुर्याम् । कर्म । चेत् । अहम् । संकरस्य । च । कर्त्ता । स्याम् । उपहन्याम् । इमाः । प्रजाः ॥ २४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो कदाचित् मैं ईश्वर शुभकर्मकूं नहीं करौंगा तौ यह सर्वलोक नाशकूं प्राप्तहोवैंगे तेथा मैंही वर्णसंकरका कर्त्ता होवौंगा तथा इस सर्वप्रजाकूं मैंही हनन करौंगा ॥ २४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! सर्वका ईश्वर मैं कृष्ण भगवान् जो कदाचित् शास्त्रविहित शुभकर्मोंकूं नहीं करौंगा तौ हमारे अनुसार वर्त्तणेहारेमनु आदिक श्रेष्ठ पुरुषभी तिन शुभकर्मोंविषे प्रवृत्त नहीं होवैंगे यातैं जलकी वृष्टिद्वारा सर्वलोकोंके स्थितिका कारणरूप जे यज्ञादिक कर्महैं तिन सर्व कर्मोंका लोप होवैगा। तिन सर्व कर्मोंके लोपहुए यह सर्वलोक नाशकूं प्राप्त होवैंगे। तिन सर्वलोकोंके नाशतैं अनंतर जो वर्णसंकर होना है तिस वर्णसंकरकाभी मैंही करणेहारा होवौंगा तिस करके मैंही इस सर्वप्रजाकूं हनन करणेहारा

होवैगा । सो यह वार्त्ता हमारेकूं अत्यन्त अनुचित है । काहेतें सर्वप्रजाके अनुग्रह करणेवासतैं प्रवृत्त हुआ जो मैं कृष्णभगवान्हूं तिस हमारेकूं धर्मका लोपकरिकै सर्वप्रजाका हनन करणा उचित नहीं है इति। अथवा (यद्यदाचरति श्रेष्ठः) इत्यादिकच्यारिश्लोकोंका यह दूसरा अर्थ करना । हे अर्जुन ! केवललोकसंग्रहकूं देखताहुआही तूं कर्मकरणेकूं योग्यनहीं है किंतु श्रेष्ठाचारतैंभी तूं कर्मकरणेकूंयोग्य है । इस अर्थकूं श्रीभगवान् कहैं हैं (यद्यदाचरति श्रेष्ठः इति) यातैं सर्वप्राणियोंतैं श्रेष्ठ जो मैं कृष्ण भगवान्हूं तिस हमारा जिसप्रकारका आचार है तिसी प्रकारका आचार हमारे अनुसार वर्त्तणेहारेतैं अर्जुननैंभी करणेयोग्य है । हमारेतैं स्वतन्त्र होइकै किंचित्मात्रभी आचार तुम्हारेकूं करणेयोग्य नहीं है । शंका—हे भगवन् ! सो आपका आचार किस प्रकारका है जो आचार हमारेकूं अवश्यकरिकै अंगीकारकरणेकूं योग्य है । ऐसी अर्जुनकी शंकाकेहुए श्रीभगवान्(न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यम्) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै तां आपणे आचारका कथन करताभया ॥ २४ ॥

हे भगवन् ! आप ईश्वरहो यातैं लोकसंग्रहवासतैं शुभकर्मोंकूंकरतेहुएभी मैं सर्वदा अकर्त्ताहूं या प्रकारके कर्तृत्वअभिमानके अभावतें आपकी किंचित् मात्रभी हानि होवै नहीं और मैं अर्जुनतो जीवहूं यातैं लोकसंग्रहवासतैं तिन शुभकर्मोंके करणेतें मैं कर्मोंका कर्त्ताहूं या प्रकारके कर्तृत्व अभिमान करिकै हमारे ज्ञानका अभिभव अवश्य करिकै होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाकेहुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं—

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वंति भारत ॥
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्पुर्लोकसंग्रहम् ॥ २५ ॥

(पदच्छेदः) सक्ताः । कर्मणि । अविद्वांसः । यथा । कुर्वंति। भारत । कुर्यात । विद्वान् । तथा । असक्तः चिकीर्पुः लोकसंग्रहम् ॥ २५ ॥

(पदार्थः) हे भारत ! जैसे अज्ञानीपुरुष कर्मविषे अभिनिवेशवाले हुए तिसकर्मकूं करै हैं तैसे लोकसंग्रहके करणेकी इच्छावाला विद्वानपुरुष अभिनिवेशतैं रहित हुआ ताकर्मकूं करै ॥ २५ ॥

भा० टी०–हे भारत ! आत्मज्ञानतैं रहित अज्ञानी पुरुष मैं कर्मोंका कर्त्ता हूं याप्रकारके कर्तृत्व अभिमान करिकै तथा स्वर्गादिक फलकी इच्छा करिकै यज्ञादिक कर्मोंविषे अभिनिवेशवाले हुए जिसप्रकार श्रद्धा भक्तिपूर्वक तिन यज्ञादिक कर्मोंकूं करै हैं तिसी प्रकार लोक संग्रह करणेकी इच्छावाला विद्वान् पुरुषभी श्रद्धाभक्तिपूर्वक तिन यज्ञादिक कर्मोंकूं करै। परंतु सो विद्वान् पुरुष कर्तृत्व अभिमानतैं रहित हुआ तथा स्वर्गादिक फलकी इच्छाते रहित हुआ तिन शुभकर्मोंकूं करै। इहां (हे भारत) या संबोधनकरिकै श्रीभगवाननैं अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन कऱ्या, भरतवंशविषे जाकी उत्पत्ति होवै ताका नाम भारतहै। अथवा भा नाम. ज्ञानका है ता ज्ञानविषे जो प्रीतिवाला होवै ताका नाम भारत है। ऐसे भारतनामवाला तूं अर्जुन है यातें अज्ञानीपुरुषकी न्याईं विद्वान् पुरुषभी लोकसंग्रहवास्ते शुभकर्मोंकूं करै या प्रकारका जो शास्त्रका अर्थ है तिस अर्थके धारणकरणेकूं तूं योग्य है। ता अर्थके धारणकरणेतैंही तुम्हारेविषे सो भारतनाम सार्थक होवैगा ॥ २५ ॥

हे भगवन् ! विद्वान् पुरुषने शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करिकैही लोकसंग्रह करणा। तत्त्वज्ञानके उपदेश करिकै सो लोकसंग्रह नहीं करणा याकेविषे कौन हेतु है ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहै हैं–

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम् ॥
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥ २६ ॥

(पदच्छेदः) न। बुद्धिभेदम्। जनयेत्। अज्ञानाम्। कर्मसंगिनाम्। जोषयेत्। सर्वकर्माणि। विद्वान्। युक्तः। समाचरन् ॥ २६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह विद्वान् पुरुष कर्मके संगी अविवेकीपुरुषोंके बुद्धिभेदकूं नहीं उत्पन्नकरै किंतु सो विद्वान् पुरुष आदरपूर्वक सर्व कर्मोंकूं करता हुआ तिन अविवेकी पुरुषोंकूंभी तिन कर्मोविषेही जोडै २६ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! कर्तृत्वअभिमानकरिकै तथा स्वर्गादिक फलकी इच्छाकरिकै यज्ञादिक कर्मोंविषे अभिनिवेशवाले जे अज्ञानीपुरुष है तिन अज्ञानीपुरुषोंकी मै इस कर्मकूं करौंगा तथा मैं इसफलकूं भोगौगा या प्रकारकी जाबुद्धि है ता बुद्धिके भेदकूं यह विद्वान् पुरुष नहीं उत्पन्नकरै । अर्थात् तूं आत्मा अकर्ता है तथा अभोक्ता है या प्रकारका उपदेशकरिकै तिन अज्ञानी पुरुषोंके बुद्धिकूं तिन शुभकर्मोंतै चलायमान नहीं करै किंतु लोकसंग्रहकरणेकी इच्छावाला सो विद्वान् पुरुष आप श्रद्धाभक्तिपूर्वक तिन शुभकर्मोंकूं करताहुआ तिन अज्ञानीपुरुषोंकीभी तिन शुभकर्मों विषे श्रद्धा उत्पन्नकरिकै तिनअज्ञानी पुरुषोंकूं तिन शुभकर्मोंविषेही निरंतरजोडै काहेतै शास्त्रविहित शुभकर्मोंके अनुष्ठानतैं जिस पुरुषका अंतःकरण शुद्ध हुआ है सो पुरुषही अकर्त्ता आत्माके उपदेशका अधिकारी होवै है अशुद्ध अन्तःकरणवाला पुरुष अकर्त्ताआत्माके उपदेशका अधिकारी होवै नहीं । ऐसे अनधिकारी पुरुषोंके प्रति अकर्त्ताआत्माके उपदेशकरिकै तिन्होंकी बुद्धिकूं शुभकर्मोंतै चलायमान किये हुए तिन पुरुषोंकी शुभ कर्मोंविषे श्रद्धा निवृत्त होइजावै है यातैं तिन अज्ञानी पुरुषोंकूं स्वर्गादिक उत्तमलोकोंकीभी प्राप्ति होवै नहीं तथा अशुद्ध अन्तःकरणविषे आत्माका ज्ञानभी उत्पन्न होवै नहीं यातें वे अज्ञानीपुरुष भोग मोक्ष दोनोंतैं भ्रष्ट होवै हैं । यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषेभी कही है । तहां श्लोक ॥ "अज्ञस्यार्द्धप्रबुद्धस्य सर्वं ब्रह्मेति यो वदेत् ॥ महानिरयजालेषु स तेन विनियोजितः ॥ " अर्थ यह-अंतःकरणकी शुद्धितैं रहित तथा विषयोंविषे आसक्त ऐसा जो केवल कर्मोंका अधिकारी अर्धप्रबुद्ध अज्ञानी पुरुष है तिस अज्ञानीपुरुषके प्रति जो विद्वान् पुरुष तूं मैं यह सर्वजगत् ब्रह्मरूपही है या प्रकारका उपदेश करै है तिस विद्वान् पुरुषने सो अज्ञानी

पुरुष महारौरवनरकादिकोंविषे प्राप्त करचा इति। यातैं यह विद्वान्पुरुष आप शुभकर्मोविषे प्रवृत्त होइकै तिन अज्ञानीपुरुषोंकूं भी शुभकर्मविषेही प्रवृत्त करै। तिन शुभकर्मोंके करणेतैं जभी तिन अज्ञानीपुरुषोंके अन्तःकरणकी शुद्धि होवै तभी यह विद्वान् पुरुष तिन अज्ञानीपुरुषोंके प्रति अकर्त्ता अभोक्ता आत्माका उपदेश करै ॥ २६ ॥

तहां अज्ञानी पुरुष तथा ज्ञानी पुरुष दोनों विषे शुभकर्मोंके अनुष्ठानकी समानता हुएभी कर्तृत्व अभिमान तथा ता कर्तृत्वअभिमानका अभाव या दोनों हेतुवोंकरिकै अज्ञानी तथा ज्ञानी दोनोंकी विलक्षणताकूं दिखावता हुआ श्रीभगवान् (सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो) या पूर्वउक्तश्लोकके अर्थकूं दो श्लोकोंकरिकै स्पष्ट करै हैं—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ॥
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥ २७ ॥

(पदच्छेदः) प्रकृतेः । क्रियमाणानि । गुणैः । कर्माणि । सर्वशः । अहंकारविमूढात्मा । कर्त्ता । अहम् । इति । मन्यते ॥ २७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मायाके गुणोंनैं सर्वप्रकारतैं सर्वकर्म करीते हैं अहंकार करिकै विमूढ हुआहै अंतःकरण जिसका ऐसा अज्ञानी पुरुष मैं कर्मोंका कर्त्ता हूं याप्रकार मानै हैं ॥ २७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जा माया सत्त्व रज तम या तीनगुणरूप है तथा मिथ्या ज्ञानरूप है तथा (देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्) इस श्वेताश्वतरउपनिषद्की श्रुतिविषे जिस मायाकूं परमेश्वरकी शक्तिरूपकरिकै कथन करचाहै ता मायाका नाम प्रकृतिहै। तहां श्रुति। (मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्) अर्थ यह—मायाकूं जगत्का प्रकृति जानणा तथा मायाउपाधिवालेकूं महेश्वर जानणा इति। ऐसी मायारूप प्रकृतिके विकाररूप जितनैकी देह इंद्रिय अंतःकरणादिक कार्यकारणरूप

गुणहैं तिन गुणोंनैंही सर्वप्रकारतें लौकिक वैदिककर्म करितेहैं। यह असंगआत्मा तिनकर्मोंकूं करता नहीं तथापि कार्यकारणरूप संघातविषे आत्मत्वबुद्धिरूप जो अहंकार है ता अहंकारकरिकै विमूढहुआहै क्या विवेक करणेविषे असमर्थहुआहै आत्मा क्या अंतःकरण जिसका ताका नाम अहंकारविमूढात्माहै ऐसा अनात्मपदार्थोंविषे आत्मत्व अभिमान करणेहारा अज्ञानीपुरुष तिन देहादिकोंके अध्यास करिकै तिन सर्वकर्मोंका मैंही कर्त्ताहूं या प्रकार आपणे आत्माकूंही कर्त्ता मानै है। तिन प्रकृतिके गुणोंकूं कर्मोंका कर्त्ता मानता नहीं ॥ २७ ॥

अब जैसे अज्ञानीपुरुष तिन कर्मोंका कर्त्ता आपणे आत्माकूंही मानै है। तैसे विद्वान् ज्ञानीपुरुष तिन कर्मोंका कर्त्ता आपणे आत्माकूं मानता नहीं या अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करै हैं—

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ॥
गुणा गुणेषु वर्त्तत इति मत्वा न सज्जते २८॥

(पदच्छेदः) तत्त्ववित्। तु। महाबाहो। गुणकर्मविभागयोः। गुणाः। गुणेषु। वर्तते। इति। मत्वा। न। सज्जते ॥ २८ ॥

(पदार्थः) हे महान्‌बाहुवाले अर्जुन ! गुणकर्मविभागके यथार्थस्वरूपकूं जानणेहारा विद्वान् पुरुष तौ इंद्रियादिककरणही रूपादिक विषयोंविषे प्रवृत्त होवै है न असंगआत्मा इसप्रकार मानिकरिकै नहीं कर्तृत्व अभिमान करैहै ॥ २८ ॥

भा० टी०—तत्त्वनाम यथार्थस्वरूपकाहै तिसकूं जो जानैहै ताका नाम तत्त्ववित् है इहां (तत्त्ववित्तु) या वचनविषे स्थित जो तु यह शब्दहै सो तु शब्द पूर्वश्लोकविषे कथन करेहुए अज्ञानीपुरुषतें ता तत्त्ववेत्ता पुरुषविषे विलक्षणताकूं कथन करैहै ॥ शंका—हे भगवन् ! सो विद्वान् पुरुष किस वस्तुके तत्त्वकूं जानै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं (गुणकर्मविभागयोः इति) अहं अभिमानके विषयरूप जे देह

इंद्रिय अंतःकरण हैं तिन्होंका नाम गुणहै । और मम अभिमानके विषयरूप जे तिन देह इंद्रिय अंतःकरणके व्यापार हैं तिन व्यापारोंका नाम कर्म है । और जो वस्तु सर्व जड विकारोंका प्रकाश होणेतें तिन सर्व जड विकारोंतें पृथक् होवै ताका नाम विभाग है। ऐसा स्वप्रकाशव ज्ञानरूप असंग आत्माहै । तहां ते गुणकर्म तो भास्य जड विकारीरूपहैं। और यह विभागरूप आत्मदेव तौ भासक चेतन निर्विकाररूप है । इस प्रकार गुणकर्म तथा विभाग या दोनोंके यथार्थ स्वरूपकूं जानणेहार जो विद्वान्पुरुषहै सो विद्वान् पुरुष तौ यह इंद्रियादिक करणही विकारी होणेतें आपणे आपणे रूपादिक विषयोंविषे प्रवृत्तहोवैं हैं निर्विकार आत्मा तिन रूपादिक विषयोंविषे प्रवृत्त होता नहीं या प्रकारका निश्चय करिके अज्ञानी पुरुषकीन्याई आपणे आत्माविषे कर्तृत्वअभिमान करै नहीं इति। और किसी टीकाविषे तो (तत्त्ववित्तु महाबाहो) या श्लोकक याप्रकारका अर्थ कऱ्या है। चक्षु आदिकपंचज्ञान इंद्रिय तथा वागादि पंच कर्म इंद्रिय बुद्धि मन इन सर्वका नाम गुण है । और तिन चक्षु आदिक इंद्रियोंके जे व्यापार हैं तिन्होंका नाम कर्म है। विभाग यापदका गुणपदके साथि तथा कर्मपदके साथि दोनोंके साथि संबंध करणा। ताकरिकै यह अर्थ सिद्ध होवै है चक्षुश्रोत्रादिक इंद्रियोंकीही दर्शन श्रवणादिक क्रिया हैं और वाक्पाणि आदिक इंद्रियोंकीही वचन आदा-नादिक कियाहैं। और बुद्धिकीही अहंकरणरूप क्रियाहै । और मनकीही संकल्परूप क्रियाहै । आत्माकी कोईभी क्रिया नहींहै । किंतु यह आत्मादेव सर्वदा कूटस्थ असंगचिद्रूप करिके स्थित है इस प्रकारका जो गुणविभागहै तथा कर्मविभाग है तिन दोनों विभागोंके तथा आत्माके यथार्थ स्वरूपकूं जो भली प्रकारतें जानै है ताका नाम तत्त्ववित्है ऐसा तत्त्ववेत्ता विद्वान् पुरुषतौ सर्वकर्मोंविषे यह चक्षुआदिक इंद्रियहीं रूपादिक-विषयोंविषै प्रवृत्त होवैंहैं तथा वाक्आदिक इंद्रियही वचनादिकोंविषे प्रवृत्त होवैं हैं तथा बुद्धिही तिन चक्षुआदिक इंद्रियोंके कर्मोंविषे

मै कर्त्ताहूं या प्रकारका अभिमानकरैहै मैं आत्मा तौ न श्रवण करताहूं न देखताहूं न बोलताहूं न करताहूं न चालताहूं किंतु कूटस्थ असंगचेतनरूप करिकै सर्वदा तूर्ष्णीही स्थितहूं या प्रकारका निश्चय करिकै तिन इंद्रियादिकोंके कर्मविषे अहं मम अभिमान करता नहीं इति। और किसी टीकाविषे तौ (तत्त्ववित्तु) या श्लोकके पदोंकी इसप्रकारतैं योजना करिकै या प्रकारका अर्थ कथन करया है (यस्तत्त्ववित् स गुणागुणेषु वर्त्तते इति मत्वा गुणविभागे कर्मविभागे च न सज्जते) इति योजना। अर्थ यह–आत्मा अनात्मा या दोनोंके यथार्थस्वरूपकूं जानणेहारा जो विद्वान् पुरुष है सो विद्वान् पुरुष तौ बुद्धिचक्षुआदिक गुणही सुखरूपादिकविषयोंविषे प्रवृत्तहोवैहै आत्मा तौ किसीभी विषयविषे प्रवृत्त होतानहीं यापकारका निश्चय करिकै गुणविभागविषे तथा कर्मविभागविषे अहं मम अभिमान करै नहीं। इहां सत्त्व रज तम या तीनोंगुणोंका जो बुद्धि अहंकार ज्ञानइंद्रिय कर्मइंद्रिय विषयरूपकरिकै भिन्न अभिन्न अवस्थान है ताका नाम गुणविभाग है ता गुणविषे मैं बुद्धि अहंकारादि रूपहूं या प्रकारका अहं अभिमान सो तत्त्ववेत्तापुरुष करै नहीं। और तिन बुद्धि अहंकारादिकोंके जे भिन्नभिन्न कर्म हैं तिनोंका नाम कर्मविभाग है। ता कर्मविभागविषे यह कर्म मेरा है यापकारका मम अभिमान सो तत्त्ववेत्ता पुरुष करै नहीं इति। इहां (हे महाबाहो) या संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन करया। जानुपर्यंत जिसका दीर्घबाहु होवैहै ताका नाम महाबाहुहै। और सामुद्रिकशास्त्रविषे महाबाहुपणा श्रेष्ठपुरुषका लक्षण कह्या यातैं ऐसे श्रेष्ठपुरुषोंके लक्षणवाला होइकै तूं अन्यपुरुषोंकी न्याई अविवेकी होणेकूं योग्य नहीं है ॥ २८ ॥

तहां पूर्वप्रसंगविषे विद्वान् तथा अविद्वान् या दोनोंविषे कर्मोंके अनुष्ठानकी समानता कथन करिकै सो विद्वान पुरुष अविद्वान् पुरुषके बुद्धिभेदकूं नहीं उत्पन्न करै यह अर्थ कथन करया ता अर्थका अब उपसंहार करैं हैं–

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जंते गुणकर्मसु ॥
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत्२९॥

(पदच्छेदः) प्रकृतेः। गुणसंमूढाः। सज्जंते । गुणकर्मसु । तान्। अकृत्स्नविदः। मंदान्। कृत्स्नवित्। न। विचालयेत् २९

(पदार्थः) हे अर्जुन! प्रकृतिके गुणोंकरिकै संमूढहुए जे अज्ञानीजीव तिनै गुणोंके कर्मोंविषे आसक्ति करैंहैं तिनै अनात्मवेत्ता अनधिकारी पुरुषोंकूं आत्मवेत्ता विद्वान् शुभकर्मकीश्रद्धातैं नहीं चलायमानकरै॥२९॥

भा० टी०—हे अर्जुन । पूर्व कथनकरी जा मायारूप प्रकृतिहै ता प्रकृतिका कार्यरूप होणेतै धर्मरूप जे देहइन्द्रिय अंतःकरणादिक विकार हैं तिन विकाररूप गुणों करिकै सम्मूढ हुए अर्थात् स्वरूपके अस्फुरण करिकै तिन देहादिकोंकूंही आत्मरूप करिकै मानते हुए जे अज्ञानी पुरुष तिन देह इन्द्रिय अन्तःकरणादिकोंके व्यापारोंविषेही हम स्वर्गादिक फलकी प्राप्ति वासतै कर्मोंकूं करै है या प्रकारकी अत्यंत दृढ आत्मीयत्वबुद्धि करैं हैं। तिन कर्मोंके अधिकारी तथा अनात्मपदार्थोंके अभिमानवाले तथा अशुद्धचित्तवाले होणेतैं ज्ञानके अधिकारकूं नहीं प्राप्त हुए अज्ञानीपुरुषोंकूं यह परिपूर्ण आत्माके जाणनेहारा विद्वान् पुरुष आप फलकी कामना करिकै कर्म नहीं करणे अथवा इन कर्मोंका फल असत्य है । अथवा कर्मोंके कर्त्तादिक मिथ्याहीहै अथवा तूं ब्रह्मरूप है तेरेकूं किंचित्मात्रभी कर्त्तव्य नहीं है इत्यादिक उपदेशकरिकै तिन शुभ कर्मोंकी श्रद्धातैं चलायमान नहीं करै। किंतु उलटा तिन शुभकर्मोंकी स्तुति करिकै सो विद्वान् पुरुष तिन अज्ञानी पुरुषोंकूं तिन शुभकर्मोंविषे ही प्रवृत्त करै । और जे पुरुष शुद्धअन्तःकरणवाले होणेतें अधिकारी हैं ते पुरुष तौ उपदेशतैं विना आपही विवेककी उत्पत्ति करिकै चलायमानतातैं रहित ज्ञानके अधिकारकूं प्राप्त होवैहैं इति। इहां जिसवस्तुके ज्ञानहुए भी तिसतैं अन्य वस्तुका ज्ञान होवै नहीं तथा जिसवस्तुके नहीं ज्ञानहुएभी

विसतैं अन्य वस्तुका ज्ञान होइजावै ता वस्तुका नाम अकृत्स्न है । जैसे एक घटके ज्ञानहुएभी ता घटतैं भिन्न पटादिकोंका ज्ञान होवै नहीं । और ता घटके नही ज्ञानहुएभी ता घटते भिन्न पटादिक पदार्थोंका ज्ञान होइ जावैहै यातैं ते घटादिक सर्व अनात्म पदार्थ अकृत्स्न यानामकरिकै कहे जावै हैं । और जिस एक वस्तुके ज्ञान हुए सर्ववस्तुका ज्ञान होजावै तथा जिस एक वस्तुके नही ज्ञानहुए सर्ववस्तुका ज्ञान होवै नहीं ता वस्तुका नाम कृत्स्न है । जैसे एक अद्वितीय आत्माके ज्ञानहुए सर्व अनात्मपदार्थोंका ज्ञान होइ जावैहै और ता अद्वितीय आत्माके नहीं ज्ञानहुए तिन सर्व अनात्मपदार्थोंका ज्ञान होवै नहीं यातै सो अद्वितीय आत्मा कृत्स्न या नाम करिकै कह्या जावै है । तहां श्रुति । (आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्व विदितम्) अर्थ यह—हे मैत्रेयी । अधिष्ठानरूप आत्माके दर्शनकरिकै तथा श्रवणकरिकै तथा मनन करिकै तथा विज्ञान करिकै यह सर्व अनात्मजगत् जान्या जावै है इति । या प्रकारका अकृत्स्न कृत्स्न या दोनो शब्दोंका अर्थ वार्तिकग्रंथविषे सुरेश्वराचार्यने कथन कऱ्या है इति । और किसी टीकाविषे तौ (प्रकृतेः) या पदका (गुणकर्मसु) या पदके साथि अन्वयकरिकै यह अर्थ कऱ्या है अहंकारादिक गुणों करिकै संमूढहुए अज्ञानी पुरुष प्रकृतिके देहादिक गुणोविषे तथा गमनादिक कर्मोंविषे मैं ब्राह्मण हूं मेरा यह यज्ञादिक कर्म है या प्रकारका अहंमम अभिमान करैं हैं ॥ २९ ॥

पूर्वप्रसंगविषे अज्ञानी पुरुष तथा ज्ञानवान् पुरुष दोनोंविषे शुभकर्मोंके अनुष्ठानकी समानताके हुएभी अज्ञानी पुरुषविषे तौ कर्तृत्वका अभिमान रहैहै और ज्ञानी पुरुषविषे ताकर्तृत्व अभिमानका अभाव रहैहै । याप्रकारतैं दोनोंकी विलक्षणता कथन करी । अब अज्ञानी पुरुषभी दो प्रकारका होवै है । एक तौ मोक्षकी इच्छावाला मुमुक्षु अज्ञानी होवै है । और दूसरा मोक्षकी इच्छातैं रहित अमुमुक्षु अज्ञानी होवै है । तहां अमु-

मुक्षु अज्ञानीकी अपेक्षाकरिकै मुमुक्षु अज्ञानीविषे सर्व कर्मोंका श्रीभगवत अर्पण तथा फलकी इच्छाका अभाव याप्रकारकी विलक्षणताकूं कथन करता हुआ श्रीभगवान् अर्जुनविषेभी मुमुक्षु अज्ञानीपणे करिकै कर्मोंके अधिकारकूं दृढ करै हैं—

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा ॥
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥३०॥

(पदच्छेदः) मयि। सर्वाणि। कर्माणि। संन्यस्य। अध्यात्मचेतसा। निराशीः। निर्ममः। भूत्वा। युध्यस्व। विगतज्वरः ॥ ३० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! तूं मैं परमेश्वरविषे अध्यात्मचित्तकरिकै सर्व कर्मोंकूं समर्पणकरिकै कामनातें रहित तथा ममतावें रहित तथा शोकतें रहित होइकै इस युद्धकूं कर ॥ ३० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन! सर्वज्ञ तथा सर्वजगत्का नियन्ता तथा सर्वका आत्मारूप ऐसा जो मैं परमेश्वर वासुदेव हूं ऐसे मैं परमेश्वरविषे तूं सर्वलौकिकवैदिक कर्मोंकूं अध्यात्मचित्तकरिकै समर्पण कर। इहां आत्माके प्रतिपादनकरणेवासतै जो शास्त्र प्रवृत्त होवै वा शास्त्रका नाम अध्यात्म है ऐसा उपनिषद्रूप वेदांतशास्त्र है तो अध्यात्मशास्त्रके विचारविषे जो चित्त तत्पर होवै ता चित्तका नाम अध्यात्मचेतस् है। अर्थात् आत्मा अनात्माके विवेकवाले चित्तका नाम अध्यात्मचेतस् है। ऐसे अध्यात्मचित्तकरिकै तूं सर्वकर्मोंकूं मैं परमेश्वरविषे समर्पणकर। तात्पर्य यह। मैं अर्जुन कर्त्तारूप अंतर्यामीईश्वरके अधीन हूं। और जैसे भृत्य महाराजके वासतैंही सर्वकर्मोंकूं करै हैं तैसे मैंभी तिस ईश्वरके वासतैंही सर्व कर्मोंकूं करताहूं याप्रकारकी बुद्धिकरिकै तिन सर्वकर्मोंका मैं ईश्वरविषे अर्पणकरिकै तथा सर्वकामनावोंतैं रहित होइकै तथा देहपुत्रभ्रातादिकोंविषे ममता अभिमानतें रहितहोइकै तथा इस लोकविषे अपकीर्त्तिका

हेतुरूप तथा परलोकविषे नरकके प्राप्तिका हेतुरूप जो शोकरूप ज्वर है ता शोकरूप ज्वरतै रहितहोइकै तूं मुमुक्षुअज्ञानी अर्जुन इस युद्धकूं कर अर्थात् शास्त्रविहितशुभकर्मोंकूंकर । इहां श्रीभगवत्अर्पण तथा निष्कामपणा यह दोनोंयुद्धविषेही कथन करैं है काहेतैं ता युद्धतैं भिन्न किसीकर्मविषे वा अर्जुनका ममता यथाशोक प्राप्तहै नहीं किंतु ता युद्धविषेही प्राप्त है ॥ ३० ॥

तहां स्वर्गादिकफलकी इच्छातैं रहित होइकै तथा श्रीभगवत् अर्पणबुद्धिकरिकै वेदविहित शुभकर्मोंका जो अनुष्ठान है सो शुभकर्मोंका अनुष्ठानही अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा तथा आत्मज्ञानकी प्राप्तिद्वारा मुक्तिरूप फलकी प्राप्ति करणेहारा है या अर्थकूं अभी श्रीभगवान् कथन करैं है–

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ॥
श्रद्धावंतोऽनसूयंतो मुच्यंते तेऽपि कर्मभिः॥ ३१॥

(पदच्छेदः) ये । मे । मतम् । इदम् । नित्यम् । अनुतिष्ठंति । मानवाः । श्रद्धावंतः । अनसूयंतः । मुच्यंते । ते । अपि । कर्मभिः ॥ ३१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जे कोई मनुष्य श्रद्धावान् हुए तथा असूयातैं रहित हुए हमारे इस नित्य मतकूं अंगीकार करैं हैं वे पुरुष भी पुण्यपाप कर्मोंनैं परित्याग करीते हैं ॥ ३१ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! फलकी इच्छातैं रहित होइकै तथा श्रीभगवत् अर्पणबुद्धि करिकै या अधिकारी पुरुषनैं शास्त्रविहित शुभकर्मोंका अनुष्ठान करणा यह जो हमारा मत है सो हमारा मत नित्यवेदकरिकै बोधित होणेतैं अनादिपरंपराकरिकै प्राप्त है यातैं नित्य है अथवा सो हमारा मत अधिकारी पुरुषोंकूं अवश्यकरिकै करणेयोग्य है यातैं नित्य है ऐसे हमारे नित्यमतकूं जे कोई मनुष्य श्रद्धावाले हुए तथा असूयातैं रहितहुए अंगीकार करैं हैं। इहां शास्त्रनैं तथा

गुरुनें उपदेश कर्‌या जो अर्थ है सो अर्थ जो कदाचित् आपणे अनुभवविषे नहींभी आवता होवै तौ भी ता अर्थविषे यह अर्थ इसीप्रकार है याप्रकारका जो विश्वास है ता विश्वासका नाम श्रद्धा है । और किसी पुरुषकेगुणोंविषे जो दोषोंका प्रगटकरणा है याका नाम असूया है सा असूया इहां प्रसंगविषे याप्रकारकी प्राप्त है । इस दुःखरूप युद्धधर्मविषे मैं अर्जुनकूं प्रवृत्तकरताहुआ यह भगवान् करुणातैं रहित है इति। ऐसी असूयाकूं सर्वप्राणियोंके सुहृद्‌रूप तथा गुरुरूप मैं भगवान् वासुदेवविषे नहीं करते हुए जे मनुष्य हमारे इस मतकूं श्रद्धाभक्तिपूर्वक अंगीकार करैं हैं । ते मनुष्यभी अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा तथा ज्ञानकी प्राप्ति द्वारा यथार्थज्ञानीकी न्याईं पुण्यपापकर्मोंनैं परित्याग करते हैं अर्थात् पुण्यपापकर्मोंतैं रहितहोवैंहैं । तात्पर्य यह ताज्ञानवान्पुरुषके भावीशरीरोंकी प्राप्तिकरणेहारे जितनेक पुण्यपापरूप संचित कर्म हैं ते संचितकर्म तौ ज्ञानरूप अग्निकरिकै दग्ध होइजावैं हैं । और जिन प्रारब्धकर्मोंनैं यह शरीर दिया है ते प्रारब्धकर्म भोगकरिकै क्षय होवै हैं । और सो ज्ञानवान् इस वर्त्तमानशरीरविषे जे पुण्यपापकर्म करै है ते पुण्यपाप कर्म ता ज्ञानवान् पुरुषकी सेवाकरणेहारे भक्तजन तथा निंदाकरणेहारे दुष्टजन लेजावैं हैं । तहां श्रुति । (तस्य पुत्रा दायमुपयांति सुहृदः साधुकृत्यां द्विषंतः पापकृत्याम्) । अर्थ यह—तिस ज्ञानवान् पुरुषके धनादिकपदार्थोंकूं तौ पुत्रशिष्यादिक लेजावैं हैं । और तिसज्ञानवान् पुरुषके पुण्यकर्मोंकूं तौ सेवाकरणेहारे भक्तजन लेजावैं हैं । और तिस ज्ञानवानके पापकर्मोंकूं तौ निंदाकरणेहारे दुष्टजन लेजावैं हैं इति । इसप्रकार सो विद्वान् पुरुष सर्वपुण्यपापकर्मोंतै रहित होवै है। इहां शास्त्रविहित नित्यनैमित्तिक कर्मोंका मनुष्यकूंही अधिकार है अन्य किसीकूं अधिकार है नहीं यातै श्रीभगवान्नें (मानवाः) यह वचन कथन कर्‌या है॥ ३१॥

तहां पूर्वश्लोकविषे भगवत् अर्पणबुद्धिकरिकै निष्कर्मोंका अनुष्ठानरूप जो भगवत्का मत है ता मतके अंगीकाररूप अन्वयविषे अंतःकरणकी

शुद्धिद्वारा तथा ज्ञानकी प्राप्तिद्वारा सर्वकर्मोंतैं रहिततारूप गुणका कथनकरचा। अब इसश्लोकविषे ता भगवदमतके नहीं अंगीकाररूप व्यतिरेकविषे दोषके प्राप्तिका कथन करै हैं-

ये त्वेतदभ्यसूयंतो नानुतिष्ठंति मे मतम्॥
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥ ३२॥

(पदच्छेदः) ये । तु । एतत् । अभ्यसूयंतः । न । अनुतिष्ठंति । मे । मतम् । सर्वज्ञानविमूढान् । तान् । विद्धि । नष्टान् अचेतसः ॥३२॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः जेपुरुष दोषकूं आरोपणकरेहुए हमारे इस पूर्वउक्त मतकूं नहीं अंगीकार करैं हैं तिनं पुरुषोंकूं तूं दुष्टचित्तवाला जान तथा सर्वज्ञानविषे मूढ जान तथा सर्वपुरुषार्थतें भ्रष्ट जान॥३२॥

भा० टी०-हे अर्जुन। जे कोई पुरुष नास्तिकपणेतैं गुरुशास्त्रके वचनोंविषे श्रद्धाकूं नहीं करतेहुए तथा गुणोंविषे दोषोंका कथनरूप असूयाकूं करतेहुए या पूर्वउक्त हमारे मतकूं नहीं अंगीकार करै हैं तिन पुरुषोंकूं तूं अत्यंत दुष्टचित्तवाला जान याकारणतैंही कर्मविषयक जे ज्ञान हैं तथा सगुण निर्गुण ब्रह्मविषयक जे ज्ञान है तिन सर्वज्ञानोंविषे प्रमाणतै तथा प्रमेयतैं तथा प्रयोजनतै ते पुरुष विशेषकरिकै मूढ हुए जान। तात्पर्य यह। ते कर्मविषयक ज्ञान तथा सगुण निर्गुण ब्रह्मविषयक ज्ञान किस प्रमाणकरिकै जन्य है तथा तिन ज्ञानोंका प्रमेय कौन है तथा तिन ज्ञानोंका प्रयोजन कौन है या अर्थकूं ते पुरुष जानिसकते नहीं। या कारणतैही तिन पुरुषोंकूं तूं सर्वपुरुषार्थोंतैं भ्रष्ट हुआ जान॥३२॥

हे भगवन् ! जैसे इस लोकविषे जे पुरुष महाराजाके आज्ञाका उल्लंघन करैं हैं तिन पुरुषोंकूं महान् भयकी प्राप्ति होवै है तैसे आप ईश्वरकी आज्ञाके उल्लंघन करणेविषे महान् भयकी प्राप्तिकूं देखतेहुएभी ते पुरुष किसकारणतैं असूया करते हुए ता आपके मतकूं नहीं अंगीकार करैं हैं।

तथा किसकारणतें तिन सर्वपुरुषार्थोंके साधनोंविषे प्रतिकूलताबुद्धि करैं है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं—

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ॥
प्रकृतिं यांति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ३३॥

(पदच्छेदः) सदृशम् । चेष्टते । स्वस्याः । प्रकृतेः । ज्ञानवान् । अपि । प्रकृतिम् । यांति । भूतानि । निग्रहः । किम् । करिष्यति ॥ ३३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! ज्ञानवान् पुरुष भी आपणी प्रकृतिके अनुसारही चेष्टाकरैं हैं यातैं सर्वप्राणी ता प्रकृतिकूंही अनुसरण करैं हैं तिसविषे हमारा निग्रह क्यों करैगा ॥ ३३ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! पूर्वजन्मोंविषे करेहुए धर्म अधर्मके तथा ज्ञान इच्छादिकोंके जे संस्कार हैं ते संस्कार इस वर्त्तमान जन्मविषे अभिव्यक्तिकूं प्राप्त भयेहैं । तिन अभिव्यक्तसंस्कारोंका नाम प्रकृति है । सा प्रकृति सर्वप्रकारतें बलवान् है । ऐसी बलवान् प्रकृतिके अनुसारही ब्रह्मवेत्ता पुरुषभी चेष्टा करैहै । अथवा (ज्ञानवान्) या पदकरिकै केवल गुणदोषके जानणेहारे पुरुषका ग्रहण करणा । तहां आचार्यवचनम् । (पश्वादिभिश्चाविशेषात्) । अर्थ यह—खानपानादिक व्यवहारकालविषे विद्वान् पुरुषकी पश्वादिकोंके साथि तुल्यताहीहै इति । ऐसा ब्रह्मवेत्ता ज्ञानवान् अथवा गुणदोषके जानणेहारा ज्ञानवान्भी जबी आपणे संस्काररूप प्रकृतिके अनुसारही चेष्टा करै हैं तबी दूसरे अज्ञानी मूर्ख पुरुष आपणे प्रकृतिके अनुसारही चेष्टा करै हैं याकेविषे क्या कहणा है । यातैं सा प्रकृति यद्यपि अविवेकी प्राणियोंकूं पुरुषार्थतैं भ्रष्ट करणेहारी है तथापि ते सर्वप्राणी ता प्रकृतिकूंही अनुसरण करैं हैं । तिसविषे मैं परमेश्वरकृतनिग्रह तथा राजकृत निग्रह क्या करैगा । अर्थात् उत्कटरागकरिकै पापकर्मोंविषे प्रवृत्तहुए पुरुषोंकूं सो निग्रह ता

पापकर्मतैं निवृत्त करणेविषे समर्थ नहीं है । तात्पर्य यह । जे पुरुष पापकर्मोंविषे महान् नरककी साधनाकूं जानिकरिकैभी दुर्वासनाकी प्रबलतातैं पुनः तिन पापकर्मोंविषे प्रवृत्त होवैंहैं ते पुरुष मेरी आज्ञाके उल्लंघनजन्यदोषतैं कदाचित् भय नहीं करैंगे ॥ ३३ ॥

हे भगवन् ! जो कदाचित् सर्वप्राणी आपणी आपणी प्रकृतिकेही वशवर्ती होवैं तौ लौकिक पुरुषार्थका तथा वैदिक पुरुषार्थका कोईभी विषय होवैगा नहीं । यातैं (स्वर्गकामो यजेत) इत्यादिक विधिवाक्योंविषे तथा (परदारान्न गच्छेत) इत्यादिक निषेधवाक्योंविषे अनर्थकता प्राप्त होवैगी । काहेतैं इस लोकविषे पूर्वसंस्काररूप प्रकृतितैं रहित कोईभी प्राणी है नहीं । जिसके प्रति तिन विधिनिषेधवाक्योंकूं अर्थवेत्ता होवै ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं-

इंद्रियस्येंद्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ॥
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपंथिनौ ॥ ३४ ॥

(पदच्छेदः) इंद्रियस्य । इंद्रियस्य । अर्थे । रागद्वेषौ । व्यवस्थितौ । तयोः । न । वशम् । आगच्छेत् । तौ । हि । अस्य । परिपंथिनौ ॥ ३४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इंद्रिय इंद्रियके शब्दादिकविषयविषे रागद्वेष दोनोंनियमपूर्वक स्थित हैं तिन रागद्वेष दोनोंके वशकूं यह प्राणी नहीं प्राप्तहोवै जिसकारणतैं ते रागद्वेष दोनों इस प्राणीके शत्रुहीहैं ॥ ३४ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! श्रोत्र त्वक् चक्षु रसन घ्राण यह जे पंच ज्ञानइंद्रिय हैं । तथा वाक् पाणि पाद उपस्थ पायु यह जे पंच कर्म इंद्रिय हैं तिन ज्ञानइंद्रियोंके तथा कर्मइंद्रियोंके जे यथाक्रमतैं शब्द स्पर्श रूप रस गंध वचन आदान गमन आनंद मलविसर्जन यह दश विषय हैं तिन शब्दस्पर्शादिक विषयोंविषे तथा वचन आदानादिक विषयोंविषे जोजो विषय इस पुरुषके अनुकूल होवैंहैं सोसो विषय जो कदाचित्

शास्त्रकरिकै निषिद्धभी होवै हैं तौभी तिसतिस विषयविषे इस पुरुषका रागही होवै है। और तिन विषयोंविषे जोजो विषय इस पुरुषकूं प्रतिकूल होवैहैं सोसो विषय जो कदाचित शास्त्रकरिकै विहितभी होवैहैं तौभी तिसतिस विषय विषे इस पुरुषका द्वेषही होवैहै । इस प्रकार श्रोत्रादिक सर्वइंद्रियोंके शब्दादिक सर्व विषयोंविषे अनुकूलता करिकैं तथा प्रतिकूलता करिकै ते रागद्वेष दोनों नियमपूर्वकही स्थितहैं । कोई तिन सर्व विषयोंविषे नियमर्ते विनाही ते रागद्वेष स्थित है नहीं । तहां इस पुरुषनैं ता रागद्वेषके वशकूं नहीं प्राप्त होणा यहही आपणे पुरुषार्थका तथा शास्त्रका विषय है । इहाँ तात्पर्य यह है । यह परस्त्रीगमनादिक कर्म महान् नरककी प्राप्ति करणेहारे हैं या प्रकारका जो बलवत् अनिष्ट साधनता ज्ञान है ता ज्ञानके अभावसहकृत जो यह परस्त्रीगमनादिक कर्म हमारे विषय सुखरूप इष्टके साधन हैं या प्रकारका इष्टसाधनता ज्ञान हैं ता इष्टसाधनता ज्ञानकरिकै जन्य जो तिन परस्त्रीगमनादिक कर्मोंविषे राग है। ता रागकूं अंगीकार करिकैही सा प्रकृति इस पुरुषकूं तिन परस्त्रीगमनादिक निषिद्धकर्मोंविषे प्रवृत्त करै है इसी प्रकार यह संध्यावंदनादिक कर्म स्वर्गादिक फलकी प्राप्ति करणेहारे हैं या प्रकारका जो इष्टसाधनताज्ञान है ता ज्ञानके अभावसहकृत जो यह संध्यावंदनादिक कर्म हमारे दुःखरूप अनिष्टके साधन हैं याप्रकारका अनिष्टसाधनता ज्ञान है। ता अनिष्टसाधनता ज्ञानकरिकै जन्य जो तिन संध्यावंदनादिक कर्मोंविषे द्वेष है ता द्वेषकूं अंगीकार करिकै ही सा प्रकृति ता पुरुषकूं तिन संध्यावंदनादिक विहित कर्मोंतैं निवृत्त करैहै। तहां जिसकालविषे धर्मशास्त्र तिन परस्त्रीगमनादिक कर्मोंविषे यह परस्त्रीगमनादिक कर्म नरककी प्राप्ति करणेहारे है या प्रकार बलवत् अनिष्टसाधनताकूं बोधन करैं हैं तिस कालविषे बलवत् अनिष्टसाधनताज्ञानका अभाव रहै नहीं जैसे घटरूप प्रतियोगी विद्यमानहुए घटाभाव रहै नहीं। और तिनपर स्त्रीगमनादिक निषिद्ध

कर्मोंविषे रागकी उत्पत्ति करणेमें ता इष्टसाधनताज्ञानका सो बलवत् अनिष्टसाधनताज्ञानका अभावही सहकारी कारण था। ता सहकारी कारणके अभावहुए सो केवल इष्टसाधनताज्ञान तिन परस्त्रीगमनादिक निषिद्धकर्मोंविषे रागकूं उत्पन्न करिसकै नहीं। जैसे मधु विष या दोनों करिकै युक्त जो अन्न है ता अन्नविषे यह अन्न हमारे क्षुधाके निवृत्तिका साधन है या प्रकारके इष्टसाधनताज्ञानको हुएभी जिस पुरुषकूं ता अन्नविषे यह अन्न हमारे मरणका साधन है या प्रकारका अनिष्टसाधनताज्ञान हुआहै तिस पुरुषके सो केवल इष्टसाधनताज्ञान ता अन्नविषे रागकूं उत्पन्न करिसकै नहीं । इसी प्रकार जिस कालविषे धर्मशास्त्र संध्यावंदनादिक विहितकर्मोंविषे यह संध्यावंदनादिक कर्म स्वर्गादिक कर्म स्वर्गादिक सुखके प्राप्तिका साधन है या प्रकार बलवत् इष्टसाधनताकूं बोधन करै है। तिसकालविषे तिन संध्यावंदनादिक विहित कर्मोंविषे बलवत् इष्टसाधनताज्ञानका अभाव रहै नही। जैसे घटरूप प्रतियोगीके विद्यमानहुए घटाभाव रहै नहीं। और तिन संध्यावंदनादिक विहितकर्मों विषे द्वेषकी उत्पत्ति करणेमें ता अनिष्टसाधनताज्ञानका सो बलवत् इष्टसाधनताज्ञानका अभावही सहकारी कारण था । ता सहकारी कारणके अभाव हुए सो केवल अनिष्टसाधनताज्ञानका तिन संध्यावंदनादिक विहितकर्मोंविषे द्वेषकूं उत्पन्न करिसकै नहीं यातें यह अर्थ सिद्ध भया। प्रतिबंधतें रहित हुआ सो शास्त्र इस पुरुषकूं संध्यावंदनादिक विहित कर्मोंविषे तौ प्रवृत्त करै है और परस्त्रीगमनादिक निषिद्धकर्मोंतें निवृत्त करै है। इस प्रकार शास्त्रके विचारजन्य ज्ञानकी प्रबलताकरिकै जबी ता स्वाभाविक रागद्वेषके कारणकी निवृत्ति होवै है तबी ता कारणकी निवृत्तिकरिकै सो स्वाभाविक रागद्वेषरूप कार्यभी निवृत्त होइ जावैहै। यातें सा प्रकृति विपरीतमार्गविषे शास्त्रदृष्टिवाले पुरुषकूं प्रवृत्त करिसकै नहीं। यातें शास्त्रकूं तथा पुरुषार्थकूं व्यर्थताकी प्राप्ति होवै नहीं इति। इसी अभिप्रायकरिकै श्रीभगवाननें (तयोर्न वशमागच्छेत्) यह वचन

कह्याहै । अर्थात् यह पुरुष ता रागद्वेषके अधीन होइकै नहीं तौ किसी कर्मविषे प्रवृत्त होवै तथा नहीं किसी कर्मतें निवृत्त होवै । किंतु शास्त्रजन्य ज्ञानकरिकै रागद्वेषता ता रागद्वेषके नाशद्वारा ता रागद्वेषकूं नाशही करै । जिस कारणतें स्वाभाविक दोषजन्य ते रागद्वेष दोनों इस मोक्षरूप श्रेयकी इच्छावान् पुरुषके शत्रुही हैं । तात्पर्य यह । जैसे मार्गविषे चलणे-हारे पुरुषोंकूं दुष्ट चोर अनेक प्रकारके विघ्न करैं हैं तैसे मोक्षरूप श्रेयके आत्मज्ञानरूप मार्गविषे प्रवृत्त हुए इस अधिकारी पुरुषकूं ते रागद्वेष दोनों अनेकप्रकारके विघ्न करणेहारे हैं । यातें यह अधिकारी पुरुष ता रागद्वेषकूं अवश्यकरिकै नाश करै ॥ ३४ ॥

हे भगवन् ! स्वाभाविक रागद्वेषकरिकै जन्य जा पशु मनुष्यादिक सर्वप्राणियोंकी साधारण प्रवृत्ति है ता साधारण प्रवृत्तिकी निवृत्ति कारिकै जबी इस पुरुषकूं शास्त्रविहित कर्मही करणेयोग्य हुआ तबी जैसे इस युद्धविषे शास्त्रविहित कर्मरूपता है वैसे संन्यासपूर्वक भिक्षाअन्नके भोजन-विषेभी शास्त्रविहित कर्मरूपता है यातें अत्यंत सुगम तथा हिंसादिकोंतें रहित जो भिक्षाअन्नका भोजन है सोईही हमारेकूं करणेयोग्य है। अत्यंत दुःखरूप तथा हिंसादिकोंका कारणरूप इस युद्धके करणे-विषे हमारा क्या प्रयोजन है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहे हैं-

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ॥
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ ३५ ॥

(पदच्छेदः) श्रेयान् । स्वधर्मः । विगुणः । परधर्मात् । स्वनुष्ठितात् । स्वधर्मे । निधनम् । श्रेयः । परधर्मः । भया-वहः ॥ ३५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्वअंगोंकी संपूर्णता पूर्णतापूर्वककरेहुए परके-धर्मतें किंचित् अंगोंकी न्यूनतापूर्वक कर्याहुआ आपणाधर्म अत्यंत

श्रेष्ठहै इसकारणतैं ता आपणे धर्मविषे मरणभी श्रेष्ठहै और परका धर्म तौ भैयकीही प्राप्तिकरणेहारा है ॥ ३५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र यह जे च्यारी वर्ण हैं। तथा ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यास यह जे च्यारि आश्रम हैं तिन च्यारि वर्णोंविषे तथा च्यारि आश्रमोंविषे जिसजिस वर्णके प्रति तथा जिसजिस आश्रमके प्रति धर्मशास्त्रनैं जोजो धर्म विधान करया सोसो धर्म तिसतिस वर्णका तथा तिसतिस आश्रमका स्वधर्म कह्या जावैहै। दूसरे वर्णका तथा दूसरे आश्रमका सोसो धर्म परधर्म कह्या जावै है।जैसे बृहस्पतिसवनामायज्ञ शास्त्रने एक ब्राह्मणके प्रतिही विधान करया है। क्षत्रियादिकोंके प्रति विधान करया नहीं यातैं सो बृहस्पतिसवनामायज्ञ ब्राह्मणका तो स्वधर्म है क्षत्रियादिकोंका परधर्म है । इस प्रकार राजसूयनामायज्ञ शास्त्रनैं एक क्षत्रियके प्रतिही विधान करया है ब्राह्मणादिकोंके प्रति विधान करया नहीं । यातैं सो राजसूयनामायज्ञ क्षत्रियका तौ स्वधर्म है ब्राह्मणादिकोंका परधर्म है । इस प्रकार सर्वअसाधारण धर्म विषे स्वधर्मता तथा परधर्मता जानिलेणी । ईश्वरनामस्मरणादिक साधारण धर्मोंविषे तौ सर्वप्राणीमात्रकी स्वधर्मताही रहैहै किसीभी प्राणीकी परधर्मता रहै नहीं या कारणतैं असाधारण धर्म कह्या है । तहां द्रव्य मंत्र देवता इत्यादिक जे कर्मके अंग हैं तिन सर्व अंगोंकी संपूर्णतातैं विनाही जो धर्म करया जावै है सो धर्म विगुण कह्या जावै है । इसप्रकारका विगुण जो स्वधर्म है सो स्वधर्म तिन सर्व अंगोंकी संपूर्णतापूर्वक करेहुए परधर्मतैं अत्यंत श्रेष्ठ है काहेतैं एक वेद प्रमाणकूं छोडिकै दूसरा कोई प्रमाण धर्मविषे है नहीं । किंतु ता धर्मविषे एक वेदही प्रमाण है । यह वार्त्ता (चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः) इस पूर्वमीमांसाके सूत्रविषे विस्तारतैं कथन करी है यातैं परधर्म जो है सो भी अनुष्ठान करणेकूं योग्य है धर्म होणेतैं स्वधर्मकी न्याई याप्रकारका अनुमान ता धर्मविषे प्रमाण होइसकै नहीं यातैं यत्किंचित् अंगोंकी न्यूनताकरिकै विगुणभावकूं प्राप्त

भया जो स्वधर्म है ता विगुण स्वधर्मविषे भी स्थित जो पुरुष है ता स्वधर्मनिष्ठ पुरुषका परधर्मविषे स्थित पुरुषके जीवनतैं मरण भी अत्यंत श्रेष्ठ है काहेतैं स्वधर्मविषे स्थित पुरुषका जो मरण है सो मरण इसलोकविषे तौ ता पुरुषकूं कीर्तिकी प्राप्ति करणेहारा है। और परलोकविषे स्वर्गादिकोंकी प्राप्ति करणेहारा है यातैं सो मरण भी अत्यंत श्रेष्ठ है । और परधर्म तौ इस पुरुषकूं इसलोकविषे तौ अकीर्तिकी प्राप्ति करै है और परलोकविषे नरकादिकोंकी प्राप्ति करै है,यातैं जैसे राग द्वेष करिकै जन्य स्वाभाविक प्रवृत्ति इस पुरुषकूं परित्याग करणे योग्य है । तैसे यह परधर्म भी परित्याग करणेकूं योग्य है इति । तहां पूर्वप्रसंगविषे श्रीभगवान्‌के मतकूं अंगीकार करणेहारे पुरुषोंकूं श्रेयकी प्राप्ति कथन करी । और ता भगवान्‌के मतकूं नही अंगीकारकरणेहारे पुरुषोंकूं ता श्रेयके मार्गतैं भ्रष्टपणा कथन करचा और ता श्रेयके मार्गतैं भ्रष्ट होणेविषे तथा फलकी इच्छा पूर्वक काम्यकर्मोंके करणेविषे तथा केवल पापकर्मोंके करणेविषे (ये त्वेतदभ्यसूयंतः) इत्यादिक वचनोंकरिकै बहुत कारण कथन करे । तिन सर्व कारणोंकूं संक्षेपतै कथनकरणेहारा यह श्लोक है । (अश्रद्धाहानिस्तथासूया दुष्टचित्तत्वमूढते । प्रकृतेर्वशवर्त्तित्वं रागद्वेषौ च पुष्कलौ । परधर्मरुचित्वं चेत्युक्ता दुर्मार्गवाहकाः) । अर्थ यह—श्रद्धातैं रहित होणा तथा असूया करणी तथा चित्तकी दुष्टता तथा मूढता तथा प्रकृतिके वशवर्ति होणा तथा पुष्कल रागद्वेष तथा परधर्मविषे प्रीति करणी यह सर्व दुर्मार्गकी प्राप्ति करणेहारे हैं ॥ ३५ ॥

तहां इसपुरुषकी काम्यकर्मोंविषे प्रीतिकरावणेहारा तथा निषिद्ध कर्मोंविषे प्राप्ति करावणेहारा जो कोई कारण है ता कारणकूं निवृत्ति करिकै श्रीभगवान्‌के ता पूर्वउक्त मतकूं आश्रयण करणेवासतै अर्जुन प्रथम ता कारणका स्वरूप पूछै है—

अर्जुन उवाच ।

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ॥
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥३६॥

(पदच्छेदः) अथ । केन । प्रयुक्तः । अयम् । पापम् । चरति । पूरुषः । अनिच्छन् । अपि । वार्ष्णेय । बलात् । इव । नियोजितः ३६

(पदार्थः) हे वार्ष्णेय ! यह पुरुष पापकरणेकी नहीं इच्छाकरता-हुआ भी बलात्कारतैं प्रवृत्तकरेहुए पुरुषकी न्याईं किसकरिकै प्रवृत्त कऱ्या हुआ पापकर्मकूं करै है ॥ ३६ ॥

भा० टी०—हे भगवन् ! (ध्यायतो विषयान्पुंसः) इत्यादिक वचनों-करिकै पूर्व भी आपनैं अनर्थका मूल कथन कऱ्याथा । और अबीभी आपनैं (प्रकृतेर्गुणसंमूढाः) इत्यादिक. वचनों करिकै बहुतप्रकारका सो अनर्थका मूल कथन कऱ्या है । तहां ते सर्व ही समान प्रधानता करिकै अनर्थके कारण है । अथवा तिन सर्वोंविषे एकही मुख्यकारण है दूसरे सर्व गौण हैं तहां प्रथम पक्षविषे तौ तिन सर्व कारणोंकूं भिन्नभिन्न निवृत्त करणेविषे महान् परिश्रम होवैगा । और दूसरे पक्षविषे तौ वा एक ही प्रधान कारणके निवृत्त कियेहुए इस पुरुषकूं कृतकृत्यभावकी प्राप्ति होवैगी यातैं हे भगवन् ! आप यह वार्त्ता कहो । तुम्हारे मतकूं नहीं अंगी-कार करणेहारा तथा सर्व ज्ञानोंविषे मूढ यह पुरुष किस बलवान् कारण करिकै प्रवृत्त कऱ्याहुआ अनर्थकी प्राप्तिकरणेहारे अनेक प्रकारके निषिद्ध कर्मोंकूं तथा काम्य कर्मोंकूं करै है । इहां परस्त्रीगमनादिक निषिद्ध कर्म हैं और शत्रुके नाशकरणेहारे श्येन यज्ञादिक काम्यकर्म हैं ते दोनोंप्रकारके कर्म इस पुरुषकूं अनर्थकी ही प्राप्ति करणेहारे हैं । यातें तिन दोनोंप्रकारके कर्मोंका पाप शब्दकरिकै ग्रहण कऱ्या है इति । हे भगवन् ! यह पुरुष आप तिन पापकर्मोंके करणेकी नहीं इच्छा करता हुआ भी बलात्कारतैं तिन पापकर्मोंकूं ही करै है। और परमपुरुषार्थका साधनरूप करिकै आपनैं

उपदेश कऱ्या जो कर्म है ता कर्मके करणेकी इच्छा करता हुवाभी यह पुरुष ता कर्मकूं करता नहीं यातैं यह जान्या जावै है यह पुरुष परतंत्र है स्वतंत्रता नहीं है । परतंत्रतातैं विना यह वार्त्ता संभवती नहीं । यातै हे भगवन् ! जैसे महाराजानैं किसी कार्यविषे बलात्कारसैं प्रवृत्तकऱ्या जो कोई भृत्य है सो भृत्य ता कार्यके करणेकी नहीं इच्छा करता हुआ भी ता कार्यकूं अवश्य करिकै करै है तैसे जिस बलवान् कारण करिकै प्रवृत्त कऱ्या हुआ यह पुरुष तुम्हारे मतके विरोधी पापकर्मोंकूं सर्व अनर्थोंका मूलभूत जानता हुआ भी तिन पापकर्मोंकू ही करै है । तिस अनर्थविषे प्रवृत्त करणेहारे कारणका स्वरूप आप हमारे प्रति कथन करो। जिस कारणके स्वरूपकूं जानि करिकै मैं अर्जुन तिस कारणके नाश करणे वासतै प्रयत्न करौं इति । इहां (अनिच्छन्नपि) या वचन करिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन कऱ्या । पूर्व कथन करेहुए राग द्वेषविषे भी प्रवृत्तिकी कारणता संभवै नहीं काहेतैं रागके विद्यमानहुए इच्छा अवश्यकरिकै होवैहै यातै या पुरुषविषे इच्छाके अभावहुए ता रागकाभी अभावही है । जबी ता रागविषे अप्रवर्त्तकता सिद्ध भई तबी ता रागजन्य संस्कारोंकरिकै जन्य जो धर्म अधर्म हैं ता धर्म अधर्मविषेभी सा प्रवर्त्तकता संभवै नही और ता धर्म अधर्मविषे अप्रवर्त्तकता हुए ता धर्म अधर्मकी अपेक्षा करणेहारे ईश्वरविषेभी सा प्रवर्त्तकता संभवै नही इति । और (हे वार्ष्णेय) या संबोधनके कहणेकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन कऱ्या है। हमारे मातामहका कुल जो वृष्णिवंश है ता वृष्णिवंशविषे आपणे भक्त जनोंके उद्धार करणे वासतै आपनैं अवतार धारण कऱ्या है। और मैं अर्जुनभी ता वृष्णिवंशविषे उत्पन्न हुई कुन्ती माताका पुत्र हूं । यातै हमारेकूं आपणा जानिकरिकै आपनैं हमारी उपेक्षा नही करणी । किंतु इस हमारे प्रश्नका आपनैं यथार्थ उत्तर कहणा ॥ ३६ ॥

इस प्रकार अर्जुनकरिकै पूछाहुआ श्रीभगवान् (काममय एवायं पुरुषः इति आत्मैवेदमग्र आसीदेक एव सोकामयत जाया मे स्यात् अथ

प्रजा मे स्यात् अथ वित्तं मे स्यात् अथ कर्म कुर्वीय) इत्यादिक श्रुतियोंकरिकै सिद्ध तथा (अकामस्य क्रिया काचिद्दृश्यते नेह कर्हिचित् । यद्यद्धि कुरुते जंतुस्तत्तत्कामस्य चेष्टितम्) इत्यादिक स्मृतियों करिकै सिद्ध उत्तरकूं कहता भया । तिन श्रुतियोंका तथा स्मृतिवचनका यह अर्थ है—यह पुरुष काममय ही है इति । इस जगत्की उत्पत्तितैं पूर्व एक आत्मा ही होता भया सो आत्मा देव या प्रकारकी कामना करता भया हमारेकूं जाया प्राप्त होवै तथा हमारेकूं प्रजा प्राप्त होवै तथा हमारेकूं धन प्राप्त होवै तथा मैं कर्मोंकूं करौं इति । और या लोकविषे कामनातैं रहित पुरुषकी कोईभी क्रिया देखणेविषे आवती नहीं यातैं यह जीव जिस जिस कर्मकूं करै है सो सर्व इस कामकी ही चेष्टा है इति । इत्यादिक श्रुति स्मृतियोंकरिकै सिद्ध उत्तरकूं श्रीभगवान् कहैं हैं—

श्रीभगवानुवाच ।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ॥
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥३७॥

(पदच्छेदः) कामः । एषः । क्रोधः । एषः । रजोगुणसमुद्भवः । महाशनः । महापाप्मा । विद्धि । एनम् । इह । वैरिणम् ॥ ३७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो अनर्थमार्गविषे प्रवर्त्त करणेहारा यह काम ही है यह कामही क्रोधरूप है तथा रजोगुणतें उत्पन्न भया है तथा महान् अहारवाला है तथा अत्यंत उग्र है यातैं इस संसारविषे इस कामकूंही तूं वैरीरूप जान ॥ ३७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! इस पुरुषकूं बलात्कारसे अनर्थमार्गविषे प्रवृत्ति करणेका कारण जो तुमनैं पूछा था सो कारण यह कामरूप महान् शत्रु ही है । इस कामकरिकै ही इन प्राणियोंकूं सर्व अनर्थोंकी प्राप्ति होवै है । शंका—हे भगवन् ! जैसे यह काम प्राणियोंकूं अन-

र्थविषे प्रवृत्त करै है तैसे क्रोध भी इन प्राणियोंकूं सर्व अनर्थविषे प्रवृत्त करै है यातें केवल कामविषेही प्रवर्त्तकता संभवै नहीं ऐसी अर्जुनकी शंका के हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (क्रोध एष इति) हे अर्जुन ! यह विषयोंकी अभिलाषारूप जो काम है ता कामतें सो क्रोध भिन्न नहीं है किंतु यह कामही क्रोधरूप होवै है। तात्पर्य यह--जो कोई पुरुष किसी धनादिक पदार्थोंकी इच्छा करिकै जबी किसी धनी पुरुषके समीप जावै है आगेतें कोई दुष्ट पुरुष ता पुरुषकी इच्छा पूर्ण होणेदेवै नहीं तबी ता पुरुषकां सो इच्छारूप कामही ता दुष्टपुरुष ऊपरि क्रोधरूप होइकै परिणामकूं प्राप्तहोवै है यह वार्ता सर्व लोकोंकूं अनुभवसिद्ध है यातें सो काम ही क्रोधरूप है इति । ता कामरूप महाशत्रुके निवृत्ति कियेहुए इस पुरुषकूं सर्व पुरुषार्थोंकी प्राप्ति होवै है । अब ता कामरूप शत्रुके निवृत्त करणेहारे उपायके जनावणेवास्तै ता कामरूप शत्रुके कारणकूं कथन करैंहैं (रजोगुणसमुद्भवःइति) हे अर्जुन । दुःखप्रवृत्तिबलरूप जो रजोगुण है सो रजोगुण है समुद्भव नाम कारण जिसका ऐसा यह काम है । और लोकविषे कारणके समान स्वभाववाला ही कार्य होवैहै यातें जैसे सो रजोगुणरूप कारण दुःखप्रवृत्ति आदिरूप है । तैसे यह कामरूप कार्यभी दुःखप्रवृत्ति आदिरूपही है । यद्यपि रजोगुणकी न्याईं तमोगुण भी ता कामका कारण है । यातें (रजोगुणसमुद्भवः) या वचनकी न्याईं (तमोगुणसमुद्भवः) यह भी वचन कहणा उचित था तथापि दुःखविषे तथा प्रवृत्तिविषे रजोगुणकूंही प्रधानता है तमोगुणकूं प्रधानता है नहीं । यातें इहां रजोगुणकाही कथन करचा है । इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ बोधन कऱ्या सात्विकवृत्ति करिकै जभी ता रजोगुणरूप कारणकी निवृत्ति होवैहै तभी कारणकी निवृत्तहुए सो कामरूप कार्य आप ही निवृत्त होइ जावै है यातैं ता सात्विक वृत्तिही रजोगुणकी निवृत्तिद्वारा ता कामके निवृत्तिका उपाय है इति । अथवा हे भगवन् ! ता कामकूं किसप्रकारतें अनर्थविषे प्रवर्त्तकताहै ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं

(रजोगुणसमुद्भवः इति) हे अर्जुन ! दुःखप्रवृत्ति आदिरूप जो रजोगुण है ता रजोगुणका है समुद्भवनाम उत्पत्ति जिसतैं ताका नाम रजोगुण समुद्भव है । ऐसा रजोगुणका कारणरूप यह काम है । तात्पर्य यह विषयोंकी अभिलापारूप जो यह काम है, सो यह काम आप प्रगट होइकै ता रजोगुणकूं प्रवृत्त करता हुआ इस पुरुषकूं दुःखरूप कर्मोंविषे प्रवृत्त करै है इति । यातैं अधिकारी पुरुषोंने यह कामरूप शत्रु अवश्य करिकै जय करणे योग्य है । शंका-हे भगवन् ! इस लोकविषे शत्रुके जयकरणेवास्तै साम दान भेद दंड यह च्यारि उपाय होवै हैं । तहां साम दान भेद या तीन उपायोंकरिकै जो शत्रु वश नहीं होता होवे तौ ता शत्रुके जय करणेवास्तै चौथा दंडरूप उपाय करणा । परंतु तिन तीन उपायोंके कियेतैं विनाही प्रथम ही सो दंडरूप उपाय करणा उचित नहीं है ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता कामरूप शत्रुके जीतणेविषे प्रथम तीन उपायोंके असंभव कहणेवास्तै ता कामरूपशत्रुके दो विशेषण कहैं हैं (महाशनो महापाप्मा इति) महान् है अशन कया आहार जिसका ताका नाम महाशन है ऐसा यह काम है तात्पर्य यह-अनेकप्रकारके महान् भोगोंकी प्राप्ति करिकै भी यह काम कदाचित् भी तृप्त होवै नहीं । यह वार्त्ता स्मृतिविषे भी कथन करी है तहां श्लोक (न जातु कामःकामानामुपभोगेन शाम्यति । हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥ ॥ १ ॥ यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः। नालमेकस्य तत्सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत् ॥ २ ॥) अर्थ यह-यह काम पदार्थोंके भोग करिकै कदाचित् भी शांतिकूं प्राप्त होता नहीं किंतु जैसे अग्नि घृत काष्ठादिकोंके पावणे करिकै वृद्धिकूं प्राप्त होता जावै है तैसे यह काम भी बहुत पदार्थोंके भोगकरिकै दिन दिनविषे वृद्धिकूं प्राप्त होता जावै है और इस पृथिवीविषे जितनेक व्रीहि यवादिक अन्न हैं तथा जितनेक सुवर्णादिक धन हैं तथा जितनेक गो अश्वादिक पशु हैं तथा जितनीक सुंदर स्त्रियां हैं । ते सर्व पदार्थ जो कदाचित् कामनावाले किसी एक पुरुषकूं

भी प्राप्त होवैं तौ भी ते सर्व पदार्थ ता पुरुषके कामकूं तृप्त करणेविषे समर्थ होवैं नहीं तौ अल्प भोगोंकरिकै ता कामकी शांति कैसे होवैगी किंतु नहीं होवैगी। या प्रकारका विचार करिकै यह पुरुष शांतिकूं प्राप्त होवै ॥ १ ॥ २ ॥ यातैं ता दानरूप उपाय करिकै यह कामरूप शत्रु वश होवै नहीं इस प्रकार साम भेद या दोनों उपायों करिकै भी यह कामरूप शत्रु वश होवै नहीं। जिसकारणतैं यह कामरूप शत्रु महापाप्मा है क्या अत्यंत उग्र है। या कारणतैंही इस कामकरिकै प्रेरणा करयाहुआ यह पुरुष पापकर्मोंतैं दुःखरूप फलकी प्राप्तिकूं जानताहुआ भी पुनः तिन पापकर्मोंकूंही करैहै। ऐसा अत्यंत उग्र यह कामरूप शत्रु साम भेद या दोनों उपायोंकरिकै वश होइ सकै नहीं। जिस कारणतैं लोकविषे ऋजुस्वभाववाले शत्रुही ता साम भेदरूप उपायकरिकै वश होवैहैं। यातैं हे अर्जुन! इस संसारविषे तूं इस कामकूंही शत्रुरूप जान ॥ ३७ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे अत्यंत उग्ररूपकरिकै ता कामविषे कथन करया जो शत्रुपणा ता शत्रुपणेकूं अब तीन दृष्टांतोंकरिकै स्पष्ट करैहैं—

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ॥
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥३८॥

(पदच्छेदः) धूमेन। आव्रियते। वह्निः। यथा। आदर्शः। मलेन। च। यथा। उल्बेन। आवृतः। गर्भः। तथा। तेन। इदम्। आवृतम् ॥ ३८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! जैसे धूमनैं अग्नि आवृतकरीताहै तथा जैसे रजरूप मलनैं दर्पण आवृत करीताहै तथा जैसे जरायुचर्मनैं गर्भ आवृत करीताहै तैसे तिसकामनैं यह ज्ञान आवृत करीताहै ॥ ३८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन! इस स्थूलशरीरके आरंभतैंपूर्व अंतःकरण कामादिकवृत्तियोंकूं प्राप्त होवै नहीं। यातैं या स्थूलशरीरकी उत्पत्तितैं पूर्व सो अंतःकरण सूक्ष्म कहाजावै है और शरीरके आरंभकरणेहार

पुण्यपापकर्मोंकरिकै रचित जो यह स्थूलशरीर है ता स्थूलशरीरविषे स्थित होइकै सो अंतःकरण कामादिक वृत्तियोंकूं प्राप्तहोवैहै यातें ता स्थूलशरीरावच्छिन्न अंतःकरणविषे अभिव्यक्तिकूं प्राप्तहुआ सो काम स्थूल कह्याजावै है। और सोईही काम विषयोंके चिंतनअवस्थाविषे पुनः पुनः वृद्धिकूं प्राप्त हुआ स्थूलतर कह्याजावैहै। और सोईही काम तिन विषयोंके भोग अवस्थाविषे अत्यंत वृद्धिकूं प्राप्त हुआ स्थूलतम कह्याजावै है। यहां स्थूलतैंभी अधिक स्थूलका नाम स्थूलतर । और स्थूलतरतैंभी अधिक स्थूलका नाम स्थूलतम है। इसप्रकार सो एकही काम स्थूल, स्थूलतर, स्थूलतम या तीन अवस्थावोंवाला होवै है। तहां ता कामके प्रथम स्थूल अवस्थाविषे दृष्टांत कथन करैहैं (धूमेनाव्रियते वह्निः इति) हे अर्जुन ! जैसे अग्निके साथि उत्पन्नभया जो अप्रकाशरूपधूम है ता अप्रकाशरूप धूमनें प्रकाशरूप अग्नि आवृत्त करीता है। तैसे इस स्थूलकामनें यह ज्ञान आवृत्त करीताहै। अब ता कामकी दूसरी स्थूलतर अवस्थाविषे दृष्टांत कथन करैहैं (यथादर्शो मलेन च इति) हे अर्जुन ! जैसे दर्पणतें पश्चात् उत्पन्नभया जो रजरूप मल है तिस रजरूपमलनैं सो दर्पण आवृत्त करीताहै। तैसे इस स्थूलतर कामनैंभी यह ज्ञान आवृत करीताहै। अब ता कामकी तीसरी स्थूलतम अवस्थाविषे दृष्टांत कथन करैं हैं (यथोल्बेनावृतो गर्भः इति) हे अर्जुन ! जैसे माताके उदरविषे स्थित गर्भकूं सर्वओरतें वलेट रह्याहुआ जो जरायुनामा चर्म है ता जरायुनामाचर्मनैं सो गर्भ आवृत करीताहै। तैसे इस स्थूलतमकामनैं यह ज्ञान आवृत करीताहै। इहां इन तीन दृष्टांतोंविषे परस्पर इतनी विशेषता है ता धूम करिकै आवृतहुआ भी अग्नि दाहादिरूप आपणेकार्यकूं करता नहीं है और रजरूप मलकरिकै आवृतहुआ जो दर्पण है सो दर्पण तो प्रतिबिंबका ग्रहणरूप आपणे कार्यकूं करता नहीं । जिस कारणतें ता दर्पणके स्वच्छतामात्रका वा रजरूप मलकरिकै तिरोधान होइ रह्याहै। परंतु सो दर्पण स्वरूपतें तौ प्रतीत होवाहै है और जरायुनामचर्मकरिकै आवृत जो गर्भ है सो गर्भ तौ हस्तपादादिकोंका प्रसारणरूप

आपणे कार्यकूंभी करता नहीं तथा आपणे स्वरूपतें भी प्रतीत होता नहीं। या प्रकारकी तिन दृष्टांतोंकी विलक्षणताकूं अंगीकार करिकैही ता कामकी स्थूल स्थूलतर स्थूलतम या तीन अवस्थावोंविषे यथाक्रमतें ते तीन दृष्टांत कथन करें हैं ॥ ३८ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे (तथा तेनेदमावृतम्) यह जो संग्रहवचन कह्याथा. ता संग्रहवचनके अर्थकूं अब विस्तारकरिकै कथन करें हैं–

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ॥
कामरूपेण कौंतेय दुष्पूरेणानलेन च ॥ ३९ ॥

(पदच्छेदः) आवृतम् । ज्ञानम् । एतेन । ज्ञानिनः । नित्यवैरिणा । कामरूपेण । कौंतेय । दुष्पूरेण । अनलेन । च ॥ ३९ ॥

(पदार्थः) हे कौंतेय ! इस कामनैंही यह ज्ञान आवृत करचा है कैसा है यह काम ज्ञानीपुरुषका नित्यही वैरी है तथा इच्छा तृष्णारूप है तथा अग्निकी न्याई पूरितते रहितहै ॥ ३९ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जिसकरिकै वस्तुकूं जानिये ताका नाम ज्ञान है ऐसा अंतःकरण करिकैही वस्तु जान्याजावैहै। अथवा अंतःकरणकी वृत्तिरूप जो विवेकविज्ञान है ताका नाम ज्ञानहै । ऐसा ज्ञान इस कामनैंही आवृत करचा है । शंका–हे भगवन् ! यद्यपि इस कामनैं सो ज्ञान आवृत करचा है तथापि अविचारसिद्ध सुखका हेतु होणेतें यह काम ग्रहण करणेकूं योग्य है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुये श्रीभगवान् कहैं है (ज्ञानिनो नित्यवैरिणा इति) हे अर्जुन ! यह काम ज्ञानीपुरुषोंका तौ नित्यही वैरी है काहेतें अज्ञानीपुरुष तौ विषयभोगकालविषे ता कामकूं मित्रकी न्याईही जानते हैं । और ता अज्ञानी पुरुषकूं जबी ता कामका कार्यरूप दुःख आइकै प्राप्त होवै है तबी सो अज्ञानीपुरुष इस कामनैंही हमारेकूं इस दुःखकी प्राप्ति करी है इसप्रकार ता कामकूं शत्रुरूप करिकै जानै है यातें ता अज्ञानीपुरुषका सो काम

नित्यही वैरी नहीं है किंतु दुःखरूप परिणामकालविषे वैरी है । और ज्ञानवान् पुरुष तौ ता विषयभोगकालविषे भी इस कामनैंही हमारेकूं इस अनर्थविषे प्रवृत्त कऱ्याहै या प्रकार ता कामकूं वैरीही जानै है । यातैं सो ज्ञानवान् पुरुष विषयभोगकालविषे तथा ताके दुःखरूप परिणामकालविषे इस कामकरिकै दुःखीही होवैहै । या कारणतैं यह काम ता ज्ञानवान् पुरुषका नित्यही वैरीहै । ऐसे नित्यवैरीरूप कामकूं ता ज्ञानवान् पुरुषनैं अवश्यकरिकै हनन करणा । शंका--हे भगवन् ! ता कामके स्वरूप जानेतैं विना ताका हनन संभवै नहीं यातैं ता कामका स्वरूप कह्याचाहिये । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहै हैं (कामरूपेण इति) हे अर्जुन ! इच्छातृष्णारूप कामहीहै रूप जिसका ऐसा यह कामहै । शंका--हे भगवन् ! यद्यपि सो काम विवेकी पुरुषका नित्यही वैरीही है यातैं विवेकी पुरुषोंनैं तौ ता कामका अवश्यकरिकै हनन करणा । तथापि अविवेकी पुरुषोंका सो काम नित्यवैरी है नहीं । यातैं तिन अविवेकी पुरुषोंनैं तौ ता कामका अवश्यकरिकै ग्रहण करणा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (दुष्पूरेणानलेन च इति) हे अर्जुन ! जैसे यह अग्नि घृतकाष्ठादिकों करिकै तृप्त होवै नहीं, तैसे यह कामभी अनेक प्रकारके भोगोंकरिकै भी तृप्त होवै नहीं । याकारणतैं यह काम निरंतर संतापकाही हेतुहै । यातैं विवेकीपुरुषकी न्याईं अविवेकीपुरुषनैं भी ता कामका परित्यागही करणा इति । अथवा । शंका--हे भगवन् । इसलोकविषे जोजो इच्छा होवैहै सोसो इच्छा आपणेआपणे विषयकी प्राप्तितैं निवृत्ति होइजावै है । और यह कामभी इच्छारूपही है यातैं यह कामभी तिसतिस विषयोंके भोगकरिकै आपही निवृत्ति होइ जावैगा । ता कामकी निवृत्ति करणेवास्तै दूसरे उपायका कुछ प्रयोजन नहीं है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं (दुष्पूरेणानलेन च इति) हे अर्जुन ! विषयकी प्राप्तिकालविषे यद्यपि ता विषयकी इच्छाका तिरोधान होवै है तथापि कालांतरविषे पुनः ता इच्छाका प्रादुर्भाव होवै है । यातैं विषयकी

प्राप्ति ता इच्छाका निवर्त्तक नहींहै किंतु विषयोंविषे वारंवार दोषदृष्टिही ता इच्छाका निवर्त्तक है ॥ ३९ ॥

शंका—हे भगवन् ! इस लोकविषे जिस शत्रुके स्थानका ज्ञान होवै है सोईही शत्रु जीत्या जावै है । ता शत्रुके स्थानके ज्ञानतैं विना सो शत्रु जीत्या जावै नहीं । यातैं इस कामशत्रुके जीतणेवासतै प्रथम इस कामका अधिष्ठान जान्यां चाहिये । जिस अधिष्ठानके आश्रित हुआ यह काम लोकोंकूं अनर्थकी प्राप्ति करै है । सो कामका अधिष्ठान कौन है? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता कामके अधिष्ठानका कथन करैं हैं—

इंद्रियाणि मनोबुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ॥
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥ ४० ॥

(पदच्छेदः) इंद्रियाणि । मनः । बुद्धिः । अस्य । अधिष्ठानम् । उच्यते । एतैः । विमोहयति । एषः । ज्ञानम् । आवृत्य । देहिनम् ॥ ४० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इंद्रियें मन बुद्धि यह तीनोंही इस कामके अधिष्ठान कहेजावै हैं इन तीनों करिकैही यह काम ता ज्ञानकूं आवृतकरिकै देहाभिमानी जीवकूं मोहकी प्राप्ति करैहै ॥ ४० ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध या पांचोंकूं यथाक्रमतैं विषय करणेहारे जे श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसन, घ्राण, यह पंच ज्ञानइंद्रिय हैं । तथा वचन, आदान, गमन, आनंद, विसर्ग, या पंच क्रियावोंके यथाक्रमतैं जनक जे वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ, पायु, यह पंचकर्म इंद्रिय जो हैं । यह दशइंद्रिय जो हैं तथा संकल्परूप जो मन है तथा निश्चयरूप जो बुद्धि है ये तीनोंही इस कामके अधिष्ठान कहे जावैं हैं । इन तीनोंकरिकैही यह काम ता विवेक (ज्ञानकूं) आवृत करिकै देहाभिमानी पुरुषकूं नानाप्रकारके मोहकी प्राप्ति करै है ॥ ४० ॥

जिस कारणतैं तिन इंद्रियादिकोंके आश्रितहुआही यह काम देहाभिमानी जीवोंकूं अनेक प्रकारके मोहकी प्राप्ति करैहै। तिसकारणतैं तूं प्रथम तिन इंद्रियादिकोंकूंही जय कर। तिन इंद्रियादिकोंके जयहुए ता कामकाभी सुखेनही जय होवैगा। या अर्थकूं श्रीभगवान् अर्जुनकेंप्रति कथन करै हैं--

तस्मात्त्वमिंद्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ॥
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥४१॥

(पदच्छेदः) तस्मात् । त्वम् । इंद्रियाणि । आदौ । नियम्य । भरतर्षभ । पाप्मानम् । प्रजहि । हि । एनम् । ज्ञानविज्ञानना-शनम् ॥ ४१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिसकारणतैं तूं अर्जुन प्रथम तिन इंद्रियोंकूं वशकरिकै सर्व पापोंके मूलभूत तथा ज्ञानविज्ञानके नाशकरणेहारे इस कामकूं ही नाश कर ॥ ४१ ॥

भा०टी०--हे अर्जुन ! जिसकारणतैं इस कामके ते श्रोत्रादिक इंद्रियही अधिष्ठानरूप है। जैसे किसी राजाके पर्वत दुर्गआदिक अधिष्ठान होवैं हैं वैसे इस कामके ते श्रोत्रादिक इंद्रियही अधिष्ठानरूप हैं तिसकारणतैं तूं अर्जुन ता कामकृत मोहतैं पूर्व अथवा ता कामके निरोधतैं पूर्व तिन श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं वशकरिकै इस कामकूं नाश कर। तिन इंद्रियोंके वश कियेतैं विना ता कामका नाश करचा जावै नहीं जैसे किसी पर्वतविषे तथा किसी दुर्गादिकोंविषे स्थित जो कोई राजा है ता राजाके तिन पर्वत दुर्गादिकोंकूं आपणे वश करिकैही दूसरे राजे ता राजाकूं नाश करै हैं। तिन पर्वतदुर्गादिकोंके वशकियेतैं विना ता राजाकूं दूसरे राजे नाश करि-सकैं नहीं। तैसे तिन इंद्रियोंके वशकियेतैं विना ता कामका नाश होवै नहीं। और तिन श्रोत्रादिक इंद्रियोंके वशकियेतैं अनंतर मन बुद्धि या दोनोंकाभी वशकरण सिद्ध होवै है काहेतैं संकल्परूप जो मन है तथा निश्चयरूप जो बुद्धि है यह दोनों बाह्यइंद्रियजन्य वृत्तिद्वाराही अनर्थके

कारण होवैं हैं । ता बाह्यइंद्रियजन्य वृत्तितैं विना तिन दोनोंविषे अनर्थकी कारणता संभवै नहीं । यातैं तिन श्रोत्रादिक इंद्रियोंके वश हुएवैं अनंतर सो मन बुद्धिभी अवश्यकरिकै वश होवै हैं । या कारणतैंही पूर्वश्लोकविषे (इंद्रियाणि मनो बुद्धिः) या वचन करिकै इंद्रिय मन बुद्धि या तीनोंका भिन्नभिन्न कथनकरिकैभी इस श्लोकविषे (इंद्रियाणि) या वचन करिकै केवल श्रोत्रादिक इंद्रियोंकाही कथन कऱ्या है । अथवा जैसे बाह्यशब्दादिकोंके ज्ञानविषे श्रोत्रादिकोंकूं इंद्रियरूपता है तैसे अंतर सुखदुःखादिकोंके ज्ञानविषे मनबुद्धिकूंभी इंद्रियरूपता है । यातैं (इंद्रियाणि) या पद करिकै ता मनबुद्धिकाभी ग्रहण होइसकै है इति । तहां (हे भरतर्षभ) या संबोधनके कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कऱ्या महान् भरतवंशविषे तूं उत्पन्न भया है । यातैं तिन इंद्रियोंके वश करणेविषे तूं समर्थ है इति । शंका—हे भगवन् ! इस लोकविषे जो कोई पुरुष किसी महान् अपराधकूं करै है तिस पुरुषकाही राजादिक नाश करै हैं अपराधतैं विना किसीकाभी कोई नाश करता नहीं । सो ऐसा अपराध इस काममैं कौन कऱ्या है जिस अपराधकरिकै मैं इसका नाश करौं । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता कामकृत अपराधका वर्णन करै हैं (पाप्मानं ज्ञानविज्ञाननाशनमिति) हे अर्जुन ! यह जीव ता कामके वशहुएही सर्वपापोंकूं करै है । कामरहित पुरुष किसी भी पापकूं करते नहीं । यातैं अन्वयव्यतिरेक करिकै यह कामही सर्वपापकर्मोंका मूलरूप है । पुनः कैसा है सो काम गुरु शास्त्रके उपदेशतैं उत्पन्नभया जो आत्माका परोक्षज्ञान है तथा ता परोक्षज्ञानका फलरूप जो आत्माका अपरोक्षज्ञानरूपविज्ञान है ये ज्ञानविज्ञान दोनों इसपुरुषकूं मोक्षकी प्राप्ति करणेहारे हैं । तिन ज्ञानविज्ञान दोनोंका यह काम नाश करणेहारा है ऐसे महान् अपराधवाले कामका अवश्य करिकै नाश कऱ्याचाहिये ॥ ४१ ॥

. हे भगवन् ! ता कामके नाशकरणे वास्ते पूर्व आपनैं इंद्रियोंका वशकरणा कथन करचा। सो यद्यपि जिसीकिसीप्रकारतैं बाह्य श्रोत्रादिक इंद्रियोंका वशकरणा तो संभव होइसकै है तथापि अंतरकी तृष्णाका त्यागकरणा बहुत दुर्घट है। समाधान-हे अर्जुन (रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते) इसवचनविषे पूर्व हम परवस्तुके दर्शनकूंही ता रसरूप तृष्णाकी निवृत्तिविषे कारणरूप कथन करिआये हैं। शंका-हे भगवन् ! जिस परवस्तुके दर्शनतै तिस तृष्णाकी निवृत्ति होवै है । सो परवस्तु कौन है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिस परशब्दका अर्थरूप शुद्धआत्माकूं देहादिकोंतै भिन्न करिकै निरूपण करैं हैं-

इंद्रियाणि पराण्याहुरिंद्रियेभ्यः परं मनः ॥
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥ ४२ ॥

(पदच्छेदः) इंद्रियाणि । पराणि । आहुः । इंद्रियेभ्यः । परम् । मनः । मनसः । तु । परा । बुद्धिः । यः । बुद्धेः । परतः । तु । सः ॥४२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! वेदकी श्रुतियां इस स्थूलशरीरतैं श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं परे कहैं है तथा तिन इंद्रियोतैं मन परे है तथा ता मनतैं बुद्धि परेहै और जो बुद्धितैं भी परे स्थित है सोई ही परआत्मा है॥४२॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! स्थूल तथा जड तथा परिच्छिन्न तथा बाह्य ऐसे जे यह देहादिक अर्थ है तिन देहादिक अर्थोंकी अपेक्षाकरिकै श्रोत्रादिक पंचज्ञानइंद्रिय सूक्ष्म हैं तथा प्रकाशक हैं तथा व्यापक हैं तथा अंतर स्थित है। यातैं वेदवेत्तापुरुष अथवा वेदकी श्रुतियां तिन देहादिक अर्थोतैंतिन श्रोत्रादिकइंद्रियोंकूं पर कहैंहैं अर्थात् उत्कृष्ट कहैंहैं।इसप्रकार आगे भी जानिलेणा और संकल्पविकल्परूप मनही तिन श्रोत्रादिक इंद्रियोंका प्रवर्त्तक है। मनतैं विना तिन इंद्रियोंकी प्रवृत्ति होवै नहीं या कारणतैंही मनकी सावधानतातैं विना समीप वस्तुकाभी नेत्रादिक इंद्रियोंकरिकै ग्रहण होता

नहीं । यातैं तिन श्रोत्रादिक इंद्रियोंतै सो संकल्पविकल्परूप मन पर है और निश्चय रूप बुद्धिपूर्वकही सो मनका संकल्परूप धर्म उत्पन्न होवै है । ता निश्चयतैं विना सो संकल्प होवै नहीं । यातैं सा संकल्परूप मनतैं सा निश्चयरूप बुद्धि पर है । और जो आत्मादेव ता बुद्धिका प्रकाशक होणेतैं ता बुद्धितैभी परै स्थित है। और जिस देहीरूप आत्माकूं इंद्रियादिक आश्रयोंकरिकै युक्तहुआ यह काम ज्ञानके आवरणद्वारा मोहकी प्राप्ति करै है सो बुद्धिद्रष्टासाक्षी आत्माही ता परशब्दका अर्थ है । इहां (बुद्धेः परतस्तु सः) या वचन विषे स्थित जो सः यह पदहै ता सः पदकरिकै यद्यपि व्यवधानतैं रहित वस्तुकाही परामर्श होवै है व्यवधानयुक्त वस्तुका परामर्श होवै नहीं तथापि जैसे श्रुतिविषे (आत्मैवेदमग्र आसीत्) या वचन करिकै आत्माका प्रतिपादन करिकै तिसतैं अनन्तर अनेक पदार्थोंका प्रतिपानकरिकै तिसतैं अनंतर (स एष इह प्रविष्टः) या प्रकारका वचन कथन कऱ्या है । या वचनविषे स्थित जो सः यह पद है । ता सःपदकरिकै । पूर्व (आत्मैवेदमग्र आसीत) या वचनविषे कथनकरे हुए व्यवहित आत्माकाभी परामर्श कऱ्या है । तैसे इहांभी चालीसवें श्लोकविषे (देहिनं) या पदकरिकै कथन कऱ्या जो आत्मा है ता व्यवहित आत्माका ता सःपदकरिकै परामर्श संभवहोइसकै है इति । तहां श्रुति (इंद्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः । मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ॥ महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः । पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥) अर्थ यह—श्रोत्रादिक इंद्रियोंतैं शब्दादिक अर्थ पर हैं । और तिन अर्थोंतैं मन पर हैं । और ता मनतै व्यष्टिबुद्धि पर है और ता व्यष्टिबुद्धितैं हिरण्यगर्भकी समष्टिबुद्धि पर है । और ता समष्टिबुद्धितैं मायारूप अव्याकृत पर है । और ता मायारूप अव्याकृततैं सर्वजडपदार्थोंका प्रकाश करणेहारा पूर्ण आत्मा पर है । शंका—ऐसे परिपूर्ण आत्मातैंभी कोई पर होवैगा । ऐसी शंकाके हुए साक्षात् श्रुति भगवती उत्तर कहै है । (पुरु-

पान्न परं किंचित्) इति ता परमात्मादेवतैं परै कोई भी वस्तु नहीं है। जिसकारणतैं सो परमात्मादेवही काष्ठारूप है अर्थात् सर्वका अधिष्ठान होणेतैं समाधिरूप है । तथा (सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्) इत्यादिक श्रुतियोंकरिकै सिद्ध जो परागति है ता परागतिरूपभी सो परमात्मादेवही है इति । यह सर्व अर्थ (यो बुद्धेः परतस्तु सः) इस वचन करिकै श्रीभगवान्नैं कथन कऱ्या है । इहां श्रुतिका तथा भगवत्वचनका आत्माके परत्वविषेही तात्पर्य है, कोई इंद्रियादिकोंके परत्वविषे तात्पर्य नहीं है । और श्रुतिविषे (इंद्रियेभ्यः परा ह्यर्थाः) यह जो वचन स्थित है ता वचनके स्थानविषे श्रीभगवान्नैं "अर्थेभ्यः पराणींद्रियाणि" यह वचन कथन कऱ्या है। तहां जैसे शब्दादिक अर्थोंविषे इंद्रियोंतैं परत्व संभवै है तैसे पूर्वउक्त हेतुवोंतैं तिन इंद्रियोंविषेभी देहादिक अर्थोंतैं परत्व संभवै है । यातैं ता श्रुतिवचनके साथि भगवान्के वचनका विरोध होवै नहीं । इन दोनों श्रुतियोंका अर्थ आत्मपुराणके नवमें अध्याय विषे हम विस्तारसैं कथन करिआये हैं ॥ ४२ ॥

अब पूर्ववचनोंके कहणे करिकै सिद्धभया जो अर्थ है ता फलितार्थकूं श्रीभगवान् कथन करैं है—

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) एवम् । बुद्धेः । परम् । बुद्ध्वा । संस्तभ्य । आत्मानम् । आत्मना । जहि । शत्रुम् । महाबाहो । कामरूपम् । दुरासदम् ॥ ४३ ॥

(पदार्थः) हे महान्बाहुवाला अर्जुन ! इस प्रकार आत्मादेवकूं बुद्धितैं परै जानिकरिकै तथा मनकूं निश्चयरूपबुद्धि करिकै स्थिरकरिकै इस तृष्णारूप तथा दुःखकरिकै वशहोणेहारे कामरूप शत्रुकूं तूं नाशकर ४३॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! (रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते) इस श्लोक विषे जो आत्मादेव परशब्दकरिकै कथन कर्‍या है तिस परिपूर्ण आत्मा देवकूं बुद्धितैं पर साक्षात्कारकरिकै तथा यह साक्षी आत्मा बुद्धितैंभी पर है या प्रकारकी निश्चयरूप बुद्धि करिकै मनकूं स्थिर करिकै तूं सर्व पुरुषार्थके नाशकरणेहारे इस कामरूप शत्रुकूं नाश कर । कैसा है यह कामरूप शत्रु इच्छातृष्णा है स्वरूप जिसका । तथा वा परआत्माके साक्षात्कारतैं विना बहुत दुःखकरिकैभी नाशकरणेकूं अशक्य है । ऐसे कामके नाशहुएतैं अनंतर सर्व अनर्थोंकी निवृत्ति होवैहै । वा कामके नाशतैं विना जन्ममरणादिक अनर्थोंकी निवृत्ति होवै नहीं । इहां (दुरासदम्) यह जो कामका विशेषण कथन कर्‍याहै सो इस कामके नाशकरणेवासतै इस अधिकारी पुरुषनें अत्यंत अधिकप्रयत्न करणा या अर्थके बोधनकरणेवासतै कथन कर्‍याहै । और (हे महाबाहो) या संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कर्‍या, महापराक्रमवाले तैं अर्जुनकूं इस कामरूप शत्रुका नाश करणा अत्यंत सुगम है इति । इस तृतीय अध्यायके सर्व अर्थका संक्षेपतैं कथन करणेहारा यह श्लोक है (उपायः कर्मनिष्ठात्र प्राधान्येनोपसंहृता । उपेया ज्ञाननिष्ठा तु तद्गुणत्वेन कीर्तिता) । अर्थ यह—ज्ञाननिष्ठाका उपायरूप जो निष्कामकर्मनिष्ठाहै सा कर्मनिष्ठा इस तृतीय अध्यायविषे प्रधानरूपकरिकै कथन करीहै । और फलरूप ज्ञाननिष्ठा तौ ताका गौणरूपकरिकै कथन करी है ४३ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां श्रीभगवद्गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां तृतीयोध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थाध्यायप्रारंभः ।

तहां पूर्व अध्यायविषे यद्यपि उपायकरिकै प्राप्त होणेकूं योग्य जो उपेयरूप ज्ञानयोग हैं तथा ता ज्ञानयोगका उपायरूप जो कर्मयोग है तिन दोनोंयोगोंकूं यथाक्रमतैं उपेयरूप करिकै तथा उपायरूप करिकै श्रीभगवान्

कथन करता भया है तथापि (एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति) इस वक्ष्यमाण वचनकी रीतिसैं साध्यरूप ज्ञानयोग तथा ताका साधनरूप कर्मयोग या दोनों योगोंके फलकी एकतावैं एकता कथन करिके वा साधनरूप कर्मयोगकी तथा साध्यरूप ज्ञानयोगकी अनेक प्रकारके गुणोंके आधान अर्थ श्रीभगवान् विद्यावंशके कथन करिकैं स्तुति करैहैं-

श्रीभगवानुवाच ।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ॥
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥१॥

(पदच्छेदः) इमम् । विवस्वते । योगम् । प्रोक्तवान् । अहम् । अव्ययम् । विवस्वान् । मनवे । प्राह । मनुः । इक्ष्वाकवे । अब्रवीत् ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन । मैं कृष्णभगवान् इस नाशसैंरहित ज्ञानयोगकूं प्रथम सूर्यके ताई कहताभया और सो सूर्य आपणे मनुपुत्रकेताई कहता-भया और सो मनु आपके इक्ष्वाकुपुत्रकेताई कथनकरताभया ॥ १ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन । द्वितीय तृतीय या दोनों अध्यायोंकरिकै कथन कऱ्या जो ज्ञाननिष्ठारूप ज्ञानयोग है जो ज्ञानयोग कर्मनिष्ठारूप कर्मयोगरूप उपायकरिकै प्राप्त होवैहै । ऐसे ज्ञाननिष्ठारूप ज्ञानयोगकूं मैं सर्वजगत्का पालक वासुदेव सृष्टिके आदिकालविषे सूर्यके प्रति कथन करता भया जो सूर्य क्षत्रियवंशका बीजरूप है । तात्पर्य यह । ता ज्ञान-योगकी प्राप्तिद्वारा तिन राजावोंविषे बलका आधानकरिकै तिन राजावोंके आधीन सर्वजगत्का पालन करणेवास्तै मैं कृष्णभगवान् तिन राजावोंके प्रति ता ज्ञानयोगका कथन करताभया इति । शंका-हे भगवन् ! इस ज्ञानयोगकरिकै तिन राजावोंविषे किस प्रकार बलका आधान होवै है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता ज्ञानयोग-

विषे विशेषण करिकै ता बलके आधानकी कारणताकूं निरूपण करें हैं (अव्ययमिति) हे अर्जुन ! नाशतैं रहित जो वेदभगवान्‌हैं सो वेदभगवान्‌ही इस ज्ञानयोगका मूलरूप हैं या कारणतैं यह ज्ञानयोग अव्यय या नाम करिकै कह्या जावै है । अथवा ता ज्ञानयोगका फलरूप जो मोक्ष है सो मोक्ष नाशतैं रहित है । या कारणतैंभी यह ज्ञानयोग अव्यय या नाम करिकै कह्या जावैहै । इस प्रकार वेदरूप मूल करिकै तथा मोक्षरूप फलकरिकै नाशतैंरहित जो ज्ञानयोग है ता ज्ञानयोगविषे तिन राजावोंके बलकी आधानकृता संभवैहै इति । हे अर्जुन! सो हमारा शिष्य सूर्य आपणे वैवस्वतमनुनामा पुत्रके ताईं सो ज्ञानयोग कथन करता भया । और सो वैवस्वतमनु आपणे इक्ष्वाकुनामा पुत्रके ताईं सो ज्ञानयोग कथन करताभया । जो इक्ष्वाकु सर्व राजावोंतैं आदि राजा है । यद्यपि यह श्रीभगवान्‌का उपदेश मन्वंतरमन्वंतरविषे स्वायंभुवमनु आदिक सर्व मनुवोंके प्रति साधारणही है तथापि इदानींकालविषे विद्यमान जो वैवस्वतमन्वंतर है ता वैवस्वतमन्वंतरके अभिप्राय करिकै श्रीभगवान्‌नें सूर्यतैं लेके विद्याका संप्रदाय गणन कर्याहै इति ॥ १ ॥

किंच–

एवं परंपराप्राप्तमिमं राजर्षयोऽविदुः ॥
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) एवम् । परंपराप्राप्तम् । इमम् । राजर्षयः । अविदुः । सः । कालेन । इह । महता । योगः । नष्टः । परंतप ॥ २॥

(पदार्थः) हे अर्जुन । इसप्रकार परंपराकरिकै प्राप्त इस ज्ञानयोगकूं राजऋषि जानते भयेहैं सो ज्ञानयोग इदानींकालविषे दीर्घ कालकरिकै नष्टहोइरह्याहै ॥ २ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! इसप्रकार सूर्यतें आदिलैके गुरुशिष्योंकी परंपराकरिकै प्राप्तभया जो यह ज्ञानयोगहै ताज्ञानयोगकूं निमि जनक अजात-

शत्रु कैकेय इत्यादिक राजऋषि सूक्ष्मअर्थके जानणेहारे आपणेआपणे आचार्य पिता आदिकोंतै जानतेभये हैं। राजे होवैं तेईही ऋषि होवै तिन्होंका नाम राजऋषि है अर्थात् क्षत्रियराजावोंका नाम राजऋषि है । अथवा (राजर्षयः) या पदकरिकै राजावोंका तथा ऋषियोंका भिन्नभिन्न ग्रहण करना। तहां राजाशब्द करिकै तौ निमि जनक अजातशत्रु कैकेय इत्यादिक राजाओंका ग्रहण करणा और ऋषिशब्द करिकै सनक, वसिष्ठ इत्यादिक ऋषियोंका ग्रहण करणा या प्रकारका अर्थ किसी टीकाविषे कथन कऱ्याहै और किसी टीकाविषे तौ (राजर्षयः) या पदकरिकै पूर्वउक्तरीतिसैं क्षत्रियराजावोंकाही ग्रहण कऱ्याहै। परंतु ता पदकूं सनक वसिष्ठ इत्यादिक ब्राह्मणऋषियोंकाभी उपलक्षक अंगीकार कऱ्या है इति । यातै यह ज्ञानयोग अनादिवेदमूलक होणेतैं तथा नाशतैं रहित मोक्षरूप फलका जनक होणेतै तथा अनादिगुरुशिष्योंकी परंपराकरिकै प्राप्त होणेतैं कृत्रिमशंकाका विषय होवै नहीं । तात्पर्य यह-यह ज्ञानयोग पूर्व नहीं था किंतु इदानींकालविषेही हुआहै याप्रकारकी कृत्रिमशंका ता ज्ञानयोगविषे संभवती नहीं इति । ऐसा महानुप्रभाववाला यह ज्ञानयोग है इसप्रकार ता ज्ञानयोगविषे मुमुक्षुजनोंकी अत्यंत श्रद्धा करावणेवासतै श्रीभगवान्नैं ता ज्ञानयोगकी स्तुति कथन करी है इति। हे अर्जुन ! सो ऐसा महान् प्रयोजनवालाभी ज्ञानयोग धर्मकी न्यूनता करणेहारे दीर्घकालकरिकै इस द्वापरके अंतमैं तुम्हारे हमारे व्यवहारकालविषे दुर्बल अजितइंद्रिय अनधिकारी पुरुषोंकूं प्राप्त होइकै काम क्रोधादिक विकारोंकरिकै अभिभवकूं प्राप्त हुआ विच्छिन्न संप्रदायवाला होताभया है । और ता ज्ञानयोगतैं विना अधिकारीजनोंकूं मोक्षरूप परमपुरुषार्थकी प्राप्ति होवै नहीं । यातै इन लोकोंके अत्यंत दुर्भाग्यहै । इहां (हे परंतप !) या संबोधनके कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कऱ्या-परं शत्रु तापयतीति परंतपः । अर्थ यह-कामक्रोधादिक शत्रुवोंका नाम परहै । तिन काम क्रोधादिक शत्रुवोंकूं जो पुरुष आपणे शौर्यताकरिकै अथवा बलवान्विवेककरिकै

अथवा तपकरिकै सूर्यकी न्याई तपायमान करैहै वा पुरुषका नाम परंतप है। अर्थात् जितेंद्रियपुरुषका नाम परंतप है। ऐसा तुम्हारा जितइंद्रियपणा स्वर्गकी उर्वशी आदिक अप्सरावोंकी उपेक्षा करणेतैं शास्त्रविषे प्रसिद्धही है। ऐसा जितइंद्रिय होणेतैं तूं अर्जुन इस ज्ञानयोगविषे अधिकारी है ॥ २ ॥

किंच–

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः॥
भक्तोसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥३॥

(पदच्छेदः)सः। एव। अयम्।मया ते। अद्य।योगः।प्रोक्तः। पुरातनः। भक्तः। असि। मे। सखा। च। इति। रहस्यम्। हि। एतत्। उत्तमम् ॥ ३ ॥

(पदार्थः)हे अर्जुन ! सोई ही यह अनादि ज्ञानयोग इसकालविषे मैं कृष्ण भगवान्नैं तुम्हारे ताई कथन कन्या है जिसकारणतैं तूं अर्जुन हमारा भक्त है तथा सखा है जिसकारणतैं यह ज्ञानयोग उत्तम है तथा अत्यंत गोप्य है ॥ ३ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जो ज्ञानयोग पूर्व हमनैं सूर्यादिक शिष्योंके प्रति उपदेश करयाहुआ भी इदानींकालविषे अधिकारी पुरुषोंके अभावतैं विच्छिनसंप्रदायवाला होता भया है। तथा जिस ज्ञानयोगतैं विना इन पुरुषोंकूं मोक्षरूप परमपुरुषार्थकी प्राप्ति होती नहीं। सोईही गुरुशिष्योंकी परंपराकरिकै अनादि ज्ञानयोग इस संप्रदायके विच्छेदकालविषे अति स्नेह युक्त मैं कृष्णभगवान्नैं तैं अर्जुनके ताई विस्तारतैं कथन करया है। दूसरे जिसीकिसीपुरुषके ताई हमनैं यह ज्ञानयोग उपदेश कन्या नहीं। जिस कारणतैं तूं अर्जुन हमारा भक्त है अर्थात् मेरे शरणागतकूं प्राप्त हुआ तूं मेरेविषे अत्यंत प्रीतिमान् है तथा तूं अर्जुन हमारा सखा है अर्थात् हमारेसमान अवस्थावाला है तथा हमारेविषे स्नेहवालाहै तथा हमारी

सहायता करणेहारा है । इसकारणतैं यह ज्ञानयोग हमनैं तुम्हारेप्रति कथन कऱ्या है । शंका–हे भगवन् ! यह ज्ञानयोग हमारेतैं भिन्न दूसरे पुरुषोंके प्रति आपनैं किस वास्तै नहीं कथन कऱ्या है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (रहस्यं ह्येतदुत्तममिति) हे अर्जुन ! जिसकारणतैं यह ज्ञानयोग अत्यंत उत्तम है । तथा अत्यंत गोप्य राखणेयोग्य है । तिसकारणतैं हमनैं यह ज्ञानयोग अन्य किसी पुरुषके प्रति कथन कऱ्या नहीं । तहां श्रुति (विद्याह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेह मस्मि । असूयकायानृजवेऽयताय न मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम् ।) अर्थ यह–एककालविषे ब्रह्मविद्या ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणोंके समीप जातीभई तहां जाइकै तिन ब्राह्मणोंके प्रति याप्रकारका वचन कहतीभई हे ब्राह्मणों ! तुम हमारेकूं अत्यंत गोप्य राखो ताकरिकै मैं तुम्हारेप्रति भोग मोक्ष दोनोंकी प्राप्ति करोंगी और जो कदाचित् कृपाके वश हुए तुम हमारेकूं गोप्य नहीं राखिसको तोभी विवेक वैराग्यादिक साधनसंपन्न अधिकारियोंके प्रति हमारा उपदेश करो । और जो पुरुष असूयात वाला है तथा ऋजुभावतैं रहित है तथा मनसहित इंद्रियोंके निग्रहतैं रहितहै ऐसे अनधिकारी पुरुषके प्रति हमारा उपदेश तुमने कदाचित् भी नहीं करणा किंतु अधिकारीपुरुषोंके प्रतिही उपदेश करणा । जिसकरिकै मैं ब्रह्मविद्या फलका हेतु होवौं इति । इस श्रुतिका विस्तारतैं अर्थ तौ आत्मपुराणके द्वितीयअध्यायविषे हम कथन करि आये हैं यातैं इहां संक्षेपतैं कह्या है ॥ ३ ॥

तहां शास्त्रविचारतैं रहित मूर्खलोकाकूं वसुदेवके पुत्ररूप श्रीकृष्णभगवान्‌विषे मनुष्यत्वरूप हेतुकरिकै जो असर्वज्ञपणेकी तथा अनित्यपणेकी शंका होवै है ता शंकाके निवृत्तकरणेवास्तै ता शंकाका अनुवाद करता हुआ अर्जुन श्रीभगवान्‌के प्रति प्रश्न करै है–

अर्जुन उवाच ।

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ॥
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥४॥

(पदच्छेदः) अपरम्। भवतः। जन्म। परम्। जन्म। विवस्वतः। कथम्। एतत्। विजानीयाम्। त्वम्। आदौ। प्रोक्तवान् इति ॥ ४ ॥

(पदार्थः) हे भगवन्! आपका जन्मतौ अबीहुआ है और सूर्यका जन्मतौ पूर्वहुआ है यातैं तूं कृष्णभगवान् सृष्टिके आदिकालविषे सूर्यके प्रति यह ज्ञानयोग कहताभया है यंह वार्ता मैं अर्जुन किसप्रकार निश्चयकरौं ॥ ४ ॥

भा० टी०—हे भगवन्! आप कृष्ण भगवान्का शरीरका ग्रहणरूप जन्म तौ इसद्वापरके अंतकालविषे वसुदेवके गृहविषे हुआ है सो जन्म भी मनुष्यत्वजातिवाला होणेतैं निकृष्ट है और सूर्यका जन्म तौ सृष्टिके आदिकालविषे हुआ है और सो सूर्यका जन्म देवत्वजातिवाला होणेतैं उत्कृष्ट है इहां (न जायते म्रियते वा कदाचित्) इत्यादि वचनोंकरिकै पूर्व आत्माके जन्मका अभाव विस्तारतैं कथन करि आये है यातैं आत्माके जन्मविषे तौ अर्जुनका प्रश्न संभवता नहीं किंतु स्थूलदेहके जन्मके अभिप्राय करिकै ही अर्जुनका यह प्रश्न है इति। यातैं हे भगवन्! अबी इस कालविषे उत्पन्नहुआ तथा सर्वज्ञ मनुष्य तूं पूर्व सृष्टिके आदिकालविषे उत्पन्न हुए सर्वज्ञ सूर्यके ताईं यह ज्ञानयोग कथन करताभया है। इस अर्थकूं मैं अर्जुन अविरुद्धरूप करिकै किसप्रकार निश्चय करौं किंतु यह आपके वचनका अर्थ हमारेकूं अत्यंत विरुद्ध प्रतीत होता है। इहां अर्जुनका यह अभिप्राय है, सूर्यके प्रति जो आपनैं इस ज्ञानयोगका उपदेश कर्याथा सो इस वर्त्तमान देहतैं भिन्न किसी दूसरे देहकरिकै उपदेश कर्याथा अथवा इस वर्त्तमानदेह करिकैही उपदेश कर्याथा तहां प्रथमपक्ष जो आप अंगीकार करो सो संभवता नहीं काहेतैं पूर्वजन्मविषे अनुभवकर्या जो अर्थ है ता अर्थका उत्तर दूसरे जन्मविषे असर्वज्ञपुरुषकूं स्मरण होवै नहीं जो कदाचित् पूर्वजन्मविषे अनुभव करे हुए अर्थका दूसरे जन्मविषे भी असर्वज्ञ पुरुषकूं स्मरण होता

होवै तो मैं अर्जुनकूंभी पूर्वजन्मविषे अनुभव करे हुए अर्थका इसजन्म-विषे स्मरण होणा चाहिये सो स्मरण हमारेकूं होता नहीं । और तुम्हारे विषे तथा हमारेविषे मनुष्यरूपता करिकै असर्वज्ञपणा तुल्यही है । याते हमारे न्याई तुम्हारेकूंभी जन्मांतरविषे अनुभव करे हुए पदार्थोंका इस जन्मविषे स्मरण नहीं होवैगा इति । और इस वर्त्तमान देहकरिकैही पूर्व सूर्यके प्रति हमनें यह ज्ञानयोग उपदेश कऱ्या है यह दूसरापक्ष जो आप अंगीकार करो सोभी संभवता नहीं । काहेतैं इस वर्त्तमानकालविषे वसु-देवपितातै उत्पन्न भया जो यह तुम्हारा देह है सो यह देह पूर्व सृष्टिके आदिकालविषे विद्यमान था नहीं । यातैं इस वर्त्तमान देह करिकै भी आपका सूर्यके प्रति उपदेश संभवै नहीं यातैं यह अर्थ सिद्धभया इस देहतैं भिन्न दूसरे किसी देहकरिकै ता सृष्टिके आदिकालविषे आपकी स्थितिके संभवहुए भी ता देहकरिकै अनुभव करेहुए अर्थका इस वर्त-मान देहविषे स्मरण नहीं संभवैगा । और इस वर्त्तमान देहकरिकै ता स्मरणकी सिद्धिहुए भी सृष्टिके आदिकालविषे इस वर्त्तमान देहकी स्थिति संभवती नहीं । इस प्रकार असर्वज्ञ अनित्यत्व या दोनों हेतुवों करिकै अर्जुनके दो पूर्वपक्ष सिद्ध होवें हैं ॥ ४ ॥

तहां श्रीभगवान् आपणेविषे सर्वज्ञपणा कथन करिकै प्रथम पूर्वपक्षके परिहारकूं कथन करैं हैं–

श्रीभगवानुवाच ।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ॥
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥ ५ ॥

(पदच्छेदः) बहूनि । मे । व्यतीतानि । जन्मानि । तव । च । अर्जुन । तानि । अहम् । वेद । सर्वाणि । न । त्वम् । वेत्थ । परंतप ॥ ५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! हमारे तथा तुम्हारे बहुत जन्म व्यतीत होतेभये हैं तिन सर्वजन्मोंकूं मैं कृष्णभगवान् जानताहूं हे परंतप तूं तिन जन्मोंकूं नहीं जानता है ॥ ५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जैसे यह लोक सर्वदा विद्यमान सूर्यका भी उदय मानैहै तैसे वास्तवतैं जन्मतैं रहित हुएभी मैं कृष्ण भगवान्के लोकदृष्टिके अभिप्राय करिकै लीलामात्रतैं देहका ग्रहणरूप अनेकजन्म पूर्व व्यतीत होते भये हैं और आत्मज्ञानतैं रहित जो तूं अर्जुन है तिस तुम्हारे भी पुण्य पाप कर्मोंक वशतैं देहका ग्रहणरूप अनेक जन्म पूर्व होते भये हैं इहां (तव) यह एक अर्जुनका वाचक पद दूसरे जीवोंकाभी उपलक्षक है अथवा (तव) यह पद एक जीववादके अभिप्राय करिकै कथन कन्या है इति । हे अर्जुन ! तिन आपणे सर्व जन्मोंकूं तथा तुम्हारे सर्व जन्मोंकूं तथा अन्य जीवोंके सर्वजन्मोंकूं मैं सर्वज्ञ सर्वशक्तिसंपन्न ईश्वरही जानता हूं तूं आवृत ज्ञानशक्तिवाला अज्ञानी अर्जुन तिन सर्वजन्मोंकूं जानता नहीं । तात्पर्य यह—तूं अर्जुन अज्ञान दोषके वशतें जबी पूर्वव्यतीत हुए आपणे जन्मोंकूंभी नहीं जानता हैं तबी पूर्व व्यतीत हुए हमारे जन्मोंकूं तथा अन्यजीवोंके जन्मोंकूं तूं कैसे जानिसकैगा किंतु नहीं जानिसकेगा इति । इहां हे अर्जुन ! या संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कन्या, शास्त्रविषे किसी वृक्षविशेषकूंभी अर्जुन या नामकरिकै कथन करैं हैं ता अर्जुन नामा वृक्षकी ज्ञानशक्ति जैसे आवृत रहै है तैसे वै अर्जुनकीभी सा ज्ञानशक्ति आवृत होइरही है । यातैं तिन आपणे तथा हमारे जन्मोंकूं तूं जानि सकता नहीं इति । और (हे परंतप !) या संबोधनके कहणे करिकै श्रीभगवान्नै यह अर्थ सूचन कन्या, परं नाम शत्रुका है ता शत्रुकूं भेददृष्टिवैं कल्पना करिकै ता शत्रुके हनन करणेविषे तूं प्रवृत्त हुआ है जैसे कोई मूढबालक आपणे शरीरकूं ही पिचारा कल्पनाकरिकै ताके हननकरणेविषे प्रवृत्त होवै है । यातैं विपरीवदर्शी होणेतैं तूं

अर्जुनभी भ्रान्त है इति । इहां (हे अर्जुन ! हे परंतप !) या दोनों संबोधनों करिकै श्रीभगवान्नैं आवरण विक्षेप या दोनों विषे अज्ञानकी धर्मरूपता कथन करी ॥ ५ ॥

हे भगवन् ! जो कदाचित् पूर्व व्यतीत हुए आपणे अनेक जन्मोंकूं आप स्मरण करते हो तौ आप भी जातिस्मरनामा कोई जीवविशेष होवौगे काहेतैं जातिस्मर योगीपुरुषोंकूं सर्वात्मअभिमान करिकै दूसरे जन्मोंका ज्ञान भी संभव होइसकता है । जैसे वामदेवकूं सर्वात्मअभिमान करिकै पूर्व अनेकजन्मोंका स्मरण होता भया है । तहां सो वामदेव माताके उदरविषे स्थित होइकै या प्रकारका वचन कहताभया है । हे अधिकारीजनो ! मैं वामदेव जीव हुआ भी पूर्व मनु होता भया हूं तथा सूर्य होता भया हूं तथा कक्षीवान् ऋषि होता भया हूं इति । इस प्रकार सो वामदेवनाम जीव सर्वात्मअभिमान करिकै पूर्वले अनेक जन्मोंकूं स्मरण करता भया है । तिन जन्मोंके स्मरण करिकै जैसे वामदेवविषे मुख्य सर्वज्ञपणा सिद्ध होता नहीं तैसे पूर्वजन्मोंके स्मरण करिकै आपविषे भी मुख्य सर्वज्ञपणा सिद्ध नहीं होवैगा । यातैं ईश्वरभावतैं रहित हुआ तूं कृष्ण भगवान् पूर्व सर्वज्ञसूर्यके प्रति सो ज्ञानयोग किसप्रकार उपदेश करता भया है किंतु सर्वज्ञ सूर्यके प्रति आपका उपदेश संभवता नहीं । हे भगवन् ! जीवविषे मुख्य सर्वज्ञपणा संभवता नहीं काहेतैं व्यष्टिउपाधिवालेका नाम जीव है सो व्यष्टि उपाधिवाला जीव परिच्छिन्नही होवै है यातैं ता परिच्छिनजीवका भूत भविष्यत् वर्त्तमान सर्व पदार्थोंके साथि संबधही नहीं संभवता है। और तिन सर्व पदार्थोंके साथि संबंधतैं विना तिन सर्व पदार्थोंका ज्ञान संभवता नहीं । हे भगवन् ! व्यष्टि उपाधिवाले जीवकी क्या वार्त्ता है । परन्तु समष्टिउपाधिवाला जो विराट् है तथा समष्टि उपाधिवाला जो हिरण्यगर्भ है तिन दोनोंकूं भी

सर्वपदार्थोंका ज्ञान संभवता नहीं काहेतैं समष्टिस्थूलभूतरूप उपाधिवाला जो विराट् है तिस विराट्कूं यद्यपि स्थूलभूतोंके कार्यविषयकज्ञान संभवै है तथापि ता विराट्कूं सूक्ष्मभूतोंके परिणामविषयक ज्ञान तथा मायाके परिणामविषयक ज्ञान संभवता नहीं । इसप्रकार समष्टिसूक्ष्मभूतरूप उपाधिवाला जो हिरण्यगर्भ है ता हिरण्यगर्भकूं यद्यपि स्थूलभूतोंके परिणामविषयकज्ञान तथा सूक्ष्मभूतोंके परिणामविषयकज्ञान संभव होइसकै है तथापि ता हिरण्यगर्भकूं तिन सूक्ष्मभूतोंका कारणरूप मायाके परिणामरूप आकाशादिकसृष्टिक्रमादिकविषयक ज्ञान संभवता नहीं । यातैं विराट्विषे तथा हिरण्यगर्भविषे भी मुख्यसर्वज्ञता संभवै नहीं तौ व्यष्टिउपाधिवाले जीवोंविषे सा मुख्य सर्वज्ञता कैसे संभवैगी ? किंतु नहीं संभवैगी । यातैं मायारूपकारणउपाधिवाला होणेतैं भूत भविष्यत् वर्त्तमान सर्वपदार्थविषयकज्ञानवाला जो ईश्वर है सो मायाउपहित ईश्वरही मुख्य सर्वज्ञ है । ऐसे जन्ममरणतैं रहित नित्य सर्वज्ञ ईश्वरविषे पुण्य पाप कर्म हैं नहीं । यातैं ता ईश्वरका प्रथम तौ जन्महोणाही संभवता नहीं तो पूर्वव्यतीतहुए अनेक जन्म ता ईश्वरके कैसे संभवैंगे ? किंतु नहीं संभवैंगे । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया, जो कदाचित् आप जीव हो तौ हमारेन्याई आपविषे सर्वज्ञता नहीं संभवैगी और जो कदाचित् आप ईश्वरहो तौ आपविषे देहका ग्रहणरूप जन्म नहीं संभवैगा इति । ऐसी अर्जुनकी दोनों शंकावोंकूं निवृत्त करताहुआ श्रीभगवान् पूर्व कथनकऱ्येहुए अनित्यत्वपक्षकेभी परिहारकूं कथन करैहैं—

अजोपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोपि सन् ॥
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) अजः । अपि । सन् । अव्ययात्मा । भूतानाम् । ईश्वरः । अपि । सन् । प्रकृतिम् । स्वाम् । अधिष्ठाय । संभवामि आत्ममायया ॥ ६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन । मैं कृष्णभगवान् जन्मतैंरहित हुआ भी तथा मरणतैं रहित हुआभी तथा सर्वभूतोंका ईश्वर हुआ भी आपणी मायाकूं आश्रयण करिकै ता आपणी मायाकरिकै जन्मवाला होताहूं ॥ ६ ॥

भा० टी०—अपूर्व देह इंद्रियादिकोंका जो ग्रहण है ताका नाम जन्म है और पूर्व ग्रहणकरेहुए देहइंद्रियादिकोंका जो वियोगरूप मरण है ताका नाम व्यय है ता जन्ममरण दोनोंकूं ही नैयायिक प्रेत्यभाव यानामकरिकै कथन करे हैं तिन जन्ममरण दोनोंकूं (जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च) इस वचन करिकै पूर्व कथन करि आये है । ते जन्ममरण दोनों इस जीवकूं धर्म अधर्मके वशतै प्राप्त होवै है और सो धर्मअधर्मका वशपणा देहाभिमानी अज्ञानी जीवकूं कर्मोंके अधिकारीपणे करिकै ही होवै है । तहां सर्वके कारणरूप सर्वज्ञ ईश्वरकूं इस प्रकारका देहका ग्रहणरूप जन्म नही संभवता है यह जो पूर्व कथनकरयाथा सो यथार्थ ही है काहेतैं जो कदाचित् तिस ईश्वरका शरीर स्थूलभूतोंका कार्यरूप होवै तहां स्थूल भूतोंका कार्यरूप हुआभी सो शरीर जो कदाचित् व्यष्टिरूप होवैगा तौ जाग्रत अवस्थाविषे स्थित अस्मदादिक विश्वनामा जीवोंके तुल्यही सो ईश्वर होवैगा । और जो कदाचित् सो ईश्वरका शरीर समष्टिरूप होवैगा तौ ता ईश्वरविषे विराट्नामाजीवरूपता प्राप्त होवैगी । जिस कारणतैं समष्टिस्थूलउपाधिवाला विराट् ही होवै है । और सो ईश्वरका शरीर जो कदाचित् सूक्ष्मभूतोंका कार्यरूप होवै तहां सूक्ष्मभूतोंका कार्यरूप हुआ भी सो ईश्वरका शरीर जो कदाचित् व्यष्टिरूप होवैगा तौ ता ईश्वरविषे स्वप्नावस्थाविषे स्थित हम तैजसनामाजीवोंकी तुल्यता प्राप्त होवैगी । और सो ईश्वरका शरीर जो कदाचित् समष्टिरूप होवैगा तौ ता ईश्वरविषे हिरण्यगर्भनामाजीवरूपता प्राप्त होवैगी । जिस कारणतै समष्टिसूक्ष्मउपाधिवाला हिरण्यगर्भही होवैहै यातैं यह अर्थ सिद्ध भया, आकाशादिकभूतोंका कार्यरूप तथा किसी भी जीवनैं नहीं आश्रयणकऱ्याहुआ ऐसा भौतिक शरीर ता ईश्वरका संभवता नही और जो कोई यह कहै किसी जीव

करिकै युक्त जो भौतिक शरीर है ता भौतिकशरीरविषे भूतावेशकी न्याई सो ईश्वर प्रवेश करै है सो यह कहणा भी संभवता नहीं। काहेतें जिस जीवकरिकै युक्त जिस भौतिकशरीरविषे ता ईश्वरनैं प्रवेश कन्याहै तिस शरीरकरिकै तिस जीवकूं सुखदुःखका भोग होता है अथवा नहीं होता है तहां प्रथम पक्ष जो अंगीकार करौ तौ अंतर्यामीरूप करिकै ता ईश्वरका प्रवेश सर्व शरीरोंविषे विद्यमान है। यातै ता ईश्वरके शरीर-विशेषका अंगीकार करणा व्यर्थ होवैगा। और दूसरा पक्ष जो अंगीकार करो तौ सो शरीर ता जीवका नहीं संभवैगा। यातैं किसी प्रकार करिकै भी ईश्वरका भौतिक शरीर संभवता नहीं। इस सर्व अर्थकूं श्रीभगवान् श्लोकके पूर्वार्द्ध करिकै अंगीकार करैं हैं (अजोपि सन्नव्ययात्मा भूताना-मीश्वरोपि सन् इति) हे अर्जुन ! अपूर्वदेहका ग्रहणरूप जो जन्म है ता जन्मतैं भी मैं कृष्ण भगवान् रहित हूं। तथा पूर्वदेहका परित्यागरूप जो व्यय है ता मरणरूप व्ययतै भी मैं कृष्णभगवान् रहित हूं। तथा ब्रह्मातैं आदि-लैके स्तंबपर्यंत जितनेक भूत हैं तिन सर्वभूतोंका मैं कृष्ण भगवान् ईश्वर हूं। इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नें आपणेविषे धर्मअधर्मका वश-पणा निवृत्त करया। जिस कारणतै जन्ममरणवाला पराधीन जीवही ता धर्मअधर्मके वश होवै है। स्वतंत्र ईश्वर ता धर्मअधर्मके वश होवै नहीं। शंका–हे भगवन् ! ऐसे जन्ममरणादिक विकारोंतैं रहित आप ईश्वरकूं देहका ग्रहण किस प्रकार संभवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् श्लोकके उत्तरार्द्धकरिकै समाधान करैं हैं (प्रकृतिं स्वा-मधिष्ठाय संभवामि इति) हे अर्जुन ! यद्यपि वास्तवतैं मैं कृष्ण भगवान् जन्ममरणादिक सर्वविकारोंतैं रहित हूं तथापि मैं परमेश्वरकी उपाधि-रूप तथा विचित्र अनेकशक्तियोंवाली तथा अघटितघटनापटीयसी नाम-वाली तथा सत्व रज तम या त्रिगुणरूप ऐसी जा माया प्रकृति है, ता प्रकृतिकूं आपणे चिदाभासद्वारा वशकरिकै तिस मायाके परिणाम विशे-षोंकरिकै ही देहवालेकी न्याईं तथा जन्मेहुएकी न्याईं प्रतीत होताहूं ।

तात्पर्य यह। उत्पत्तितैं रहित होणेतैं अनादिरूप जो माया है सो अनादिमाया ही मैं परमात्मादेवकी उपाधि है। सो माया व्यवहारकालपर्यंत स्थायी होणेतैं नित्य है। तथा मैं परमात्मादेवविषे सर्व जगत्के कारणपणेका संपादक है तथा मैं परमात्मादेवकी इच्छाकरिकै ही सो माया प्रवृत्त होवै है। ऐसी मायाही विशुद्ध सत्त्वरूप करिकै मैं परमात्मादेवकी मूर्त्ति है। ता मायारूप मूर्त्तिविशिष्ट मैं परमात्मादेवविषे जन्मतैं रहितपणा तथा मरणतैं रहितपणा तथा सर्वभूतोंका ईश्वरपणा संभव होइ सके है। यातैं ता शुद्धसत्त्व प्रधानमायारूप नित्यदेहकरिकै ही मैं परमात्मादेव सृष्टिके आदिकालविषे तौ सूर्यके प्रति तथा इदानींकालविषे तैं अर्जुनके प्रति यह ज्ञानयोग उपदेश करतामयाहूं। इस अर्थविषे किंचित्मात्रभी पूर्वउक्तदोषोंकी प्राप्ति होवै नहीं। तहां श्रुति। (आकाशशरीरं ब्रह्म) अर्थ यह—आकाश है नाम जिसका ऐसा जो मायारूप अव्याकृत है। ता अव्याकृतरूप शरीरवाला ब्रह्म है। इत्यादिक श्रुतियोंविषे ब्रह्मका मायाही शरीर कथन कन्या है ता मायारूप शरीरकरिकै मै परमात्मादेवकी जगत्की उत्पत्तिकालविषे तथा स्थितिकालविषे तथा प्रलयकालविषे सर्वदा स्थिति संभव होइसके है इति। शंका—हे भगवन् ! जो कदाचित् आपका केवल मायाही शरीर होवै भौतिक शरीर होवै नहीं, तौ भौतिक शरीरके धर्म जे मनुष्यत्वादिक हैं ते मनुष्यत्वादिक धर्म इस आपके शरीरविषे किसवास्तै प्रतीत होते हैं ? ऐसी अर्जुनकी शंकाकेहुए श्रीभगवान् कहैं हैं (आत्ममायया इति) हे अर्जुन ! हमारेविषे जे मनुष्यत्वादिक धर्म प्रतीत होवै हैं। ते मनुष्यत्वादिक धर्म हमारेविषे कोई वास्तवतैं नहीं किंतु लोकोंकपरि अनुग्रह करणेवास्तै हमारी मायाकरिकै ही ते मनुष्यत्वादिक धर्म हमारेविषे प्रतीत होवै हैं इति। यह वार्त्ता मोक्षधर्मविषेभी कथन करी है। तहां श्लोक। (माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद। सर्वभूतगुणैर्युक्तं न तु मां द्रष्टुमर्हसि।) अर्थ यह—हे नारद ! जिस शरीरविशिष्ट मेरेकूं तूं इन चर्मचक्षुओंकरिकै देखता है सो यह शरीर हमनै मायाकरिकै

रच्या है और कारणमायारूप शरीरवाला जो मैं हूं तिस हमारेकूं तूं इन चर्मचक्षुवोंकरिकै देखणेकूं समर्थ नहीं है इति । तहां अनेकशक्तियोंवाला तथा मायानामवाला ऐसा जो नित्यकारण उपाधि है सो मायारूप कारणउपाधिही परमेश्वरका देह है । यह भगवान् भाष्यकारोंका मत कथन करया । और दूसरे कई शास्त्रवाले तौ परमेश्वरविषे देहदेहीभावकूं मानते नहीं । किंतु जो सत् चित् आनंदघन भगवान् वासुदेव परिपूर्ण निर्गुण परमात्मा है सोईही ता परमेश्वरका शरीर है । दूसरा कोई भौतिकशरीर तथा मायिकशरीर ता परमेश्वरका है नहीं इति । तहां श्रुति— (स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठितः स्वे महिम्ने ।) अर्थ यह—हे भगवन् ! सो परमात्मादेव किसविषे स्थित है ऐसी शंकाके हुए । सो परमात्मादेव आपणे सत् चित् आनंदरूप महिमाविषेही स्थित इति । इत्यादिक श्रुतियोंविषे तिस परमात्मादेवकी आपणेस्वरूपविषेही स्थिति कथन करी है किसी मायिकशरीरविषे तथा भौतिक शरीरविषे स्थिति कथन करी नहीं इति इसपक्षविषे तौ इस श्लोककी इस प्रकारतैं योजना करणी। (आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः । अविनाशी वा अरेऽयमात्माऽनुच्छित्तिधर्मा ।) अर्थ यह—यह परमात्मादेव आकाशकी न्याईं सर्वत्र व्यापक है तथा नित्य है । हे मैत्रेयी ! यह आत्मादेव स्वरूपतैं भी नाशतैं रहित है तथा धर्मोंके नाशप्रयुक्त नाशतैं भी रहित है इत्यादिक श्रुतिप्रमाणोंतैं मैं परमात्मादेव वास्तवतैं जन्ममरणादिक विकारोंतैं रहित हुआ भी तथा सर्वजगत्का प्रकाशहुआ भी तथा सर्वजगत्का कारणरूप मायाका अधिष्ठान होणेतैं सर्वभूतोंका ईश्वरहुआभी (स्वां प्रकृतिं) आपणा स्वरूपभूत सत् चित् आनंदघन एकरस स्वभावरूप प्रकृतिकूं (अधिष्ठाय)क्या आश्रयणकरिकै अर्थात् ता आपणे स्वरूपविषे स्थित होइकै (संभवामि) क्या देहदेहीभावतैं विना ही लोकप्रसिद्ध देहवाले जीवोंकी न्याईं यह परमेश्वर देहवाला है या प्रकारके व्यवहारका विषय होऊंहूं इति । शंका—हे भगवन् ! मायिकदेहतैं तथा भौतिक देहतैं रहित सत् चित् आनंदघन जो आप हो ऐसे

आपविषे इस मनुष्यदेहत्वकी प्रतीति किसवासतै होती है ? ऐसा अर्जुनकी शंकाकेहुए श्रीभगवान् कहै हैं (आत्ममायया इति) हे अर्जुन ! देह-देहोभावतैं रहित जो मैं नित्य शुद्ध सत् आनंदघन भगवान् वासुदेव हूं। ऐसे मैं परमात्मादेवविषे जो देहदेहीरूपकरिकै प्रतीति है; सा मायामात्रही है। वास्तवतैं हमारेविषे सो देहदेहीभाव है नहीं। यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथन करी है। वहां श्लोक—(कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्। जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया।अहोभाग्यमहोभाग्यं नंदगोपव्रजौकसाम्। यन्मित्रं परमानंदं पूर्णब्रह्म सनातनम्।)अर्थ यह—इस कृष्णभगवान्कूं तूं सर्व भूतप्राणियोंका आत्मारूप जान ऐसा सर्वभूतप्राणियोंका आत्मारूप हुआभी जो कृष्ण भगवान् इस लोकविषे भक्तजनोंके उद्धार करणेवासते आपणी माया करिकै देहवाले जीवोंकी न्याईं प्रतीत होवै है। किंवा व्रजभूमिविषे रहणेहारे जे नंदगोपगोपियां हैं तिन सर्वोंके अहोभाग्य हैं अहोभाग्य हैं। जिस व्रजवासी लोकोंके यह परमानंद परिपूर्ण सनातन ब्रह्म कृष्णरूपकरिकै मित्रभावकूं प्राप्त हुआ है इति। और कोईक पुरुष तौ तिस परमात्मादेवकूं नित्य निरवयव निर्विकार परमानन्दरूप मानिकरिकैभी ता परमात्मादेवविषे अवयवअवयवीभाव वास्तवही अंगीकार करैहै। तिन पुरुषोंका कहणा अत्यंत निर्युक्तिक है ॥ ६ ॥

हे भगवन्! इसप्रकार सत् चित् आनंदघनरूप जो आपहो तिस आपका किस कालविषे तथा किस प्रयोजनवासते देहवाले जीवकी न्याई व्यवहार होवैहै। ऐसी अर्जुनकी शंकाकेहुए श्रीभगवान् उत्तर कहै हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ॥
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) यदा। यदा। हि। धर्मस्य। ग्लानिः। भवति। भारत। अभ्युत्थानम्। अधर्मस्य। तदा। आत्मानम्। सृजामि। अहम् ॥७॥

(पदार्थः)हे अर्जुन! जिस जिसकालविषे धर्मकी हानि होवैहै तथा अधर्मकी वृद्धिहोवैहै तिसकालविषे मैंपरमात्मादेव देहकूं उत्पन्नकरूंहूं ॥७॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! वेदकरिकै विधान कऱ्याहुआ जो प्रवृत्तिनिवृत्तिरूप धर्म है, जो धर्म कामनापूर्वक कऱ्या हुआ इन प्राणियोंके स्वर्गादिरूप अभ्युदयका साधन होवैहै । तथा जो धर्म निष्काम कऱ्याहुआ इन प्राणियोंके मोक्षरूप निःश्रेयसका साधन होवैहै । तथा जो धर्म ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या च्यारिवर्णोंका तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास या च्यारि आश्रमोंका अभिव्यंजक है अर्थात् जनावणेहारा है । तहां श्रद्धाभक्तिपूर्वक अग्निहोत्रादिक कर्मोंकूं करणा याका नाम प्रवृत्तिरूप धर्म है। और परस्त्रीगमनादिक नहीं करणे याका नाम निवृत्तिरूप धर्म है । ऐसे धर्मकी जिसजिसकालविषे हानि होवै है । और वेदकरिकै निषिद्ध कऱ्याहुआ तथा नानाप्रकारके दुःखोंका साधनरूप तथा धर्मका विरोधी ऐसा जो अधर्म है तिस अधर्मकी जिसजिसकालविषे वृद्धि होवै है, तिसतिसकालविषे मैं परमात्मादेव आपणे देहकूं सृजताहूं । अर्थात् नित्यसिद्ध आपणे देहकूं मायाकरिकै रचेहुएकी न्याईं दिखावताहूं । इहां (.हे भारत !) या सम्बोधनके कहणेकरिकै श्रीभगवान्ने यह अर्थ सूचन कऱ्या । भरतवंशविषे जो उत्पन्न होवैहै ताका नाम भारत है । अथवा भा नाम ज्ञानका है ताकेविषे जो रतहोवै अर्थात् ज्ञानविषे जो प्रीतिवाला होवै ताका नाम भारत है । ऐसे भारतनामवाला तूं अर्जुन धर्मकी हानिकूं सहारणेविषे समर्थ नहीं है ॥ ७ ॥

हे भगवन् ! सा धर्मकी हानि तथा अधर्मकी वृद्धि यह दोनों आपके परितोषका कारण होवैंगे जिसकरिकै आप तिसीकालविषेही अवतारकूं धारण करोहो यातैं आपका अवतार उलटा लोकोंकूं अनर्थकी प्राप्तिकरणेहाराही हुआ ऐसी अर्जुनकी शंकाकेहुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं–

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्॥
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगेयुगे ॥८॥

(पदच्छेदः) परित्राणाय । साधूनाम् । विनाशाय । च । दुष्कृताम् । धर्मसंस्थापनार्थाय । संभवामि । युगे । युगे ॥८॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! साधुपुरुषोंके रक्षणकरणे वासतै तथा पापी पुरुषोंके नाशकरणेवासतै तथा धर्मके संस्थापनकरणेवासतै मैं परमेश्वर युग युगविषे अवतारकूं धारण करूंहूं ॥ ८ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! धर्मकी हानिकरिकै हानिकूं प्राप्तहुए तथा निरंतर वेदप्रतिपादित मार्गविषे स्थित ऐसे जे वेदविहित पुण्यकर्मोंकूं करणेहारे श्रेष्ठ पुरुष हैं जे श्रेष्ठ पुरुष आपणे प्राणोंके नाश हुए भी आपणे धर्मकूं परित्याग करते नहीं तिन श्रेष्ठपुरुषोंका नाम साधु है । ऐसे साधुपुरुषोंके रक्षण करणेवासतै और अधर्मकी वृद्धि करिकै वृद्धिकूं प्राप्तहुए तथा वेदमार्गके विरोधी तथा शरीर मन वाणी करिकै सर्वदा वेदनिषिद्ध पापकर्मोंकूं करणेहारे ऐसे जे दुष्टपुरुष हैं, तिन दुष्टपुरुषोंका नाम दुष्कृत है । ऐसे दुष्कृत पुरुषोंका समूलतैं नाशकरणेवासतै मैं परमेश्वर युगयुगविषे अवतारकूं धारण करूं हूं शंका–हे भगवन् ! साधुपुरुषोंका रक्षण तथा दुष्टपुरुषोंका विनाश या दोनोंकूं आप किस प्रकार करो हो । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं (धर्मसंस्थापनार्थाय इति) हे अर्जुन ! पूर्व वृद्धिकूं प्राप्त हुआ जो अधर्म है, ता अधर्मकी निवृत्तिकरिकै जो धर्मका सम्यक् स्थापन है अर्थात् वेदमार्गका परिरक्षण है ताका नाम धर्मसंस्थापन है ता धर्मके संस्थापन करणेवास्तेही मैं परमात्मादेव अवतारकूं धारण करूं हूं । ता धर्मके संस्थापनकरिकै साधुपुरुषोंका रक्षण तथा दुष्टपुरुषोंका विनाश अवश्यकरिकै होवै है । यातैं हमारा अवतार किसीकूं अनर्थकी प्राप्ति करणेहारा नहीं है ॥ ८ ॥

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः॥
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥९॥

(पदच्छेदः) जन्म । कर्म । च । मे । दिव्यम् । एवम् । यः । वेत्ति । तत्त्वतः । त्यक्त्वा । देहम् । पुनः । जन्म । न । एति । माम् । एति । सः । अर्जुन ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष हमारे दिव्य जन्मकूं तथा कर्मकूं इसप्रकार यथार्थ जानै है सो पुरुष इसदेहकूं परित्याग करिकै पुनः जन्मकूं नहीं प्राप्त होवै है किंतु मैं परमेश्वरकूंही प्राप्त होवै है ॥ ९॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! नित्यसिद्ध जो मैं सतचित्आनंदघन हूं ऐसे मैं परमात्मादेवका आपणी लीला मात्रकरिकै लोकप्रसिद्ध जीवोंके जन्मकी न्याई जो जन्मका अनुकरणमात्र रूप जन्म है, तथा मैं नित्यसिद्धपरमेश्वरका वेदविहित धर्मकी स्थापना करिकै जगत्का परिपालन रूप जो कर्म है ते हमारे जन्म कर्म दोनों दिव्य हैं अर्थात् दूसरे प्राकृतपुरुषोंकूं करणेविषे आवश्यक है केवल मैं ईश्वरकेही असाधारण धर्मरूप हैं ऐसे हमारे दिव्य जन्म कर्म दोनोंकूं जो पुरुष (अजोपिसन्नव्ययात्मा) इत्यादिक वचनोक्त रीतिसे तत्त्वतै जानै है। अर्थात् मूढपुरुषोंनेही श्रीभगवान्विषे मनुष्यत्वकी भ्रांति करिकै इतरजीवोंकी न्याई गर्भवासादिरूप जन्म आरोपण कऱ्या है तथा आपणे स्वार्थवासतै सो कर्म आरोपण कऱ्या है ता आरोपित जन्म कर्मकूं वास्तवतैं शुद्ध सत्चित्आनन्दस्वरूपके ज्ञानतैं निवृत्त करिकैः जन्मतैं रहित परमेश्वरकाभी, आपणी माया करिकै लीलामात्रतै लोकप्रसिद्ध जीवोंके जन्मकी न्याई जन्मका अनुकरणमात्र संभवै है। तथा वास्तवतैं अकर्ता परमेश्वरकाभी दूसरे लोकोंके ऊपरि अनुग्रह करणेवासतै लोक प्रसिद्ध जीवोंके कर्मकी न्याई कर्मका अनुकरणमात्र संभव होइसकै है इस प्रकार जो पुरुष हमारे जन्म कर्मकूं वास्तवरूपतैं जानै है। तथा इसी प्रकार आपणे वास्तवस्वरूपकूं भी जानै है। सो पुरुष इस वर्त्तमान शरीरका परित्याग करिकै पुनः दूसरे जन्मकूं प्राप्त होता नहीं । किंतु सो पुरुष सतचित् आनंद घन मैं भगवान् वासुदेवकूंही प्राप्त होवै है। अर्थात् सत्चित् आनन्दरूप परमात्मा देव मैं हूं या प्रकारके अभेदज्ञानतैं सो पुरुष इस संसारतैं मुक्त होवै है ॥ ९ ॥

तहां पूर्व श्लोकविषे (मामेति सोऽर्जुन) यह वचन कथन कऱ्या । अब श्रीभगवान् आपणे वास्तवस्वरूपकूं सर्वमुक्त पुरुषोंके प्राप्तिका पदरूप करिकै परमपुरुषार्थ रूपताका तथा इस मोक्षमार्गकूं अनादिपरंपराकरिकै प्राप्तपणेका कथन करै हैं-

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ॥
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) वीतरागभयक्रोधाः । मन्मयाः । माम् । उपाश्रिताः । बहवः । ज्ञानतपसा । पूताः । मद्भावम् । आगताः ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! रागभयक्रोधतैं रहित तथा मेरेविषे चित्तवाले तथा हमारे शरणकूं प्राप्तहुए तथा ज्ञानरूप तपकरिकै पापोंतैं रहितहुए ऐसे बहुतपुरुष मेरे स्वरूपकूं प्राप्त होतेभये हैं ॥ १० ॥

भा० टी०-तिसतिस स्वर्गादिकफलोंके प्राप्तिकी जो तृष्णा है ताका नाम राग है और स्त्री पुत्र धनादिक सर्वविषयोंका परित्याग करिकै ज्ञानमार्गविषे स्थितहुए हमारा किस प्रकार जीवन होवैगा या प्रकारका जो त्रास है ताका नाम भय है और सर्वविषयोंका मूलतैं उच्छेद करणेहारा जो ज्ञानमार्ग है सो ज्ञानमार्ग किस प्रकार हमारा हित होवैगा किंतु हित नहीं होवैगा या प्रकारका जो द्वेष है ताका नाम क्रोध है । ते राग भय क्रोध तीनों विवेककरिकै निवृत्त हुए हैं जिन पुरुषोंके तिन पुरुषोंका नाम वीतरागभयक्रोध है अर्थात् शुद्धअन्तःकरणवाले ते पुरुष हैं । पुनः-कैसेहैं ते पुरुष (मन्मयाः) क्या मैं तत्पदार्थरूप परमात्मादेवकूं त्वंपदार्थरूप आपणे आत्माके साथि अभेदकरिकै साक्षात्कार कऱ्या है जिनोंने । अथवा (मन्मयाः) क्या मैं एक परमात्मादेवविषेही है चित्त जिनोंका । पुनः कैसेहैं ते पुरुष (मामुपाश्रिताः) क्या अनन्य प्रेमभक्तिकरिकै मैं परमात्मादेवकेही जे शरणकूं प्राप्त हुएहैं । ऐसे अनेक शुकवामदेवादिक पुरुष ज्ञानरूप तपकरिकै सर्व पापोंतैं रहित हुए अर्थात् कार्यसहित अज्ञा-

नरूप मलतें रहित हुए हमारे सत्चित् आनन्दस्वरूपभूत मोक्षकूं प्राप्त होते भये हैं । अथवा (ज्ञानतपसा पूताः) क्या ज्ञानरूप तपकरिकै जीवन्मुक्तरूप वे पुरुष (मद्भावमागताः) क्या मैं परमात्माविषयक रतिनामा प्रेमरूप भावकूं प्राप्त होते हैं इसी अर्थकूं श्रीभगवान् आपही (तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते) इस वचनकरिकै आगे कथन करैगा १० ॥

हे भगवन् ! जे पुरुष ज्ञानरूप करिकै पवित्र हुएहैं ते निष्कामपुरुष तौ आपके भावकूं प्राप्त होवैहैं और जे पुरुष ता ज्ञानरूप तपकरिकै पवित्र नहीं हुएहैं ते सकामपुरुष ता आपके भावकूं नहीं प्राप्त होवै हैं । इस प्रकार निष्काम पुरुषोंकूं तौ आपणे भावकी प्राप्ति करणेहारा तथा सकाम पुरुषोंकूं आपणे भावकी नहीं प्राप्ति करणेहारा जो आप ईश्वर हो, तिस आपकूं विषमता दोषकी प्राप्ति तथा निर्दयतादोषकी प्राप्ति अवश्य करिकै होवैगी । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं—

ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥
मम वर्त्मानुवर्तंते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) ये । यथा । माम् । प्रपद्यन्ते । तान् । तथा । एव । भजामि । अहम् । मम । वर्त्म । अनुवर्त्तंते । मनुष्याः । पार्थ । सर्वशः ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! जे पुरुष जिस प्रकारकरिकै मैं परमेश्वरकूं भजते हैं तिन पुरुषोंकूं मैं परमेश्वर तिसीप्रकार ही अनुग्रह करूंहूं यह कर्मके अधिकारी मनुष्य सर्वप्रकार करिकै मैं परमेश्वरके भजन मार्गकूं अनुसरण करैहैं ॥ ११ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! इस लोकविषे दुःखकरिकै पीडित जे आर्त्त-पुरुष हैं तथा धनादिक पदार्थोंके प्राप्तिकी इच्छा करणेहारे जे अर्थार्थी पुरुष हैं, तथा आत्माके जानणेकी इच्छावाले जे जिज्ञासु पुरुष हैं, तथा तत्त्वसाक्षात्कारवाले जे ज्ञानी पुरुष हैं, तिन च्यारिप्रकारके पुरुषोंविषे जेजे

पुरुष सकामपणे करिकै तथा निष्कामपणे करिकै सर्व कर्मोंके फलप्रदाता मैं ईश्वरकूं भजते हैं, तिन पुरुषोंकूं तिसतिस मनवांछितफलकी प्राप्ति करिकै मैं परमेश्वर अनुग्रह करूंहूं, तिन भक्तजनोंकूं मैं परमेश्वर विपरीत-फलकी प्राप्ति करता नहीं। तहां मोक्षकी इच्छातैं रहित जे आर्त्तभक्त है, तिन आर्त्तभक्तोंकूं तौ तिनोंके पीडाकी निवृत्ति करिकै अनुग्रह करौंहूं और मोक्षकी इच्छातैं रहित जे अर्थार्थी पुरुष हैं तिन अर्थार्थी पुरुषोंकूं तौ धनादिक पदार्थोंकी प्राप्ति करिकै अनुग्रह करौंहूं। और (तमेतंवेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषंति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन ।) इस श्रुतिनैं विधानकरीये जो निष्काम कर्म हैं, तिन निष्काम कर्मोंकूं करणेहारे जे जिज्ञासु जन हैं तिन जिज्ञासु भक्तोंकूं तौ आत्मज्ञानकी प्राप्तिकरिकै अनुग्रह करौंहूं और ज्ञानवान् भक्तोंकूं तौ मोक्षकी प्राप्ति करिकै अनुग्रह करौं। अन्य वस्तुकी कामनावाले भक्तजनकूं अन्य वस्तुकी प्राप्ति मैं करता नहीं, यातैं तिन पुरुषोंके भावनाके अनुसार फलके देणेहारे मैं परमेश्वरविषे विषमतादोषकी तथा निर्दयतादोषकी प्राप्ति संभवै नहीं। शंका—हे भगवन् ! यद्यपि आप लोकोंके भावनाके अनुसारही तिसतिस फलकी प्राप्ति करो हो, तथापि आपणे भक्तजनोंके प्रतिही ता फलकी प्राप्ति करोहो । अन्य इंद्रादिक देवतावोंके भक्तोंकूं आप तिस फलकी प्राप्ति करते नहीं। यातैं आपकेविषे सो विषमतादोष तथा निर्दयतादोष तिसीप्रकार स्थित है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (मम वर्त्मानुवर्त्तंते मनुष्याः पार्थ सर्वशः इति) हे अर्जुन ! जे कर्मोंके अधिकारी मनुष्य इंद्र अग्नि सूर्य इत्यादिकदेवतावोंकाभी भजन करै है, ते मनुष्यभी मैं अंतर्यामी वासुदेवकेही ज्ञानकर्मरूप मार्गकूं अनुसरण करै हैं। अर्थात् ते मनुष्यभी मैं परमेश्वरकाही भजन करै हैं। और तिन इंद्रादिकदेवतावोंके भक्तोंकूंभी मैं परमात्मादेवकी तिसतिस इंद्रादिरूपकरिकै तिसतिस फलकी प्राप्ति करूंहूं यातैं मैं परमेश्वरविषे किंचित् मात्रभी विषमतादोषकी तथा निर्दयतादोषकी प्राप्ति संभवै नहीं । इसी अर्थकूं

(फलमत उपपत्तेः) इस सूत्रकरिकै श्रीव्यासभगवान् भी कथन करता-भया है । इसी अर्थकूं (येप्यन्यदेवताभक्ताः) इत्यादिक वचनों-करिकै श्रीभगवान् आपही आगे स्पष्टकरिकै कथन करैंगे । तथा इसी अर्थकूं (इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः) इत्यादिक वेदके मंत्र कथन करैं हैं ॥ ११ ॥

हे भगवन् ! इसप्रकारसे आप ईश्वरही जो, कदाचित् इंद्रादिरूपक-रिकै सर्वलोकोंकूं तिसतिस फलकी प्राप्ति करणेहारे होवो तौ वे सर्वजन साक्षात् आप परमेश्वरकूंही किसवासतै नहीं भजते हैं ? साक्षात् आप ईश्वरकूं छोडिके तिन इंद्रादिकदेवतावोंकूं किसवासतैं भजते हैं । ऐसी अर्जुनकी शंकाकेहुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं—

कांक्षंतः कर्मणां सिद्धिं यजंत इह देवताः ॥
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥१२॥

(पदच्छेदः) कांक्षंतः । कर्मणाम् । सिद्धिम् । यजंते । इह । देवताः । क्षिप्रं । हि । मानुषे । लोके । सिद्धिः । भवति । कर्मजा ॥ १२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इसलोकविषे कर्मोंके फलकी इच्छाकरतेहुए सकामइंद्रादिकदेवताओंकूं पूजन करैं हैं जिस कारणतें इस मनुष्यलोकविषे तिन सकामपुरुषोंकूं कर्मजन्य फल शीघ्रही प्राप्तहोवै है ॥ १२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जे पुरुष इसलोकविषे यज्ञादिकर्मोंके धनपु-त्रादिकफलोंकी इच्छा करैं हैं, ते सकाम पुरुष तौ इंद्र अग्नि सूर्य आदि-कदेवतावोंकूंही पूजन करैं हैं ते पुरुष निष्कामहोइकै कदाचितभी मैं पर-मेश्वरका पूजन करते नहीं काहेतें जे पुरुष तिसतिस फलकी इच्छा कर-तेहुए तिन इंद्रादिकदेवताओंका पूजन करैं हैं अर्थात् यज्ञादिक कर्मोंक-रिकै तिन इंद्रादिकदेवतावोंकूं प्रसन्न करैं हैं । तिन सकामपुरुषोंकूं तिस-तिस कर्मजन्यफलकी प्राप्ति इस मनुष्यलोकविषे शीघ्रही होवै है । और

आत्मज्ञानका जो मोक्षरूप फल है सो फल तौ अंतःकरणकी शुद्धितैं विना प्राप्त होवै नहीं । किंतु सो ज्ञानकाँ फल आपणी प्राप्तिविषे अंतः-करणके शुद्धिकी अपेक्षा अवश्य करै है। और सा अंतःकरणकी शुद्धि अनेकजन्मोंके पुण्यकर्म करिकै होवै है । यातैं कर्मके फलकी न्याईं सो ज्ञानका फल शीघ्रही प्राप्त होवै नहीं इहां मनुष्यलोकविषे सो कर्मका फल शीघ्रही प्राप्त होवै है या वचनके कहणेकरिकै श्रीभगवानूनैं यह अर्थ सूचन कन्या । इस मनुष्यलोकतैं भिन्न दूसरे लोकोंविषेभी वर्ण आश्रमके धर्मोतैं भिन्न अन्यकर्मोंके करणेतैं फलकी प्राप्ति अवश्यकरिकै होवै । यातैं हे अर्जुन ! जिसकारणतैं मोक्षतैं विमुखहुए ते सकामपुरुष तिसतिसतुच्छफलकी प्राप्तिवासतै अन्यइंद्रादिकदेवतावोंका पूजन करैं हैं। तिस कारणतैं जैसे मुमुक्षुजन साक्षात् मैं परमेश्वरकाही पूजन करैं हैं तैसे ते सकामपुरुष साक्षात् मैं परमेश्वरका पूजन करते नहीं ॥ १२ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे सकामताके तथा निष्कामताके भेदकरिके सर्वपु-रुषोंविषे समानस्वभावताका अभाव कथन कन्या । अब शरीरके आरंभ-करणेहारे सत्त्वादिगुणोंकी विषमताकरिकै भी तिन सर्व पुरुषोंविषे समान-स्वभावताका अभाव कथन करैं हैं—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ॥
तस्य कर्त्तारमपि मां विद्ध्यकर्त्तारमव्ययम् ॥१३॥

(पदच्छेदः) चातुर्वर्ण्यम् । मया । सृष्टम् । गुणकर्मविभागशः। तस्य । कर्त्तारम् । अपि । माम् । विद्धि । अकर्त्तारम् । अव्ययम् ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन । मैं परमेश्वरनैं गुणकर्म विभागकरिकै च्यारिवर्ण उत्पन्नकरे हैं तिस च्यारि वर्णका कर्त्तारूप भी मैं परमेश्वरकूं तूं अकर्त्ता-रूप तथा अव्ययरूप जान ॥ १३ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! मैं ईश्वरनैं सृष्टिके आदिकालविषे सत्त्वा-दिगुणोंके भेदकरिकै तथा शमदमादिककर्मोंके भेदकरिकै ब्राह्मण,

क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, यह च्यारिवर्ण भिन्नभिन्नकरिकै उत्पन्न करे हैं। तहां सत्त्वगुण है प्रधान जिन्होंविषे ऐसे जे ब्राह्मण हैं, तिन ब्राह्मणोंके तौ ता सत्त्वगुणके कार्यरूप शमदमादिकही कर्म हैं और सत्त्वगुण उपसर्जन रजोगुण है प्रधान जिन्होंविषे ऐसे जे क्षत्रिय हैं तिन क्षत्रियोंके तौ ता सत्त्वगुणउपसर्जन प्रधानभूत रजोगुणका कार्यरूप शौर्य तेजआदिकही कर्म हैं। और तमोगुण उपसर्जन रजोगुण है प्रधान जिन्होंविषे ऐसे जे वैश्य हैं, तिन वैश्योंके तौ ता तमोगुण उपसर्जन प्रधानभूत रजोगुणका कार्यरूप कृपिवाणिज्यादिकही कर्म हैं। और तमोगुण है प्रधान जिन्हों विषे ऐसे जे शूद्र हैं तिन शूद्रोंके तौ तिस तमोगुणका कार्यरूप त्रैवर्णिकपुरुषोंकी सेवा आदिकही कर्म है। इहां उपसर्जननाम गौणका है। इसप्रकार गुणोंके भेदकरिकै यह च्यारिवर्ण स्थित हैं। शंका—हे भगवन्! इस प्रकार गुणकर्मके भेदकरिकै विपमस्वभाववाले च्यारिवर्णोंकूं उत्पन्न करणेहारे आप ईश्वरविषे विपमतादोपकी प्राप्ति अवश्यकरिकै होवैगी। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययमिति) हे अर्जुन! यद्यपि मैं परमेश्वर व्यवहारदृष्टिकरिकै ता विपमस्वभाववाले च्यारिवर्णोंका कर्ताहूं। तथापि परमार्थ दृष्टिकरिकै तूं हमारेकूं अकर्तारूपही जान। तथा अव्ययरूप जान। अर्थात् निरहंकारताकरिकै अबाधित महिमावाला जान। और किसी टीकाविषे तौ (गुणकर्मविभागशः) या वचनविषे गुणकर्म विभागशः यह दो पद अङ्गीकारकरिकै यह अर्थ कथन कऱ्या है। च्यारिवर्णोंके जे हितरूप होवैं तिन्होंका नाम चातुर्वर्ण्य है। ऐसे जे द्रव्यदेवतादिक गुण हैं तथा अग्निहोत्रादिक कर्म हैं। ते च्यारिवर्णोंके हितरूप गुणकर्म मैं परमेश्वरनैं (विभागशः सृष्टं) क्या साधारण असाधारण भेदकरिकै उत्पन्न करे हैं। तहां दानजपादिक कर्म सर्ववर्णोंका साधारण धर्म है। और अग्निहोत्र वेदाध्ययन संध्योपासन इत्यादिक कर्म तौ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य या तीन वर्णोंकेही हैं। शूद्रके ते अग्निहोत्रादिक

कर्म हैं नहीं । तिन तीन वर्णोंविषे भी बृहस्पतिसवादिक कर्म केवल ब्राह्मणकेही असाधारण धर्म हैं अन्यक्षत्रियादिकोंके वे धर्म नहीं हैं। और राजसूयादिक कर्म केवल क्षत्रियकेही असाधारण धर्म हैं ब्राह्मणादिकोंके ते धर्म नहीं हैं और वैश्यस्तोमादिक कर्म केवल वैश्यकेही असाधारण धर्म है ब्राह्मणादिकोंके वे धर्म नहीं हैं । और त्रैवर्णिकपुरुषोंकी सेवा करणी इत्यादिक कर्म केवल शूद्रकेही असाधारण धर्म हैं ब्राह्मणादिकोंके ते धर्म नहीं हैं । इस प्रकार तिन अग्निहोत्रादिक कर्मोंके भेद हुए तिन कर्मोंविषे अङ्गभूत द्रव्यदेवतादिक गुणोंकाभी भेद होवै है । इस प्रकार तिन च्यारिवर्णोंके गुण तथा कर्म मै परमेश्वरनैं ही साधारण असाधारणरूप करिकै उत्पन्न करे हैं यातै पुत्रकी प्रसन्नता करिकै पिताकी प्रसन्नता होवै है, तैसे तिन इंद्रादिक देवतावोंकी प्रसन्नता करिकै मैं परमेश्वरकी भी प्रसन्नता होवै है । इस प्रकार प्रसन्नताकूं प्राप्त हुआ मैं परमेश्वर तिन इंद्रादिकदेवतावोंके भक्तोंकूं भी तिसतिस कर्मके-फलकी प्राप्ति करौं हूँ ॥ १३ ॥

शंका—हे भगवन् ! पूर्व आपनै कर्तारूप मैं परमेश्वरकूं तूं अकर्त्तारूप जान या प्रकारका वचन कथन करया सो कर्त्ताकूं अकर्त्तारूपता किस प्रकार संभवैगी? ऐसी अर्जुनकी शंकाकेहुए श्रीभगवान् ता अर्थकूं स्पष्टकरिकै निरूपण करै है—

न मां कर्माणि लिंपंति न मे कर्मफले स्पृहा ॥
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते॥१४॥

(पदच्छेदः) नं । मांम् । कर्माणि । लिंपंति । न । में । कर्मफले । स्पृहाँ । इंति । मांम् । यंः । अभिजांनाति । कर्मभिः । नँ । सँः । बध्यंते ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरकूं यहँ कर्म नहीं लिंपायमान करै है तथा हमारेकूं ता कर्मके फलविषे तृष्णाभी नहीं है इसप्रकार जो

पुरुष मैं परमेश्वरकूं जानता है सो पुरुषभी कर्मोंकरिकै नहीं बंधायमान होवै है ॥ १४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! निरहंकारता करिकै कर्तृत्व अभिमानतें रहित जो मैं भगवान् हूं, तिस हमारेकूं यह जगतके उत्पत्ति स्थिति आदिक कर्म नहीं लिपायमान करते । अर्थात् जैसे अन्य अज्ञानीपुरुषोंकूं यह कर्म देहकी आरंभता करिकै बंधायमान करैं है, तैसे मैं परमेश्वरकूं ते कर्म बंधायमान करते नहीं । यातैं व्यवहारदृष्टिकरिकै मैं कर्मोंकूं करता हुआ भी वास्तवतैं अकर्त्तारूपही हूं । इसप्रकार श्रीभगवान् आपणेविषे कर्त्तापणेका निषेधकरिकै अब भोक्तापणेका भी निषेध करैं हैं (न मे कर्मफले स्पृहा इति) हे अर्जुन जैसे अज्ञानीजीवोंकूं कर्मोंके स्वर्गादिक फलोंविषे यह फल हमारेकूं प्राप्त होवै या प्रकारकी तृष्णा होवै है, तैसे मैं आप्तकाम ईश्वरकूं तिन कर्मोंके फलोंविषे तृष्णा है नहीं । तहां श्रुति—(आप्तकामस्य का स्पृहा इति) अर्थ यह—सर्वात्मदृष्टि करिकै जिस पुरुषकूं सर्व पदार्थ प्राप्त हुए है तिस पुरुषका नाम आप्तकाम है ऐसे आप्तकाम पुरुषकूं किंचित्मात्र भी किसी फलकी तृष्णा होवै नहीं इति । तात्पर्य यह इस लोकविषे अज्ञानीजीवोंकूं जो कर्म बंधायमान करै हैं, सो मैं इन कर्मोंका कर्त्ताहूं तथा मैं इन कर्मोंके फलकूं प्राप्त होवौंगा याप्रकारका कर्तृत्व अभिमान तथा फलकी तृष्णा यादोनोंकरिकैही बंधायमान करैहैं । कर्तृत्वअभिमान तथा फलकी तृष्णा, या दोनोंतैं विना ते कर्म किसीकूंभी बंधायमान करते नहीं । और सो कर्तृत्वअभिमान तथा फलकी तृष्णा यह दोनों मैं आप्तकाम ईश्वरविषे हैं नहीं । याकारणतें ते कर्म मैं ईश्वरकूं बंधायमान करते नहीं । इसप्रकार कर्मोंकूं करताहुआभी मैं ईश्वर वास्तवतैं अकर्त्तारूपही हूं । शंका—हे भगवन् । इसप्रकार आप ईश्वरविषे अकर्त्तापण तथा अभोक्तापण सिद्धहुएभी ताके जानणेकरिकै हमलोकोंकूं कौन फल प्राप्त होवै है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाकेहुए श्रीभगवान् कहैहैं (इति मां योऽभिजानाति इति) हे

अर्जुन ! इस प्रकार जो कोई अन्यपुरुषभी अकर्त्ता अभोक्ता मैं परमेश्वरकूं आपणा आत्मारूप करिके जानै है, सो पुरुषभी हमारे न्याईं तिन कर्मोंकरिकै बंधायमान होवै नहीं, अर्थात् अकर्त्ता आत्माके ज्ञानकरिकै सो पुरुषभी तिन कर्मोंतैं मुक्तही होवै है ॥ १४ ॥

जिसकारणतैं मैं कर्त्ता नहींहूं तथा मेरेकूं कर्मोंके फलकी तृष्णाभी नहीं है यांप्रकारके अकर्त्ताअभोक्ता आत्माके ज्ञानतैं यह पुरुष तिन कर्मोंकरिकै बंधायमान होतानहीं। तिसकारणतैं पूर्व अनेक महान् पुरुष आत्माकूं अकर्त्ताअभोक्ता जानिकरिकै तिन कर्मोंकूंही करतेभये हैं तिसप्रकार तूं अर्जुनभी तिन कर्मोंकूंही कर। या अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं-

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ॥
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्॥१५॥

(पदच्छेदः) एवम् । ज्ञात्वा । कृतम् । कर्म । पूर्वैः । अपि । मुमुक्षुभिः । कुरु । कर्म । एव । तस्मात् । त्वम् । पूर्वैः । पूर्वतरम् । कृतम् ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इसप्रकार आत्माकूं अकर्त्ताअभोक्ता जानिकरिकै पूर्वले मुमुक्षुवोंनैं भी कर्मही करया है तथा तिसतैंभी पूर्व मुमुक्षुवोंनैं युगांतरविषे सो कर्मही करया है तिसकारणतैं तूं अर्जुनभी वो कर्मकूंही कर ॥ १५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! इस द्वापरयुगविषे पूर्व मोक्षकी इच्छावाले जे ययाति राजा यदुराजा इत्यादिक राजा होते भये हैं, ते राजाभी इस आत्मादेवकूं अकर्त्ता अभोक्ता जानिकरी आपणे वर्णआश्रमके कर्मोंकूंही करतेभये हैं। तिन कर्मोंका परित्यागकरिकै वे राजा तूष्णींभावकूं तथा संन्यासकूं नहीं करते भये हैं। तिसकारणतैं तूं अर्जुनभी आत्माकूं अकर्त्ता अभोक्ता जानिकरिकै तिन कर्मोंकूंही कर। तूष्णींभावकूं तथा

संन्यासकूं तूं मतकर । हे अर्जुन । जो कदाचित् तूं तत्त्ववेत्ता नहीं होवै तौ तूं अपणे अंतःकरणकी शुद्धिवासतै तिन कर्मोंकूं कर । और जो कदाचित् तूं तत्त्ववेत्ता होवै तौ तूं लोकसंग्रहके वासतें तिन कर्मोंकूं कर सर्वप्रकारतैं तुम्हारेकूं तेकर्म करणेयोग्य हैं । शंका-हे भगवन् । इस द्वापर-युगविषे पूर्व ययाति यदुआदिक राजे कर्मोंकूं करतेभये हैं याप्रकारका वचन आपनै ,कथन कऱ्या ,ताकरिकै यह जान्याजावै है केवल इस द्वापरयुगविषेही तिन कर्मोंके करणेका अधिकार है अन्य त्रेतादिक युगों-विषे तिन कर्मोंके करणेका अधिकार नहीं है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (पूर्वैः पूर्वतरं कृतमिति) हे अर्जुन । केवल इसी द्वापरयुगविषेही पूर्व ययातिराजा यदुराजा आदिक राजे तिन कर्मोंकूं नहीं करतेभये हैं किं इस युगतै पूर्व त्रेतादिकयुगोंविषे जनका-दिकराजेभी इस आत्मादेवकूं अकर्त्ता अभोक्ता जानिकरिकै तिन कर्मोंकूं करतेभये हैं । यातै यह अर्थ सिद्धभया इसयुगोंविषे तथा दूसरे युगोंविषे मुमुक्षु राजे तथा तत्त्ववेत्ता राजे अंतःकरणकी शुद्धिवासतै अथवा लोक-संग्रहके वास्तैं अपणे वर्णआश्रमके कर्मोंकूं अवश्यकरिकै करते भये हैं । यातैं तिन राजावोंकी न्याई तै अर्जुनकूंही अपणे वर्ण आश्रमके कर्म अवश्यकरिकै करणे चाहिये इति ॥ १५ ॥

हे भगवन् । क्या तिन कर्मोंविषे कोई संशयभी है जिसकरिकै आप (पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्) या वचनकरिकै तिस कर्मकूं अत्यंतदृढ करतेहो ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता कर्मविषे संशय है याकारण-तैंही तिस कर्मविषे बुद्धिमान पुरुषभी मोहकूं प्राप्तहोवै है या प्रकारका उत्तर कहैं हैं—

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ॥
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् १६

(पदच्छेदः) किम् । कर्म । किम् । अकर्म । इति । कवयः । अपि । अत्र । मोहिताः । तत् । ते । कर्म । प्रवक्ष्यामि । यत् । ज्ञात्वा । मोक्ष्यसे अशुभात ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! कर्म क्या है तथा अकर्म क्या है इस अर्थ-विषे बुद्धिमान् पुरुष भी मोहकूं प्राप्त होतेभयेहै तिसकारणतै तुम्हारेताई सो कर्म अकर्मकूं मै कहताहूं जिसकूं जानिकरिके तूं संसारतै मुक्त होवैगा ॥ १६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! नौकाविषे स्थित जो पुरुष है तिस पुरुषकूं तीरविषे स्थित गमनरूप क्रियातै रहित वृक्षोंविषेभी गमनरूप क्रियाका भ्रम देखणेविषे आवै है । तथा गमनरूप क्रियावाले पुरुषोंविषेभी दूरतै ता गमनक्रियाके अभावका भ्रम देखणेविषे आवै है यातै वास्तवतै सो कर्म क्या वस्तुहै तथा वास्तवतै सो अकर्म क्या वस्तुहै ? इसप्रकार अर्थ-विषे बुद्धिमान् पुरुषभी मोहकूं प्राप्त होते भये हैं । अर्थात् ता कर्म अकर्मके स्वरूपनिर्णयकरणेविषे असमर्थ होते भये हैं इति । और किसी टीकाविषे तौ (किं कर्म किमकर्मेति कवयोप्यत्र मोहिताः) या अर्ध-श्लोकका यह अर्थ कथन करया है श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रकरिकै जो अर्थ विधान कर्या होवै ता अर्थका नाम कर्म है और वा श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रकरिकै जो अर्थ नहीं विधान करया होवै ता अर्थका नाम अकर्म है इस प्रकार केईक पंडितपुरुष ता कर्मअकर्मका स्वरूप कथन करै हैं । और दूसरे केईक पंडितजन तौ यह कहै हैं श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रकरिकै जो अर्थ विधान करया होवै ता अर्थका नाम कर्म है । और तिन कर्मोंके संन्यासका नाम अकर्म है । और दूसरे केईक शास्त्रवेत्ता पुरुष तौ यह कहै हैं गमनआ-गमनादिक क्रियावोंका नाम कर्म है । और तिन गमनादिक क्रियावोंतै रहित होइकै तूष्णीं स्थितहोणेका नाम अकर्म है । इसप्रकार ता कर्मअ-कर्मके स्वरूपविषे बहुतप्रकारका विवाद देखणेविषे आवताहै । यातै कर्म-शब्दका वाच्यार्थ कौन है तथा अकर्मशब्दका वाच्यार्थ कौन है इसप्रका-

रके अर्थविषे शास्त्रवेत्ता पुरुषभी मोहकूं प्राप्तहोतेभये हैं। अर्थात् ता कर्मअकर्मके वास्तवस्वरूपके निर्णयकरणेविषे असमर्थ होते भये हैं। इसकारणतैं मै कृष्णभगवानतैं अर्जुनके प्रति ता कर्मके स्वरूपकूं तथा अकर्मके स्वरूपकूं संशयकी निवृत्तिपूर्वक कथन करता हूं। शंका—हे भगवन्! ता कर्मअकर्मके जानणेकरिकै किस फलकी प्राप्ति होवैहै? ऐसी अर्जुनकी शंकाकेहुए श्रीभगवान् ताका फल कथन करैंहैं (यज्ज्ञात्वा इति) हे अर्जुन! जिस कर्मके स्वरूपकूं तथा अकर्मके स्वरूपकूं यथार्थ जानिकै तूं इस संसारतैं मुक्त होवैगा। अर्थात् इस संसारतैं मुक्तिही वा कर्म अकर्मज्ञानका फल है। यद्यपि (तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि) यावचनविषे केवल कर्मफलही है तथापि तत्ते इसपदतैं आगे अकार निकासिकै अकर्मकाभी ग्रहण होइसकैहै ॥ १६ ॥

हे भगवन्! ता कर्मका स्वरूप सर्वलोकविषे प्रसिद्धही है। यातैं मैं अर्जुनभी ता कर्मअकर्मके स्वरूपकूं जानताहीहूं। तहां देहइंद्रियादिकोंका जो व्यापार है ता व्यापारका नाम कर्म है। और सर्व व्यापारतैं रहित होइकै तूष्णींस्थितहोणेका नाम अकर्म है। ऐसे सर्वलोकोंविषे प्रसिद्ध कर्मअकर्मके स्वरूपविषे आपनैं दूसरा क्या कहणा है? ऐसी अर्जुनकी शंकाकेहुए श्रीभगवान् कहैं हैं—

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ॥
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥ १७ ॥

(पदच्छेदः) कर्मणः। हि। अपि। बोद्धव्यम्। बोद्धव्यम्। च। विकर्मणः। अकर्मणः। च। बोद्धव्यम्। गहना। कर्मणः। गतिः ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! शास्त्रविहितकर्मका भी तत्त्व जानणे योग्य है तथा निषिद्धकर्मकाभी तत्त्व जानणेयोग्य है तथा अकर्मकाभी तत्त्व जानणेयोग्य है जिसकारणतैं कर्मविकर्म अकर्मका तत्त्व अत्यन्त दुर्बोध्य है १७

भा॰टी॰-हे अर्जुन ! श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रनैं विधान कन्या जो अर्थ है ताका नाम कर्म है । ता कर्मकाभी वास्तवस्वरूप तुम्हारेकूं अवश्यकरिकै जानणेयोग्यहै । जिसकारणतैं ता कर्मके स्वरूप जानेतैंविना ता कर्मका अनुष्ठान होइसकै नहीं । और श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रने निषेधकन्या जो अर्थ है ताका नाम विकर्म है । ता कर्मकाभी वास्तवस्वरूप तुम्हारेकूं अवश्यकरिकै जानणेयोग्य है । जिसकारणतैं ता निषिद्धकर्मके जानेतैंविना ता निषिद्धकर्मतैं निवृत्त हुआ जावै नहीं । और सर्वव्यापारतैं रहित होइकै जो तूष्णी स्थित होणाहै ताका नाम अकर्म है । ता अकर्मकाभी वास्तवस्वरूप तुम्हारेकूं अवश्यकरिकै जानणेयोग्य है । जिसकारणतैं कर्म विकर्म अकर्म या तीनोंका वास्तवस्वरूप अत्यंत दुर्विज्ञेय है । इहां (गहना कर्मणो गतिः) या वचनविषे स्थित जो कर्मशब्द है सो कर्मशब्द विकर्म अकर्म या दोनोंकाभी उपलक्षक है । अर्थात् ता कर्मशब्द करिकै कर्म विकर्म अकर्म या तीनोंका ग्रहण करणा । और (कर्मणः विकर्मणः अकर्मणः) या तीनों पदोंतैं उत्तर तत्त्वं इस पदका अध्याहार करणा । तथा (बोद्धव्यम्) या तीनोंपदोंतैं उत्तर अस्ति यापदका अध्याहार करणा ता करिकै (कर्मणस्तत्त्व बोद्धव्यमस्ति) इस प्रकारके तीन वाक्य सिद्ध होवैंहैं । तहां कर्मोंकाभी वास्तवस्वरूप तुम्हारेको जानणेयोग्य है इसप्रकारका तिन वाक्योंका अर्थ सिद्ध होवै है ॥ १७ ॥

हे भगवन् ! कर्म विकर्म अकर्म या तीनोंका जो वास्तवस्वरूप हमारेकूं अवश्यकरिकै जानणेयोग्य है, सो कर्मादि तीनोंका वास्तवस्वरूप किस प्रकारका है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन कर्मादिकोंके वास्तवस्वरूपकूं कथन करैंहैं-

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ॥
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥१८॥

(पदच्छेदः) कर्मणि । अकर्म । यः । पश्येत् । अकर्मणि । च । कर्म । यः । सः । बुद्धिमान् । मनुष्येषु । सः । युक्तः । कृत्स्नकर्मकृत् ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष कर्मविषे अकर्मकूं देखैहै तथा जो पुरुष अकर्मविषे कर्मकूं देखैहै सोपुरुष ही सर्वमनुष्योंविषे बुद्धिमान् है तथा सो पुरुषही योगयुक्त है तथा सर्वकर्मोंके करणेहाराहै ॥ १८ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! देह इंद्रिय बुद्धि आदिकोंका जो श्रुतिस्मृति रूप शास्त्र करिकै विहित व्यापारहै तथा शास्त्रकरिकै निषिद्ध व्यापारहै ता व्यापारका नाम कर्म है सो कर्म वास्तवतैं तौ तिन देह इंद्रियादिकोंविषेही रहैहै असंग आत्माविषे सो कर्म रहै नहीं। तौभी सो व्यापाररूप कर्म (अहंकरोमि) इस धर्माध्यासरूप प्रतीतिके बलतैं आत्माविषे आरोपण कऱ्या जावैहै । जैसे नदीके तीरविषे स्थित जे वृक्ष हैं तिन वृक्षोंविषे यद्यपि वास्तवतैं गमनरूप क्रिया है नहीं तथापि नौकाविषे स्थित पुरुष ता नौकाके चलणेकरिकै तिन वृक्षोंविषे गमनरूप क्रियाका आरोपण करै हैं। तैसे शास्त्रविचारतैं रहित मूढपुरुष अक्रियआत्माविषे ता देह इंद्रियादिकोंके व्यापाररूप कर्मका आरोपण करै है । ता आत्माविषे आरोपित कर्मविषे जो पुरुष आत्माके अकर्त्तास्वरूपका विचारकरिकै वास्तवतैं कर्मके अभावकूंही देखैहै । तात्पर्य यह—जैसे नौकाविषे स्थित पुरुषोंनैं यद्यपि तीरस्थ वृक्षोंविषे गमनरूपकर्मका आरोपण करीता है तथापि वास्तवतैं तिन वृक्षोंविषे ता गमनरूपकर्मका अभावही है । तैसे मूढपुरुषोंनैं यद्यपि अक्रिय आत्माविषे ता देहादिकोंके व्यापाररूप कर्मका आरोपण करीता है, तथापि ता अक्रिय आत्माविषे वास्तवतैं तिन कर्मोंका अभावही है । इस प्रकार जो पुरुष कर्मविषे अकर्मकूं देखैहै इति । और सत्वादि तीन गुणोंवाली मायाका परिणाम होणेतैं सर्वकालविषे ता व्यापाररूप कर्मवाले जे इंद्रियादिक हैं तिन देह इंद्रियादिकोंविषे वास्तवतैं ता कर्मका अभाव रहै नहीं । किंतु तिन देह

इंद्रियादिकोंविषे ता कर्मके अभावका आरोपण होवै है । जैसे चक्षुके संबंधवाले दूरदेशविषे स्थित जे गमनरूपक्रियावाले पुरुष हैं तिन पुरुषोंका यद्यपि वास्तववतैं ता गमनरूपक्रियाका अभाव है नहीं, तथापि दूरत्व-दोषके वशतैं तिन पुरुषोंविषे ता गमनरूपक्रियाके अभावका आरोपण होवै है । तथा जैसे आकाशविषे स्थित जे चंद्रतारकादिक नक्षत्र हैं तिन नक्षत्रोंविषे यद्यपि वास्तववतैं गमनरूपक्रियाका अभाव, है नहीं, किंतु सर्वदा तिन्होंविषे गमनरूपक्रिया है तथापि दूरत्वदोषके वशतैं तिन नक्षत्रों-विषे ता गमनक्रियाके अभावका आरोपण होवैहै तैसे सर्वदा व्यापाररूप कर्मवाले जे देह इंद्रियादिक हैं तिन देह इंद्रिया-दिकोंविषे वास्तववतै ता कर्मका अभाव है नहीं किंतु मैं तूष्णीं हुआ किंचित्मात्रभी कर्म नहीं करताहूं या प्रकारकी अध्यासरूप प्रतीतिके बलतैं तिन देह इंद्रियादिकोंविषे ता कर्मके अभावका आरोपण करचा जावै है । ऐसे देहइंद्रियादिकोंविषे आरोपण करचा जो व्यापारकी उपरामतारूप अकर्म है, ता अकर्मविषे जो पुरुष तिन देह इंद्रियादिकोंके सर्वदा व्यापारवत्वरूप वास्तवस्वरूपका विचारकरिकै वास्तव तौ कर्मकूं देखै है । अर्थात् ता आरोपित अकर्मविषे कर्म निवृत्ति है नाम जिसका ऐसा जो प्रयत्नरूप व्यापार है जिसकूं निग्रहभी कहैं हैं ता प्रयत्नरूप कर्मकूं जो पुरुष देखैहै । तात्पर्य यह—जैसे चक्षुके संबंधवाले दूरदेशविषे स्थित जे गमनरूपक्रियावाले पुरुष हैं तथा आकाशविषे स्थित जे गमन-रूपक्रियावाले नक्षत्र हैं तिन पुरुषोंविषे तथा नक्षत्रोंविषे यद्यपि दूरत्वदोषतैं ता गमनरूपक्रियाका अभाव प्रतीत होवैहै तथापि ते पुरुष तथा नक्षत्र वास्तववतैं ता गमनरूपक्रियावालेही हैं । तैसे तूष्णीं स्थित हुआ मैं किंचित्मात्रभी नहीं करताहूं या प्रकारकी अध्यासरूप प्रतीतिके बलतैं यद्यपि तिन देह इंद्रियादिकोंविषे ता व्यापाररूपकर्मका अभाव प्रतीत होवै है तथापि ते देह इंद्रियादिक वास्तववतैं ता कर्मवा-लेही हैं । और उदासीन अवस्थाविषेभी मैं उदासीन

हुआ स्थित था इस प्रकारका अभिमानही एक कर्म है। इस प्रकार कर्मविषे अकर्मकूं देखणेहारा तथा अकर्मविषे कर्मकूं देखणेहारा जो परमार्थदर्शी पुरुष है सो पुरुषही सर्वमनुष्योंविषे बुद्धिमान् है तथा सो पुरुष ही योगयुक्त है तथा सो पुरुषही सब कर्मोंके करणेहारा है। यहां बुद्धिमत्त्व योगयुक्तत्व कृत्स्नकर्मकृत्व या तीन धर्मोंकरिकैं श्रीभगवानूनैं ता परमार्थदर्शी पुरुषकी स्तुति कथन करी है। तहां (कर्मण्यकर्म यः पश्येत्) या प्रथमपादकरिकै श्रीभगवानूनैं कर्मका तथा विकर्मका वास्तवस्वरूप दिखाया। जिसकारणतें कर्मशब्द विहितकर्म तथा निषिद्ध कर्म दोनोंकाही वाचक है। और (अकर्मणि च कर्म यः) या द्वितीय पादकरिकै श्रीभगवानूनैं अकर्मका वास्तवस्वरूप दिखाया इति। यातें हे अर्जुन। जो तूं यह मानता है कि यह सर्वकर्म बंधके हेतु हैं, यातें ते कर्म हमारेकूं करणे योग्य नहीं हैं, किंतु हमारेकूं तूष्णींभावतैंही सुखपूर्वक स्थित होणा योग्य है। सो यह तुम्हारा मानणा मिथ्याही है। काहेतें मैं कर्मोंका कर्त्ता हूं या प्रकारका कर्तृत्वअभिमान जब पर्यंत इस पुरुषकूं होवै है तबपर्यंत ही ते विहितकर्म तथा निषिद्धकर्म इस पुरुषकूं बंधनकी प्राप्ति करें हैं। ता कर्तृत्वअभिमानतैं रहित होइके केवल देहइंद्रियादिकोंके धर्म मानिकैं करेहुए ते कर्म इसपुरुषकूं बंधनकी प्राप्ति करते नहीं। इस अर्थकूं (न मां कर्माणि लिंपंति) इत्यादिक वचनों करिकै पूर्व हम कथनकरि आये हैं। हे अर्जुन! ता कर्तृत्वअभिमानके विद्यमान हुए मैं तूष्णीं हुआ स्थित था या प्रकारका उदासीनताका अभिमान मात्ररूप जो कर्म है सो कर्म भी इस पुरुषके बंधकाही हेतु होवै है। जिसकारणतें इस कर्तृत्वअभिमानी पुरुषनें वस्तुका वास्तवस्वरूप जान्या नहीं। यातें हे अर्जुन। कर्म विकर्म अकर्म या तीनोंके पूर्व उक्त वास्तवस्वरूपकूं जानिकरिकै तथा विकर्म अकर्म या दोनोंका परित्याग करिकै तथा कर्तृत्व. अभिमानतैं रहित होइकै तथा फलकी इच्छातैं रहित होइकै तूं शास्त्र विहित शुभकर्मोंकूंही कर इति। अथवा इस श्लोकका यह दूसरा अर्थ

करणा । प्रत्यक्षादिप्रमाणजन्य ज्ञानका जो विषय होवै ताका नाम कर्म है ऐसा यह दृश्यरूप तथा जडरूप प्रपंच है । और जो वस्तु प्रत्यक्षादिप्र-माणजन्य ज्ञानका विषय नहीं होवै ता वस्तुका नाम अकर्म है । ऐसा स्वप्रकाशरूप तथा सर्वभ्रमका अधिष्ठानरूप चैतन्य है । तहां जो पुरुष ता जगत्‌रूप कर्मविषे आपणे सत्तास्फुरणरूपकरिकै अनुस्यूत स्वप्रकाश अधिष्ठानचैतन्यरूप अकर्मकूं परमार्थ दृष्टिकरिकै देखै है । तथा जो पुरुष ता स्वप्रकाश अधिष्ठानचैतन्यरूप अकर्मविषे इस मायामय दृश्यप्रपंचरूपकर्म-कूं कल्पित देखै है । अर्थात् द्रष्टा चैतन्यका तथा दृश्यप्रपंचका कोई भी संबंध संभवता नहीं । यातैं यह दृश्यप्रपंच ता द्रष्टाचैतन्यविषे वास्त-वतैं है नहीं । या प्रकार जो पुरुष देखै है । तहां श्रुति-(यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति । सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ।) अर्थ यह-जो पुरुष सर्व अधिष्ठान आत्माविषे कल्पित देखै है तथा तिन सर्वभूतोंविषे सत्तास्फुरणरूप करिकै आत्माकूं अनुस्यूत देखै है सो परमार्थदर्शी पुरुषही सर्वतैं श्रेष्ठ है इति । इस प्रकार चैतन्य आत्माका तथा दृश्यजगत्‌का परस्पर अध्यास हुएभी जो पुरुष वास्तवतैं शुद्ध चैत-न्यकूंही देखै है, सो विद्वान् पुरुषही सर्व मनुष्योंके मध्यविषे अत्यंत बुद्धि-मान् है । ता विद्वान् पुरुषतैं भिन्न कोई भी पुरुष बुद्धिमान् नहीं है । काहेतैं इस लोकविषे भी यथावत् वस्तुके स्वरूपकूं जानणेहारा पुरुषही बुद्धिमान् कह्याजावै है । अयथावत् वस्तुके स्वरूपकूं जानणेहारा पुरुष बुद्धिमान् कह्या जावै नहीं । जैसे रज्जुकूं रज्जुरूपकरिकै जानणेहारा पुरुष बुद्धिमान कह्याजावै है और तिसी रज्जुकूं सर्परूपकरिकै जानणेहारा पुरुष बुद्धि-मान् कह्याजावै नहीं । तैसे सर्वके अधिष्ठानपुरुष शुद्धचैतन्यकूं देखणेहारा पुरुषही परमार्थदर्शी होणेतैं बुद्धिमान् है और अनात्मप्रपंचकूं देखणेहारा अज्ञानी पुरुष तौ मिथ्यादर्शी होणेतैं बुद्धिमान् होवै नहीं । और सो परमार्थदर्शी पुरुषही वा बुद्धिके साधनरूप योगकरिकै युक्त है । अर्थात् अंतःकरणकी शुद्धिकरिकै एकाग्रचित्तवाला है इसी कारणतैं सोईही पुरुष

ता अंतःकरणकी शुद्धिके साधनरूप सर्व कर्मोंका कर्त्ता है। इस प्रकार बुद्धिमत्त्व योगयुक्तत्व कृत्स्नकर्मकृत्व या वास्तव तीन धर्मोंकरिकै सो परमार्थदर्शी पुरुष स्तुति कऱ्या जावै है। हे अर्जुन ! जिस कारणतैं सो परमार्थदर्शी पुरुष इसप्रकारके महान्पणेकूं प्राप्त होवै है तिस कारणतैं तूं अर्जुनभी परमार्थदर्शी होउ। ता परमार्थदर्शीपणेकरिकैही तुम्हारेविषे सो सर्वकर्मका कर्त्तापणा सिद्ध होवैगा। यातैं जिस कर्म अकर्मके स्वरूपकूं जानिकै तूं इस संसारतैं मुक्त होवैगा। यह जो पूर्व कथन कऱ्या था तथा कर्म विकर्म अकर्म या तीनोंका वास्तवस्वरूप तुम्हारेकूं जानणे योग्य है यह जो पूर्व कथन कऱ्या था तथा सोईही पुरुष बुद्धिमान् है इत्यादिक जो स्तुति कथन करी है यह सर्ववार्त्ता परमार्थ वस्तुके दर्शनहुएही संभव होइसकै है अन्यवस्तुके दर्शनतैं संभवै नहीं। काहेतैं ता चैतन्यरूप परमार्थ वस्तुतैं भिन्न जितनेक अनात्मपदार्थ हैं तिन अनात्मपदार्थोंके ज्ञानतैं अशुभसंसारतैं मुक्ति संभवती नहीं उलटा बंधकीही प्राप्ति होवै है। तथा ता परमार्थवस्तुतैं भिन्न सर्वपदार्थ अतत्त्वरूप हैं। यातैं ते अतत्त्वरूपपदार्थ इस अधिकारी पुरुषकूं जानणेयोग्यभी नहीं हैं। तथा तिन अनात्मपदार्थोंके ज्ञानहुए इस पुरुषविषे सो बुद्धिमानपणा भी संभवता नहीं। यातैं परमार्थदर्शीपुरुषोंका यह पूर्व उक्त व्याख्यान युक्त है इति। और किसी टीकाविषे तौ (कर्मण्यकर्म यः पश्येत्) या श्लोकका यह अर्थ कथन कऱ्या है। परमेश्वरकी प्रसन्नतावासतै करे जे अग्निहोत्र संध्या उपासनादिक नित्यकर्म हैं ते नित्य कर्म बंधके हेतु होवै नहीं। यातैं ता नित्यकर्मविषे जो पुरुष यह नित्य कर्म बंधका अहेतु होणेतैं अकर्मरूपही हैं याप्रकार देखै है। और तिन नित्यकर्मोंका जो नहींकरणा है ताका नाम अकर्म है। सो नित्यकर्मोंका नहीं करणारूप अकर्म इस अधिकारी पुरुषके प्रत्यवायका हेतु होवै है। यातैं ता अकर्मविषे जो पुरुष यह अकर्म प्रत्यवायका हेतु होणेतैं कर्म रूपही है या प्रकार देखै है सो पुरुषही सर्व मनुष्योंविषे [बुद्धिमान है]

तथा योगयुक्त है तथा सर्व कर्मोंका कर्ता है इति । सो यह अर्थ असं-गत है काहेतैं ता नित्यकर्मविषे यह अकर्म है या प्रकारका जो ज्ञान है सो ज्ञान रज्जुविषे सर्पज्ञानकी न्याई भ्रांतिरूपही है । यातैं ता भ्रांतिज्ञान विषे (यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्) यावचनकरिकै कथन करी जा अशुभ संसारतैं मोक्षकी हेतुता है सा हेतुता संभवै नहीं । किंतु सो ज्ञान मिथ्या रूप होणेतैं आपही अशुभरूप है । तथा सो भ्रांतिज्ञान (बोद्धव्यम्) यावचनकरिकै कथन कऱ्या जानणेयोग्य तत्त्वरूपभी नहीं है । तथा ता भ्रांतिज्ञानके प्राप्तहूए बुद्धिमत्व योगयुक्तत्व इत्यादिक स्तुतिभी संभ-वती नहीं । उलटा सो भ्रांतिज्ञानवाला पुरुष मिथ्यादर्शीही कह्याजावै है । और ता नित्यकर्मोंका जो अनुष्ठान है सो अनुष्ठान तौ स्वरूपतैंही अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा आत्मज्ञानविषे उपयोगी है । ता नित्यकर्मविषे अकर्मबुद्धि तौ किसीविषेभी उपयोगी है नहीं काहेतैं जो अर्थ शास्त्रक-रिकै विदित होवै है सोईही अर्थ अंतःकरणकी शुद्धिविषे तथा ज्ञानविषे उपयोगी होवै है । जैसे वाक् मन इत्यादिकोंविषे शास्त्रने ब्रह्मदृष्टि विधान करी है यातैं ता दृष्टिका अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा ज्ञानविषे उप-योग है, तैसे नित्यकर्म अकर्मरूप है या प्रकारकी दृष्टि किसीशास्त्रनैं विधान करी नहीं । यातैं ता दृष्टिका किसीभी अर्थविषे उपयोग संभवै नहीं । तहां (कर्मण्यकर्म यः पश्येत्) यह गीताका वचनही ता कर्म विषे अकर्मदृष्टिका विधान करै है याप्रकारका वचन जो कोई कथन करै है सोभी संभवता नहीं । काहेतैं इस गीतावचनका इसप्रकारका अर्थ मानणेविषे पूर्व (यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्) इत्यादिक उपक्र-मादिक वचनोंका विरोध कथन करि आये हैं । इसप्रकारका नित्यक-र्मोंका नहीं करुणारूप अकर्मभी स्वरूपतैंही ता नित्यकर्मतैं विरुद्धकर्मकी लक्षकता करिकै उपयोगी होवै है । तिस अकर्मविषे कर्मदृष्टि किसीभी अर्थविषे उपयोगी होवै नहीं । तथा ता नित्यकर्मके नहीं करणेतैं प्रत्य-वायभी होवै नहीं । काहेतैं सो नित्यकर्मका नहीं करणा अभावरूप है

और प्रत्यवाय भावरूप है । ता अभावतैं भावकी उत्पत्ति संभवती नहीं । जो कदाचित् अभावतैंभी भावकार्यकी उत्पत्ति होती होवै तौ अभाव तो सर्वदेशकालविषे विद्यमान है यातैं सर्वदेशविषे तथा सर्वकालविषे सर्वकार्योंकी उत्पत्ति होणी चाहिये । सो ऐसा देखणेविषे आवता नहीं । यातैं अभावतै भावकी उत्पत्ति मानणी अत्यंत विरुद्ध है । किंवा भावरूप अर्थही धर्मअधर्मरूप अपूर्वका जनक होवै है अभावरूप अर्थ ता अपूर्वका जनक होवै नहीं । यातैं नित्यकर्मका अभाव ता प्रत्यवायका जनक है नहीं । किंतु ता नित्यकर्मके अनुष्ठानकालविषे जो ता नित्यकर्मका विरोधी शयनउपवेशनादि कर्म है सो नित्यकर्मके अकरणउपलक्षित भावरूप कर्मही ता प्रत्यवायका हेतु है । यह सर्व वैदिकपुरुषोंका सिद्धांत है । यातैं मिथ्याज्ञानके निवृत्तिप्रसंगविषे मिथ्याज्ञानकाही व्याख्यान करणा अत्यंत विरुद्ध है। और जो कोई वादी यह कहै सो भगवान्का वचन नित्यकर्मोंके अनुष्ठानपर है सो यह कहणाभी संभवता नहीं । काहेतैं यह अधिकारी पुरुष नित्यकर्मोंकूं करै याप्रकारके अर्थकूं (कर्मण्यकर्म यः पश्येत्) यह वचन कथन करता नहीं । ता अर्थके बोधन करणेवासतै जो कदाचित् श्रीभगवान् ता वचनकूं कथन करैंगे तौ श्रीभगवान्विषेही मिथ्यावादीपणा सिद्ध होवैगा इति । और किसी टीकाविषे तौ (कर्मण्यकर्म यः पश्येत्) इस श्लोकका यह अर्थ कथन कऱ्या है तहां पूर्व (कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यम्) या श्लोकविषे कर्म विकर्म अकर्म या तीनोंका जापार्रे अवसानरूप गति है सा अत्यंत गहन है यातैं इस अधिकारी पुरुषकूं सा कर्मादिकोंकी गति अवश्यकरिकै जानणेयोग्य है यह अर्थ श्रीभगवान्नैं कथन कऱ्याथा तिसी अर्थकाही व्याख्यानरूप (कर्मण्यकर्म यः पश्येत् स मनुष्येषु बुद्धिमान्) यह वचन है सो दिखावैं हैं। (कर्मणि) यापदकरिकै कर्म अकर्म विकर्म या तीनोंका ग्रहण करणा और (अकर्म) या पदकरिकै ता कर्म अकर्म विकर्म या तीनोंतैं विपरीत भावका ग्रहणकरा । तहां जो पुरुष ता कर्मविषे अकर्मकूं देखैहै अर्थात

कर्मतैं विपरीतभावकूं देखै है तहां कर्म अकर्म विकर्म या तीनोंविषे तिन कर्मादिकोंतैं विपरीतरूपता शास्त्रप्रमाणतैं देखणेविषे आवै है । जैसे कर्मविषे श्रद्धातैं रहित जो पुरुष है ता श्रद्धाहीन पुरुषनैं कन्या जो कोई यज्ञरूपकर्म है सो यज्ञरूपकर्म फलका अहेतु होणेतैं कन्याहुआभी नकरेके समान होवैहै यातैं सो श्रद्धाहीनपुरुषकृत यज्ञरूपकर्मविषेही परिअवसानकूं प्राप्त होवै है और दांभिकपुरुषनैं कन्याहुआ सोई यज्ञरूपकर्म विकर्मविषेही परिअवसानकूं प्राप्त होवै है । या अर्थकूं श्रीभगवान् आपही (अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥ असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह) इस श्लोकविषे आगे कथन करैंगे । इसप्रकार सर्व व्यापारतैं रहित उदासीनता यद्यपि अकर्मरूपहै तथापि दुःखीपुरुषोंकी रक्षाकरणेविषे सो समर्थ जो पुरुषहै सो समर्थ पुरुष ता औदासीनताकूं अंगीकार करिकै जो तिन दुःखीपुरुषोंकी रक्षा नहीं करै है तौ तिस समर्थपुरुषका सो उदासीनतारूप अकर्म विकर्मविषेही परिअवसानकूं प्राप्त होवै है । तथा पितृयज्ञादिक पंचयज्ञोंका जो अपणे अपणे विहितकालविषे नहीं करणा है सो पंचयज्ञोंका नहीं करणा यद्यपि अकर्मरूप है तथापि तिसकालविषे ईश्वरके आराधनविषे अत्यंत आसक्त जो पुरुष है ता पुरुषका सो पंचयज्ञादिकोंका नहीं करणारूप अकर्मभी कर्मविषेही परिअवसानकूं प्राप्त होवैहै यह वार्ता (सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज) या श्लोकविषे श्रीभगवान्नें आपही कथन करीहै । और नित्यकर्मके परित्यागतैं जो पापकी प्राप्ति कथन करी है सो भी ता नित्यकर्मके करणेकालविषे शास्त्रनिषिद्ध लौकिकव्यवहारके करणेतैंही पापकी प्राप्ति कथन करी है । परंतु ता कालविषे ईश्वरके आराधनविषे आसक्तहुआ पुरुष ता प्रत्यवायकूं प्राप्त होवैनहीं । याकारणतैंही पूर्व जलादिकोंके भीतर स्थित होइकै तपकूं करतेहुए ऋषि ता कालविषे नित्यकर्मोंके नहीं करणेतैं प्रत्यवायकूं नहीं प्राप्त होते भये हैं । इस प्रकार किसी पशुकी हिंसा करणी यद्यपि विकर्मरूप है तथापि (अग्नीषोमीयं पशुमालभेत) इस वचनतैं

यज्ञविषे करीहुई सा पशुकी हिंसा कर्मविषेही परिअवसानकूं प्राप्त होवैहै और व्यर्थही ता पशुके नष्टहुए जा सा पशुकी हिंसा है तिस हिंसातै कोई धर्मरूप अपूर्व उत्पन्न होवै नहीं । यातैं सा पशुकी हिंसा कर्मरूपभी नहींहै और किसीका नामवाले पुरुषनैं सा पशुकी हिंसा करी नहीं यातैं सा हिंसा विकर्मरूपभी नहीं है । किंतु परिशेषतैं करीहुईभी सा पशुकी हिंसा नहीं करेके तुल्य होवैहै। यातैं सा व्यर्थहिंसा अकर्मविषेही परिअवसानकूं प्राप्त होवै है । इसप्रकार चौरपुरुषका जो छोडिदेणा है सो यद्यपि ता चौरपुरुषके सहवर्त्तीपुरुषोंका कर्मरूपही है तथापि सो चौरपुरुषका छोडना राजाका विकर्मही है काहेतैं (स्वेनः प्रमुक्तो राजनि पापमार्ष्टी) इत्यादिक वचनोंविषे चौरपुरुषका छोडना राजाकूं पापकी प्राप्तिका हेतु कह्या है और सोईही चोरपुरुषका छोडना निष्कामसंन्यासियोंका उपेक्षा विषय होणेतैं अकर्मरूपही है । इस प्रकार सत्यवचन कहणा यद्यपि कर्मरूप है तथापि जिस सत्यवचनतैं किसीप्राणीकी हिंसा होवै है सो सत्यवचनरूप कर्मभी विकर्मविषेही परिअवसानकूं प्राप्त होवैहै । इसप्रकार मिथ्यावचन कहणा यद्यपि विकर्मरूप है तथापि जिस मिथ्यावचनके कहणेतैं किसी प्राणीकी रक्षा होवै है ता मिथ्यावचनरूप कर्मका कर्मविषेही परिअवसान होवै है। इसप्रकार जो पुरुष शास्त्रप्रमाणतैं कर्मविषे तौ अकर्मरूपताकूं तथा विकर्मरूपताकूं देखैहै और अकर्मविषे तौ कर्मरूपताकूं तथा विकर्मरूपताकूं देखै है और विकर्मविषे तौ कर्मरूपताकूं तथा अकर्मरूपताकूं देखैहै, सो कार्यअकार्यके विभागकूं जानणेहारा पुरुष तिन कर्मादिकोंके वास्तवस्वरूपके बोधवाला होणेतैं बुद्धिमान् कह्या जावै है इति। और पूर्व (किं कर्म किमकर्मेति) इस श्लोकविषे जिस कर्म अकर्मके स्वरूपविषे कविपुरुषोंकूंभी मोहकी प्राप्ति कथनकरीथी । तथा (यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्) या वचनविषे जिस कर्म अकर्मका ज्ञान अशुभसंसारतें मोक्षका हेतु कथन कऱ्या था ता कर्मअकर्म दोनोंका स्वरूप मैं तुम्हारेप्रति कथन करता हूं । याप्रकारका वचन श्रीभगवानूनैं

अर्जुनके प्रति कथन कऱ्या था तिसीही वचनका व्याख्यानरूप (अकर्मणि च कर्म यः पश्येत्स युक्तः) यह वचन है तहां इस वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार कर्मविषे अकर्मदर्शन तथा अकर्मविषे कर्मदर्शन या दोनोंदर्शनोंके समुच्चयकरावणेशासतै हैता करिकै यह अर्थ सिद्ध होवैहै जो पुरुष बुद्धिमान् है तथा युक्त है सोईही पुरुष कृत्स्नकर्मकृत् है और जो पुरुष केवल बुद्धिमान्ही है युक्त नहीं है सो पुरुषभी कृत्स्नकर्मकृत् नहीं है और जो पुरुष केवल युक्तही है बुद्धिमान् नहीं है सो पुरुषभी कृत्स्नकर्मकृत् नहीं है । इसी अर्थकूं अब स्पष्टकरिकै दिखावैं है जो पुरुष अकर्मविषे कर्मकूं देखै है सो पुरुष युक्त कह्याजावै है । तहां स्पंदतै रहित जो कूटस्थ आत्मा है ताका नाम अकर्म है और स्पंदसहित जो आकाशादिक बाह्यप्रपंच है तथा मन बुद्धिआदिक जो अन्तरप्रपंच है ता दोनोंप्रकारके प्रपंचका नाम कर्म है ता कूटस्थवस्तुरूप अकर्मविषे ता प्रपंचरूप कर्मकूं आधार आधेयभावकरिकै अथवा उपादानउपादेयभाव करिकै अथवा अधिष्ठानअध्यस्तभावकरिकै देखतेहुए शास्त्रवेत्तापुरुष कर्मोंकूं करैं हैं । तहां प्रथम सांख्यशास्त्रवाला वो जैसे जपाकुसुमकी रक्तता स्फटिकविषे प्रतीत होवैहै तैसे संघातके कर्तृत्वादिकधर्म मै असंगकूटस्थविषे अविवेकतैं प्रतीत होवैंहैं । या प्रकारकी भावना करताहुआ कर्मोंकूं करैहै । और दूसरा उपनिषद्शास्त्रका वेत्ता पुरुष वो जैसे सुवर्णतैं उत्पन्नहुए कुंडलकंकणादिक कार्य सुवर्णरूपही होवैं हैं तैसे ब्रह्मतैं उत्पन्नभया यह सर्वजगतभी ब्रह्मरूपही है यातैं यज्ञादिककर्म तथा ता कर्मके द्रव्यदेवतादिकसाधन तथा मैं कर्मका कर्ता सर्व ब्रह्मरूपही है यामकारकीभावना करताहुआ कर्मोंकूं करै है यह दोनों युक्त कहेजावैं हैं। तहां पूर्व उक्तरीतिसैं जो पुरुष बुद्धिमान्भी है परंतु इसप्रकार युक्त है नहीं सो बुद्धिमान् युक्त पुरुष जिसजिस कर्मकूं करै है वे सर्वकर्म तिस पुरुषके असत्ही होवैं हैं । यातैं ते कर्म तिस पुरुषकूं अशुभसंसारतैं मुक्त करैं नहीं । तहां श्रुति (यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्मिँल्लोके जुहोति

यजते तपस्तप्यते बहूनि वर्षसहस्राण्यंतवदेवास्य तद्भवति) अर्थ यह–हे गार्गी ! जो पुरुष इस अक्षर आत्माकूं न जानिकरिकै इस मनुष्यलोकविषे जिसजिस होमकूं करै है तथा जिसजिस यज्ञकूं करै है तथा अनेक सहस्रवर्षपर्यंत जिसजिस तपकूं करै है ते सर्व होमयज्ञादिककर्म इस पुरुषकूं नाशवान् फलकीही प्राप्ति करैं हैं और जो पुरुष युक्त तौ है परंतु बुद्धिमान् है नहीं सो पुरुष नहीं करणेयोग्य कर्मोंकूभी करै है ताकरिकै सो पुरुष प्रत्यवायकूंही प्राप्त होवैहै। काहेतें पापके अस्पर्शका कारण जो आत्माका अपरोक्ष ज्ञान है सो अपरोक्ष ज्ञान वा निर्बुद्धियुक्त पुरुषकूं है नहीं किंतु तिस युक्तपुरुषकूं केवल परोक्षज्ञानही है इसी कर्मकूं तथा परोक्षज्ञानकूं (विद्यां चाविद्यांच) या श्रुतिनैं अविद्या विद्या या दोनों शब्दोंतें कथनकरिकै तिन दोनोंका समुच्चय कथन करयाहै इति। अथवा सो अकर्मविषे कर्मका दर्शन दोप्रकारका होवैहै एकतौ परोक्ष दर्शन होवैहै दूसरा अपरोक्षदर्शन होवैहै। तहां परोक्षदर्शनवाला तौ ज्ञान कर्म दोनोंके समुच्चयका अनुष्ठान करता होणेतैं बुद्धिमान कह्याजावै है और दूसरा अपरोक्षदर्शनभी दोप्रकारका होवैहै तहां एकतौ उपास्यसाक्षात्काररूप होवैहै और दूसरा तत्त्वसाक्षात्काररूप होवैहै। तहां जिस वस्तुकी उपासना करिये ताका नाम उपास्य है सो उपास्य दोप्रकारका होवैहै। एकतौ व्याकृतरूप होवैहै और दूसरा अव्याकृतरूप होवैहै। वा उपास्यके भेदकरिकै सो उपास्यविषयक साक्षात्कारभी दोप्रकारका होवैहै। तहां कार्यरूप सूत्रआत्माका नाम व्याकृत है और सर्वजगतके कारणका नाम अव्याकृत है। तहां ता सूत्ररूप व्याकृतके साक्षात्कारवान् पुरुष देहाभिमानतें रहित होणेतें योगशास्त्रविषे विदेह या नामकरिकै कह्याजावैहै और ता कारणरूप अव्याकृतके साक्षात्कारवान् पुरुष प्रकृतिलय यानामकरिकै कह्याजावै है। या दोनों उपासनावोंका (अन्यदेवाहुः संभवात्) इत्यादिक श्रुतिनैं संभव असंभव या दोनोंशब्दोंतें कथनकरिकै समुच्चय विधान करयाहै ता उपासनावाला पुरुष युक्त या नाम करिकै कह्याजावैहै। इस उपासक युक्त

पुरुषकूंभी आगे बाकी कर्त्तव्य रहैहैं यातैं यह युक्तपुरुषभी कृत्स्नकर्मकृत् होईसके नहीं । किंतु जिस पुरुषकूं ता प्रपंचरूप कर्मका बाधकरिकै कूटस्थ आत्मारूप अकर्मका मुख्य दर्शन प्राप्त भयाहै सो तत्त्वसाक्षात्कारवान् पुरुषही कृत्यकृत्य होणेतैं मुख्य कृत्स्नकर्मकृत् कह्याजावैहै । इन सर्वोंविषे प्रथम ज्ञानकर्मके समुच्चयका अनुष्ठान करणेहारा पुरुष तो देहाभिमानी मनुष्योंविषेही बुद्धिमान् है यातैं अक्रांतदर्शी होणेतैं सो पुरुष अकविही है और व्याकृत उपास्यविषयक साक्षात्कारवान् तथा अव्याकृत उपास्यविषयक साक्षात्कारवान् यह मध्यके दोनों क्रांतदर्शी होणेतैं यद्यपि कवि हैं तथापि तत्त्ववस्तुविषे मूढ होणेतैं ते दोनों (कवयोप्यत्र मोहिताः)इस वचनकरिकै कथन करेहै । इन दोनोंको व्यवधानकरिकै अशुभ संसारतैं मुक्त होवै है । और तत्वसाक्षात्कारवान् उत्तम पुरुष तो जीवताहुआही ता अशुभसंसारतैं मुक्त होवै है इहां सूक्ष्मदर्शी पुरुषका नाम क्रांतदर्शी है इति । अथवा (कर्मण्यकर्म यः पश्येत्) या श्लोकका यह अर्थ करणा । पूर्व (तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि) या वचनविषे श्रीभगवानूनें कर्म अकर्म दोनोंकूं वक्तव्यरूपकरिकै कथनकऱ्याथा और (कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यम्) या वचनविषे तिन दोनोंकूं बोद्धव्यरूपकरिकै कथन कऱ्याथा सो कर्म अकर्मका बोध लक्षणतैंविना होवै नहीं यातैं इस श्लोकविषे तिन दोनोंका लक्षण कथनकरणाही उचित है तहां (कर्मण्यकर्म यः पश्येत्) या वचनकरिकै जो अकर्मकरिकै विशेषित होवै है सोईही कर्म होवैहै अन्य कर्म होवै नहीं यह कर्मका लक्षण कथन कऱ्या है । और (अकर्मणि च कर्म यः) या वचनकरिकै जो कर्म करिकै विशेषित होवै है सोईही अकर्म होवैहै यह अकर्मका लक्षण कथन कऱ्याहै । इस व्याख्यानविषे श्लोकके अक्षरोंका अर्थ या प्रकार करणा । द्रव्यदेवतादिक साधनोंसहित जे यज्ञादिक हैं तिनोंका नाम कर्म है और स्पंदतैं रहित कूटस्थ ब्रह्मका नाम अकर्म है । तहां जो पुरुष ता साधनसहित यज्ञादिकरूप अकर्म

विषे कूटस्थ ब्रह्मरूप कर्मकूं देखै है अर्थात् (अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहम-हमौषधम् । मंत्रोहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्) इस भगवत्वचनउक्तरीतिसैं तिन यज्ञादिक कर्मोंविषे तथा तिन कर्मोंके द्रव्य देवतादिक अङ्गोंविषे जो पुरुष ब्रह्मदृष्टि करै ता ब्रह्मदृष्टितैं विना जो कर्म कऱ्या जावै है सो कर्म व्यर्थ चेष्टारूपही होवै है । या कारणतै तिन कर्मोंकी गति अत्यंत गहन है इति । शंका–हे भगवन् ! जो अकर्म कर्मविषे आरोपण करीता है सो अकर्म क्या वस्तु है ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (अकर्मणि च कर्म यः इति) हे अर्जुन ! जिस वस्तुविषे पुण्यपापरूप कर्म (पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन) इस श्रुतिके बलतैं प्रतीत होवै है । तथा जिस वस्तुविषे ता पुण्यपापकर्मका सुखदुःखरूप फल अहंसुखी अहंदुःखीका प्रतीतके बलतैं प्रतीत होवै है । सो प्रत्यक् चेतनही अकर्मरूप है । और जैसे सर्पभावतै रहित रज्जुविषे सर्प अध्यस्त होवै है तैसे ता स्पंदभावतै रहित चेतनरूप अकर्मविषे यह स्पंदरूप कर्म अध्यस्त है या प्रकार जो पुरुष ता अकर्मविषे कर्मकूं देखै है । इहां यह तात्पर्य है जैसे रज्जुविषे अध्यस्तसर्पकूं देखताहुआ जो पुरुष है ता पुरुषकूं यह सर्प नहीं है किंतु रज्जुही है या प्रकारके आप्तवक्तापुरुषके वचनतै जो कदाचित् विक्षेपकी प्रबलतातैं रज्जुत्वका ज्ञान नहीं होवै है तौ सो आप्तवक्ता पुरुष ता भ्रांत पुरुषके प्रति इस सर्पकूं तूं रज्जुदृष्टि करिकै उपासना कर या प्रकारका जबी उपदेश करै है तबी सो भ्रांतपुरुष ता उपासनाकी दृढतातैं ता सर्पका विस्मरणकरिकै ता रज्जुत्वकूंही साक्षात्कार करै है । और जो पुरुष यह सर्प नहीं है किंतु रज्जुही है या प्रकारके वचनतैंही ता रज्जुके वास्तवस्वरूपकूं जानै है तिस पुरुषकूं यह सर्प रज्जुही है या प्रकारकी वृत्तियोंका निरंतरप्रवाहरूप उपासना करणेका किंचित्मात्रभी प्रयोजन नहीं है । इस प्रकार कूटस्थब्रह्मरूप अकर्मविषे अध्यस्त जो कर्त्ताक्रियादिक प्रपंचरूप कर्म है ता प्रपंचरूप कर्मकूं तत्त्वमसि इस वचनतै

चाधिकरिकै शुद्धअंतःकरणवाले पुरुषकूं ता कूटस्थब्रह्मरूप अकर्मका बोध होइ सकै है। और जिस पुरुषका अंतःकरण शुद्ध नहीं है सो पुरुष जबी ता कर्मकूं अकर्मदृष्टिकरिकै उपासना करै है तबी ता उपासनाकी दृढतातैं सो पुरुषभी ता कर्मके तिरोधानकरिकै वा अकर्मके वास्तवस्वरूपकूं साक्षात्कार करै इति। इस प्रकारका विलक्षणव्याख्यान करिकै वा टीकाकारने श्रीभाष्यकार भगवानूके आगे या प्रकारकी प्रार्थना करी है । तहां श्लोक—(व्याख्यातुरपि मे नास्ति भाष्यकारेण तुल्यता। गुहा उद्द्योतिनोऽप्यस्ति किं दीपस्यार्कतुल्यता) अर्थ यह—इस प्रकार विलक्षणव्याख्यानकूंभी करणेहारा जो मैं हूं तिस हमारेकूं भगवान् भाष्यकारोंकी तुल्यता होवै नहीं । जैसे किसी गुहाविषे प्रकाशकरणेहारे भी दीपककूं सूर्यभगवानूकी तुल्यता होवै नहीं इति ॥ १८ ॥

अब पूर्व उक्त परमार्थदर्शी पुरुषकूं कर्तृत्व अभिमानके अभावतैं कर्मोंकरिकै अलिप्तपणा श्रीभगवान् (यस्य सर्वे) इस वचनतैं आदिलैके (ब्रह्मकर्मसमाधिना) इस वचनपर्यंत विस्तारतैं कथन करैं हैं—

यस्य सर्वे समारंभाः कामसंकल्पवर्जिताः ॥
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पंडितं बुधाः॥ १९ ॥

(पदच्छेदः) यस्य। सर्वे । समारंभाः । कामसंकल्पवर्जिताः । ज्ञानाग्निदग्धकर्माणम् । तम् । आहुः । पंडितम् । बुधाः ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस पुरुषके सर्व कर्म कामसंकल्पतैं रहित हैं तथा ज्ञानरूप अग्निकरिकै दग्ध हुए हैं कर्म जिसके तिस पुरुषकूं ब्रह्मवेत्तापुरुष पंडित कहैं हैं ॥ १९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पूर्वश्लोकविषे कथन करेहुए जिस परमार्थदर्शी पुरुषके सर्व लौकिक वैदिक कर्म कामतैं रहित हुए हैं । तथा संकल्परहित हुए हैं । इहां स्वर्गादिकफलोंकी जा तृष्णा है ताका नाम

काम है और मैं कर्मका कर्त्ता हूं या प्रकारका जो कर्तृत्वअभिमान है ताका नाम संकल्प है ता काम संकल्प दोनोंतैं जिस पुरुषके ते कर्म रहित हुए हैं अर्थात् जिस पुरुषके ते सर्व कर्म केवल लोकसंग्रहवासतै अथवा शरीरके जीवनमात्रवासतै प्रारब्धकर्मके वेगतैं व्यर्थ चेष्टारूप हुए हैं । और पूर्वश्लोकविषे कथन कऱ्या जो प्रपंचरूप कर्मविषे सत्ता स्फूर्त्तिरूपकरिकै चैतन्यब्रह्मरूप अकर्मका दर्शन तथा ता ब्रह्मरूप अकर्मविषे कल्पितरूप करिकै प्रपंचरूप कर्मका दर्शन ता दर्शनका नाम ज्ञान है सो ज्ञान प्रसिद्ध अग्निकी न्याईं सर्वकर्मोंका दाहक होणेतैं अग्निरूप है । ता ज्ञानरूप अग्निकरिकै दग्धहोइगये हैं शुभअशुभ कर्म जिसके।वहां श्रीव्यास सूत्र-(तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेपविनाशौ तदव्यपदेशात्) अर्थ यह-ता परमात्मादेवके साक्षात्कार हुए ता साक्षात्कारतैं उत्तर करेहुए पुण्यपापकर्मोंका ता विद्वान् पुरुषकूं संबंधही नहीं होवै है। और ता साक्षात्कारतैं पूर्व करे हुए संचित कर्मोंका ता ज्ञानरूप अग्निकरिकै नाश होइजावै है । यह वार्त्ता बहुत श्रुतिस्मृतियोंविषे देखणेमै आवै है इति । ऐसे विद्वान् पुरुषकूं ब्रह्मवेत्तापुरुष वास्तवतैं पंडित कहैं है । इहां सर्वत्र चैतन्यब्रह्ममात्रकूं विषयकरणेहारी जा अंतःकरणकी वृत्ति है ता वृत्तिका नाम पंडा है सा पंडानामावृत्ति जिस पुरुषके अंतःकरणविषे उत्पन्न होवै ता पुरुषका नाम पंडित है । और लोकविषेभी सम्यक्दर्शी पुरुषही पंडित कह्याजावै है । भ्रांतपुरुष पंडित कह्याजावै नहीं । सो सम्यक्दर्शीपणा विद्वान् पुरुष विषेही है। अज्ञानी पुरुषोंविषे सो सम्यक्दर्शीपणा है नहीं यातैं सो विद्वान् पुरुषही पंडित है ॥ १९ ॥

शंका—हे भगवन् ! ता ज्ञानरूप अग्निकरिकै पूर्व आरंभ करेहुए प्रारब्ध कर्मतैं भिन्न कर्मोंका दाह होवो तथा आगामि कर्मोंकी अनुत्पत्तिभी होवो परंतु ता ज्ञानकी उत्पत्तिकालविषे कऱ्याहुआ जो कर्म है सो कर्म तिन पूर्वकर्मोंविषे तथा उत्तर कर्मोंविषे अंतर्भूत होइसकै नहीं । यातैं सो कर्म तौ ता ज्ञानवान् पुरुषकूं अवश्य करिकै फलकी

प्राप्ति करैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता शंकाकी निवृत्ति करैं हैं–

त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः ॥
कर्मण्यभिप्रवृत्तोपि नैव किंचित्करोति सः ॥२०॥

(पदच्छेदः) त्यक्त्वा। कर्मफलासंगम्। नित्यतृप्तः। निराश्रयः। कर्मणि। अभिप्रवृत्तः। अपि। न। एव। किंचित्। करोति। सः। ॥ २० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! कर्मफलके आसंगकूं परित्याग करिकै नित्यतृप्तहुआ तथा निराश्रयहुआ कर्मविषे प्रवृत्तहुआ भी सो विद्वान् पुरुष किंचित्मात्रभी नहीं करै है ॥ २० ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! नित्यनैमित्तिक कर्मोंविषे जो मैं इन कर्मोंका कर्त्ताहूं या प्रकारका कर्तृत्व अभिमान है ता कर्तृत्व अभिमानका नाम कर्म आसंग है । और तिन कर्मोंके स्वर्गादिफलोंविषे जा भोगकी अभिलाषा है ता अभिलाषाका नाम फलआसंग है। ता कर्म आसंगका तथा फलआसंगका परित्याग करिकै अर्थात् अकर्त्ता अभोक्ता आत्माके यथार्थ ज्ञानकरिकै ता आसंगका बाध करिकै जो पुरुष नित्यतृप्त हुआ है अर्थात् परमानंदस्वरूपके लाभकरिकै जो पुरुष सर्व पदार्थोंविषे निराकांक्ष हुआ है तथा जो पुरुष निराश्रय हुआ है अर्थात् अद्वैत आत्मदर्शनकरिकै जो पुरुष देहइंद्रियादिरूप आश्रयके अभिमानतैं रहित हुआ है ऐसा जीवन्मुक्त पुरुष समाधितैं व्युत्थानदशाविषे प्रारब्धकर्मके वशतैं लोकदृष्टिकरिकै लौकिक वैदिक कर्मोंके सांगोपांग अनुष्ठानकरणेवास्तै प्रवृत्तहुआभी सो विद्वान् पुरुष आपणी परमार्थ दृष्टिकरिकै किंचित्मात्रभी कर्मकूं करता नहीं । जिस कारणतैं निष्क्रिय आत्माके साक्षात्कारकरिकै ता विद्वान्पुरुषके ते सर्वकर्म बाधभावकूं प्राप्त हुए हैं । इहां ता विद्वान् पुरुषके (नित्य-

तृप्तः निराश्रयः) यह जो दो विशेषण कथन करे हैं वे दोनों विशेषण हेतुरूप हैं । तहां फल आसंगकी निवृत्तिविषे तौ नित्यतृप्तः यह हेतु है और कर्मआसंगकी निवृत्तिविषे निराश्रयः यह हेतु है। ता करिकै यह दो अनुमान सिद्ध होवैं हैं । सो विद्वान् पुरुष फलकी अभिलाषारूप फल आसंगतैं रहित है नित्यतृप्त होणेतैं जो पुरुष ता फलआसंगतैं रहित नहीं होवै है सो पुरुष नित्यतृप्तभी नहीं होवै है जैसे अज्ञानीपुरुष है इति। और सो विद्वान् पुरुष कर्तृत्व अभिमानरूप कर्म आसंगतैं रहित है निराश्रय होणेतैं जो पुरुष ता कर्मआसंगतैं रहित नहीं होवै है सो पुरुष निराश्रयभी नहीं होवै है जैसे अज्ञानी पुरुष है ॥ २० ॥

तहां अत्यंत विक्षेपके हेतु जे ज्योतिष्टोमादिक कर्म हैं तिन कर्मोंकूंभी जबी ता सम्यक्ज्ञानके वशतैं, बंधकी हेतुता होवै नहीं। तबी शरीरकी स्थितिमात्रके हेतु तथा विक्षेपकी नहीं प्राप्ति करणेहारे जो भिक्षा अटनादिक यतिके कर्म हैं तिन कर्मोंकूं ता सम्यक् दर्शनके बलतैं बंधकी हेतुता नहीं है याकेविषे क्या कहणा है। या प्रकारके कैमुतिकन्यायकरिकै श्रीभगवान् तिन भिक्षा अटनादिक कर्मोंविषे बंधकी हेतुताका अभाव कथन करैं हैं—

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् २१॥

(पदच्छेदः) निराशीः । यतचित्तात्मा । त्यक्तसर्वपरिग्रहः । शारीरम् । केवलम् । कर्म । कुर्वन् । न । आप्नोति । किल्बिषम् ॥ २१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष तृष्णातैं रहित है तथा जीतेहैं चित्त आत्मा जिसने तथा त्यागकरे हैं सर्वपरिग्रह जिसने सो पुरुष कर्तृत्वअभिमानतैं रहित शरीरकी स्थितिविषे उपयोगी भिक्षाअटनादि कर्मकूं करता हुआ किल्बिषकूं नहीं प्राप्त होवै है ॥ २१ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जो पुरुष स्वर्गादिक फलकी तृष्णातैं रहित है। तथा जिस पुरुषनैं अंतःकरणरूप चित्तकूं तथा बाह्यइंद्रियसहित देहरूप आत्माकूं प्रत्याहार करिकै निग्रह कऱ्याहै जिस कारणतैं सो पुरुष जित इंद्रिय है तिस कारणतैं ही सो पुरुष तृष्णातैं रहित होणेतैं त्यक्तसर्वपरिग्रह है। इहां विषयभोगके साधनरूप जे धनादिक उपकरण हैं तिनोंका नाम परिग्रह है ते विषयभोगके उपकरणरूप सर्वपरिग्रह त्याग करे हैं जिसनैं ताका नाम त्यक्तसर्वपरिग्रह है। ऐसा निराशी तथा 'यतचित्तात्मा तथा त्यक्तसर्वपरिग्रह संन्यासी प्रारब्धकर्मके वशतैं शारीर कर्मकूं करता हुआ किल्बिषकूं प्राप्त होवै नहीं। इहां शरीरकी स्थितिमात्र है प्रयोजन जिनोंका ऐसे जे कंथाकौपीनादिकोंका ग्रहणरूप तथा भिक्षाअटनादिरूप कायिक वाचिक मानस कर्म हैं जे कर्म संन्यासीके प्रति शास्त्रनैं विधान करेहैं तिन कर्मोंका नाम शारीरकर्म है। ऐसे शारीरकर्मोंकूं कर्तृत्वअभिमानतैं रहित होइकै अन्यारोपित कर्तृत्वरूप करिकै करता हुआ सो संन्यासी धर्मअधर्मका फलभूत अनिष्ट संसाररूप किल्बिषकूं प्राप्त होवै नहीं। यद्यपि पापकूंही किल्बिष कहैं है तथापि पापकी न्यांई सकामपुण्यभी अनिष्टफलकाही हेतु होवै है। यातैं सो पुण्यभी किल्बिषरूपही है इति। और किसी टीकाविषे (शारीरं) इस पदका यह अर्थ कऱ्या है शरीर करिकै जो कर्म सिद्ध होवैहै ता कर्मका नाम शारीर है इति। सो इस व्याख्यानविषे (केवलं कर्म कुर्वन्) इतने वचनमात्र कहणेतैं जो अर्थ सिद्ध होवै है तिसतैं अधिक अर्थ ता शारीरपदके कहणेतैं सिद्ध होवै नहीं। यातैं इतरकर्मका अव्यावर्त्तक होणेतैं सो शारीरपद व्यर्थही होवैगा। और सो टीकाकार जो यह कहै वाचिक मानस कर्मकी व्यावृत्तिकरणेवासतै सो शारीर पद है यातैं सो शारीरपद व्यर्थ नहीं है इति। सो यह कहणाभी संभवता नहीं। काहेतें (शारीरं केवलं कर्म) या वचनविषे स्थित जो कर्मपद है सो कर्मपद विहितकर्मका वाचक है अथवा विहित निषिद्ध साधारण कर्ममात्रका वाचक है तहां सो कर्म

पद विहितकर्मका वाचक है यह प्रथम पक्ष जो अंगीकार करिये तौ ता वचनका यह अर्थ सिद्ध होवै है । शास्त्र विहित शारीरकर्मकूं करताहुआ सो विद्वान् पुरुष ता किल्बिषकूं प्राप्त होवै नहीं इति । तहां विहितकर्मविषे किल्बिषकी हेतुता कहां भी प्राप्त है नहीं । और प्राप्त अर्थकाही प्रतिषेध होवै है अप्राप्त अर्थका प्रतिषेध होवै नहीं । यातैं अप्राप्तअर्थका प्रतिषेधक होणेतैं सो वचन अनर्थक होवैगा और शास्त्रविहित शारीरकर्मकूं करताहुआ सो विद्वान् पुरुष किल्बिषकूं प्राप्त होवै नहीं । या कहणेतैं अर्थतैं यह सिद्ध होवै है शास्त्रविहित वाचिक मानस कर्मकूं करता हुआ सो पुरुष ता किल्बिषकूं प्राप्त होवै है इति । सो यह वार्त्ता शास्त्रतै विरुद्धही है । और सो कर्मपद विहित निषिद्ध साधारण कर्ममात्रका वाचक है यह दूसरा पक्ष जो अंगीकार करिये तौ यह अर्थ सिद्ध होवैगा । शास्त्रविहित तथा निषिद्ध शारीरकर्मकूं करताहुआ सो विद्वान् पुरुष ता किल्बिषकूं प्राप्त होवै नही इति । सो यह कहणाभी पूर्वकी न्याई अत्यन्त विरुद्धहीहै यातैं यह शारीरपदका व्याख्यान अत्यंत असंगतहै किंतु पूर्वउक्त व्याख्यानही समीचीनहै ॥ २१ ॥

तहां पूर्व श्लोकविषे त्याग कऱ्याहै सर्व परिग्रह जिसनै ऐसे संन्यासीकूं शरीरकी स्थितिमात्रविषे उपयोगी कर्मोंकी कर्त्तव्यता कथन करीथी । तहां अन्नवस्त्रादिकोंतैं विना शरीरकी स्थितिही संभवती नहीं यातैं याचना आदिक आपणे प्रयत्नकरिकै भी ता संन्यासीनैं तिन अन्नवस्त्रादिकोंका संपादन करणा याप्रकारके अर्थके प्राप्तहुए श्रीभगवान् ताकेविषे नियमकूं कथन करै है—

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वंद्वातीतो विमत्सरः ॥
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते २२

(पदच्छेदः) यदृच्छालाभसंतुष्टः । द्वंद्वातीतः । विमत्सरः । समः । सिद्धौ । असिद्धौ । च । कृत्वा । अपि । न । निबध्यते ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष यदृच्छालाभकरिकै संतुष्ट है तथा द्वंद्वधर्मोंतैं रहित है तथा मत्सरतैं रहित है प्राप्तिविषे तथा अप्राप्तिविषे सँमान है सो पुरुष तिन भिक्षाटनादिक कर्मोंकूं करिकै भी नहीं बंधकूं प्राप्त होवै है ॥ २२ ॥

भा० टी०—संन्यासीकेप्रति शास्त्रनैं विधानकऱ्या जो शरीरकी स्थितिमात्रविषे उपयोगी प्रयत्न है ता शास्त्रविहित प्रयत्नतैं भिन्न जितनेक याचना कृषि सेवा वाणिज्य आदिक प्रयत्न हैं जे प्रयत्न संन्यासीकेप्रति शास्त्रनैं निषेध करैं हैं तिन शास्त्रनिषिद्ध प्रयत्नोंकूं नहीं करणा याका नाम यदृच्छाहै । ता यदृच्छाकरिकै जो शास्त्रविहित अन्नवस्त्रादिक पदार्थोंका लाभ है ता लाभकरिकै जो संन्यासी संतुष्ट है अर्थात् तिसतैं अधिक पदार्थोंकी तृष्णातैं रहितहै ता संन्यासीका नाम यदृच्छालाभसंतुष्टहै । वहां शास्त्रविषे (भैक्ष्यं चरेत्) या वचनतैं संन्यासीकूं भिक्षाका विधान करिकै पश्चात् यह वचन कथन कऱ्याहै (अयाचितमसंक्लृप्तमुपपन्नं यदृच्छया ।) अर्थ यह—भिक्षाअटनकरणेवासतैं जो उद्यमहै ता उद्यमतैं पूर्वकालविषे ता संन्यासीके प्रति किसी श्रेष्ठगृहस्थनैं निमंत्रण कऱ्या जो भिक्षाअन्न है ता भिक्षाअन्नका नाम अयाचित है ता अयाचित भिक्षाअन्नकूं भी सो संन्यासी ग्रहण करै । और संकल्पतैं विनाही पंचगृहोंतैं अथवा सप्त गृहोंतैं माधुकरीवृत्तितैं प्राप्त भया जो अन्न है ता अन्नका नाम असंक्लृप्त है ता असंक्लृप्त अन्नकूंभी सो संन्यासी ग्रहण करै और आपणे प्रयत्नतैं विनाही ता संन्यासीके समीप भक्तजनोंनैं प्राप्तकऱ्या जो पक्वअन्न है ता अन्नका नाम उपपन्न है ऐसे उपपन्न अन्नकूंभी सो संन्यासी ग्रहण करै इति । यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथन करी है वहां श्लोक (माधुकरमसंक्लृप्तं प्राक्प्रणीतमयाचितम् । तात्कालिकोपपन्नं च भैक्ष्यं पंचविधं स्मृतम् ॥) अर्थ यह—माधुकर १ प्राक्प्रणीत २ अयाचित ३ तात्कालिक ४ उपपन्न ५ यह पंचप्रकारका भिक्षाअन्न संन्यासीके वास्तै होवैहै । तहां मनके संकल्पका अविषयभूत जे तीन गृह हैं अथवा पंच गृह हैं अथवा सप्त-

गृह हैं तिन गृहोंतैं जो अन्न प्राप्त होवैहै ताका नाम माधुकर है १ और शयनके उत्थानतैं पूर्व किसीभक्तजननैं करी जो भिक्षाअन्नकी प्रार्थना है सो भिक्षाअन्न प्राक्प्रणीत कह्याजावै है २ और भिक्षाअटनके उद्यमतैं पूर्व किसी भक्तजननैं भिक्षाअन्नका निमंत्रण दिया सो भिक्षाअन्न अयाचित कह्या जावै है ३ और भिक्षाके अटनवास्तै उद्यम कियेतैं अनंतर जो किसी भक्तजननैं भिक्षावास्तै प्रार्थना करी सो भिक्षाअन्न तात्कालिक कह्याजावै है ४ और भिक्षाके समयविषे आपणे आसनऊपरिही कोई भक्तजन पक्वअन्न लेआया सो अन्न उपपन्न कह्याजावै है इति ५ इत्यादिक शास्त्रके वचन ता संन्यासीके प्रति भिक्षाअन्नके नियमका विधान करतेहुए तिन याचनादिक प्रयत्नोंकी निवृत्तिकूं कथन करैं हैं, यह वार्त्ता मनुभगवान्नेभी कथन करी है। तहां श्लोक (न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्रांगविद्यया । नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥) अर्थ यह—यह संन्यासी उत्पातकरिकै तथा निमित्तकरिकै तथा नक्षत्रविद्याकरिकै तथा अंगविद्याकरिकै तथा अनुशासनकरिकै तथा वादकरिकै कदाचित्भी भिक्षाग्रहण करणेकी इच्छा नहीं करै । इहां भूकंपादिकोंके शुभअशुभ फलका कथनकरणा याका नाम उत्पातहै । और चक्षुआदिकोंकी स्पंदरूपक्रियाके शुभअशुभ फलका कथनकरणा याका नाम निमित्त है । और अश्विनीआदिक नक्षत्रोंके शुभअशुभ फलका कथन करणा याका नाम नक्षत्रविद्या है और हस्तादिकोंकी रेखाओंके शुभअशुभफलका कथनकरणा याका नाम अंगविद्या है। और यह नीतिमार्ग इसप्रकारका है, इसप्रकार तुमनैं इस नीतिमार्गविषे वर्त्तणा याप्रकारके उपदेशका नाम अनुशासनहै । और शास्त्रके अर्थका कथनकरणा याका नाम वादहै । इत्यादिक उपायोंकरिकै संन्यासीने आपणे शरीरका निर्वाह कदाचित्भी नहीं करणा किंतु पूर्व उक्तरीतिसे भिक्षाअन्नसे शरीरका निर्वाह करणा इति । और (यतयो भिक्षार्थं ग्रामं प्रविशंति) इत्यादिक शास्त्रनैं विधान कऱ्या जो संन्यासीका भिक्षाके वास्तै प्रयत्न है सो शास्त्र-

विहित प्रयत्न तौ संन्यासीने अवश्य करिकै करणा । वा शास्त्रविहित प्रयत्नकरिकै प्राप्तहोणेयोग्य अन्नवस्त्रादिक पदार्थभी शास्त्रकरिकै नियतही होवैंहैं । यातैं शास्त्रविहित प्रयत्नकरिकै जो संन्यासीकूं शास्त्रविहित अन्नवस्त्रादिक पदार्थोंकी प्राप्ति है सो यदृच्छालाभरूपही है यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथन करीहै । तहां श्लोक-(कौपीनयुगलं वासः कंथां शीतनिवारिणीम् । पादुके चापि गृह्णीयात्कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् ॥) अर्थ यह-यह संन्यासी दो कौपीनोंकूं तथा कौपीनऊपरि बांधणेवास्तै दोकटीवस्त्रोंकूं तथा शीतकी निवृत्तिकरणे वास्तै कंबलादिरूप कंथाकूं तथा पादुकाकूं ग्रहण करै इसतैं अधिक द्रव्यादिक पदार्थोंका संग्रह नहीं करै इति । इसप्रकार दूसरेभी विधिनिषेधरूपवचन जानिलेणे । शंका-हे भगवन् ! तिन याचनादिक आपणे प्रयत्नतैं विना अन्नवस्त्रादिकोंके अप्राप्तहुए क्षुधा शीत उष्ण आदिकों करिकै पीडितहुआ सो संन्यासी किसप्रकार जीवैगा? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (द्वंद्वातीतः इति) हे अर्जुन ! क्षुधापिपासा शीतउष्ण वातवर्षा इत्यादिक सर्व द्वंद्वधर्मोंतैं सो संन्यासी रहित है तात्पर्य यह-समाधिदशाविषे तौ ता ब्रह्मवेत्तासंन्यासीकूं ते द्वंद्वधर्म स्फुरणही होवैं नहीं । और वा समाधितैं व्युत्थानदशाविषे यद्यपि ते द्वंद्वधर्म स्फुरण होवैंहैं तथापि परमानंदस्वरूप अद्वितीय अकर्त्ता अभोक्ता आत्माके साक्षात्कारकरिके तिन सर्व द्वंद्वधर्मोंका बाध होइजावैंहै । यातैं तिन बाधितद्वंद्वधर्मोंकरिकै हन्यमानहुआ भी सो संन्यासी चित्तके क्षोभतैं रहितही होवै है इति । जिस कारणतैं सो ब्रह्मवेत्तासंन्यासी द्वंद्वधर्मोंतैं रहित है तिस कारणतैं सो ब्रह्मवेत्तासंन्यासी अन्यपुरुषकूं किसी वस्तुकी प्राप्तिविषे तथा आपणेकूं किसीवस्तुकी अप्राप्तिविषे विमत्सर है । इहां परकी उत्कृष्टताके न सहनपूर्वक जो आपणी उत्कृष्टताकी इच्छा है ताका नाम मत्सर है ता मत्सरतैं जो रहित होवै ताका नाम विमत्सर है इति । और जिस कारणतैं सो ब्रह्मवेत्तासंन्यासी अद्वितीय आत्माके साक्षात्कारकरिकै ता मत्सरतैं रहित है, तिस कारणतैं सो ब्रह्-

वेत्तासंन्यासी ता यदृच्छालाभकी प्राप्तिविषे तथा अप्राप्तिविषे समान हैं अर्थात् ता यदृच्छालाभकी प्राप्तिविषे तौ हर्षतें रहित है और अप्राप्तिविषे विषादतें रहित है इति। ऐसा ब्रह्मवेत्तासंन्यासी आपणे अनुभवकरिकै तौ अकर्त्ताही है परंतु अन्यपुरुषोंनैं ताकेविषे आरोपणकऱ्या जो कर्तृत्व है ता आरोपितकर्तृत्वकरिकै सो ब्रह्मवेत्ता संन्यासी शरीरकी स्थितिमात्रविषे उपयोगी भिक्षाअटनादिक शास्त्रविहित कर्मोंकूं करता हुआभी बंधकूं प्राप्त होवै नहीं। जिस कारणतें बंधके हेतुरूप अज्ञानसहित कर्मोंका पूर्वउक्त ज्ञानरूप अग्निकरिकै दाह होइगयाहै॥२२॥

हे भगवन्! पूर्व आपनैं यह कह्याथा। त्यागकरे हैं सर्वपरिग्रह जिसनैं तथा यदृच्छालाभकरिकै संतोषकूं प्राप्त हुआ है चित्त जिसका ऐसा जो संन्यासी है ता संन्यासीके शरीरमात्रकी स्थितिविषे उपयोगी जो भिक्षाअटनादिककर्म हैं तिन भिक्षाअटनादिक कर्मोंकूं करताहुआभी सो ब्रह्मवेत्ता संन्यासी बंधकूं प्राप्त होवै नहीं इति। या आपके कहणेतैं यह अर्थ प्रतीत होवै है कि, गृहस्थआश्रमविषे स्थित जे जनक अजातशत्रुआदिक ब्रह्मवेत्ता हैं तिन जनकादिकोंके जे यज्ञादिककर्म हैं ते यज्ञादिक कर्म तिन जनकादिकोंके अवश्यकरिकै बंधके हेतु होवैंगे। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए ता शंकाकी निवृत्ति करणेवासतै श्रीभगवान् (त्यक्त्वा कर्मफलासंगम्) इत्यादिक वचनकरिकै कथन करेहुए अर्थकूं अब स्पष्टकरिकै कथन करैं हैं—

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः॥
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते॥ २३ ॥

(पदच्छेदः) गतसंगस्य। मुक्तस्य। ज्ञानावस्थितचेतसः। यज्ञाय। आचरतः। कर्म। समग्रम्। प्रविलीयते॥ २३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! फलकी अभिलाषातें रहित तथा अध्यासतें रहित तथा ज्ञानविषे स्थित है चित्त जिसका तथा यज्ञादिकोंके संरक्ष-

णवासतैं आचरण करताहुआ जो विद्वान् पुरुष है ता विद्वान् पुरुषके ते यंज्ञादिककर्म फलसहित नाशकूं प्राप्त होवैं हैं ॥ २३ ॥

भा० टी–०हे अर्जुन! जो पुरुष गतसंग है अर्थात् स्वर्गादिकफलोंकी अभिलापातैं रहित है । तथा जो पुरुष मुक्त है अर्थात् मैं कर्त्ता हूं मैं भोक्ता हूं याप्रकारके कर्तृत्वभोक्तृत्व अध्यासतैं रहित है तथा जो पुरुष ज्ञानावस्थितचेतस है अर्थात् तत्त्वमसिआदिक महावाक्यतैंजन्य निर्विकल्पकरूप जीवब्रह्मके अभेदज्ञानविषे अवस्थितहुआ है चित्त जिसका ऐसा जो स्थितप्रज्ञ पुरुष है । इहां (गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः) या तीन पदोंकरिकै ता विद्वान् पुरुषके तीन विशेषण कथन करे । तहां पूर्वपूर्व विशेषणकी सिद्धिविषे उत्तर-उत्तर विशेषण हेतुरूप हैं ताकरिकै यह दो अनुमान सिद्ध होवै हैं । सो विद्वान् पुरुष फलकी अभिलाषारूप संगतैं रहित है. कर्तृत्वभोक्तृत्व अध्यासतैं रहित होणेतैं जो पुरुष ता संगतैं रहित नहीं होवै है सो पुरुष ता अध्यासतैं रहितभी नहीं होवै है जैसे अज्ञानीपुरुष है इति । और सो विद्वान् पुरुष ता अध्यासतैं रहित है, स्थितप्रज्ञ होणेतैं जो पुरुष ता अध्यासतैं रहित नहीं होवै है सो पुरुष स्थितप्रज्ञभी नहीं होवै है जैसे अज्ञानीपुरुष है इति । ऐसा ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुष भी प्रारब्धकर्मके वशतैं वेदविहित यज्ञदानादिकोंके संरक्षण करणेवासतै अर्थात् ज्योतिष्टोमादिक यज्ञोंविषे श्रेष्ठाचारता करिकै लोकोंकी प्रवृत्ति करावणेवासतै अथवा (यज्ञो वै विष्णुः) इत्यादिक वचनोंविषे यज्ञशब्दकरिकै कथन कऱ्या जो विष्णु है ता विष्णुकी प्रसन्नतावासतै यज्ञदानादिक कर्मोंकूं करै है परंतु ता विद्वान् पुरुषके ते यज्ञदानादिक कर्म समग्र नाशकूं प्राप्त होवैं हैं । इहां अग्रनाम फलका है ता फलरूप अग्रके सहित जो विद्यमान होवै ताका नाम समग्र है । अर्थात् तत्त्वसाक्षात्कारके वलतैं अविद्यारूप कारणके निवृत्तहुए ता विद्वान् पुरुषके ते फलसहित कर्म नाशकूंही प्राप्त होवैं हैं । तहां श्रुति–(तद्यथेषीका तूलमग्नौ प्रोतं प्रदूये-

तैवं हास्य सर्वे पाप्मनः प्रदूयंते इति) अर्थ यह—जैसे प्रज्वलितअग्निविषे प्राप्तहुआ इषीका तूल नाशकूं प्राप्तहोवै हैं तैसे इस ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुषके सर्व पुण्यपापकर्म ज्ञानरूप अग्निकरिकै नाशकूं प्राप्त होवै है इति । इसी अर्थकूं श्रीभगवान् आपही (ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा) इस श्लोकविषे कथन करैंगे ॥ २३ ॥

हे भगवन् ! सो क्रियमाण कर्म फलकूं उत्पन्नकरिकै कैसे नाशकूं प्राप्तहोवैगा किंतु फलके दियेतैं विना सो कर्म नाश नहीं होवैगा । काहेतैं (नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि) अर्थ यह—फलके भोगतैं विना यह शुभ अशुभकर्म कल्पकोटिशतकरिकैभी नाशकूं प्राप्त होवै नहीं इति इत्यादिक वचनोंविषे फलके भोगतैंविना तिन कर्मोंके नाशका निषेधही कन्याहै ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ब्रह्मसाक्षात्कारकरिकै ता कर्मके कारणका नाश होणेतैं सो कर्मभी नाशकूंही प्राप्त होवैहै याप्रकारके उत्तरकूं कथन करैहै—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ॥
ब्रह्मैव तेन गंतव्यं ब्रह्म कर्मसमाधिना ॥ २४ ॥

(पदच्छेदः) ब्रह्म । अर्पणम् । ब्रह्म । हविः । ब्रह्माग्नौ । ब्रह्मणा । हुतम् । ब्रह्म । एव । तेन । गंतव्यम् । ब्रह्म । कर्मसमाधिना ॥ २४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अर्पणभी ब्रह्म ही है तथा हविभी ब्रह्मही है तथा ब्रह्मरूप अग्निविषे ब्रह्मरूप कर्त्तानें जो हवन करचाहै सो हवनभी ब्रह्मही है तथा तिसं हवनकरिकै प्राप्तहोणेयोग्य स्वर्गादिकभी ब्रह्मरूपही है तथा कर्मविषे ब्रह्मबुद्धिवाले पुरुषनैंभी परमानंदस्वरूप ब्रह्मही गंतव्य है॥ २४ ॥

भा० टी०—कर्त्ता कर्म करण संप्रदान अधिकरण या पंचप्रकारके कारकों करिकै यज्ञादिरूप क्रिया सिद्ध होवैहै । तहां इंद्रादिक देवतावोंका

उद्देशकरिकै जो घृतादिरूप द्रव्यका त्याग करया है ताकां नाम याग है सो यागही त्यागकरणेयोग्य घृतादिक द्रव्यका अग्निविषे प्रक्षेप करणेतैं होम इस नामकरिकै कह्या जावै है। तहां उद्दिश्यमान इंद्रादिकदेवता तौ संप्रदानकारकरूप हैं और त्यागकरणेयोग्य जे घृतादिक हैं ते घृतादिक हविष या शब्दकरिकै कहे जावैं हैं। सो घृतादिकरूप हविष तौ त्यागप्रक्षेपरूप धातु अर्थका साक्षात् कर्मरूप है और ताका फलभूत स्वर्गादिक व्यवहित भावनाका कर्मरूप है। और अग्निविषे ता घृतादिरूप हविषके प्रक्षेपविषे ता हविषके धारक होणेतैं जुहूआदिक करणरूप हैं। तथा इंद्रादिरूप अर्थकी प्रकाशता करिकै (इंद्राय स्वाहा) यह मंत्रादिकभी करणरूपही हैं। इस प्रकार कारक ज्ञापक या भेदकरिकै सो करण दोप्रकारका होवै है। इस प्रकार देवताका उद्देशकरिकै घृतादिक द्रव्यका त्याग तथा ता द्रव्यका अग्निविषे प्रक्षेप यह दोप्रकारकी क्रिया होवै है। तहां प्रथम त्यागरूप क्रियाविषे तौ यजमान पुरुषही कर्त्ता होवै है। और दूसरी प्रक्षेपरूप क्रियाविषे तौ यजमान पुरुषनें दक्षिणा देकरिकै स्थापन करयाहुआ अध्वर्यु कर्त्ता होवै हैं और आहवनीयादिक अग्नि ता हविषके प्रक्षेपका अधिकरणरूप होवैहै। इस प्रकार देशकालादिकभी सर्वक्रियावोंके प्रति साधारण अधिकरणरूप जानणे। इसप्रकार जितनेक क्रिया कारक व्यवहार हैं ते सर्व व्यवहार ब्रह्मके अज्ञानकरिकै कल्पित है। यातैं जैसे रज्जुके अज्ञानकरिकै कल्पित जे सर्प दंड माला आदिक हैं तिन कल्पित सर्पादिकोंका ता रज्जुरूप अधिष्ठानके ज्ञानकरिकै बाध होइजावैहै। तैसे अधिष्ठानब्रह्मके साक्षात्कारकरिकै ते क्रियाकारकादिक सब व्यवहार बाधकूं प्राप्त होवैहैं। यातैं ता विद्वान् पुरुषविषे बाधितानुवृत्ति करिकै सो क्रियाकारकादिरूप व्यवहाराभास प्रतीत हुआभी दग्ध पटकी न्याईं किसी फलके उत्पन्नकरणेविषे समर्थ होवै नहीं। याप्रकारके अर्थकूं श्रीभगवान् इस श्लोककरिकै कथन करैहैं। तथा सा ब्रह्मदृष्टिही सर्व यज्ञरूप है याप्रकार ता ब्रह्मदृष्टिकी स्तुति करैहैं इति। अब सो प्रकार दिखावैं हैं। (अर्प्यते

अनेन तदर्पणम्) अर्थ यह—जिसकरिकै घृतादिरूप हविष अग्निविषे अर्पण करचाजावै है ताका नाम अर्पण है या प्रकारकी करण व्युत्पत्तिकरिकै तौ अर्पणपद जुहूआदिक करणोंका तथा मंत्रादिक करणोंका वाचक है। और (अर्प्यते अस्मै तदर्पणम्) अर्थ यह—सो घृतादिरूप हविष जिसके ताई अर्पण करियेहै ताका नाम अर्पण है । याप्रकारकी व्युत्पत्तिकरिकै सो अर्पणपद इंद्रादिक देवतारूप संप्रदानका वाचक है और (अर्प्यते अस्मिन् तदर्पणम्) अर्थ यह—सो घृतादिरूप हविष अर्पणकरिये जिसविषे ताका नाम अर्पण है। याप्रकारकी व्युत्पत्तिकरिकै सो अर्पणशब्द देशकालादिरूप अधिकरणका वाचक है। इस प्रकार एकही अर्पणपद करण संप्रदान अधिकरण या तीनकारकोंका वाचक है। यातै जुहूमंत्रादिरूप करणकारक तथा देवतादिरूप संप्रदानकारक तथा देशकालादिरूप अधिकरणकारक यह सर्व ब्रह्मविषे कल्पित होणेतैं ब्रह्मरूपही हैं। तात्पर्य यह—जैसे रज्जुविषे कल्पित सर्पदंडादिक ता रज्जुरूप अधिष्ठानतैं भिन्नताकरिकै असत्ही होवैं हैं तैसे ते कारकभी अधिष्ठानब्रह्मतैं भिन्नताकरिकै असतही हैं इति । और यजमानकर्तृक त्यागरूप क्रियाका तथा अध्वर्युकर्तृक प्रक्षेपरूप क्रियाका साक्षात् कर्मरूप जो घृतादिक हविष है सो हविषरूप कर्म कारकभी ब्रह्मरूपही है। और जिस आहवनीयादिक अग्निविषे सो घृतादिरूप हविष पायाजावै है सो अग्निरूप अधिकरणकारकभी ब्रह्मरूपही है । और जिस यजमाननैं देवताका उद्देश करिकै सो घृतादिरूप हविष त्याग करीता है तथा जिस अध्वर्युनै सो घृतादिरूप हविष अग्निविषे प्रक्षेप करीता है, सो यजमानरूप कर्त्ताकारक तथा अध्वर्युरूप कर्त्ताकारक दोनों ब्रह्मरूपही हैं । और (हुतम्) या शब्दकरिकै कथन कऱ्या जो त्यागक्रियारूप तथा प्रक्षेपक्रियारूप हवन है सो क्रियारूप हवनभी ब्रह्मरूपही है । और तिस हवनरूप क्रियाकरिकै प्राप्त होणे योग्य जो स्वर्गादिरूप व्यवहितकर्म है, सो स्वर्गादिरूप कर्मकारकभी ब्रह्मरूपही है और इसप्रकार ता कर्मविषे ब्रह्मदृष्टिरूप समाधि है जिसकी

ताका नाम कर्मसमाधि है ऐसा जो कर्मोंका अनुष्ठान करणेहारा ब्रह्मवेत्ता पुरुष है ता ब्रह्मवेत्ता पुरुषनैंभी परमानंदस्वरूप अद्वितीय ब्रह्मही गंतव्य है इहां (कर्मसमाधिना) या वचनतैं उत्तर (ब्रह्म गंतव्यं) या दोनों पदोंका पूर्ववाक्यतैं अनुषंग करणा इति । अथवा (अर्प्यते अस्मै फलाय तदर्पणम्) । अर्थ यह–जिस फलकी प्राप्ति वासतैं सो हविष अर्पण करिये है ताका नाम अर्पण है । या प्रकारकी व्युत्पत्ति करिकै ता अर्पण-पदकरिकैही तिन स्वर्गादिक फलोंकाभी ग्रहण करणा (गंतव्य) या पदकरिकै तिन स्वर्गादिकोंका ग्रहण करणा नहीं ।यातैं (ब्रह्मैव तेन गंतव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना) यह श्लोकका उत्तरार्द्ध ज्ञानके फल कथन करणे वासतैंही है । यहही व्याख्यान समीचीन है । तहां इस द्वितीय व्याख्यानविषे (ब्रह्मकर्मसमाधिना) यह एकही समस्त पद है । अथवा (ब्रह्मैव तेन) या वचनविषे स्थित जो ब्रह्म यह पद है ता ब्रह्मपदका तौ पूर्व (हुतम्) या पदके साथि अन्वय करणा । और (ब्रह्म कर्मसमाधिना) या वचनविषे स्थित जो ब्रह्म यह पद है ता ब्रह्मपदका तौ (गंतव्यं) या पदके साथि अन्वय करणा । यातैं (ब्रह्म कर्मसमाधिना) यह दोनों पद भिन्नभिन्नही हैं । इस द्वितीय व्याख्यानविषे पूर्व व्याख्यानकी न्याई (ब्रह्म गंतव्यं) या दोनों पदोंके अनुषंगरूप क्लेशकी प्राप्ति होवै नहीं इति । इहां (ब्रह्मैव तेन गंतव्यं ब्रह्म कर्मसमाधिना) या वचन करिकै श्रीभगवान् ब्रह्मवेत्ता पुरुषकूं जो ब्रह्मकी प्राप्ति कथन करी है सो मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकार अभेदरूप करिकै ब्रह्मकी प्राप्ति कथन करी है । कोई स्वर्गादिकोंकी न्याईं भिन्नरूप करिकै अथवा स्वामी सेवक भावकरिकै सा प्राप्ति कथन करी नहीं। तहां श्रुति–(ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवतीति) अर्थ यह–ब्रह्मकूं जानणेहारा पुरुष ब्रह्मरूपही होवे है इति । इसी कारणतें सो ब्रह्मवेत्ता पुरुष स्वर्गादिक तुच्छ फलोंकूं प्राप्त होवै नहीं । जिस कारणतैं ता ब्रह्मवेत्ता पुरुषके ब्रह्मविद्या करिकै अविद्यारचित सर्व कारक व्यवहार नाशकूं प्राप्त हुए हैं इति । यह वार्त्ता

वार्तिक ग्रंथके कर्त्ता सुरेश्वराचार्यनैंभी कथन करी है । तहां श्लोक-(कारकव्यवहारे हि शुद्धं वस्तु न वीक्ष्यते । शुद्धे वस्तुनि सिद्धे च कारकव्यापृतिः कुतः॥) अर्थ यह-कर्त्ताकर्मादिक कारकोंके व्यवहार हुए आत्मारूप शुद्धवस्तु देख्या जावै नहीं और ता शुद्धवस्तुके साक्षात्कार हुए तिन कारकोंका व्यापार होवै नहीं इति । और किसी टीकाकारनै तौ इस श्लोकका यह व्याख्यान करचा है जैसे नाम वाक् मन इत्यादिकोंके स्वरूपका न बाध करिक तिननामादिकोंविषे श्रुतिनैं ब्रह्मदृष्टिका विधान करचा है तैसे इहां श्रीभगवान्नैंभी अर्पणादिक कारकोंके स्वरूपका न बाध करिकै तिन अर्पणादिक कारकोंविषे ब्रह्मदृष्टिका विधान करचा है इति । सो इस व्याख्यानकूं श्रीभाष्यकारोंनै तात्पर्यके निश्चयके उपक्रमादिकोंके विरोधकरिकै तथा ब्रह्मविद्याके प्रकरणविषे संपद उपासनामात्रकी प्राप्तिही नहीं है इत्यादिक युक्तियोंकरिकै विस्तारवैं खंडन करचा है ॥ २४ ॥

तहां पूर्व (ब्रह्मार्पणं) या मंत्ररूप श्लोकविषे सर्वत्र ब्रह्मदृष्टिरूप सम्यक्दर्शनकी यज्ञरूप करिकै स्तुति कथन करी । अब तिसी सम्यक्दर्शनकी पुनः स्तुति करणेवासतै श्रीभगवान् दूसरे यज्ञोंका भी कथन करैं हैं-

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ॥
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥ २५ ॥

(पदच्छेदः) दैवम् । एव । अपरे । यज्ञम् । योगिनः । पर्युपासते । ब्रह्माग्नौ । अपरे । यज्ञम् । यज्ञेन । एव । उपजुह्वति ॥ २५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! दूसरे कर्मीपुरुष तौ दैवं यज्ञकूं ही सर्वदा करै है और दूसरे तत्त्ववेत्ता पुरुष तौ ब्रह्मरूप अग्निविषे आत्माकूं आत्मारूप करिकै ही होमैं करैं हैं ॥ २५ ॥

भा०टी०-हे अर्जुन ! इंद्र अग्नि वायुआदिक देवता जिस कर्म करिकै संतुष्ट करे जावैं हैं ताका नाम दैव है । ऐसा जो दर्श, पौर्णमास, ज्योतिष्टोम, आदिक यज्ञ हैं ता दैवयज्ञकूंही दूसरे कर्मीपुरुष सर्वदा करैं हैं । ते कर्मीपुरुष ज्ञानयज्ञकूं कदाचित्भी करते नहीं इति इस प्रकार कर्म यज्ञकूं कथन करिकै अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा ता कर्मयज्ञका फलभूत जो ज्ञानयज्ञ है ता ज्ञानयज्ञकूं श्रीभगवान् कथन करे है (ब्रह्माग्नौ इति) हे अर्जुन ! सत्य ज्ञान अनंत आनन्दरूप तथा सर्व विशेषोंतैं रहित ऐसा जो तत्पदार्थरूप ब्रह्म है सो ब्रह्मही ज्ञात हुआ सर्व कर्मोंका दाहक होणेतैं अग्निकी न्याईं अग्निरूप है ऐसे तत्पदार्थ ब्रह्मरूप अग्निविषे दूसरे तत्त्ववेत्ता संन्यासी त्वंपदार्थरूप प्रत्यक् आत्माकूं अभिन्नरूपकरिकै होम करैं हैं । अर्थात् तत्त्वंपदार्थरूप प्रत्यक् आत्माकूं ता ब्रह्मरूप करिकै देखैं हैं । इहां (यज्ञेनैव) या वचनविषे स्थित जो एव यह शब्द है सो एवकार जीवब्रह्मके भेदकी निवृत्ति करणेवासतैहै । इहां जीवब्रह्मके अभेदज्ञानकूं यज्ञरूपतैं संपादन करिकै (श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः) इत्यादिक वचनोंकरिकै ता ज्ञानयज्ञकी स्तुति करणे वासतै ता ज्ञानयज्ञके साधनरूप यज्ञोंके मध्यविषे श्रीभगवान्नें सो ज्ञानयज्ञ कथन कऱ्या है ॥ २५ ॥

इतने कहणे करिकै श्रीभगवान्नें मुख्य यज्ञ तथा गौणयज्ञ यह दो यज्ञ कथन करे । अब वेदविषे जितनेक श्रेयके साधन कथन करे हैं तिन सर्व साधनोंकूं श्रीभगवान् यज्ञरूपकरिकै प्रतिपादन करैं हैं-

श्रोत्रादीनींद्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ॥
शब्दादीन्विषयानन्ये इंद्रियाग्निषु जुह्वति ॥ २६ ॥

(पदच्छेदः) श्रोत्रादीनि । इंद्रियाणि । अन्ये । संयमाग्निषु । जुह्वति । शब्दादीन् । विषयान् । अन्ये । इंद्रियाग्निषु । जुह्वति ॥ २६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! दूसरे पुरुष तौ श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं संयमरूप अग्नियोंविषे होम करें हैं तथा कई अन्यपुरुष तौ शब्दादिक विषयोंकूं श्रोत्रादिक इंद्रियरूप अग्नियोंविषे होम करें हैं ॥ २६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! यम, नियम, आसन, प्राणायाम या च्यारोंकूं सिद्धकरिकै केवल प्रत्याहारपरायण जे केईक अधिकारी पुरुष हैं ते अधिकारी पुरुष तौ श्रोत्रादिक पंचज्ञानइंद्रियोंकूं आपणे आपणे शब्दादिक विषयोंतैं निवृत्त करिकै संयमरूप अग्निविषे होम करें हैं। इहां(त्रयमेकत्र संयमः) इस पतंजलि भगवान्‌के सूत्रविषे एकवस्तुकूं विषय करणेहारे धारणा ध्यान समाधि या तीनोंकूं संयम या शब्दकरिकै कथन कऱ्या है। तहां हृदयकमलादिक स्थानोंविषे चिरकालपर्यंत जो मनका स्थापन करणा है ताका नाम धारणा है। इस प्रकार एकस्थानविषे धारण कऱ्या जो चित्त है ता चित्तका उत्तर उत्तर विजातीय वृत्तियोंकृत व्यवधानसहित जो भगवत्‌आकार सजातीयवृत्तियोंका प्रवाह है ताका नाम ध्यान है। और ता चित्तका विजातीय वृत्तियोंके व्यवधानतैं रहित केवल ता भगवत् आकार सजातीय वृत्तियोंका जो प्रवाह है ताका नाम समाधि है। सो समाधिभी चित्तकी भूमिकाओंके भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां एक तौ संप्रज्ञातनामा समाधि होवैहै और दूसरी असंप्रज्ञातनामा समाधि होवै है। तहां क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, एकाग्र, विरुद्ध,यह पंचभूमिका चित्तकी होवै हैं। भूमिका नाम अवस्थाविशेषका है। तहां रागद्वेषादिकोंके वशतैं विषयों विषे अत्यन्त अभिनिवेशवाला जो चित्त है सो चित्त क्षिप्त कह्या जावे है। और निद्रा तन्द्रादिकों करिकै ग्रस्त हुआ जो चित्त है सो चित्त मूढ कह्या जावे हैं। और सर्वकालविषे विषयोंविषे आसक्त हुआभी जो चित्त कदाचित् दैवयोगतैं ध्याननिष्ठभी होवै हैं सो चित्त ता क्षिप्ततैं श्रेष्ठ होणेतैं विक्षिप्त कह्या जावे है तहां क्षिप्तचित्तविषे तथा मूढचित्तविषे ता समाधि होणेकी शंकाही नहीं होवै है,और विक्षिप्त चित्तविषे तौ कादाचित्कसमाधि होवैभी है परन्तु विक्षिप्तकी प्रधानतातैं सो समाधि

योगपक्षविषे वर्त्तता नहीं । किंतु जैसे महान् पवनकरिकै विक्षिप्तहुआ दीपक आपही नाश होइजावै है वैसे सो कादाचित्क समाधिभी आपेही नाशकूं प्राप्त होवै है। और ता चित्तविषे एकवस्तुकूं विषय करणेहारी धारावाहिक वृत्तियोंका जो सामर्थ्य है ताका नाम एकाग्र है। तहां सत्त्वगुणकी वृद्धि करिकै तमोगुणकृत तंद्रादिरूप लयके अभाव हुए आत्माकारवृत्ति होवै है, सा आत्माकारवृत्ति रजोगुणकृत चञ्चलतारूप विक्षेपके अभावतैं एक वस्तुविषयकही होवै है। इस प्रकार शुद्ध सत्त्वगुणके हुएही सो चित्त एकाग्र होवै है ता एकाग्रचित्तविषेही सो संप्रज्ञातनामा समाधि होवै है ता संप्रज्ञातनामा समाधिविषे सा ध्येयाकार वृत्तिभी प्रतीत होवै है और जिस काल विषे सा ध्येयाकार वृत्तिभी निरोधकूं प्राप्त होवै तिस कालविषे सो चित्त निरुद्ध कह्या जावै है। ता निरुद्धचित्तविषे असंप्रज्ञात नामा समाधि होवै है। यहही असंप्रज्ञात समाधि सर्व सुखोंतैं विरक्त योगी पुरुषका दृढभूमिकारूप न हुआ धर्ममेघ या नाम करिकै कह्या जावै है इति। इस प्रकार अनेकरूप करिके तिन धारणादिक संयमोंका भेद है। यातैं (संयमाग्निषु) या वचन विषे श्रीभगवान्नैं बहुवचन कथन कऱ्या है। ऐसे संयमरूप अग्नियोंविषे केइक अधिकारीपुरुष श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं होम करैं हैं। अर्थात् धारणा ध्यान समाधि या तीनोंकी सिद्धिवासतै श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं आपणे विषयोंतैं प्रत्याहरण करैं हैं। तहां आपणे आपणे विषयोंतैं निग्रहकूं प्राप्तहुए ते इंद्रिय चित्तरूपही होवैं हैं। इसीकूंही शास्त्रविषे प्रत्याहार या नामकरिकै कथन करैंहैं। तिस प्रत्याहारतैं अनंतर विक्षेपके अभावतैं सो चित्त तिन धारणादिकोंकूं संपादन करै है। इतने कहणेकरिकै प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि यह च्यारि अंग योगके कथन करे। ता करिकै समाधिअवस्थाविषे सर्व इंद्रियजन्य वृत्तियोंके निरोधकू यज्ञरूप करिकै वर्णन कऱ्या। अब ता समाधितैं व्युत्थानदशाविषे रागद्वेषतैं रहित होइक जो शास्त्रविहित विषयोंका भोगभी

भोगैहैं सो एक यज्ञरूपहीहै इस अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करै हैं (शब्दादीन्विषयानन्ये इंद्रियाग्निषु जुह्वतीति) हे अर्जुन ! ता समाधिवैं व्युत्थानकूं प्राप्तहुए जे योगी पुरुष हैं ते योगी पुरुष रागद्वेषतैं रहित होइकै ता व्युत्थानकालविषे श्रोत्रादिक इंद्रियोंकरिकै शास्त्रतैं अविरुद्ध शब्दादिकविषयोंकूं ग्रहण करैहैं यहही तिन शब्दादिक विषयोंका श्रोत्रादिक इंद्रियोंविषे होम है ॥ २६ ॥

तहां इस पूर्वश्लोकविषे पातंजलमतके अनुसार करिकै लयपूर्वक समाधिरूप तथा ता समाधितैं व्युत्थानदशारूप या दोनों यज्ञोंकूं कथन करचा। अब इस श्लोकविषे ब्रह्मवादी पुरुषोंके मतके अनुसार करिकै सर्वसाधनोंका फलरूप तथा कारणके नाशकरिकै व्युत्थानतैं रहित ऐसा जो निरोधपूर्वक समाधि है ता समाधिरूप यज्ञांतरकूं श्रीभगवान् कथन करैहै—

सर्वाणींद्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ॥
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते॥२७॥

(पदच्छेदः) सर्वाणि। इंद्रियकर्माणि। प्राणकर्माणि। च। अपरे। आत्मसंयमयोगाग्नौ। जुह्वति। ज्ञानदीपिते ॥ २७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! दूसरे केईक अधिकारी तौ सर्व इंद्रियोंके कर्मोंकूं तथा प्राणोंके सर्वकर्मोंकूं ज्ञानकरिकै दीपित आत्मसंयमयोगरूप अग्निविषे होम करैहैं ॥ २७ ॥

भा० टी०—तहां समाधि दोप्रकारका होवैहै एक तौ लयपूर्वक समाधि होवैहै और दूसरा बाधपूर्वक समाधि होवै है। तहां (तदनन्यत्वमारंभणशब्दादिभ्यः) इस सूत्रविषे श्रीव्यासभगवान्नैं कारणतैं भिन्न करिकै कार्यका असत्त्व कथन कऱ्याहै। यातैं पंचीकृत पंचभूतोंका कार्य जो व्यष्टिरूपहै सो व्यष्टिरूप, समष्टिरूप विराट्का कार्य होणेतैं ता विराट् रूप कारणतैं भिन्न नहीं है और सो समष्टिरूप पंचीकृत पंचभूतात्मक

कार्यभी अपंचीकृत पंचमहाभूतोंका कार्यरूप होणेतै तिन अपंचीकृत पंचमहा-भूतरूप कारणतैं भिन्न नहीं है और तिन पंचभूतोंविषे भी शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध या पंचगुणोंवाली जा पृथिवी है सो पृथिवी शब्द, स्पर्श, रूप, रस, या च्यारिगुणोंवाले जलका कार्य होणेतैं ता जलरूप कारणतैं भिन्न नहीं है और सो च्यारिगुणोंवाला जलभी शब्द, स्पर्श, रूप, या तीन गुणोंवाले तेजका कार्य होणेतैं ता तेजरूप कारणतैं भिन्न नहींहै और सो तीनगुणोवाला तेजभी शब्द स्पर्श या दो गुणोंवाले वायुका कार्य होणेतैं ता वायुरूप कारणतैं भिन्न नहीं है और सो दो गुणोंवाला वायुभी एक शब्द गुणवाले आकाशका कार्य होणेतैं ता आकाशरूप कारणतैं भिन्न नहीं है और सो शब्दगुणवाला आकाशभी(बहुस्यां) या श्रुतिने कथन कऱ्या जो परमेश्वरका संकल्परूप अहंकार है ता अहंकारका कार्य होणेतैं ता अहंकाररूप कारणतैं भिन्न नहीं है और सो संकल्परूप अहंकारभी (तदैक्षत) या श्रुतिकरिकै कथन कऱ्या जो माया ईक्षणरूप महत्तत्त्व है ता महत्तत्त्वका कार्य होणेतैं भिन्न नहीं है और सो ईक्षणरूप महत्तत्त्वभी मायाका परिणाम होणेतैं ता मायारूप कारणतैं भिन्न नहीं है और सो मायारूप कारणभी जडरूप होणेतैं चैतन्यरूप ब्रह्मविषे अध्यस्त है । यातैं ता चैतन्यब्रह्मतैं सो मायारूप कारण भिन्न नहीं है । इस प्रकार निरंतर चिंतनकरिकै कार्यकारणरूप सब प्रपंचके विद्यमान हुएभी जो चैतन्य ब्रह्ममात्र विषयक समाधि है सो समाधि लयपूर्वकसमाधि कह्याजावै है । ता लयपूर्वक समाधिविषे ता अधिकारीपुरुषकूं तत्त्वमसि आदिक वेदांत महावाक्योंके अर्थका ज्ञान है नहीं यातैं कार्यसहित अविद्याका नाश हुआ नहीं । किंतु सा अविद्या ता लयचिंतनकालविषे विद्यमानही है । ता अविद्याके विद्यमान हुए ता अविद्यारूप कारणतैं पुनः संसाररूप कार्यकी उत्पत्ति होवैहै । यातैं यह लयपूर्वक समाधि सुषुप्तिकी न्याईं सबीज समाधिही है मुख्य निर्बीज समाधि है नहीं । और जिसकालविषे तत्त्वमसि आदिक महावाक्यजन्य साक्षात्कारकरिकै ता अविद्याकी निवृत्ति होवैहै तथा उत्पत्ति-

क्रमतैं ता अविद्याके महत्तत्त्वादिक सर्वकार्योंकी निवृत्ति होवैहै और तत्त्वसाक्षात्कारकरिकै एकवार नाशकूं प्राप्तहुई सा अनादि अविद्या पुनः कदाचित् भी उत्थानकूं प्राप्त होवै नहीं। तथा ता अविद्याका कार्यभी पुनः उत्थानकूं प्राप्त होवैनहीं। तिस कालविषे ता विद्वान् पुरुषकूं मुख्य निर्बीज बाधपूर्वक समाधि होवैहै। सो बाधपूर्वकसमाधिही इस श्लोककरिकै श्रीभगवान्नैं कथन करीताहै सो प्रकार दिखावैहैं। तहां अंतर बाह्य या भेदकरिकै इंद्रिय दोप्रकारका होवैहै। तहां श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसन, घ्राण यह पंचज्ञानइंद्रिय तथा वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ, पायु यह पंच कर्मइंद्रिय यह दश इंद्रिय तौ बाह्यइंद्रिय कहेजावैं हैं और मन बुद्धि यह दोनों अन्तर इंद्रिय कहेजावैं हैं। तिन बाह्य अंतर सर्व इंद्रियोंके जितनेक स्थूलरूप तथा संस्काररूप कर्म हैं तहां शब्दका श्रवण श्रोत्रइंद्रियका कर्म है। और स्पर्शका ग्रहण त्वक् इंद्रियका कर्म है और रूपका दर्शन चक्षुइंद्रियका कर्म है और रसका ग्रहण रसनइंद्रियका कर्म है और गंधका ग्रहण घ्राणइंद्रियका कर्म है और वचनका उच्चारण वाक् इंद्रियका कर्म है और वस्तुका ग्रहण पाणिइंद्रियका कर्म है और गमनआगमन पाद इंद्रियका कर्म है और विषयानंद उपस्थ इंद्रियका कर्म है और मलका परित्याग पायु इंद्रियका कर्म है और संकल्प मनका कर्म है और निश्चय बुद्धिका कर्म है इति। इसप्रकार प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, या पंचप्राणोंके जितनेक कर्म हैं तहां बहिर्गमन प्राणका कर्म है और अधोगमन अपानका कर्म है और हस्तपादादिक अंगोंका आकुंचन प्रसारण आदिक व्यानका कर्म है और भोजन करेहुए अन्न जलका समान करणा समानका कर्म है और ऊर्ध्वगमन उदानका कर्म है इतने करिकै पंच ज्ञानइंद्रिय पंचकर्मइंद्रिय पंच प्राण, दोनों मन बुद्धि या सप्तदशतत्त्वोंका समुदायरूप लिंगशरीर कथनकऱ्या, सो सूक्ष्मशरीरभी इहां सूक्ष्मभूतोंका समष्टिरूप हिरण्यगर्भही विवक्षित है इसी अर्थके जनावणेवास्तै श्रीभगवान्नैं तिन इंद्रियोंके कर्मोंका तथा प्राणोंके कर्मोंका (सर्वाणि)

यह विशेषण कथन क्या है । ऐसे सप्तदश तत्त्वरूप लिंगशरीरकूं अन्य केई विद्वान् पुरुष आत्मसंयमयोगाग्निविषे होम करैंहैं । तहां आत्माकूं विषय करणेहारा जो धारणा ध्यान संप्रज्ञात समाधिरूप संयम है ता संयमके परिपाकहुएतै सिद्धभया जो निरोधसमाधिरूप योग है ताका नाम आत्मसंयमयोग है । इसी निरोधसमाधिरूप योगकूं पतंजलिभगवान्भी योगसूत्रोंविषे कथन करता भया है । तहां सूत्र—(व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामःइति) अर्थ यह—क्षिप्त मूढ विक्षिप्त या तीन भूमिकावोंका नाम व्युत्थान है । ता व्युत्थानके संस्कार समाधिके विरोधी होवैं है, ते विरोधी संस्कार तौ योगीपुरुषके प्रयत्नकरिकै दिनदिनविषे तथा क्षणक्षणविषे अभिभवकूं प्राप्त होवैं हैं और तिन व्युत्थान संस्कारोंके विरोधीरूप जे निरोधके संस्कार है ते निरोधके संस्कार दिनदिनविषे तथा क्षणक्षणविषे प्रादुर्भावकूं प्राप्त होवैंहैं तिसतैं अनंतर निरोधमात्र क्षणके साथि जो चित्तका अन्वय है सो निरोधपरिणाम कह्या जावैहै इति । इसी निरोधसमाधिके फलकूंभी सो पतंजलिभगवान् योगसूत्रोंविषे कथन करता भया है। तहां सूत्र—(तस्य प्रशांतवाहिता संस्कारादिति) अर्थ यह—ता निरोधपरिणामतैं अनंतर निरोधसंस्कारोंकी दृढता करिकै तिस चित्तकूं प्रशांतवाहिता होवैहै अर्थात् तमोगुण रजोगुण या दोनों गुणोंके नाश हुएतैं अनन्तर लयविशेष दोषतैं रहितपणे करिकै शुद्ध सत्त्वरूप जो चित्त है सो चित्त प्रशांत कह्या जावैहै और पूर्वपूर्व ता प्रशमके संस्कारोंकी बाहुल्यताकरिकै जो तिसतैंभी अधिकता है ताकूं प्रशांतवाहिता कहैं हैं इति । ता निरोधसमाधिके कारणकूंभी सो पतंजलिभगवान् योगसूत्रोंविषे कथन करताभया है । तहां सूत्र—(विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वसंस्कारशेषोऽन्यः)इति। अर्थ यह—वृत्तिकी उपरामतारूप जो विराम है ता विरामका जो प्रत्ययहै क्या कारण है अर्थात् ता वृत्तिकी उपरामतावासतै जो पुरुषका प्रयत्न है ता पुरुषप्रयत्नका जो पुनः पुनः संपादनरूप अभ्यास है ता अभ्यासकरिकै जन्य

संप्रज्ञातसमाधितैं विलक्षण असंप्रज्ञातसमाधि होवै है इति । इसप्रकारका निरोधसमाधिरूप जो आत्मसंयमयोग है सोईही अग्निरूप है। कैसा है सो आत्मसंयमयोगरूप अग्निज्ञानकरिकै दीपित है अर्थात् वेदांतवाक्य करिकै जन्य जो ब्रह्मात्मऐक्यसाक्षात्कार है ता साक्षात्कारकरिकै कार्यसहित अविद्याके नाशद्वारा अत्यंत उज्ज्वलित है ऐसे ज्ञानकरिकै दीपित आत्मसंयमयोगाग्निरूप बाधपूर्वक समाधिविषे अन्य केई विद्वान् पुरुष समष्टिलिंगशरीरकूं होम करै हैं अर्थात् ता समाधिविषे ता लिंगशरीरकूं प्रविलापन करैहैं इति । इहां (सर्वाणि आत्मज्ञानदीपिते) या तीन विशेषणोंके कहणेकरिकै तथा (अग्नौ) या एकवचनके कहणे करिकै पूर्व कथन करेहुए यज्ञतैं इस यज्ञविषे विलक्षणता सूचन करी यातैं इहां पुनरुक्ति दोषकी भ्रांति होवै नहीं ॥ २७ ॥

तहां पूर्व (दैवमेवापरे यज्ञम्) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै श्रीभगवान्नैं पंचयज्ञोंकूं कथनकऱ्या अब इस एकही श्लोककरिकै श्रीभगवान् षट्यज्ञोंकूं कथन करैहैं–

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ॥
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥२८॥

(पदच्छेदः) द्रव्ययज्ञाः । तपोयज्ञाः । योगयज्ञाः । तथा । अपरे । स्वाध्यायज्ञानयज्ञाः । च। यतयः । संशितव्रताः ॥२८॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! केईक अधिकारीपुरुष द्रव्यका त्यागरूप यज्ञकूं करैं हैं तथा केईक अधिकारीपुरुष तपरूप यज्ञकूं करैं है तथा केईक अधिकारी पुरुष योगरूप यज्ञकूं करै हैं तैथा केईक अधिकारीपुरुष वेदाभ्यासरूप यज्ञकूं तथा ज्ञानरूप यज्ञकूं करै हैं तथा केईक यत्नशीलपुरुष अत्यंतदृढव्रतरूप यज्ञकूं करै हैं ॥ २८ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! शास्त्रकी विधिप्रमाण जो द्रव्यका त्याग है सो द्रव्यका त्यागही है यज्ञरूप जिन्होंका ते अधिकारीपुरुष द्रव्ययज्ञाः

कहे जावैं हैं अर्थात् पूर्त्त दत्त नामा स्मार्त्तकर्मकूं करणेहारे पुरुष द्रव्ययज्ञाः कहे जावैं हैं । तहां पूर्त दत्त या दोनों कर्मोंका स्वरूप स्मृतिविषे यह कह्या है । तहां श्लोक-(वापीकूपतडागादि देवतायतनानि च। अन्नप्रदानमारामः पूर्त्तमित्यभिधीयते ॥ शरणागतसंत्राणं भूतानां चाप्यहिंसनम् । बहिर्वेदि च यद्दानं दत्तमित्यभिधीयते ।) अर्थ यह-बावडी बनावणी, तथा कूप बनावणा, तथा तलाव बनावणा तथा विष्णु शिवादिक देवतावोंके मंदिर बनावणे, तथा क्षुधातुर प्राणियोंकूं अन्न प्रदान करणा तथा लोकोंके निवासकरणवासतै धर्मशाला, बगीचा बनावणा इत्यादिक सर्वकर्म पूर्त्त या नामकरिकै कहेजावैं हैं इति । और शरणागत प्राणियोंकी रक्षा करणी तथा किसीभी भूतप्राणिकी हिंसा नहीं करणी तथा वेदीतैं बाह्य जो दान है इत्यादिक सर्वकर्म दत्त या नामकरिकै कहेजावैं हैं इति । इस प्रकारके पूर्त्तदत्तनामा स्मार्त्तकर्मोंकूं करणेहारे पुरुष द्रव्ययज्ञाः कहेजावैं हैं । और इष्टनामा जो श्रौतकर्म है ता श्रौतकर्मकूं तौ (दैवमेवापरे यज्ञम्) या वचनकरिकै पूर्व कथन करि आये हैं और जो दान वेदीके अंतर दिया जावै है सो दान भी तिस श्रौतकर्मके अंतर्भूतही है इति । और कृच्छ्रचांद्रायणादिरूप जो तप है सो तपही है यज्ञरूप जिन्होंका ते अधिकारी पुरुष तपोयज्ञाः कहेजावैं हैं अर्थात् केईक तपस्वीपुरुष कृच्छ्रचांद्रायणादिक तपरूप यज्ञकूंही करैं हैं और चित्तकी वृत्तिका निरोधरूप जो अष्टांगयोग है सो अष्टांगयोगही है यज्ञरूप जिन्होंका ते अधिकारीपुरुष योगयज्ञाः कहे जावैं हैं। अर्थात् केईक अधिकारी पुरुष अष्टांगयोगरूप यज्ञकूंही करैं हैं। तहां यम १, नियम २, आसन ३, प्राणायाम ४, प्रत्याहार ५, धारणा ६, ध्यान ७, समाधि ८ यह योगके अष्ट अंग कहे जावैं हैं । तहां प्रत्याहारका स्वरूप तौ (श्रोत्रादीनींद्रियाण्यन्ये) इस वचनविषे पूर्व कथन करि आये हैं और धारणा ध्यान समाधि या तीनोंका स्वरूप तौ (आत्मसंयमयोगाग्नौ) इस वचनविषे पूर्व कथन करि आये हैं और प्राणाया-

मका स्वरूप तौ (अपाने जुह्वति प्राणम्) इस अगले श्लोक विषे कथन करैंगे । यातैं अब यम, नियम, आसन या तीनोंका स्वरूप कथन करै हैं। तहां अहिंसा १, सत्य, २ अस्तेय ३, ब्रह्मचर्य ४, अपरिग्रह ५, यह पंचप्रकारका यम होवै है । तथा शौच १, संतोष २, तप ३, स्वाध्याय ४, ईश्वरप्रणिधान ५, यह पंच प्रकारका नियम होवै है । और आसन तौ पद्मक, स्वस्तिक, भद्र, इत्यादिक भेदकरिकै अनेक प्रकारका होवै है । तहां शास्त्रकरिकै अप्रतिपादित जो किसी प्राणीका वध करणा है वाका नाम हिंसा है । इहां शास्त्रकरिकै अप्रतिपादित इतने कहणे करिकै (अग्नीषोमीयं पशुमालभेत) इत्यादिकशास्त्रनैं विधान कऱ्या जो यज्ञविषे पशुका वध है वाके विषे हिंसापणेकी निवृत्ति करी सा हिंसाभी कृत कारित अनुमोदित या भेदकरिकै तीन प्रकारकी होवै है । तहां जा हिंसा इस पुरुषनैं आपेही करीती है ता हिंसाकूं कृत कहैं हैं । और जा हिंसा इस पुरुषनै किसी अन्यद्वारा कराईती है ता हिंसाकूं कारित कहैं हैं । और इस पुरुषनैं जिस हिंसाकी प्रशंसा करीती है ता हिंसाकूं अनुमोदित कहै हैं । इस प्रकारकी हिंसातैं निवृत्तिरूप जो उपरामता है वाका नाम अहिंसा है १, और अयथार्थ भाषणकरणा तथा नहीं हननकरणे योग्य प्राणीकी हिंसाके अनुकूल सत्यभाषण करणा ता दोनोंका नाम मिथ्याभाषण है ता दोनों प्रकारके मिथ्याभाषणतैं निवृत्तिरूप जा उपरामता है ताका नाम सत्य है २, और शास्त्रकरिकैं नहीं प्रतिपादित मार्गकरिकै जो पराए द्रव्यका स्वीकार करणा है याका नाम स्तेय है, ता स्तेयतै निवृत्तिरूप जा उपरामता है ताका नाम अस्तेय है ३, और शास्त्रकरिकै निषिद्ध जो स्त्री पुरुषका संबंधरूप मैथुन है ता मैथुनतै निवृत्तिरूप जा उपरामता है वाका नाम ब्रह्मचर्य है ४, और शास्त्रनिषिद्ध मार्गकरिकै शरीरयात्राके निर्वाहक भोगके साधनोंतै जो अधिक भोगसाधनोंका स्वीकार करणा है याका नाम परिग्रह है ता परिग्रहतैं निवृत्तिरूप जा उपरामता है ताका नाम

अपरिग्रह है ५ इति पंच यमनिरूपणम् ॥ अब पंचप्रकारके नियमका निरूपण करैं हैं--तहां शौच दो प्रकारका होवै है, एक तौ बाह्यशौच होवै है और दूसरा अंतर शौच होवै है तहां मृत्तिका जलादिकोंकरिकै शरीरका प्रक्षालन करणा तथा हित, मित, मेध्य, अन्नादिकोंको भोजन करणा यह बाह्य शौच कह्या जावै है और मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा इत्यादिक गुणोंकरिकै चित्तके मदमानादिरूप मलकी निवृत्ति करणी यह अंतरशौच कह्या जावै है । तहां सुखी प्राणियोंविषे मित्रभाव करणा याका नाम मैत्री है और दुःखी प्राणियों ऊपरि कृपा करणी याका नाम करुणा है, और पुण्यवान् पुरुषोंकूं देखिकरिकै प्रसन्न होणा याका नाम मुदिता है और पापी दुष्टजनोंके संगका परित्याग करणा याका नाम उपेक्षा है १, और आपणे समीप विद्यमान जे भोगके साधन हैं तिन्होंतैं अधिक भोगसाधनोंके नहीं संपादन करणेकी इच्छारूप जो चित्तकी वृत्तिविशेष है ताका नाम संतोष है २, और क्षुधातृषा, शीतउष्ण, इत्यादिक द्वंद्व धर्मोंका सहन करणा तथा काष्ठमौन, आकारमौन इत्यादिक जे व्रत हैं इन सर्वोंका नाम तप है । तहां हस्तादिक अंगोंकी चेष्टा करिकैभी आपणे अभिप्रायकूं नहीं प्रगट करणा याका नाम काष्ठमौन है। और तिन हस्तादिक अंगोंकी चेष्टा करिकै तो आपणे अभिप्रायकूं प्रगट करणा परंतु मुखसे वचन उच्चारण करणा नहीं याका नाम आकारमौन है ३, और मोक्षके प्रतिपादक वेदांत शास्त्रका जो अध्ययन है, अथवा प्रणव मंत्रका जो जप है याका नाम स्वाध्याय है ४, और तिस तिस फलकी इच्छातैं रहित होइकै सर्व कर्मोंका परमगुरुरूप ईश्वरविषे जो अर्पण करणा है याका नाम ईश्वरप्रणिधान है ५, इति पंचनियमनिरूपणम् ॥ यह योगशास्त्रकी रीतिसैं पंचप्रकारके यम नियमका निरूपण कऱ्या है । और पुराणोंविषे तो स्तेयकर्मनिवृत्ति १, करुणा २, आर्जव ३, शांति ४, शौच ५, धृति ६, मिताहार ७, सत्यभाषण ८, जीवाहिंसन ९, ब्रह्मचर्य १०, इस भेदकरिकै दशप्रकारके यम कथन करें हैं और आस्ति-

कृत्य १, हर्ष २, तप ३, सुरार्चन ४, दान ५, लज्जा ६, सद्ज्ञान ७, होम ८, सत्श्रवण ९, जप १०, या भेदकरिकै दश प्रकारके नियम कथन करैं हैं। ते अधिक पंच यम नियम, पूर्व उक्त पंच यम नियमोंके अंतर्भूतही हैं । इस प्रकारके यम नियमादिक अष्ट अंगोंके अभ्यासपरायण जे अधिकारी पुरुष हैं ते अधिकारी पुरुष योगयज्ञाः कहे जावैं हैं ३, और जे अधिकारीपुरुष विधिपूर्वक गुरुके समीप निवास करिकै ऋगादिक वेदोंका अभ्यास करैं हैं ते अधिकारी पुरुष स्वाध्याय-यज्ञाः कहे जावैं हैं अर्थात् केईक अधिकारीपुरुष वेदाभ्यासरूप यज्ञकूंही करैं हैं ४, और जे अधिकारीपुरुष अनेक प्रकारकी युक्तियोंकरिके वेदके अर्थका निश्चय करैं हैं ते अधिकारीपुरुष ज्ञानयज्ञाः कहे जावैं हैं अर्थात् केईक अधिकारी पुरुष वेदके अर्थका निश्चयरूप यज्ञकूंही करैंहैं ५, अब यज्ञांतरका कथन करैं हैं (यतयः संशितव्रताः इति) हे अर्जुन ! केईक यत्नशील अधिकारी पुरुष तौ संशितव्रतरूप यज्ञकूंही करैं हैं तहां भलीप्रकारतैं अत्यंत दृढ हुए हैं अहिंसादिक व्रत जिन्होंके ते अधि-कारीपुरुष संशितव्रताः कहे जावैंहैं । यह वार्त्ता भगवान् पतंजलिनैंभी योगशास्त्रविषे कथन करी है । तहां सूत्र—(जातिदेशकालसमयानवच्छि-न्नाःसार्वभौमा महाव्रताः इति) अर्थ यह—जे पूर्व अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, यह पंच यम कथन करेथे ते अहिंसादिक पंच यमही जाति, देश, काल, समय इन च्यारोंकरिकै अनवच्छिन्न होणेतैं अत्यंत दृढ भूमिकारूप हुए महाव्रत या शब्दकरिकै कहेजावैं हैं। अब तिन अहिंसादिक पंचयमोंविषे जाति देशादिकोंकरिकै अनवच्छिन्नता स्पष्ट करणेवास्तै प्रथम तिन अहिंसादिकोंविषे जाति देशादिकों करिकै अवि-च्छिन्नता निरूपण करैं हैं। तहां एक मृगकूं छोडिकै दूसरे गौ अश्वादिक प्राणियोंकूं मैं कदाचित्भी हनन नहीं करौंगा या प्रकारका संकल्प मनविषे करिकै जो तिन गौअश्वादिक प्राणियोंकी अहिंसा है सा अहिंसा जातिअविच्छिन्न कहीजावै है । और तीर्थविषे मैं किसीभी जीवकी

हिंसा नहीं करौंगा या प्रकारका संकल्प मनविषे करिकै जो तीर्थमात्रविषे किसी प्राणिकी हिंसा नहीं करणी है सा अहिंसा देशावच्छिन्न कही जावैहै। और एकादशीविषे तथा अन्य किसी पवित्र दिनविषे मैं किसीभी जीवकी हिंसा नहीं करौंगा या प्रकारका संकल्प मनविषे करिकै जो तिन एकादशी आदिकोंविषे किसीभी जीवकी हिंसा नहीं करणी है सा अहिंसा कालावच्छिन्न कहीजावै है। और देवता ब्राह्मणोंके प्रयोजनतैं विना अथवा युद्धतै विना मैं किसीभी जीवकी हिंसा नहीं करौंगा या प्रकारका संकल्प मनविषे करिकै जो तिस प्रयोजनतै विना किसीभी जीवकी हिंसा नहीं करणी है सा अहिंसा समयावच्छिन्न कहीजावै है। इहां समय नाम प्रयोजनविशेषका है इति। इस प्रकार विवाहादिक प्रयोजनतै विना मैं मिथ्याभाषण नहीं करौंगा या प्रकारका संकल्प मनविषे करिकै जो विवाहादि प्रयोजनतैं विना मिथ्या भाषणका परित्यागरूप सत्य है सो सत्य समयावच्छिन्न कह्या जावै है। इस प्रकार आपत्ति कालतैं विना क्षुधाके निवर्तक पदार्थतैं अतिरिक्त पदार्थकी मैं चोरी नहीं करौंगा या प्रकारका संकल्प मनविषे करिकै जो चोरीतैं निवृत्तिरूप अस्तेय है सो अस्तेय कालावच्छिन्न कह्या जावै है। इस प्रकार ऋतुकालतैं भिन्न कालविषे मैं आपणी स्त्रीविषे गमन नहीं करौंगा, या प्रकारका संकल्प मनविषे करिकै जो ऋतुकालतैं भिन्नकालविषे मैथुनका परित्यागरूप ब्रह्मचर्य है सो ब्रह्मचर्य कालावच्छिन्न कह्याजावै है। इसप्रकार गुरु देवता आदिकोंके प्रयोजनतैं विना मैं अधिक पदार्थोंका परिग्रह नहीं करौंगा या प्रकारका संकल्प मनविषे करिकै जो अधिक पदार्थोंके परिग्रहतैं निवृत्तिरूप अपरिग्रह है सो अपरिग्रह समयावच्छिन्न कह्या जावै है। इस रीतिसैं अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह या पांचों यमोंविषे यथायोग्य जाति अवच्छिन्नता तथा देशावच्छिन्नता तथा कालावच्छिन्नता तथा समयावच्छिन्नता जानि लेणी। तहां जाति, देश, काल, समय, या च्यारों अवच्छेदकोंकी निवृत्ति करिकै जिस कालविषे

ते अहिंसादिक पंच यम सर्वजातियोंविषे तथा सर्वदेशोंविषे तथा सर्वकालोंविषे तथा सर्वप्रयोजनोंविषे होवै हैं अर्थात् किसी देशविषे किसी कालविषे किसी प्रयोजनवास्तै किसीभी जीवकी मैं हिंसा करौंगा नहीं तथा मिथ्याभाषण तथा चोरी तथा मैथुन तथा परिग्रह करौंगा नहीं, या प्रकारके संकल्पपूर्वक जबी ते अहिंसादिक पंच यम निरवच्छिन्न सिद्ध होवैं हैं तिस कालविषे ते अहिंसादिक पंच यम महाव्रत या नामकरिकै कहे जावै हैं. इस प्रकार काष्ठ मौनादिकव्रत भी जानिलेणे । इस प्रकार अहिंसादिक व्रतकी दृढताके हुए नरकके द्वारभूत काम, क्रोध, लोभ, मोह, या च्यारोंकी निवृत्ति होवै है । तहां अहिंसाकरिकै तथा क्षमाकरिकै क्रोधकी निवृत्ति होवै है और ब्रह्मचर्यकरिकै तथा वस्तुके विचारकरिकै कामकी निवृत्ति होवै है और अस्तेयअपरिग्रहरूप संतोष करिकै लोभकी निवृत्ति होवै है । और सत्यकरिकै तथा यथार्थज्ञानरूप विवेक करिकै मोहकी निवृत्ति होवै है । इस प्रकार तिन कामक्रोधादिकोंके निवृत्त हुएतैं अनंतर तिन कामक्रोधादिकोंके कार्यरूप सर्व अनर्थोंकी निवृत्ति होवै है । तिन अहिंसादिकोंके दूसरेभी अनेक फल सकाम पुरुषोंवास्तै योगशास्त्रविषे कथन करे है ॥ २८ ॥

अब प्राणायामरूप यज्ञकूं सार्धश्लोककरिकै श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ॥
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥ २९ ॥
अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ॥

(पदच्छेदः) अपाने । जुह्वति । प्राणम् । प्राणे । अपानम् । तथा । अपरे । प्राणापानगती । रुद्ध्वा । प्राणायामपरायणाः । अपरे । नियताहाराः । प्राणान् । प्राणेषु । जुह्वति । २९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अन्यअधिकारी पुरुष तौ अपानविषे प्राणकूं होमै करै हैं तथा प्राणविषे अपानकूं होम करैं हैं और नियतआहार-

वाले दूसरे अधिकारीजन तौ प्राणअपानकी गतिकूं रोकिकैंरिकै प्राणायामपरायण हुए प्राणोंविषे ज्ञानकर्म इंद्रियोंकूं होमै करैं हैं ॥ २९ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! केईक अधिकारी पुरुष तौ अपानकी प्रश्वासरूप वृत्तिविषे प्राणकी श्वासरूप वृत्तिकूं होम करैं हैं अर्थात् बाह्यवायुका शरीरके भीतर प्रवेश करिकै पूरकनामा प्राणायामकूं करैं हैं । तथा वे अधिकारी पुरुष प्राणकी श्वासरूप वृत्तिविषे अपानकी प्रश्वासरूप वृत्तिकूं होम करैं हैं । अर्थात् शरीरके भीतरले वायुकूं बाह्यदेशविषे निर्गमन करिकै रेचकनामा प्राणायामकूं करैं हैं । इहां पूरक रेचक या दो प्रकारके प्राणायामके कथन करिके श्रीभगवान्नें दो प्रकारके कुंभककामी अर्थतैंही कथन कऱ्या । जिस कारणतै ता पूरक रेचकतैं विना सो दोप्रकारका कुंभक सिद्ध होवै नहीं । तहां अंतरकुंभक बाह्यकुंभक या भेदकरिकै सो कुंभक दो प्रकारका होवै है । वहां यथाशक्ति परिमाण बाह्य वायुकूं नासिकाद्वारा शरीरके भीतर पूर्ण करिकै तिसतैं अनंतर जो श्वासप्रश्वासका निरोध कऱ्या जावै है सो अंतरकुंभक कह्या जावै है । और यथाशक्तिपरिमाण शरीरके अंतरले वायुका ता नासिकाद्वारा बाह्यपरित्याग करिकै तिसतैं अनन्तर जो श्वासप्रश्वासका निरोध कऱ्या जावै है सो बाह्य कुम्भक कह्या जावै है इति । अब पूर्व कथन करे हुए पूरक रेचक कुम्भक या तीनप्रकारके प्राणायामके अनुवाद पूर्वक चतुर्थ कुंभककूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं (प्राणापानगती रुद्ध्वा इति) हे अर्जुन ! मुख नासिकाद्वारा शरीरके अंतरलेवायुका जो बाह्यनिर्गमन है ताका नाम श्वास है सो श्वास तौ प्राणकी गति है और बाह्य निकसेहुए वायुका जो ता मुखनासिकाद्वारा शरीरके भीतर प्रवेश है ताका नाम प्रश्वास है । सो प्रश्वास अपानकी गति है तहां पूरकविषे तौ प्राणके श्वासरूप गतिका निरोध होवै है और रेचकविषे अपानके प्रश्वासरूप गतिका निरोध होवैहै, और कुंभकविषे तो तिन दोनों गतियोंका निरोध होवैहै । इसप्रकार क्रमकरिकै तथा एकही कालविषे ता प्राण अपानके श्वासप्रश्वासरूप गतिकूं

रोकिकरिकै त्रिविध प्राणायामपरायण हुए तथा आहारनियमादिक योगके साधनोंकरिकै विशिष्टहुए केईक अधिकारीजन बाह्य अन्तर कुंभकके अभ्यासकरिके निग्रह करेहुए प्राणोंविषे ज्ञानकर्म इंद्रियरूप प्राणोंकूं होम करैं हैं । अर्थात् चतुर्थ कुंभकके अभ्यासकरिकै तिन इंद्रियोंकूं निगृहीत प्राणोंविषे लय करैंहैं इति । यह सर्व अर्थ भगवान् पतंजलिने योगसूत्रोंविषे संक्षेपकरिकै तथा विस्तारकरिकै कथन कऱ्याहै । तहां संक्षेपसूत्र-(तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदलक्षणः प्राणायाम इति) अर्थ यह—तिस आसनके स्थिर हुए प्राणायाम करणेकूं योग्य है । कैसा है सो प्राणायाम । श्वास प्रश्वासकी गतिका निरोधरूप है अर्थात् प्राण अपान या दोनोंके यथाक्रमतैं धर्मरूप जे श्वास प्रश्वास यह दोनों हैं ता श्वास-प्रश्वास दोनोंकी पुरुषप्रयत्नतैं विनाही जा स्वाभाविक चलनरूप गति है ता गतिका क्रमकरिकै तथा एकही कालविषे जो पुरुष यत्नविशेष करिकै निरोध है सो निरोध है स्वरूप जिसका ताकूं प्राणायाम कहै हैं इति । इस संक्षिप्त अर्थकूं अब विस्तारतैं कथन करे हैं तहां सूत्र-(बाह्याभ्यंतरस्तंभवृत्तिदेशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घःसूक्ष्म इति) अर्थ यह—सो प्राणायाम बाह्यवृत्ति आभ्यंतरवृत्ति स्तंभवृत्ति तुरीय या भेदकरिकै च्यारिप्रकारका होवै है तहां बाह्यगतिका निरोधरूप होणेतैं पूरक बाह्यवृत्ति कह्याजावै है । और अंतर्गतिका निरोधरूप होणेतैं रेचक अन्तरवृत्ति कह्याजावैहै । अथवा बाह्यवृत्ति शब्दकरिकै रेचकका ग्रहण करणा । और आभ्यंतरवृत्ति शब्दकरिकै पूरकका ग्रहण करणा और एकही कालविषे तिन दोनों गतियोंका जो निरोध है ताका नाम स्तंभ है ता स्तंभरूप होणेतैं कुंभक स्तंभवृत्ति कह्याजावैहै । अर्थात् जहां श्वास प्रश्वास दोनोंका एकही विधारक प्रयत्नतैं अभाव होवै है । पूर्वकी न्याईं पूरणके प्रयत्नकाभी विधारण होवै नहीं तथा रेचकके प्रयत्नकाभी विधारण होवै नहीं किंतु जैसे अग्निकरिकै तप्त पाषाण उपरि पायाहुआ जल परिशोषणकूं प्राप्त हुआ सर्व ओरतैं संकोचकूं प्राप्त होवैहै तैसे सर्वदा चलनस्वभाववाला यह प्राणवायु

भी बलवान् विधारक प्रयत्नकरिकै ता चलनक्रियातैं रहित हुआ शरीर-विषेही सूक्ष्म हुआ स्थित होवैहै तिस कालविषे सो सूक्ष्म प्राणवायु पूरण-कूंभी प्राप्त होवै नहीं यातैं पूरकभी होवै नही । तथा सो सूक्ष्म प्राणवायु रेचनकूं भी प्राप्त होवै नही यातै रेचक भी कह्याजावै नही । किंतु परि-शेषतैं सो निरुद्धहुआ सूक्ष्म प्राणवायु कुंभकही कह्याजावैहै इति । सो यह पूरक रेचक कुंभक तीन प्रकारका प्राणायाम देशकरिकै तथा कालकरिकै तथा संख्याकरिकै परीक्षा कन्याहुआ सूक्ष्मसंज्ञाकूं प्राप्त होवै है । जैसे घनीभूत तूलका पिंड प्रसारणकन्याहुआ विरलताकरिकै दीर्घ होवै है, तथा सूक्ष्म होवै है तैसे यह प्राणवायुभी देशकालसंख्याकी अधिकता-करिकै अभ्यासकन्याहुआ दीर्घ होवै है। तथा दुर्लक्ष्यताकरिकै सूक्ष्मभी होवै है । सो प्रकार अब दिखावैं हैं । तहां प्राणकी गतिरूप जो श्वास है सो श्वास तौ हृदयदेशतैं निकसिकै नासिकाके अग्रभागके सम्मुख द्वादश अंगुल पर्यंत देशविषे जाइकै समाप्त होवै है और अपानकी गतिरूप जो प्रश्वास है सो प्रश्वास तौ ता श्वासकी समाप्तिदेशतैं पुनः उलटिकरिकै ता हृदयदेशविषे जाइकै समाप्त होवै है । यह सर्व मनुष्योंके प्राण अपान-की स्वाभाविक गति होवै है और अभ्यासकरिकै तौ सो प्राणवायु यथा-क्रमतैं नाभिदेशतैं निकसिकै अथवा आधारदेशतैं निकसिकै ता नासिकाके अग्रभागके सम्मुख चौबीस अंगुलपर्यंत देशविषे अथवा छत्तीस अंगुल-पर्यंत देशविषे जाइकै समाप्त होवै है । पुनः तिस समाप्तिदेशतैंही उलटि-करिकै ता नासिकाद्वारा ता नाभिदेशविषे अथवा आधारदेशविषे प्राप्त होवै है । तहां बाह्यदेशविषे ता वायुका संबंध तौ वायुतैं रहित देशविषे आपणी नासिकाके सम्मुख किसी इषीकाके सूक्ष्म तूलकूं राखिकै ता तूलकी चलनरूप क्रियातैं अनुमान कन्याजावै है । और शरीरके अंतर-देशविषे ता प्राणवायुका संबंध तौ पिपीलिकाके स्पर्शके समान स्पर्श करिकै अनुमान कन्याजावै है सो यह देशपरीक्षा कहीजावै है इति । और नेत्रोंकी जा निमेषक्रिया है ता निमेषक्रियावच्छिन्न कालका जो

चतुर्थ भाग है ताका नाम क्षण है। तिन क्षणोंके इयत्ताका निश्चय करणा याका नाम कालपरीक्षा है इति। और आपणे जानुमंडलकूं आपणे हस्तसैं प्रदक्षिणाकी न्याईं तीनवार स्पर्श करिकै छोटिका मुद्रा करणी ता छोटिकामुद्रा अवच्छिन्न जो काल है ताका नाम मात्रा है। तिन छत्तीस मात्रावों करिकै जो प्रथम उद्घात है सो मंद कह्याजावै है। और सोईही उद्घात पूर्वतैं द्विगुण कऱ्याहुआ द्वितीय मध्य कहाजावै है और सोईही उद्घात त्रिगुणकऱ्याहुआ तृतीय तीव्र कह्याजावै है. । तहां नाभिदेशतैं उठाइके विरेचनकरेहुए प्राणवायुका जो शिरविषे अभिहनन है ताका नाम उद्घात है। सो यह संख्या-परीक्षा कहीजावै है। अथवा प्रणवमंत्रके जपकी आवृत्तिके भेदकरिकै संख्यापरीक्षा जानणी। अथवा श्वासप्रदेशोंकी गणना करिकै संख्या परीक्षा जानणी। इस प्रकार काल संख्या या दोनोंका यत्किंचित् भेद अंगीकार करिकै भिन्नभिन्न कथन कऱ्या है। यद्यपि कुंभकविषे पूरक रेचककी न्याईं देशव्याप्ति प्रतीत होवै नहीं तथापि कालव्याप्ति तथा संख्याव्याप्ति ता कुंभकविषेभी जानीजावै है। सो यह तीनप्रकारका प्राणायाम तीनदिनविषे अभ्यासकऱ्याहुआ दिवस पक्ष मास इत्यादिक क्रमकरिकै अधिक देशकालविषे व्यापक होणेतैं दीर्घ कह्याजावै है तथा परम नैपुण्यसमाधिकरिकै गम्य होणेतैं सूक्ष्म कह्याजावै है। इतने करिकै पूरक रेचक कुंभक यह तीन प्रकारका प्राणायाम कथन कऱ्या अब फलरूप चतुर्थ प्राणायामका निरूपण करैं हैं। तहां पतंजलिसूत्र-(बाह्याभ्यंतरविषयाक्षेपी चतुर्थः इति) अर्थ यह—बाह्य विषय जो श्वास है सो रेचक कह्याजावै है। और अंतरविषय जो प्रश्वास है सो पूरक कह्याजावै है। अथवा बाह्यविषय शब्दकरिकै पूरकका ग्रहण करणा। और आभ्यंतरविषय शब्दकरिकै रेचकका ग्रहण करणा ता रेचक पूरक दोनोंकी अपेक्षा करिकै एकही बलवान् विधारक प्रयत्नके वशतैं बाह्य अंतर भेदकरिकै दो प्रकारका तृतीय कुंभक होवै है और

तिस रेचक पूरक दोनोंकी न अपेक्षा करिकै ही केवल कुंभकके अभ्यासकी दृढता करिकै अनेकवार तिस तिस प्रयत्नके वशतैं चतुर्थ कुंभक होवै है इति । अथवा इस सूत्रका यह दूसरा व्याख्यान करणा । पूर्व कथन कर्या जो द्वादश अंगुलपर्यंत तथा चौवीस अंगुलपर्यंत तथा छत्तीस अंगुलपर्यंत प्राणके जाणेका बाह्यदेश है सो बाह्यदेश ही बाह्यविषय शब्दकरिकै ग्रहण करणा । और आभ्यंतर विषय शब्दकरिकै तौ हृदय नाभि चक्रआदिकोंका ग्रहण करणा । तिन दोनों विषयोंकूं सूक्ष्मदृष्टिसैं निश्चय करिकै जो स्तंभरूप गतिका विच्छेद है सो चतुर्थ प्राणायाम कह्याजावै है । और तीसरा कुंभकनामा प्राणायाम तौ बाह्यविषय आभ्यंतरविषय या दोनों विषयोंके निश्चयतैं विनाही शीघ्रही होवै है । इतनी ही तीसरे कुंभकनामा प्राणायामविषे तथा चतुर्थ कुम्भकनामा प्राणायामविषे विशेषता है इति । यहही च्यारिप्रकारका प्राणायाम श्रीभगवान्नैं (अपाने जुह्वति प्राणम्) इत्यादिक सार्धश्लोककरिकै कथन कर्या है ॥ २९ ॥

तहां (दैवमेवापरे यज्ञम्) इसतैं आदिलैके साढेपांच श्लोकोंकरिकै द्वादश यज्ञ कथन करे । अब तिन द्वादशप्रकारके यज्ञोंके जानणेहारे पुरुषोंकूं तथा तिन द्वादशप्रकारके यज्ञोंके करणेहारे पुरुषोंकूं जो फल प्राप्त होवै है ता फलकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

सर्वेप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३० ॥
यज्ञशिष्टामृतभुजो यांति ब्रह्म सनातनम् ॥
नायं लोकोस्त्ययज्ञस्य कुतोन्यः कुरुसत्तम॥३१॥

(पदच्छेदः) सर्वे । अपि । एते । यज्ञविदः । यज्ञक्षपितकल्मषाः । यज्ञशिष्टामृतभुजः । यांति । ब्रह्म । सनातनम् । न । अयम् । लोकः । अस्ति । अयज्ञस्य । कुतः । अन्यः । कुरुसत्तम ॥३१॥

(पदार्थः) हे अर्जुन । तिनै यज्ञकूं करणेहारे तथा तिनै यज्ञोंकरिकै नाश हुए हैं कल्मष जिनोंके तथा तिनै यज्ञोंके उत्तरकालविषे अमृतरूप

अन्नकूं भोजन करणेहारे यैह सवही अधिकारीजन नित्यँ ब्रह्मकूं प्राप्त होवै हैं हे अँर्जुन । तिनै यज्ञोंतैं रहित पुरुषकूं यैह मनुंष्यलोक नैंहीं प्राप्त है तो स्वर्गादिलोक कैंहातैं होवैं ॥ ३१ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पूर्व उक्त द्वादशयज्ञोंकूं जे पुरुष गुरुशास्त्रके उपदेशतैं जानैं हैं अथवा तिन द्वादश यज्ञोंकूं जे प्राप्त होवै हैं अर्थात् तिन यज्ञोंकूं जे पुरुष श्रद्धापूर्वक करैं हैं तिन्होंका नाम यज्ञविद् हैं । ऐसे तिन यज्ञोंके जानणेहारे तथा तिन यज्ञोंके करणेहारे जे पुरुष है तथा तिन पूर्व उक्त यज्ञोंकरिकै नाशकूं प्राप्तहुए हैं पापकर्मरूप कल्मष जिन्होंके तथा तिन यज्ञोंकूं करिकै बाकी रहेहुए कालविषे अमृतरूप अन्नकूं भोजन करणेहारे जे पुरुष हैं ते सर्वही अधिकारी पुरुष अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा तथा ज्ञानकी प्राप्तिद्वारा नित्य ब्रह्मकूंही प्राप्त होवैं हैं अर्थात् इस जन्ममरणादिरूप संसारतैं वे पुरुष मुक्त होवैं हैं । इतने कहणेकरिकै तिन यज्ञोंके करणेहारे पुरुषोंकूं फलकी प्राप्ति कथन करी । अब तिन यज्ञोंके नहीं करणेहारे पुरुषोंकूं दोषकी प्राप्ति कथन करैं हैं (नायं लोकोस्त्ययज्ञस्य इति) हे अर्जुन ! पूर्व उक्त द्वादश यज्ञोंके मध्यविषे कोईभी यज्ञ जिस पुरुषकूं नहीं है ताका नाम अयज्ञ है ऐसे अयज्ञपुरुषकूं यह अल्पसुखवाला मनुष्यलोकभी प्राप्त होवै नहीं । जिस कारणतैं सो अयज्ञ पुरुष सर्व शिष्टपुरुषोंकरिकै निंद्य होणेतैं दुःखीही है । जबी तिस अयज्ञपुरुषकूं यह अल्पसुखवाला मनुष्यलोकभी नहीं प्राप्त हुआ । तबी महान् पुण्यकर्मोंकरिकै प्राप्तहोणेहारा स्वर्गादिरूप लोक तिस अयज्ञपुरुषकूं किसप्रकार प्राप्त होवैगा किंतु ता अयज्ञपुरुषकूं कोईभी लोक नहीं प्राप्त होवैगा ॥ ३० ॥ ३१ ॥

हे भगवन् ! पूर्व आपने जो फलसहित यज्ञोंका कथन कऱ्या है सो केवल आपणी कल्पनाकरिकै ही कथन कऱ्या है । तिन फलसहित यज्ञोंविषे दूसरा कोई प्रमाण है नहीं ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् साक्षात् वेदही तिन यज्ञोंविषे प्रमाण है या प्रकारका उत्तर कथन करैंहैं—

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ॥
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥३२

(पदच्छेदः) एवम् । बहुविधाः । यज्ञाः । वितताः । ब्रह्मणः । मुखे । कर्मजान् । विद्धि । तान् । सर्वान् । एवम् । ज्ञात्वा । विमोक्ष्यसे ॥ ३२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इसप्रकार बहुत प्रकारके यज्ञ वेदके मुखविषे विस्तृतहैं तिन सर्वयज्ञोंकूं तूं कर्मजन्यही जान इसप्रकार जानिकरिकै तूं इस संसारतैं मुक्त होवैगा ॥ ३२ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन । (दैवमेवापरे यज्ञम्) इस वचनतैं आदि- लेके पूर्व कथन करे जे द्वादश यज्ञ हैं वे यज्ञ सर्व वैदिक श्रेयके साध- नरूप हैं । ते सर्वयज्ञ ऋगादिक वेदके मुखविषे विस्तृत हैं । अर्थात् ऋगादिक वेदद्वाराहि ते सर्वयज्ञ जानेजावैहैं । केवल आपणी कल्पना करिकै हमने ते यज्ञ कथन करे नहीं । हे अर्जुन ! तिन सर्वयज्ञोंकूं तूं कायिक वाचिक मानसिक कर्मोंतैंही उत्पन्न हुआ जान । तिन यज्ञोंकूं आत्मातैं उत्पन्न हुआ जानणा नहीं। जिस कारणतैं यह आत्मादेव सर्व व्यापारोंतैं रहित है । तिस कारणतैं वे यज्ञ में आत्माके व्यापाररूप नहीं है । किंतु मैं आत्मा सर्वव्यापारोंतैं रहित असंग उदासीन हूं । इस प्रकार आत्मादेवकूं असंग उदासीन जानिकै तूं अर्जुन इस संसारबंधतैं मुक्त होवैगा ॥ ३२ ॥

तहां पूर्वप्रसंगविषे श्रीभगवान्नैं सर्व यज्ञोंका तुल्यही कथन कऱ्या । यातैं कर्मयज्ञ ज्ञानयज्ञ यह दोनों यज्ञ समानही होवैंगे ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन दोनों यज्ञोंकी समानताके निवृत्त करणेवास्तै ज्ञानयज्ञकी श्रेष्ठताकूं कहैं हैं-

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप ॥
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥३३॥

(पदच्छेदः) श्रेयान् । द्रव्यमयात् । यज्ञात् । ज्ञानयज्ञः । परंतप । सर्वम् । कर्म । अखिलम् । पार्थ । ज्ञाने । परिसमाप्यते ॥ ३३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! द्रव्यमय यज्ञतैं ज्ञानयज्ञ अत्यंतश्रेष्ठ है जिस कारणतैं हे पार्थ ! सर्व निरवशेष कर्म ज्ञानविषेही परिअवसानकूं प्राप्त होवै हैं ॥ ३३ ॥

भा० टी० हे अर्जुन ! द्रव्यमय यज्ञतैं आदिलेके जितनेक ज्ञानतैं शून्य यज्ञ हैं तिन सर्व यज्ञोंतैं सो ज्ञानयज्ञ अत्यंत श्रेष्ठ है । काहेतै ते ज्ञानतैं शून्य सर्व यज्ञ तौ संसाररूप फलकीही प्राप्ति करणेहारे हैं और सो ज्ञानयज्ञ तौ साक्षात् मोक्षरूप फलकीही प्राप्ति करणेहारा है । तहां श्रुति-(ज्ञानादेव तु कैवल्यम् ।) अर्थ यह-इस अधिकारीपुरुषकूं ज्ञानतैंही कैवल्य मोक्षकी प्राप्ति होवैहै इति । अब ता ज्ञानयज्ञकी श्रेष्ठताविषे श्रीभगवान् हेतु कहै हैं (सर्वं कर्माखिलमिति) हे अर्जुन ! अग्निहोत्र ज्योतिष्टोम सोमयज्ञ चयन यज्ञ इसतैं आदिलेके जितनेक श्रौतकर्म है । तथा उपासनादिरूप जितनेक स्मार्तकर्म हैं ते सर्व कर्म निरवशेष हुए ब्रह्मात्म ऐक्यज्ञानविषेही समाप्त होवैं हैं अर्थात् ते सर्व श्रौत स्मार्त कर्म पापरूप प्रतिबंधकी निवृत्तिद्वारा ता आत्मज्ञानविषेही परिअवसानकूं प्राप्त होवैं है इति । तहां श्रुति- (तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषंति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन इति । धर्मेण पापमपनुदति) अर्थ यह-यह अधिकारी ब्राह्मण वेदके अध्ययन करिकै तथा यज्ञ करिकै तथा दान करिकै तथा तप करिकै इस आत्मादेवके जानणेकी इच्छा करै है इति । और यह अधिकारी पुरुष धर्मकरिकै पापकूं निवृत्त करै है इति । सर्व शुभकर्मोंका प्रतिबंधक पापोंकी निवृत्तिद्वारा आत्मज्ञानविषेही उपयोग है । इस अर्थकूं श्रीव्यासभगवान्नैं तथा भाष्यकारोंनैं (सर्वापेक्षायज्ञादिश्रुतेरश्ववत) इस सूत्रविषे विस्तारतें कथन कऱ्या है यातें यह ज्ञानरूप यज्ञही सर्वयज्ञोंसे श्रेष्ठ है ॥ ३३ ॥

हे भगवन् ! जिस आत्मज्ञानविषे सर्वशुभकर्मोंका परिअवसान है तिस आत्मज्ञानकी प्राप्तिविषे अत्यंत समीप उपाय कौन है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता उपायका कथन करैं हैं--

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ॥
उपदेक्ष्यंति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ३४ ॥

(पदच्छेदः) तत् । विद्धि । प्रणिपातेन । परिप्रश्नेन । सेवया । उपदेक्ष्यंति । ते । ज्ञानम् । ज्ञानिनः । तत्त्वदर्शिनः ॥ ३४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिसे आत्मज्ञानकूं तूं ब्रह्मवेत्ता गुरुके आगे दंडवत् प्रणाम करिकै तथा प्रश्नकरिकै तथा सेवाकरकै प्राप्त होउ ता करिकै प्रसन्न हुए ते तत्त्वदर्शी ज्ञानी गुरु तुम्हारेताईं ज्ञानकूं उपदेश करैंगे ३४ ॥

भा० टी०--हे अर्जुन ! सर्वशुभकर्मोंका फलभूत जो आत्मज्ञान है तिस आत्मज्ञानकूं तूं अवश्यकरिकै प्राप्त होउ । ता आत्मज्ञानकी प्राप्ति वासतै तू या प्रकारका उपाय कर । तहां (आचार्यवान् पुरुषो वेद) या श्रुतिनैं ब्रह्मवेत्ता आचार्यके उपदेशतैंही ज्ञानकी प्राप्ति कथन करी है यातैं तूं अर्जुनभी ब्रह्मवेत्ता आचार्योंके समीप जाइकै प्रथम दंडवत् प्रणाम कर । तथा सर्वप्रकारतै तिन आचार्योंकी अनुकूलताका संपादक जो व्यापारविशेष है ताका नाम सेवा है ऐसी सेवाकूं कर । तिसतैं अनन्तर हे भगवन् ! मैं कौन हूं तथा मैं किस प्रकार बंधायमान हुआ हूं तथा किस उपायकरिकै मैं इस संसारतै मुक्त होवोंगा या प्रकारका प्रश्न तिन गुरुवोंके आगे कर । इस प्रकार भक्तिश्रद्धापूर्वक तुम्हारे दंडवत् प्रणाम करिकै तथा सेवा करिकै प्रसन्न हुए ते तत्त्वदर्शी ज्ञानवान् गुरु तुम्हारे ताईं आत्मज्ञानका उपदेश करैंगे । जो आत्मज्ञान साक्षात् मोक्षरूप फलकी प्राप्ति करणेहारा है । इहां पदोंके ज्ञानविषे तथा वाक्योंके ज्ञान-विषे तथा नानाप्रकारकी युक्तियोंके ज्ञानविषे जे पुरुष अत्यंत कुशल होवैं हैं तिनोंका नाम ज्ञानी है । और जिन पुरुषोंकूं संशयविपरीतभाव-

नोंतैं रहित आत्माका साक्षात्कार हुआ है तिनोंका नाम तत्त्वदर्शी है । ऐसे ज्ञानवान् तथा तत्त्वदर्शी पुरुषोंनै उपदेश कन्या जो आत्मज्ञान है सो आत्मज्ञान ही मोक्षरूप फलकी प्राप्ति करै है । ता तत्त्वदर्शीपणेतैं रहित केवल पदवाक्ययुक्ति आदिकोंके ज्ञानविषे कुशल पुरुषनै उपदेश कन्या हुआ सो आत्मज्ञान ता मोक्षरूप फलकी प्राप्ति करै नहीं अर्थात् श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ गुरुनैं उपदेश कन्या हुआ आत्मज्ञानही ता मोक्षरूप फलकी प्राप्ति करै है इति । तहां (ज्ञानिनः) या पदकरिकै श्रीभगवानूनैं श्रोत्रियका कथन कऱ्या है । और (तत्त्वदर्शिनः) या पदकरिकै श्रीभगवानूनैं ब्रह्मनिष्ठका कथन कऱ्या है । इसी अर्थकूं साक्षात् श्रुति भगवतीभी कथन करैहै । तहां श्रुति—(तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठमिति ।) अर्थ यह—तिस परमात्मादेवके साक्षात्कारवासतै यह अधिकारी पुरुष यथाशक्ति भेंट हस्तविषे लैके श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके समीप जावै इति । इहां (ज्ञानिनः तत्त्वदर्शिनः) इस आचार्यके वाचक दोनों पदोंविषे जो बहुवचन भगवानूनैं कथन कन्या है सो आचार्यकी महानताके बोधन करणेवासतैं कथन कन्या है कोई वा बहुवचन करिकै बहुत आचार्य भगवानकूं विवक्षित नहीं है काहेतैं श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ एकही आचार्यतैं इस अधिकारी शिष्यकूं तत्त्वसाक्षात्कारकी प्राप्ति होइ सकै है । ता तत्त्वसाक्षात्कारकी प्राप्तिवासतैं बहुत आचार्योंके समीप जानेका किंचित् मात्रभी प्रयोजन नहीं है ॥ ३४ ॥

हे भगवन् ! इस प्रकारके अत्यंत दृढ उपायकरिकै ता आत्मज्ञानके उत्पन्न किये हुएभी ता ज्ञानकरिकै कौन फल प्राप्त होवै है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता आत्मज्ञानके फलका वर्णन करैं हैं—

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पांडव ॥
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि॥ ३५ ॥

(पदच्छेदः) यत् । ज्ञात्वा । न । पुनः । मोहम् । एवम् । यास्यसि । पांडव । येन । भूतानि । अशेषेण । द्रक्ष्यसि । आत्मानम् । अथो । मयि ॥ ३५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस पूर्वउक्त ज्ञानकूं प्राप्त होइकै तूं पुनः इस प्रकारके मोहकूं नहीं प्राप्त होवैगा जिस कारणतैं जिस ज्ञानकरिकै इन सर्वभूतोंकूं आपणे आत्मा विषे तथा मैं परमेश्वर विषे अभेदरूप करिकै देखैगा ॥ ३५ ॥

भा० टी०--हे अर्जुन ! श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुने उपदेश कऱ्या जो आत्मज्ञान है ता आत्मज्ञानकूं प्राप्त होइकै इन बांधवोंके वधादिक हैं निमित्त जिस विषे ऐसे भ्रमरूप शोककूं तूं पुनः कदाचित्भी नहीं प्राप्त होवैगा काहेतैं आत्माके अज्ञानकरिकै जन्य जितनेक ब्रह्मातैं आदिलैके स्तंबपर्यंत पिता पुत्रादिक भूतप्राणी हैं तिन सर्व भूतप्राणियोंकूं जिस आत्मज्ञानकरिकै तूं आपणे त्वंपदार्थ आत्माविषे तथा वास्तवतैं भेदतै रहित सर्वका अधिष्ठानभूत मैं तत्पदार्थ परमेश्वरविषे अभेदरूपकरिकै देखैगा । जिसकारणतैं अधिष्ठानतैं भिन्नकरिकै कल्पित वस्तुका अभावही होवै है। तात्पर्य यह मैं भगवान् वासुदेवकूं अपना आत्मारूप जानिकै अज्ञानके नाशहुएतैं अनंतर ता अज्ञानके कार्यरूप यह सर्वभूतप्राणीभी स्थित होवैंगे नहीं इति । इहां किसी टीकाविषे तौ (आत्मनि मयि) या दोनों पदोंका समानाधिकरण अंगीकारकरिकै आत्मारूप मैं परमेश्वरविषे तिन सर्वभूतोंको तूं देखैगा इसप्रकारका अर्थ कथन कऱ्या है ॥ ३५ ॥

हे भगवन् ! इसप्रकारके आत्मज्ञानकूं प्राप्त होइकै भी मैं अर्जुन भीष्मद्रोणादिक गुरुवोंके तथा दुर्योधनादिक बांधवोंके वधजन्यपापतैं मुक्त नहीं होवौंगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता आत्मज्ञानका परममाहात्म्य कथन करैं हैं-

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ॥
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥ ३६ ॥

(पदच्छेदः) अपि । चेत् । असि । पापेभ्यः । सर्वेभ्यः । पापकृत्तमः । सर्वम् । ज्ञानप्लवेन । एवं । वृजिनम् । संतरिष्यसि ३६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! कदाचित् तूं सर्व पापकारी पुरुषोंतैं अत्यंत पापकारी भी होवैं तौभी तूं ताँ सर्व पापरूप समुद्रकूं ज्ञानरूप नौकाकरिके ही तरैगा ॥ ३६ ॥

भा० टी०—इहां अपि चेत् यह दोनों पद असंभावित अर्थके अंगीकारके बोधक हैं अर्थात् सर्वपापकारी पुरुषोंतैं ता अर्जुनविषे अत्यंत पापकारीपणा यद्यपि है नहीं तथापि ज्ञानके फलका कथनकरणेवासतैं ता अर्जुनविषे सो अत्यंत पापकारीपणा अंगीकारकरिकै श्रीभगवान् कहैं है । हे अर्जुन ! जो कदाचित् तूं सर्वपापकारी पुरुषोंतैं अत्यंत पापकारीभी होवै तौभी तिस सर्वपापरूप समुद्रकूं तूं इस ज्ञानरूप नौकाकरिकै ही तरैगा । या आत्मज्ञानतें भिन्न उपाय करिकै यह पापरूपसमुद्र तऱ्याजावै नहीं । तहां श्रुति-(तरति शोकमात्मवित् ।) अर्थ यह—आत्मवेत्ता पुरुष सर्वसंसाररूप शोककूं तरै है इति । इहां,(वृजिनं) या शब्द-करिकै संसाररूप फलकी प्राप्ति करणेहारे सर्व धर्म अधर्मरूप कर्मोंका ग्रहण करणा । काहेतें मोक्षकी इच्छावान् अधिकारीपुरुषकूं पापकर्मकी न्याई सो पुण्यकर्मभी अनिष्टही है ॥ ३६ ॥

हे भगवन् ! यह अधिकारी पुरुष आत्मज्ञानरूप नौकाकरिकै पुण्यपापरूप समुद्रकूं तरै है यह वार्त्ता पूर्व आपनै कथनकरी । तहां जैसे नौका करिकै समुद्रके तरेहुएभी वा समुद्रका नाश होवै नहीं तैसे आत्मज्ञानरूप नौकाकरिकै इस पुण्यपापरूप समुद्रके तरेहुएभी वा पुण्यपापरूप कर्मका नाश होवैगा नहीं । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् आत्मज्ञान करिकै तिन कर्मोंके नाशविषे दूसरा दृष्टांत कथन करैं हैं—

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ॥
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥३७॥

(पदच्छेदः) यथा । एधांसि । समिद्धः । अग्निः । भस्मसात् । कुरुते । अर्जुन । ज्ञानाग्निः । सर्वकर्माणि । भस्मसात् । कुरुते । तथा ॥ ३७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जैसे प्रज्वलित अग्नि काष्ठोंकूं भस्मीभूत करै है तैसें ज्ञानरूप अग्नि सर्वकर्मोंकू भस्मीभूत करै है ॥ ३७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जैसे अत्यंत प्रज्वलित अग्नि बहुत काष्ठोंकूंभी भस्मीभूत करिदेवै है तैसे मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारका जो आत्मज्ञानरूप अग्नि है सो ज्ञानरूप अग्निभी प्रारब्धकर्मतें भिन्न सर्व पुण्यपापकर्मोंकू भस्मीभूत करिदेवै है अर्थात् सो ज्ञानरूप अग्नि तिन पुण्यपाप कर्मोंके कारणभूत अज्ञानकूं नाशकरिकै तिन कर्मोंकूभी नाश करै है इति। तहां श्रुति–(भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः । क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे इति ।) अर्थ यह—ब्रह्मादिक देवतावोंतैंभी अत्यंत उत्कृष्ट जो परमात्मा देव है ता परमात्मादेवके साक्षात्कार हुए इस विद्वान् पुरुषकी आत्मा अनात्माका अध्यासरूप हृदयग्रंथि नाशकूं प्राप्त होवै है । तथा आत्मा देहादिकोंतें भिन्न है अथवा देहादिरूप है तहां देहादिकोंतें भिन्न हुआभी आत्मा ब्रह्मरूप है अथवा ब्रह्मतें भिन्न है इसतें आदिलैके जितनेकी आत्मविषयक संशय हैं ते सर्वसंशयभी नाशकूं प्राप्त होवैं हैं । तथा जिन पुण्यपापरूप प्रारब्धकर्मोंनें यह शरीर दिया है तिन प्रारब्धकर्मोंकूं छोडिकै दूसरे सर्व कर्म नाशकूं प्राप्त होवै हैं इति । यह वार्त्ता श्रीव्यासभगवान्नैं ब्रह्मसूत्रोंविषेभी कथनकरीहै। तहां सूत्र–(तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौतद्व्यपदेशात्) अर्थ यह—मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारके आत्मसाक्षात्कारके हुए इस विद्वान् पुरुषके पूर्वसंचित कर्मोंका तौ नाश होजावैहै

और जैसे जलविषे स्थित पद्मपत्रको जलका स्पर्श होवै नहीं तैसे आत्मज्ञानतैं उत्तर करेहुए कर्मोंका तो विद्वान् पुरुषको स्पर्शही होवै नहीं यह वार्ता अनेक श्रुतिस्मृतियोंविषे कथन करीहै इति । और जिस शरीरविषे इस विद्वान् पुरुषको आत्मसाक्षात्कारकी प्राप्ति हुई तिस शरीरके आरंभ करणेहारे जे पुण्यपापरूप प्रारब्धकर्म है तिन प्रारब्धकर्मोंका तो तिस शरीरके नाशकालविषेही नाश होवैहै । तहां श्रुति–(तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ संपत्स्ये ।) अर्थ यह–तिस विद्वान् पुरुषकू विदेहमोक्षकी प्राप्तिविषे तितने कालपर्यंतही विलंब है जितने कालपर्यंत प्रारब्धकर्मोंके भोगपूर्वक इस शरीरकी निवृत्ति नहीं हुई । इस शरीरके निवृत्त हुएवैं अनंतर सो विद्वान् पुरुषविदेहमोक्षको प्राप्त होवैहै इति । यह वार्ता श्रीव्यासभगवान्‌नेभी ब्रह्मसूत्रोंविषे कथनकरीहै । तहां सूत्र–(भोगेन त्वितरे क्षपयित्वा संपद्यन्ते) अर्थ यह-संचित क्रियमाण कर्मोंतैं भिन्न पुण्यपापरूप प्रारब्ध कर्मोंका भोगतैं नाशकरिकै यह विद्वान् पुरुष विदेहमोक्षकूं प्राप्त होवै है इति और वसिष्ठसनकादिक जे अधिकारक पुरुष हैं तिन अधिकारक पुरुषोंकूं तो ज्ञानकी उत्पत्तितैं अनन्तरभी दूसरे शरीरोंकी प्राप्ति शास्त्रोंविषे देखणेमें आवैहै । यातैं (यावदधिकारमवस्थितिरधिकारकाणाम्) इस सूत्रके व्याख्यानविषे भगवान् भाष्यकारोंनैं या प्रकारकी व्यवस्था कथनकरी है । तिन वसिष्ठादिकोंकूं जिस शरीरविषे आत्मज्ञानकी प्राप्ति भई है तिस शरीरके आरंभ करणेहारे जे प्रारब्धकर्म हैं ते प्रारब्धकर्मही तिन वसिष्ठादिकोंके दूसरे शरीरोंकाभी आरंभ करैं हैं। तात्पर्य यह । अनेक शरीरोंका आरंभ करणेहारा जो बलवान् प्रारब्ध कर्म है ताका नाम अधिकार है सो ऐसा अधिकार वसिष्ठादिक उपासक पुरुषोंकाही होवैहै अन्य जीवोंका होवै नहीं । सो ऐसा अधिकार जबपर्यंत रहैहै, तब पर्यंतही तिन वसिष्ठादिक अधिकारी पुरुषोंकी स्थिति होवैहै यातैं यह अर्थ सिद्ध भया जिन कर्मोंनैं आपणे फलका आरंभ नहीं करचा है ते कर्म तो आत्मज्ञानरूप अग्निकरिकै नाश होइजावैं हैं और जिन कर्मोंनें आपणे फलका आरंभ करचा है ते कर्म

तौ भोगकी समाप्तिपर्यंत स्थित होवैं हैं । तिन प्रारब्धकर्मोंका भोग अस्मदादिक तत्त्ववेत्ताजीवोंविषे तौ एकही देहकरिकै होवै है । और वसिष्ठादिक अधिकारी पुरुषोंविषे तौ अनेक देहोंकरिकै सो भोग होवैहै ॥ ३७ ॥

जिस कारणतैं इस आत्मज्ञानका ऐसा महान् प्रभाव है तिस कारणतैं इस आत्मज्ञानके समान दूसरा कोई पदार्थ है नहीं । इस अर्थकूं अव श्रीभगवान् कथन करैं हैं-

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ॥
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विंदति ॥३८॥

(पदच्छेदः) न । हि । ज्ञानेन । सदृशम् । पवित्रम् । इह । विद्यते । तत् । स्वयम् । योगसंसिद्धः । कालेन । आत्मनि । विंदति ॥ ३८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! जिस कारणतैं इस वेदलोकविषे ज्ञानके समान पवित्र नहीं विद्यमान है तिस ज्ञानकूं महान् कालकरिकै कर्मयोगकरिकै शुद्धचित्तवाला पुरुष आपही अंतःकरणविषे प्राप्त होवैहै ॥ ३८ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! वेदोंविषे अथवा इस लोकव्यवहारविषे इस आत्मज्ञानके समान दूसरा कोई पदार्थ शुद्धिकरणेहारा है नहीं किंतु यह एक आत्मज्ञानही शुद्धिकरणेहारा है । काहेतैं इस आत्मज्ञानतैं भिन्न जितनेक दूसरे कर्म उपासनादिक उपाय हैं ते उपाय अज्ञानकी निवृत्ति करैं नहीं । यातैं ते भिन्न उपाय अज्ञानरूप मूलसहित पापोंकी निवृत्ति करैं नहीं किंतु यत्किंचित् पापकी निवृत्ति करैं हैं । जैसे प्रायश्चित्त यत्किंचित् पापकी निवृत्ति करै है । और जब पर्यंत तिन सर्वपापोंका मूलकारणरूप अज्ञान विद्यमान है तबपर्यंत किसी प्रायश्चित्तादिक उपायोंकरिकै एक पापके नाश हुएभी पुनः दूसरे पाप अवश्यकरिकै उत्पन्न होवैंगे । और आत्मज्ञानकरिकै तौ अज्ञानके निवृत्त हुए मूलसहित सर्वपापोंकी निवृत्ति होवै है। यातैं इस आत्मज्ञानके समान दूसरा कोई शुद्धि करणेका उपाय है नहीं

इति।शंका-हे भगवन्!सो आत्माका ज्ञान इन सर्व प्राणियोंकूं शीघ्रहीकिसवा-स्तैं नहीं उत्पन्न होता?ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं(तत्स्वयं योगसंसिद्धः इति) हे अर्जुन ! जो अधिकारी पुरुष बहुत कालपर्यंत ता पूर्व उक्त कर्मयोगकरिकै अंतःकरणकी शुद्धिपूर्वक आत्मज्ञानके योग्यताकूं प्राप्त हुआ है सो अधिकारी पुरुषही आपही वा आपणे अंतः-करणविषे तिस आत्मज्ञानकूं प्राप्त होवै है। तिस अंतःकरणकी शुद्धिरूप योग्यताकूं नहीं प्राप्त हुआ पुरुष ता आत्मज्ञानकूं प्राप्त होवै नहीं । तथा अन्य किसी पुरुषके दिये हूए ज्ञानकूं आपणेविषे स्थितरूप करिकैभी प्राप्त होवै नहीं । तथा अन्य किसी पुरुषविषे स्थित ज्ञानकूं आपणा करिकैभी प्राप्त होवै नहीं किंतु सो शुद्धचित्तवाला पुरुष आपही अपणे अंतःकरणविषेही ता आत्मज्ञानकूं प्राप्त होवैहै ॥ ३८ ॥

तहां जिस उपायकरिकै नियमपूर्वक आत्मज्ञानकी प्राप्ति होवैहै सो उपाय पूर्व उक्त प्रणिपातसेवादिक उपायोंकी अपेक्षाकरिकै अत्यंत समीप है। ऐसे अत्यंत समीप उपायकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं-

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः सयतेन्द्रियः ॥
ज्ञानं लब्ध्वा परां शांतिमचिरेणाधिगच्छति ॥३९॥

(पदच्छेदः) श्रद्धावान्। लभते। ज्ञानम्। तत्परः। संयतेन्द्रियः। ज्ञानम् । लब्ध्वा । पराम्। शांतिम्। अचिरेण। अधिगच्छति३९

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष श्रद्धावान् है तथा गुरुकी उपासनाविषे तत्पर है तथा जितइंद्रिय है सो पुरुषही आत्मज्ञानकूं प्राप्त होवै है ता आत्मज्ञानकूं प्राप्त होइकै शीघ्रही कैवल्य मुक्तिकूं प्राप्त होवैहै ॥ ३९ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! ब्रह्मवेत्ता गुरुके वचनोंविषे तथा वेदांतशा-स्त्रके वचनोंविषे यह वचन यथार्थ अर्थकेही कहणेहारे हैं या प्रकारकी

प्रमाणरूप जा आस्तिक्य बुद्धि है ताका नाम श्रद्धा है। ऐसी श्रद्धावाळा पुरुषही ता आत्मज्ञानकूं प्राप्त होवै है। शंका-ऐसा श्रद्धावान् हुआभी जो पुरुष अत्यंत आलसी होवै है ता आलसी पुरुषकूंभी ता आत्मज्ञानकी प्राप्ति होणी चाहिये। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहै हैं (तत्परः इति) हे अर्जुन ! जो पुरुष श्रद्धावान् होवै है तथा आत्मज्ञानकी प्राप्तिका उपायभूत जे ब्रह्मवेत्ता गुरुकी उपासनादिक हैं तिन उपायोंविषे जो पुरुष आलस्यतैं रहित हुआ अत्यंत तत्पर होवै है सो पुरुषही ता आत्मज्ञानकूं प्राप्त होवै है। तिस तत्परतातैं विना केवल श्रद्धावान् पुरुष ता आत्मज्ञानकूं प्राप्त होवै नहीं। शंका-हे भगवन् ! जो पुरुष श्रद्धावान्भी है तथा ब्रह्मवेत्ता गुरुकी उपासनादिकोंविषे तत्परभी है परंतु श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं आपणे आपणे शब्दादिकविषयोंतैं जिसने निवृत्त कर्‍या नहीं ऐसे अजितइंद्रिय-पुरुषकेभी ता आत्मज्ञानकी प्राप्ति होणी चाहिये ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं (संयतेंद्रियः इति) हे अर्जुन ! जो पुरुष श्रद्धावान्भी है तथा तत्परभी है परंतु जिस पुरुषनैं आपणे श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं शब्दादिकविषयोंतैं निवृत्त नहीं कर्‍या सो अजितइंद्रिय पुरुषभी ता आत्मज्ञानकूं प्राप्त होवै नही किंतु जो पुरुष श्रद्धावान् होवै है तथा तत्पर होवैहै तथा जितइंद्रिय होवैहै सो पुरुषही ता आत्मज्ञानकूं प्राप्त होवैहै। और (तद्विद्धि प्रणिपातेन) या श्लोकविषे जे पूर्व प्रणिपात प्रश्न सेवा यह तीन उपाय आत्मज्ञानके कथन करेथे, ते तीनों बाह्य उपाय तौ दांभिक मायाकी पुरुषविषेभी संभव होइसकैंहै। यातैं ते प्रणिपातादि बाह्य उपाय नियमकरिकै ता आत्मज्ञानकी प्राप्तिविषे हेतु होवै नहीं। और इस श्लोकविषे कथनकरे जे श्रद्धा तत्परता जितइंद्रियता यह अंतर तीन उपाय हैं ते यह तीन उपाय तौ नियमपूर्वक ता आत्मज्ञानकी प्राप्ति करैं हैं ऐसे श्रद्धादिक तीन उपायोंकरिकै यह अधिकारी पुरुष ता आत्मज्ञानकूं प्राप्त होइकै कार्य सहित अविद्याकी निवृत्तिरूप

कैवल्यमुक्तिकूं व्यवधानतैं विनाही प्राप्त होवै है। तात्पर्य यह—जैसे दीपक आपणी उत्पत्तिमात्रकरिकैही अंधकारकी निवृत्ति करै है ता अंधकारकी निवृत्ति करणेविषे सो दीपक किसीभी सहकारी कारणकी अपेक्षा करै नहीं। तैसे यह आत्मज्ञानभी आपणी उत्पत्तिमात्रकरिकैही अज्ञानकी निवृत्ति करैहै ता अज्ञानकी निवृत्ति करणेविषे सो आत्मज्ञान दूसरे किसीभी प्रसंख्यानादिक उपायोंकी अपेक्षा करै नहीं ॥ ३९ ॥

वहां इस पूर्व उक्त अर्थविषे तुमनैं कदाचित्भी संशय करणा नहीं। जिस कारणतैं संशयवान् पुरुष महान् अनर्थकूं प्राप्त होवै है। इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ॥
नायं लोकोस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ४०

(पदच्छेदः) अज्ञः । च । अश्रद्दधानः । च । संशयात्मा । विनश्यति । न । अयम् । लोकः । अस्ति । न । परः । न । सुखम् । संशयात्मनः ॥ ४० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अज्ञानी पुरुष तथा अश्रद्धावान् पुरुष तथा संशययुक्त पुरुष विनाशकूंही प्राप्त होवै है तिस संशययुक्त पुरुषकूं यह मनुष्यलोकभी नहीं सिद्ध होवै है तथा स्वर्गादिरूप परलोकभी नहीं सिद्ध होवै है तथा भोजनादिकृत सुखभी नहीं प्राप्त होवै है ॥ ४० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो पुरुष वेदांतशास्त्रके अध्ययनतैं रहित होणेतैं आत्मज्ञानतैं शून्य है ता पुरुषका नाम अज्ञ है। और ब्रह्मवेत्ता गुरुनैं कथन कऱ्या जो अर्थ है तथा वेदांतशास्त्रनैं कथन कऱ्या जो अर्थ है ता अर्थ विषे यह अर्थ इस प्रकारका है नहीं या प्रकारकी विपर्ययरूप जा नास्तिक्यबुद्धि है ताका नाम अश्रद्धा है। ता अश्रद्धा करिकै जो पुरुष युक्त है ता पुरुषका नाम अश्रद्दधान है। और लौकिक वैदिक सर्व अर्थोंविषे यह अर्थ इस प्रकारका है अथवा अन्यप्रकारका है या प्रकारके

संशय करिकै जिस पुरुषका चित्त युक्त है ता पुरुषका नाम संशयात्मा है ऐसा अज्ञपुरुष तथा अश्रद्दधानपुरुष तथा संशयात्मा पुरुष यह तीनों पुरुष नाशकूंही प्राप्त होवें हैं। अर्थात् आपणे अर्थतैं भ्रष्ट होवें हैं। इहां सो संशयात्मा पुरुष जिस प्रकारके अनर्थकूं प्राप्त होवै है तिस प्रकारके अनर्थकूं सो अज्ञपुरुष तथा अश्रद्दधान पुरुष प्राप्त होवै नहीं। किंतु तिसतैं न्यून अनर्थकूं प्राप्त होवे है। इस प्रकार ता संशयात्मा पुरुषतैं अज्ञपुरुषविषे तथा अश्रद्दधान पुरुषविषे न्यूनता बोधन करणेवासतै तिन दोनोंके वाचकपदोंके अन्तरविषे चकार कथन कऱ्या है। शंका–हे भगवन्! सो संशयात्मा पुरुष अज्ञपुरुषतैं तथा अश्रद्दधानपुरुषतैं अधिक अनर्थकूं प्राप्त होवै है यह वार्त्ता किस प्रकार जानी जावें? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (नायं लोकः इति) हे अर्जुन! जो पुरुष सर्वदा संशय करिकै युक्त है सो संशयात्मा पुरुष आपणे मित्रादिकों विषेभी यह हमारे मित्र हैं अथवा शत्रु हैं या प्रकारका संशयही करै है और सो संशयात्मा पुरुष धनादिक पदार्थोंके एकठे करणेविषेभी प्रवृत्त होवै नहीं यातैं तिस संशयात्मा पुरुषकूं यह मनुष्यलोकभी सिद्ध होवै नहीं। और ता संशयात्मा पुरुषकूं वेदके वचनोंविषेभी सर्वदा संशय बन्यारहै है। यातैं ता संशयात्मा पुरुषतैं धर्मका तथा ज्ञानका संपादन होइ सकै नहीं। या कारणतैं ता संशयात्मा पुरुषकूं स्वर्गमोक्षादिरूप परलोकभी सिद्ध होवै नहीं। और ता संशयात्मा पुरुषकूं भोजनादिकोंविषेभी यह भोजनादिक मैं करौं अथवा नहीं करौं या प्रकारका संशय सर्वदा बन्या रहै है। यातैं ता संशयात्मा पुरुषकूं भोजनादिकृत विषयसुखभी प्राप्त होवैं नहीं। तात्पर्य यह–ता अज्ञपुरुषकूं तथा अश्रद्दधानपुरुषकूं यद्यपि सो परलोक प्राप्त होवै नहीं तथापि यह मनुष्यलोक तथा भोजनादिकृत विषयसुख यह दोनों प्राप्त होवैं हैं या कारणतैंही शास्त्रवेत्तापुरुषोंनें ता अज्ञपुरुषकूं सुसाध्य कह्या है और ता अश्रद्दधानपुरुषकूं प्रयत्नसाध्य कह्या है। और ता संशयात्माकूं असाध्य कह्या है। इहां जिस पुरुषकी सत्मार्गविषे

प्रवृत्ति होइसकै ता पुरुषकूं सुसाध्य कहैं हैं । और जिस पुरुषकी बहुत प्रयत्नकरिकै ता सत्मार्गविषे प्रवृत्ति होइसकै ता पुरुषकूं प्रयत्नसाध्य कहैं हैं । और किसी प्रकारकैभी जिस पुरुषकी ता सत्मार्गविषे प्रवृत्ति नहीं होइसकै ता पुरुषकूं असाध्य कहैं हैं । यातैं सो संशयात्मा पुरुष सर्वतैं अत्यंत पापिष्ठ है ॥ ४० ॥

तहां ऐसे सर्व अनर्थोंके मूलभूत संशयके निवृत्ति करणेवास्तै आत्माका निश्चयरूप उपायकूं कथन करते हुए श्रीभगवान् दो अध्यायों करिकै कथन करी जा पूर्वउत्तरभूमिकाके भेदकरिकै कर्मज्ञानमय दो प्रकारकी ब्रह्मनिष्ठा है ताका अब उपसंहार करैं हैं—

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ॥
आत्मवंतं न कर्माणि निबध्नंति धनंजय ॥ ४१ ॥

(पदच्छेदः) योगसंन्यस्तकर्माणम् । ज्ञानसंछिन्नसंशयम् । आत्मवंतम् । न । कर्माणि । निबध्नंति धनंजय ॥ ४१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! समत्वबुद्धिरूप योगकरिकै भगवत् अर्पण करे हैं कर्म जिसनैं तथा आत्मज्ञानकरिकै छेदन कऱ्या है संशय जिसनैं ऐसे प्रमादतैं रहित पुरुषकूं कर्म नहीं बंधायमान करैं हैं ॥ ४१ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! भगवत् आराधनरूप जा समत्व बुद्धि है ताका नाम योग है । ऐसे योगकरिकै मैं श्रीभगवान् विषे समर्पण करे हैं कर्म जिसनैं अथवा परमार्थ वस्तुके दर्शनका नाम योग है ता योग करिकै त्याग करे हैं सर्व कर्म जिसनैं ताका नाम योगसंन्यस्तकर्मा है । शंका—हे भगवन् ! ता संशयके विद्यमान हुए सो योगसंन्यस्तकर्मपणाही किस प्रकारका संभवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं । (ज्ञानसंछिन्नसंशयमिति) हे अर्जुन ! आत्माका निश्चयरूप जो ज्ञान है ता ज्ञानकरिकै छेदन कऱ्याहै संशय जिस पुरुषनैं । शंका—हे भगवन् ! विषयोंकी परवशतारूप प्रमादके विद-

मान हुए ता ज्ञानकी उत्पत्तिही संभवै नहीं ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं (आत्मवंतमिति) हे अर्जुन ! जो पुरुष ता परवशतारूप प्रमादतैं रहित है अर्थात् जो पुरुष सर्वदा सावधान है । इस प्रकार जो पुरुष अप्रमादी होणेतैं ज्ञानवान् है तथा ज्ञानसंछिन्नसंशय होणेतैं योगसंन्यस्तकर्मा है ता विद्वान् पुरुषकूं लोकसंग्रहवासतै करे हुए शुभकर्म अथवा व्यर्थचेष्टारूप कर्म बंधायमान करैं नहीं अर्थात् ते कर्म देवतादिरूप इष्टशरीरका तथा पशुआदिरूप अनिष्टशरीरका तथा मनुष्यादिरूप मिश्रितशरीरका आरंभ करैं नहीं ॥ ४१ ॥

जिसकारणतैं आत्मज्ञानकरिकै नष्ट हुआ है संशय जिसका ऐसे विद्वान् पुरुषकूं यह लौकिकवैदिककर्म बंधायमान करवे नहीं । तिसकारणतै तूं अर्जुनभी ता आत्मज्ञानकरिकै ता संशयकूं छेदनकरिकै स्वधर्मविषे तत्पर होउ । या अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैहैं—

तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ॥
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे यज्ञविभागयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) तस्मात् । अज्ञानसंभूतम् । हृत्स्थम् । ज्ञानासिना । आत्मनः । छित्त्वा । एनम् । संशयम् । योगम् । आतिष्ठ उत्तिष्ठ । भारत ॥ ४२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिसकारणतैं अज्ञानतैं उत्पन्नहुए तथा बुद्धिविषे स्थित इस संशयकूं आत्माके ज्ञानरूप खड्गकरिकै छेदनकरिकै तूं निष्कामकर्मकूं कर इसप्रकारतैं तूं अब युद्ध करणेवासतैं उठ खडा होउ ४२

भा० टी०—हे अर्जुन ! अविवेकरूप अज्ञानतैं उत्पन्न हुआ तथा बुद्धिरूप हृदयविषे स्थित ऐसा जो यह सर्व अनर्थोंका मूलभूत संशय है इस संशयकूं विषय करणेहारे निश्चयरूप खड्ग करिकै छेदनकरिकै तूं सम्यक्

दर्शनके उपायभूत निष्काम कर्मयोगकूं कर इसकारणतैं तूं इसकालविषे इसयुद्धकरणेवासतै उठ खडाहोउ इति । इहां (अज्ञानसंभूतम्) या पदकरिके श्रीभगवान्नैं ता संशयके कारणका कथन कर्या । और (हृत्स्थं) या पदकरिकै ता संशयके आश्रयका कथन कर्या । ता कहणेकरिकै यह अर्थ बोधन कर्या । जैसे लोकविषे जिस शत्रुके कारणका तथा आश्रयका ज्ञान होवैहै सो शत्रु सुखेनही हनन कर्याजावैहै । तैसे इस संशयरूप शत्रुके कारणके तथा आश्रयके ज्ञानहुएतैं अनंतर यह संशयरूप शत्रुभी ताके कारणादिकोंकी निवृत्ति करिकै सुखेनही नाश कऱ्याजावैहै इति । और (हे भारत) या संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कऱ्या, भरतवंशविषे उत्पन्न भया जो तूं अर्जुन है तिस तुम्हारा यह युद्धका उद्यम निष्फल नहीं है किंतु अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा ज्ञानका हेतु होणेतैं सफल है इति । इस चतुर्थ अध्यायके सर्व अर्थकूं संक्षेपतैं कथन करणेहारा यह श्लोक है । (स्वस्यानीशत्वबाधेन भक्तिश्रद्धे दृढीकृते । धीहेतुः कर्मनिष्ठा च हरिणेहोपसंहृता ॥) अर्थ यह—इस चतुर्थ अध्यायविषे श्रीभगवान्नैं आपणे अनीश्वरपणेकी निवृत्तिकरिकै आपणेविषे अर्जुनके भक्तिकूं तथा श्रद्धाकूं दृढ कऱ्या । तथा आत्मज्ञानका कारणरूप जा कर्मनिष्ठ है सा कर्मनिष्ठा उपसंहार करी ॥ ४२ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां श्रीभगवद्गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

तहां पूर्व तृतीय चतुर्थ या दोनों अध्यायोंकरिकै कर्म ज्ञान या दोनोंका निरूपण कऱ्या । अब पंचम षष्ठ या दोनों अध्यायोंकरिकै कर्म तथा अकर्मका त्यागरूप संन्यास या दोनोंका निरूपण करैहैं । तहां पूर्व तृतीय अध्यायविषे (ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते) इत्यादिक वचनोंकरिकै अर्जुननैं

पूछा हुआ श्रीभगवान् ज्ञान, कर्म या दोनोंका विकल्पका तथा समुच-
यका असंभव कथनकरिकै अधिकारी पुरुषके भेदकी व्यवस्थाकरिकै (लोके-
स्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयाऽनघ) इत्यादिक वचनोंकरिकै निर्णय
करताभया । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । अज्ञपुरुष है अधिकारी जिसका
ऐसा जो कर्म है सो कर्म आत्मज्ञानके साथि समुच्चयकूं प्राप्त होवै नहीं ।
जैसे प्रकाशरूप तेज तथा अन्धकाररूप तिमिर या दोनोंका परस्पर समुच्चय
संभवै नहीं तैसे ज्ञान तथा कर्म या दोनोंकाभी परस्पर समुच्चय संभवै
नहीं काहेतैं तिन कर्मोंका हेतुरूप जो भेदबुद्धि है ता भेदबुद्धिका
सो आत्मज्ञान नाश करणेहारा है । यातैं सो आत्मज्ञान तिन कर्मोंका
विरोधीही है । और विरोधी पदार्थोंका एकदेशविषे एककालविषे एकठा
होणा कदाचित्‌भी संभवता नहीं । और सो कर्म ता ज्ञानके साथि विक-
ल्पकूंभी प्राप्त होवै नहीं काहेतैं जे दो पदार्थ एकही कार्यकी सिद्धि करणे-
वासतै होवैं हैं तिन पदार्थोंकाही परस्पर विकल्प होवै है । सो इहां
प्रसंगविषे ज्ञान तथा कर्म यह दोनों एक कार्यकी सिद्धि वासतै है
नहीं काहेतैं आत्मज्ञानका कार्य जो अज्ञानका नाश है सो अज्ञानका
नाश कर्मकरिकै होइसकै नहीं किंतु केवल ज्ञानकरिकै ही सो अज्ञा-
नका नाश होवै है । तहां श्रुति–(तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः
पंथा विद्यतेऽयनाय ।) अर्थ यह–तिस आत्मादेवकूं जानिकरिकै यह
अधिकारी पुरुष कार्यसहित अज्ञानकूं नाश करै है । तथा अविद्याकी
निवृत्तिरूप मोक्षकी प्राप्तिवासतै आत्मज्ञानतैं विना दूसरा कोई मार्ग है
नहीं । किंतु एक आत्मज्ञानही ता मोक्षकी प्राप्तिका मार्ग है इति । और
ता आत्मज्ञानके उत्पन्नहुएतैं अनंतर तिन कर्मोंका कार्य किंचित्‌मात्रभी
अपेक्षित नहीं है–यह अर्थ (यावानर्थ उदपाने) इस श्लोकविषे पूर्व
कथनकरि आये हैं । इसप्रकार ज्ञानवान् पुरुषविषे कर्मोंके अनधिकारका
निश्चयहुए प्रारब्धकर्मके वशतैं वृथाचेष्टारूपकरिकै तिन कर्मोंका अनुष्ठान
होवै । अथवा तिन सर्वकर्मोंका संन्यास होवै । यह वार्त्ता निर्वि-

वाद चतुर्थ अध्यायविषे निर्णय करी । और जिस पुरुषकूं आत्मज्ञानकी प्राप्ति नहीं भई है ऐसे ज्ञानी पुरुषनैं तौ अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा ता आत्मज्ञानकी उत्पत्ति करणेवासतै तिन कर्मोंकूं अवश्यकरिकै करणा । तहां श्रुति—(तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषंति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन इति ।) इस श्रुतिनैं वेदाध्ययन यज्ञ दान तप इत्यादिक सर्वकर्मोंका अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा आत्मज्ञानविषे उपयोग कथनकऱ्या है । और (सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते) इस वचनविषे श्रीभगवान्नैं आपही तिन सर्वकर्मोंका आत्मज्ञानविषे उपयोग कथन कऱ्या है और जैसे श्रुतिनैं आत्मज्ञानकी प्राप्तिवासतै कर्मोंका अनुष्ठान कथन कऱ्या है तैसे श्रुतिनैं आत्मज्ञानकी प्राप्तिवासतै सर्वकर्मोंका त्यागरूप संन्यासभी कथन कऱ्या है । तहां श्रुति—(एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छंतः प्रव्रजंति । शांतो दांत उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानं पश्येत्) अर्थ यह—संन्यासी पुरुषोंकूं प्राप्त होणेयोग्य जो यह आत्मारूप लोक है ता आत्मारूप लोकके प्राप्तिकी इच्छा करतेहुए यह अधिकारी जन सर्वकर्मोंके त्यागरूप संन्यासकूं करैं हैं इति । और यह अधिकारी पुरुष शम दम उपरति तितिक्षा श्रद्धा समाधान इस षट् संपत्तिसे युक्त होइकै आपणे हृदयदेशविषे प्रत्यक्आत्माकूं देखै इति । इहां उपरति शब्दकरिकै संन्यासकाही ग्रहण कऱ्या है । इत्यादिक श्रुतियोंनैं सर्वकर्मोंके संन्यासकूंही आत्मज्ञानका हेतु कह्या है । तहां जैसे ज्ञान कर्म या दोनोंका समुच्चय संभवै नहीं तैसे कर्म तथा कर्मोंका त्याग इन दोनोंकाभी समुच्चय संभवै नहीं । काहेतैं जे पदार्थ एकही कालविषे एकठे स्थित होवैं हैं तिन पदार्थोंकाही परस्पर समुच्चय होवै है भिन्नदेशकाल वृत्ति पदार्थोंका परस्पर समुच्चय संभवै नहीं और कर्म तथा कर्मोंका त्याग यह दोनोंभी तेज तिमिरकी न्याई परस्पर विरुद्ध हैं यातैं तिन दोनोंका एकही कालविषे एकही वर्तणा संभवै नहीं । यातैं कर्म तथा कर्मोंका त्याग या दोनोंका समुच्चय संभवता नहीं । शंका—कर्म

तथा कर्मोंका त्याग या दोनोंका आत्मज्ञानही फल है यातैं एकार्थता होणेतैं तिन दोनोंका विकल्प किसवासतै नही होवै ? समाधान—आत्मज्ञानकी उत्पत्ति करणेविषे कर्मका तथा कर्मके त्यागका द्वार भिन्न भिन्नही है । यातैं तिन दोनोंका विकल्पभी संभवै नहीं । जहां दो पदार्थोंका एक कार्यकी उत्पत्ति करणेविषे एकही द्वार होवै है वहांही तिन दोनों पदार्थोंका विकल्प होवै है । वहां आत्मज्ञानकी उत्पत्तिविषे प्रतिबंधक जे पापकर्म हैं तिन पापकर्मोंकी निवृत्ति नित्यनैमित्तिक कर्मोंकरिकैही होवै है । यातैं तिन नित्यनैमित्तिक कर्मोंका तौ तिन पापोंका नाशरूप अदृष्टही द्वार है । और जिस पुरुषका चित्त लौकिक वैदिक कर्मोंकरिकै अत्यंत विक्षिप्त है तिसपुरुषकूंभी आत्मज्ञानकी प्राप्ति होवै नहीं । और सो विक्षेपकी निवृत्ति संन्यासकरिकै ही होवै है । यातैं ता कर्मोंके त्यागरूप संन्यासका तौ विक्षेपकी निवृत्तिकरिकै आत्मविचारके अवसरकी प्राप्तिरूप दृष्टही द्वार है । यातैं एक आत्मज्ञानकी प्राप्तिवासतैं हुएभी ते कर्म तथा कर्मोंका त्याग यह दोनों ता अदृष्ट तथा दृष्ट द्वारके भेदकरिकै विकल्पकूं प्राप्त होवैं नहीं । यातैं समुच्चयके तथा विकल्पके असंभवहुए ते कर्म तथा तिन कर्मोंका त्यागरूप संन्यास यह दोनों यथाक्रमतैंही अनुष्ठान करणे । ता क्रमपक्षविषेभी संन्यासतैं अनंतर कर्मोंका अनुष्ठान करणा । अथवा कर्मोंके अनुष्ठानतैं अनंतर संन्यास करणा। वहां सन्यासतैं अनतर कर्मोंका अनुष्ठान करणा यह प्रथम पक्ष तौ संभवै नही काहेतैं यह अधिकारी पुरुष जो कदाचित् ता संन्यासतैं अनंतर पुनः कर्मोंका अनुष्ठान करैगा तौ परित्याग करेहुए पूर्वले आश्रमका पुनः अंगीकार करणा होवैगा । ताकरिकै सो संन्यासी आरूढ पतित होवैगा। और सो संन्यासी तिन कर्मोंका अधिकारीही है नहीं यातैं संन्यासकूं धारणकरिके सो पुरुष जो पुनः कर्मोंकूं करैगा तौ पूर्वग्रहण करयाहुआ संन्यासही ताका व्यर्थ होवैगा । जिस कारणतैं सो संन्यास कर्मोंकी न्याईं अदृष्टार्थक नहीं है किंतु विक्षेपकी निवृत्तिरूप दृष्टार्थकही है । और

प्रथम करेहुए संन्यासकरिकेही तिस पुरुषकूं ज्ञानके अधिकारकी प्राप्ति होजावैहै। तिस संन्यासतैं अनंतर पुनः कर्मोंका अनुष्ठान करणा व्यर्थही है यातैं संन्यासतैं अनंतर इस अधिकारी पुरुषनैं कर्मोंका अनुष्ठान कदाचित्भी नहीं करणा किंतु इस अधिकारी पुरुषनैं प्रथम भगवदर्पण बुद्धिकरिकै निष्काम कर्मोंका अनुष्ठान करणा। ता करिकै अंतःकरणकी शुद्धिहुएतैं अनंतर तीव्र वैराग्यकरिकै जबी दृढआत्मज्ञानकी इच्छा होवै जिस इच्छाकूं श्रुतिविषे विविदिषा शब्दकरिकै कथन कऱ्याहै। तबीही वेदांतवाक्योंके श्रवणमननादिरूप विचार करणेवासतै इस अधिकारी पुरुषनैं सो संन्यास करणा यहही श्रीकृष्णभगवान्का मत है तथा सर्ववेदोंका मत है। इस आपणे मतकूं श्रीभगवान् (न कर्मणामनारंभान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते) इस वचनकरिकै पूर्वं कथन करताभयाहै। और इसी आपणे मतकूं श्रीभगवान् (आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते। योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते) इस श्लोककरिकै आगे कथन करैगा। इहां योगशब्दकरिकै तीव्रवैराग्यपूर्वक विविदिषाका ग्रहण करणा। यह वार्त्ता वार्तिककारनेभी कथनकरीहै। तहां श्लोक—(प्रत्यग्विविदिषासिद्ध्यै वेदानुवचनादयः। ब्रह्मावाप्त्यै तु तत्त्याग ईप्सतीति श्रुतेर्बलात्) अर्थ यह—(तमेतं वेदानुवचनेन) इस श्रुतिनैं विधान करे जे वेदाध्ययन यज्ञ दान तप आदिक कर्महैं ते वेदाध्ययनादिक कर्म तौ प्रत्यक्आत्माके जानणेकी इच्छारूप विविदिषाकी प्राप्तिवासतै ही हैं। और प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मकी प्राप्तिवासतै तौ (एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छंतः प्रव्रजंति) इस श्रुतिकरिकै प्रतिपादित सर्वकर्मोंका त्यागही है इति। तहां स्मृतिभी—(कषाये कर्मभिः पक्के ततो ज्ञानं प्रवर्त्तते) अर्थ यह—निष्कामकर्मोंके अनुष्ठानकरिकै अंतःकरणके शुद्धहुएतैं अनंतर सर्वकर्मोंके त्यागतैं आत्मज्ञानकी प्राप्ति होवैहै इति। तहां सो आत्मज्ञानकी प्राप्तिका हेतुभूत विविदिषासंन्यास भी क्रमसंन्यास अक्रमसंन्यास या भेदकरिकै दो प्रकारका होवैहै। तहां

प्रथम ब्रह्मचर्य आश्रमकूं धारण करणा तिसतैं अनंतर गृहस्थ आश्रमकूं धारण करणा । तिसतैं अनंतर वानप्रस्थ आश्रमकूं धारण करणा । तिसतैं अनंतर चतुर्थ अवस्थाविषे संन्यास आश्रमकूं धारण करणा याका नाम क्रमसंन्यास है । और संसारतैं अत्यंततीव्र वैराग्यके प्राप्तहुए ब्रह्मचर्यादिक आश्रमातैं अनंतरही ता संन्यास आश्रमकूं धारण करणा याका नाम अक्रमसंन्यास है। तहां श्रुति-(ब्रह्मचर्य समाप्य गृही भवेद्गृहाद्वनीभूत्वा प्रव्रजेत् । यदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद्गृहाद्वा वनाद्वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्) अर्थ यह-अधिकारी पुरुष ब्रह्मचर्यकी समाप्ति करिकै गृहस्थ होवै ता गृहस्थआश्रमतैं अनंतर वानप्रस्थ होइकै संन्यासकूं ग्रहणकरै इति और जो कदाचित् इस अधिकारी पुरुषकूं पूर्वले पुण्यकर्मोंके प्रभावतैं प्रथमही तीव्र वैराग्यकी प्राप्ति होवै तौ यह अधिकारी पुरुष ब्रह्मचर्य आश्रमतैं अनंतरही संन्यास आश्रमकूं धारणकरै । अथवा गृहस्थ आश्रमतैं अनंतर संन्यास आश्रमकूं धारण करै । अथवा वानप्रस्थ आश्रमतैं अनंतर संन्यास आश्रमकूं धारणकरै । याकेविषे किंचित्मात्रभी क्रम नहीं । किंतु जिसदिनविषे यह अधिकारी पुरुष तीव्र वैराग्यकूं प्राप्त होवै तिसी दिनविषे संन्यासकूं करै इति । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । एकही अज्ञानी मुमुक्षुजनकूं वैराग्यतै रहित दशाविषे तौ निष्काम कर्मोंकाही अनुष्ठान करणेयोग्य है । और तिसीही अज्ञानी मुमुक्षुजनकूं वैराग्यदशाविषे तिन कर्मोंका संन्यासही करणे योग्य है सोईही संन्यास श्रवणमननके करणेवासतै अवसरकी प्राप्तिकरिकै तिस पुरुषके ज्ञानवासतै होवै है । इसप्रकार अविरक्ततादशा तथा विरक्ततादशा या दोनों दशावोंके भेदकरिकै एकही अज्ञानी मुमुक्षुजनके प्रति कर्मोंकी कर्त्तव्यता तथा तिन कर्मोंके त्यागरूप संन्यासकी कर्त्तव्यता कहणेवासतै श्रीभगवान्नैं इस पंचम अध्यायका तथा वक्ष्यमाण षष्ठ अध्यायका प्रारंभ कऱ्या है और आत्मज्ञानकी प्राप्तितैं अनंतर जीवन्मुक्तिके आनंदवासतै करणे योग्य जो विद्वत्संन्यास है सो विद्वत्संन्यास

तौ आत्मज्ञानके बलतैं अर्थतैंही सिद्ध है । यातैं ताकेविषे संदेहके अभाव होणेतैं ता विद्वत्संन्यासका इहां विचार कर्‍या नहीं । किंतु विविदिषासंन्यासकाही इहां विचार कर्‍याहै इति । इस पूर्व उक्त श्रीभगवानके अभिप्रायकूं न जानिकरिकै सो अर्जुन या प्रकारके संशयकूं प्राप्त होता भया । श्रीभगवान्नैं एकही अज्ञानी मुमुक्षुके प्रति आत्मज्ञानकी प्राप्तिवासतै कर्मोंका तथा तिन कर्मोंके त्यागका विधान कर्‍याहै । और वे कर्म तथा तिन कर्मोंका त्याग यह दोनों तेज तिमिरकी न्याई परस्पर विरोधी होणेतैं एक-कालविषे एक अधिकारी पुरुषकरिकै अनुष्ठान करेजावैं नहीं । यातैं मैं मुमुक्षुअर्जुननैं इसकालविषे ते कर्मही करणे योग्य हैं । अथवा तिन कर्मोंका त्यागरूप संन्यासही करणेयोग्य है । याप्रकारके संशयकरिकै युक्तहुआ सो अर्जुन श्रीभगवान्के प्रति प्रश्न करैहै—

अर्जुन उवाच ।

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ॥
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ १ ॥

(पदच्छेदः) संन्यासम् । कर्मणाम् । कृष्ण । पुनः । योगम् । च । शंससि । यत् । श्रेयः । एतयोः । एकम् । तत् । मे । ब्रूहि । सुनिश्चितम् ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे कृष्ण भगवन् ! आप कर्मोंके संन्यासकूंभी कथनकरते हो तथा पुनः कर्मयोगकूं भी कथनकरतेहो इन दोनोंविषे जो एक श्रेष्ठ होवै सो हमारे प्रति निश्चयकरिकै कथनकरो ॥ १ ॥

भा० टी०—हे कृष्ण ! क्या हे सत्यआनन्दरूप ! अथवा हे भक्तजनोंके दुःखकूं नष्ट करणेहारा ! (यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति) इस श्रुतिकरिकै तथा (कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः) इस श्रुतिकरिकै विधानकरे जे नित्यनैमित्तिक कर्म हैं, तिन कर्मोंके त्यागरूप संन्या-

सकूंभी आप अज्ञानी मुमुक्षुजनके प्रति (एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छंतः प्रव्रजंति) इस श्रुतिवचनकरिकै अथवा (निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः । शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्) इस पूर्व उक्त गीतावचनकरिकै कथन करतेहो तथा तिस कर्मके त्यागरूप संन्यासतैं अत्यन्त विरुद्ध जो कर्मोंका अनुष्ठानरूप कर्मयोग है तिस कर्मयोगकूंभी आप तिसी अज्ञानीमुमुक्षुजनके प्रति (तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषंति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन) इस श्रुतिवचनकरिकै अथवा (छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत) इस पूर्व उक्त गीतावचनकरिकै कथन करतेहो । इहां यद्यपि कर्मोंके संन्यासकूं तथा कर्मयोगकूं आप इस गीतावचनकरिकै कथन करतेहो इतना मात्रही कहणा संभवै है । इस श्रुतिवचनकरिकै कहतेभयेहो यह कहणा संभवता नहीं । तथापि (पुनर्योगं च शंससि) या वचनविषे स्थित जो पुनः यह शब्द है ता पुनः शब्दकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन कऱ्याहै । जैसे अबी इस गीताके वचनोंकरिकै एकही मुमुक्षुजनके प्रति कर्मोंके संन्यासकूं तथा कर्मयोगकूं कथनकरोहो तैसे सृष्टिके आदिकालविषे वेदोंके कर्त्ता आपनैं तिन वेदोंविषे भी इसी प्रकार कथन कऱ्याहै इति । हे भगवन् ! इसप्रकार एकही अज्ञानी मुमुक्षुजनके प्रति आपनैं कर्मोंका तथा तिन कर्मोंके त्यागका दोनोंका विधानकऱ्याहै सो तिन दोनोंका एकही कालविषे एकही अधिकारी पुरुषनैं अनुष्ठान करणा संभवता नहीं । जैसे एकही कालविषे एकही पुरुषविषे स्थिति तथा गमन यह दोनों संभवते नहीं । यातैं कर्म तथा कर्मोंका त्यागरूप संन्यास या दोनोंविषे जिस एक कर्मकूं अथवा संन्यासकूं आप अत्यन्त श्रेष्ठ मानते होवौ तिस कर्मयोगकूं अथवा संन्याससकूं आप निश्चयकरिकै हमारे प्रति कथनकरो । तिस आपके निश्चितमतकूं मैं अर्जुन आपणे श्रेयका साधनरूप मानिकै अनुष्ठान करौं ॥ १ ॥

इसप्रकारके अर्जुनके प्रश्नकूं श्रवणकरिकै श्रीभगवान् अब ता प्रश्नके उत्तरकूं कथन करैहैं—

श्रीभगवानुवाच ।

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ॥
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) संन्यासः । कर्मयोगः । च । निःश्रेयसकरौ । उभौ । तयोः । तु । कर्मसंन्यासात् । कर्मयोगः । विशिष्यते ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन । संन्यास तथा कर्मयोग यह दोनों मोक्षके हेतु है तिन दोनोंविषे भी कर्मके संन्यासतैं कर्मयोगही श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! शास्त्रकी विधिपूर्वक सर्वकर्मोंका त्यागरूप जो संन्यास है तथा आपणे आपणे वर्णाश्रमके अनुसार नित्यनैमित्तिक कर्मोंका अनुष्ठानरूप जो कर्मयोग है यह दोनों आत्मज्ञानकी उत्पत्तिका हेतु होणेतैं मोक्षकीही प्राप्ति करणेहारे हैं। तथापि तिन दोनोंविषे अंतःकरणकी शुद्धितैं रहित अनधिकारी पुरुषने करा जो कर्मोंका संन्यास है ता संन्यासतैं सो कर्मयोगही श्रेष्ठ है काहेतैं अशुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुषनैं करचा जो संन्यास है सो संन्यास ता अशुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुषविषे आत्मज्ञानके अधिकारीपणेका संपादक होवै नहीं। और सो निष्कामकर्मयोग तौ इस पुरुषविषे ता आत्मज्ञानके अधिकारीपणेका संपादकही होवै है । यातैं सो कर्मयोग ता संन्यासतैं श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

अब अधिकारी पुरुषोंकूं ता कर्मयोगविषे प्रवृत्त करणेवास्तै तीन श्लोकों करिकै श्रीभगवान् ता निष्कामकर्मयोगकी स्तुतिकूं करैं हैं–

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति ॥
निर्द्वंद्वो हि महाबाहो सुखं बंधात्प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) ज्ञेयः । सः । नित्यसंन्यासी । यः । न । द्वेष्टि । न । कांक्षति । निर्द्वंद्वः । हि । महाबाहो । सुखम् । बंधात् । प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष नहीं तौ द्वेष करै है तथा नहीं स्वर्गादिक फलोंकी इच्छा करै है तथा रागद्वेषतैं रहित है सो पुरुष नित्यही संन्यासी जानना जिसकारणतैं सो पुरुष सुखपूर्वकही बंधतैं मुक्त होवैहै ३

भा० टी०–हे अर्जुन ! जो पुरुष भगवत् अर्पण बुद्धिकरिकै करे हुए नित्यनैमित्तिककर्मों विषे यह सर्व कर्म निष्फलही हैं ऐसी निष्फलपणेकी शंकाकरिकै द्वेष करता नहीं । तथा जो अधिकारी पुरुष तिन कर्मोंके स्वर्गादिफलोंकी इच्छा करता नहीं । तथा जो अधिकारी पुरुष रागद्वेषतै रहित है ऐसा अधिकारी पुरुष आपणे नित्यनैमित्तिककर्मोंविषे प्रवृत्त हुआभी नित्यही संन्यासी जानणा । जिसकारणतैं सो निष्कामकर्मोंकूं करणेहारा अधिकारी पुरुष अन्तःकरणकी अशुद्धिरूप ज्ञानके प्रतिबंधतैं नित्यअनित्यवस्तुके विवेक करिकै अनायासैंही मुक्त होवै है अर्थात् शुद्धअंतःकरणवाला होवै है ॥ ३ ॥

हे भगवन् ! जो पुरुष आपणे नित्यनैमित्तिक कर्मोंविषे प्रवृत्त हुआ है सो पुरुष किसप्रकार नित्यही संन्यासी जानणा किंतु ता कर्म कर्त्ता पुरुषविषे सो संन्यासीपणा संभवता नहीं काहेतैं नित्यनैमित्तिक कर्म तथा तिन कर्मोंका त्यागरूप संन्यास यह दोनों तेजतिमिरकी न्याईं स्वरूपतैंही विरोधी है । जहां कर्मीपणा रहैहै तहां संन्यासीपणा रहै नहीं । और जहां संन्यासीपणा रहै है तहां कर्मीपणा रहै नहीं । और जो आप यह वचन कहो कि, कर्म तथा कर्मोंका संन्यास या दोनोंका फल एकही है यातैं ता निष्कामकर्मोंके कर्त्ता पुरुषविषे सो संन्यासीपणा संभव होइसकै हैं । सो यह आपका कहणाभी संभवता नहीं । काहेतैं जे साधनस्वरूपतैं विरुद्ध होवैं है तिन साधनोंके फलविषेभी विरोधही होवै है तिन विरुद्ध साधनोंके फलकी एकता संभवै नहीं । यातैं कर्मयोग तथा कर्मोंका त्यागरूप संन्यास यह दोनों एक निःश्रेयसकी प्राप्ति करणेहारे हैं, यह पूर्व उक्त आपका वचन असंगतही है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं–

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदंति न पण्डिताः ॥
एकमप्यास्थित सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥ ४॥

(पदच्छेदः) सांख्ययोगौ । पृथक् । बालाः । प्रवदंति । न । पण्डिताः । एकम् । अपि । आस्थितः । सम्यक् । उभयोः । विंदते । फलम् ॥ ४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! विचारहीन पुरुष संन्यास कर्मयोग दोनोंकूं विरुद्ध फलवाला कथन करै है विचारवान् पंडित ऐसा नहीं कथन करै है जिस कारणतैं तिन दोनोंविषे एककूं भी भलीप्रकार करताहुआ यह पुरुष तिनै दोनोंके निःश्रेयसरूप फलकूं प्राप्त होवैहै ॥ ४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! संशयविपरीत भावनातैं रहित जा यथार्थ आत्माकार बुद्धि है ताका नाम संख्या है ता आत्माकारबुद्धिरूप संख्याकी जो प्राप्ति करै है ताका नाम सांख्य है। ऐसा आत्मज्ञानका अंतरंग साधन होणेतैं संन्यासही है।ऐसा सांख्यनामा संन्यास तथा पूर्व कथन कऱ्या कर्मयोग यह दोनों भिन्नभिन्न फलके हेतु हैं या प्रकारके वचनकूं शास्त्रअर्थके विवेकविज्ञानतैं रहित पुरुषही कथन करै हैं शास्त्रअर्थके विवेकविज्ञानवाले पंडित पुरुष ता वचनकूं कथन करते नहीं । शंका—हे भगवन् ! ते पंडितपुरुष जो इस प्रकारका वचन नहीं कहते तौ तिन पंडित पुरुषोंका कौन मत है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन पंडित पुरुषोंके मतका कथन करै हैं (एकमप्यास्थितः इति) हे अर्जुन ! तिन पंडितपुरुषोंका तौ यह मत है—ते निष्कामकर्म तथा तिन कर्मोंका संन्यास या दोनोंविषे एकही कर्मयोगकूं अथवा संन्यासकूं जो पुरुष आपणे अधिकारके अनुसार शास्त्रकी विधिपूर्वक करै है सो अधिकारी पुरुष आत्मज्ञानकी उत्पत्तिद्वारा तिन दोनोंके एकही मोक्षरूप फलकूं प्राप्त होवै है । यातैं ता निष्कामकर्मकर्त्ता पुरुषविषे सो संन्यासीपणा संभव होइसकै है ॥ ४ ॥

हे भगवन्! संन्यास तथा कर्मयोग या दोनोंविषे एकके अनुष्ठान करणेतें यह अधिकारी पुरुष तिन दोनोंके फलकूं किसप्रकार प्राप्त होवैहै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं-

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ॥
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥५॥

(पदच्छेदः) यत् । सांख्यैः । प्राप्यते । स्थानम् । तत् । योगैः । अपि । गम्यते । एकम् । सांख्यम् । च । योगम् । च । यः । पश्यति । सः । पश्यति ॥ ५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सांख्यपुरुषोंनें जिस स्थानकूं प्राप्त होईताहै तिस स्थानकूं योगिपुरुषोंनें भी प्राप्त होईताहै यातें जो अधिकारीपुरुष सांख्यकूं तथा योगकूं एकरूप देखैताहै सोईही पुरुष सम्यक्देखैहै ॥ ५ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! ज्ञाननिष्ठाकरिकै युक्त जे संन्यासी है ते संन्यासी इस जन्मविषे कर्मोंके अनुष्ठानतें रहित हुएभी पूर्वजन्मके कर्मोंकरिकै शुद्धअंतःकरणवालेहैं । ऐसे शुद्धअंतःकरणवाले संन्यासियोंनें श्रवणमननादि पूर्वक ज्ञाननिष्ठाकरिकै जिस मोक्षरूप स्थानकूं प्राप्त होईताहै इहां जिसविषे स्थित हुआ यह विद्वान् पुरुष कदाचित्भी पुनरावृत्तिकूं प्राप्त होवे नहीं ताका नाम स्थान है ऐसा स्थानरूप अविद्याकी निवृत्तिपूर्वक अद्वितीय निर्गुणब्रह्मभावकी प्राप्तिरूप मोक्षही है ता मोक्षतें भिन्न जितने ब्रह्मलोक वैकुंठलोक गोलोक स्वर्गलोकइत्यादिक लोकहैं तिन लोकोंकूं प्राप्तहुआभी यह पुरुष पुनः जन्ममरणादिरूप आवृत्तिकूं प्राप्त होवैहै । यह वार्ता श्रीभगवाननें आपही (आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन) इस वचनकरिकै स्पष्ट करीहै। यातें तिन ब्रह्मलोकादिकोंका इहां स्थान शब्दकरिकै ग्रहणहोइ सकैनहीं। ऐसा ब्रह्मरूप मोक्ष यद्यपि इस अधिकारी पुरुषकूं नित्यही प्राप्त है तथापि अज्ञानकी आवरणशक्तिकरिकै अप्राप्तहुएकी न्याईं होइ रह्याहै महावाक्यजन्यतत्त्वसाक्षात्कारकरिकै जबी ता आवरणकी निवृत्ति होवैहै तबी

सो मोक्ष प्राप्तहुएकी न्याई प्राप्त कह्याजावे है। जैसे कंठविषे स्थित विस्मरणहुए भूषणकी ताके ज्ञानकरिकै पुनः प्राप्ति कही जावैहै इति । और फलकी इच्छातैं रहित होइकै केवल भगवत् अर्पणबुद्धिकरिकै करेहुए जे शास्त्रविहित नित्यनैमित्तिक कर्म हैं तिन कर्मोंका नाम योग है । सो निष्कामकर्मरूप योग जिन अधिकारी पुरुषोंविषे विद्यमान होवै तिन अधिकारी पुरुषोंका नाम योगी है। ऐसे योगीपुरुषोंनैंभी इस जन्मविषे अथवा दूसरे जन्मविषे अंतःकरणकी शुद्धिकरिकै संन्यासपूर्वक श्रवणादिकोंके करिकै प्राप्त भई जा ज्ञाननिष्ठा है ता ज्ञाननिष्ठा करिकै तिसी मोक्षरूप स्थानकूं प्राप्त होईता है । इसप्रकार सर्व कर्मोंके त्यागरूप संन्यासका तथा निष्कामकर्मयोगका एकही मोक्षरूप फल है । यातैं जो अधिकारी पुरुष ता सांख्यनामा संन्यासकूं तथा निष्कामकर्मयोगकूं एकरूपकरिकै देखैहै,सो अधिकारी पुरुषही यथार्थ देखैहै और जो पुरुष तिन दोनोंकूं भिन्नभिन्न देखै है सो पुरुष यथार्थदर्शी कह्या जावै नहीं किंतु सो पुरुष विपरीतदर्शी कह्याजावैहै । इहां श्रीभगवान्का यह अभिप्राय है। जिन अधिकारी पुरुषोंविषे अबी संन्यासपूर्वक ज्ञाननिष्ठा देखणेमें आवैहै और कर्मनिष्ठा देखणेविषे आवती नहीं तिन पुरुषोंविषे ता संन्यासपूर्वक ज्ञाननिष्ठारूप लिंगकरिकै पूर्व अनेकजन्मोंविषे भगवत् अर्पित कर्मनिष्ठा अनुमान करीजावै है । काहेते कारणतैं विना कार्यकी उत्पत्ति होवै नहीं सो कारण जो कदाचित् प्रत्यक्ष प्रतीत नहीं होता होवै तौ ता कार्यरूप लिंगतै ता कारणका अनुमान कऱ्या जावैहै । जैसे वर्षाका कार्यरूप जा नदीके जलकी वृद्धि है ता जलकी वृद्धिरूप हेतुतैं देशांतरविषे वर्षारूप कारणका अनुमान करचा जावै है । तैसे इस जन्मके संन्यासपूर्वक ज्ञाननिष्ठारूप हेतुकरिकै इसतैं पूर्वजन्मोंविषे सा कर्मनिष्ठा अनुमान करीजावैहैं । और जिन अधिकारी पुरुषोंविषे अबी भगवत्अर्पित कर्मनिष्ठा देखणेमें आवैहै और संन्यासपूर्वक ज्ञाननिष्ठा देखणेमें आवती नहीं तिन पुरुषोंविषे ता कर्मनिष्ठारूप लिंगकरिकै आगे होणेहारी संन्या-

सपूर्वक ज्ञाननिष्ठा अनुमान करी जावै है । काहेतैं जहां कारणसामग्री होवै है तहां कार्य अवश्यकरिकै उत्पन्न होवैहै । यातैं ता कारणसामग्रीतैं भावी कार्यका अनुमान कऱ्याजावैहै । जैसे मेघोंकी रचनाविशेषकरिकै भावी वर्षाका अनुमान होवै है । तैसे ता भगवत् अर्पित कर्मनिष्ठाकरिकै भावी ज्ञाननिष्ठा अनुमान करी जावै है । यातैं अज्ञानीमुमुक्षुजननैं अंतःकरणकी शुद्धिवासतै प्रथम निष्कामकर्मही करणे, संन्यास प्रथम करणा नहीं । सो संन्यास तौ तीव्र वैराग्यके प्राप्तहुए आपेही सिद्ध होवैगा ॥ ५ ॥

हे भगवन् ! ज्ञाननिष्ठाका हेतु होणेतै सो संन्यास तौ अवश्यकरिकै करणे योग्यही है । यातैं जैसे शुद्ध अंतःकरणवाले पुरुषनैं ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्तिवासतैं सो संन्यास करीता है तैसे अशुद्ध अंतःकरणवाले पुरुषनैंभी सो संन्यासही प्रथम किसवासतै नहीं करीता है । किंतु ता अशुद्ध अंतःकरणवाले पुरुषनैंभी ता ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्तिवासतैं प्रथम संन्यासही कऱ्या चाहिये । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं-

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ॥
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाधिगच्छति ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) संन्यासः । तु । महाबाहो । दुःखम् । आप्तुम् । अयोगतः । योगयुक्तः । मुनिः । ब्रह्म । नचिरेण । अधिगच्छति ॥ ६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! कर्मयोगतैं विना कऱ्याहुआ संन्यास तौ दुःखकूंही प्राप्त करै है और कर्मयोगयुक्त पुरुष तौ संन्यासी होइकै ब्रह्मकूं शीघ्रंही साक्षात्कार करै है ॥ ६ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! अंतःकरणकी शुद्धि करणेहारे जे शास्त्रविहित नित्यनैमित्तिक कर्म हैं तिन कर्मोंकूं न करिकै जो पुरुष केवल हठमात्रतैं प्रथम संन्यासकूंही करै है सो हठपूर्वक कऱ्या हुआ संन्यास इसं

पुरुपकूं केवल दुःखकीही प्राप्ति कर है । ता संन्यासतैं इस पुरुपकूं किंचित्मात्रभी सुख होवै नहीं । काहेतैं ता पुरुपका अंतःकरण शुद्ध हुआ नहीं । यातैं संन्यासका फलरूप जा ज्ञाननिष्ठा है सा ज्ञाननिष्ठा तौ ता अशुद्धअंतःकरणवाले संन्यासीकूं कदाचित्भी प्राप्त होवै नहीं। और जे निष्कामकर्म अंतःकरणकी शुद्धि करैं हैं तिन कर्मोंके करणेविषे ता संन्यासीका अधिकार है नहीं । यातैं कर्मनिष्ठा तथा ज्ञाननिष्ठा या दोनों निष्ठावोंतैं भ्रष्ट होणेतैं सो अशुद्धअंतःकरणवाला संन्यासी महान् संकटकूं प्राप्त होवै है इति । और जो पुरुष अंतःकरणकी शुद्धि करणेहारे निष्कामकर्मयोगकरिकै युक्त है सो पुरुष तौ शुद्ध अंतःकरणवाला होणेतैं मननशील संन्यासी होइकै सत् चित आनंदस्वरूप प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मकूं शीघ्रही साक्षात्कार करै है। यह सर्व अर्थ (न कर्मणामनारंभान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते । न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति॥ इस श्लोककरिकै पूर्वही कथन करि आये है यातैं कर्मयोग तथा कर्मोंका संन्यास या दोनोंकूं एक फलकी हेतुताके हुएभी अशुद्धअंतःकरणवाले पुरुपकृत संन्यासतैं सो कर्मयोग अत्यंतश्रेष्ठ है यह जो पूर्व कथन कऱ्या सो युक्त है ॥ ६ ॥

हे भगवन् ! (कर्मणा बध्यते जंतुः) इत्यादिक वचनोंविषे तिन कर्मोंकूं बंधनकाही हेतु कथन कऱ्या है । यातैं कर्मयोगयुक्तपुरुष ब्रह्मकूं साक्षात्कार करै है यह आपका वचन असंगत है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं–

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेंद्रियः॥
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ७॥

(पदच्छेदः) योगयुक्तः । विशुद्धात्मा । विजितात्मा । जितेंद्रियः । सर्वभूतात्मभूतात्मा । कुर्वन् । अपि । न । लिप्यते ॥७॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष योगकरिकै युक्त है तथा विशुद्धआत्मा है तथा विजितात्मा है तथा जितेंद्रिय है तथा सर्वभूतोंका आत्मारूप है

आत्मा जिसका ऐसा पुरुष विन कर्मोंकूं करताहुआ भी नहीं लिपायमान होवै है ॥ ७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! भगवत् अर्पणता तथा फलकी इच्छातैं रहितपणा इत्यादिक गुणोंकरिकै युक्त जो शास्त्रविहित नित्यनैमित्तिक कर्म है ताका नाम योग है ता योगकरिकै युक्त जो पुरुष है सो योगयुक्त पुरुष प्रथम विशुद्धात्मा होवै है । इहां विशुद्ध है क्या रज तमतैं रहित है आत्मा क्या अंतःकरण जिसका ताका नाम विशुद्धआत्मा है। ऐसा विशुद्धआत्मा होइकै यह पुरुष विजितात्मा होवै । इहां आत्मा नाम देहका है सो देह वश करचा है जिसनैं ताका नाम विजितात्मा है। ऐसा विजित आत्मा होइकै यह अधिकारी पुरुष जितेंद्रिय होवै है । इहां आपणे वश करे हैं सर्व बाह्यइंद्रिय जिसनैं ताका नाम जितेंद्रिय है । इहां । (विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेंद्रियः) या तीन पदोंकरिकै श्रीभगवान्नैं यथाक्रमतैं मनोदंड, कायदंड, वागुदंड या तीन दंडोंयुक्त त्रिदंडीका कथनकऱ्या । यह वार्त्ता मनुनैंभी कथनकरी है । तहां श्लोक—(वाग्दंडोथ मनोदंडः कायदंडस्तथैव च। यस्यैते नियता दंडाः स त्रिदंडीति कथ्यते॥ अर्थ यह—वागुदंड, मनोदंड, कायदंड यह तीनदंड जिस पुरुषकूं नियमपूर्वक है सो पुरुष त्रिदंडी या नामकरिकै कह्याजावै है इति । इहां वाक् शब्द सर्व बाह्यइंद्रियोंका उपलक्षक है । ऐसे त्रिदंडी पुरुषकूं सर्वात्मज्ञान अवश्यकरिकै होवै है इस अर्थकूं श्रीभगवान् कहैं हैं(सर्वभूतात्मभूतात्मा इति)ब्रह्मातैं आदिलेके स्तंबपर्यंत जितनेक चेतनभूत हैं तथा आकाशादिक जितनेक अचेतनभूत हैं, तिन चेतन अचेतनरूप सर्वभूतोंका स्वरूपभूत है प्रत्यक् चेतन आत्मा जिसका ताका नाम सर्वभूतात्मा है । तात्पर्य यह—जैसे कुंडलकंकणादिक भूषणोंका सुवर्णही वास्तवस्वरूप होवैहै वैसे सर्व जडअजडप्रपंचका मैंही वास्तवस्वरूप हूं या प्रकार जो पुरुष सर्व प्रपंचकूं आपणा आत्मारूपकरिकै देखैहै सो परमार्थदर्शी विद्वान् पुरुष अन्य पुरुषोंकी दृष्टि करिकै तिन कर्मोंकूं करताहुआभी कर्तृत्वअभिमानके अभावतैं तिन कर्मों-

करिकै लिपायमान होवै नहीं । अर्थात् ते कर्म तिस विद्वान् पुरुषकूं बंधकी प्राप्ति करैं नहीं । जिसकारणतैं स्वदृष्टिकरिकै तिस विद्वान् पुरुषविषे सो कर्मोंका करतापणा है नहीं इति । इहां किसी टीकाविषे (सर्वभूतात्मभूतात्मा) इस पदका यह अर्थ कथन कर्‌याहै । सर्व यह शब्द आकाशादिक जड प्रपंचका वाचक है और आत्म यह शब्द अजडप्रपंचका वाचक है और सर्व आत्म या दोनों शब्दोंतैं उत्तर जो भूत यह शब्द है सो भूतशब्द स्वरूपका वाचक है । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया सर्वभूत तथा आत्मभूत है आत्मा जिसका ताका नाम सर्वभूतात्मभूतात्मा है । याप्रकारका अर्थ जो नही अंगीकार करिये किंतु सर्वभूतोंका आत्माभूत है आत्मा जिसका ताका नाम सर्वभूतात्मभूतात्मा है याप्रकारका जो अर्थ अंगीकार करिये तौ सर्वभूतात्मा इतनेमात्र कहणकरिकही वांछित अर्थकी सिद्धि होइसकै है । यातें आत्मभूत यह पद अधिक होवैगा इति । इसप्रकार प्रथम व्याख्यानविषे आत्मभूत इस पदकी अधिकतारूप दूषण देकरिकै किसी टीकाकारनैं यह अर्थ कथनकर्‌याहै । सो आत्मभूत यापदकी अधिकतारूप दूषण इस टीकाविषेभी प्राप्तहोवैहै । काहेतैं सर्व इस पदकरिकैंही संपूर्ण जडअजड प्रपंचका ग्रहण होइसकै है । वा सर्वपदका संकोचकरिकै केवल जडप्रपंचमात्रका वा सर्वशब्दकरिकै ग्रहण करणा संभवता नहीं है । यातैं (सर्वभूतात्मभूतात्मा या पदका भाष्यकारोंके अनुसारी प्रथम व्याख्यानही समीचीन है ॥ ७ ॥

अब इसी पूर्व उक्त अर्थकूं दो श्लोकोंकरिकै श्रीभगवान् स्पष्ट करैं हैं-

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ॥
पश्यञ्छृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्छ्वसन् प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ॥
इंद्रियाणींद्रियार्थेषु वर्त्तंत इति धारयन् ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) न । एव । किंचित् । करोमि । इति । युक्तः । मन्येत । तत्त्ववित् । पश्यन् । शृण्वन् । स्पृशन् । जिघ्रन् । अश्नन् । गच्छन् । स्वपन् । श्वसन् । प्रलपन् । विसृजन् । गृह्णन् । उन्मिषन् । निमिषन् । अपि । इंद्रियाणि । इंद्रियार्थेषु । वर्तंते । इति । धारयन् ॥ ८ ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो योगयुक्त परमार्थदर्शी पुरुप देखताहुआ भी तथा श्रवण करताहुआभी तथा स्पर्शकरताहुआभी तथा गंधकूं ग्रहण करताहुआभी तथा भक्षण करताहुआभी तथा गमन करताहुआभी तथा निद्रा करताहुआभी तथा श्वासकूं उठावताहुआभी तथा शब्दकूं उच्चारणकरताहुआभी तथा मलका परित्याग करताहुआभी तथा ग्रहण करताहुआभी तथा उन्मेषकूं करताहुआभी तथा निमेषकूं करताहुआभी यह इंद्रियादिकही आपणेआपणे रूपादिक अर्थोविषे प्रवर्त्त होवैहैं इसप्रकार मानताहुआ मैं किंचित्मात्र भी नहीं करताहूं यांप्रकार मानैहैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जो पुरुष युक्त है अर्थात् निरुद्धचित्तवाला है । तथा जो पुरुष तत्त्ववित् है अर्थात् परमार्थदर्शी है अथवा जो पुरुष प्रथम तौ निष्कामकर्मयोगकरिकै युक्त है । तिसतैं अनन्तर अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा तत्त्ववेत्ता हुआहै । ऐसा परमार्थदर्शी पुरुष चक्षुआदि पंचज्ञान इंद्रियोंकरिकै तथा वागादिक पंच कर्मइंद्रियों करिकै तथा प्राणादिक पंचप्राणोंकरिकै तथा बुद्धिआदिक च्यारि अंतःकरणोंकरिकै शास्त्रविहित रूपादिकविषयोंकूं ग्रहण करताहुआभी तिन रूपादिकविषयोंविषे यह इंद्रियादिकही प्रवर्त्त होवै है मैं असंग आत्मा इन रूपादिक विषयोंविषे कदाचित्भी प्रवृत्त होतानहीं । इसप्रकार निश्चयकरताहुआ मैं असंग आत्मा किंचित्मात्रभी नहीं करताहूं यांप्रकार सो तत्त्ववेत्तापुरुष सर्वदा मानैहै इति । इहां (पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् अश्नन्) या पंच शब्दोंकरिकै श्रीभगवान्नैं यथाक्रमतैं चक्षु, श्रोत्र, त्वक्, घ्राण, रसन या पंचज्ञानइंद्रियोंके व्यापार कथन करेहैं। तहां रूपादिकोंका दर्शन चक्षुइंद्रि-

यका व्यापार है । और शब्द श्रवण श्रोत्रइंद्रियका व्यापार है । और स्पर्शका ग्रहण त्वक्इंद्रियका व्यापार है । और गंधका ग्रहण घ्राण इंद्रियका व्यापार है । और रसका ग्रहण रसनइन्द्रियका व्यापार है इति । और (गच्छन् प्रलपन् विसृजन् गृह्णन्) या च्यारि पदोंकरिकै श्रीभगवान्नैं यथाक्रमतैं पाद, वाक्, पायु, हस्त या च्यारि कर्मइंद्रियोंके व्यापार कथन करेहैं तहां गमन पादइंद्रियका व्यापार है । और वचनका उच्चारण वाक्इंद्रियका व्यापार है और मलका विसर्ग पायु इंद्रियका व्यापार है । और ग्रहण हस्त इंद्रियका व्यापार है । यह च्यारों व्यापार उपस्थ इंद्रियके विषय आनंदरूप व्यापारकाभी उपलक्षक है । और (श्वसन्) या पदकरिकै कथन कन्या जो प्राणका श्वासरूप व्यापार है सो श्वासरूप व्यापार प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान या पंचप्राणोंके व्यापारोंकाभी उपलक्षक है । और (उन्मिषन् निमिषन्) या पदकरिकै कथन कन्या जो उन्मेषनिमेषरूप व्यापार है सो व्यापार नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय या पांचों प्राणोंके व्यापारोंकाभी उपलक्षक है । और (स्वपन्) या पदकरिकै कथन कन्या जो बुद्धिका निद्रारूप व्यापार है सो व्यापार मन बुद्धि चित्त अहंकार या च्यारि अंतःकरणके व्यापारोंकाभी उपलक्षक है । इसप्रकार सो तत्त्ववेत्ता पुरुष सर्व व्यापारोंविषे आत्मांकूं अकर्तारूपही देखै है । इस कारणतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष तिन इंद्रियादिकोंकरिकै तिन सर्व व्यापारोंकूं करता हुआभी तिन व्यापारोंकरिकै बंधायमान होवै नहीं ॥ ८ ॥ ९ ॥

हे भगवन् ! विद्वान् पुरुष कर्तृत्व अभिमानके अभावतैं सर्वकर्मोंकूं करताहुआभी लिपायमान होवै नहीं यह अर्थ पूर्व आपनैं कथन कन्या। यातैं यह जान्याजावै है, अविद्वान् पुरुष तौ कर्तृत्व अभिमानके वशतैं तिन कर्मोंकूं करताहुआ अवश्य करिकै लिपायमान होवाहोवैगा यातैं तिन कर्मोंविषे प्रवृत्तहुए ता विद्वान पुरुषकूं सा संन्यासपूर्वक ज्ञाननिष्ठ

किसप्रकार प्राप्त होवैंगी ? किंतु नहीं प्राप्त होवैंगी। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं-

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः ॥
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवांभसा ॥१०॥

(पदच्छेदः) ब्रह्मणि। आधाय। कर्माणि। संगम्। त्यक्त्वा। करोति। यः। लिप्यते। न। सः। पापेन। पद्मपत्रम्। इव। अंभसा ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष परमेश्वरविषे समर्पण करिकै तथा फलकी इच्छाकूं परित्याग करिके कर्मोंकूं करै है सो पुरुष जलकरिकै पद्मपत्रकी न्याई कर्मकरिकै नहीं लिपायमान होवै है ॥ १० ॥

भा०टी०-हे अर्जुन ! जो पुरुष परमेश्वरविषे लौकिक वैदिक सर्व कर्मोंका समर्पण करिकै तथा तिन कर्मोंके स्वर्गादिक फलोंकी इच्छाका परित्याग करिकै जैसे भृत्य आपणे स्वामिवास्तै सर्वकर्मोंकूं करै है तैसे मैंभी केवल परमेश्वरकी प्रसन्नतावास्तैही सर्वकर्मोंकूं करताहूं या प्रकारके अभिप्रायकरिकै जो पुरुष तिन लौकिक वैदिक सर्व कर्मोंकूं करैहै सो पुरुषभी तिस विद्वान् पुरुषकी न्याईं तिन पुण्यपापकर्मोंकरिकै लिपायमान होवै नहीं। जैसे पद्मपत्रके ऊपरि पाया जो जल है ता जलकरिकै सो पद्मका पत्र लिपायमान होवै नहीं तैसे भगवत् अर्पण बुद्धिकरिकै करेहुए जे कर्म हैं तिन कर्मोंकरिकै यह अधिकारी पुरुष लिपायमान होवै नहीं। अर्थात् ते निष्कामकर्म इस अधिकारी पुरुषके बंधका हेतु होवै नहीं किंतु ते निष्कामकर्म इस अधिकारी पुरुषके अंतःकरणकी शुद्धिकाही हेतु होवैं हैं ॥ १० ॥

अब इसी अर्थकूं श्रीभगवान् स्पष्टकरिकै प्रतिपादन करैं है-

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिंद्रियैरपि ॥
योगिनः कर्म कुर्वंति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥११॥

(पदच्छेदः) कायेन। मनसा। बुद्ध्या। केवलैः। इंद्रियैः। अपि। योगिनः। कर्म। कुर्वंति। संगम्। त्यक्त्वा। आत्मशुद्धये ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अधिकारी जन फलकी इच्छाकूं परित्याग करिकै अंतःकरणकी शुद्धिवासतै केवल शरीरकरिकै तथा मनकरिकै तथा बुद्धिकरिकै तथा इंद्रियोंकरिकै कर्मकूं ही करैहैं ॥ ११ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! मोक्षकी इच्छावाले अधिकारी जन आपणे अंतःकरणकी शुद्धिकरणेवासतै स्वर्गादिकफलकी इच्छाका परित्याग करिकै केवल शरीरकरिकै तथा केवल मनकरिकै तथा केवल बुद्धिकरिकै तथा केवल इंद्रियोंकरिकै आपणे वर्णआश्रमके अनुसार नित्यनैमित्तिक कर्मोंकूंही करै है। इहां इन कर्मोंकूंही करै हैं। इहां इन कर्मोंकूं मैं ईश्वरकी प्रसन्नतावासतैही करताहूं कोई आपणे स्वर्गादिक फलोंकी प्राप्तिवासतै मैं इन कर्मोंकूं करता नहीं याप्रकारका जो ममताका अभाव है यहही शरीर, मन, बुद्धि, इंद्रिय इन च्यारोंविषे केवलरूपता है ॥ ११ ॥

हे भगवन् ! कर्तृत्वअभिमानके समानहुएभी तिसीही कर्मोंकरिकै कोईक पुरुष तौ मुक्त होवै है और कोईक पुरुष बंधायमान होवै है याप्रकारकी विषमताविषे कौन हेतु है ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहै हैं–

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शांतिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते॥ १२ ॥

(पदच्छेदः) युक्तः। कर्मफलम्। त्यक्त्वा। शांतिम्। आप्नोति। नैष्ठिकीम्। अयुक्तः। कामकारेण। फले। सक्तः। निबध्यते १२

(पदार्थः) हे अर्जुन ! युक्तपुरुष कर्मके फलकूं परित्यागकरिकै कर्मोंकूं करताहुआ सत्त्वशुद्धिक्रमतै उत्पन्नहुई मोक्षरूपशांतिकूं प्राप्त होवै है

और अयुक्तपुरुष तौ कामनाकरिकै फलविषे आसक्तहुआ बंधायमान होवै है ॥ १२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! यह सर्वकर्म परमेश्वरकी प्रसन्नतावास्तैही हैं हमारे फलवास्तै यह कर्म नहीं है या प्रकारके अभिप्रायवान् पुरुषका नाम युक्त है । याप्रकारका युक्त पुरुष तिन कर्मोंके स्वर्गादिक फलोंका परित्याग करिकै तिन नित्यनैमित्तिक कर्मोंकूं करताहुआ मोक्षरूप शांति कूंही प्राप्त होवै है । कैसी है सा मोक्षरूपशांति नैष्ठिकी है अर्थात् प्रथम अंतःकरणकी शुद्धि तिसतैं अनंतर, नित्यअनित्यवस्तुका विवेक तिसतैं अनंतर, संन्यासपूर्वक ज्ञाननिष्ठा इस क्रमकरिकै जा मोक्षरूपशांति उत्पन्नहुई है ऐसी नैष्ठिकी मोक्षरूप शांतिकूं सो युक्तपुरुष प्राप्त होवै है । और जो पुरुष अयुक्त है अर्थात् यह सर्वकर्म परमेश्वरवास्तैही हैं हमारे फलवास्तै नहीं हैं याप्रकारके अभिप्रायतैं जो पुरुष रहित है सो अयुक्तपुरुष तौ कामनाकरिकै तिन कर्मोंके स्वर्गादिक फलोंविषे मैं इस स्वर्गादिकोंकी प्राप्तिवास्तै कर्मोंकूं करताहूं याप्रकार आसक्त हुआ तिन कर्मोंकरिकै बंधायमानही होवै है अर्थात् तिन सकामकर्मोंकरिकै सो अयुक्तपुरुष संसाररूप बंधकूंही प्राप्त होवै है । यातैं हे अर्जुन ! तूंभी युक्तहुआ तिन कर्मोंकूं कर ॥ १२ ॥

तहां अशुद्ध चित्तवाले पुरुषकूं केवल संन्यासतैं कर्मयोगही श्रेष्ठ है इस पूर्व उक्त अर्थकूं इतनेपर्यंत विस्तारकरिकै कथन करचा । अब शुद्धचित्तवाले पुरुषकूं सो सर्वकर्मोंका संन्यासही श्रेष्ठ है इस अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ॥
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) सर्वकर्माणि । मनसा । संन्यस्य । आस्ते । सुखम् । वशी । नवद्वारे । पुरे । देही । न । एव । कुर्वन् । न । कारयन् ॥ १३॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्वकर्मोंकूं मनकरिकै परित्याग करिकै देहतैं भिन्न आत्मदर्शी वशीपुरुष नवद्वार वाले इस देहविषे सुखपूर्वक स्थित होवै है तथा नहीं किसी कार्यकूं करताहुआ तथा नहीं किसी कार्यकूं करावताहुआ स्तिथै होवै ॥ १३ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! नित्य नैमित्तिक काम्य प्रतिषिद्ध यह च्यारि प्रकारके कर्म होवै हैं तिन सर्वकर्मोंका (कर्मण्यकर्म यः पश्येत्) इस श्लोकविषे कथन कऱ्या जो अकर्त्ता आत्मस्वरूपका, सम्यक्दर्शन है तहां सम्यक् दर्शनयुक्त मनकरिकै परित्याग करिकै प्रारब्धकर्मके वशतैं सो संन्यासी स्थित होवै है । तहां सो संन्यासी क्या दुःख पूर्वक स्थित होवै है ? ऐसी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं (सुखमिति) हे अर्जुन ! शरीरका व्यापार तथा वागादिक इंद्रियोंका व्यापार तथा मनका व्यापार यह तीन व्यापारही इन प्राणियोंकूं आयासकी प्राप्ति करैं है । ते आयासके हेतुरूप तीनों व्यापार तिस संन्यासीविषे हैं नही । यातैं सो संन्यासी ता आयासतैं रहित हुआ ही स्थित होवै है । शंका—हे भगवन् ! ता संन्यासीके शरीर इंद्रिय मन यह तीनों स्वतंत्र होइकै आपणे आपणे व्यापारविषे किस वासतै नहीं प्रवृत्त होवे ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (वशी इति) हे अर्जुन ! तिस संन्यासीनैं यह कार्य कारणरूप संघात आपणे वश कऱ्या है । यातैं ता संन्यासीके शरीर इंद्रिय मन यह तीनों स्वतंत्र होइकै किसी व्यापारविषे प्रवृत्त होवै नहीं शंका—हे भगवन् ! ऐसा सर्व व्यापारतैं रहित संन्यासी किस स्थानविषे स्थित होव है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (नव-द्वारे पुरे इति) दो श्रोत्र दो चक्षु दो नासिका एक मुख यह सप्तद्वार तौ उपरि शिरविषे रहैं हैं और पायु उपस्थ यह दो द्वार नीचे रहैं हैं इन नवद्वारोंकरिकै विशिष्ट जो यह स्थूलशरीर है ता स्थूलशरीररूप पुर-विषे सो संन्यासी रहै है । शंका—हे भगवन् ! संन्यासी असंन्यासी विद्वान् अविद्वान् इत्यादिक सर्वप्राणीमात्र इस नवद्वारवाले देहविषेही

रहैं हैं । केवल सो संन्यासीही इस देहविषे रहै नहीं । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (देही) हे अर्जुन ! सो विद्वान् संन्यासी इस नवद्वारवाले देहविषे स्थित हुआभी इस देहतैं आपणे आत्माकूं भिन्नरूपकरिकै देखै है। देहरूप आत्माकूं देखता नहीं । याकारणतैं जैसे प्रवासी पुरुष किसी परगृहविषे निवास करैहै, परंतु ता गृहकी वृद्धिहानिकरिकै सो प्रवासी पुरुष हर्षशोककूं प्राप्त होवै नहीं। तैसे सो विद्वान् संन्यासीभी इस शरीरके पूजनपराभवकरिकै हर्षविषादकूं प्राप्त होवै नहीं, किंतु अहंताममतातैं रहित हुआ इस देहविषे स्थित होवै है । और अज्ञानी पुरुष तौ ता देहके तादात्म्य अभिमानतै आपणेकूं देह रूपही मानै है । देहरूप आपणेकूं मानता नहीं । या कारणतैंही सो अज्ञानीपुरुष इस देहके अधिकरणकूंही आत्माका अधिकरण मानता हुआ मैं इस गृहविषे स्थित हूं मैं इस भूमिविषे स्थित हूं मैं इस आसनविषे स्थित हूं या प्रकारही आपणेकूं मानै है इसमैं देहविषे स्थित हूं या प्रकार सो अज्ञानी पुरुष आपणेकूं मानता नहीं । जिस कारणतैं ता अज्ञानी पुरुषनैं इसदेहतैं भिन्नकरिकै आपणे आत्माकूं जान्या नहीं और इस संघाततैं भिन्न करिकै आत्माकूं जानणेहारा जो सर्वकर्मोंका संन्यासी है सो विद्वान् संन्यासी तौ मैं इस देहविषे स्थित हूं या प्रकारही आपणेकूं मानै है। देहरूप आपणेकूं मानता नहीं । या कारणतैं ही अविक्रिय आत्माविषे अविद्याकरिकै आरोपित जो देहादिकोंके व्यापार हैं तिन सर्वव्यापारोंका जो तत्त्वसाक्षात्कारकरिकै बाध है सोईही सर्वकर्मोंका संन्यास कह्याजावै है इस प्रकारकी अज्ञानी पुरुषतैं विलक्षणताकूं अंगीकार करिकैही श्रीभगवान्नैं ता विद्वान् पुरुषका (नवद्वारे पुरे आस्ते) यह विशेषण कथन कऱ्या है । शंका—हे भगवन् ! जैसे नौकाके चलनरूप व्यापारका तीरस्थ वृक्षविषे आरोपण होवै है तैसे आत्माविषे आरोपित जे देहादिकोंके व्यापार हैं तिन व्यापारोंका विद्याकरिकै बाध हुएभी आत्माविषे आपणे व्यापारकरिकै करवापणा होवैगा। तथा देहादि-

कोंके व्यापारविषे प्रयोजक करतापणा होवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (नैव कुर्वन्न कारयन् इति) हे अर्जुन ! यह आत्मादेव आप किसी व्यापारकूं करता हुआ स्थित होवै नहीं। तथा प्रेरणा करिकै देह इंद्रियादिकोंतैं किसी व्यापारकूं करावताहुआभी स्थित होवै नहीं, किंतु उदासीन हुआ स्थित होवै है, इति। और किसी टीकाविषे तौ (नवद्वारे पुरे) या वचनका यह अर्थ कऱ्या है। श्रोत्र त्वक् चक्षु रसना घ्राण प्राण बुद्धि अहंकार चित्त यह नवद्वार हैं जिसविषे ऐसे इस शरीररूप पुरविषे सो विद्वान् पुरुष स्थित होवै है। तात्पर्य यह—जैसे लोकप्रसिद्ध पुरके राजाकूं ता पुरके द्वारोंकरिकैही बाहरले विषय प्राप्त होवै हैं तैसे इस शरीररूप पुरका अधिपति जो यह जीवात्मारूप राजा है ता जीवात्माके भोगवासतै बाहरले शब्दादिक विषय तिन श्रोत्रादिक द्वारोंकरिकैही भीतर प्रवेश करै हैं। यातैं ते श्रोत्रादिक प्रसिद्धपुरके द्वारोंकी न्याईं द्वाररूप हैं ॥ १३ ॥

हे भगवन् ! जैसे देवदत्तनामा पुरुषविषे वास्तवतैं स्थित जा गमनरूपक्रिया है सा गमनरूप क्रिया ता देवदत्त पुरुषके स्थितकालविषे होती नहीं तैसे आत्माविषे वास्तवतैं स्थित जो कर्तृत्व तथा कारयितृत्व है सो कर्तृत्व तथा कारयितृत्व संन्यासकालविषे ता आत्माविषे होता नहीं। यह आपके कहणेका तात्पर्य है। अथवा जैसे आकाशविषे तल मलिनतादिक वास्तवतैं हैं नहीं तैसे आत्माविषेभी सो कर्तृत्व तथा कारयितृत्व वास्तवतैं हैंही नहीं। यह आपके कहणेका तात्पर्य है। इस प्रकारके अर्जुनके संशयकी निवृत्ति करणेवासतै श्रीभगवान् अंत्य कोटीकूं अंगीकार करिकै कहैं हैं—

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ॥
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ १४ ॥

(पदच्छेदः) न। कर्तृत्वम्। न। कर्माणि। लोकस्य। सृजति। प्रभुः। न। कर्मफलसंयोगम्। स्वभावः। तु। प्रवर्तते ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह आत्मादेव देहादिकोंके कर्तृत्वकूं नहीं उत्पन्न करै है तथा कर्मोंकूंभी नहीं उत्पन्न करै है तथा कर्मोंके फलके संबंधकूंभी नहीं उत्पन्न करै है किंतु अज्ञानरूप मायाही सर्वकार्यके करणेविषे प्रवृत्त होवै है ॥ १४ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! देहइंद्रियादिक सर्वसंघातका स्वामीरूप जो यह आत्मादेव है सो यह आत्मादेव तिन देहइंद्रियादिकोंके कर्तृत्वकूं उत्पन्न करता नहीं अर्थात् तुम इस कार्यकूं करो या प्रकारकी प्रेरणा करिकै यह आत्मादेव किसीभी कार्यकूं करावता नहीं । यातें इस आत्मादेवविषे प्रयो-जककर्तापणारूप कारयितृत्व संभवै नहीं । और तिन देहइंद्रियादिकोंकूं वांछित जे घटादिरूप कर्म हैं तिन घटादिकरूप कर्मोंकूंभी यह आत्मादेव उत्पन्न करता नहीं अर्थात् यह आत्मादेव तिन घटादिकपदार्थोंका कर्त्ताभी होवै नहीं । यातें इस आत्मादेवविषे कर्तृत्वभी है नहीं । और कर्मोंकूं करणेहारे लोकोंका जो तिसतिस कर्मफलके साथि संबंध है तिसकर्म फलके संबंधकूंभी यह आत्मादेव उत्पन्न करता नहीं अर्थात् यह आत्मा-देव नही तौ किसीकूं फलके भोगावणेहारा है, तथा नहीं आप फलकूं भोक्ता है । यातें इस आत्मादेवविषे भोजयितृत्व तथा भोक्तृत्वभी संभवै नहीं । इसी अर्थकूं (शरीरस्थोपि कौंतेय न करोति न लिप्यते) यह गीताका वचनभी कथन कऱ्याहै । शंका-हे भगवन् ! यह आत्मादेव जबी आप किंचितमात्रभी कार्यकूं करता नहीं तथा करावताभी नहीं तबी दूसरा कौन कार्यकूं करताहुआ तथा करावताहुआ प्रवृत्त होवैहै ? ऐसी अर्जु-नकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (स्वभावस्तु प्रवर्त्तते इति) हे अर्जुन ! अज्ञानरूप जा दैवीमाया है जिस मायाकूं प्रकृतिभी कहैहैं सा मायारूप प्रकृतिही कार्यके करणेविषे तथा करावणेविषे प्रवृत्त होवैहै इति । इहां किसी टीकाविषे (स्वभावस्तु प्रवर्त्तते) इस वचनका यह अर्थ कथन कऱ्याहै । यह चैतन्यस्वरूप आत्मा सूर्यकी न्याईं सर्वका प्रकाशमानही है । किसी कर्मादिकोंविषे प्रवर्त्तक है नहीं, किंतु जिसजिस वस्तुका जैसा-

जैसा स्वभाव होवैहै सो स्वभावही तिसतिसप्रकार प्रवृत्त होवैहै । जैसे एकही सूर्यके उदयहुए कमलोंका तौ स्वभाववैंही विकास होवैहै और कुमुदोंका स्वभाववैंही संकोच होवैहै सो सूर्य किसीका विकास तथा संकोच करता नहीं । तैसे एकही आत्माके प्रकाशमान हुए घटादिक पदार्थ तौ चेष्टाकूं करैं नहीं और मनुष्यादिक तौ नानाप्रकारकी चेष्टाकूं करैं हैं. सो आत्मादेव किसीभी पदार्थकूं प्रवृत्त तथा निवृत्त करता नहीं ॥ १४ ॥

हे भगवन् ! ईश्वर तौ प्रेरणा करिकै जीवके प्रति कर्मोंके करावणेहारा है और जीव तौ तिन कर्मोंके करणेहारा है । याकारणतें वा ईश्वरविषे तौ कारयितृत्व है । और वा जीवविषे कर्तृत्व है यह वार्त्ता श्रुतिविषे तथा स्मृतिविषे कथन करीहै । तहां श्रुति-(एष उ ह्येव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते एष उ ह्येवासाधु कर्म कारयति तं यमधो निनीषित इति ।) अर्थ यह-यह परमेश्वर जिस पुरुषकूं इस लोकतें ऊपरि स्वर्गादिक लोकोंविषे लेजाणेकी इच्छा करैहै तिस पुरुषकूं तौ प्रेरणाकरिकै पुण्यकर्म करावैहै और यह परमेश्वर जिस पुरुषकूं नरकादिक नीचलोकोंविषे लेजाणेकी इच्छा करैहै तिस पुरुषकूं प्रेरणाकरिकै पापकर्म करावैहै इति । यह श्रुति ईश्वरविषे तौ पुण्यपापकर्मोंका कारयितृत्व कथन करैहै । और जीवविषे तिन पुण्यपापकर्मोंका कर्तृत्व कथन करैहै । इसी अर्थकूं स्मृतिभी कथनकरैहै । तहां स्मृति-(अज्ञो जंतुरनीशोयमात्मनः सुखदुःखयोः । ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ।) अर्थ यह-यह अज्ञानीजीव आपणे सुखविषे तथा दुःखविषे असमर्थही है, किंतु ईश्वरकरिकै प्रेरणा कऱ्या हुआ यह जीव आपणे पुण्यपापके वशतें स्वर्ग नरकादिकोंकूं प्राप्त होवैहै इति । और जो पुरुष पुण्यपापकर्मोंका कर्त्ता होवैहै तथा जो पुरुष प्रेरणाकरिकै वा पुण्यपापकर्मके करावणेहारा होवैहै, तिन दोनोंकूंही वा पुण्यपापकर्मोंका लेप अवश्यकरिकै होवैहै ।

यातैं जीवविषे तौ कर्त्तापणेकरिकै तथा ईश्वरविषे कारयितापणेकरिकै ता पुण्यपापकर्मका लोप अवश्यकरिकै होवैगा। यातैं यह आत्मादेव न करताहै न करावताहै, किंतु यह प्रकृतिरूप स्वभावही सर्वकार्यांविषे प्रवृत्त होवैहै, यह आपका कहणा श्रुति स्मृतिवैं विरुद्ध होणेतैं असंगत है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं–

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ॥
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यंति जंतवः ॥१५॥

(पदच्छेदः) न । आदत्ते । कस्यचित् । पापम् । न च । एव । सुकृतम् । विभुः । अज्ञानेन । आवृतम् । ज्ञानम् । तेन । मुह्यंति । जंतवः ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! परमेश्वर किसी भी जीवके पापकूं नहीं ग्रहण करैहै तथा पुण्यकूं भी नहीं ग्रहण करैहै किंतु अज्ञानकरिकै आवृत जो ज्ञान है तिसकरिकै यह जीव मोहकूं प्राप्त होवै है ॥ १५ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! सर्वत्र व्यापक होणेतैं निष्क्रिय जो परमेश्वरहै सो परमेश्वर किसीभी जीवके पापकूं तथा पुण्यकूं ग्रहण करता नहीं । काहेतैं परमार्थदृष्टिकरिकै इस जीवविषे तौ तिन पुण्यपाप कर्मोंका कर्त्तापणा नहीं है और ईश्वरविषे तिन पुण्यपाप कर्मोंका कारयितापणा नहीं है । शंका– हे भगवन् ! जो कदाचित् परमेश्वरविषे वास्तवतैं कर्मोंका कारयितृत्व नहीं होवैहै तथा जीवविषे तिन कर्मोंका कर्तृत्व नहीं होवै तौ परमेश्वरविषे कर्मोंके कारयितृत्वकूं तथा जीवविषे कर्मोंके कर्तृत्वकूं कथनकरणेहारी पूर्व उक्त श्रुति स्मृति असंगत होवैंगी । और इस लोकविषेभी शिष्टपुरुष ईश्वरकी प्रसन्नतावासतै शुभकर्मोंकूं करैहै और तिन शुभकर्मोंके नहीं करणेतैं भयकूं प्राप्त होवैहै । यह लोकोंका व्यवहारभी असंगत होवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहै हैं (अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यंति जंतवः इति) हे अर्जुन ! आवरणविक्षेपशक्ति-

वाला जो मायारूप मिथ्या अज्ञान है ता अज्ञानरूप तमकरिकै आवृतहुआ जो जीव ईश्वरजगत् भेदभ्रमका अधिष्ठानरूप तथा नित्यस्वप्रकाश सच्चिदानन्द अद्वितीयरूप तथा परमार्थसत्यरूप ज्ञान है। वा ज्ञानस्वरूप आत्माके आवरणकरिकै आपणे वास्तवस्वरूपकूं नहीं जानणहार यह संसारी जीव मोहकूं प्राप्त होवै है अर्थात् प्रमाता प्रमाण प्रमेय, कर्त्ता कर्म करण, भोक्ता भोग्य भोग, यह नवप्रकारका संसारभ्रमरूप जो विक्षेप है ता विक्षेपरूप मोहकूं ते जीव प्राप्त होवै हैं । यातै यह अर्थ सिद्ध भया । वास्तवतैं अकर्त्ता अभोक्तारूप जो परमानंद अद्वितीय आत्मा है ता आत्माके वास्तवस्वरूपके अज्ञानकरिकैही अविवेकी मूढपुरुषोंकूं यह जीव है यह ईश्वर है यह जगत् है इत्यादिक भेदभ्रम प्रतीत होवै है। अर्थात् यह जीव पुण्यपापकर्मोंका कर्त्ता है और ईश्वर तिन पुण्यपापकर्मोंके करावणेहारा है इत्यादिक भेदभ्रम प्रतीत होवै है । तिन अज्ञानी मूढपुरुषोंके भ्रांतिज्ञानकूंही (एप उ ह्येव साधु कर्म कारयति) इत्यादिक श्रुतिस्मृतिवचन अनुवादमात्र करैं हैं, कोई तिन श्रुतिस्मृतिवचनोंका ता भेदभ्रमके बोधनविषे तात्पर्य नहीं है । यातैं वास्तवतैं अद्वितीय आत्माके बोधक जे 'तत्त्वमसि' आदिक महावाक्य हैं तिन महावाक्योंकेही ते श्रुतिस्मृतिवचन शेषरूप हैं । यातैं तिन श्रुतिस्मृतिवचनोंकाभी इहां विरोध होवै नहीं इति । और किसी टीकाविषे तौ (अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जंतवः) इस वचनका यह अभिप्राय कथन कऱ्या है । जैसे चक्रवर्ती महाराजाकूं जाग्रत् अवस्थाविषे मैं सर्वप्रजाका ईश्वरहूं या प्रकारका ज्ञान होवै है सो ताका ज्ञान जबी निद्रारूप अज्ञानकरिकै आवृत होवैहै तबी सो चक्रवर्ती राजा ता स्वप्नअवस्थाविषे अनेक प्रकारके संकटोंकूं देखै है तथा मैं अत्यन्त दीनहूं मैं अत्यंत दुःखीहूं इस प्रकारके मोहकूं प्राप्त होवै है । तैसे यह जीवभी 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्यादिक वेदके वचनोंतैं आपणे ब्रह्मभावकूं नहीं जानते हुए तथा ईश्वरतैं आपणेकूं जुदा मानते हुए अर्थात् ईश्वरकूं स्वामी मानते हुए तथा आपणेकूं ता

ईश्वरका सेवक मानते हुए वारंवार जन्ममरणरूप मोहकूं प्राप्त होवै हैं । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है । तहां श्रुति-(अथ योऽन्यां देवता-मुपास्तेऽन्योसावन्योहमिति न स वेद यथा पशुरेव स देवानामिति । उदरमंतरे कुरुते अथ तस्य भयं भवति इति । मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ।) अर्थ यह-जो पुरुष यह देवता भिन्न हैं तथा मैं भिन्नहूं याप्रकार देवतातें आपणेकूं भिन्न मानिकै तिस देवताका ध्यान करै है सो भेददर्शी पुरुष देवताके स्वरूपकूं तथा आपणे स्वरूपकूं यथार्थ जानता नहीं । जैसे लोकप्रसिद्ध अश्वमहिषादिक पशु किंचित्मात्रभी जानते नहीं वैसे सो भेददर्शी पुरुषभी तिन देवताओंका पशुही है । भेद-दर्शी अज्ञानी पुरुष देवतावोंका पशु है यह वार्त्ता आत्मपुराणके चतुर्थ अध्यायविषे दध्यङ् अथर्वण देवताराज इंद्रके संवादविषे हम विस्तारतें कथन करि आये हैं इति । और जो पुरुष ईश्वरतें आपणा किंचित्मात्रभी भेद अंगीकार करै है तिस भेददर्शी पुरुषकूं महान् भयकी प्राप्ति होवै है इति । और जो पुरुष इस अद्वितीय ब्रह्मविषे नानाभावकूं देखै है, सो भेददर्शी पुरुष मृत्युतें मृत्युकूं प्राप्तहोवै है अर्थात् वारंवार जन्ममरणकूं प्राप्त होवैहै ॥ १५ ॥

हे भगवन् ! जबी सर्वही जीव ता अनादि अज्ञानकरिकै आवृत हुए तबी इस जन्ममरणरूप संसारकी निवृत्ति किस प्रकारसें होवैगी ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं-

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ॥
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) ज्ञानेन । तु । तत् । अज्ञानम् । येषाम् । नाशितम् । आत्मनः । तेषाम् । आदित्यवत् । ज्ञानम् । प्रकाशयति । तत् । परम् ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः जिनें पुरुषोंका सो अज्ञान आत्माके ज्ञाननें नाश कर्याहै तिन पुरुषोंका सो आत्मज्ञान सूर्यकी न्याई परब्रह्मकूं प्रकाश करै है ॥ १६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो अज्ञान आवरणविक्षेप शक्तिवाला है तथा अनादि है अर्थात् उत्पत्तितै रहित है तथा जो अज्ञान अनिर्वचनीय है अर्थात् सत्, असत, सत् असत, या तीनों पक्षोंतैं रहित है। तथा जो अज्ञान सर्व अनर्थोंका मूलकारण है तथा जो अज्ञान स्वाश्रय अभिन्न-विषयक है अर्थात् जैसे अन्धकार जिस गृहके आश्रित रहैहै तिसी गृहकूं आवृत करैहै तैसे यह अज्ञानभी जिस आत्मादेवके आश्रित रहै है तिसी आत्मा देवकूं आवृत करैहै । तथा जिस अज्ञानकूं शास्त्रविषे माया अविद्या प्रकृति प्रधान अव्यक्त शक्ति इत्यादिक नामोंकरिकै कथन कर्याहै ऐसा अज्ञान जिन अधिकारी पुरुषोंके आत्मविषयक ज्ञाननें नाश कर्या है । अर्थात् जो ज्ञान ब्रह्मवेत्तापुरुषनैं उपदेश कर्ये हुए वेदांतमहावाक्यकरिकै जन्य है। तथा जो ज्ञान श्रवण मनन निदिध्यासनकी परिपकता करिकै निर्मलहुए अंतःकरणकी वृत्तिरूप है । तथा जो ज्ञान शोधित तत्त्वं पदार्थोंका अभेदरूप जो शुद्ध सच्चिदानंद अखंड एकरस वस्तु है ता वस्तुमात्रकूं विषय करणेहारा है ऐसे निर्विकल्पक आत्मासाक्षात्कारनें जिन अधिकारी पुरुषोंका सो अज्ञान बाधकूं प्राप्त कर्या है । तात्पर्य यह—जैसे शुक्तिविषे रजतभ्रमतैं अनंतर उत्पन्न भया जो यह शुक्तिही है रजत नहीं है याप्रकारका शुक्तिविषयक ज्ञान है सो शुक्तिका ज्ञान ता शुक्तिविषे ता रजतका त्रैकालिक असत्त्वरूप बाधकूं करै है । तैसे सो आत्मज्ञानभी ता अद्वितीयब्रह्मविषे ता अज्ञानका त्रैकालिक असत्त्वरूप बाधकूं करै है । कोई जैसे मुद्गरका प्रहार घटके सूक्ष्म अवस्थारूप ध्वंसकूं करै है तैसे यह आत्मज्ञान ता अज्ञानके सूक्ष्म अवस्थारूप ध्वंसकूं करता नहीं इति । ऐसा सो अधिकारी जनोंका आत्मज्ञान लोकप्रसिद्ध सूर्यकी न्याई सत्य ज्ञान अनंत आनंदरूप एक अद्वितीय परमात्मभावकूं प्रकाश करै है । तात्पर्य यह जैसे यह सूर्य आपणे उदयमात्र करिकैही

निरवशेष अंधकारकी निवृत्ति करिकै घटादिक पदार्थोंकूं प्रकाश करै है ता अंधकारकी निवृत्ति करणेविषे सो सूर्य अन्य किसीके सहायताकी अपेक्षा करता नहीं। तैसे शुद्धसत्त्वका परिणामरूप होणेतें व्यापक प्रकाशरूप जो ब्रह्मज्ञान है सो ब्रह्मज्ञानभी आपणी उत्पत्तिमात्रकरिकै ही ता कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्ति करता हुआ अद्वितीय परमात्मतत्त्वकूं प्रकाश करै है। ता कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्ति करणेविषे सो ब्रह्मसाक्षात्कार अन्य किसीके सहायताकी अपेक्षा करता नहीं। इहां (तत् ज्ञानं परं प्रकाशयति) इस वचनकरिकै अद्वितीय स्वप्रकाश ब्रह्मविषे जो ज्ञानकृत प्रकाश्यता कथन करी है सो अज्ञानरूप आवरणकी निवृत्तिपूर्वक ब्रह्मकी अभिव्यक्तिमात्र जानणी। जिसकूं वेदांतशास्त्रविषे वृत्तिव्याप्ति या नामकरिकै कथन करैं है इति। और (अज्ञानेनावृतं ज्ञानम्। ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशित-मात्मनः) या दोनो वचनोकरिकै श्रीभगवान्नैं ता अज्ञानविषे आवरण रूपता तथा ज्ञानकरिकै नाश्यता कथनकरी। ता कहणे करिकै श्रीभग-वान्नैं ता अज्ञानविषे नैयायिकोनैं अंगीकार करीहुई ज्ञानभावरूपता निवृत्त करी। काहेतें अभावकिसीवस्तुका आवरण करता नहीं। तथा ज्ञानका अभाव ता ज्ञानकरिकै नाशभी होइसकै नही। जिसकारणतें वियमान वस्तुवोकाही परस्पर नाश्यनाशकभाव होवै है। यातें ज्ञानके अभावका नाम अज्ञान नही है, किंतु मैं अज्ञानीहूं मैं आपणेकूं तथा अन्यकूं जानता नहीं इत्यादिक साक्षीरूपप्रत्यक्षकरिकै सिद्धभावरूपही अज्ञान है। और (येषां तेषां) या बहुवचनांत सामान्य अर्थके वाचक यत् तत् या दोनों शब्दोंकरिकै श्रीभगवान्नैं इस ब्राह्मणत्वादिक उत्तम जातिविषेही तथा इस उत्तम आश्रमविषेही आत्मज्ञानकी प्राप्ति होवै है तथा ता ज्ञानकरिकै अज्ञानकी निवृत्ति होवै है इसतें अन्य जातिविषे तथा इसतें अन्य आश्रमविषे ता आत्मज्ञानकी प्राप्ति होवै नहीं। तथा ता ज्ञानकरिकै अज्ञानकी निवृत्ति भी होवै नहीं। याप्रकारके नियमका अभाव कथनकऱ्या, किंतु सर्वजातियों-विषे तथा सर्वआश्रमोंविषे श्रवणादिक साधनोंकरिकै ता आत्मज्ञानकी

प्राप्ति तथा ता ज्ञानकरिकै अज्ञानकी निवृत्ति होवै इति । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है। तहां श्रुति-(तद्यो यो देवानां प्रत्यबुद्ध्यत स एव तदभवत्तथर्षीणां तथा मनुष्याणामिति) अर्थ यह-देवतावोंके मध्यविषे जो जो देवता इस अद्वितीयब्रह्मकूं मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकार आपणा आत्मारूपकरिकै जानता भयाहै सोसो देवता अज्ञानकी निवृत्तिपूर्वक ब्रह्मरूपही होताभया है । तथा ऋषियोंके मध्यविषे जो जो ऋषि तिस अद्वितीय ब्रह्मकूं आपणा आत्मारूपकरिकै जानताभयाहै सो सो ऋषि अज्ञानकी निवृत्तिपूर्वक ब्रह्मरूपही होताभयाहै । तथा मनुष्योंके मध्यविषे जो जो मनुष्य तिस अद्वितीय ब्रह्मकूं आपणा आत्मारूपकरिकै जानता भया है सो सो मनुष्य अज्ञानकी निवृत्तिपूर्वक ब्रह्मरूपही होता भयाहै इति । इत्यादिक श्रुतियोंनें मनुष्यमात्रकूंही आत्मज्ञानकी प्राप्ति तथा ता आत्मज्ञानकरिकै मोक्षकी प्राप्ति कथनकरी है। यातैं ता आत्मज्ञानकी प्राप्तिविषे तथा ता ज्ञानकरिकै मोक्षकी प्राप्तिविषे उत्तम जाति आश्रमका किंचित्मात्रभी नियम नहीं है, किंतु ता आत्मज्ञानकी प्राप्तिका साधनरूप जो श्रवण है ता श्रवणविषेही नियम है । तहां ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य या त्रैवर्णिक पुरुषोंनैं तौ वेदवचनोंके श्रवणतैं आत्मज्ञानकूं संपादन करणा । और शूद्रादिकोंनैं अद्वैतके प्रतिपादक पुराणादिकोंके श्रवणकरिकै ता आत्मज्ञानकूं संपादन करणा । यह श्रवणके नियमकी प्रक्रिया आत्मपुराणके सप्तम अध्याय विषे हम विस्तारतैं कथन करिआयेहैं इति। इहां (अज्ञानेनावृतं ज्ञानम्)इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं आत्माविषे अज्ञानकृत आवरणकथन कऱ्याहै और (ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः)या वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं आत्मज्ञानकरिकै ता आवरणकी निवृत्ति कथन करी है । सो अज्ञानकृत आवरण दोप्रकारका होवै है । एकतौ असत्त्वापादक आवरण होवै है और दूसरा अभानापादक आवरण होवै है । जैसे सो आवरण दो प्रकारका होवै है तैसे सो आत्मज्ञानभी दो प्रकारका होवै है । तहां एक तौ परोक्षज्ञान होवै है और दूसरा अपरोक्षज्ञान होवै है । वहां

अवांतरवाक्यके श्रवणतैं उत्पन्न भया जो ज्ञान है ताकूं परोक्षज्ञान कहैं हैं । और महावाक्यश्रवणतैं उत्पन्न भया जो ज्ञान है ताकूं अपरोक्षज्ञान कहै हैं तहां तत्पदार्थरूप ईश्वरके तथा त्वंपदार्थरूप जीवके स्वरूपमात्रकूं कथनकरणेहारे जे वाक्य हैं तिन वाक्योंकूं अवांतरवाक्य कहै हैं । जैसे (सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म) इत्यादिक वाक्य है । और ता ईश्वरके तथा जीवके अभेदकूं कथन करणेहारे जे वाक्य हैं तिन वाक्योंकूं महावाक्य कहैं हैं । जैसे "तत्त्वमसि अहं ब्रह्मास्मि" इत्यादिक वाक्य हैं । तहां 'ब्रह्म नास्ति' याप्रकारके भ्रमका जनक जो प्रथम असत्त्वापादक आवरण है सो असत्त्वापादक आवरण तौ परोक्षअपरोक्ष साधारणप्रमाणजन्यज्ञानमात्रकरिकै निवृत्त होवै है । काहेतें जैसे पर्वतविषे धूमरूप हेतुके दर्शनतें यह पर्वत अग्निवाला है याप्रकारके अनुमितिरूप परोक्षज्ञानके हुएभी पर्वतविषे अग्नि नहीं है याप्रकारके भ्रमकी निवृत्ति होइजावै है । तैसे (सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म अस्ति) इस वाक्यतें ब्रह्मके परोक्ष निश्चयहुएभी ब्रह्म नहीं है याप्रकारके भ्रमकी निवृत्ति होइजावै है । और ब्रह्म तौ है परंतु सो ब्रह्म हमारेकूं भासता नहीं या प्रकारके भ्रमका जनक जो दूसरा अभानापादक आवरण है सो अभानापादक आवरण तौ मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकारके अपरोक्षज्ञानतेंही निवृत्त होवै है । परोक्षज्ञानकरिकै सो अभानापादक आवरण निवृत्त होवै नहीं । मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकारका ज्ञान वाक्यतें जन्यहुआभी " दशमस्त्वमसि" इस वाक्यजन्य ज्ञानकी न्याई अपरोक्षरूपही होवै है यह वार्त्ता सर्ववेदांतशास्त्रोंविषे निर्णीतही है ॥ १६ ॥

हे भगवन् । ता आत्मज्ञानकरिकै परमात्मतत्त्वके प्रकाश हुए किस फलकी प्राप्ति होवै है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता आत्मज्ञानके विदेह मुक्तिरूप फलकूं कथन करैं हैं-

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ॥
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ १७ ॥

(पदच्छेदः) तद्बुद्धयः । तदात्मानः । तन्निष्ठाः । तत्परायणाः । गच्छंति । अपुनरावृत्तिम् । ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिसपरब्रह्मविषे है बुद्धि जिन्होंकी तथा सो परब्रह्महीं है आत्मा जिन्होंका तथा तिसै परब्रह्मविषेही है निष्ठा जिन्होंकी तथा सो परब्रह्महीं है प्राप्तहोणे योग्य जिन्होंकूं तथा ज्ञान-करिके निवृत्त हुएहैं पुण्यपापकर्म जिन्होंके ऐसे विद्वान् संन्यासी अपुन-रावृत्तिकूं प्राप्त होवै हैं॥ १७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! ज्ञानकरिकै प्रकाशित जो सच्चिदानंदघनप-मात्मा है ता परमात्मतत्त्वविषेही बाह्य सर्वविषयोंके परित्यागपूर्वक विवे-कादिक साधनोंकी परिपक्वतातैं परिअवसानकूं प्राप्त हुई है अंतःकरणकी साक्षात्काररूपवृत्ति जिन्होंकी ऐसे पुरुष तद्बुद्धि कहेजावै हैं । अर्थात् जे पुरुष सर्वदा निर्विकल्पसमाधिवाले हैं । शंका—हे भगवन् ! (तद्बुद्धयः) या वचनकरिकै जीव तौ वृत्तिरूप बोधका आश्रय प्रतीत होवै है और परब्रह्म ता वृत्तिरूपबोधका विषय प्रतीत होवै है । यातैं तिन जीवोंका तथा परब्रह्मका परस्पर बोद्धृबोद्धव्यरूप भेद अवश्यकरिकै होवैगा । तहां बोधके आश्रयका नाम बोद्धृ है और ता बोधके विषयका नाम बोद्धव्य है ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहै हैं (तदात्मानः इति) हे अर्जुन ! सो परब्रह्म ही है आत्मा जिन्होंका ऐसे विद्वान् पुरुष तदात्मा कहेजावै हैं । यातैं मायाकरिकै कल्पित सो बोद्धृबोद्धव्यभाव वास्तवअभेदका विरोधी होवै नहीं इति । शंका—हे भगवन् ! तिन विद्वान् पुरुषोंका (तदात्मा) यह जो विशेषण आपनें कथन कऱ्या है सो विशेषण व्यर्थही है काहेतैं जो विशेषण तिन विद्वान् पुरुषोंकूं दूसरे अज्ञानी पुरुषोंतैं व्यावृत्त करै है सोईही विशेषण तिन विद्वान् पुरुषोंका सार्थक होवै है । सो व्यावर्त्तकपणा (तदात्मानः) इस विशेषणविषे घटता नहीं । जिसकारणतैं अज्ञानी पुरुषभी वास्तवतैं परब्रह्मरूपही है । समाधान—हे अर्जुन ! (तदात्मानः) या विशेषणका देहादिकोंविषे आत्म-

त्वबुद्धिके निवृत्त करणेविषेही तात्पर्य है । इहां यह अभिप्राय है, अज्ञानी पुरुष तौ वास्तवतैं ब्रह्मरूप हुएभी ता परब्रह्मविषे आत्मबुद्धि करते नहीं किंतु अनात्मरूप देहादिकोंविषेही आत्मअभिमान करैं हैं यातैं ते अज्ञानीपुरुष (तदात्मानः) या नामकरिकै कहेजावैं नहीं । और ज्ञानवान् पुरुष तौ तिन अनात्मारूप देहादिकोंविषे आत्मअभिमान करते नहीं किंतु ता परब्रह्मविषेही आत्मबुद्धि करै हैं । यातैं ते ज्ञानवान् पुरुषही (तदात्मानः) या नामकरिकै कहेजावैं हैं । यातै (तदात्मानः) यह ज्ञानवान्का विशेषण सार्थक है इति । शंका-हे भगवन् । लौकिकवैदिक कर्मोंके अनुष्ठानरूप विक्षेपके विद्यमान हुए तिन देहादिकोंके अभिमानकी निवृत्ति कैसे होवैगी ? किंतु नहीं होवैगी ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (तन्निष्ठाः इति) हे अर्जुन ! तिन सर्वकर्मोंके अनुष्ठानरूप विक्षेपकी निवृत्तिकरिकै तिस परब्रह्मविषेही है स्थिति जिन्होंकी ते पुरुष तन्निष्ठाः कहेजावैं हैं । अर्थात् जे पुरुष तिन सर्वकर्मोंका संन्यासकरिकै तिस एक परब्रह्मके विचारपरायण हुए हैं इति । शंका-हे भगवन् । तिस तिस स्वर्गादिक फलविषयक रागके विद्यमान हुए तिसतिस फलके साधनरूप कर्मोंका परित्याग कैसे होवैगा ? किंतु नहीं होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (तत्परायणाः इति) हे अर्जुन ! सो एक परब्रह्मही है प्राप्त होणे योग्य जिनकूं ते पुरुष तत्परायण कहे जावैं हैं अर्थात् जे पुरुष तिन स्वर्गादिक सर्वफलोंतें विरक्त हैं इति । इहां (तद्बुद्धयः) इस पदकरिकै श्रीभगवान्नैं ब्रह्मसाक्षात्कारका कथन कऱ्या है । और (तदात्मानः तन्निष्ठाः तत्परायणाः) या तीन पदोंकरिकै श्रीभगवान्नैं ता ब्रह्मसाक्षात्कारके साधन कथन करे हैं । तहां (तदात्मानः) इस पदकरिकै श्रीभगवान्नैं देहादिक अनात्म पदार्थोंविषे आत्मअभिमानरूप विपरीतभावनाकी निवृत्ति है फल जिसका ऐसा जो परिपक्व निदिध्यासन है सो कथन कऱ्या है । और (तन्निष्ठाः) या पदकरिकै श्रीभगवान्नैं सर्वकर्मोंके संन्यास पूर्वक प्रमाणप्रमेयगत अस-

भावनाकी निवृत्ति है फल जिसका ऐसा जो परिपक्वश्रवणमननरूप वेदांतविचार है सो कथन कर्या है । और (तत्परायणाः) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं इसलोक परलोकके विषय सुखोंतैं तीव्रवैराग्य कथन कर्या है। तहां उत्तर उत्तर साधनकूं पूर्वपूर्वसाधनकी हेतुता है । जैसे ब्रह्मसाक्षात्कारविषे तौ निदिध्यासनकूं हेतुता है और निदिध्यासनविषे श्रवणमननरूप वेदांतविचारकूं हेतुता है और ता वेदांतविचारविषे वैराग्यकूं हेतुता है इति । इस प्रकार (तद्बुद्धयः तदात्मानः तन्निष्ठाः तत्परायणाः) या च्यारि विशेषणोंकरिकै युक्त जे संन्यासी हैं ते संन्यासी पुनः शरीरके सम्बन्धका अभावरूप अपुनरावृत्तिकूं प्राप्त होवै हैं अर्थात् विदेहमुक्तिकूं प्राप्त होवैं हैं इति । शंका—हे भगवन् ! एकवार मुक्त हुएभी तिन विद्वान् पुरुषोंकूं पुनः शरीरका संबंध किस वास्तै नहीं होवै है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः इति) मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारके आत्मज्ञानकरिकै समूलतैं निवृत्त होइगये हैं पुनः देहके संबंधकारणरूप पुण्यपापरूप कल्मष जिन्होंका तिन पुरुषोंका नाम ज्ञाननिर्धूतकल्मष हैं । ऐसे विद्वान् पुरुष पुनः शरीरकूं प्राप्त होवैं नहीं । तात्पर्य यह—आत्मसाक्षात्कार करिकै तिन विद्वान् पुरुषोंके अनादिअज्ञानकी निवृत्त होइजावै है ता अज्ञानके निवृत्त हुए अज्ञानके कार्यरूप पुण्यपापकर्मभी निवृत्त होइजावैं हैं और तिन पुण्यपापकर्मोंके वशतैंही इन जीवोंकूं पुनः देहांतरकी प्राप्ति होवै है । तिन पुण्यपापकर्मोंके नाश हुए तिन विद्वान् पुरुषोंकूं पुनः दूसरे शरीरकी प्राप्ति किस प्रकार होवैगी ? किंतु नहीं होवैगी ॥ १७ ॥

तहां (तद्बुद्धयस्तदात्मानः) इस पूर्वले श्लोकविषे देहके पाततैं अनंतर ता आत्मज्ञानका विदेहकैवल्यरूप फल कथन कर्या । अब प्रारब्धकर्मके वशतैं वा देहके विद्यमान हुएभी ता आत्मज्ञानके जीवन्मुक्तिरूप फलकूं श्रीभगवान् कथन करै हैं—

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ॥
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः॥ १८ ॥

(पदच्छेदः) विद्याविनयसंपन्ने । ब्राह्मणे । गवि । हस्तिनि । शुनि । च । एव । श्वपाके । च । पंडिताः । समदर्शिनः ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! ज्ञानवान् पुरुष विद्याविनययुक्त ब्राह्मणविषे तथा गौविषे तथा हस्तिविषे तथा श्वान तथा चांडालविषे समदर्शी ही होवैं हैं ॥ १८ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! वेदके अर्थका सम्यक्ज्ञानरूप जा विद्या है अथवा अद्वितीयब्रह्मका प्रतिपादनकरणहारी ब्रह्मविद्यारूप जा विद्या है और तिन विद्यादिकोंकूं प्राप्त होइकैभी निरहंकारतारूप जो विनय है ता विद्या विनय दोनोंकरिकै संपन्न जे सर्वतें उत्तम सात्त्विक ब्राह्मण हैं और तिन ब्राह्मणोंकी अपेक्षा करिकै मध्यम तथा संस्कारोंतें रहित ऐसी जो राजस गौ है तथा अत्यंत तमोगुण युक्त तथा सर्वतें अधम ऐसे जे हस्ति श्वान चाण्डाल हैं अर्थात् यथाक्रमतें उत्तम मध्यम अधमरूप जितनेक सात्त्विक राजस तामस प्राणी हैं तिन सर्व ऊंचनीच प्राणियोंविषे ते ज्ञानवान् पुरुष समदर्शीही होवैं हैं अर्थात् तिन सत्त्वादिक गुणोंकरिकै तथा तिन-गुणोंसें जन्य संस्कारोंकरिकै नहीं स्पर्श कन्या हुआ जो परब्रह्म है ता परब्रह्मका नाम सम है ता परब्रह्मकूंही ते विद्वान् रुप सर्वत्र देखैं हैं । यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथनकरीहै । तहांश्लोक-(अस्तिभातिप्रियंरूपंनाम चेत्यंशपंचकम् । आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम् ।) । अर्थ यह-अस्ति भाति प्रिय, नाम रूप यह पंच अंशही सर्वत्र व्यापक हैं । तहां आद्यके तीन अंश तौ ब्रह्मरूप हैं और अंतके दो अंश जगत्‌रूप हैं इति । इस प्रकार ते विद्वान् पुरुष सर्वत्र अस्ति भाति प्रिय रूप ब्रह्मकूंही देखैं हैं । तात्पर्य यह-जैसे अत्यंत पवित्र गंगाजलविषे तथा तलावके जल-विषे तथा अत्यंत निषिद्ध मदिराविषे तथा अत्यंत मलिन मूत्रविषे

प्रतिबिंबभावकूं प्राप्त भया जो सूर्य है तिस सूर्यकूं तिन गंगाजलादिकोंके गुणदोषोंका संबंध होवै नहीं । तैसे आपणे चिदाभासद्वारा सर्व ऊंच नीच उपाधियोंविषे प्रतिबिंबभावकूं प्राप्त भया जो ब्रह्म है ता ब्रह्मकूं तिन ऊंच नीच उपाधियोंके गुणदोषोंका संबंध होवै नहीं । इस प्रकारका निरंतर विचार करतेहुए ते ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुष सर्वत्र समदृष्टि करिकै रागद्वेषतैं रहित हुए परमानंदकी स्फूर्तिकरिकै जीवन्मुक्तिके सुखकूंही सर्वदा अनुभव करै हैं ॥ १८ ॥

हे भगवन् ! परस्पर विषमस्वभाववाले जे सात्त्विक राजस तामस प्राणी हैं तिन विषमस्वभाववाले प्राणियोंविषे समत्वबुद्धि करणेका धर्मशास्त्रविषे निषेध कऱ्या है । तहां गौतमस्मृति-(तस्यान्नमभोज्यं भवति समासमाभ्यां विषमसमे पूजातः इति ।) अर्थ यह-च्यारि वेदोंके ज्ञातारूप करिकै तुल्य तथा सदाचारविषे प्रवृत्तिरूपता करिकै तुल्य जे दो ब्राह्मण हैं तिन दोनों ब्राह्मणोंविषे एक ब्राह्मणका जो पुरुष वस्त्र अलंकार अन्न आदिकोंके दानपूर्वक जिस प्रकारका पूजन करै है तिसी प्रकारका पूजन ता दूसरे ब्राह्मणका करता नहीं, किंतु तिस ब्राह्मणका तिसतैं न्यून पूजन करै है । और एक ब्राह्मण तौ च्यारि वेदोंका वक्ता है तथा सदाचारकरिकै युक्त है और दूसरा ब्राह्मण तौ तिसतैं अल्पवेदका वक्ता है तथा सदाचारतैं रहित है तिन अधिक न्यून दोनों ब्राह्मणोंका जो पुरुष तिन वस्त्र अलंकार अन्नादिक पदार्थोंके दानपूर्वक समानही पूजन करै है तिस पूजन करणेहारे पुरुषका अन्न शिष्ट पुरुषोंनैं भोजन करणा नहीं इति । किंवा समपुरुषोंकी विषमपूजा करणेहारे पुरुषकूं तथा विषमपुरुषोंकी समपूजा करणेहारे पुरुषकूं धर्मशास्त्रनैं दोषकीभी प्राप्ति कथन करी है । तहां धर्मशास्त्र-(पूजयिता प्रतिपत्तिविशेषमकुर्वन्धर्माद्धनाच हीयते इति) । अर्थ यह-पूजनकरणेहारा पुरुष समविषमभावके विचारकूं नहीं करता हुआ धर्मतैं तथा धनतैं रहित होवै है इति । यद्यपि ब्राह्मण गौ हस्ती श्वान चांडाल इत्यादिक सर्व ऊंच नीच पदार्थोंविषे समबुद्धि

करणेहारे जे ब्रह्मवेत्ता संन्यासी हैं, ते संन्यासी धनके संग्रहतैं तथा अन्नके संग्रहतैं रहित हैं। यातैं तिन संन्यासियोंविषे अभोज्यान्नत्व तथा धन-हीनत्व स्वतःही विद्यमान है। तथापि ता समबुद्धितैं तिन संन्यासियोंविषेभी धर्मकी हानिरूप दोष अवश्यकरिकै होवैगा। और वास्तवतैं विचारकरिकै देखिये तौ (तस्यान्नमभोज्यम्) इस वचनतैं जो अभोज्यान्नत्व कथन कऱ्या है सो अभोज्यान्नत्व तिन समबुद्धिवाले पुरुषोंविषे अशुचिपणेकरिकै पापके उत्पत्तिकाही उपलक्षक है। सा पापकी उत्पत्ति तिन संन्यासियोंविषेभी संभव होइसकैहै। और तपस्वी पुरुषोंका सो तपही धन होवै है। यातैं तिस तपरूप धनकी हानिभी तिन संन्यासियोंविषे संभव होइसकै है। यातैं सर्वत्र समदर्शी पंडित पुरुष जीवन्मुक्तहीहैं यह आपका वचन असंगत है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं—

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः॥
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः १९

(पदच्छेदः) इह। एव। तैः। जितः। सर्गः। येषाम्। साम्ये। स्थितम्। मनः। निर्दोषम्। हि। समम्। ब्रह्म। तस्मात्। ब्रह्मणि। ते। स्थिताः॥ १९॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिन पुरुषोंका मन ब्रह्मभावविषे स्थित हुआहै तिन पुरुषोंनैं इस जीवितदशाविषे ही यह द्वैतप्रपंच अतिक्रमण कऱ्याहै जिस कारणतैं सो ब्रह्म निर्दोष है तथा सम है तिसकारणतैं वे समदर्शीपुरुष ता ब्रह्मविषेही स्थित हैं॥ १९॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! परस्पर विषमभाववालाभी सर्वभूतोंविषे जो ब्रह्म अस्ति भाति प्रिय रूपकरिकै तुल्यही वर्त्तमान है ऐसे ब्रह्मके समभावविषे जिन विद्वान् पुरुषोंका शुद्ध मन निश्चल हुआ है ऐसे समदर्शी पंडित पुरुषोंनैं इस जीवितदशाविषेही यह सर्व द्वैत प्रपंच अतिक्रमण कऱ्या है अर्थात् इस सर्व द्वैत प्रपंचका बाध कऱ्या है। तात्पर्य यह—जबी जीवि-

तदशाविषेही तिन विद्वान् पुरुषोंनै यह द्वैत प्रपंच अतिक्रमण कऱ्या है तबी इस शरीरके पातवैं अनंतर ते विद्वान् पुरुष इस द्वैत प्रपंचका अतिक्रमण करैहै याके विषे क्या कहणा है इति । जिसकारणतैं सो परब्रह्म निर्दोष है तथा सम है अर्थात् सो परब्रह्म जन्ममरणादिक सर्वविकारोंतैं रहित है तथा कूटस्थ नित्य एकरस अद्वितीयरूप है । तिसकारणतैं ते समदर्शी विद्वान् पुरुष ता अद्वितीय ब्रह्मविषेही अभेदरूपकरिकै स्थित हैं इति । इहां श्रीभगवान्का यह अभिप्राय है, वस्तुविषे जो दुष्टपणा होवै है सो दुष्टपणा दो प्रकारका होवै है। एक तौ स्वभावतैं अदुष्टवस्तुकूंभी किसी दुष्टवस्तुके संबंधतैं दुष्टपणा होवै है । जैसे स्वभावते अदुष्ट जो गंगाजल है ता गंगाजलकूं मूत्रकी गर्त्तविषे पावणेतैं दुष्टपणा होवै है । और दूसरा वस्तुविषे स्वभावतैंही दुष्टपणा होवै है । जैसे मूत्रादिक मलिन पदार्थोंविषे स्वभावतैंही दुष्टपणा होवै है। तहां स्वभावतैं दोषवाले जे श्वान चांडालादिक हैं तिन श्वानादिकोंविषे स्पर्शकूं करिकै स्थित हुआ जो ब्रह्म है सो ब्रह्म तिन श्वानादिकोंके दोषोंकरिकै अवश्य दुष्टताकूं प्राप्त होवैगा । इसप्रकारतैं विचाररहीन मूढपुरुषोंनैं ता अद्वितीय ब्रह्मविषे सो दुष्टपणा संभावना कऱ्या हुआभी सो ब्रह्म तिन सर्व दोषोंके संबंधतैं रहितही है । जिसकारणतैं सो ब्रह्म आकाशकी न्याईं असंगही है । ता असंगब्रह्मकूं किसीभी दोषका स्पर्श होवै नहीं । तहां श्रुति–(असंगो ह्ययं पुरुषः इति। असंगो नहि सज्जते इति । सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः। एकस्तथा सर्वभूतांतरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः । इति) अर्थ यह–यह आत्मादेव असंग है इति। और असंग होणेतैं यह आत्मादेव किसीभी पदार्थके साथि संबंधकूं प्राप्त होवै नहीं इति । और जैसे सर्वलोकोंका प्रकाशक सूर्य भगवान् प्रकाश्यरूप घटादिक पदार्थोंके दोषोंकरिकै लिपायमान होवै नहीं तैसे सर्वभूतोंका अन्तर आत्मारूप एक अद्वितीय ब्रह्मभी देहादिकोंके दुःखादिक धर्मोंकरिकै लिपायमान होवै

नही इति। यातैं दुष्टउपाधियोंके संबंधतैं आत्माविषे दुष्टता संभवै नहीं। तथा कामादिक धर्मवेत्ताकरिकै ता आत्मादेवविषे स्वतःभी सो दुष्टपणा संभवता नहीं। काहेतैं ते कामादिक जो आत्माके धर्म होते तौ तिन कामादिकों करिकै आत्माविषे स्वतःही सो दुष्टपणा होता। परंतु ते *कामादिक आत्माके धर्म हैं नहीं किंतु (कामः संकल्पो विचिकित्सा)* इस श्रुतिविषे ते कामादिक सर्व अंतःकरणके ही धर्म कथन करे है। आत्माका कोईभी धर्म कथन कऱ्या नहीं। किंतु (साक्षीचेता केवलो निर्गुणश्च) यह श्रुति आत्माकूं सर्वधर्मोंते रहित निर्गुण कहे है। इस प्रकार सर्व दोषोंतै रहित जो ब्रह्म है ता ब्रह्मकूंही आपणा आत्मारूप करिकै जानणेहारे जे जीवन्मुक्त संन्यासी हैं तिन जीवन्मुक्त संन्यासियोंकूं पापकी उत्पत्ति तथा तपरूप धनकी हानि तथा धर्मकी हानि इत्यादिक दोषोंकरिकै दुष्ट कहणा अत्यंत विरुद्ध है। और (समासमाभ्यां विषमसमे पूजातः) यह जो पूर्व स्मृतिवचन कथन कऱ्याथा सो स्मृतिवचन तौ अज्ञानी गृहस्थ विषयकही है। ब्रह्मवेत्ता संन्यासी विषयक सो स्मृतिवचन नहीं है। काहेतैं ता स्मृतिविषे (तस्यान्नमभोज्यम्) या प्रकारका प्रथम उपक्रम कऱ्या है। तिसतैं अनंतर मध्यविषे (समासमाभ्यां विषमसमे पूजातः) यह वचन कथन कऱ्या है। तिसतै अनंतर (पूजयिताप्रतिपत्तिविशेषमकुर्वन्धनाद्धर्माच्च हीयते) *याप्रकारका उपसंहार कऱ्या है। ता उपक्रम* उपसंहार वचनतैं अविद्वान् गृहस्थही प्रतीत होवै है। काहेतैं जो वस्तु जहां प्राप्त होवै है तिस वस्तुकाही तहां निषेध होवै है अप्राप्त वस्तुका निषेध होता नहीं। अन्नका संग्रह तथा धनका संग्रह गृहस्थपुरुषकूंही प्राप्त है संन्यासीकूं ता अन्नका संग्रह तथा धनका संग्रह प्राप्त है नहीं। यातैं समोंकी विषम पूजा करणेहारे पुरुषका तथा विषमकी सम पूजा करणेहारे पुरुषका अन्न भोजन करणे योग्य नहीं है। तथा इस प्रकारकी पूजा करणेहारा पुरुष धनतैं तथा धर्मतैं रहित होवै है। याप्रकारका निषेध ता अविद्वान् गृहस्थविषेही घटै है। ता ब्रह्मवेत्ता संन्यासीविषे

सो निषेध घटता नहीं और (अन्नमभोज्यम्) इस वचनका मुख्य अर्थ छोडिकै ता वचनकरिकै पापकी उत्पत्तिका ग्रहण करणा तथा धनशब्दका सुवर्णादिरूप मुख्य अर्थ छोडिकै ता, धनशब्दकरिकै तपका ग्रहण करणा यहभी अत्यंत असंगत है । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। जैसे सुवर्णमय जा देवताकी प्रतिमा है तथा सुवर्णमय जो ता प्रतिमाका सिंहासन है तिन दोनोंविषे सुवर्णद्रष्टा पुरुष तौ समानताकूंही देखै है और वा सुवर्णदृष्टितैं रहित केवल आकार दृष्टिवाला जो पूजा करणेहारा पुरुष है सो पूजक पुरुष तौ तिन दोनोंविषे महान् विषमताकूंही देखै है तैसे सो ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुष तौ तिन ब्राह्मण, गौ, हस्ती, श्वान, चांडाल आदिक पदार्थोंविषे एक परिपूर्ण ब्रह्मकूंही देखै है और अज्ञानी पुरुष तौ तिन पदार्थोंविषे महान् विषमताकूं देखै है यातैं सा पूजा स्मृति तौ भ्रांतिरूप न्यून आधिकताकूं विषय करै है और (विद्याविनयसंपन्ने) यह भगवान्‌का वचन तौ परमार्थवस्तुकूं विषय करै है । यातैं ता स्मृतिवचनका इहां विरोध होवै नहीं ॥ १९॥

जिस कारणतें सो परब्रह्म निर्दोष है तथा सर्वत्र सम है तिस कारणतें ता निर्दोष समब्रह्मकूं आपणा आत्मारूप जानताहुआ सो ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुष आपभी रागद्वेषादिकदोषोंतैं रहित हुआ स्थित होवैहै । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्॥
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥२०॥

(पदच्छेदः) न । प्रहृष्येत् । प्रियम् । प्राप्य । न । उद्विजेत् । प्राप्य । च ।। अप्रियम् । स्थिरबुद्धिः । असंमूढः । ब्रह्मवित् ब्रह्मणि । स्थितः ॥ २० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो विद्वान् पुरुष प्रियवस्तुकूं प्राप्त होइकै नहीं हर्षकूं प्राप्त होवैहै तथा अप्रिय वस्तुकूं प्राप्त होइकै

नहीं उद्वेगकूं प्राप्त होवैहै जिस कारणतैं सो विद्वान् स्थिरबुद्धि है तथा संमोहतैं रहित है तथा ब्रह्मवित् है तथा ब्रह्मविषेही स्थित है ॥ २० ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! सो समदर्शी विद्वान् संन्यासी सुखके करणेहारे प्रियपदार्थकूं प्राप्त होइके हर्षकूं नहीं प्राप्त होवैहै तथा दुःखके करणेहारे अप्रियपदार्थकूं प्राप्त होइके विषादकूं नहीं प्राप्तहोवै है किंतु तिन दोनोंकूं आपणे प्रारब्धकर्मका फलरूप जानिकै सर्वदा एकरसही रहै है। यह सर्व अर्थ-(दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः) इस श्लोकविषे पूर्व विस्तारतैं कथन करिआये हैं। और प्रिय अप्रिय पदार्थोंकूं प्राप्त होइके भी हर्ष विषादतैं रहित होणा इत्यादिक जो जीवन्मुक्त पुरुषोंका स्वाभाविक चरित्र है ता स्वाभाविक चरित्रकूं मुमुक्षुजननै प्रयत्नपूर्वक संपादन करणा। इस अर्थके बोधन करणवासतै श्रीभगवान्नै (न प्रहृष्येत् नोद्विजेत्) या दोनोंपदोंविषे विधिका वाचक लिङ् प्रत्यय कथन कऱ्याहै। कोई जीवन्मुक्त पुरुष ऊपरि सो विधि-वचन नहीं है । तात्पर्य यह-सर्वत्र अद्वितीय आत्माकूं देखणेहारा जो विद्वान् पुरुष है तिस विद्वान् पुरुषकूं आपणेतै भिन्नरूपकरिकै किसीभी प्रिय अप्रिय पदार्थकी प्राप्ति संभवती नहीं । और लोकविषे आपणेतैं भिन्नकरिकै जान्याहुआ पदार्थही हर्ष विषादका हेतु होवै है आपणा आत्मा किसीके हर्ष विषादका हेतु होवै नहीं। या कारणतैं ता प्रिय अप्रिय पदार्थकी प्राप्ति करिकै ता विद्वान् पुरुषकूं हर्षविषादकी प्राप्ति संभवती नही इति । अब जिस अद्वितीय आत्माके ज्ञानकरिकै ता विद्वान् पुरुषकूं हर्षविषादकी प्राप्ति नहीं होवै ता आत्मज्ञानका साधनपूर्वक निरूपण करैं हैं (स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः इति) स्थिरा कहिये संन्यासपूर्वक वेदांतवाक्योंके विचारकी परिपकताकरिकै संशयतैं रहित हुई है ब्रह्मविषे बुद्धि जिसकी ताका नाम स्थिरबुद्धि है । अर्थात् श्रवणका फलरूप जा प्रमाणगत असंभावनाकी निवृत्ति है तथा मनका

फलरूप जा प्रमेयगत असंभावनाकी निवृत्ति है ते दोनों फल जिसपुरुषकूं प्राप्त हुएहैं । इति। शंका—हे भगवन् ! ता प्रमाणगत असंभावनातैं तथा प्रमेयगत असंभावनातैं रहित जो पुरुष है तिस पुरुषकूंभी विपरीतभावनारूप प्रतिबंधके वशतैं आत्माका साक्षात्कार नहीं होवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् निदिध्यासनकूं कथन करैंहैं (असंमूढ इति) वहां अनात्माकार विजातीय वृत्तियोंके व्यवधानतैं रहित जो आत्माकार सजातीयवृत्तियोंका प्रवाह है ताका नाम निदिध्यासन है। ता निदिध्यासनकी परिपक्वताकरिकै विपरीतभावनारूप संमोहतैं रहित जो पुरुष है ताका नाम असंमूढ है। इहां वेदांतशास्त्र जीवब्रह्मके अभेदका प्रतिपादक है अथवा भेदका प्रतिपादक है याप्रकारके संशय नाम प्रमाणगत असंभावना है। और यह जीवात्मा ब्रह्मरूप है अथवा नहीं है इत्यादिकसंशयोंका नाम प्रमेयगत असंभावना है । और देहादिकोंविषे आत्मत्वबुद्धिका नाम विपरीतभावना है । ते असंभावना विपरीतभावना आत्मज्ञानके प्रतिबंधक होवैहैं। ता असंभावना विपरीतभावनाकी जबी श्रवण मनन निदिध्यासनतैं निवृत्ति होवै है तबी सर्व प्रतिबंधोंतैं रहितहुआ सो पुरुष ब्रह्मवित् होवै है अर्थात् मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकार ब्रह्मकूं आपणा आत्मारूप करिकै साक्षात्कार करैहै तिसतैं अनंतर समाधिकी परिपक्वता करिकै सो विद्वान् पुरुष ता निर्दोषसमब्रह्मविषेही अभेदरूप करिकै स्थित होवै है ता ब्रह्मतैं भिन्न दूसरे किसी पदार्थविषे स्थित होवै नहीं। इस प्रकार ब्रह्मविषे स्थितहुआ सो विद्वान् पुरुष जीवन्मुक्त कह्या जावैहै तथा स्थितप्रज्ञ कह्या जावैहै । ऐसे जीवन्मुक्त पुरुषविषे द्वैतप्रपंचका दर्शन है नहीं यातैं ता जीवन्मुक्त पुरुषकूं प्रिय अप्रिय वस्तुकी प्राप्ति हुएभी जो हर्षविषादका अभाव कथनकर्याहै सो उचितही है और साधक मुमुक्षुजननैं तौ ता द्वैतदर्शनके विद्यमान हुएभी तिन विषयोंविषे दोषदृष्टिकरिकै सो हर्ष विषाद प्रयत्नकरिकै परित्याग करणा ॥ २० ॥

हे भगवन् ! बाह्य शब्दादिक विषयोंविषे जा प्रीति है सा प्रीति पूर्व अनेक जन्मोंविषे अनुभूत होणेतैं अत्यंत प्रबल है । यातैं तिन बाह्य विषयोंविषे आसक्त हुआ है चित्त जिसका ऐसे पुरुषकी सर्वदृष्ट सुखोंतैं रहित अलौकिक ब्रह्मविषे स्थिति किसप्रकार होवैगी ? किंतु नहीं होवैगी। और जो आप यह कहो कि सो ब्रह्म परम आनंदरूप है यातैं बाह्यविषयोंके प्रीतिका परित्याग करिकै ता ब्रह्मविषे तिस पुरुषकी स्थिति संभव होइसकै है इति । सो यह आपका कहणाभी संभवता नहीं काहेतैं सो ब्रह्मका आनंद अनुभव होता नहीं । यातैं ता ब्रह्मानंदकूं चित्तके स्थितिकी हेतुता संभवती नहीं । अनुभव कऱ्याहुआ आनंदही चित्तके स्थितिका हेतु होवै है ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहै हैं-

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विंदत्यात्मनि यत्सुखम् ॥
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षय्यमश्नुते ॥ २१ ॥

(पदच्छेदः) बाह्यस्पर्शेषु । असक्तात्मा । विंदति । आत्मनि । यत् । सुखम् । सः । ब्रह्मयोगयुक्तात्मा । सुखम् । अक्षय्यम् । अश्नुते ॥ २१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! बाह्यशब्दादिकविषयोंविषे आसक्तितैं रहित पुरुष अंतःकरणविषे स्थित जो सुख है तिसकूं प्राप्त होवै है तथा सो तृष्णारहित ब्रह्मयोगविषे युक्तचित्तवाला नाशतैं रहित सुखकूंभी प्राप्त होवै है ॥ २१ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! श्रोत्रादिक इंद्रियोंकरिके ग्रहण करणे योग्य जे शब्दादिक विषय हैं ते शब्दादिक विषय अनात्मवस्तुका धर्म होणेतै बाह्य कहे जावै हैं । ऐसे बाह्य शब्दादिक विषयोंविषे नहीं आसक्तिकूं प्राप्त भया है चित्त जिसका ऐसा जो निष्काम पुरुष है सो निष्कामपुरुष तृष्णातैं रहित होणेतैं अत्यंत विरक्त हुआ आपणे अंतःकरणविषे स्थित जो बाह्यविषयोंकी अपेक्षातैं रहित उपशमरूप सुख

है तिस सुखकूंही निर्मल अंतःकरणकी वृत्ति करिकै अनुभव करै है। यह वार्त्ता भारतविषेभी कथन करी है ! तहां श्लोक-(यच्चकामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् । तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥) अर्थ यह-इस लोकविषे जे कामजन्य सुखहैं तथा स्वर्गादिक लोकोंविषे जे महान् दिव्यसुख हैं ते सर्व सुख तृष्णाकी निवृत्तिजन्य सुखके षोडशवें भागके तुल्यभी नहीं होवै हैं इति। अथवा (आत्मनि) या पदकरिकै प्रत्यक्आत्माका ग्रहण करणा। या पक्षविषे ता वचनका यह अर्थ करणा। त्वं पदार्थरूप प्रत्यक्आत्माविषे विद्यमान जो स्वरूपभूत सुख है जो सुख सुषुप्तिअवस्थाविषे सर्व प्राणियोंकूं अनुभव होवै है। तथा जो सुख बाह्यविषयोंकी आसक्तिरूप प्रतिबंधके वशतैं प्रतीत होता नहीं तिसी स्वरूपभूत सुखकूं सो विद्वान् पुरुष बाह्यविषयोंकी आसक्तिके अभावतैं प्राप्त होवै है इति। किंवा सो विद्वान् पुरुष केवल त्वंपदार्थ आत्माके सुखकूंही नहीं प्राप्त होवै है किंतु तत्पदार्थकी एकताके अनुभव करिकै पूर्णसुखकूंभी अनुभव करै है। इस अर्थकूं श्रीभगवान् कहैं हैं (स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षय्यमश्नुते इति) परमात्मारूप ब्रह्मविषे जो समाधिरूप योग है ताका नाम ब्रह्मयोग है ता ब्रह्मयोगकरिकै युक्त है आत्मा क्या अंतःकरण जिसका अर्थात् ता ब्रह्मयोगविषे संलग्न है अंतःकरण जिसका ताका नाम ब्रह्मयोगयुक्तात्मा है। अथवा ब्रह्मशब्दकरिकै तत्पदार्थका ग्रहण करणा। तिस तत्पदार्थरूप ब्रह्मविषे महावाक्यार्थका अनुभवरूप समाधिरूप करिकै युक्तहुआ है क्या एकताकूं प्राप्त हुआ है त्वंपदार्थरूप आत्मा जिसका ताका नाम ब्रह्मयोगयुक्तात्मा है। ऐसा ब्रह्मयोगयुक्तात्मा विद्वान्पुरुष उत्पत्ति नाशतैं रहित स्वस्वरूपभूत नित्यसुखकूंही प्राप्त होवै है अर्थात् सो विद्वान् पुरुष सर्वदा सुखानुभवरूपही होवै है। यद्यपि सो आत्मास्वरूप नित्यसुख वास्तवतैं इसपुरुषकूं तत्त्वसाक्षात्कारतैं पूर्वभी प्राप्तही है यातैं ताकी प्राप्ति कहणी संभवती नहीं। पूर्व अप्राप्तवस्तुकीही प्राप्ति होवै है। तथापि

तत्त्वसाक्षात्कारतै पूर्व सो नित्यसुख अविद्याकरिकै आवृत है यहही ता नित्यसुखकी अप्राप्ति है और तत्त्वसाक्षात्कारकरिकै ता अविद्याकी निवृत्ति होईजावै है यहही ता सुखकी प्राप्ति है अर्थात् ता नित्यसुखका जो अज्ञान है सोईही ता नित्यसुखकी अप्राप्ति है। और ता नित्यसुखका जो अपरोक्षज्ञान है सोईही ता नित्यसुखकी प्राप्ति है इति । यातै प्रत्यक् आत्माविषे अभेदरूप करिकै स्थित जो नित्यसुख है ता नित्यसुखके अनुभवकी इच्छा करताहुआ यह अधिकारीपुरुष महान् नरकोंकी प्राप्ति करणेहारी तथा क्षणिक जा बाह्यविषयोंकी प्रीति है ता प्रीतितै आपणे इंद्रियोंकूं निवृत्त करै। ताकरिकैही इस पुरुषकी प्रत्यक् अभिन्नब्रह्मविषे स्थिति होवै है ॥ २१ ॥

हे भगवन्! बाह्यविषयोंके प्रीतिकी जबी निवृत्ति होवै तबी आत्माके नित्य सुखका अनुभव होवै। और आत्माके नित्यसुखका जबी अनुभव होवै तबी ता अनुभवके प्रसादतै बाह्यविषयोंके प्रीतिकी निवृत्ति होवैहै इस प्रकार नित्यसुख-का अनुभव तथा बाह्यविषयोंके प्रीतिकी निवृत्ति इन दोनोंकी अन्योन्य आश्र-यता प्राप्त होवै है और जिन दोपदार्थोंविषे अन्योन्य आश्रयता प्राप्त होवै है तिन पदार्थोंविषे एकभी पदार्थ सिद्ध होवा नहीं । ऐसी अर्जुनकी शंका के हुए श्रीभगवान् विषयोंविषे दोषदर्शनके अभ्यासकरिकैही तिन विषयोंके प्रीतिकी निवृत्ति होवै है यातै ता अन्योन्य आश्रयता दोषकी प्राप्ति होवै नहीं याप्रकारका उत्तर कथन करैं हैं-

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ॥
आद्यंतवंतः कौंतेय न तेषु रमते बुधः ॥ २२ ॥

(पदच्छेदः) ये । हि । संस्पर्शजाः । भोगाः । दुःख-योनयः । एव । ते । आद्यंतवंतः । कौन्तेय । न । तेषु । रमंते । बुधः ॥२२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिसकारणतै जितनके विषय इंद्रियके संबं-धजन्य भोग हैं ते सर्वभोग दुःखके हेतुही हैं तथा आदिअंतवाले

हैं । तिसकारणतैं विवेकीपुरुष तिनैं भोगोंविषे नहीं प्रीति करै हैं ॥ २२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! शब्दादिक विषयोंके साथि जे श्रोत्रादिक इंद्रियोंके संबंध हैं तिनोंका नाम संस्पर्श है ता संस्पर्श करिकै जन्य जितनेक अत्यंत क्षुद्रलेशमात्र सुखके अनुभवरूप भोग हैं ते सर्वभोग इस लोकविषे तथा परलोकविषे राग द्वेषकरिकै व्याप्त होणेतैं दुःखकेही हेतु हैं अर्थात् इस मनुष्यलोकतैं आदिलैके ब्रह्मलोक पर्यंत जितनेक भोग हैं ते सर्वभोग तीनकालविषे दुःखकेही हेतु हैं। यह वार्त्ता विष्णुपुराणविषेभी कथन करी है । तहां श्लोक—(यावन्तः कुरुते जन्तुः संबंधान्मनसः प्रियान् । तावंतोऽस्य निखन्यंते हृदये शोकशंकवः) अर्थ यह—यह जीव जितनेक मनके प्रियसंबंधोंकूं करै है तितनेही शोकरूपी शंकु इस पुरुषके हृदयविषे छिद्र करैं हैं इति । इस प्रकारके ते भोगभी कोई स्थिर हैं नहीं किंतु आदिअन्तवाले हैं। इहां विषय इंद्रियके संयोगका नाम आदि है और ताके वियोगका नाम अन्त है ते आदि अन्त दोनों जिनोंविषे विद्यमान होवै तिनोंका नाम आदिअंतवत् है अर्थात् ते भोग वा आदिकालविषेभी नहीं हैं तथा अन्तकालविषे भी नहीं हैं किंतु स्वप्नपदार्थोंकी न्याई ते भोग केवल मध्यकालविषेही प्रतीत होवैंहै यातैं ते भोग स्वप्नपदार्थोंकी न्याई क्षणिक हैं तथा मिथ्यारूप हैं । यह वार्त्ता श्रीगौडपादाचार्यनैंभी कथन करी है (आदावंते च यन्नास्ति वर्त्तमानेऽपि तत्तथा इति) अर्थ यह—जो पदार्थ आदिकालविषेभी नहीं होवै है तथा अन्तकालविषे भी नहीं होवै है सो पदार्थ वर्त्तमानकालविषे भी वास्तवतैं नहीं होवै है। जैसे स्वप्नके पदार्थ हैं इति । हे अर्जुन ! जिस कारणतैं यह विषयजन्य भोग इस प्रकारके हैं तिस कारणतैं विवेकी पुरुष तिन भोगोंविषे नहीं रमण करै है अर्थात् तिन भोगोंकूं प्रतिकूल जानिकै सो विवेकीपुरुष तिन भोगोंविषे प्रीतिकूं अनुभव करै नहीं इति । यह वार्त्ता पतंजलिभगवान्नैं भी योगसूत्रोंविषे कथन करी है। तहां सूत्र—(परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवे-

किनः इति) अर्थ यह—भली प्रकारतैं निश्चय कऱ्या है क्लेशादिकोंका स्वरूप जिसनैं ऐसा जो विवेकी पुरुष है तिस विवेकी पुरुषकूं इस लोकके तथा परलोकके सर्व विषय सुख दुःखरूपही प्रतीत होवैं है । अविवेकी पुरुषकूं ते विषयसुख दुःखरूप प्रतीत होवैं नहीं । या कारणतैंही शास्त्रविषे वा विवेकी पुरुषकूं अक्षिपात्रके तुल्य कथन कऱ्या है । जैसे ऊर्णनाभिजंतु कृत जो तंतु है सो तंतु अत्यंत सूक्ष्म होवै है तथा अत्यंत कोमल होवै है ऐसा तंतुभी नेत्रविषे पड्या हुआ आपणे स्पर्शकरिकै ता नेत्रकूं दुःखकीही प्राप्ति करै है ता नेत्रतैं भिन्न दूसरे मुखनासिकादिक अङ्गोंविषे पड्याहुआ सो तंतु दुःखकी प्राप्ति करै नहीं तैसे मधु विष दोनोंकरिकै मिलित अन्नभोजनकी न्याईं तीन कालोंविषे क्लेशकरिकै व्याप्त जे विषयभोगके साधन हैं ते विषयभोगके साधन ता विवेकी पुरुषकूंही दुःखकी प्राप्ति करैं हैं अर्थात् सो विवेकी पुरुषही तिनोंकूं दुःखरूप मानैं हैं । और रात्रि दिन विषे बहुत प्रकारके दुःखोंकूं सहन करणेहारा जो अविवेकी मूढपुरुष है, तिस अविवेकी मूढपुरुषकूं ते विषयभोगके साधन दुःखकी प्राप्ति करैं नहीं अर्थात् सो अविवेकी पुरुष तिन भोगके साधनोंकूं दुःखरूप मानता नहीं तहां ता पतंजलिसूत्रविषे (परिणामतापसंस्कारदुःखैः) या पदकरिकै भूत वर्तमान भविष्यत् या तीनकालोंविषेभी दुःखकरिकै मिश्रित होणेतैं तिन विषयसुखोंविषे औपाधिक दुःखरूपता कथन करी है और (गुणवृत्तिविरोधात्) या पदकरिकै तिन विषयसुखोंविषे स्वरूपतैंभी दुःखरूपता कथन करी है तहां (परिणामतापसंस्कारदुःखैः) या वचनके अंतविषे स्थित जो दुःख यह शब्द है ता दुःख शब्दका परिणाम ताप संस्कार या तीनों शब्दोंके साथि संबंध करणा । या करिकै यह अर्थ सिद्ध होवैहै, परिणाम दुःख तापदुःख संस्कारदुःख या तीनों रूपता करिकै ते विषयसुख दुःखरूपही है । सो यह प्रकार अब दिखावैं हैं । जितनाक विषयसुखका अनुभव होवैहै सो सर्वरागकारिकै युक्तही होवैहै रागतैं विना सो विषयसुखका अनुभव होवैहै नहीं । काहेतैं जिस पुरुषका जिस वस्तुविषे राग होवैहै सो

पुरुषही तिस वस्तुकी प्राप्तिकरिकै सुखी होवैहै और जिस पुरुषका जिस वस्तुविषे राग नहीं होवैहै सो पुरुष तिस वस्तुकी प्राप्तिकरिकै सुखी होवै नहीं । यह वार्त्ता सर्व लोकविषे प्रसिद्ध है । यातै विषयकी प्राप्तितैं पूर्व उद्भव हुआ जो राग है सो रागही ता विषयकी प्राप्तिकालविषे सुखरूप करिकै परिणामकूं प्राप्त होवैहै और सो राग क्षणक्षणविषे वृद्धिकूं प्राप्त होताजावैहै । ता रागका विषय जो पदार्थ है ता पदार्थकी जबी अप्राप्ति होवैहै तबी अवश्यकरिकै दुःखकी प्राप्ति होवैहै । यातै सो राग दुःखरूपही है । तहां भोगोंविषे परितृप्तताकरिकै जा इंद्रियोंकी उपशांति है ताका नाम सुख है । और तिन भोगोंविषे लौल्यताकरिकै जा तिन इंद्रियोंकी अनुपशांति है ताका नाम दुःख है सो बहुत भोगोंके भोगणेकरिकै तिन इंद्रियोंकूं तृष्णातैं रहित करणे विषे कोईभी प्राणी समर्थ नहीं है । उलटा बहुत भोगणेकरिकै तृष्णाकी वृद्धि होती जावैहै जैसे घृतकाष्ठोंके पावणे करिकै अग्निकी वृद्धि होती जावैहै । यातैं दुःखरूप रागका परिणाम होणेतैं सो विषय सुखभी दुःखरूपही होवै है जिसकारणतैं कार्यकारणका अभेदही होवैहै तिसकारणतैं दुःखरूप रागका परिणाम होणेतै सो विषयसुखभी दुःखरूपही है । इतनेकरिकै ता विषयसुखविषे परिणामदुःखरूपता कथन करी । अब तापदुःखरूपता कथन करैहै । तहां यह पुरुष जिस कालविषे ता विषयसुखका अनुभव करैहै तिस कालविषे ता विषयसुखके प्रतिकूल जितनेक दुःखके साधन हैं तिन सर्व दुःखोंके साधनोंविषे यह पुरुष द्वेष करैहै । और तिन दुःखके साधनरूप भूतोंका नहीं हनन करिकै सो विषयसुखका भोग संभवता नहीं । यातैं ता विषयसुखवासतै सो पुरुष तिन प्रतिकूल भूतोंकूं अवश्यकरिकै हनन करै है तहां जितनेक दुःख हैं ते सर्व दुःखके साधन हमारेकूं मत प्राप्त होवैं या प्रकारका जो संकल्प विशेष है ताका नाम द्वेष है ता द्वेषके विषयरूप जितनेक दुःखके साधन हैं तिन सर्वोंके निवृत्त करणेविषे कोईभी प्राणी समर्थ होवै नहीं । यातैं ता विषय सुखके अनुभव कालविषेभी ता सुखके विरोधी विषयक द्वेष सर्वदा बन्या रहै है तिस द्वेषके विद्यमान

हुए सो तापदुःख निवृत्त करणेकूं अशक्य हैं इहां तापकूंही द्वेष कहैं हैं। इस प्रकार तिन दुःखसाधनोंके निवृत्त करणेविषे असमर्थ जो पुरुष है सो पुरुष तिसकालविषे मोहकूंभी अवश्यकरिकै प्राप्त होवै है। यातैं तापदुःखताकी न्याई संमोहदुःखताभी निवृत्त करणेकूं अशक्य है। तहां तिस तापरूप द्वेषतैं कर्माशय उत्पन्न होवै है। काहेतैं जो पुरुष विषय सुखके साधनोंकी इच्छा करै है सो पुरुष शरीरकरिकै तथा मनकरिकै तथा वाणीकरिकै अवश्य प्रवृत्त होवै है। ता प्रवृत्तितैं अनंतर आपणे अनुकूल प्राणियों ऊपरि अनुग्रह करै है, और आपणे प्रतिकूल प्राणियोंका हनन करै है। ता अनुकूल प्राणियोंके अनुग्रहतैं तथा प्रतिकूल प्राणियोंके हननतैं सो पुरुष धर्म अधर्मकूं संपादन करै है याका नाम कर्माशय है सो कर्माशय लोभतैं तथा मोहतैं होवै है इति। इतने करिकै तिन विषयसुखोंविषे तापदुःखता कथन करी। अब संस्कारदुःखता कथन करैं हैं। तहां वर्तमानकालविषे जो विषय सुखका अनुभव है सो विषयसुखका अनुभव आपणे नाशकालविषे इस पुरुषके चित्तविषे संस्कारोंकूं उत्पन्न करिजावै है। आगेवैं वे संस्कार ता सुखविषयक स्मरणकूं उत्पन्न करैं हैं तिसतैं अनंतर सो सुखविषयक स्मरण तिन सुखोंविषे रागकूं उत्पन्न करै है तिसतैं अनंतर सो सुखविषयक राग ता सुखकी प्राप्ति वासतैं शरीर मन वाणीकी चेष्टाकूं उत्पन्न करैं है। तिसतैं अनंतर सा शरीरादिकोंकी चेष्टा पुण्यपापरूप कर्माशयकूं उत्पन्न करै है। तिसतैं अनंतर ते पुण्यपापकर्म जन्मादिकोंकी प्राप्ति करैं हैं। इसका नाम संस्कारदुःखता है। इस प्रकार तापमोहके संस्कारभी जानिलेणे। इतने करिकै भूत भविष्यत् वर्त्तमान या तीनोंकाल विषे दुःखकरिकै युक्त होणेतैं यह सर्व विषयसुखदुःखरूपही है, यह अर्थ कथन कऱ्या। अब तिन विषयसुखोंविषे स्वरूपतैंभी दुःखरूपता कथन करैं हैं। (गुणवृत्तिविरोधाच) इस वचन करिकै इहां सुखरूप जो सत्त्वगुण है तथा दुःखरूप जो रजोगुण है तथा मोहरूप जो तमोगुण है या तीनोंका गुणशब्दकरिकै ग्रहण करणा ते सत्त्व रज तम तीनों गुण परस्पर विरुद्ध

स्वभाववाले हुएभी जैसे तेल वर्त्ति अग्नि यह तीनों मिलिकै एकही दीपकरूप कार्यकूं उत्पन्न करैं हैं तैसे इस पुरुषके भोगवास्तै तीन गुणात्मक कार्यकूं उत्पन्न करैं हैं । तिस त्रिगुणात्मक कार्यविषेभी एक गुणकी तौ प्रधानता होवै है और दूसरे दोगुणोंकी गौणता होवै है । ता एक प्रधान गुणकूं अंगीकार करिकैही सो त्रिगुणात्मक कार्यभी सात्त्विक राजस तामस या प्रकारका एक एक गुण करिकै कथन कऱ्या जावै है । तहां सुखका उपभोगरूप जो प्रत्यय है सो प्रत्यय उद्भूत सत्त्वगुणका कार्य हुआभी अनुद्भूत रज तमकाभी कार्य होवै है । केवल सत्त्वगुणका सो प्रत्यय कार्य है नहीं । यातैं सो सुखका उपभोगरूप प्रत्ययभी त्रिगुणात्मकही है । यातैं ता सुखका उपभोगरूप प्रत्ययविषे सुखरूपता तथादुःखरूपता तथा विषादरूपतायहतीनोंही विद्यमानहैं । या कारणतैंही विवेकी पुरुषकूं ते सर्व विषयसुखोंके अनुभव दुःखरूपही हैं । ऐसा दुःखरूप विषयसुखका उपभोगरूप प्रत्ययभी कोई स्थिर नहीं है । किंतु सो प्रत्यय शीघ्रही नाशकूं प्राप्त होवै है । जिस कारण तैं (चलं हि गुणवृत्तम्) इस वचन करिकै चित्तकूं शीघ्रपरिणामी कथन कऱ्या है शंका—एकही सो प्रत्यय एकही कालविषे परस्पर विरुद्ध सुखदुःख मोहरूपताकूं कैसे प्राप्त होवैगा, किन्तु नहीं प्राप्त होवैगा । समाधान—उद्भूत अनुद्भूत या दोनोंका परस्पर विरोध होवै नहीं, किंतु समवृत्तिवाले गुणोंकाही एककालविषे परस्पर विरोध होवैहै । विषमवृत्तिवाले गुणोंका एक कालविषे परस्पर विरोध होता नहीं । जैसे इस पुरुषविषे अभिव्यक्तिकूं प्राप्त हुए जे धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य यह च्यारों हैं ते अभिव्यक्त धर्मादिक च्यारों आपणे समान अभिव्यक्तिकूं प्राप्त हुए जे अधर्म अज्ञान अवैराग्य अनैश्वर्य यह च्यारि हैं तिन च्यारोंके साथही यथाक्रमतैं विरोधकूं करैं हैं । अनभिव्यक्त अधर्मादिकोंके साथि अभिव्यक्त धर्मादिक विरोधकूं करते नहीं । इस लोकविषेभी एक प्रधान पुरुषका दूसरे प्रधान पुरुषके साथिही विरोध होवै है, दुर्बल पुरुषके साथि ता प्रधान पुरुषका विरोध होता नहीं । तैसेंही सत्त्व रज तम यह तीनों गुणभी

एक कालविषे परस्पर प्रधानतामात्रकूं नहीं सहन करें हैं। एक दूसरेके सद्भावमात्रकूं असहन करते नहीं । इसी प्रकार परिणामदुःख तापदुःख संस्कारदुःख या तीनों विषेभी एकही कालविषे राग द्वेष मोह या तीनों-का सद्भावभी जानिलेणा । जिस कारणतैं ते रागद्वेषादिक क्लेश प्रसुप्त तनु विच्छिन्न उदार इन च्यारि रूपों करिकै च्यारि अवस्थावोंवालेहीं होवै हैं। अब तिन क्लेशोंका स्वरूप योगशास्त्रकी रीतिसैं वर्णन करै हैं । तहां योग सूत्र-(अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पंचक्लेशाः॥ १ ॥अविद्याक्षेत्र-मुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम्॥ २ ॥ अनित्याशुचिदुःखाऽनात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या॥ ३ ॥दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता॥ ४ सुखानुशयी रागः॥ ५ ॥ दुःखानुशयी द्वेषः ॥६॥ स्वरसवाही विदुषोऽपि तथा रूढोऽभिनिवेशः ॥ ७ ॥ ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः ॥ ८ ॥ ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ॥ ९ ॥ क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टाऽदृष्टजन्मवेदनीयः ॥ १० ॥ सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥ ११ ॥) अब यथा-क्रमतैं इन एकादश सूत्रोंका अर्थ निरूपण करै है। अविद्या अस्मिता-राग द्वेष अभिनिवेश यह पंच क्लेश होवैं हैं। तहां कर्मके तथा ताके फलके प्रवर्त्तक हुए जे इस पुरुषकूं दुःखकी प्राप्ति करैं तिन्होंका नाम क्लेश है। या प्रकारका लक्षण तिन अविद्यादिक पांचोंविषे घटै है। यातैं ते अविद्यादिक पांचों क्लेश कहे जावै है इति॥ १ ॥ तिन पंच क्लेशोंविषेभी प्रथम क्लेशरूप जा अविद्या है सा अविद्याही प्रसुप्त तनु विच्छिन्न उदार या च्यारि अवस्था-वाले अस्मितादिक च्यारि क्लेशोंका कारणरूप है। तहां तत् अभाववाले विषे तद्वत्ता बुद्धि विपर्यय मिथ्याज्ञान अविद्या यह च्यारों शब्द एकही अर्थके वाचक हैं इति ॥ २ ॥ सा अविद्या च्यारि प्रकारकी होवै है । तहां अनित्यपदार्थोंविषे नित्यबुद्धि करणी यह प्रथम अविद्या है । जैसे पृथिवी,चंद्र, सूर्य,तारागण,स्वर्ग, देवता इत्यादिक अनित्य पदार्थोंविषे यह सर्वपदार्थ नित्य हैं या प्रकारकी बुद्धि करणी इति । और अशुचि पदार्थोंविषे शुचि बुद्धि करणी यह दूसरी अविद्या है। जैसे अशुचि स्त्रीके शरीरविषे शुचि बुद्धि करणी । यह वार्त्ता श्रीव्यासभगवान्नेंभी कथन

करीहै । तहां श्लोक-(स्थानाद्बीजादुपष्टंभान्निष्पंदान्निधनादपि । कायमाधेयशौचत्वात्पंडिता ह्यशुचिं विदुः) अर्थ यह-शास्त्रके यथार्थ तात्पर्यकूं जानणेहारे विद्वान् पुरुष इस शरीरकूं स्थान, बीज, उपष्टंभ, निष्पंद, निधन, आधेयशौच, इतनें हेतुवोंतें अशुचिही जानैंहै । तहां विष्ठामूत्रादिकोंकरिकै युक्त जो माताका उदर है ताका नाम स्थान है । ऐसे मलिनस्थानविषे इस शरीरकी स्थिति होवै है यातें यह शरीर स्थानतैंभी अशुचिही है और पिताका जो सप्तम धातुरूप शुक्र है तथा माताका जो सप्तम धातुरूप शोणित है याका नाम बीज है ऐसे बीजतें इस शरीरकी उत्पत्ति होवैहै यातें यह शरीर बीजतैंभी अशुचिही है । और अन्नका परिणामरूप जो श्लेष्म रुधिरादिक हैं याका नाम उपष्टंभ है ता उपष्टभतैंभी यह शरीर अशुचिही है । और मुख, नासिका, कर्ण, नेत्र, पायु, उपस्थ, इन सर्व द्वारोंतें जे मलका बाहरि निकसणा है याका नाम निष्पंद है ता निष्पंदतैंभी यह शरीर अशुचिही है और मरणका नाम निधन है जिस मरणकरिकै विद्वान् ब्राह्मणका शरीरभी अशुचि होवैहै ता निधनतैंभी यह शरीर अशुचिही है और स्नान चंदन लेपादिकों करिकै जो इस शरीरविषे शुचित्वका आपादन करणा है याका नाम आधेयशौच है ता आधेयशौचता करिकैभी यह शरीर अशुचिही है इति । ऐसे अशुचि स्त्रीशरीरविषे शुचि बुद्धि करणी दूसरी अविद्या है इति । और दुःखरूप विषयभोगोंविषे सुखबुद्धि करणी यह तीसरी अविद्या है । सा दुःखविषे सुख बुद्धि तौ (परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः) इस सूत्रके व्याख्यानविषे पूर्व कथन करिआये हैं इति । और अनात्मवस्तुविषे आत्मबुद्धि करणी यह चतुर्थ अविद्या है । जैसे अनात्मरूप इस स्थूलशरीरविषे मैं मनुष्य हूं मैं ब्राह्मण हूं इस प्रकारकी आत्मबुद्धि करणी इति । इस प्रकार च्यारिप्रकारके भेदकरिकै स्थित जा अविद्या है ता अविद्याही अस्मितादिक सर्व क्लेशोंका मूलभूत है । इसी अविद्याकूं शास्त्र-

विषे तम या नामकरिकै कथन करें हैं इति ॥ ३ ॥ और दृक्शक्ति जो पुरुष है तथा दर्शनशक्ति जो बुद्धि है ते दोनो भोक्ताभोग्यरूप करिकै अत्यंत भिन्न हैं ऐसे पुरुष बुद्धि दोनोंका जो अविद्याकृत अभेदअभिमान है याका नाम अस्मिता है इसी अस्मिताकूं ब्रह्मवेत्ता पुरुष हृदयग्रंथि इस नामकरिकै कथन करे है और इसी अस्मिताकूं शास्त्रविषे मोह या नामकरिकै कथन करें हैं इति ॥ ४ ॥ और तिसतिस सुखकी प्राप्तिके जे साधन हैं तिन सर्वसाधनोंतैं रहित पुरुषका जो सर्वप्रकारके सुख हमारेकूं प्राप्त होवैं याप्रकारका विपर्यय विशेष है ताका नाम राग है । इसी रागकूं शास्त्रविषे महामोह या नामकरिकै कथन करें हैं ॥ ५॥ और दुःखकी प्राप्ति करणेहारे साधनोंके विद्यमान हुएभी हमारेकूं कोईप्रकारका दुःख नहीं प्राप्त होवै या प्रकारका जो विपर्ययविशेष है ताका नाम द्वेष है । इसी द्वेषकूं शास्त्रविषे तामिस्र या नामकरिकै कथन करें हैं इति ॥ ६ ॥ और जीवनका हेतु जो आयुष् है ता आयुष्के अभाव हुएभी इन अनित्यभी देह इंद्रियादिकों साथि हमारा कदाचित्भी वियोग नहीं होवै या प्रकारका जो विद्वान् अविद्वान् सर्वप्राणियोंविषे साधारण मरणका त्रासरूप विपर्यय है ताका नाम अभिनिवेश है इसी अभिनिवेशकूं शास्त्रविषे अंधतामिस्र या नामकारिकै कथन कऱ्या है इति ॥७॥ यह वार्त्ता पुराणविषेभी कथन करी है । तहां श्लोक—(तमो मोहो महामोहस्तामिस्रो ह्यंधसंज्ञितः । अविद्यापंचपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः) अर्थ यह—इस पुरुषकी अविद्या तम, मोह, महामोह, तामिस्र, अंधतामिस्र इन पांचप्रकारोंकरिकै प्रादुर्भावकूं प्राप्त होवै है इति । यह अविद्यादिक पंचक्लेश प्रसुप्तअवस्था तनुअवस्था विच्छिन्नअवस्था उदारअवस्था या च्यारि अवस्थावोंवाले होवैं हैं । तहां असत्कार्यकी कदाचित्भी उत्पत्ति होवै नहीं । यातैं तिन अविद्यादिक पंचक्लेशोंकी आपणी उत्पत्तितैं पूर्व जा अनभिव्यक्तरूप करिकै स्थिति है ताका नाम प्रसुप्तअवस्था है और अभिव्यक्तिकूं प्राप्तहुएभी तिन क्लेशोंविषे

दूसरे सहकारी कारणके अलाभतैं जो कार्यकी अजनकता है ताका नाम तनुअवस्था है और जे क्लेश अभिव्यक्तिकूंभी प्राप्तहुए हैं तथा जिन क्लेशोंनैं आपणे आपणे कार्यकूंभी उत्पन्न कऱ्या है ऐसे क्लेशोंकाभी जो किसी बलवान् प्रत्ययकरिकै अभिभव है ताका नाम विच्छिन्नअवस्था है । और जे क्लेश अभिव्यक्तिकूंभी प्राप्त हुए हैं तथा दूसरे सहकारी कारणोंकी संपत्तिकूंभी प्राप्त हुएहैं ऐसे क्लेशोंविषे जो प्रतिबंधतै रहितपणे करिकै आपणे आपणे कार्यकी जनकता है ताका नाम उदारअवस्था है। इस प्रकारकी च्यारि अवस्थावों करिकै विशिष्ट तथा विपर्यय बुद्धिरूप ऐसे जे अस्मितादिक च्यारि क्लेश हैं तिन च्यारों क्लेशोंका सामान्यरूप अविद्याही क्षेत्ररूप है अर्थात् सा अविद्या तिन च्यारों क्लेशोंके उत्पत्तिका भूमिरूप है । तिन सर्वक्लेशोंविषे विपरीत बुद्धिरूपता पूर्व कथन करिआये हैं यातैं ता अविद्याकी निवृत्ति करिकैही तिन अस्मितादिक सर्व . . . निवृत्ति होवैहै इति। ते क्लेशभी सूक्ष्म स्थूल या भेदकरिकै दो प्रकारक होवैं हैं । तहां प्रकृतिविषे लीन पुरुषोंके जे प्रसुप्त क्लेश हैं तथा विरोधी भावना करिकै तनु करेहुए जे योगी पुरुषोंके तनुक्लेश हैं ते प्रसुप्त अवस्थावाले क्लेश तथा तनु अवस्थावाले क्लेश दोनों सूक्ष्म कहेजावैं हैं ते सूक्ष्म क्लेश तौ मनका निरोधरूप निर्बीज समाधिकरिकैही निवृत्त होवैं हैं । इसी मनके निरोधकूं सूत्रविषे प्रतिप्रसव इस नामकरिकै कथन कऱ्या है इति ॥ ८ ॥ और तिन सूक्ष्म क्लेशोंका कार्यरूप जे विच्छिन्न अवस्थावाले तथा उदार अवस्थावाले क्लेश हैं ते दोनों प्रकारके क्लेश स्थूल कहेजावैं हैं तहां जे क्लेश बीचमें विच्छेदकूं प्राप्त होइकै तिसतिस रूपकरिकै पुनः पुनः प्रादुर्भावकूं प्राप्त होवैं हैं ते क्लेश विच्छिन्न कहेजावैं हैं। जैसे रागकालविषे क्रोध विद्यमान हुआभी प्रादुर्भूत होवै नहीं किंतु कालांतरविषे सो क्रोध प्रादुर्भूत होवैहै।यातैं सो क्रोध विच्छिन्न कह्याजावैहै ।इसीप्रकार जिस कालमें चैत्रनामा पुरुष एक स्त्रीविषे रागवाला है तिस कालविषे सो चैत्रनामा पुरुष अन्य स्त्रियोंविषे कोई वैराग्यकूं प्राप्त हुआ नहीं

किंतु तिस कालविषे सो चैत्रपुरुषका राग ता एक स्त्रीविषे वृत्तिकूं प्राप्त हुआ है और अन्य स्त्रियोंविषे सो राग आगे वृत्तिकूं प्राप्त होवैगा यातैं तिस कालविषे सो राग विच्छिन्न कह्याजावै है । इस प्रकारकी रीति दूसरे क्लेशोंविषेभी जानिलेणी और जे क्लेश जिसकालविषे विषयोंविषे वृत्तिकूं प्राप्त हुएहैं ते क्लेश तिस कालविषे सर्वरूपकरिकै प्रादुर्भूत हुए उदार कहेजावैं हैं । ते विच्छिन्न अवस्थावाले तथा उदारअवस्थावाले दोनों प्रकारके क्लेश अत्यंत स्थूल हैं । यातैं ते दोनों प्रकारके क्लेश शुद्धसत्त्वमय भगवत्के ध्यानकरिकेही निवृत्त होवैं हैं । ते दोनों स्थूल क्लेश आपणी निवृत्तिविषे ता मनके निरोधकी अपेक्षा करते नहीं । सूक्ष्मक्लेशही आपणी निवृत्तिविषे ता मनके निरोधकी अपेक्षा करैं हैं । जैसे लोकविषे वस्त्रका जो स्थूल मल है सो स्थूलमल जलके प्रक्षालनतैं निवृत्त होइजावैहै और ता वस्त्रविषे जो सूक्ष्म मल है सो सूक्ष्ममल क्षारसंयोगादिकोंकरिकै निवृत्त होवैहै । तैसे ते स्थूलक्लेश तौ भगवत्के ध्यानकरिकै निवृत्त होवैं हैं और ते सूक्ष्मक्लेश तौ ता मनके निरोधकरिकै निवृत्त होवैं हैं यातैं यह अर्थ सिद्धभया पूर्वउक्त परिणामदुःख, तापदुःख, संस्कारदुःख या तीनोंविषे प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न या तीन रूपोंकरिकै ते सर्व क्लेश सर्वदा रहैं हैं और उदारअवस्था तौ किसीकालविषे किसी क्लेशकीही होवैहै । यह अविद्यादिक पंच बाधनारूप दुःखकूं उत्पन्न करतेहुए क्लेशशब्दका वाच्य होवै है इति ॥ ९ ॥ और धर्म अधर्मरूप जो कर्माशय है सो क्लेशमूलकही होवैहै । अर्थात् ता कर्माशयका ते क्लेशही मूलभूत हैं । सो क्लेशमूलक कर्माशयभी दोप्रकारका होवैहै । एकतौ दृष्टजन्मवेदनीय होवै है । दूसरा अदृष्टजन्मवेदनीय होवै है । तहां जिस देहकरिकै ते धर्मअधर्मरूप कर्म करेजावैं हैं तिस देहकरिकै जो तिन कर्मोंके फलकाभोग भोगणा है ताका नाम दृष्टजन्मवेदनीय है और जिस कर्माशयका फल इस शरीरविषे भोग्याजावै नहीं किंतु जन्मांतरविषे भोग्याजावै है सो कर्माशय अदृष्टजन्मवेदनीय कह्याजावै है इति॥ १०॥

तहां मूळभूत क्लेशोंके विद्यमान हुए ता धर्मअधर्मरूप कर्माशयका फल अवश्यकरिकै होवैहै । सो कर्माशयका फलभी जाति, आयुष, भोग, या भेदकरिकै तीनप्रकारका होवैहै तहां जन्मका नाम जाति है । अथवा ब्राह्मणत्व देवत्व आदिकोंका नाम जाति है । और देह प्राण या दोनोंका जो चिरकालपर्यंत संबंध है ताका नाम आयुष है । और श्रोत्रादिक इंद्रियोंकरिके शब्दादिक विषयोंका जो अनुभव है ताका नाम भोग है । तिन तीनों विषेभी भोग तौ मुख्य है और जाति आयुष यह दोनों ता भोगका शेषरूप हैं इति ॥ ११ ॥ इस प्रकार तिन अविद्यादिक क्लेशोंकी संतति निरंतर प्रवृत्त होइरही है । इसी पूर्वउक्तसर्व अभिप्रायकूं मनविषे राखिके श्रीभगवान्नें(ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते । आद्यंतवंतः)यह वचन कथन कर्‍याहै । तहां तिन विषयभोगोंविषेदुःखयोनित्व तौ(परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच) इस वचनकरिकै पूर्व कथन कर्‍याहै और तिन विषयभोगोंविषे आदिअंतवत्त्व तौ (चलं हि गुणवृत्तम्) इस वचनकरिकै पूर्व कथन कर्‍याहै । यह सर्व व्याख्यान योगशास्त्रके मतके अनुसार कथन कर्‍याहै और वेदांतमतविषे तौ ताका यह अर्थ है । ब्रह्मके आश्रित तथा ब्रह्मकूं विषय करणेहारा जो अनादिभावरूप अज्ञान है ताका नाम अविद्या है । और सुखदुःखादिक धर्मसहित अहंकारका जो आत्माविषे अध्यास है ताका नाम अस्मिता है । और राग द्वेष अभिनिवेश यह तीनों तौ वा अहंकारकी वृत्तिविशेष हैं । इस प्रकार संसार अविद्यामूलक होणेतैं अविद्यारूपही है । यातैं ते सर्वविषयभोग मिथ्यारूप हुएभी रज्जुविषे सर्प अध्यासकी न्याईं दुःखकेही कारण हैं । तथा स्वप्नपदार्थोंकी न्याईं दृष्टिसृष्टिमात्र होणेतैं आदि अंतवालेभी हैं । जिस पुरुषका अधिष्ठान आत्माके साक्षात्कारकरिकै सो अज्ञानसहित भ्रम निवृत्त होइगया है ऐसा जो विद्वान् पुरुष है सो विद्वान् पुरुष तिन मिथ्या विषयभोगोंविषे रमण करता नहीं । जैसें मृगतृष्णाके वास्तव स्वरूपकूं जानणेहारा जो पुरुष है सो पुरुष जलके

प्राप्तिकी इच्छाकरिकै तहां प्रवृत्त होता नहीं । तैसे अधिष्ठान आत्माके ज्ञानतैं सर्वप्रपंचकूं मिथ्या जानणेहारा सो विद्वान् पुरुष तिन विषयभोगोंविषे प्रीति करै नहीं । किंतु इस संसारविषे सुखका गंधमात्र भी नहीं है या प्रकारका निश्चय करिकै सो विद्वान् पुरुष तिस संसारतैं सर्व इंद्रियोंकूं निवृत्त करैहै ॥ २२ ॥

तहां सर्व अनर्थोंके प्राप्तिका हेतुरूप तथा श्रेयमार्गका विरोधी तथा अल्पप्रयत्न करिकै दुर्निवार ऐसा जो यह अत्यंत कष्टरूप दोष है सो दोष महान् प्रयत्नकरिकै भी मुमुक्षुजनोंनै निवृत्त करणेकूं योग्य है । इस प्रकार प्रयत्नकी अधिकता विधान करणेवास्तै श्रीभगवान् पुनः कथन करैहै-

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्छरीरविमोक्षणात् ॥
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः २३

(पदच्छेदः) शक्नोति । इह । एव । यः । सोढुम् । प्राक् । शरीरविमोक्षणात् । कामक्रोधोद्भवम् । वेगम् । सः । युक्तः । सः । सुखी । नरः ॥ २३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो धीरपुरुष शरीरके नाशपर्यंत संभाव्यमान तथा कामक्रोधजन्य ऐसे वेगकूं बाह्यइंद्रियोंकी प्रवृत्तितैं पूर्व ही सहन करणेविषे समर्थ होवैहै सोईही पुरुष युक्त है तथा सोईही पुरुष सुखी है तथा सोईही पुरुष है ॥ २३ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! प्रत्यक्ष देखेहुए तथा श्रवण करे हुए तथा स्मरण करे हुए जितनेक आत्माके अनुकूल विषयसुखके साधन हैं, तिन सुखसाधनोंके सौंदर्यतादिकगुणोंका वारंवार चिंतन करणेकरिकै तिनं विषयसुखके साधनोंविषे उत्पन्नभया जो रतिनामा अभिलाषा है जिस अभिलाषाकूं तृष्णा लोभ कहैहैं ताका नाम काम है । यद्यपि स्त्री पुरुष दोनोंकी जो परस्पर विषयसंबंधविषे अभिलाषा है ता अभिलाषाविषे ही सो काम-

शब्द निरूढ है । इस अभिप्रायकरिकैही (कामः क्रोधस्तथा लोभः) इस वचनविषे धनकी तृष्णाका नाम लोभ है और स्त्रीके संसर्गकी तृष्णाका नाम काम है इसप्रकार काम लोभ यह दोनों भिन्नभिन्न कथन करैहैं । तथापि इहां तौ काम लोभ दोनों विषे अनुगत जो तृष्णारूप सामान्य है ता तृष्णारूप सामान्यके अभिप्रायकरिकै केवल कामशब्दही कथन कऱ्या है । ता कामशब्दतें पृथक् लोभशब्द कथन कऱ्या नहीं इति । और प्रत्यक्ष देखे हुए तथा श्रवण करेहुए तथा स्मरण करेहुए जितनेक आत्माके प्रतिकूल दुःखके साधन हैं तिन दुःखके साधनोंविषे वारंवार दोषोंके चिंतन करणे करिकै उत्पन्नभया जो प्रज्वलनरूप द्वेष है जिस द्वेषकूं मन्युभी कहैं हैं ताका नाम क्रोध है । ता काम क्रोध दोनोंकी जो उत्कट अवस्था है जा उत्कट अवस्था लोक वेदके विरोधज्ञानका प्रतिबंधक होणेतैं लोकवेदतैं विरुद्ध अर्थविषेप्रवृत्तिकी उन्मुखतारूप है । सा काम क्रोधकी उत्कट अवस्था प्रसिद्ध नदीके वेगके समान होणेतैं वेदशब्दकरिकै कही जावैहै । जैसे लोकप्रसिद्ध नदीका वेग वर्षाकालविषे अत्यंत प्रबलता करिकै लोकवेदके विरोधज्ञानतैं गर्त्तादिकोंविषे नही पडनेकी इच्छा करते हुए पुरुषकूंभी बलात्कारतैं ता गर्त्तविषे प्राप्तकरिकै डुबावै है, तथा अधोदेशकूं लेजावै है । तैसे सो काम क्रोधका वेगभी निरंतर विषयोंका चिंतनरूप वर्षाकाल करिकै अत्यंत प्रबलताकूं प्राप्त हुआ लोकवेदके विरोधज्ञानतै तिन विषयोंकी नहीं इच्छा करतेहुए पुरुषकूंभी ता विषयरूप गर्त्तविषे प्राप्तकरिकै संसाररूप समुद्रविषे डुबावै है तथा महान् नरकरूप अधोदेशकूं लेजावै है । यह सर्व अर्थ श्रीभगवान्नें (वेगम्) या शब्दकरिकै सूचन कऱ्या है । यह सर्व अर्थ (अथ केन प्रयुक्तोयं पाप चरति पूरुषः) इस श्लोकविषे पूर्व कथन करिआये हैं । इसप्रकारका अंतःकरणका क्षोभरूप जो कामका वेग है तथा क्रोधका वेग है जो कामक्रोधका वेग अनेकप्रकारके बाह्य विकाररूप लिंगोंकरिकै जान्याजावै है । वहां रोमांचोंका खडा होणा तथा मुखकी प्रसन्नता होणी तथा नेत्रोंकी प्रसन्नता होणी इत्यादिक बाह्यचिह्नोंकरिकै सो

कामवेग अनुमान कऱ्या जावै है । और शरीरविषे कम्पहोणा तथा प्रस्वेदका निकसणा तथा आपणे ओष्ठोंकूं दांतोंसैं दबावणा तथा नेत्रोंकी रक्तता इत्यादिक बाह्य चिह्नोंकरिकै सो क्रोधका वेग अनुमान कऱ्या जावै है । तथा जो कामक्रोधका वेग शरीरके नाशपर्यंत अनेकप्रकारके निमित्तोंके वशतैं सर्वदा संभावना कऱ्या जावै है ता अन्तरउत्पन्न हुए कामक्रोधके वेगकूं जो धैर्यवान् संन्यासी बाह्यइंद्रियोंके व्यापाररूप गर्त्तके पावतैं पूर्वही विषयोंविषे वारंवार दोषचिंतनजन्य वशीकारनामा वैराग्यकरिकै सहन करणे विषे समर्थ होवै है । अथवा जैसे तिमिंगिलनामा मत्स्य आपणे बलकरिकै नदीके वेगकूं सहन करै है । तैसे जो धैर्यवान् पुरुषरूप वैराग्यके बलतैं ता कामक्रोधके वेगकूं सहन करै है । तहां कामक्रोधके वेगकरिकै जो बाह्य अनर्थविषे प्रवृत्तिहै ता प्रवृत्तिरूप कार्यकूं न संपादन करिकै जो तिस कामक्रोधके वेगकूं निष्फल करणा है यहही ता कामक्रोधके वेगका सहन करणा है । सोईही पुरुष योगी है।तथा सोईही पुरुष सुखी है तथा सोईही परमपुरुषार्थका संपादक होणेतैं पुरुषरूप है।तिसतैं भिन्न जितनेक विषयासक्त पुरुष हैं ते सर्व आहार, निद्रा, भय, मैथुन, इत्यादिक पशुवोंके धर्मविषे प्रीतिवाले होणेतैं मनुष्यके आकारवाले हुएभी पशुरूपही है । यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथन करी है । तहां श्लोक- (आह्लादरूपता यस्य सुषुप्ते सर्वसाक्षिणी । तत्रोपेक्षा भवेद्यस्य तदन्यः स्यात्पशुः कथम्) अर्थ यह- जिस आत्मादेवकी आनंदरूपता सुषुप्तिअवस्थाविषे सर्वप्राणियोंके अनुभव करिकै सिद्ध है तिस आनंदस्वरूप आत्माविषे जिस विषयासक्त पुरुषकी उपेक्षाही रहै है तिस बहिर्मुख पुरुषतैं परे दूसरा कौन पशु है किंतु सो विषयासक्त बहिर्मुखपुरुषही पशु है इति । और किसी टीकाविषे तौ (प्राक् शरीरविमोक्षणात्)इस वचनका यह अर्थ कऱ्या है-जैसे मरणतैं उत्तरविलापकरती हुई सुन्दर स्त्रियोंनैं आलिंगन कऱ्या हुआभी तथा पुत्रादिकोंनैं अग्निविषे दाहकऱ्याहुआभी यह पुरुष प्राणोंतैं रहित होणेतैं ता कामक्रोधके वेगकूं सहन करैहै तैसे मरणतैं पूर्व जीवित अवस्थाविषेभी जो पुरुष ता कामक्रोधके वेगकूं

सहन करैहै सो पुरुषही युक्त है तथा सुखी है । यह वार्त्ता वसिष्ठभगवान्नैंभी कथन करी है। तहां श्लोक–(प्राणे गते यथा देहः सुखं दुःखं न विंदति । तथा चेत्प्राणयुक्तोपि स कैवल्याश्रमे वसेत्) अर्थ यह–जैसे प्राणोंके गयेतैं अनंतर यह देह सुखदुःखकूं प्राप्त होतानहीं तैसे प्राणोंकरिकै युक्तहुआभी जो पुरुष ता सुखदुःखकूं प्राप्त होतानहीं सो पुरुषही कैवल्यमोक्षविषे स्थित होवैहै इति । परंतु याप्रकारका व्याख्यान तबी सिद्ध होवै जबी मरण अवस्थाकी न्याई जीवित अवस्थाविषे ता कामक्रोधकी उत्पत्तिमात्रही नहीं अंगीकार करिये और इहां प्रसंगविषे ता कामक्रोधके वेगकी अनुत्पत्तिमात्र प्राप्त है नहीं। किंतु अंतरउत्पन्नहुए कामक्रोधके वेगका सहनही इहां प्राप्त है। यातैं ताकामक्रोधकी अनुत्पत्तिमात्रकूं दृष्टांतरूपता संभवै नहीं यातैं पूर्व उक्त व्याख्यानही समीचीन है इति । और किसी टीकाविषे तौ (प्राक् शरीरविमोक्षणात्) इस वचनका यह अर्थ कऱ्याहै–इहां शरीरपदकरिकै शरीरके आश्रित रहणेहारा गृहस्थआश्रम ग्रहण करणा। ता गृहस्थआश्रमके परित्यागरूप संन्यासतैं पूर्वही जो अधिकारीपुरुष विवेकवैराग्यकरिकै ता कामक्रोधके वेगकूं सहन करणेविषे समर्थ होवैहै सोईही पुरुष पश्चात् संन्यासपूर्वक श्रवणादिक साधनोंकरिकै आत्मज्ञानकूं संपादन करिकै ब्रह्मयोगयुक्त होणेकूं तथा ब्रह्मानंदी होणेकूं योग्य होवै है । और जो पुरुष ता संन्यासतें पूर्व ता 'काम क्रोधके वेगकूं' नहीं सहन करै है अर्थात् ता काम क्रोधकूं जय नहीं करै है, सो अशुद्धचित्तवाला पुरुष संन्यास आश्रमकूं करिकै श्रवणादिकोंकूं करता हुआभी आत्मज्ञानकूं तथा ज्ञानके फलरूप मोक्षरूप सुखकूं प्राप्त होवै नहीं ॥ २३ ॥

तहां यह अधिकारी पुरुष केवल ता कामक्रोधके वेगके सहनमात्र करिकैही मोक्षकूं प्राप्त होवै नहीं। किंतु तिसतैं अधिक भी किंचित् कर्त्तव्य है । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करै हैं–

योऽतःसुखोऽतरारामस्तथांतर्ज्योतिरेव यः ॥
स योगी ब्रह्म निर्वाणं ब्रह्मभूतोधिगच्छति॥ २४ ॥

(पदच्छेदः) यः अंतःसुखः । अंतरारामः । तथा । अंतर्ज्योतिः । एव । यः । सः । योगी । ब्रह्म । निर्वाणम् । ब्रह्मभूतः । अधिगच्छति ॥ २४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष अंतरसुख ही है तथा अंतरारामही है तथा जो पुरुष अंतज्योतिही है सो योगीपुरुष ब्रह्मरूप हुआही निर्वाण ब्रह्मकूं प्राप्त होवैहै ॥ २४ ॥

भा०टी०—बाह्यविषयोंकी अपेक्षातैं विनाही अंतर स्वरूपभूत सुख प्राप्तहै जिसकूं ताका नाम अंतःसुख है । अर्थात् जो पुरुष बाह्यविषयजन्य सुखतैं रहित है । शंका—हे भगवन् ! ता पुरुषकूं बाह्यविषयसुखका अभाव किसकारणतैं है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (अंतरारामः इति) हे अर्जुन ! जिस कारणतैं सो पुरुष अंतराराम है तिस कारणतैं सो पुरुष बाह्यविषयसुखोंतैं रहित है । अंतरआत्माविषेही है क्रीडारूप आराम जिसकूं बाह्यविषयसुखके साधनरूप स्त्री पुत्र धनादिक विषयोंविषे सो क्रीडारूप आराम जिसकूं है नहीं ताका नाम अंतराराम है । अर्थात् जो पुरुष सर्व परिग्रहतैं रहित होणेतैं बाह्यविषयसुखके साधनोंतैं रहित है । शंका—हे भगवन् ! सर्वपरिग्रहतैं रहित जो विरक्तसंन्यासी है तिस संन्यासीकूंभी यदृच्छातैं प्राप्तहुए कोकिलादिकोंके मधुरशब्दके श्रवण करिकै तथा मंद मंद पवनके स्पर्शकरिकै तथा चंद्रमाके दर्शनकरिकै तथा मयूरनृत्यके दर्शन करिकै तथा अत्यंत मधुर शीतल गंगाजलके पानकरिकै तथा केतककी कुसुमकी सुगंधिके ग्रहणकरिकै सुखकी उत्पत्ति संभव होइसकै है । यातैं ता संन्यासीकूं बाह्यसुखका अभाव तथा ता सुखके साधनोंका अभाव कहणा संभवता नहीं । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं (तथांतर्ज्योतिरेव यः) हे अर्जुन ! जैसे ता विद्वान् पुरुषकूं अंतरआत्माविषे सुख है बाह्यविषयोंकरिकै सुख है नहीं । तैसे अंतरआत्माविषेही है ज्योतिः क्या वृत्तिरूप विज्ञान जिसका बाह्यइंद्रियोंकरिकै सो विज्ञानरूप ज्योति जिसका है नहीं ताका

नाम अंतर्ज्योति है अर्थात् जो पुरुष श्रोत्रादिक इंद्रियजन्य शब्दादिकविषयोंके ज्ञानतैं रहित है । तात्पर्य यह—ता विद्वान् पुरुषकूं समाधिकालविषे तौ तिन शब्दादिकविषयोंकी प्रतीतिही नहीं होवै है और ता समाधितैं व्युत्थानकालविषे यद्यपि ता विद्वान् पुरुषकूं तिन शब्दादिकोंकी प्रतीति होवै है तथापि सो विद्वान् पुरुष तिन शब्दादिकविषयोंकूं मृगतृष्णाके जलकीन्याई मिथ्याही जानै है । यातैं ता विद्वान् पुरुषकूं बाह्यविषयोंकरिकै सुखकी उत्पत्ति संभवती नहीं इति । हे अर्जुन ! इसप्रकार जो पुरुष अंतःसुख है तथा अन्तराराम तथा अंतर्ज्योति है सो विद्वान् पुरुषही मन सहित सर्वइंद्रियोंके निरोधरूप योगवाला होणेतैं योगी है । ऐसा योगी पुरुषही तत्त्वसाक्षात्कारकरिकै अविद्यारूप आवरणकी निवृत्ति करिकै परमानंदस्वरूप ब्रह्मकूं प्राप्त होवै है । कैसा है सो ब्रह्म, निर्वाण है अर्थात् कल्पित प्रपंचकी निवृत्तिरूप है । जिस कारणतैं कल्पित वस्तुका, अभाव अधिष्ठानरूपही होवै है ता अधिष्ठानतैं भिन्न होवै नहीं । इतने कहणेकरिकै द्वैतप्रपंचरूप अनर्थकी निवृत्तिपूर्वक परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्षका कथन कऱ्या । ऐसे निर्वाणब्रह्मकूंभी यह विद्वान् पुरुष आप अब्रह्मरूप हुआ प्राप्त होवै नहीं किंतु सो विद्वान् पुरुष आप सर्वदा ब्रह्मरूप हुआही ता ब्रह्मकूं प्राप्त होवै है अर्थात् नित्यप्राप्त ब्रह्मकूंही प्राप्त होवै है । तहां श्रुति—(ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति) अर्थ यह—यह विद्वान् पुरुष ज्ञानतै पूर्वही वास्तवतैं ब्रह्मरूप हुआभी अज्ञानकृत विस्मृतिके हुए आत्मज्ञानकरिकै पुनः ता ब्रह्मकूं प्राप्त होवै है ॥ २४ ॥

तहां मोक्षके प्राप्तिका कारणरूप जो आत्मज्ञान है ता आत्मज्ञानके पूर्व अनेक प्रकारके साधन कथन करे हैं । अब ता आत्मज्ञानके दूसरे साधनोंकूंभी श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

लभंते ब्रह्म निर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ॥
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥ २५ ॥

(पदच्छेदः) लभंते । ब्रह्म । निर्वाणम् । ऋषयः । क्षीणकल्मषाः । छिन्नद्वैधाः । यतात्मानः । सर्वभूतहिते । रताः ॥ २५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जे पुरुष पापोंतें रहित है तथा संन्यासयुक्त हैं तथा संशयतें रहित है तथा एकाग्रचित्तवाले हैं तथा सर्वभूतोंके हितविषे प्रीतिवाले हैं ऐसे पुरुषही तां निर्वाणब्रह्मकूं प्राप्त होवैं हैं ॥ २५ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन । जे पुरुष प्रथम यज्ञदानादिक निष्कामकर्मोंकरिकै पापरूप कल्मषोंतें रहित हुएहे तिसतें अनन्तर अन्तःकरणकी शुद्धिकरिकै जे पुरुष ऋषिभावकूं प्राप्त हुए हैं अर्थात् सूक्ष्मवस्तुके विवेककरणेविषे समर्थ संन्यासी हुए हैं । तिसतें अनंतर जे पुरुष वेदांतशास्त्रके श्रवणमननकी परिपक्वताकरिकै छिन्नद्वैधा हुए हैं अर्थात् प्रमाणगत संशय प्रमेयगत संशय इत्यादिक सर्व संशयोंतें रहित हुए हैं तिसतें अनन्तर निदिध्यासनकी परिपक्वताकरिकै यतात्मा हुए हैं अर्थात् विपरीतभावनाकी निवृत्तिपूर्वक एक परमात्माविषेही एकाग्रचित्तवाले हुए हैं । तिसतें अनंतर द्वैतदर्शनके अभावकरिकै जे पुरुष सर्वभूतोंके हितविषे प्रीतिवाले हुए हैं अर्थात् शरीरकरिकै तथा मनकरिकै तथा वाणीकरिकै सर्वभूतप्राणियोंकी हिंसातें रहित हुए हैं । ऐसे ब्रह्मवेत्ता पुरुषही ता सर्वद्वैतकी निवृत्तिरूप परमानंदस्वरूप ब्रह्मकूं अभेदरूप प्राप्त होवैं हैं । तहां श्रुति (यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः । तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः इति) अर्थ यह–जिस ज्ञानअवस्थाविषे इस विद्वान् पुरुषकूं यह सर्वभूत आपणा आत्मारूपही होवेभये हैं तिस ज्ञानअवस्थाविषे एक अद्वितीय आत्माकूं देखणेहारे ब्रह्मवेत्तापुरुषकूं द्वैतदर्शनके अभाव हुए किसी मोहकी प्राप्ति तथा किसी शोककी प्राप्ति कदाचित्भी होवै नहीं ॥ २५ ॥

तहां पूर्व (शक्नोतीहैव यः सोढुम्) इस श्लोकविषे उत्पन्न हुएभी कामक्रोधके वेगकूं इस पुरुषनैं सहनकरणा यह अर्थ कथन कऱ्या था

अब इस अधिकारी पुरुषनैं कामक्रोधके उत्पत्तिकाही प्रतिबंध करणा अर्थात् ता कामक्रोधकूं उत्पन्नही नहीं होणेदेणा इस अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ॥
अभितो ब्रह्म निर्वाणं वर्त्तते विदितात्मनाम् ॥२६॥

(पदच्छेदः) कामक्रोधवियुक्तानाम् । यतीनाम् । यतचेतसाम् । अभितः । ब्रह्म । निर्वाणम् । वर्त्तते । विदितात्मनाम् ॥ २६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जे पुरुष कामक्रोधकी उत्पत्तितैं रहित हैं तथा चित्तके निग्रहवाले हैं तथा आत्मसाक्षात्कारवाले हैं ऐसे संन्यासियोंकूं सर्व अवस्थाविषे सो निर्वाणरूप ब्रह्म प्राप्त है ॥ २६ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! जे यत्नशीलसंन्यासी कामक्रोध दोनोंकी अनुत्पत्तिकरिकै युक्त हैं अर्थात् जिन्होंकूं सो कामक्रोध उत्पन्नही नहीं होवै है, इसी कारणतैं जे पुरुष चित्तके संयमकरिकै युक्त हैं तथा तत्पदार्थरूप परमात्मादेवकूं आपणा आत्मारूप करिकै साक्षात्कार कऱ्या है जिन्होंनैं ऐसे विद्वान् संन्यासियोंकूं जीवतकालविषे तथा मरणकालविषे सो निर्वाणब्रह्मरूप मोक्ष सर्वदा प्राप्तही है । जिस कारणतैं सो ब्रह्मरूप मोक्ष नित्य है स्वर्गादिकोंकी न्यांई साध्य है नहीं यातैं तिन विद्वान् पुरुषोंकूं सो ब्रह्मरूप मोक्ष आगे प्राप्त होवैगा याप्रकारका भविष्यत् व्यवहार ता मोक्षविषे होवै नहीं ॥ २६ ॥

तहां पूर्वप्रसंगविषे यह वार्त्ता कथन करीथी । ईश्वरविषे अर्पण करे हैं सर्व कर्म जिसनैं ऐसा जो अधिकारी पुरुष है ता अधिकारी पुरुषके ता निष्कामकर्मयोगकरिकै अंतःकरणकी शुद्धि होवै है । ता अंतःकरणकी शुद्धितैं अनंतर सर्वकर्मोंका त्यागरूप संन्यास होवै है । ता संन्यासतैं अनंतर श्रवणमननादिकों विषे तत्पर पुरुषकूं मोक्षका साधनरूप

तत्त्वज्ञान प्राप्त होवै है। यह सर्ववार्त्ता पूर्व कथन करी थी। अब (ब्र योगी ब्रह्म निर्वाणम्) इस पूर्ववचनविषे श्रीभगवान्नें सूचन कर्या जो ध्यानयोग है सो ध्यानयोगही तिस तत्त्वसाक्षात्कारका अंतरंग साधन है इस अर्थकूं विस्तारतैं कथन करणेवासतैं श्रीभगवान् सूत्ररूप तीन श्लोकोंकूं कथन करैं हैं। इन सूत्ररूप तीन श्लोकोंकाही समग्र षष्ठाध्याय व्याख्यानरूप है तिन तीन श्लोकोंविषेभी प्रथम दो श्लोकोंकरिकै वो संक्षेपतैं ता योगका कथन कर्या है और तीसरे श्लोककरिकै वो ता ध्यानयोगका फलरूप आत्मज्ञानका कथन कर्या है—

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवांतरे भ्रुवोः ॥
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यंतरचारिणौ॥२७॥
यतेंद्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ॥
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥२८॥

(पदच्छेदः) स्पर्शान् । कृत्वा । बहिः । बाह्यान् । चक्षुः । च । एव । अंतरे । भ्रुवोः । प्राणापानौ । समौ । कृत्वा । नासाभ्यंतरचारिणौ । यतेंद्रियमनोबुद्धिः । मुनिः । मोक्षपरायणः । विगतेच्छाभयक्रोधः । यः । सदा । मुक्तः । एव । सः ॥ २७ ॥ २८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! बाह्यस्थित शब्दादिक विषयोंकूं पुनः बाह्य करिकै तथा चक्षुकूं दोनों भ्रुवोंके मध्यविषे ही स्थितकरिकै तथा प्राण अपान दोनोंकूं समान नासिकाके भीतरही निरुद्ध करिकै, जीतेहुए हैं इंद्रिय मन बुद्धि जिसनें तथा निवृत्तहुए हैं इच्छा भय क्रोध जिसके तथा सर्वविषयोंतैं विरक्त ऐसा जो मननशील संन्यासी है सो संन्यासी सर्वदा मुक्त ही है ॥ २७ ॥ २८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! स्वभावतैं बाह्यदेशविषे रहणेहारे जे शब्दादिक विषय हैं ते शब्दादिक विषय बाह्यहुएभी श्रोत्रादिक इंद्रियद्वारा तिसतिस शब्दादिआकारकूं प्राप्त हुई अंतःकरणकी वृत्तिकूं द्वारकरिकै

अंतरचित्तविषे प्रवेशकरै है । ऐसे शब्दादिक विषयोंकूं जो पुरुष पुनः बाह्यही करै है अर्थात् जो पुरुष परवैराग्यके प्रभावतें तिसतिस शब्दाकारवृत्तिकूं उत्पन्नही करै है । इहां श्रीभगवान्नें शब्दादिक विषयोंका जो (बाह्यान्) यह विशेषण कथन कऱ्या है ताका यह अभिप्राय है— यह शब्दादिक विषय जो कदाचित् स्वभावतैंही अंतर होते तौ सहस्र उपायोंकरिकैभी ते विषय पुनः बाह्य करेजावे नहीं । जो स्वभावतें अंतरस्थित विषयभी बाह्य करेजाते तौ तिन विषयोंके स्वभावकीही हानि होवी सो वस्तुके स्वभावकी हानि होवी नहीं । जैसे अग्निके उष्णस्वभावकी कदाचित्भी हानि होती नहीं । और तिन शब्दादिक विषयोंकूं जो स्वभावतैंही बाह्य अंगीकार करिये तौ रागके वशतें अंतरचित्तविषे प्रविष्टहुए भी तिन शब्दादिक विषयोंका परवैराग्यके वशतें पुनः बाह्य निकसणा संभव होइसकै । जैसे स्वभावतें शुद्ध वस्त्रविषे बाह्यतें प्राप्त भई जा मृत्तिका सा मृत्तिका क्षारजलके प्रक्षालन करणेतें निवृत्त करी जावै है इति । इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नें वैराग्यका कथन कऱ्या । अब अभ्यासका कथन करैं हैं (चक्षुश्चैवांतरे भ्रुवोः इति) हे अर्जुन ! यह अधिकारी पुरुष आपणे चक्षुकी दृष्टिकूं दोनों भ्रुवोंके मध्यविषे स्थित करै । ता भ्रुवोंके मध्यविषे चक्षुकी स्थिति ता चक्षुके अर्धनिमीलनकरिकैही होवै है । ता चक्षुके अत्यंत निमीलनकरिकै तथा अत्यंत उन्मीलन करिकै सा भ्रुवोंके मध्यविषे स्थिति होवै नहीं । तात्पर्य यह—यह अभ्यास करणेहारा पुरुष जो कदाचित् आपणे चक्षुकूं अत्यंत निमीलन करैगा तौ इस पुरुषकूं निद्रारूप लयवृत्तिही होवैगी । और यह अधिकारीपुरुष जो कदाचित् तिस आपणे चक्षुकूं अत्यंत प्रसारण करैगा तौ प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, स्मृति, यह च्यारिप्रकारकी विक्षेपरूप वृत्तियां उत्पन्न होवैंगी । और ते निद्रादिक पांचों वृत्तियां योगाभ्यासके विरोधीही होवैं हैं । यातें इस अधिकारी पुरुषनें ते पांचों वृत्तियां निरोधकरणेकूं योग्य हैं । सो तिन पांचों वृत्तियोंका निरोध तौ भ्रुवोंके मध्य-

विषे चक्षुके स्थित करणेतैंही होवै है । तथा सो अधिकारी पुरुष आपणे प्राण अपान दोनोंकूं सम करिकै अर्थात् प्राणके ऊर्ध्वगतिका तथा अपानके अधोगतिका विच्छेदकरिकै कुंभककरिकै तिस प्राण अपानकूं हृदयादिक स्थानविषेही स्थित करै । इस प्रकारके उपायकरिकै निरोधकूं प्राप्तहुएहैं इंद्रिय मन बुद्धि जिसके ऐसा जो मोक्षपरायण पुरुष है अर्थात् सर्व विषयोंतैं विरक्त है सो पुरुष मुनि होवै अर्थात् मननशील होवै। तथा जो पुरुष विगतेच्छाभयक्रोध है अर्थात् इच्छा भय क्रोध या तीनोंतै रहित है । (विगतेच्छाभयक्रोधः) इस वचनका अर्थ (वीतरागभयक्रोधः) इस वचनके व्याख्यानविषे पूर्व विस्तारतै कथन करिआये हैं । इस प्रकारके लक्षणोंयुक्त जो संन्यास सर्वदा होवैहै सो संन्यासी मुक्तही है तिस संन्यासीकूं सो मोक्ष कर्त्तव्य नहीं है । अथवा (सदा) इस पदका (मुक्त एव) या पदके साथि अन्वय करणा। ताकरिकै यह अर्थ सिद्ध होवै । इस प्रकारका सो संन्यासी जीवताहुआभी मुक्तही है ॥ २७ २८ ॥

हे भगवन् ! इस प्रकारके योगकरिकै युक्त जो पुरुष है सो अधिकारी पुरुष किस वस्तुकूं जानिकरिकै मुक्तिकूं प्राप्त होवैं है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं-

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ॥
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शांतिमृच्छति॥२९॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे संन्यासयोगो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

(पदच्छेदः) भोक्तारम् । यज्ञतपसाम् । सर्वलोकमहेश्वरम् । सुहृदम् । सर्वभूतानाम् । ज्ञात्वा । माम् । शांतिम् । ऋच्छति ॥२९॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्व यज्ञतपोंका भोक्तारूप तथा सर्व लोकोंका महान् ईश्वररूप तथा सर्वभूतप्राणियोंका सुहृद्रूप ऐसा जो मैं भगवान्

हूं ; तिसं हमारेकूं आत्मारूप जानिकैही सो योगयुक्त पुरुष मुक्तिकूं प्राप्त होवै है ॥ २९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! वेदकरिकै प्रतिपादित जितनेक ज्योतिष्टोमादिक यज्ञ हैं तथा जितनेक कृच्छ्रचांद्रायणादिक तप हैं तिन सर्व यज्ञोंका तथा सर्व तपोंका यजमानादिक कर्त्तारूप करिकै तथा इंद्रादिक देवतारूप करिकै भोक्तारूप तथा पालनकरणेहारा जो मैं परमेश्वर हूं तथा सर्वलोकोंका महान् ईश्वररूप जो मैं हूं अर्थात् हिरण्यगर्भादिक ईश्वरोंकूंभी आपणी आज्ञाविषे चलावणेहारा जो मैं परमेश्वर हूं तथा सर्वप्राणियोंका सुहृद्रूप जो मैं हूं अर्थात् प्रतिउपकारकी अपेक्षावैं विनाही तिन सर्व प्राणियोंऊपरि उपकार करणेहारा जो मैं परमेश्वर हूं ऐसे सर्वांतर्यामी सर्वके प्रकाशक परिपूर्ण सत् चित् आनंदस्वरूप एकरस परमार्थ सत्य सर्वका आत्मारूप मैं नारायणकूं आपणा आत्मारूपकरिकै साक्षात्कार करिकैही ते योगयुक्त पुरुष सर्व संसारकी निवृत्तिभूत मोक्षरूप शांतिकूं प्राप्त होवैं हैं । इहां हे भगवन् ! शंख, चक्र, गदा, पद्म, या च्यारोंकूं धारण करणेहारी जो यह आपकी चतुर्भुज व्यक्ति है जा व्यक्ति वसुदेवदेवकीतैं उत्पन्न हुई है तथा हमारे रथविषे स्थित है ऐसी आपकी व्यक्तिकूं जानताहुआभी मैं अर्जुन मुक्तिकूं क्यों नहीं प्राप्त होता ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके निवृत्त करणे वासतै श्रीभगवान्नैं आपणे स्वरूपके (यज्ञतपसां भोक्तारं सर्वलोकमहेश्वरं सर्वभूतानां सुहृदम्) यह तीन विशेषण कथन करे हैं । अर्थात् इस प्रकारके हमारे स्वरूपका ज्ञानही मुक्तिका कारण है । केवल इस हमारे स्थूल व्यक्तिका ज्ञान ता मुक्तिका कारण होवै नहीं इति । अब इस पंचम अध्यायके सर्व अर्थकूं संक्षेपतैं प्रतिपादन करणेहारा श्लोक कहैंहैं । (अनेकसाधनाभ्यासनिष्पन्नं हरिणेरितम् । स्वस्वरूपपरिज्ञानं सर्वेषां मुक्तिसाधनम् । इति) अथ यह—अनेक प्रकारके साधनोंके अभ्यास करिकै उत्पन्न

हुआ तथा सर्व अधिकारीजनोंके मुक्तिका साधनरूप ऐसा जो स्वस्वरूपका ज्ञान है सो ज्ञान श्रीभगवान्नैं इस पंचम अध्यायविषे कथन कन्या है ॥ २९ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां श्रीमगवद्गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां पंचमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

तहां प्रारंभका श्लोक । (योगसूत्रं त्रिभिः श्लोकैः पंचमांते यदीरितम् । षष्ठ आरभ्यतेऽध्यायस्तद्व्याख्यानाय विस्तरात्) अर्थ यह—पंचम अध्यायके अंतविषे तीन श्लोकोंकरिकै कथन कन्या जो योगसूत्रहै तिस योगसूत्रके विस्तारतैं व्याख्यान करणेवासतै यह षष्ठाध्याय प्रारंभ करीता है इति । तहां सर्वकर्मोंके त्यागका कथन करिकै श्रीभगवान्नैं योगका विधान कन्या है। यातैं ते सर्व कर्म त्यागणे योग्य होणेतैं संन्यासतैं तथा योगतैं अत्यंत निकृष्ट होवैंगे । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता अर्जुनकूं युद्धरूप कर्मविषे प्रवृत्त करणेवासतै दोश्लोकों करिकै पुनः ता कर्मयोगकी स्तुति करैं हैं—

श्रीभगवानुवाच ।

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ॥
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥१॥

(पदच्छेदः) अनाश्रितः । कर्मफलम् । कार्यम् । कर्म । करोति । यः । सः । संन्यासी । च । योगी । च । न । निरग्निः । न । च । अक्रियः ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष कर्मके फलकूं नहीं इच्छताहुआ अवश्य करणेयोग्य नित्यकर्मकूं करै है सो पुरुष यद्यपि अग्नितैं रहित

नहीं है तथा क्रियातैं रहित नहीं है तथापि सो पुरुष संन्यासी है तथा योगी है ॥ १ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! जो पुरुष कर्मके स्वर्गादिक फलोंकी इच्छातैं रहितहोइके शास्त्रनैं कर्त्तव्यतारूप करिकै विधान करे जे अग्निहोत्रादिक नित्यनैमित्तिक कर्म हैं तिन नित्यनैमित्तिक कर्मोंकूं श्रद्धापूर्वक करैं हैं सो पुरुष कर्मी हुआभी संन्यासीही है तथा योगीहीहै । या प्रकारतैं सो कर्मी पुरुष स्तुतिकन्याजावै है काहेतें त्यागका नाम संन्यास है औरं चित्तविषे स्थित विक्षेपके अभावका नाम योग है इस प्रकारका संन्यास तथा योग दोनों इस निष्काम पुरुषविषे विद्यमान हैं अर्थात् यह निष्कामपुरुष फलके त्यागवाला होणेतैं संन्यासी है तथा फलकी तृष्णारूप विक्षेपके अभाववाला होणेतैं योगी है । इहां सकामपुरुषोंकी अपेक्षाकरिकै तिस निष्काम पुरुषविषे श्रेष्ठता कथन करणेवासतै श्रीभगवान्नैं संन्यासशब्दकी गौणीवृत्तिकूं अङ्गीकार करिकै वा संन्यासशब्दकरिकै कर्मके फलका त्याग कथन कन्या है तथा योगशब्दकी गौणी वृत्तिकूं अङ्गीकार करिकै ता योगशब्दकरिकै फलकी तृष्णाका त्याग कथन कन्या है । और ता संन्यासशब्दका फलसहित सर्वकर्मोंका त्यागरूप जो मुख्य अर्थ है तथा ता योगशब्दका सर्व चित्तवृत्तियोंका निरोधरूप जो मुख्य अर्थ है ते दोनों ता निष्कामपुरुषकूं आगे अवश्यकरिकै उत्पन्न होणेहारे हैं । यातैं सो निष्काम कर्मोंकूं करणेहारा पुरुष यद्यपि अग्नितैं रहित नहीं है अर्थात् अग्निकरिकै सिद्ध होणेहारे अग्निहोत्रादिक श्रौतकर्मोंके त्यागवाला नहीं है तथा सो कर्मी पुरुष क्रियातैं रहितभी नहीं है अर्थात् ता अग्निकी अपेक्षातैं रहित स्मार्तक्रियाके त्यागवालाभी नहीं है तथापि सो निष्कामकर्मोंकूं करणेहारा कर्मीपुरुष संन्यासी जानणा तथा योगीही जानणा । अथवा (स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः) या वचनका यह अर्थ करणा श्रौतअग्नितैं रहित पुरुष कोई संन्यासी कह्याजावै नहीं । तथा क्रियातैं रहित पुरुष कोई योगी कह्याजावै नहीं । किंतु ता श्रौतअग्निवाला तथा

ता क्रियावाला जो निष्कामकर्मोंके करणेहारा पुरुषहै सो कर्मीपुरुषही संन्यासी जानणा तथा योगी जानणा। इसप्रकारतैं सो निष्काम कर्मी पुरुष स्तुति कऱ्याजावै इति। इहां यद्यपि अक्रिय या शब्दकरिकैही सर्वकर्मोंके संन्यासीकी प्रतीति होइसकै है यातैं निरग्निः यह पद व्यर्थ है तथापि अग्निशब्दतैं सर्वकर्मोंका ग्रहण करिकै निरग्निः या शब्दकरिकै संन्यासीका कथन कऱ्याहै। तथा क्रियाशब्दतैं सर्व चित्तके वृत्तियोंका ग्रहण करिकै अक्रिय या शब्दकरिकै निरुद्धचित्तवृत्तिवाले योगीका कथन कऱ्याहै। यातैं यह अर्थ सिद्ध होवैहै। सो निरग्निपुरुष संन्यासी कह्याजावै नहीं तथा अक्रियपुरुष योगी कह्याजावै नहीं किंतु सो निष्कामकर्मोंके करणेहारा कर्मी पुरुषही संन्यासी तथा योगी कह्याजावै है ॥ १॥

तहां जैसे (सिंहोदेवदत्तः) इस वचनविषे पशुरूप सिंहतैं भिन्न मनुष्यरूप देवदत्तविषे ता सिंहके सदृश शूरता क्रूरताआदिक गुणोंकूं ग्रहणकरिकै सो सिंहशब्द प्रवृत्त होवैहै। तैसे असंन्यासविषे संन्यासशब्दकी प्रवृत्तिका तथा अयोगविषे योगशब्दके प्रवृत्तिका निमित्तरूप जो समान गुण है ता गुणकूं श्रीभगवान् कथन करैहैं—

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पांडव॥
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) यम्। संन्यासम्। इति। प्राहुः। योगम्। तम्। विद्धि। पांडव। न। हि। असंन्यस्तसंकल्पः। योगी। भवति। कश्चन ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिसकूं श्रुतियां संन्यास ईसनामकरिकै कथन करैं हैं तिसकूंही तूं योगरूप जान, जिसकारणतैं संकल्पके त्यागत रहित कोईभी" पुरुष "योगी नहीं होवै" है ॥ २ ॥

भा० टी०—(न्यास एवातिरेचयत्। ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरंति) इत्यादिक अनेक

श्रुतियां जिस फलसहित सर्वकर्मोंके त्यागकूं संन्यास यानामकरिकै कथन करैं हैं तिस संन्यासकूंही तूं अर्जुन योगरूप जान । इहां फलकी इच्छाका तथा कर्तृत्व अभिमानका परित्याग करिकै जो शास्त्रविहित शुभकर्मोंका अनुष्ठान है ताका नाम योग है अर्थात् ता संन्यासकूं तूं निष्काम कर्मयोगरूप जान । शंका—हे भगवन् ! जैसे अब्रह्मदत्तकूं यह ब्रह्मदत्त है याप्रकार जो कोई कहैहै ता कहणे करिकै यह जान्याजावैहै । यह ब्रह्मदत्तके सदृश है काहेतैं किसी अन्यवस्तुका वाचक जो शब्दहै ता शब्दका जबी किसी अन्यवस्तुके जानवणेवास्तै उच्चारण होवैहै तबी सो शब्द गौणीवृत्तिकरिकै अथवा तद्भावके आरोपकरिकै तिस अन्यवस्तुविषे स्ववाच्यार्थके सादृश्यताकूंही बोधन करैहै । सो इहां प्रसंगविषे कौन सादृश्यधर्म है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता सादृश्यधर्मकूं कथन करैं हैं (न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन इति ।) जिसकारणतैं फलसंकल्पके त्यागतैं रहित कोईभी पुरुष योगी होवै नहीं किंतु सर्व योगीजन फल संकल्पके त्यागवालेही होवैहैं । तिस कारणतैं फलका त्यागरूप समानधर्मतैं तथा

वृत्तियां प्रमाण १, विपर्यय २, विकल्प ३, निद्रा ४, स्मृति ५, यह पंचप्रकारकी होवैं है । तहां प्रमाका जो कारण होवै ताकूं प्रमाण कहैं हैं। सो प्रमाणभी प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि यह षट्प्रकारका होवैहै । याप्रकारका वैदिक पुरुष अंगीकार करै हैं । और प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, यह तीनप्रकारका प्रमाण होवै है याप्रकार योग-शास्त्रवाले अंगीकार करै हैं । तहां किसी प्रमाणका किसीप्रमाणविषे अंत-र्भाव होवैहै । और किसी प्रमाणका किसी प्रमाणतें बहिर्भाव होवैहै । इसप्रकार तिन प्रमाणोंका परस्पर अंतर्भाव तथा बहिर्भाव अंगीकार करि-कै किसी शास्त्रविषे तिन प्रमाणोंका संकोच कर्याहै । और किसीशास्त्रविषे तिन प्रमाणोंका विस्तार कर्याहै ।जैसे नैयायिकोंके मतविषे प्रत्यक्ष, अनु-मान, उपमान, शब्द यह च्यारिही प्रमाण होवैं हैं । तहां नैयायिकोंनैं अर्थापत्तिप्रमाणका केवल व्यतिरेकी अनुमानविषेही अंतर्भाव कर्याहै और अनुपलब्धिप्रमाणका प्रत्यक्ष प्रमाणविषेही अंतर्भाव कर्याहै । इस प्रकार अन्यमतोंविषेभी तिन प्रमाणोंकी न्यून अधिकता जानिलेणी । यद्यपि नैयायिकादिकोंके मतविषे प्रत्यक्षादिक प्रमाके कारण होणेतैं इंद्रि-यादिकहि प्रत्यक्षादि प्रमाणरूप हैं तथापि योगशास्त्रके मतविषे इंद्रिया-दिकोंकरिकै उत्पन्नहुई जे चित्तकी वृत्तियां है ते वृत्तियांही प्रत्यक्षादि-प्रमाणरूप हैं । और तिन वृत्तियोंविषे जो चेतनका प्रतिबिंब है सो प्रतिबिंब प्रत्यक्षादिप्रमारूप है । यातें प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंकूं चित्तकी वृत्तिरूप कथन करचा है १, और मिथ्याज्ञानका नाम विपर्ययहै सो विपर्य-यभी अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश इस भेदकरिकै पंचप्रका-रका होवैहै । तिन अविद्यादिक पंचक्लेशोंका स्वरूप पूर्व पंचम अध्यायविषे विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं २, और शब्द श्रवणतें अनंतर उत्पन्न होणेहारी तथा अर्थरूप वस्तुतें रहित ऐसी जा चित्तकी वृत्तिविशेष हैं ताका नाम विकल्प है । जैसे वन्ध्यापुत्रोऽस्ति नरशृङ्गोऽस्ति इत्यादिक शब्दोंके श्रवणतें अनंतर ता श्रोतापुरुषकी वंध्यापुत्रविषयक तथा नर-

शृंगविषयक चित्तकी वृत्ति अवश्यकरिकै उत्पन्न होवैहै। और ता वृत्तिका विषयरूप वंध्यापुत्र तथा नरशृङ्ग अत्यंत असत् हैं। यातैं असत् अर्थविषयक ते वृत्तियां विकल्परूप कहीजावैं हैं। सो यह विकल्प विषयरूपवस्तुतैं रहित होणेतैं प्रमारूपभी कह्याजावै नहीं। तथा यह विकल्प बाधज्ञानके विद्यमान हुएभी अवश्यकरिकै उत्पत्तिवाला होणेतैं तथा व्यवहारका हेतु होणेतैं विपर्ययरूपभी नहीं है। जैसे चैतन्यही पुरुष होवैहै याप्रकारतैं चैतन्यपुरुष दोनोंके अभेदके निश्चय हुएभी पुरुषका चैतन्य है याप्रकारके शब्दश्रवणतैं अनंतर चैतन्यपुरुषके भेदकूं विषय करणेहारा विकल्पज्ञान होवैहै यातैं सो विकल्पज्ञान विपर्ययरूपभी नहीं है। बाधज्ञानके विद्यमान हुए सो विपर्ययज्ञान उत्पन्न होता नहीं किंतु सो विकल्पज्ञान प्रमाज्ञानतैं तथा भ्रमज्ञानतैं विलक्षणही होवै है। यहही विकल्पका स्वरूप (शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः) इस सूत्रविषे पतंजलिभगवान्नैं कथन कऱ्या है ३, और प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, स्मृति या च्यारिप्रकारकी वृत्तियोंके अभावका कारणरूप जो तमोगुण है तिस तमोगुणकूं विषय करणेहारी जा वृत्तिविशेष है ताका नाम निद्रा है। इतने कहणे करिकै ज्ञानादिकोंके अभावमात्रका नाम निद्राहै या मतकाभी खंडन कऱ्या। यहही निद्राका स्वरूप (अभावप्रत्ययालंबनावृत्तिर्निद्रा) इस सूत्रविषे पतंजलि भगवान्नैं कथन कऱ्या है ४, और पूर्व अनुभवजन्य संस्कारमात्रतै जो ज्ञान उत्पन्न होवै है ताका नाम स्मृतिहै सा स्मृति सर्ववृत्तियोंकरिकै जन्य होवै है यातै पतंजलि भगवान्नैं ता स्मृतिकूं सर्ववृत्तियोंके अंतविषे कथन कऱ्या है ५, यद्यपि लज्जादिक अनेकप्रकारकी वृत्तियां होवैं हैं तथापि तिन लज्जादिक सर्ववृत्तियोंका इन प्रमाणादिक पंचवृत्तियोंविषेही अंतर्भाव है। इसप्रकारकी सर्वचित्तवृत्तियोंका जो निरोध है सो निरोधही योग कह्याजावै है तथा समाधि कह्याजावै है। और कर्मोंके फलका जो संकल्प सो संकल्पभी पंचप्रकारके विपर्ययविषे रागनामा तीसरा विपर्य-

-यविशेष है तिस रागरूप फलसंकल्पके निरोधमात्रकूंही इहां गौणीवृत्ति करिकै योग नामकरिकै तथा संन्यासनामकरिकै कथन कऱ्या है । यातैं किंचित्मात्रभी इहां विरोध होवै नहीं ॥ २ ॥

हे भगवन् ! पूर्व आपने कर्मयोगकी श्रेष्ठता कथन करी यातैं यह जान्या जावै है । श्रेष्ठ होणेतैं सो कर्मयोगही इस अधिकारी पुरुषकूं जीवितकालपर्यंत करणे योग्य है । और (यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति) यह श्रुतिभी जीवितकालपर्यंत अग्निहोत्रादिक कर्मोकी कर्त्तव्यताकूंही कथन करै है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता कर्मयोगकी अवधिकूं कथन करै हैं-

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ॥
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) आरुरुक्षोः । मुनेः । योगम् । कर्म । कारणम् । उच्यते । योगारूढस्य । तस्य । एव । शमः । कारणम् । उच्यते ॥ ३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! योगविषे आरूढ होणेकी इच्छावान् मुनिकूं ता योगकी प्राप्तिविषे नित्यकर्मही समाधानरूपही कथन करया है तथा ता योगविषे आरूढहुए तिसीही पुरुषको ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्तिवास्तै संन्यासही साधनरूप कथन कऱ्या है ॥ ३ ॥

भा० टी०-अंतःकरणकी शुद्धिपूर्वक जो सर्वविषयसुखोंतैं तीव्र वैराग्य है ताका नाम योग है ऐसे योगविषे आरूढ होणेकी इच्छावाला जो पुरुष है ताका नाम आरुरुक्षु है और सो आरुरुक्षु पुरुष अंतःकरणकी शुद्धितैं अनंतर आगे सर्व कर्मोंके त्यागरूप संन्यासवाला होणा है यातैं अबी ताकूं मुनि कह्या है । अथवा अबीही फलकी तृष्णातैं रहित है यातैं ताकूं मुनि कह्या है । ऐसे आरुरुक्षुमुनिके प्रति ता योगविषे आरूढ होणेवास्ते अर्थात् ता योगकी प्राप्तिवास्ते वेदविहित निष्काम अग्निहोत्रादिक नित्यनैमित्तिक कर्मही साधनरूपकरिकै हमने तथा वेदभगवान्नैं

विधान कन्या है। और सोईही कर्मीपुरुष जबी तिन निष्कामकर्मोंकरि अंतःकरणकी शुद्धिरूप योगकूं प्राप्त होवे है तबी सो पुरुष योगारूढ कह्याजावै है। ऐसे योगारूढ पुरुषकूं पुनः ते कर्म कर्त्तव्य नहीं हैं। किंतु ता योगारूढ पुरुषकूं ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्तिवास्ते सर्वकर्मोंका संन्यासरूप शमही साधनरूपकरिकै विधान कन्या है। तात्पर्य यह—जितने कालपर्यंत इस अधिकारी पुरुषकूं अंतःकरणकी शुद्धिपूर्वक वैराग्यकी प्राप्ति नहीं भई तितने कालपर्यंत यह अधिकारी पुरुष ता वैराग्यकी प्राप्तिवास्ते फलकी इच्छातैं रहित होइके शास्त्रविहित नित्यनैमित्तिक कर्मोंकूंही करै। और जिसकालविषे यह अधिकारी पुरुष तिन निष्कामकर्मोंकरिकै अंतःकरणकी शुद्धिपूर्वक ता वैराग्यकूं प्राप्त होवै तिसकालविषे यह अधिकारी पुरुष पुनः तिन कर्मोंकूं करै नहीं किंतु तिसकालविषे श्रवणमननादिद्वारा ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्तिवास्ते सर्वकर्मोंके त्यागरूप संन्यासकूंही करै। यातैं अंतःकरणकी शुद्धिपर्यंतही ते कर्म कर्त्तव्य हैं जीवितकालपर्यंत ते कर्म कर्त्तव्य नहीं हैं। और यावज्जीवं यह श्रुति तौ वैराग्यहीन पुरुष ऊपरि है वैराग्यवान् पुरुष ऊपरि यह श्रुति है नहीं ॥ ३ ॥

हे भगवन्! जिस योगारूढ अवस्थाकूं प्राप्तहुआ यह अधिकारी पुरुष सर्वकर्मोंके त्याग करणेका अधिकारी होवे है, तिस योगारूढ अवस्थाकूं यह अधिकारी पुरुष किसकालविषे प्राप्त होवे है? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता कालका निरूपण करें हैं—

यदा हि नेंद्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ॥
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) यदा। हि। न। इंद्रियार्थेषु। न। कर्मसु। अनुषज्जते। सर्वसंकल्पसंन्यासी। योगारूढः। तदा। उच्यते ४॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! जिसकालविषे यह अधिकारी पुरुष शब्दादिकविषयोंविषे नहीं आसक्त होवै है तथा कर्मोंविषे नहीं आसक्त होवै

है तथा सर्वसंकल्पोंतैं रहित होवै है तिस कालविषे योगारूढ कह्या जावै है ॥ ४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जिस चित्तके निरोधकालविषे यह अधिकारी पुरुष श्रोत्रादिक इंद्रियोंके शब्दादिक विषयोंविषे अनुषंगकूं नहीं करै है तथा नित्यकर्म, नैमित्तिककर्म, काम्यकर्म, लौकिककर्म, प्रतिषिद्धकर्म, इत्यादिक कर्मोंविषे अनुषंगकूं नहीं करै है अर्थात् तिन शब्दादिक विषयोंविषे तथा तिन कर्मोंविषे मिथ्यात्वबुद्धि करिकै तथा अकर्त्ता अभोक्ता अद्वितीय परमानंदस्वरूप आत्माके दर्शन करिकै तिन विषयोंतैं तथा तिन कर्मोंतैं स्वप्रयोजनके अभावका निश्चय करिकै जो पुरुष इन कर्मोंका मैं कर्त्ता हूं तथा मेरेकूं यह शब्दादिक विषय भोगणेयोग्य हैं या प्रकारके अभिनिवेशरूप अनुषंगकूं नहीं करै है । या कारणतैंही जो पुरुष सर्वसंकल्पोंका संन्यासी है अर्थात् यह कर्म हमने करणा है यह फल हमने भोगणा है इस प्रकारके मनकी वृत्तिविशेषरूप जे संकल्प हैं तथा तिन संकल्पोंके विषय भूत जे नानाप्रकारके काम हैं तथा तिन कर्मोंके साधनरूप जितनेक कर्म हैं तिन सर्वोंका त्याग कर्या है जिसनैं ऐसा आसक्तितैं रहित पुरुष तिसकालविषे समाधिरूप योगविषे आरूढ होणेतैं योगारूढ कह्या जावै है । तात्पर्य यह—शब्दादिक विषयोंविषे तथा कर्मोंविषे जो अभिनिवेशरूप अनुषंग है तथा ता अनुषंगका कारणरूप जो संकल्प है यह दोनोंही तां योगारूढपणेके प्रतिबंधक है । तिस प्रतिबंधकका जिसकालविषे अभाव होवै है तिस कालविषे यह अधिकारी पुरुष योगारूढ कह्या जावै है ॥ ४ ॥

किंवा जो अधिकारी पुरुष जिसकालविषे इस प्रकारका योगारूढ होवै है सो अधिकारी पुरुष तिस कालविषे आपणे आत्माकूं आत्माकरिकैही इस संसारसमुद्रतैं उद्धार करै है । यातैं यह अधिकारीपुरुष योगारूढ होइकै आपणे आत्माकूं इस संसार समुद्रतैं अवश्यकरिकै उद्धार करै । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ॥
आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ५॥

(पदच्छेदः) उद्धरेत् । आत्मना । आत्मानम् । न । आत्मानम् । अवसादयेत् । आत्मा । एव । हि । आत्मनः । बंधुः । आत्मा । एव । रिपुः । आत्मनः ॥ ५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह अधिकारीपुरुष आपणे जीवात्माकूं विवेकयुक्त मनकरिकै इस संसारतैं उद्धार करै ता जीवात्माकूं संसारसमुद्रविषे नहीं डुबावै जिस कारणतैं आपणा आत्माही आत्माका बंधु है तथा आत्मा ही आत्माका शत्रु है ॥ ५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! लोकप्रसिद्ध समुद्रकी न्याई यह संसारसमुद्रभी स्त्री, पुत्र, धन, मित्र, इत्यादिक पदार्थोंकूं विषय करणेहारे महामोहरूप अनेक आवर्त्तों करिकै युक्त है । तथा काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, ममकार, इत्यादिक चित्तके विकाररूप अनेक महाग्राहों करिकै युक्त है । तथा अनेक प्रकारके महारोगरूप तिमिंगिलोंकरिकै युक्त है । तथा अशनया पिपासादिरूप महान् कल्लोलोंकरिकै युक्त है । तथा तीन तापरूप वडवानल करिकै युक्त है । तथा प्रियपदार्थोंके वियोगजन्य अनेक प्रकारके प्रलापरूप महाध्वनिरूप शब्द करिकै युक्त है । तथा नित्य निरंतर दुर्वासनारूप शैवालपटल करिकै युक्त है । तथा विषयरूप विषकरिकै परिपूर्ण है । इस प्रकारके संसारसमुद्रविषे निमग्न हुआ जो यह जीवात्मा है तिस आपणे जीवात्माकूं यह अधिकारी पुरुष विवेकयुक्त शुद्धमनकरिकै ता संसारसमुद्रतैं बाह्य निकासे अर्थात् विषयासक्तिका परित्याग करिकै तिस योगारूढताकूं संपादन करै यहही जीवात्माका ता संसारसमुद्रतैं उद्धरण है परंतु यह अधिकारी पुरुष तिन विषयोंविषे आसक्तिकरिकै आपणे आत्माकूं ता संसारसमुद्रविषे निमग्न करे नहीं जिस कारणतैं यह आत्मा आपही आपणा हितकारी बंधु है अर्थात् इस संसारबन्धनतैं मुक्त

करणेहारा है । आत्मातैं भिन्न दूसरा कोई बन्धु इस आत्माका हितकारी नहीं है । काहेतैं इस लोकविषे प्रसिद्ध जितनेक स्त्री, पुत्र, भ्राता, आदिक बांधव हैं ते बांधव तौ आपणेविषे स्नेहकी उत्पत्तिद्वारा तथा भरण पोषणकी चिंताद्वारा इस जीवके बंधनकेही हेतु होवैं हैं । यातैं तिन्हों विषे बंधुरूपता संभवती नहीं । और जैसे कोशकारजंतु आपही आपणा अहितकारी होवैहै तैसे विषयरूप बंधनगृहविषे प्रवेश करणेतैं यह आत्मा आपही आपणा अहितकारी शत्रु होवै है । दूसरा कोइ इस आत्माका शत्रुहै नहीं । और जे लोकप्रसिद्ध बाह्यशत्रु हैं तिनोंविषेभी इस आत्मानैंही शत्रुता करी है । यातैं यह जीवात्मा आपही आपका शत्रु है ॥ ५ ॥

हे भगवन् ! किसप्रकारका आत्मा आपणा बंधु होवै है, तथा किसप्रकारका आत्मा आपणा शत्रु होवै है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् बंधुआत्माका तथा शत्रु आत्माका लक्षण कथन करैंहैं-

बंधुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ॥
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्ततात्मैव शत्रुवत ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) बंधुः । आत्मा । आत्मनः । तस्य । येन । आत्मा । एव । आत्मना । जितः । अनात्मनः । तु । शत्रुत्वे । वर्तेत । आत्मा । एव । शत्रुवत् ॥ ६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस आत्मानैं यह संघात विवेकयुक्तमनकरिके ही जीत्याहै तिस आत्माका स्वस्वरूपही आत्माका बंधु है और अजितआत्माके शत्रुभावविषे बाह्यशत्रुकी न्याई आपणा आत्मा ही वर्तै है ॥ ६ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन । जिस आत्मानैं यह देहइंद्रियादिरूपसंघात केवल विवेकयुक्त शुद्धमनकारिकेंही आपणे वश कऱ्या है । दूसरे किसी शास्त्रादिक उपायों कारिके वा संघातकूं वश कऱ्या नहीं तिस आत्माका

आपणा आत्माही आत्माका बंधु है । काहेतैं जैसे शृंखलारूप बंधनयुक्त पुरुषकी यथाइच्छापूर्वक प्रवृत्ति होवै नहीं तैसे तिस आत्माकीभी यथाइच्छापूर्वक कहांभी प्रवृत्ति होवै नहीं । और इस जीवात्माकी नेत्रादिक इंद्रियद्वारा जा रूपादिक विषयोंविषे प्रवृत्ति है सा प्रवृत्तिही इस आत्माके अनेकप्रकारके अनर्थका हेतु है । सा प्रवृत्ति तिन देहइंद्रियादिकोंके वश करणेतैं निवृत्त होइजावै है । यातैं विवेकयुक्त मनकरिकै ता संघातकूं वश करणेहारा आत्मा आपही आपणा बंधु है। और जिस आत्मानैं ता देह-इंद्रियादिरूप संघातकूं विवेकयुक्त मनकरिकै आपणे वश नहीं कन्याहै तिस आत्माका आपणा आत्मास्वरूपही बाह्यशत्रुकी न्याई शत्रुभावविषे वर्त्तैहै तात्पर्य यह—जैसे शृंखलारूप बंधनतैं रहित पुरुष आपणी इच्छापूर्वक विचरै है तैसे जिस आत्मानैं विवेकयुक्त मनकरिकै ता देहइंद्रियादिरूप संघातकूं आपणे वश नहीं कन्याहै सो आत्माभी यथाइच्छापूर्वक शब्दादिक विषयोंविषे विचरै है । ता विषयपरायण प्रवृत्तिकरिकै सो आत्मा आपही आपणा शत्रु होवैहै ॥ ६ ॥

अब ता संघातके वश करणेहारे आत्माकूं आपणा बंधुपणा स्पष्टकरिकै कथन करैं हैं—

जितात्मनः प्रशांतस्य परमात्मा समाहितः ॥
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) जितात्मनः । प्रशांतस्य । परमात्मा । समाहितः। शीतोष्णसुखदुःखेषु । तथा । मानापमानयोः ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! शीतउष्णसुखदुःखके प्राप्तहुएभी तथा मानअपमानके प्राप्तहुएभी जो आत्मा जितात्मा है तथा प्रशांत है तिस आत्माकाही परमात्मा समाधिका विषय होवै है॥ ७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! चित्तकूं विक्षेपकी प्राप्तिकरणेहारे जे शीत-उष्ण सुखदुःख इत्यादिक द्वंद्वधर्म हैं तिन द्वंद्वधर्मोंके विद्यमान हुएभी तथा

चित्तकूं विक्षेपकी प्राप्तिकरणेहारा जो पूजारूप मान है तथा पराभवरूप अपमान है ता मानअपमानके विद्यमान हुएभी तिन शीतउष्णादिकोंकी प्राप्तिविषे समत्व बुद्धिकारिकै जो आत्मा जितात्मा है अर्थात् श्रोत्रादिक सर्व इंद्रिय जिसने आपणे वश करे हैं तथा जो आत्मा प्रशांत है अर्थात् सर्वत्र समबुद्धिकारिकै रागद्वेषादिक विकारोंतैं रहित है ऐसे जीवात्माका स्वप्रकाशज्ञानस्वभाव आत्मा समाहित क्या समाधिका विषय होवैहै अर्थात् योगारूढ होवैहै । अथवा (परमात्मा) इस वचनविषे परम् आत्मा यह दोपद पृथक् करणे । तहां परं या पदका केवल यह अर्थ करणा । ताकरिकै यह अर्थ सिद्ध होवैहै । जो आत्मा जितात्मा है तथा प्रशांत है तिस आत्माकाही केवल आत्मा समाहित होवै है तिसतैं भिन्न आत्माका सो आत्मा समाहित होवै नहीं । यातैं यह जीवात्मा जितात्मा तथा प्रशांत अवश्यकारिकै होवै ॥ ७ ॥

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेंद्रियः ॥
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः ॥८॥

(पदच्छेदः) ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा । कूटस्थः । विजितेंद्रियः । युक्तः । इति । उच्यते । योगी । समलोष्टाश्मकाचनः ॥ ८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! ज्ञानविज्ञानकरिकै तृप्तहुआहै चित्त जिसका तथा सर्व विक्रियातैं रहित तथा जीतेहुएहैं इंद्रिय जिसनें तथा समान हैं मृत्पिंडपाषाणकांचन जिसकूं ऐसा योगीपुरुष योगारूढ इंस नामकरिकै कह्याजावै है ॥ ८ ॥

भा० टी०—गुरुके उपदेशतैं उत्पन्नभई जा शास्त्र उक्त पदार्थोंकूं विषय करणेहारी बुद्धि है ता बुद्धिका नाम ज्ञान है और ता बुद्धिविषयक अप्रामाण्यशंकाकी निवृत्ति है फल जिसका ऐसा जो विचार है ता विचारकरिकै तिसीप्रकार तिन शास्त्रउक्त पदार्थोंका जो आपणे अनुभवकरिकै अपरोक्ष करणा है ताका नाम विज्ञान है ऐसे ज्ञान विज्ञान

दोनोंकरिकै तृप्तहुआहै आत्मा क्या चित्त जिसका ताका नाम ज्ञानविज्ञान-तृप्तात्मा है । या कारणतैंही जो पुरुष कूटस्थ है अर्थात् जैसे लुहारपुरुषका कूट चलायमानतातैं रहित होवैहै वैसे जो पुरुष विषयोंके समीप प्राप्त हुएभी तथा तिन विषयोंके भोगणेविषे समर्थ हुआभी चलायमान होता नहीं या कारणतैंही जो पुरुष विजितेंद्रिय है तहां रागद्वेषपूर्वक जो शब्दादिक विषयोंका ग्रहण है तिसतैं निवृत्त करेहैं श्रोत्रादिक इंद्रिय जिसनैं ताका नाम विजितेंद्रिय है, विजितेंद्रिय होणेतैंही जो पुरुष समलोष्ठाश्मकांचन है अर्थात् यह वस्तु हमारेकूं ग्रहणकरणे योग्यहै यहवस्तु हमारेकूं परित्याग करणेयोग्य है या प्रकारकी ग्रहण त्याग बुद्धितैं रहित होणेतैं समान है लोष्ट क्या मृत्पिंड तथा अश्म क्या पाषाण तथा कांचन क्या सुवर्ण जिसकूं ऐसा परमहंसपरिव्राजक योगी परवैराग्यरूप योगकरिकै युक्तहुआ योगारूढ इसनामकरिकै कह्या जावैहै ॥ ८ ॥

किंवा जिस पुरुषकी शत्रुमित्रादिकोंविषे समबुद्धि है सो पुरुष तौ सर्वयोगीजनोंतैं श्रेष्ठ है। इस अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करैहैं—

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ॥
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबंधुषु । साधुषु । अपि । च । पापेषु । समबुद्धिः । विशिष्यते ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सुहृद् मित्र अरि उदासीन मध्यस्थ द्वेष्य बंधु इन सर्वोंविषे तथा साधुवोंविषे तथा पापियोंविषे तथा अन्य सर्व-प्राणियोंविषे समबुद्धिकरणेहारा पुरुष सर्वतैं उत्कृष्ट है ॥ ९ ॥

भा॰ टी॰—प्रतिउपकारी नहीं अपेक्षा करिकै पूर्व स्नेहतैं विनाही तथा पूर्व संबंधतैं विनाही जो पुरुष उपकार करैहै ताका नाम सुहृद् है। और पूर्वस्नेहकी अपेक्षाकरिकैही जो पुरुष उपकार करैहै ताका नाम मित्र है और स्वकृत अपकारकी नहीं अपेक्षाकरिकै केवल आपणे क्रूर-

स्वभावतैंही जो पुरुष अपकार करैहै ताका नाम अरि है और परस्पर विवाद करतेहुए जे दो पुरुष हैं तिन दोनोंपुरुषोंके हितकी तथा अहितकी नहीं इच्छा करताहुआ जो पुरुष तिन दोनोंकी उपेक्षाही करै है ताका नाम उदासीन है और परस्पर विवाद करतेहुए जे दो पुरुष हैं तिन दोनोंके हितकी इच्छा करणेहारा जो पुरुष है ताका नाम मध्यस्थ है और स्वकृत अपकारकी अपेक्षाकरिकैंही जो पुरुष अपकार करैहै ताका नाम द्वेष्य है और किंचित् संबंधकरिकै जो पुरुष उपकार करैहै ताका नाम बंधु है और जे पुरुष शास्त्रविहित शुभकर्मोंकूं करैहैं तिनोंका नाम साधु है और जे पुरुष शास्त्रनिषिद्ध अशुभ कर्मोंकूं करैं हैं तिनोंका नाम पाप है इस प्रकार सुहृद्, मित्र, अरि, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य, बंधु,साधु, पाप, इन सर्वोंविषे तथा अन्यसर्व प्राणियोंविषे जो पुरुष सम-बुद्धि करैहै अर्थात् कौन पुरुष किस कर्मवाला है याप्रकार बुद्धिविषे न ल्याइकै सर्वत्र रागद्वेषतैं रहित है ऐसा समबुद्धिवाला पुरुष सर्वतैं उत्कृष्ट है । और किसी पुस्तकविषे (विशिष्यते) इसपदके स्थानविषे (विमुच्यते) यहभी पाठ होवैहै ता पक्षविषे यह अर्थ करणा सो सर्वत्र समबुद्धिवाला पुरुष इस संसारबंधनतैं मुक्त होवैहै ॥ ९ ॥

तहां पूर्वश्लोकोंविषे श्रीभगवान्नैं योगारूढ पुरुषका लक्षण तथा फल कथन कऱ्या । अब श्रीभगवान् (योगी युंजीत सततम्) इस वचनतैं आदिलेके (स योगी परमो मतः) इस वचनपर्यंत तेईस श्लोकोंकरिकै तिस योगारूढ पुरुषकूं अंगोंसहित योगकूं कथन करैहैं—

योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ॥
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) योगी । युंजीत । सततम् । आत्मानम् । रहसि । स्थितः । एकाकी । यतचित्तात्मा । निराशीः । अपरिग्रहः ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो योगारूढ पुरुष एकांतदेशविषे स्थित होइकै तथा एकाकी होइकै तथा यतचित्तात्मा होइकै तथा निराशी होइकै तथा परिग्रहतैं रहित होइकै आपणे चित्तकूं निरंतर समाहित करै ॥ १० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! सो योगारूढ पुरुष आपणे चित्तकूं निरंतर समाहित करै अर्थात् क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त या तीन भूमिकावोंका परित्याग करिकै एकाग्र, निरोध या दोनों भूमिकावोंकरिकै ता चित्तकूं समाहित करै । किसप्रकारका हुआ सो योगारूढ पुरुष ता चित्तकूं समाहित करै ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् वा प्रकारकूं वर्णन करैहैं (रहसि स्थितः इति) हे अर्जुन ! सो योगारूढ पुरुष योगकी सिद्धिविषे प्रतिबंध करणेहारे जे दुष्टजन हैं तिन दुर्जनादिकोंतै रहित किसी पर्वतकी गुहादिक एकांतदेशविषे स्थित होवै तथा एकाकी होवै अर्थात् गृहके सर्व परिजनोंका परित्याग करिकै संन्यासी होवै । तथा यतचित्तात्मा होवै । इहां चित्त नाम अंतःकरणका है और आत्म नाम इंद्रियसहित शरीरका है वे दोनों योगके प्रतिबंधकव्यापारतैं रहित हुएहैं जिसके ताका नाम यतचित्तात्मा है तथा निराशी होवै अर्थात् दोषदृष्टिपूर्वक वैराग्यकी दृढताकरिकै सर्व पदार्थोंकी तृष्णातैं रहित होवै । तथा अपरिग्रह होवै अर्थात् योगकीसिद्धिविषे प्रतिबंध करणेहारे जे पदार्थ हैं तिन पदार्थोंके संग्रहतैं रहित होवै । इसप्रकारका होइकै सो योगारूढ पुरुष आपणे चित्तकूं समाहित करै। इहां (सतत) या पदकरिकै ता योगाभ्यासके करणेविषे निरंतरता कथन करी । और (निराशीः) या पदकरिकै सत्कार कथन करया अर्थात् निरंतर सत्कारपूर्वक करया हुआ योगाभ्यासही फलका हेतु होवै है॥ १०॥

तहां तिस योगकी सिद्धिवासतै प्रथम आसनका नियम अवश्य करिकै चाहिये । यातैं ता आसनके नियमकूं श्रीभगवान् दो श्लोकोंकरिकै कथन करैहैं—

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ॥
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥११॥

(पदच्छेदः) शुचौ । देशे । प्रतिष्ठाप्य । स्थिरम् । आसनम् । आत्मनः । न । अति । उच्छ्रितम् । न । अति । नीचम् । चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन । सो योगारूढ पुरुष पवित्र देशविषे आपणे निश्चल आसनकूं स्थापनकरै जो आसन नहीं तौ अत्यंत ऊंचा होवै तथा नहीं अत्यंत नीचा होवै ,तथा कुशोंके ऊपरि मृगचर्म तथा वस्त्रकरिकै युक्त होवै ॥ ११ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन । जो देश स्वभावतैंही शुद्धहोवै अथवा मृत्तिकादिकोंके लेपनतैं जो देश शुद्ध कन्या होवै तथा जो देश जनोंके समुदायतैं रहितहोवै तथा भयतैंरहित होवै ऐसे गंगातट अथवा पर्वतकी गुहा आदिक समानस्थलविषे यह अधिकारी पुरुष आपणे निश्चल आसनकूं स्थापन करै । इहां (स्थिरम्)या पदकरिकै ता आसनकी निश्चलताकथन करी । सा निश्चलता मृत्तिकामय स्थलरूप आसनविषेही संभवे है काष्ठमय आसनविषे सा निश्चलता संभवती नहीं। यातैं स्थिरं या आसनके विशेषणकरिकै काष्ठमय आसनकी व्यावृत्ति कथन करी । कैसा होवै सो आसन । अत्यंत उंचाभी नहि होवै । तथा अत्यंत नीचाभी नहीं होवै । काहेतैं अत्यंत ऊंचे आसनविषे तौ कदाचित् परवशता करिकै नीचेभी पतन होइजावैहै और अत्यंत नीचे आसनविषेभी शीत उष्ण वर्षजलका प्रवेश पाषाणादिकोंका घर्षण आदिक होवैं हैं । ताकरिकै योगाभ्यासविषे विघ्न प्राप्त होवैं हैं । यातैं अत्यंत उंचा तथा अत्यंत नीचा आसन करणा नहीं किंतु दोनोंतैं विलक्षण करणा । तथा ता मृत्तिकामय स्थलरूप आसनऊपरि प्रथम कुशा विछावणे । तिन कुशावों ऊपरि अत्यंत कोमल मृगका चर्म अथवा व्याघ्रका चर्म विछावणा और ता मृगादिचर्मऊपरि कोमल वस्त्र विछावणा । यद्यपि (वस्त्रं दारिद्र्यदुःखाय दारु रोगाय चोपलः) इस स्मृतिवचननैं वस्त्रका निषेध कऱ्याहै तथापि सो निषेध केवल गृहस्थविषयक है संन्यासीविषयक सो निषेध है नहीं । इहां (आत्मनः) यापद-

करिकै अन्य पुरुषकृत आसनकी निवृत्ति कथन करी । जिसकारणतें अन्यपुरुषके इच्छाका कोई नियम नहीं है । कदाचित् ता अन्यपुरुषकी इच्छाकृत कार्य आपणे अनुकूलभी होवैहै कदाचित् प्रतिकूलभी होवैहै । यातें अन्यपुरुषकृत आसनभी योगके विक्षेपकाही हेतु होवैहै । यातें यह अभ्यासवान् पुरुष आपणा आसन आपही स्थापन करै ॥ ११ ॥

हे भगवन् ! इस प्रकारके आसनकूं स्थापनकरिकै सो योगाभ्यासवान् पुरुष क्या कार्य करै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ताकी कर्तव्यता कथन करैहैं—

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेंद्रियक्रियः ॥
उपविश्यासने युंज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ १२ ॥

(पदच्छेदः) तत्र । एकाग्रम् । मनः । कृत्वा । यतचित्तेंद्रियक्रियः । उपविश्य । आसने । युंज्यात् । योगम् । आत्मविशुद्धये ॥ १२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिसै आसनऊपरि बैठकरिकै चित्तइंद्रियोंकी क्रियाके जयवाला पुरुष आपणे मनकूं एकाग्र करिकै अंतःकरणकी शुद्धि वासते समाधिविषयक अभ्यास करै ॥ १२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! सो योगाभ्यासकरणेहारा पुरुष ता पूर्वउक्त आसन ऊपरि बैठिकरिकै निग्रह करी है चित्तकी क्रिया तथा श्रोत्रादिक इंद्रियोंकी क्रिया जिसनैं ऐसा हुआ समाधिरूप योगका अभ्यास करै । तहां शब्दादिकविषयोंका स्मरण करणा यह चित्तकी क्रिया है । और तिन शब्दादिकविषयोंका ग्रहण करणा यह श्रोत्रादिक इंद्रियोंकी क्रिया है । ते दोनों प्रकारकी क्रिया ता समाधिरूप योगका प्रतिबंधक होवैं हैं । यातें ता अभ्यासवान् पुरुषनैं तिन क्रियावोंका निग्रह अवश्यकरिकै करचा चाहिये । शंका—हे भगवन् ! सो योगके अभ्यासवाला

पुरुष किस प्रयोजनकी सिद्धिवासतै ता समाधिका अभ्यास करै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (आत्मविशुद्धये इति) इहां आत्मशब्दकरिकै अंतःकरणका ग्रहण करणा । ता अंतःकरणकी शुद्धिवासतै ता अभ्यासकूं करै इहां ता अंतःकरणविषे सर्वविक्षेपोंकी निवृत्तिकृत जो अत्यंत सूक्ष्मता है ता सूक्ष्मताकरिकै प्राप्तभई जा ब्रह्म-साक्षात्कारकी योग्यता है यह ही ता अंतःकरणकी शुद्धि जानणी । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है । तहां श्रुति–(दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः) अर्थ यह–सूक्ष्मदर्शी पुरुषोंनैं एकाग्र सूक्ष्मबुद्धिकरिकैही यह प्रत्यक् अभिन्नब्रह्म साक्षात्कार करीता है इति । शंका–हे भगवन् ! सो अधिकारी पुरुष कया करिकै ता योगाभ्यासकूं करै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (एकाग्रं मनः कृत्वा इति) पूर्व कथनकरी हुई जे राजसतामसरूप क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त यह व्युत्थानरूप तीन भूमिका हैं तिन्होंका परित्याग करिकै विजातीय वृत्तियोंके व्यवधानतैं रहित एक प्रत्यक्ब्रह्मविषयक जो अनेक सजातीयवृत्तियोंका प्रवाह है ता वृत्तियोंके प्रवाहकरिकै युक्त जो सत्त्वगुणप्रधान मन है ताकूं एकाग्रमन कहैं हैं । ऐसी मनकी एकाग्रताकूं दृढभूमिकायुक्त प्रयत्नतैं संपादन करिकै ता एकाग्रताकी वृद्धिवासतै संप्रज्ञातसमाधिरूप योगका अभ्यास करै । सो ब्रह्माकार मनके वृत्तियोंका प्रवाहही निदिध्यासन कह्या जावै है । यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथन करी है । तहां श्लोक–(ब्रह्माकारमनोवृत्तिप्रवाहोऽहंकृतिं विना । संप्रज्ञातसमाधिः स्याद्ध्यानाभ्यासप्रकर्षतः ॥) अर्थ यह–अहंकृतितैं विनाही जो ब्रह्माकार मनके वृत्तियोंका प्रवाह है ताका नाम संप्रज्ञातसमाधि है सा संप्रज्ञातसमाधि ध्यानाभ्यासकी अधिकताकरिकै सिद्ध होवै है । इसी अभिप्रायकरिकै श्रीभगवान् (योगी युंजीत सततं, युंज्याद्योगमात्मविशुद्धये । युक्त आसीत मत्परः) इत्यादिक अनेक वचनोंकरिकै ता ध्यानाभ्यासके अधिकताकूं कथन करताभया है ॥ १२ ॥

तहां (शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य) इत्यादिक श्लोकोंकरिकै पूर्व ता योगाभ्यासके वासतै बाह्य आसनका कथन कऱ्या । अब ता बाह्य आसनऊपरि बैठिकै सो योगाभ्यासवान् पुरुष किसप्रकार आपणे शरीरका धारण करै या अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः॥
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) समम् । कायशिरोग्रीवम् । धारयन् । अचलम् । स्थिरः । संप्रेक्ष्य । नासिकाग्रम् । स्वम् । दिशः । च । अनवलोकयन् ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो योगाभ्यासवान् पुरुष दृढप्रयत्नवाला होइकै कायशिरग्रीवा या तीनोंकूं समान तथा अचल धारण करताहुआ तथा आपणे नासिकाके अग्रकूं देखताहुआ तथा दिशावोंकूं नहीं देखताहुआ स्थित होवै ॥ १३ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! सो योगाभ्यासवान् पुरुष अत्यंत दृढप्रयत्नवाला होइकै आपणे शरीरके मध्यदेशरूप कायकूं तथा शिरकूं तथा ग्रीवाकूं समान धारण करताहुआ अर्थात् वक्रभावतैं रहित दंडकी न्याई ऋजु धारण करताहुआ तथा शिरकूं तथा ग्रीवाकूं अचल धारण करताहुआ अर्थात् कंपतैं रहित धारण करताहुआ स्थित होवै है । यद्यपि ता कायशिरग्रीवाके ऋजु धारण किये हुए वामदक्षिण भागविषे स्थित तथा पृष्ठदेशविषे स्थित कोईभी वस्तु देखी जावै नहीं तथा स्पर्शकरि जावै नहीं । तथापि मशकपिपीलिकादिक जीवोंकृत उपद्रवके हुए कदाचित् शरीरके चलायमानताकी संभावना होइसकैहै । ताकी निवृत्ति करणेवासतै श्रीभगवान्नें अचल यह विशेषण कथन कऱ्याहै । तथा सो योगाभ्यासवान् पुरुष आपणे नासिकाके अग्रभागकूं चक्षुकरिकै देखता हुआ स्थित होवैहै । इहां चक्षुकरिकै नासि-

काके अग्रभागका जो दर्शन कथन कऱ्या है सो चक्षुकारिकै रूपादिकवि-षयोंकूं नहीं ग्रहण करै इस नियमके वास्तै कथन कऱ्या। कोई नासिकाके अग्रभागके देखणे वासतै सो वचन कथन करचा नहीं । जो कदाचित् ता वचनकारिकै नासिकाके अग्रभागका दर्शनही भगवानूकूं विवक्षित होवै तौ मन तदाकारता करिकै ता नासिकाके अग्रभागविषेही स्थित होवैगा ताकारिकै चित्तकी ब्रह्मविषे स्थिति नहीं होवैगी और ब्रह्मविषे जो चित्तका स्थापन है ताका नामही समाधि है । यहही समाधिस्वरूप श्रीभगवानूनें (आत्मसंस्थं मनः कृत्वा) इस वचनकारिकै कथन करचाहै । यातैं नासिकाके अग्रभागका देखणा रूपादिकोंके अग्रहणकूं लखावैहै । तथा चक्षुइंद्रियके चंचलताकी निवृत्तिवासतै है । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया जैसे (संप्रेक्ष्य नासिकाग्रम्) यावचनकारिकै श्रीभगवानूकूं चक्षुकरिकै रूपादिक विषयोंका अग्रहण विवक्षित है तैसे श्रोत्रादिक इंद्रियोंकारिकै शब्दादिक विषयोंका अग्रहणभी विवक्षित है । काहेतैं जैसे चक्षुइंद्रियका व्यापार योगका प्रतिबंधक है तैसे श्रौत्रिक इंद्रियोंके व्यापारभी ता योगके प्रतिबंधक हैं । तथा सो योगाभ्यासवान् पुरुष पूर्वपश्चिमादिकदिशावोंकूं नहीं देखताहुआ स्थित होवै । यद्यपि नासिकाके अग्रभागके देखणे कारिकै ही दिशादिक सब पदार्थोंके देखणेका निषेध सिद्ध होवैहै । यातैं पृथक् तिन दिशावोंके देखणेका निषेध करणा संभवता नहीं तथापि कदाचित् तिन पूर्व पश्चिमादिक दिशावोंविषे किसी भयानक विपरीत शब्दके उत्पन्नहुए तिन दिशावोंके देखणेकी संभावना होइसकै है सो ऐसे विपरीत शब्दके उत्पन्न हुएभी तिन दिशावोंकूं देखे नहीं और (दिशश्च) या वचनविषे स्थित जो चकार है ता चकारकारिकै आपणे शरीरका ग्रहण करणा अर्थात् सो योगाभ्यासवान् पुरुष तिस कालविषे आपणे शरीरकूंभी नहीं देखै। जिस कारणतैं तिन दिशावोंका देखणा तथा शरीरका देखणा योगका प्रतिबंधकही है । इसप्रकार सर्व वृत्तियोंका निरोध कारिकै सो योगाभ्यास-वान् पुरुष तिस आसनऊपारि स्थित होवै ॥ १३ ॥

किंच—

प्रशांतात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ॥
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥१४॥

(पदच्छेदः) प्रशांतात्मा । विगतभीः । ब्रह्मचारिव्रते । स्थितः । मनः । संयम्य । मच्चित्तः । युक्तः । आसीत । मत्परः ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो अभ्यासवान् पुरुष प्रशांतआत्मा हुआ तथा भयतै रहित हुआ तथा ब्रह्मचारीके व्रतविषे स्थित हुआ तथा मनकूं निग्रहकरिकै मेरेविषे चित्तवाला हुआ तथा मैं परमेश्वरपरायण हुआ संप्रज्ञातसमाधिवान् हुआ स्थित होवै ॥ १४ ॥

भा० टी०—रागद्वेषादिकोंके कारणकी निवृत्तिकरिकै प्रशांत हुआहै क्या रागद्वेषादिकोंतैं रहित हुआहै आत्मा क्या अंतःकरण जिसका ताका नाम प्रशांतात्मा है । तथा शास्त्रके दृढनिश्चयकरिकै निवृत्त होइगया है भय जिसका ताका नाम विगतभी है । तहां सर्वकर्मोंका त्याग करणा हमरेकूं युक्त है अथवा नहीं युक्त है याप्रकारकी ता कर्मोंके त्यागविषे जा शंका है ता शंकाका नाम भय है । सो शंकारूप भय जिसका शास्त्रके दृढनिश्चयकरिकै निवृत्त होगया है तथा ब्रह्मचर्य गुरुशुश्रूषा भिक्षा भोजन इत्यादिक जो ब्रह्मचारीका व्रत है ता व्रतविषेस्थित होइकै आपणे मनकूं विषयाकारवृत्तियोंतैं शून्यकरिकै मैं प्रत्यक्चैतन्यरूप परमेश्वरके सगुणरूपविषे अथवा निर्गुणरूपविषे चित्त है जिसका ताका नाम मच्चित्त है अर्थात् जो पुरुष मैं परमेश्वरविषयकही चित्तवृत्तियोंके प्रवाहवाला है । शंका—हे भगवन् ! चिंतनकरणेयोग्य स्त्री पुत्र धनादिक प्रियपदार्थोंके विद्यमान हुए सो मच्चित्तपणा कैसे होवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (मत्परः इति) मैं परमेश्वरही परमानंदस्वरूप होणेतैं परमपुरुषार्थरूप हूं अर्थात् परमप्रियरूप हूं जिसकूं ताका नाम मत्परहै

ऐसा मत्परपुरुष अन्यपदार्थोंकूं प्रियरूप जानता नहीं । तहां श्रुति-(तदेतत्प्रेयः पुत्रात्प्रेयो वित्तात्प्रेयोऽन्यस्मात्सर्वस्मादंतरतरं यदयमात्मा इति) अर्थ यह-जो आनंदस्वरूप आत्मा देहइंद्रियप्राणमनबुद्धि आदिक सर्व पदार्थोंतैं अत्यंत अंतर है सो यह आत्मादेव पुत्रतैंभी प्रिय है तथा धनतैंभी प्रिय है तथा अन्य सर्व पदार्थोंतैंभी प्रिय है इति । इस-प्रकार विषयाकार सर्व वृत्तियोंका निरोध करिकै एक भगवत्आकार किया है चित्तके वृत्तियोंका प्रवाह जिसनें ऐसा संप्रज्ञातसमाधि-रूप योगवाला पुरुष यथाशक्ति परिमाण तहां स्थित होवै । स्वइच्छा करिकै शीघ्रही तहांतैं उठै नहीं इति । इहां (मच्चित्तः मत्परः) या दोनों पदोंका श्रीभाष्यकारोंनें यह अर्थ कऱ्या है । जैसे कोई विषयासक्त रागीपुरुष आपणे चित्तविषे निरंतर स्त्रीका चिन्तन करता हुआ स्त्रीचित्त तौ होवै है परन्तु सो रागी पुरुष ता स्त्रीकूं परत्वरूप करिकै तथा आराध्य-त्वरूप करिकै ग्रहण करता नहीं किंतु सो रागीपुरुष महाराजाकूं अथवा किसी देवताकूं परत्वरूप करिकै तथा आराध्यत्वरूप करिकै ग्रहण करै है और यह अधिकारी पुरुष तौ एक मैं परमेश्वरविषेही मच्चित्त होवै है तथा मत्पर होवै है अर्थात् सर्व आराध्यत्वरूपकरिकै मैं परमेश्वरकूंही मानै है इति । इस प्रकारके भाष्यकारोंके व्याख्यानतैं पूर्वउक्त किंचित् विलक्षण व्याख्या-नकूं करिकै तिस टीकाकारनें श्रीभाष्यकारोंतैं इस प्रकार आपणी न्यूनता कथन करी है । तहां श्लोक-(व्याख्यातृत्वेपि मे नात्र भाष्यकारेण तुल्यता । गुंजायाः किंनु हेम्नैकतुलारोहेपि तुल्यता ।) अर्थ यह-इस गीताके व्याख्यान करणेहारेभी हमारी भगवान् भाष्यकारोंके साथ तुल्यता होवै नहीं । जैसे एकही तुलाविषे सुवर्णके साथि आरूढहुए जे गुंजा हैं तिन गुंजावोंकी ता सुवर्णके साथि तुल्यता होवै नहीं तैसे एकही गीताशास्त्रके व्याख्यान करणेविषे प्रवृत्तहुए जो श्रीभाष्यकार हैं तथा मैं टीकाकार हूं तिस हमारी श्रीभाष्यकारोंके साथि तुल्यता होवै नहीं ॥ १४ ॥

हे भगवन् ! इसप्रकार संप्रज्ञातसमाधिरूप योगकरिकै स्थित हुआ जो पुरुष है तिस पुरुषकूं कौन फल प्राप्त होवै है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए अधिकारी जनोंकूं ता समाधिरूप योगविषे प्रवृत्त करणेवास्तै श्रीभगवान् ताके फलका कथन करैं हैं—

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ॥
शांतिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५॥

(पदच्छेदः) युंजन् । एवम् । सदा । आत्मानम् । योगी । नियतमानसः । शांतिम् । निर्वाणपरमाम् । मत्संस्थाम् । अधिगच्छति ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पूर्वउक्त प्रकारतैं आपणे मनकूं समाहित करताहुआ सर्वदा योगाभ्यासवान् पुरुष मनके निरोधवाला हुआ, मेरा स्वरूपभूत निर्वाणपरम शांतिकूं प्राप्त होवै है ॥ १५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! एकांतदेशविषे स्थितितैं आदिलैके जितनेक नियम पूर्व कथन करे हैं तिन सर्व नियमोंकरिकै आपणे मनकूं अभ्यास वैराग्यके बलतैं समाहित करता हुआ सर्वदा योगाभ्यासपरायण जो योगी पुरुष है सो योगी पुरुष नियतमानस हुआ शांतिकूं प्राप्त होवै है । तहां अभ्यासकी दृढताकरिकै निरुद्ध कऱ्या है आपणा मन जिसनैं ताका नाम नियतमानस है । अथवा ता अभ्यासकी दृढता करिकै निवृत्त करे हैं मनके वृत्तिरूप विकार जिसनैं ताका नाम नियतमानस है । ऐसा नियतमानस सो योगीपुरुष सर्ववृत्तियोंकी उपरामतारूप प्रशांतवाहिता नामा शांतिकूं प्राप्त होवै है। कैसी है शांति निर्वाणपरमा है अर्थात् जा शांति तत्त्वसाक्षात्कारकी उत्पत्तिद्वारा सर्व कामकर्म अविद्याकी निवृत्तिरूप मुक्तिविषे परिअवसानवाली है । पुनः कैसी है शांति मत्संस्था है अर्थात् मेरे परमानंदस्वरूपकी निष्ठारूप है । इस प्रकारकी शांतिकूंही सो योगीपुरुष प्राप्त होवै है । अनात्म-

वस्तुवोंकूं विषय करणेहारे सांसारिक ऐश्वर्यतारूप जे समाधिके फल हैं तिन फलोंकूं सो योगीपुरुष प्राप्त होता नहीं । काहेतैं ते ऐश्वर्यरूपसिद्धियां मोक्षके उपयोगी समाधिके विघ्नरूपही होवैं हैं । यह वार्त्ता पतंजलिभी योगसूत्रोंविषे समाधिके तिस तिस व्यावहारिक सिद्धिरूप फलोंकूं कथन करिकै कहता भया है । तहां सूत्रद्वय-(ते समाधावुपसर्गाव्युत्थाने सिद्धयः ॥ १ ॥ स्थान्युपमंत्रणे संगस्मयाऽकरण पुनरनिष्टप्रसंगात् ॥ २ ॥) अर्थ यह-पूर्व कथन करी हुई नानाप्रकारकी सिद्धियोंकरिकेही यह योगीपुरुष कृतकृत्य होवैगा । ऐसी आशंका करिकै श्रीपतंजलिभगवान् कहैं हैं । मोक्षरूप फलकी प्राप्ति करणेहारे समाधिविषे प्रीतिमान् जो योगी पुरुष है तिस योगी पुरुषकूं तौ ते पूर्व उक्त व्यावहारिक सिद्धियां विघ्नरूपही होवैं है । यातैं मोक्षके प्राप्तिकी इच्छावान् पुरुष तिन प्रतिबंधक सिद्धियोंकी उपेक्षाही करै । जिस कारणतैं आत्मज्ञानतैं विना कोटिसिद्धियोंकरिकैभी सा कृतकृत्यता होवै नहीं । और जो योगीपुरुष तिस मोक्षके हेतुभूत समाधिविषे प्रीतिमान् नहीं है किंतु व्युत्थानविषेही प्रीतिमान् है तिस योगी पुरुषकूं तौ ते व्यावहारिक सिद्धियां ही होवैं हैं इति १ तहां तिस तिस स्थानके अधिपतिरूप जे महेंद्रादिक देवता हैं ते देवता तिस योगी पुरुषके प्रति या प्रकारकी प्रार्थना करैं हैं । हे योगिन् ! इन स्वर्गादिक स्थानों विषे आप आइके निवास करौ तथा रमण करौ । देखो यह देवकन्या कैसी रमणीक हैं । तथा यह दिव्य भोग कैसे रमणीक हैं । तथा यह रसायन अमृतादिक जरामृत्युके निवृत्त करणेहारे हैं तथा यह विमान कैसे दिव्य हैं । ऐसे दिव्य पदार्थोंकूं इहां आइकै भोगो । इस प्रकार तिन देवतावोंकरिकै प्रार्थना कऱ्या हुआभी सो योगी पुरुष तिन पदार्थोंविषे कामरूपकूं कदाचित्भी नहीं करै । तथा इस हमारे योगका बहुत आश्चर्यरूप प्रभाव है । जिस करिकै साक्षात् देवताभी हमारे आगे इस प्रकारकी प्रार्थना करते हैं । या प्रकारके गर्वरूप स्मयकूंभी सो योगी पुरुष

कदाचित् नहीं करै किंतु सो योगी पुरुष तिन विषयभोगोंविषे याप्रकारकी दोषदृष्टि करै। बहुत कालतैं इस संसाररूप अग्निविषे जलते हुए तथा जन्ममरणके प्रवाहरूप चक्रविषे आरूढ हुए हमनैं किसी पूर्वले पुण्यकर्मके प्रभावतैं बहुत प्रयत्नसैं यह क्लेशकर्मरूप अंधकारके नाश करणेहारा योगरूप दीपक प्रज्वलित कऱ्या है ता योगरूप दीपकके नाश करणेहारा यह तृष्णाका जनक विषयरूप वायु है। ऐसे योगरूप दीपकके प्रकाशकूं प्राप्त होइकैभी मैं अनेकवार इस विषयरूप मृगतृष्णाके जलकरिकै वंचितहुआभी पुनः तिन विषयोंकी प्राप्तिवासतै इस संसाररूप अग्निका आपणेकूं काष्ठरूप किसवासतैं करौं ? किंतु पुनः ऐसा करणा हमारेकूं योग्य नहीं है। यातैं कृपणपुरुषों करिकैं प्रार्थना करणे योग्य तथा स्वप्नपदार्थोंकी न्याई मिथ्यारूप ऐसे भोगतैं हम उपराम हैं। इसप्रकार तिन भोगोंविषे दोषदृष्टि करिकै सो योगीपुरुष ता समाधिकूं दृढ करै। और ता कामनारूप संगविषे पतितवाकूं तथा गर्वरूपस्मयविषे कृतकृत्यताकूं मानणेहारे पुरुषकूं योगकी सिद्धि होवै नहीं। ता संग स्मयके वशतैं ता योगभ्रष्ट पुरुषकूं पुनः अनिष्टरूप संसारकी प्राप्ति होवै है। यातैं ता संग स्मय दोनोंका जो नहीं करणा है सो कैवल्यमोक्षके विघ्नके निवृत्तिका उपाय है इति २ तहां (युंजन्नेवं सदात्मानम्) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नें एकाग्रभूमिकाविषे संप्रज्ञातसमाधि कथन कऱ्या। और (नियतमानसः) इस वचनकरिकै निरोधभूमिकाविषे ता संप्रज्ञातसमाधिका फलभूत असंप्रज्ञातसमाधि कथन कऱ्या। और (शांतिं) या पदकरिकै ता निरोधसमाधिजन्य संस्कारोंका फलभूत प्रशांतवाहिता कथन करी। और (निर्वाणपरमां) या वचन करिकै धर्ममेघनामा समाधिकूं तत्त्वज्ञानद्वारा कैवल्यमुक्तिकी हेतुता कथन करी। और (मत्संस्थाम्) या वचनकरिकै वेदांतसिद्धांतविषे अंगीकृत कैवल्यमोक्ष कथन कऱ्या। इन समाधियोंका योगशास्त्रविषे विस्तारतें निरूपण कऱ्या है। जिस कारणतैं इस प्रकारकी

महान् फलकी प्राप्ति करणेहारा यह योग है तिस कारणतें यह अधिकारी पुरुष महान् प्रयत्न करिकैभी ता योगका संपादन करै ॥ १५ ॥

अब श्रीभगवान् दो श्लोकों करिकै ता योगाभ्यासवान् पुरुषके आहारादिकोंके नियमकूं कथन करैं हैं–

नात्यश्नतस्तु योगोस्ति न चैकांतमनश्नतः ॥
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥१६॥

(पदच्छेदः) नं । अंति । अश्नतः । तुं । योगः । अंस्ति । नं । चं । एकांतम् । अंनश्नतः । नं । चं । अंति । स्वंप्नशीलस्य । जाग्रतः । नं । एवं । चं । अर्जुन ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अत्यंत अन्नके भोजन करणेहारेकोंभी सो योग नहीं सिद्ध होवैहै तथा अत्यंत नहीं भोजन करणेहारेकाभी सो योग नहीं सिद्ध होवैहै तथा अत्यंत निद्रालुपुरुषकाभी सो योग नहीं सिद्ध होवैहै तथा अत्यंत जागणेहारे पुरुषका भी सो योग नहीं सिद्ध होवैहै ॥ १६ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जो अन्न भोजन कन्याहुआ जठराग्निकरिकै जीर्णभावकूं प्राप्त होइजावै है तथा शरीरविषे कार्यकरणेकी सामर्थ्यताकूं संपादन करै है सो अन्न शास्त्रविषे आत्मसंमित कह्या जावै है । ता आत्मसंमित अन्नकूं नहीं भोजन करिकै जो पुरुष लोभके वशतें अधिक अन्नकूं भोजन करैहै तिस पुरुषकूंभी सो समाधिरूप योग सिद्ध होवै नहीं । काहेतें सो भोजनकन्याहुआ अधिक अन्न अजीर्ण भावकूं प्राप्त होइकै तिस पुरुषविषे धातुवोंकी विषमताद्वारा नानाप्रकारकी ज्वरशूलादिक व्याधियोंकूं उत्पन्न करै है । तिन ज्वरशूलादिक व्याधियोंकरिकै पीडित हुए पुरुषतें सो योगाभ्यास कन्याजावै नहीं । और जो पुरुष अत्यंत अन्नका भोजनही नहीं करै है अथवा अत्यंत अल्प अन्नका भोजन करैहै तिस पुरुषकाभी सो योग सिद्ध होवै नहीं । काहेतें अन्नके नहीं

भोजन करणेतैं अथवा अत्यंत अल्प भोजन करणेतैं शरीरका रसादिक धातुवों करिकै पोषण होवै नहीं । ताकरिकै सो शरीर किसीभी कार्यकरणेविषे समर्थ होवै नहीं । तथा क्षुधाकरिकै पीडित पुरुषकी वृत्तिभी एकाग्र होवै नहीं । ऐसे असमर्थ शरीरतैं सो योगाभ्यास सिद्ध होइसकै नहीं । यह वार्त्ता शतपथकी श्रुतिविषेभी कथन करीहै । तहां श्रुति- (यदुह वा आत्मसंमितमन्नं तदवति तन्न हिनस्ति यद्भूयो हिनस्ति तद्यत्कनीयो न तदवति इति) अर्थ यह—जो आत्मसंमित अन्न भोजन कन्याजावै है सो अन्न ता भोक्तापुरुषविषे वेद अर्थके अनुष्ठानकी योग्यता संपादन करिकै वा अनुष्ठानद्वारा ता भोक्तापुरुषका रक्षण करै है । सो आत्मसंमित अन्न धातुवोंकी विषमताकूं करिकै ज्वर शूलादिक व्याधियोंकी उत्पत्तिद्वारा ता भोक्ता पुरुषका हनन करै नहीं । और ता आत्मसंमित अन्नतैं जो अधिक अन्न भोजन कन्याजावै है सो अधिक अन्न तौ धातुवोंकी विषमताद्वारा ज्वरशूलादिक व्याधियोंकूं उत्पन्न करिकै ता भोक्ता पुरुषकूं हनन करै है । तथा ता पुरुषके धर्मकाभी नाश करै है और जो अत्यंत अल्प अन्न भोजन कन्याजावै है सो अल्प अन्न तौ ता भोक्तापुरुषकूं रक्षण करै नहीं अर्थात् क्षुधाकी निवृत्ति करणेवास्तै तथा धर्मके निर्वाह करणेवास्तै समर्थ होवे नहीं । यातैं योगाभ्यासवान् पुरुषनैं अत्यंत अधिक अन्नका तथा अत्यंत अल्प अन्नका तथा अत्यंत नहीं भोजनका या तीनोंका परित्याग करिकै सो आत्मसंमित अन्नही भोजन करणा इति । अथवा (पूरयेदशनेनार्द्धं तृतीयमुदकेन तु । वायोः संचरणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत्) अर्थ यह—यह योगाभ्यासवान् पुरुष आपणे उदरके दोभागोंकूं तौ अन्नकरिकै पूरण करै और तीसरे भागकूं जलकरिकै पूरण करै और प्राणवायुके सुखपूर्वक संचारवास्ते चतुर्थ भागकूं खाली राखै इति । इसप्रकार योगशास्त्रविषे अन्नके भोजनकरणेका परिमाण कथन कन्या है । तिस परिमाणतैं न्यून परिमाण अथवा अधिक परिमाण

अन्नके भोजन करणेतें सो योग सिद्ध होवै नहीं किंतु तिस योगशास्त्रउक्त परिमाण अन्नके भोजनतैंही सो योग सिद्ध होवै है । और जो पुरुष अत्यंत निद्रावालाही होवै है तिस पुरुषकाभी सो योग सिद्ध होवै नहीं । जिस कारणतैं सा निद्रा योगका प्रतिबंधकही है । और जो पुरुष अत्यंत जाग्रत्कूंही करै है तिस पुरुषकाभी सो योग सिद्ध होवै नहीं । काहेतैं अत्यंत जागरण करणेतैं ता योगाभ्यासकालविषे अवश्यकरिकै निद्राकी प्राप्ति होवैगी । तहां (नैव चार्जुन) या वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार इहां नहीं कथन करेहुए दोषोंके ग्रहण करावणेवासतै है । ते दोष मार्कंडेय पुराणविषे कथन करे हैं । तहां श्लोक (नाध्मातः क्षुधितः श्रांतो न च व्याकुलचेतनः ॥ युंजीत योगं राजेंद्र योगी सिद्ध्यर्थमात्मनः ॥ १ ॥ नाति शीते न चैवोष्णे न द्वंद्वे अनिलान्विते ॥ कालेष्वेतेषु युंजीत न योगं ध्यानतत्परः ॥ २ ॥) अर्थ यह—हे राजेंद्र ! यह योगीपुरुष अत्यंत अन्न खाइकै फूल्याहुआ अत्यंत क्षुधातुर हुआ तथा अत्यंत श्रमयुक्त हुआ तथा व्याकुलचित्तवाला हुआ योगकूं करै नहीं ॥ १ ॥ तथा अत्यंत शीतकालविषे तथा अत्यंत उष्णकालविषे तथा अत्यंत पवनकालविषे यह ध्यानपरायण पुरुष ता योगकूं करै नहीं ॥ १६ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे आहारादिकोंके नियमतैं रहित पुरुषकूं ता योगकी प्राप्ति होवै नहीं याप्रकारके व्यतिरेककरिकै तिन आहारादिकोंके नियमविषे योगकी कारणता कथन करी । अब तिन आहारादिकोंके नियमवाले पुरुषकूं ता योगकी प्राप्ति अवश्यकरिकै होवै है या प्रकारके अन्वयकरिकै भी तिन आहारादिकोंके नियमविषे ता योगकी कारणताकूं श्रीभगवान् कथन करै हैं—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ॥
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥१७॥

(पदच्छेदः) युक्ताहारविहारस्य । युक्तचेष्टस्य । कर्मसु । युक्तस्वप्नावबोधस्य । योगः । भवति । दुःखहा ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! नियमतैं है आहार तथा विहार जिसका तथा प्रणवजपादिकर्मोंविषे नियमतैं है प्रवृत्ति जिसकी तथा नियमतैं है निद्रा तथा जाग्रत् जिसका ऐसे पुरुषकाही सो समाधिरूप योग दुःखके नाश करणेहारा सिद्ध होवै है ॥ १७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! अन्नरूप जो आहार है तथा गमन आगमनरूप जो विहार है ते आहार विहार दोनों युक्त हैं क्या नियमपूर्वक हैं जिसके तथा प्रणवादिक मन्त्रोंका जप तथा उपनिषदोंका पाठ इत्यादिक जे कर्म हैं तिन कर्मोंविषे युक्त है क्या कालके नियमपूर्वक है चेष्टा क्या प्रवृत्ति जिसकी । तथा निद्रारूप जो स्वप्न है तथा जाग्रत्‌रूप जो प्रबोध है ते दोनों युक्त हैं क्या कालके नियमपूर्वक हैं जिसके ऐसे साधनसंपन्न पुरुषकाही तिन साधनोंकी दृढताकरिकै सो समाधिरूप योग सिद्ध होवै है । तिन आहारविहारादिकोंके नियमतैं रहित पुरुषका सो समाधिरूप योग सिद्ध होवै नहीं । शंका—हे भगवन् ! इस प्रकारके प्रयत्नविशेष करिकै संपादन कऱ्या जो योग है ता योगकरिकै तिस योगीपुरुषकूं कौन फल प्राप्त होवैहै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (दुःखहा इति) हे अर्जुन ! संसारसंबंधी सर्वदुःखोंका कारण जा अविद्या है ता अविद्याके नाश करणेहारी जा ब्रह्मविद्या है ता ब्रह्मविद्याके उत्पन्न करणेहारा यह योग है । यातैं यह समाधिरूप योग ब्रह्मविद्याकी उत्पत्तिद्वारा मूलअविद्यासहित सर्व दुःखोंके निवृत्तिका हेतु है ऐसे महान् फलवाले इस समाधिरूप योगकूं यह अधिकारीपुरुष अवश्यकरिकै संपादन करै । तहां आहारका नियम तौ पूर्वश्लोकविषे (यद्गुहया) इस श्रुतिवचनकरिकै तथा (पूरयेदशनेनार्द्धम्) इस योगशास्त्रके वचनकरिकै कथन करिआये हैं और गमन आगमनरूप विहारका नियम तौ (योजनान्न परं गच्छेत्)अर्थ यह—योजनपरिमाणतैं अधिक नहीं चले किंतु

योजन परिमाणके भीतर भीतर चलै। इत्यादिक वचनोंकरिकै कथन कन्याहै और वाक्आदिक इन्द्रियोंके चपलताका जो परित्याग है यह ही तिन जपादि कर्मोंविषे चेष्टाका नियम है और सूर्यके अस्तकालतैं लैके पुनः उदयकालपर्यंत जितनीक रात्रि है वा संपूर्ण रात्रिके समान तीन विभाग करणे, तिन तीनों विभागोंविषे प्रथम विभागविषे तथा अंत्यके विभागविषे तो जागरण करणा और मध्यके विभागविषे निद्रा करणी यहही जाग्रत्का तथा निद्राका नियम है। इसतैं आदिलैके अनेकप्रकारके नियम योगशास्त्रविषे कथन करैहैं ॥ १७ ॥

तहां पूर्वप्रसंगकरिकै एकाग्रभूमिकाविषे संप्रज्ञात समाधिका कथन कन्या अब निरोधभूमिकाविषे असंप्रज्ञात समाधिके कहणेवासतै प्रारंभ करैं हैं–

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ॥
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥१८॥

(पदच्छेदः) यदा । विनियतम् । चित्तम् । आत्मनि । एव । अवतिष्ठते । निःस्पृहः । सर्वकामेभ्यः । युक्तः । इति । उच्यते । तदा ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन । जिसकालविषे विरुद्धहुआ चित्त आत्माविषे ही स्थित होवै तथा सर्वविषयोंतैं निस्पृह होवैहै तिस कालविषे युक्त इस नामकरिकै कह्याजावै है ॥ १८ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन । जिस कालविषे यह अंतःकरणरूप चित्त आपणे स्वच्छस्वभावके वशतैं स्वविषयके आकारकूं ग्रहण करणेविषे समर्थ हुआभी परवैराग्यके वशतैं सर्व वृत्तियोंके निरोधवाला हुआ तथा रज तमतैं रहित हुआ प्रत्यक् चैतन्यस्वरूप आत्माविषेही सर्वदा अचल स्थित होवैहै। तिस सर्ववृत्तियोंके निरोधकालविषे समाधिरूप योगकरिकै युक्त कह्याजावैहै। कौन युक्त कह्याजावैहै ऐसी शंकाके हुए कहैं हैं (निःस्पृहः

सर्वकामेभ्यः इति) इस लोकके तथा परलोकके जितनेक विषय हैं तिन्होंका नाम काम है तिन विषयरूप सर्वकामोंतें निवृत्त हुई है तृष्णारूप स्पृहा जिसकी ताका नाम निःस्पृह है। ऐसा निःस्पृह पुरुष युक्त इस नामकरिकै कह्याजावैहै। इतने कहणेकरिकै दोषदृष्टिपूर्वक पर वैराग्यविषे असंप्रज्ञात समाधिकी साधनरूपता कथन करी ॥ १८ ॥

अब समाधिविषे सर्ववृत्तियोंतें रहितहुए चित्तके उपमानकूं कथन करैं हैं—

यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता ॥
योगिनो यतचित्तस्य युंजतो योगमात्मनः ॥ १९ ॥

(पदच्छेदः) यथा। दीपः। निवातस्थः। न। इंगते। सा। उपमा। स्मृता। योगिनः। यतचित्तस्य। युंजतः। योगम्। आत्मनः ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जैसे वायुतें रहित देशविषे स्थित दीपक नहीं चलायमान होवैहै सोईही दृष्टांत निरुद्ध चित्तवाले तथा योगकूं अनुष्ठान करणेहारे योगी पुरुषके अंतःकरण कथन कऱ्याहै ॥ १९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! दीपकके चलनका हेतु जो वायु है तिस वायुतें रहित देशविषे स्थित जो दीपक है सो दीपक जैसे चलावणेहारे वायुके अभाव होणेतें चलायमान होता नहीं तैसे जो योगीपुरुष एकाग्रभूमिकाविषे संप्रज्ञातसमाधिरूप योगवाला है तथा अभ्यासकी बाहुल्यताकरिकै निरुद्ध करीहै सर्व चित्तकी वृत्तियां जिसनें तथा जो योगीपुरुष निरोधभूमिकाविषे असंप्रज्ञात समाधिरूप योगकूं अनुष्ठानकरणेहारा है ऐसे योगीपुरुषका जो अंतःकरणहै सो अंतःकरण वा दीपककी न्याईं निश्चल है।तथा सत्त्वगुणकी अधिकताकरिकै प्रकाशक है यातें वा योगीपुरुषके अंतःकरणका योगशास्त्रवेत्ता पुरुषोंनैं सो निश्चलदीपकरूप दृष्टांत कथनकऱ्या अर्थात् जैसे सो दीपक चलायमानतातें रहित होवैहै तैसे वा योगीपुरुषका अंतःकरणभी चलायमानतातें रहित होवै है इति। और किसी

टीकाविषे तौ (आत्मनः) या पदकरिकै अंतःकरणका ग्रहण कऱ्या नहीं किंतु ता आत्मशब्द करिकै प्रत्यक् आत्माकाही ग्रहण कऱ्या है । तहां (आत्मनः योगं युंजतः) या प्रकारतैं पदोंका अन्वय करिकै आत्मा-विषयक योगकूं करणहारा जो योगीपुरुष है या प्रकारका अर्थ कऱ्या है । सो इस व्याख्यानविषे दीपकरूप उपमानका कोई उपमेय सिद्ध होता नहीं । दृष्टांतका नाम उपमान है और दार्ष्टांतिकका नाम उपमेय है । किंवा इस व्याख्यानविषे (आत्मनः) यह पदही व्यर्थ होवै है । काहेतैं सर्व अवस्थाविषे ता चित्तकूं आत्माकारता स्वभावतैंही सिद्ध है । कोई योगनैं ता चित्तकी आत्माकारता संपादन करीती नहीं किंतु ता चित्तविषे कर्मजन्य जा कादाचित्क अनात्माकारता है सा अनात्माकारता ता योगनैं निवृत्त करीती है । यह वार्त्ता संक्षेप शारीरक विषेभी कथन करी है । तहां श्लोक-(स्वाभाविकी हि वियदन्विततता घटादेः क्षीरा-दिवस्तुघटना पुनरन्यहेतुः । एवं धियामपिचिदन्वितताऽनिमित्तं शब्दादि-वस्तुघटना खलु कर्म हेतुः) अर्थ यह-घटादिकोंका आकाशके साथि जो संबंध है सो तौ स्वाभाविकही है किसीके प्रयत्नकरिकै कऱ्या नहीं और तिसी घटादिकोंका क्षीरादिक पदार्थोंके साथि जो संबंध है सो संबंध तौ स्वाभाविक है नहीं किंतु कर्मजन्य है । तैसे बुद्धियोंका जो चेतनके साथि संबंध है सो संबंध किसी कर्मजन्य नहीं है । किंतु सो संबंध स्व-भावसिद्ध है । तिन बुद्धियोंका जो विषयोंके साथि संबंध है सो संबंध तौ केवल कर्मजन्यही है स्वभावसिद्ध है नहीं इति । यातैं (आत्मनः) यह पद प्रत्यक्आत्माका वाचक नहीं है ! किंतु अंतःकरणरूप दार्ष्टांतिकका बोधक है । अथवा इस व्याख्यानविषे दार्ष्टांतिकके लाभवास्तै (यत-चित्तस्य) या पदविषे (यतं च तत् चित्तं च) अर्थ यह-निरुद्ध हुआ ऐसा जो चित्त है या प्रकारका कर्मधारय समास अंगीकारकरिकै ता चित्तकाही ग्रहण करणा ॥ १९ ॥

इस प्रकार सामान्यरूपतैं समाधिका कथन करिकै अब तिसी असंप्रज्ञातनामा निरोधसमाधिकूं विस्तारतैं निरूपण करता हुआ श्रीभगवान् प्रारंभ करैं हैं—

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया॥
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति॥२०॥

(पदच्छेदः) यत्र। उपरमते। चित्तम्। निरुद्धम्। योगसेवया। यत्र। च। एव। आत्मना। आत्मानम्। पश्यन्। आत्मनि। तुष्यति॥२०॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! योगाभ्यासके सेवन करिकै जिसँ परिणामविशेपके उत्पन्न हुए यह निरुद्धहुआ चित्त उपशमकूं प्राप्त होवै है तथा जिस परिणामके हुए शुद्ध अन्तःकरण करिकै प्रत्यक्चैतन्य आत्माकूं साक्षात्कार करता हुआ तो आत्माविषे ही तोषकूं प्राप्त होवै है ताकूं योग जानणा॥ २०॥

भा० टी०—हे अर्जुन! निरंतर श्रद्धापूर्वक ता योगाभ्यासके सेवनकरके जिस परिणामविशेपके उत्पन्न हुए यह निरुद्ध हुआ चित्त एकवस्तुकूं विषय करणेहारी वृत्तियोंका प्रवाहरूप एकाग्रताकूं परित्याग करिकै इंधनोंतैं रहित अग्निकी न्याईं उपशमकूं प्राप्त होवै है। अर्थात् सो चित्तसर्ववृत्तियोंतैं रहित होणेतैं सर्ववृत्तियोंके निरोधरूपकरिकै परिणामकूं प्राप्त होवै है। तथा जिस परिणाम विशेपके उत्पन्न हुए रज तमकरिकै नहीं पराभवकूं प्राप्त हुए शुद्ध सत्त्वमात्ररूप अन्तःकरण करिकै परमात्मातैं अभिन्न सत् चित् आनंदघन अनंत अद्वितीय प्रत्यक्आत्माकूं वेदांतप्रमाणजन्य वृत्तिकरिकै साक्षात्कार करता हुआ तिस परमानंदघन आत्माविषेही तोषकूं प्राप्त होवै है। ता आत्मातैं भिन्न देहइंद्रियादिरूप संघातविषे तथा ता संघातके भोग्यपदार्थोंविषे तुष्टिकूं प्राप्त होवै नहीं। वहां श्रुति—(स मोदते मोदनीयं हि लब्ध्वा) अर्थ यह—ब्रह्मातैं आदिलैके स्तंबपर्यंत सर्व प्राणि-

योकूं आनंदकी प्राप्ति करणेहारा जो परमात्मादेव है ता परमात्मा देवकूं साक्षात्कार करिके सो विद्वान् पुरुष मैं कृतार्थ हूं या प्रकारके मोदकूं प्राप्त होवै है इति । तिस सर्ववृत्तियोंके निरोधरूप अंतःकरणके परिणामकूंही योगशब्दका अर्थरूप जानणा इस प्रकार (तं विद्याद्दुःखसंयोग–) इस तेवीसवें श्लोकके साथि इस इस वीसवें श्लोकका तथा वक्ष्यमाण एकवीसवें बावीसवें श्लोकका अन्वय करणा । और किसी टीकाविषे तौ (यत्र उपरमते चित्तम्) इस वचनविषे स्थित यत्र इस शब्दका जिस कालविषे या प्रकारका अर्थ कऱ्या है सो इस व्याख्यानविषे (तं विद्यात्) इस वक्ष्यमाण वचनविषे स्थित तत् शब्दका ता कालके साथि अन्वय संभवता नहीं । जिस कारणतैं कालविषे योगशब्दकी अर्थरूपता संभवती नहीं यातैं यह व्याख्यान समीचीन नहीं ॥ २० ॥

तहां इस पूर्व श्लोकविषे प्रत्यक्आत्माविषेही तोषकूं प्राप्त होवैहै यह अर्थ कथन कऱ्या । अब ता अर्थकी सिद्धिविषे हेतुका कथन करैं हैं–

सुखमात्यंतिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतींद्रियम् ॥
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥२१॥

(पदच्छेदः) सुखम् । आत्यंतिकम् । यत् । तत् । बुद्धिग्राह्यम् । अतींद्रियम् । वेत्ति । यत्र । न । च । एव । अयम् । स्थितः । चलति । तत्त्वतः ॥ २१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन । जो सुख अनंत है तथा इन्द्रियका अविषयै है तथा केवल शुद्धबुद्धिकरिकै ग्रहण होवैहै तिस सुखकूं यह योगी पुरुष जिस अवस्थाविशेषविषे अनुभव करैहै तथा जिसविषे स्थितहुआ यह विद्वान् आपणे आत्मास्वरूपतैं कदाचित्भी नहीं चलायमान होवैहै तिसकूंही योगशब्दका अर्थरूप जानणा ॥ २१ ॥

भा॰टी॰–हे अर्जुन । जो सुख आत्यंतिक है अर्थात् देशकालवस्तुपरिच्छेदतैं रहित निरतिशय ब्रह्मरूपहै । तथा जो सुख अतींद्रिय है ।

अर्थात् नेत्रादिक इंद्रियोंके संबंधजन्य ज्ञानका विषय नहीं है तथा जो सुख रजतमरूप मलतैं रहित केवल सत्त्वप्रधान बुद्धिकरिकैही ग्रहण कऱ्याजावै है ऐसे स्वरूपसुखकूं यह योगी पुरुष जिस अवस्थाविशेषविषे अनुभव करैहै तथा जिस अवस्थाविशेषविषे स्थितहुआ यह विद्वान् पुरुष आपणे परिपूर्ण अद्वितीय आत्मस्वरूपतैं कदाचित्भी चलायमान होता नहीं। तिस निरोधपरिणामरूप अवस्थाकूंही योगशब्दका अर्थरूप जानणा। इहां श्रीभगवान्नें ता स्वरूपसुखके (आत्यंतिकम् अतींद्रियं बुद्धिग्राह्यं) यह तीन विशेषण कथन करे हैं तहां (आत्यंतिकं) या विशेषणकरिकै तौ ता ब्रह्मरूप सुखका (यो वै भूमा तत्सुखम्) इस श्रुतिकरिकै सिद्ध देशकालवस्तुपरिच्छेदतैं रहित अनंतस्वरूप कथनकऱ्या। और (अतींद्रियं) या विशेषणकरिकै ता ब्रह्मरूप सुखविषे विषयजन्य सुखतैं भिन्नपणा कथन कऱ्या। जिस कारणतैं सो विषयजन्य सुख विषयइंद्रियके संबंधकी अपेक्षा अवश्यकरिकै करैहै और (बुद्धिग्राह्यं) या विशेषणकरिकै ता ब्रह्मरूप सुखविषे सुषुप्तिके सुखतैं भिन्नपणा कथन कऱ्या। काहेतैं सुषुप्ति अवस्थाविषे बुद्धिके लय होणेतै सो सुषुप्तिका सुख बुद्धिकरिकै ग्रहण होवै नहीं। और समाधिअवस्थाविषे तौ सा बुद्धि सर्ववृत्तियोंतैं रहित हुई स्थित होवैहै। यातैं समाधि अवस्थाविषे सो ब्रह्मरूप सुख बुद्धिकरिकै ग्रहण होवैहै। यह वार्त्ता गौडपादाचार्यनैंभी कथनकरी है। तहां श्लोकार्द्ध—(लीयते तु सुषुप्तौ तन्निगृहीतं न लीयते।) अर्थ यह—सो मन सुषुप्तिअवस्थाविषे तौ अज्ञानमें लयभावकूं प्राप्त होवैहै। और समाधिविषे तौ सो निगृहीत मन लयभावकूं प्राप्त होवै नहीं इति। यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है। तहां श्रुति—(समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्। न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा यदेतदंतःकरणेन गृह्यते॥) अर्थ यह—समाधिकरिकै निवृत्त होइगयाहै रजतमरूप मल अथवा पापरूप मल जिसका ऐसा जो आत्माविषे स्थित चित्त है ता चित्तकूं तिस कालविषे जो सुख प्राप्त होवैहै सो सुख वाणी-

करिकै वर्णन कऱ्याजावै नहीं। किंतु निरुद्ध हुईहैं सर्ववृत्तियाँ जिसकी ऐसे अंतःकरणकरिकेही सो सुख ग्रहण कऱ्याजावैहै इति । किंवा ता समाधिअवस्थाविषे वृत्तियोंकरिकै सुखका आस्वादन करणा श्रीगौडपादाचार्यनैंही निषेध कऱ्याहै । तहां श्लोकार्द्ध–(नास्वादयेत्सुखं तत्र निःसंगः प्रज्ञया भवेत् ॥) अर्थ यह– इस समाधिविषे मैं इस महान् सुखकूं अनुभव करताहूं याप्रकारकी सविकल्पकवृत्तिका नाम प्रज्ञा है। ता प्रज्ञा करिकै जो सुखका आस्वादन है सो व्युत्थानरूप होणेतैं समाधिका विरोधीही है । यातैं ता प्रज्ञाकरिकै सुखके आस्वादनकूं योगी पुरुष कदाचित्भी नहीं करै। इसी कारणतैं सो योगी पुरुष ता प्रज्ञाके साथि संगतैं रहित होवै अर्थात् ता वृत्तिरूप प्रज्ञाकूं निरोध करै इति । और सर्ववृत्तियोंतैं रहित चित्तकरिकै ता स्वरूपसुखका अनुभव तौ तिसी गौडपादाचार्यनैंही (स्वस्थं शांतं सनिर्वाणमकथ्यं सुखमुत्तमम्) इत्यादिक वचनोंकरिकै प्रतिपादन कऱ्याहै । इस अर्थकूं आगे स्पष्ट करैंगे ॥ २१ ॥

तहां पूर्व श्लोकविषे (यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः) इस वचनकरिकै जिस अवस्थाविशेषविषे स्थितहुआ यह योगी पुरुष आपणे अद्वितीय आत्मस्वरूपतैं चलायमान होता नहीं यह अर्थ कथन कऱ्या । अब इस श्लोककरिकै तिसी अर्थका उपपादन करैंहैं–

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः॥
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥२२॥

(पदच्छेदः) यम् । लब्ध्वा । च । अपरम् । लाभम् । मन्यते न । अधिकम् । ततः । यस्मिन् । स्थितः । न । दुःखेन । गुरुणा । अपि । विचाल्यते ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस अवस्थाविशेषकूं प्राप्त होइकै सो योगीपुरुष दूसरे लाभकूं तिसतैं अधिक नहीं मानतो है तथा जिस अव-

स्थाविषे स्थितहुआ सो योगी पुरुष महान् दुःखोंनें भी नहीं चलायमान करीता है ॥ २२ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन । निरतिशय आत्मास्वरूप नित्यसुखका अभिव्यञ्जक जो सर्ववृत्तियोंतैं रहित चित्तकी निरोधनामा अवस्थाविशेष है । ऐसी जिस अवस्थाविशेषकूं निरंतर योगाभ्यासकी परिपक्वतातैं संपादन करिकै योगी पुरुष जिस अवस्थाविशेषतैं परे दूसरे किसी लाभकूं अधिक मानता नहीं, किंतु तिस अवस्थाविशेषकी प्राप्ति करिकैही सो योगी पुरुष आपणेकूं कृतकृत्य माने है । तथा प्राप्तप्रापणीय माने है । तथा अनेक उपायोंकरिकै प्राप्त होणेहारे सुख जिसकूं एकही कालविषे प्राप्त होवैं ताकूं प्राप्तप्रापणीय कहैं हैं । तहां स्मृति–(आत्मलाभान्न परं विद्यते ।) अर्थ यह–आनंदस्वरूप आत्मातैं भिन्न जितनेक स्वर्गलोक वैकुंठलोक गोलोक ब्रह्मलोक इत्यादिक लोक हैं ते सर्वलोक सातिशयता तथा दीनता तथा नीचे पतनका भय तथा ईर्षा इत्यादिक दोषोंकरिकै सर्वदा ग्रस्त हैं । यातैं ते सर्वलोक अलाभरूपही हैं । यद्यपि वेदांतसिद्धांतविषे प्रत्यक्अभिन्न ब्रह्मसाक्षात्कारही परमलाभ कह्या है यातैं चित्तकी निरोध अवस्थाकूं परमलाभरूपता संभवती नहीं । तथापि जैसे श्रुतिविषे सत्यब्रह्मकी प्राप्तिकरणेहारे महावाक्यजन्यवृत्तिरूप ज्ञानकूंभी सत्यरूपकरिकै कथन कऱ्या है तैसे इहां श्रीभगवान्नैंभी ता परमलाभरूप आत्मसाक्षात्कारकी प्राप्ति करणेहारी चित्तकी निरोधअवस्थाकूं परमलाभरूप करिकै कथनकऱ्या है इति। तहां श्लोकके पूर्वार्द्धकरिकै बाह्यविषयोंकी वासना करिकै ता योगी पुरुषका तिस समाधितै विचलन नहीं होवै है यह वार्त्ता कथन करी । अब शीत आतप वायु मशक इत्यादिकोंनै कऱ्या जो उपद्रव है ता उपद्रवके निवृत्त करणेवास्तेभी ता योगी पुरुषका तिस समाधितैं विचलन नहीं होवै है इस अर्थकूं श्लोकके उत्तरार्द्धकरिकै कथन करै हैं (यस्मिन् स्थितः । इति) जिस आत्मास्वरूप सुखका अभिव्यंजक सर्ववृत्तियोंतैं रहित चित्तकी अवस्थाविशेषविषे स्थितहुआ

योगी पुरुष शस्त्रप्रहारादिक निमित्तजन्य महान् दुःखनैंभी चलायमान करीता नहीं तौ शीत आतपादिकोंके उपद्रवजन्य अल्पदुःख ता योगी पुरुषकूं कैसे चलायमान करिसकेंगे, किंतु ते दुःख नहीं चलायमान करिसकेंगे ॥ २२ ॥

तहां (यत्रोपरमते चित्तं) इस श्लोकतैं लैके तीन श्लोकोंकरिकै कथनकरी जा चित्तकी अवस्थाविशेष है ता अवस्थाविशेषविषे योगशब्दकी अर्थरूपताकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

तंविद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ॥
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा२३॥

(पदच्छेदः) तम् । विद्यात् । दुःखसंयोगवियोगम् । योगसंज्ञितम् । सः । निश्चयेन । योक्तव्यः । योगः । अनिर्विण्णचेतसा ॥ २३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! दुःखके संबंधतें रहित तिस निरोधअवस्थाकूंही योगशब्दका अर्थ जानणा सो योग निश्चयकरिकै तथा उद्वेगतैं रहित चित्तकरिकैही अभ्यास करणेयोग्य है ॥ २३ ॥

भा० टी०–(यत्रोपरमते चित्तम्) इस वचनतैं आदि लैके बहुत विशेषणोंकरिकै कथनकऱ्या जो सर्ववृत्तियोंतैं रहित तथा परमानंदका अभिव्यंजक चित्तकी निरोधनामा अवस्थाविशेष है सो चित्तवृत्तियोंका निरोध चित्तवृत्तिमय सर्वदुःखोंका विरोधि होणेतैं तिन दुःखोंके संबंधका वियोगरूपही है । अर्थात् आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिक जितनेक दुःख हैं, तिन सर्वदुःखोंके संबंधका जिस निरोधविषे अभाव है । यातें सो सर्ववृत्तियोंका निरोध यद्यपि वियोग इस नामकरिकै कहणेकूं योग्य है तथापि विरोधिलक्षणाकरिकै तिस निरोधकूं योगशब्दका अर्थ जानणा । ता योगशब्दके अनुसारतैं सो निरोध किंचित् मात्रभी संबंधकूं प्राप्त होवै नहीं । इसी अर्थकूं भगवान् पतंजलिनेभी कथन

कन्या है । तहां सूत्र—(योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः)। अर्थ यह—सर्वचित्त-वृत्तियोंका जो निरोध है ताका नाम योग है इति । इतने कहणेकरिकै (योगो भवति दुःखहा) इस वचनकरिकै जो पूर्व योगका फल कथन कन्याथा ताका उपसंहार कन्या । अब निश्चयविषे तथा निर्वेदतैं रहितपणेविषे तिस योगकी साधनरूपताकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं । (स निश्चयेन योक्तव्यः इति) इसप्रकारके महान् फलकी प्राप्ति करणेहारा सो योग इस अधिकारी पुरुषनैं निश्चयकरिकै अभ्यास करणेकूं योग्य है इहां आचार्यके वचनोंके तथा शास्त्रके वचनोंके तात्पर्यका विषयीभूत जो जो अर्थ है सो सर्व अर्थ सत्य है याप्रकारकी दृढबुद्धिका नाम निश्चय है ऐसे निश्चयकरिकै सो योगाभ्यास करणा । तथा इस अधिकारी पुरुषनैं निर्वेदतैं रहित होइकैभी ता योगाभ्यासकूं करणा । इहां इतनैं कालपर्यंत अभ्यास करते हुएभी हमारेकूं योग सिद्ध हुआ नहीं तौ इसतैं आगे कैसे सिद्ध होवैगा याप्रकारके अनुतापका नाम निर्वेद है । ऐसे निर्वेदतैं रहित चित्तकरिकै ता योगाभ्यासकूं करै अर्थात् निरंतर अभ्यास करतेहुए इस जन्मविषे अथवा जन्मांतरविषे अवश्यकरिकै योगसिद्ध होवैगा याकेविषे अतिशीघ्रता करणेका क्या प्रयोजन है । याप्रकारके धैर्ययुक्त मनकरिकै तिस योगाभ्यासकूं करै । यह वार्त्ता श्रीगौडपादाचार्यनैंभी कथन करीहै । तहां श्लोक—(उत्सेक उदधेर्यद्वत्कुशाग्रेणैकबिंदुना ॥ मनसो निग्रहस्तद्वद्भवेदपरिखेदतः ॥) अर्थ यह—जैसे कोई टिटिभ पक्षी समुद्रके सुखावणेका निश्चयकारिकै कुशाके अग्रभाग समान आपणी चंचुसे समुद्रके जलके बिंदुकूं ग्रहण करिकै तीर ऊपरि पावताभया । तैसे खेदतैं रहित होइकै अभ्यास करणेतैंही इस मनका निग्रह होवैहै । इहां वेदांतसंप्रदायके वेत्ता वृद्धपुरुष याप्रकारकी आख्यायिकाकूं कहते भयेहैं । समुद्रके तीरविषे स्थित किसी टिटिभनामा पक्षीके अंडोंकूं समुद्र आपणे तरंगके वेगकरिकै हरण करताभया तिसतैं अनंतर सो टिटिभपक्षी क्रोधवान् होइकै इस समुद्रकूं मैं अव-

श्यकारिकै सुकावौंगा या प्रकारका निश्चय करिकै तिस समुद्रके सुकावणे-विषे प्रवृत्त होता भया। तहां आपणे मुखके अग्रभाग करिकै एक जलके बिंदुकूं ग्रहण करिक ता समुद्रतैं बाहरि जाइकै छोडताभया। तिस काल-विषे ता टिटिभ पक्षीकूं आपणे बांधव बहुत पक्षी ता समुद्र सुकावणेतै निवृत्त करते भये। तौ भी सो टिटिभ पक्षी तिसतैं उपराम नहीं होता भया। तिसतैं अनंतर तिस स्थानविषे दैवयोगतै नारद मुनि आवता भया। सो नारद मुनिभी तिस टिटिभ पक्षीकूं ता समुद्रके सुकावणेतैं निवृत्त करता भया। तौभी सो टिटिभ पक्षी तिसतैं निवृत्त नहीं होताभया, किंतु इस जन्मविषे अथवा दूसरे जन्मविषे मैं इस समुद्रकूं अवश्य करिकै सुका-वौंगा या प्रकारकी प्रतिज्ञा सो टिटिभ पक्षी नारदके आगे करता भया। तिसतैं अनंतर दैवकी अनुकूलतातैं सो कृपालु नारद गरुडके समीप जाइकै या प्रकारका वचन कहता भया। हे गरुड ! यह समुद्र तुम्हारे सजातीय पक्षियोंका द्रोहकारिकै तुम्हाराही अपमान करै है। या प्रकारका वचन कहिकै सो नारदमुनि ता गरुडकूं तहां भेजता भया। तिस गरुडके पक्षोंके पवन करिकै सूकता हुआ सो समुद्रभी भयभीत होइकै तिन अंडोंकूं तिस टिटिभ पक्षीके ताई देताभया इति। इस प्रकार जो योगी पुरुप खेदतैं रहित होइकै तिस मनके निरोधरूप परमधर्मविषे प्रवृत्त होवैहै तिस योगी पुरुप ऊपरि साक्षात् आप ईश्वरही अनुग्रह करैहै ता ईश्वरके अनुग्रह करिकै तिस टिटिभ पक्षीकी न्याई तिस योगी पुरुपकाभी सो मनका निरोधरूप वांच्छित अर्थ अवश्य करिकै सिद्ध होवैहै। यह टिटिभ पक्षीका आख्यान आत्मपुराणके एकादश अध्यायविषे हम विस्तारतैं कथन करि आये हैं॥ २३ ॥

तहां किस उपाय करिकै सो योगअभ्यास करणे योग्य है ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् ता योगके उपायका वर्णन करैं हैं—

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ॥
मनसैवेंद्रियग्रामं विनियम्य समंततः ॥ २४ ॥

(पदच्छेदः) संकल्पप्रभवान् । कामान् । त्यक्त्वा । सर्वान् । अशेषतः । मनसा । एव । इंद्रियग्रामम् । विनियम्य । समंततः ॥ २४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह अधिकारी पुरुष संकल्पजन्य सर्व कामोंकूं वासनासहित परित्याग करिकै तथा मनकरिके ही इंद्रियोंके समूहकूं सर्वविषयोंतें रोकिकेंकरिकै मनका निरोध करें ॥ २४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जे विषय इस लोकविषे तथा परलोकविषे अनर्थका हेतु होणेतें अत्यंत दुष्ट हैं। ऐसे दुष्ट विषयोंविषे रह्याहुआ जो अशोभनपणा है, ता अशोभनपणेकूं न देखिकै जो तिन विषयोंविषे यह विषय बहुत रमणीक है या प्रकारका शोभनपणेका अध्यास है ताका नाम संकल्प है । ता संकल्पतें उत्पन्नभये जे यह विषय हमारेकूं प्राप्त होवैं या प्रकारके विषय अभिलाषारूप काम हैं । तिन शोभन अध्यासजन्य विषयकी अभिलाषारूप सर्व कामोंकूं अशेषतें परित्याग करिकै यह अधिकारी पुरुष शनैःशनैः करिकै मनका निरोध करै । अर्थात् अध्यात्मशास्त्रके विचारतें उत्पन्न भया जो तिन विषयोंविषे अशोभनत्व निश्चय है । ता अशोभनत्व निश्चयकरिकै तिस शोभनत्व अध्यासके बाधहुएतें अनंतर स्रक् चंदन वनिता आदिक दृष्टविषयोंविषे तथा चंद्रलोक पारिजात अमृत अप्सरा इत्यादिक अदृष्टविषयोंविषे श्वानके वांतग्रासकी न्याई सर्व कर्मोंका सूक्ष्मवासना सहित परित्याग करिकै मनका निरोध करै । और ता विषयकी अभिलाषारूप कामपूर्वकही नेत्रादिक इंद्रियोंकी तिन विषयोंविषे प्रवृत्ति होवैहै । कामतें विना तिन इंद्रियोंकी प्रवृत्ति होवै नहीं । यातें ता कामके अभाव हुए विवेकयुक्त मनकरिकै चक्षु आदिक इंद्रियोंके समूहकूं रूपादिक सर्व विषयोंतें निवृत्त करिकै यह अधिकारी पुरुष शनैः शनैः करिकै आपणे मनका निरोध करै । इस प्रकार आगले श्लोकके साथि इस श्लोकका अन्वय करणा । इहां (अशेषतः) यापदकरिकै श्रीभगवान्नें यह अर्थ सूचन कऱ्या । जैसे किसी पात्रविषे

तैलकूं पाइकै तिस पात्रतैं पुनः सो तैल निकासि देइये । तिसतैं अनंतर
ता पात्रविषे जो लेपरूपकरिकै तैल रहै है ताका नाम शेष है । तैसे
विषय अभिलाषारूप कामके परित्याग किये हुएभी जबपर्यंत तिस कामका
वासनारूप शेष रहै है । तब पर्यंत तिन वासनावोंकरिकै आकर्षणकूं
प्राप्तहुआ सो मन समाधिविषे स्थित होवै नहीं । यातैं वासनारूप शेष
जैसे बाकी नहीं रहै तैसे तिन सर्व कामोंका परित्याग करै । और (मन-
सैव) यावचनकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कऱ्या । यह नेत्रादिक
इंद्रिय मनके संबंधतैं विना किसीभी विषयविषे स्वतंत्र प्रवृत्त होवैं नहीं,
किंतु मनके संबंधकूं प्राप्त होइकैही यह नेत्रादिक आपणे आपणे
विषयोंविषे प्रवृत्त होवैं हैं । यातैं तिन नेत्रादिक इंद्रियोंके साथि जो
मनका संबंध नहीं करणा है यहही तिन नेत्रादिक इंद्रियोंका
नियम है ॥ २४ ॥

शनैःशनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ॥
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिंतयेत् २५

(पदच्छेदः) शनैः । शनैः । उपरमेत् । बुद्ध्या । धृतिगृही-
तया । आत्मसंस्थम् । मनः । कृत्वा । न । किंचित् । अपि ।
चिंतयेत् ॥ २५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन । सो योगी पुरुष धैर्ययुक्त बुद्धिकरिकै शनैः
शनैःकरिकै मनका निरोध करै तथा प्रत्यक् आत्माविषे स्थित मनकूं
करिकै किंचित्मात्र भी नहीं चिंतन करै ॥ २५ ॥

भा० टी०—धैर्यरूप जा धृति है ता धृतिकरिकै अनुगृहीत जा
अवश्यकर्त्तव्यताका निश्चयरूप बुद्धि है अर्थात् जिसी किसी कालविषे
यह योग अवश्यकरिकै सिद्ध होवैगा याकेविषे बहुत शीघ्रता करणेका
क्या प्रयोजन है ? याप्रकारके धैर्यकरिकै अनुगृहीत जा बुद्धि है ता बुद्धि
करिकै यह अधिकारी पुरुष गुरुउपदिष्टमार्गकरिकै भूमिकावोंके जयक्रमतैं

शनैःशनैःकरिकै मनका निरोध करै । इतनैं कहणेकरिके पूर्व योगका साधनरूपकरिकै कथन कऱ्ये जे अनिर्वेद तथा निश्चय ते दोनों दिखाये। यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथनकरीहै । तहां श्रुति–(यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञ-स्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि ज्ञानमात्मनि महति । नियच्छेत्तद्यच्छेच्छांत आत्मनीति ॥) अर्थ यह–लौकिक तथा वैदिक जितनीक वाचा है तिस वाचाकूं यह बुद्धिमान् आधिकारी सव्यापारमनविषे लय करै अर्थात् वाक्इंद्रियके सर्वव्यापारका पारत्यागकारिकै केवल मनके व्यापारमात्रवाला होवै । तहां श्रुति–(नानुध्यायाद्बहूञ्शब्दान्वाचोविग्लापनं हि तत् ॥) अर्थ यह–अनात्म पदार्थोंके वाचक बहुत शब्दोंकूं यह अधिकारी पुरुष नहीं उच्चारण करै । जिसकारणतैं ते शब्द वाक्इन्द्रियकूं केवल परिश्रमकीही प्राप्ति करणेहारे हैं इति । और वागादिक पंच कर्मइन्द्रिय तथा श्रोत्रादिक पंच ज्ञानइन्द्रिय यह दश इन्द्रिय हैं सहकारी जिसके तथा नाना-प्रकारके संकल्पविकल्पोंका साधनरूप ऐसा जो कारणरूप मन है तिस मनकूं ज्ञानरूप आत्माविषे लय करै इहां (जानातीति ज्ञानम्) अर्थ यह–जो वस्तुकूं जानै ताका नाम ज्ञान है । या प्रकारकी व्युत्पत्तिकरिकै ज्ञान शब्द ज्ञाताका वाचक है । ऐसा ज्ञाता आत्माविषे ता मनकूं लय करै अर्थात् आत्माविषे ज्ञातृपणेका उपाधि जो अहंकार है ता अहंकारविषे तिस मनका लय करै । तात्पर्य यह–तिस मनके संकल्पविकल्पादिक सर्वव्यापारोंकूं परित्याग करिकै ता अहंकारमात्रकूं परिशेषतैं राखे । तिसतैं अनंतर तिस ज्ञातृपणेका उपाधि अहंकाररूप ज्ञानकूं सर्वत्र व्यापक महत्तत्त्व आत्माविषे लय करै । तहां सो अहंकार दोप्रकारका होवैहै । एक तौ विशेषरूप अहंकार होवैहै । दूसरा सामान्यरूप अहंकार होवैहै । तहां यह देवदत्तनामा मैं इस यज्ञदत्तका पुत्रहूं इसप्रकार जो स्पष्ट अभिमानहै सो विशेषरूप अहंकार है । यहही विशेषरूप अहंकार व्यष्टि अहंकार कह्याजावैहै । और 'अहमस्मि' इतनामात्र जो अभिमान है सो अभिमान सामान्य अहंकार है । सो सामान्यअहंकारही

समष्टि अहंकार कह्याजावैहै । सो समष्टि अहंकार सर्वत्र अनुस्यूत होणेतैं हिरण्यगर्भ तथा महान् आत्मा कह्याजावैहै । तिस दोनों प्रकारके अहंकारतैं पृथक् करयाहुआ जो सर्वके अंतर चिदेकरस आत्मा है ताका नाम शांत आत्मा है तिस शांत आत्माविषे तिस समष्टिबुद्धिरूप महान् आत्माकूं लय करै । इसप्रकार ता समष्टिबुद्धिरूप महत्तत्त्वका कारणरूप जो अव्यक्त है तिस अव्यक्तकूं भी ता शांत आत्माविषे लय करै । इस प्रकार सर्व कार्यकारणरूप संघातके लय कियेतैं अनंतर इस अधिकारी पुरुषकूं सर्व उपाधियोंतैं रहित त्वंपदका लक्ष्य अर्थरूप शुद्ध आत्माका साक्षात्कार होवै है । तहां तिस शुद्ध चिदेकरस प्रत्यक् आत्माविषे जडशक्तिरूप अनिर्वचनीय अव्यक्त नामा प्रकृति उपाधिरूप है । सा प्रकृति प्रथम तौ सामान्य अहंकाररूप महत्तत्त्वनामकूं धारण करिकै प्रगट होवै है । तिसतैं अनंतर बाह्यविशेष अहंकाररूप करिकै प्रगट होवै है । तिसतैं अनंतर तिसतभी बाह्य मनरूपकरिकै प्रगट होवै है । तिसतैं अनंतर तिसतैंभी बाह्य वाक् इन्द्रियरूप करिकै प्रगट होवै है इति । यह सर्व अर्थ साक्षात् श्रुतिनैंही कथन कऱ्या है । तहां श्रुति–(इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः । मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः । महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः । पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः । इति) अर्थ यह– श्रोत्रादिक इंद्रियोंतैं शब्दादिक अर्थ पर हैं । और तिन अर्थोंतै मन पर है । और ता मनतैं व्यष्टिबुद्धि पर है । और ता व्यष्टिबुद्धितैं महत्तत्त्वनाम समष्टि बुद्धि पर है । और ता महत्तत्त्वतैं अव्यक्त पर है और ता अव्यक्ततैं अधिष्ठानरूप परमात्मा पुरुष पर है । ता पुरुषतैं परे कोईभी पदार्थ है नहीं, किंतु सो पुरुषही सर्वकी अवधिरूप है तथा परागतिरूप है इति । तहां जैसे गोमहिषादिक पशुवोंविषे वाक् इंद्रियका निरोध रहै है, तैसे वाक् इंद्रियका निरोध करणा यह प्रथम भूमिका कहीजावै है । और जैसे बालकविषे तथा मूढपुरुषविषे निर्मनस्त्व रहै

है तैसे निर्मनस्त्ववाला होणा यह दूसरी भूमिका कहीजावै है । और जैसे तंद्रा अवस्थाविषे मैं ब्राह्मण हूं, मैं मनुष्य हूं याप्रकारका अहंकार रहता नहीं तैसे सर्वदा अहंकारतें रहित होणा यह तृतीय भूमिका कही जावै है और जैसे सुषुप्तिविषे महत्तत्त्व नहीं रहै है तैसे जो महत्तत्त्वतैं रहितपणा है सा चतुर्थ भूमिका कही जावै है । इन च्यारि भूमिकावोंकी अपेक्षाकरिकैही श्रीभगवाननैं (शनैः शनैरुपरमेत्) यह वचन कथन कऱ्या है । इहां यद्यपि महत्तत्त्व तथा शांत आत्मा या दोनोंके मध्यविषे (इंद्रियेभ्यः परा ह्यर्थाः) इस श्रुतिनैं ता महत्तत्त्वका उपादानकारण अव्याकृत नामा तत्त्व कथन कऱ्या है । तथापि जैसे वागादिक तत्त्वोंका मनादिक तत्त्वोंविषे लय श्रुतिनैं कथन कऱ्या है तैसे तिस महत्तत्त्वनामा तत्त्वका अव्याकृतनामा तत्त्वविषे लय श्रुतिनैं कथन कऱ्या नहीं । याकेविषे यह कारण है जो कदाचित् ता महत्तत्त्वका तिस अव्याकृत-विषे लय करिये, तौ सुषुप्तिकी न्याईं स्वरूपलयकीही प्राप्ति होवेगी । और सो अव्याकृतविषे महत्तत्त्वका लय भोगप्रदकर्मोंके क्षयहुएतैं अनंतर पुरुषप्रयत्नतैं विना स्वतःही सिद्ध है । तथा सो अव्यक्तविषे महत्तत्त्वका लय तत्त्वदर्शनविषे उपयोगीभी है नहीं । और (दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः) याप्रकारका वचन पूर्व कथन करिकै तिस सूक्ष्मताकी सिद्धिवासतै (यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञः) इस श्रुतिनैं निरोधसमाधिका विधान कऱ्या है । यातैं सो निरोधसमाधि जिज्ञासुजनकूं तौ तत्त्वसाक्षात्कारकी प्राप्तिवासतै अपेक्षित है । और तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं तौ सर्व क्लेशोंकी निवृत्तिरूप जीवन्मुक्तिकी प्राप्तिवासतै अपेक्षित है । यातैं जिज्ञासुजननैं तथा तत्त्ववेत्ता पुरुषनैं सो निरोधसमाधि अवश्यकरिकै संपादन करणा । शंका-हे भगवन् ! शांत आत्माविषे अवरुद्ध जो चित्त है सो चित्त तिस कालविषे सर्व वृत्तियोंतैं रहित है । यातैं सुषुप्तचित्तकी न्याईं तिस चित्तविषे आत्मदर्शनकी हेतुताही संभवती नहीं । समाधान-तिस निरोध कालविषे सर्व वृत्तियोंके अभाव हुएभी तिस निरुद्ध

चित्तकरिकै स्वतः सिद्ध जो आत्माका दर्शन है ताकूं कोईभी वादी निवृत्तकरणेविषे समर्थ है नहीं यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथन करी है। तहां श्लोक-(आत्मानात्माकारं स्वभावतोऽवस्थितं सदा चित्तम्। आत्मैकाकारतया तिरस्कृत्वा नात्मदृष्टिं विदधीत।) अर्थ यह-यह चित्त आपणे सविषयस्वभावतैंही सर्वदा आत्माकार अथवा अनात्माकार हुआही स्थित होवै है। तहां यह अधिकारी पुरुष ता चित्तकी आत्मैकाकारताकूं संपादन करिकै अनात्मदृष्टिका परित्यागकरिकै ता चित्तका निरोध करै। इहां यह तात्पर्य है। जैसे उत्पन्न हुआ घट स्वतः आकाशकरिकै पूर्णहुआही उत्पन्न होवै है। किसी पुरुषप्रयत्नकरिकै सो घट आकाशकरिकै पूर्ण कऱ्याजावै नहीं और ता घटविषे जलतण्डुलादिक पदार्थोंका जो पूरण होवै है। सो तौ ता घटके उत्पन्न हुएतैं अनंतर पुरुषके प्रयत्नकरिकै होवै है। तहां तिस घटतैं जलतंडुलादिकोंके निकास्ये हुएभी सो आकाश ता घटतैं बाहरि निकास्या जावै नहीं। तथा ता घटके मुखके बंद कियेहुएभी सो आकाश ता घटके अंतरही रहे है। तैसे यह चित्तभी उत्पन्न हुआही चैतन्य आत्मा करिकै पूर्णही उत्पन्न होवै है। उत्पन्नहुए तिस चित्तविषे पश्चात् मूषाविषे पायेहुए द्रुतताम्रकी न्याई घटदुःखादिरूपता भोगके हेतु धर्म अधर्म सहकृत सामग्री के वशतैं प्राप्त होवै है। तहां योगाभ्यासके बलतैं तिस चित्ततैं वा घट दुःखादिक अनात्माकारताके निवृत्त कियेहुएभी विनाही निमित्ततैं जो चित्तविषे चिदाकारताहै सा चिदाकारता ता चित्ततैं निवृत्त करी जावै नहीं। यातैं निरोध समाधिकरिकै सर्व वृत्तियोंतैं रहित तथा संस्कारमात्ररूप होणेतैं अत्यंत सूक्ष्म ऐसा जो निरुपाधिक चेतन आत्माके अभिमुख चित्त है, ता निरुद्ध चित्तकरिकै वृत्तितैं विनाही निर्विघ्न आत्माका अनुभव संभव होइसकैहै। इसी पूर्व उक्त सर्व अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं। (आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिंतयेत्) सर्व उपाधितैं रहित प्रत्यक् आत्माविषे है संस्था क्या समाप्ति जिसकी ताका नाम आत्मसंस्थ है। अर्थात् सर्वप्रकारकी वृत्तियोंतैं

रहित स्वभावसिद्ध आत्माकारमात्र जो मन है। ऐसे आत्मसंस्थ मनकूं पूर्व उक्त धैर्यकरिकै अनुगृहीत बुद्धितैं संपादन करिकै असंप्रज्ञात समाधिविषे स्थित हुआ यह योगी पुरुष किसीभी वस्तुका चिंतन करै नहीं। अर्थात् किसी अनात्मपदार्थकूं अथवा प्रत्यक् आत्माकूं वृत्तिकरिकै विषय करै नहीं। काहेतै तिस असंप्रज्ञात समाधिकालविषे जो कदाचित् अनात्माकार वृत्तिकूं उत्पन्न करैगा तौ तिस समाधितैं व्युत्थानही प्राप्त होवैगा और कदाचित् आत्माकार वृत्तिकूं उत्पन्न करैगा तौ संप्रज्ञात समाधिही प्राप्त होवैगी। असंप्रज्ञात समाधि रहैगी नही यातैं सो योगी पुरुष ता असंप्रज्ञात समाधिकी स्थिरता करणेवास्ते किसीभी आत्माकार वृत्तिकूं अथवा अनात्माकार वृत्तिकूं उत्पन्न करै नहीं ॥ २५ ॥

इसप्रकार निरोध समाधिकूं करताहुआ योगी पुरुष आपणे मनकूं सर्व ओरतैं रोकिकै अंतर आत्माविषे निरुद्ध करै । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैंहैं—

यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम् ॥
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ २६ ॥

(पदच्छेदः) यतः । यतः । निश्चरति । मनः । चंचलम् । अस्थिरम् । ततःततः। नियम्य। एतत्। आत्मनि। एव। वशम् । नयेत् ॥ २६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन । जिसे जिसे निमित्ततैं विक्षेपके अभिमुख हुआ तथा लयके अभिमुख हुआ यह मन विषयाकार वृत्तिकूं उत्पन्न करै है तिसे तिसे निमित्ततैं इसे मनकूं रोकिकै आत्माविषेही निरोधकूं प्राप्त करै॥ २६॥

भा० टी०—हे अर्जुन । चित्तकूं विक्षेपकी प्राप्ति करणेहारे जे शब्दादिक विषय हैं तिन शब्दादिक विषयोंके मध्यविषे जिसजिस शब्दादिक विषयरूप निमित्ततैं तथा रागद्वेषादिक निमित्ततैं विक्षेपके अभिमुख हुआ

यह मन निश्चरता है । अर्थात् विषयके अभिमुख हुई जे प्रमाण विपर्यय विकल्प स्मृति यह समाधिकी विरोधि च्यारिप्रकारकी वृत्तियां हैं तिन वृत्तियोंविषे किसीभी वृत्तिकूं उत्पन्न करैहै तथा लयके हेतुरूप जे निद्राशेष वहु अन्नभोजन परिश्रम इत्यादिक निमित्त हैं, तिन्होंके मध्यविषे जिस जिस निमित्ततैं लयके अभिमुख हुआ यह मन निश्चरताहै। अर्थात् लीन हुआ समाधिकी विरोधि निद्रारूप वृत्तिकूं उत्पन्न करैहै । तिसतिस विक्षेप-के निमित्ततैं तथा लयके निमित्त इस मनकूं नियम करिके अर्थात् सर्व वृत्तियोंतें रहित करिके स्वप्रकाश परमानंदघन आत्माविषेही निरुद्ध करै । जिस आत्माविषे निरुद्ध हुआ यह मन विक्षेपकूंभी प्राप्त होवैहै नहीं तथा लयकूंभी प्राप्त होवै नहीं । यह सर्व अर्थ श्रीगौडपादाचार्यनैंभी कथन कऱ्या है । तहां श्लोक—(उपायेन निगृह्णीयाद्विक्षिप्तं कामभोगयोः ॥ सुप्रसन्नं लये चैव यथाकामो लयस्तथा ॥ १ ॥ दुःखं सर्वमनुस्मृत्य कामभोगान्निवर्त्तयेत् ॥ अजं सर्वमनुस्मृत्य जातं नैव तु पश्यति ॥ २ ॥ लये संबोधयेच्चित्तं विक्षिप्तं शमयेत्पुनः ॥ सकषायं विजानीयाच्छमप्राप्तं न चालयेत् ॥ ३ ॥ नास्वादयेत्सुखं तत्र निःसंगः प्रज्ञया भवेत् ॥ निश्चलं निश्चलं चित्तमेकीकुर्यात्प्रयत्नतः ॥ ४ ॥ यदा न लीयते चित्तं न च विक्षिप्यते पुनः ॥ अलिंगनमनाभासं निष्पन्नं ब्रह्म तत्तदा ॥ ५ ॥ अब यथाक्रमतैं इन पंच श्लोकोंका अर्थ निरूपण करैं हैं । कामभोग या दोनोंविषे विक्षिप्त जो मन है, अर्थात् प्रमाण विपर्यय विकल्प स्मृति या च्यारि वृत्तियोंविषे किसीभी वृत्तिरूपकरिके परिणामकूं प्राप्तभया जो मन है तिस मनकूं यह योगी पुरुष वक्ष्यमाण वैराग्य अभ्यासरूप उपायकरिकै प्रत्यक् आत्माविषेही निरुद्ध करै । तहां शब्दादिक विषयोंकी दो प्रकारकी अवस्था होवै है । एक तो चिंत्यमान अवस्था है । और दूसरी भुज्यमान अवस्था होवै है । तहां शब्दादिक विषयोंका चिंतन करणा याका नाम चिंत्यमान अवस्था है । औरतिन शब्दादिक विषयोंका जो भोगणा है वाका नाम भुज्यमान अवस्था है । तिन दोनों अवस्थावोंके बोधन करणेवास्तै

(कामभोगयोः)या वचनविषे द्विवचन कथन कऱ्याहै। ते दोनों अवस्था मनके विक्षेपकाहीहेतु होवैहै और लयभावकूं प्राप्त होवै जिसविषे ताका नाम लयहै ऐसीसुषुप्ति है ता सुषुप्तिरूप लयविषे यह मन सुप्रसन्न होवै है अर्थात् सर्व आयासतैं रहित होवै है। ऐसे सुप्रसन्न मनकूंभी सो योगी पुरुष निग्रह करै । शंका–सुषुप्तिविषे सर्वविक्षेपरूप आयासतैं जो मन रहित होवै है तौ किसवासतै ता मनका निग्रह करणा ऐसी शंकाके हुए कहैं हैं (यथा-कामो लयस्तथा, इति) जैसे काम विषयगोचर प्रमाणादिक वृत्तियोंकूं उत्पन्न करिकै समाधिका विरोधी होवै है । तैसे सो लयभी निद्रारूप वृत्तिकूं उत्पन्न करिकै समाधिका विरोधीही होवै है । जिसकारणतैं सर्व वृत्तियोंका निरोधही समाधि कह्याजावै है । यातैं कामादिककृत विक्षेपतैं जैसे सो मन निरोध करणेयोग्य है । तैसे परिश्रमादिकृत लयतैंभी सो मन निरोध करणे योग्य है इति १ ,तहां प्रथम श्लोकविषे (उपायेन निगृह्णीयात्) या वचन करिकै सामान्यतैं उपाय कथन कऱ्या । सो मनके निग्रह करणेका उपाय कौन है ऐसी शंकाके हुए ता उपायका कथन करैं हैं । (दुःखं सर्वमनुस्मृत्येति ।) अविद्याकरिकै रचित जितनाक यह द्वैतप्रपंच है सो सर्व द्वैतप्रपंच परिच्छिन्न होणेतैं दुःखरूपही है इस प्रकारका निरंतर चिंतन करिकै अर्थात् (यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति अथ यदल्पं तन्मर्त्यं तद्दुःखमिति ।) अर्थ यह-जो चेतन देशकाल वस्तुपरिच्छेदतैं रहित है सोईही सुखरूप है । परिच्छिन्न पदा-र्थोंविषे सुखरूपता होवै नहीं। जो जो पदार्थ परिच्छिन्न है सो सो पदार्थ नाशवान् है । तथा दुःखरूप है इति । इत्यादिक श्रुतियोंके अर्थकूं गुरुके उपदेशतैं अनंतर निश्चयकरिकै सो योगी पुरुष कामभोगोंकूं आपणे मनतैं निवृत्त करै अर्थात् चिंत्यमान अवस्थावाले विषयोंकूं तथा भुज्यमान अवस्थावाले विषयोंकूं आपणे मनतैं निवृत्त करै । अथवा तिसकामभोगतैं आपणे मनकूं निवृत्त करै । इतनैं करिकै द्वैतप्रपंचके स्मरणकालविषे वैराग्यभावनासैं ता मनके

उपायरूपता कथन करी । अब सर्वद्वैतप्रपंचका विस्मरणरूप परम उपायकूं कथन करै हैं (अजं सर्वमनुस्मृत्य इति) जन्मतैं रहित जो ब्रह्महै तद्रूपही यह सर्व जगत् है तिस ब्रह्मतैं अतिरिक्त किंचित् मात्रभी वस्तु है नहीं । इस प्रकार गुरुशास्त्रके उपदेशतैं अनंतर विचार करिकै तिस अद्वितीय ब्रह्मतैं विपरीत इस द्वैतमात्रकूं सो योगी पुरुष देखता नहीं । जिसकारणतैं अधिष्ठानके ज्ञानहुए ताकेविषे कल्पित द्वैतप्रपंचका अभावही होवैहै । जैसे रज्जुरूप अधिष्ठानके ज्ञान हुए ताकेविषे कल्पित सर्प दंडादिकोंका अभावही होवै है तैसे अधिष्ठान ब्रह्मके साक्षात्कार हुए ताकेविषे कल्पित द्वैतप्रपंचका अभावही होवै है। तहां वैराग्यभावनारूप पूर्वउक्त उपायकी अपेक्षाकरिकै इस सर्व द्वैतकी निवृत्तिरूप उपायविषे विलक्षणता बोधन करणेवासतै श्लोकविषे तु यह शब्द कथन कऱ्या है इति २ इस प्रकार वैराग्यभावना तथा तत्त्वदर्शन या दोनों उपायोंकरिकै विषयोंतैं निवृत्त कऱ्या हुआ जो चित्त है सो चित्त जो कदाचित् दिनादिनविषे लयहोणेके अभ्यासवशतैं ता लयके अभिमुख होवै तौ निद्राशेष बहु अन्नभोजन अतिपरिश्रम इत्यादिक जे लयके कारण हैं तिन कारणोंका निरोध करिकै सो योगी पुरुष उत्थानके प्रयत्न करिकै ता चित्तकूं तिस लयतैं प्रबोधन करै । इस प्रकार तिस लयतैं प्रबोधन कऱ्या हुआ सो चित्त जो कदाचित् दिनदिनविषे ता प्रबोधनके अभ्यासवशतैं पुनः ता काम भोगविषे विक्षिप्त होवै तौ पूर्वउक्त वैराग्यभावनाकरिकै तथा तत्त्वसाक्षात्कारकरिकै पुनः ता चित्तकूं निरुद्ध करै । इस प्रकार पुनःपुनः अभ्यासके बलतैं ता लयतैं प्रबोधन कऱ्या हुआ तथा शब्दादिक विषयोंतैं निवृत्त करचा हुआ जो चित्त है। अर्थात् लय विक्षेप या दोनों दोषोंतैं रहित करचा हुआ जो चित्त है सो चित्त जबी ब्रह्मरूप समभावकूं नहीं प्राप्त होवै है, किंतु मध्यविषे स्थित हुआ सो चित्त स्तब्ध होइजावै है ता स्तब्धभावकूं कषायदोष कहै हैं सो कषायदोष राग द्वेषादिकोंकी प्रबलवासनारूप रागके वशतैं प्राप्त होवै है। ता कषायदोषकरिकै युक्त जो चित्त है

ताकूं सकषाय कहै हैं । ऐसे सकषाय चित्तकूं सो योगी पुरुष समाहित चित्ततैं विवेककरिकै जानै । तिसतै अनंतर यह हमारा चित्त अबी समाहित न होगया है इस प्रकारका निश्चयकरिकै सो योगी पुरुष जैसे लय विक्षेपदोषतैं ता चित्तकूं निवृत्त कऱ्या था तैसे ता कषायदोषतैंभी तिस चित्तकूं निवृत्त करै । तिसतैं अनंतर लयविक्षेप कषायदोषतैं रहितहुआ सो चित्त परिशेषतैं तिस समरूप ब्रह्मकूंही प्राप्त होवै है । ता समब्रह्मविषे प्राप्त हुए चित्तकूं सो योगी पुरुष कषायलयकी भ्रांतिकरिकै नहीं चलायमान करै, किंतु धैर्य अनुगृहीत बुद्धिकरिकै ता लयकषायकी प्राप्तितै विवेचन करिकै तिस समब्रह्मकी प्राप्तिविषेही अत्यंत प्रयत्न करिकै तिस चित्तकूं स्थापन करै इति ३ किंवा सो निरोध समाधि यद्यपि परम सुखका अभिव्यंजकहै तथापि सो योगी पुरुष ता निरोध समाधिविषे ता सुखकूं आस्वादन नहींकरै। अर्थात् इतनैं कालपर्यंत मैं सुखीहुआ स्थित हूं इसप्रकारकी सुखके आस्वादनरूप वृत्तिकूं सो योगीपुरुष नहीं उत्पन्नकरै। जो कदाचित् तासुखाकार वृत्तिकूं करैगा तौ तिस असंप्रज्ञात समाधिकाही भंग होवैगा। यह वार्त्ता पूर्वही कथन करि आयेहैं। किंवा प्रज्ञाकरिकै जो सुख प्रतीत होवै है सो सुख अविद्याकरिकै कल्पित होणेतैं मिथ्याही है याप्रकारकी भावनाकरिकै सो योगी पुरुष सर्व सुखोंविषे निःसंग होवै अर्थात् ता सुखकी इच्छातैं रहित होवैहै । अथवा (निःसंगः प्रज्ञया भवेत्) इस वचनका यह दूसरा अर्थ करणा। सविकल्प सुखाकारवृत्तिरूप जो प्रज्ञा है तिस प्रज्ञाके साथि सो योगी पुरुष संगका परित्याग करै । और सर्ववृत्तियोंतैं रहित चित्तकरिकै जो स्वरूपसुखका अनुभव होवैहै ता अनुभवका तौ सो योगी पुरुष कदाचित्भी परित्याग करै नहीं । जिस कारणतैं वृत्तितै विना स्वभावतैंही प्राप्त जो स्वरूपसुखका अनुभव है सो निवृत्त करणेकूं अशक्य है । इसप्रकार सर्व ओरतैं निवृत्त करिकै प्रत्ययके बलतैं निश्चल कऱ्या जो चित्त है सो चित्त जो कदाचित् आपणे चंचल स्वभावते विषयोंकी अभिमुखताकरिकै बाह्य गमन करै तौ भी सो योगीपुरुष

निरोधके प्रयत्नतैं तिस चित्तकूं पुनः ता सम ब्रह्मविषे एकताकूं प्राप्त करै इति ४ ता सम ब्रह्मविषे प्राप्त हुआ सो चित्त किसप्रकारका होवै है ऐसी जिज्ञासाके हुए ताका स्वरूप कथन करैं हैं (यदा न लीयते इति) जिस कालविषे सो चित्त लयकूंभी नहीं प्राप्त होवैहै। तथा स्तब्धभावरूप कषायकूंभी नहीं प्राप्त होवैहै । तथा शब्दादिक विषयाकारवृत्तिरूप विक्षेपकूंभी नही प्राप्त होवैहै । तथा ता समाधिके सुखकूंभी वृत्तिकरिकै नहीं आस्वादन करैहै। यद्यपि श्लोकविषे लय विक्षेप या दोनोंकाही कथन कऱ्याहै । कषाय सुखास्वाद या दोनोंका कथन कऱ्या नहीं तथापि लय कषाय यह दोनों दोष तमोगुणके कार्यतैं होवैं हैं । यातैं तामसत्व धर्मकी समानताकूं लेके सो लय शब्द ता कषायकाभी उपलक्षक है । इसप्रकार विक्षेप सुखास्वाद यह दोनों दोष रजोगुणके कार्य हैं । यातैं राजसत्व धर्मकी समानताकूं लैके सो विक्षेप शब्द ता सुखास्वादकाभी उपलक्षक है। इसी सुखास्वादकूं योगशास्त्रविषे रसास्वादभी कहैं हैं । और पूर्व जो तिन च्यारों दोषोंकूं पृथक्पृथक् कथन कऱ्याथा सो तिन लयादिक दोषोंकी निवृत्ति करणेवासतै पृथक्पृथक् प्रयत्नके करणे वासतै कथन कऱ्याथा इसप्रकार लय कषाय या दोनों दोषोंतैं रहित तथा विक्षेप सुखास्वाद या दोनों दोषोंतैं रहित जो चित्त अनिंगनहै । इहां इंगननाम चलनकाहै जैसे वायुविषे स्थित दीपक लयकी अभिमुखतारूप इंगनवाला होवैहै तैसे लयकी अभिमुखतारूप जो इंगन है तिस इंगनतै रहित जो चित्त है सो अनिंगन कह्या जावैहै । अर्थात् वायुतै रहित देशविषे स्थित दीपककी न्याई जो चित्त ता चलनरूप इंगनतैं रहित है । तथा जो चित्त अनाभास है अर्थात् जो चित्त किसीभी विषयाकारकरिकै नहीं प्रतीत होवैहै। इसप्रकार जिस कालविषे सो चित्त लय कषाय विक्षेप सुखास्वाद या च्यारों दोषोंतैं रहित होवैहै तिस कालविषे सो चित्त तिस समब्रह्मकूं प्राप्त होवैहै इति ५ इसीप्रकारका योग साक्षात् श्रुतिनैंभी कथन कऱ्याहै । तहां श्रुति–(यदा पंचावतिष्ठंते

ज्ञानानि मनसा सह । बुद्धिश्च न विचेष्टेत तामाहुः परमां गतिम् । तां योगमिति मन्यंते स्थिरामिंद्रियधारणाम् । अप्रमत्तस्तदा भवति योगोहि प्रभावप्ययौ । इति) अर्थ यह—जिस कालविषे मनसहित पंच ज्ञान इंद्रिय विरोधकूं प्राप्त होवैंहैं तथा बुद्धिभी किसी चेष्टाकूं करती नहीं तिस स्थिर इंद्रियोंकी धारणाकूं योगशास्त्रवेत्ता पुरुष परमगति कहै है तथा योग कहैंहैं । तिस कालविषे विनाही प्रयत्नतैं सो चित्त ब्रह्माकारताकूं प्राप्त होवै है इति । इसी मूलभूत श्रुतिकूं अंगीकार करिकै पतंजलि भगवान्नै (योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः) यह सूत्र कथन कऱ्या है । यातै (ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ।) यह जो वचन श्रीभगवान्नै कथन कऱ्याहै सो श्रुतिसूत्रके अनुसार होणेतैं यथार्थ है ॥ २६ ॥

इस प्रकार योगाभ्यासके बलतैं तिस योगी पुरुषका मन प्रत्यक् आत्माविषेही निरोधकूं प्राप्त होवै है । तिसतैं ता योगी पुरुषकूं जो फल प्राप्त होवै है ताकूं अब श्रीभगवान् कथन करैंहैं—

प्रशांतमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ॥
उपैति शांतरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥ २७ ॥

(पदच्छेदः) प्रशांतमनसम् । हि एनम् । योगिनम् । सुखम् । उत्तमम् । उपैति । शांतरजसम् । ब्रह्मभूतम् । अकल्मषम् ॥ २७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! प्रशांत है मन जिसका तथा निवृत्त हुआ है रजोगुण जिसका तथा निवृत्त हुआहै तमोगुण जिसका तथा ब्रह्मरूप ऐसे इस योगी पुरुषकूं निरतिशय सुख प्राप्त होवैंहै ॥ २७ ॥

भा० टी०—प्रशांत हुआ है मन जिसका अर्थात् सर्व वृत्तियोंतैं रहितता करिकै निरुद्ध हुआ है संस्कारमात्र अवशेष मन जिसका ताका नाम प्रशांतमनस है । इसीकूंही शास्त्रविषे निर्मनस्कभी कहैं हैं । अब ता योगी पुरुषकी निर्मनस्कताविषे हेतुगर्भित दो विशेषण कथन करै है (शांतरजसम् अकल्मषमिति) शांत हुआ है क्या निवृत्त हुआ है

विक्षेपका हेतु रजोगुण जिसका ताका नाम शांतरजस है अर्थात् जो योगी पुरुष विक्षेप दोषतैं रहित है तथा नहीं विद्यमान है कल्मष क्या लयका हेतु तमोगुण जिसविषे ताका नाम अकल्मष है अर्थात् जो योगी पुरुष लयदोषतैं रहित है । इहां (शांतरजसम्) इस पदकूंही जो तमोगुणका उपलक्षण अंगीकार करिये तौ (अकल्मषम्) इस पदका यह अर्थ करणा । संसारका हेतुभूत जो धर्मअधर्मादिरूप कल्मष है ता कल्मषतैं रहित जो योगी पुरुष है ताका नाम अकल्मष है तथा जो योगी पुरुष ब्रह्मभूत है अर्थात् यह सर्वजगत् ब्रह्मरूपही है याप्रकारके निश्चयकरिकै ता समब्रह्मकूं प्राप्त हुआ जो जीवन्मुक्त पुरुष है इसप्रकारके योगी पुरुषकूं निरतिशयसुख प्राप्त होवै है । तहां मन तथा मनकी वृत्ति या दोनोंके अभाव हुएभी सुषुप्तिविषे स्वरूप सुखका अनुभव प्रसिद्धही है । ता प्रसिद्धिके बोधन करणेवासतैं मूलश्लोकविषेही यह शब्द कथन कऱ्या है सो यह वार्त्ता (सुखमात्यंतिकं यत्तत्) इस श्लोकविषे पूर्व कथन करि आये हैं ॥ २७ ॥

अब तिस योगी पुरुषके कथनकरे हुए सुखकूं स्पष्टकरिकै निरूपण करैं हैं–

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ॥
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यंतं सुखमश्नुते ॥ २८ ॥

(पदच्छेदः) युंजन् । एवम् । सदा । आत्मानम् । योगी । विगतकल्मषः । सुखेन । ब्रह्मसंस्पर्शम् । अत्यंतम् । सुखम् । अश्नुते ॥ २८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इस प्रकार सर्वदा आपणे मनकूं आत्माविषे समाहित करताहुआ धर्मअधर्मतैं रहित सो योगी पुरुष अनायासतैं ब्रह्मस्वरूप अपरिच्छिन्न सुखकूंही अनुभव करै है ॥ २८ ॥

भा०टी०—(मनसैवेंद्रियग्रामं विनियम्य समंततः) इत्यादिक वचनोंकरिकै पूर्व कथन कऱ्या जो क्रम है तिस पूर्व उक्त क्रमकरिकै जो योगी पुरुष आपणे मनकूं सर्वदा प्रत्यक् आत्माविषे समाहित करता हुआ स्थित है तथा जो योगी पुरुष विगतकल्मष है अर्थात् संसारकी प्राप्ति करणेहारे जे धर्म अधर्मरूप कल्मष हैं ते कल्मष निवृत्त होगये हैं जिसके ऐसा योगी पुरुष ईश्वरके प्रणिधानतैं सर्व अंतरायोंकी निवृत्ति करिकै अनायासतैंही सुखकूं अनुभव करै है। अब जन्यसुखकी व्यावृत्ति करणेवासतै ता सुखके दो विशेषण कथन करैं हैं। (ब्रह्मसंस्पर्शम्, अत्यंतमिति) विषयके स्पर्शतैं रहित ब्रह्मका तादात्म्यरूप संस्पर्श है जिस सुखविषे ताका नाम ब्रह्मसंस्पर्श है। अर्थात् जो सुख ब्रह्मरूपही है तथा जो सुख अत्यंत ह इहां देशकालवस्तुपरिच्छेदका नाम अंत है ता परिच्छेदरूप अंतकूं जो सुख अतिक्रमण करिकै वर्तै है ता सुखका नाम अत्यंत है। इसी अपरिच्छिन्नब्रह्मरूप सुखकूं (यो वै भूमा तत्सुखम्) यह श्रुति प्रतिपादन करै है। ऐसे निरतिशय• ब्रह्मानंदकूं सो योगी पुरुष सर्व ओरतैं निर्वृत्तिक चित्तकरिकै लयविक्षेपतै विलक्षण अनुभव करैं हैं। तहां विक्षेपके विद्यमान हुए वृत्ति अवश्य होवै है और लयके हुए मनका स्वरूपतैंही असत्त्व होवै हैं। यातै ता सुखके अनुभवकूं लयविक्षेपतैं विलक्षण कह्या है और सर्ववृत्तियोंतैं रहित सूक्ष्म मनकरिकै सुखका अनुभव केवल असंप्रज्ञात समाधिविषेही होवै है अन्यत्र होवै नहीं। इहां (सुखेन) या शब्दकरिकै प्रतिबंधक अंतरायोंकी निवृत्ति कथन करी। ते अंतराय योगसूत्रोंविषे पतंजलि भगवान्नैं कथन करें हैं। तहां सूत्र—(व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रांतिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥) अर्थ यह—व्याधि १ स्त्यान २ संशय ३ प्रमाद ४ आलस्य ५ अविरति ६ भ्रांतिदर्शन ७ अलब्धभूमिकत्व ८ अनवस्थितत्व ९ यह नवप्रकारके चित्तविक्षेप अंतराय कहे जावैं हैं। तहां जे चित्तकूं योगतैं विक्षिप्त करैं हैं अर्थात् ता योगतैं बहिर्मुख करैं

हैं ते चित्तविक्षेप कहे जावैं हैं। ते ही चित्तविक्षेप योगके विरोधी होणेतै अंतराय कहे जावै हैं। तिन्होंविषेभी संशय भ्रांतिदर्शन यह दोनों तौ ता वृत्तिनिरोधरूप योगके साक्षात्‌ही विरोधी होवैं है। और व्याधि आदिक दूसरे निमित्त तौ सर्वदा वृत्तिके सहचारित होणेतैं ता वृत्तिकेही विरोधी होवैं है। तहां वातपित्तादिक धातुवोंकी विषमता है निमित्त जिन्होंविषे ऐसे जे ज्वरादिक विकार हैं तिन्होंका नाम व्याधि है ॥ १ ॥ और अकर्मण्यताका नाम स्त्यान है अर्थात् योगशास्त्रवेत्ता पुरुषनैं सिखाए हुएभी शिष्यविषे जो आसनादिक कर्मोंकी अयोग्यता है ताका नाम स्त्यान है ॥ २ ॥ और यह योग हमारेकूं सिद्ध करणे योग्य है अथवा नहीं इस प्रकार भाव अभावरूप दो कोटियोंकूं विषय करणेहारा जो ज्ञान है ताका नाम संशय है। यद्यपि तत् अभाववाले विषे तत्बुद्धिरूप ता विपर्ययकी न्याईं संशय विषेभी है। यातैं सो संशय विपर्ययके अंतर्भूतही होइसकै है। तथापि संशयविषे तौ दो कोटियोंका भान होवै है। और विपर्ययविषे एकही कोटिका भान होवै है। इतनी अवांतरविशेषताकूं अंगीकारकरिकै इहां संशयकूं विपर्ययतैं भिन्न कथन कऱ्या है इति ॥ ३ ॥ और समाधिके साधनोंके अनुष्ठान करणेकी सामर्थ्यताके विद्यमान हुएभी जो तिन साधनोंका अनुष्ठान नहीं करणा है ताका नाम प्रमाद है अर्थात् दूसरे विषयोंविषे प्रवृत्तिपणेकरिकै जो योगसाधनोंविषे उदासीनता है ताका नाम प्रमाद है ॥ ४ ॥ और तिस उदासीनताके निवृत्त हुएभी कफादिक धातुवोंकी वृद्धिकरिकै अथवा तमोगुणकी वृद्धिकरिकै जो शरीरविषे तथा चित्तविषे गुरुत्व है ताका नाम आलस्य है, सो आलस्य व्याधिरूपकरिकै अप्रसिद्ध हुआभी योगविषे प्रवृत्तिका विरोधीही है ॥ ५ ॥ और किसी विशेषविषयविषे जो चित्तकी निरंतर अभिलाषा है ताका नाम अविरति है ॥ ६ ॥ और योगके असाधनोंविषेभी जा योगसाधनत्वबुद्धि है तथा योगके साधनोंविषेभी जा योगसाधनत्वबुद्धि है ताका नाम भ्रांतिदर्शन है ॥ ७ ॥ और समाधिकी जा एका-

प्तता भूमिका है ता भूमिकाका जो अलाभ है अर्थात् क्षिप्त मूढ विक्षिप्तरूपताकी जा प्राप्ति है ताका नाम अलब्धभूमिकत्व है ॥ ८ ॥ और ता समाधिकी भूमिकाके प्राप्तहुएभी आपणे प्रयत्नकी शिथिलताकरिकै जो चित्तकी तिस भूमिकाविषे नहीं स्थिति है ताका नाम अनवस्थितत्व है ॥ ९ ॥ यह नवप्रकारके चित्तविक्षेप योगमल कहेजावैं हैं तथा योगप्रतिपक्ष कहेजावैं हैं तथा योगअंतराय कहेजावैंहैं इति । किंवा इसतैं अन्य दूसरेभी विघ्नरूप अंतराय पतंजलि भगवान्नैं कथन करैं हैं। तहां सूत्र । (दुःखदौर्मनस्यांगमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः ॥) अर्थ यह—दुःख १ दौर्मनस्य २ अंगमेजयत्व ३ श्वास ४ प्रश्वास ५ यह पंच अंतराय समाहित चित्तकूं होवैं नहीं किंतु विक्षिप्त चित्तकूंही होवैं हैं। यातैं यह पांचों विक्षेपसहभुवः अंतराय कहेजावैं हैं । तहां चित्तका बाधनारूप जो राजस परिणाम है ताका नाम दुःख है । सो दुःख आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक इस भेदकरिकै तीन प्रकारका होवै है तहां ज्वरादिक व्याधियोंकरिकै उत्पन्नभया जो शारीर दुःख है तथा कामक्रोधादिक आधियोंकरिकै उत्पन्नभया जो मानस दुःख है ते दोनों प्रकारके दुःख आध्यात्मिक दुःख कहेजावैं हैं । और व्याघ्र सर्प चोर आदिकोंकरिकै जन्य जो दुःख है सो दुःख आधिभौतिक दुःख कह्याजावै है । और ग्रहपीडादिकोंकरिकै जन्य जो दुःख है सो आधिदैविक दुःख कह्याजावै है । सो यह त्रिविध दुःख द्वेषरूप विपर्ययका हेतु होणेतैं समाधिका विरोधीही है १ और इच्छाविघातादिक बलवान् दुःखके अनुभवकरिकै जन्य जो चित्तका तामसपरिणामविशेष है ताकूं क्षोभ कहैं हैं तथा स्तब्धीभावभी कहैं हैं ताका नाम दौर्मनस्य है सो दौर्मनस्य कषायरूप होणेतैं लयकी न्याई समाधिका विरोधीही है २ और हस्तपादादिक अंगोंका जो कंपन है ताकूं अंगमेजयत्व कहैं हैं सो अंगमेजयत्व आसनके स्थिरताका विरोधी होवै है ३ और प्राणकरिकै बाह्य वायुका जो अंतरप्रवेश है ताका नाम श्वास है सो श्वास समाधिके अंगभूत रेचकका

विरोधी होवै है ४ और प्राणकरिकै भीतरले वायुका जो बाह्य निकासणा है ताका नाम प्रश्वास है सो प्रश्वास समाधिके अंगभूत पूरकका विरोधी होवै है इति ५ यह पूर्व उक्त दो सूत्रोंकरिकै कथन करे जे चतुर्दश अंतराय हैं ते विघ्नरूप अंतराय अभ्यासवैराग्यकरिकै निवृत्त होवैं हैं। अथवा ईश्वरप्रणिधानकरिकै निवृत्त होवैं हैं। तहां योगसूत्रोंविषे पतंजलि भगवान् (तीव्रसंवेगानामासन्नः) इस सूत्रविषे तीव्र वैराग्यवान् पुरुषोंकूं अत्यंत समीप असंप्रज्ञात समाधिका लाभ कथन करिकै (ईश्वरप्रणिधानाद्वा) इस सूत्रविषे पक्षांतरकूं कहिकै तिस प्रणिधेय ईश्वरके स्वरूपकूं (क्लेशकर्मविपाकाशयैरपामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः। तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्। स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्) इन तीन सूत्रोंतैं प्रतिपादन करिकै ता ईश्वरके प्रणिधानकूं (तस्य वाचकः प्रणवः। तज्जपस्तदर्थभावनम्) या दो सूत्रोंकरिकै कथन करता भया है। तिसतैं अनंतर सो पतंजलि भगवान् (इतः प्रत्यक्चेतनाधिगमोप्यंतरायाभावश्च) यह सूत्र कथन करताभयाहै ॥ अब (ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥ १ ॥ क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ॥ २ ॥ तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ॥ ३ ॥ स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ ४ ॥ तस्य वाचकः प्रणवः ॥ ५ ॥ तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥ ६ ॥ ततःप्रत्यक्चेतनाधिगमोप्यंतरायाभावश्च ॥ ७ ॥) इन सप्त सूत्रोंका यथाक्रमतैं अर्थ निरूपण करैं हैं। ईश्वरविषे जो कायिक वाचिक मानस यह तीन प्रकारकी भक्ति विशेष है ताका नाम ईश्वरप्रणिधान है। तिस ईश्वरप्रणिधानतैं इस योगी पुरुषकूं अत्यंत समीप असंप्रज्ञात समाधिका लाभ होवैहै। तहां सूत्रके अंतविषे स्थित जो वा यह शब्द है सो वा शब्द पूर्व उक्त तीव्रवैराग्यरूप उपायके साथि इस ईश्वरप्रणिधानरूप उपायका विकल्प बोधन करणेवासतैंहै अर्थात् जैसे तीव्रवैराग्यतैं ता समाधिका लाभ होवै है तैसे ईश्वरप्रणिधानतैंभी ता समाधिका लाभ होवैहै। जिसकारणतैं ता भक्तिकरिकै प्रसन्न हुआ ईश्वर यह इष्टवस्तु इस भक्तजनकूं प्राप्त होवो या प्रकारका अनुग्रह अवश्य-

करिकै करैहै इति १ । अब जिस ईश्वरके प्रणिधानतैं अंतरायकी निवृत्तिपूर्वक ता समाधिका लाभ होवैहै ता ईश्वरके स्वरूपकूं तीन सूत्रोंकरिकै वर्णन करै हैं । क्लेश कर्म विपाक आशय या च्यारोंकरिकै तीन कालविषे असंबद्ध जो पुरुषविशेष है ताका नाम ईश्वरहै । तहां अविद्या अस्मिता राग द्वेष अभिनिवेश या पांचोंका नाम क्लेश है इन क्लेशोंका स्वरूप पूर्व पंचम अध्यायविषे निरूपण करिआयेहैं । और विहितप्रतिषिद्धक्रियातैं जन्य जो धर्म अधर्म है ताका नाम कर्म है । और ता धर्म अधर्मका जो फल है ताका नाम विपाकहै । और ता फलभोगके अनुकूल जे संस्कार हैं तिन्होंका नाम आशय है जैसे इसपुरुषकूं जबी पापकर्मके वशातैं उष्ट्रका जन्म होवैहै तबी वह कंटक भक्षण करणेके संस्कार उद्भव होवैहैं । इस प्रकार यह जीव जिसजिस जातिवाले शरीरकूं प्राप्त होवैहै तिसतिस जातिवाले शरीरके भोगोंविषे जो प्रवृत्त होवैहै सो पूर्वले संस्कारोंके वशातैंही प्रवृत्त होवैहै । तिन संस्कारोंके उद्भवतैं विना तिस तिस शरीरका जीव संभवै नहीं । ऐसे चित्तविषे स्थित क्लेशादिकोंकरिकै यह संसारी पुरुषही संबद्ध होवैहै । ते क्लेशादिक तीन कालविषे जिसमैं हैं नहीं ऐसा पुरुषविशेष ईश्वर कह्या जावैहै । इहां सूत्रविषे स्थित जो विशेष यह शब्द है सो तीन कालविषे असंबंधरूप अर्थ वाचक है ऐसे विशेषपदकरिकै ता ईश्वरविषे मुक्तपुरुषोंतैंभी व्यावृत्ति कथन करी । तिन मुक्तपुरुषोंविषे यद्यपि तिस कालविषे सो क्लेशादिरूप बंध नहीं है तथापि तत्त्वसाक्षात्कारतैं पूर्वकालविषे सो बंध तिन मुक्त पुरुषोंविषेभी विद्यमान था । यातैं तीन कालविषे तिन क्लेशादिकोंके संबंधका अभाव तिन मुक्त पुरुषोंविषे संभवता नहीं, किंतु (यः सर्वज्ञः सर्ववित्) इत्यादिक श्रुतियोंकरिकै प्रतिपादित जो सर्वज्ञ ईश्वर है ता ईश्वरविषेही सो संभवै है इति २ । अब ता ईश्वरकी सर्वज्ञताविषे अनुमानप्रमाणका कथन करैहैं । तहां अस्मदादिक जीवोंका जो ज्ञान है सो ज्ञान सातिशय होणेतैं निरतिशय ज्ञानकरिकै व्याप्त

है। जो जो पदार्थ सातिशय होवैहै सो सो पदार्थ आपणे समानजातीय निरतिशय पदार्थकरिके व्याप्तही होवै है जैसे घटका परिमाण सातिशय है यातै परिमाणत्वरूपवै आपणे समानजातीय विभुपरिमाणकरिके व्याप्त है। ऐसा निरतिशय ज्ञान केवल ईश्वरविषेही रहैहै अन्यकिसीविषे रहे नहीं। और सो निरतिशय ज्ञानही सर्वज्ञताका ज्ञापक होवैहै। अर्थात् जहां निरतिशय ज्ञान होवैहै तहां सर्वज्ञताही जानीजावैहै। यातैं निरतिशयज्ञानवाला होणेतैं सो ईश्वर सर्वज्ञ है इति ३। अब ता ईश्वरविषे ब्रह्मादिक देवतावोंतैं विशेषता कथन करैहैं। सृष्टिके आदिकालविषे उत्पन्नभये जे ब्रह्मादिक देवता हैं ते सर्व कालपरिच्छेदवाले हैं। ऐसे कालपरिच्छिन्न ब्रह्मादिकोंकाभी सो ईश्वर गुरुरूप है काहेतै सो ईश्वर कालकारिकै अपरिच्छिन्न है अर्थात् आदिअंततैं रहित है। तहां श्रुति-(यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ॥) अर्थ यह-जो ईश्वर सृष्टिके आदिकालविषे हिरण्यगर्भरूप ब्रह्माकूं उत्पन्न करताभया। तथा जो ईश्वर तिस ब्रह्माके ताई सर्व वेद देताभया इति। इत्यादिक श्रुतिवचनोंतैं तिस ईश्वरविषे ब्रह्मादिकोंका गुरुपणा सिद्ध होवैहै इति ४। तहां पूर्व तीन सूत्रोंकरिकै कथन कर्या जो ईश्वर ता ईश्वरके प्रणिधानकूं अब दो सूत्रोंकरिकै कथन करैहैं। तिन पूर्व उक्त ईश्वरका वाचक ॐ काररूप प्रणव है इति ५। तिस ईश्वरके वाचक प्रणवका जो निरंतर जप है तथा ता प्रणवके अर्थरूप ईश्वरका जो ध्यान है ताका नाम ईश्वरप्रणिधान है इति ६। और तिस प्रणवके जपरूप तथा ता प्रणवके अर्थका ध्यानरूप ईश्वरप्रणिधानतैं तिस योगी पुरुषकूं प्रत्यक्चेतन आत्माका साक्षात्कार होवैहै। तथा पूर्व (व्याधि स्त्यान) इत्यादिक दो सूत्रोंकरिकै कथन करेहुए चतुर्दश विघ्नरूप अंतरायोंकाभी अभाव होवैहै इति ७। जैसे ता ईश्वरप्रणिधानतैं तिन अंतरायोंकी निवृत्ति होवैहै वैसे अभ्यास वैराग्यकरिकैभी तिन अंतरायोंकी निवृत्ति होवैहै। तहां अभ्यासवैराग्य करिके तिन अंतरायोंकी निवृत्ति करणेविषे ता

अभ्यासकी दृढता करणेवासतै पतंजलि भगवान्नैं यह दो सूत्र कथन करे हैं । तहां सूत्र—(तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ॥ १ ॥ मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ॥ २ ॥ अर्थ यह—पूर्व कथन करे हुए विघ्नरूप अंतरायोंकी निवृत्ति करणेवासतै सो योगी पुरुष किसी एक इष्टतत्त्वविषे चित्तका पुनःपुनःनिवेशरूप अभ्यासकूं करै इति १ इहां सुहृदताका नाम मैत्री है। और कृपाका नाम करुणा है। और हर्षका नाम मुदिता है । और उदासीनताका नाम उपेक्षा है। और सुख दुःख पुण्य अपुण्य यह च्यारि शब्द यथाक्रमतैं सुखवालेका तथा दुःखवालेका तथा पुण्यवालेका तथा अपुण्यवालेका वाचक हैं । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । सुखभोगकरिकै संपन्न जे प्राणी हैं तिन सर्वप्राणियोंविषे इन हमारे मित्रोंकूं जो यह सुखप्राप्त भया है सो सर्वदा बनारहै या प्रकारकी मैत्रीकूं सो अधिकारी पुरुष करै तिन सुखी पुरुषोंकूं देखिकै यह सुख इन्होंकूं क्यूं प्राप्त भया है या प्रकारकी ईर्षाकूं सो अधिकारी पुरुष करै नहीं । और इस लोकविषे जे दुःखी प्राणी हैं तिन दुःखीप्राणियोंविषे सो अधिकारी पुरुष किसी प्रकार करिकै इन्होंके दुःखकी निवृत्ति होवै तौ श्रेष्ठ है या प्रकारकी कृपाकूंही करै। तिन दुःखी प्राणियोंविषे उपेक्षाबुद्धि करै नहीं तथा ईर्षाकूंभी करै नहीं। और जे पुरुष पुण्यवान् हैं तिन पुण्यवानोंविषे तौ तिन्होंके पुण्यकी स्तुति कथनपूर्वक हर्षकूंही करै तिन पुण्यवानोंविषे द्वेषकूंभी नहीं करै तथा उपेक्षाकूंभी नहीं करै। और जे पापात्मा दुष्ट पुरुष हैं तिन्होंविषे तौ उदासीनतारूप उपेक्षाकूंही करै तिन पापियोंविषे हर्षकूं तथा द्वेषकूं करै नहीं । इस प्रकार मैत्री करुणा मुदिता उपेक्षा या च्यारोंके सेवन करणेहारे पुरुषविषे एक शुक्ल धर्म उत्पन्न होवै है। तिस धर्मविशेषके प्रभावतैं रागद्वेषादिक मलतैं रहित प्रसन्नचित्त हुआ एकाग्रताके योग्य होवै है इति २ । इहां मैत्रीआदिक च्यारि धर्म दूसरे दैवीसंपतरूप धर्मोंकेभी उपलक्षण हैं ते दूसरे धर्म

(अभयं सत्त्वसंशुद्धिः) इत्यादिक वचनकरिकै तथा (अमानित्वमदंभित्वम्) इत्यादिक वचनकरिकै श्रीभगवान् आपही आगे कथन करैंगे। ते सर्व धर्म शुभवासनारूप होणेतैं मलिनवासनाके निवर्त्तकही हैं। यातैं सर्व पुरुषार्थके प्रतिबंधक होणेतैं परमशत्रुरूप जे रागद्वेषादिक है ते रागद्वेषादिक इस अधिकारी पुरुषनै महान् प्रयत्न करिकैभी निवृत्त करणे। और पतंजलि भगवानूनैं योगशास्त्रविषे इस चित्तके प्रसादनवास्तै जैसे मैत्री करुणादिक उपाय कथन करे है। तैसे प्राणायामादिक दूसरे उपायभी कथनकरैं हैं। सो ऐसा चित्तका प्रसादन भगवत्के अनुग्रह करिकै जिस पुरुषकूं उत्पन्न भया है तिसी भगवत्अनुगृहीत पुरुषके प्रतिही (सुखेन) यह वचन भगवानूनैं कथन कऱ्या है। ता भगवत् अनुग्रहणतैं विना मनका निग्रह होइसकता नहीं ॥ २८ ॥

इस प्रकार निरोधसमाधिकरिकै त्वं पदके लक्ष्य अर्थरूप तथा तत्पदके लक्ष्य अर्थरूप शुद्धचेतनके साक्षात्कार हुएतैं अनन्तर ता लक्ष्यचेतनके एकताकूं विषय करणेहारी तथा तत्त्वमसि इत्यादिक वेदांतवाक्यकरिकै जन्य निर्विकल्पक साक्षात्काररूप अंतःकरणकी वृत्ति उत्पन्न होवै है। जिस वृत्तिकूं वेदवेत्तापुरुष ब्रह्मविद्या इस नामकरिकै कथन करैं हैं। तिस तत्त्वसाक्षात्काररूप ब्रह्मविद्यातैं सर्व अविद्याकी तथा ताके कार्य प्रपंचकी निवृत्ति करिकै यह अधिकारी पुरुष अपरिच्छिन्न ब्रह्मरूप सुखकूं अनुभव करै है। इस सर्व अर्थकूं अब तीन श्लोकोंकरिकै श्रीभगवान् प्रतिपादन करैं हैं। तहां इस प्रथम श्लोककरिकै प्रथम त्वंपदके लक्ष्य अर्थका निरूपण करैं हैं-

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ॥
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ २९ ॥

(पदच्छेदः) सर्वभूतस्थम् । आत्मानम् । सर्वभूतानि । च । आत्मनि । ईक्षते । योगयुक्तात्मा । सर्वत्र । समदर्शनः ॥ २९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! योगयुक्त आत्मा सर्वप्रपंचविषे समबुद्धिवाला हुआ सर्वभूतोंविषे स्थित आत्माकूं तथा आत्माविषे सर्वभूतोंकूं देखै हैं ॥ २९ ॥

भा० टी०—स्थावरजंगमशरीररूप जितनेक भूत हैं तिन सर्व भूतोंविषे भोक्तारूपकरिकै स्थितहुआ जो एक अद्वितीय विभु सच्चिदानंदरूप प्रत्यक्साक्षी आत्मा है तिस प्रत्यक् साक्षी आत्माकूं अनृत जड परिच्छिन्न दुःखरूप साक्ष्य पदार्थोंतैं पृथक् करिकै साक्षात्कार करै है। तथा तिस प्रत्यक् साक्षी आत्माविषे आध्यासिक संबंधकरिकै स्थित जे मिथ्याभूत परिच्छिन्न जड दुःखरूप सर्वभूत हैं तिन साक्ष्यरूप सर्वभूतोंकूं तिस प्रत्यक्साक्षी आत्माविषे कल्पितरूपकरिकै साक्षात्कार करै है। कौन पुरुष तिन्होंकूं साक्षात्कार करै है ऐसी जिज्ञासाके हुए कहै हैं (योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः इति) तहां वस्तुके विचारकी परमकुशलतारूप योग करिकै युक्तहुआ है क्या प्रसादकूं प्राप्त हुआ है आत्मा क्या अंतःकरण जिसका ताका नाम योगयुक्तात्मा है। तथा ता योगजन्य ऋतंभर नामा प्रत्यक्ष करिकै एकही कालविषे सर्व सूक्ष्म वस्तुवोंकूं तथा व्यवहित वस्तुवोंकूं तथा विप्रकृष्ट वस्तुओंकूं तुल्यही देखै है। इस प्रकारतैं सर्व वस्तुवोंविषे समान है दर्शन जिसकूं ताका नाम समदर्शन है। ऐसा समदर्शन हुआ सो योगयुक्त आत्मा प्रत्यक्आत्माकूं तथा ताकेविषे कल्पित अनात्मप्रपंचकूं पूर्व उक्त रीतिसैं यथावत् जानैहै, यह वार्त्ता युक्त है इति । अथवा इस श्लोकका यह दूसरा अर्थ करणा। जो पुरुष योगयुक्तात्मा है तथा जो पुरुष सर्वत्र समदर्शन है सो पुरुषही इस प्रत्यक्साक्षी आत्माकूं साक्षात्कार करैहै । इतने कहणेकरिकै योगी पुरुष तथा समदर्शी पुरुष दोनोंही आत्मसाक्षात्कारके अधिकारी कथन करे । तात्पर्य यह—जैसे चित्तकी वृत्तिका निरोधरूप योग साक्षी आत्माके साक्षात्कारका हेतु है तैसे जडप्रपंचका विवेककरिकै सर्वत्र अनुस्यूत चैतन्य आत्माका ता जडप्रपंचतैं पृथक्करणारूप विचारभी ता साक्षी आत्माके साक्षात्कारका

हेतु है वा आत्मसाक्षात्कारकी प्राप्तिविषे केवल योगही अवश्य अपेक्षित नहीं है । इसी अभिप्रायकूं लेकै श्रीवसिष्ठ भगवान्नैं रामचंद्रके प्रति यह वचन कह्याहै । तहां श्लोक–(द्वौ क्रमौ चित्तनाशस्य योगो ज्ञानं च राघव ॥ योगो वृत्तिनिरोधो हि ज्ञानं सम्यगवेक्षणम् ॥ १ ॥ असाध्यः कस्यचियोगः कस्यचित्तत्वनिश्चयः ॥ प्रकारौ द्वौ ततो देवो जगाद परमः शिवः ॥ २ ॥) अर्थ यह– हे रामचंद्र ! साक्षी आत्माका उपाधिभूत जो चित्तहै ता चित्तकूं तिस साक्षी आत्मातैं पृथक करिकै जो तिस साक्षी आत्माका दर्शन है यहही तिस चित्तका नाश है। ऐसे चित्तनाशके दो उपाय हैं एक तौ योग उपाय है दूसरा ज्ञान उपाय है। तहां सर्व वृत्तियोंका निरोधरूप जो असंप्रज्ञातसमाधि है ताका नाम योग है । ता असंप्रज्ञात-समाधिकी प्राप्ति संप्रज्ञातसमाधिवैं होवैहै । तहां संप्रज्ञातसमाधिविषे तौ एक आत्माकारवृत्तियोंके प्रवाहयुक्त अंतःकरणसत्त्व साक्षीचैतन्यनैं अनुभव करीता है। और असंप्रज्ञातसमाधिविषे तौ सर्ववृत्तियोंके निरो-धयुक्त सो अंतःकरणसत्त्व उपशांत होणेतैं ता साक्षी चैतन्यनैं अनुभव करीता नहीं । इतनीही तिन दोनों समाधियोंविषे विशेषता है इति। और साक्षी आत्माविषे कल्पित यह साक्ष्यप्रपंच मिथ्या होणेतैं तीन कालविषे नहींहै एक साक्षी आत्माहीहै परमार्थ सत्य है याप्रकारके सम्यक् विचारका नाम ज्ञान है १ । तहां किसी अधिकारी पुरुषकूं तौ सो योग कठिन पडैहै विचार सुगम पडै है और किसी अधिकारी पुरुषकूं तौ सो योग सुगम पडै है विचार कठिन पडैहै इसीकारणतै परमात्मा देव शिव तिन दो प्रका-रोंकूं कथन करताभयाहै इति २ । तहां इन दोनों उपायोंविषे प्रथम योगरूप उपायकूं तौ प्रपंचकूं परमार्थ सत्य माननेहारे हैरण्यगर्भादिक पुरुष अंगीकार करैहैं । तिनोंके मतविषे परमार्थसत्य चित्तके अदर्शनविषे साक्षी आत्माके दर्शनविषे चित्तनिरोधतैं अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय है नहीं किंतु केवल सो चित्तका निरोधही वा साक्षी आत्माके दर्शनका उपाय है इति । और श्रीमत् शंकराचार्यके मतकूं अनुसरण करणेहारे जे

प्रपंचकूं मिथ्या मानणेहारे औपनिषद पुरुष हैं ते औपनिषद पुरुष तौ दूसरे विचाररूप उपायकूंही अंगीकार करैं हैं। तिन औपनिषद पुरुषोंकूं तौ अधिष्ठान चेतनके दृढ साक्षात्कार हुएतैं अनंतर तिस अधिष्ठानविषे कल्पित चित्तका तथा दृश्य प्रपंचका अदर्शन अनायासतैंही संभव होइसकै है। ता प्रपंचके अदर्शनविषे तिनोंकूं योगकी अपेक्षा रहै नहीं। इसीकारणतैं श्रीमत् शंकराचार्यनैं किसीभी स्थलविषे ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंके ता योगकी अपेक्षा प्रतिपादन करी नहीं। इसीकारणतैं ते औपनिषद परमहंस संन्यासी ब्रह्मसाक्षात्कारकी प्राप्तिवासतै ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप जाइकै वेदांतवाक्योंके श्रवणमननरूप विचारविषेही प्रवृत्त होवैं हैं, योगविषे प्रवृत्त होते नहीं। काहेतैं तिस योगकरिकै जे चित्तके कामक्रोधादिक दोष निवृत्त करेजावैंहैं ते चित्तके दोष जो कदाचित् ता योगतैं विना अन्य किसी उपायकरिकै नहीं निवृत्त होते तौ सो योगही अवश्य अपेक्षित होवा परन्तु ते चित्तके दोष तौ विचारकरिकैभी निवृत्त होइसकैं हैं। यातैं तिन औपनिषद पुरुषोंकूं ता ब्रह्मसाक्षात्कारकी प्राप्तिवासतै सो योग अवश्य अपेक्षित नहीं है, किंतु सो वेदांतवाक्योंका विचारही अवश्य अपेक्षित है इसीकारणतै तैत्तिरीय उपनिषदविषे वरुणऋषि भृगुपुत्रके प्रति वारंवार विचाररूप तपकाही विधान करताभयाहै ॥ २९ ॥

तहां इस पूर्वश्लोकविषे शुद्ध त्वंपदार्थका निरूपण कऱ्या। अब इस श्लोकविषे शुद्ध तत्पदार्थका निरूपण करैं हैं–

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ॥
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥३०॥

(पदच्छेदः) यः। माम्। पश्यति। सर्वत्र। सर्वम्। च। मयि। पश्यति। तस्य। अहम्। न। प्रणश्यामि। सः। च। मे। न। प्रणश्यति ॥ ३० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! जो योगी पुरुष सर्व प्रपंचविषे मैं परमेश्वरकूं देखैहै तथा तिस सर्व प्रपंचकूं मैं परमेश्वरविषे देखै है तिस योगी पुरुषकूं

मैं[१०] परमेश्वर नहीं परोक्ष होवोंहूं तथा सो योगी पुरुष मै परमेश्वरकूंभी नहीं परोक्ष होवैहै ॥ ३० ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! तत्त्वमसि इसवाक्यविषे स्थित तत्पदका अर्थरूप जो मैं परमेश्वर हूं कैसा हूं सो मैं मायाउपाधिवाला हुआ सर्व प्रपंचका कारणरूप हूं । तथा वास्तवतैं सर्व उपाधियोंतैं रहित हूं । तथा परमार्थसत्य आनंदघन हूं । तथा देशकालवस्तुपरिच्छेदतैं रहित होणेतैं अनंतरूप हूं । तथा सर्व प्रपंचविषे सत्तास्फुरणरूपकरिकै अनुस्यूत हूं । ऐसे परमेश्वरकूं जो योगी पुरुष सर्व प्रपंचविषे व्यापक देखेहै अर्थात् योगजन्य प्रत्यक्ष ज्ञानकरिकै मैं परमेश्वरकूं अपरोक्ष करै है । तथा जो योगी पुरुष इस सर्व प्रपंचकूं मै परमेश्वरविषे देखै है अर्थात् मै परमेश्वर-विषे मायाकरिकै आरोपित जो यह सर्व प्रपंच है तिस प्रपंचकूं मै अधिष्ठान परमेश्वरतै पृथक् मिथ्यारूप करिकैही देखै है । इस प्रकार मैं परमेश्वरके स्वरूपकूं तथा प्रपंचके स्वरूपकूं यथार्थ जानणेहारा जो योगी पुरुष है तिस योगी पुरुषकूं मैं तत्पदार्थरूप परमेश्वर कदाचित्भी परोक्ष होता नहीं । अर्थात् सो ईश्वर हमारेतैं भिन्न है याप्रकारतै ता योगी पुरुषके परोक्षज्ञानका विषय मैं परमेश्वर होता नहीं किंतु तिस योगी पुरुषके योगजन्य अपरोक्षज्ञानका विषयही मैं परमेश्वर होता हूं । यद्यपि तत्पदार्थ ईश्वरविषे जो वाक्यजन्य अपरोक्षज्ञानकी विषयता है सा त्वंपदार्थ जीवके साथि अभेदरूप करिकैही है केवल ईश्वरविषे वाक्यजन्य अपरोक्षज्ञानकी विषयता संभवती नहीं । तथापि योगजन्य अपरोक्षज्ञानकी विषयता केवल ईश्वरविषेभी संभव होइसकैहै । इसप्रकार योगजन्य प्रत्यक्षज्ञानकरिकै मैं परमेश्वरकूं अपरोक्ष करता हुआ सो योगी पुरुष मैं परमेश्वरकूभी परोक्ष होवै नहीं । काहेतैं सो विद्वान् पुरुष मैं परमेश्वरकूं आपणा आत्मारूपही है । तथा अत्यंत प्रिय है यह सर्व वार्त्ता (ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्) इत्यादिक वचनोंकरिकै आगेभी स्पष्ट होवैगी । और आपणा आत्मा किसीकूंभी परोक्ष होता नहीं, किंतु सर्वकूं अपरोक्षही होवै है ।

यातें सो विद्वान् पुरुष सर्वदा हमारे अपरोक्षज्ञानकाही विषय होवै है। यह सर्व वार्त्ता (ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम्) इस गीता-वचनतैंही सिद्ध है और यह वार्त्ता महाभारतविषे युधिष्ठिरके प्रति भगवा-नूनैंभी कथन करी है (अविद्वांस्तु स्वात्मानमपि स तं भगवंतं न पश्यति । अतो भगवान् पश्यन्नपि तं न पश्यति इति ।) अर्थ यह—हे युधिष्ठिर ! आत्मज्ञानतैं रहित जो अविद्वान् पुरुष है सो अविद्वान् पुरुष तौ आपणा आत्मारूपकरिकै विद्यमान हुएभी परमेश्वरकूं देखता नहीं इसकारणतैं सो परमेश्वरभी आपणे सर्वज्ञस्वभावतैं सर्व प्रपंचकूं देखता हुआभी ता अवि-द्वान् पुरुषकूं देखता नहीं, इति । यह वार्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है । तहां श्रुति—(स एनमविदितो न भुनक्ति ।) अर्थ यह—सो परमात्मा देव यद्यपि इस जीवका आत्मारूपहीहै, तथापि अज्ञात हुआ सो पर-मात्मा देव इस जीवकूं जन्ममरणरूप संसारतैं रक्षण करता नहीं । जैसे गृहविषे स्थित हुईभी निधि अज्ञात हुई इस गृही पुरुषके दरिद्रताकूं निवृत्त करिसकै नहीं इति । और विद्वान् पुरुष तौ सर्वदा अत्यंत समीप भगवान्‌के अनुग्रहका पात्र है ॥ ३० ॥

तहां पूर्व दो श्लोकोंकरिकै शुद्ध त्वंपदार्थका तथा शुद्ध तत्पदार्थका निरूपण कऱ्या । अब इस श्लोकविषे तिन शुद्ध तत्त्वंपदार्थोंका अभेदरूप तत्त्वमसि वाक्यका अर्थ निरूपण करैं हैं—

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ॥
सर्वथा वर्त्तमानोपि स योगी मयि वर्त्तते ॥ ३१ ॥

(पदच्छेदः) सर्वभूतस्थितम् । यः । माम् । भजति । एक-त्वम् । आस्थितः । सर्वथा । वर्त्तमानः । अपि । सः । योगी । मयि । वर्त्तते ॥ ३१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो योगी पुरुष सर्व भूतोंविषे स्थित मैं तत्पदार्थकूं आपणे त्वंपदार्थके साथि अभेदकूं निश्चय करताहुआ अप-

रोक्ष करै है सो योगी पुरुप जिसकिस प्रकारतैं व्यवहार करताहुआ भी मैं परमात्माविषेही अभेदरूपकरिकै वर्तै है ॥ ३१ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! सर्व भूतोंविषे अधिष्ठानरूप करिकै स्थित तथा सर्व प्रपंचविषे सत्तास्फुरणरूपकरिकै अनुस्यूत जो सत्तामात्र तत्पदका लक्ष्यअर्थरूप मैं ईश्वरहूं तिस मैं ईश्वरका आपणे त्वंपदके लक्ष्यअर्थरूप प्रत्यक्साक्षीके साथि अभेद निश्चय करताहुआ अर्थात् जैसे घटरूप उपाधिके परित्याग किये हुए घटाकाश महाकाशरूपही है । तैसे अविद्या अंतःकरणादिक उपाधियोंका परित्याग करिकै मैं परमेश्वरका आपणे आत्माके साथि अभेद निश्चय करता हुआ जो अधिकारी पुरुष मैं परमेश्वरकूं भजे है अर्थात् अहं ब्रह्मास्मि इस वेदान्तवाक्य करिकै जन्य साक्षात्कार करिकै जो पुरुप मैं परमेश्वरकूं अपरोक्ष करै है सो अधिकारी पुरुप कार्यसहित अविद्याकी निवृत्ति करिकै जीवन्मुक्त हुआ कृतकृत्यही होवै है तिस जीवन्मुक्त पुरुपकूं बाधितानुवृत्ति करिकै जितनेक कालपर्यंत शरीरादिकोंका दर्शन विद्यमान है तितने काल पर्यंत विलक्षण प्रारब्धकर्मकी प्रबलतातैं सो ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुप याज्ञवल्क्यादिकोंकी न्याईं सर्व कर्मोंका परित्याग करिकै वर्त्तमान हुआ अथवा वसिष्ठजनकादिकोंकी न्याईं अग्निहोत्रादिक विहितकर्मोंके अनुष्ठानकरिकै वर्त्तमान हुआ अथवा दत्तात्रेयादिकोंकी न्याईं प्रतिषिद्ध कर्मोंकरिकै वर्त्तमानहुआ जिसकिसीरूपकरिकै व्यवहारकूं करता हुआ सो ब्रह्मवेत्ता योगी पुरुप मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकार जानता हुआ मैं परमात्माविषेही अभेदरूप करिकै वर्तै है । तिस मेरे परमानन्द स्वरूपतैं सो विद्वान् पुरुप कदाचित्भी प्रच्युत होवै नहीं अर्थात् तिस विद्वान् पुरुपकूं सर्वप्रकारतैं मोक्षके प्रतिबंधककी शंका है नहीं । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करीहै । तहां श्रुति—(तस्य ह न देवाश्च नाभूत्या ईशत आत्मा ह्येषां स भवति ।) अर्थ यह—महान् प्रभाववाले जे इंद्रादिक देवता हैं ते इंद्रादिक देवताभी तिस विद्वान् पुरुपके मोक्षविषे प्रतिबंध करणेमें समर्थ नहीं हैं जिसकारणतैं

सो विद्वान्पुरुष तिन देवताओंका आत्मारूपही है। और आपणे आत्माकी कोईभी हानि करता नहीं। जबी इंद्रादिक देवताभी प्रतिबंध करणेकूं समर्थ नहीं भये तबी अन्य क्षुद्र जीव ताका प्रतिबंध नहीं करै हैं याके विषे क्या कहणाहै इति। यद्यपि निषिद्ध कर्मोंविषे प्रवृत्त करणेहारे जे राग द्वेष हैं ते राग द्वेष तिस ब्रह्मवेत्ता पुरुषविषे हैं नहीं। यातैं तिस विद्वान् पुरुषको निषिद्धकर्मोंविषे प्रवृत्ति संभवती नहीं तथापि ब्रह्मवेत्ता पुरुषकी निषिद्धकर्मोंविषे प्रवृत्तिकूं अंगीकार करिकै आत्मज्ञानकी स्तुति करणेवासतै श्रीभगवान्नैं (सर्वथा वर्त्तमानोपि) यह वचन कथन कऱ्याहै जैसे पूर्व (हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हंति न निबध्यते) यह वचन ज्ञानकी स्तुतिवासतै कथन कऱ्याथा तैसे (सर्वथा वर्त्तमानोपि) यह वचनभी ज्ञानकी स्तुतिवासतैही है। और दत्तात्रेय भगवान्की जो निषिद्ध कर्मविषे प्रवृत्ति हुईहै सो कोई राग द्वेषतैं नहीं हुई, किंतु बहिर्मुखलोकोंके सहवासकी निवृत्ति करणेवासतै सा प्रवृत्ति हुई है। यह सर्व वार्त्ता आत्मपुराणके एकादश अध्यायविषे हम विस्तारतैं निरूपण करि आयेहैं ॥ ३१ ॥

इसप्रकार ब्रह्मसाक्षात्कारके उत्पन्न हुएभी कोई विद्वान् पुरुष मनोनाश वासनाक्षय या दोनोंके अभावतैं जीवन्मुक्तिके सुखकूं अनुभव करता नहीं। तथा चित्तके विक्षेपकरिकै दृष्टदुःखकूं अनुभव करै है। सो विद्वान् पुरुष अपरमयोगी कह्याजावैहै। जिसकारणतैं सो विद्वान् पुरुष इस देहके पाततैं अनंतर तौ विदेहकैवल्यकूं अवश्यकरिकै प्राप्त होवैहै। और इस शरीरके विद्यमान कालपर्यंत तौ विक्षेपकरिकै दृष्टदुःखका अनुभव करैहै तिस कारणतैं सो विद्वान् अपरमयोगी कह्याजावैहै। और जो विद्वान् पुरुष तत्त्वज्ञान मनोनाश वासनाक्षय या तीनोंका एक कालविषे अभ्यासतैं दृष्ट-दुःखकी निवृत्तिपूर्वक जीवन्मुक्तिके सुखकूं अनुभव करताहुआ प्रारब्ध-कर्मके वशतैं समाधितैं व्युत्थान कालविषे सर्व प्राणियोंकूं आपणे आत्माके

तुल्य देखै है सोईही विद्वान् पुरुष परमयोगी कह्याजावैहै। इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैहै—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ॥
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥३२॥

(पदच्छेदः) आत्मौपम्येन। सर्वत्र । समम् । पश्यति । यः। अर्जुन । सुखम् । वा यदि। वा दुःखम् । सः । योगी । परमः । मतः ॥ ३२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष सर्व प्राणियोंविषे आपणे आत्माके दृष्टांतकरिकै सुखकूं अथवा दुःखकूं तुल्यही देखै है सो ब्रह्मवेत्ता योगी श्रेष्ठ मान्याजावै है ॥ ३२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन । जो विद्वान् पुरुष सर्व प्राणीमात्रविषे सुखकूं अथवा दुःखकूं आपणे आत्माके दृष्टांतकरिकै तुल्यही जानै है अर्थात् जो विद्वान् पुरुष द्वेषतैं रहित होणेतैं जैसे आपणे अनिष्टकूं नहीं संपादन करैहै तैसे अन्य प्राणियोंके भी अनिष्टकूं संपादन करता नहीं। इसप्रकार जो विद्वान् पुरुष रागतैं रहित होणेतैं जैसे आपणे इष्टकूं संपादन करैहै तैसे अन्य प्राणियोंकेभी इष्टकूं संपादन करैहै । सो निर्वासनताकरिकै शांतमनवाला ब्रह्मवेत्ता योगीपुरुष पूर्व उक्त अपरमयोगीतैं श्रेष्ठ है अर्थात् मनोनाश वासनाक्षयतैं रहित केवल तत्त्ववेत्ता पुरुषतैं सो मनोनाश वासनाक्षय-सहित तत्त्ववेत्ता पुरुष श्रेष्ठ है । यातें तत्त्वज्ञान मनोनाश वासनाक्षय या तीनोंका यथाक्रमतें अभ्यास करणेवासतै इस अधिकारी पुरुषनैं महान् प्रयत्न करणा इति । अब तत्त्वज्ञान मनोनाश वासनाक्षय या तीनोंका स्वरूप वर्णन करैं हैं । तहां यह सर्व द्वैतप्रपंच अद्वितीय सच्चिदानंदरूप परमात्मादेवविषे मायाकरिकै कल्पित होणेतैं मिथ्या-भूतही है । एक परमात्मादेवही परमार्थसत्यरूप है । ऐसा अद्वितीय परमात्मादेव मैं हूं या प्रकारके ज्ञानकूं तत्त्वज्ञान कहैं हैं । और प्रदीपकी

ज्वालावोंके संतानकी न्याई वृत्तियोंके संतानरूप करिकै परिणामकूं प्राप्त भया जो अंतःकरणरूप द्रव्य है सो अंतःकरण मननरूपताकरिकै मन कह्या जावै है । और तिस वृत्तिरूप परिणामका परित्याग करिकै तिन सर्व वृत्तियोंका विरोधी जो निरोधाकार करिकै परिणाम है यह ही तिस मनका नाश है और पूर्व अपरके विचारतै विना शीघ्रही उत्पन्न हुए जे काम क्रोधादिक वृत्तिविशेष हैं तिनोंके हेतुभूत जे चित्तविषे स्थित संस्कारविशेष हैं तिन संस्कारोंका नाम वासना है । तहां विवेककरिकै जन्य जे चित्तकेप्रशमकी दृढ वासना है तिनोंकी प्रबलतातैं क्रोधादिकोंकी उत्पत्ति करणेहारे बाह्य निमित्तोंके विद्यमान हुएभी जो तिन क्रोधादिकोंकी नहीं उत्पत्ति है ताका नाम वासनाक्षय है । अब इन तीनोंका परस्पर कार्यकारणभाव दिखावैं हैं । तहां तत्त्व ज्ञानके उत्पन्न हुएतैं अनंतर मिथ्या भूत जगत्विषे नरविषाणादिकोंकी न्याई बुद्धिकी वृत्ति उत्पन्न होवै नहीं । और तिस कालविषे आत्मा अपरोक्ष है । यातैं आत्माविषेभी वृत्तिका कोई उपयोग नहीं है । परिशेषतैं इंधनोंतै रहित अग्निकी न्याई सो मन नाशकूंही प्राप्त होवै है । इस रीतिसैं सो तत्त्वज्ञान मनोनाशका कारण है और ता मनके नाश हुएतैं अनंतर संस्कारोंके उद्बोधक बाह्य निमित्तोंकी प्रतीति होवै नहीं । तिसतैं ते संस्काररूप वासनाभी क्षय होजावैहैं । इस रीतिसैं सो मनोनाश वासनाक्षयका हेतु है । और तिन वासनावोंके क्षय हुएतैं अनंतर कारणके अभाव होणेतैं ते क्रोधादिक वृत्तियां उत्पन्न होवै नहीं । तिसतैं सो मनभी नाश होइजावै है । इस रीतिसैं सो वासनाक्षय मनोनाशविषे कारण है । और ता मनके नाश हुएतैं अनंतर शमदमादिक साधनोंकी संपत्तिकरिकै सो तत्त्वज्ञान उत्पन्न होवै है । इस रीतिसै सो मनोनाश तत्त्वज्ञानका कारण है और तत्त्वज्ञानके उत्पन्न हुएतैं अनंतर वे रागद्वेषादिरूप वासनाभी क्षय होइजावै हैं यातैं सो तत्त्वज्ञान वासनाक्षयका हेतु है । और तिन वासनावोंके क्षय हुएतैं अनंतर प्रतिबंधके अभाव हुएतैं सो तत्त्वज्ञान उत्पन्न होवै है

यातें सो वासनाक्षय तत्त्वज्ञानका हेतु है । इस रीतिसे तत्त्वज्ञान मनोनाश वासनाक्षयका तीनोंका परस्पर कार्यकारणभाव है । यह वार्ता वासीष्ठग्रंथविषे वसिष्ठ भगवान्नैंभी श्रीरामचन्द्रके प्रति कथन करी है । तहां श्लोक–(तत्त्वज्ञानं मनोनाशो वासनाक्षय एव च ॥ मिथः कारणतां गत्वा दुःसाध्यानि स्थितानि हि ॥ १ ॥ तस्माद्राघव यत्नेन पौरुषेण विवेकिना ॥ भोगेच्छां दूरतस्त्यक्त्वा त्रयमेतत्समाश्रयेत् ॥ २ ॥) अर्थ यह–तत्त्वज्ञान मनोनाश वासनाक्षय यह तीनों परस्पर कार्यकारणभावकूं प्राप्तहोइकै इहां दुःसाध्य हुए स्थित हैं ॥ १ ॥ तिसकारणतैं हे रामचन्द्र ! विवेक युक्त पौरुषयत्नकरिकै भोगकी इच्छाकूं दूरतैं परित्याग करिकै यह अधिकारी पुरुष इन तीनोंकूं आश्रयणकरै । इहां जिसीकिसी उपाय करिकै इन तीनोंकूं मैं अवश्य करिकै संपादन करोंगा या प्रकारका जो उत्साहविशेष है ताका नाम पौरुषयत्न है । और तिन तीनोंके पृथक्पृथक् करिकै साधनोंका निश्चय है ताका नाम विवेक है । जैसे तत्त्वज्ञानके तौ श्रवणादिक साधन हैं और मनोनाशका योगसाधन है और वासनाक्षयका प्रतिकूलवासनावोंकी उत्पत्ति साधन है । ऐसे विवेकयुक्त पौरुष यत्नकरिकै भोगके इच्छाकूं दूरतैं परित्याग करिकै तत्त्वज्ञान, मनोनाश, वासनाक्षय, इन तीनोंकूं आश्रयण करै । तहां जैसे घृतादिक हविष् अग्निके वृद्धिका हेतु होवै है तैसे अत्यंत अल्पभी भोगोंकी इच्छा वासनाके वृद्धिकाही हेतु होवै है यातैं ता भोगकी इच्छाका दूरतैंही त्याग कथन कऱ्या है इति॥ २॥ इहां यह अभिप्राय है–ब्रह्मविद्याका अधिकारी दो प्रकारका होवै है । एक तौ कृतोपास्ति होवै है और दूसरा अकृतोपास्ति होवै है तहां जो पुरुष उपास्यदेवताके साक्षात्कार पर्यंत उपासनाकूं करिकै पश्चात् तत्त्वज्ञानवासतैं प्रवृत्त हुआ है सो पुरुष कृतोपास्ति कह्या जावै है । तिस कृतोपास्तिपुरुषकूं मनोनाश, वासनाक्षय यह दोनों तत्त्वज्ञानतैं पूर्वही दृढ हैं । यातैं तत्त्वज्ञानतैं उत्तर तिस कृतोपास्तिपुरुषकूं सा जीवन्मुक्ति स्वतःही सिद्ध होवै है । और

जिस पुरुषनैं तत्त्वज्ञानतैं पूर्व सा उपासना नहीं करी है सो पुरुष अकृतोपास्ति कह्याजावैहै । सो इदानींकालके मुमुक्षुजन विशेषकरिकै तौ अकृतोपास्तिही होवैं हैं । सो अकृतोपास्ति मुमुक्षु औत्सुक्यमात्रतैं शीघ्रही विद्याविषे प्रवृत्त होवैं हैं । और असंप्रज्ञातसमाधिरूप योगतैं विनाही चेतन् जडवस्तुके विवेकमात्र करिकैही तात्कालिक मनोनाश वासनाक्षयकूं संपादनकरिकै शमदमादि संपत्तिकरिकै श्रवणमनननिदिध्यासनकूं संपादन करैं हैं तिन दृढअभ्यास करे हुए श्रवणादिकोंकरिकै सर्व बंधोंका नाशकरणेहारा तत्त्वज्ञान उत्पन्न होवै है। तिस तत्त्वज्ञानतैं अविद्याग्रंथि अब्रह्मत्व हृदयग्रंथि संशय कर्म असर्वकामत्व मृत्यु जन्म असर्वत्व इत्यादिक सर्वबंध निवृत्त होवैं हैं। तहां श्रुति-(एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रंथिं विकिरतीति हे सौम्य ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति ॥ भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे । सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् सोऽश्नुते सर्वान्कामान्सह । तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति । यस्तु विज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदा शुचिः । स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते । य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवति) अब यथाक्रमतैं इन सर्व श्रुतियोंका अर्थ निरूपण करैंहैं—हे प्रियदर्शन । जो पुरुष हृदयरूप गुहाविषे स्थित इस आत्मादेवकूं साक्षात्कार करैहै सो पुरुष अविद्याग्रंथिकूं नाश करैहै । और जो पुरुष ब्रह्मकूं साक्षात्कार करैहै सो पुरुष ब्रह्मरूप होवैहै । और परमात्मादेवके साक्षात्कार हुए इस विद्वान् पुरुषकी हृदयग्रंथि भेदनकूं प्राप्त होवै है । तथा सर्वसंशयभी छेदनकूं प्राप्त होवैं हैं । तथा प्रारब्धकर्मतैं अतिरिक्त सर्वकर्मभी नाशकूं प्राप्त होवैंहैं । और परमव्योमरूप हृदयगुहाविषे स्थित सत्यज्ञान अनंत ब्रह्मकूं जो पुरुष साक्षात्कार करैहै सो पुरुष सर्वकामोंकूं प्राप्त होवैहै । और तिस आत्माकूं साक्षात्कार करिकै यह विद्वान् पुरुष मृत्युतैं रहित होवैहै । और जो पुरुष विज्ञानवाला है तथा मनके निरोधवाला है तथा सर्वदा शुचि है, सो पुरुष तिस परमपदकूं प्राप्त होवैहै ।

जिसतैं पुनः जन्मकूं प्राप्त होता नहीं । और जो पुरुष मैं परब्रह्म हूं या प्रकार जानै है सो पुरुष इस सर्वजगत्का आत्मा होवै है इति । इत्यादिक श्रुतियां तत्त्वज्ञानकरिकै सर्वबंधकी निवृत्तिकूं प्रतिपादन करैं हैं । इसप्रकारके सर्वबंधोंकी निवृत्तिरूप जा विदेहमुक्ति है सा विदेहमुक्ति इस देहके विद्यमान हुएभी तत्त्वज्ञानकी उत्पत्तिके समानकालही जानणी । काहेतैं ब्रह्मविषे अविद्याकरिकै आरोपित जो पूर्वउक्त बंध है सो सर्वबंध तत्त्वज्ञानतैं पूर्वही रहैहै । तत्त्वज्ञानकरिकै अविद्याके नाश हुएतैं अनंतर सो बंधभी निवृत्त होइजावैहै । और तत्त्वज्ञानकरिकै एकवार नाशकूं प्राप्तहुआ सो अविद्यासहित बंध पुनः उत्पन्न होवै नहीं । यातैं तत्त्वज्ञानकी शिथिलता करणेहारे कारणके अभावतैं सो तत्त्वज्ञान तौ तिस विद्वान् पुरुषका तिसीप्रकारका बन्यारहैहै और पूर्व तिस तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिवासतै जो तात्कालिक मनोनाश वासनाक्षय संपादन कियेथे सो मनोनाश तथा वासनाक्षय तौ दृढअभ्यासके अभावतैं तथा भोगके देणेहारे प्रारब्धकर्मकरिकै बाध्यमान होणेतैं वायुवाले देशविषे स्थित प्रदीपकी न्याईं शीघ्रही निवृत्त होइजावैं हैं । इसीकारणतैं इदानींकालके अकृतोपास्ति तत्त्वज्ञानवाले पुरुषकूं सर्वसिद्ध तत्त्वज्ञानविषे तौ किंचित्मात्रभी प्रयत्नकी अपेक्षा नहीं है किंतु तिस विद्वान् पुरुषकूं मनोनाश वासनाक्षय यह दोनों प्रयत्नकरिकै साध्य हैं । तहां मनका नाश तौ पूर्व असंप्रज्ञातसमाधिके निरूपण करिकै कथन करि आयेहैं यातैं अब वासनाक्षयका निरूपण करैं हैं । तहां वासनाके जानेतैं विना वा वासनाक्षय कन्याजावै नहीं । यातैं प्रथम वासनाका स्वरूप जान्या चाहिये । तहां वासनाका स्वरूप वसिष्ठभगवान्नैं यह कह्याहै । तहां श्लोक–(दृढभावनया त्यक्तपूर्वापरविचारणम् । यदा दानं पदार्थस्य वासना सा प्रकीर्तिता ॥) अर्थ यह–दृढभावना करिकै पूर्व अपरके विचारतैं रहित होइकै जो पदार्थका ग्रहण करणा है ताका नाम वासना है । इहां आपणे आपणे देशके आचारविषे तथा आपणे कुलके धर्मविषे तथा आपणे आपणे स्वभावविषे तथा आपणे आपणे

देशादिकोंविषे स्थित जे अपशब्दहैं तथा साधु शब्द हैं तिन शब्दोंविषे जो प्राणियोंका अभिनिवेश है ताका नाम वासना है। यह सामान्यतैं वासनाका स्वरूप कह्या अब विशेषतैं कहैंहैं । सा वासना दो प्रकारकी होवैहै एक तौ शुद्धवासना होवैहै और दूसरी मलिनवासना होवैहै । तहां अमानित्व अदंभित्व इत्यादिक वक्ष्यमाण दैवीसंपत् शुद्धवासना कही जावैहै सा शुद्धवासना तत्त्वज्ञानका साधनरूप होणेतैं एकरूपही होवैहै और दूसरी मलिनवासना तीनप्रकारकी होवैहै । एक तौ लोकवासना होवैहै, दूसरी शास्त्रवासना होवैहै, तीसरी देहवासना होवैहै । तहां यह सर्वलोक जैसे हमारी निंदा नहीं करैं किंतु यह सर्वलोक हमारी स्तुतिही करैं तिसी प्रकारके आचरणकूं मैं करौं याप्रकारका जो अशक्य अर्थका अभिनिवेश है ताकूं लोकवासना कहैं हैं सा लोकवासना संपादनकरणेकूं अशक्य है । काहेतैं पूर्व जे रामकृष्णादिक अवतार हुएहैं तिनोंकीभी सर्वलोकोंनैं स्तुति करी नहीं किंतु केईक दुष्टलोक तिनोंकीभी निंदा करते रहैंहैं । जबी साक्षात् इश्वरोंकीभी सर्वलोकोंनैं स्तुति नहीं करी तबी इदानींकालके जीवोंकी सर्वलोक स्तुति कैसे करैंगे किंतु नहीं करैंगे । यातैं सा लोकवासना संपादनकरणेकूं अशक्य है । तथा सा लोकवासना पुरुषार्थका उपयोगीभी नहीं है । याकारणतैं सा लोकवासना मलिन है इति। और दूसरी शास्त्रवासना तीन प्रकारकी होवैहै । एक तौ पाठका व्यसनरूप होवैहै । और दूसरी बहुतशास्त्रका व्यसनरूप होवैहै और तीसरी शास्त्रअर्थके अनुष्ठानका व्यसनरूप होवैहै । तहां पाठका व्यसनरूप शास्त्रवासना तौ भारद्वाजकूं होतीभई है । और बहुतशास्त्रका व्यसनरूप शास्त्रवासना तौ दुर्वासाकूं होतीभई है । और अनुष्ठानका व्यसनरूप शास्त्रवासना तौ निदाघकूं होती भई है सा त्रिविधशास्त्रवासना बहुत क्लेशोंकरिकै व्याप्त है तथा पुरुषार्थकाभी अनुपयोगी है तथा अभिमानका हेतु है तथा जन्मकाभी हेतु है । या कारणतैं सा शास्त्रवासनाभी लोकवासनाकी न्याई मलिनही है इति । और तीसरी देहवासनाभी

तीन प्रकारकी होवै है। तहां एक तौ देहविषे आत्मत्वभ्रांतिरूप देहवासना होवै है और दूसरी गुणाधानत्वभ्रांतिरूप देहवासना होवै है । और तीसरी दोपापनयनत्वभ्रांतिरूप देहवासना होवै है । तहां देहविषे आत्मत्वभ्रांतिरूप देहवासना विरोचनादिकोंविषे तथा तिनोंके अनुयायी इदानींकालके बहुतलोकोंविषे प्रसिद्धही है । और दूसरा गुणाधान दोप्रकारका होवै है । एक तौ लौकिक गुणाधान होवै है और दूसरा शास्त्रीयगुणाधान होवै है । तहां समीचीन शब्दादिकविषयोंका संपादन करणा याका नाम लौकिक गुणाधान है। और गंगास्नान शालिग्रामतीर्थ आदिकोंका संपादन करणा याका नाम शास्त्रीयगुणाधान है । और ता गुणाधानकी न्याई तीसरा दोपापनयनभी दोप्रकारका होवै है । एक तौ लौकिक दोपापनयन होवै है । और दूसरा शास्त्रीय दोपापनयन होवै है । तहां चिकित्सा करणेहारे पुरुप उक्त औषधोंकरिकै ज्वरादिक व्याधियोंकी निवृत्ति करणी याका नाम लौकिक दोपापनयन है। और शास्त्रउक्त स्नान, आचमनादिकोंकरिकै आशौचादिकोंकी निवृत्ति करणी याका नाम शास्त्रीय दोपापनयन है । यह त्रिविध देहवासना अप्रामाणिक है तथा करणेकूंभी अशक्य है तथा पुरुपार्थविपेभी अनुपयोगी है तथा पुनः जन्मके प्राप्तिका हेतु है । याकारणतैं इस देहवासनाविषे मलिनपणा शास्त्रविषे प्रसिद्धही है इसप्रकार मलिनरूपकरिकै प्रसिद्ध जे लोकवासना तथा शास्त्रवासना तथा देहवासना यह तीन प्रकारकी वासना हैं ते तीनों वासना यद्यपि अविवेकी पुरुपोंकूं उपादेयरूपकरिकै प्रतीत होवैं हैं तथापि यह तीनों वासना जिज्ञासु पुरुपकूं तौ ज्ञानकी उत्पत्तिविपे विरोधी हैं। और विद्वान् पुरुपकूं तौ ज्ञाननिष्ठाका विरोधी हैं । यातैं जिज्ञासु पुरुपनैं तौ ज्ञानकी प्राप्तिवास्तै यह तीनों वासना परित्याग करणे योग्य हैं । और विद्वान् पुरुपनैं तौ ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्तिवास्तै यह तीनों वासना परित्याग करणेयोग्य हैं । इतने कहणेकरिकै बाह्यविषयवासना तीन प्रकारकी निरूपण करी । और अंतर मलिनवासना तौ काम, क्रोध, दंभ, दर्प इत्यादिक आसुरसंपत्रूप

होवै है। सा आसुरसंपत्‌रूप वासना सर्व अनर्थोंका मूलभूत मानसवासना कहीजावै है । यातें यह अर्थ सिद्ध भया लोकवासना, शास्त्रवासना, देहवासना यह तीनों बाह्यवासना तथा आसुरसंपत्‌रूप अंतरवासना या चारों मलिनवासनावोंका इस अधिकारी पुरुषनैं शुभवासनाकरिकै नाश करणा यह वार्त्ता वसिष्ठभगवान्‌नैंभी श्रीरामचंद्रके प्रति कथन करी है । तहां श्लोक-(मानसीवासनाः पूर्वं त्यक्त्वा विषयवासनाः । मैत्र्यादिवासना राम गृहाणामलवासनाः ॥) अर्थ यह-हे रामचंद्र ! लोकवासना, शास्त्रवासना, देहवासना या तीनों वासनावोंका नाम विषयवासना है । ऐसी मलिनविषयवासनावोंका परित्याग करिकै तथा काम क्रोध दंभ दर्पादिक आसुरसंपत्‌रूप मलिन मानसवासनावोंकूं परित्याग करिकै मैत्री करुणा मुदिता इत्यादिक शुभवासनावोंकूं तूं ग्रहण कर । अथवा इस श्लोकविषे स्थित विषयवासना मानसीवासना या दोनों पदोंका यह दूसरा अर्थ करणा । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध या पांचोंका नाम विषय है तिन शब्दादिक विषयोंकी दो दशा होवैं हैं । एक तौ भुज्यमानत्वदशा होवै है । दूसरी काम्यमानत्व दशा होवै है । तहां भोगकी विषयताका नाम भुज्यमानत्व है और कामनाकी विषयताका नाम काम्यमानत्व है । तहां तिन शब्दादिक विषयोंके भुज्यमानत्वदशाजन्य संस्कारोंका नाम विषयवासना है और काम्यमानत्व दशाजन्य संस्कारोंका नाम मानसवासना है । इस पक्षविषे पूर्व कथन करीहुई च्यारि प्रकारकी वासनावोंका इन दोनों वासनावोंविषेही अंतर्भाव है जिस कारणतें बाह्य अभ्यंतर या दोनों प्रकारकी वासनावोंतें भिन्न दूसरी कोई वासना है नहीं सर्व वासनावोंका इन दोवासनावोंविषेही अंतर्भाव है तहां तिन मलिनवासनावोंतें विरुद्ध मैत्री करुणादिक शुभवासनावोंका जो उत्पादन है यहही तिन मलिनवासनावोंका परित्याग है । ते मैत्रीआदिक शुभवासना पतंजलिभगवान्‌नैं योगसूत्रोंविषे कथन करी हैं । ते मैत्रीआदिक शुभवासना यद्यपि पूर्व संक्षेपतें प्रतिपादन करिआये हैं तथापि तिस पूर्वउक्त

अर्थकी दृढता करणेवास्तै पुनः तिन मैत्रीआदिकोंका स्वरूप कथन करै हैं । तहां इस पुरुषके चित्तकूं राग द्वेष पुण्य अपुण्य यह च्यारोंही मलिन करै हैं तहां किसी सुखके अनुभव हुएतैं अनंतर तिस सुखका स्मरण करिकै तिस सुखके सजातीय दूसरे सुखोंविषे तथा तिन सुखोंके साधनोंविषे यह साधनोंसहित सर्व विषयसुख हमारेकूं प्राप्त होवे या प्रकारकी अंतःकरणकी राजसवृत्तिविशेषरूप जा तृष्णा है ताका नाम राग हैं । तहां तिन सर्वसुखोंकी प्राप्ति करणेहारी जा दृष्ट अदृष्टरूप कारण सामग्री है ता सामग्रीके अभाव होणेतैं तिन सर्वसुखोंका संपादन करणा अत्यंत अशक्य है । यातें विषयकी प्राप्तितैं रहित हुआ सो राग इस पुरुषके चित्तकूं मलिन करै है । और यह अधिकारी पुरुष जबी सर्व सुखी प्राणियोंविषे यह सर्वसुखी प्राणी हमारेही हैं या प्रकारकी मैत्री संपादन करै है तबी सो सर्वप्राणियोंका सुख आपणाही सिद्ध होवै है । इस प्रकारकी भावना करणेहारे पुरुषका तिन सुखोंविषे सो राग निवृत्त होइ जावै है । जैसे किसी राजाकूं आप तौ राज्यतैं वैराग्यकी प्राप्ति हुएभी आपणे पुत्रादिकोंके राज्यकूंही आपणा राज्यकरिकै मानै है । तैसें सो पुरुषभी आपणे सुखविषयक रागके निवृत्त हुएभी दूसरे प्राणियोंके सुखकूंही आपणा करिकै मानै है । इस प्रकार मैत्रीभावना करिकै जबी ता रागकी निवृत्ति होवै तबी वर्षाके निवृत्त हुएतैं अनंतर जैसे जल शुद्ध होवै है तैसे सो चित्त शुद्ध होवै है इति । और किसी दुःखके अनुभव हुएतैं अनंतर ता दुःखका स्मरणकरिकै तिस दुःखके सजातीय दूसरे दुःखोंविषे तथा तिन दुःखोंके साधनोंविषे यह साधनोंसहित सर्व दुःख हमारेकूं कदाचित्भी मत प्राप्त होवैं या प्रकारकी जा तमोगुण-मिलित रजोगुणका परिणामरूप अन्तःकरणकी वृत्तिविशेष है ताका नाम द्वेष है । तहां दुःखके हेतुरूप शत्रुव्याघ्रादिकोंके विद्यमान हुए सो दुःख निवृत्त करणेकूं अशक्य है । और तिन सर्व दुःखोंके हेतुवोंकूं हनन करणे-विषेभी कोई समर्थ नहीं है । यातैं सो द्वेष इस पुरुषके चित्तकूं सर्वदा दाह

करै है। और यह अधिकारी पुरुष जबी सर्वदुःखी प्राणियोंविषे आपणेकी न्याईं इन सर्व प्राणियोंकूं यह दुःख मत प्राप्त होवै या प्रकारकी करुणा करै है तबी इस पुरुषका वैरी आदिकोंविषे सो द्वेष निवृत्त होइ जावै है। ता द्वेषके निवृत्त हुएतैं अनंतर इस अधिकारी पुरुषका चित्त निर्मल होवै है। यह वार्त्ता स्मृतिविषेभी कथन करी है। तहां श्लोक—(प्राणा यथात्मनोभीष्टा भूतानामपि ते तथा। आत्मौपम्येन भूतेषु दयां कुर्वंति साधवः ॥) अर्थ यह—जैसे इस पुरुषकूं आपणे प्राण अत्यंत प्रिय होवै है तैसे सर्वभूतोंकूं ते आपणे आपणे प्राण अत्यंत प्रिय होवैं हैं या प्रकारका विचारकरिकै श्रेष्ठ महात्मा पुरुष आपणे आत्माकी न्याईं सर्वभूत प्राणियोंविषे दयाकूंही करैं हैं इति। इसी अर्थकूं श्रीभगवान् इहां (आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन) इस श्लोकविषे कथन करता भया है इति। और यह प्राणी स्वभावतैंही पुण्यकर्मोंकूं अनुष्ठान करते नहीं तथा पापकर्मोंकूं अनुष्ठान करैं हैं यह वार्त्ताभी शास्त्रविषे कथन करी है। तहां श्लोक—(पुण्यस्य फलमिच्छंति पुण्यं नेच्छंति मानवाः। न पापफलमिच्छंति पापं कुर्वंति यत्नतः ॥) अर्थ यह—यह मनुष्य पुण्यकर्मके सुखरूप फलकी तौ इच्छा करैं हैं परन्तु ता पुण्यकर्मकी इच्छा करते नहीं। और यह मनुष्य पापके दुःखरूप फलकी तौ इच्छा करते नहीं और तिस पापकर्मकूं तौ प्रयत्नतैं करैं हैं इति। तहां ते पुण्य कर्म तौ नहीं करेहुए इस पुरुषकूं पश्चात्तापकी प्राप्ति करैं हैं और पाप कर्म तौ करेहुए इस पुरुषकूं पश्चात्तापकी प्राप्ति करैं हैं। यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है। तहां श्रुति—(किमहं साधु नाकरवं किमहं पापमकरवम् ॥) अर्थ यह—जो पुरुष पुण्यकर्मोंकूं नहीं करै है सो पुरुष दूसरे पुण्यवान् पुरुषोंकूं सुखी हुआ देखिकै ऐसे सुखकी प्राप्ति करणेहारे पुण्यकर्मोंकूं मैं किसवासतै नहीं करता भया या प्रकारके पश्चात्तापकूं करै है यातैं पुण्यकर्म तौ नहीं करे हुए इस पुरुषकूं पश्चात्तापकी प्राप्ति करैं हैं। और जो पुरुष पापकर्मकूं करै है

सो पुरुष जबी तिस पापकर्म दुःखरूप फलकूं प्राप्त होवै है तबी सो पुरुष ऐसे दुःखकी प्राप्ति करणेहारे पापकर्मोंकूं मैं किसवासते करताभया या प्रकारके पश्चात्तापकूं करे है । यातैं ते पापकर्म करेहुए इस पुरुषकूं पश्चात्तापकी प्राप्ति करैं हैं इति । और यह अधिकारी पुरुष जबी पुण्यवान् पुरुषोंविषे मुदिता करै है तबी ता शुभवासनावाला हुआ सो पुरुष आपभी साधन हुआ अशुक्लकृष्णनामा पुण्यविशेषविषे प्रवृत्त होवै है। यह वार्त्ता योगसूत्रोंविषे पतंजलि भगवान्नैंभी कथन करी है । तहां सूत्र–(कर्माशुक्लकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ॥) अर्थ यह—योगी पुरुषोंका कर्म तौ अशुक्ल कृष्ण होवै है और अयोगी पुरुषोंका कर्म तौ शुक्ल, कृष्ण, शुक्लकृष्ण यह तीन प्रकारका होवै है । तहां जो कर्म केवल मनवाणी करिकैही साध्य होवै है तथा एक सुखरूप फलकीही प्राप्ति करै है सो कर्म शुक्लकर्म कह्या जावै है ऐसा शुक्लकर्म वेदाध्ययनपरायण ब्रह्मचारी पुरुषोंका तथा तपस्वी पुरुषोंका होवै है। और जो कर्म केवल दुःखकीही प्राप्ति करै है सो कर्म कृष्णकर्म कह्या जावै है ऐसा कृष्णकर्म तौ दुरात्मापुरुषोंका होवै है । और जो कर्म सुखदुःखमिश्रित फलकी प्राप्ति करै है तथा व्रीहियवादिक बाह्य साधनोंकरिकै साध्य होवै है सो कर्म शुक्लकृष्ण कह्या जावै है सो शुक्लकृष्ण कर्म तौ सोमयागादिकोंविषे प्रीतिमान् पुरुषोंका होवै है । काहेतैं तिन सोमयागादिकोंविषे व्रीहि आदिकोंके कूटणेकरिकै पिपीलिकादिकजन्तुवोंकूं पीडाकी प्राप्ति होवै है और दक्षिणादिकोंके देणेकरिकै ब्राह्मणादिकोंकी प्रसन्नताभी होवैहै । यातैं तिन यागिक पुरुषोंका सो कर्म शुक्लकृष्ण होवैहै । यह तीन प्रकारका कर्म अयोगी पुरुषोंकाही होवै है । और संन्यासी योगी पुरुषनैं तौ व्रीहियवादिक बाह्यसाधनों करिकै सिद्ध होणेहारे यागादि कर्मोंका परित्याग कऱ्या है यातैं तिन योगी पुरुषोंका सो शुक्लकृष्णकर्म होवै नहीं और ते योगीपुरुष अविद्यादिक सर्व क्लेशोंतैं रहित हैं यातैं तिन योगी रुषोंका सो कृष्णकर्मभी होवै नहीं । और ते योगी पुरुष योगजन्य धर्मके

फलकी इच्छाकूं न करिकै ता धर्मका ईश्वरविषे अर्पण करैहैं। यातैं तिन योगी पुरुषोंका सो शुक्लकर्मभी होवै नहीं, किंतु चित्तकी शुद्धिद्वारा तथा विवेकख्यातिद्वारा एक मोक्षरूप फलकी प्राप्ति करणेहारा अशुक्लकृष्ण नामा पुण्यकर्म तिन योगी पुरुषोंका होवैहै इति। और जो अधिकारी पुरुष पापात्मा पुरुषोंविषे उपेक्षा करैहै सो अधिकारी पुरुष तिस वासनावाला हुआ आपभी तिन पापकर्मोंतैं निवृत्त होवैहै। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। पुण्यवान् पुरुषोंविषे मुदिता करणेहारे पुरुषोंकूं तथा पापी पुरुषोंविषे उपेक्षा करणेहारे पुरुषोंकूं पुण्यकर्मोंके न करणनिमित्तक पश्चात्ताप तथा पापकर्मोंके करणनिमित्तक पश्चात्ताप प्राप्त होवै नहीं। वा पश्चात्तापके अभाव हुए तिस पुरुषका चित्त निर्मलताकूं प्राप्त होवैहै इति। किंवा इसप्रकार सुखी प्राणियोंविषे मैत्रीभावना करणेहारे पुरुषका केवल एक रागही निवृत्त नहीं होवैहै किंतु ता मैत्रीभावनाकरिकै असूया तथा ईर्ष्या आदिक भी निवृत्त होवैंहैं। तहां अन्य पुरुषोंके गुणोंविषे जो दोषोंका प्रगटकरणाहै ताका नाम असूया है। और परके गुणोंका जो नहीं सहन करणा है ताका नाम ईर्ष्याहै। जबी मैत्रीभावनाके वशतैं यह अधिकारी पुरुष सर्व प्राणियोंके सुखकूं आपणाही करिकै मानै है तबी ता पुरुषकी परगुणों-विषे असूया तथा ईर्ष्या कदाचित्भी होवै नहीं। इसप्रकार दुःखी प्राणि-योंविषे करुणाभावना करणेहारे पुरुषका शत्रु आदिकोंके वध करणेहारा द्वेष जबी निवृत्त होइजावै है तबी दूसरेकूं दुःखी देखिकै तथा आपणेकूं सुखी देखिकै जो दर्प उत्पन्न होवै है सो दर्पभी निवृत्त होइजावै है। इस-प्रकारतैं दूसरे दोषोंकी निवृत्तिभी जानिलेणी। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया, इस अधिकारी पुरुषनैं जीवन्मुक्तिके सुखवास्तै तत्त्वज्ञान मनोनाश वासनाक्षय या तीनोंका अभ्यास करणा। तहां जिसीकिसी प्रकारतैं पुनःपुनः जो तत्त्वका स्मरण है ताकूं तत्त्वज्ञानाभ्यास कहैं हैं। यह वार्त्ता अन्य शास्त्रविषेभी कथन करी है। तहां श्लोक–(तच्चिंतनं तत्कथनमन्योन्यं तत्प्रबोधनम् ॥ एतदेकपरत्वं च ब्रह्माभ्यासं विदुर्बुधाः ॥ १ ॥ सर्गा-

दावेव नोत्पन्नं दृश्यं नास्त्येव तत्सदा ॥ इदं जगदहं चेति बोधाभ्यासं विदुः परम् ॥ २ ॥) अर्थ यह–तिसी अद्वितीय ब्रह्मका जो वारंवार चिंतन है तथा तिसीब्रह्मका जो वारंवार कथन है तथा तिसी ब्रह्मका जो परस्पर बोधन है तथा निरंतर तिसी एक ब्रह्मपरता जो है ताकूं विद्वान् पुरुष ब्रह्माभ्यास कहैंहैं इति १ । और यह दृश्य प्रपंच सृष्टिके आदिकालविषेही उत्पन्न हुआ नहीं । यातैं यह दृश्य प्रपंच तीनकालविषे है नहीं । और मैं स्वयंज्योति अधिष्ठान आत्मा सर्वदा विद्यमान हूं याप्रकारका जो निरंतर विचार है ताकूं बोधाभ्यास कहैं हैं इति २ । और दृश्य प्रपंचके अवभासका विरोधी जो योगाभ्यास है ताकू मनोनिरोधाभ्यास कहैं हैं यह वार्त्ताभी शास्त्रविषे कथन करी है । तहां श्लोक–(अत्यंताभावसंपत्तौ ज्ञातुर्ज्ञेयस्य वस्तुनः। युक्त्या शास्त्रैर्यतंते ये तेप्यत्राभ्यासिनः स्थिताः ॥) अर्थ यह–ज्ञाता ज्ञेय वस्तु या दोनोंविषे जो मिथ्यात्व बुद्धि है ताका नाम अभावसंपत्ति है । और तिन दोनोंकी जा स्वरूपतैंही अप्रतीति है ताका नाम अत्यंताभावसंपत्ति है। ता अत्यंताभावसंपत्तिके वासतै जे पुरुष योगकरिकै तथा शास्त्रोंकरिकै प्रयत्न करैंहैं ते पुरुष मनोनिरोधके अभ्यासवाले कहे जावैं हैं इति। और दृश्य प्रपंचके असंभव बोधकरिकै जो रागद्वेषादिकोंकी क्षीणता करणीहै ताकूं वासनाक्षयका अभ्यास कहैंहैं ।यह वार्त्ताभी अन्य शास्त्रविषे कथन करी है । तहां श्लोक–(दृश्यासंभवबोधेन रागद्वेषादितानवे । रतिर्घनोदितायासौ ब्रह्माभ्यासः स उच्यते ॥) अर्थ यह–इस दृश्यप्रपंचके असंभव बोधकरिकै इन रागद्वेषादिकोंकी क्षीणता करणेविषे जा दृढरति उत्पन्न होवै है सो ब्रह्माभ्यास कहा जावै है इति । यातै यह अर्थ सिद्ध भया । जो पुरुष तत्त्वज्ञानके अभ्यास करिकै तथा मनोनाशके अभ्यास करिकै तथा वासनाक्षयके अभ्यासकरिकै रागद्वेषादिकविकारोंतैं रहित हुआ आपणे पराये सुखदुःखादिकोंविषे समदृष्टि है सो पुरुष तौ परम योगीहै और जो पुरुष विषमदृष्टिवाला है सो पुरुष तौ तत्त्वज्ञानवाला हुआ भी अपरमयोगीही है ॥ ३२ ॥

तहां श्रीभगवान्नैं पूर्व विस्तारवे कथन करचा जो मनका निरोधरूप योग है ताका निषेध करता हुआ अर्जुन प्रश्न करै है—

अर्जुन उवाच ।

योयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ॥
एतस्याहं न पश्यामि चंचलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ३३

(पदच्छेदः) यः । अयम् । योगः । त्वया । प्रोक्तः । साम्येन । मधुसूदन । एतस्य । अहम् । न । पश्यामि । चंचलत्वात् । स्थितिम् । स्थिराम् ॥ ३३ ॥

(पदार्थः) हे मधुसूदन ! तुमनैं जो यहँ योग समत्वकरिकै कथनँ करचा है सो इस योगके स्थिर स्थितिकूं मैं अर्जुन नहीं देखताहूं मनकूं अतिचंचलें होणेतैं ॥ ३३ ॥

भा० टी०—हे मधुसूदन ! अर्थात् हे सर्ववैदिकसंप्रदायका प्रवर्त्तक तैं सर्वज्ञ ईश्वरने जो यह सर्वत्र समदृष्टिरूप परमयोग पूर्व समभावकरिकै कथन कऱ्या है अर्थात् चित्तविषे स्थित विषमदृष्टिके हेतुभूत जे रागद्वेषादिक है तिन रागद्वेषादिकोंका निराकरण करिकै जो यह योग कथन करचा हैं इस सर्व मनोवृत्ति निरोधरूप योगकी दीर्घकाल पर्यंत रहणेहारी विद्यमानतारूप स्थितिकूं मैं अर्जुन देखता नहीं अर्थात् ऐसे सर्व वृत्तियोंके निरोधरूप योगकी दीर्घकालपर्यंत स्थिति होती है, याप्रकारकी संभावना हमारेकूं होती नहीं । शंका—हे अर्जुन ! ऐसी संभावना तुम्हारेकूं किसवास्तै नहीं होती ? ऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन ताकेविषे हेतु कहैहै (चंचलत्वात् इति) । हे भगवन् ! यह मन अत्यंत चंचलहै एक क्षणमात्रभी स्थिर होता नहीं याकारणतैं तिस अर्थकी संभावना हमारेकूं होती नहीं ॥ ३३ ॥

अब अर्जुन तिस मनके चंचल स्वभावकूं सर्व लोकशास्त्रकी प्रसिद्धता करिकै उपपादन करैहै—

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ॥
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥३४॥

(पदच्छेदः) चंचलम् । हि । मनः । कृष्ण । प्रमाथि । बलवत् । दृढम् । तस्य । अहम् । निग्रहम् । मन्ये । वायोः । इव । सुदुष्करम् ॥ ३४ ॥

(पदार्थः) हे कृष्ण । यह मन प्रसिद्ध चंचल है तथा प्रमाथि है तथा बलवान् है तथा दृढ है तिस मनके निग्रहकूं मैं अर्जुन वायुके निग्रहकी न्याई अत्यंत कठिन मानताहूं ॥ ३४ ॥

भा० टी०—हे कृष्ण भगवन् ! यह मन चंचल है अर्थात् अत्यंत चलन स्वभाववाला है कदाचित्भी स्थिर होता नहीं । ऐसा मनका चंचलस्वभाव सर्व लोकोंकूं अनुभव सिद्ध है । हे भगवन् ! यह मन केवल चंचलही नही है किंतु प्रमाथिभी है । तहां शरीरकूं तथा इंद्रियोंकूं क्षोभकी प्राप्ति करणेका जिसका स्वभाव होवै है ताका नाम प्रमाथि है अर्थात् यह मन तिन शरीर इंद्रियोंका क्षोभक होणेतें तिन शरीरइंद्रियोंके विवशताका हेतु है । यातें प्रमाथि है । हे भगवन् ! यह मन केवल चंचल तथा प्रमाथि नहीं किंतु यह मन बलवान्भी है अर्थात् यह मन अभिप्रेतविषयतें किसीभी उपायकरिकै निवृत्त करणेकूं अशक्य है । इस लोकविषेभी किसी कार्यविषे प्रवृत्त हुए जिस पुरुषकूं कोईभी निवृत्त करणेमें समर्थ नहीं होवैहै तिस पुरुषकूं बलवान् कहैंहैं । तैसे किसी विषयविषे प्रवृत्त हुआ यह मन तिस विषयतें निवृत्त करया जाता नहीं । यातें यह मन अत्यंत बलवान् है । तथा यह मन दृढ है अर्थात् अनेक जन्मोंकी अनेक सहस्रसहस्र विषयवासनाओंकरिकै युक्त होणेतें भेदन करणेकूं अशक्य है । अथवा तंतुनागकी न्याई अच्छेद्य होणेतें यह मन दृढ है। इहां नागपाशका नाम तंतुनाग है अथवा जलके महाह्रदविषे रहणेहारे किसी जंतुविशेषका नाम तंतुनाग है जिस जंतुविशेषकूं गुर्जरादिक देशोंविषे तांतनी या नामकरिकै कथन करैंहैं । इहां अर्जुननें (चंचलं प्रमाथि बलवत् दृढम्) यह च्यारि विशेषण मनके कथन करे । तिन च्यारोंविशेषणोंविषे पूर्वपूर्व विशेषणकी सिद्धिविषे उत्तर

उत्तर विशेषण हेतुरूप है । जैसे यह मन अत्यंत दृढ होणेतै बलवान् है । तथा बलवान् होणेतैं यह मन प्रमाथि है। तथा प्रमाथि होणेतैं यह मन अत्यंत चंचल है। हे भगवन् ! जैसे महामत्त वनहस्तीका निग्रह करणा अत्यंत कठिन होवैहै । तैसे इस मनके निग्रहकूं अर्थात् सर्व वृत्तियोंतैं रहित करिकै स्थित करणेकूं मैं अर्जुन दुष्कर मानताहूं अर्थात् सर्वप्रकारतैं रोकणेकूं अशक्य मानताहूं । ता मनके निग्रहकी अशक्यताविषे अर्जुन दृष्टांतकूं कहैहै (वायोरिव इति) हे भगवन् ! जैसे आकाशविषे चलायमान होइरह्या जो वायु है ता वायुकी निश्चलताकूं संपादन करिकै ता वायुका निरोध करणा अत्यंत अशक्य है । तैसे सर्वथा चंचल मनकी निश्चलताकूं संपादन करिकै ता मनका निरोध करणा अत्यंत अशक्य है यह वार्त्ता अन्य शास्त्रविषेभी कथन करी है । तहां श्लोक—(अप्यब्धिपानान्महतः सुमेरून्मूलनादपि । अपि वह्न्यशनात्साधो विषमश्चित्तनिग्रहः ।) अर्थ यह—हे साधो ! महान् समुद्रके पान करणेतैंभी तथा सुमेरु पर्वतके मूलतैं उखाडनेतैंभी तथा अग्निके भक्षण करणेतैंभी यह चित्तका निग्रह करणा अत्यंत कठिन है इति । इहां हे कृष्ण ! या संबोधनकरिकै अर्जुननैं श्रीभगवान्‌के प्रति यह अर्थ सूचन कऱ्या । (दोषान् कृषति निवारयतीति कृष्णः । अथवा पुरुषार्थानाकर्षति प्रापयतीति कृष्णः) अर्थ यह—भक्तजनोंके जे पापादिक दोष निवृत्त करणेकूं अशक्य हैं तिन पापादिक दोषोंकूंभी जो निवृत्त करै है ताका नाम कृष्ण है । अथवा तिन भक्तजनोंकूं सर्वप्रकारतैं प्राप्त होणेकूं अशक्य जे पुरुषार्थ हैं तिन पुरुषार्थोंकूंभी जो प्राप्त करै है ताका नाम कृष्ण है ऐसे कृष्ण नामवाले आप हो । यातैं आपणे नामकूं सार्थक करणेवास्तै दुर्निवारभी हमारे चित्तकी चंचलताकूं आप अवश्य करिकै निवृत्त करौगे । तथा दुष्प्रापभी समाधिसुखकूं आप अवश्यकरिकै प्राप्त करौगे इति । इहां अर्जुनका यह अभिप्राय है कि तत्त्वज्ञानके उत्पन्न हुएभी प्रारब्धकर्मके भोगवास्तै जीवते हुए विद्वान् पुरुषके कर्तृत्व भोक्तृत्व सुख

दुःख राग द्वेष इत्यादिक चित्तके धर्म बाधितानुवृत्तिकरिकै विद्यमान हुएभी क्लेशके हेतु होणेतें बंधरूपही होवैं हैं । और सर्व चित्तवृत्तियोंके निरोधरूप योगकरिकै जो तिस बंधकी निवृत्ति है ताका नाम जीवन्मुक्ति है। जिस जीवन्मुक्तिके संपादन करणेकरिकै सो विद्वान् पुरुष परम योगी कह्याजावै है । यह वार्त्ता आपनैं पूर्व कथन करी है। या अर्थविषे हमारा यह कहणा है सो बंध साक्षी चेतनतें निवृत्त करतेहो अथवा चित्ततें सो बंध निवृत्त करतेहो । तहां प्रथम पक्ष जो अंगीकार करौ सो संभवता नहीं । काहेतें पूर्व उत्पन्न हुए तत्त्वज्ञाननैंही ता साक्षीके बंधकी निवृत्ति करी है । तिस बंधकी निवृत्तिविषे ता योगका किंचित्मात्रभी उपयोग नहीं है । और सो बंध चित्ततें निवृत्त करीता है, यह दूसरा पक्ष जो अंगीकार करौ सोभी संभवता नहीं। काहेतें सो बंध साक्षी चेतनविषे जैसे आरोपित है तैसे जो चित्तविषे आरोपित होता तौ सो बंध चित्ततें निवृत्त कऱ्याजाता परंतु सो बंध ता चित्तविषे आरोपित नहीं है किंतु सो बंध चित्तका स्वभावही है । और जो जिसका स्वभाव होवैहै तिस स्वभावकी सहस्र उपायों करिकैभी निवृत्ति होवै नहीं । जैसे जलका स्वभाव जो आर्द्रपणा है तथा अग्निका स्वभाव जो उष्णपणा है सो स्वभाव ता जलतें तथा अग्नितें अनेक उपायों करिकैभी निवृत्त कऱ्या जावै नहीं । तैसे सो चित्तका स्वभावभी निवृत्त कऱ्याजावै नहीं और शास्त्रविषे ता चित्तकूं क्षणक्षणविषे परिणाम स्वभाववाला कथन कऱ्या है । तहां शास्त्रवचन—(प्रतिक्षणपरिणामिनो हि भावा ऋते चितिशक्तेः।) अर्थ यह—चैतन्य आत्मातें भिन्न जितनेक अनात्म पदार्थ हैं ते सर्व अनात्म पदार्थ क्षणक्षणविषे परिणामकूं प्राप्त होवैं हैं इति । किंवा प्रारब्धकर्मरूप प्रतिबंधके विद्यमान हुए ता बंधकी निवृत्ति संभवै नहीं । काहेतें अविद्याके तथा ता अविद्याके कार्यके नाश करणेविषे प्रवृत्त भया जो तत्त्वज्ञान है ता तत्त्वज्ञानकाभी प्रतिबंधकरिकै सो प्रारब्धकर्म आपणे फल देणेवासते इस देहइंद्रियादिक संघातकूं स्थित करे है अर्थात् ता

संघातकूं निवृत्त होणे देवे नहीं और चित्तकी वृत्तियोंतें विना सो प्रारब्ध कर्म आपणे सुखदुःखके भोगरूप फलकूं संपादन करिसकै नहीं । काहेतें सुखाकार तथा दुःखाकार जा चित्तकी वृत्ति है वाहीकूं शास्त्रविषे भोग कहैं हैं, ता चित्तकी वृत्तितें विना सुखदुःखका भोग संभवै नहीं । यातें यद्यपि स्वाभाविकभी चित्तकी परिणामोंका योगकरिकै यथाकथंचित् अभिभव होइसकै है तथापि जैसे तत्त्वज्ञानतें सो प्रारब्धकर्म प्रबल है तैसे सो प्रारब्ध कर्म योगतैंभी प्रबल है । ऐसे प्रारब्ध कर्मके विद्यमान हुए ता चित्तकी चंचलताभी अवश्यकरिकै रहैगी । यातें योगकरिकै ता चित्तकी चंचलताके निवृत्त करणेकूं मैं अर्जुन आपणे ज्ञानतें अशक्य मानता हूं । यातें आपणे आत्माकी न्याई सर्वत्र समदर्शी पुरुष परम-योगी है यह आपका वचन अनुपपन्न है । यह अर्जुनका आक्षेप दो श्लोकों-करिकै सिद्ध भया ॥ ३४ ॥

अब श्रीभगवान् तिस अर्जुनके आक्षेपकूं निवृत्त करते हुए कहैं हैं—

श्रीभगवानुवाच ।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ॥
अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ ३५ ॥

(पदच्छेदः) असंशयम् । महाबाहो । मनः । दुर्निग्रहम् । चलम् । अभ्यासेन । तु । कौंतेय । वैराग्येण । च । गृह्यते ॥ ३५ ॥

(पदार्थः) हे महाबाहो । यह मन दुर्निग्रह है तथा चंचल है यह वार्त्ता संशयतें रहित है तौ भी हे कौंतेय सो मन अभ्यासकरिकै तथा वैराग्यकरिकै निग्रह कऱ्या जावैहै ॥ ३५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! तुम्हारे वचनतें तुम्हारे चित्तका वृत्तांत हमनें सम्यक् जान्याहै परन्तु तूं अर्जुन इस मनके निग्रह करणेविषे समर्थ है इसप्रकार ता अर्जुनका संतोष करणेवासतै श्रीभगवान् ता अर्जुनका संबोधन कहैं हैं (हे महाबाहो इति) साक्षात् महादेवसेभी युद्ध करणेतैं

महान् हैं दोनों बाहु जिसकी ताका नाम महाबाहु है । इतने कहणेक-रिकै भगवानूनैं अर्जुनविषे निरतिशय उत्कृष्टता सूचन करी । अर्थात् ऐसी निरतिशय उत्कृष्टतावाला तूं अर्जुन इस मनके निग्रह करणेविषे अवश्य करिकै समर्थ होवैगा इति । हे अर्जुन ! पूर्व जो तुमनैं यह वचन कह्याथा जो यह मन दुर्निग्रह है अर्थात् प्रारब्ध कर्मकी प्रबलतातैं असंयतात्मा पुरुषकूं सो मन दुःख करिकैभी निग्रह करणेकूं अशक्य है तथा यह मन स्वभावतैंही चंचल है । इहां (दुर्निग्रहम्) यह जो मनका विशेषण कथन कर्‍या है सो पूर्व उक्त (प्रमाथिबलवद्दृढम्) या तीन विशेषणोंकूं इकट्ठाकरिकै कथन कर्‍या है । सो इस तुम्हारे कहणे-विषे किंचितमात्रभी संशय है नहीं अर्थात् सो तुम्हारा कहणा सत्य है । तथापि संयतात्मा पुरुषनैं तौ समाधिमात्ररूप उपायकरिकै तथा योगी पुरुषनैं अभ्यासवैराग्यरूप उपायकरिकै सो मन निग्रह करीताहै अर्थात् सो मन सर्व वृत्तियोंतैं शून्य करीताहै । इहां मनके नहीं निग्रह करणेहारे असंयतात्मा पुरुषतैं, मनके निग्रह करणेहारे संयतात्मा पुरुषविषे विशेषताके बोधन करणेवासतै श्लोकविषे तु यह शब्द कथन कर्‍याहै । और ता मनके निग्रहविषे अभ्यास वैराग्य या दोनोंके समुच्चय बोधन करणेवासतै च यह शब्द कथन कर्‍याहै । और (हे कौंतेय !) या संबोधनकरिकै भगवानूनैं अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन कर्‍या, हमारे पिताकी भगिनीका तूं पुत्र है यातैं मैं भगवान् तुम्हारेकूं अवश्यकरिकै सुखकी प्राप्ति करौंगा । इहां इस श्लोकके पूर्वार्द्धकरिकै श्रीभगवानूनैं चित्तका हठनिग्रह नहीं संभवैहै यह अर्थ कथन कर्‍याहै । और श्लोकके उत्तरार्द्धकरिकै ता चित्तका क्रमनिग्रह संभवैहै यह अर्थ कथन कर्‍या । इहां भगवानूका यह अभिप्राय है वा मनका निग्रह दो प्रकारसें होवैहै । एक तौ हठकरिकै मनका निग्रह होवैहै । और दूसरा क्रमकरिकै मनका निग्रह होवैहै । तहां चक्षुश्रोत्रादिक पंच ज्ञानइंद्रिय तथा वाक्पाणि आदिक पंच कर्मइंद्रिय यह दशइंद्रिय जैसे गोलकमात्रके

निरोधकरिकै हठतैं निग्रह करेजावैं हैं तैसे इस मनकूंभी मैं हठकरिकै निग्रह करौंगा। इसप्रकारकी भ्रांति मूढपुरुषोंकूं होवैहै परंतु तिन इंद्रियोंकी न्याई मनका हठमात्रतैं निग्रह होइसकै नहीं काहेतैं ता मनके रहणेका गोलक जो हृदयकमल है सो हृदयकमल निरोध करणेकूं अशक्यहै । यातैं तिस मनका क्रमकरिकै निग्रह करणाही युक्त है यह वार्त्ता वसिष्ठ भगवान्‌नैंभी कथन करी है । तहां श्लोक-(उपविश्योपविश्यैव चित्तज्ञेन मुहुर्मुहुः । न शक्यते मनोजेतुं विना युक्तिमनिंदिताम् ॥ १ ॥ अंकुशेन विना मत्तो यथा दुष्टमतंगजः । अध्यात्मविद्याधिगमः साधुसंगम एव च ॥ २ ॥ वासनासंपरित्यागः प्राणस्पंदनिरोधनम् । एतास्ता युक्तयः पुष्टाः संति चित्तजये किल ॥ ३ ॥ सतीषु युक्तिष्वेतासु हठान्नियमयंति ये ॥ चेतस्ते दीपमुत्सृज्य विनिघ्नंति तमोंजनैः ॥ ४ ॥) अर्थ यह-चित्तके स्वभावकूं जानणेहारे पुरुषनैं उत्तम युक्तितैं विना केवल वारंवार आसन ऊपरि स्थित होइकै यह मन जय करिसकीता नहीं १ । जैसे महामत्त दुष्ट हस्ती अंकुशतैं विना वश होइसकै नहीं तैसे यह मनभी उत्तम युक्तियोंतैं विना वश होइसकै नहीं। ते युक्तियां यह हैं एक तौ अध्यात्मविद्याकी प्राप्ति दूसरा महात्माजनोंका समागम २ । तीसरा वासनावोंका परित्याग चौथा प्राणोंके स्पंदका निरोध यह च्यारि युक्तियांही तिस चित्तके जयका उपायरूप है ३ । इन च्यारों युक्तियोंके विद्यमान हुएभी जे पुरुष चित्तका हठतैं निग्रह करैं है ते पुरुष दीपकका परित्यागकरिकै तमकूं अंजनोंकरिकै निवृत्त करैं हैं ४ । अब याही अर्थकूं स्पष्टकरिकै निरूपण करैं हैं। तहां क्रमकरिकै मनके निग्रहविषे एक तौ अध्यात्मविद्याकी प्राप्ति उपाय है । काहेतैं सा अध्यात्मविद्या दृश्य प्रपंचविषे तौ मिथ्यात्वकूं बोधन करै है और द्रष्टा साक्षी आत्माविषे तौ परमार्थसत्यरूपताकूं तथा परमानंदस्वप्रकाशताकूं बोधन करै है। ऐसे बोध हुएतै अनंतर यह मन आपणे विषयभूत दृश्यपदार्थोंविषे मिथ्यात्व हेतुतैं प्रयोजनके अभावकूं निश्चय करता हुआ यथा

प्रयोजनवाले परमार्थसत्य परमानंदस्वरूप द्रष्टाविषे स्वप्रकाशतारूप हेतुतैं आपणे अविषयताकूं निश्चय करताहुआ इंधनोंतैं रहित अग्निकी न्याई सो मन आपेही शांतिकूं प्राप्त होवै है । यातैं सा अध्यात्म-वियाकी प्राप्ति मनके निग्रहका उपायरूप है । और जो पुरुष बोधन करे हुए तत्त्वकूंभी सम्यक् जानिसकता नहीं अथवा जो पुरुष बोधन करे हुए तत्त्वकूं विस्मरण करिदेवै है तिन दोनों प्रकारके पुरुषोंकूं तौ मनके निग्रहविषे साधुसमागमही उपायरूपहै । काहेतैं ते महात्मा जन इस अधिकारी पुरुषकूं पुनःपुनः तत्त्वका बोधन करैं हैं । तथा पुनःपुनः तिस तत्त्वका स्मरण करावै हैं और जो पुरुष वियामदादिक दुर्वासनाकरिकै पीडित हुआ तिस साधुसमागमकूं करता नहीं तिस पुरुषकूं तौ पूर्व उक्त विवेककरिकै ता वासनाका परित्यागही मनके निग्रहविषे उपाय है । और तिन वासनावोंकूंभी अतिप्रबल होणेतै जो पुरुष तिन वासनावोंके त्याग करणेकूंभी समर्थ नही है तिस पुरुषकूं तौ प्राणोंके स्पंद-नका निरोधही ता मनके निग्रहका उपाय है । काहेतैं प्राणोंका स्पंद तथा वासना यह दोनोंही चित्तके प्रेरकहैं । तिन दोनोंके निरोध हुए चित्तकी शांति अवश्यकरिकै होवै है । यह वार्त्ता वसिष्ठ भगवाननैंभी कथन करीहै । तहां श्लोक—(' द्वे बीजे चित्तवृक्षस्य प्राणस्पंदनवासने । एकस्मिंश्च तयोः क्षीणे क्षिप्रं द्वेपि विनश्यतः ॥ १ ॥ प्राणायामदृढा-भ्यासैर्युक्त्या च गुरुदत्तया । आसनाशनयोगेन प्राणस्पंदो निरुध्यते ॥२॥ असंगव्यवहारित्वाद्भवभावनवर्जनात् । शरीरनाशदर्शित्वाद्वासना न प्रव-र्तते ॥ ३ ॥ वासनासंपरित्यागाच्चित्तं गच्छत्यचित्तताम् । प्राणस्पंदनिरो-धाच्च यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ४ ॥ एतावन्मात्रकं मन्ये रूपं चित्तस्य राघव । यद्भावनं वस्तुनोंतर्वस्तुत्वेन रसेन च ॥ ५ ॥ यदा न भाव्यते किंचिद्धेयोपादेयरूपि यत् । स्थीयते सकलं त्यक्त्वा तदा चित्तं न जायते ॥ ६ ॥ अवासनत्वात्सततं यदा न मनुते मनः । अमनस्ता तदोदेति परमात्मपदप्रदा ॥ ७ ॥) अर्थ यह—हे रामचंद्र ! इस चित्तरूप वृक्षके

दो बीज हैं एक तो प्राणोंका स्पंद दूसरा वासना तिन दोनों बीजोंविषे एकके नाश हुए दोनों नाश होइजावें हैं १ । तहां प्राणायामके दृढ अभ्यासकरिकै तथा गुरुनैं बताई युक्तिकरिकै तथा आसनभोजनादिकोंके नियमकरिकै सो प्राणोंका स्पंद निरोध कऱ्याजावै है २ । और असंग व्यवहारके राखणेतैं तथा प्रपंचके चिंतनके परित्यागतैं तथा शरीरकूं नाशवान् देखणेतैं इस अधिकारी पुरुषकी वासना प्रवृत्त होवै नहीं ३ । और वासनाके परित्यागतैं तथा प्राणस्पंदके निरोधतैं सो चित्त अचित्तभावकूं प्राप्त होवै है आगे जो तुम्हारी इच्छा होवै सो करो ४ । हे राघव! बाह्य अनात्म पदार्थोंका जो वस्तुत्वरूपकरिकै तथा रागकरिकै अंतरचिंतन है इतनामात्रही मैं चित्तका स्वरूप मानताहूं ५ । और जिसकालविषे यह पुरुष परित्याग करणे योग्य तथा ग्रहणकरणेयोग्य किंचित्मात्र वस्तुकाभी चिंतन करतानहीं किंतु सर्वका परित्यागकरिकै स्थित होवै है तिस कालविषे सो चित्त उत्पन्न होवै नहीं ६ । और जिस कालविषे यह मन सर्व वासनावोंतैं रहित होणेतैं किंचित्मात्रभी वस्तुका मनन करता नहीं तिस कालविषे अमनस्ता उत्पन्न होवै है जा अमनस्ता परमात्मपदके देणेहारी है इति ७ । इतने कहणेकरिकै यह दो उपाय सिद्ध भये । एक तौ प्राणस्पंदके निरोधवास्तै अभ्यासरूप उपाय दूसरा वासनाके परित्यागवास्तै वैराग्यरूप उपाय और साधुसमागम तथा अध्यात्मविद्याकी प्राप्ति यह दोनों उपाय तौ अभ्यास वैराग्य या दोनोंके उपपादक होणेतैं अन्यथा सिद्ध हैं । यातैं यह दोनों उपाय अभ्यास वैराग्य दोनोंविषेही अंतर्भूत हैं । इसकारणतैंही श्रीभगवान्नैं अभ्यास वैराग्य यह दोउ उपायही कथन करे हैं इसी अर्थकूं भगवान् पतंजलिभी योगसूत्रोंविषे कथन करतामया है । तहां सूत्र—(अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः) अर्थ यह—पूर्व कथन करी जे प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृति यह पांच प्रकारकी वृत्तियां है ते पांच वृत्तियां असुरत्वरूपकरिकै क्लिष्ट कहीजावैं हैं और देवत्वरूपकरिकै अक्लिष्ट कहीजावें हैं ।

ऐसी सर्व वृत्तियोंका जो निरोध है अर्थात् इंधनतैं रहित अग्निकी न्याईं जो उपशमरूप परिणामविशेष है सो निरोध अभ्यास वैराग्य या दोनों उपायोंकरिकै होवे है इति । यह वार्त्ता योगभाष्यविषे श्रीव्यास भगवान्नैंभी कथन करी है। तहां भाष्यवचन-(चित्तनदीनामोभयतो वाहिनी वहति कल्याणाय वहति पापाय च ।) अर्थ यह-जैसे श्रीगंगा यमुनादिक प्रसिद्ध नदियां निम्नभूमिविषे चलिके समुद्रविषे जाइकै परिअवसानकूं प्राप्त होवैं हैं तैसे जा चित्तरूप नदी विवेकरूप निम्नभूमिविषे चलिकै कैवल्यरूप फलविषे परिअवसानकूं प्राप्त होवै है सा चित्तरूप नदी कल्याणवहा कहीजावे है । और जा चित्तरूप नदी अविवेकरूप निम्नभूमिविषे चलिकै संसारविषे परिअवसानकूं प्राप्त होवै है सा चित्तरूप नदी पापवहा कहीजावे है। इसप्रकारतैं सा चित्तरूप नदी दोनों तरफ चलै है । तहां विषयोंविषे वारंवार दोषदृष्टिकरिकै उत्पन्न भया जो वैराग्य है ता वैराग्यनैं तौ तिस चित्तरूप नदीका विषयोंकी तरफका प्रवाह रोकीता है और विवेकदर्शनरूप अभ्यासनै तौ ता चित्तरूप नदीका प्रत्यक्आत्माविषे प्रवाह करीता है । इसप्रकारतैं वैराग्य अभ्यास दोनोंके अधीनही चित्तवृत्तियोंका निरोधहै । केवल वैराग्यतैं अथवा केवल अभ्यासतैं सो निरोध होवै नहीं । तात्पर्य यह-जैसे तीव्र वेगकरिकै युक्त जो नदीका प्रवाह है ता प्रवाहकूं काष्ठमृत्तिकादिकोंका सेतु बांधिकै निवृत्तिकरिकै वहांसै कुल्या खोदकै क्षेत्रके सम्मुख दूसरा एक वक्रप्रवाह उत्पन्न कऱ्या जावै है तैसे वैराग्यकरिकै चित्तरूप नदीके विषयाभिमुख प्रवाहकूं निवृत्तकरिकै समाधिके अभ्यासकरिकै प्रत्यक्प्रवाह उत्पन्न कऱ्या जावै है । इस प्रकार वैराग्य अभ्यास दोनोंका चित्तके निरोधविषे भिन्नभिन्न द्वार होणेतैं विन दोनोंका समुच्चयही संभवे है । जो कदाचित् तिन दोनोंका एकही द्वार होवै तौ जैसे एकही होमविषे व्रीहि यव दोनोंका एकही द्वार होणेतैं विकल्प है । तैसे वैराग्य अभ्यास दोनोंकाभी विकल्पही होवैगा इति । शंका-मंत्र तप देवता ध्यान आदिक क्रियारूप हैं यातैं तिन मंत्रादिकोंका

तौ पुनःपुन आवृत्तिरूप अभ्यास संभवै है परंतु सर्व व्यापारोंका उपरामरूप जो समाधि है ताका कोई अभ्यास संभवता नहीं। ऐसी शंकाके निवृत्त करणेवासतै सो पतंजलि भगवान् इस प्रकारका अभ्यासका स्वरूप कहतेभये हैं। तहां सूत्र-(तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः) अर्थ यह-स्वस्वरूपविषे स्थित जो द्रष्टा शुद्धचिदात्मा है ता शुद्धचिदात्माविषे सर्व वृत्तियोंतैं रहित चित्तकी जा प्रशांतवाहितारूप निश्चल स्थिति है ता स्थितिके वासतै जो मानस उत्साहरूप यत्न है अर्थात् आपणे चञ्चल स्वभावतैं बाह्य प्रवाहवाले इस चित्तकूं मैं सर्व प्रकारतैं निरोध करौंगा या प्रकारका जो मनविषे उत्साहविशेष है सो उत्साहरूप यत्न वारंवार आवृत्तिकऱ्याहुआ अभ्यास कह्या जावै है इति। अन्यसूत्र-(स तु दीर्घकालनैरंतर्यसत्कारसेवितो दृढभूमिः) अर्थ यह-सो पूर्व उक्त अभ्यास उद्वेगतैं रहित होइकै दीर्घ कालपर्यंत सेवन कऱ्या हुआ तथा व्यवधानके अभावकरिकै निरंतर सेवन कऱ्या हुआ तथा श्रद्धा अतिशयरूप सत्कारकरिकै सेवन कऱ्या हुआ दृढभूमि होवै है अर्थात् सो अभ्यास विषयसुखकी वासनावोंकरिकै चलायमान होइसकै नहीं। तहां तिस अभ्यासका अदीर्घ कालपर्यंत सेवन कियेहुए तथा दीर्घ कालपर्यंत सेवन किये हुएभी बीचमें व्यवधान राखिकै सेवन किये हुए तथा दीर्घकाल निरंतर सेवन किये हुएभी श्रद्धा अतिशयके अभाव हुए लय विक्षेप कषाय सुखास्वाद या च्यारोंके नहीं निवृत्ति हुए व्युत्थानसंस्कारोंकी प्रबलतातैं अदृढभूमिहुआ सो अभ्यास फलकी प्राप्तिवासतै होवैगा नहीं इसी कारणतैं पतंजलि भगवान्नैं दीर्घकाल नैरंतर्य सत्कार यह तीनों कथन करे हैं इति। इतने कहणेकरिकै अभ्यासका स्वरूप कथन कऱ्या। अब वैराग्यका स्वरूप कथन करैं हैं। तहां वैराग्य दो प्रकारके होवै हैं एक तौ अपरवैराग्य होवै है और दूसरा परवैराग्य होवै है तहां यतमान व्यतिरेक एकेंद्रिय वशीकार या भेदकरिकै सो अपरवैराग्य च्यारि प्रकारका होवै है। तहां पूर्व भूमिकाके जयकरिकै उत्तरभूमिकाके संपाद-

नकी विवक्षाकरिकै सो पतंजलि भगवान् चौथा वशीकारनामा वैराग्यही कथन करता भया है। तहां सूत्र-(दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ।) अर्थ यह-स्त्री अन्न पान मैथुन ऐश्वर्य इत्यादिक विषय सर्व लोकोंकूं प्रत्यक्ष होणेतैं दृष्टविषय कहेजावैं हैं। और स्वर्ग विदेहता प्रकृतिलय इत्यादिक विषय केवल शास्त्रप्रमाणकरिकै गम्य होणेतैं आनुश्रविक विषय कहे जावैं हैं। तिन दोनों प्रकारके विषयोंकी तृष्णाके हुएभी विवेककी न्यून अधिकता करिकै यतमानादिक तीव्र वैराग्य सिद्ध होवैं हैं । तहां इस जगत्विषे कौन वस्तु सार है तथा कौन वस्तु असार है इस वार्त्ताकूं मैं गुरुशास्त्रतैं निश्चय करौं या प्रकारका जो उद्योग है ताकूं यतमाननामा वैराग्य कहैं हैं। और आपणे चित्तविषे पूर्व विद्यमान जे दोष हैं तिन दोषोंके मध्यविषे अभ्यस्यमान विवेककरिकै इतने दोष पक्व हुए इतने दोष बाकी रहते हैं इस प्रकारतैं चिकित्साकी न्याईं जो विवेचन है ताकूं व्यतिरेकनामा वैराग्य कहैं हैं । और दृष्टआनुश्रविकविषयोंकी प्रवृत्तिकूं दुःखरूप जानिकै बाह्य इंद्रियोंके प्रवृत्तिकूं नहीं उत्पन्न करती हुईभी तृष्णाका जो औत्सुक्यमात्रकरिकै मनविषे अवस्थान है, ताका नाम एकेंद्रियनामा वैराग्य है । और तिस मनविषेभी तृष्णाके अभावकरिकै जो सर्वप्रकारतैं वैतृष्ण्य है अर्थात् तृष्णाकी विरोधी ज्ञानप्रसादरूप जा चित्तकी वृत्तिविशेष है ताका नाम वशीकारनामा वैराग्य है । सो वशीकारनामा वैराग्य संप्रज्ञातसमाधिका तौ अंतरंग साधन होवै है और असंप्रज्ञातसमाधिका बहिरंग साधन होवै है ता असंप्रज्ञातसमाधिका तौ परवैराग्यही अंतरंग साधन होवै है । सो परवैराग्यका स्वरूप पतंजलि भगवान्नैं योगसूत्रोंविषे यह कह्या है तहां सूत्र-(तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्) अर्थ यह-संप्रज्ञातसमाधिकी दृढता करिकै त्रिगुणात्मक प्रधानतैं पृथक् करेहुए पुरुषका साक्षात्कार उत्पन्न होवै है । तिसतैं अनंतर संपूर्ण तीन गुणोंके व्यवहारोंविषे जो वैतृष्ण्य होवै है सो परवैराग्य कह्या जावै है अर्थात् सर्वतैं

श्रेष्ठ फलभूत वैराग्य कह्या जावै है तिस पर वैराग्यकी परिपाकतातैं चित्तके उपशमकी परिपाकता होइकै शीघ्रही कैवल्यकी प्राप्ति होवै है । इसी सर्व अभिप्रायकूं लेकै श्रीभगवान्नैं (अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते ।) यह वचन कथन कऱ्या है ॥ ३५ ॥

हे अर्जुन ! पूर्व तुमनैं जो यह कह्याथा तत्त्वज्ञानतैंभी प्रबल जो प्रारब्धकर्म है सो प्रारब्धकर्म आपणे फलके देणेवासतै मनके वृत्तियोंकूं अवश्यकरिकै उत्पन्न करैगा, वृत्तियोंतैं विना सो फलका भोग बनता नहीं । ऐसी मनकी वृत्तियोंके उत्पन्न हुए तिन वृत्तियोंका निरोध कऱ्या जावै नहीं इति । सो इसका उत्तर अब तूं श्रवण कर-

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ॥
वश्यात्मना तु यतता शक्योवाप्तुमुपायतः ॥ ३६॥

(पदच्छेदः) असंयतात्मना । योगः । दुष्प्रापः । इति । मे । मतिः । वश्यात्मना । तु । यतता । शक्यः । अवाप्तुम् । उपायतः ३६

(पदार्थः) हे अर्जुन ! असंयतात्मा पुरुषनैं सो योग दुःखकरिकैभी नहीं पाइसकीताहै यह वार्त्ता हमारेकूं संमत है तौभी यत्नवान वश्यात्मा पुरुषनैं उपायतैं प्राप्त होणेकूं शक्य है ॥ ३६ ॥

भा०टी०—तत्त्वसाक्षात्कारके उत्पन्न हुएभी वेदांतशास्त्रके व्याख्यानादिकोंविषे चित्तकी संलग्नतातैं अथवा आलस्यादिक दोषोंतैं अभ्यास वैराग्यकरिकै नहीं निरुद्ध कऱ्या है अंतःकरण जिसनैं ताका नाम असंयतात्मा है ऐसा असंयतात्मा पुरुष यद्यपि तत्त्वसाक्षात्कारवालाभी है तथापि सो असंयतात्मा पुरुष प्रारब्धकर्मकृत चित्तकी चंचलतातैं मनकी सर्व वृत्तियोंके निरोधरूप योगकूं दुःखकरिकैभी प्राप्त होइ सकै नहीं । इसप्रकारका वचन जो तुमनैं कह्या है सो तुम्हारा कहणा हमारेकूंभी संमत है अर्थात् सो तुम्हारा कहणा यथार्थ है । शंका—हे भगवन् ! असंयतात्मा पुरुष जबी तिस योगकूं नहीं प्राप्त होवै है तबी दूसरा कौन पुरुष तिस योगकूं प्राप्त होवै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाकेहुए श्रीभगवान् कहैहैं (वश्यात्मना तु इति)

वैराग्यके परिपाककरिकै वासनाके क्षयहुए वश्य हुआ है क्या स्वाधीन हुआ है अर्थात् विषयोंकी परतंत्रतातैं शून्य हुआ है आत्मा क्या अंतःकरण जिसका ताका नाम वश्यात्मा है। इहां (वश्यात्मना तु) या वचनके अन्तविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तु शब्द पूर्व उक्त असंयतात्मा पुरुषतैं इस वश्यात्मा पुरुषविषे विलक्षणताके बोधन करणेवास्तैहै अथवा निश्चयार्थक है। तथा जो पुरुष वैराग्यकरिकै चित्तरूप नदीके विषयाभिमुख प्रवाहकूं रोकिकै प्रत्यक्‌आत्माके अभिमुखताका प्रवाह करणेवास्तै पूर्व उक्त अभ्यासकूं करै है ताका नाम यतत है। ऐसा वश्यात्मा यतमान पुरुषही चित्तकी चंचलता करणेहारे प्रारब्ध कर्मोंकाभी अभिभवकरिकै ता सर्व चित्तवृत्तियोंके निरोधरूप योगकूं प्राप्त होणेवास्तै समर्थ होवै है।

शंका—अत्यंत बलवान् जे प्रारब्ध कर्म हैं तिन प्रारब्ध कर्मोंका अभिभव किसप्रकारतैं होवै है? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं (उपायतः इति) हे अर्जुन! पुरुषप्रयत्नरूप जो उपाय है तिस उपायतैंही तिस प्रारब्धकर्मका अभिभव होवै है। काहेतैं सो लौकिक पुरुषप्रयत्न तथा वैदिकपुरुषप्रयत्न ता प्रारब्धकर्मकी अपेक्षाकरिकै प्रबल है। जो कदाचित् ता पुरुषप्रयत्नकूं प्रारब्धकर्मतैं प्रबल नहीं अंगीकार करिये तौ लौकिकपुरुषोंके कृषि आदिक प्रयत्नकूं तथा वैदिकपुरुषोंके ज्योतिष्टोमादिक प्रयत्नकूं व्यर्थता प्राप्त होवैगी। और सर्व कार्यविषे प्रारब्धकर्मके सत्त्वका तथा असत्त्वका विकल्पही प्राप्त होवैगा। ता करिकै किसीभी कार्यविषे प्रवृत्ति नहीं होवैगी। काहेतैं प्रारब्धकर्मके सत्त्वहुए तिसतैंही फलकी प्राप्ति होइ जावैगी ता फलकी प्राप्तिविषे पुरुषप्रयत्नका कछु प्रयोजन नहीं है। और प्रारब्धकर्मके असत्त्व हुएतैं सर्व प्रकारतैं फलकी प्राप्ति होणी असंभव है यातैंभी पुरुषप्रयत्नका कछु प्रयोजन नहीं है। इस प्रकारका विचार करिकै कोईभी पुरुष किसीभी लौकिक वैदिक कार्यविषे प्रवृत्त होवैगा नहीं। शंका—सो प्रारब्धकर्म आप अदृष्टरूप है। जो अदृष्टकारण होवैहै सो दृष्टकारणतैं विना कार्यका जनक होवै नहीं किंतु दृष्टका-

रणकी सहायताकरिकैही सो अदृष्टकारण कार्यका जनक होवैहै । यातैं अदृष्टकारणरूप सो प्रारब्धकर्मभी दृष्टसाधनसंपत्तिवैं विना फलकी उत्पत्ति करणेविषे समर्थ होवै नहीं । यातैं कृषिआदिक लौकिक कार्योंविषे तथा ज्योतिष्टोमादिक वैदिक कार्योंविषे ता प्रारब्धकर्मकूं सो पुरुषप्रयत्न अवश्य अपेक्षित है । समाधान—यह वार्त्ता तौ योगाभ्यासविषेभी समानही है । काहेतैं ता योगाभ्यासकरिकै साध्य जा जीवन्मुक्ति है ता जीवन्मुक्तिकूंभी सुखातिशयरूपता होणेतैं प्रारब्धकर्मके फलविषेही अन्तर्भाव है । याकारणतैंही अध्यात्मशास्त्रोंविषे ता जीवन्मुक्तिकूं अनेकजन्मोंके पुण्यकर्मोंका फलरूप कथन कऱ्या है । यातैं ता जीवन्मुक्तिरूप फलकी प्राप्तिवास्तै दृष्टकारणरूप योगाभ्यासका संपादन करणा संभवै है । अथवा तत्त्ववेत्ता पुरुषके देहइंद्रियादिक संघातकी स्थितिकूं देखिकै जैसे प्रारब्धकर्मकूं तत्त्वज्ञानतैं प्रबलता कल्पना करी जावै है तैसे तिस प्रारब्धकर्मतैंभी सो योगाभ्यास प्रबल होवौ । काहेतैं शास्त्रप्रतिपादित यत्नकूं सर्वतैं प्रबलताही देखणेविषे आवै है । यह वार्त्ता वसिष्ठ भगवान्नैंभी कथन करी है । तहां श्लोक—(सर्वमेवेह हि सदा संसारे रघुनंदन ॥ सम्यक्प्रयुक्तात्सर्वेण पौरुषात्समवाप्यते ॥ १ ॥ उच्छास्त्रं शास्त्रितं चेति पौरुषं द्विविधं स्मृतम्॥ तत्रोच्छास्त्रमनर्थाय परमार्थाय शास्त्रितम् ॥ २ ॥ शुभाशुभाभ्यां मार्गाभ्यां वहंती वासनासरित् ॥ पौरुषेण प्रयत्नेन योजनीया शुभे पथि ॥ ३ ॥ अशुभेषु समाविष्टं शुभेष्वेवावतारय ॥ स्वमनः पुरुषार्थेन बलेन बलिनां वर ॥ ४ ॥ प्रागभ्यासवशाद्याति यदा ते वासनोदयम् ॥ तदाभ्यासस्य साफल्यं विद्धि त्वमरिमर्दन ॥ ५ ॥ संदिग्धायामपि भृशं शुभामेव समाहर ॥ शुभायां वासनावृद्धौ तात दोषो न कश्चन ॥ ६ ॥ अव्युत्पन्नमना यावद्भवानज्ञाततत्पदः ॥ गुरुशास्त्रप्रमाणैस्त्वं निर्णीतं तावदाचर ॥ ७ ॥ ततः पक्वकषायेण नूनं विज्ञातवस्तुना ॥ शुभोप्यसौ त्वया त्याज्यो वासनौघो निरोधिना ॥ ८ ॥) अर्थ यह—हे रघुनंदन ! इसलोकविषे सर्वपुरुष सम्यक् करेहुए पुरुषप्रयत्नतैं सर्व पदार्थोंकूं प्राप्त होवैहै । ऐसा कोई

पदार्थ है नहीं जो पुरुषप्रयत्नकरिकै नहीं प्राप्त होवै १। हे रामचंद्र ! सो पुरुषप्रयत्नरूप पौरुष दो प्रकारका होवै है । एक तौ उत्शास्त्र होवैहै दूसरा शास्त्रित होवैहै । तहां शास्त्रकरिकै प्रतिषिद्ध पौरुषकूं उत्शास्त्र कहैं हैं और शास्त्रकरिकै विहित पौरुषकूं शास्त्रित कहैं हैं । तहां उत्शास्त्र पौरुष तौ नरककी प्राप्तिवासतैही होवैहै । और शास्त्रित पौरुष तौ अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा मोक्षकी प्राप्तिवासतैही होवैहै २ । हे रामचंद्र ! यह वासनारूप नदी शुभ अशुभ या दोनों मार्गोंतैं वहन करैहै । तहां इस अधिकारी पुरुषनैं पुरुषप्रयत्नकरिकै यह वासनारूप नदी अशुभमार्गतैं रोकिकै शुभमार्गविषे प्रवृत्त करणी ३ । हे सर्व बलवान्पुरुषोंविषे श्रेष्ठ रामचन्द्र ! अशुभ कर्मोंविषे प्रवृत्तहुए आपणे मनकूं तूं पुरुषप्रयत्नकरिकै तिन अशुभकर्मोंतैं निवृत्त करिकै शुभकर्मोंविषे प्रवृत्त कर ४ । हे शत्रुवोंकूं नष्ट करणेहारा रामचंद्र ! पूर्वले अभ्यासके वशतैं जबी तुम्हारी शुभवासना उत्पन्न होवै तबीही तुमनैं आपणे अभ्यासकी सफलता जानणी ५ । ता वासनाके अनिर्णय हुएभी तूं निरंतर शुभवासनाकूंही संपादन कर । हे पुत्र ! ता शुभवासनाकी वृद्धिहुए किंचित्मात्रभी दोष होवै नहीं । अशुभवासनाकी वृद्धितैंही दोषकी प्राप्ति होवे है ६ । हे रामचंद्र ! जब पर्यंत तूं अव्युत्पन्न मनवाला है तथा परमपदके ज्ञानतैं रहित है तवपर्यंत गुरुशास्त्रप्रमाण करिकै निर्णीत अर्थकूंही तूं श्रद्धाभक्तिपूर्वक अनुकरण कर ७ । हे रामचंद्र ! इसप्रकारके उपायतैं जबी तुम्हारे पापरूप कषाय निवृत्त होवै तथा आत्मवस्तुका निश्चय होवै तथा मनका निरोध होवै तबी तुमनै ता शुभवासनाकाभी परित्यागही करणा इति ८ । इत्यादिक अनेक वचनोंकरिकै वसिष्ठ भगवान्नैं पुरुषप्रयत्नकी प्रबलता कथन करी है । यातैं सो शास्त्रीय पुरुषप्रयत्न सर्वतैं प्रबल है । ता पुरुषप्रयत्नकरिकै तिस प्रारब्धकर्मका अभिभव संभवैहै । इतनैं कहणे करिकै पूर्व उक्त अर्जुनके प्रश्नका यह उत्तर सिद्ध भया । साक्षी आत्माविषे स्थित जो अविवेकसिद्ध संसारबंधहै ता संसारबंधकी विवेकसाक्षात्कारतैं निवृत्त हुएभी प्रारब्ध-

कर्मनें रियत करे हुए चित्तकी स्वाभाविकभी वृत्तियोंकूं जो पुरुष योगाभ्यासके प्रयत्न करिकै निवृत्त करैहै सो जीवन्मुक्त पुरुष परमयोगी कह्याजावै है।और तिन चित्तवृत्तियोंके नहीं निरोधकियेहुए यह पुरुष तत्त्वज्ञानवाला हुआभी परमयोगी कह्याजावैनहीं किंतु अपरमयोगी कह्याजावैहै ॥ ३६ ॥

तहां इस पूर्वग्रंथकरिकै यह वार्त्ता कथन करी जिस पुरुषकूं तत्त्वज्ञानकी तौ प्राप्ति हुईहै परंतु जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति हुई नहीं सो पुरुष अपरमयोगी कह्याजावै है। और जिस पुरुषकूं तत्त्वज्ञानकीभी प्राप्ति हुईहै तथा जीवन्मुक्तिकीभी प्राप्ति हुई है सो पुरुष परमयोगी कह्याजावैहै इति । तहां अपरमयोगी तथा परमयोगीदोनोंका तत्त्वज्ञानकरिकै अज्ञानके नाश हुएभी जबपर्यंत प्रारब्धकर्म विद्यमान है तबपर्यंत देहइंद्रियसंघात बन्यारहैहै।और ता प्रारब्धकर्मका जबी भोगतैं नाश होवैहै तबी तिन दोनोंका देहइंद्रियसंघातभी नाश होइजावैहै।और एकवार नाशकूं प्राप्तहुआ सो संघात पुनः कदाचित्भी उत्पन्न होवै नहीं। जिसकारणतैं ता संघातके उत्पादक अविद्याका कर्म तिन तत्त्ववेत्ता पुरुषोंके नाश होइगयेहैं । यातैं तिन दोनों प्रकारके विद्वान् पुरुषोंकूं विदेहकैवल्यकी प्राप्तिविषे किंचित्मात्रभी शंका नहीं है. परंतु जो पुरुष पूर्व करेहुए निष्काम कर्मोंकरिकै विविदिषा पर्यंत चित्तशुद्धिकूं प्राप्त हुआहै तिसतैं अनंतर शास्त्रविधिपूर्वक तिन सर्व कर्मोंका परित्याग करिकै विविदिषारूप परमहंस संन्यासकूं प्राप्त हुआहै। तिसतैं अनंतर श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ जीवन्मुक्तसंन्यासी गुरुके समीप जाइकै तिस ब्रह्मवेत्ता गुरुतैं वेदांतमहावाक्यके उपदेशकूं प्राप्त होइकै ता उपदेशविषे असंभावना विपरीतभावनारूप प्रतिबंधकी निवृत्तिवासतै (अथातो ब्रह्मजिज्ञासा) इस सूत्रतैं आदिलैके (अनावृत्तिः शब्दात् ॥) इस सूत्रपर्यंत समग्र च्यारि अध्यायरूप उत्तरमीमांसाशास्त्रकरिकै श्रवण मनन निदिध्यासन या तीनोंकूं गुरुके प्रसादतैं करणेका आरंभ करैहै । सो अधिकारी पुरुष श्रद्धावान् हुआभी आयुषकी अल्पताकरिकै अल्पप्रयत्नवाला होणेतैं इस जन्मविषे आत्मज्ञानकूं प्राप्तहुआ नहीं किंतु ता श्रवणमनननिदिध्या-

सनके करतेहुएही मध्यविषे मरणकूं प्राप्त होइगया सो पुरुष आत्मज्ञानतैं रहित होणेतैं अज्ञानके नाशतैं रहित है यातैं सो पुरुष मोक्षकूं तौ प्राप्त होवै नहीं और तिस पुरुषनैं कर्मोंका तथा उपासनाका पूर्व परित्याग कऱ्याहै यातैं सो पुरुष अर्चिरादि मार्गकरिकै उपासनासहित कर्मके देवलोकरूप फलकूंभी प्राप्त होवै नहीं। तथा सो पुरुष धूमादिक मार्गकरिकै केवल कर्मोंके पितृलोकरूप फलकूंभी प्राप्त होवै नहीं किंतु सो योगभ्रष्ट पुरुष कीटपतंगादिक भावकी प्राप्तिकरिकै कष्टगतिकूंही प्राप्त होवैगा। आत्मज्ञानतैं रहित हुआ देवयान पितृयाण मार्गके असंबंधवाले होणेतैं वर्णआश्रमके आचारतैं भ्रष्टहुए पुरुषकी न्याईं अथवा सो पुरुष ता कष्टगतिकूं नहीं प्राप्त होवैगा। शास्त्रनिषिद्ध कर्मोंके अभाववाला होणेतैं वामदेवकी न्याईं इसप्रकारके संशयकरिकै व्याकुल हुआहै मन जिसका ऐसा जो अर्जुन है सो अर्जुन ता संशयकी निवृत्ति करणेवास्तै श्रीभगवान्‌के प्रति प्रश्न करैहै—

अर्जुन उवाच।

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः॥
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति॥३७

(पदच्छेदः) अयतिः। श्रद्धया। उपेतः। योगात्। चलितमानसः। अप्राप्य। योगसंसिद्धिम्। काम्। गतिम्। कृष्ण। गच्छति॥ ३७॥

(पदार्थः) हे कृष्ण! जो पुरुष अल्पप्रयत्नवाला है तथा श्रद्धाकरिकै युक्त है तथा तत्त्वसाक्षात्कारतैं चलायमान हुआ है मन जिसका सो पुरुष तत्त्वज्ञानके फलकूं न प्राप्तहोइकै मरणकूं प्राप्तहुआ किसे गतिकूं प्राप्त होवैहै॥ ३७॥

भा० टी०—हे कृष्ण भगवन्! आयुषकी अल्पताकरिकै जो पुरुष अल्पप्रयत्नवालाहै तथा गुरुवेदांतवाक्योंविषे विश्वासबुद्धिरूप जा श्रद्धा है ता श्रद्धाकरिकै युक्त है। इहां श्रद्धा आपणे सहवर्ती शमदमादिकोंकाभी

उपलक्षण है । ते श्रद्धासहित शमदमादिक (शांतो दांत उपरतस्तितिक्षुः श्रद्धावित्तो भूत्वात्मन्येवात्मानं पश्यति ।) इस श्रुतिविषे कथन करेहैं । यातें यह अर्थ सिद्ध भया, नित्य अनित्य वस्तुका विवेक तथा इसलोक परलोकके फलभोगोंविषे वैराग्य तथा शम दम उपरति तितिक्षा श्रद्धा समाधान यह षट्संपत्ति तथा मोक्षकी इच्छारूप मुमुक्षुता इन च्यारि साधनोंकरिकै संपन्नहुआ जो पुरुष श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके समीप जाइकै वेदांतवाक्योंके श्रवणमननादिकोंकूं करताभी है परंतु आयुष्यकी अल्पताकरिकै तथा मरणकालविषे इंद्रियोंकी व्याकुलताकरिकै तिन श्रवणादिक साधनोंके दृढ अनुष्ठानके असंभवतें जो पुरुष योगतें चलितमनवाला हुआहै इहां श्रवणमननादिकोंके परिपाककरिकै उत्पन्नभया जो तत्त्वसाक्षात्कार है ताका नाम योग है ता योगतें चलित हुआहै क्या तिस योगके फलकूंही प्राप्त हुआहै मन जिसका ऐसा जो पुरुष है सो पुरुष ता योगसंसिद्धिकूं न प्राप्त होइकै अर्थात् तत्त्वसाक्षात्काररूप योगकरिकै प्राप्त होणेहारी जा अपुनरावृत्तिसहित कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्ति है ताका नाम योगसंसिद्धि है ताकूं न प्राप्त होइकै अतत्त्वज्ञ हुआही मध्यविषे मृत्युकूं प्राप्तहुआ किस गतिकूं प्राप्त हुआ किस गतिकूं प्राप्त होवैहै अर्थात् सो पुरुष सुगतिकूं प्राप्त होवैहै अथवा दुर्गतिकूं प्राप्त होवैहै । तात्पर्य यह—तिस पुरुषनैं नित्यनैमित्तिक कर्मोंका तौ परित्याग कन्याहै तथा ज्ञानकी उत्पत्ति हुई नहीं यातें तिसपुरुषकूं दुर्गतिके प्राप्तिकी भी संभावना होवैहै । और तिस पुरुषनैं शास्त्रउक्त मोक्षसाधनोंका अनुष्ठान कन्याहै तथा शास्त्रप्रतिषिद्ध कर्मोंका परित्याग कन्याहै यातें तिस पुरुषकूं सुगतिके प्राप्तिकी भी संभावना होवैहै ॥ ३७ ॥

अब इसी पूर्व उक्त संशयके बीजकूं स्पष्टकरिकै निरूपण करें हैं—

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ॥
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥३८॥

(पदच्छेदः) कच्चित् । न । उभयविभ्रष्टः । छिन्नाभ्रम् । इव । नश्यति । अप्रतिष्ठः । महाबाहो । विमूढः । ब्रह्मणः । पथि ॥३८॥

(पदार्थः) हे महान् बाहुवाले कृष्ण ! ब्रह्मप्राप्तिके ज्ञानरूप मार्गविषे विमूढ तथा कर्मउपासनातैं रहित ऐसा उभयभ्रष्ट पुरुष विच्छिन्नहुए अभ्रकी न्याई क्यों नहीं नाशकूं प्राप्त होवैगा ॥ ३८ ॥

भा० टी०—हे महाबाहो ! अर्थात् सर्व भक्तजनोंके सर्व उपद्रवोंके निवृत्त करणेविषे समर्थ हैं च्यारों भुजा जिसकी अथवा सर्व भक्तजनोंके प्रति धर्म अर्थ काम मोक्ष या च्यारि प्रकारके पुरुषार्थ देणेविषे समर्थ हैं च्यारि भुजा जिसकी ताका नाम महाबाहु है । इहां (हे महाबाहो) या संबोधनके कहणेकरिकै अर्जुननैं श्रीभगवान्‌विषे स्वप्रश्ननिमित्तक क्रोधका अभाव सूचन कऱ्या । तथा तिस प्रश्नके उत्तरदेणेका सामर्थ्य सूचन कऱ्या । और (कच्चित्) यह पद अभिलाषासहित प्रश्नका वाचक है सो दिखावैं हैं । हे भगवन् ! जो पुरुष अद्वितीय ब्रह्मकी प्राप्तिके आत्मज्ञानरूप मार्गविषे विमूढ है अर्थात् ता ब्रह्म आत्माके ऐक्यसाक्षात्कारकी उत्पत्तितैं रहित है तथा जो पुरुष अप्रतिष्ठ है अर्थात् पितृयाणमार्गविषे गमनका साधनरूप जो कर्म है तथा देवयानमार्गविषे गमनका साधनरूप जा उपासना है ता कर्म उपासना दोनोंतैं रहित है जिसकारणतैं उपासनासहित सर्व कर्मोंका तिस पुरुषनैं पूर्वही परित्याग कऱ्या है ऐसा जो उभयभ्रष्ट पुरुष है अर्थात् कर्ममार्गतैं तथा ज्ञानमार्गतैं दोनोंतैं भ्रष्ट है ऐसा पुरुष छिन्न अभ्रकी न्याई क्यों नाशकूं नहीं प्राप्त होइकै अर्थात् जैसे वायुनैं पूर्व मेघतैं पृथक् कऱ्या जो अभ्र है सो अभ्र जैसे पूर्व मेघतैं भ्रष्ट होइकै तथा उत्तर मेघकूं न प्राप्त होइकै वृष्टिके अयोग्य हुआ मध्य विषेही नाशकूं प्राप्त होवै है तैसे सो योगभ्रष्ट पुरुषभी पूर्व कर्ममार्गतैं विच्छिन्न हुआ तथा उत्तरज्ञानमार्गकूं नहीं प्राप्त हुआ मध्यविषेही नाशकूं प्राप्त होवैगा । ऐसा योगभ्रष्ट पुरुष कर्मके फलकूं तथा ज्ञानके फलकूं प्राप्त होणेवास्तै अयोग्य नहीं है क्या इति । इतनैं कहणेकरिकै ज्ञान कर्म दोनोंका समुच्चयभी

निराकरण कन्या काहेतें इस समुच्चयपक्षविषे ज्ञानके फलके अलाभ हुएभी कर्मके फलका लाभ संभव होइसकै है। यातें ता समुच्चयकूं करणेहारे पुरुष-विषे उभयभ्रष्टपणा संभवता नहीं। इहां जो कोई यह शंका करै, तिस पुरुषकूं कर्मोंके संभव हुएभी तिस पुरुषनैं कर्मोंके फलकी कामना परित्याग कन्या है। यातें कर्म करतेहुएभी तिस पुरुषविषे उभयभ्रष्टपणा संभव होइसकै है सो यह शंका भी संभवै नहीं, काहेतें जैसे सकामकर्मोंका फल होवै है तैसे निष्काम कर्मोंकाभी फल होवै है यह वार्त्ता पूर्व आपस्तंबऋपिका वचन प्रमाण देकै कथन करिआये हैं। यातें ज्ञान कर्म दोनोंके समुच्चयकूं अनुष्ठान करणेहारे पुरुष ऊपरि यह प्रश्न नहीं है किंतु सर्वकर्मोंके त्यागी संन्यासी ऊपरिही यह प्रश्न है । जिसकारणतें अनर्थके प्राप्तिकी शंका तिस सर्वकर्मोंके त्यागी संन्यासीविषेही संभव होइसकै है ॥ ३८ ॥

अब इस पूर्व उक्त संशयके निवृत्त करणेवासतै सो अर्जुन अंतर्यामी कृष्ण भगवान्‌के प्रति प्रार्थना करैहै—

एतन्मे संशयं कृष्ण च्छेत्तुमर्हस्यशेषतः ॥
त्वदन्यः संशयस्यास्य च्छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥३९॥

(पदच्छेदः) एतत् । मे । संशयम् । कृष्ण । छेत्तुम् । अर्हसि । अशेषतः । त्वदन्यः । संशयस्य । अस्य । छेत्ता । न । हि । उपपद्यते । ॥ ३९ ॥

(पदार्थः) हे कृष्ण ! हमारे इस संशयकूं अशेषतैं निवृत्त करणेकूं आपही योग्य हो जिसकारणतैं तुम्हारेतें अन्य कोईभी इस संशयके छेद-नकरणेहारा नहीं संभवै है ॥ ३९ ॥

भा० टी०—हे कृष्ण भगवन् ! पूर्व दोश्लोकोंकरिकै हमनैं दिखाया जो आपणा संशय है तिस हमारे संशयकूं अशेषतैं निवृत्त करणेकूं अर्थात् ता संशयके मूलभूत जे अधर्मादिक हैं तिन अधर्मादिकोंके उच्छेदन-पूर्वक ता संशयके निवृत्त करणेकूं एक आपही योग्य हो । शंका—हे अर्जुन ।

मेरेतैं अन्य कोई ऋषि अथवा कोई देवता तुम्हारे इस संशयकूं निवृत्त करैगा ऐसी भगवानकी शंकाके हुए अर्जुन कहै है (त्वदन्यः इति) हे भगवन् ! सर्वज्ञ तथा सर्व शास्त्रोंका कर्त्ता तथा परमगुरुरूप तथा परम-कृपालु ऐसे जो आप परमेश्वर हो तिस आपतैं भिन्न जितनेक ऋषि हैं तथा जितनेक देवता हैं वे सर्व अनीश्वर होणेतैं असर्वज्ञही हैं यातैं कोई ऋषि तथा कोई देवता इस योगभ्रष्ट पुरुषके परलोकगतिवि-षयक हमारे संशयके सम्यक् उत्तर देकरिकै नाश करणेहारा संभवता नहीं । यातैं सर्वका परमगुरु तथा सर्व अर्थकूं प्रत्यक्ष देखणेहारा आप ईश्वरही इस हमारे संशयके निवृत्त करणेकूं योग्य हो ॥ ३९ ॥

इस प्रकार अर्जुनकी योगी पुरुषके नाशकी शंकाकूं निवृत्त करणेवा-सतै श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं-

श्रीभगवानुवाच ।

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ॥
नहि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥ ४० ॥

(पदच्छेदः) पार्थ । न । एव । इह । न । अमुत्र । विनाशः । तस्य । विद्यते । न । हि । कल्याणकृत् । कश्चित् । दुर्गतिम् । तात । गच्छति ॥ ४० ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! तिस योगभ्रष्ट पुरुषका इस लोकविषे कदाचित्भी विनाश नहीं होवै है तथा परलोकविषेभी विनाश नहीं होवै है जिसकारणतैं हे तात ! शास्त्रविहितकारी कोईभी पुरुष दुर्गतिकूं नहीं प्राप्त होवै है ॥ ४० ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! उभयभ्रष्ट हुआ सो योगी पुरुष नाशकूंही प्राप्त होवै है, यह जो वचन पूर्व तुमनें कथन कऱ्याथा तिस वचनका क्या अर्थ है क्या सो पुरुष वेदविहित कर्मोंके परित्याग करणेतैं इस लोक-विषे किसी प्रमादी पुरुषकी न्याई श्रेष्ठ पुरुषोंकरिकै निंदाकरणेयोग्य होवैहै ।

अथवा सो पुरुष परलोकविषे निकृष्ट गतिकूं प्राप्त होवै है । जा परलोकविषे निकृष्ट गति श्रुतिनैं कथन करी है । तहां श्रुति-(अथैतयोः पथोर्न कतरेण च न ते कीटाः पतंगा यदि दंदशूकम् ।) अर्थ यह-देवलोकके प्राप्तिका जो देवयान मार्ग है तथा पितृलोकके प्राप्तिका जो पितृयाण मार्ग है तिन दोनों मार्गोंविषे एक मार्गविषेभी जे पुरुष प्रवृत्त नहीं होवैं हैं वे अज्ञानी पुरुष कीट पतंग मशकादिक क्षुद्र शरीरोंकूं वारंवार प्राप्त होवैं हैं इति । सो यह दोनों प्रकारका नाश तिस योगभ्रष्ट-पुरुषका होवै नहीं । इस अर्थकूं श्रीभगवान् कहैं हैं । हे पार्थ ! जिस पुरुषनैं शास्त्र उक्त विधिपूर्वक सर्व कर्मोंका परित्यागरूप संन्यास कर्या है तथा जो पुरुष सर्वतैं विरक्त हुआ है तथा जो पुरुष ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप जाइकै वेदांतशास्त्रके श्रवणादिकोंकूं करै है तथा जो पुरुष तिन श्रवणमननादिकोंके करतेहुएही मध्यविषे मरणकूं प्राप्त हुआ है ऐसा जो योगभ्रष्ट पुरुष है तिस योगभ्रष्ट पुरुषका इस लोकविषे तथा परलोकविषे विनाश होवै नहीं । इसी अर्थविषे श्रीभगवान् हेतु कहैं हैं (नहि कल्याणकृत् इति) हे तात ! जो कोई पुरुष किंचित् मात्रभी शास्त्रविहित अर्थका अनुष्ठान करै है सो पुरुष इस लोकविषे तौ अपकीर्तिरूप दुर्गतिकूं नहीं प्राप्त होवै है और परलोकविषे कीट पतंगादिक शरीरोंकीप्राप्ति रूप दुर्गतिकूं नहीं प्राप्त होवै है । जबी सामान्यतैं शास्त्रविहित अर्थके अनुष्ठान करणेहारा पुरुषभी ता दुर्गतिकूं प्राप्त होवै नहीं तबी सर्वतैं उत्कृष्ट सो योगभ्रष्ट ता दुर्गतिकूं नहीं प्राप्त होवै है याके विषे क्या कहणा है । इहां श्रीभगवान्नै अर्जुनकूं हे तात । या संबोधनकरिकै जो कथनकर्याहै ताका यह अभिप्राय है-(तनोत्यात्मानं पुत्ररूपेणेति तातः) अर्थ यह-जो पुरुष आपणे आत्माकूंही पुत्ररूपकरिकै विस्तार करै ताकूं तात कहैं हैं इसरीतिसैं तात शब्द पिताका वाचक है । सो पिताही पुत्ररूप होवै है । यातैं ता पुत्रकूंभी तात कहैं हैं । और शिष्यभी पुत्रके समानही होवै है । यातैं तिस पुत्रके स्थानविषे शिष्यका जो तात यह संबोधन

है सो तिस शिष्य ऊपरि कृपाकी अतिशयताके सूचनवासतै है इति । वहां पूर्वप्रश्नविषे जो यह वचन कह्याथा सो, योगभ्रष्ट पुरुष कष्टगतिकूं प्राप्त होवै है अज्ञानी हुआ देवयान पितृयाण मार्गके असंबंधवाला होणेतें स्वधर्मतें भ्रष्टपुरुषकी न्याईं, सो यह कहणाभी अयुक्त है । काहेतें सो योगभ्रष्ट पुरुष ता देवयान मार्गके असंबंधवाला नहीं है । किंतु ता देवयान मार्गके संबंधवालाही है । यातें ता अनुमानविषे सो हेतुही असिद्ध है अर्थात् ता योगभ्रष्ट पुरुषविषे सो हेतु रहै नहीं । काहेतें पंचाग्नि विद्याविषे यह वचन कह्या है-(य इत्थं विदुर्ये चामी अरण्ये श्रद्धां सत्यमुपासते तेऽर्चिरभिसंभवंतीति ।) इस श्रुतिविषे पंचाग्निके जानणेहारे पुरुषोंकी न्याईं श्रद्धावाले तथा सत्यवाले मुमुक्षु जनोंकूभी देवयान मार्ग द्वारा ब्रह्मलोककी प्राप्ति कथन करी है और श्रवण मननादिकोंकूं करणेहारा जो योगभ्रष्ट है तिस योगभ्रष्ट पुरुषकूं (श्रद्धावित्तो भूत्वा) इस पूर्व उक्त श्रुतिकरिकै सा श्रद्धाभी प्राप्तही है । तथा (शांतो दांतः) इस श्रुतिवचनकरिकै मिथ्याभाषणरूप जो वाक्‌इंद्रियका व्यापार है ताका निरोधरूप सत्यभी ता योगभ्रष्टकूं प्राप्तही है । काहेतें श्रोत्रादिक बाह्य इंद्रियोंके व्यापारका जो निरोध है ताहीकूं दम कहैं हैं । ता दमके प्राप्त हुए सो सत्यभी प्राप्तही है । अथवा योगशास्त्रविषे योगके अंगरूपकरिकै कथन करे जे अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रह यह पंच यम हैं ताके प्राप्त हुए सो सत्यभी प्राप्तही है । और पूर्व उक्त स्थितिविषे स्थित सत्य शब्दकरिकै जो ब्रह्मकाही ग्रहण करिये तौभी कोई हानि नहीं है । काहेतें वेदांतशास्त्रके जे श्रवणादिक हैं ते श्रवणादिकभी ता सत्यब्रह्मका चिंतनरूप ही हैं । यद्यपि जिस पुरुषकी जिस वस्तुविषे बुद्धिकी स्थिति होवै है सो पुरुष मरणतें अनंतर तिसीही वस्तुकूं प्राप्त होवे है यह नियम शास्त्रविषे कथन कऱ्या है । यातें सत्यब्रह्मके चिंतन करणेहारे पुरुषोंकूं ब्रह्मलोककी प्राप्ति कहणी संभवे नहीं तथापि यह नियम सर्वत्र नहीं संभवै है । जिसकारणतें पंचाग्निविद्याविषेही ता नियमका व्यभिचार है । यातें जैसे

पंचाग्निविद्यावाले पुरुषोंकूं ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै हैं । तैसे तिन सत्यब्रह्मके चिंतन करणेहारे पुरुषोंकूंभी ब्रह्मलोककी प्राप्ति संभवे है । और (संन्यासाद्ब्रह्मणः स्थानम् ।) इस स्मृतिनैं संन्यासतैंभी ब्रह्मलोककी प्राप्ति कथन करीहै । और दिनदिनविषे भक्तिश्रद्धापूर्वक जो वेदांतशास्त्रका विचारहै ता विचारकूं अतिकृच्छ्रके फलकी तुल्यता स्मृतिविषे कथन करीहै । यातें यह अर्थ सिद्ध भया श्रद्धा सत्य ब्रह्मविचार संन्यास या च्यारोंविषे एक एककूंभी ब्रह्मलोकके प्राप्तिकी साधनरूपता है । जबी एक एककूंभी ता ब्रह्मलोकके प्राप्तिकी साधनरूपता है तबी ता योगभ्रष्ट पुरुषविषे स्थित तिन च्यारोंकूं ब्रह्मलोकके प्राप्तिकी साधनरूपता है याकेविषे क्या कहणा है । इसीकारणतें तैत्तिरीयशाखावाले ब्राह्मण (तस्य हवा एवं विदुषो यज्ञस्य) इत्यादिक वचनोंकरिकै ता योगी पुरुषके चरितकूं सर्वसुकृतरूप कथन करतेभयेहैं । तथा स्मृतिविषेभी यह वार्त्ता कथन करीहै । तहां श्लोक—(स्नातं तेन समस्ततीर्थसलिले सर्वापि दत्तावनिर्यज्ञानां च कृतं सहस्रमखिला देवाश्च संपूजिताः । संसाराच समुद्धृताः स्वपितरस्त्रैलोक्यपूज्योप्यसौ यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि स्थैर्यं मनः प्राप्नुयात् ।) अर्थ यह—जिस पुरुषका मन एक क्षणमात्रभी ब्रह्मविचारविषे स्थिरताकूं प्राप्त हुआहै तिस पुरुषनें संपूर्ण तीर्थोंके जलविषेभी स्नान कर्‍याहै । तथा तिस पुरुषनें सर्व पृथ्वीभी दान करीहै । तथा तिस पुरुषनें सहस्र यज्ञभी करेहैं । तथा तिस पुरुषनें ब्रह्मादिक सर्व देवताभी पूजन करे हैं । तथा तिस पुरुषनें आपणे पितरभी संसारसमुद्रतें उद्धार करे हैं । तथा सो पुरुष तीन लोकोंकरिकै भी पूज्य है ॥ ४० ॥

हे भगवन् ! इसप्रकारतें ता योगभ्रष्ट पुरुषकूं शुभकारिताकरिकै दोनों लोकविषे नाशके अभाव हुएभी दूसरा कौन फल प्राप्त होवैहै । ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं—

प्राप्य पुण्यकृताँल्लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ॥
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥४१॥

(पदच्छेदः) प्राप्य । पुण्यकृताम् । लोकान् । उषित्वा । शाश्वतीः । समाः । शुचीनाम् । श्रीमतां । गेहे । योगभ्रष्टः । अभिजायते ॥ ४१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन । सो योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यात्मा पुरुषोंकूं प्राप्त होणेहारे लोकोंकूं प्राप्त होइकै तहां बहुत संवत्सरपर्यंत निवास करिकै तिसतैं अनंतर पवित्र श्रीमान् पुरुषोंके गृहविषे जन्मकूं प्राप्त होवैहै ॥ ४१

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो पुरुष योगमार्गविषे प्रवृत्त हुआहै तथा जिस पुरुषनैं सर्व कर्मोंका त्यागरूप संन्यास कऱ्याहै तथा जो पुरुष निरंतर वेदांतशास्त्रके श्रवणादिकोंकूं करैहै इसप्रकारतैं श्रवणामननादिकोंकूं करता हुआ जो पुरुष मध्यविषेही मरणकूं प्राप्त हुआहै ताके विषेभी कोईक योगभ्रष्ट पुरुष तौ पूर्व अनुभव करेहुए भोगोंकी वासनाके प्राडुर्भावतें विषयोंकी इच्छा करैहै । और कोईक योगभ्रष्ट पुरुष तौ वैराग्यभावनाकी दृढतातैं तिन विषयोंकी इच्छा करता नहीं । तिन दोनों प्रकारके योगभ्रष्टोंविषे प्रथम योगभ्रष्टका वृत्तांत इस श्लोकविषे कथन करैं है । तहां उपासना सहित अश्वमेधादिक यज्ञोंकूं करणेहारे पुरुषोंकूं प्राप्त होणेयोग्य जो ब्रह्मलोक है ता ब्रह्मलोककूं सो योगभ्रष्ट पुरुष अर्चिरादि मार्गद्वारा प्राप्त होइकै ता ब्रह्मलोकविषे ब्रह्माके आयुपपरिमाण संवत्सरपर्यंत निवास करिकै तिसतैं अनंतर पवित्र तथा विभूतिवाले महाराज चक्रवर्ति पुरुषोंके कुलविषे भोगवासनाशेषके सद्भावतैं अजातशत्रु जनकादिकोंकी न्याई जन्मकूं प्राप्त होवैहै अर्थात् भोगवासनाकी प्रबलतातैं सो योगभ्रष्ट पुरुष ब्रह्मलोकके अंतविषे सर्वकर्मोंके संन्यास करणेकूं अयोग्य महाराजा होवैहै । इहां एकही ब्रह्मलोकविषे (लोकान्) यह जो बहुवचन कथन कऱ्याहै सो ता ब्रह्मलोकविषे स्थित भोगस्थानोंके भेदकूं लैके कथन कऱ्याहै । और श्रीमान् पुरुष धन करिकै अनेक पापकर्मोंकूं करते हुए अधोगतिकूं प्राप्त होवैहैं । यातैं सो योगभ्रष्ट पुरुषभी श्रीमान् पुरुषोंके गृहविषे जन्मकूं लैके अधोगतिकूंही प्राप्त होवैगा । ऐसी अर्जुनकी

शंकाके निवृत्त करणेवासते श्रीभगवान्नें तिन श्रीमान् पुरुषोंका शुचि यह विशेषण कथन कऱ्याहै अर्थात् जे पवित्र श्रीमान् होवैं हैं ते पापकर्मोंविषे धनादिकोंकूं खर्च करते नहीं किंतु शुभकार्योंविषे धनादिकोंकूं खर्च करतेहुए पूर्वस्थानकी अपेक्षा करिकै अत्यंत महान् स्थानकूं संपादन करैं हैं ॥ ४१ ॥

अब विषयोंकी इच्छातैं रहित दूसरे योगभ्रष्टकी मरणतैं अनंतर गतिकूं कथन करैं हैं-

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ॥
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥ ४२ ॥

(पदच्छेदः) अथवा । योगिनाम् । एव । कुले । भवति । धीमताम् । एतत् । हि । दुर्लभतरम् । लोके । जन्म । यत् । ईदृशम् ॥ ४२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अथवा सो योगभ्रष्ट पुरुष ब्रह्मविद्यावाले दरिद्री ब्राह्मणोंके कुलविषे ही जन्म लेवैहै जिसकारणतैं इसलोकविषे इसप्रकारका जो यह जन्म है सो यह जन्म अत्यंत दुर्लभ है ॥ ४२ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जो पुरुष श्रद्धावैराग्यादिक शुभगुणोंकी अधिकता करिकै विषय भोगवासनातैं रहित है, सो योगभ्रष्ट पुरुष मरणतैं अनंतर तिन पुण्यकारी पुरुषोंके लोकोंकूं नहीं प्राप्त होइकैही ब्रह्मविद्या-वाले तथा योगाभ्यासवाले दरिद्री ब्राह्मणोंके कुलविषे जन्मकूं प्राप्त होवैहै। श्रीमान् राजाओंके कुलविषे सो योगभ्रष्ट पुरुष जन्मकूं प्राप्त होवै नहीं । हे अर्जुन ! ऐसे ब्रह्मवेत्ता दरिद्री ब्राह्मणोंके कुलविषे जो तिस योगभ्रष्ट पुरुषका जन्म है सो जन्म सर्व प्रमादके कारणोंतै रहित होणेतैं दुर्लभतर है। तात्पर्य यह-इस लोकविषे पवित्र श्रीमान् राजावोंके गृहविषे जो योगभ्रष्ट पुरुषका जन्म है सो जन्मभी अनेक सुकृतोंकरिकै प्राप्त होवैहै तथा मोक्षविषे परिअवसानवाला है यातैं सो जन्मभी दुर्लभ है । और पवित्र तथा ब्रह्मविद्यावाले ऐसे दरिद्र ब्राह्मणोंके कुलविषे जो जन्म है सो

जन्म प्रमादके हेतुभूत धनादिक पदार्थोंतै रहित होणेतैं ता दुर्लभजन्मतैंभी अत्यन्त दुर्लभ है। यातैं यह जन्म दुर्लभतर है। इस रीतिसैं यह दूसरा योगभ्रष्ट स्तुति करणे योग्यहै। तात्पर्य यह—श्रीमान् पुरुषोंके गृहविषे जन्मकूं प्राप्त भया जो प्रथम योगभ्रष्ट पुरुष है तिसकूं चित्तके विक्षेप करणेहारे अनेक प्रकारके निमित्त प्राप्त हैं ते सर्वनिमित्त इस दूसरे योगभ्रष्टकूं स्वभावतैंही अप्राप्त हैं ते चित्तके विक्षेप करणेहार निमित्त शास्त्रविषे यह कहे हैं। तहां श्लोक—(मनोहराणां भोज्यानां युवतीनां च वाससाम्। वित्तस्यापि च सान्निध्याच्चलेच्चित्तं सतामपि ॥ तत्सान्निध्यं ततस्त्यक्त्वा मुमुक्षुर्दूरतो वसेत्।) अर्थ यह—मनोहर भोजन करणेयोग्य पदार्थोंकी समीपतातैं तथा मनोहर स्त्रीयोंकी समीपतातैं तथा मनोहर वस्त्रोंकी समीपतातैं तथा धनकी समीपतातैं श्रेष्ठ पुरुषोंका चित्तभी चलायमान होइ जावैहै। तिस कारणतैं मुमुक्षु जन तिन सर्वपदार्थोंकी समीपताका परित्याग करिकै दूर निवास करै इति। यातैं सर्व भोगवासनावोंतैं रहित होणेतैं सर्व कर्मोंके संन्यास करणेकूं योग्य सो द्वितीययोगभ्रष्ट पुरुष प्रथमयोगभ्रष्टतैं श्रेष्ठ है ॥ ४२ ॥

हे भगवन्! वा योगभ्रष्ट पुरुषका शुचि श्रीमान् राजावोंके गृहविषे जो जन्म है तथा ब्रह्मविद्यावाले दरिद्री ब्राह्मणोंके गृहविषे जो जन्म है तिन दोनों जन्मोंकूं दुर्लभता किस हेतुतैं है? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् ता जन्मकी दुर्लभताविषे हेतु कहैहैं—

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ॥
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनंदन ॥ ४३ ॥

(पदच्छेदः) तत्रं। तंम्। बुद्धिसंयोगम्। लभंते। पौर्वदेहिकम्। यंतते। चं। ततः। भूयंः। संसिद्धौ। कुरुनंदनं ॥ ४३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! सो योगभ्रष्ट पुरुष तिन दोनोंप्रकारके जन्मोंविषे पूर्वदेहेंविषे प्रारंभ करेहुए तिसें ज्ञानके श्रवणादिक साधनकूं प्राप्त होवैहै तिसैंतैं अनन्तर मोक्षके निमित्त पुनः अधिक प्रयत्नकूं करै है ४३

भा० टी०–हे अर्जुन ! ब्रह्म आत्माके ऐक्य साक्षात्कारकी प्राप्तिवासतै तिस योगभ्रष्ट पुरुषनैं पूर्वदेहविषे प्रारंभ करे जे विवेकादिक साधनचतुष्टय तथा सर्व कर्मोंका संन्यास तथा ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप गमन तथा ता गुरुके मुखतैं वेदांतशास्त्रका श्रवण तथा मनन तथा निदिध्यासन इत्यादिक साधन थे । तिन साधनोंके मध्यविषे जिस जिस साधनकूं जितनेपर्यंत अनुष्ठानकरिकै सो योगभ्रष्ट पुरुष मरणकूं प्राप्त हुआ था तिस तिस साधनकूं तितने पर्यंतही सो योगभ्रष्ट पुरुष तिन दोनों प्रकारके जन्मोंविषे प्राप्त होवै है । कोई तिस जन्मविषे सो योगभ्रष्ट पुरुष पुनः आदिसैं लैके तिन साधनोंका प्रारंभ करै नहीं । जैसे तीर्थकरणेका उद्देश करिकै आपणे ग्रामसैं निकस्या हुआ पुरुष मार्गविषे किसी स्थानविषे रात्रिकूं शयन करिकै प्रातःकालमें तिसी स्थानतैं आगे चलैहै कोई पुनः आपणे ग्रामतैं चलै नहीं । हे अर्जुन । सो योगभ्रष्ट पुरुष ता जन्मकूं पाइकै केवल तिन पूर्वले साधनमात्रकूंही प्राप्त नहीं होवै है किंतु तिन पूर्वले साधनोंकी प्राप्तितैं अनंतर मोक्षकी प्राप्तिनिमित्त तिन पूर्वले साधनोंतैंभी पुनः अधिक साधनोंके संपादन करणेकूं प्रयत्न करै है अर्थात् इस योगभ्रष्ट पुरुषनैं पूर्वजन्मविषे जा भूमिका संपादन करी है उत्तरजन्मविषे मोक्षकी प्राप्ति पर्यंत तिसतैं अगली भूमिकावोंकूंही संपादन करै है । इहां (हे कुरुनंदन) या संबोधनके कहणे करिकै श्रीभगवान्नैं अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन कऱ्या । लोकविषे महान् प्रभाववाला तथा अत्यंत शुद्ध तथा अत्यंत श्रीमान् ऐसा जो कुरुराजा है ता कुरुराजाके कुलविषे तुम्हारा जन्म हुआ है । यातैं यह जान्याजावै है तूं अर्जुनभी कोई योगभ्रष्टही है । यातैं पूर्वजन्मोंके संस्कारोंके वशतैं इस जन्मविषे तुम्हारेकूं थोडेही प्रयत्नतैं आत्माज्ञानकी प्राप्ति अवश्य करिकै होवैगी । यह सर्व वार्ता वसिष्ठभगवान्नैंभी श्रीरामचन्द्रके प्रति कथन करी है, तहां श्रीरामचन्द्रनैं यह प्रश्न कऱ्या है । तहां श्लोक–(एकामथ द्वितीयां वा तृतीयां भूमिकामुत । आरूढस्य मृतस्याथ कीदृशी भगवन्गतिः ॥) अर्थ यह–हेभग-

वन् ! एक भूमिकाकूं अथवा द्वितीय भूमिकाकूं अथवा तृतीय भूमिकाकूं प्राप्त होईकै मरणकूं प्राप्त भया जो पुरुष है तिस पुरुषकी ता मरणतैं अनंतर किस प्रकारकी गति होवै है इति । ते सप्तभूमिका इस गीताके तृतीय अध्यायविषे विस्तारतैं कथन करिआये हैं । इस रामचन्द्रके प्रश्नका यह अभिप्राय है, नित्य अनित्य वस्तुके विवेकपूर्वक तथा इसलोक परलोक विषयभोगोंतैं वैराग्यपूर्वक तथा शमदमादि षट्संपत्तिपूर्वक तथा सर्व कर्मोंके संन्यासपूर्वक जा उत्कटमोक्षकी इच्छारूप मुमुक्षुता है ताका नाम शुभइच्छा है सा शुभइच्छा प्रथम भूमिका है। यह शुभ इच्छा विवेकादिक साधन चतुष्टयरूप है । तिसतैं अनंतर ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप जाइकै वेदांतवाक्योंका विचार करणा यह विचारणानामा दूसरी भूमिका है यह दूसरी भूमिका श्रवणमननरूप है । तिसतैं अनंतर श्रवणमननतैं सिद्धभया जो तत्त्वज्ञान है ता तत्त्वज्ञानविषे संशयतैं रहित होणा यह तनुमानसानामा तीसरी भूमिका है, यह तीसरी भूमिका निदिध्यासनरूप है । यह तीनों भूमिका तत्त्वसाक्षात्कारका साधनरूप हैं । और सत्त्वापत्तिनामा चतुर्थी भूमिका तौ तत्त्वसाक्षात्काररूपही है और असंसक्तिनामा पंचमी भूमिका तथा पदार्थाभावनीनामा षष्ठी भूमिका तथा तुरीयानामा सप्तमी भूमिका यह तीन भूमिका तौ जीवन्मुक्तिकेही अवांतर भेद हैं । तहां चतुर्थी भूमिकाकूं प्राप्त होइकै मरणकूं प्राप्त भया जो पुरुष है तिस पुरुषकूं जीवन्मुक्तिके अभाव हुएभी विदेहमुक्तिकी प्राप्तिविषे किंचित्मात्रभी संशय नहीं है । और पंचमी षष्ठी सप्तमी या तीन भूमिकावोंकूं प्राप्त भया जो पुरुष है सो पुरुष तौ जीवता हुआभी मुक्तही है ! जबी सो पुरुष जीवता हुआभी मुक्तही है तबी ता पुरुषके विदेहमोक्षविषे क्या कहणा है । यातैं चतुर्थी पंचमी षष्ठी सप्तमी या च्यारि भूमिकावोंविषे तौ किंचित्मात्रभी शंका नहीं है । परंतु प्रथमा द्वितीया तृतीया यह जो तीन साधनभूमिका हैं तिन तीन भूमिकावोंविषे तौ इस पुरुषनैं सर्वकर्मोंका परित्याग कऱ्या है तथा आत्मज्ञानकी प्राप्ति भई नहीं यातैं शंका संभवै है । इसी कार-

णतैं श्रीरामचन्द्रनैं तिन साधनरूप तीन भूमिकावोंविषेही प्रश्न कर्या है। इस प्रश्नका वसिष्ठ भगवान्नैं यह उत्तर कह्या है । तहां श्लोक-(योगभूमिकयोत्क्रांतजीवितस्य शरीरिणः ॥ भूमिकांशानुसारेण क्षीयते सर्वदुष्कृतम् ॥ १ ॥ ततः सुरविमानेषु लोकपालपुरेषु च ॥ मेरुपर्वतकुंजेषु रमते रमणीसखः ॥ २ ॥ ततः सुकृतसंभारे दुष्कृते च पुराकृते ॥ भोगक्षयात्परिक्षीणे जायंते योगिनो भुवि ॥ ३ ॥ शुचीनां श्रीमतां गेहे गुप्ते गुणवतां सताम् ॥ जनित्वा योगमेवैते सेवंते योगवासिताः ॥ ४ ॥ तत्र प्राग्भावनाभ्यस्तं योगभूमिक्रमं बुधाः ॥ दृष्ट्वा परिपतंत्युच्चैरुत्तरं भूमिकाक्रमम् ॥ ५ ॥) अर्थ यह—जो पुरुष ज्ञानयोगकी भूमिकाकूं संपादन करिकै मरणकूं प्राप्त भया है तिस पुरुषके पूर्वले पापकर्म ता योगभूमिकाके अनुसार नाशकूं प्राप्त होवैहैं १ । तिस मरणतैं अनंतर सो पुरुष मेरुपर्वतकी कुंजोंविषे तथा इंद्रादिक लोकपालोंकी पुरियोंविषे देवतावोंके विमानोंविषे आरूढ होइकै अप्सरावोंके साथि रमण करै है २ । तिसतैं अनंतर पूर्व संपादन करे हुए सुकृतोंके समूहका तथा दुष्कृतोंका भोगकरिकै क्षय हुए ते योगभ्रष्टपुरुष पुनः भूमिलोकविषे जन्मकूं प्राप्त होवैं हैं ३ । तहां इस भूमिलोकविषे जे पुरुष पवित्र हैं तथा श्रीमान् हैं तथा विद्यादिक श्रेष्ठगुणोंकरिकै संपन्न हैं ऐसे श्रेष्ठ पुरुषोंके गृहविषे ते योगभ्रष्ट पुरुष जन्मकूं होइकै पूर्वले योगभूमिकावोंके संस्कारोंके वशतैं पुनः तिन योगभूमिकावोंकूंही संपादन करैं हैं ४ । तहां पूर्वजन्मविषे अभ्यास कर्या हुआ जो भूमिकाक्रम है ता क्रमकूं विचार करिकै ते बुद्धिमान् पुरुष तिसतैं उत्तर भूमिकावोंके क्रमकूं प्रयत्नतैं संपादन करैं हैं इति ५ । इहां पूर्व वृद्धिकूं प्राप्त हुई भोगवासनावोंकी प्रबलतातैं अल्पकालविषे अभ्यास करी हुई वैराग्यवासनावोंकी दुर्बलता करिकै प्राणोंके उत्क्रमण कालविषे प्रादुर्भावकूं प्राप्त हुई है भोगोंकी स्पृहा जिसकूं ऐसा जो सर्वकर्मोंका संन्यासी है सोईही वसिष्ठ भगवान्नै कथन कर्या है । और जो पुरुष वैराग्य वासनावोंकी प्रबलतातैं प्रकृष्ट पुण्यकर्मोंकरिकै प्राप्त परमेश्वरके प्रसादक-

रिकै प्राणोंके उत्क्रमणकालविषे भोगोंकी स्पृहातें रहित है सो संन्यासी तौ विषयभोगोंके व्यवधानतैंविनाही ब्रह्मविद्यावाले दरिद्री ब्राह्मणोंके सब प्रमादके कारणोंतैं रहितकुलविषे जन्मकूं प्राप्त होवै है ऐसे योगभ्रष्ट पुरुषकूं पूर्वसंस्कारोंकी अभिव्यक्ति विनाही प्रयत्नतैं होवै है। यातैं पूर्व योगभ्रष्ट पुरुषकी न्याईं इस द्वितीय योगभ्रष्ट पुरुषकूं मोक्षविषे किंचित्मात्रभी शंका नहीं है। सो यह द्वितीय योगभ्रष्ट पुरुष वसिष्ठ भगवान्नैं कथन कऱ्या नहीं किंतु परम कृपालु श्रीकृष्ण भगवान्नैंही (अथवा योगिनामेव) इस पक्षांतरकूं अंगीकार करिकै कथन कऱ्या है ॥ ४३ ॥

हे भगवन् ! जो पुरुष ब्रह्मवेत्ता दरिद्री ब्राह्मणोंके कुलविषे उत्पन्न होवै है तिस पुरुषकूं मध्यविषे विषयभोगोंका व्यवधान है यातैं व्यवधानतैं रहित पूर्वले संस्कारोंके उद्बोधतैं तिस पुरुषकू पुनःभी सर्व कर्मोंके संन्यासपूर्वक ज्ञानके श्रवणादिक साधनोंका लाभ होवौ परंतु जो पुरुष श्रीमान् महाराजा चक्रवर्तियोंके कुलविषे बहुत प्रकारके विषयभोगोंके व्यवधानकरिकै उत्पन्न हुआ है तिस पुरुषकूं विषयभोगोंके वासनावोंकी प्रबलतावैं तथा धनादिक प्रमादके कारणोंका संभव होणेतैं व्यवधानतैं रहित पूर्वले ज्ञानसंस्कारोंका उद्बोध कैसे होवैगा। तथा क्षत्रिय राजा होणेतैं सर्वकर्मोंके संन्यास करणेविषे अयोग्य तिस पुरुषकूं ज्ञानके साधनोंका लाभ कैसे होवैगा किंतु नहीं होवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं–

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोपि सः ॥
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्त्तते ॥ ४४ ॥

(पदच्छेदः) पूर्वाभ्यासेन । तेनँ । एव । ह्रियते । हि । अवशः। अपि । सः । जिज्ञासुः । अपि । योगस्य । शब्दब्रह्म । अतिवर्त्तते ॥ ४४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो योगभ्रष्ट पुरुष नहीं प्रयत्न करताहुआ भी तिसै पूर्व अभ्यासनैं ही प्रवृत्त करीता है जिस कारणतैं प्रत्यक्

अभिन्न ब्रह्मका जिज्ञासु हुआ भी '' कर्मकांडरूप वेदकूं अतिक्रमणक-रिकै स्थित होवै है ॥ ४४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन! उत्तमलोकोंविषे भोगोंकूं भोगिकै श्रीमान् राजावोंके गृहविषे जन्मकूं प्राप्त भया जो योगभ्रष्ट पुरुष है तिस योग-भ्रष्ट पुरुषका अत्यंत व्यवधान युक्त जो पूर्वला जन्म है तिस पूर्वले जन्मविषे संपादन करे जे ज्ञानके संस्कार हैं ताका नाम पूर्व अभ्यास है तिस पूर्वले अभ्यासनैं इस जन्मविषे मोक्षके साधनोंवासतै नहीं प्रय-त्नकरता हुआभी सो योगभ्रष्ट पुरुष आपणे वश करीता है अर्थात् तिन पूर्वले ज्ञानसंस्कारोंनैं अकस्माततैंही भोगवासनातैं निवृत्त करिकै सो योगभ्रष्ट पुरुष मोक्षके साधनोंविषे प्रवृत्त करीता है। हे अर्जुन! यद्यपि ते ज्ञानवासना अल्पकालकी अभ्यास करी हैं और ते भोगवासना बहुत कालकी अभ्यास करी है तथापि ते ज्ञानवासना तौ वस्तुविषयक हैं और ते भोगवासना अवस्तुविषयक है यातैं ते अल्पकालकी अभ्यास करी हुई भी ज्ञानवासना तिन बहुत कालकी अभ्यास करी हुई भोग-वासनावोंतैं अत्यंत प्रबल हैं। तिन प्रबल ज्ञानवासनावों करिकै अप्र-बल भोगवासनावोंका अभिभव संभवै है। आकाशविषे नीलताज्ञानजन्य वासना यद्यपि बहुत कालकी अभ्यास करी है तथापि आकाश रूपर-हित है इत्यादिक शास्त्रजन्य अल्पकालकी अभ्यास करी हुई वासना-वोंनैं तिन वासनावोंका अभिभव करीता है। यातैं वासनावोंकी प्रबल-ताविषे बहुत कालके अभ्यासकी विषयता प्रयोजक नहीं है। तथा वासनाओंकी दुर्बलताविषे अल्पकालके अभ्यासकी विषयता प्रयो-जक नहीं है किंतु वस्तुविषयत्व तिन वासनावोंकी प्रबलताविषे प्रयोजक है। और अवस्तुविषयत्व तिन वासनावोंकी दुर्बलताविषे प्रयोजक है सो वस्तुविषयत्व ज्ञानवासनावोंविषेही है भोगवासनावोंविषे है नहीं। यातैं ते ज्ञानवासनाही भोगवासनातैं प्रबल है हे अर्जुन! यह वार्त्ता तूं अन्यत्र मत देख किंतु आपणे विषेही देख। जो तूं पूर्व केवल युद्ध करणेविषेही

प्रवृत्त हुआ था कोई ज्ञानके वासते प्रवृत्त हुआ नहीं था परंतु पूर्वली ज्ञानवासनावोंकी प्रबलतातैं अकस्मातवैंही तूं इस रणभूमिविषे युद्धतैं उपराम होइकै ज्ञानविषेही प्रवृत्त होता भया है । इसी कारणतैंही पूर्व हमनैं (नेहाभिक्रमनाशोस्ति) यह वचन तुम्हारे प्रति कथन कऱ्या था । तात्पर्य यह–अनेक सहस्र जन्मोंके व्यवधानवाला हुआ भी सो ज्ञान संस्कार सर्व विरोधियोंका नाश करिकै आपणे कार्यकूं अवश्य करिकै सिद्ध करे है इति । यद्यपि ता क्षत्रिय राजाकूं सर्वकर्मोंके संन्यास करणेका अभाव हैं तथापि ता क्षत्रिय राजाकूं ज्ञानका अधिकार तौ प्राप्तही है । इहां (ह्रियते) या शब्दकरिकैं श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कऱ्या । जैसे बहुत रक्षकपुरुषोंके मध्यविषे विद्यमान जो गौ अश्वादिक द्रव्य हैं सो द्रव्य आप जाणेकी इच्छा नहीं करता हुआ भी किसी चौर पुरुषनैं तिन सर्व रक्षकपुरुषोंका अभिभव करिकै आपणे सामर्थ्यविशेषतैंही हरण करीता है वैसे बहुत ज्ञानके प्रतिबंधकोंविषे विद्यमान जो योगभ्रष्ट पुरुष है सो योगभ्रष्ट पुरुष आप ज्ञानकी इच्छा नहीं करता हुआ भी पूर्व जन्मके बलवान् ज्ञानसंस्कारोंनैं आपणे सामर्थ्यविशेषतैं सर्व प्रतिबंधकोंका अभिभव करिकै आपणे वश करीता है अर्थात् पुनः ज्ञानविषे प्रवृत्त करीता है इति । इस कारणतैंही संस्कारोंकी प्रबलतातैं प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मके जानणेकी इच्छा करता हुआभी अर्थात् शुभइच्छारूप प्रथमभूमिकाविषे स्थित हुआ भी जो संन्यासी है सो प्रथमभूमिकावाला संन्यासी भी तिस प्रथमभूमिकाविषेही मरणकूं प्राप्त होइकै मध्यविषे बहुत प्रकारके विषयोंकूं भोग करिकै महाराजा चक्रवर्तियोंके कुलविषे उत्पन्न हुआ भी सो योगभ्रष्ट पुरुष पूर्व संपादन करे हुए ज्ञानसंस्कारोंकी प्रबलतातैं तिसीही जन्मविषे कर्मके प्रतिपादक वेदभागकूं अतिक्रमण करिकै स्थित होवैहै अर्थात् कर्मके अधिकारका परित्याग करिकै ज्ञानका अधिकारी होवैहै । इस कहण करिकैभी ज्ञान कर्म दोनोंका समुच्चय खंडनहुआ जानणा । काहेतैं ज्ञानकर्मके समुच्चय पक्षविषे ज्ञानवान् पुरुषकूंभी कर्मका परित्याग संभवता नहीं ॥ ४४ ॥

जबी इस प्रकारतैं प्रथमभूमिकाविषे मरणकूं प्राप्तहुआभी तथा अनेक भोग वासनावों करिकै व्यवहित हुआभी तथा नानाप्रकारके प्रमादोंके करणेवाले महाराजाके कुलविषे जन्मकूं प्राप्त होइकैभी सो योगभ्रष्ट पुरुष पूर्व संपादन करे हुए ज्ञानसंस्कारोंकी प्रबलता करिकै कर्मके अधिकारकूं परित्याग करिकै ज्ञानकाही अधिकारी होवैहै तबी द्वितीयभूमिकाविषे अथवा तृतीयभूमिकाविषे मरणकूं प्राप्तहोइकै उत्तम लोकोंविषे नानाप्रकारके भोगोंकूं भोगिकै पश्चात् महाराजाके कुलविषे जन्मकूं प्राप्त भया जो पुरुष है सो योगभ्रष्ट पुरुष ता कर्मके अधिकारकूं परित्याग करिकै ज्ञानकाही अधिकारी होवैहै याके विषे क्या कहणाहै । अथवा जो पुरुष तिन भूमिकावोंविषे मरणकूं प्राप्त होइकै तिन उत्तम लोकोंविषे भोगोंकूं नहीं भोगिकैही ब्रह्मविद्यावाले ब्राह्मणोंके कुलविषे जन्मकूं प्राप्त भया है सो निःस्पृह योगभ्रष्ट पुरुष कर्मके अधिकारकूं परित्याग करिकै केवल ज्ञानकाही अधिकारी होइकै तिस ज्ञानके श्रवणादिक साधनोंकूं संपादन करिकै तिन साधनोंके ज्ञानस्वरूप फलकरिकै संसारबंधनतैं मुक्त होवैहै याकेविषे क्या कहणाहै । इसप्रकारके कैमुतिकन्याय करिकै सिद्ध अर्थकूं अब श्रीभगवान् कहैहैं—

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ॥
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥४५॥

(पदच्छेदः) प्रयत्नात् । यतमानः । तु । योगी । संशुद्धकिल्बिषः । अनेकजन्मसंसिद्धः । ततः । याति । पराम् । गतिम् ॥ ४५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन । जो योगी पुरुष पूर्व प्रयत्नतैं भी अधिक प्रयत्न करैहै तथा धोयेगये हैं पापरूप किल्बिष जिसके तथा अनेकजन्मोंके पुण्यकर्मों करिकै प्राप्त भयाहै अंत्यका जन्म जिसकूं सो योगीपुरुष तिन साधनोंके परिपाकतैं परम मुक्तिकूं प्राप्त होवैहै ॥ ४५ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! पूर्वजन्मविषे कन्या जो प्रयत्नहै तिस प्रयत्नतैंभी अधिक आधिक प्रयत्नकूं करता हुआ जो योगी पुरुष है अर्थात् पूर्वजन्मविषे संपादन करेहुए ज्ञानसंस्काररूप योगकरिकै युक्त जो पुरुष है तथा तिसी योगके प्रयत्नरूप पुण्यकरिकै जो पुरुष संशुद्ध किल्बिष है अर्थात् तिस पुण्यरूप जलकरिकै धोयेगयेहैं ज्ञानके प्रतिबंधक पापरूप मल जिसके इसीकारणतैं ही ज्ञानसंस्कारोंकी वृद्धितैं तथा पुण्यकी वृद्धितैं जो पुरुष अनेकजन्मोंकरिकै संसिद्ध हुआहै अर्थात् तिन पूर्वले अनेक जन्मोंके ज्ञानसंस्कारोंके प्रभावतैं तथा तिन पुण्यकर्मोंके प्रभावतैं प्राप्त भयाहै अंत्य जन्म जिसकूं ऐसा सो योगभ्रष्ट पुरुष तिन श्रवणादिक साधनोंके परिपाकतैं ब्रह्मात्मऐक्य साक्षात्कारकूं प्राप्तहोइकै पुनरावृत्तितैं रहित परममुक्तिकूं प्राप्त होवैहै । इस अर्थविषे किंचित्मात्रभी संशय नहीं है४५

अब अर्जुनके प्रति श्रद्धाआतिशयके उत्पादन पूर्वक तिस पूर्वउक्त योगके विधान करणेवासतै श्रीभगवान् ता पूर्व उक्त योगकी स्तुति करैहैं-

तपस्विभ्योधिको योगी ज्ञानिभ्योपि मतोधिकः॥
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन४६

(पदच्छेदः) तपस्विभ्यः । अधिकः । योगी । ज्ञानिभ्यः । अपि । मतः । अधिकः । कर्मिभ्यः । च । अधिकः । योगी । तस्मात् । योगी । भव । अर्जुन ॥ ४६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन । सो तत्त्ववेत्ता योगी तपस्वियोंतैंभी हमारेकू अधिक संमतहै तथा परोक्षज्ञानीयोंतैं भी अधिक संमतहै तथा सो योगी कर्मीपुरुषोंतैंभी अधिक संमतहै तिसै कारणतैं तूं अर्जुन ऐसा योगी होउ ॥ ४६ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन । तत्त्वज्ञानकी उत्पत्तितैं अनंतर जीवन्मुक्तिके सुखवासतै मनोनाश वासनाक्षयकूं करणेहारा जो योगी पुरुष है सो योगीपुरुष कृच्छ्रचांद्रायणादिक तपकूं करणेहारे तपस्वी पुरुषोंतैंभी

हमारेकूं अधिक समत है अर्थात् तिस योगी पुरुषकूं मैं तिन तपस्वीयों-तैंभी उत्कृष्ट मानताहूं। तहां श्रुति—(विद्यया तदा रोहंति यत्र कामाः परागता न तत्र दक्षिणा यति नाविद्वांसस्तपस्विनः ।) अर्थ यह—यह तत्त्ववेत्ता पुरुष मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारकी ब्रह्मविद्या करिकै तिस पदकूं प्राप्त होवै है जिस पदविषे सर्वकाम परिअवसानकूं प्राप्त हुएहैं । तथा जिस पदविषे यज्ञादिक कर्मोंकूं करणेहारे पुरुषभी प्राप्त होते नहीं तथा अविद्वान् तपस्वीभी प्राप्त होते नहीं इति । इस कारणतैंही दक्षिणासहित ज्योतिष्टोमादि कर्मोंकूं करणेहारे कर्मी पुरुषोंतैं भी सो योगी पुरुष हमारेकूं अधिक संमत है । काहेतैं ते कर्मी पुरुष तथा तपस्वी पुरुष तत्त्वज्ञानतैं रहित होणेतैं मोक्षके योग्य हैं नहीं। और आत्माके परोक्षज्ञानवाले जे पुरुष हैं तिन परोक्षज्ञानियोंतैंभी सो अपरोक्षज्ञानवाला योगी पुरुष हमारेकूं अधिक संमत है । इस प्रकार आत्माके अपरोक्षज्ञानवाले जे पुरुष हैं जे अपरोक्षज्ञानवाले पुरुष मनोनाश वासनाक्षयके अभावतैं जीवन्मुक्तिके सुखकूं प्राप्त हुए नहीं ऐसे जीवन्मुक्तितैं रहित अपरोक्षज्ञानियोंतैं मनोनाश वासनाक्षयवाला जीवन्मुक्त योगी पुरुष हमारेकूं अधिक संमत है। जिस कारणतैं सो तत्त्ववेत्ता जीवन्मुक्त योगी पुरुष हमारेकूं सर्वतैं अधिक संमत है तिसकारणतैं तूं योगभ्रष्ट अर्जुन इसकालविषे अधिक प्रयत्नके बलतैं तत्त्वज्ञान मनोनाश वासनाक्षय या तीनोंकूं संपादन करिकै जीवन्मुक्त योगी होउ। सो जीवन्मुक्त योगी (स योगी परमो मतः) इस वचनक-रिकै पूर्व हमनैं तुम्हारे प्रति कथन कऱ्या है।इहां (हे अर्जुन !) या संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नै अर्जुनविषे शुद्धता बोधन करी । ता करिकै तिस अर्जुनविषे ता योगके संपादनकरणेकी योग्यता सूचन करी ॥ ४६ ॥

अब सर्वयोगियोंतैं श्रेष्ठयोगीका कथन करते हुए श्रीभगवान् इस षष्ठ अध्यायका उपसंहार करैं हैं।

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनांतरात्मना ॥
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥४७॥

श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे आत्मसंयमयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) योगिनाम् । अपि । सर्वेषाम् । मद्गतेन । अंतरात्मना । श्रद्धावान् । भजते । यः । माम् । सः । मे । युक्ततमः । मतः ॥ ४७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष श्रद्धावान् हुआ मेरेविषे स्थित अंतःकरणकरिकै मैंपरमेश्वरकूं भजे है सो पुरुष सर्व योगियोंकेविषे भी अत्यंत श्रेष्ठ मैंपरमेश्वरकूं संमतहै ॥ ४७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! मैं भगवान् वासुदेवविषे पुण्यकर्मोंके परिपाकविशेषतैं उत्पन्न हुई प्रीतिके वशतैं प्राप्त भया जो अंतःकरण है वा अंतःकरणकरिकै जो पुरुष पूर्वले संस्कारोंके वशतैं तथा महात्मा जनोंके सत्संगतैं मेरे भजनविषेही अत्यंत श्रद्धावान् हुआ मैं परमेश्वरकूं भजैहै अर्थात् ईश्वरोंकाभी ईश्वररूप मैं नारायणकूं सगुणकूं अथवा निर्गुणकूं यह कृष्णभगवान् मनुष्य है तथा दूसरे ईश्वरोंकेसमान है या प्रकारके भ्रमकूं परित्याग करिकै जो पुरुष निरंतर चिंतन करै है सो पुरुष मैं परमेश्वरकूं वसुरुद्रआदित्यादिक अन्यदेवतावोंके भजन करणेहारे सर्व योगियोंतैं युक्त तमरूपकरिकै अभिमत है अर्थात् संपूर्ण समाहित चित्तवाले युक्तपुरुषोंतैं तिस पुरुषकूं मैंपरमेश्वर अत्यंत श्रेष्ठ करिकै मानताहूं । तात्पर्य यह—योगाभ्यासके क्लेशके समान हुएभी तथा भजनके आयासके समान हुएभी मेरी भक्तितैं रहित योगी पुरुषोंतैं मेरा भक्त अत्यंत श्रेष्ठ है । और तूं अर्जुनभी हमारा परम भक्त है यातैं तूं अर्जुन विनाही आयासतैं युक्ततम होणेकूं समर्थ है इति । तहां इस षष्ठ अध्यायविषे श्रीभगवान्नैं इतना अर्थ निरूपण कऱ्या । तहां प्रथम चित्तशुद्धिके हेतुभूत कर्मयोगकी मर्यादा

कथन करी । तिसतैं अनंतर कऱ्या हुआ है सर्वकर्मोंका संन्यास जिसनैं ऐसे पुरुषकूं करणेयोग्य अंगोंसहित योग कथन कऱ्या । तिसतैं अनंतर अर्जुनके आक्षेपके निराकरणपूर्वक मनके निग्रहका उपाय कथन कऱ्या । तिसतैं अनंतर योगभ्रष्ट पुरुषके पुरुषार्थके शून्यताकी शंकाकूं शिथिल कऱ्या । इतने सर्व अर्थकूं कथन करिकै श्रीभगवान्नैं प्रथमपट्करूप कर्मकांडकूं तथा त्वंपदार्थके निरूपणकूं समाप्त कऱ्या । इसतैं अनंतर (श्रद्धावान्भजते यो माम्) इस वचनकरिकै सूचन कऱ्या जो भक्तियोग है तथा ता भक्तियोगका विषय जो तत्पदार्थरूप भगवान् वासुदेव है तिन दोनोंके निरूपण करणेवास्तै अगले पट्अध्यायरूप उपासनाकांड आरंभ कऱ्याजावैगा ॥ ४७ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां श्रीभगवद्गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमाध्यायप्रारंभः ।

श्लोक–यद्भक्तिं न विना मुक्तिर्यः सेव्यः सर्वयोगिनाम् ॥ तं वंदे परमानंदघनं श्रीनंदनंदनम् ॥ अर्थ यह–भक्तजनोंके उद्धार करणेवास्तै श्रीनंदके पुत्रभावकूं प्राप्त भया जो श्रीकृष्ण भगवान् है जिस कृष्णभगवान्की भक्तितैं विना इन अधिकारी जनोंकूं मुक्तिकी प्राप्ति होवै नहीं तथा जो कृष्ण भगवान् सर्व योगीपुरुषोंका सेव्य है अर्थात् सर्व योगी पुरुष जिसका सेवन करैं हैं तथा जो कृष्ण भगवान् परमानंदघन है तिस कृष्ण भगवान्कूं मैं वारंवार वंदन करूंहूं इति । तहां सर्वकर्मोंका संन्यासरूप साधन है प्रधान जिसविषे ऐसा जो प्रथम पट्क है ता प्रथमपट्ककरिकै श्रीभगवान्नैं योगसहित त्वंपदका लक्ष्यरूप ज्ञेयवस्तु प्रतिपादन कऱ्या । अब ध्येयब्रह्मका प्रतिपादन है प्रधान जिसविषे ऐसा जो यह मध्यका द्वितीय पट्क है ता द्वितीय पट्ककरिकै श्रीभगवान् तत्पदार्थरूप

मात्माकूं प्रतिपादन करेगा । ता द्वितीयषट्कविषेभी (योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनांतरात्मना ॥ श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥) इस श्लोक करिकै पूर्व कथन करया जो भगवद्भजन है ता भगवद्भजनके व्याख्यान करणेवासतै श्रीभगवानूनैं यह सप्तम अध्याय प्रारंभ करीता है । तहां किस प्रकारका भगवत्का स्वरूप भजन करणेकूं योग्य है तथा तिस भगवत्के स्वरूपविषे यह मन किस प्रकारतैं स्थित होवै, यह दोनों प्रश्न अर्जुनकूं करणेयोग्य थे परंतु यह दोनों प्रश्न अर्जुननैं श्रीभगवानूके प्रति करे नहीं तौभी परमकृपालु श्रीभगवान् विनाही पूछेतैं अर्जुनके प्रति तिन दोनों प्रश्नोंका उत्तर कथन करैं हैं–

श्रीभगवानुवाच ।

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युंजन्मदाश्रयः ॥
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥ १ ॥

(पदच्छेदः) मयि । आसक्तमनाः । पार्थ । योगम् । युंजन् । मदाश्रयः । असंशयम् । समग्रम् । माम् । यथा । ज्ञास्यसि । तत् । शृणु ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरविषे आसक्त है मन जिसका तथा मैं एक परमेश्वरके शरण ऐसा तूं पूर्वउक्तयोगकूं करता हुआ संशयतैं रहित सर्वविभूतिसंपन्न मैं परमेश्वरकूं जिस प्रकारतैं जानैगा तिस-प्रकारकूं तूं श्रवणकर ॥ १ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! सर्व जगत्की उत्पत्ति स्थिति लयतैं आदिलेके नानाप्रकारकी विभूतियोंकरिकै युक्त जो मैं परमेश्वरहूं तिस मैं परमेश्वरविषे आसक्त है मन जिसका ऐसा जो तूं अर्जुन है । इसी कारणतैंही मैं एक परमेश्वरके शरणकूं तूं प्राप्त भया है । तात्पर्य यह– जैसे राजाका भृत्य ता राजाके आश्रित तौ होवै है परंतु ता राजाविषे आसक्तमनवाला होवै नहीं किंतु आपणे स्त्रीपुत्रधनादिक पदार्थोंविषेही

आसक्तमनवाला होवै है । इस प्रकारका तूं अर्जुन है नहीं किंतु तूं अर्जुन तौ मैं एक परमेश्वरकेही आश्रित है तथा मैं एक परमेश्वरविषेही आसक्तमनवाला है । ऐसा मुमुक्षु तूं अर्जुन अथवा तुम्हारे सरीखा दूसरा कोई मुमुक्षु षष्ठ अध्याय उक्तरीतिसे मनके निरोधरूप योगकूं करता हुआ जिस प्रकार कोईभी संशय रहै नहीं इस प्रकार बल शक्ति ऐश्वर्यादिक सर्व विभूतिसंपन्न मैं परमेश्वरकूं जिस प्रकारतैं जानैगा तिस प्रकारकूं मैं भगवान् तुम्हारे प्रति कथन करताहूं तूं सावधान होईके श्रवण कर ॥ १ ॥

तहां इस पूर्व श्लोकविषे (मां ज्ञास्यसि) यह वचन भगवान्नैं कथन कर्‍या ता वचनतैं यह जान्या जावै है सो भगवद्विषयक ज्ञान परोक्षही होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाकूं निवृत्त करते हुए श्रीभगवान् श्रोतापुरुषकूं ता ज्ञानके अभिमुख करणेवासतैं ता ज्ञानकी स्तुति करैं हैं—

ज्ञानं तेहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ॥
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते॥ २॥

(पदच्छेदः) ज्ञानम् । ते । अहम् । सविज्ञानम् । इदम् । वक्ष्यामि । अशेषतः । यत् । ज्ञात्वा । न । इह । भूयः । अन्यत् । ज्ञातव्यम् । अवशिष्यते ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन । मैं परमेश्वर तैं अर्जुनके प्रति इस विज्ञान सहित ज्ञानकूं साधन फलादिकों सहित कथन करताहूं जिस चैतन्यरूप ज्ञानकूं जानिकै इहां पुनः कोई अन्य पदार्थ जानणेयोग्य नहीं बाकी रहै है ॥ २ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन । मेरे अद्वितीय परिपूर्ण स्वरूपकूं विषय करणेहारा जो यह ज्ञान है सो यह ज्ञान स्वभावतैं अपरोक्ष हुआभी असंभावना विपरीतभावनारूप प्रतिबंधके वशतैं आपणे फलकूं नहीं उत्पन्न करताहुआ परोक्ष कह्या जावै है । और श्रवणमननादिरूप विचारके

परिपाककरिकै ता असंभावनादिरूप प्रतिबंधके निवृत्त हुएतैं अनंतर तिसी वाक्यप्रमाणकरिकै उत्पन्न हुआ जो ज्ञान प्रतिबंधके अभावतैं आपणे फलकूं उत्पन्न करता हुआ अपरोक्ष कह्याजावै है,. इस रीतिसैं श्रवणमननरूप विचार करिकै जन्य होणेतैं सोईही ज्ञान विज्ञान कह्या जावै है। इस प्रकारके विज्ञान सहित तथा महावाक्यतैं जन्य इस अपरोक्षज्ञानकूं मैं यथार्थ वक्ता कृष्णभगवान् तुम्हारे ताई अशेषतैं कथन करताहूं। अर्थात् ता अपरोक्ष ज्ञानके जितनेक साधन तथा फल हैं तिन साधन फलादिकों सहित तिन ज्ञानकूं मैं तुम्हारे प्रति कथन करताहूं। जिस नित्य चैतन्य स्वरूप ज्ञानकूं जानिकै अर्थात् (अहं ब्रह्मास्मि) या वेदांत वाक्यजन्य मनकी वृत्तिका विषय करिकै इस व्यवहारभूमिविषे पुनः दूसरा कोई वस्तु तुम्हारेकूं जानणे योग्य रहैगा नहीं। तहां श्रुति-(येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति । कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति ।) इत्यादिक श्रुतियोंविषे एक परमात्मा देवके ज्ञानकरिकैही सर्व जगत्का ज्ञान होणा कथन कर्‍याहै। तात्पर्य यह-जैसे अज्ञानतें रज्जुविषे प्रतीत भये जे सर्प दंड माला जलधारा आदिक हैं तिन कल्पित सर्पादिकोंका ता रज्जुरूप अधिष्ठानके ज्ञान हुएतैं अनंतर बाध होइ जावै है तिसतैं अनंतर एक रज्जुही परिशेषतें रहैहै। तैसे अधिष्ठान सत् ब्रह्मविषे कल्पित जो यह सर्व प्रपंच है ता प्रपंचकाभी तिस अधिष्ठान ब्रह्मके ज्ञानतैं अनंतर बाध होइजावै है, तिसतैं अनंतर सो अधिष्ठान ब्रह्मही परिशेषतें रहैहै। ऐसे अधिष्ठान ब्रह्मके साक्षात्कार करिकैही तूं अर्जुन कृतार्थ होवैगा ॥ २ ॥

हे अर्जुन ! ऐसे महान् फलकी प्राप्ति करणेहारा यह हमारे स्वरूपका ज्ञान मैं परमेश्वरके अनुग्रहतैं विना अत्यंत दुर्लभ है इस प्रकार ता ज्ञानकी दुर्लभताकूं कथन करिकै अधिकारी जनोंकूं ता ज्ञानविषे प्रवृत्त करणेवासतै श्रीभगवान् ता ज्ञानकी स्तुति करैं हैं-

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ॥
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥३॥

(पदच्छेदः) मनुष्याणाम् । सहस्रेषु । कश्चित् । यतति । सिद्धये । यतताम् । अपि । सिद्धानाम् । कश्चित् । माम् । वेत्ति । तत्त्वतः ॥ ३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मनुष्योंके अनेकसहस्रोंविषे कोईएक मनुष्यही ज्ञानकी उत्पत्तिवासतै प्रयत्न करै है और तिन प्रयत्नकरणेहारे अधिकारी मनुष्योंके मध्यविषे भी कोई एक मनुष्यही मैं परमेश्वरकूं वास्तवस्वरूपतैं जानैहै ॥ ३ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! शास्त्रनैं प्रतिपादन कऱ्या जो ज्ञान है तथा कर्म है तथा ज्ञान कर्मके अनुष्ठान करणेकूं योग्य जितनेक ब्राह्मणादिक अधिकारी मनुष्य हैं तिन अनेक सहस्र मनुष्योंविषे कोई एक मनुष्यही पूर्वले अनेकजन्मोंके पुण्यकर्मोंके वशतैं नित्य अनित्य वस्तुके विवेकवाला हुआ अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा ज्ञानकी उत्पत्तिवासतै प्रयत्न करै है। इसप्रकार आत्मज्ञानकी प्राप्तिवासतै प्रयत्न करणेहारेभी जे साधक मनुष्य हैं तिन साधक मनुष्योंके अनेक सहस्रोंविषेभी कोई एक साधक मनुष्यही श्रवण मनन निदिध्यासनके परिपाकतैं अनंतर मैं परमेश्वरकूं साक्षात्कार करै है । शंका—हे भगवन् ! विष्णुकूं तथा रामकूं तथा आप कृष्णकूं देवता असुर मनुष्य आदिक बहुत प्राणी जानते हैं यातैं अनेक सहस्र मनुष्योंविषे कोई एक मनुष्यही हमारेकूं जानता है यह आपका कहणा संभवता नहीं । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (तत्त्वतः इति) हे अर्जुन ! यद्यपि शंख चक्र गदा पद्म या च्यारोंकूं धारण करणेहारे इस हमारे स्थूल चतुर्भुज स्वरूपकूं ते देवता मनुष्यादिक बहुत लोक जानते हैं तथापि यह हमारा वास्तवस्वरूप है नहीं, किंतु मायाकृत है। यातैं ते सर्व पुरुष हमारे वास्तवस्वरूपकूं जानते नहीं । और जे पुरुष ब्रह्मवेत्ता गुरुके उपदेशतैं मैं ब्रह्मरूपहूं या प्रकार आपणे प्रत्यक् आत्मासैं अभिन्नरूप करिकै मैं परमेश्वरकूं जानते हैं वे पुरुषही हमारे वास्तवस्वरूपकूं जानते हैं । इस प्रकार वास्तव स्वरूपतैं हमारेकूं जानणेहारा पुरुष

अनेक सहस्र मनुष्योंविषे कोई एकही निकसेगा यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। प्रथम तौ अनेक मनुष्योंके मध्यविषे आत्मज्ञानके साधनोंकूं अनुष्ठान करणेहारा पुरुषही परम दुर्लभ है और तिन ज्ञानसाधनोंके अनुष्ठान करणेहारे पुरुषोंके मध्यविषेभी ज्ञानरूप फलकूं प्राप्तहुआ पुरुष परम दुर्लभ है ऐसे ब्रह्मज्ञानका माहात्म्य कौन वर्णन करिसकैगा ॥ ३ ॥

इस प्रकार आत्मज्ञानकी स्तुति करिकै श्रोता पुरुषकूं ता ज्ञानके अभिमुख करिकै अब सर्वात्मत्वरूप हेतुकरिकै आत्माके परिपूर्णत्वकूं कथन करणेवासतै प्रथम अपर प्रकृतिकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं (भूमिरापः इति) अथवा (यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते) इस वचनकरिकै श्रीभगवान् एक ब्रह्मके ज्ञानतैं सर्वप्रपंचके ज्ञानकी प्रतिज्ञा करताभया है सो प्रतिज्ञा तबी सिद्ध होवै जबी ब्रह्मकूं सर्व जगत्का कारण अंगीकार करिये । काहेतैं लोकविषे उपादानकारणके ज्ञानकरिकैही ताके सर्वकार्योंका ज्ञान होवै है । जैसे एक मृत्तिकारूप कारणके ज्ञान हुएही ता मृत्तिकाके कार्यरूप घटशरावादिक सर्वका ज्ञान होवैहै कारणके ज्ञानतैं विना ताके सर्वकार्यका ज्ञान होवै नहीं । यातैं ता पूर्वली प्रतिज्ञाके उपपादन करणेवासतै श्रीभगवान् ता ज्ञानस्वरूप ब्रह्मतैं जड अजडरूप सर्वप्रपंचकी उत्पत्तिकूं (भूमिरापः) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै कथन करै हैं–

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ॥
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) भूमिः । आपः । अनलः । वायुः । खम् । मनः । बुद्धिः । एव । च । अहंकारः । इति । इयम् । मे । भिन्ना । प्रकृतिः । अष्टधा ॥ ४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन । पृथिवी जल तेज वायु आकाश मन बुद्धि निश्चय करिकै तथा अहंकार इसप्रकारतै मैं परमेश्वरकी यह प्रकृति अष्टप्रकार भेदवाली है ॥ ४ ॥

भा० टी०—वहां सांख्यशास्त्रवाले पंचतन्मात्रा अहंकार महत्तत्त्व अव्यक्त या अष्टोंकूं प्रकृति कहैं हैं । और पंचमहाभूत पंच कर्मइंद्रिय पंच ज्ञानइंद्रिय एक मन इन षोडशोंकूं विकार कहैं हैं । ते अष्टप्रकृति तथा षोडश विकार दोनों मिलिके चौवीस तत्त्व कहे जावैं हैं । वहां भूमि आदिक पंचशब्दों करिकै लक्षणावृत्तितैं पृथिवी आदिक पंचमहाभूतोंकी सूक्ष्म अवस्थारूप गंधादिक पंचतन्मात्रावोंका ग्रहण करणा । अर्थात् भूमि या शब्दकरिकै तौ गंधतन्मात्राका ग्रहण करणा । और आप या शब्दकरिकै रसतन्मात्राका ग्रहण करणा । और अनल या शब्दकरिकै रूपतन्मात्राका ग्रहण करणा। और वायु या शब्दकरिकै स्पर्शतन्मात्राका ग्रहण करणा । और खं या शब्दकरिकै शब्दतन्मात्राका ग्रहण करणा । और बुद्धि अहंकार यह दोनों शब्द तौ आपणे प्रसिद्ध अर्थकूंही बोधन करै है । और मन या शब्दकरिकै परिशेषतैं रहेहुए अव्यक्तका ग्रहण करणा । काहेतैं ता मनशब्दका प्रकृतिशब्दके साथि सामानाधिकरण्य है । यातै ता मनशब्दके स्वार्थका परित्याग करिकै अव्यक्तविषे लक्षणा करणी उचित है । अथवा लक्षणावृत्तितैं ता मनशब्दकरिकै ता मनके कारणरूप अहंकारका ग्रहण करणा । काहेतैं पूर्व गंधादिक पंचतन्मात्रावोंका कथन कऱ्याहै । तिन तन्मात्रावोंकी अहंकारतैंही उत्पत्ति होवैहै यातैं तन्मात्रावोंकी समीपतातै इहां मनशब्दकरिकै अहंकारकाही ग्रहण करणा उचित है । और बुद्धिशब्द तौ ता अहंकारके कारणरूप महत्तत्त्वकूं शक्तिरूप मुख्य वृत्तिकरिकैही कथन करै है । और अहंकारशब्दकी लक्षणावृत्ति करिकै सर्ववासनावोंसेयुक्त अविद्यारूप अव्यक्तका ग्रहण करणा । काहेतैं प्रवर्त्तकत्वादिक असाधारण धर्म अहंकार अव्यक्त दोनोंविषे तुल्यही रहैं हैं । यातैं अहंकार शब्दकरिकै ता अव्यक्तका ग्रहण करणा उचित है । इसप्रकार साक्षी आत्मा करिकै भास्यमान होणेतैं अपरोक्षरूप तथा परमेश्वरकी शक्तिरूप तथा अनिर्वचनीय स्वभाववाली तथा त्रिगुणात्मक ऐसी जा मायारूप प्रकृति है सा मायारूप प्रकृति पंचतन्मात्रा अहंकार महत्तत्त्व अव्यक्त या अष्टप्रकारों करिकै

भेदकूं प्राप्त हुई है। ता अष्टप्रकारकी प्रकृतिविषेही यह संपूर्ण जड प्रपंच अंतर्भूत है । यह व्याख्यान सांख्यशास्त्रकी रीतिसैं कथन करया । और वेदांतशास्त्रविषे तौ भूमिः आपः अनलः वायुः खं या पंच शब्दोंकरिकै अपंचीकृत पृथिवी आदिक पंचभूतोंकाही ग्रहण करणा । और बुद्धिशब्द-करिकै सृष्टिके आदिकालविषे परमेश्वरकी मायाका परिणामरूप ईक्षणका ग्रहण करणा । और अहंकार शब्दकरिकै ता मायाका परिणामरूप संकल्पका ग्रहण करणा ॥ ४ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे कथन करी जा क्षेत्ररूप अष्टप्रकारकी प्रकृति है ता प्रकृतिविषे अपरपणेकूं कथन करतेहुए श्रीभगवान् अब क्षेत्ररूप परा-प्रकृतिकूं कथन करैं हैं-

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ॥
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥५॥

(पदच्छेदः) अपरा । इयम् । इतः । तु । अन्याम् । प्रकृतिम् । विद्धि । मे । पराम् । जीवभूताम् । महाबाहो । यया । इदम् । धार्यते । जगत् ॥ ५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन । यह पूर्वउक्त अष्टप्रकारकी प्रकृति अपरा कहीजावे है अब इसअपराप्रकृतितैं विलक्षण मैं परमेश्वरकी जीवरूप परा प्रकृतिकूं तूं जान जिसैं पराप्रकृतिनैं यह सर्वजगत् धारणकरीताहै ५

भा० टी०-हे अर्जुन ! पूर्वश्लोकविषे कथन करी जा अचेतन वर्ग-रूप क्षेत्रनामा अष्टप्रकारकी प्रकृति है सा यह प्रकृति अपरा जानणी अर्थात् सा प्रकृति जड होणेतैं तथा परके अर्थ होणेतैं तथा संसारबंधरूप होणेतैं निकृष्टही है । और ता अचेतनवर्गरूप तथा क्षेत्ररूप अपराप्रकृतितैं विलक्षण तथा मैं तत्पदार्थरूप परमेश्वरका आत्मारूप जा चेतनजी-वात्मक क्षेत्रज्ञरूप प्रकृति है ता क्षेत्रज्ञरूप विशुद्ध प्रकृतिकूं तूं पराप्रकृति जान अर्थात् सर्वतैं उत्कृष्ट जान । इहां (इतस्तु) या वचनविषे स्थित

जो तु यह शब्द है सो तु शब्द पूर्वउक्त क्षेत्ररूप जडप्रकृतितैं इस क्षेत्रज्ञरूप चेतनप्रकृतिविषे अत्यंत विलक्षणताके बोधन करणेवास्तै है अर्थात् इन क्षेत्रक्षेत्रज्ञरूप दोनों प्रकृतियोंकी किसी अंशविषेभी एकता होइसकै नहीं । हे अर्जुन ! सर्वसंघातोंविषे प्रविष्ट हुई जा क्षेत्रज्ञनामा जीवरूप पराप्रकृति है ता परा प्रकृतिनेंही यह देह इंद्रियादिरूप जड जगत् धारण कऱ्या है । तहां श्रुति-(अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि ।) अर्थ यह-मैं परमात्मादेव इस आपणे जीवरूपवैं प्रवेश करिकै नामरूपकूं प्रगट करौं इति । ऐसी क्षेत्रज्ञनामा जीवरूप पराप्रकृतिनैंही यह सर्वजगत् धारण कऱ्या है । ता चेतनजीवतैं रहित कोईभी वस्तु किसी वस्तुके धारण करणेविषे समर्थ होवै नहीं ॥ ५ ॥

तहां पूर्व दो श्लोकों करिकै अपराप्रकृति तथा पराप्रकृति यह दो प्रकारकी प्रकृति कथन करी । अब ता दो प्रकारकी प्रकृतिविषे कार्यलिंगके अनुमान प्रमाणकूं दिखावते हुए श्रीभगवान् आपणेकूं ता प्रकृतिद्वारा सर्वजगत्के उत्पत्ति आदिकोंकी कारणता कथन करैं हैं-

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ॥
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) एतद्योनीनि । भूतानि । सर्वाणि । इति । उपधारय । अहम् । कृत्स्नस्य । जगतः । प्रभवः । प्रलयः । तथा ॥ ६

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह सर्व एक भूत इन दोनों प्रकृतियोंके कार्यरूप हैं इसप्रकार तूंनिश्चय कर यातैं मैं परमेश्वरही संपूर्ण जगत्के उत्पत्तिका कारण हूं तथा प्रलयका कारण हूं ॥ ६ ॥

भा०टी०-हे अर्जुन ! पूर्व अपरत्वरूप करिकै कथन करी जा क्षेत्रनामा प्रकृति तथा परत्वरूप करिकै कथन करी जा क्षेत्रज्ञनामा प्रकृति है ते दोनों प्रकृति हैं कारण जिनोंका तिनोंका नाम एतद्योनि है । ऐसा एतद्योनिरूप इन उत्पत्ति धर्मवाले चेतनअचेतनरूप सर्वभूतोंकूं तूं जाण । तात्पर्य यह-यह सर्व कार्य चेतनअचेतनकी ग्रंथिरूप है यातैं ता

कार्यरूप हेतुतैं तिनोंके प्रकृतिरूप कारणकूंभी चेतन अचेतनकी ग्रंथिरूप करिकै अनुमान कर। जिस कारणतैं कार्यकारणका समान स्वभावही लोकविषे देखणेमें आवै है तिस कारणतैं चेतन अचेतनकी ग्रंथिरूप कार्यतैं ताके चेतन अचेतनकी ग्रंथिरूप कारणका अनुमान संभव होइसकै है। इसप्रकार सर्वभूतोंका कारणरूप क्षेत्र–क्षेत्रज्ञनामा दो प्रकारकी प्रकृति मैं परमेश्वरका उपाधिरूप है यातें सर्वज्ञ तथा सर्वका ईश्वर तथा अनंतशक्तिवाला माया उपहित मैं परमेश्वरही तिस पूर्व उक्त प्रकृतिद्वारा इस चराचररूप सब जगत्के उत्पत्तिका कारण हूं तथा ता सर्वजगत्के विनाशका कारण हूं अर्थात् जैसे स्वप्नके पदार्थोंका उपादानकारण तथा द्रष्टा एकही होवै है तैसे मायाका आश्रय विषय होणेतैं मैं मायावी परमेश्वरही आपणी मायिक जगत्का उपादानकारण हूं तथा द्रष्टारूप हूं ॥ ६ ॥

जिस कारणतें मैं परमेश्वरही आपणी मायाशक्तिकरिकै इस सर्व जगत्के उत्पत्ति स्थिति लयका हेतु हूं तिस कारणतैंही परमार्थतैं मैं परमेश्वरतैं भिन्न कोई भी पदार्थ है नहीं इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं (मत्तः परतरमिति) अथवा (यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते) इस वचनकरिकै पूर्व एक आत्मवस्तुके ज्ञानतैं सर्वजगत्के ज्ञानकी प्रतिज्ञा करीथी। ता प्रतिज्ञाके उपपादन करणेवास्तै आत्माकूं सर्वजगत्का उपादानकारण कथन कर्‍या ता उपादानकारणपणे करिकै आत्माके निर्विकारस्वरूपकी हानि होवैगी। ऐसी शंकाके प्राप्तहुए श्रीभगवान् कहैं हैं–

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय ॥
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) मत्तः । परतरम् । न । अन्यत् । किंचित् । अस्ति । धनंजय । मयि । सर्वम् । इदम् । प्रोतम् । सूत्रे । मणिगणाः । इव ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरतें अन्य कोईभी पदार्थ परमार्थ सत्य नहीं है जैसे सूत्रविषे मणियोंका समूह ग्रथित है तैसे मैं परमेश्वरविषे यहसर्व जगत् ग्रंथित है ॥ ७ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! सर्व दृश्यप्रपंचाकार परिणामकूं प्राप्त हुई मायाका अधिष्ठानरूप तथा सर्व जगत्का प्रकाशक तथा सत्तास्फुरणरूप करिकै सर्व जगत्‌विषे अनुस्यूत तथा स्वप्रकाश परमानंद चैतन्य घन तथा परमार्थतें सत्यस्वरूप ऐसा जो मैं परमेश्वरहूं तिस मैं परमेश्वरते भिन्न दूसरा कोईभी पदार्थ परमार्थतें सत्य है नहीं। जैसे स्वप्नद्रष्टातें भिन्न स्वप्नके पदार्थ परमार्थतें सत्य हैं नहीं तथा मायावी पुरुषतें भिन्न मायिक पदार्थ परमार्थतें सत्य हैं नहीं। तथा शुक्ति अवच्छिन्न चैतन्यतें भिन्न कल्पित रजत परमार्थतें सत्य है तैसे मैं परमेश्वरविषे कल्पित यह सर्व जगत् वास्तवतें मेरेतें भिन्न नही है यह सर्व वार्त्ता (तदनन्यत्वमारंभणशब्दादिभ्यः) इस सूत्रके व्याख्यानविषे श्रीभाष्यकारोंनें विस्तारतें निरूपण करी है इति। और व्यवहारदृष्टि करिकै तौ यह सर्वजड प्रपंच मैं सत्‌रूप तथा स्फुरणरूप परमेश्वरविषेही ग्रथित है। अर्थात् मैं परमेश्वरकी सत्ताकरिकै यह सर्व जगत्‌सत्की न्याई प्रतीत होवै है तथा मेरे स्फुरणरूप करिकै स्फुरणकी न्याई प्रतीत होवै है। तहां यह सर्व प्रपंच चैतन्यविषे ग्रथित है इतने अंशमात्रविषे दृष्टान्तकूं कथन करैं हैं (सूत्रे मणिगणा इव इति) हे अर्जुन ! जैसे सूत्रविषे मणियोंका समूह ग्रथित होवै है तैसे सत्ता स्फुरणरूप मैं परमेश्वरविषे यह सर्व जगत् ग्रथित होवै है इति। अथवा (सूत्रे मणिगणा इव) इस वचनका यह अर्थ करणा हिरण्यगर्भरूप जो स्वप्नका द्रष्टा तैजस आत्मा है ताका नाम सूत्र है ऐसे सूत्रआत्माविषे जैसे स्वप्नविषे प्राप्तमणियोंका समूह ग्रथित होवै है तैसे मैं परमेश्वरविषे यह सर्वजगत् ग्रथित है इति। इस द्वितीयव्याख्यानविषे कारणकार्यभाव तथा द्रष्टादृश्यभाव इत्यादिक सर्व अंशोंविषे दृष्टांतका संभव होइ सकै

है और प्रथम व्याख्यान विषे तौ केवल ग्रथितपणेमात्रविषे सो दृष्टांत संभवै है इति। और किसी टीका विषे तौ इस श्लोकका याप्रकारका अर्थ कथन कर्याहै हेअर्जुन।सर्वज्ञ तथा सर्व शक्तिवाला तथा सर्वकारणरूप ऐसा जो मैं परमेश्वर हूँ तिस मैं परमेश्वरतैं भिन्न दूसरा कोई इस जगत्के उत्पत्ति संहारका स्वतंत्र कारण प्रसिद्ध है नहीं किंतु मैं परमेश्वरही इस जगत्के उत्पत्ति संहारका कारण हूं। जिस कारणतें मैं परमेश्वरही इस सर्व जगत्का कारण हूं तिस कारणतैं सर्व जगत्के कारणरूप मैं परमेश्वरविषेही यह कार्यरूप सर्व जगत् ग्रथित है मेरेतैं भिन्न अन्य किसीविषे यह जगत् ग्रथित है नहीं। जैसे मणियोंका समूह सूत्रविषे ही ग्रथित होवै है अन्य किसी विषे ग्रथित होवै नहीं। इहां सूत्रमणियोंका दृष्टांत केवल ग्रथितत्व-मात्रविषेही है कारणपणेविषे यह दृष्टांत संभवता नहीं। जिस कारणतैं सो सूत्र तिन मणियोंका कारणरूप है नहीं ता कारणपणेविषे तौ सुवर्णविषे कुण्डल कंकणादिक भूषणोंका दृष्टांत ही संभवै है इति। और किसी टीकाविषे तौ इस श्लोकका यह अर्थ कऱ्या है। व्यवहारकालविषे तौ मृत्तिकादिरूप कारणका तथा घटादिरूप कार्यका परस्पर भेद प्रतीत होवै है यातैं मृत्तिकादिरूप कारणतैं घटादिरूप कार्य पर है अर्थात् पृथक् है। और जैसे घटादिक कार्योंका सा मृत्तिका उपादानकारण है तैसे गौ अश्वादिक कार्योंका सा मृत्तिका उपादानकारण है नहीं। यातैं वे गौ अश्वादिक कार्य ता मृत्तिकातैं परतर हैं। तैसे मैं परमात्मादे-वतैं कोईभी कार्य परतर नहीं है अर्थात् जिस कार्यवस्तुका मैं परमेश्वर उपादानकारण नहीं हूं ऐसा कोई कार्यवस्तु है नहीं। इतने कहणेकरिकै प्रपंचविषे ब्रह्मका अव्यतिरेकपणा दिखाया। अब ता ब्रह्मविषे प्रपंचके व्यतिरेकपणेकूं दृष्टांतसहित कथन करैं हैं (मयि सर्वमिति) हे अर्जुन। जैसे परस्पर व्यावृत तथा सूत्रतैं व्यावृत जे मणियां हैं ते मणियां तिन सर्वमणियोंविषे अनुस्यूत सूत्रविषे ग्रथित होवैं हैं तैसे सत्तारूपकरिकै तथा स्फुरणरूप करिकै सर्वत्र अनुस्यूत जो मैं परमेश्वर हूं तिस मैं पर-

मेश्वरविषे यह परस्पर व्यावृत प्रपंच ग्रथित है और जैसे व्यावृत मणियोंतैं सर्वत्र अनुस्यूत सूत्र भिन्न होवै है वैसे इस व्यावृत प्रपंचतैं सर्वत्र अनुस्यूत मैं परमेश्वरभी भिन्न हूं। इस प्रकार सर्व प्रपंचतैं रहित मैं परमेश्वरविषे विकारिपणा संभवता नही इति। इसी व्याख्यानके अनुसार श्लोकके प्रारंभविषे अथवा इत्यादिक अवतरण कथन कऱ्या था ॥ ७ ॥

शंका—हे भगवन्! जलादिकोंका तौ रसादिकोंविषेही प्रोतपणा प्रतीत होवै है, यातैं मैं परमेश्वरविषेही यह सर्व जगत् प्रोत है यह आपका वचन कैसे संगत होवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए मैं परमेश्वरही रसादिरूपकरिकै स्थित हुआ हूं। यातैं रसादिकोंविषे जो जलादिकोंका प्रोतपणा है सो मैं परमेश्वरविषेही प्रोतपणा है। या प्रकारके उत्तरकूं पंच श्लोकों करिकै श्रीभगवान् कहै हैं—

रसोहमप्सु कौंतेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ॥
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥८॥

(पदच्छेदः) रसः। अहम्। अप्सु। कौंतेय। प्रभा। अस्मि। शशिसूर्ययोः। प्रणवः। सर्ववेदेषु। शब्दः। खे। पौरुषम्। नृषु ॥ ८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जलोंविषे जो रस है सो रस मैं हूं तथा चंद्रसूर्यविषे जा प्रभा है सा प्रभा मैं हूं तथा सर्ववेदोंविषे जो प्रणव है सो प्रणव मैं हूं तथा आकाशविषे जो शब्द है सो शब्द मैं हूं तथा सर्वनरोंविषे जो पौरुष है सो पौरुष मैं हूं ॥ ८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! सर्व जलोंविषे स्थित जो रसतन्मात्रारूप पुण्य मधुर रस है जो रस तिन सर्वजलोंका सारभूत है तथा तिन सर्वजलोंका कारणभूतहै तथा तिन सर्व जलोंविषे अनुस्यूत है सो रस मैं हूं अर्थात् ऐसे रसरूप मैं परमेश्वरविषेही ते सर्वजल प्रोत हैं। और चंद्रमाविषे तथा सूर्यविषे जो प्रभारूप प्रकाश है जिस प्रकाशकरिकै सर्वलोकोंक

व्यवहार सिद्ध होवै है सो प्रकाश मैं हूं अर्थात् तां सामान्य प्रकाशरूप मैं परमेश्वरविषेही ते चन्द्रमासूर्य प्रोतहैं । और सर्व वेदोंविषे अनुस्यूत जो ॐकाररूप प्रणव है सो प्रणव मैं हूं अर्थात् ता प्रणवरूप मैं परमेश्वरविषे ही ते सर्ववेद प्रोत हैं । तहां श्रुति-(तद्यथा शंकुना सर्वाणि पर्णानि संतृण्णानि एवमोंकारेण सर्वा वाक् संतृण्णा इति) अर्थ यह-जैसे सर्व पर्ण शंकुकरिकै ग्रथित हैं तैसे सर्व वेदोंके वचन ॐकारकरिकै ग्रथित हैं इति । और संपूर्ण आकाशविषे अनुस्यूत तथा ता आकाशकारणरूप जो शब्दतन्मात्रारूप पुण्यशब्द है सो शब्द मैं हूं अर्थात् ता शब्दरूप मैं परमेश्वरविषेही सो आकाश प्रोत है । और सर्वपुरुषोंविषे अनुस्यूत होइकै रह्या हुआ जो पुरुषत्व सामान्यरूप पौरुष है सो पौरुष मैं हूं अर्थात् ता पौरुषरूप मैं परमेश्वरविषेही ते सर्वपुरुष प्रोत हैं । इहां यह तात्पर्य है-जैसे सर्व शब्दोंविषे अनुगत शब्दत्व सामान्यविषे दुंदुभि शब्दत्वादिक विशेष प्रोत होवैं हैं तैसे रसादि सामान्यरूप मैं परमेश्वरविषेही जलादिक सर्व विशेष प्रोत हैं । या प्रकारकी रीति अगले च्यारिश्लोकोंविषेभी सर्वत्र जानणी । तहां दुंदुभि शंख वीणा यह तीन दृष्टांत आत्मपुराणके सप्तम अध्यायविषे हम विस्तारतैं कथन करिआये हैं इहां (रसोहमप्सु) इत्यादिक पंचश्लोकों करिकै श्रीभगवान्नैं जो आपणी विभूति कथन करी है । सो केवल ध्यान करणेवास्तै कथन करी है यातैं इस ध्येयस्वरूपविषे अत्यंत अभिनिवेश करणा नहीं ॥ ८ ॥

किंच-

पुण्यो गंधः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ॥
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) पुण्यः । गंधः । पृथिव्याम् । च । तेजः । च । अस्मि । विभावसौ । जीवनम् । सर्वभूतेषु । तपः । च । अस्मि । तपस्विषु ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पृथिवीविषे जो पुण्य गंधहै सो गंध मैं हूं तथा अग्निविषे जो तेज है सो मैं हूं तथा सर्वभूतोंविषे जो जीवनहै सो मै हूं तथा तपस्वी पुरुषोंविषे जो तपहै सो मै हूं ॥ ९ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! सर्व पृथिवीविषे सामान्यरूप तथा सर्व पृथिवीविषे अनुस्यूत तथा ता पृथिवीका कारणरूप ऐसा जो तन्मात्रारूप पुण्य गंधहै अर्थात् विकारभावतैं रहित जो सुरभि गंध है सो पुण्यगंध मैं हूं अर्थात् ता पुण्यगंधरूप मैं परमेश्वरविषेही सा पृथिवी प्रोत है इहां (पुण्यो गंधः पृथिव्यां च) या वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार रसादिकोंविषेभी ता पुण्यत्वके समुच्चय करावणेवासतै है । तात्पर्य यह–शब्द स्पर्श रूप रस गंध या पांचोंविषे स्वभावतैं तौ पुण्यत्वही रहे हैं और प्राणियोंके अधर्मविशेषतैं तिन शब्दादिकोंविषे अपुण्यत्व होवै है । स्वभावतैं सो अपुण्यत्व तिन शब्दादिक विषयोंविषे होवै नहीं । इहां असुरभि आदिक विकार भावतैं रहितपणेका नाम पुण्यत्व है इति । और अग्निविषे जो तेज है सो तेज सर्वपदार्थोंके दहन प्रकाशनका सामर्थ्यरूप है तथा उष्ण स्पर्शसहित है तथा श्वेत भास्वररूप है तथा,सर्व अग्निविषे अनुस्यूत है सो तेज मैं हूं अर्थात् तिस तेजरूप मैं परमेश्वरविषे ही सो अग्नि प्रोत है । यहां (तेजश्चास्मि) या वचनविषे स्थित जो चकार है, ता चकारतैं वायुके स्पर्शकाभी ग्रहण करणा अर्थात् उष्ण स्पर्शकरिकै आतुर पुरुषोंकूं शीतलताकी प्राप्ति करणेहारा जो वायुका शीतस्पर्श है सो शीतस्पर्शभी मैंही हूं । ता शीतस्पर्शरूप मैं परमेश्वरविषेही सो वायु प्रोत है इति । और स्थावर जंगमरूप सर्व प्राणियोंविषे स्थित जो प्राणोंका धारणरूप आयुषरूप जीवन है, सो आयुषरूप जीवन मैं हूं अर्थात् ता आयुषरूप मैं परमेश्वरविषेही ते सर्व प्राणी प्रोत हैं अथवा (जीवत्यनेनेति जीवनम्) । अर्थ यह–जीवनकूं प्राप्त होवै जिसकरिकै ताका नाम जीवन है । या प्रकारकी व्युत्पत्ति करिकै सो जीवनशब्द विराट्रूप समष्टि अन्नका वाचक है । तिस अन्नरूप मैं पर-

मेश्वरविषे ही ते सर्वभूत प्रोत हैं। और दिनदिनविषे तप करिकै युक्त जे वानप्रस्थादिक हैं तिन वानप्रस्थादिक तपस्वियोंविषे स्थित जो शीत उष्ण क्षुधा पिपासा इत्यादिक द्वंद्वोंके सहन करणेका सामर्थ्यरूप तप है सो तप मैं हूं। अर्थात् तिस तपरूप मैं परमेश्वरविषेही ते तपस्वी पुरुष प्रोत हैं। इहां (तपश्चास्मि) या वचनविषे स्थित जो चकार है ता चकारकरिकै अंतर बाह्य सर्व तपोंका ग्रहण करणा । तहां चित्तकी एकाग्रतारूप अंतर तप है। और जिह्वा उपस्थादिक इंद्रियोंका निग्रहरूप बाह्य तप है ॥ ९ ॥

हे भगवन् ! (आकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी) इस श्रुतिनैं आकाशतैं वायुकी उत्पत्ति कथन करी है । और वायुतैं अग्निकी उत्पत्ति कथन करी है। और अग्नितैं जलकी उत्पत्ति कथन करी है। और जलतैंपृथिवीकी उत्पत्ति कथन करी है। और कार्यका आपणे आपणे कारणविषेही प्रोतपणा होवै है यातैं ते सर्व भूत आपणे आपणे कारणविषेही प्रोत हैं । अकारणरूप तुम्हारेविषे कोईभी पदार्थ प्रोत नहीं है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए (आत्मन आकाशः संभूतः यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते)इत्यादिक श्रुतियां मैं परमेश्वरतैंही सर्व भूतोंकी उत्पत्तिकूं कथन करैं हैं । यातैं मैं परमेश्वरही सर्वभूतोंका कारण हूं या प्रकारका उत्तर श्रीभगवान् कथन करैं हैं-

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ॥
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्॥१०॥

(पदच्छेदः) बीजम् । माम् । सर्वभूतानाम् । विद्धि । पार्थ । सनातनम् । बुद्धिः । बुद्धिमताम् । अस्मि । तेजः । तेजस्विनाम् । अहम् ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! उत्पत्तितैं रहित मैं परमेश्वरकूं तूं सर्वभूतोंका कारण जान तथा बुद्धिमान् पुरुषोंकी जो बुद्धि है सा बुद्धि मैं हूं तथा तेजस्वी पुरुषोंका जो तेज है सो तेज मैं हूं ॥ १० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! स्थावर जंगमरूप सर्वभूतोंका जो एक सनातन बीज है अर्थात् आपणी उत्पत्तिविषे बीजांतरकी अपेक्षातैं रहित जो सर्वभूतोंका एक नित्य कारण है जो कारण व्यक्ति व्यक्ति विषे भेदवाला है नहीं तथा अनित्य है नहीं ऐसा अव्याकृतनामा सर्व जगत्का बीज कारणरूप मैं परमेश्वरकूंही तूं जान मैं परमेश्वरतैं भिन्न दूसरा कोई वस्तु सर्वभूतोंका बीजरूप है नहीं । और श्रुतिविषे आकाशादिकोंतैं जो वायुआदिकोंकी उत्पत्ति कथन करी है सोभी केवल जड आकाशादिकोंतैं ही वायु आदिकोंकी उत्पत्ति कथन करी नहीं किंतु आकाशादि उपहित मैं परमेश्वरतैंही वायु आदिकोंकी उत्पत्ति कथन करी है । यातैं सर्वभूतोंका अव्याकृतनामा बीजरूप मैं परमेश्वरविषे तिन सर्व भूतोंका प्रोतपणा युक्त है । किंवा तत्त्वअतत्त्ववस्तु विवेकका जो सामर्थ्य है ताका नाम बुद्धि है तिस बुद्धिवाले पुरुषोंका नाम बुद्धिमत् है । ऐसे बुद्धिमान् पुरुषोंकी सा बुद्धि मैं हूं अर्थात् ता बुद्धिरूप मैं परमेश्वरविषेही ते बुद्धिमान् पुरुष प्रोत हैं । और अन्य शत्रुवोंके अभिभव करणेका जो सामर्थ्य है जिस सामर्थ्यकरिकै यह पुरुष अन्य प्राणियोंकरिकै अभिभवकूं प्राप्त होता नहीं ता सामर्थ्यका नाम तेज है ऐसे तेजवाले पुरुषोंका नाम तेजस्वी है तिन तेजस्वी पुरुषोंका सो तेज मैं हूं अर्थात् ता तेजरूप परमेश्वरविषेही ते तेजस्वी पुरुष प्रोत है ॥ १० ॥

किंच—

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ॥
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ॥११॥

(पदच्छेदः) बलम् । बलवताम् । च । अहम् । कामरागविवर्जितम् । धर्माविरुद्धः । भूतेषु । कामः । अस्मि । भरतर्षभ ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! बलवान् पुरुषोंका कामरागतैं रहित जो बल है सो बल मैं हूं तथा सर्वप्राणियोंविषे धर्मतै अविरुद्ध जो काम है सो काम मैं हू ॥ ११ ॥

भा० टी०—अप्राप्त जो विषय है ता विषयकी प्राप्ति करणेहारे कारणके अभाव हुएभी यह विषय हमारेकूं प्राप्त होवै या प्रकारकी जा चित्तकी वृत्तिविशेष है ताका नाम काम है और प्राप्त जो विषय है ता विषयके नाश करणेहारे कारणक विद्यमान हुएभी यह विषय नाशकूं नहीं प्राप्त होवै या प्रकारकी जा रंजनात्मक चित्तकी वृत्तिविशेष है ताका नाम राग है ऐसे कामरागतें रहित जो बल है अर्थात् सर्व प्रकारतें ता कामरागकूं नहीं उत्पन्न करणेहारा तथा रजतमतें रहित जो स्वधर्मके अनुष्ठान वास्तै देहइंद्रियादिकोंके धारणका सामर्थ्यरूप बल है ऐसे सात्विक बलवाले पुरुषोंका नाम बलवत् है ऐसे संसारतैं पराङ्मुख बलवान् पुरुषोंका सो बल मैं हूं अर्थात् ता सात्त्विक बलरूप मैं परमेश्वरविषेही ते बलवान् पुरुष प्रोत है। तात्पर्य यह—सो कामरागतैं रहित बलही मैं परमेश्वरका स्वरूपभूत करिकै ध्यान करणेयोग्य है ता कामरागकूं उत्पन्न करणेहारा जो विषयासक्त पुरुषोंका बल है सो बल मैं परमेश्वरका स्वरूपभूतकरिकै ध्यान करणे योग्य नहीं है इति । अथवा (कामरागविवर्जितम्) या वचनविषे स्थित जो रागशब्द है ता रागशब्द करिकै क्रोधकाही ग्रहण करणा। किंवा धर्मशास्त्रका नाम धर्म है ता धर्मशास्त्रतैं अविरुद्ध अर्थात् ता धर्मशास्त्रते नहीं निषेध कऱ्या हुआ अथवा धर्मके अनुकूल ऐसा जो सर्व भूतप्राणियोंविषे शास्त्रके अनुसार स्त्री पुत्रादिक पदार्थ विषयक अभिलाषारूप काम है सो काम मैं हूं अर्थात् ता शास्त्र अविरुद्ध कामरूप मैं परमेश्वरविषेही ते कामयुक्त सर्व प्राणी प्रोत हैं ११

हे अर्जुन। इस प्रकार बहुत पदार्थोंके गणनेसे क्या प्रयोजन है यह सर्व जगत् मैं परमेश्वरतैंही उत्पन्न हुआ मैं परमेश्वरविषेही प्रोत है । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ॥
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥१२॥

(पदच्छेदः) ये । च । एवं । सात्त्विकाः । भावाः । राजसाः । तामसाः । च । ये । मत्तः । एव । इति । तान् । विद्धि । न । तु । अहम् । तेषु । ते । मयि ॥ १२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जे कोई अन्यभी सात्त्विक पदार्थ हैं तथा जेकोइ राजस पदार्थ हैं तथा तामस पदार्थ हैं तिन सर्वपदार्थोंकूं मैं परमेश्वरतें ही पूर्वउक्तरीतिसें उत्पन्न हुआ जान तौभी मैं परमेश्वर तिनपदार्थोंविषे नहीं हूं ते पदार्थ तौ मैं परमेश्वरविषेही हैं ॥ १२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पूर्व उक्त पदार्थोंतें भिन्न जे कोई दूसरेभी अन्तःकरणके परिणामरूप शमदमादिक सात्त्विक भाव हैं तथा हर्षदर्पादिक राजस भाव हैं तथा शोकमोहादिक तामस भाव हैं जे सात्त्विक राजस तामस भाव इन प्राणियोंकूं विद्याकर्मादिकोंके वशतें उत्पन्न होवैं हैं तिन सर्वभावोंकूं (अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः) इत्यादिक वचन उक्तरीतिसें मैं परमेश्वरतैंही उत्पन्न हुआ जान । अथवा सत्त्वगुण है प्रधान जिनोंविषे ऐसे जे सात्त्विक भाव हैं । जैसे देव ऋषि ब्राह्मण शर्करा इत्यादिक पदार्थ हैं । तथा रजोगुण है प्रधान जिन्होंविषे ऐसे जे राजस भावहैं जैसे गंधर्व यक्ष क्षत्रिय मिरच इत्यादिक पदार्थ हैं । तथा तमोगुण है प्रधान जिन्हों- विषे ऐसे जे तामस भाव हैं । जैसे राक्षस क्रव्याद शूद्र गृंजन इत्यादिक पदार्थ है । ते सर्वपदार्थ मैं परमेश्वरतैंही उत्पन्न हुए जान । हे अर्जुन ! इस प्रकार ते सर्वपदार्थ मैं परमेश्वरतैं उत्पन्नभी हुएहैं तौभी मै परमेश्वर तिन जडपदार्थोंविषे आधेयरूपकरिकै स्थित नहीं हूं अर्थात् जैसे रज्जु- रूप अधिष्ठान कल्पित सर्पादिकोंके विकल्पोंकरिकै दूषित होवैं नहीं तैसे मैं परमेश्वरभी तिन अनात्मपदार्थोंके वशवर्ती तथा तिनोंके विकारोंकरिकै दूषित होता नहीं । जैसे संसारी जीव तिनोंके वशवर्ति तथा तिनोंके विकारों करिकै दूषित होवैं हैं तैसे मै परमेश्वर दूषित होता नहीं । और ते सर्व जडपदार्थ तौ जैसे रज्जुविषे सर्पादिक कल्पित होवैं हैं तैसे मैं

परमेश्वरविषेही कल्पित है। अर्थात् मैं परमेश्वरतैं सत्तास्फूर्तिकूं प्राप्तहुए जे सर्व पदार्थ मैं परमेश्वरकेही अधीन हैं ॥ १२ ॥

हे भगवन्! (रसोहमप्सु कौंतेय) इत्यादिक वचनोंकरिकै आपनैं सर्व जगत्कूं आपणा स्वरूप कह्या। तथा आपणेकूं स्वतंत्र कह्या तथा नित्य शुद्ध मुक्तस्वभाव कह्या। ऐसे स्वतंत्र नित्य शुद्ध मुक्तस्वभाव आप परमेश्वरतैं अभिन्न जो यह जगत् है तिस जगत्विषे संसारीपणा कैसे संभवैगा किंतु नहीं संभवैगा। तहां तिस हमारे स्वतंत्र नित्यशुद्ध मुक्तस्वरूपके अज्ञानतैंही इस जगत्विषे सो संसारीपणा होवै है वास्तवतैं नहीं। ऐसा वचन जो आप कहो तौभी तिस आपके स्वरूपका अज्ञान इस जगत्विषे किस कारणतैं है? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता आपणे स्वरूपके अज्ञानविषे कारणकूं कथन करै हैं-

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ॥
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥१३॥

(पदच्छेदः) त्रिभिः। गुणमयैः। भावैः। एभिः। सर्वम्। इदम्। जगत्। मोहितम्। न। अभिजानाति। माम्। एभ्यः। परम्। अव्ययम् ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! इनपूर्व उक्त सुखमय तीनप्रकारके भावोंने यह सर्व जगत् मोहित कऱ्याहै या कारणतैं इनेगुणमयभावोंते परे तथा अविक्रिय मैं परमेश्वरकूं नहीं जानताहै ॥ १३ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन! पूर्व कथन करे जे सत्त्व रज तम या तीन गुणोंके विकाररूप तीन प्रकारके भावपदार्थ हैं तिन तीन प्रकारके पदार्थोंनेंही यह सर्व प्राणीमात्र मोहित करे हैं अर्थात् नित्य अनित्य वस्तुके विवेककी अयोग्यताकूं प्राप्त करे है। या कारणतैंही यह प्राणी मैं परमात्मादेवकूं जानते नहीं। कैसा हूं मैं परमेश्वर इन तीन प्रकारके भावोंतैं पर हूं अर्थात् तिन सर्वभावोंके कल्पनाका अधिष्ठानरूप हूं। तथा तिन सर्वभावोंतैं अत्यंत विलक्षण हूं। ता विलक्षणताविषे हेतुग-

भित विशेषण कहें हैं (अव्ययमिति) अर्थात् जन्ममरणादिक सर्व विकारोंतें रहित हूं । तथा इस दृश्य प्रपंचतें रहित हूं तथा आनंदघन हूं तथा आपणे स्वयं ज्योतिरूप करिकै प्रकाशमान हूं तथा सर्व प्राणियोंका आत्मारूप हूं ऐसे अत्यंत समीपभी मैं परमेश्वरकूं यह प्राणी जानते नहीं ता प्रत्यक् अभिन्न मैं परमेश्वरके अज्ञानतेंही यह सर्व प्राणी वारंवार जन्ममरणरूप संसारकूं प्राप्त होवैं हैं । यातें इन अविवेकी जनोंके बहुत दौर्भाग्य हैं इति । तहां सत्त्वादिक गुणमय भावोंनैं यह सर्व प्राणी मोहकूं प्राप्त करीते हैं यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथन करी है । तहां श्लोक— (इंद्रियाभ्यामजय्याभ्यां द्वाभ्यामेव हतं जगत् । अहो उपस्थजिह्वाभ्यां ब्रह्मादिमशकावधि) अर्थ यह—अल्प यत्नकरिकै जयकरणेकूं अशक्य जो उपस्थ इंद्रिय है तथा जिह्वा इंद्रिय है तिन दोनों इंद्रियोंनैंही ब्रह्मातें आदिलैके मशकपर्यंत यह सर्व जगत् हनन कऱ्या है, यह बडा आश्चर्य है । यद्यपि आपणे आपणे विषयोंविषे प्रवृत्त हुए नेत्रादिक सर्वइंद्रिय इस पुरुषके अनर्थका हेतु हैं तथापि तिन सर्व इंद्रियोंविषे उपस्थ जिह्वा यह दोनों इंद्रिय अत्यंत प्रबल हैं, यातें तिन दोनों इंद्रियोंकाही इहां ग्रहण कऱ्या है ॥ १३ ॥

हे भगवन् ! पूर्व कथन करे जे अनादि सिद्ध मायाके सत्त्वादिक तीन गुण है तिन तीन गुणों करिकै संबद्ध हुए इस जगत्कूं स्वतंत्रताके अभाव होणेतें तिस त्रिगुणात्मक मायाके निवृत्त करणेका सामर्थ्य है नहीं । यातें कदाचित् भी ता मायाकी निवृत्ति नहीं होवैगी । काहेतें यथार्थवस्तुके विवेकका जो असामर्थ्य है ता असामर्थ्यका हेतुरूप सा त्रिगुणात्मक माया सनातनही है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए अन्य उपायकरिकै यद्यपि ता मायाकी निवृत्ति नहीं होवै है तथापि एक भगवत्की शरणताकरिकै प्राप्त हुए तत्त्वज्ञानतें ता मायाकी निवृत्ति संभवै है । या प्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ॥
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरंति ते ॥ १४ ॥

(पदच्छेदः) दैवी । हि । एषा । गुणमयी । मम । माया । दुरत्यया । माम् । एवं । ये । प्रपद्यन्ते । मायाम् । एताम् । तरंति । ते ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरकी यह सत्त्वादिगुणरूप प्रसिद्ध दैवी माया दुरतिक्रमा है जे पुरुष मैं परमेश्वरकूंही साक्षात्कार करे हैं ते पुरुषही इस मायाकूं नाशकरे हैं ॥ १४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! (एको देवः सर्वभूतेषु गूढः) इत्यादिक श्रुतियोंनें प्रतिपादन कन्या जो स्वप्रकाश चैतन्य आनंदस्वरूप देव है जो देव जीव ईश्वर विभागतें रहित है ता शुद्धचैतन्यमात्र देवके आश्रयरूपकरिकै तथा विषयरूपकरिकै जा माया कल्पना करीजावै है ताका नाम दैवी है अर्थात् जैसे अंधकार जा गृहके आश्रित रहै है ता गृहकूं ही आवृत करै है तैसे यह मायाभी जिस शुद्धचैतन्यदेवके आश्रित रहै है तिसी शुद्धचैतन्यदेवकूं विषय करै है । इस प्रकार चैतन्य देवके आश्रित तथा चैतन्यदेवविषयक होणेतें सा माया दैवी कहीजावै है । यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथन करी है । तहां श्लोक—(आश्रयत्वविषयत्वभागिनी निर्विभागचितिरेव केवला । पूर्वसिद्धतमसो हि पश्चिमो नाश्रयो भवति नापि गोचरः ॥) अर्थ यह—जीव ईश्वर विभागतें रहित केवल चैतन्यमात्रही अनादिसिद्ध अज्ञानके आश्रयत्वकूं तथा विषयत्वकूं प्राप्त होवै है जिस कारणतें ता अनादिसिद्ध अज्ञानका ता अज्ञानके पश्चात् भावी कोईभी पदार्थ आश्रय तथा विषय होवै नहीं इति। ता दैवीमाया (मामहं न जानामि) अर्थ यह—मैं आपणेकूं नहीं जानवाहूं या प्रकारके साक्षीरूप प्रत्यक्षकरिकै सिद्ध होणेतें अपलाप करीजावै नहीं । तथा जा माया स्वप्नभ्रमादिकोंकी अन्यथा अनुपपत्तिरूप अर्थापत्तिरूप अर्थापत्तिप्रमाणकरिकै सिद्ध है । यह मायाकी प्रसिद्धि (एषा

हि) या दोनों शब्दोंकरिकै कथन करी है तहां एषा या शब्दकरिकै तौ साक्षी प्रत्यक्षसिद्धता कथन करी है। और हि या शब्दकरिकै अर्थापत्तिप्रमाणसिद्धता कथन करी है। तथा जा माया गुणमयी है अर्थात् सत्त्व रज तम या तीन गुणरूप है। तात्पर्य यह—जैसे त्रिगुणकरीहुई रज्जु अत्यंत दृढ होणेतें पुरुषोंके बंधनका हेतु होवै है तैसे अत्यंत दृढ होणेतें यह त्रिगुणात्मक मायाभी इन जीवोंके बंधनका हेतु है। इस अर्थके बोधन करणेवासतैंही श्रीभगवान्नें ता मायाका गुणमयी यह विशेषण कथन कऱ्या है। ऐसी जा मै परमेश्वरकी माया है अर्थात् सर्व जगत्का कारणरूप तथा सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिसंपन्न तथा मायावी ऐसा जो मैं परमेश्वर हूं तिस हमारे गृहीपुरुषके गृहादिकोंकी न्याई ममत्वका विषयीभूत जा माया है जा माया मैं परमेश्वरके अधीन होणेतें इस जगत्के उत्पत्ति आदिकोंका निर्वाहकरणेहारी है तथा जा माया तत्त्ववस्तुके भानका प्रतिबंधकरिकै अतत्त्ववस्तुके भानका हेतुरूप आवरणविक्षेपशक्तिवाली अविद्यारूप है। तथा जा माया सर्वजगत्की प्रकृतिरूप है। तहां श्रुति—(मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।) अर्थ यह—इस सर्व जगत्का माया उपादान कारण है और ता मायावाला महेश्वर कह्या जावै है इति। इहां यह प्रक्रिया है जीव ईश्वर जगत् इत्यादिक विभागतें रहित जो शुद्ध चैतन्य है ता शुद्ध चैतन्यविषे अध्यस्त जा अनादि मायारूप अविद्या है जा अविद्या सत्त्वगुणकी प्रधानताकरिकै अत्यंत स्वच्छ है। ऐसी स्वच्छ अविद्या जैसे स्वच्छदर्पण मुखके आभासकूं ग्रहणकरै है। तैसे चेतनके आभासकूं ग्रहण करै है। तहां जैसे दर्पणरूप उपाधिके श्यामतादिक दोष मुखरूप बिंबकूं स्पर्श करैं नहीं तैसे ता अविद्यारूप उपाधिके दोषोंकरिकै असंबद्ध होणेतें परमेश्वर तौ बिंबस्थानीय है और जैसे दर्पणविषे स्थित प्रतिबिंब ता दर्पणके श्यामतादिक दोषोंकरिकै संबद्ध होवै है तैसे ता अविद्यारूप उपाधिके दोषोंकरिकै संबद्ध होणेतें जीवात्मा प्रतिबिंबस्थानीय है। तहां तिस बिंब-

रूप ईश्वरतैंही ता जीवके भोगवासतै आकाशादिक क्रमकरिकै शरीर इंद्रियादिक संघात तथा ता संघातका भोग्यरूप संपूर्ण प्रपंच उत्पन्न होवै है । या प्रकारकी कल्पना करी जावै है । तहां जैसे बिंब प्रतिबिंब या दोनोंविषे शुद्धमुख अनुगत होवै है तैसे ईश्वर जीव या दोनोंविषे अनुगत जो मायाउपहित चैतन्य है सो चैतन्य साक्षी कह्या जावै है, तिस साक्षी चैतन्यनैं ही आपणेविषे अध्यस्त माया तथा ता मायाका कार्यरूप सर्व प्रपंच प्रकाश करीता है । यातै ता साक्षीचैतन्यके अभिप्रायकरिकै तौ श्रीभगवान्नै ता अविद्यारूप मायाकूं दैवी या नामकरिकै कथन कऱ्या है । और ता बिंबरूप ईश्वरके अभिप्रायकरिकै श्रीभगवान्नैं ता मायाकूं (' मम माया) या नामकरिकै कथन कऱ्या है । यद्यपि ता एक अविद्याविषे प्रतिबिंबरूप एकही जीव संभवै है तथापि ता एक अविद्याविषे स्थित अंतःकरणके संस्कार भिन्नभिन्न है तिन संस्कारोंके भेदकरिकै अंतःकरणरूप उपाधिवाले जीवका इहां गीताविषे तथा श्रुतिविषे भेद कथन कऱ्या है, तहां इस गीताविषे तौ (मां ये प्रपद्यते । दुष्कृतिनो मूढा न प्रपद्यंते । चतुर्विधा भजंते माम्) इत्यादिक वचनोंकरिकै ता जीवका भेद कथन कऱ्या है । और श्रुतिविषे तौ–(तद्यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तदभवत्तथा ऋषीणां तथा मनुष्याणाम् ।) इत्यादिक वचनोंकरिकै ता जीवका भेद कथन कऱ्या है । और ता अंतःकरणरूप उपाधिके भेदका नहीं विचार करिकै तौ जीवत्वका प्रयोजक अविद्यारूप उपाधिके एकत्व होणेतैं ता जीवकाभी एकत्वरूप करिकै ही इस गीताविषे तथा श्रुतिविषे कथन कऱ्या है । तहां इस गीताविषे तौ (क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत । प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि । ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ॥) इत्यादिक वचनोंकरिकै ता जीवका एकत्व कथन कऱ्या है । और श्रुतिविषे तौ (ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्तदात्मानमेव वेदाहं ब्रह्मास्मीति तस्मात्सर्वमभवत् । एको देवः सर्वभूतेषु गूढः । अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य । वालाग्रशतभागस्य

शतधा कल्पितस्य च । भागो जीवः स विज्ञेयः स चानंत्याय कल्पते ॥) इत्यादिक वचनोंकरिकै ता जीवका एकत्व कथन कऱ्या है । यद्यपि दर्पणविषे स्थित जो चैत्रनामा पुरुषका प्रतिबिंब है सो प्रतिबिंब आपणेकूं तथा परकूं जाणता नहीं, काहेतैं जडचेतनका समुदायरूप जो चैत्रनामा पुरुष है ता चैत्रपुरुषके शरीररूप अचेतनअंशकाही ता दर्पणविषे प्रतिबिंब होवै है । चेतन अंशका ता दर्पणविषे प्रतिबिंब होवै नहीं । यातैं जड होणेतैं सो प्रतिबिंब आपणेकूं तथा परकूं जाणता नहीं तथापि अविद्याविषे जो चेतनका प्रतिबिंब है सो प्रतिबिंब चेतनरूप होणेतैं आपणेकूं तथा परकूं जाणताही है काहेतैं प्रतिबिंबपक्षविषे सो प्रतिबिंब मिथ्या होवै नहीं, किंतु ता बिंब चैतन्यविषे उपाधिस्थत्वमात्रही कल्पित होवै है । और आभासपक्षविषे तौ यद्यपि सो चिदाभास शुक्तिरजतादिकोंकी न्याईं अनिर्वचनीयही उत्पन्न होवै है तथापि सो चिदाभास घटादिक जडपदार्थोंतैं विलक्षणही होवै है यातैं ता चिदाभासविषेभी आपणा ज्ञान तथा परका ज्ञान संभवै है । ऐसा प्रतिबिंबरूप जीव जबपर्यंत आपणे परमेश्वररूप बिंबके साथि आपणी एकताकूं नहीं जानै है तब पर्यंत जैसे जलविषे स्थित सूर्य ता जलके कंपादिकविकारोंकूं प्राप्त होवै है तैसे सो प्रतिबिंबरूप जीवभी ता अविद्यारूप उपाधिके सहस्रविकारोंकूं अनुभव करै है इस सर्व अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करै हैं (मम माया दुरत्यया इति) हे अर्जुन ! बिंबभूत मैं परमेश्वरके ऐक्यसाक्षात्कारतें विना यह मेरी माया तरणेकूं अशक्य है । यातैं यह माया दुरत्यया है यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है । तहां श्रुति–(यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यंति मानवाः । तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यांतो भविष्यति) । अर्थ यह–जिस कालविषे यह मनुष्य चर्मकी न्याईं इस आकाशकूं इकठा करिलेवैंगे तिस कालविषे मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारतैं परमात्मादेवकूं न जानिकै भी अविद्यादिक सर्वदुःखका नाश होवैगा । तात्पर्य यह–जैसे चर्मकी न्याईं निरवयव आकाशका इकठा करणा अत्यंत अशक्य है तैसे ब्रह्मसाक्षात्कारतैं विना

अविद्यादिक दुःखका नाश करणाभी अत्यंत अशक्य है इति । इसी कारणतैं सो जीव अंतःकरणावच्छिन्न होणेतैं वा अंतःकरणसैं संबद्ध पदार्थोंकूं नेत्रादिक इंद्रियद्वारा प्रकाश करताहुआ अल्पज्ञ कह्या जावैहै । तिस कारणतैंही सो जीव मैं जानताहूं मैं करताहूं मैं भोक्ताहूं इत्यादिक अध्यासरूप सहस्र अनर्थोंका पात्र होवैहै, और सोईही प्रतिबिंबरूप जीव जबी आपणे बिंबभूत ईश्वरका आराधन करैहै, अर्थात् जो बिंबरूप ईश्वर अनंतशक्तिवाला है तथा अविद्यारूप मायाका नियंता है तथा सर्वप्रपंचकूं जानणैहारा है तथा सर्व शुभ अशुभ कर्मके फलका प्रदाता है तथा परिपूर्ण आनंदघनमूर्ति है तथा भक्तजनोंके उद्धार करणेवासते अनेक अवतारोंकूं धारण करैहै, तथा सर्वका परमगुरुरूप है ऐसे बिंबभूत परमेश्वरकूं यह प्रतिबिंबरूप जीव जबी सर्वकर्मोंका समर्पण करिकै आराधन करै है तबी बिंबविषे समर्पणकरेहुए गुणोंका प्रतिबिंबविषे भान होणेतैं यह जीव सर्व पुरुषार्थोंकूं प्राप्त होवैहै । यह वार्त्ता प्रह्लादनैंभी कथन करी है । तहां श्लोक-

(नैवात्मनः प्रभुरयं निजलाभपूर्णो मानं जनादविदुषः करुणो वृणीते । यद्यज्जनो भगवते विदधीत मानं तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः ।)

अर्थ यह-दर्पणविषे प्रतिबिंबितमुखविषे जबी तिलकादिरूप श्री अपेक्षित होवैहै तबी बिंबभूत मुखविषेही ते तिलकादिक चिह्न करेजावैं हैं । वा बिंबभूत मुखविषे करेहुए ते तिलकादिक चिह्न आपेही वा प्रतिबिंबविषे प्रतीत होवैंहैं, वा बिंबभूतमुखविषे तिन तिलकादिकोंके कियेतैं विना वा प्रतिबिंबविषे तिन तिलकादिकोंके प्राप्ति करणेका दूसरा कोई उपाय है नहीं वैसे बिंबभूत ईश्वरविषे समर्पण करेहुए धर्मादिक पुरुषार्थोंकूंही सो प्रतिबिंबरूप जीव प्राप्त होवैहै । तिस बिंबभूत ईश्वरविषे तिन धर्मादिकोंके अर्पण कियेतैं विना तिस प्रतिबिंबरूप जीवकूं पुरुषार्थकी प्राप्तिविषे दूसरा कोई उपाय है नहीं इति । इस प्रकार सर्वत्र परिपूर्ण भगवान् वासुदेवकूं आराधन करणेहारे अधिकारी पुरुषका अंतःकरण जबी ज्ञानके प्रतिबंधक पापोंतैं रहित होवैहै तथा ज्ञानके अनुकूल

पुण्योंकरिकै युक्त होवैहै तबी जैसे अत्यंत निर्मळ दर्पणविषे मुख स्पष्ट प्रतीत होवैहै तैसे सर्व कर्मोंके त्यागपूर्वक तथा शमदमादिपूर्वक ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप जाइकै करे हुए श्रवण मनन निदिध्यासन करिकै संस्कृत अत्यंत स्वच्छ अंतःकरणविषे मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारकी साक्षात्काररूप वृत्ति उत्पन्न होवैहै । जा साक्षात्काररूप वृत्ति ब्रह्मवेत्ता गुरुनैं उपदेश करेहुए 'तत्त्वमसि' इस वेदांतवाक्यकरिकै जन्य है तथा जा वृत्ति अनात्मकारतावैं रहित है तथा सर्वउपाधियोंतैं रहित शुद्धचैतन्यके आकार है ऐसी साक्षात्काररूप वृत्तिविषे प्रतिबिंबित हुआ चैतन्य उसी कालविषे स्वआश्रयविषय अविद्याकूं नाश करैहै । जैसे दीपक आपणी उत्पत्तिकालविषेही अंधकारकूं नाश करैहै । ता अविद्याके नाश हुएतें अनंतर तिस वृत्तिसहित सर्व कार्यप्रपंचका नाश होवैहै । काहेतें उपादानकारणके नाश हुएतें अनंतर उपादेयकार्यके नाशकूं सर्वशास्त्रवाले अंगीकार करैहैं, इसी सर्व अर्थकूं श्रीभगवान् कहैं हैं (मामेव ये प्रपद्यंते मायामेतां तरंति ते इति) तहां—(आत्मेत्येवोपासीत । तदात्मानमेवावेत् । तमेव धीरो विज्ञाय । तमेव विदित्वातिमृत्युमेति ।) इत्यादिक श्रुतियोंविषे स्थित जो एव यह शब्दहै सो एवकार जैसे प्रत्यक् अभिन्नब्रह्मविषे सर्व उपाधियोंतै रहितपणेकूं बोधन करैहै तैसे (मामेव ये प्रपद्यन्ते) इस गीतावचनविषे स्थित एवकारभी तिस प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मविषे सर्व उपाधियोंतैं रहितपणेकूं बोधन करै है अर्थात् स्थूलसूक्ष्मकारणरूप सर्व उपाधियोंतै रहित सच्चिदानंद अखंड अद्वितीयरूप मैं परमात्मादेवकूं जे अधिकारी पुरुष साक्षात्कार करैहैं ते अधिकारी पुरुषही इस अविद्यारूप मायाकूं नाश करै हैं । तात्पर्य यह—जा अंतःकरणकी वृत्ति तत्त्वमसि आदिक वेदांतवाक्योंकरिकै जन्यहै तथा निर्विकल्पक साक्षात्काररूप है तथा निर्वचनकरणेकूं अयोग्य शुद्धचिदाकारत्व धर्मकरिकै विशिष्ट है तथा सर्व सुकृतोंका फलरूप है तथा निदिध्यासनके परिपाकतें उत्पन्नहुई है तथा सर्वकार्यसहित अज्ञानका विरोधी है ऐसी साक्षात्काररूप वृत्तिकरिकै जे अधिकारी

पुरुष मैं तत्पदार्थरूप परमात्मादेवकूं आपणा आत्मारूपकरिकै साक्षात्कार करें हैं ते अधिकारी पुरुषही इस हमारी अविद्यारूप मायाकूं विनाही आयासतें नाश करें हैं । कैसीही सा माया-मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारके हमारे साक्षात्कारतें विना दूसरे अनेक उपायोंकरिकैभी नाश करीजावै नहीं । तथा जा माया सर्व अनर्थोंके जन्मका भूमिरूप है ऐसी अविद्यारूप मायाकूं ते अधिकारी पुरुष मैं परमात्मादेवके साक्षात्कारकरिकै सुखेनही नाश करें हैं । अर्थात् सर्वउपाधियोंकी निवृत्तिकरिकै ते पुरुष सच्चिदानंदघनरूपकरिकै स्थित होवैंहैं । ऐसे ब्रह्मवेत्तापुरुषोंका कोईभी प्रतिबंध करिसकै नहीं तहां श्रुति-(तस्य ह न देवाश्च नाभूत्या ईशत आत्मा ह्येषां स भवति) अर्थ यह-तिस ब्रह्मवेत्तापुरुषके अभिभव करणेविषे इंद्रादिक देवताभी समर्थ होवै नहीं, तिस कारणतैं सो ब्रह्मवेत्ता पुरुष तिन सर्वदेवतावोंका आत्मारूपही है इति । तहां (ये ते) या दोनोंविषे बहुत पुरुषोंका वाचक जो बहुवचन भगवान्नें कथन कऱ्याहै सो बहुवचन देहइंद्रियरूप संघातके भेदकरिकै कल्पना करेहुए आत्माके भेदभ्रमका अनुवाद करै है, कोई सो बहुवचन वास्तवतैं आत्माके भेदका बोधक नहीं है। और (मामेव ये प्रपद्यंते) या वचनके स्थानविषे (मामेव ये प्रपश्यंति) यह साक्षात्कारका वाचक वचनही भगवान्कूं कहणेयोग्य था काहेतैं साक्षात्कार करिकैही ता मायाकी निवृत्ति होवैहै । कर्मउपासनादिकोंकरिकै ता मायाकी निवृत्ति होवै नहीं । ता वचनकूं न कहिकै श्रीभगवान्नें जो (मामेव ये प्रपद्यंते) यह वचन कथन कऱ्या है ताकरिकै यह अर्थ सूचन कऱ्या है-जे अधिकारी पुरुष मैं एक परमेश्वरके शरणकूं प्राप्त होइकै परमानंदघन परिपूर्ण मैं भगवान् वासुदेवकूं चिंतन करतेहुए दिवसोंकूं व्यतीत करें हैं ते अधिकारी पुरुष मैं परमेश्वरके प्रेमजन्य महान् आनंदसमुद्रविषे मग्नमनवाले होणेतें इस मेरी मायाके संपूर्ण गुणविकारोंनें अभिभव नहीं करीने हैं किंतु उलटा सा हमारी माया यह भगवत् शरणपुरुष हमारे विलासविनोदविषे अकुशल होणेतें हमारे नाश-

करणेविषे समर्थ हैं याप्रकारकी शंका करतीहुई तिन भक्तजनोंतैं आपेही निवृत्त होइजावै है । जैसे क्रोधवान् तपस्वी पुरुषोंतैं वारांगना निवृत्त होइ जावै है । यातैं यह अधिकारी पुरुष तिस हमारी मायाके तरणवासतैं मै परिपूर्ण भगवान् वासुदेवकूं निरंतर चिंतन करै ॥ १४ ॥

हे भगवन् ! इसप्रकार आप परमेश्वरके शरणागत होइकै आपके निरंतर चिंतनतैं जो इस मायाकी निवृत्ति होतीहोवै तौ सर्व अनर्थोंका मूलभूत इस मायाके नाशकरणेवासतै यह सर्व मनुष्य आपके शरणकूं किसवासतै नहीं प्राप्त होते ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए अनेक जन्मोंविषे संचय करेहुए पापरूप प्रतिबंधके वशतैं यह सर्व मनुष्य हमारे शरणकूं प्राप्त होते नहीं याप्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यंते नराधमाः ॥
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥ १५ ॥

(पदच्छेदः) नँ । मॉम् । दुष्कृतिनः । मूढाः । प्रॅपद्यंते । नराधमाः । मॉयया । अपहृतज्ञॉनाः । ऑसुरम् । भॉवम् । ऑश्रिताः ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जे पुरुष पापकर्मोंवाले हैं तथा मूढ हैं तथा नैरोंविषे अधम हैं तथा मायाकरिकै निवृत्तहुआहै ज्ञान जिनोंका तथा दंभदर्पादिरूप आसुरभावकूं आश्रयणकर्‍याहै जिन्होंनैं ऐसे पुरुष मैं परमेश्वरकूं नहीं भजैं हैं ॥ १५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जे पुरुष पापकर्मोंकरिकै निरयही युक्त है । जिस कारणतैं पापकरिकै युक्त हैं तिस कारणतैं ते पुरुष सर्वमनुष्योंविषे अधम हैं अर्थात् ते पापात्मापुरुष इस लोकविषे तौ श्रेष्ठपुरुषोंकरिकै निंदा करणेयोग्य होवैंहैं और परलोकविषे सहस्र अनर्थोंकूं प्राप्त होवैं हैं । या कारणतैं ते पापात्मापुरुष सर्व मनुष्योंविषे अधम हैं । शंका—हे भगवन् ! ते पुरुष अनर्थकी प्राप्तिकरणेहारे पापकर्मकूंही सर्वदा किस कारणतैं करते है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं । (मूढाः इति) हे

अर्जुन। जिसकारणतैं ते पुरुष मूढ हैं अर्थात् यह कार्य हमारे अर्थका साधन है तथा यह कार्य हमारे अनर्थका साधन है याप्रकारके इष्ट अनिष्टके विवेकतैं शून्य हे तिस कारणतैं ते पुरुष सर्वदा पापकूंही करै हैं। शंका-हे भगवन्! शास्त्रप्रमाणके विद्यमान हुए वे पुरुष तिस विवेककूं किस वास्तै नही करते है? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं (माययापहृतज्ञानाः इति) शरीरइंद्रियादिक संघातविषे तादात्म्यभ्रांतिरूपकरिकै परिणामकूं प्राप्त भई जा माया है ता मायाकरिकै प्रतिबद्ध हुआ है ता विवेक करणेका सामर्थ्यरूपज्ञान जिनोंका तिनोंका नाम माययाऽपहृतज्ञान है जिस कारणतैं ते पुरुष माययापहृतज्ञान हैं तिस कारणतैं तिस कार्य अकार्यके विवेककूं करते नहीं। इसी कारणतैं (दंभो दर्पोभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च) इत्यादिक वचनोंकरिकै आगे कथन करणा जो आसुरभाव है तिस हिंसा अनृतादिरूप आसुरस्वभावकूंही आश्रयण कऱ्या है जिन्होंनै इसप्रकार मैं परमात्मादेवके साक्षात्कारके अयोग्य हुए वे दुष्कृती पुरुष मैं परमेश्वरकूं भजते नहीं। यातें तिन दुष्कृती पुरुषोंका कोई आश्चर्यरूप दौर्भाग्य है इति। और किसी टीकाविषे तौ इस श्लोकका यह अर्थ कथन कऱ्या है--जिसकारणतैं ते पुरुष दुष्कृती हे तिस कारणतैं चित्तकी शुद्धिके अभावतै ते पुरुष मूढ है अर्थात् आत्म-अनात्मविवेकतैं रहित हे इसी कारणतैंही ते पुरुष मनुष्योंविषे अधम हैं ऐसे दुष्कृती नराधम पुरुष मैं परमेश्वरकूं भजते नहीं। ते पुरुष दुष्कृती क्यों है। ऐसी शंकाके हुए कहे ह (माययाऽपहृतज्ञानाः इति) जिस कारणतैं अविद्यारूप मायाकरिकै तिन पुरुषोंका अखंड संविद्ब्रह्मरूप ज्ञान आच्छादित होइगया है तिस कारणतैं ते पुरुष दुष्कृती ह इतने कहणेकरिकै मायाकी आवरणशक्ति कथन करी। पुनः कैसे हैं ते पुरुष आसुरभावकूं आश्रयण कऱ्या है जिन्होंनैं। अर्थात् यह देहइंद्रियरूप संघातही आत्मा है यातें इस संघातकूंही सर्व प्रकारतैं तृप्त करणा इस प्रकारका जो आसुर विरोचनके चित्तका अभिप्राय है ताका नाम

आसुरभाव है । ऐसे आसुरभावकूं आश्रयण कन्या है जिन्होंनें । इवने कहणेकरिकै ता मायाकी विक्षेप शक्ति कथन करी । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । इस मायानैं स्वरूपानंदकूं आवरण करिकै उत्पन्न कन्या जो देहविषे आत्मत्वबुद्धिरूप भ्रम है ता देहात्मअभिमानतैं तिन देहादिकोंकी पुष्टि करणेवासतै ते पुरुष अनेकप्रकारके दुष्कृतोंकूं करैं हैं । तिन पापकर्मोंकरिकै मूढ हुए तथा सर्व मनुष्योंविषे अधम हुए ते पुरुष मैं परमेश्वरकूं नहीं भजैं हैं । यातैं यह अविद्यारूप मायाही सर्व अनर्थोंका मूलभुत है ॥ १५ ॥

किंवा जे पुरुष तिस आसुरभावतैं रहित है तथा सर्वदा पुण्यकर्मवाले हैं तथा इष्ट अनिष्टवस्तुके विवेकवाले है ते पुरुष तिस पुण्यकर्मकी न्यून-अधिकता करिकै च्यारि प्रकारके हुए मै परमेश्वरकूं भजैं है । तथा यथाक्रमकरिकै कामनातैं रहित हुए ते पुरुष मैं परमेश्वरके प्रसादतैं तिस मायाकूं तरैं हैं । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं है—

चतुर्विधा भजंते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ॥
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) चतुर्विधाः । भजंते । माम् । जनाः । सुकृतिनः । अर्जुन । आर्त्तः । जिज्ञासुः । अर्थार्थी । ज्ञानी । च । भरतर्षभ ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे भरतवंशविषे श्रेष्ठ अर्जुन ! आर्त्त जिज्ञासु अर्थार्थी तथा ज्ञानी यह च्यारिप्रकारके सुकृति जन मैं परमेश्वरकूं भजैंहैं ॥ १६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जे पुरुष सुकृती हैं अर्थात् जिन पुरुषोंनै पूर्व अनेक जन्मोंविषे पुण्यकर्मका संचय कन्या है ते पुरुषही सुकृतीजन है अर्थात् सफलजन्मवाले हैं तिनोंतै भिन्न पुरुष निष्फलजन्मवालेही है। ऐसे सुकृतीजनही मै परमेश्वरकूं भजैं है अर्थात् मैं परमेश्वरका आराधन करैं है । ते हमारे भजनकरणेहारे जनभी आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, ज्ञानी इस भेदकरिकै च्यारिप्रकारकेही होवै हैं, तिन च्यारोंविषेभी आर्त्त

जिज्ञासु, अर्थार्थी यह तीन तौ सकाम होवैं हैं और एक ज्ञानी निष्काम होवै है। तहां शत्रुव्याघ्रादिरूप आपदाका नाम आर्त्ति है ता आर्त्तिक-रिकै जो ग्रस्त होवै ताका नाम आर्त्त है। ऐसा आर्त्तजन ता आपदा-रूप आर्त्तिके निवृत्तकरणेवासतै मैं परमेश्वरका आराधन करै है । जैसे यज्ञके भंगकरिकै क्रोधकूं प्राप्तहुआ इंद्र व्रजभूमिविषे महान् वर्षा कर-ताभया ताकरिकै दुःखी हुए व्रजवासी जन मैं परमेश्वरका आराधन करतेभये हैं। तथा जैसे जरासंधराजाके बंधनगृहविषे प्राप्तहुए सर्वराजे आर्त्त होइकै मैं परमेश्वरका आराधन करतेभये हैं। तथा जैसे दुर्यो-धनकी सभाविषे वस्त्रोंके उतारणेकरिकै आर्त्तहुई द्रौपदी मैं परमेश्वरका आराधन करतीभई है। तथा जैसे ग्राहकरिकै ग्रस्तहुआ गजेंद्र आर्त्तहो-इकै मैं परमेश्वरका आराधन करताभया है, इसतैं आदिलैके दूसरेभी अनेक जन आर्त्त होइकै मैं परमेश्वरका आराधन करतेभये हैं इति। और जिस पुरुषकूं सर्वदा आत्मज्ञानके प्राप्तिकी इच्छा है ताका नाम जिज्ञासु है सो जिज्ञासुभी ता आत्मज्ञानकी प्राप्तिवासतै मैं परमेश्वरका आराधन करै हैं। जैसे मुचुकुंद तथा जनकराजा तथा उद्धव इत्यादिक जिज्ञासुजन आत्मज्ञानकी प्राप्तिवासतै मैं परमेश्वरका आराधन करतेभये हैं इति। और इस लोकविषे स्थित तथा परलोकविषे स्थित जे धन-स्त्री पुत्रादिक भोगके साधन हैं तिन्होंका नाम अर्थ है ता अर्थकी इच्छा करणेहारे पुरुषका नाम अर्थार्थी है । ऐसा अर्थार्थी जनभी ता धनादिरूप अर्थकी प्राप्तिवासतै मैं परमेश्वरका आराधन करै है। तहां सुग्रीव विभीषण उपमन्यु इत्यादिक अर्थार्थी जन तौ इसलोकके भोग-साधनोंकी इच्छा करतेहुए मैं परमेश्वरका आराधन करतेभये हैं। और ध्रुवादिक अर्थार्थी जन तौ परलोकके भोगसाधनोंकी इच्छा करते-हुए मैं परमेश्वरका आराधन करतेभये हैं इति । तहां जैसे तत्त्व-वेत्ता पुरुष मायाकूं तरैं हैं तैसे आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी यह तीनोंभी भगवत्के भजनकरिकै ता मायाकूं तरैं हैं। तिन तीनोंविषेभी जिज्ञासु जन

तौ आत्मज्ञानकी उत्पत्ति करिकै साक्षात्‌ही ता मायाकूं तरै है । और आर्त्त तथा अर्थार्थी यह दोनों तौ जिज्ञासुपणेकूं प्राप्त होइकैही ता मायाकूं तरै है । इतनी तिन्होंविषे विशेषता है, तहां आर्त्तकूं तथा अर्थार्थीकूं जिज्ञासुपणा संभव होइसकै है और जिज्ञासुकूंभी आर्त्तपणा तथा आत्मज्ञानके साधनरूप अर्थोंका अर्थीपणा संभव होइसकै है । या कारणतै श्रीभगवान्‌नैं आर्त्त अर्थार्थी या दोनोंके मध्यविषे जिज्ञासुका कथन कऱ्या है । इतने करिकै आर्त्त जिज्ञासु अर्थार्थी या तीन सकामभक्तोंका कथन कऱ्या । अब चतुर्थ निष्कामभक्तका कथन करै है (ज्ञानी च इति) तहां सर्वत्र परिपूर्ण अद्वितीय परमात्मादेव मैं हूं या प्रकारका जो भगवत्‌के वास्तवस्वरूपका साक्षात्कार है ताका नाम ज्ञान है ता ज्ञानकरिकै जो नित्ययुक्त होवै ताका नाम ज्ञानी है जो ज्ञानी तिस ज्ञानकरिकै मेरी मायाकूं तऱ्या है तथा सर्वकामोंतैं रहित है ऐसा ज्ञानीभी निरंतर मैं परमात्मादेवका आराधन करै है।इहां (ज्ञानी च) या वचनविषे स्थित जो चकारहै,सो चकार जिसीकिसी निष्कामप्रेमभक्तका ता ज्ञानीविषे अंतर्भाव बोधनकरणेवास्ते है अर्थात् निष्काम प्रेमभक्तोंका ता ज्ञानी विषेही अंतर्भाव है ।:यातैं श्रीभगवान्‌कूं पंचप्रकारके भक्तही कथनकरणे योग्य थे या प्रकारकी न्यूनताशंका संभवै नहीं इति । और (हे भरतर्षभ)या संबोधनकरिकै श्रीभगवान्‌नै यह अर्थ सूचन कऱ्या । तूं अर्जुनभी जिज्ञासु भक्त है, अथवा ज्ञानी भक्त है । यातैं तिन च्यारों भक्तोंविषे मैं अर्जुन कौन भक्त हूं या प्रकारकी शंका तुमनैं करणी नहीं इति । तहां निष्काम ज्ञानी भक्त तौ जैसे सनकादिक है तथा नारद है तथा प्रह्लाद है तथा पृथुराजा है तथा शुकदेव है इत्यादिक सर्व निष्काम ज्ञानी भक्त होते भये हैं और निष्काम शुद्ध प्रेमभक्त तौ जैसे व्रजवासी गोपिका है तथा अक्रूर युधिष्ठिरादिक हैं और कंसशिशुपालादिक तौ यद्यपि भयतैं अथवा द्वेषतै निरंतर भगवत्‌का चिंतन करते भये है तथापि ते कंसशिशुपालादिक भक्त कहे जावैं नहीं । जिसकारणतै तिन कंसादिकोंकी

परमेश्वरविषे भगवदनुरक्तिरूप भक्ति है नहीं तिसकारणतैं द्वेष भयतैं भगवत्का चिंतन करते हुएभी वे कंसादिक भगवत् भक्त कहे जावै नहीं ॥ १६ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, ज्ञानी इन च्यारोंविषे भगवान्नैं सुकृतीपणा कथन कऱ्या यातैं श्रीभगवान्कूं तिन च्यारोंकी तुल्यताही अभिमत होवैगी ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए तिन च्यारोंविषे यद्यपि सुकृतीपणा निश्चितही है तथापि सुकृतकी अधिकता करिकै प्राप्तहुई निष्कामता करिकै प्रेमकी अधिकतातैं सो ज्ञानीही सर्वतैं श्रेष्ठ है या प्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ॥
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥१७॥

(पदच्छेदः) तेषाम् । ज्ञानी । नित्ययुक्तः । एकभक्तिः । विशिष्यते । प्रियः । हि । ज्ञानिनः । अत्यर्थम् । अहम् । सः । च । मम । प्रियः ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिनै च्यारोंके मध्यविषे नित्ययुक्त तथा एकभक्तिवाला ज्ञानी उत्कृष्ट है जिस कारणतैं मैं परमेश्वर तिस ज्ञानीकूं अत्यंत प्रियं हूं तथा सो ज्ञानी मैं परमेश्वरकूं अत्यंत प्रिय है ॥ १७ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! आर्त्त जिज्ञासु अर्थार्थी ज्ञानी इन च्यारिप्रकारके भक्तोंके मध्यविषे सर्वत्र परिपूर्ण अद्वितीय ब्रह्मरूप मैं हूं या प्रकारके तत्त्वज्ञानवाला जो ज्ञानी है सो ज्ञानी सर्वकामनावोंतैं रहित है सो ज्ञानी सर्वतैं उत्कृष्ट है । अब ता ज्ञानीकी उत्कृष्टताविषे ता ज्ञानीके हेतुगर्भित दो विशेषण कथन करै हैं (नित्ययुक्तः एकभक्तिः इति) जिस कारणतैं सो ज्ञानी नित्ययुक्त है अर्थात् सर्वविक्षेपके अभावतैं प्रत्यक् अभिन्न परमात्मादेवविषे सर्वदा समाहित है चित्त जिसका ताका नाम नित्ययुक्त है । नित्ययुक्त होणेंतेही सो ज्ञानी एकभक्ति है अर्थात् एक प्रत्यक् अभिन्नपरमात्माविषेही है अनुरक्तिरूप भक्ति जिसकी अन्य किसी

विषे सा भक्ति जिसकी है नहीं ताका नाम एकभक्ति है। इस प्रकार नित्ययुक्त होणेतें तथा एकभक्ति होणेतें सो ज्ञानवान् सर्वतें श्रेष्ठ है। अब ता एक भक्तिपणेविषे हेतु कहें हैं (प्रियो हि इति) जिसकारणतें तिस ज्ञानवान् पुरुषकूं मैं प्रत्यक् अभिन्न परमात्मा देव अत्यंत प्रिय हूं अर्थात् निरुपाधिकप्रीतिका विषय हूं। तिस कारणतें सो ज्ञानवान् पुरुष एकभक्ति है, इस कारणतें सो ज्ञानवान् पुरुषभी मैं परमेश्वरकूं अत्यंत प्रिय है काहेतें आपणा आत्मा अत्यंत प्रिय होवै है यह वार्ता श्रुतिविषे तथा लोकविषे प्रसिद्धही है इति। और किसी टीकाविषे तौ इस श्लोकका यह अर्थ कऱ्या है—तिन च्यारोंके मध्यविषे एक ज्ञानीही श्रेष्ठ है। जिस कारणतें सो ज्ञानी नित्ययुक्त है अर्थात् सर्वदा हमारे भजनविषे युक्त है, और आर्तादिक भक्त तौ जबपर्यंत कामनाकी पूर्णता नहीं भई तबपर्यंत ही मेरे भजनविषे युक्तहोवैहैं कामनाकी पूर्णतातें अनंतर मेरे भजनविषे युक्त होवें नहीं यातें ते आर्त्तादिक भक्त नित्ययुक्त कहेजावे नहीं। तथा सो ज्ञानी एकभक्ति है अर्थात् मैं परमेश्वरकाही एकभावकरिकै भजन करैहै। अन्य किसीका भजन करै नहीं, और आर्तादि तौ एकभावकरिकै भजनकूं करते नहीं। तहां रोगग्रस्त आर्त्त पुरुष तौ सूर्यका भजन करैं हैं, और जिज्ञासु जन सरस्वतीका भजन करैं हैं, और अर्थार्थी पुरुष कुबेरादिकोंका भजन करैं हैं। इस प्रकार तिन आर्तादिकोंविषे तिसतिस कामकी प्राप्तिवास्तै अनेकोंकी भक्ति देखणेविषे आवैहै। अब तिस ज्ञानीपुरुषके नित्ययुक्तपणेविषे तथा एकभक्तिपणेविषे हेतु कहैहैं (प्रियो हि इति) जिसकारणतें मैं परमेश्वर तिस ज्ञानवान् पुरुषकूं अत्यंत प्रिय हूं। काहेतें मैं परमेश्वर तिस ज्ञानवान् पुरुषका आत्मारूपही हूं। और आपणा आत्मा निरुपाधिक प्रीतिका विषय होणेतें सर्वकूं प्रियही होवैहै। तात्पर्य यह—प्रीति दोप्रकारकी होवैहै एक तौ सोपाधिक प्रीति होवै है और दूसरी निरुपाधिक प्रीति होवैहै। तहां जा प्रीति जिस वस्तुविषे अन्यवास्तै होवैहै सा प्रीति सोपाधिक प्रीति कहीजावैहै। जैसे आपणे

आत्माके सुखवासतै स्त्रीपुत्र धनादिकोंविषे प्रीति है। और जा प्रीति जिस वस्तुविषे किसी अन्यवासतै नहीं होवैहै सा प्रीति निरुपाधिक प्रीति कही जावैहै। जैसे आपणे आत्माविषे प्रीति अन्य किसी वासतै है नहीं यातैं सा आत्मविषयक प्रीति निरुपाधिक प्रीति है। तहां श्रुति-(तदेतत्प्रेयः पुत्रात्प्रेयो वित्तात्प्रेयोऽन्यस्मात्सर्वस्मादंतरतरं यदयमात्मा इति) अर्थ यह-बुद्धिआदिक सर्वसंघातवै अन्तर जो यह आत्मादेव है सो यह आत्मादेव पुत्रतै भी अत्यंत प्रिय है। तथा धनतैंभी अत्यंत प्रियहै, तथा अन्य सर्वपदार्थोंतैंभी अत्यंत प्रिय है इति। और ऐसा निष्काम ज्ञानीभक्त अत्यंत दुर्लभ है तथा मैं परमेश्वरका आत्मारूप है यातैं सो ज्ञानी पुरुष मैं परमेश्वरकूंभी अत्यंत प्रिय है ॥ १७ ॥

हे भगवन् ! (स च मम प्रियः) इस आपके वचनतैं यह जान्याजावैहै जो एक ज्ञानीभक्तही आपकूं प्रिय है दूसरे आर्त्त जिज्ञासु अर्थार्थी यह तीनों भक्त आपकूं प्रिय नहीं हैं। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए ते आर्तादिक भक्तभी हमारेकूं प्रियही हैं परंतु ते आर्त्तादिक भक्त हमारेकूं अत्यंत प्रिय नहीं हैं और ज्ञानवान् भक्त तौ हमारा आत्मारूप होणेतैं अत्यंत प्रियहै, या प्रकारका उत्तर श्रीभगवान् कथन करैहै-

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ॥
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् १८

(पदच्छेदः) उदाराः । सर्वे । एव । एते । ज्ञानी । तु । आत्मा । एव । मे । मतम् । आस्थितः । सः । हि । युक्तात्मा । माम् । एव । अनुत्तमाम् । गतिम् ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह आर्त्तादिक तीनोंभी उत्कृष्ट ही है परंतु यहज्ञानी तौ हमारा आत्मा ही है या प्रकारका मैं परमेश्वरका निश्चय है जिसकारणतैं सो यहज्ञानी मैं परमेश्वरविषे समाहितचित्तवाला हुआ मैं परमेश्वरकूं ही सर्वतैं उत्कृष्ट परमफलरूप अंगीकार करैहै ॥ १८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! आर्त्त जिज्ञासु अर्थार्थी यह तीनों हमारे भक्त यद्यपि सकाम हैं तथापि हमारी भक्तिवैं रहित प्राणियोंतैं वे तीनों भक्त उत्कृष्टही हैं। काहेतैं पूर्वजन्मोंविषे तिन पुरुषोंनैं अनेक सुकृत करेहैं जिस कारिकै इस जन्मविषे तौ तिनोंकूं हमारी भक्ति प्राप्तभई है। पूर्वसुकृतोंतैं विना सा हमारी भक्ति प्राप्तहोवै नहीं। जो कदाचित् तिनोंके पूर्वले जन्मोंके अनेक सुकृत नहीं होवैं तौ ते पुरुष मैं परमेश्वरकूं कदाचित्भी भजैं नहीं। जिसकारणतैं इस लोकविषे मैं परमेश्वरतैं बहिर्मुख हुए कितनेक आर्त्त तथा जिज्ञासु अर्थार्थी अन्य क्षुद्रदेवतावोंकाही भजन करते हुए देखणेविषे आवैं हैं। यातैं इस जन्मविषे मैं परमेश्वरके भजनतैं तिन पुरुषोंके पूर्वले जन्मोंके सुकृत अनुमान करेजावैंहैं ऐसे पूर्वजन्मोंके पुण्यकर्मोंके प्रभावतैं मैं परमेश्वरका भजन करणेहारे जे आर्त्त जिज्ञासु अर्थार्थी पुरुष हैं ते तीनोंभी हमारेकूं प्रियही हैं। कोईभी हमारा भक्त ज्ञानवान् अथवा अज्ञानी हमारेकूं अप्रिय नहीं है परंतु जिस पुरुषकी जिस प्रकारकी मैं परमेश्वरविषे प्रीति है मैं परमेश्वरकभी तिस पुरुषविषे तिसीप्रकारकी प्रीति होवैहै। यह वार्त्ता सर्वलोकविषे स्वभावसिद्धही है। तहां आर्त्त जिज्ञासु अर्थार्थी या तीनों सकाम भक्तोंकूं तौ केवल मैं परमेश्वरही प्रिय होवों नहीं किंतु कामनाके विषय पदार्थभी प्रिय होवैं हैं तथा मैं परमेश्वरभी प्रिय होवों हूं। और ज्ञानवान् पुरुषकूं तौ मैं परमेश्वरसे विना दूसरा कोईभी पदार्थ प्रिय होवै नहीं। किंतु तिस ज्ञानवान् पुरुषकूं एक मैं परमेश्वरही निरतिशय प्रीतिका विषय हूं। इस कारणतै सो निष्काम ज्ञानी भक्तभी मैं परमेश्वरकूं निरतिशय प्रीतिका विषय है। जो कदाचित् मैं परमेश्वर तिस ज्ञानवान् भक्तविषे निरतिशय प्रीति नहीं करौंगा तौ मैं परमेश्वरविषे कृतज्ञता नहीं सिद्ध होवैगी। तथा कृतघ्नता प्राप्त होवैगी। यातैं आपणेविषे ता कृतज्ञताकी सिद्धिवासतै तथा कृतघ्नताकी निवृत्ति करणेवासतै मैं परमेश्वरभी ता ज्ञानीभक्तविषे निरतिशय प्रीति करूंहूं। इसी कारणतैंही पूर्वश्लोकविषे

(अत्यर्थ) यह विशेषण कथन कऱ्या है। जैसे (यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति) इस श्रुतिविषे विद्याश्रद्धादिकोंक-रिकै करेहुए कर्मकूं वीर्यवत्तरं कथन कऱ्याहै। इहां वीर्यवत्तरं या वचनके अंतविषे स्थित जो तर प्रत्यय है ताका अतिशयतारूप अर्थही विवक्षितहै ता करिकै यह अर्थ सिद्ध होवैहै विद्यादिकोंकरिकै कऱ्या हुआ कर्मतैं अतिशयकरिकै वीर्यवाला होवैहै। और तिन विद्यादिकोंतै विना कऱ्या-हुआ कर्मभी वीर्यवाला तौ होवैही है। तैसे ज्ञानवान् भक्त मै परमेश्वरके (अत्यर्थंप्रियः) इस भगवान्के वचनविषे स्थित जो अत्यर्थ यह पद है ताका अतिशयतारूप अर्थही विवक्षित है ताकरिकै यह अर्थ सिद्ध होवै है ज्ञानवान् पुरुष तौ मैं परमेश्वरकूं अतिशयकरिकै प्रिय है और ता ज्ञानतैं रहित आर्त्तादिक भक्तभी मैं परमेश्वकूं प्रिय तौहै ही। इसी अभि-प्रायकरिकै श्रीभगवान्नैं ता ज्ञानवान्विषे अत्यर्थ यह विशेषण कथन कऱ्या है। तथा इसी अर्थकूं श्रीभगवान् (ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम्) इस वचन करिकै आपही कथन करताभयाहै। इस कारणतैं मैं परमेश्वरकूं आपणा आत्मारूप करिकै जानणेहारा सो ज्ञानवान् भक्त मैं परमेश्वरका आत्मारूपही है। मैं परमेश्वरतै सो ज्ञानवान् भक्त भिन्न नहीं है तहां श्रुति—(ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति) अर्थ यह—मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकार आपणे आत्मातैं अभेदरूपकरिकै ब्रह्मकूं जानणेहारा ब्रह्म-वेत्ता ज्ञानी पुरुष ब्रह्मरूपही होवै है इति। इसप्रकारका मे परमेश्वरका निश्चय है। इहां (ज्ञानी तु) या वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तु शब्द सकाम तथा भेददर्शी आर्त्तादिक तीन भक्तोंकी अपेक्षा करिकै ता ज्ञानवान् भक्तविषे निष्कामतारूप तथा अभेददर्शित्वरूप विशेषताके बोधन करणेवास्तै है। अब ता ज्ञानीके आत्मरूपताविषे श्रीभगवान् हेतु कहैंहैं (स हि युक्तात्मा इति) हे अर्जुन! जिस कारणतैं सो ज्ञानवान् भक्त युक्तात्मा हुआ अर्थात् मैंही भगवान् वासुदेव हूं या प्रकार अभेद-रूपकरिकै मैं परमेश्वरविषे सर्वदा समाहितचित्तवाला हुआ मैं आनं-

दधन परमेश्वरकूंही सर्वतै उत्कृष्ट परमफलरूप करिकै अंगीकार करता भयाहै। मैं परमात्मादेवतैं भिन्न दूसरे किसी फलकूं सो ज्ञानवान् पुरुष मानता नहीं यातैं सो ब्रह्मज्ञानी पुरुष मैं परमेश्वरका आत्मारूपही है.१८

हे अर्जुन। जिसकारणतैं सो ज्ञानवान् पुरुष मैं परमेश्वरकूंही परमफलरूपकरिकै मानैहै तिस कारणतैं सो ज्ञानवान् मै परमेश्वरकूंही अभेदरूप करिकै प्राप्त होवै है। तथा सो ज्ञानवान् पुरुषही अत्यंत दुर्लभ है इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

बहूनां जन्मनामंते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ॥
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ १९ ॥

(पदच्छेदः) बहूनाम् । जन्मनाम् । अंते । ज्ञानवान् । माम् । प्रपद्यते । वासुदेवः । सर्वम् । इति । सः । महात्मा । सुदुर्लभः ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो ज्ञानवान् पुरुष बहुतै जन्मोंके अन्तविषे यह सर्वजगत् वासुदेवरूपही है यांप्रकारके ज्ञानवाला हुआ मैं परमेश्वरकूं अभेदरूप करिकै भजैहै सो महात्मा अत्यंतदुर्लभ है ॥ १९ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! किंचित्किंचित् पुण्यके संपादनका हेतुरूप जे पूर्व व्यतीत हुए बहुत जन्म है तिन बहुतजन्मोंके अंतविषे अर्थात् सर्व सुकृतोंके फलभूत अन्त्यजन्मविषे सो ज्ञानवान् पुरुष यह सर्वजगत् वासुदेवरूप है याप्रकारके ज्ञानवाला हुआ निरुपाधिक प्रीतिका विषयरूप मैं परमेश्वरकूंही सर्वदा सम्पूर्णप्रेमका विषयरूपकरिकै भजै है काहेतें मैं तथा यह सर्वजगत् परमेश्वर वासुदेवरूपही है याप्रकारकी दृष्टि करिकै तिस ज्ञानवान् पुरुषके सर्व प्रेमोंका मैं परमेश्वरविषेही परिअवसान होवैहै। इसी कारणतैं सो ज्ञानपूर्वक हमारी भक्ति करणेहारा विद्वान् पुरुष महात्मा है अर्थात् अत्यंत शुद्ध अंतःकरणवाला होणेतैं सो जीवन्मु-

कपुरुष सर्ववैं उत्कृष्ट है । तिसजीवन्मुक्त विद्वान्के समान दूसरा कोई है नहीं । जबी ता जीवन्मुक्त पुरुषके समानभी कोई नहीं भया तबी ता जीवन्मुक्त पुरुषतैं अधिक कहांतैं होवैगा। इसी कारणतैं सो जीवन्मुक्त विद्वान् पुरुष सुदुर्लभ है अर्थात् सो विद्वान् पुरुष अनेक सहस्र मनुष्योंविषे दुःखकरिकैभी प्राप्त होणेकूं अशक्य है। ऐसे विद्वान् पुरुषकी दुर्लभता (मनुष्याणां सहस्रेषु) इस वचनविषे श्रीभगवान्नैं स्पष्टकरिकै कथन करी है। यातैं सो जीवन्मुक्त पुरुष मैं परमेश्वरकूं निरतिशय प्रीतिका विषय है। यह पूर्वउक्त अर्थ युक्तही है ॥ १९ ॥

वहां (तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं आर्त्तादिक तीन भक्तोंकी अपेक्षाकरिकै ज्ञानवान् भक्तके उत्कृष्टताकी प्रतिज्ञा करी थी सा प्रतिज्ञा इतने पर्यंत सिद्ध करी। और सकामत्व तथा भेददर्शित्व या दोनोंके समान हुएभी दूसरे देवतावोंके भक्तोंकी अपेक्षा करिकै मैं परमेश्वरके आर्त्तादिक तीनों भक्त उत्कृष्ट हैं या प्रकारकी जा प्रतिज्ञा श्रीभगवान्नैं (उदाराः सर्व एवैते) इस वचनकरिकै पूर्व कथन करी थी। अब इस सप्तम अध्यायकी समाप्ति पर्यंत श्रीभगवान् तिस प्रतिज्ञाकी सिद्धि करैं है। इहां परमकृपालु श्रीभगवान्का यह अभिप्राय है—हमारे आर्त्तादिक तीन भक्तोंविषे तथा अन्य देवतावोंके आर्त्तादिक भक्तोंविषे यद्यपि आयास तथा सकामत्व तथा भेददर्शित्व इत्यादिक धर्म समानही हैं तथापि मैं परमेश्वरके भक्त तौ भूमिकावोंके क्रमकरिकै सर्ववैं उत्कृष्ट मोक्षरूप फलकूंही प्राप्त होवैं हैं। और क्षुद्रदेवतावोंके भक्त तौ पुनः पुनः जन्ममरणकी प्राप्तिरूप क्षुद्रफलकूंही प्राप्त होवैं हैं। यातैं सर्व आर्त्तभक्त तथा जिज्ञासु भक्त तथा अर्थार्थी भक्त मैं परमेश्वरके शरणागतकूं प्राप्त होइकै विनाही आयासतैं सर्ववैं उत्कृष्ट मोक्षरूप फलकूं प्राप्त होवैं हैं इति। वहां मोक्षरूप परम पुरुषार्थरूप फलकी प्राप्ति करणेहारा जो मैं परमेश्वरका भजन है ता मेरे भजनकी उपेक्षा करिकै

क्षुद्रफलकी प्राप्ति करणेहारे क्षुद्रदेवतावोंके भजनविषे जो लोकों-की प्रवृत्ति होवै है ता प्रवृत्तिविषे पूर्वले संस्काररूप वासनाविशेषेही असा-धारण कारण हैं। इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करें हैं—

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यंतेऽन्यदेवताः॥
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया॥२०॥

(पदच्छेदः) कामैः। तैः। तैः। हृतज्ञानाः। प्रपद्यंते। अन्य-देवताः। तम्। तम्। नियमम्। आस्थाय। प्रकृत्या। नियताः। स्वया॥ २०॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! तिनें तिनें कामवासनावोंकरिकै मैं परमेश्व-रतें विमुख हुआ है अंतःकरण जिन्होंका ऐसे पुरुष आपणी पूर्ववासना-रूप प्रकृतिनें वशीकरे हुए तिस तिसे नियमकूं आश्रयणकरिकै अन्य-देवतावोंकूं भजें हैं॥ २०॥

भा० टी०—हे अर्जुन! मारण, मोहन, उच्चाटन, स्तंभन, आकर्षण, वशीकरण इत्यादिकोंकूं विषय करणेहारे जे अभिलाषारूप काम हैं जिन कामोंके मारणमोहनादिक विषय भगवत्की सेवा करिकै प्राप्त होणेकूं लोकोंनै अशक्य मानें हैं। ऐसे क्षुद्रअभिलाषारूप जे काम हैं तिनतिन कामोंकरिकै अपहृत हुआ है क्या भगवान् वासुदेवतें विमुखकरिकै तिसतिस मारणादिक फलका दातारूप करिकै मानेहुए क्षुद्रदेवतावोंके अभि-मुख कर्या हुआ है ज्ञान क्या अंतःकरण जिन्होंका तिनोंका नाम हृतज्ञान है ऐसे मैं परमेश्वरतें बहिर्मुख पुरुष मैं परमेश्वरतें अन्य क्षुद्र-देवतावोंकूं तिसतिस देवताके आराधनविषे प्रसिद्ध जे जप उपवास प्रद-क्षिणा नमस्कार इत्यादिक नियम हैं तिसतिस नियमकूं आश्रयणक-रिकै तिसतिस मारणमोहनादिक क्षुद्रफलके प्राप्तिकी इच्छा करिकै भजें हैं। तिन क्षुद्रदेवतावोंके मध्यविषेभी कोईक पुरुष पूर्वअभ्यासजन्य आपणी आपणी असाधारण वासनाके वशहुए किसी देवताकूंही भजैं हैं॥ २०॥

हे भगवन् ! जे पुरुष अन्य क्षुद्रदेवतावोंका भजन करै हैं तिन पुरुषोंकूंभी तिसतिस देवताके प्रसादतैं सर्वके ईश्वररूप भगवान् वासुदेवविषे अवश्यकरिकै भक्ति होवैगी । ऐसी अर्जुनकी, शंकाके हुए श्रीभगवान् कहै हैं—

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ॥
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् २१

(पदच्छेदः) यः। यः। याम्। याम्। तनुम्। भक्तः। श्रद्धया। अर्चितुम्। इच्छति। तस्य। तस्य। अचलाम्। श्रद्धाम्। ताम्। एव। विदधामि। अहम् ॥ २१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो जो सकामपुरुष भक्तियुक्तहुआ जिस जिस देवतामूर्तिकूं श्रद्धाकरिकै अर्चनकरणेकूं प्रवृत्त होवै है तिस तिस पुरुषकी तिस देवतामूर्तिप्रतिही स्थिरहै भक्तिकूं मैं अंतर्यामी करूंहूं ॥ २१ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! तिन अन्य देवतावोंके भजन करणेहारे पुरुषोंके मध्यविषे जो जो सकामपुरुष भक्तिकरिकै युक्त हुआ जिस जिस देवता मूर्तिकूं पूर्वले जन्मकी वासनावोंकै बलतै प्रादुर्भूत हुई श्रद्धाकरिकै अर्चन करणेवास्तैं प्रवृत्त होवै है तिसतिस सकाम पुरुषकी तिस तिस देवतामूर्तिविषेही पूर्व वासनावोंके वशतैं प्राप्त हुई भक्तिरूप श्रद्धाकूं मैं अंतर्यामी स्थिर करूं हूं । तिस पुरुषकी जिस देवतातैं श्रद्धा हटाइकै आपणेविषे तिसके श्रद्धाकूं मैं करावतानहींइति। इहांकिसीटीकाविषे (ताम्)इस पदकरिकै श्रद्धाकाही ग्रहणकर्‍याहै परंतु इसव्याख्यानविषे पूर्व कथन करेहुए (यांयां) इस देवतावाचक यत्शब्दका अन्वय नहीं होवैगा । अथवा तत् इस शब्दका अध्याहार करिकैही ता यत्शब्दका अन्वय होवैगा । काहेतैं यत्शब्दकूं तत् शब्दकी आकांक्षा अवश्यकरिकै होवै है । यातैं इहां ताम् इस शब्दके आगे प्रति इस शब्दका अध्याहारकरिकै ताम् इस शब्दकरिकै पूर्व (यांयां) इस यत्शब्द उक्त देवताकाही परामर्श कर्‍या है ॥ २१ ॥

किंच—

**स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ॥
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् २२॥**

(पदच्छेदः) सः । तया । श्रद्धया । युक्तः । तस्य । आराधनम् । ईहते । लभते । च । ततः । कामान् । मया । एव । विहितान् । हि । तान् ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो सकामपुरुष तिसै श्रद्धाकरिकै युक्तहुआ तिसी देवतामूर्तिकरिकै पूजनकूं करै है तथा तिसी देवतामूर्तितैं मैंपरमेश्वरनें ही रचेहुए पूर्वसंकल्पित कामोंकूं प्रसिद्ध प्राप्तहोवै है ॥ २२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! तिन मारणमोहनादिक अर्थोंके प्राप्तिकी इच्छा करताहुआ सो सकाम पुरुष मैं परमेश्वरनें तिसतिस देवताविषे स्थिर करीहुई श्रद्धाकरिकै युक्तहुआ तिस देवतामूर्तिकाही पूजन करै है। ता देवतामूर्तिकूं छोडिकै मै परमेश्वरका पूजन करै नहीं । वा पूजनकरिकै सो सकामपुरुष तिसी देवताकी मूर्तितैही पूर्वसंकल्पकरेहुए मारणमोहनादिक काम्यमानपदार्थोंकूं प्राप्त होवै है। शंका—हे भगवन् ! जबी ते अन्य देवताभी आपणे आपणे भक्तजनोंके प्रति तिसतिस कर्मके फल देणेविषे स्वतंत्रही हुए तबी आप परमेश्वरविषे सर्वकर्मोंके फलका दातापणा सिद्ध नहीं होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाकेहुए श्रीभगवान् कहै हैं। (मयैव विहितान् इति) हे अर्जुन ! सर्वजीवोंके पुण्यपापकर्मोंकूं जानणेहारा तथा तिन सर्व कर्मोंके फलका प्रदाता तथा तिन सर्व देवतावोंका अंतर्यामी ऐसा जो मैं परमेश्वर हूं तिस मैं परमेश्वरनैही तिसतिस कर्मके फलविपाक समयविषे ते मारणमोहनादिक अर्थ उत्पन्न करै है । मै परमेश्वरतें विना ते देवता तिसतिस अर्थके उत्पन्न करणेविषे समर्थ है नहीं । ऐसे मैं अंतर्यामी परमेश्वरनें उत्पन्न करेहुए तिन मारणमोहनादिक अर्थोंकूंही ते सकाम पुरुष तिसतिस देवतावैं प्राप्त होवैं हैं । यातैं

मैं अंतर्यामी परमेश्वरही साक्षात् अथवा किसी अन्यद्वारा सर्वकर्मोंके फलका प्रदाता हूं। इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं सर्वदेवतावोंविषे आपणी आज्ञाके वशवर्तिपणा बोधन कऱ्या इति। अथवा मूलश्लोकविषे (हितान्) यह एकहीपद जानणा अर्थात् वास्तववैं अहितरूप हुएभी ते मारण मोहनादिक अर्थ तिन सकामपुरुषोंकूं हितरूपकरिकै प्रतीत हुए हैं ॥ २२ ॥

यद्यपि ते सर्वेही देवता सर्वात्मारूप मैं परमेश्वरकीही मूर्ति हैं यातैं तिन देवतावोंका आराधनभी वास्तववैं मैं परमेश्वरकाही आराधन है। तथा सर्वत्र फलप्रदाताभी मैं अंतर्यामी ईश्वरही हूं तथापि साक्षात् मैं परमेश्वरके भक्तोंकू तथा अन्य देवतावोंके भक्तोंकूं जो विषमफलकी प्राप्ति होवै है सो वस्तुके विवेककरिकै तथा वस्तुके अविवेककरिकैही होवै है। वहां मैं परमेश्वरके भक्तोंविषे तौ सो वस्तुका विवेक रहै है और अन्यदेवतावोंके भक्तोंविषे सो वस्तुका अविवेक रहै है। या कारणतैंही तिनोंकूं विषमफलकी प्राप्ति होवै है। इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

अंतवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ॥
देवान्देवयजो यांति मद्भक्ता यांति मामपि ॥२३॥

(पदच्छेदः) अंतवत् । तु । फलम् । तेषाम् । तत् । भवति । अल्पमेधसाम् । देवान् । देवयजः । यांति । मद्भक्ताः । यांति । माम् । अपि ॥ २३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिन अल्पबुद्धिवाले पुरुषोंका सो फल नाशवान् ही होवै है जिसकारणतैं देवतावोंके आराधन करणेहारे पुरुष तिन देवतावोंकूंही प्राप्त होवैं हैं और मैं परमेश्वरके भक्त मैं परमेश्वरकूं ही प्राप्त होवैं हैं ॥ २३ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! अल्प है बुद्धिरूप मेधा जिन्होंकी अर्थात् मंदताकरिकै यथार्थवस्तुके विवेक करणेविषे असमर्थ है बुद्धिरूप मेधा

जिन्होंकी तिनोंका नाम अल्पमेधस है ऐसे जे तिसतिस देवताके भक्त हैं तिन अन्यदेवतावोंके भक्तोंकूं यद्यपि मैं अंतर्यामी परमेश्वरनैंही तिसतिस देवताके आराधनजन्य सोसो फल प्राप्त कन्या है तथापि सो तिनोंका फल नाशवान्ही होवै है अर्थात् परमार्थवस्तुके विवेक करणेहारे मैं परमेश्वरके भक्तोंका मोक्षरूप फल जैसे नाशतैं रहित होवै है वैसे तिन अन्य देवतावोंके भक्तोंका सो मारणमोहनादिरूप फल नाशतैं रहित होवै नहीं किंतु सो फल नाशवान्ही होवैहै । परमार्थवस्तुके विवेकतैं रहित पुरुषोंकूं कर्मोंतैं नाशवान् फलकीही प्राप्ति होवैहै यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करीहै । तहां श्रुति–(यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वास्मिँल्लोके जुहोति यजते तपस्तप्यते बहूनि वर्षसहस्राण्यंतवदेवास्य तद्भवति) अर्थ यह–हे गार्गि ! जो पुरुष इस अक्षर परमात्मा देवकूं न जानिकरिकै इस लोक विषे होम करैहै तथा यज्ञ करैहै तथा अनेक सहस्रवर्षपर्यंत तप करैहै ते सर्व कर्म इस पुरुषकूं नाशवान् फलकीही प्राप्ति करैंहैं इति । शंका–हे भगवन् ! अन्य देवतावोंके भक्तोंकूं तौ नाशवान् फलकी प्राप्ति होवैहै और तुम्हारे भक्तोंकूं तौ अविनाशी फलकी प्राप्ति होवैहै याके विषे कौन कारण है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ताकेविषे कारणकूं कहैं हैं–(देवान्देवयजः इति) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरतैं अन्य इंद्रादिक देवतावोंका आराधन करणेहारे ते सकाम पुरुष तिन नाशवान् इंद्रादिक देवतावोंकूंही प्राप्त होवैंहैं । मैं परमेश्वरकूं ते पुरुष प्राप्त होवैं नहीं । इस प्रकार यक्षराक्षसोंके भक्त तिन यक्षराक्षसोंकूंही प्राप्त होवैं हैं । तथा भूतप्रेतोंके भक्त तिन भूतप्रेतोंकूंही प्राप्त होवैं हैं । तहां इंद्रादिक देवता तथा तिनोंके भक्त यह दोनों सात्त्विक हैं और यक्ष राक्षस तथा तिनोंके भक्त यह दोनों राजस हैं और भूत प्रेत तथा तिनोंके भक्त यह दोनों तामस हैं जोजो पुरुष जिसजिसका आराधन करैहै सोसो पुरुष तिसतिसकूंही प्राप्त होवैहै । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है । तहां श्रुति–(कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोकः । देवो भूत्वा देवानप्येति ।) अर्थ यह–

पितृसंबंधी कर्म करिकै इस पुरुषकूं पितृलोक प्राप्त होवैहै । और देवतावोंकी उपासना करिकै इस पुरुषकूं देवलोक प्राप्त होवैहै इति । और तिसतिस देवताका आराधन करणेहारा पुरुष तिसतिस देवताभावकूं प्राप्त होइकै तिसतिस देवताके लोककूं प्राप्त होवैहै इति । इत्यादि श्रुतिवचन तिसतिस देवताके आराधन करणेहारे पुरुषकूं तिसतिस देवताकी प्राप्ति कथन करैं हैं । और जे आर्तादिक तीन भक्त साक्षात् मैं परमेश्वरकाही आराधन करैंहैं ते तीनों भक्त तौ मैं परमेश्वरकूं ही प्राप्त होवैं हैं । इहां (मामपि) या वचनविषे स्थित जो अपि यह शब्द है ता अपिशब्दकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कऱ्या—ते हमारे आर्तादिक तीन सकाम भक्त प्रथम तौ मैं परमेश्वरके प्रसादतै तिसतिस मनवांछित पदार्थोंकूं प्राप्तहोवै हैं तिसतैं अनंतर मैं परमेश्वरकी उपासनाके परिपाकतै मैं अनंत आनंदघन परमेश्वरकूंभी प्राप्त होवैं हैं इति । यातैं यह अर्थ सिद्धभया—मैंपरमेश्वरके आर्तादिक तिन भक्तोंविषे तथा अन्यदेवतावोंके आर्तादिक भक्तोंविषे सकामताके समान हुएभी नित्यफलकी प्राप्तिकरिकै तथा अनित्यफलकी प्राप्ति करिकै तिन दोनोंका महान् भेद है । यातैं (उदाराः सर्व एवैते) यह पूर्व उक्त भगवान्का वचन युक्त है इति । यद्यपि परमेश्वरके आर्तादिक तीन सकाम भक्तोंकूं आपणीआपणी कामनाके अनुसार जो दुःखकी निवृत्ति तथा वांछित अर्थोंकी प्राप्ति इत्यादिक संसारिक फल प्राप्ति होवैहै सो संसारिक फल अनित्यही है, तथापि ता परमेश्वरके आराधनका परमफल जो मोक्ष है सो नित्य है । ता मोक्षरूप फलके अभिप्राय करिकैही तिन परमेश्वरके भक्तोंको नित्य फलकी प्राप्ति कथन करीहै इति । इहां किसी टीकाविषे (अल्पमेधसां) या वचनका यह अर्थ कथन कऱ्या है (अल्पे मेधा येषां) अर्थ यह—श्रुतिनैं अल्पशब्दकरिकै कथन कऱ्या जो यह द्वैतप्रपंच है ता अल्पद्वैतविषे है बुद्धिरूप मेधा जिनोंकी तिनोंका नाम अल्पमेधस है अर्थात् बाह्य अर्थोंकी अभिलाषा करणेहारे पुरुषोंका नाम अल्पमेधस है । तहां श्रुति—(अथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृ-

णोति अन्यन्मनुतेऽन्यद्विजानाति तदल्पम् ॥) अर्थ यह—जिस द्वैत-भावविषे यहपुरुष अन्यवस्तुकूं देखै है तथा अन्य वस्तुकूं श्रवण करै है तथा अन्यवस्तुकूं मनन करैहै तथा अन्यवस्तुकूं जानैहै सो सर्व द्वैतप्रपंच अल्प है ॥ २३ ॥

हे भगवन्! सो साक्षात् भगवत्का भजन जो कदाचित् नाशतैं रहित उत्तम फलकी प्राप्ति करताहोवै तौ इस लोकविषे विशेषकरिकै यह मनुष्य तिस भगवत्तैं विमुख किसकारणतै होवैहै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन बहुत मनुष्योंकी भगवत्विमुखताविषे कारणकूं कथन करै हैं—

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यंते मामबुद्धयः ॥
परं भावमजानंतो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥ २४ ॥

(पदच्छेदः) अव्यक्तम् । व्यक्तिम् । आपन्नम् । मन्यंते । माम् । अबुद्धयः । परम् । भावम् । अजानंतः । मम । अव्ययम् । अनुत्तमम् ॥ २४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! विवेकतैं शून्यपुरुष मैं परमेश्वरके सर्वकाकारणरूप तथा नित्य सोपाधिक स्वरूपकूं तथा सर्वतैं उत्कृष्ट निरुपाधिकस्वरूपकूं नहीं जानतेहुए अव्यक्तरूप मैं परमेश्वरकूं व्यक्तिकूं प्राप्तहुआ मानै हैं या कारणतेही ते अविवेकी पुरुष मै परमेश्वरतैं विमुख रहै हैं २४

भा० टी०—हे अर्जुन ! विवेकतैं रहित पुरुष अव्यक्तरूप मैं परमेश्वरकूं व्यक्तिभावकूं प्राप्त हुआ मानै हैं अर्थात् इस देहग्रहणतैं पूर्व कार्यकरणेकी असामर्थ्यतारूप करिकै स्थितहुए मैं परमेश्वरकूं अबी इस कालविषे वसुदेवके गृहविषे भौतिक शरीर करिकै कार्य करणेकी सामर्थ्यताकूं प्राप्तहुआ कोईक जीवविशेषही मानै हैं । अथवा अव्यक्तं कहिये सर्वका कारणरूपभी मैं परमेश्वरकूं व्यक्तिमापन्नं कहिये मत्स्य कूर्मादिक अवतारूप करिकै कार्यभावकूं प्राप्त हुआ मानै हैं । शंका—हे भगवन् ! वे

मनुष्य तुम्हारे स्वरूपका विवेक किस कारणतैं नहीं करैं हैं ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ताके विषे कारणकूं कहैहैं (अबुद्धयः इति) हे अर्जुन ! जिस कारणतैं ते पुरुष मेरे स्वरूपके विवेक करणेहारी बुद्धितैं रहित हैं तिस कारणतैं ते पुरुष अव्यक्तरूप मैं परमेश्वरकूं व्यक्तिभावकूं प्राप्तहुआ मानैहैं। तहां अव्यक्तरूप परमेश्वरकूं व्यक्तिभावकी प्राप्ति मानणेविषे कथन कन्या जो (अबुद्धयः) यह हेतु है ता हेतुकूं अब स्पष्ट करिकै निरूपण करैं हैं। (परं भावमजानंत इति) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरका जो पर अव्यय भाव है अर्थात् मैं परमेश्वरका जो सर्व जगत्का कारणरूप तथा नित्य सोपाधिक स्वरूप है तिस हमारे सोपाधिक स्वरूपकूंभी ते पुरुष जानते नहीं। तथा मैं परमेश्वरका जो अनुत्तम भाव है अर्थात् (पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परागतिः) इत्यादिक श्रुतियोंनैं कथन कन्या जो सर्वतैं उत्कृष्ट तथा अतिशयतातैं रहित तथा अद्वितीय परमानंदघन तथा देश कालवस्तुपरिच्छेदतैं रहित मैं परमेश्वरका निरुपाधिक स्वरूप है, तिस मेरे निरुपाधिकस्वरूपकूंभी ते पुरुष जानते नहीं। इसी कारणतैं ते विवेकहीन पुरुष अन्य जीवोंकी न्याई हमारे लिलामात्रकार्यकूं देखिकै मेरेकूंभी कोई जीवविशेषही मानते हैं। ईश्वररूप हमारेकूं मानते नहीं इस कारणतैं ते अविवेकी पुरुष मैं परमेश्वरकूं परित्याग करिकै प्रसिद्ध इंद्रादिक देवतावोंकाही आराधन करैं हैं। तिन अन्यदेवतावोंके आराधनतैं ते पुरुष नाशवान् फलकूंही प्राप्त होवैं हैं। इसी वार्त्ताकूं श्रीभगवान् (अवजानंति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्) इसी वचनकरिकै आगेभी कथन करैंगे॥ २४ ॥

हे भगवन् ! आप कैसे हो, आपणे जन्मकालविषेभी सर्वयोगी पुरुषोंकरिकै ध्यान करणे योग्य तथा श्रीवैकुंठविषे स्थित ऐसे दिव्य ईश्वरसंबंधी स्वरूपकूं आविर्भाव करते भये हो। और अबी वर्त्तमान कालविषेभी श्रीवत्स कौस्तुभमणि वनमाला मुकुट कुंडल इत्यादिक दिव्य अलंकारों करिकै आप युक्त हो, तथा शंख चक्र गदा पद्म या च्यारोंकूं धारण

करणेहारी च्यारि भुजावोंकरिकै युक्त हो । तथा श्रीगरुड आपका वाहन है तथा सर्व सुरलोकोंकरिकै संपादित राजराजेश्वर अभिषेक आदिक महावैभव करिकै युक्त हो । तथा सर्व सुर असुरोंकूं जय करणेहारे हो । तथा नानाप्रकारके दिव्यलीला विलासोंकूं करणेहारे हो। तथा रामादिक सर्व अवतारोंविषे शिरोमणि हो, तथा साक्षात् वैकुंठलोकके अधिपति हो तथा सर्वलोकोंके उद्धारकरणेवासतै इस भूमिलोकविषे अवतारकूं धारण करणेहारे हो । तथा ब्रह्माकी सृष्टिविषे नहीं उत्पन्नकरणेहारी निरतिशय सौंदर्यताकूं धारण करणेहारे हो । तथा आपणी बाललीलाकरिकै साक्षात् ब्रह्माकूंभी मोहकी प्राप्तिकरणेहारे हो । तथा सूर्यकी किरणावोंके समान उज्ज्वल दिव्यपीतांबरकूं धारणकरणेहारे हो । तथा उपमातैं रहित श्याम-सुन्दरस्वरूपकूं धारण करणेहारे हो । तथा पारिजातके वासतै साक्षात् इंद्रकूंभी पराजय करते भये हो । तथा बाणयुद्धविषे साक्षात् महादेवकूंभी पराजय करतेभयेहो । तथा संपूर्ण सुर असुरोंकूं जयकरणेहारे, दैत्योंके प्राणपर्यंत सर्व पदार्थोंकूं हरण करणेहारे हो । तथा श्रीदामादिक परमरं-कोंके प्रति महावैभवकी प्राप्ति करणेहारेहो तथा एकही कालविषे षोडश सहस्र दिव्यरूपोंकूं धारणकरणेहारेहो । तथा अपरिमित गुणोंकरिकै युक्त हो । तथा महान् महिमावाले हो । तथा नारद मार्कंडेय इत्यादिक महा-नमुनियोंके समुदायकरिकै स्तुतिकरणेयोग्य हो । इसतैं आदिलेके अनेक प्रकारके दिव्यगुण आपकेविषे है जे दिव्यगुण किसीभी जीवविषे संभ-वते नहीं किंतु ईश्वरविषे ही वे गुण संभवैं हैं । ऐसे आप परमेश्वरविषे अविवेकी पुरुषोंकीभी सा मनुष्यत्वबुद्धि तथा जीवत्वबुद्धि कैसे होवै है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाकूं निवृत्त करतेहुए श्रीभगवान् कहैं हैं—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ॥
मूढोयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् २५॥

(पदच्छेदः) न । अहम् । प्रकाशः । सर्वस्य । योगमायास-मावृतः । मूढः । अयम् । न । अभिजानाति । लोकः । माम् । अजम् । अव्ययम् ॥ २५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वर सर्वलोकोंकूं प्रगट नहीं होऊंहूं जिसकारणतैं मैं परमेश्वर योगमायाकरिकै आवृत हूं तिस कारणतैं मूढहुआ यह लोक जन्मतैं रहित तथा मरणतैं रहित मैं परमेश्वरकूं नहीं जानै है ॥ २५ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! मै परमेश्वर सर्वलोकोंकूं आपणे स्वरूपकरिकै प्रगट नहीं होऊंहूं किंतु मैं परमेश्वरके जे कोई भक्त हैं तिन भक्तोंकूंही मैं परमेश्वर आपणे स्वरूपकरिकै प्रगट होऊंहूं । शंका–हे भगवन् ! तिन सर्वलोकोंकूं आप क्यों नहीं प्रगट होतेहो ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता नहीं प्रगट होणेविषे हेतुकूं कहै हैं (योगमायासमावृतः इति) इहां मैं परमेश्वरकी भक्तितैं रहित प्राणी मैं परमेश्वरकू वास्तवस्वरूपकरिकै नहीं जानैं याप्रकारका जो मैं परमेश्वरका संकल्प है ताका नाम योग है । ता योगके वशवर्ति जा अनादि अनिर्वचनीय अविद्यारूप माया है ताका नाम योगमाया है । अर्थात् मैं परमेश्वरके संकल्पके अनुसार वर्त्तणेहारी मायाका नाम योगमाया है ता योगमायाकरिकै मै परमेश्वर सम्यक् आवृत हुआहूं अर्थात् हमारे स्वरूपविषयक ज्ञानके कारणके विद्यमान हुएभी ता योगमायानैं तिस ज्ञानकी विषयताके अयोग्य कऱ्या हूं । इसीकारणतैं तिन सर्वलोकोंकूं मैं परमेश्वर आपणे वास्तवस्वरूपकरिकै प्रगट होता नहीं । यातैं (परं भावमजानंतो ममाव्ययमनुत्तमम्) इस वचनकरिकै जो पूर्व आपणे सोपाधिकस्वरूपका तथा निरुपाधिकस्वरूपका अज्ञान लोकोंकूं कह्या था ता स्वरूपके अज्ञानविषे मैं परमेश्वरका सो मायाका प्रेरक संकल्पही कारण है इति । इसीकारणतैं तिस हमारी योगमायाकरिकै मूढहुए अर्थात् आवृतज्ञानशक्तिवाले हुए यह पूर्वउक्त आर्त्तादिक च्यारिप्रकारके भक्तजनोंतैं विलक्षण लोक मैं परमेश्वरविषयक ज्ञानके कारणके विद्यमानहुएभी उत्पत्तिनाशतैं रहित मैं परमेश्वरकूं जानिसकते नहीं । किंतु वे मूढलोक विपरीतदृष्टिकरिकै मैं परमेश्वरकूं मनुष्यविशे-

यही मानते हैं । या कारणतैंही ते विपरीतदृष्टिवाले मूढलोक मैं परमेश्वरका परित्याग करिकै अन्य इंद्रादिक देवतावोंकूंही भजै हैं । तहां वस्तुके विद्यमान यथार्थस्वरूपकूं आवरण करिकै ता वस्तुके अविद्यमान अयथार्थस्वरूपकूं दिखावणा यह मायाका स्वभाव लौकिक ऐंद्रजालिक मायाविषेभी प्रसिद्धही है इहां किसी टीकाविषे तौ (योगमाया) या वचनका यह अर्थ कऱ्या है । आपणी आवरणशक्तिकरिकै इस पुरुषकूं जन्ममरणरूपदुःखके प्रवाहसाथि जा जोडदेवै ताका नाम योगा है ऐसी योगा जा माया है ताका नाम योगमाया है इति । और भगवान् भाष्यकारोंनें तौ (योगमाया) इसवचनका यह अर्थ कथन कऱ्या है । सत्त्वादिक तीन गुणोंका जो संबंध है ताका नाम योग है ता योगवाली जा माया है ताका नाम योगमाया है । और किसी टीकाविषे तौ (योगमायासमावृतः) इस वचनविषे योग मायासमावृतः यह दो पद निकासे हैं । तहां चित्तका निरोधरूप योग है विद्यमान जिसविषे ताका नाम योग है । याप्रकारका ता योगशब्दका अर्थ करिकै योगिन् इस शब्दकी न्याई सो योगशब्द अर्जुनका संबोधन अंगीकार कऱ्या है अर्थात् हे योगिन् मायाकरिकै आवृत हुआ मैं परमेश्वर तिन सर्व लोकोंकूं प्रगट होवा नहीं ॥ २५ ॥

हे अर्जुन ! इसप्रकार मैं परमेश्वरके अधीन जा माया है ता स्वाधीन माया करिकै मैं परमेश्वर सर्वभूतोंकूं मोहकी प्राप्ति करूंहूं तथा आप मैं परमेश्वर प्रतिबंधतैं रहित ज्ञानशक्तिवाला हूं यातैं मैं परमेश्वर तौ तिन सर्वभूतोंकूं जानता हूं । और मैं परमेश्वरकूं मेरी भक्तितैं रहित कोईभी प्राणि जानता नहीं । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं-

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ॥
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥ २६ ॥

(पदच्छेदः) वेद । अहम् । समतीतानि । वर्तमानानि । च ।

अर्जुन । भविष्याणि । च । भूतानि । माम् । तु । वेद । न ।
कश्चन ॥ २६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वर पूर्वव्यतीतहुए तथा अबी वर्त्तमान तथा आगेहोणेहारे सर्वभूतोंकूं जानताहूं और मै परमेश्वरकूं तौ कोईभी अभक्त नहीं जानै है ॥ २६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन । प्रतिबंधतें रहित सर्वविषयकज्ञानवाला मैं परमेश्वर आपणी मायाकरिकै तिन सर्वलोकोंकूं मोहकी प्राप्ति करताहुआ भी चिरकालके नष्टहुए तथा अबी वर्तमान तथा आगे होणेहारे जितनेक तीन कालवर्ति स्थावर जंगमरूप भूत हैं तिन सर्वोंकूं अपरोक्षही जानताहूं इसीकारणतैंही मैं सर्वज्ञ परमेश्वर हूं । इस अर्थविषे तुमनैं किंचित्मात्रभी संशय करणा नहीं । ऐसे सर्वदर्शीभी मैं परमेश्वरकुं मेरी मायाकरिकै मोहित हुआ कोईभी प्राणी जानता नहीं । अर्थात् जैसे लोकप्रसिद्ध ऐंद्रजालिक मायावी पुरुषकी मायाकरिकै मोहित हुए लोक ता मायावी पुरुषकूं जानिसकते नहीं किंतु ता मायावी पुरुषके अनुग्रहका पात्र भूत जे तिस मायावी पुरुषके पुत्रादिक हैं ते पुत्रादिकही तिस मायावी पुरुषकूं जानैंहैं । वैसे मैं परमेश्वरके अनुग्रहके पात्रभूत जे हमारे भक्तजन हैं तिनोंतैं भिन्न दूसरे सर्व प्राणी हमारी योगमायाकरिकै मोहित होणेतैं मैं परमेश्वरकूं जानिसकते नहीं किंतु ते भक्तजनही हमारी मायाकरिकै नहीं मोहित होणेतैं मैं परमेश्वरकूं वास्तव रूप करिकै जानैं हैं । इसीकारणतैंहीमैं परमेश्वरके वास्तवस्वरूपके अज्ञानतैं बहुत मनुष्य मैं परमेश्वरकूं भी कोई जीवविशेष मानतेहुए मैं परमेश्वरका आराधन करते नहीं किंतु इंद्रादिक देवतावोंकाही आराधन करैं हैं । इहां (मां तु) या वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है ता तु शब्द करिकै श्रीभगवान्नैं तिन अभक्तप्राणियोंविषे परमेश्वरविषयक ज्ञानका प्रतिबंध सूचन कऱ्याहै अर्थात् किसी प्रतिबंधके वशतैं ते अभक्त लोक मैं परमेश्वरकूं वास्तवरूपतैं जानिसकते नहीं ॥ २६ ॥

तहां परमेश्वरके वास्तवस्वरूपके ज्ञानका जो प्रतिबंध है ता प्रतिबंधविषे पूर्व योगमायाकूं हेतुरूपता कथन करी । अब ता प्रतिबंधविषे देहइंद्रियरूप संघातके अभिमानकी अतिशयतापूर्वक भोगोंविषे अभिनिवेशरूप दूसरे हेतुकूं श्रीभगवान् कथन करें हैं–

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वंद्वमोहेन भारत ॥
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यांति परंतप ॥ २७ ॥

(पदच्छेदः) इच्छाद्वेषसमुत्थेन । द्वंद्वमोहेन । भारत । सर्व-भूतानि । संमोहम् । सर्गे । यांति । परंतप ॥ २७ ॥

(पदार्थः) हे भारत ! हे परंतप ! यहे सर्वभूतप्राणी स्थूलशरीरकी उत्पत्तितैं अनंतर इच्छाद्वेष दोनोंतैं उत्पन्नहुए शीतउष्णादिक द्वंद्वनिमित्तक मोहकरिके संमोहकूं प्राप्त होवैं हैं ॥ २७ ॥

यानका यह तात्पर्य है—या इच्छाद्वेषतैं रहित कोईभी भूतप्राणी हैं नहीं किंतु सर्वभूतप्राणी ता इच्छाद्वेषकरिकै विशिष्ट है और या इच्छाद्वेषकरिकै आविष्ट पुरुषकूं बाह्यवस्तुविषयक ज्ञानभी संभवता नहीं तौ तिस पुरुषकूं अंतर आत्मविषयक ज्ञान कैसे होवैगा किंतु नहीं होवैगा । यातैं रागद्वेष करिकै व्याकुल हुए अंतःकरणवाले होणेतैं ते सर्वभूतप्राणी मैं परमेश्वरकूं आपणा आत्मारूपकरिकै जानते नहीं । इसीकारणतैं भजन करणेयोग्यभी मैं परमेश्वरकूं भजते नहीं ॥ २७ ॥

हे भगवन् ! (सर्वभूतानि संमोहं यांति) इस वचनकरिकै पूर्व आपने सर्वभूतप्राणियोंकूं संमोहकी प्राप्ति कथन करी । और इस वचनतैंभी पूर्व (चतुर्विधा भजंते माम्) इस वचन करिकै आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी ज्ञानी या च्यारिप्रकारके भक्तजनोंकूं परमेश्वरके भजनकीही प्राप्ति कथन करी थी । ते दोनों वचन परस्पर विरुद्ध अर्थकूंही कथन करें हैं । यातैं (चतुर्विधा भजंते माम्) इस वचनकूं जो आप प्रमाणभूत मानोगे तौ (सर्वभूतानि संमोहं यांति) यह आपका वचन असंगत होवैगा। और (सर्वभूतानि संमोहं यांति) इस वचनकूं जो आप प्रमाणभूत मानौगे तौ (चतुर्विधा भजंते माम्) वह आपका वचन असंगत होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए पुण्यकर्मोंकी अतिशयता करिकै जिन पुरुषोंके सर्व पापकर्म नाश होइगये हैं ते भक्तजनही मैं परमेश्वरका आराधन करेंहैं । ऐसे भक्तजनही (चतुर्विधा भजंते माम्) इस वचन करिकै पूर्व कथन करे हैं। और (सर्वभूतानि संमोहं यांति) इस वचनकरिकै तौ तिन पुण्यवान् भक्तजनोंतैं भिन्नही प्राणियोंका कथन कऱ्या है यातै तिन दोनों वचनोंका परस्पर विरोध होवै नहीं याप्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् कथन करै हैं—

येषां त्वंतगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ॥
ते द्वंद्वमोहनिर्मुक्ता भजंते मां दृढव्रताः ॥२८॥

(पदच्छेदः) येषाम् । तु । अंतगतम् । पापम् । जनानाम् । पुण्यकर्मणाम् । ते । द्वंद्वमोहनिर्मुक्ताः । भजंते । माम् । दृढव्रताः ॥ २८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः जिन पुण्यकर्मवाले जनोंका पाप नाशकूं प्राप्त हुआ है ते पुरुष ता द्वंद्वमोहतें रहित हुए दृढसंकल्पवाले हुए मैं परमेश्वरकूं भजें हैं ॥ २८ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! पूर्व अनेक जन्मोंविषे पुण्यकर्मोंका संचय कऱ्या है जिनोंने या कारणतेंही सफल है जन्म जिनोंका या कारणतें ही इतर सर्वलोकोंतें विलक्षण ऐसे जिन अधिकारी पुरुषोंका तिस तिस पुण्यकर्मों करिकै ज्ञानका प्रतिबंधक पाप नाशकूं प्राप्त हुआ है ते पुरुष ता प्रतिबंधरूप पापके अभाव हुए द्वंद्वमोहनिर्मुक्त हुए अर्थात् सो पाप है निमित्त कारण जिसका ऐसा जो रागद्वेषादिक जन्य अहं सुखी अहं दुःखी इत्यादिक विपर्ययरूप मोह है तिस द्वंद्वमोहनैं वे पुरुष पुनरावृत्तिके अयोग्य देखिकै त्याग किये हैं ऐसे द्वंद्वमोहतें रहित पुरुष दृढव्रत हुए क्या अचल संकल्पवाले हुए अर्थात् सर्वप्रकारतें यह परमेश्वरही भजन करणेयोग्य है सो परमेश्वर इसप्रकारकाही है या प्रकारका जो शास्त्रप्रमाण जन्य तथा अप्रामाण्यशंकातें रहित ज्ञान है ता ज्ञानवाले हुए मैं परमेश्वरकूं आराधन करें हैं अर्थात् अनन्यशरण हुए मैं परमेश्वरकाही सेवन करें हैं । ऐसे अधिकारी जनही (चतुर्विधा भजंते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन) इस पूर्व उक्त वचनाविषे सुकृतिशब्दकरिकै कथन करे हैं । यातें यह अर्थ सिद्ध भया (सर्वभूतानि संमोहं यांति) यह वचन तौ उत्सर्गरूप है । और तिन सर्वभूतप्राणियोंके मध्यविषे जे पुरुष पुण्यकर्मवाले हैं ते पुरुष तिस संमोहतें रहित हुए मैं परमेश्वरकूं भजें हैं इस अर्थकूं बोधनकरणेहारा जो (चतुर्विधा भजंते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन) यह पूर्व उक्त वचन है तथा (येषां त्वंतगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।) यह वचन है सो यह वचन ता उत्सर्गका अपवादरूप है । सामान्यतें सर्वत्र जिसकी प्रवृत्ति होवै ताकूं उत्सर्ग कहें हैं । और किसीके स्थानविशेषविषे जाकी प्रवृत्ति होवै ताकूं अपवाद कहें हैं । तहां जिस स्थानविषे अपवादकी प्रवृत्ति होवै है तिस स्थानविषे उत्सर्गकी प्रवृत्ति

होवै नहीं किंतु तिस स्थानतैं भिन्नस्थानविषेही ता उत्सर्गकी प्रवृत्ति होवै है । जैसे (न हिंस्यात्सर्वाणि भूतानि) यह सर्व भूतोंके हिंसाका निषेध करणेहारा वचन तौ उत्सर्गरूप है और (अग्नीषोमीयं पशुमालभेत) यह यज्ञविषे पशुकी हिंसाकूं विधान करणेहारा वचन अपवादरूप है ता अपवाद स्थानविषे तिस उत्सर्गकी प्रवृत्ति होवै नहीं किंतु तिसतैं भिन्नस्थानविषेही ता उत्सर्गकी प्रवृत्ति होवै है । अर्थात् यज्ञतैं तथा युद्धतैं भिन्नस्थानविषे किसीभी प्राणीकी हिंसा नहीं करणी । या प्रकारका ता उत्सर्गवाक्यका अर्थ सिद्ध होवै है । तैसे (सर्वभूतानि संमोहं यांति) इस उत्सर्गवचनकीभी तिन आर्त्तादिक च्यारिप्रकारके सुकृतीजनोंकूं छोडिकै अन्यत्रही प्रवृत्ति होवै है । अर्थात् तिन हमारे भक्तोंतैं भिन्न अन्य सर्व प्राणी संमोहकूं प्राप्त होवैं हैं या प्रकारका तिस उत्सर्ग वचनका अर्थ सिद्ध होवै है । इसी प्रकारका उत्सर्ग पूर्वभी (त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् । मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥) इस श्लोकविषे कथन कऱ्या था । यातैं (सर्वभूतानि संमोहं यांति । चतुर्विधा भजंते माम्) इत्यादिक वचनोंका परस्पर विरोध होवै नहीं इति । यातैं अंतःकरणकी शुद्धि करणेहारे पुण्यकर्मोंके संपादन करणेवासतै इस अधिकारी पुरुषनैं सर्वदा प्रयत्न करणा ॥ २८ ॥

अब अर्जुनके वक्ष्यमाण प्रश्नके उत्थापन करणेवासतै श्रीभगवान् सूत्रभूत दो श्लोकोंकूं कथन करैं हैं । इसीसूत्रभूत दो श्लोकोंका अगला अष्टम अध्याय व्याख्यानरूप होवैगा–

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतंति ये ॥
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् २९

(पदच्छेदः) जरामरणमोक्षाय । माम् । आश्रित्य । यतंति । ये । ते । ब्रह्म । तत् । विदुः । कृत्स्नम् । अध्यात्मम् । कर्म च । अखिलम् ॥ २९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जे पुरुष जरामरणादिकोंके निवृत्तकरणेवास्तै मैं सगुणपरमेश्वरकूं आश्रयणकरिकै प्रयत्न करैहैं ते पुरुष तत्पदके लक्ष्य अर्थरूप निर्गुणब्रह्मकूं तथा अपरिच्छिन्न त्वंपदके लक्ष्य अर्थरूप आत्माकूं तथा संपूर्ण श्रवणादिक साधनोंकूं जानैं हैं ॥ २९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! संसारकेजरामरणादिक दुःख तथा वैराग्यकूंप्राप्तहुए जे अधिकारीजन तिन जरामरणादिक नानाप्रकारके दुःसह दुःखोंके निवृत्त करणेवास्तै तिन सर्व दुःखोंके निवृत्त करणेहारे मैं सगुण परमेश्वरकूं आश्रयण करिकै अर्थात् इतर सर्व तौं विमुख होइकै एक मैं परमेश्वरके शरणकूं प्राप्त होइ प्रयत्न करैहैं अर्थात् फलकी इच्छावैं रहित होइकै मैं परमेश्वराविषे अर्पण करेहुए शास्त्रविहित शुभकर्मोंकूं करैं हैं ते अधिकारी पुरुष क्रमकरिकै शुद्धअन्तःकरणवाले हुए तिस ब्रह्मकूं जानैंहैं अर्थात् इस सर्व जगत्का कारणरूप जा माया है ता मायाका अधिष्ठानरूप तथा तत्पदका लक्ष्य अर्थरूप तथा सर्व उपाधियोंतैं परे ऐसे निर्गुण शुद्धब्रह्मकूं ते अधिकारी पुरुष जानैं हैं । तथा शरीरकूं आश्रयणकरिकै प्रकाशमान होणेतैं अध्यात्मसंज्ञाकूं प्राप्तहुआ तथा उपाधिकृत सर्वपरिच्छेदतैं रहित ऐसा जो त्वंपदका लक्ष्य अर्थरूप प्रत्यक् आत्मा है तिस आत्माकूंभी ते अधिकारी जन जानैंहैं । तथा तिस तत् त्वं पदार्थविषयक ज्ञानके जितनेक ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप निवास, श्रवण, मनन, निदिध्यासन इत्यादिक साधन हैं जे साधन तिस ज्ञानरूप फलकी नियमतैं प्राप्ति करैंहैं तिन संपूर्ण साधनोंकूंभी ते अधिकारी पुरुष जानैंहैं ॥ २९ ॥

किंच—

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ॥
प्रयाणकालेपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥ ३० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) साधिभूताधिदैवम् । माम् । साधियज्ञम् । च । ये । विदुः । प्रयाणकाले । अपि । च । माम् । ते । विदुः । युक्तचेतसः ॥ ३० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जे अधिकारीजन अधिभूत अधिदैव दोनोंसहित तथा अधियज्ञसहित मैं परमेश्वरकूं चिंतन करै है ते अधिकारीपुरुष मैं परमेश्वरविषे युक्तचित्तवाले हुए मरणकालविषे भी मैं परमेश्वरकूंही जाने हैं ॥ ३० ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! इसप्रकारके हमारे भक्तजनोंकूं मरणकालविषेभी इंद्रियादिक करणोंकी विवशता करिकै मैं परमेश्वरके विस्मरणकी शंका तुमनैं करणी नहीं । जिसकारणतैं अधिभूतसहित तथा अधिदैवसहित तथा अधियज्ञसहित मैं परमेश्वरकूं जे अधिकारी जन सर्वदा चिंतन करैहैं ते अधिकारी जन सर्वदा मैं परमेश्वरविषे समाहितचित्तवाले हुए ता पूर्व अभ्यासजन्य संस्कारोंकी दृढतातैं प्राणोंके उत्क्रमणकालविषेभी मैं सर्वात्मारूप परमेश्वरकूंही जानैंहै अर्थात् ता मरणकालविषे इंद्रियादिक करणोंके असावधान हुएभी मैं परमेश्वरकी कृपाकरिकै तथा पूर्व अभ्यासजन्य संस्कारोंकी दृढतातैं तिन पुरुषोंके चित्तकी वृत्ति मैं परमेश्वरके आकारही होवैहै । दूसरे किसी अनात्मपदार्थके आकार होवै नहीं। यातैं ते अधिकारी जन मैं परमेश्वरके भक्तियोगतैं कृतार्थही होवैहै । तहां अधिभूत, अधिदैव, अधियज्ञ इन शब्दोंके अर्थकूं श्रीभगवान् आपही आगले अष्टम अध्यायविषे अर्जुनके प्रश्नपूर्वक स्पष्टकरिकै कथन करैंगे । यातैं इहां इन शब्दोंका अर्थ कथन कऱ्या नहीं इति । तहां इस सप्तम अध्यायविषे श्रीभगवान्नै उत्तम अधिकारीके प्रति तौ लक्षणावृत्तिकरिकै तत्पदप्रतिपाद्य ज्ञेय ब्रह्म कथन कऱ्या और मध्यम अधिकारीके प्रति तौ शक्तिरूप मुख्य वृत्तिकरिकै तत्पदप्रतिपाद्य ध्येय ब्रह्म कथन कऱ्या ॥३०॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां श्रीमगवद्गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमाध्यायप्रारंभः ।

तहां पूर्व सप्तम अध्यायके अंतविषे (ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नम्) इत्यादिक सार्द्धश्लोककरिकै श्रीभगवान्नैं सप्त पदार्थ ज्ञेयस्वरूपकरिकै सूत्रित करे। तिन सूत्ररूप वचनकरिकै कथन करेहुए सप्त पदार्थोंकाही व्याख्यानरूप यह समग्र अष्टम अध्याय श्रीभगवान्नैं प्रारंभ करीता है। तहां पूर्व तिस सूत्ररूप वचनकरिकै सामान्यरूपतैं जानेहुए तिन सप्तपदार्थोंकूं पुनः विशेषरूपतैं जानणेकी इच्छा करता हुआ अर्जुन दो श्लोकोंकरिकै तिन सप्तपदार्थोंके स्वरूपका प्रश्न करै है–

अर्जुन उवाच ।

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ॥
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥ १ ॥
अधियज्ञः कथं कोत्र देहेस्मिन्मधुसूदन ॥
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोसि नियतात्मभिः ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) किम् । तत् । ब्रह्म । किम् । अध्यात्मम् । किम् । कर्म । पुरुषोत्तम । अधिभूतम् । च । किम् । प्रोक्तम् । अधिदैवम् । किम् । उच्यते । अधियज्ञः । कथम् । कः । अत्र । देहे । अस्मिन् । मधुसूदन । प्रयाणकाले । च । कथम् । ज्ञेयः । असि नियतात्मभिः ॥ १ ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे सर्वपुरुषोंविषे श्रेष्ठ । मधुसूदन ! सो ब्रह्म कौन है तथा अध्यात्म कौन है तथा कर्म कौन है तथा अधिभूत कौन कह्या था। तथा अधिदैव कौन कहीताहै तथा इहाँ अधियज्ञ कौन है सो अधियज्ञ किसप्रकारकरिकै चिंतन करणेयोग्य है तथा सो अधियज्ञ इस देहविषे वर्तै है अथवा देहतैं बाह्य वर्तै है तथा मरणकालविषे समाहितचित्तवाले पुरुषोंनै तूं परमेश्वर किस प्रकारकरिकै जानणे योग्य है ॥ १ ॥ २ ॥

भा० टी०—हे भगवन् ! पूर्व ज्ञेयरूपकरिकै आपनैं कथन कऱ्या जो ब्रह्म है सो ब्रह्म कौन है अर्थात् सो ब्रह्म सोपाधिक है अथवा निरुपाधिक है। इति प्रथमप्रश्नः । तथा हे भगवन् ! आत्माके संबंधवाला होणेतैं आत्माशब्दकरिकै प्रतिपादित जो यह देह है ता देहरूप आत्माकूं आश्रयणकरिकै जो स्थित होवै ताका नाम अध्यात्म है सो अध्यात्म कौन है अर्थात् श्रोत्रादिक करणोंके समूहका नाम अध्यात्म है अथवा प्रत्यक् चैतन्यका नाम अध्यात्महै। इति द्वितीयप्रश्नः । और हे भगवन् ! (कर्म चाखिलम्) इस पूर्व उक्त वचनविषे आपनैं कथन कऱ्या जो कर्म है सो कर्म कौन है अर्थात् सो कर्म यज्ञरूप है अथवा तिस यज्ञतैं कोई अन्य वस्तु है जिसकारणतैं (विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्माणि तनुतेपि च) इस श्रुतिविषे यज्ञ कर्म दोनों भिन्नभिन्नही कथन करे हैं। इति तृतीयप्रश्नः।और हे भगवन् ! भूतोंकूं आश्रयण करिकै जो स्थित होवै ताकूं अधिभूत कहैंहै सो अधिभूत आप किसकूं कहतेहो अर्थात् ता अधिभूत शब्दकरिकै आपकूं पृथिवी आदिक भूतोंकूं आश्रयणकरिकै स्थित यत्किंचित् कार्य विवक्षितहै अथवा संपूर्ण कार्य्यमात्र विवक्षितहै।इति चतुर्थप्रश्नः।और हे भगवन् ! दैवकूं आश्रयण करिकै जो स्थित होवै ताका नाम अधिदैव है सो अधिदैव आप किसकूं कहते हो अर्थात् देवताविषयक जो ध्यान है ताकूं अधिदैव कहते हो अथवा देवताओंके आदित्यमंडलादिकोंविषे अनुस्यूत जो चैतन्य है ताकूं अधिदैव कहते हो। इति पंचमप्रश्नः। और हे भगवन् ! यज्ञकूं आश्रयण करिकै जो स्थित होवै ताका नाम अधियज्ञ है सो अधियज्ञ इहां कौन है अर्थात् किसीदेवताविशेषका नाम अधियज्ञ है अथवा परब्रह्मका नाम अधियज्ञ है सो अधियज्ञभी इस अधिकारी पुरुषनैं किसप्रकार करिकै चिंतन करणेयोग्यहै अर्थात् तादात्म्यरूप करिकै चिंतन करणे योग्य है अथवा अत्यंत अभेदरूप करिकै चिंतन करणेयोग्य है तथा सर्वप्रकारतैंभी सो अधियज्ञ इस देहविषेही रहैहै अथवा इस देहतैं बाह्य रहैहै जो कहो इस देहविषे

रहे है तौभी इसदेहविषे सो अधियज्ञ कौन है अर्थात् बुद्धि आदिरूप है अथवा तिन बुद्धि आदिकोंतैं भिन्नहै । इति षष्ठप्रश्नः । और हे भगवन् ! मरणकालविषे श्रोत्रादिक सर्वकरणोंका समूह सावधानतैं रहित होवैहै यातैं तिस कालविषे चित्तकी सावधानता संभवती नहीं ऐसे मरणकालविषे समाहितचित्तवाले पुरुषोंनैं किसप्रकार करिकै तूं परमेश्वर जानणे योग्य होवैहै । इति सप्तमप्रश्नः । हे भगवन् ! सर्वज्ञ होणेतैं तथा परमकृपालु होणेतैं आप यह सर्व अर्थ मैं शरणागतशिष्यके प्रति कथन करौ इति । इहां अर्जुननैं श्रीभगवान्‌के (हे पुरुषोत्तम हे मधुसूदन) यह दो संबोधन कथन करेहैं । तहां हे अर्जुन ! तुम हम दोनों समान हैं यातैं तूं हमारेसैं तिन अध्यात्मादिकोंका स्वरूप किसवास्तै पूछता है ऐसी भगवान्‌की शंकाके निवृत्त करणेवास्तै अर्जुननैं हे पुरुषोत्तम ! यह संबोधन करिकै यह अर्थ सूचन कऱ्या सर्वपुरुषोंविषे सर्वज्ञतादिक गुणोंकरिकै जो उत्तम होवै ताका नाम पुरुषोत्तम है ऐसे सर्वज्ञ पुरुषोत्तम आपही हो यातैं आपकूं कोईभी पदार्थ अज्ञात नहीं है । किंतु आपकूं करामलककी न्याई सर्व पदार्थ अपरोक्षही हैं । और अल्पज्ञता करिके मैं अर्जुनकूं तिन सर्वपदार्थोंका ज्ञान है नहीं यातैं आपही सो सर्व अर्थ हमारेप्रति कथन करौ इति । और (हे मधुसूदन) या संबोधन करिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन कऱ्या, आप परमकरुणा करिकै युक्त हो यातैं मधु आदिक दैत्योंकूं हनन करिकै महान् आयास करिकैभी सर्वउपद्रवोंकी निवृत्ति करतेहो । ऐसे आपकूं विनाही आयास करिके इस हमारे संशयरूपी तुच्छ उपद्रवकी निवृत्ति करणीही उचित है ॥ १ ॥ २ ॥

इस प्रकार दो श्लोकों करिकै अर्जुननैं करे जे सप्त प्रश्नहैं तिन सप्तप्रश्नोंके उत्तरकूं श्रीभगवान् यथाक्रमतैं तीन श्लोकों करिकै कथन करैं हैं--

श्रीभगवानुवाच ।

अक्षरं ब्रह्म परमं, स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ॥
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) अक्षरम् । ब्रह्म । परमम् । स्वभावः । अध्यात्मम् । उच्यते । भूतभावोद्भवकरः । विसर्गः । कर्मसंज्ञितः ॥३॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! परम अक्षर ब्रह्म कह्याजावै है तथा स्वभाव अध्यात्म कह्याजावै है तथा भूतोंकी उत्पत्ति वृद्धि करणेहारा यज्ञदानादिक कर्म कह्याजावै है ॥ ३ ॥

भा० टी०—तहां जिस क्रमकरिकै शिष्यनैं प्रश्न करे होवैं तिसी क्रमकरिकै जबी गुरु तिन प्रश्नोंके उत्तरकूं कथन करे है तबी आनायास करिकै ही तिस प्रश्न करणेहारे शिष्यके इष्टकी सिद्धि होवै है । इस अभिप्राय करिकै श्रीभगवान् इस प्रथम श्लोकविषे यथाक्रम करिकै तीन प्रश्नोंके उत्तरकूं कथन करते भये हैं । इसप्रकार द्वितीय श्लोकविषेभी तीन प्रश्नोंके उत्तरकूं कथन करतेभये हैं । और तीसरे श्लोकविषे तौ एकही प्रश्नके उत्तरकूं कथन करतेभये हैं इति । तहां ब्रह्मशब्दकरिकै निरुपाधिक ब्रह्मही इहां विवक्षित है सोपाधिक ब्रह्म इहां ब्रह्मशब्दकरिकै विवक्षित नहीं है । इस प्रकारका प्रथम प्रश्नका उत्तर श्रीभगवान् कथन करे हैं । तहां (न क्षरति न नश्यतीति अक्षरम्) अर्थ यह—ज्ञानकरिकै तथा अज्ञान करिकै तथा देशकाल करिकै तथा किसी अन्यकरिकै जो नाशकूं नहीं प्राप्त होवै ताकूं अक्षर कहैं हैं । अथवा (अश्नुते सर्वमिति अक्षरम्) अर्थ यह—जैसे अग्नि लोहेके पिंडकूं अंतरबाह्यतैं व्याप्यकरिकै स्थित होवै है तैसे अव्याकृतकूं तथा ताके सर्व कार्यकूं अंतरबाह्यतैं व्याप्यकरिकै जो स्थित होवै ताकूं अक्षर कहैं हैं अर्थात् उत्पत्ति नाशतै रहित तथा सर्वत्र व्यापक वस्तुका नाम अक्षर है । इसी अक्षरकूं बृहदारण्यक उपनिषद्विषेभी कथन कऱ्या है । तहां याज्ञवल्क्यमुनिनैं गार्गीके प्रति यह वचन कथन कऱ्या है (तद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदंति अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम्) अर्थ यह—हे गार्गि ! ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण इस अक्षरकूं स्थूलभावतैं रहित तथा अणुभावतैं रहित तथा ह्रस्वभावतैं रहित तथा दीर्घभावतैं रहित कथन करैं

हैं इति । इस प्रकारका उपक्रमकरिकै मध्यविषे सो याज्ञवल्क्यमुनि ता गार्गीके प्रति या प्रकारका वचन कहता भया । (एतस्याक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्यचंद्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः नान्योतोऽस्ति द्रष्टा) अर्थ यह–हे गार्गि ! इसी अक्षरके प्रशासनविषे यह सूर्यचंद्रमा नियमपूर्वक स्थित हैं। इस अक्षरतैं भिन्न दूसरा कोई द्रष्टा है नहीं किंतु यह अक्षरही सर्वका द्रष्टा है इति । इस प्रकारका वचन मध्यविषे कहिकै अंतविषे सो याज्ञवल्क्य मुनि या प्रकारका उपसंहार करताभया है । (एतस्मिन्नु खल्वक्षरे गार्ग्याकाशश्च ओतश्च प्रोतश्च) अर्थ यह- हे गार्गि ! इसी अक्षरविषे यह अव्याकृत आकाश ओतप्रोत हैं इति । इस प्रकार तात्पर्यके निश्चय करावणेहारे उपक्रम उपसंहारादिक लिंगोंतैं सर्व उपाधियोंतै रहित तथा सूर्यचंद्रमादिक सर्वजगत्का प्रशासिता तथा अव्याकृतरूप आकाशपर्यंत सर्वप्रपंचका धारण करणेहारा तथा इस शरीरइंद्रियरूप संघातविषे विज्ञाता ऐसा निरुपाधि चैतन्यही ता अक्षरशब्दका अर्थ सिद्ध होवै हैं । ऐसा चैतन्यस्वरूप अक्षरही इहां ब्रह्मशब्दकरिकै विवक्षित है । इसी अर्थके स्पष्टकरणेवास्तै ता अक्षरका विशेषण कहैं हैं (परममिति) अर्थात् सो अक्षर स्वप्रकाश परमानंदस्वरूप है। तात्पर्य यह–सूर्यचंद्रमादिकोंका शासितापणा तथा सर्व जड जगत्का धारकपणा तथा सर्वका द्रष्टापणा इत्यादिक लिंग जे श्रुतिविषे अक्षरके कहैं हैं ते सर्व लिंग ब्रह्मविषेही संभवैं हैं ब्रह्मतैं भिन्न दूसरे किसी पदार्थविषे ते लिंग संभवते नहीं । यातैं सो अक्षर ब्रह्मरूपही है इति । यह वार्त्ता व्यास भगवान्नैं ब्रह्मसूत्रोंविषेभी कथन करी है । तहां सूत्र–(अक्षरमंबरांतधृतेः) अर्थ यह–बृहदारण्यक उपनिषद्विषे अक्षरकूं अव्याकृत नामा आकाशपर्यंत सर्व जगत्का विधारकत्व कथन कऱ्या है। सो सर्वजगत्का विधारकपणा ब्रह्मविषेही संभवै है अन्य किसी पदार्थविषे संभवता नहीं । यातैं अक्षरशब्दकरिकै ब्रह्मकाही ग्रहण करणा इति शंका–हे भगवन् ! (ओमित्येतदक्षरम्) इत्यादिक श्रुतिविषे तथा

(ओमित्येकाक्षरंब्रह्म) इस स्मृतिविषे ओंकाररूप प्रणवकूंही अक्षर कह्या है । और लोकविषेभी अक्षरशब्द वर्णोंविषेही रूढ हैं । तहां (रूढिर्योगमपहरति) अर्थ यह–पदकी रूढिशक्ति तिस पदके योगशक्तिका बाधक होवै है । इस न्यायकरिकै तिस रूढिशक्तिकूं (न क्षरतीति अक्षरम्) इस योगशक्तितैं प्रबलता सिद्ध होवै है । यातैं ता अक्षर शब्दकरिकै ओंकाररूप प्रणवकाही ग्रहण करणा अथवा (संयुक्तमेतत्क्षरमक्षरं च) इत्यादिक श्रुतियोंविषे अव्यक्तकूंभी अक्षर कह्या है । यातैं ता अक्षर शब्दकरिकै अव्यक्तकाही ग्रहण करणा । समाधान–सर्व जगत्का शासितपणा तथा विधारकपणा तथा द्रष्टापणा इत्यादिक जे लिंग पूर्व अक्षरके कथन करे हैं ते लिंग ओंकाररूप प्रणवविषे तथा मायारूप अव्यक्तविषे संभवते नहीं । तथा (तस्य प्रकृतिलीनस्य) इस श्रुतिनै तिस प्रणवकाभी प्रलय कथन कन्याहै । तथा (तरत्यविद्यां विततम्) इस स्मृतिनैं तिस मायारूप अव्यक्तकाभी नाश कथन कन्याहै । यातैं इहां अक्षरशब्दकरिकै वर्णात्मकप्रणवका तथा मायारूप अव्यक्तका ग्रहण कन्या जावै नहीं और श्रुतिविषे तथा स्मृतिविषे जो प्रणवकूं अक्षर कह्याहै सो ताके नित्यपणेकूं लेके अक्षर नहीं कह्या किंतु जैसे सत्य ब्रह्मकी प्राप्तिकरणेहारे ज्ञानकूं श्रुतिविषे सत्य कह्या है तैसे अक्षर ब्रह्मका वाचक होणेतैं ता प्रणवकूं अक्षर कह्याहै । इसीप्रकार अव्यक्तकूं जो श्रुतिविषे अक्षर कह्याहै सो ताके नित्यपणेकूं लेके नहीं कह्या किंतु स्वकार्यकी अपेक्षाकरिकै सो अव्यक्त चिरकालपर्यंत रहेहै, यातैं ताकूं अक्षर कह्याहै । जिस कारणतैं (क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः) यह श्रुति प्रधानरूप अव्यक्तकूं नाशवान् कहिकै परब्रह्मकूं ही अक्षर कहैहै । और पूर्व कथनकरे हुए जगद्विधारकत्वादिक अक्षरके लिंग वर्णात्मक प्रणवविषे संभवै नहीं । यातैं इहां अक्षरशब्दकी सा योगशक्तिही रूढाशक्तितैं प्रबल है यातैं इहां अक्षरशब्दकरिकै उत्पत्तिनाशतैं रहित चैतन्यकाही ग्रहण करणा । प्रण-

वका तथा अव्यक्तका ता अक्षरशब्दकरिकै ग्रहण करणा नहीं। तिस प्रणव अव्यक्तकी व्यावृत्ति करणेवासतैही श्रीभगवान्नैं ता अक्षरका (परमं) यह विशेषण कथन कन्या है। इतने पर्यंत (किं तद्ब्रह्म) इस प्रथमप्रश्नका उत्तर कथन कन्या। अब (किमध्यात्मम्) इस द्वितीय प्रश्नका उत्तर कथन करैं है-(स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते इति) हे अर्जुन ! जो उत्पत्ति नाशतैं रहित अक्षर पूर्व ब्रह्मरूपकरिकै कथन कन्याहै तिस अक्षरब्रह्मका जो स्वभाव है अर्थात् तिस अक्षरब्रह्मका स्वरूपभूत जो प्रत्यक्चैतन्य है सो प्रत्यक् चैतन्यही इस देहरूप मिथ्या आत्माकूं आश्रयण करिकै भोक्तारूपतैं वर्त्तमान हुआ अध्यात्म इस शब्द-करिकै कह्या जावैहै। तिस भोक्ताचैतन्यतैं भिन्न श्रोत्रादिक करणोंका समूह अध्यात्मशब्दकरिकै कह्या जावै नहीं। इति द्वितीयप्रश्नोत्तरम्। अब (किं कर्म) इस तीसरे प्रश्नका उत्तर निरूपण करैंहैं (विसर्गः कर्म-संज्ञितः इति) हे अर्जुन ! इंद्रादिक देवताओंका उद्देश करिकै द्रव्यका त्यागरूप जो याग है तथा वैदिक अग्निविषे घृत यवादिक पदार्थोंका प्रक्षेप-रूप जो होम है तथा ब्राह्मणोंके ताईं सुवर्ण गौआदिक पदार्थोंकी दक्षिणारूप जो दानहै ता यागहोम दान तीनोंविषे त्यागरूपता अनुगतहै। यातैं त्यागका वाचक जो विसर्गशब्द है ता विसर्गशब्दकरिकै याग होम दान इन तीनोंका ग्रहण करणा। ऐसा याग होमदानरूप विसर्गही इहां कर्मशब्दकरिकै कथन कन्याहै। कोई उदासीनक्रियामात्र इहां कर्मशब्दकरिकै कथन कन्या नहीं। कैसा है सो त्यागरूप विसर्ग, भूतभावोद्भवकरहै अर्थात् स्थावरजं-गमरूप भूतोंका जो उत्पत्तिरूप भावहै तथा वृद्धि रूप उद्भवहै तिन दोनोंकूं करणेहाराहै। यज्ञहोमादिक कर्मों करिकैही सर्वभूतोंकी उत्पत्ति तथा वृद्धि श्रुतिस्मृतिविषे प्रसिद्धही है। तहां स्मृति-(अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्य-मुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥) अर्थ यह-वैदिक-अग्निविषे श्रद्धापूर्वक पाईहुई जा आहुतिहै सा आहुति सूक्ष्मरूपकरिकै आदि-त्यमंडलविषे स्थित होवै है। तिस आहुतिविशिष्ट आदित्यतैं जलकी वृष्टि

होवैहै। तिस जलकी वृष्टितैं व्रीहियवादिक अन्न उत्पन्न होवैंहैं । तिस अन्नतैं स्थावरजंगमरूप प्रजा उत्पन्न होवै है तथा तिसी अन्नतैं ता प्रजाकी वृद्धि होवै है । इस प्रकारकी परंपरा करिकै वे यज्ञहोमादिक कर्मही सर्वभूतोंके उत्पत्तिवृद्धिका कारण हैं इति । इसी अर्थकूं (वे वा एते आहुती उत्क्रांतः) इत्यादिक श्रुतिभी कथन करैं हैं इति । और किसी टीकाविषे तौ (भूतभावोद्भवकरः) इस वचनका यह अर्थ कन्या है । मनुष्यादिक भूतोंका जो सात्त्विक राजसादिरूप भाव है तथा उत्पत्तिरूप उद्भव है तिन दोनोंकूं जो करै है ताका नाम भूतभावोद्भवकर है । तहां तिन भूतोंकी यज्ञदानादिक कर्मोंतैं उत्पत्ति तौ (अग्नौ प्रास्ताहुतिः) इस पूर्वउक्त स्मृतिवचन करिकै ही सिद्ध है । इस प्रकारका भूतोंके सात्त्विकादिकभावकी कर्मोंतैं उत्पत्तिभी (बुद्धिः कर्मानुसारिणी) अर्थ यह-इस पुरुषकी आपणे कर्मोंके अनुसारही सात्त्विक वा राजस बुद्धि होवैहै इत्यादिक स्मृतिवचनोंकरिकै सिद्धहीहै इति । और किसी टीकाविषे तौ (भूतभावोद्भवकरः) इस वचनका यह अर्थ कथन कन्या है । भूतरूप जे भाव होवैं। तिनोंकूं भूतभाव कहैहैं अर्थात् स्थावरजंगमरूप जे पदार्थ हैं तिनोंका नाम भूतभाव है । ऐसे भूतभावोंके उत्पत्तिरूप उद्भवकूं जो करैहै ताका नाम भूतभावोद्भवकर है इति । इति तृतीयप्रश्नोत्तरम् ॥ ३ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे (किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म) इन तीन प्रश्नोंका उत्तर कथन कन्या अब (अधिभूतं किम् अधियज्ञः कः) इन तीन प्रश्नोंका उत्तर कथन करैं हैं-

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ॥
अधियज्ञोहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) अधिभूतम् । क्षरः । भावः । पुरुषः । च । अधिदैवतम् । अधियज्ञः । अहम् । एव । अत्र । देहे । देहभृताम् । वर ४

(पदार्थः) हे सर्वप्राणियोंके मध्यविषे श्रेष्ठ अर्जुन ! नाशवान् पदार्थ अधिभूत कह्या जावै है तथा हिरण्यगर्भनाम पुरुष अधिदैव कह्याजावैहै

तथा विष्णुरूप अधियज्ञ मैं वासुदेव ही " हूं सो अधियज्ञ ईस मनुष्यदेहविषेही वर्त्तै है ॥ ४ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जो पदार्थ विनाशकूं प्राप्त होवै है ताका नाम क्षर है और जो पदार्थ उत्पत्तिकूं प्राप्त होवैहै ताका नाम भावहै ऐसा उत्पत्ति-नाशवान् जिवनाक पदार्थमात्र है सो पदार्थ मात्र सर्वप्राणीमात्ररूप भूतकूं आश्रयणकरिकै ही होवैहै । यातैं सो उत्पत्तिनाशवान् पदार्थमात्र अधि-भूत इस नामकरिकै कह्या जावैहै । कोई यत्किंचित् पदार्थ ता अधिभूत शब्दकरिकै कह्या जावै नहीं । इति चतुर्थप्रश्नोत्तरम् । अब (अधिदैवं किम्) इस पंचमप्रश्नका उत्तर कथन करैहैं (पुरुषश्चाधिदैवतमिति) तहां सर्व कार्यमात्र पूर्ण करे होवैं जिसने ताका नाम पुरुष है । अथवा शरीररूप सर्व पुरोंविषे जो निवास करैहै ताका नाम पुरुषहै ऐसा पुरुष जो हिरण्यगर्भ हैं जो हिरण्यगर्भ समष्टिलिंगस्वरूप है । तथा जो हिरण्यगर्भ सूर्यादिरूपकरिकै चक्षुआदिक सर्वव्यष्टिकरणों ऊपरि अनुग्रह करै है । तथा जिस हिरण्यगर्भकूं (आत्मैवेदमग्र आसीत्पुरुषविधः । हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य) इत्यादिक श्रुतियां कथन करैं हैं । तथा जिस हिर-ण्यगर्भकूं (स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते । आदिकर्त्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्त्तत) इत्यादिक स्मृतियां कथन करी हैं । सो हिरण्यगर्भ पुरुष आदित्यादिक देवतोंकूं आश्रयण करिकै चक्षुआदिक करणोंऊपरि अनुग्रह करै है । यातैं सो हिरण्यगर्भ पुरुष अधिदैव इस नाम करिकै कह्या जावै है । देवताविषयक ध्यानादिक ता अधिदैवश-ब्दकरिकै कहे जावैं नहीं । इहां (पुरुषश्च) या वचनविषे स्थित चश-ब्दकरिकै ता हिरण्यगर्भविषे श्रुतिस्मृतिकरिकै सिद्ध प्रसिद्धता कथन करी । और किसी टीकाविषे तौ (पुरुषश्च) या वचनविषे स्थित चकारकरिकै श्रोत्रादिक चतुर्दशकरणोंके प्रवर्त्तक दिक् वात अर्क आदिक चतुर्दश देवतावोंका ग्रहण कऱ्या है अर्थात् हिरण्यगर्भ पुरुष तथा दिक् वात

अर्कादिक देवता सर्वही अधिदैव कहे जावैं हैं इति । इति पंचमप्रश्नोत्तरम्
अब (अधियज्ञः कः) इस षष्ठप्रश्नका उत्तर कथन करैं हैं । (अधि-
यज्ञोहमिति.) तहां सर्वयज्ञोंका अधिष्ठानतारूप तथा सर्व यज्ञोंके फलका
प्रदाता तथा सर्व यज्ञोंका अभिमानीरूप जो विष्णु देवता है सो विष्णु
देव पूर्वउक्त विसर्गरूप यज्ञकूं आश्रयण करिकै स्थित होवै है यातैं सो
विष्णु अधियज्ञ इस नाम करिकै कह्या जावै है । जिस विष्णुकूं (यज्ञो
वै विष्णुः) यह श्रुतिभी यज्ञरूप करिकै कथन करै है। ऐसा अंतर्यामी
विष्णुरूप अधियज्ञ मैं वासुदेवही हूं मैं परमेश्वरतैं भिन्न कोईभी वस्तु है
नहीं । इतने कहणेकरिकै पूर्व षष्ठप्रश्नविषे (कथम्) इस शब्दकरिकै
कथन कऱ्या जो सो अधियज्ञ तादात्म्यरूप करिकै चिंतन करणे योग्य
है । अथवा अत्यंत अभेदरूप करिकै चिंतन करणेयोग्य है । या प्रकारका
संदेह था ता संदेहकीभी निवृत्ति करी अर्थात् सो परब्रह्मरूप विष्णु अत्यंत
अभेदरूपकरिकैही चिंतन करणेयोग्य है इति। ऐसा अधियज्ञरूप विष्णु इस
मनुष्यदेह विषे ही यज्ञरूप करिकै वर्त्तै है। तथा सो विष्णु सर्वव्यापक
होणेतैं परिच्छिन्न बुद्धि आदिकोंतैं भिन्न है। इतने कहणेकरिकै सो
अधियज्ञ इस देहविषे वर्तै है अथवा इस देहतैं बाह्य वर्त्तै है । देहविषे
रह्याभी सो अधियज्ञ बुद्धिआदिरूप है अथवा बुद्धिआदिकोंतैं भिन्न है
इस संदेहकीभी निवृत्ति करी । अर्थात् सो अधियज्ञरूप विष्णु यज्ञरूप
करिकै इस मनुष्यदेहविषेही रहै है । तथा बुद्धिआदिकोंतैं भिन्न है यह
उत्तर सिद्ध भया । इहां इस मनुष्यदेह करिकै ही सो यज्ञ सिद्ध होवै है
अन्यदेह करिकै सिद्ध होवै नहीं । यातैं इस मनुष्यदेहविषे ही यज्ञकी
स्थिति कथन करी है । तहां (हे देहभृतां वर) अर्थात् हे सर्वप्राणि-
योंविषे श्रेष्ठ अर्जुन ! यह जो अर्जुनका संबोधन भगवान्‌नैं कथन कऱ्या
है सो क्षणक्षणविषे मैं परमेश्वरके. संभाषणतैं कृतकृत्य हुआ तूं अर्जुन इस
हमारे बोधके योग्य है इस प्रकारके उत्साह करावणे वासतै कथन कऱ्या
है । इति षष्ठप्रश्नोत्तरम् ॥ ४ ॥

अब (प्रयाणकाले कथं ज्ञेयोसि) अर्थात् मरणकालविषे समाहित चित्तवाले पुरुषोंनें किसप्रकारतें तूं परमेश्वर जानणे योग्य है । इस सप्तमप्रश्नके उत्तरकूं श्रीभगवान् कथन करें हैं–

अंतकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ॥
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥५॥

(पदच्छेदः) अंतकाले । च । माम् । एव । स्मरन् । मुक्त्वा । कलेवरम् । यः । प्रयाति । सः । मद्भावम् । याति । न । अस्ति । अत्र । संशयः ॥ ५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष मरणकालविषे भी मैंपरमेश्वरकूं ही चिंतन करताहुआ इसशरीरकूं परित्याग करिकै जावै है सो पुरुष मैंपरमेश्वरके स्वरूपताकूंही प्राप्तहोवैहै इसअर्थविषे कोईभी संशय नहींहै ५

भा० टी०–हे अर्जुन ! जो अधिकारीपुरुष अधियज्ञरूप मैं सगुणब्रह्मकूं अथवा परमाक्षररूप मैं निर्गुणब्रह्मकूं सर्वकालविषे चिंतन करताहुआ वा चिंतनके संस्कारोंकी दृढतातें श्रोत्रादिक सर्वकरणोंकी असावधानतावाले मरणकालविषे भी स्मरण करताहुआ इस कलेवरका परित्यागकरिकै अर्थात् इसशरीरविषे अहंमम अभिमानका परित्यागकरिकै प्राणोंके वियोगकालविषे गमन करैहै । सो पुरुष मद्भावकूं प्राप्त होवैहै, अर्थात् निर्गुण ब्रह्मभावकूं प्राप्तहोवैहै । तहां सगुणब्रह्मके ध्यानपक्षविषे तौ (अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः) इत्यादिक वक्ष्यमाण श्लोककरिकै कथनकऱ्या जो देवयानमार्ग है तिस देवयानमार्गकरिकै जो उपासकपुरुष ब्रह्मलोकविषे जावैहै सो उपासक पुरुष तिस हिरण्यगर्भलोकके भोगोंके अंतविषे निर्गुण ब्रह्मभावकूं प्राप्त होवैहै । और निर्गुण ब्रह्मस्वरूपके स्मरणपक्षविषे तौ जो पुरुष इस कलेवरकूं परित्यागकरिकै जावैहै यह वचन केवल लोकदृष्टिके अभिप्रायकरिकै जानणा । काहेतें मैं ब्रह्मरूपहूं इसप्रकारका निर्गुण ब्रह्मका साक्षात्कार जिसपुरुषकूं प्राप्त भया है तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषके प्राणोंका मरणकालविषे इस शरीरतें बाह्य उत्क्रमणही नहीं होवै है । और

शरीरतै प्राणोंके उत्क्रमणतैं विना लोकान्तरविषे गमन संभवै नहीं । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है तहां श्रुति-(न तस्य प्राणा उत्क्रामंत्यत्रैव समवलीयंते)। अर्थ यह-तिस ब्रह्मवेत्ता पुरुषके प्राण इस शरीरतैं बाह्य उत्क्रमण करते नहीं किंतु इस शरीरके भीतरही अधिष्ठान चैतन्यविषे लयभावकूं प्राप्त होवैं है इति । ऐसा ब्रह्मवेत्तापुरुष तिस निर्गुणब्रह्मभावकूं साक्षात्‌ही प्राप्त होवै है । तहां श्रुति-(ब्रह्मैव सन्‌ ब्रह्माप्येति) । अर्थ यह-सो तत्त्ववेत्ता पुरुष ब्रह्मरूप हुआही ब्रह्मभावकूं प्राप्त होवै है इति ! हे अर्जुन ! देहतैं भिन्न आत्माविषे तथा मैं निर्गुणब्रह्मकी प्राप्तिविषे कोईभी संशय है नहीं अर्थात्‌ आत्मा देहतैं भिन्न है अथवा नहीं है तथा देहतैं भिन्न हुआभी आत्मा ईश्वरतैं अभिन्न है अथवा भिन्न है इस प्रकारका कोईभी संशय इहां नहीं है । जिस कारणतैं तत्त्वसाक्षात्कारतै अनंतर (छिद्यंते सर्वसंशयाः) इस श्रुतिनैं सर्वसंशयोंकी निवृत्ति ही कथन करी है । इहां (कलेवरं मुक्त्वा प्रयाति) इस वचनकरिकै तौ श्रीभगवान्नैं जीवात्माका इस देहतैं भिन्नपणा कथन कऱ्या है और (मद्भावं याति) इस वचनकरिकै तौ इस जीवात्माका ईश्वरतैं अभिन्नपणा कथन कऱ्या है । इसी जीव ईश्वरके अभेदकूं तत्त्वमसि अहं ब्रह्मास्मि इत्यादिक महावाक्यभी कथन करैं है । इति सप्तमप्रश्नोत्तरम्‌ ॥ ५ ॥

तहां अंतकालविषे परमेश्वरका ध्यान करणेहारे पुरुषकूं तिस परमेश्वरकी प्राप्ति अवश्यकरिकै होवै है इस पूर्व उक्त अर्थकेही स्पष्ट करणेवासतै श्रीभगवान्‌ दूसरे देवतावोंके ध्यान करणेहारे पुरुषकूंभी नियम करिकै तिस तिस देवताभावकी प्राप्ति कथन करैं हैं-

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यंते कलेवरम्‌ ॥
तंतमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥६॥

(पदच्छेदः) यम्‌ । यम्‌ । वा । अपि । स्मरन्‌ । भावम्‌ । त्यजति । अंते । कलेवरम्‌ । तम्‌ । तम्‌ । एव । एति । कौंतेय । सदा । तद्भावभावितः ॥ ६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्वकालविषे तिस तिस देवताविषयक भाववाला हुआ यह पुरुष मरणकालविषे जिस जिस भी देवताविशेषकूं स्मरण करताहुआ इस शरीरकूं त्याग करैहै सो पुरुष तिस तिस देवताभावकूं ही प्राप्त होवैहै ॥ ६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! मरणकालविषे मैं परमेश्वरकूं स्मरण करता हुआ यह अधिकारी पुरुष मैं परमेश्वरके भावकूंही प्राप्त होवै है यहही केवल नियम नहीं है किंतु ता मरणकालविषे यह पुरुष जिस जिस देवताविशेषरूप भावकूं तथा अन्यभी किसी प्रिय अप्रिय पदार्थरूप भावकूं स्मरण करताहुआ इस शरीरका परित्याग करै है सो पुरुष ता मरणतै अनंतर तिस तिस भावकूंही प्राप्त होवै है। तिसतैं अन्यभावकूं प्राप्त होवै नहीं । इहां यह तात्पर्य है—जो प्राणी जिसवस्तुका निरंतर ध्यान करैहै तिस प्राणीकूं ता ध्यानके बलतैं देहांतरकी प्राप्तितैं विना इस जीवितकालविषेही तिस वस्तुभावकी प्राप्ति किसी स्थलविषे देखणेमैं आवैहै । जैसे भयके वशतैं निरंतर भ्रमरका ध्यान करणेहारा जो कीटविशेष है तिस कीटकूं ता ध्यानके प्रभावतैं जीवते हुएही तिस भ्रमररूपताकी प्राप्ति होवै है । और नंदिकेश्वर निरंतर महादेवके ध्यान करिकै देहांतरकी प्राप्तितैं विनाही ता महादेवके समानरूपताकूं प्राप्त होता भया है । यह वार्त्ता शास्त्रविषे प्रसिद्धही है । जबी तिस तिस वस्तुके ध्यानकरणेहारे पुरुषकूं जीवते हुएही ता ध्यानके प्रभावतैं तिस तिस ध्येयवस्तुभावकी प्राप्ति होवै है तबी तिसतिस देवताविशेषका सर्वदा ध्यान करणेहारे पुरुषकूं मरणतैं अनंतर तिस तिस देवताविशेषकी प्राप्ति होवै है याके विषे क्या कहणा है इति । तहां मरणकालविषे यद्यपि तिसतिस देवताविशेषके स्मरणका उद्यम संभवता नहीं तथापि पूर्वकालके अभ्यासजन्य जे संस्काररूप वासना हैं ते वासनाही ता मरणकालविषे तिस स्मरणका हेतु हैं । इस अर्थकूं श्रीभगवान् कहै हैं (सदा तद्भावभावितः इति) तहां तिस मरणतैं पूर्व सर्वकालविषे तिसतिस देवतादिकोंविषे जो भाव है

अर्थात् भावनाजन्यसंस्काररूप वासना है ताका नाम तद्भाव है । सो तद्भाव संपादन कऱ्या है जिस पुरुषनैं ताका नाम तद्भावभावित है अर्थात् जो पुरुष पूर्वध्यानजन्य संस्कारोंकरिकै युक्त है तिन संस्कारोंके बलतैंही तिस पुरुषकूं मरणकालविषे तिस तिस देवतादिकोंका स्मरण होवै है । इहां (हे कौंतेय !) इस संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं अर्जुनविषे आपणे पिताकी भगिनीका पुत्ररूपता कहिकै स्नेहकी अतिशयता सूचन करी । तिस करिकै मैं परमेश्वर अवश्य करिकै तुम्हारे ऊपरि अनुग्रह करौंगा यह अर्थ सूचन कऱ्या । ताकरिकै यह भगवान् हमारे साथि वंचना करता है या प्रकारकी शंकाका अभाव सूचन कऱ्या इति । इहां किसी टीकाविषे (यं यं चापि) या प्रकारका मूल श्लोकका पाठ कल्पनाकरिकै (यं यं) या शब्दकरिकै तौ तिस तिस देवता विशेषका ग्रहण कऱ्या है और चकारतैं अन्यभी जिसी किसी वस्तुका ग्रहण कऱ्या है परंतु बहुत मूलपुस्तकोंविषे (यं यं वापि) इस प्रकारकाही पाठ होवै है । यातैं सोईही इहां लिख्या है ॥ ६ ॥

हे अर्जुन ! जिसकारणतैं पूर्वस्मरणके अभ्यासजन्य मरणकालकी अंत्यभावना ही तिस मरणकालविषे परवश पुरुषकूं देहांतरकी प्राप्तिविषे कारण होवै है तिसकारणतैं तूं अर्जुन तिस अंत्यभावनाकी उत्पत्तिवासतै सर्वकालविषे मैं परमेश्वरका ही चिंतन कर इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं-

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ॥
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) तस्मात् । सर्वेषु कालेषु । माम् । अनुस्मर । युध्य । च । मयि । अर्पितमनोबुद्धिः । माम् । एव । एष्यसि । असंशयम् ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिसकारणतैं सर्व कालोंविषे मैं परमेश्वरकूं तूं चिंतनकर तथा युद्धकर मैं परमेश्वर विषे अर्पण करेहुए मनबुद्धिवाला

तूं मैं परमेश्वरकूं ही प्राप्त होवैगा या अर्थविषे किंचित्मात्रभी संशय नहीं है ॥ ७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जिसकारणतें पूर्वउक्त प्रकारतें पूर्वले अभ्याससजन्य अंत्यभावनाही देहांतरकी प्राप्तिका कारण होवै है तिसकारणतें मैं परमेश्वरविषयक ता अंत्यभावनाकी उत्पत्तिवासतै तूं अर्जुन ता मरणतें पूर्वही सर्वकालोंविषे बहुत आदरपूर्वक निरंतर मैं सगुणपरमेश्वरकूं चिंतन कर। जो कदाचित् आपणे अंतःकरणकी अशुद्धिके वशतें निरंतर मैं परमेश्वरके चिंतन करणेविषे तूं समर्थ नहीं होइसकै तौ तिस अंतःकरणकी शुद्धि करणेवासतै तूं युद्धकूं कर । इहां युद्धशब्द स्ववर्णआश्रमके सर्व नित्यनैमित्तिक कर्मोंका उपलक्षण है। प्रसंगविषे पूर्वयुद्धही प्राप्त है यातें श्रीभगवान्नैं अर्जुनके प्रति युद्धकरणेका विधान कऱ्या है अर्थात् ता अंतःकरणकी शुद्धिवासतै तूं युद्धादिक नित्यनैमित्तिककर्मोंकूं कर। इस प्रकार नित्यनैमित्तिककर्मोंके अनुष्ठान करिकै ता अंतःकरणकी शुद्धिहुएतें अनंतर मैं परमेश्वरविषे अर्पण कऱ्याहुआ है संकल्परूप मन तथा निश्चयरूप बुद्धि जिस तुमनैं ऐसा हुआ तूं अर्थात् सर्वकालविषे मैं परमेश्वरके चिंतनपरायण हुआ तूं मैं परमेश्वरकूं ही प्राप्त होवैगा। इस अर्थविषे किंचित्मात्रभी संशय नहीं है इति। सो यह सगुण ब्रह्मका चिंतन उपासक पुरुषके प्रति ही भगवान्नैं कथन कऱ्या है जिस कारणतें तिन उपासकपुरुषोंकूं तिस मरणकालकी अंत्यभावनाकी अपेक्षा अवश्यकरिकै रहै है। और जिन पुरुषोंकूं निर्गुण ब्रह्मका साक्षात्कार हुआ है तिन तत्त्ववेत्ता पुरुषोंकूं तौ तिस ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिकालविषेही अज्ञानकी निवृत्तिरूपमुक्ति सिद्ध है। यातें तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं तिस अंत्यभावनाकी किंचित्मात्रभी अपेक्षा नहीं है। इहां ध्येयवस्तुके आकार चित्तके वृत्तिका नाम भावना है ॥ ७ ॥

इस प्रकार अर्जुनके सप्त प्रश्नोंका उत्तर कहिकै मरणकालविषे परमेश्वरके स्मरणका जो परमेश्वरकी प्राप्तिरूप फल कथन कऱ्या है तिसीकूंही विस्तारतें कहणेवासतै श्रीभगवान् आरंभ करैं हैं—

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ॥
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिंतयन् ॥ ८ ॥

(पदच्छेदः) अभ्यासयोगयुक्तेन । चेतसा । नान्यगामिना । परमम् । पुरुषम् । दिव्यम् । याति । पार्थ । अनुचिंतयन् ॥ ८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्वदा परमात्मादेवकूं चिंतनकरताहुआ यह पुरुष अभ्यासरूप योगकरिकै युक्त तथा अन्यविषयोंविषे नहीं गमनकरणेहारे ऐसे चित्तकरिकै परम दिव्य पुरुषकूं प्राप्त होवै है ॥ ८ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! गुरुशास्त्रके उपदेशतैं अनंतर निरंतर परमात्मादेवका ध्यान करताहुआ यह अधिकारी पुरुष चित्तकरिकै तिस परमात्म देवकूं प्राप्त होवै है । अब ता चित्तविषे परमेश्वरकी प्राप्ति करणेकी योग्यताके बोधन करणेवास्तै ता चित्तके दो विशेषणोंकूं श्रीभगवान् कथन करे है (अभ्यासयोगयुक्तेन नान्यगामिना इति) इहां मै परमेश्वरविषे विजातीय वृत्तियोंके व्यवधानतै रहित जो सजातीय वृत्तियोंका प्रवाह है ताका नाम अभ्यास है जो अभ्यास पूर्व षष्ठ अध्यायविषे विस्तारतें कथन करि आये हैं सो अभ्यासही समाधिरूप योग है । ऐसे अभ्यासरूपयोग करिकै युक्त जो चित्त है अर्थात् अनात्माकार सर्ववृत्तियोंका परित्याग करिकै तिस अभ्यासयोगविषेही अत्यंत संलग्न जो चित्त है तथा जो चित्त नान्यगामीहै अर्थात् निरोधके प्रयत्नतै विनाभी जिस चित्तका अनात्मपदार्थोंविषे जाणेका स्वभाव नहीं है ऐसे समाहितचित्त करिकै ही यह अधिकारी पुरुष तिस परमात्मादेवकूं प्राप्त होवैहै । कैसा है सो परमात्मादेव-परम है अर्थात् निरतिशय आनंदरूप है । पुनः कैसा है सो परमात्मा देव-पुरुष है अर्थात् सर्वत्र परिपूर्ण है । पुनः कैसा है सो परमात्मा देव-दिव्य है अर्थात् प्रकाशरूप आदित्यविषे अंतर्यामीरूप करिकै स्थित है । तहां (यश्चासावादित्ये) यह श्रुति तिस परमात्मादेवकी आदित्यविषे स्थिति कथन करै है । ऐसे परम दिव्यपुरुषकूं अभेदरूप करिकै चिंतनकरताहुआ

यह पुरुष नदी समुद्रकी न्याईं तिसी परमात्मादेवकूं प्राप्त होवैहै। यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करीहै। तहां श्रुति-(यथा नद्यः स्पंदमानाः समुद्रे अस्तं गच्छति नामरूपे विहाय तथा विद्वान् पुण्यपापे विधूय परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्) अर्थ यह-जैसे श्रीगंगायमुनादिक नदियां आपणे नामरूपका परित्याग करिकै समुद्रविषे एकताभावकूं प्राप्त होवैहै तैसे यह विद्वान् पुरुषभी पुण्यपापकर्मका परित्याग करिकै सूत्रात्मातैंभी पर अंतर्यामी दिव्य पुरुषकूं अभेदरूप करिकै प्राप्त होवैहै ॥ ८ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे श्रीभगवान्नें कथन कन्या जो अधिकारी जनोंकूं चिंतन करणे योग्य तथा प्राप्तहोणेयोग्य जो परम दिव्यपुरुष है तिसी परम दिव्यपुरुषकूं पुनः भी अनेक विशेषणोंकरिकै श्रीभगवान् अब कथन करैं हैं-

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ॥ सर्वस्यधातारमचिंत्यरूपमादित्यवर्णंतमसःपरस्तात्९

(पदच्छेदः) कविम् । पुराणम् । अनुशासितारम् । अणोः । अणीयांसम् । अनुस्मरेत् । यः । सर्वस्य । धातारम् । अचिंत्यरूपम् । आदित्यवर्णम् । तमसः । परस्तात् ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! सर्वज्ञ तथा अनादि तथा सर्वका नियंता तथासूक्ष्मतै भी अत्यंत सूक्ष्म तथा सर्वका धारणकरणेहारा तथा अचिंत्यरूपवाला तथा आदित्यकी न्याईं प्रकाशवाला तथा अज्ञानतै परे स्थित ऐसे दिव्यपुरुषकूं जो कोई पुरुष चिन्तन करैहै सो पुरुष तिसी दिव्यपुरुषकूं प्राप्त होवैहै॥९॥

भा० टी०-हे अर्जुन। मोक्षकी कामनावाले अधिकारीजनोंकूं चिंतन करणेयोग्य तथा प्राप्तहोणेयोग्य जो परमदिव्य पुरुष है सो परमात्मा देव कैसा है-कवि अर्थात् भूत भविष्यतवर्त्तमान सर्ववस्तुवोंका द्रष्टा होणेतै सर्वज्ञ है। पुनः कैसा है सो परमात्मादेव-पुराण है अर्थात् इस सर्वजगत्का कारण होणेतै अनादि है। पुनः कैसा है सो परमात्मादेव-अनुशासिता है अर्थात् सूर्यचंद्रमादिक सर्वजगत्कूं नियमपूर्वक

चलावणेहारा है अथवा सर्वप्राणियोंके हृदयविषे स्थित होइकै तिन प्राणियोंके कर्मोंके अनुसार तिन प्राणियोंकूं शुभ अशुभकार्यविषे प्रवृत्त करणेहारा है। पुनः कैसा है सो परमात्मादेव—आकाशादिक सर्व प्रपंचका उपादानकारण होणेतें आकाशादि सूक्ष्मपदार्थोंतैंभी अत्यंत सूक्ष्म है कार्यकी अपेक्षा करिके ताके उपादानकारणविषे अत्यंत सूक्ष्मता पटतंतु आदिकोंविषे प्रसिद्धही है । इहां सूक्ष्मता करिकै दुर्विज्ञेयता ग्रहण करणी। अन्यथा (महतो महीयान्) यह श्रुति असंगत होवेगी। पुनः कैसा है सो परमात्मादेव—सर्वका धारण करणेहारा है अर्थात् पुण्य पापकर्मोंका जिवनाक्ष फल है तिस सर्वफलकूं सर्वप्राणियोंकी ताईं आपणे आपणे पुण्यपापकर्मके अनुसार विचित्ररूपतें भिन्नभिन्न करिकै देणेहारा है। यह वार्त्ता (फलमत उपपत्तेः) इस सूत्रके व्याख्यानविषे श्रीभाष्यकारोंने विस्तारतें प्रतिपादन करी है। पुनः कैसा है सो परमात्मादेव—अचिंत्यरूप है अर्थात् अपरिमित महिमावाला होणेतें नहीं चिंतनकरणेकूं शक्य है रूप जिसका। पुनः कैसा है सो परमात्मादेव—आदित्यवर्ण है आदित्यकी न्याईं सर्व जगत्का अवभासक है वर्ण क्या प्रकाश जिसका ताका नाम आदित्यवर्ण है अर्थात् जो परमात्मादेव सूर्यकी न्याईं सर्व जगत्कूं प्रकाशकरणेहारा है। प्रकाशरूप होणेतें ही जो परमात्मादेव तमतें पर है। इहां अज्ञानरूप जो मोह अंधकार है ताका नाम तम है तिस तमतें पर है अर्थात् प्रकाशरूप होणेतें तिस अज्ञानरूप तमका विरोधी है ऐसे परमात्मारूप दिव्यपुरुषकूं जो अधिकारी पुरुष चिंतन करै है सो अधिकारी पुरुष तिस अभ्यासकी दृढतातें तिस परमदिव्यपुरुषकूंही प्राप्त होवै है। इस प्रकारतें इस श्लोकका पूर्वले श्लोकके साथि अन्वय करणा। अथवा (स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्) इस अगले श्लोकके साथि अन्वय करणा। अन्वय नाम संबंधका है॥ ९ ॥

हे भगवन् ! आप वारंवार परमेश्वरके स्मरणविषे प्रयत्नकी अधिकता कथन करतेहो सो किस कालविषे वा परमेश्वरके स्मरणविषयक

प्रयत्नकी अधिकता कथन करते हो ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता कालका कथन करै हैं—

प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ॥ भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) प्रयाणकाले । मनसा । अचलेन । भक्त्या । युक्तः । योगबलेन । च । एव । भ्रुवोः । मध्ये । प्राणम् । आवेश्य सम्यक् । सः । तम् । परम् । पुरुषम् । उपैति । दिव्यम् ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष मरणकालविषे एकाग्र मनकरिकै तिस दिव्यपुरुषका स्मरण करै है तथा भक्तिकरिकै युक्त है तथा योगकरिकै युक्त है सो पुरुष दोनों भ्रुवोंके मध्यविषे प्राणकूं भलीप्रकारतै स्थापन करिकै तिसै परम दिव्य पुरुषकूं प्राप्त होवै है ॥ १० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो उपासक पुरुष मरणकालविषे एकाग्रमन करिकै तिस दिव्यपुरुषकूं स्मरण करै है । तथा जो पुरुष भक्तिकरिकै युक्त है अर्थात् परमेश्वरविषयक परमप्रेमकरिकै युक्त है । तथा जो पुरुष योगबलकरिकै युक्त है (इहां समाधिका नाम योग है । ता समाधिरूप योगका जो बल है अर्थात् ता समाधिरूप योग करिकै जन्य जो संस्कारोंका समूह है जो संस्कारोंका समूह ता समाधितै व्युत्थान करणेहारे संस्कारोंका विरोधी है ऐसे योगबलकरिकै जो पुरुष युक्त है । तथा जो पुरुष प्रथम आपणे हृदयकमलविषे प्राणोंकूं वशकरिकै तिसतै अनंतर तिस हृदयदेशतै ऊर्ध्वगमन करणेहारे सुषुम्ना नाडीरूप मार्गद्वारा पूर्व पूर्वभूमिकाके जयक्रम करिकै दोनों भ्रुवोंके मध्यविषे स्थित आज्ञाचक्रविषे तिस प्राणकूं स्थापनकरिकै सावधान हुआ दशमद्वाररूप ब्रह्मरंध्रतैं उत्क्रमण करै है सो उपासक पुरुषही कविपुराण इत्यादिक लक्षणों करिकै युक्त तिस परमदिव्यपुरुषकूं प्राप्त होवै है । तहां आधार-

चक्र स्वाधिष्ठानचक्र मणिपूरकचक्र अनाहतचक्र विशुद्धचक्र आज्ञाचक्र इन षट्चक्रोंका स्वरूप तथा तिनोंके स्थान तथा तिनोंके देवता तथा तिन षट्चक्रोंविषे प्राणके स्थापन करणेका प्रकार आत्मपुराणके एकादश अध्यायविषे हम विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं ॥ १० ॥

तहां पूर्व प्रसंगविषे परमेश्वरभावकी प्राप्तिवासतैं श्रीभगवान्नैं परमेश्वरका स्मरण विधान कऱ्या ता कहणे करिकै यह संशय प्राप्त होवै है जो तिस ध्यानकालविषे जिसीकिसी नामकरिकै तिस परमेश्वरका स्मरण करणा अथवा नियमतैं किसी एक नामकरिकै ही ता परमेश्वरका स्मरण करणा इति । इस संशयकी निवृत्ति करणेवासतैं श्रीभगवान् (सर्वे वेदा यत्पदमामनंति तपांसि सर्वाणि च यद्वदंति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरंति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्) इत्यादिक श्रुतियों करिकै प्रतिपादित जो ओंकाररूप प्रणवनाम है तिस प्रणवनाम करिकैही परमेश्वरका स्मरण करणा अन्य मंत्रादिकोंकरिकै करणा नहीं या प्रकारके नियमकूं अब कथन करैं हैं-

यदक्षरं वेदविदो वदंति विशंति यद्यतयो वीतरागाः ॥ यदिच्छंतो ब्रह्मचर्यं चरंति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) यत् । अक्षरम् । वेदविदः । वदंति । विशंति । यत् । यतयः । वीतरागाः । यत् । इच्छंतः । ब्रह्मचर्यम् । चरंति । तत् । ते । पदम् । संग्रहेण । प्रवक्ष्ये ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! वेदवेत्तापुरुष जिस अक्षरकूं कथन करें हैं तथा निःस्पृह संन्यासी जिस अक्षरकूं प्राप्त होवैं हैं तथा साधकपुरुष जिस अक्षरकूं इच्छतेहुए ब्रह्मचर्यकूं करैं हैं तिसैं अक्षरकूं मैं तुम्हारे ताईं संक्षेपकरिकै कथन करताहूं ॥ ११ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जिस ओंकारनामवाले अविनाशी ब्रह्मकूं वेदवेत्तापुरुष कथन करैं हैं अर्थात् (एतद्वैतदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभि-

वदंति अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम्) इत्यादिक श्रुतिवचनों करिकै स्थूला-दिक सर्व विशेषधर्मोंकी निवृत्ति करिकै जिस अक्षरब्रह्मकूं प्रतिपादन करैं हैं हे अर्जुन ! सो अक्षर ब्रह्म केवल प्रमाणविषे कुशल वेदवेत्ता पुरुषोंनें ही प्रतिपादन नहीं करीता किंतु मुक्तपुरुषोंकूं प्राप्त होणेयोग्य होणेतैं सो अक्षरब्रह्म तिन मुक्तपुरुषोंकूंभी अनुभव करीताहै। इस अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करैंहैं-(विशंति इति) हे अर्जुन ! सर्व विषयसुखोंकी इच्छातैं रहित जे यत्नशील संन्यासी हैं ते निष्कामसंन्यासी भी म ब्रह्मरूप हूं याप्रकारके आत्मज्ञानकरिकै जिस अक्षरब्रह्मकूं आपणा स्वरूपभूतकरिकै प्राप्तहोवैं हैं। हे अर्जुन ! सो अक्षरब्रह्म तिन तत्त्ववेत्ता सिद्धपुरुषोंनैं हैं। केवल अनुभव नहीं करीता किंतु साधक मुमुक्षुजनोंकाभी सर्व प्रयत्न तिस अक्षरब्रह्मकी प्राप्तिवासतैंही है। इस अर्थकूं श्रीभगवान् कहैं हैं-(यदिच्छंतः इति) हे अर्जुन ! जिस अक्षरब्रह्मके जानणेकी इच्छाक-रतेहुए नैष्ठिकब्रह्मचारी गुरुकुलविषे निवास करिकै ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदांत-शास्त्रके श्रवणमननादिकोंकूं करैंहैं ऐसा अक्षरब्रह्मरूपपद मैं भगवान् तैं अर्जुनके प्रति संक्षेपतैं कथन करताहूं अर्थात् जिसप्रकारतैं तैं अर्जुनकूं तिस अक्षरब्रह्मका संशयतैं रहित यथार्थबोध होवै तिस प्रकारतैं मैं तुम्हारे प्रति कथन करताहूं। यातैं तिस अक्षर ब्रह्मकूं मैं अर्जुन किसप्रकार जानूंगा या प्रकारकी चिंता करिकै तूं व्याकुल मत होउ इति। तहां यह ओंकार-रूप प्रणव परब्रह्मकाही वाचक है अथवा शालग्रामादिक प्रतिमाकी न्याई तिस परब्रह्मका प्रतीक है। यातैं तिस परब्रह्मकी वाचकतारूप करिकै तथा प्रतीकतारूपकरिकै श्रुति भगवतीनैं मंदमध्यमबुद्धिवाले पुरुषोंके प्रति क्रममुक्तिरूप फलवाली तिस प्रणवकी उपासना कथन करीहै। तहां श्रुति-(यः पुनरेतत् त्रिमात्रेणोमित्यनेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तमधिगच्छति) अर्थ यह-जो पुरुष अकार उकार मकार इन तीन मात्राओंवाले ॐ इस अक्षरकरिकै परमपुरुषकूं चिंतन करै है सो पुरुष तिस परमपुरुषकूंही प्राप्त होवैहै इति। इस प्रकारतैं श्रुतिविषे कथन करी

जो प्रणवकी उपासना है सोईही उपासना इहां भगवान्कूं विवक्षित है। यातें इस अष्टमाध्यायकी समाप्तिपर्यंत श्रीभगवान्नें सो योगधारणासहित ओंकारकी उपासना तथा ता उपासनाका स्वस्वरूपकी प्राप्तिरूप फल तथा तिस फलतें अपुनरावृत्ति तथा ताका मार्ग यह सर्व अर्थ कथन करीता है ॥ ११ ॥

तहां (तत्ते पदं प्रवक्ष्ये) इस पूर्व उक्त वचनकरिकै प्रतिज्ञा करया जो अर्थ है तिस अर्थकूं साधनसहित दोश्लोकों करिकै श्रीभगवान् कथन करे हैं-

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ॥
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् १२॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ॥
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् १३॥

(पदच्छेदः) सर्वद्वाराणि । संयम्य । मनः । हृदि । निरुध्य । च । मूर्ध्नि । आधाय । आत्मनः । प्राणम् । आस्थितः । योगधारणाम् । ओम् । इति । एकाक्षरम् । ब्रह्म । व्याहरन् । माम् । अनुस्मरन् । यः । प्रयाति । त्यजन् । देहम् । सः । याति । परमाम् । गतिम् ॥ १२ ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो उपासकपुरुष सर्वइंद्रियद्वारोंकूं रोकिकैकरिकै तथा मनकूं हृदयविषे निरुद्ध करिकै तथा प्राणकूं मूर्धादेशविषे स्थित करिकै आत्मविषयक समाधिरूप धारणाकूं करताहुआ तथा ओम् इस ब्रह्मरूप एक अक्षरकूं उच्चारण करताहुआ तथा मैं परमेश्वरकूं चिंतन-करताहुआ इसदेहकूं परित्याग करताहुआ जावैहै सो उपासकपुरुष परम गतिकूं प्राप्त होवैहै ॥ १२ ॥ १३ ॥

भा०टी०-हे अर्जुन ! जो उपासक पुरुष श्रोत्रादिक इंद्रियरूप द्वारोंकूं आपणे आपणे शब्दादिकविषयोंतें रोकिकै स्थित हुआहै अर्थात्

तिन शब्दादिक विषयोंविषे वारंवार दोषदर्शनके अभ्यासतैं तिन विषयोंतैं विमुखताकूं प्राप्तहुए श्रोत्रादिक इंद्रियोंकरिकै तिन शब्दादिक विषयोंकूं नहीं ग्रहण करता हुआ स्थित हुआहै । शंका–हे भगवन् ! श्रोत्रादिक बाह्य इंद्रियोंके निरोध कियेहुएभी अंतर मनकरिकै तिन विषयोंका चिंतन होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (मनो हृदि निरुध्य च इति) हे अर्जुन ! पूर्व पष्ठ अध्यायविषे विस्तारतैं कथन कऱ्या जो अभ्यासवैराग्य है तिस अभ्यासवैराग्य दोनोंकरिकै जो पुरुष तिस मनकूं हृदयदेशविषे सर्ववृत्तियोंतैं रहित करिकै स्थित हुआ है अर्थात् जो पुरुष अंतरभी विषयोंकी चिंताकूं नहीं करताहुआ स्थित हुआ है । इस प्रकार बाह्यअंतरज्ञानके द्वारभूत मनसहित श्रोत्रादिक इंद्रियरूप सर्वद्वारोंकूं निरोध करिकै जो पुरुष क्रियाके द्वारभूत प्राणकूं भी सर्वओरतैं निग्रह करिकै मूर्द्धादेशविषे स्थापनकरिकै स्थितहुआ है अर्थात् जो पुरुष, गुरुउपदिष्ट मार्गकरिकै पूर्वपूर्व भूमिक जयक्रमतैं प्रथम तिस प्राणकूं दोनों भ्रुवोंके मध्यविषे स्थितकरिकै पश्चात् तिसतैं ऊपरि मूर्द्धादेशविषे स्थापन करिकै स्थित हुआ है । तथा जो पुरुष प्रत्यगात्माविषयक समाधिरूप धारणाकूं करता हुआ स्थित हुआ है इहां (आत्मनः) यह पद अन्यदेवताविषयक धारणाकी व्यावृत्तिकरणेवासतै है और ॐ यह जो एक अक्षर है सो ॐअक्षर ब्रह्मका वाचक होणेतैं अथवा शालग्रामादिक प्रतिमाकी न्याई ब्रह्मका प्रतीक होणेतैं ब्रह्मरूप है । ऐसे ब्रह्मरूप ॐ इस एक अक्षरकूं उच्चारण करताहुआ जो पुरुष स्थित हुआ है । इहां यद्यपि (ॐ इति व्याहरन्) इतनेमात्र कहणेकरिकै ही निर्वाह होइसकै है (एकाक्षरम्) इस कहणेतैं कोई अधिक अर्थ सिद्ध होता नहीं तथापि (एकाक्षरम्) यह वचन अनायासताकूं कथन करताहुआ वा प्रणवके उच्चारणकी स्तुतिवासतै है । अथवा (ॐ इति व्याहरन् एकाक्षरं ब्रह्म मामनुस्मरन्) या प्रकारतैं पदोंका अन्वय करणा । अर्थ यह–जो पुरुष ॐ इस

प्रणवमंत्रकूं उच्चारण करताहुआ स्थित हुआ है तथा जो पुरुष तिस ॐकारका अर्थरूप अद्वितीय अविनाशी सर्वत्र व्यापक मैं परमेश्वरकूं स्मरण करताहुआ स्थित हुआ है इसप्रकार प्रणवमंत्रका जप करता हुआ तथा ता प्रणवमंत्रके अर्थरूप मैं परमेश्वरका चिंतन करताहुआ जो पुरुष मरणकालविषे सुषुम्ना नाम मूर्द्धन्यनाडीरूप मार्गकरिकै इस देहकूं परित्याग करताहुआ गमन करै है सो उपासक पुरुष देवयान-मार्गद्वारा ब्रह्मलोकविषे जाइकै तिस ब्रह्मलोकके दिव्यभोगोंकूं भोगके अंतविषे परमगतिकूं प्राप्त होवै है । अर्थात् मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकारके तत्त्वसाक्षात्कारकरिकै सर्वतें उत्कृष्ट ब्रह्मभावकूं प्राप्त होवै है । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है । तहां श्रुति–(एषाऽस्य परमा गतिरेषाऽस्य परमा संपदेषोऽस्य परम आनंदः) अर्थ यह–यह अद्वितीय आनंदस्व-रूप ब्रह्मही इस विद्वान् पुरुषकी परम गति है तथा परमसंपद् है तथा परम आनंद है ॥ १२ ॥ १३ ॥

हे भगवन् ! इस पूर्वउक्तरीतिसें जो पुरुष मरणकालविषे प्राणवायुके निरोधके अभावतें दोनों भ्रुवोंके मध्यविषे प्राणोंकूं स्थित करिकै मूर्द्ध-न्यनाडीकरिकै इसदेहके परित्याग करणेकूं आपणी इच्छाकरिकै समर्थ नहीं होवै है किंतु प्रारब्धकर्मोंकूं नाश हुए तिस मरणकालविषे पर-वश हुआ जो पुरुष इस देहका परित्याग करै है तिस पुरुषकूं कौन फल प्राप्त होवै है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिस फलकूं कथन करैं हैं–

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ॥
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥१४॥

(पदच्छेदः) अनन्यचेताः । सततम् । यः । माम् । स्मरति । नित्यशः । तस्य । अहम् । सुलभः । पार्थ । नित्ययुक्तस्य । योगिनः ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष अनन्यचित्तवाला हुआ निरंतर जीवितकालपर्यंत मैं परमेश्वरकूं चिंतन करै है तिस समाहितचित्तवाल योगीपुरुषकूं मैं परमेश्वर अतिसुलभ हूं ॥ १४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरतें अन्य किसीभी पदार्थविषे नहीं है आसक्तचित्त जिसका ताका नाम अनन्यचेता है ऐसा अनन्यचेता हुआ जो पुरुष निरंतर जीवितकालपर्यंत मैं परमेश्वरकूं चिंतन करै है सो निरंतर समाहितचित्तवाला पुरुष पूर्वउक्त रीतिसैं स्वाधीनताकरिकै इस देहका परित्याग करै अथवा पराधीनताकरिकै इस देहका परित्याग करै सर्वप्रकारतें तिस पुरुषकूं मैं परमेश्वर अत्यंत सुलभ हूं अर्थात् इतर पुरुषोंकूं अत्यंत दुर्लभ हुआभी मैं परमेश्वर तिस पुरुषकूंतो सुखेनही प्राप्त होणेयोग्य हूं । हे अर्जुन ! तूंभी इसप्रकारका हमारा अनन्यभक्त है यातैं मैं परमेश्वर तुम्हारेकूंभी अत्यंत सुलभ हूं । यातै तूं किसीप्रकारका भय मत कर इति । इहां (अनन्यचेताः) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं तिस परमेश्वरके स्मरणविषे अति आदररूप सत्कार कथनकर्या । और (सततम्) इस वचनकरिकै निरंतरता कथन करी और (नित्यशः) इस वचनकरिकै दीर्घकालता कथन करी । ता कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं (स तु दीर्घकालनैरंतर्यसत्कारसेवितो दृढभूमिः) इस सूत्रउक्त पतंजलिका मत अनुसरण कर्या। यद्यपि इससूत्रविषे सः इस पदकरिकै पतंजलिनैं अभ्यासका कथन कर्याहै और इहां श्रीभगवान्नैं (मां स्मरति) या वचनकरिकै स्मरणका कथन कर्याहै तथापि तिस अभ्यासका परमेश्वरके स्मरणविषेही परिअवसानहै यातै यह अर्थ सिद्ध भया । दूसरे सर्वविक्षेपोंतैं रहित होइकै अति आदरपूर्वक तथा जीवितकालपर्यंत तथा व्यवधानतैं रहित जो निरंतर परमेश्वरका चिंतन है सो परमेश्वरका चिंतनही तिस मोक्षरूप परम गतिके प्राप्तिका हेतु है । ऐसे परमेश्वरके चिंतनके प्राप्तहुए आपणी इच्छापूर्वक सुषुम्नानाडीद्वारा प्राणोंका उत्क्रमण होवो अथवा नहीं होवो याके विषे कोई अत्यंत आग्रह है

नहीं । सर्वप्रकारतें सो परमेश्वरका चिंतन करणेहारा पुरुष तिस परम गतिकूंही प्राप्त होवैहै ॥ १४ ॥

हे भगवन् ! इस प्रकार सर्वदा परमेश्वरका चिंतन करिकै तिस परमेश्वरकूं प्राप्तहुए ते अधिकारी जन पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होवैं हैं अथवा नहीं ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ते अधिकारी जन पुनः आवृत्तिकूं नहीं प्राप्त होवै हैं या प्रकारका उत्तर कहैं हैं-

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ॥
नाप्नुवंति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥१५॥

(पदच्छेदः) माम् । उपेत्य । पुनः । जन्म । दुःखालयम् । अशाश्वतम् । न । आप्नुवंति । महात्मानः । संसिद्धिम् । परमाम् । गताः ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! ते उपासक पुरुष मैं परमेश्वरकूं प्राप्तहोइकै पुनः सर्वदुःखोंके स्थानभूत नाशवान् जन्मकूं नहीं प्राप्त होवैहै जिस कारणतें महात्माजन सेवैतें उत्कृष्ट मोक्षेकूं प्राप्त हुए हैं ॥ १५ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! यह उपासक पुरुष मैं परमेश्वरकूं प्राप्तहोइकै पुनः मनुष्यादि देहका संबंधरूप जन्मकूं प्राप्त होते नहीं । कैसा है सो जन्म-दुःखालय है अर्थात् गर्भवास तथा योनिद्वारतें निर्गमन इसतें आदिलेके जे गर्भउपनिषद्विषे दुःख कथन करेहैं तिन सर्वदुःखोंका स्थान है । पुनः कैसा है सो जन्म-अशाश्वत है अर्थात् स्थिरपणेतें रहित है तथा आपणे दर्शनकालविषेभी नाश हुए जैसा है । ऐसे शरीरके संबंधरूप जन्मकूं ते पुरुष प्राप्त होते नहीं । अर्थात् ते पुरुष पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होते नहीं इति । अब ता पुनरावृत्तिके नहीं होणेविषे तिन उपासकपुरुषोंके हेतुरूप दो विशेषण कथन करेहै (महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः इति।) हे अर्जुन ! जिस कारणतें ते पुरुष महात्मा हैं अर्थात् रजतमरूप मलतें रहित शुद्ध अंतःकरणवाले हैं । तथा ते पुरुष परमसिद्धिकूं प्राप्त हुए हैं

अर्थात् वे उपासक पुरुष मैं परमेश्वरके लोककूं प्राप्त होइकै तहां अनेक प्रकारके दिव्य भोगोंको भोगिकै ताके अंतविषे ब्रह्मज्ञानकूं प्राप्त होइकै सर्वतें उत्कृष्ट कैवल्यमुक्तिकूं प्राप्त हुए हैं तिस कारणतें ते पुरुष पुनरावृत्तिकूं प्राप्त होते नहीं । इहां मैं परमेश्वरकूं प्राप्त होइकै वे पुरुष मोक्षकूं प्राप्त हुए हैं इस वचनके कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं तिन उपासक पुरुषोंकूं क्रममुक्तिकी प्राप्ति दिखाई तहां उपासनाके बलतें देवयानमार्गद्वारा ब्रह्मलोकविषे जाइकै तहां दिव्यभोगोंकूं भोगिकै ताके अंतविषे तत्त्वज्ञानकरिकै जो मुक्तिकी प्राप्ति है ताका नाम क्रममुक्ति है । यह वार्त्ता स्मृतिविषेभी कथन करी है । तहां स्मृति—(ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रति संचरे । परस्यांते कृतात्मानः प्रविशंति परं पदम् ।) अर्थ यह—वे उपासकपुरुष ब्रह्मलोकविषे जाइकै तहां ब्रह्माके प्रलयकी प्राप्ति हुए तत्त्वसाक्षात्कारवाले होइकै ता ब्रह्माके नाश हुएतें अनंतर तिस ब्रह्माके साथही विदेहमुक्तिकूं प्राप्त होवैं हैं इति । इहां मैं परमेश्वरकूं प्राप्त होइकै ते उपासक पुरुष मोक्षकूं प्राप्त होवैं हैं इस भगवान्के वचनतें ब्रह्मलोकतें भिन्न कोई विष्णुलोक जानणा नहीं । काहेतें जैसे पौराणिक ब्रह्मलोक विष्णुलोक रुद्रलोक इन तीन लोकोंकी भिन्न भिन्न ऊपरिऊपरि कल्पना करैं हैं तैसे वेदांतसिद्धांतविषे तिन लोकोंकी भिन्नभिन्न ऊपरिऊपरि कल्पना है नहीं किंतु वेदांत सिद्धान्तविषे वे सर्वलोक सत्यलोकनामा ब्रह्मलोकविषेही अंतर्भूत हैं । तहां विष्णुके उपासकोंकूं तौ सो ब्रह्मलोक विष्णुलोक होइकै प्रतीत होवैहै । और रुद्रके उपासकोंकूं तौ सो ब्रह्मलोक रुद्रलोक होइकै प्रतीत होवैहै । यह सर्व वार्त्ता (परा हि सोपासनकर्मोर्जितिर्हिरण्यगर्भप्राप्त्यंता) इस बृहदारण्यक उपनिषद्की श्रुतिके व्याख्यानविषे श्रीभाष्यकारोंनैं तथा ता भाष्यके व्याख्यानकरतावोंनैं स्पष्ट करिकै कथन करीहै ॥ १५ ॥

तहां परमेश्वरकी उपासनातें परमेश्वरकूं प्राप्त होइकै वहां तत्त्वसाक्षात्कारकूं प्राप्तहुए जे उपासक पुरुष हैं तिन उपासक पुरुषोंकी अपुनरावृत्तिके कथन कियेहुए तिस परमेश्वरतें विमुख तथा तत्त्वसाक्षात्कारतें रहित

पुरुषोंकी ता ब्रह्मलोकतैं पुनरावृत्ति अर्थतैंही सिद्ध होवैहै।इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैहैं—

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ॥
मामुपेत्य तु कौंतेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) आब्रह्मभुवनात् । लोकाः । पुनरावर्त्तिनः । अर्जुन । माम् । उपेत्य । तु । कौंतेय । पुनः । जन्म । न । विद्यते ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! ब्रह्मलोक सहित सर्वलोक पुनरावृत्तिवालेही हैं हे कौंतेय ! एक मैं परमेश्वरकूं ही प्राप्त होइकै पुनः जन्म नहीं होवै है ॥ १६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरतैं विमुख तथा असम्यक्दर्शन-वाले जितनेक पुरुष हैं तिन सर्व पुरुषोंकूं ब्रह्मलोकके सहित सर्व भोग-भूमिरूप लोक पुनरावृत्तिवालेही होवै हैं अर्थात् मैं परमेश्वरतैं विमुख पुरुष ब्रह्मलोकादिक सर्वलोकोंतैं नीचे पतन होइकै पुनः जन्मकूं प्राप्त होवैं हैं । शंका—हे भगवन् ! तैं परमेश्वरकूं प्राप्तहुए अधिकारी जनोंकूंभी तिन पुरुषोंकी न्याईं क्या पुनरावृत्तिकीही प्राप्ति होवै है ? ऐसी शंकाके हुए श्रीभगवान् पूर्व कहेहुए अर्थकूं पुनः दृढकरावणेवासतै कहै है—(मामुपेत्य तु इति) हे कौंतेय ! मैं एक परमेश्वरकूंही प्राप्त होइकै परम आनंदकूं प्राप्त हुए जे अधिकारी पुरुष हैं तिन अधिकारी पुरुषोंकूं पुनः कदाचित्भी जन्म नहीं होवै है अर्थात् तिन पुरुषोंकी कदाचित्भी पुनरावृत्ति नहीं होवै है इहां (हे अर्जुन !) या संबोधन करिकै श्रीभगवान्नैं ता अर्जुनविषे स्वभावसिद्ध महानुभावपणा कथन कऱ्या । और (हे कौंतेय !) या संबोधन करिकै मातातैंभी महानुभावपणा कथन कऱ्या । ता कहणेकरिकै आत्मज्ञानकी सिद्धिवासतै ता अर्जुनविषे स्वरूपतैं शुद्धि तथा कारणतैं शुद्धि सूचन करी। इहां (आब्रह्मभवनात्) या प्रकारका जो किसी पुस्तक-

विषे पाठ होवै है तौभी पूर्वउक्त अर्थतें विलक्षणता नहीं है । काहेतें (भवंत्यत्र भूतानीति भुवनम्) अर्थ यह–जिसविषे भूत विद्यमान होवैं ताका नाम भुवनहै। या प्रकारकी व्युत्पत्तिकरिकैसो भुवनशब्द लोकका वाचक है । और निवासके स्थानका नाम भवन है सो भवनशब्दभी लोककाही वाचक है इति। इहां (आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन) इस पूर्वार्द्ध-करिकै श्रीभगवान्नें ब्रह्मलोकविषे प्राप्त हुए पुरुषोंकी पुनरावृत्ति कथन करी । और (मामुपेत्य तु कौंतेय पुनर्जन्म न विद्यते) इस उत्त-रार्धकरिकै तिस ब्रह्मलोकतें अपुनरावृत्ति कथन करी । याके विषे यह व्यवस्था है । क्रममुक्ति है फल जिनोंका ऐसी जे दहरादिक उपासना हैं तिन उपासनावों करिकै जे पुरुष देवयानमार्गद्वारा तिस ब्रह्मलोककूं प्राप्त हुए हैं तिन उपासक पुरुषोंकूंही तहां उत्पन्नहुए तत्त्वसाक्षात्कार-करिकै ब्रह्माके साथि मोक्षकी प्राप्ति होवै है । यातें ते उपासक पुरुष पुनरावृत्तिकूं प्राप्त होवैं नहीं । और जे पुरुष पंचाग्नि विद्यादिकों करिकै ता ब्रह्मलोककूं प्राप्त हुए हैं, तिन पुरुषोंकूं तहां तत्त्वसाक्षात्कारकी प्राप्ति होवै नहीं । यातें ते पुरुष तौ वहां भोगोंकूं भोगिकै अवश्यकरिकै पुनरा-वृत्तिकूं प्राप्त होवैं हैं । परंतु ते उपासक पुरुषभी जिस कल्पविषे तिस ब्रह्मलोककूं प्राप्त हुए हैं तिस कल्पविषे पुनरावृत्तिकूं प्राप्त होते नहीं किंतु दूसरे कल्पविषे पुनरावृत्तिकूं प्राप्त होवैं हैं । यातें (ब्रह्मलोकम-भिसंपद्यते न च पुनरावर्त्तते) इत्यादिक श्रुतियोंनें तथा (अनावृत्ति-शब्दात्) इस सूत्रनें ब्रह्मलोकविषे प्राप्तहुए उपासक पुरुषोंकी जो पुन-रावृत्ति कथन करी है सो क्रममुक्तिवाले उपासक पुरुषोंकी अपुनरावृत्ति कथन करी है और जे श्रुतिस्मृतिवचन ब्रह्मलोकविषे प्राप्त हुए पुरुषोंकी पुनरावृत्तिकूं कथन करैं हैं ते वचन तौ पंचाग्निविद्यादिकोंकरिकै ब्रह्म-लोककूं प्राप्त हुए पुरुषोंके पुनरावृत्तिकूं कथन करैं हैं । यातें उपासक पुरुषोंकी ब्रह्मलोकतें अपुनरावृत्तिकूं कथन करणेहारे वचनोंका तथा ता ब्रह्मलोकतें पुनरावृत्तिकूं कथन करणेहारे वचनोंका परस्पर विरोध होवै नहीं

ता पंचाग्निविद्याका स्वरूप आत्मपुराणके षष्ठअध्यायविषे हम विस्तारतैं निरूपण करिआये हैं ॥ १६ ॥

तहां ब्रह्मलोकसहित सर्वलोक कालकरिकै परिच्छिन्न होणेत पुनरावृत्तिवालेही हैं। इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

सहस्रयुगपर्यंतमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ॥
रात्रिं युगसहस्रांतां तेहोरात्रविदो जनाः ॥ १७ ॥

(पदच्छेदः) सहस्रयुगपर्यंतम् । अहः । यत् । ब्रह्मणः । विदुः । रात्रिम् । युगसहस्रांताम् । ते । अहोरात्रविदः । जनाः १७

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जे पुरुष ब्रह्माके चतुर्युगसहस्रपर्यंत दिनकूं जानैं हैं तथा चतुर्युगसहस्रपर्यंत रात्रिकूं जानै हैं ते योगीजनही दिनरात्रिकूं जानणेहारे हैं ॥ १७ ॥

भा०टी०—तहां सत्रहलक्ष अठावीस सहस्रवर्ष १७२८००० सत्ययुगका परिमाण होवैहै और बारहलक्ष छियानवें सहस्रवर्ष १२९६००० त्रेतायुगका परिमाण होवै है । और आठ लक्ष चौसठ सहस्र वर्ष ८६४००० द्वापर युगका परिमाण होवै है। और च्यारि लक्ष बत्तीस सहस्र वर्ष ४३२००० कलियुगका परिमाण होवै है। यह चारों युग जबी एक सहस्रवार व्यतीत होवैं हैं तबी प्रजापतिनामा ब्रह्माका एकदिन होवै है। इसीप्रकार यह च्यारियुग जबी एकसहस्रवार व्यतीत होवैं हैं तबी तिस ब्रह्माकी एकरात्रि होवै है । यह ही ब्रह्माके दिनरात्रिका परिमाण (चतुर्युगसहस्रं तु ब्रह्मणो दिनमुच्यते) इत्यादिक पुराणके वचनोंविषेभी कथन कन्या है । इस प्रकारके ब्रह्माके दिनकूं तथा रात्रिकूं जे पुरुष जानैं हैं ते योगीजनही रात्रि दिनके जानणेहारे कहेजावैं है । और जे पुरुष सूर्य चंद्रमाकी गतिकरिकै दिनरात्रिकूं जानैं है ते पुरुष दिनरात्रिके जानणेहारे कहेजावैं नहीं। जिस कारणतैं ते पुरुष अल्पदर्शी हैं ॥ १७ ॥

इस प्रकार ब्रह्माके दिनरात्रि जबी पंचदश होवैं हैं तबी ता ब्रह्माका एक पक्ष कह्याजावै है । ऐसे दो पक्षोंका एकमास कह्याजावै है । ऐसे

द्वादशमासोंका एक वर्ष कह्याजावै है । ऐसे एकशत १०० वर्ष ता ब्रह्माकी परम आयुष होवै है । तहां प्रथम पचासवर्ष प्रथमपरार्द्ध कह्या जावै है और दूसरे पचासवर्ष द्वितीय परार्द्ध कह्याजावै है । ऐसी शत- वर्ष आयुषकूं भोगिकै सो ब्रह्मा नाशकूं प्राप्त होवै है । इस प्रकारतैं सो ब्रह्मा भी कालकरिकै परिच्छिन्न होणेतैं अनित्यही है यातैं क्रममुक्तितैं रहित पुरुषोंकी तिस ब्रह्मलोकतैं पुनरावृत्ति युक्तही है । और जे इंद्रा- दिक देवता तिस ब्रह्मातैंभी नीचे हैं ते इंद्रादिक देवता तौ तिस ब्रह्माके एक दिनरूप कालकरिकैही परिच्छिन्न हैं । यातैं तिन इंद्रा- दिक देवतावोंके लोकोंतैं इन पुरुषोंकी पुनरावृत्ति होवै है याकेविषे क्या कहणा है । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवंत्यहरागमे ॥
राज्यागमे प्रलीयंते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥ १८ ॥

(पदच्छेदः) अव्यक्तात् । व्यक्तयः । सर्वाः । प्रभवंति । अह- रागमे । राज्यागमे । प्रलीयंते । तत्र । एव । अव्यक्तसंज्ञके ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिस ब्रह्माके दिनके आगमनविषे अव्यक्ततैं यह सर्व व्यक्तियां उत्पन्न होवैं हैं और रात्रिके आगमनविषे ते सर्वव्य- क्तियां तिस अव्यक्तनामा कारणविषे ही प्रलयकूं प्राप्त होवैं हैं ॥ १८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पूर्व जो ब्रह्माका दिन कथन कऱ्या है ते दिनके आगमनविषे अर्थात् ता ब्रह्माके जाग्रतकालविषे अव्यक्तैं यह सर्व व्यक्तियां उत्पन्न होवैं है । यद्यपि अन्यस्थलविषे अव्यक्त शब्द अव्याकृत अवस्थाकाही वाचक होवै है तथापि इहां अव्यक्तशब्दकरिकै अव्याकृत अवस्थाका ग्रहण करणा नहीं काहेतैं इहां प्रसंगविषे ब्रह्माके दिनदिनविषे सृष्टिकूं तथा रात्रिरात्रिविषे प्रलयकूं कथन कर- णेवास्तै ही प्रारंभ कऱ्या है । ता ब्रह्माके दिनसृष्टिविषे तथा रात्रि- प्रलयविषे आकाशादिक भूतोंकी उत्पत्ति तथा नाश होवै नहीं किंतु वे

आकाशादिक भूत तहां ज्योंके त्यौ बने रहै हैं। यातै ता अव्यक्त शब्दकरिकै आकाशादिकोंका कारणरूप अव्याकृत अवस्थाका ग्रहण करणा नहीं किंतु ता अव्यक्तशब्दकरिकै ब्रह्माके सुषुप्ति अवस्थाका ग्रहण करणा। अर्थात् सुषुप्ति अवस्थाकूं प्राप्त हुए प्रजापतिका नाम अव्यक्त है। ऐसे अव्यक्तते शरीरविषयादिरूप भोगकी भूमियांरूप व्यक्तियां उत्पन्न होवैं हैं अर्थात् पूर्व सूक्ष्मरूप करिकै रही हुई ते व्यक्तियां व्यवहार करणेविषे समर्थतारूपकरिकै अभिव्यक्तकूं प्राप्त होवै है। और तिस प्रजापतिनामा ब्रह्माके रात्रिके आगमनविषे अर्थात् तिस ब्रह्माके सुषुप्ति कालविषे ते सर्व व्यक्तियां जिस अव्यक्तरूप कारणतैं पूर्व प्रादुर्भूत हुई थी, तिसी अव्यक्तनामा कारणविषे लयभावकूं प्राप्त होवैहैं॥ १८॥

इस प्रकार यह संसार यद्यपि शीघ्रही विनाशकूं प्राप्त होवै है तथापि इस संसारकी निवृत्ति होती नहीं काहेतं अविद्या काम कर्म इन तीनों-करिकै परतंत्र हुआ यह संसार पुनःपुनः प्रादुर्भावकूं प्राप्त होवै है। तथा ता प्रादुर्भावकूं प्राप्तहुए इस संसारका ता अविद्या काम कर्मवशतैं पुनःपुनः तिरोभाव होवै है। ऐसे, आगमापायी संसारविषे वर्तमान जितनेक प्राणी है ते प्राणीभी ता अविद्या काम कर्म करिकै परतंत्रही है। ऐसे परतंत्र प्राणियोंकूंही जन्ममरणादिक दुःखोंकी प्राप्ति होवै है। यातै इस दुःखरूप संसारतै निवृत्त होणाही श्रेष्ठ है या प्रकारके वैराग्यकी उत्पत्तिवासतै तथा इस संसारका समान नामरूप करिकैही पुनः पुनः प्रादुर्भाव होणेतें कृतनाश अकृताभ्यागमरूप दोषकी निवृत्ति करणेवासतै श्रीभगवान् कहैं हैं—

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते॥
राज्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे॥ १९॥

(पदच्छेदः) भूतग्रामः। सः। एव। अयम्। भूत्वा। भूत्वा। प्रलीयते। राज्यागमे। अवशः। पार्थ। प्रभवति। अहरागमे १९

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पूर्वकल्पविषे था सोई ही यह प्राणियोंका समुदाय उत्तरउत्तर कल्पविषे उत्पन्न होइकै उत्पन्न होइकै परतंत्र हुआ ब्रह्माके दिनके आगमनविषे तौ उत्पन्न होवैहै और रात्रिके आगमनविषे लय होवैहै ॥ १९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो स्थावर जंगमभूतोंका समुदाय पूर्वकल्पविषे स्थित था सोईही भूतोंका समुदाय उत्तरउत्तर कल्पविषे उत्पन्न होवै है। कल्पकल्पविषे अन्य अन्य नवीन भूतोंका समुदाय उत्पन्न होवै नहीं । काहेतें जैसे तार्किक असत्कार्यकी उत्पत्तिकूं अंगीकार करैं हैं तैसे वेदांत सिद्धांतविषे असत्कार्यकी उत्पत्ति अंगीकार है नहीं । जो कदाचित् असत्कीभी उत्पत्ति होती होवै तौ नरशृंग वंध्यापुत्रकीभी उत्पत्ति होणी चाहिये । यातैं असत्कार्यकी उत्पत्ति होवै नहीं किंतु आपणी उत्पत्तितैं पूर्व आपणे कारणविषे सूक्ष्मरूपकरिकै रहेहुए कार्यकीही कारण सामग्रीके वशतैं पुनः अभिव्यक्ति होवैहै । किंवा जो कदाचित् कल्पकल्पविषे अन्यअन्य नवीन प्राणियोंकी उत्पत्ति अंगीकार करिये तौ पूर्वकल्पके अंतविषे प्राणियोंनैं करे जे पुण्यपापकर्म हैं तिन कर्मोंका भोगतैं विनाही नाश होवैगा और इस कल्पके आदिविषे उत्पन्न भये जे प्राणी हैं तिन प्राणियोंकूं पूर्व नहीं करेहुए पुण्यपापकर्मोंके सुखदुःखरूप फलका भोग होवैगा । इसीकूं ही शास्त्रविषे कृतनाश अकृताभ्यागम कहैहैं । सो आत्मज्ञानतैं रहित पुरुषोंकूं करेहुए कर्मका फलके भोगतैं विना नाश कहणा तथा न करेहुए कर्मोंके फलका भोग कहणा शास्त्रतैं विरुद्ध है । काहेतै शास्त्रविषे यह कह्या है–(अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् । नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ॥) अर्थ यह–आत्मज्ञानतैं रहित अज्ञानी पुरुषनें जो शुभ कर्म कऱ्याहै अथवा अशुभ कर्म कऱ्या है सो शुभअशुभ कर्म अवश्यकरिकै भोग्या जावै है तिस अज्ञानी पुरुषकूं भोग दियेतैं विना सो शुभ अशुभ कर्म शतकोटिकल्पोंकरिकैभी नाशकूं प्राप्त होवै नहीं । या कारणतैंभी कल्पकल्पविषे

नवीनप्राणियोंकी उत्पत्ति होवै नहीं किंतु पूर्वपूर्वकल्पविषे स्थित प्राणियोंकीही उत्तरउत्तर कल्पविषे उत्पत्ति होवै है। किंवा यह वार्त्ता केवल युक्तिकरिकैही सिद्ध नहीं है किंतु साक्षात् श्रुति भगवतीही इस अर्थकूं कथन करैहैं। तहां श्रुति-(सूर्याचंद्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ॥ दिवं च पृथिवीं चांतरिक्षमथोस्वरिति ॥) अर्थ यह-सूर्य चंद्रमा पृथिवी अंतरिक्ष स्वर्ग इसतैं आदिलैके यह सर्व जगत् जिसप्रकारका पूर्वपूर्वकल्पविषे था तिसीतिसी प्रकारका उत्तरउत्तर कल्पविषे परमेश्वर रचता भया इति। सोईही यह स्थावर जंगमरूप भूतोंका समुदाय अविद्याकामकर्म करिकै परतंत्रहुआ तिस ब्रह्माके दिनके आगमनविषे तौ तिस पूर्व उक्तरूप कारणतैं प्रादुर्भावकूं प्राप्त होवै है। और तिस ब्रह्माके रात्रिके आगमनविषे तिस अव्यक्तरूप कारणविषे लयभावकूं प्राप्त होवैहै ॥ १९ ॥

इस प्रकार अविद्याकामकर्मके अधीन प्राणियोंका वारंवार उत्पत्ति विनाश दिखाइकै (आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन) इस पूर्व उक्तवचनका अर्थ तीन श्लोकों करिकै उपपादन कऱ्या। अब (मामुपेत्य पुनर्जन्म न विद्यते) इस पूर्वउक्त वचनका अर्थ दोश्लोकों करिकै श्रीभगवान् उपपादन करैं हैं-

परस्तस्मात्तु भावोन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ॥
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥ २० ॥

(पदच्छेदः) परः। तस्मात्। तु। भावः। अन्यः। अव्यक्तः। अव्यक्तात्। सनातनः। यः। सः। सर्वेषु। भूतेषु। नश्यत्सु। न। विनश्यति ॥ २० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो सत्तारूपभाव तिस अव्यक्ततैं पर है तथा अत्यंत विलक्षण है तथा इंद्रियोंका अविषय है। तथा नित्य है सो सत्तारूप भाव सर्व भूतोंके नाशहुएभी नहीं नाश होवै है ॥ २० ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! सर्वकल्पित प्रपंचविषे अनुस्यूत जो सत्तारूप भाव है सो सत्तारूप भाव कैसा है-पूर्व कथनकऱ्या जो चराचर स्थूलप्रपं-

चका कारणभूत हिरण्यगर्भनामा अव्यक्तहै तिस अव्यक्ततैंभी पर है अर्थात् ता अव्यक्तवैं व्यतिरिक्तहै अथवा ता अव्यक्ततैं श्रेष्ठहै काहेतैंसो सत्तारूपभाव तिस हिरण्यगर्भरूप अव्यक्तकाभी कारणरूप है। शंका–हे भगवन् ! तिस सत्तारूप भावकूं तिस अव्यक्ततैं व्यतिरिक्तवा हुएभी तिस अव्यक्तकी सादृश्यता होवैगी।जैसे गवयकूं गौतैं व्यतिरिक्तता हुएभी गौकी सादृश्यता है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (अन्यः इति) हे अर्जुन ! सो सत्तारूप तिस अव्यक्ततैं अन्य है। अर्थात् अत्यंत विलक्षण है किसी अंशविषेभी ता अव्यक्तके सदृश नहीं है । तहां श्रुति–(न तस्य प्रतिमा अस्ति ।) अर्थ यह–तिस सत्तारूप परमात्माके सदृश कोईभी पदार्थ है नहीं इति । शंका–हे भगवन् ! ऐसा सत्तारूपभाव सर्वलोकोंकूं प्रत्यक्ष क्यों नहीं होता ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (अव्यक्तः इति) हे अर्जुन ! सो सत्तारूपभाव अव्यक्तरूप है अर्थात् रूपादिक गुणोंतैं रहित होणेतैं चक्षुआदिक इंद्रियोंका अविषय है । तहां श्रुति–(न चक्षुषा पश्यति कश्चिदेनम् ।) अर्थ यह–इस आत्मादेवकूं चक्षुआदिक इंद्रियोंकरिकै कोईभी देखसकता नहीं इति। पुनः कैसा है सो सत्तारूपभाव–सनातन है अर्थात् उत्पत्ति नाशतैं रहित होणेतैं सर्वदा नित्य है ।इहां (तस्मात्तु) या वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तु शब्द परित्याग करणेयोग्य अनित्य अव्यक्ततैं तिस सत्तारूप नित्य अव्यक्तविषे ग्राह्यस्वरूप विलक्षणताकूं सूचन करे है । अथवा सो तु शब्द नैयायिकोंनें कल्पना करीहुई जातिरूप सत्ताकी व्यावृत्तिकूं बोधन करे है। काहेतैं सा जातिरूप सत्ता द्रव्य गुण कर्म इन तीन पदार्थोंविषे अनुगतहुईभी सामान्य विशेष समवाय अभाव इन च्यारि पदार्थोंविषे रहै नहीं।और यह चैतन्यरूप सत्ता तौ सर्वपदार्थोंविषे अनुस्यूत होइकै रहे है । इसप्रकारका जो सत्तारूप भाव है सो सत्तारूप भाव तिस अव्यक्तनामा हिरण्यगर्भकी न्याईं तिन सर्वभूतोंके नाश हुएभी नाश होवै नहीं । तथा तिन सर्वभूतोंके उत्पन्नहुएभी उत्पन्न होवै नहीं । और सो अव्यक्तनामा

हिरण्यगर्भ तौ आप कार्यरूप है तथा तिन भूतोंका अभिमानी है। यातैं तिन भूतोंके उत्पत्ति नाशकरिकै तिस हिरण्यगर्भका उत्पत्तिनाश युक्त है। और तिन भूतोंका नहीं अभिमानी है। तथा अकार्यरूप जो सत्तारूप परमात्मादेव है तिस परमात्मादेवका तिन भूतोंके उत्पत्तिनाशकरिकै उत्पत्ति नाश संभवता नहीं ॥ २० ॥

किंच-

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्त्तते तद्धाम परमं मम॥ २१ ॥

(पदच्छेदः) अव्यक्तः । अक्षरः । इति । उक्तः । तम् । आहुः । परमाम् । गतिम् । यम् । प्राप्य । न । निवर्त्तते । तत् । धाम । परमम् । मम ॥ २१ ॥

(पदार्थः)हे अर्जुन ! जो सत्तारूपभाव इहां अव्यक्त अक्षर इसना-मकरिकै कथनकऱ्या है तिस सत्तारूपभावकूं श्रुतिस्मृतियां परम गति कहै हैं जिस सत्तारूपभावकूं प्राप्तहोइकै यह अधिकारी जन पुनः नहीं जन्मकूं प्राप्त होवैहै सो सत्ता रूप भाव मैं परमेश्वरका सर्वतैं उत्कृष्ट स्वरूपही है ॥ २१ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जो सत्तारूपभाव इस गीताशास्त्रविषे इंद्रि-योंका अविषय होणेतैं अव्यक्त इस नामकरिकै पूर्व कथन कऱ्या है तथा जो सत्तारूप भाव नाशतें रहित होणेतैं अथवा सर्वत्र व्यापक होणेतैं अक्षर इस नामकरिकै पूर्व कथन कऱ्या है तथा अन्य श्रुति स्मृतियोंवि-षेभी अव्यक्त अक्षर इस नामकरिकै कथन कऱ्या है तिस सत्तारूप भावकूं श्रुतिस्मृतियां परमगतिरूप कहैं हैं। इहां (परमाम्) इस शब्दकरिकै उत्पत्तिनाशतैं रहित स्वप्रकाश परमानंदरूपका ग्रहण करणा। और मुमुक्षु जनोंकूं एक आत्मज्ञानकरिकैही जो पुरुषार्थ प्राप्त होवै है ताका नाम गति है अर्थात् तिस सत्तारूपभावकूं श्रुतिस्मृतियां स्वप्रकाश परमा-

नंदस्वरूप परमपुरुपार्थरूप कहैं है । अथवा ब्रह्मलोकपर्यंत जा गति है सा गति कार्यरूप होणेत अपरमा है । और यह चैतन्यसत्तारूप गति तौ कार्यकारणभावतैं रहित होणैं परमा है । इति । तहां श्रुति–(एषास्य परमा गतिः । पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः ।) अर्थ यह–यह सत् चित् आनंदस्वरूप परमात्मादेव ही इस विद्वान् पुरुपकी परम गति है । ऐसे परमात्मादेवतैं परे कोईभी वस्तु नहीं है किंतु सो परमात्मा-देवही सर्वका अवधि है तथा परमगति है इति । और जिस सत्तारूप भावकूं यह अधिकारी जन प्राप्त होइके पुनः संसारविषे पतन होते नहीं अर्थात् पुनः जन्मकूं प्राप्त होते नहीं सो सत्तारूप भाव मैं परमेश्वरका परम धाम है अर्थात् सो सत्तारूप भाव मैं परिपूर्ण विष्णुका सर्वतैं उत्कृष्ट तथा सर्व उपाधियोंतैं रहित वास्तवस्वरूप है । तहां श्रुति–(तद्विष्णोः परमं पदम्) अर्थ यह–जिस सत्चित्आनंदस्वरूप अद्वितीय निर्गुणब्रह्मकूं अहं ब्रह्मास्मि इसप्रकार अभेदरूपत प्राप्त होइके तत्त्ववेत्ता पुरुप पुनः जन्म-मरणरूप संसारकू प्राप्त होवे नहीं । सो अद्वितीय निर्गुण ही विष्णुका परमपद है अर्थात् वा विष्णुका वास्तवरूप है इति । इहां (राहोः शिरः पुरुपस्य चैतन्यम्) इस स्थलविषे जैसे राहुशिरके अभेदहुएभी तथा पुरुप चैतन्यके अभेद हुएभी भेदकी कल्पना करिकै षष्ठी विभक्ति है । वास्त-वतैं राहु शिरका तथा पुरुपचैतन्यका अभेदही है । तैसे (मम धाम) इस वचनविषेभी परमेश्वरके तथा सत्तारूप धामके वास्तवतैं अभेदहुएभी भेदकी कल्पनाकरिके षष्ठीविभक्ति है । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । जिस अक्षर अव्यक्तरूप भावकूं श्रुतियां परमगतिरूप कहैं हैं । सा परम-गति मैं परमेश्वरही हूं ॥ २१ ॥

तहां (अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः । तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ।) इस श्लोक करिकै पूर्व कथन कऱ्या जो भक्तियोग है सो भक्तियोगही तिस परमगतिके प्राप्तिका उपाय है इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ॥
यस्यांतःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥२२॥

(पदच्छेदः) पुरुषः । सः । परः । पार्थ । भक्त्या लभ्यः । तु । अनन्यया । यस्य । अंतःस्थानि । भूतानि । येन । सर्वम् । इदम् । ततम् ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो पूर्वउक्त निरतिशय परमात्मा पुरुष अनन्य भक्तिकरिके ही प्राप्तहोवैहै जिस पुरुषके सर्वभूत अंतर्वर्ति हैं तथा जिस पुरुषनैं यह सर्व जगत् व्याप्त कऱ्याहै ॥ २२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! सो निरतिशय परमात्मा पुरुष मैंही हूं । ऐसा मैं परमात्मा देव एक अनन्य भक्ति करिकेही प्राप्त होवाहूँ । तहाँ मैं परमेश्वर तैं विना नही विद्यमान है अन्यविषय जिस विषे ऐसी जा प्रेमलक्षणा भक्ति है ताका नाम अनन्यभक्ति है सो निरतिशयपुरुष कौन है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं (यस्यांतःस्थानि इति) हे अर्जुन ! जिस कारण पुरुषके यह सर्व कार्यरूपभूत अंतर्वर्ती है काहेतै इस लोकविषेभी जो जो कार्य होवैं हैं सो सो कार्य आपणे उपादानकारणके ही अंतर्वर्ती होवै है । जैसे घटशरावादिक कार्य मृत्तिकारूप कारणके ही अंतर्वर्ती होवैं हैं तैसे यह सर्व कार्यप्रपंच तिस कारणरूप पुरुषके अंतर्वर्ती है । इसी कारणतैं ही जिस पुरुषनैं यह सर्व कार्यप्रपंच व्याप्त कऱ्या है । जैसे मृत्तिकारूप कारणनैं घटशरावादिक सर्व कार्य व्याप्त करे हैं । तहां श्रुति—(यस्मात्परं नापरमस्ति किंचित् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित् । वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् । यच्च किंचिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा । अंतर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥) अर्थ यह—जिस परमात्मादेवतैं कोईभी वस्तु पर तथा अपर नहीं है । तथा जिस परमात्मादेवतैं कोईभी वस्तु अत्यंत अणु तथा अत्यंत महान् नहीं है । तथा जो अद्वितीय परमा-

त्मादेव महान् वृक्षकी न्याई चलायमानतातैं रहित है तथा आपणे स्वयं-ज्योतिःस्वरूपविषे स्थित है तिस परमात्मादेवपुरुषनेही यह सर्व जगत् पूर्ण कऱ्या है । और इस जगत्विषे जो कोई वस्तु देखणेविषे आवै है तथा श्रवण कऱ्या जावै है तिस सर्व जगत्कूं अंतरबाह्यतैं व्याप्य करिकै ही नारायण स्थित है इति । इत्यादिक अनेक श्रुतियां तिस परमात्मा-देवकी व्यापकताकूं कथन करैं हैं । ऐसा मैं परमात्मादेव केवल अनन्य भक्ति करिकैही प्राप्त होवूं हूं । इहां मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारका जो तत्त्व-ज्ञान है सोईही तिस परमात्मादेवकी प्राप्ति है । तिस तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिका परमेश्वरकी अनन्यभक्तिही उपाय है। यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है । तहां श्रुति—(यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मनः ॥) अर्थ यह—जिस अधिकारी पुरुष-की परमेश्वरविषे अनन्य भक्ति है और जैसी परमेश्वरविषे अनन्यभक्ति है तैसीही गुरुविषे अनन्य भक्ति है तिस महात्मापुरुषकूंही यह वेदांत-करिकै प्रतिपादित अर्थ अपरोक्ष होवै है । ता भक्तितैं रहित पुरुषकूं ते अर्थ अपरोक्ष होते नहीं । यातैं जिज्ञासु जनकूं सा परमेश्वरकी भक्ति अवश्य कर्त्तव्य है ॥ २२ ॥

तहां पूर्व यह वार्त्ता कथन करी थी । जो सगुणब्रह्मके उपासक तिस सगुणब्रह्मकूं प्राप्त होइकै पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होते नहीं किंतु तहां क्रम मुक्तिकूं प्राप्त होवैं हैं, तहां तिस सगुणब्रह्मलोकके भोगतैं पूर्व नहीं उत्पन्न भया है आत्मसाक्षात्कार जिन्होंकूं ऐसे जे उपासक पुरुष हैं तिन उपासक पुरुषोंकूं ता ब्रह्मलोकविषे जाणेवासतै मार्गकी अपेक्षा अवश्यकरिकै रहै है । तत्त्ववेत्ता पुरुषोंकी न्याई तिन उपासक पुरुषोंकूं मार्गकी अनपेक्षा नहीं है । यातैं उपासक पुरुषोंकूं तिस ब्रह्मलोककी प्राप्तिवासतै श्रीभ-गवान् देवयानमार्गका कथन करैं हैं । और पितृयाणमार्गका जो इहां कथन कऱ्या है सो तिस देवयानमार्गकी स्तुतिवासतै कथन कऱ्याहै—

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ॥
प्रयाता यांति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ २३ ॥

(पदच्छेदः) यत्र । काले । तु । अनावृत्तिम् । आवृत्तिम् । च । एव । योगिनः । प्रयाताः । यांति । तम् । कालम् । वक्ष्यामि । भरतर्षभ ॥ २३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस मार्गविषे जाणेहारे उपासक कर्मीपुरुष अनावृत्तिकूं तथा आवृत्तिकूं ही प्राप्तहोवैं है तिसै मार्गकूं मैं कथन करता हूं ॥ २३ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! इस शरीरतें प्राणोंके उत्क्रमणते अनंतर जिसकालविषे जाणेहारे योगीपुरुष अर्थात् दिनरात्रि आदिक कालके अभिमानी देवतावोंकरिकै उपलक्षित मार्गविषे जाणेहारे योगीपुरुष अनावृत्तिकूं तथा आवृत्तिकूं प्राप्त होवैंहैं सो काल मैं तुम्हारे प्रति कथन करताहूं। अर्थात् ता कालके अभिमानी देवताओंकरिके उपलक्षित सो अनावृत्तिका मार्ग तथा आवृत्तिका मार्ग मैं तुम्हारे प्रति कथन करताहूं । इहां (योगिनः) या पदकरिकै उपासक पुरुषोंका तथा कर्मी पुरुषोंका दोनोंका ग्रहण करणा । तहां देवयानमार्गविषे जाणेहारे उपासक पुरुष तौ अनावृत्तिकूं प्राप्तहोवैं हैं और पितृयाणमार्गविषे जाणेहारे कर्मी पुरुष तौ आवृत्तिकूं प्राप्त होवैं है । यद्यपि देवयानमार्गविषे जाणेहारे उपासक पुरुषभी पुनरावृत्तिकूं प्राप्त होवैं हैं । यह वार्त्ता (आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन) इस वचनविषे पूर्व कथनकरीहै तथापि पितृयाणमार्गविषे जाणेहारे जितनेक कर्मीपुरुष हैं ते सर्व कर्मीपुरुष नियमकरिकै आवृत्तिकूंही प्राप्त होवैं हैं । कोईभी कर्मी पुरुष तहां क्रममुक्तिकूं प्राप्त होता नहीं । और देवयानमार्गविषे जाणेहारे जे उपासक पुरुष हैं तिन उपासकोंके मध्यविषे यद्यपि केईक उपासक पुरुष ता ब्रह्मलोकविषे भोगांकूं भोगिकै अंतविषे पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होवैं हैं जैसे पंचाग्निविद्या-

दिक उपासना करिकै ता देवयानमार्गद्वारा ब्रह्मलोकविषे प्राप्तहुएभी ते उपासक पुरुष पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होवैंहै, तथापि जे उपासक पुरुष दहरविद्यादिक उपासनावोंकरिकै ता देवयानमार्गद्वारा ब्रह्मलोककूं प्राप्त हुएहै ते उपासक पुरुष तौ पुनः आवृत्तिकू प्राप्त होते नहीं किंतु ब्रह्मलोकके भोगोंके अंतविषे क्रममुक्तिकूं ही प्राप्त होवैंहैं। यातें ता देवयानमार्गद्वारा ब्रह्मलोकविषे प्राप्तहुए उपासक पुरुष सर्वही आवृत्तिकूं प्राप्त होवैं नहीं इसी कारणतैंही पितृयाणमार्ग नियमकरिकै आवृत्तिरूप फलवाला होणेतैं निकृष्ट है। और यह देवयानमार्ग तौ अनावृत्तिरूप फलवाला होणेतैं उत्कृष्ट है । या प्रकारतैं तिस देवयानमार्गकी स्तुति संभवै है। यद्यपि ता देवयानमार्गद्वारा गयेहुए कितनेक पुरुषोंकी पुनः आवृत्ति होवैहै तथापि ता देवयानमार्गद्वारा गयेहुए कितनेक उपासक पुरुषोंकी पुनः आवृत्ति होती नहीं । यातैं ता देवयानमार्गविषे अनावृत्तिरूप फलवत्ता संभवै है । इहां (यत्रकाले तं कालम्) या वचनविषे स्थित जो काल यह शब्द है ता कालशब्दकी दिनरात्रि आदिककालके अभिमानी देवतावोंकरिकै उपलक्षित मार्गविषे जो लक्षणा नहीं अंगीकार करिये किंतु ता कालशब्दका यह श्रुतमुख्य अर्थही अंगीकार करिये तौ वक्ष्यमाण श्लोकविषे (अग्निर्ज्योतिर्धूमः) इन शब्दोंकी अनुपपत्ति होवैगी । जिसकारणतैं इन शब्दोंके अर्थविषे कालरूपता है नहीं। तथा स्पष्टमार्गके वाचक जो वक्ष्यमाण गति सृति यह दो शब्द हैं तिन्होंकीभी अनुपपत्ति होवैगी । या कारणतैं कालशब्दकी ता मार्गविषे लक्षणा अंगीकार करीहै । और तिन दोनों मार्गोंविषे कालके अभिमानी देवता बहुत हैं, यातैं श्रीभगवान्नें ता मार्गका उपलक्षक कालशब्द कथन कर्याहै ॥ २३ ॥

तहां प्रथम उपासक पुरुषोंके देवयानमार्गकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ॥
तत्र प्रयाता गच्छंति ब्रह्म ब्रह्मविदो ।

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ॥
प्रयाता यांति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ २३ ॥

(पदच्छेदः) यत्र । काले । तु । अनावृत्तिम् । आवृत्तिम् । च । एव । योगिनः । प्रयाताः । यांति । तम् । कालम् । वक्ष्यामि । भरतर्षभ ॥ २३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस मार्गविषे जाणेहारे उपासक कर्मीपुरुष अनावृत्तिकूं तथा आवृत्तिकूं ही प्राप्तहोवैं हैं तिस मार्गकूं मैं कथन करता हूं ॥ २३ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! इस शरीरतैं प्राणोंके उत्क्रमणतैं अनंतर जिसकालविषे जाणेहारे योगीपुरुष अर्थात् दिनरात्रि आदिक कालके अभिमानी देवतावोंकरिकै उपलक्षित मार्गविषे जाणेहारे योगीपुरुष अनावृत्तिकूं तथा आवृत्तिकूं प्राप्त होवैंहैं सो काल मैं तुम्हारे प्रति कथन करताहूं। अर्थात् ता कालके अभिमानी देवताओंकरिके उपलक्षित सो अनावृत्तिका मार्ग तथा आवृत्तिका मार्ग मैं तुम्हारे प्रति कथन करताहूं । इहां (योगिनः) या पदकरिकै उपासक पुरुषोंका तथा कर्मी पुरुषोंका दोनोंका ग्रहण करणा । तहां देवयानमार्गविषे जाणेहारे उपासक पुरुष तौ अनावृत्तिकूं प्राप्तहोवैं हैं और पितृयाणमार्गविषे जाणेहारे कर्मी पुरुष तौ आवृत्तिकूं प्राप्त होवैं है । यद्यपि देवयानमार्गविषे जाणेहारे उपासक पुरुषभी पुनरावृत्तिकूं प्राप्त होवैं हैं । यह वार्त्ता (आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन) इस वचनविषे पूर्व कथनकरीहै तथापि पितृयाणमार्गविषे जाणेहारे जितनेक कर्मीपुरुष हैं ते सर्व कर्मीपुरुष नियमकरिकै आवृत्तिकूंही प्राप्त होवैं हैं। कोईभी कर्मी पुरुष तहां क्रममुक्तिकूं प्राप्त होता नहीं । और देवयानमार्गविषे जाणेहारे जे उपासक पुरुष हैं तिन उपासकोंके मध्यविषे यद्यपि केईक उपासक पुरुष ता ब्रह्मलोकविषे भोगोंकूं भोगिकै अंतविषे पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होवैं हैं जैसे पंचाग्निविद्या-

दिक उपासना करिकै ता देवयानमार्गद्वारा ब्रह्मलोकविषे प्राप्तहुएभी ते उपासक पुरुष पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होवैंहै, तथापि जे उपासक पुरुष दहरविद्यादिक उपासनावोंकरिकै ता देवयानमार्गद्वारा ब्रह्मलोककूं प्राप्त हुएहैं ते उपासक पुरुष तौ पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होते नहीं किंतु ब्रह्मलोकके भोगोंके अंतविषे क्रममुक्तिकूं ही प्राप्त होवैंहै। यातें ता देवयानमार्गद्वारा ब्रह्मलोकविषे प्राप्तहुए उपासक पुरुष सर्वही आवृत्तिकूं प्राप्त होवै नहीं इसी कारणतैंही पितृयाणमार्ग नियमकरिकै आवृत्तिरूप फलवाला होणेतैं निकृष्ट है। और यह देवयानमार्ग तौ अनावृत्तिरूप फलवाला होणेतैं उत्कृष्ट है । या प्रकारतैं तिस देवयानमार्गकी स्तुति संभवै है। यद्यपि ता देवयानमार्गद्वारा गयेहुए कितनेक पुरुषोंकी पुनः आवृत्ति होवैहै तथापि ता देवयानमार्गद्वारा गयेहुए कितनेक उपासक पुरुषोंकी पुनः आवृत्ति होती नहीं ! यातैं ता देवयानमार्गविषे अनावृत्तिरूप फलवत्ता संभवै है । इहां (यत्रकाले तं कालम्) या वचनविषे स्थित जो काल यह शब्द है ता कालशब्दकी दिनरात्रि आदिकका-लके अभिमानी देवतावोंकरिकै उपलक्षित मार्गविषे जो लक्षणा नहीं अंगीकार करिये किंतु ता कालशब्दका यह श्रुतमुख्य अर्थही अंगीकार करिये तौ वक्ष्यमाण श्लोकाविषे (अग्निर्ज्योतिर्धूमः) इन शब्दोंकी अनुपपत्ति होवैगी । जिसकारणतैं इन शब्दोंके अर्थविषे कालरूपता है नहीं। तथा स्पष्टमार्गके वाचक जो वक्ष्यमाण गति सृति यह दो शब्द हैं तिन्होंकीभी अनुपपत्ति होवैगी । या कारणतैं कालशब्दकी ता मार्गविषे लक्षणा अंगीकार करीहै। और तिन दोनों मार्गोंविषे कालके अभिमानी देवता बहुत हैं, यातैं श्रीभगवान्नैं ता मार्गका उपलक्षक कालशब्द कथन कर्याहै ॥ २३ ॥

तहां प्रथम उपासक पुरुषोंके देवयानमार्गकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ॥
तत्र प्रयाता गच्छंति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥२४॥

(पदच्छेदः) अग्निः । ज्योतिः । अहः । शुक्लः । षण्मासाः । उत्तरायणम् । तत्र । प्रयाताः । गच्छंति । ब्रह्म । ब्रह्मविदः । जनाः ॥ २४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिसमार्गविषे ज्योतिरूप अग्नि तथा दिन तथा शुक्लपक्ष तथा षट्मासरूप उत्तरायण इत्यादिक स्थित हैं तिस देवयानमार्गविषे गमन करणेहारे सगुणब्रह्मके उपासक जन तिस सगुण-ब्रह्मकूं प्राप्त होवै हैं ॥ २४ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जिस देवयानमार्गविषे प्रथम ज्योतिरूप अग्नि स्थित है तिसतैं अनंतर दिवस स्थित है । तिसतैं अनंतर शुक्लपक्ष स्थित है । तिसतैं अनंतर षट्मासरूप उत्तरायण स्थित है । इहां (अग्नि-ज्योतिः) इस शब्दकरिकै अग्निके अभिमानी देवताका ग्रहण करणा । इसी अग्निकूं श्रुतिविषे (अर्चिः) या नामकरिकै कथन कऱ्याहै । और (अहः) इस शब्दकरिकै दिनके अभिमानी देवताका ग्रहण करणा । और (शुक्लः) इस पदकरिकै शुक्लपक्षके अभिमानी देवताका ग्रहण करणा । और (षण्मासा उत्तरायणम्) इस वचनकरिकै षट्मासरूप उत्तरायणके अभिमानीदेवताका ग्रहण करणा । यह कथनकरेहुए देवता श्रुतिउक्त दूसरे देवताओंकेभी उपलक्षक हैं । तहां श्रुति–(तेऽर्चिरभिसंभवं-त्यार्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान्षडुदङेतिमासांस्तान्मा-सेभ्यः संवत्सरं संवत्सरादादित्यमादित्याच्चंद्रमसं चंद्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽ-मानवः स एतान्ब्रह्म गमयत्येष देवपथो ब्रह्मपथ एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्त्तं नावर्त्तंते इति ।) अर्थ यह–वे उपासक पुरुष प्रथम अर्चिके अभिमानी देवताकूं प्राप्त होवैं हैं । तिसतैं अनंतर दिनके अभिमानी देवताकूं प्राप्त होवैं हैं । तिसतैं अनंतर शुक्लपक्षके अभिमानी देवताकूं प्राप्त होवैं हैं । तिसतैं अनंतर षट्मासरूप उत्तरायणके अभिमानी देव-ताकूं प्राप्त होवैं हैं । तिसतैं अनंतर संवत्सरके अभिमानी देवताकूं प्राप्त होवैं हैं । तिसतैं अनंतर आदित्यकूं प्राप्त होवैं हैं । तिसतैं अनंतर चंद्र-

माकूं प्राप्त होवैं हैं। तिसतै अनंतर विद्युत्कूं प्राप्त होवैं है। तहां अमानव पुरुष आइकै इन उपासक पुरुषोंकूं ब्रह्मलोकविषे लेजावैं हैं। इसीका नाम देवमार्ग है तथा ब्रह्ममार्ग है। इस देवयानमार्गकरिकै ब्रह्मलोककूं प्राप्तहुए. यह उपासक पुरुष इस मानव आवर्तकूं नहीं प्राप्त होवै हैं इति। तहां इस श्रुतिविषे दूसरी श्रुतिके अनुसार संवत्सरतें अनंतर देवलोक देवता तिसतैं अनंतर वायुदेवता तिसतैं अनंतर आदित्य देवताका ग्रहण करणा। तथा विद्युत्के अनंतर वरुण इंद्र प्रजापति इन तीनों देवतावोंका ग्रहण करणा। इस प्रकार श्रीभाष्यकारोंनैं निर्णय कऱ्या है। तहां तिस उपासक पुरुषकूं प्रथम तौ अग्निदेवता लेजावै है, ता अग्निलोकतैं दिनकी अभिमानी देवता आपणे लोकविषे लेजावै है। यह रीति आगेभी जानिलेणी। और विद्युत्लोकविषे ब्रह्मलोकवासी अमानव पुरुष आइकै ता उपासक पुरुषकूं वरुणलोकविषे लेजावै है। ता उपासक तथा अमानव पुरुष दोनोंके साथि विद्युत्का अभिमानी देवता ता वरुणलोकपर्यंत जावै है। तिसतैं अनंतर सो वरुणदेवता तिन दोनोंके साथि इंद्रलोकपर्यंत जावै है। तिसतैं अनंतर सो इंद्रदेवता तिन दोनोंके साथि प्रजापतिके लोकपर्यंत जावै है। तिसतैं अनंतर प्रजापतिकूं ता ब्रह्मलोकविषे जाणेका सामर्थ्य है नहीं। यातैं केवल अमानव पुरुषही ता उपासककूं ब्रह्मलोकविषे लेजावै है। इहां प्रजापतिशब्दकरिकै विराट्का ग्रहण करणा इति। तहां श्रीभगवान्नैं तौ अग्निका अभिमानी देवता दिनका अभिमानी देवता शुक्लपक्षका अभिमानी देवता उत्तरायणका अभिमानी देवता यह च्यारि देवताही इहां कथन करे हैं। संवत्सर देवलोक वायु आदित्य चंद्रमा विद्युत् वरुण इंद्र प्रजापति यह सर्वदेवता इहां कथन करे नहीं। तौभी ता श्रुतिके अनुसार तिन सर्वदेवतावोंका इहां ग्रहण करणा इति। जिस मार्गविषे यह अग्नितैं आदिलैके प्रजापतिपर्यंत सर्वदेवता स्थित हैं तिस देवयानमार्गविषे गमन करणेहारे सगुणब्रह्मके उपासक जन तिस हिरण्यगर्भरूप सगुण ब्रह्मकूं

हो प्राप्त होवैं हैं। तिस सगुण ब्रह्म द्वाराही ते उपासक पुरुष निर्गुणब्र-
ह्मकूं प्राप्त होवैं हैं। यह वार्त्ता (कार्यं बादरिरस्य गत्युपपत्तेः) इस
सूत्रविषे भगवान् भाष्यकारोंनै विस्तारतैं कथन करी है। इहां (एतेन
प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्त्तं नावर्त्तते) इस श्रुतिविषे इमं यह विशे-
षण कथन कऱ्या है ता विशेषणतैं यह अर्थ प्रतीत होवै है। इस कल्पतैं
अनंतर दूसरे कल्पविषे केईक पंचाग्निविद्यावाले उपासक पुरुष तिस
ब्रह्मलोकतैं पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होवैं है। तिनोकीही श्रीभगवान्नैं
(आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनः) इस वचनकरिकै आवृत्ति कथन
करी है इसी कारणतैंही इहां श्रीभगवान्नैं उक्तमार्गका श्रुतिप्रतिपादित-
मार्गके कथन करिकैही व्याख्यान कऱ्या है। इस देवयानमार्गका
विस्तारतैं कथन तौ आत्मपुराणके षष्ठ अध्यायविषे प्रसिद्ध है ॥ २४ ॥

अब इस पूर्वउक्त देवयानमार्गकी स्तुति करणेवासतै श्रीभगवान्
पितृयाणमार्गकूं कथन करै हैं—

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ॥
तत्र चांद्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्त्तते ॥२५॥

(पदच्छेदः) धूमः। रात्रिः। तथा। कृष्णः। षण्मासाः।
दक्षिणायनम्। तत्र। चांद्रमसम्। ज्योतिः। योगी। प्राप्य।
निवर्त्तते ॥ २५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिसमार्गविषे धूम तथा रात्रि तथा कृष्णपक्ष
तथा षट्मासरूप दक्षिणायन इत्यादिक स्थित हैं तिस मार्गविषे गमनक-
रणेहारे कर्मी पुरुष चंद्रमोतैं प्राप्तहुए कर्मके फलकूं प्राप्त होइकै पुनः आवृ-
त्तिकूं प्राप्त होवैं हैं ॥ २५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जिस पितृयाण मार्गविषे प्रथम धूम स्थित
है। तिसतैं अनंतर रात्रि स्थित है। तिसतै अनंतर कृष्णपक्ष स्थित है।
तिसतै अनंतर षट्मासरूप दक्षिणायन स्थित है। इहांभी (धूमः) इस

शब्दकरिकै धूमके अभिमानी देवताका ग्रहण करणा । और (रात्रिः) इस शब्दकरिकै रात्रिकी अभिमानी देवताका ग्रहण करणा । और (कृष्णः) इस शब्दकरिकै कृष्णपक्षके अभिमानी देवताका ग्रहण करणा । और (षण्मासा दक्षिणायनम्) इस वचनकरिकै षट्मासरूप दक्षिणायनके अभिमानी देवाताका ग्रहण करणा । इहांभी यह कथन करे हुए धूमादिक च्यारि देवता श्रुति उक्त दूसरे देववावोंकेभी उपलक्षक हैं । तहां श्रुति-(ते धूममभिसंभवंति धूमाद्रात्रिं रात्रेरपरपक्षमपरपक्षाद्यान् षड्दक्षिणेति मासां-स्तान्मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकादाकाशमाकाशाचंद्रमसं तस्मिन्यावत्सं-पातमुषित्वाथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्त्तंते इति ।) अर्थ यह-ते कर्मी पुरुष प्रथम धूमके अभिमानी देवताकूं प्राप्त होवैं हैं । तिसतैं अनंतर रात्रिके अभिमानी देवताकूं प्राप्त होवैं हैं। तिसतैं अनंतर कृष्णपक्षके अभिमानी देवताकूं प्राप्त होवैं हैं । तिसतैं अनंतर षट्मासरूप दक्षिणायनके अभि-मानी देवताकूं प्राप्त होवैं हैं । तिसतैं अनंतर पितृलोकके अभिमानी देव-ताकूं प्राप्त होवैं हैं । तिसतैं अनंतर आकाशके अभिमानीदेवताकूं प्राप्त होवैं हैं । तिसतैं अनंतर चन्द्रमाकूं प्राप्त होवैं हैं । ता स्वर्गनामा चंद्रलो-कविषे पुण्यकर्मोंके भोगकालपर्यंत निवास करिकै पश्चात् परिशेषवैं रहेहुए पुण्यपापकर्मोंके वशतैं पुनः तिस मार्गे द्वारा निवृत्त होवैंहैं इति।इहां श्रीभग-वान्नैं धूमका अभिमानी देवता,रात्रिका अभिमानी देवता कृष्णपक्षका अभि-मानी देवता, दक्षिणायनका अभिमानी देवता यह च्यारि देवताही कथन करे हैं । पितृलोकका अभिमानी देवता, आकाशका अभिमानी देवता, चंद्रमादेवता यह तीन देवता कथन करे नहीं । तौभी इस श्रुतिके अनुसार ते तीनों देवताभी इहां ग्रहण करणे। इस प्रकार धूमके अभिमानी देव-तातैं आदिलैके चंद्रमा देवतापर्यंत कथन करेहुए सर्वदेवता जिस मार्गविषे स्थित हैं तिस पितृयाण मार्गविषे गमन करणेहारे इष्ट पूर्त्त दत्त इन तीन प्रकारके कर्मोंकूं करणेहारे कर्मीपुरुष ता चंद्रलोकविषे चंद्रमातैं प्राप्त हुए तिन कर्मोंके सुखरूप फलकूं प्राप्त होइकै तिन कर्मोंके क्षयतैं

अनंतर पुनः इस मनुष्यलोकविषे आवृत्तिकूं प्राप्त होवैं हैं यातैं इस पितृयाणनामा आवृत्तिके मार्गतैं सो देवयाननामा अनावृत्तिका मार्ग अत्यंत श्रेष्ठ है। इहां अग्निहोत्रादिक कर्मोंका नाम इष्टकर्म है। और वापी कूप तालाव धर्मशाला इत्यादिक कर्मोंका नाम पूर्त्तकर्म है। और सुपात्रके प्रति गौ सुवर्णादिक पदार्थोंका दान करणा याका नाम दत्तकर्म है। इन तीन प्रकारके कर्मोंका स्वरूप पूर्वभी विस्तारतैं कथन करि आये हैं ॥ २५ ॥

अब इन पूर्व उक्त दोनों मार्गोंका उपसंहार करै हैं—

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ॥
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्त्तते पुनः ॥ २६ ॥

(पदच्छेदः) शुक्लकृष्णे । गती । हि । एते । जगतः । शाश्वते । मते । एकया । याति । अनावृत्तिम् । अन्यया । आवर्त्तते । पुनः ॥ २६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इनलोकोंके यह प्रसिद्ध शुक्लकृष्ण दोनों मार्ग अनादिक सिद्ध हैं तिन दोनों मार्गोंविषे एकशुक्लमार्गकरिकै तौ कोई उपासक पुरुष अनावृत्तिकूं प्राप्तहोवैंहैं और दूसरे कृष्णमार्गकरिकै तौ सर्वही जन पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होवैं हैं ॥ २६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पूर्व ब्रह्मलोकके प्राप्तिका मार्गरूपकरिकै कथन कऱ्या जो देवयानमार्ग है सो देवयानमार्ग ज्ञानरूप प्रकाशकी अधिकतावाले अग्नि आदिक देवतार्ओं करिकै युक्त है। तथा प्रकाशरूप सगुण ब्रह्मविद्याकरिकै प्राप्त होवै है। तथा प्रकाशमय लोकभी तिस मार्गविषे वहुत है। तथा स्वप्रकाशब्रह्मके प्राप्तिका हेतु होणेतैं उत्कृष्ट है। तथा ज्ञानरूप प्रकाशमय है। याकारणतैं सो देवयानमार्ग शुक्ल इसनामकरिकै कह्या जावैहै। और पूर्व स्वर्गलोकके प्राप्तिका मार्गरूप करिकै कथन कऱ्या जो पितृयाणमार्गहै सो पितृयाणमार्गतौ ज्ञानरूप प्रकाशतैं रहित

होणेतैं तमोमयहै । तथा अप्रकाशरूप धूमरात्रिआदिकों करिकै युक्तहै।तथा पुनः संसारका हेतु होणेतैं निकृष्टहै। या कारणतैं सो पितृयाणमार्ग कृष्ण इस नामकरिकै कह्या जावैहै । इसप्रकार शुक्लकृष्ण नामकरिकै प्रसिद्ध यह पूर्व उक्त दोनों मार्ग इस जगत्के अनादिसिद्ध हैं अर्थात् यह संसार प्रवाहरूपकरिकै अनादि है । यातैं ता संसारविषे वर्त्तणेहारे ते दोनों मार्गभी अनादिही हैं । यद्यपि जगत् यह शब्द प्राणीमात्रका वाचक है तथापि इहां जगत्शब्दकरिकै सगुणविद्याके अधिकारी तथा कर्मोंके अधिकारी जे शास्त्रज्ञ मनुष्य हैं तिनोंका ही ग्रहण करणा । प्राणीमात्रका ग्रहण करणा नहीं । काहेतैं ते दोनों मार्ग सर्वप्राणीमात्रकूं प्राप्त होते नहीं किंतु केवल उपासक कर्मी पुरुषोंकूंही प्राप्त होते है । कर्मउपासनातैं रहित पापात्मा अज्ञानी पुरुषोंकूं तौ अधोगतिकूं प्राप्त करणेहारा तृतीयस्थान-नामा मार्गही प्राप्त होवैहै । यातैं इहां जगत्शब्दकरिकै उपासक पुरुषोंका तथा कर्मीपुरुषोंकाही ग्रहण करणा उचित है इति । हे अर्जुन ! तिन दोनों मार्गोंविषे प्रथम देवयानरूप शुक्लमार्गकरिकै ब्रह्मलोकविषे प्राप्तहुए उपासक पुरुषोंविषे केईक उपासक पुरुष अनावृत्तिकूं ही प्राप्त होवैहै । तहां श्रुति–(न च पुनरावर्त्तते इति ।) अर्थ यह–सो क्रममुक्तिवाला उपासक पुरुष पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होवा नहीं । और दूसरे पितृयाण-नामा कृष्णमार्गकरिकै स्वर्गविषे प्राप्तहुए कर्मीपुरुषतौ सर्वही पुनःआवृत्तिकूं प्राप्त होवै हैं । तहां श्रुति–(प्राप्यांतं कर्मणस्तस्य यत्किंचेह करोत्ययम् । तस्माल्लोकात्पुनरेति अस्मै लोकाय कर्मणे॥)अर्थ यह–यहपुरुष इस मनुष्य-लोक विषे जोजो पुण्यकर्म करैहै तिस पुण्यकर्मके वशतैं स्वर्गलोकविषे जाइकै तिस पुण्यकर्मोंकूं भोगतैं नाशकरिकै तिस लोकतैं पुनः इस मनुष्यलोककी प्राप्तिवास्तै आवै है ॥ २६ ॥

तहां जैसे सगुणब्रह्मकी उपासना ता ब्रह्मलोकके प्राप्तिका कारण है तैसे ता देवयानमार्गका चिंतनभी कारण है । यातैं ता मार्गकी उपासना करावणेवास्तै श्रीभगवान् ता मार्गके ज्ञानकी स्तुति करैं हैं–

अर्थका अनुष्ठान करिकै सो सगुण ब्रह्मके ध्यानपरायण उपासक पुरुष तिन सर्व पुण्यकर्मोंके फलोंकूं अतिक्रमण करै है । शंका—हे भगवन् ! सो उपासक पुरुष केवल तिन पुण्यकर्मोंके फलोंकूं ही अतिक्रमण करै है अथवा तिसकूं कोई दूसरा भी फल प्राप्त होवै है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं । (परं स्थानमुपैति चाद्यम्) हे अर्जुन ! सो ध्यानपरायण पुरुष केवल तिन स्वर्गादिक फलोंकाही अतिक्रमण नहीं करै है किंतु सर्वतें उत्कृष्ट तथा सर्वका कारणरूप जो ईश्वरसंबंधी स्थान है तिस स्थानकूंभी प्राप्त होवै है । अर्थात् सो ध्याननिष्ठ उपासक पुरुष सर्वके कारणरूप ब्रह्मकूंभी प्राप्त होवै है इति । तहां इस अष्टम अध्यायकरिकै श्रीभगवान्नें ध्येयस्वरूपकरिकै तत्पदार्थका निरूपण कऱ्या ॥ २८ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्दयानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां श्रीभगवद्गीतागूढार्थदीपिकाख्यायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमाध्यायप्रारंभः ।

तहां पूर्व अष्टम अध्यायविषे यह वार्ता कथन करीथी । सुषुम्नानाम मूर्द्धन्यानाडी है गमनका द्वार जिसविषे तथा हृदय, कंठ, भ्रुवोंका मध्य इत्यादिक स्थानोंविषे प्राणोंकी धारणा है जिसविषे तथा सर्व इंद्रियद्वारोंका संयमरूप गुण है जिसविषे ऐसा जो योग है ता योगकरिकै आपणी इच्छापूर्वक इस शरीरतें उत्क्रमणकूं प्राप्तहुए हैं प्राण जिसके तथा अर्चिरादि मार्गकरिकै ब्रह्मलोकविषे प्राप्तिहुई है जिसकी ऐसा जो उपासक पुरुष है जिस उपासक पुरुषकूं ता ब्रह्मलोकविषे दिव्यभोगोंके भोगतें अनंतर ब्रह्मज्ञानकी उत्पत्तिकरिकै ता कल्पके अंतविषे परब्रह्मकी प्राप्तिरूप क्रममुक्तिकी प्राप्ति होवै है इति । यह वार्त्ता पूर्व अध्यायविषे कथन करीथी । ताकेविषे पूर्व यह शंका प्राप्त भईथी जो इस अधि-

कारी पुरुषकूं इस पूर्व उक्त प्रकारतैंही मुक्तिकी प्राप्ति होवै है अथवा किसी अन्यप्रकारतैंभी मुक्तिकी प्राप्ति होवै है इति । ऐसी शंकाके प्राप्त हुये ता शंकाकी निवृत्ति करणेवासतै (अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः । तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥) इत्यादिक वचनोंकरिकै श्रीभगवान्का वास्तवस्वरूपके विज्ञानतैं इहांही साक्षात् मोक्षकी प्राप्ति कथन करीथी । तहां तिस साक्षात् मोक्षकी प्राप्तिविषे अनन्य भगवत् भक्तिही असाधारण कारण है । यह वार्त्ताभी, (पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया) इस वचनकरिकै कथन करीथी । इत्यादिक सर्व वार्त्ता पूर्व अष्टम अध्यायविषे निरूपण करीथी तहां पूर्व उक्त धारणापूर्वक प्राणोंका उत्क्रमण तथा अर्चिरादिमार्गविषे मन तथा बहुतकालका विलम्ब इत्यादिक क्लेशोंतैं विनाही साक्षात् मोक्षकी प्राप्तिवासतै श्रीभगवान्के वास्तवरूपका तथा ताके भक्तिका विस्तारतैं निरूपण करणेवासतै इस नवम अध्यायका प्रारंभ करीता है । तहां पूर्व अष्टम अध्यायविषे तौ ध्येयब्रह्मका निरूपण करिकै ता ध्येयब्रह्मके ध्यानपरायण पुरुषोंकी गति कथन करी । अब इस नवम अध्यायविषे ज्ञेयब्रह्मका निरूपण करिकै ज्ञाननिष्ठ पुरुषोंकी गति कथन करीती है । तहां वक्ष्यमाण ज्ञानकी स्तुतिवासतै श्रीभगवान्नैं प्रथम यह तीन श्लोक कथन करीतेहैं–

श्रीभगवानुवाच ।

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ॥
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥ १॥

(पदच्छेदः) इदम् । तु । ते । गुह्यतमम् । प्रवक्ष्यामि । अनसूयवे । ज्ञानम् । विज्ञानसहितम् । यत् । ज्ञात्वा । मोक्ष्यसे । अशुभात् ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! असूयातै रहित अर्जुनके तांई मैं यह अत्यंतगुह्य तथा विज्ञानसहित ज्ञान कथन करताहूं जिसज्ञानकूं प्राप्तहोइकै तूं संसारबंधनतै मुक्तहोवैगा ॥ १ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! केवल महावाक्यरूप शब्दप्रमाणकरिकै जन्य तथा प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मकूं विषय करणेहारा जो मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकारका ज्ञान है, जो ज्ञान पूर्वभी अनेकवार हमनै तुम्हारे प्रति कथन कऱ्या है तथा आगे कथन करणा है तथा अभी इस अध्यायविषे कथन कऱ्याजावैगा सो ज्ञान मैं परमेश्वर तुम्हारे तांई कथन करताहूं तूं सावधान होइकै श्रवण कर। इहां (इदं तु) यावचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तुशब्द पूर्वअध्यायविषे कथन करेहुए सगुणब्रह्मके ध्यानतै इस ज्ञानविषे विलक्षणताकूं कथन करै है अर्थात् यह आत्मज्ञानही साक्षात् मोक्षके प्राप्तिका साधनहै, पूर्व कथन कऱ्याहुआ ध्यान साक्षात् मोक्षके प्राप्तिका साधन है नहीं। काहेतै जैसे आत्मज्ञान अज्ञानकी निवृत्ति करैहै तैसे सो ध्यान अज्ञानकी निवृत्ति करता नहीं यातै सो ध्यान साक्षात् मोक्षके प्राप्तिका साधन नहीं है। किंतु सो ध्यान तौ अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा इस आत्मज्ञानकूं संपादन करिकै ही क्रमकरिकै ता मोक्षकूं उत्पन्न करै है । यह वार्त्ता पूर्व अध्यायविषे कह आयेहैं । पुनः कैसा है सो ज्ञान—गुह्यतम है अर्थात् अतिरहस्य होणेतै सो ज्ञान गोप्य राखणेयोग्य है। अब ता ज्ञानकी गोप्यताविषे तिस ज्ञानका हेतुगर्भित विशेषण कहे हैं (विज्ञानसहितमिति) हे अर्जुन ! कैसा है सो ज्ञान—विज्ञानसहित है अर्थात् मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकारके अपरोक्ष अनुभवपर्यंत है। या कारणतही सो ज्ञान गोप्य राखणेयोग्य है। ऐसा अतिरहस्यरूपभी यह ज्ञान मैं भगवान् वासुदेव तुम्हारे तांई कथन करताहूं। अब ता अर्जुनविषे तिस ज्ञानके उपदेशकरणेकी योग्यता बोधन करणेवासतै श्रीभगवान् ता अर्जुनका विशेषण कथन करैहैं (अनसूयवे इति) हे अर्जुन ! तूं असूयातै रहित

है यातें इस ज्ञानके उपदेशका तूं अधिकारी है तहां गुणोंविषे दोषदृष्टि करणी याका नाम असूयाहै । ता असूयातें तू रहितहै अर्थात् यह कृष्णभगवान् हमारे समीप सर्वदा आपणी ऐश्वर्यता कथनकरिकै आपणी ही स्तुति करताहै या प्रकारकी असूयातें तूं रहित है । इहां असूयातें रहितपणा दूसरेभी आर्जवसंयमादिक शिष्यके गुणोंका उपलक्षक है अर्थात् शिष्यके सर्व गुणोंकरिकै संपन्न ते अर्जुनके ताई मैं यह ज्ञान-उपदेश करताहूं । शंका—हे भगवन् ! ऐसे ज्ञानकी प्राप्ति करिकै हमारेकूं कौन फल होवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं । (यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्) हे अर्जुन ! जिस आत्मज्ञानकूं प्राप्त-होइकै तूं शीघ्रही इस सर्वदुःखोंके कारणरूप संसारबंधनतैं मुक्त होवैगा ॥ १ ॥

अब तिस आत्मज्ञानविषे अधिकारी जनोंकी अभिमुखता करावणेवा-स्तै श्रीभगवान् पुनः तिस ज्ञानकी स्तुति करैहैं—

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ॥
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) राजविद्या । राजगुह्यम् । पवित्रम् । इदम् । उत्तमम् । प्रत्यक्षावगमम् । धर्म्यम् । सुसुखम् । कर्तुम् । अव्य-यम् ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह आत्मज्ञान सर्वविद्यावोंका राजा है तथा सर्व गुह्यपदार्थोंका राजा है तथा सर्वतैं उत्तम पवित्र है तथा प्रत्यक्ष है प्रमाण जिसविषे तथा सर्वधर्मका फलरूप है तथा सुखपूर्वकही करणेकूं शक्य है तथा अक्षयफलवाला है ॥ २ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! यह आत्मज्ञान कैसा है—जितनीक लौकिक तथा शास्त्रीय विद्या हैं तिन सर्व विद्यावोंका राजा है अर्थात् तिन सर्व-विद्यावोंतें अत्यंत श्रेष्ठ है । काहेतें यह आत्मज्ञान कार्यसहित संपूर्ण मूल-अविद्याका नाश करणेहारा है । और इस आत्मज्ञानतें भिन्न दूसरी

जितनीक विद्या है ते विद्या तौ सपूर्ण मूलअविद्याकूं नाश करती नहीं किंतु ते विद्या तिस मूलअविद्याके किसी एकदेशकाही विरोधी होवैहै। जिस एकदेशकूं शास्त्रविषे मूलअविद्या तथा अवस्था अज्ञान इस नामकरिकै कथन कऱ्याहै। पुनः कैसा है यह आत्मज्ञान—लोकशास्त्रविषे जितनेक गुह्यपदार्थ है तिन सर्व गुह्यपदार्थोंका राजा है अर्थात् तिन सर्व गुह्यपदार्थोंतैंभी अत्यंत गुह्य है। काहेतैं यह आत्मज्ञान अनेक जन्मोंविषे करेहुए निष्काम पुण्यकर्मोंकरिकैही प्राप्त होवैहै। ता पुण्यकर्मतै रहित जे पुरुष हैं ते पुरुष यद्यपि आपणी बुद्धिके बलतैं अनेकगुह्यपदार्थोंकूं जानैंहै तथापि इस आत्मज्ञानकूं ते पुरुष जानिसकते नहीं। यातै यह आत्मज्ञान तिन सर्व गुह्य पदार्थोंतै अत्यंत गुह्य है। पुनः कैसा है यह आत्मज्ञान—सर्वतैं उत्तम पवित्र है। काहेतैं धर्मशास्त्रविषे पापकी निवृत्ति करणेवास्तै जितनेक प्रायश्चित्त कथन करे हैं ते प्रायश्चित्त इस पुरुषके सर्वपापोंकी निवृत्तिकरते नहीं किंतु ते प्रायश्चित्त किसी एक पापकीही निवृत्ति करैंहै। ता प्रायश्चित्तकरिकैनिवृत्त हुआभी सो एक पाप आपणे कारणविषे सूक्ष्मरूप होइकै रहैहै। जिस पापवासनातैं यह पुरुष पुनः तिस पापकरणेविषे प्रवृत्त होवैहै। यातैं ते प्रायश्चित्त सर्वतैं उत्तम पवित्र नहीं हैं। और यह आत्मज्ञान तौ अनेक सहस्रजन्मोंविषे संचय करे हुए तथा स्थूलसूक्ष्म अवस्थावाले जितनेक पाप हैं तिन सर्व पापोंका तथा तिन पापोंके कारणरूप ज्ञानका शीघ्रही नाश करै है। यातै यह आत्मज्ञान सर्वतैं उत्तम पवित्र है अर्थात् शुद्धिकरणेहारा है। शंका—हे भगवन्! जैसे अतिइंद्रियधर्मविषे लोकोंकूं संदेह रहैहै तैसे इस ज्ञानविषेभी लोकोंकूं संदेहही रहैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए यह आत्मज्ञान आपणे स्वरूपतैं तथा फलतैं प्रत्यक्षही है इसप्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् कथन करैंहैं (प्रत्यक्षावगममिति) तहां (अवगम्यते अनेनेत्यवगमो मानम्) अर्थ यह—जिसकरिकै वस्तु जानी जावैहै ताका नाम अवगम है। इसप्रकारकी व्युत्पत्ति करिकै अवगम यह

शब्द प्रमाणका वाचक है और (अवगम्यते प्राप्यते इत्यवगमः फलम्) अर्थ यह—अधिकारी पुरुषोंकूं जो प्राप्त होवै ताका नाम अवगम है। याप्रकारकी व्युत्पत्तिकरिकै सो अवगम शब्द फलवाचक है। तहां प्रथम अर्थविषे तौ प्रत्यक्ष है अवगम क्या प्रमाण जिसविषे ताका नाम प्रत्यक्षावगम है याप्रकारके बहुव्रीहि समासकरिकै ता वृत्तिरूप ज्ञानविषे स्वरूपतैं साक्षी प्रत्यक्षगम्यत्व सिद्ध होवैहै । और दूसरे अर्थविषे तौ प्रत्यक्ष है अवगम क्या फल जिसका ताका नाम प्रत्यक्षावगम है। याप्रकारके बहुव्रीहि समास करिकै ता वृत्तिज्ञानविषे फलतैंभी साक्षी प्रत्यक्षगम्यत्व सिद्ध होवैहै। तहां मैंने यह वस्तु जान्या है इसकारणतैं अभी हमारा इस वस्तु विषयक अज्ञान नष्ट हुआ है याप्रकारका साक्षीरूप अनुभव सर्वलोककूं होवै है, सो यह साक्षीरूप अनुभव ता वृत्तिज्ञानकूं स्वरूपतैं तथा अज्ञानकी निवृत्तिरूप फलतैं विषय करैहै। इसप्रकार विद्वान् लोकोंके साक्षीरूप अनुभव करिकै सिद्ध हुआभी सो आत्मज्ञान स्वधर्मके प्रतिकूल नहीं है किंतु धर्म्यरूप है अर्थात् अनेकजन्मोंविषे संचय करेहुए निष्काम धर्मका फलरूप है । शंका—हे भगवन् ! ऐसा आत्मज्ञान अत्यंतदुःखकरिकै संपादन होता होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहै । (सुसुखं कर्तुम् इति) हे अर्जुन ! ब्रह्मवेत्ता गुरुनैं कृपाकरिकै प्राप्त कन्या जो विचार है सो विचार है सहकारी जिसका ऐसा जो तत्त्वमसि आदिक महावाक्य है ता महावाक्य करिकै सो तत्त्वज्ञान सुखेनही संपादन करणेकूं शक्य है। सो आत्मज्ञान आपणी उत्पत्तिविषे देशकालादिकोंके व्यवधानकी अपेक्षा करता नहीं काहेतैं सो ज्ञान केवल वस्तुप्रमाणकेही अधीन होवै है । ध्यानकी न्याईं सो ज्ञान पुरुषकी इच्छाके अधीन होता नहीं । वस्तुके साथि प्रमाणके संबंध हुएतैं अनंतर ता वस्तुका ज्ञान अवश्यकरिकै उत्पन्न होवैहै । शंका—हे भगवन् ! इस प्रकार विनाही आयासतैं जो आत्मज्ञानकी सिद्धि अंगीकार करोगे तौ अल्प आयासकरिकै साध्यक्रियाका

अल्पही फल होवैहै महान् फल होवै नहीं । यातैं तिस आत्मज्ञानकाभी अल्पही फल होवैगा महान् फल होवैगा नहीं । जिसकारणतै महान् आयासकरिकै साध्य जे कर्म हैं तिन कर्मोंकाही महान् फल देखणेविषे आवै है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहै (अव्ययमिति) हे अर्जुन ! यह आत्मज्ञान यद्यपि अनायासकरिकैही सिद्ध होवैहै तथापि इस आत्मज्ञानके मोक्षरूप फलका नाश होवै नहीं । यातैं यह आत्मज्ञान अव्यय है अर्थात् यह आत्मज्ञान मोक्षरूप अक्षय फलवाला है । यद्यपि अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञानविषे अव्ययरूपता संभवती नहीं तथापि जैसे श्रुतिविषे सत्यब्रह्मकी प्रापकता करिकै ज्ञानकूं सत्य कह्या है तैसे इहां श्रीभगवान्नैंभी मोक्षरूप अव्ययफलकी प्रापकता करिकै ता ज्ञानकूं अव्यय कह्या है और अग्निहोत्रादिक कर्म यद्यपि महान् आयासकरिकै साध्य हैं तथापि तिन कर्मोंका नाशवान् फलही होवैहै यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है । वहां श्रुति-(यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वास्मिँल्लोके जुहोति यजते तपस्तप्यते बहूनि वर्षसहस्राण्यंतवदेवास्य तद्भवति ॥) अर्थ यह-हे गार्गि ! जो पुरुष इस अक्षर परमात्मादेवकूं न जानिकै इस लोकविषे होम करैहै तथा यज्ञ करैहै तथा बहुत सहस्रवर्षपर्यंत तपकूं करै है ते सर्व कर्म इस पुरुषकी नाशवान् फलकीही प्राप्ति करैहैं । इस प्रकारतैं यह आत्मज्ञान सर्वतैं उत्कृष्ट है । यातैं इस आत्मज्ञानविषे मुमुक्षुजनोंनैं अत्यंत श्रद्धा करणी योग्य है ॥ २ ॥

हे भगवन् ! इसप्रकार यह आत्मज्ञान जो कदाचित् अत्यंत सुगम होवै तथा सर्वतैं उत्कृष्ट होवै तथा महान् फलका हेतु होवै तौ सर्व प्राणी तिस आत्मज्ञानविषे किसवास्तै नहीं प्रवृत्त होते किंतु सर्व प्राणी ता आत्मज्ञानविषे प्रवृत्त होणे चाहिये । महान् फलवाले सुगम कार्यविषे तौ सर्वलोक स्वभावतैंही प्रवृत्त होवैंहैं । यातैं ता आत्मज्ञानविषे सर्व प्राणियोंकी प्रवृत्ति हुए कोईभी प्राणी संसारी नहीं होवैगा ! यातैं संसार मार्गकाही उच्छेद होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं-

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप ॥
अप्राप्य मां निवर्त्तंते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) अश्रद्दधानाः । पुरुषाः । धर्मस्य । अस्य । परंतप । अप्राप्य । माम् । निवर्त्तन्ते । मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इस आत्मज्ञानरूप धर्मकी श्रद्धातैं रहित पुरुष मैं परमेश्वरकूं न प्राप्त होइकै मृत्युयुक्तसंसाररूपमार्गविषे निरंतर भ्रमणों करे है ॥ ३ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! यह आत्मज्ञान यद्यपि संपादनकरणेकूं अत्यंत सुगम है तथा सर्वतैं उत्कृष्ट है तथा महान् फलका हेतु है तथापि इस आत्मज्ञानविषे जो सर्व प्राणियोंकी प्रवृत्ति नहीं होती ताके विषे इन प्राणियोंकी अश्रद्धाही कारण है हे अर्जुन ! इस आत्मज्ञानरूप धर्मका जो स्वरूप है तथा साधन है तथा फल है ते तीनों यद्यपि शास्त्रकरिकै प्रतिपादित हैं तथापि तिनोंविषे श्रद्धाकूं नहीं करणेहारे जे पुरुष हैं अर्थात् वेदतैं विरोधी कुत्सित हेतुवोंके दर्शन करिकै दूषित अंतःकरणवाले होणेतैं जे पुरुष ता आत्मज्ञानके स्वरूप साधनफलकूं अप्रमाणरूपही मानैं हैं, तथा जे पुरुष सर्वदा पापकर्मोंकूंही करणेहारे हैं, तथा जे पुरुष दंभदर्पादिक आसुरसंपदकूंही धारण करणेहारे हैं ऐसे श्रद्धाहीन पापात्मापुरुष आपणी बुद्धितैं कल्पना करे हुए उपायकरिकै यथाकथंचित् प्रयत्न करते हुएभी शास्त्रविहित प्रयत्नके अभावतै मैं परमेश्वरकूं प्राप्त होवे नहीं । तथा मैं परमेश्वरकी प्राप्तिके साधनोंकूंभी प्राप्त होवे नहीं । याकारणतैंही ते श्रद्धाहीन पुरुष इस मृत्युयुक्त संसाररूप मार्गविषे भ्रमण करैं हैं । अर्थात् ते पुरुष वारंवार कीटपतंगादिक नारकीय योनियोंकेविषेही भ्रमण करैं हैं ॥ ३ ॥

तहां पूर्व श्रीभगवान्नै अर्जुनके प्रति कहणेवास्तै प्रतिज्ञा कऱ्या जो आत्मज्ञान है ता आत्मज्ञानकी विधिमुखकरिकै तथा निषेधमुखकरिकै स्तुति

कथन करी । तहां प्रथम दो श्लोकोंकरिकै तौ वा आत्मज्ञानकी विधिमुख करिकै स्तुति करी । और (अश्रद्दधानाः पुरुषाः) इस तृतीय श्लोककरिकै ता आत्मज्ञानकी निषेधमुख करिकै स्तुति करी तहां जिस वस्तुकी अप्राप्तितैं जो महान् अनर्थका कथन है सो कथन तिस वस्तुकी विधिमुख स्तुति होवै है और जिस वस्तुकी अप्राप्तितैं जो महान् अर्थके प्राप्तिका कथन है सो कथन तिस वस्तुकी निषेधमुख स्तुति होवै है । इस प्रकार तीन श्लोकोंतैं तिस आत्मज्ञानकी स्तुति करिकै तिस आत्मज्ञानके अभिमुख कऱ्या जो अर्जुन है तिस अर्जुनके प्रति श्रीभगवान् अब दो श्लोकोंकरिकै सो आत्मज्ञान कथन करै हैं-

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ॥
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) मया । ततम् । इदम् । सर्वम् । जगत् । अव्यक्तमूर्तिना । मत्स्थानि । सर्वभूतानि । न । च । अहम् । तेषु अवस्थितः ॥ ४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! अव्यक्तमूर्तिवाले मैं परमेश्वरनैं यह सर्व जगत् व्याप्तकऱ्याहै इसकारणतैं यह सर्वभूत मेरेविषे स्थितहैं औरे मैं परमेश्वरतौ तिनभूतोंविषे नहीं स्थितहूं ॥ ४ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! भूतभौतिकरूप तथा तिन भूतभौतिकोंका भी कारणरूप जितनाक यह दृश्य जगत् है जो जगत् मैं परमेश्वरके अज्ञानकरिकै कल्पित है सो यह सर्व जगत् मैं अधिष्ठानरूप तथा परमार्थ सत्स्वरूप परमेश्वरतैं सत्रूपकरिकै तथा स्फुरणरूपकरिकै व्याप्त कऱ्याहै । जैसे रज्जुविषे कल्पित जे सर्प, दंड, जलधारा, माला आदिक हैं ते सर्पादिक ता रज्जुरूप अधिष्ठाननैं आपणे इदं अंशकरिकै व्याप्त कियेहैं, तैसे मैं अधिष्ठानरूप परमेश्वरनैं आपणे सत्तास्फुरणकरिकै यह सर्व जगत् व्याप्त कऱ्याहै । शंका-हे भगवन् ! हमारे रथविषे स्थित जो वसुदेवके पुत्र

आप हो सो आप परिच्छिन्न हो । ऐसे परिच्छिन्न आपनैं यह सर्व जगत् कैसे व्याप्त कन्या है ? किंतु नहीं व्याप्त कन्याहै । जिसकारणतें इस आपके कहणेविषे प्रत्यक्षप्रमाणका विरोध होवैहै । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं (अव्यक्तमूर्तिना इति) वहां नेत्रादिक करणोंका नहीं विषय है स्वप्रकाश अद्वितीय सत् चित् आनंदरूप मूर्ति जिसकी ताका नाम अव्यक्तमूर्ति है । ऐसे अव्यक्तमूर्तिरूप मैं परमेश्वरनैंही यह सर्व जगत् व्याप्त कन्याहै । और जिस हमारे इस स्थूलशरीरकूं तूं मांसमय नेत्रोंकरिकै देखताहै इस शरीरकरिकै हमनैं कोई सर्व जगत् व्याप्त कन्या नहीं । यातैं हमारे कहणेविषे प्रत्यक्षप्रमाणका विरोध होवै नहीं । जिसकारणतैं मैं परमेश्वरनैं यह सर्व जगत् व्याप्त कन्याहै तिस कारणतैंही यह स्थावरजंगमरूप सर्वभूत मैं परमेश्वरके सत्तास्फुरणरूपकरिकै तत्की न्याईं तथा स्फुरणकी न्याईं स्थित हैं तथापि मैं परमेश्वर तिन कल्पितभूतविषे वास्तवतैं स्थित नहींहूं । काहेतें अकल्पितरूप जो मैं परमेश्वर हूं तथा कल्पितरूप जो यह भूत हैं तिन दोनोंका कोई संबंधही संभवता नहीं । संबंधतैं विना तिन भूतोंविषे वास्तवतैं हमारी स्थिति संभवती नहीं । या कारणतैंही वेदवेत्ता पुरुषोंनैं यह वचन कह्या है-(यत्र यदध्यस्तं तत्कृतेन गुणेन दोषेण वाऽणुमात्रेणापि न स संबध्यते ।) अर्थ यह-जिस अधिष्ठानविषे जो वस्तु कल्पित होवैहै तिस कल्पित वस्तुकृत गुणके साथि अथवा दोषके साथि अधिष्ठान किंचित्मात्रभी संबंधकूं प्राप्त होवै नहीं ॥ ४ ॥

हे भगवन् ! सर्व विकारोंतें रहित तथा सर्वत्र परिपूर्ण ऐसे जो आप परब्रह्म हो तिस आपकी तिन भूतोंविषे वास्तवतैं स्थिति मत होवो परंतु ते सर्व भूत तौ आप परमेश्वरविषे वास्तवतैंही स्थित होवैंगे । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहै हैं-

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ॥
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः॥ ॥५॥

(पदच्छेदः) न । च । मत्स्थानि । भूतानि । पश्य । मे । योगम् । ऐश्वरम् । भूतभृत् । न । च । भूतस्थः । मम । आत्मा । भूतभावनः ॥ ५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह सर्वभूत मै परमेश्वरविषे स्थित नहीं है मै परमेश्वरके इस अद्भुत प्रभावकूं तूं देख जो मै परमेश्वरका सच्चिदानंदस्वरूप भूतोंकूं धारणकरता हुआ तथा भूतोंकूं उत्पन्न करताहुआ भी तिन भूतोंविषे स्थित नहीं है ॥ ५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जैसे आकाशविषे स्थित सूर्यविषे जलके चलनादिक विकार कल्पित होवै है तैसे मैं परमेश्वरविषे कल्पित जे यह सर्वभूत हैं ते सर्वभूत वास्तवतें मै परमेश्वरविषे हैं नहीं । हे अर्जुन ! तूं इस प्राकृत मनुष्य बुद्धिकूं परित्याग करिकैं सूक्ष्म विचारदृष्टिकरिकै मैं परमेश्वरके इस योगऐश्वर्यकूं देख । अर्थात् जैसे लोकप्रसिद्ध मायावी पुरुषका अघटित अर्थके बनावणेकी चातुर्यतारूप प्रभाव है तैसे महामायावीरूप मै परमेश्वरके इस अघटित अर्थके बनावणेकी चातुर्यतारूप प्रभावकूं तूं देख । जो मैं परमेश्वर वास्तवतें किसी वस्तुका आधेयरूपभी नहीं हूं तथा किसी वस्तुका आधार कुछभी नहीं हूं । तौभी मै परमेश्वर इन सर्व भूतोंविषे स्थित हूं । तथा मैं परमेश्वरविषे यह सर्वभूत स्थित है । यह मैं परमेश्वरकी एक महान् माया है । हे अर्जुन ! मै परमेश्वरका जो सच्चिदानंदघन एकरस परमार्थस्वरूप है सो हमारा स्वरूपही भूतभृत् है अर्थात् सो हमारा स्वरूपही उपादान कारणतारूप करिकै तिन सर्व कार्यरूप भूतोंकूं धारण करै है । तथा पोषण करै है यातें सो हमारा स्वरूप भूतभृत् कह्याजावै है । और सो हमारा स्वरूपही कर्तारूप करिकै तिन सर्वभूतोंकूं उत्पन्न करै है । यातें सो हमारा स्वरूप भूतभावन कह्या जावै है । इस प्रकार तिन सर्वभूतोंका उपादानकारणरूप तथा निमित्तकारणरूप हुआभी सो हमारा सच्चिदानंदस्वरूप वास्तवतें असंग अद्वितीय स्वरूप होणेतें तिन भूतोंविषे स्थित है नहीं । अर्थात् जैसे स्वप्नद्रष्टा पुरुष वास्तवतें तिन कल्पित

स्वमपदार्थोंका संबंधी होवै नहीं, तैसे सो हमारा स्वरूपभी वास्तववैं इन कल्पित भूतोंका संबंधी होवै नहीं। इहां (मम आत्मा) इस वचनविषे जो षष्ठी विभक्ति है सो भेदकी कल्पना करिकै है। जैसे (राहोः शिरः) इस वचनविषे राहुशिरके अभेद हुए भी भेदकी कल्पना करिकै षष्ठी विभक्ति है ॥ ५ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे श्रीभगवान्‌नैं यह अर्थ कथन कऱ्या। जो मैं परमेश्वरका तथा इन सर्वभूतोंका वास्तववैं कोईभी संबंध है नहीं तौभी मैं परमेश्वर इन भूतोंविषे स्थित हूं। तथा यह सर्वभूत मैं परमेश्वरविषे स्थित हैं इस भगवान्‌के कहणेविषे अर्जुनकी यह शंका प्राप्त भई। जो आप परमेश्वरका तथा इन भूतोंका वास्तववैं कोई संबंध नहीं है तौ आप परमेश्वरका तथा इन भूतोंका परस्पर आधार आधेयभाव कैसे होवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके निवृत्त करणेवास्तै श्रीभगवान् वास्तववैं परस्पर संबंधतैं रहित पदार्थोंकेभी आधारआधेयभावकूं लोकप्रसिद्ध दृष्टांतकरिकै कथन करैं हैं—

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ॥
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) यथा । आकाशस्थितः । नित्यम् । वायुः । सर्वत्रगः । महान् । तथा । सर्वाणि । भूतानि । मत्स्थानि । इति । उपधारय ॥ ६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जैसे सर्वदिशावोंविषे गमनकरणेहारा तथा महत्परिमाणवाला तथा सदा चलनस्वभाववाला वायु आकाशविषे स्थित है तैसे यह सर्वभूत मैं परमेश्वरविषे स्थित हैं इसप्रकार तूं निश्चयकर ६॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जैसे पूर्वादिक सर्व दिशावोंविषे गमन करणेहारा तथा महत्परिमाणवाला तथा उत्पत्ति स्थिति संहारकालविषे चलन स्वभाववाला वायु असंगस्वभाववाले आकाशविषे स्थित होवैहै परंतु सो

वायु तिस असंग आकाशके साथि वास्तवतें कदाचित्‌भी संबंधकूं प्राप्त होता नहीं। तैसे असंगस्वभाववाले मैं परमेश्वरविषे संबंधतैं विनाही यह आकाशादिक सर्वभूत स्थित हैं। तात्पर्य यह—जैसे असंगस्वभाववाले आकाशादिषे वास्तवतें वायुका संबंध नहीं भी है तौभी सो वायु आकाशविषे स्थित कह्याजावैहै। तैसे असंगस्वभाववाले मैं परमेश्वरविषे वास्तवतें इन आकाशादिक भूतोंका संबंध नहीं भी है तौ भी यह आकाशादिकभूत मैं परमेश्वरविषे स्थित कहेजावैं है। इसप्रकार वास्तवतैं संबंधके अभाव हुएभी मैं परमेश्वरविषे तौ इस कल्पितप्रपंचकी आधारताकूं तथा इस कल्पितप्रपंचविषे मैं परमेश्वरकी आधेयताकूं तूं इस आकाशके दृष्टांतमे विचार करिकै निश्चय कर इति। किंवा। (असंगो ह्ययं पुरुषः। असंगो नहि सज्जते।) इत्यादिक अनेक श्रुतियां प्रत्यक् अभिन्न असंग ब्रह्मविषे आकाशादिक सर्व भूतोंके संबंधको निषेध करैं है। तिन श्रुतियोंविषे अविश्वास करिकै जो वादी तिस ब्रह्मविषे आकाशादिक भूतोंके संबंधकूं अंगीकार करै है ता वादीसैं यह पूछा चाहिये। तिस असंग ब्रह्मविषे ते भूत संयोग संबंधकरिकै रहैं हैं अथवा समवाय संबंधकरिकै रहै हैं। अथवा तादात्म्यसंबंधकरिकै रहैं हैं। तहां प्रथम संयोगपक्षविषेभी ब्रह्मका तथा भूतोंका सर्व ओरतैं संयोग है। अथवा एकदेश करिकै संयोग है। तहां प्रथम सर्व ओरतैं संयोग तौ बनै नहीं। काहेतैं ब्रह्म तौ अपरिच्छिन्न है और ते भूत परिच्छिन्न हैं तिन परिच्छिन्न भूतोंका अपरिच्छिन्नब्रह्मके साथि सर्वओरतैं संयोग बनै नहीं। तैसे एक देश करिकै संयोग है यह द्वितीयपक्षभी संभवै नहीं। काहेतैं जे पदार्थ सावयव होवैं है तिन पदार्थोंकाही आपसमैं एक देशकरिकै संयोग होवै है। जैसे वृक्ष वानर दोनोंका आपसमैं एकदेशकरिकै संयोग है। और ब्रह्म तौ निरवयव है। यातें ता निरवयव ब्रह्मका तथा तिन भूतोंका एकदेशकरिकैभी संयोग संभवै नहीं। और ता ब्रह्मविषे ते आकाशादिक

भूत समवाय संबंधकरिकै रहें है यह द्वितीयपक्ष जो वादी अंगीकार करै सो भी संभवता नहीं। काहेतें गुणगुणीका तथा जातिव्यक्तिका तथा अवयवी अवयवकाही वादियोंनें समवायसंबंध अंगीकार कऱ्या है । सो इहां तिन भूतोंका तथा ब्रह्मका गुणगुणीभाव तथा जातिव्यक्तिभाव तथा अवयवी अवयवभाव है नहीं । यातैं ता ब्रह्मविषे तिन भूतोंकी समवायसंबंधकरिकैभी स्थिति संभवै नहीं । और ता ब्रह्मविषे ते भूत तादात्म्यसंबंध करिकै रहें है यह तीसरा पक्ष जो वादी अंगीकार करै सो भी संभवै नहीं । काहेतें ब्रह्म तौ सत् चित् आनंद परिपूर्णस्वरूप है और ते आकाशादिक भूत तौ असत् जड दुःख परिच्छिन्नस्वरूप हैं । ऐसे विरुद्धस्वभाववाले तिन आकाशादिक भूतोंका ता ब्रह्मविषे तादात्म्यसंबंध संभवता नहीं । यातैं परिशेषतैं तिन आकाशादिक भूतोंका ता ब्रह्मविषे अध्यासरूप कल्पित संबंधही अंगीकार करणा होवैगा सो तौ हमारेकूंभी इष्ट है । काहेतें जिस अधिष्ठानविषे जो पदार्थ अध्यस्त होवै है सो कल्पित पदार्थ तिस अधिष्ठानविषे नाममात्रही होवै है वास्तवतैं होवै नहीं । जैसे रज्जुविषे कल्पित सर्प तथा शुक्तिविषे कल्पित रजत नाममात्रही है । वास्तवतै है नहीं । तैसे ब्रह्मविषे अध्यस्त ते आकाशादिक भूतभी नाममात्रही हैं वास्तवतैं हैं नहीं । ऐसे कल्पित भूतोंके अध्यासरूप संबंधके हुएभी ता अधिष्ठान ब्रह्मकी स्वाभाविक असंगरूपता निवृत्ति होवै नहीं इति । और किसी टीकाविषे तौ इस श्लोकका यह अर्थ कथन कऱ्या है । पूर्वअष्टम अध्यायविषे (किं तद्ब्रह्म) अर्थ यह—सो ब्रह्म कौन है इस प्रश्नका (अक्षरं परमं ब्रह्म) अर्थ यह—अक्षरनामा शुद्ध त्वंपदार्थही निरुपाधिक ब्रह्म है यह उत्तर कथन कऱ्या था । सो निरुपाधिक ब्रह्म ही इहां (मया ततमिदं सर्वम्) इत्यादिक श्लोकों करिकै प्रतिपादन कऱ्या है । अब तिस निरुपाधिक ब्रह्मका अक्षरनाम जीवके साथि अभेदकूं दृष्टांत करिकै कथन करैं हैं (यथाकाशस्थितः इति) इहां (वायुः) इस शब्दकरिकै सूत्रा-

त्माका ग्रहण करणा । काहेतैं (वायुर्वै गौतमसूत्रम्) इस श्रुतिविषे ता सूत्रात्माकूं वायुनाम करिकै कथन कऱ्या है । कैसा है सो सूत्रात्मारूप वायु—सर्वत्रग है अर्थात् समष्टिलिंगदेहरूप होणेतैं सर्वत्र व्यापक है । पुनः कैसा है सो वायु—महान् है अर्थात् इस बाह्यवायुतैं विलक्षण है । ऐसा सूत्रात्मारूप वायु जैसे नित्यही स्वकारणीभूत अव्याकृतनामा आकाशविषे स्थित है इहां (नित्यम्) इस शब्दकरिकै ता सूत्रात्माका तीन कालविषे ता अव्याकृतनामा आकाशके साथि संबंध कथन कऱ्या, तैसे यह सर्वभूत मैं परमेश्वरविषे स्थित हैं । इहां भूत शब्दकरिकै उपाधितैं रहित त्वंपदार्थरूप जीवचेतनका ग्रहण करणा । सो जीवचेतन यद्यपि वास्तवतैं एकही है, तथापि लोकदृष्टिकरिकै श्रीभगवान्नैं ता जीवचेतनका बहुतपणा कथन कऱ्या है । तात्पर्य यह—जैसे सर्वकार्य आपणी उत्पत्तितैं पूर्व तथा नाशतैं अनंतर तथा आपणी स्थितिकालविषे आपणे उपादानकारणविषेही अभेदरूप करिकै स्थित होवैं हैं, तैसे यह सर्व जीव अन्तःकरणादिक उपाधिकी उत्पत्तितैं पूर्व तथा उपाधिके नाशतैं अनंतर तथा मध्यविषे तिस परब्रह्मतैं भिन्न नहीं हैं किंतु अभिन्नही हैं । जैसे घटाकाश घटरूप उपाधिकी उत्पत्तितैं पूर्व तथा घटरूप उपाधिके नाशतैं अनन्तर तथा ता घटरूप उपाधिके विद्यमानकालविषे महाकाशतैं भिन्न नहीं है किंतु सो घटाकाश तीनोंकालविषे महाकाशरूपही है । तैसे यह जीवभी तीनोंकालविषे परब्रह्मरूपही है । तहां श्रुति—(अयमात्मा ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि) अर्थ यह—यह प्रत्यक् आत्मा ब्रह्मरूप है और मैं ब्रह्मरूप हूं ॥ ६ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे इस प्रपंचकी उत्पत्तिकालविषे तथा स्थितिकालविषे ता प्रपंचके साथि असंग आत्माका सम्बन्ध कथन कऱ्या । अब प्रलयकालविषेभी ता प्रपंचके साथि असंग आत्माके असम्बन्धकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

सर्वभूतानि कौंतेय प्रकृतिं यांति मामिकाम् । कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥७॥

(पदच्छेदः) सर्वभूतानि । कौंतेय । प्रकृतिम् । यांति । मामिकाम् । कल्पक्षये । पुनः । तानि । कल्पादौ । विसृजामि । अहम् ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे कौंतेय ! प्रलयकालविषे यह सर्वभूत मैं परमेश्वरकी शक्तिरूप जा त्रिगुणात्मक प्रकृतिकूं प्राप्त होवैहैं पुनः सृष्टिकालविषे मैं परमेश्वर तिन भूतोंकूं उत्पन्न करूंहूं ॥ ७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरकी शक्तिरूपकारिकै कल्पना करी हुई जा त्रिगुणात्मक माया है जा माया (मायां तु प्रकृतिं विद्यात्) इस श्रुतिनैं सर्व जगत्को प्रकृतिरूप कारिकै कथन करीहै, ऐसी कारणरूप माया प्रकृतिकूंही, ते आकाशादिक सर्व भूत प्रलयकालविषे प्राप्त होवै हैं अर्थात् ते आकाशादिक सर्वभूत ता प्रलयकालविषे आपणे कारणभूत मायानामा प्रकृतिविषेही सूक्ष्मरूपकारिकै लय भावकूं प्राप्त होवै हैं । हे अर्जुन ! जे आकाशादिक सर्व भूत प्रलयकालविषे ता प्रकृतिविषे अविभागकूं प्राप्त हुए थे तिन आकाशादिक भूतोंकूंही मैं सर्वशक्तिसंपन्न सर्वज्ञ परमेश्वर सृष्टिकालविषे भिन्नभिन्न कारिकै उत्पन्न करूंहूं ॥ ७ ॥

वहां परमेश्वरकी यह आकाशादिक प्रपंचकी सृष्टि किस प्रयोजनवासतै है। तिस परमेश्वरकेही भोगवासतै है अथवा अन्य किसीके भोगवासतै है । तहां परमेश्वरके भोगवासतै तौ यह सृष्टि संभवती नहीं, काहेतैं सर्वका साक्षीरूप तथा चैतन्यमात्ररूप जो परमेश्वर है ता परमेश्वरविषे सुखदुःखका भोक्तापणा संभवै नहीं । जो कदाचित् परमेश्वरविषेभी सुखदुःखका भोक्तापणा अंगीकार करियै तौ तिस परमेश्वरविषेभी अस्मदादिक जीवोंकी न्याई संसारीपणाही प्राप्त होवैगा । यातैं ता परमेश्वरविषे ईश्वरपणा नहीं रहैगा । काहेतैं जिसविषे संसारीपणा रहैहै तिसविषे ईश्वरपणा रहै नहीं ।

और जिसविषे ईश्वरपणा रहै है तिसविषे संसारीपणा रहै नहीं । यातैं परमेश्वरके भोगवासतै तौ यह सृष्टि संभवती नहीं । और परमेश्वरतैं अन्य किसी भोक्तावासतै यह सृष्टि है यह दूसरा पक्षभी संभवता नहीं । काहेतैं (नान्योतोऽस्ति द्रष्टा) इत्यादिक श्रुतियोंनैं तिस परमेश्वरतैं भिन्न दूसरे चेतनका अभावही कथन कऱ्याहै । और जो कोई यह कहै तिस परमेश्वरतैं जीव चेतन भिन्न है सो कहणाभी संभवता नहीं । काहेतैं (अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि) इत्यादिक श्रुतियोंनैं तिस परमेश्वरकीही सर्वत्र जीवरूपकरिकै स्थिति कथन करीहै । याकारणतैंही तत्त्वमसि अहं ब्रह्मास्मि) इत्यादिक महावाक्य इस जीवकूं ब्रह्मरूपकरिकै कथन करैं है । यातैं तिस परमेश्वरतैं भिन्न दूसरा कोई चेतन है नहीं जो इस जगत्का भोक्ता होवै । यद्यपि तिस चैतन्यस्वरूप परमेश्वरतैं जडपदार्थ भिन्न है तथापि तिन जडपदार्थोंविषे सुखदुःखका भोक्तापणाही संभवता नहीं किंवा ते सर्व जडपदार्थ भोग्यरूपही हैं । तिन पदार्थोंकू जो भोक्ता मानिये तौ भोक्ता भोग्य यह भेद सिद्ध नहीं होवैगा । यातैं तिन जडपदार्थोंके भोगवासतै भी यह सृष्टि संभवती नहीं । किंवा जैसे यह सृष्टि किसी भोगवासतै नहीं संभवैहै, तैसे यह सृष्टि किसीके मोक्षवासतैभी संभवती नहीं । काहेतैं जो कोई बंध वास्तवतैं होवै तौ ताके मोक्षवासतै यह सृष्टि संभवै है सो वास्तवतैं कोई बंधनही नहीं है । किंवा यह सृष्टि तौ मोक्षका उलटा विरोधीहीहै । जो जिसका विरोधी होवै है सो तिसकी प्राप्तिवासतै होवै नहीं । यातैं किसीके मोक्षवासतै भी यह सृष्टि संभवती नहीं । इसतैं आदिलैके अनेकप्रकारकी अनुपपत्तियां इस सृष्टिविषे प्राप्त होवैं हैं । ते अनुपपत्तियांही इस सृष्टिविषे मायामयत्वकी सिद्धि करैं हैं । यातैं ते अनुपपत्तियां हम सिद्धांतियोंकूं प्रतिकूल नहीं हैं किंतु अनुकूलही हैं इसी कारणतैंही ते अनुपपत्तियां परिहारकरणेकूं योग्य नहीं है । इसी सर्व अभिप्राय करिकै श्रीभगवान् इस प्रपंचविषे मायामयत्व हेतुतैं मिथ्यात्व सिद्धकरणेका आरंभ तीन श्लोकोंकरिकै करैं हैं—

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनःपुनः ॥
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ८ ॥

(पदच्छेदः) प्रकृतिम् । स्वाम् । अवष्टभ्य । विसृजामि । पुनः । पुनः । भूतग्रामम् । इमम् । कृत्स्नम् । अवशम् । प्रकृतेः । वशात् । ॥ ८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वर आपणी मायारूप प्रकृतिकूं आश्रयणकरिकै तिस मायाके प्रभावतें उत्पन्नहुए इस संपूर्ण आकाशादिक भूतोंके समुदायकूं पुनः पुनः उत्पन्न करूंहूं ॥ ८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरविषे कल्पित तथा मैं परमेश्वरके अधीन ऐसी जा मायानामा अनिर्वचनीय प्रकृति है तिस आपणी प्रकृतिकूं आश्रयकरिकै अर्थात् ता प्रकृतिकूं आपणी सत्तास्फूर्तिकी प्राप्तिद्वारा दृढकरिकै मैं मायावी परमेश्वर प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंकरिकै सिद्ध इस आकाशादिक भूतोंके समुदायरूप प्रपंचकूं जीवोंके कर्मोंके अनुसार विविधप्रकारतें उत्पन्न करूंहूं । अर्थात् जैसे स्वप्नद्रष्टा पुरुष स्वप्नप्रपंचकूं कल्पनामात्रकरिकै उत्पन्न करै है, तैसे मैं परमेश्वरभी इस आकाशादिक प्रपंचकूं कल्पनामात्रकरिकै उत्पन्न करूंहूं । कैसा है यह आकाशादिक भूतोंका समुदाय—प्रकृतिके वशतें जायमान है अर्थात् मायारूप प्रकृतिका जो अविद्यादिक पंचक्लेशोंका कारणीभूत आवरणविक्षेपशक्तिरूप प्रभाव है तिस प्रभावतें उत्पन्न हुआहै इति । और किसी टीकाविषे तौ (अवशं प्रकृतेर्वशात्) इस वचनका यह अर्थ कऱ्याहै । आपणे स्वभावका नाम प्रकृति है । ता स्वभावरूप प्रकृतिके वशतें यह प्रपंच अवश है अर्थात् रागद्वेषादिकोंके अधीन है । और अन्य किसी टीकाविषे इस वचनका यह अर्थ कऱ्या है । अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश यह पंचक्लेश इहां प्रकृतिशब्दकरिकै ग्रहण करणे । ता अविद्यादिपंचक्लेशरूप प्रकृतिके वशात् कहिये स्वभावतें यह भूतसमुदाय अवश है अर्थात् अस्वतन्त्र है ॥ ८ ॥

जिसकारणतैं इस जगत्की सृष्टि स्थिति आदिक कर्म स्वप्नकी न्याई मिथ्याभूत ही है तिस कारणतैं ते सृष्टिआदिक कर्म स्वप्नद्रष्टा पुरुषकी न्याई मैं परमेश्वरकूं बन्धायमान करते नही इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं-

न च मां तानि कर्माणि निबध्नंति धनंजय ॥
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) न । च । माम् । तानि । । कर्माणि । निबध्नंति । धनंजय । उदासीनवत् । आसीनम् । असक्तम् । तेषु । कर्मसु ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन । उदासीनपुरुषकी न्याई स्थित तथा तिन कर्मोंविषे आसक्तितै रहित मैं परमेश्वरकूं ते सृष्टिआदिक कर्म नहीं बन्धायमान करते ॥ ९ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जैसे मायावीपुरुष आपणी मायाकरिकै अनेक पदार्थोंकी सृष्टि स्थिति लयकूं करै है परंतु ते सृष्टिस्थितिलयरूप कर्म तिस मायावीपुरुषकूं बंधायमान करते नहीं । और जैसे स्वप्नद्रष्टा पुरुष स्वप्नविषे अनेक पदार्थोंकी सृष्टि स्थिति लयकूं करै है परंतु ते सृष्टिस्थितिलयरूप कर्म तिस स्वप्नद्रष्टा पुरुषकूं बंधायमान करते नहीं, तैसे मैं परमेश्वरभी आपणी मायाशक्तिके वशतैं इस आकाशादिक प्रपंचकी सृष्टि स्थिति लयकूं करूं हूं परन्तु ते सृष्टि आदिक कर्म मैं परमेश्वरकूं बंधायमान करते नहीं । अर्थात् ते सृष्टि आदिक कर्म अनुग्रह करिकै मैं परमेश्वरकूं सुकृतका भागी नहीं करै हैं तथा निग्रहकरिकै हमारेकूं दुष्कृतका भागी नहीं करैंहैं जिस कारणतैं ते सृष्टिआदिक कर्म स्वप्नकी न्याई मिथ्याभूत ही हैं । शंका-हे भगवन् ! ते सृष्टिआदिक कर्म आपकूं किसवास्ते नहीं बंधायमान करते ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ताके विषे हेतु कहैं हैं (उदासीनवदासीनमिति) हे अर्जुन । परस्पर विवाद करणेहारे दो पुरुषोंके जय अजयरूप कर्मके संबंधतैं रहित तथा

दोनोंकी उपेक्षा करणेहारा जो कोई उदासीन पुरुष है सो उपेक्षक उदासीन पुरुष जैसे तिन विवाद करता पुरुषोंके जय अजयकृत हर्षविषादतैं रहित हुआ निर्विकाररूपतैं स्थित होवै है, तैसे मैं असंग परमेश्वरभी सर्वदा निर्विकाररूप करिकै स्थित हूं। यद्यपि इहां परमेश्वररूप दार्ष्टांतिकविषे उदासीनपुरुषरूप दृष्टांतकी न्याई विवाद करणेहारे दोनोंका अभाव है, तथापि तां दृष्टांतविषे तथा दार्ष्टांतिकविषे उपेक्षकपणा समानही है। ता उपेक्षकपणेमात्रकूं लैके इहां (उदासीनवत्) इस वचनके अंतविषे वत् यह प्रत्यय कथन कऱ्या है। हे अर्जुन ! जिसकारणतैं मैं परमेश्वर उदासीन पुरुषकी न्याई हर्षविषादादिक विकारोंतैं रहित हुआ स्थित हूं, तिस कारणतैं मैं परमेश्वर तिन सृष्टिआदिक कर्मोंविषे असक्त हूं अर्थात् मैं इस कर्मकूं करता हूं तथा मैं इस कर्मके फलकूं भोगौंगा या प्रकारके कर्तृत्वअभिमानरूप तथा फलकी अभिलाषारूप संगतैं रहित हूं। या कारणतैं ही मैं परमेश्वरकूं ते सृष्टि आदिक कर्म बंधायमान करते नहीं इतने कहणे करिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ बोधन कऱ्या। जैसे कर्तृत्वअभिमानतैं रहित तथा फलकी इच्छातैं रहित मैं परमेश्वरकूं ते सृष्टिआदिक कर्म बंधायमान करते नहीं तैसे दूसराभी जो कोई अधिकारी पुरुष ता कर्तृत्वअभिमानतैं तथा फलकी इच्छातैं रहित होइकै कर्मोंकूं करै है तिस पुरुषकूंभी ते लौकिक वैदिक कर्म बंधायमान करते नहीं। ता कर्तृत्वअभिमान तथा फलकी इच्छा दोनोंके विद्यमान हुएही यह मूढ पुरुष कोशकारजन्तुकी न्याई तिन कर्मोंकरिकै बंधायमान होवै है इति। इहां श्रीभगवान्नैं स्वउपदिष्ट अर्थके धारण करणेविषे अर्जुनके उत्साह करणेवास्तै (हे धनंजय) इस संबोधनकरिकै ता अर्जुनके महान् प्रभावकूं सूचन कऱ्याहै। अर्थात् युधिष्ठिर राजाके राजसूयनामा यज्ञवास्तै तूं सर्वराजाओंकूं जीति करिकै धनकूं ले आवता भया है। याकारणतैं तुम्हारा धनंजय यह नाम हुआहै। ऐसे महान् प्रभाववाला तूं अर्जुन है इति। और किसी टीकाविषे तौ इस श्लोकका

यह अर्थ कथन कन्याहै । शंका-हे भगवन् ! इस लोकविषे कोई प्राणी सुखी है, कोई प्राणी दुःखी है, कोई धनी है, कोई दरिद्री है कोई बुद्धिमान है, कोई मूर्ख है इस प्रकारकी विषम सृष्टिकूं करणेहारे आप ईश्वरकूं विषमतादोषकी तथा निर्दयतादोषकी प्राप्ति अवश्यकरिकै होवैगी। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (न च मां तानि कर्माणि इति) हे अर्जुन ! ते विषम सृष्टिरूप कर्म मैं परमेश्वरकूं बंधायमान करते नहीं । तिसविषे हेतु कहैं हैं (उदासीनवदासीनमिति) हे अर्जुन ! जैसे मेघ किसी बीजोंविषे रागकूं तथा किसी बीजोंविषे द्वेषकूं नहीं करिकै उदासीन हुआ जलकी वृष्टि करै है । आगेतैं तिन तिन बीजोंके अनुसार भिन्न भिन्न फल उत्पन्न होवैं है। तैसे मैं परमेश्वरभी पुण्यवान् पुरुषोंविषे रागकूं नहीं करताहुआ तथा पापी पुरुषोंविषे द्वेषकूं नहीं करताहुआ इस जगत्कूं उत्पन्न करताहूं । आगेतैं ते प्राणी आपणे आपणे पुण्यपापकर्मके अनुसार तिसतिस सुखदुःखादिरूप भिन्नभिन्न फलकूं प्राप्त होवैहै । यातै मैं परमेश्वरकूं विषमतादोषकी प्राप्ति तथा निर्दयतादोषकी प्राप्ति होवै नहीं ॥ ९ ॥

हे भगवन् ! पूर्व आपनैं (भूतग्रामं सृजामि) इस वचनकरिक आपणेकूं सर्व भूतोंका कर्त्तापणा कथन कन्या । और उदासीनवदासीनम्) इस वचनकरिकै आपणेकूं उदासीनपणा कथन कन्या सो यह दोनों आपके वचन परस्पर विरुद्ध अर्थके बोधक होणेतैं असंगत हैं। काहेतैं जिसविषे कर्त्तापणा रहैहै तिसविषे उदासीनपणा रहै नहीं । और जिसविषे उदासीनपणा रहैहै तिसविषे कर्त्तापणा रहै नहीं । ऐसी अर्जुनकी शंकाके निवृत्ति करणेवास्तै श्रीभगवान् इस प्रपंचविषे पुनः मायामयत्वकूंही कथन करैं हैं-

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ॥
हेतुनानेन कौंतेय जगद्विपरिवर्त्तते ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) मया । अध्यक्षेण । प्रकृतिः । सूयते । सचराचरम् । हेतुना । अनेन । कौंतेय । जगत् । विपरिवर्त्तते ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे कौंतेय ! प्रकाशरूप मैं परमेश्वरनैं प्रकाशित करीहुई मायारूप प्रकृतिही इस चरअचरसहित जगतकूं उत्पन्नकरैहै इसी प्रकाशत्व निमित्तकरिकै येह जगत् विविधप्रकारवैं परिवर्त्तमान होताहै ॥ १० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! केवल द्रष्टामात्रस्वरूप तथा सर्वविकारोंवैं रहित तथाआपणी समीपतामात्रकरिकै सर्वका नियंता तथा सर्वप्रकाशक ऐसा जो मैं परमेश्वरहूं, तिस मैं परमेश्वरनैं प्रकाशित करीहुई जा मायारूप प्रकृति है। कैसी है सा प्रकृति, सत्त्व रज तम यह तीन गुणस्वरूप है। तथा जा प्रकृति सत् रूपकरिकै तथा असत्‌रूपकरिकै तथा सत् असत् उभयरूपकरिकै कथन करी जाती नहीं । ऐसी मायारूप प्रकृतिही इस स्थावरजंगमरूप सर्व जगतकूं उत्पन्न करैहै । जैसे मायावी पुरुषवैं प्रवृत्त करीहुई माया कल्पित गजतुरंगादिक पदार्थांकूं उत्पन्न करैहै। तैसे मै परमेश्वरनैं प्रकाशित करी हुई सा मायाही इस कल्पित जगतकूं उत्पन्न करैहै । मैं परमेश्वर तौ तिस कार्य सहित मायाकूं केवल प्रकाशमात्रही करताहूं । वा कार्यसहित मायाके प्रकाशमात्रवैं भिन्न दूसरे किसी व्यापारकूं मैं परमेश्वर करता नहीं । हे अर्जुन ! तिस प्रकाशकत्व रूप निमित्तकरिकै यह स्थावरजंगमरूप सर्व जगत् विविध प्रकारवैं परिवर्त्तमान होवैहै अर्थात् यह जगत् जन्मवैं आदिलेके विनाशपर्यंत अनेक प्रकारके विकारोंकूं निरंतर प्राप्त होवैहै । यावैं (भूतग्रामं सृजामि) अर्थ यह—मैं परमेश्वर इस सर्वजगतकूं उत्पन्न करताहूं यह जो वचन हमनैं पूर्व कथन कऱ्याथा सो तिस जगतका कारणरूप मायाका प्रकाशकत्वमात्ररूप व्यापारकरिकै कथन कऱ्याथा । और जैसे इस लोकविषे सूर्यादिकोंके प्रकाश करिकैही सर्व कार्योंकी उत्पत्ति होवैहै परंतु वा प्रकाशकत्वमात्रकरिकै तिन सूर्यादिकोंकूं कर्त्तापणा प्राप्त होवै नहीं । तैसे वा कारणरूप मायाके प्रकाशकत्वमात्रकरिकै मैं परमेश्वरविषेभी सो कर्त्तापणा

प्राप्त होवै नहीं। या अभिप्रायकरिकैही पूर्व हमनैं (उदासीनवदासीनम्) यह वचन कथन कन्याथा। यातैं तिन पूर्व उक्त दोनोंका परस्पर विरोध होवै नहीं। यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथन करीहै। तहां श्लोक-(अस्य द्वैतेंद्रजालस्य यदुपादानकारणम्। अज्ञानं तदुपाश्रित्य ब्रह्म कारणमुच्यते।) अर्थ यह-इस द्वैतप्रपंचरूप इंद्रजालका जो अज्ञानरूप उपादान कारण है, तिस अज्ञानकी प्रकाशताकरिकैही ब्रह्म जगत्का कारण कह्याजावैहै। वास्तवतैं सो ब्रह्म जगत्का कारण है नहीं इति।और किसी टीकाविषे तौ इस श्लोकका यह अभिप्राय वर्णन कन्या है। जैसे चुंबकपाषण आपणी समीपतामात्रकरिकै लोहकूं प्रवृत्त करताहुआभी वास्तवतैं उदासीनही रहे है, तैसे मैं परमेश्वरभी आपणी समीपतामात्रकरिकै तिस मायारूप प्रकृतिकूं जगत्की उत्पत्तिकरणेविषे प्रवृत्त करताहुआभी वास्तवतैं उदासीनही रहूंहूं। यातैं (भूतग्रामं सृजामि उदासीनवदासीनम्) इन दोनोंका परस्पर विरोध होवै नहीं ॥ १० ॥

हे अर्जुन। इसप्रकार नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव तथा सर्वप्राणियोंका आत्मारूप तथा आनंदघन तथा देशकालवस्तुपरिच्छेदतैं रहित ऐसे भी मैं परमेश्वरकूं यह अविवेकी लोक मनुष्य मानिकै आदर करते नहीं उलटे निंदा करैं हैं। इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं-

अवजानंति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ॥
परं भावमजानंतो मम भूतमहेश्वरम् ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) अवजानंति। माम्। मूढाः। मानुषीम्। तनुम्। आश्रितम्। परम्। भावम्। अजानंतः। मम। भूतमहेश्वरम् ११

(पदार्थः) हे अर्जुन! अविवेकी जन मैं परमेश्वरके सर्वभूतोंका महान् ईश्वररूप सर्वतैं उत्कृष्ट पारमार्थिकतत्त्वकूं न जानतेहुए इस मनुष्यमूर्तिकूं धारणकरणेहारे मैं परमेश्वरकूं अनादर करैं हैं ॥ ११ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन। विचारतैं रहित जे मूढपुरुष हैं वे मूढपुरुष मैं परमेश्वरकीभी अवज्ञा करैं हैं अर्थात् वे मूढपुरुष मैं परमेश्वरकूं

यह कृष्णभगवान् साक्षात् ईश्वर है याप्रकारतैं आदर करते नहीं, उलटा हमारी निंदा करते हैं । अब तिन मूढपुरुषोंनैं करीहुई अवज्ञाविषे तिन मूढपुरुषोंकी भ्रांतिरूप हेतुकूं कथन करैं हैं (मानुषीं तनुमाश्रितम् इति) हे अर्जुन ! मनुष्यरूपकरिकै प्रतीत होती जो यह मूर्ति है तिस मूर्तिकूं मैं परमेश्वर आपणी इच्छाकरिकै भक्तजनोंके अनुग्रहवासतै ग्रहण करताभयाहूं अर्थात् मनुष्यरूप करिकै प्रतीतहुए इस देहकरिकै मैं परमेश्वर व्यवहारकूं करताहूं । याकारणतैंही यह कृष्णभी हमारे सरीखा कोई मनुष्यही है । याप्रकारकी भ्रांतिकरिकै आवृत हुआ है अंतःकरण जिनोंका ऐसे ते मूढपुरुष मैं परमेश्वरके परमभावकूं नहीं जानतेहुए अर्थात् मैं परमेश्वरके सर्वतैं उत्कृष्ट पारमार्थिक तत्त्वकूं नहीं जानतेहुए जो परमेश्वरका आदर नहीं करैं हैं तथा मैं परमेश्वरकी निंदा करैं हैं सो तिन मूढपुरुषोंविषे संभवताही है । हे अर्जुन ! जिस हमारे परमभावकूं नहीं जानतेहुए ते मूढ पुरुष हमारी अवज्ञा करैं हैं । सो हमारा परमभाव कैसा है—सर्वभूतोंका महान् ईश्वर है अर्थात् तिन सर्वभूतोंका नियंता है ॥ ११ ॥

हे अर्जुन ! इसप्रकार मैं परमेश्वरकी अवज्ञा करिकै उत्पन्न भया जो महान् पाप है ता पापकरिकै प्रतिबद्धहुई है बुद्धि जिनोंकी ऐसे ते मूढपुरुष निरंतर नरकविषे निवास करणेकूं योग्य होवैं हैं । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ॥
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥१२॥

(पदच्छेदः) मोघाशाः । मोघकर्माणः । मोघज्ञानाः । विचेतसः । राक्षसीम् । आसुरीम् । च । एव । प्रकृतिम् । मोहिनीम् । श्रिताः । ॥ १२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! निष्फल है आशा जिनोंकी तथा निष्फल हैं कर्म जिनोंके तथा निष्फल है ज्ञान जिनोंका ऐसे विचारहीन पुरुष राक्षसी तथा आसुरी तथा मोहिनी प्रकृतिकूं ही आश्रयण करे हैं॥ १२

भा० टी०—हे अर्जुन ! अंतर्यामी ईश्वरतैं विना केवल कर्महीं हमारेकूं फलकी प्राप्ति करैंगे इसप्रकारकी निष्फलही है फलकी प्रार्थनारूप आशा जिनोंकी तिनोंका नाम मोघआशा है । तात्पर्य यह— अंतर्यामी सर्वज्ञ ईश्वरतैं विना जडकर्मोंविषे स्वतंत्र फलदेणेका सामर्थ्य है नहीं ऐसे असमर्थ कर्मोंतैंही फलके प्राप्तिकी इच्छा करणी निष्फलही है । इसीकारणतैं ही परमेश्वरतैं विमुख होणेतैं मोघ है क्या केवल परिश्रममात्ररूप हैं अग्निहोत्रादिक कर्म जिनोंके तिनोंका नाम मोघकर्मा है अर्थात् परमेश्वरतैं विमुख पुरुषोंके ते अग्निहोत्रादिक कर्म केवल परिश्रमकेही हेतु हैं । दूसरे किसी फलकी प्राप्ति करते नहीं । और ईश्वरका नही प्रतिपादन करणेहारे जे कुतर्क शास्त्र हैं तिन शास्त्रोंकरिकै उत्पन्न होणेतैं निष्फल है ज्ञान जिनोंका, तिनोंका नाम मोघज्ञान है । अर्थात् परमेश्वरका प्रतिपादन है जिनोंविषे ऐसे जे अध्यात्मशास्त्र हैं तिन शास्त्रोंके विचारतैं उत्पन्नभया ज्ञानही इस अधिकारी पुरुषकूं फलकी प्राप्ति करै है । और जिन शास्त्रोंविषे परमेश्वरका प्रतिपादन नहीं है उलटा परमेश्वरका खंडन है ऐसे कुतर्कशास्त्रोंके विचारतैं उत्पन्न हुआ ज्ञान इस पुरुषकूं किंचित्मात्रभी फलकी प्राप्ति करता नहीं । यातैं सो ज्ञान निष्फलही है। अब इस पूर्वउक्त अर्थविषे हेतु कहैं हैं (विचेतसः इति) तहां परमेश्वरकी अवज्ञाकरिकै उत्पन्न भया जो महान् पाप है ता पापकरिकै प्रतिबद्ध हुआहै विवेकविज्ञान जिन्होंका तिनोंका नाम विचेतस् है ऐसे विचेतस् होणेतैंही वे मूढपुरुष मोघआशा मोघकर्मा मोघज्ञान होवैं हैं । किंवा ते मूढपुरुष मैं परमेश्वरकी अवज्ञाके वशतैं राक्षसी प्रकृतिकूं तथा आसुरी प्रकृतिकूं तथा मोहिनी प्रकृतिकूंही आश्रयण करैहैं। तहां शास्त्रअविहित हिंसाका

हेतुभूत सो द्वेष है सो द्वेष है प्रधान जिसंविषे ऐसी जा तामसी प्रकृति है ताका नाम राक्षसी प्रकृति है । और शास्त्रअविहित विषयभोगोंका हेतुभूत जो राग है सो राग है प्रधान जिसविषे ऐसी जा राजसी प्रकृति है ताका नाम आसुरी प्रकृती है । और सत्शास्त्रजन्य ज्ञानतैं भ्रष्ट करणेहारी जा प्रकृति है ताका नाम मोहिनी प्रकृति है । इहां प्रकृतिनाम स्वभावका है । इसप्रकारकी राक्षसी आसुरी मोहिनी प्रकृतिकूंही ते मूढपुरुष आश्रय करैं हैं । इसी कारणतैंही ते मूढपुरुष नरककी प्राप्तिके द्वारोंका भागी होणेतैं निरंतर नरकयातनाकूंही अनुभव करैं हैं । ते नरकके द्वार शास्त्रविषे यह कथन करे हैं । तहां श्लोक—(त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः । कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥) अर्थ यह—काम क्रोध लोभ यह तीनोंही इस पुरुषकूं नरकके प्राप्तिको द्वारभूत होवैं हैं । यातैं यहां पुरुष तिन तीनोंका परित्याग करै ॥ १२ ॥

तहां पूर्व यह वार्त्ता कथन करी । जे पुरुष परमेश्वरतैं विमुख हैं तिन पुरुषोंकी जा फलकी कामना है तथा ता फलकी कामनाकरिकै कऱ्या जो नित्यनैमित्तिककाम्यकर्मोंका अनुष्ठान है तथा तिन कर्मोंके अनुष्ठानविषे उपयोगी जो शास्त्रजन्य ज्ञान ते सर्व व्यर्थही होवैंहैं । यातैं ते पुरुष परलोकके फलतैं तथा ता फलके साधनोंतैं शून्यही होवैं हैं । तिन पुरुषोंकूं इसलोकका भी कोई फल प्राप्त होता नहीं । जिसकारणतैं ते पुरुष विवेकविज्ञानतैं शून्यहोणेतैं विचेतस् हैं यातैं ते परमेश्वरतैं विमुख दीन पुरुष सर्वपुरुषार्थोंतैं भ्रष्ट होणेतैं सर्व प्राणियोंकूं शोचकरणेयोग्य हैं । यह सर्व अर्थ पूर्व कथन कऱ्या । तहां सर्व पुरुषार्थोंकूं प्राप्त होणेहारे तथा नहीं शोचकरणेयोग्य ऐसे कौन पुरुष हैं ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए एक परमेश्वरके शरणागतकूं प्राप्तहुए पुरुषही इसप्रकारके हैं इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ॥
भजंत्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥१३॥

(पदच्छेदः) महात्मानः । तु । माम् । पार्थ । दैवीम् । प्रकृतिम् । आश्रिताः । भजंति । अनन्यमनसः । ज्ञात्वा । भूतादिम् । अव्ययम् ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! दैवी प्रकृतिकूं आश्रयकरणेहारे तथा मैं परमेश्वरतें अन्यविषे नहींहै मन जिन्होंका ऐसे महात्मा पुरुष तौ मैं परमेश्वरकूं सर्वभूतोंका कारणरूप तथा नाशतें रहित जानिके भजे हैं ॥ १३ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! महान् है आत्मा क्या अंतःकरण जिन्होंका तिन पुरुषोंका नाम महात्माहै अर्थात् अनेक जन्मोंविषे करेहुए पुण्यकर्मोंकरिकै संस्कृत तथा क्षुद्रकामादिक विकारोंकरिकै नहीं अभिभव कर्‍याहुआ है अंतःकरण जिनोंका तिनोंका नाम महात्मा है । जिसकारणतें ते पुरुष महात्मा हैं तिसकारणतेंही (अभयं सत्त्वसंशुद्धिः) इत्यादिक वचनोंकरिकै आगे कथन करणी जा दैवीनामा सात्त्विकी प्रकृति है वा दैवीप्रकृतिकूं आश्रयण कर्‍या है जिन्होंने । जिसकारणतें तिन महात्मापुरुषोंनें दैवीप्रकृतिकूं आश्रयण कर्‍याहै तिसकारणतेंही मैं परमेश्वरतें अन्यवस्तुविषे नहीं है मन जिन्होंका ऐसे महात्मा पुरुष तौ मैं परमेश्वरकूं गुरुशास्त्रके उपदेशतें सर्वजगत्का कारणरूप जानिकै तथा अविनाशिरूप जानिके भजेहैं।अर्थात् मैं परमेश्वरका सेवन करेंहैं।इहां (महात्मानस्तु)या वचनविषे स्थित जो तु यह शब्दहै सो तुशब्द पूर्व कथनकरेहुए मूढपुरुषोंतें इन महात्मापुरुषोंविषे महान् विलक्षणताकूं सूचन करैहै॥ १३॥

हे भगवन् ! ते महात्मापुरुष आप परमेश्वरकूं किसप्रकारकरिकै भजैहैं ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् ता भजनके प्रकारकूं दो श्लोकोंकरिकै कथन करै हैं-

सततं कीर्त्तयंतो मां यतंतश्च दृढव्रताः ॥
नमस्यंतश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥१४॥

(पदच्छेदः) सततम् । कीर्त्तयंतः । माम् । यतंतः । च । दृढव्रताः । नमस्यन्तः । च । माम् । भक्त्या । नित्ययुक्ताः । उपासते ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! ते महात्मा पुरुष सर्वदा मैं परब्रह्मकूं कीर्त्तन करतेहुए तथा प्रयत्न करतेहुए तथा दृढव्रतवाले हुए तथा मैं परमेश्वरको नमस्कार करतेहुए तथा मैं परमेश्वरकी भक्तिकरिकै नित्ययुक्त हुए मैं परमेश्वरकूं चिंतन करैं हैं ॥ १४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! ते महात्मा पुरुष सर्वकालविषे मैं परमात्मा देवकूंही कीर्त्तन करैं हैं अर्थात् सर्व उपनिषदोंकरिकै प्रतिपाद्य जो मैं निर्गुण परमात्मादेव हूं तिस मैं निर्गुणस्वरूपकूं ते महात्मा पुरुष ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप जाइकै वेदांतवाक्योंके विचारकरिकै कीर्त्तन करैं हैं । और ता गुरुकी समीपवार्तें भिन्नकालविषे तौ प्रणवादिक मंत्रोंके जपकरिकै तथा उपनिषदोंकी आवृत्ति करिकै कीर्त्तन करैं हैं । तात्पर्य यह—ते महात्माजन मैं निर्गुण ब्रह्मकूं सर्वकालविषे वेदांतशास्त्रके अध्ययनरूप श्रवणव्यापारका विषय करैं हैं । इतनै कहणेकरिकै श्रवणरूप साधनका निरूपण कऱ्या । अब मननरूप साधनका निरूपण करैं हैं । (यतंतः इति ।) हे अर्जुन ! पुनः ते महात्मापुरुष गुरुके समीप अथवा अन्यत्र वेदांतते अविरोधितर्कोंका अनुसंधान करिकै गुरूपदिष्ट मैं परमेश्वरके निर्गुणस्वरूपके निश्चयकूं अप्रामाण्य शंकातैं रहित करणेवास्तै प्रयत्न करैं हैं। अर्थात् श्रवण करिकै निश्चय करे हुए अर्थके बाध करणेहारी शंकावोंकूं निवृत्त करणेहारी तर्कोंका अनुसंधानरूप मननपरायण होवैंहैं । इतने कहणेकरिकै मननका निरूपण कऱ्या अब वा श्रवणमननके अधिकारवास्ते शमदमादिक साधनोंका निरूपण करैं हैं

(दृढव्रताः इति) हे अर्जुन ! ते महात्मापुरुष तिस श्रवणमननके अधिकारकी प्राप्तिवासतै प्रथम दृढव्रत होवैं हैं । तहां दृढ हैं क्या प्रति- पक्षियोंकरिके चलायमान करणेकूं अशक्य हैं अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इत्यादिक व्रत जिनोंके तिनोंका नाम दृढव्रत हैं अर्थात् वे महात्मापुरुष शमदमादि साधनोंकरिके संपन्न होवैं । तहां अहिं- सादिक व्रतोंविषे दृढरूपता पतंजलिभगवान्नैंभी योगसूत्रोंविषे कथन करीहै । तहां सूत्रद्वयम्-(अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः । जाति- देशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमाः महाव्रतम् ।) अर्थ यह-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह यह पंच यम कहे जावैं हैं इति । ते अहिंसादिक पंच यम क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त इन तीनों भूमिकावोंविषेभी संभावना करे जावैं हैं । यातैं ते पंच यम सार्वभौम कहेजावैं हैं । ऐसे अहिंसादिक पंच यम जाति, देश, काल, समय इन चारोंकरिकै अनवच्छिन्न हुए महाव्रत कहे जावैं हैं । इहां जातिशब्दकरिकै ब्राह्मणत्वादिक जातिका ग्रहण करणा । और देशशब्दकरिकै तीर्था- दिक उत्तमदेशका ग्रहण करणा । और कालशब्दकरिकै एकादशी अमावास्यादिक पवित्र दिनोंका ग्रहण करणा । और समयशब्दकरिकै प्रयोजनविशेषका ग्रहण करणा । तहां ब्राह्मणादिक उत्तम प्राणियोंकूं मैं नहीं हनन करोंगा याप्रकारका संकल्प करिकै जो तिन ब्राह्मणादिकोंका नहीं हनन करणा है सा अहिंसा जातिकरिकै अवच्छिन्न कही जावै है, और तीर्थादिक उत्तमदेशविषे मैं किसी भी प्राणीका हनन नहीं करोंगा याप्रकारका संकल्प करिकै जो तिन तीर्थादिकोंविषे किसीभी प्राणीका नहीं हनन करणा है सो अहिंसा देशकरिकै अवच्छिन्न कही जावै है । और एकादशी आदिक पवित्रदिनोंविषे मैं किसीभी प्राणीका नहीं हनन करोंगा याप्रकारका संकल्पकरिकै जो तिन एकादशी आदिकोंविषे किसीभी प्राणीका नहीं हनन करणा है सा अहिंसा कालकरिकै अवच्छिन्न कही जावैहै । और यज्ञ युद्धादिक प्रयोजनतैं विना मैं किसीभी प्राणीका नहीं

हनन करोंगा या प्रकारका संकल्प करिकै जो तिन यज्ञयुद्धादिक प्रयोजनवैं विना किसीभी प्राणीका नहीं हनन करणा है सा अहिंसा समयकरिकै अवच्छिन्न कही जावै है। इसप्रकार सत्यादिकोंविषेभी यथायोग्य जाति आदिकोंकरिकै अवच्छिन्नता जानिलेणी। और किसीभी देशविषे तथा किसीभी कालविषे तथा किसीभी प्रयोजन वास्तै किसीभी जातिवाले जीवका मैं हनन नहीं करोंगा याप्रकारका संकल्प करिकै जो सर्व प्रकारतैं किसीभी प्राणी मात्रका नहीं हनन करणाहै सा अहिंसा तिन जाति-आदिक चारोंकरिकै अनवच्छिन्न कही जावे है। इसीप्रकार सत्यादिक यमोंविषेभी जाति आदिकोंकरिकै अनवच्छिन्नता जानि लेणी। इसप्रकार जातिआदिकोंकरिकै अनवच्छिन्न हुए ते अहिंसादिक यम महाव्रत कहे जावेहैं इति। इन, दोनों योगसूत्रोंका विस्तारतैं अर्थ तौ इस गीताके चतुर्थ अध्यायविषे (द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञाः) इस श्लोकके व्याख्यानविषे कथन करि आये हैं। इस प्रकारतैं दृढ है अहिंसादिक व्रत जिनोंके तिनोंका नाम दृढव्रत है इति। और ते महात्मा जन मैं परमेश्वरकूंही नमस्कार करैहैं अर्थात् तिन महात्मा जनोंका इष्टदेवतारूप करिकै तथा गुरुरूपकरिकै स्थित जो सर्व शुभगुणोंका निधानरूप मैं भगवान् वासुदेवहूं तिसमैं भगवानकूंही ते महात्माजन शरीर मन वाणीकरिकै नमस्कार करैंहै इहां (नमस्यंतश्च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है ता चकारकरिकै शास्त्रांतरविषे प्रसिद्ध श्रवणादिकोंकाभी ग्रहण करणा। तहां श्लोक—(श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥) अर्थ यह—सर्वत्र व्यापक विष्णुका श्रवण करणा। तथा कीर्त्तन करणा। तथा स्मरण करणा।तथा ताके पादोंका सेवन करणा। तथा अर्चन करणा।तथा वंदन करणा।तथा दासभाव करणा।तथा सखाभाव करणा। तथा आपणे आत्माका समर्पण करणा इति। इस श्लोकविषे वंदनभी कथन कन्या है। सोईही वंदन श्रीभगवान्नैं (नमस्यंतश्च) या वचन करिकै कथन कन्या है, यातैं इस श्लोकविषे ता वंदनके सह

वर्त्तणेहारे श्रवणादिकोंका तिस चकार करिकै ग्रहण संभवै है । यद्यपि पुष्प चंदन अक्षतादिकों करिके अर्चन तथा पादोंका सेवन साक्षात् ईश्वरका संभवता नहीं तथापि सो ईश्वरही गुरुरूप होइकै शिष्यकूं उपदेश करै है यह वार्त्ता शास्त्रविषे कथन करी है । यातैं ता गुरुरूप ईश्वरका अर्चन तथा पादोंका सेवन संभवै है । अथवा (द्वे रूपे वासुदेवस्य चलं चाचलमेव च । चलं संन्यासिनो रूपमचलं प्रतिमादिकम् ॥ अर्थ यह–सर्वत्र व्यापक भगवान् वासुदेवके दो रूप हैं । एक तौ चलणेहारा रूप है । दूसरा अचल रूप है । तहां संन्यासीका स्वरूप चलरूप है । और प्रतिष्ठा करी हुई पाषाणमय अथवा धातुमय प्रतिमा आदिक अचलरूप है इति । इत्यादिक शास्त्रवचनोंविषे प्रतिमाभी विष्णुका रूप कह्या है । यातैं ता प्रतिमा रूप विष्णुका अर्चन तथा पादसेवन दोनों संभवैं हैं । इसी कारणतैंही शास्त्रविषे तिन दोनों स्वरूपोंकूं नहीं नमस्कार करणेहारे पुरुषकूं नरककी प्राप्ति कथन करी है । तहां श्लोक–(देवताप्रतिमां दृष्ट्वा यतिं दृष्ट्वा च दंडिनम् । प्रणिपातमकुर्वाणो रौरवं नरकं व्रजेत् ॥) अर्थ यह–विष्णुशिवादिक देवतावोंकी प्रतिमाकूं देखिकै तथा दंडयुक्त संन्यासीकूं देखिकै जो पुरुष तिनोंकूं नमस्कार नहीं करै है, सो पुरुष रौरवनरककूं प्राप्त होवै है इति । इहां (नमस्यंतश्च माम्) इस पूर्ववचनविषे जो मां यह पद दूसरीवार कथन कऱ्या है, सो सगुणरूपके बोधन करणेवास्तै कथन कऱ्या है । जो ऐसा नहीं अंगीकार करिये तौ (कीर्त्तयन्तो माम्) इस वचनविषे स्थित मां शब्दकरिकैंही अर्थकी सिद्धि होइसकै है । पुनः मां यह शब्द कहणा व्यर्थ होवैगा । यातैं प्रथममां यह शब्द निर्गुणस्वरूपका बोधकहै । और द्वितीय मां यह शब्द सगुणस्वरूपका बोधक है यह अर्थही अंगीकार करणा उचित है इति । तथा वे महात्माजन सर्वदा मैं परमेश्वर विषयक परम प्रेमरूप भक्तिकरिकैं युक्त होवैं हैं । इतने कहणेकरिकै सर्व साधनोंकी पुष्कलता तथा प्रतिबंधकका अभाव दिखाया । अर्थात् जे अधिकारी

पुरुष सर्वदा परमेश्वरकी भक्तिकरिकै युक्त होवैं हैं ते अधिकारी पुरुष ता भक्तिके प्रभावतैं सर्व प्रतिबंधकोंतैं रहित होइकै शीघ्रही आत्मज्ञानकूं प्राप्त होवैं हैं यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है । तहां श्रुति-(यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मनः ॥) अर्थ यह-जिस अधिकारी पुरुषकी परमात्मादेवविषे परम भक्तिहै। तथा जैसे परमात्मा देवविषे परम भक्ति है, तैसेही ब्रह्मउपदेष्टा गुरु विषे परमभक्ति है, तिस महात्मा अधिकारी पुरुषकूंही यह वेदांतप्रतिपादित अर्थ बुद्धिविषे प्रकाशमान होवै है इति । यह वार्त्ता पतंजलि भगवानूनैं भी योगसूत्रोंविषे कथन करी है । तहां सूत्र-(ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यंतराभावश्च ।) अर्थ-यह तिस परमेश्वरकी अनन्यभक्तिरूप प्रणिधानतैं इस अधिकारी पुरुषकूं प्रत्यक्चेतनका साक्षात्कार होवै है । तथा सर्व विघ्नोंकाभी अभाव होवै है, । इस प्रकार ते महात्माजन शमदमादिकों साधनोंकरिकै संपन्नहुए तथा वेदांतशास्त्रके श्रवणमननपरायण हुए तथा परमगुरुरूप परमेश्वरविषे परमप्रेमकरिकै तथा नमस्कारादिकों करिकै सर्व विघ्नोंतैं रहित हुए मैं परमेश्वरकूं उपासना करैं हैं। अर्थात् श्रवणमननकी परिपाकतातैं उत्तरभावी जो अनात्माकार विजातीयवृत्तियोंके व्यवधानतैं रहित मैं परमेश्वरके आकार सजातीयवृत्तियोंका प्रवाह है ताकरिकै निरंतर मैं परमेश्वरकूं चिंतन करैं हैं । इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं तत्त्वसाक्षात्कारके समीप होणेतैं परमसाधनरूप निदिध्यासन दिखाया । इसप्रकार श्रवणादिक साधनोंकी पुष्कलताके हुए इस अधिकारी पुरुषविषे वेदांतवाक्यकरिकै जन्य तथा अखण्डवस्तुविषयक तथा मैं ब्रह्मरूप हूं ऐसा साक्षात्काररूप जो आत्मज्ञान उत्पन्न होवै है सो सर्व साधनोंका फलभूत आत्मज्ञान संपूर्ण शंकारूपी कलंकोंतैं रहित हुआ केवल आपणी उत्पत्तिमात्र करिकै संपूर्ण अज्ञानकूं तथा ता अज्ञानके कार्यरूप सर्वप्रपंचकूं नाशकरै है । जैसे दीपक आपणी उत्पत्तिमात्रकरिकैही अंधकारकूं नाश करै है। ता अंधकारके नाश करणेविषे सो दीपक

दूसरे किसी साधनकी अपेक्षा करता नहीं । किंतु सो दीपक. आपणी उत्पत्ति विषेही तेलवर्ती आदिक साधनोंकी अपेक्षा करै है। तैसे सो आत्मज्ञान भी ता कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्तिकरणेविषे दूसरे किसी साधनकी अपेक्षा करता नहीं किंतु सो आत्मज्ञान आपणी उत्पत्तिविषेही तिन श्रवणादिक साधनोंकी अपेक्षा करै है । यातैं सो आत्मज्ञान निरपेक्ष हुआही साक्षात् मोक्षका हेतु है । ता मोक्षकी प्राप्ति करणेविषे सो आत्मसाक्षात्कार भूमिकावोंके जयक्रमकरिकै भ्रुवोंके मध्यविषे प्राणोंके प्रवेशकी अपेक्षा करै नहीं । तथा सुषुम्नानामा मूर्द्धन्यनाडीकरिकै प्राणोंके उत्क्रमणकी अपेक्षा करै नहीं । तथा अर्चिरादि मार्गकरिकै ब्रह्मलोकविषे गमन करणेकी भी अपेक्षा करै नहीं । तथा ता ब्रह्मलोकके भोगोंके अंतकालपर्यंत विलंबकीभी अपेक्षा करै नहीं । यातैं श्रीभगवान्नैं (इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे । ज्ञानम्) इसवचनकरिकै जो पूर्व ज्ञानके उपदेशकी प्रतिज्ञा करी थी सो ज्ञान इस श्लोकविषे श्रीभगवान्नैं कथन कऱ्या है । और इस आत्मज्ञानका जो अशुभसंसारतैं मुक्तिरूप फल है सो फल तौ श्रीभगवान्नैं पूर्वही कथन कऱ्या था । यातैं इहां पुनः सो फल कथन कऱ्या नहीं । इस प्रकारका गंभीर अभिप्राय श्रीभगवान्का इस श्लोकविषे है । और इस श्लोकका ऊपरला अर्थ तौ प्रगटही है ॥ १४ ॥

तहां पूर्व श्लोकविषे कथन करे जे ता ज्ञानके साधनरूप श्रवण मनन निदिध्यासन हैं तिन श्रवणादिकोंके करणेविषे जे पुरुष समर्थ नहीं हैं ते पुरुषभी उत्तम मध्यम मंद इस भेदकरिकै तीन प्रकारकेही होवैं हैं । ते सर्व आपणी आपणी बुद्धिके अनुसार मैं परमेश्वरकूंही चिंतन करैं हैं । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं है-

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजंतो मामुपासते ॥
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥ १५ ॥

(पदच्छेदः) ज्ञानयज्ञेन । च । अपि । अन्ये । यजंतः । माम् । उपासते । एकत्वेन । पृथक्त्वेन । बहुधा । विश्वतोमुखम् ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अन्य केईक उत्तम अधिकारी जन तौ ज्ञानरूप यज्ञकरिकै मेरा पूजन करतेहुए केवल एकत्वरूपकरिकै मैं परमेश्वरकूं ही चिंतन करैं हैं तथा केईक मध्यम अधिकारी जन तौ भेदरूपकरिकै ही चिंतन करैं हैं तथा केईक मंद जन तौ बहुतप्रकारोंकरिकै मैं विश्वरूप परमेश्वरकूंही चिंतन करैं हैं ॥ १५ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! पूर्वश्लोकविषे कथन करे जे श्रवणादिक साधन हैं तिन श्रवणादिक साधनोंके अनुष्ठान करणेविषे असमर्थ जे केईक अधिकारी जन हैं ते अधिकारी जन मैं परमेश्वरकूंही ज्ञानरूप यज्ञकरिकै चिंतन करैं हैं । तिन अधिकारी जनोंविषेभी केईक उत्तम अधिकारी जन तौ केवल एकत्व ज्ञानयज्ञकरिकैही चिंतन करैं हैं। इहां श्रुतिविषे कथन करी जा उपास्य उपासक अभेदचिंतनरूप अहंग्रह उपासना है ताका नाम ज्ञान है। तहां श्रुति–(त्वं वा अहमस्मि भगवो देवते अहं वै त्वमसि ॥) अर्थ यह–हे भगवन् ! सगुणदेवता तथा निर्गुणदेवता जो तूं है सो मैं हूं और जो मैं हूं सो तूं है । तुम्हारे हमारेविषे किंचित्मात्रभी भेद नहीं है इति । याप्रकारकी अहंग्रहउपासनारूप ज्ञानही परमेश्वरका यजनरूप होणेतें यज्ञरूप है । इहां (ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये) इस वचनविषे स्थित जो च अपि यह दो शब्द हैं तिन दोनों शब्दोंविषे प्रथम चशब्द तौ एवकारके अवधारणरूप अर्थका बोधक है। ता चशब्दका माम् इस शब्दके साथि अन्वय करणा। और दूसरा अपिशब्द तौ दूसरे साधनोंकी निवृत्तिका बोधक है । यातैं यह अर्थ सिद्ध होवै है । केईक अधिकारी जन तौ दूसरे साधनोंकी इच्छातें रहित हुए उपास्यउपासकका अभेद चिंतनरूप अहंग्रह उपासनारूप ज्ञानयज्ञकरिकै मैं परमेश्वरकूंही चिंतन करैं हैं। इसप्रकार अहंग्रहउपासनारूप

ज्ञानयज्ञकरिकै मैं परमेश्वरकूं चिंतन करणेहारे पुरुष उत्तम कहेजावैं हैं इति। और दूसरे केईक मध्यम अधिकारी जन तौ पृथक्त्वरूपकरिकै मैं परमेश्वरकूंही चिंतन करैं हैं अर्थात् (आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशः मनो ब्रह्म) इत्यादिक श्रुतियोंनैं कथनकरी जा उपास्य उपासकका भेदरूप प्रतीकउपासनाहै ता प्रतीकउपासनारूप ज्ञानयज्ञकरिकै मैं परमेश्वरकूंही चिंतन करैं हैं इति। और ता अहंग्रहउपासनाके करणेविषे तथा प्रतीक उपासनाके करणेविषे असमर्थ जे केईक मंदपुरुष हैं ते मंदपुरुष तौ जिसी किसी अन्यदेवताकी उपासनाकूं करतेहुए तथा जिसीकिसी कर्मोंकूं करते-हुए तिसतिस बहुत प्रकारोंकरिकैभी विश्वरूप मैं परमेश्वरकूं ही तिस-तिस देवताकी उपासनारूप ज्ञानयज्ञकरिकै चिंतन करैं हैं। वहां तिसतिस ज्ञानयज्ञकरिकै उत्तरउत्तर पुरुषोंकूं क्रमकरिकै पूर्वपूर्व भूमिकाका लाभ अवश्यकरिकै होवै है। और किसी टीकाविषे तौ इस श्लोकका यह अर्थ कथन कर्या है। योगशास्त्रवाले पातंजलि तौ निर्विकल्प समाधिरूप ज्ञान-यज्ञकरिकै मैं परमेश्वरकूं ही चिंतन करैं हैं। और औपनिषद पुरुष तौ मैं ही भगवान् वासुदेवस्वरूप हूं या प्रकार अभेदरूप एकत्व करिकै मैं परमेश्व-रकूं ही चिंतन करैं हैं। और विचारहीन प्राकृतजन तौ यह ईश्वर हमारा स्वामी है मैं इसका दासहूं या प्रकार पृथक्त्वरूप करिकै मैं परमेश्वरकूं ही चिंतन करैंहैं और दूसरे केईक जन तौ बहुत प्रकारवैं विश्वतोमुख जैसे होवै, तैसे हमारेकूं चिंतन करैंहैं। अर्थात् जो कोई वस्तु देखणेविषे आवैहै सो वस्तु भगवत्काही स्वरूप है और जो जो शब्द श्रवण करणे-विषे आवैहै सो सो शब्द भगवत्काही नाम है। और जो कोई वस्तु-किसीकूं दियाजावै है तथा जो कोई पदार्थ भोग्या जावैहै सो सर्व भगवत्विषेही अर्पण होवैहै। इसप्रकार सर्व द्वारोंकरिकै मैं परमेश्वरका ही चिंतन करैंहैं ॥ १५ ॥

हे भगवन् ! जबी वे पुरुष बहुतप्रकारतैं उपासना करैंहैं तबी वे सर्व मैं परमेश्वरकूं ही चिंतन करैंहैं यह आपका वचन कैसे संगत होवेगा ?

ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् च्यारि श्लोकोंकरिकै आपणेकूं विश्वरूपता वर्णन करैहैं—

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ॥
मंत्रोहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) अहम् । क्रतुः । अहम् । यज्ञः । स्वधा । अहम् । अहम् । औषधम् । मंत्रः । अहम् । अहम् । एव । आज्यम् । अहम् । अग्निः । अहम् । हुतम् ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरही क्रतुरूप हूं तथा मैंही यज्ञरूप हूं तथा मैंही स्वधारूप हूं तथा मैंही औषधरूप हूं तथा मैंही मंत्ररूप हूं तथा मैं परमेश्वर ही आज्यरूप हूं तथा मही अग्निरूप हूं तथा मैंही हवनरूप हूं ॥ १६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! श्रौतकर्म है नाम जिन्होंका ऐसे जे अग्निष्टोमादिककर्म हैं तिनोंका नाम क्रतु है सो क्रतुरूपभी मैं परमेश्वरही हूं। और स्मार्तकर्म है नाम जिन्होंका ऐसे जे वैश्वदेवादिक कर्म हैं जिन वैश्वदेवादिकोंकूं श्रुतिस्मृतियोंविषे महायज्ञरूप करिकै कथन कऱ्या है तिन वैश्वदेवादिक स्मार्तकर्मोंका नाम यज्ञ है सो यज्ञरूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और पितरोंके ताईं दिया जो अन्न है वा अन्नका नाम स्वधा है सो स्वधारूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और वनस्पतिरूप ओषधियोंतें उत्पन्न भया जो अन्न है जिस अन्नकूं यह सर्व प्राणी भोजन करते हैं ता अन्नका नाम औषध है, अथवा रोगकी निवृत्तिका उपायरूप जो भेषज है ताका नाम औषध है सो औषधरूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और स्वाहा स्वधा यह शब्द हैं अंतविषे जिन्होंके ऐसे जे वेदके वचन हैं जिन वचनोंका उच्चारण करिकै देवताओंके ताईं तथा पितरोंके ताईं हविष् दिया जावैहै तिन वेदवचनोंका नाम मंत्र है जैसे इंद्राय स्वाहा पितृभ्यः स्वधा इत्यादिक मंत्र हैं सो मंत्ररूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और तिन

मंत्रोंकरिकै अग्निविषे पाया जो घृत है ता घृतका नाम आज्य है सो घृतरूप आज्य इहां व्रीहियवादिक सर्व हविषमात्रका उपलक्षण है सो घृतादि हविषरूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और ता घृतादिरूप हविषके प्रक्षेपका अधिकरणरूप जे आहवनीय आदिक अग्नि हैं सो अग्निरूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और ता अग्निविषे घृतादिरूप हविषका प्रक्षेपरूप जो हवन है ताका नाम हुत है सो हवनरूपभी मैं परमेश्वरही हूं । इहां यद्यपि एकही अहंशब्दके उच्चारणतैं उक्त अर्थकी सिद्धि होइसकै है तथापि एकएक क्रतुयज्ञादिक शब्दके साथि जो अहंशब्दका उच्चारण कऱ्याहै सो तिन क्रतुयज्ञादिकोंविषे एकएकका ज्ञानभी मैं परमेश्वरकीही उपासना है इस अर्थके बोधन करणेवास्ते उच्चारण कऱ्या है तहां इस श्लोकका यह समुदाय अर्थ सिद्ध होवै है । जितनेक क्रिया हैं तथा ता क्रियाकी सिद्धि करणेहारे कारक हैं तथा ता क्रियाकरिकै साध्य फल हैं ते सर्व क्रिया कारक फल मैं परमेश्वरकाही स्वरूप हैं । मैं परमेश्वरतैं अतिरिक्त कोईभी क्रिया कारक फल नहीं है । इहां किसी टीकाविषे तौ क्रतुशब्दकरिकै देवताविषयक ध्यानरूप संकल्पका ग्रहण कऱ्या है और यज्ञशब्दकरिकै श्रौतस्मार्त्तकर्मका ग्रहण कऱ्याहै ॥ १६ ॥

किंच-

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ॥
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च ॥ १७ ॥

(पदच्छेदः) पिता । अहम् । अस्य । जगतः । माता । धाता । पितामहः । वेद्यम् । पवित्रम् । ओंकारः । ऋक् । साम । यजुः । एव । च ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इस जगत्का पितारूप तथा मातारूप तथा धातारूप तथा पितामहरूप मैं परमेश्वरही हूं तथा वेद्यवस्तुरूप तथा पवित्रवस्तुरूप तथा ओंकाररूप तथा ऋग्वेदरूप सामवेदरूप यजुर्वेदरूप मैं परमेश्वरही हूं ॥ १७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! यह सर्वप्राणीमात्ररूप जो जगत् है इस जगत्का उत्पन्न करणेहारा पितारूप भी मैं परमेश्वरही हूं । तथा इस जगत्कूं उत्पन्न करणेहारी मातारूपभी मैं परमेश्वरही हूं । तथा इस जगत्का धातारूपभी मैं परमेश्वरही हूं । अर्थात् इस जगत्का पोषण करणेहारा अथवा तिसतिस पुण्यपापरूप कर्मके सुखदुःखरूप फलके देणेहाराभी मैं परमेश्वरही हूं । और इन प्राणियोंके पिताकाभी जो पिता होवै ताका नाम पितामह है सो पितामहरूपभी मैं परमेश्वरही हूं । इहां किसी टीकाविषे जगत्शब्दकरिकै आकाशादिक सर्वकार्यप्रपंचका ग्रहण करिकै मायाविशिष्ट शबलब्रह्मकूं ता जगत्का पितारूप कह्याहै । और अव्यक्तनामा अपरा प्रकृतिकूं मातारूप कह्याहै । और मायाउपहित अक्षरकूं पितामहरूप कह्याहै इति । और इन अधिकारी जनोंकूं जानणे-योग्य जो परब्रह्म वस्तु है ताका नाम वेद्यहै सो वेद्य वस्तुरूपभी मैं पर-मेश्वरही हूं अथवा सर्वप्राणीमात्रकरिकै जानणेयोग्य जो शब्दस्पर्शरूपादिक वस्तु हैं तिनोंका नाम वेद्य है सो वेद्यवस्तुरूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और यह अधिकारी जन जिसकरिकै शुद्धिकूं प्राप्त होवैं ताका नाम पवित्र है । ऐसे शुद्धि करणेहारे गंगास्नान गायत्रीजप आदिक हैं सो पवित्ररूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और तिस जानणेयोग्य ब्रह्मके ज्ञानका साधनरूप जो ओंकार है सो ओंकाररूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और अग्निहोत्रादिक कर्मोंकी सिद्धिविषे उपयोगी तथा ता वेद्यब्रह्मविषे प्रमाणभूत जो ऋग्वेद है तथा सामवेद है तथा यजुर्वेद है सो ऋगादिवेदरूपभी मैं परमेश्व-रही हूं । इहां (यजुरेव च) या वचनविषे स्थित जो चकार है ता चकारकरिकै अथर्वण वेदकाभी ग्रहण करणा ॥ १७ ॥

गतिर्भर्त्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ॥
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥ १८ ॥

(पदच्छेदः) गतिः । भर्त्ता । प्रभुः । साक्षी । निवासः । शरणम् । सुहृत् । प्रभवः । प्रलयः । स्थानम् । निधानम् । बीजम् । अव्ययम् ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरही गतिरूप हूं तथा भर्त्तारूप हूं तथा प्रभुरूप हूं तथा साक्षीरूप हूं तथा निवासरूप हूं तथा शरणरूप हूं तथा सुहृत्‌रूप हूं तथा प्रभवरूप हूं तथा प्रलयरूप हूं तथा स्थानरूप हूं तथा निधानरूप हूं तथा नाशतेंरहित बीजरूप हूं ॥ १८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! कर्मोंकरिकै जो फल प्राप्त होवैहै ता फलका नाम गति है ऐसे स्वर्गादिफल हैं सो गतिरूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और सुखके साधनोंकी प्राप्तिकरिकै जो पोषण करैहै ताका नाम भर्त्ता है सो भर्त्तारूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और यह पुत्रादिक पदार्थ हमारेही है याप्रकारतें तिन पुत्रादिक पदार्थोंकूं स्वीकार करणेहारा जो स्वामी है ताका नाम प्रभु है सो प्रभुरूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और सर्वप्राणियोंके शुभअशुभकर्मोंकूं जो देखणेहारा है ताका नाम साक्षी है जैसे सूर्य चंद्रमादिक हैं सो साक्षीरूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और निवास करिये जिसविषे ताका नाम निवास है अर्थात् भोगके स्थानका नाम निवास है सो निवासरूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और विनाशकूं प्राप्तहोवै दुःख जिसके समीप ताका नाम शरण है अर्थात् शरणागतकूं प्राप्तहुए जनोंके दुःखका नाश करणेहारेका नाम शरण है सो शरणरूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और प्रतिउपकारकी नहीं अपेक्षा करिकै जो उपकार करैहै ताका नाम सुहृद् है सो सुहृद्‌रूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और उत्पत्तिका नाम प्रभव है और विनाशका नाम प्रलय है और स्थितिका नाम स्थान है सो प्रभव प्रलय स्थानरूपभी मैं परमेश्वरही हूं । अथवा जिसकरिकै यह कार्य उत्पन्न होवै है ताका नाम प्रभव है अर्थात् स्रष्टाका नाम प्रभव है । और ते कार्य लयभावकूं प्राप्त होवैं जिसकरिकै ताका नाम प्रलय है अर्थात् संहर्त्ताका नाम प्रलय

है । और यह कार्य स्थित होवैं जिसविषे ताका नाम स्थान है अर्थात् आधारका नाम स्थान है सो प्रभव प्रलयस्थानरूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और तिसकालविषे भोगकी अयोग्यतातैं कालांतरविषे भोगणे योग्य वस्तु स्थितकरिये जिसविषे ताका नाम निधान है अर्थात् सूक्ष्मरूप सर्ववस्तुवोंका अधिकरण जो प्रलयस्थानहै ताका नाम निधानहै । अथवा शंखपद्मादिक निधिका नाम निधान है सो निधानरूपभी मैं परमेश्वरहीहूं । और उत्पत्तिका जो कारण होवै ताका नाम बीज है जो बीज अव्यय है अर्थात् जैसे व्रीहियवादिक बीज विनाशकूं प्राप्त होवैहैं तैसे जो बीज विनाशकूं प्राप्त होवा नहीं, ऐसा उत्पत्तिविनाशतैं रहित सर्वका कारणरूप बीजभी मैं परमेश्वरही हूं॥ १८ ॥

किंच–

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ॥
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥ १९ ॥

(पदच्छेदः) तपामि । अहम् । अहम् । वर्षम् । निगृह्णामि । उत्सृजामि । च । अमृतम् । च । एव । मृत्युः । च । सत् । असत् । च । अहम् । अर्जुन ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरही तापकूं करूंहूं तथा मैं परमेश्वरही जलरूप रसकूं आकर्षण करूंहूं तथा ता रसकूं पुनः भूमिविषे परित्याग करूंहूं तथा मैं परमेश्वरही अमृतरूप हूं तथा मृत्युरूप हूं तथा सत्‌रूप हूं तथा असत्‌रूप हूं ॥ १९ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! सर्वका आत्मारूप मैं अंतर्यामी परमेश्वरही सूर्यरूप होइकै इस लोकविषे तापकूं करूंहूं और तिस तापके वशतें सो सूर्यरूप मैं परमेश्वरही पूर्व करे हुए वृष्टिरूप रसकूं किसीक आपणी किरणावोंकरिकै कार्त्तिकादिक अष्टमासोंविषे इस पृथिवीतें आकर्षण करूं हूं । तिसतें अनंतर सो सूर्यरूप मैं परमेश्वरही तिस आकर्षण करेहुए रसकूं

आषाढादिक च्यारिमासोंविषे किसीक आपणी किरणावोंकरिकै इस पृथिवीविषे वृष्टिरूप करिकै परित्याग करूं हूं और देवतावोंके भक्षण करणे योग्य जो अन्न है जिस अन्नके भक्षण करिकै ते देवता मरणकूं प्राप्त होवे नहीं ता अन्नका नाम अमृत है अथवा सर्वप्राणियोंके जीवनका नाम अमृत है सो अमृतरूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और सर्वप्राणियोंकूं जो नाश करै है ताका नाम मृत्यु है अथवा सर्व प्राणियोंका जो विनाश है ताका नाम मृत्यु है सो मृत्युरूपभी मैं परमेश्वरहीहूं और जो वस्तु जिस आधारके संबंधवाला हुआ विद्यमान होवै है सो वस्तु तिस आधारविषे सत् कह्या जावै है । और जो वस्तु जिस आधारके संबंधवाला हुआ नहीं विद्यमान होवै है सो वस्तु तिस अधिकरणविषे असत् कह्या जावै है । जैसे रूप पृथिवी जल तेजरूप आधारके संबंधवाला हुआ विद्यमान होवै है । यातैं सो रूप ता पृथिवी जल तेजरूप आधारविषे सत् कह्या जावै है । और सोईही रूप वायु आकाशरूप आधारके संबंधवाला हुआ विद्यमान होवै नहीं । यातैं सो रूप ता वायु आकाशविषे असत् कह्या जावै है । ऐसे सत् असत् रूप ता अन्यपदार्थोंविषे भी जानिलेणी । सो सत्रूप तथा असत्रूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और किसी टीकाविषे तौ सत् असत् या दोनों शब्दोंका यह अर्थ कऱ्या है शास्त्रविहित साधु कर्मका नाम सत् है और शास्त्रनिषिद्ध असाधु कर्मका नाम असत् है इति । और अन्य किसी टीकाविषे तौ सत् असत् या दोनों शब्दोंका यह अर्थ कऱ्या है जो वस्तु इदमस्ति इदमस्ति इस प्रकारके नामरूपकरिकै कथन कऱ्या जावै है सो वस्तु व्यक्त कह्या जावै है । ऐसा व्यक्तरूप जो नामरूपात्मक कार्यमात्र है सो व्यक्तनामा कार्य सत् कह्या जावै है । और ता कार्यरूप व्यक्तवें विलक्षण तथा नामरूपका कारणरूप जो अव्यक्तहै सो अव्यक्त असत् कह्या जावैहै । अथवा स्थूलरूप दृश्यका नाम सत् है और सूक्ष्मरूप अदृश्यका नाम असत् है सो सत्रूप तथा असत्रूपभी मैं परमेश्वरही हूं । इहां (सदसच्च) इस वचनविषे स्थित

जो चकार है सो चकार ता व्यक्त अव्यक्त सत् असत् दोनोंके निषेध किये हुए ता निषेधका अवधिरूपकरिकै स्थित तथा कार्यकारणभावतैं रहित जो निर्विशेष परब्रह्म है सोभी मैंही हूं इस अर्थके सूचन करणेवासतै है । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । सर्वका आत्मारूप मैं परमेश्वरकूं जानिकै ते अधिकारी जन आपणे आपणे अधिकारके अनुसार पूर्व- उक्त बहुत प्रकारोंकरिकै मैं परमेश्वरकूंही चिंतन करैंहैं ॥ १९ ॥

इस प्रकार अहंग्रह उपासनारूप एक भावकरिकै तथा प्रतीक उपासनारूप पृथक्भावकरिकै तथा अन्य बहुत प्रकारों करिकै मैं परमेश्वरकूं निष्काम होइकै चिंतन करणेहारे जे पूर्व उक्त उत्तम मध्यम मन्द यह तीन प्रकारके अधिकारी जन हैं ते अधिकारी जन तौ अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा तथा आत्मज्ञानकी उत्पत्तिद्वारा क्रमकरिकै मुक्तिकूंही प्राप्त होवैं हैं । और जे पुरुष सकाम हुए किसीभी प्रकार करिकै मैं परमेश्वरकूं चिंतन करते नहीं किंतु आपणी आपणी कामनाके विषयभूत जे स्वर्गादिक विषय सुख हैं तिनोंकी प्राप्तिवासतै काम्यकर्मोंकूंही करैं हैं वे सकाम पुरुष अन्तःकरणकी शुद्धि करणेहारे निष्काम कर्मोंके अभावकरिकै आत्मज्ञानके श्रवणादिक साधनोंके अयोग्य हुए वारंवार जन्ममरणरूप संसारकूं ही अनुभव करैंहैं । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् दोश्लोकोंकरिकै निरूपण करैं हैं—

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयंते॥ते पुण्यमासाद्य सुरेंद्रलोकमश्नंति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥ २० ॥

(पदच्छेदः) त्रैविद्याः । माम् । सोमपाः । पूतपापाः । यज्ञैः । इष्ट्वा । स्वर्गतिम् । प्रार्थयंते । ते । पुण्यम् । आसाद्य । सुरेंद्रलोकम् । अश्नंति । दिव्यान् । दिवि । देवभोगान् ॥ २० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जे ऋगादिक तीन वेदोंकूं जानणेहारे पुरुष काम्ययज्ञोंकरिकै मैं परमेश्वरकूं पूजनकरिकै सोमकूं पान करतेहुए तथा

पापोंतैं रहितहुए स्वर्गकी प्राप्तिकूं चाहते हैं ते सकामपुरुष पुण्यके फल-रूप तिसै स्वर्गलोककूं प्राप्त होइकै तिसै स्वर्गलोकविषे दिव्य देवतावोंके भोगोंकूं भोगै हैं ॥ २० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! यज्ञविषे होताकृत जो कर्म है तथा अध्व-र्युकृत जो कर्म है तथा उद्गाताकृत जो कर्म है ता कर्मके ज्ञानका हेतु-भूत है ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद यह तीन विद्या जिनपुरुषोंकी तिनोंका नाम त्रैविद्य है अथवा तिन ऋगादिक तीनविद्यावोंकूं जे भलीप्रकारतैं जानते होवै तिनोंका नाम त्रैविद्य है । तहां तिन तीन वेदोक्तकर्मके करावणेविषे तथा आप करणेविषे जो सामर्थ्य है यहही विन तीन वेदोंका भलीप्रकार जानणा है। ऐसे तीन वेदोंकूं जानणेहारे याज्ञिक पुरुष अग्निष्टोमादिक काम्ययज्ञोंकरिकै इंद्र वसु रुद्र आदित्यरूप मैं परमे-श्वरकूं पूजनकरिकै अर्थात् यह परमेश्वरही इंद्रादिरूप है याप्रकारवैं इंद्रादिरूपकरिकै मैं परमेश्वरकूं नहीं जानते हुएभी ते सकाम पुरुष वस्तु-गतितैं विन इंद्रादिक देवतावोंके पूजनतैं मैं अंतर्यामिपरमेश्वरकूं नहीं पूजनकरिकै जे पुरुष सोमपा होवैं हैं। इहां सोमवल्लीके रसकूं निकासिकै वा रसरूप सोमकूंही वैदिक अग्निविषे हवनकरिकै परिशेषतैं रहेहुए सोमकूं जे पुरुष पान करैं हैं तिनोंका नाम सोमपा है । तिस सोमके पानकरिकैही पूतपाप हुए अर्थात् स्वर्गभोगोंके प्रतिबंधक पापकर्मोतैं रहि-तहुए जे सकाम पुरुष केवल स्वर्गलोकके प्राप्तिकी ही इच्छा करैं हैं, अंतःकरणके शुद्धिकी तथा आत्मज्ञानके प्राप्तिकी जे पुरुष इच्छा करते नहीं अर्थात् स्वर्गलोकविषे किंचित्मात्रभी भय होता नहीं तथा स्वर्ग-वासी देवता अमृतभावकूं प्राप्त होते हैं याप्रकारके अर्थवाद वचनोंकूं श्रवणकरिकै जे सकाम पुरुष सो स्वर्गलोक हमारेकूं प्राप्त होवै याप्रका-रतैं केवल स्वर्गसुखके प्राप्तिकी ही इच्छा करैं हैं, ते स्वर्गकी कामना-वाले सकाम पुरुष तिन अग्निष्टोमादिक पुण्यकर्मोंके फलरूप देवराज-इंद्रके स्वर्गलोकरूप स्थानकूं प्राप्त होइकै तिस स्वर्गलोकविषे दिव्य

देवभोगाकूं भोगैं हैं। तहां जे भोग इन मनुष्योंकूं नहीं प्राप्त होवे हैं तिन भोगोंकूं दिव्यभोग कहे हैं । और जे भोग केवल देवतादेहकरिकैही भोगे जावैं हैं तिन भोगोंका नाम देवभोग है। अथवा स्वर्गविषे देवतावोंनैं प्राप्त करे जे भोग हैं तिनोंका नाम देवभोग है। इहां भोगशब्दकरिकै विषयसुखका ग्रहण करणा। अथवा ता भोगशब्द करिकै ता सुखके साधनरूप विषयोंका ग्रहण करणा। तहां विषयसुखका नाम भोग है इस पक्षविषे तौ (अश्नंति) इस पदका अनुभवंति यह अर्थ करणा। और विषयोंका नाम भोग है इस पक्षविषे तौ (अश्नंति) इस पदका भुंजते यह अर्थ करणा। अर्थात् ते सकाम पुरुष वा स्वर्गलोक विषे विषयजन्य दिव्यसुखोंकूं अनुभव करैं हैं । अथवा दिव्यविषयोंकूं भोगैं हैं ॥२०॥

हे भगवन् ! ता स्वर्गलोकविषे दिव्यभोगोंके भोगणेतैं तिन सकामपुरुषोंकूं किस अनिष्टकी प्राप्ति होवै है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन सकामपुरुषोंकूं महान् अनिष्टकी प्राप्ति कथन करे हैं—

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशंति ॥ एवं हि त्रैधर्म्यमनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभंते ॥ २१ ॥

(पदच्छेदः) ते। तम्। भुक्त्वा। स्वर्गलोकम्। विशालम्। क्षीणे। पुण्ये। मर्त्यलोकम्। विशंति। एवम्। हि। त्रैधर्म्यम्। अनुप्रपन्नाः। गतागतम्। कामकामाः। लभंते ॥ २१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! ते सकामपुरुष तिस विशाल स्वर्गलोककूं भोगिके ता पुण्यके नाशहुए पुनः इस मनुष्यलोककूं प्राप्त होवैं हैं इस प्रकारतैं प्रसिद्ध वेदप्रतिपादित काम्यकर्मकूं पुनः निश्चयकरतेहुए तथा दिव्यभोगोंकी कामना करतेहुए ते सकामपुरुष वारंवार गमन आगमनकूं प्राप्त होवैं हैं ॥ २१ ॥

हे अर्जुन ! वे सकामपुरुष तिस काम्यरूप पुण्यकर्मकरिकै प्राप्त हुए विस्तारवाले स्वर्गलोककूं भोगिकै अर्थात् आपणे आपणे पुण्यकर्मकी अधिकतातैं तिस स्वर्गलोकके अधिक सुखकूं अनुभवकरिकै तिस भोगके जनक पुण्यकर्मोंके नाश हुएतैं अनंतर तिस देवता देहके नाश हुए पुनः देहके ग्रहणवासतै इस मनुष्यलोककूं प्राप्त होवैं हैं । अर्थात् पुनः गर्भवासतै आदिलैके अनेकप्रकारके दुःखोंकूं अनुभव करै हैं। और जैसे पूर्व मनुष्यदेहविषे तिन कर्मीपुरुषोंनैं त्रैधर्म्यकूं निश्चय कर्याथा तैसे इस मनुष्यदेहविषेभी तिस त्रैधर्म्यकूं ही निश्चय करैहैं अर्थात् तिस त्रैधर्म्यके अनुष्ठानविषेही तत्पर होवैं हैं। तहां ऋग् यजुष् साम या तीन वेदोंकरिकै प्रतिपादित जो होताका तथा अध्वर्युका तथा उद्गाताका धर्मविशेष हैं तिन तीन धर्मोंके योग्य जे ज्योतिष्टोमादिक काम्यकर्म हैं तिन काम्यकर्मोंका नाम त्रैधर्म्य है । और (एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्नाः) इस प्रकारका जो मूलश्लोकविषे पाठ होवै तौ भी इस पूर्व उक्त अर्थतैं विलक्षण अर्थ सिद्ध होवै नहीं किंतु सो पूर्व उक्त अर्थही सिद्ध होवैहै । तहां ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद या तीन वेदोंका नाम त्रयी है तिस तीन वेदरूप त्रयीकरिकै प्रतिपादित जो ज्योतिष्टोमादिक काम्यधर्म है ताका नाम त्रयीधर्म है तहां होता, अध्वर्यु, उद्गाता यह तीनों नाम यज्ञकरावणेहारे ब्राह्मणोंके होवैं हैं। और अग्निष्टोम ज्योतिष्टोम यह यज्ञविशेष होवैं है । और (अनुप्रपन्नाः) इस वचनके आदिविषे स्थित जो अनु यह शब्द है सो अनुशब्द उत्तर उत्तर जन्मके कर्मविषयक निश्चयविषे पूर्व पूर्व जन्मके कर्मविषयक निश्चयकी अपेक्षाकूं सूचन करै है । यातैं यह अर्थ सिद्ध होवैहै । (त्रिकर्मकृत्तरति जन्ममृत्यू दक्षिणावंतो अमृतत्वं भजंते ।) अर्थ यह—तीन वेदप्रतिपादित कर्मोंकूं करणेहारे पुरुष जन्ममृत्युतैं रहित होवैं हैं और दक्षिणावाले पुरुष अमृतभावकूं प्राप्त होवैंहैं इति । इत्यादिक स्तुतिरूप अर्थ वादोंके कथनपूर्वक ऋगादिक वेदोंनैं प्रतिपादनकरे जे ज्योतिष्टोमादिक काम्यकर्म हैं वे काम्य

कर्मही भोगमोक्षकी प्राप्तिविषे परम कारण हैं। मनका निग्रहरूप शम तथा इंद्रियोंका निग्रहरूप दम तथा सर्वकर्मोंका संन्यास तथा आत्मज्ञान तथा ईश्वर इन सर्वोंविषे कोईभी साधन तिस भोग मोक्षका कारण है नहीं। इसप्रकारके पूर्व पूर्व जन्मके निश्चयकूं लैके उत्तरउत्तर जन्मविषेभी ते सकामपुरुष तिसी प्रकारके निश्चयकूं प्राप्त होवैंहै। इसीकारणतैंही ते सकामपुरुष पुनः भी तिन दिव्यभोगोंकी इच्छा करतेहुए गतागतकूंही प्राप्त होवैंहै। तहां पुण्यकर्मकरिकै इस मनुष्यलोकतैं स्वर्गलोककूं जाणा ताका नाम गत है और ता पुण्यकर्मके क्षयहुए ता स्वर्गलोकतैं पुनः इस मनुष्यलोकविषे आवणा ताका नाम आगत है अर्थात् ते सकामपुरुष काम्यकर्मोंकूं करिकै स्वर्गकूं प्राप्त होवैं हैं। तिन पुण्य कर्मोंके क्षयहुएतैं अनंतर ता स्वर्गलोकतैं मनुष्यलोकविषे आइकै वे सकामपुरुष पूर्वसंस्कारोंके वशतैं पुनः कर्मोंकूं करैं हैं। तिन कर्मोंके भोगवासतै पुनः स्वर्गकूं जावैं हैं। तहांतैं पुनः मनुष्यलोककूं प्राप्त होवैं हैं। इस प्रकार तिन सकामपुरुषोंकूं गर्भवासतैं आदिलैके अनेकप्रकारके दुःखोंका प्रवाह निरंतर बन्यारहै है। यहही तिस सकामपुरुषोंकूं महान् अनिष्टकी प्राप्ति है इति। सा अनिष्टकी प्राप्ति मुंडकउपनिषद्की श्रुतिविषेभी कथन करी है। तहां श्रुति—(प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म। एतच्छ्रेयो येऽभिनंदंति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यांति ॥) अर्थ यह—षोडश ऋत्विज यजमान ताकी स्त्री यह अष्टादश धीवर हैं चलावणेहारे जिन्होंके ऐसे जो काम्यकर्मरूप अदृढप्लव हैं ते काम्यकर्मरूप प्लव इस पुरुषकूं महान् संसारसमुद्रतैं पार करते नहीं। ऐसे काम्यकर्मोंकूं आपणे श्रेयका साधन मानिकै जे मूढपुरुष हर्षकूं प्राप्त होवैं है ते सकाम पुरुष पुनः पुनः जरामरणकूं प्राप्त होवैं हैं इति। इस श्रुतिका अर्थ आत्मपुराणके षोडश अध्यायविषे हम विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं। यातैं इहां संक्षेपतैं निरूपण कऱ्या है। और यद्यपि बहुत मूलपुस्तकोंविषे (एवं त्रयी धर्ममनुप्रपन्नाः)

या प्रकारकाही पाठ होवैहै । तथा श्रीशंकरानंदस्वामीनैं श्रीनीलकंठ पंडितनैंभी इसीप्रकारके पाठकूं अंगीकार करिकै व्याख्यान कऱ्याहै तथापि गीताभाष्यका व्याख्यान करणेहारे श्रीस्वामी आनंदगिरिनैं तथा श्रीस्वामी मधुसूदननैं (एवं हि त्रैधर्म्यमनुप्रपन्नाः) याप्रकारके पाठकूं अंगीकार करिकैही व्याख्यान कऱ्याहै । याकारणतैं इस ग्रंथविषेभी (एवं हि त्रैधर्म्यमनुप्रपन्नाः) यहही पाठ राख्या है ॥ २१ ॥

तहां पूर्व दो श्लोकोंकरिकै सम्यक् ज्ञानतैं रहित सकामपुरुषोंकी गति कथन करी । अब सम्यक् ज्ञानवाले निष्कामपुरुषोंकी गतिकूं श्रीभगवान् कथन करैहैं–

अनन्याश्चिंतयंतो मां ये जनाः पर्युपासते ॥
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥२२॥

(पदच्छेदः) अनन्याः । चिंतयंतः । माम् । ये । जनाः । पर्युपासते । तेषाम् । नित्याभियुक्तानाम् । योगक्षेमम् । वहामि । अहम् ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जे अधिकारीजन अनन्यहोइकै चिंतनकरतेहुए मैं परब्रह्मकूं साक्षात्कार करैहैं तिनै नित्ययुक्तपुरुषोंके योगक्षेमकूं मैं परमेश्वरही प्राप्त करूंहूं ॥ २२ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! अनन्य कहिये भेददृष्टिका विषय नहीं विद्यमान हैं जिनोंकूं तिनोंका नाम अनन्य है अर्थात् जे पुरुष सर्वत्र अद्वितीय ब्रह्मकूंही देखै हैं तथा सब विषयभोगोंकी इच्छातैं रहित हैं तथा मही भगवान् वासुदेव सर्वात्मारूप हूं हमारेतैं भिन्न किंचित्मात्रभी वस्तु नहीं है याप्रकारका निश्चयकरिकै तिसी प्रत्यक् आत्माकूं सर्वदा चिंतन करते हुए जे साधनचतुष्टयसंपन्न विरक्त संन्यासी मैं परब्रह्मकूं आपणा आत्मारूपकरिकै साक्षात्कार करैं हैं ते तत्त्ववेत्ता पुरुष मैं परिपूर्णब्रह्मके अभेदभाव करिकै कृतकृत्यही होवैं हैं । ऐसे तत्त्ववेत्ता पुरुषोंकूं

पुनः संसारकी प्राप्ति होवै नहीं । शंका—हे भगवन् ! अद्वैत दर्शनविषे है निष्ठा जिनोंकी तथा अत्यंत निष्कामता करिकै युक्त तथा आपणी इच्छापूर्वक नहीं प्रयत्न करते हुए ऐसे जे तत्त्ववेत्ता पुरुष हैं तिन तत्त्ववेत्ता पुरुषोंका इस शरीरके लक्षणवासतै योगक्षेम किसप्रकार सिद्ध होवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (तेषां नित्याभियुक्तानामिति) तहां निरंतर आदरपूर्वक परमेश्वरके ध्यानविषे जे तत्पर होवैं तिनोंका नाम नित्याभियुक्त है । जे ध्याननिष्ठपुरुष आपणे देहकी यात्रामात्रवासतैभी प्रयत्न करते नहीं ऐसे तत्त्ववेत्ता पुरुषोंके योगकूं तथा क्षेमकूं मैं परमेश्वरही प्राप्त करूंहूं । तहां पूर्व अप्राप्त अन्न वस्त्रादिक पदार्थोंकी जा प्राप्ति है ताका नाम योग है । और प्राप्तहुए तिन पदार्थोंका जो परिरक्षण है ताका नाम क्षेम है यद्यपि ते तत्त्ववेत्ता पुरुष आपणे शरीरकी स्थितिवासतै ता योगक्षेमकी इच्छा करते नहीं तथापि मैं अंतर्यामी ईश्वर आपही तिनोंके योगक्षेमकूं सिद्ध करूंहूं। जैसे आपणी इच्छातैं रहित बालकके योगक्षेमकूं ताके मातापिताही सिद्ध करैं हैं तैसे मैं परमेश्वरही तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषके योगक्षेमकूं सिद्ध करूंहूं। जिसकारणतैं (प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः । उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ॥) इत्यादिक वचनोंकरिकै मैं परमेश्वर तिन ज्ञानवान् पुरुषोंकूं आपणा आत्मारूपकरिकै कथन करता भयाहूं । तथा आपणा आत्मारूप होणेतेही सो ज्ञानवान् पुरुष तो मैं परमेश्वरकूं अत्यंत प्रिय है । और मैं परमेश्वर तिस ज्ञानवान् पुरुषकूं अत्यंत प्रिय हूं । ऐसे आत्मारूप तथा अत्यंत प्रिय ज्ञानवान् पुरुषोंके योगक्षेमकूं सिद्ध करणा मैं परमेश्वरकूं उचितही है । यद्यपि सर्वप्राणियोंके योगक्षेमकूं मैं परमेश्वरही प्राप्त करैं हैं केवल ज्ञानवान् पुरुषोंकेही योगक्षेमकूं प्राप्त करतानहीं तथापि अन्यप्राणियोंके योगक्षेमकूं जो परमेश्वर प्राप्त करै है सो तिन प्राणियोंके प्रयत्नकूं प्रथम उत्पन्न करिकै तिस प्रयत्नद्वाराही तिन प्राणियोंकूं ता योगक्षेमकी प्राप्ति करै है । ता प्रयत्नतैं विना प्राप्ति

करै नहीं। और ज्ञानवान् पुरुषोंकूं तौ ता योगक्षेमकी प्राप्तिवास्तै प्रयत्नकूं नहीं उत्पन्नकरिकै ही ता योगक्षेमकी प्राप्ति करै है। इतनी दोनोंविषे विशेषता है। और किसी टीकाविषे तौ ता योगक्षेमका यह अर्थ कऱ्या है। पूर्व अप्राप्त योगभूमिकाकी जा प्राप्ति है ताका नाम योग है। और पूर्व प्राप्त योगभूमिकाका जो रक्षण है ताका नाम क्षेम है इति। और किसी टीकाविषे तौ (योगस्य क्षेमं योगक्षेमम्) याप्रकारका समासकरिकै ता योगक्षेमका यह अर्थ कथन कऱ्या है। निरंतर ब्रह्मनिष्ठाका नाम योग है तिस ब्रह्मनिष्ठारूप योगका जो क्षेम है अर्थात् आध्यात्मिक आदिक उपद्रवोंकरिकै जो विच्छेदतैं रहितपणा है ताका नाम योगक्षेमहै। ऐसे योगक्षेमकूं मैं परमेश्वरही सर्वदा सिद्ध करूंहूं॥२२॥

हे भगवन्! आप परमेश्वरतैं भिन्न दूसरी कोई वस्तु है नहीं किंतु सर्वपदार्थ तुम्हाराही स्वरूप है। यातैं ते इंद्रादिक अन्यदेवताभी तुम्हाराही स्वरूप हैं। तुम्हारेतैं ते इंद्रादिक देवता जुदा नहीं हैं। यातै जैसे साक्षात् तुम्हारे भक्त तैं परमेश्वरकूंही भजैं हैं तैसे इंद्रादिक अन्यदेवतावोंके भक्तभी वस्तुगतितैं तैं परमेश्वरकूंही भजैं हैं। इस रीतिसै तुम्हारे भक्तोंविषे तथा अन्यदेवतावोंके भक्तोंविषे किंचित्मात्रभी विशेषता सिद्ध होवीनहीं। यातैं इंद्रादिक अन्यदेवतावोंके भक्त तौ पुनः पुनः गमन आगमनकूं प्राप्त होवैं हैं। और मैं परमेश्वरकूं अनन्य होइकै चिंतनकरणेहारे ज्ञानवान् भक्त तौ कृतकृत्य होवैं है। यह पूर्व उक्त आपका वचन कैसे संगत होवैगा? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं–

येप्यन्यदेवताभक्ता यजंते श्रद्धयान्विताः॥
तेपि मामेव कौंतेय यजंत्यविधिपूर्वकम्॥ २३॥

(पदच्छेदः) ये। अपि। अन्यदेवताभक्ताः। यजंते। श्रद्धया। अन्विताः। ते। अपि। माम्। एव। कौंतेय। यजंति। अविधिपूर्वकम्॥ २३॥

(पदार्थः) हे कौंतेय ! जे अन्यदेवतावोंके भक्त भी श्रद्धाकरिकै युक्तहुए पूजनकरैं हैं ते भक्त भी अज्ञानपूर्वक मैं परमेश्वरकूं ही पूजनकरै हैं ॥ २३ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जैसे मै परमेश्वरके भक्त मैं परमेश्वरकूं ही पूजन करैं हैं तैसे जे इंद्रादिक अन्यदेवतावोंके भक्तभी आस्तिक्यबुद्धिरूप श्रद्धा करिकै युक्त हुए ज्योतिष्टोमादिक यज्ञोंकरिकै तिन इंद्रादिकदेवतावोंकूं पूजन करैं है ते अन्यदेवतावोंके भक्तभी वस्तुगतितैं तिसतिस देवतारूप करिकै स्थित हुए मैं परमेश्वरकूंही पूजन करैंहैं ; परंतु ते अन्य देवतावोंके भक्त मै परमेश्वरकूं अविधिपूर्वकही पूजन करैं है। इहां अविधि नाम अज्ञानका है ता अज्ञानपूर्वकही मैं परमेश्वरकूं पूजन करैं है अर्थात् यह परमेश्वरही सर्वका आत्मारूप है याप्रकारतै सर्वका आत्मारूपकरिकै मै परमेश्वरकूं न जानिकै तथा तिन इन्द्रादिक देवतावोंकूं मै परमेश्वरतैं भिन्न कल्पना करिकै ते अन्य देवतावोंके भक्त मैं परमेश्वरकूं पूजन करैहै । या कारणतैंही ते इंद्रादिक देवतावोंके भक्त पुनः पुनः जन्ममरणरूप संसारकूं प्राप्त होवैं है इति । और किसी टीकाविषे तौ (अविधिपूर्वकम्) इस वचनका यह अर्थ कऱ्याहै । अभेदबुद्धिका नाम विधि है ता अभेदबुद्धिरूप विधितैं ते पुरुष रहित हैं । यातैं ते अन्यदेवताओंके भक्त वस्तुगतितैं मैं सर्वात्मारूप परमेश्वरकूं पूजन करतेहुएभी सो तिनोंका पूजन अविधापूर्वकही है। अभेदबुद्धिपूर्वक कऱ्याहुआ मै परमेश्वरका पूजनही विधिपूर्वक पूजन होवैहै ॥ २३ ॥

अब श्रीभगवान् तिन सकामपुरुषोंके भजनविषे अविधिपूर्वकपणा स्पष्ट करता हुआ तिन सकामपुरुषोंकी तिस स्वर्गादिक फलोंतैंभी प्रच्युतिकूं कथन करैं हैं-

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ॥
न तु मामभिजानंति तत्त्वेनातश्च्यवंति ते२४॥

(पदच्छेदः) अहम् । हि । सर्वयज्ञानाम् । भोक्ता । च । प्रभुः । एव । च । न । तु । माम् । अभिजानंति । तत्त्वेन । अतः । च्यवंति । ते ॥ २४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वर ही सर्वयज्ञोंका भोक्ता हूं तथा फलप्रदाता हूं यह वार्त्ता प्रसिद्ध है परंतु ते सकामपुरुष मैं परमेश्वरकूं तिसंरूपकरिके नहीं जानतेहैं इसकारणतेंही ते सकामपुरुष पुनरावृत्तिकूं प्राप्त होवें हैं ॥ २४ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! अधिकारी जनोंके प्रति शास्त्रनें विधान करे जितनेक श्रौतयज्ञ हैं तथा स्मार्त्तयज्ञ हैं तिन सर्व यज्ञोंका मैं परमेश्वरही तिसतिस इंद्रादिक देवतारूप करिके भोक्ता हूं । तथा मैं परमेश्वरही आपणे अंतर्यामीरूपकरिके अधियज्ञरूप होणेतें तिन यज्ञोंके फलका प्रदाता हूं । यह वार्त्ता श्रुतिस्मृतियोंविषे प्रसिद्धही है । ऐसे मैं परमेश्वरकूं ते अन्यदेवतावोंके सकामभक्त तिस तत्त्वरूपकरिकै जानते नहीं अर्थात् यह भगवान् वासुदेवही इंद्रादिक देवतारूपकरिकै तौ तिन सर्वयज्ञोंका भोक्तारूप है और आपणे अंतर्यामी स्वरूपकरिकै तौ तिन यज्ञोंके फलका प्रदाता है ऐसे सर्वात्मारूप परमेश्वरतें भिन्न दूसरा कोई आराधन करणेयोग्य नहीं है । इसप्रकारके स्वरूपकरिकै ते सकामपुरुष मैं परमेश्वरकूं जानते नहीं इसप्रकारतेंही ते अन्यदेवतावोंके सकामभक्त तिसतिस फलतें प्रच्युतिकूं प्राप्त होवें हैं अर्थात् मैं परमेश्वरके तिस वास्तवस्वरूपकूं नहीं जानते हुए ते सकामपुरुष महान् आयासकरिकै तिन इंद्रादिक देवतावोंका पूजन करतेहुएभी मैं परमेश्वरविषे तिन कर्मोंका नहीं अर्पण करतेहुए तिन कामकर्मोंके प्रभावतें पूर्व उक्त धूमादिक मार्गकरिकै तिसतिस देवताके लोकोंकूं प्राप्त होइकै तिस लोकके भोगके अंतविषे वहांतें प्रच्युत होवें हैं । तात्पर्य यह—तिसतिस लोकके भोगोंके जनक जे पुण्यकर्म हैं तिन कर्मोंका भोगकरिकै नाश हुएतें अनंतर ते सकाम कर्मीपुरुष तिसतिस देवतादेहादिकोंतें वियोगवाले हुए पुनः देहके

ग्रहण करणेवासतै इस मनुष्यलोककूं प्राप्त होवैं हैं । और जे अधिकारी जन तिन इंद्रादिक सर्व देवतावोंविषे सर्व अंतर्यामीरूप भगवान्कूं हीं देखतेहुए तिन यज्ञादिक कर्मोंकूं करैं हैं तथा तिन सर्वकर्मोंकूं अंतर्यामी परमेश्वरविषे ही अर्पण करैं हैं ते निष्कामपुरुष तिस उपासनासहित कर्मके प्रभाववैं पूर्व उक्त अर्चिरादिक मार्गद्वारा ब्रह्मलोककूं प्राप्त होइके वहां आत्मज्ञानकूं प्राप्त होइके ता ब्रह्मलोकके भोगोंके अंतविषे कैवल्यमोक्षकूं प्राप्त होवैं हैं । इसप्रकारतैं तिन सकामपुरुषोंके फलविषे तथा निष्कामपुरुषोंके फलविषे महान् भेद है ॥ २४ ॥

तहां तिन इंद्रादिकं अन्य देवतावोंके पूजनकरणेहारे पुरुषोंकूं अनावृत्तिरूप फलके अभाव हुएभी तिसतिस देवताके पूजनके अनुसार तिसतिस क्षुद्रफलकी प्राप्ति अवश्यकरिकै होवैहै । इस अर्थकूं कथन करतेहुए श्रीभगवान् साक्षात् परमेश्वरके पूजनकरणेहारे भक्तजनोंकी तिन अन्यदेवतावोंके भक्तोंतैं विलक्षणताकूं कथन करै हैं ।

यांति देवव्रता देवान्पितॄन्यांति पितृव्रताः ॥
भूतानि यांति भूतेज्या यांति मद्याजिनोपि माम् २५॥

(पदच्छेदः) यांति । देवव्रताः । देवान् । पितॄन् । यांति । पितृव्रताः । भूतानि । यांति । भूतेज्याः । यांति । मद्याजिनः । अपि । माम् ॥ २५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! देवताओंके पूजक तिन देवतावोंकूंही प्राप्त होवैं हैं तथा पितरोंके पूजक तिन पितरोंकूंही प्राप्त होवैं हैं तथा भूतोंके पूजक तिन भूतोंकूंही प्राप्त होवैं हैं तथा मैं परमेश्वरके पूजक मैं परमेश्वरकूं ही प्राप्तहोवैं हैं ॥ २५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! अंतःकरणरूप उपाधिके सत्त्व रज तम इन तीन गुणोंके भेदकरिकै ते अविधिपूर्वक भजन करणेहारे पुरुषभी सात्त्विक राजस तामस इस भेदकरिकै तीन प्रकारके होवैं हैं तहां इंद्रादिक देवता-

ओंका बलिप्रदान प्रदक्षिणा नमस्कार इत्यादिक पूजनरूप है व्रत जिनोंकूं तिन पुरुषोंका नाम देवता है ऐसे देवताओंकूं पूजनकरणेहारे पुरुष तिन इंद्रादिक देवताओंकूंही प्राप्त होवैं हैं। ते देवताओंका पूजन करणेहारे पुरुष सात्त्विक कहेजावैं हैं और श्राद्धादिक कर्मोंकरिकै अग्निष्वात्तादिक पितरोंका आराधन करणेहारे जे पुरुष हैं तिनोंका नाम पितृव्रत है ऐसे पितरोंका आराधन करणेहारे पुरुष तिन पितरोंकूंही प्राप्त होवैंहै। ते पितरोंका आराधन करणेहारे पुरुष राजस कहे जावैं है। और यक्ष राक्षस विनायक मातृगण इत्यादिक भूतोंका पूजन करणेहारे जे पुरुष हैं तिनोंका नाम भूतेज्य है ऐसे भूतोंका पूजन करणेहारे पुरुष तिन भूतोंकूंही प्राप्त होवैं हैं। ते भूतोंकूं पूजन करणेहारे पुरुष तामस कहे जावैंहैं। इतने कहणेकरिकै परमेश्वरतैं अन्य दूसरे देवतावोंके आराधनका तिसतिस देवतारूपकी प्राप्तिरूप नाशवान् फल कथन कऱ्या है। अब परमेश्वरके आराधनका परमेश्वररूपताकी प्राप्तिरूप अविनाशी फलकूं कथन करैं हैं। (<u>यांति मद्याजिनोपि माम्</u>) हे अर्जुन! मैं परमेश्वरकेही पूजनकरणेका है स्वभाव जिनोंका तिनोंका नाम मद्याजीहै अर्थात् जे पुरुष इंद्रादिक सर्व देवतावोंविषे मैं परमेश्वरकूंही व्यापक देखतेहुए निरंतर मैं परमेश्वरकेही आराधनपरायण होवैं हैं ते हमारे भक्त तौ मैं परमेश्वरकूंही अभेदरूपकरिकै प्राप्त होवै है। जो जिसका आराधन करै है सो तिस भावकूंही प्राप्त होवै है यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है। तहां श्रुति-(ते यथायथोपासते तदेव भवति।) अर्थ यह-जो पुरुष जिस जिस देवताकी उपासना करैहैं मरणतैं अनंतर सो पुरुष तिस तिस देवताभावकूंही प्राप्त होवै है। इस श्लोकविषे श्रीभगवान्‌का यह अभिप्राय है। परमेश्वरके आराधन करणेविषे तथा इंद्रादिक अन्यदेवतावोंके आराधन करणेविषे आयासके समान हुएभी यह जीव अविनाशी फलकी प्राप्ति करणेहारे अंतर्यामी परमेश्वरकूं नहीं आराधनकरिकै अन्य इंद्रादिक देवतावोंका आराधन करिकै नाशवान् फलकूंही प्राप्त होवै है यातें इन अज्ञानी जीवोंके दुष्ट अदृष्टका

प्रभाव कोई आश्चर्यरूप हैं। जिस दुष्ट अदृष्टके प्रभावतैं यह अज्ञानी जीव मुक्ति करणेहारे परमेश्वरके आराधनका परित्याग करिकै तुच्छ फलकी प्राप्तिवास्तै तिन इंद्रादिक देवतावोंकाही आराधन करै हैं॥ २५॥

यातैं परमेश्वरतैं अन्यदेवतावोंका परित्याग करिकै इस अधिकारी जननैं केवल परमेश्वरकाही आराधन करणा जिसकारणतैं सो परमेश्वरका आराधन इस अधिकारी पुरुषकूं मोक्षरूप अविनाशी फलकीही प्राप्ति करै है। तथा अन्यदेवतावोंके आराधन करणेविषे इस पुरुषकूं द्रव्यके खरचत आदिलेके जितनाक आयास होवैहै तितना आयास परमेश्वरके आराधन करणेविषे होता नहीं किंतु सो परमेश्वरका आराधन अत्यंत सुगम है। इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैहैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ॥
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ २६ ॥

(पदच्छेदः) पत्रम् । पुष्पम् । फलम् । तोयम् । यः । मे । भक्त्या । प्रयच्छति । तत् । अहम् । भक्त्युपहृतम् । अश्नामि । प्रयतात्मनः ॥ २६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो कोई पुरुष मैं परमेश्वरके वाईं भक्तिकरिकै पत्र वा पुष्प वा फल वा जल देताहै तिस शुद्धबुद्धिवाले पुरुषके तिस भक्तिपूर्वक अर्पणकरे हुए पत्रपुष्पादिककूं मैं परमेश्वर अंगीकार करूं हूं ॥ २६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पत्र पुष्प फल जल इसतैं आदिलेके जे केई वस्तु विनाही प्रयत्नतैं प्राप्त होवैं हैं तिन अत्यंत सुलभ वस्तुवोंविषे जिसी किसी पत्रपुष्पादिक वस्तुकूं जो कोई मनुष्य अनंत महान् विभूतिवाले मैं परमेश्वरके वाईं भक्तिकरिकै देवै है अर्थात् परमेश्वरतैं परे दूसरा कोई है नहीं इसप्रकारकी बुद्धिपूर्वक जा निरतिशय प्रीति है ता प्रीतिकरिकै जो पुरुष भृत्यकी न्याईं मैं परमेश्वरके वाईं तिस वस्तुका

अर्पण करैंहै। तात्पर्य यह—जैसे महाराजाके राज्यविषे स्थित जितनेक पदार्थ हैं ते सर्वपदार्थ वस्तुगतितैं वा महाराजाकेही हैं। तिन महाराजाके पदार्थोंकूंही भृत्यलोक प्रीतिपूर्वक :तिस महाराजाके ताईं अर्पण करैं हैं ता करिकै सो महाराजा परितोषकूं प्राप्त होवै है। तैसे इस जगत्‌विषे जितनेक पदार्थ हैं ते सर्व पदार्थ मैं परमेश्वरकेही हैं ऐसा कोई पदार्थ इस जगत्‌विषे है नहीं जो पदार्थ मैं परमेश्वरका नहीं होवै। ऐसे मैं परमेश्वरके पदार्थोंकूं ही जे पुरुष प्रीतिपूर्वक मैं परमेश्वरके ताईं अर्पण करैं है तिन प्रीतिपूर्वक अर्पणकरे हुए शुद्धबुद्धिवाले पुरुषोंके पत्रपुष्पादिक अत्यंत तुच्छपदार्थोंकूं भी मैं परमेश्वर भोजन करूं हूं। अर्थात् जैसे कोई पुरुष अन्नकूं भोजनकरिकै तृप्तिकूं प्राप्त होवै है तैसे मैं परमेश्वरभी तिन पत्रपुष्पादिक पदार्थोंकूं प्रीतिपूर्वक स्वीकारमात्रकरिकै तृप्तिकूं प्राप्त होवूंहूं। यद्यपि (अश्नामि) इस पदका मुख्य अर्थ भोजन कर्तृत्वही है तथापि ता मुख्य अर्थका परित्याग करिकै ता पदकी लक्षणावृत्तितैं जो प्रीतिपूर्वक स्वीकर्तृत्वरूप अर्थ अंगीकार कऱ्या है सो प्रीतिके अतिशयताकी हेतुताके बोधन करणेवास्तै अङ्गीकार कऱ्या है। अर्थात् तिन भक्तिपूर्वक अर्पण करेहुए पत्रपुष्पादिक पदार्थोंके स्वीकारमात्रतैंही मैं परमेश्वर अत्यंत प्रसन्न होवूं हूं और श्रुतिविषेभी देवतावोंविषे मनुष्योंकी न्याईं भोजन कर्तृत्वकानिषेधही कऱ्याहै। या कारणतैं भी (अश्नामि) इस पदकी स्वीकाररूप अर्थविषे लक्षणा करणी उचित है। तहां श्रुति—(न ह वै देवा अश्नंति न पिबंति एतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यंति।) अर्थ यह—जैसे यह मनुष्य अन्नादिक पदार्थोंकूं भोजन करैं है तथा जलादिकोंकूं पान करैं हैं तैसे देवता तिन अन्नादिकोंकूं भोजन करते नहीं, तथा जलादिकोंकूंभी पान करते नहीं किंतु ते देवता केवल अमृतके दर्शनमात्रकरिकैही तृप्तिकूं प्राप्त होवैं हैं इति। शंका—हे भगवन्! आप साक्षात् परमेश्वर होइकै ऐसे पत्रपुष्पादिक तुच्छवस्तुवोंकूं किसवास्तै स्वीकार करतेहो? महान् पुरुषोंकूं तो महान् वस्तुकाही स्वीकार करणा उचित है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए तिन

तुच्छवस्तुवोंके स्वीकारकरणेविषे हेतुकूं कथन करैं हैं (भक्त्युपहृतमिति) ते पत्रपुष्पादिक वस्तु यद्यपि तुच्छ हैं तथापि तिन भक्तजनोंनैं ते पत्रपुष्पादिक अत्यंतप्रीतिरूप भक्तिकरिकै मैं परमेश्वरके ताईं अर्पण करे हैं। या कारणतैं मैं परमेश्वर तिन पत्रपुष्पादिक तुच्छपदार्थोंकूंभी महान् पदार्थरूप करिकै स्वीकार करूं हूं। अर्थात् तिसतिस वस्तुके स्वीकार करणेविषे कोई तिसतिस वस्तुकी सौन्दर्यता वा महानता निमित्त नहीं है किंतु अत्यंत प्रीतिपूर्वक समर्पणही ता वस्तुके स्वीकारकरणेविषे निमित्त है इति। इहां (भक्त्याप्रयच्छति) इस वचनविषे भक्तिका कथन करिकै (भक्त्युपहृतम्) इस वचनविषे जो पुनः भगवान्नैं भक्तिका कथन कऱ्या है सो इस अर्थके सूचनकरणेवासतै कथन कऱ्या है। जो पुरुष ब्राह्मण है तथा बहुत तपस्वी है परन्तु मैं परमेश्वरकी भक्तितैं रहित है। तिस भक्तिहीन तपस्वी ब्राह्मणनैं कोई महान् वस्तु देईं हुईभी मैं परमेश्वर तिस वस्तुकूं स्वीकार करता नहीं। यातैं मैं परमेश्वरकृत वस्तुके स्वीकार करणेविषे कोई ब्राह्मणत्वादिक उत्तम जाति तथा तपस्वीपणा निमित्त नहीं है किंतु देणेहारे पुरुषकी केवल परम प्रीतिही ता स्वीकारकरणेविषे निमित्त है इति। अथवा जैसे अत्यंत प्रीतिपूर्वक मातानैं दिये हुये पदार्थोंकूं बालक भक्ष्याभक्ष्य विचारतैं रहित होइकै भक्षण करै है तैसे भक्तजनोंकी अत्यंत प्रीतिकरिकै प्रतिबद्ध हुआ है भक्ष्याभक्ष्यवस्तुका ज्ञान जिसका ऐसा जो मैं परमेश्वर हूं सो मैं परमेश्वर भक्तिपूर्वक अर्पण करे हुए तिन भक्तजनोंके पत्रपुष्पादिक वस्तुवोंकूं आपणे लीला अवतारोंकरिकै साक्षातही भक्षण करूं हूं। जैसे श्रीदामाब्राह्मणनैं अत्यंत प्रीतिपूर्वक दियेहुए तंडुलोंकूं मैं परमेश्वर भक्षण करता भया हूं तथा शबरीनैं अत्यंत प्रीति पूर्वक दियेहुए बदरी फलोंकूं मैं परमेश्वर भक्षण करताभया हूं। यातैं केवल अनन्यभक्तिही मैं परमेश्वरके परितोषका निमित्त है। दूसरे इंद्रादिक देवताओंके परितोषण करणेविषे जैसे बहुत द्रव्यका खर्च तथा शरीरका आयास इत्यादिक निमित्त होवैं हैं तैसे मैं परमेश्वरके परि-

तोष करणेविषे ते निमित्त अवश्य अपेक्षित नहीं हैं किंतु केवल एक भक्तिही अपेक्षित है । यातैं यह अधिकारी जन तिन दूसरे देवताओं-के परित्याग करिकै एक मैं परमेश्वरकूंही आराधन करैं । और किसी टीकाविषे तौ (पत्रंपुष्पम्) इस श्लोकका यह अर्थ कथन कन्या है । (द्वे रूपे वासुदेवस्य चलं चाचलमेव च । चलं संन्यासिनो रूपम-चलं प्रतिमादिकम्) अर्थ यह—परमेश्वरवासुदेवके चल अचल यह दो रूप होवैं हैं । तहां संन्यासी तौ चलरूप हैं और शालग्रामप्रतिमादिक अचलरूप हैं इति । इस शास्त्रके वचनविषे संन्यासी तथा शालग्राम प्रतिमादिक परमेश्वरके रूप कथन करे हैं और (अभ्यागतः स्वयं विष्णुः) अर्थ यह—भोजनके समय गृहविषे प्राप्तहुआ अतिथि विष्णुरूप होवै है इति । इस स्मृतिविषेभी अतिथिकूं विष्णुरूप कह्या है । यातैं जो अधिकारी पुरुष शालग्रामविषे अथवा प्रतिमाविषे भक्तिपूर्वक पत्रपुष्पा-दिक मैं परमेश्वरके ताईं अर्पण करे है तिन भक्तिपूर्वक अर्पण करे हुए पत्रपुष्पादिकोंकूं मैं परमेश्वर अङ्गीकार करूं हूं इति । अथवा भोजन-कालविषे गृहविषे प्राप्त भया जो अतिथि है तिस अन्नार्थी अतिथिके ताईं जो पुरुष जैसे शाकफलादिक आप भोजन करैहै वैसीही शाकफला-दिक भक्तिपूर्वक देवैहै, तिस पुरुषके भक्तिपूर्वक दियेहुए तिन पत्रपुष्पा-दिकोंकूं मैं परमेश्वर साक्षात् तिस अतिथिके मुखकरिकै भोजन करूंहूं २६ ॥

२७ हे भगवन् ! जिस भजनकरिकै आप प्रसन्न होवो हो सो आपका भजन किसप्रकारका होवैहै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिस भजनके प्रकारकूं कथन करैहैं—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ॥
यत्तपस्यसि कौंतेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ २७ ॥

(पदच्छेदः) यत् । करोषि । यत् । अश्नासि । यत् । जुहोषि । ददासि । यत् । यत् । तपस्यसि । कौन्तेय । तत् । कुरुष्व । मदर्पणम् ॥ २७ ॥

(पदार्थः) हे कौंतेय ! तूं जो करताहै तथा जो भोजन करताहै तथा जो होम करताहै तथा जो दान करताहै तथा जो तप करताहै सो सर्व मैं परमेश्वरके अर्पण कर ॥ २७ ॥

भा०टी०— हे अर्जुन ! शास्त्रकी आज्ञातैं विनाही केवल रागकरिकै प्राप्त जिस गमनआगमनरूप लौकिक कर्मकूं तूं करता है तथा आपणी तृप्तिवासतै अथवा कर्मोंकी सिद्धिवासतै जिस अन्नकूं तूं भोजन करताहै तथा शास्त्रके बलतैं जिस नित्य अग्निहोत्रादिक होमकूं तूं करताहै। इहां (जुहोषि) यह होमका वाचक पद श्रौतस्मार्त्त सर्वहोमका उपलक्षण है। अर्थात् श्रौतस्मार्त्तरूप जितनेक होमांकूं तूं करता है तथा अतिथि ब्राह्मणादिकोंके तांई जो तूं अन्न सुवर्णादिक पदार्थ देताहै तथा प्रतिवर्ष-विषे अज्ञातपापोंकी तथा प्रमादकृतपापोंकी निवृत्ति करणेवासतै जो तूं चांद्रायणव्रतादिक तपकूं करताहै अथवा यथा इच्छापूर्वक प्रवृत्तिके निवृत्त करणेवासतै शरीर इंद्रियोंके संयमरूप तपकूं जो तूं करताहै यह तप सर्व नित्यनैमित्तिक कर्मोंका उपलक्षण है। ते सर्व कर्म तूं मै परमेश्वरविषे अर्पण कर अर्थात् जो तुम्हारेकूं आपणे प्राणी स्वभावके वशतैं शास्त्रतैं विनाभी अवश्य करणे योग्य गमन आगमनादिक लौकिक कर्म है तथा जो तुम्हारेकूं शास्त्रके बलतैं अवश्यकरणे योग्य होमदानादिक वैदिक कर्म हैं जे लौकिक वैदिक कर्म किसी अन्यही निमित्तकरिकै करे हैं ते लौकिक वैदिक सर्व कर्म जैसे मैं परमेश्वरविषेही अर्पित होवैं वैसे तिन सर्व कर्मोंकूं तूं कर। इहां (कुरुष्व) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नें यह अर्थ बोधन कऱ्या। इसप्रकार जो पुरुष मैं परमेश्वरविषेही तिन सर्व कर्मोंका समर्पण करैहै ता समर्पणका मोक्षरूप फल तिस समर्पक पुरुषकूंही प्राप्त होवैहै। ताकरिकै मैं परमेश्वरकूं किंचित्मात्रभी फल होता नहीं इति। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। अवश्य करणेयोग्य कर्मोंका जो परमगुरुरूप मैं परमेश्वरविषे अर्पण है सो अर्पणही मैं परमेश्वरका भजन है। तिस भजनवासतै दूसरा कोई जुदा व्यापार करनेयोग्य नहीं है ॥ २७ ॥

अब अधिकारी जनोंकूं तिस भजनविषे प्रवृत्तकरणेवासतै इस पूर्वउक्त भजनके फलकूं श्रीभगवान् कथन करैहैं-

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबंधनैः ॥
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥२८॥

(पदच्छेदः) शुभाशुभफलैः । एवम् । मोक्ष्यसे । कर्मबंधनैः । संन्यासयोगयुक्तात्मा । विमुक्तः । माम् । उपैष्यसि ॥ २८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! ऐसे भजनके प्राप्त हुए तूं अर्जुन इष्टअनिष्ट फलवाले कर्मरूपबंधनोंतैं परित्याग कियाजावैगा। तथा संन्यासयोगयुक्तात्मा हुआ तूं तिन कर्मबंधनोंतैं विमुक्त हुआ मैं परब्रह्मकूं प्राप्त होवैगा॥२८॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! इस पूर्वउक्त प्रकारतैं विनाही आयासतैं सिद्ध जो सर्वकर्मोंका मैं परमेश्वरविषे अर्पणरूप भजन है तिस हमारे भजनके प्राप्तहुए इष्टरूप तथा अनिष्टरूप फलहै जिनोंका ऐसे जे बंधनरूप लौकिक वैदिक कर्म ह तिन कर्मोंतैं तूं अर्जुन परित्याग कियाजावैगा । अर्थात् ते सर्व कर्म मै परमेश्वर विषे अर्पित होणेतैं ते अर्जुनका तिन कर्मोंके साथि संबंधही संभवता नहीं । यातैं तिन कर्मोंकरिकै तथा तिन कर्मोंके इष्ट अनिष्ट फलोंकरिकै तूं लिपायमान होवैगा नहीं । तिसतैं अनंतर संन्यास-योगयुक्तात्मा हुआ तू इहां सर्वकर्मोंका जो परमेश्वरविषे अर्पण है ताका नाम संन्यास है सो संन्यास ही योगकी न्याईं चित्तका शोधक होणेतैं योगरूप है । ऐसे संन्यासयोगकरिकै युक्त है क्या शोधित है आत्मा क्या अंतःकरण जिसका ताका नाम संन्यासयोगयुक्तात्माहै।अथवा तिस संन्यास-योगविषे युक्त है क्या आसक्त है आत्मा क्या मन जिसका ताका नाम संन्यासयोगयुक्तात्मा है । अथवा फलसहित सर्वकर्मोंके परित्यागका नाम संन्यासयोग है ता संन्यासयोगकरिकै युक्त है चित्त जिसका ताका नाम संन्यासयोगयुक्तात्मा है । ऐसा संन्यासयोगयुक्तात्मा हुआ तथा जीवताहुआही तिन बंधनरूप कर्मोंतैं विमुक्त हुआ तूं अर्जुन मैं परमेश्वरकूंही प्राप्त

होवैगा अर्थात् सम्यक्दर्शनकरिकै अज्ञानरूप आवरणकी निवृत्तिकरिकै मैं परब्रह्मकूंही अहंब्रह्मास्मि इसप्रकारतैं तूं साक्षात्कार करैगा। तिसतैं अनंतर भोगकरिकै प्रारब्धकर्मके नाशहुएतैं इस शरीरके पात हुए तूं विदेहकैवल्यरूप मैं परब्रह्मकूं प्राप्त होवैगा । और इस वर्त्तमान कालविषेभी मैं परब्रह्मस्वरूप हुआ तूं सर्व उपाधियोंकी निवृत्तिकरिकै मायाकृत भेदव्यवहारका विषय नहीं होवैगा ॥ २८ ॥

हे भगवन् ! जबी तूं आपणे भक्तोंऊपरिही अनुग्रह करताहै अभक्तोंऊपरि अनुग्रह करता नहीं तबी अस्मदादिक जीवोंकी न्याई तूंभी रागद्वेषवाला होणेतैं परमेश्वर कैसे होवैगा ? किंतु अस्मदादिक जीवोंकी न्याई तूंभी कोई जीवविशेषही होवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं—

समोहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योस्ति न प्रियः ॥
ये भजंति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्२९

(पदच्छेदः) समः । अहम् । सर्वभूतेषु । न । मे । द्वेष्यः । अस्ति । न । प्रियः । ये । भजंति । तु । माम् । भक्त्या । मयि । ते । तेषु । च । अपि । अहम् ॥ २९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वर सर्वप्राणियोंविषे समान हूं यातैं कोईभी प्राणी मैं परमेश्वरके द्वेषका विषय नहा है तथा प्रीतिका विषय नहीं है तौभी जे पुरुष मैं परमेश्वरकूं भक्तिकरिकै सेवनकरै हैं ते पुरुष ही मैं परमेश्वरविषे वर्त्तैहै तथा मै परमेश्वर भी तिन पुरुषांविषेही वर्त्ताहूं ॥ २९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जितनेक प्राणी मैं परमेश्वरके भक्त है तथा जितनेक प्राणी मैं परमेश्वरतैं विमुख अभक्त हैं तिन सर्वप्राणियोंविषे मैं परमेश्वर समानही हूं । अर्थात् मैं परमेश्वरका दोप्रकारका रूप है। एक तौ स्वाभाविक रूप है और दूसरा औपाधिक रूप है। तहां सत्ता

स्फुरण आनंद यह तीनों तौ हमारा स्वाभाविक रूप है । और अंतर्यामीपणा औपाधिकरूप है । ता स्वाभाविक सत्तारूपकरिकै तथा स्फुरणरूपकरिकै तथा आनंदरूपकरिकै भी मैं परमेश्वर तिन सर्वप्राणियोंविषे समान हूं तथा औपाधिक अंतर्यामीरूपकरिकै भी मैं परमेश्वर तिन सर्वप्राणियोंविषे समान हूं इति । याकारणतैंही कोईभी प्राणी मैंपरमेश्वरके द्वेषका विषय नहीं है । तथा कोईभी प्राणी मैं परमेश्वरके प्रीतिका विषय नहीं है अर्थात् मैं परमेश्वरका किसीभी प्राणीविषे द्वेष तथा प्रीति नहीं है । जैसे आकाशमंडलविषे व्यापक जो सूर्यका प्रकाश है तिस प्रकाशका किसीभी पदार्थविषे द्वेष तथा प्रीति नहीं होवैहै किंतु सो सूर्यका प्रकाश सर्वत्र समानही होवैहै । शंका-हे भगवन् ! किसीभी प्राणीविषे जो तुम्हारा द्वेष तथा प्रीति नहीं होवे तौ तुम्हारे भक्तोंविषे तथा अभक्तोंविषे फलकी विषमता कैसे होवैहै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता फलकी विषमताविषे हेतु कहैं हैं (ये भजंति इति) हे अर्जुन ! जे पुरुष सर्वकर्मोंका मैं परमेश्वरविषे अर्पणरूप भक्तिकरिकै मैं परमेश्वरकूं सेवन करैं हैं ते भक्तजन श्रेष्ठ हैं । इहां (ये भजंति तु) इस वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तु शब्द अभक्तोंकी अपेक्षा करिकै भक्तोंकी विशेषताके बोधन करणेवास्तै है । सा विशेषता कौन है । ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् ता विशेषताकूं कहैं हैं (मयि ते तेषु चाप्यहमिति) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरविषे अर्पण करेहुए निष्कामकर्मोंकरिकै जे पुरुष शुद्धअंतःकरणवाले हुए हैं ते पुरुषही मैं परमेश्वरविषे वर्त्तै हैं अर्थात् निवृत्त होइगया है रजतमरूप मल जिसका तथा सत्त्वगुणकी अधिकताकरिकै अत्यंत स्वच्छ हुआ ऐसा जो अंतःकरण है ऐसी अंतःकरणकी मैं परमेश्वरके आकारवृत्तिकूं उपनिषद्रूप प्रमाणकरिकै उत्पन्न करते हुए ते भक्तजनही मैं परमेश्वरविषे वर्त्तै हैं अभक्तजन इसप्रकारतैं मैं परमेश्वरविषे वर्त्तते नहीं । और मैं परमेश्वरभी तिन भक्तजनोंविषेही वर्त्तता हूं अर्थात् मैं परमेश्वरभी तिन भक्तजनोंके अत्यंत स्वच्छ चित्तकी वृत्तिविषे

प्रतिबिंबितहुआ तिन भक्तोंविषेही वर्त्तता हूं। काहेतें इस लोकविषे जो जो स्वच्छ द्रव्यहै ता स्वच्छ द्रव्यका यहही स्वभाव होवैहै जो जिस पदार्थके साथि ता स्वच्छद्रव्यका संबंध होवैहै तिस पदार्थके आकारकूं सो स्वच्छ द्रव्य आपणेविषे ग्रहण करैहै। और ता स्वच्छद्रव्यके संबंधवाला जो जो पदार्थ होवै है तिस पदार्थकाभी यहही स्वभाव होवै है। जो तिस स्वच्छद्रव्यविषे प्रतिबिंबभावकूं प्राप्तहोणा। और इस लोकविषे जो जो अस्वच्छद्रव्य होवै है, तिस अस्वच्छद्रव्यकाभी यहही स्वभाव होवैहै जो आपणे संबंधवाले पदार्थकेभी आकारकूं आपणेविषे नहीं ग्रहण करणा। और ता अस्वच्छद्रव्यके संबंधवाले पदाथकाभी यह ही स्वभाव होवैहै। जो तिस अस्वच्छद्रव्यविषे प्रतिबिंबभावकूं नहीं प्राप्त होणा। जैसे सर्वत्र समान विद्यमान हुआभी सूर्यका प्रकाश स्वच्छदर्पणादिकोंविषेही अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होवै है। अस्वच्छघटादिकोंविषे अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होतानहीं। इतनेमात्रकरिकै ता प्रकाशका तिन दर्पणादिकोंविषे कोई राग सिद्ध होवै नहीं। तथा तिन घटादिकोंविषे कोई द्वेष सिद्ध होवै नहीं। वैसे सर्वत्र समान हुआभी मैं परमेश्वर भक्तजनोंके अत्यंत स्वच्छ चित्तविषेही अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होवौं हूं। अभक्तजनोंके अत्यन्त अस्वच्छ चित्तविषे अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होवौं नहीं। इतनेमात्रकरिकै मै परमेश्वरका तिन भक्तजनोंविषे कोई राग सिद्ध होवै नहीं। तथा तिन अभक्तजनोंविषे कोई द्वेष सिद्ध होवै नहीं। यातें मैं परमेश्वरविषे किंचित्मात्रभी विषमता नहीं है। तात्पर्य यह—जैसे रागद्वेषतें रहित हुआभी अग्नि आपणे समीपस्थित प्राणियोंकेही शीतकूं निवृत्त करै है दूरस्थित प्राणियोंके शीतकूं निवृत्त करै नहीं तथा जैसे रागद्वेषतें रहित हुआभी कल्पवृक्ष आपणे समीपस्थित मनुष्योंकूंही मनवांछित पदार्थोंकी प्राप्ति करै है। दूरस्थित मनुष्योंकूं मनवांछित पदार्थोंकी प्राप्ति करै नहीं। इतनेमात्रकरिकै ता अग्निविषे तथा कल्पवृक्षविषे विषमतादोषकी प्राप्ति होवै नहीं। तैसे रागद्वेषतें रहित हुआभी मैं परमेश्वर शरणागतकूं प्राप्त

हुए भक्तजनोंकेही बंधनकूं निवृत्त करूंहूं । अन्यप्राणियोंके बंधनकूं निवृत्त करता नहीं । इतनेमात्रकरिके मैं परमेश्वरविषेभी विषमतादोषकी प्राप्ति होवै नहीं ॥ २९ ॥

हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरकी भक्तिकाही यह प्रभाव है जो सर्वत्र समान मैं परमेश्वरविषेभी विषमताकूं दिखाई देवै है। तिस हमारी भक्तिके प्रभावकूं तूं अब श्रवण कर-

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ॥
साधुरेव स मंतव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ३० ॥

(पदच्छेदः) अपि । चेत् । सुदुराचारः । भजते । माम् । अनन्यभाक् । साधुः । एव । सः । मंतव्यः । सम्यक् । व्यवसितः । हि । सः ॥ ३० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो कोई पुरुष अत्यंतदुराचरणवाला हुआ भी जबी अनन्यचित्त होइके मैं परमेश्वरकूं भजे है तबी सो पुरुष साधु ही मानणा जिसकारणतैं सो पुरुष साधु निश्चयवाला है ॥ ३० ॥

भा० टी०-हे अर्जुन । जो कोई पुरुष अजामिलादिकोंकी न्याई पूर्व अत्यंत दुराचरणवाला हुआभी जबी किसी पूर्वले पुण्यके उदयतैं अनन्यचित्तवाला हुआ मैं परमेश्वरकूं सेवन करै है तबी सो पुरुष पूर्व असाधु हुआभी तिस भजनकालविषे साधुही मानणा । जिसकारणतैं सो पुरुष तिसकालविषे साधुनिश्चयवालाही है । तहां दुराचारी पुरुषभी परमेश्वरके आराधनतैं साधुही होवै है यह वार्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथन करी है । तहां श्लोक-(अतिपापप्रसक्तोपि ध्यायन्निमिषमच्युतम् । भूयस्तपस्वी भवति पंक्तिपावनपावनः ॥ १ ॥ प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्मात्मिकानि वै । यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम् ॥ २ ॥) अर्थ यह-अत्यंत पापकर्मोंविषे प्रसक्त पुरुषभी जबी अनन्यचित्त होइके एक निमेषमात्र कालपर्यंतभी परमेश्वरका आराधन करै है तबी तिस परमे-

श्वरके आराधनके प्रभावतें सो पुरुष तिन सर्वपापोंतें रहित होइकै पुनः तपस्वी होवै है। तथा सो पुरुष पंक्तिकूं पावनकरणेहारे सदाचारवाले पुरुषोंकूंभी आपणे दर्शनतें पावन करैहै इति। किंवा पापकी निवृत्ति करणेवासतै धर्मशास्त्रनें विधान करे जितनेक कृच्छ्र अतिकृच्छ्र महाकृच्छ्र चांद्रायण इत्यादिक तपरूप प्रायश्चित्त हैं तथा जितनेक वाजपेययज्ञ राजसूययज्ञ अश्वमेधयज्ञ इत्यादिक कर्मरूप प्रायश्चित्त हैं तिन सर्व प्रायश्चित्तोंतें श्रीकृष्णभगवान्‌का स्मरण अधिक है इति। तात्पर्य यह–ते कृच्छ्रादिक प्रायश्चित्त जिसजिस पापकी निवृत्ति करणेवासतै करेजावैं हैं तिसतिस पापकीही निवृत्ति करैं हैं अन्यपापकी निवृत्ति करैं नहीं। और यह परमेश्वरका स्मरण तौ शतकोटि कल्पोंके पापोंकूं नाश करै है यह वार्त्ताभी शास्त्रविषे कथन करी है। तहां श्लोक–('अहं ब्रह्मेति मां ध्यायन्नेकाग्रमनसा सकृत्। सर्वं तरति पाप्मानं कल्पकोटिशतैः कृतम्॥) अर्थ यह–जो पुरुष एकाग्रमनकरिकै एकवारभी मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकारतें अभेदरूपकरिकै मैं परमेश्वरकूं चिंतन करै है सो पुरुष शतकोटि कल्पों-करिकै करेहुए सर्वपापोंकूं नाश करै है॥ ३०॥

तहां अनन्यचित्त होइकै जो परमेश्वरका स्मरण है सो स्मरणही मोक्षका साधन है। याप्रकारके सम्यक् निश्चयतैं सो पुरुष पूर्वली दुराचारताकूं परित्याग करिकै शीघ्रही धर्मात्मा होवै है। इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छांतिं निगच्छति॥
कौंतेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥३१॥

(पदच्छेदः) क्षिप्रं। भवति। धर्मात्मा। शश्वत्। शांतिम्। निगच्छति। कौंतेय। प्रतिजानीहि। न। मे। भक्तः। प्रणश्यति॥ ३१॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो पुरुष शीघ्रही धर्मात्मा होवै है तथा नित्य शांतिकूं प्राप्तहोवैहै हे कौंतेय ! मैं परमेश्वरका भक्त नहीं नाश होवै है ऐसी तूं प्रतिज्ञा कर ॥ ३१ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जो पुरुष पूर्व बहुतकालका अधर्मात्मा होवै है सो पुरुषभी मैं परमेश्वरके भजनके प्रभावतें शीघ्रही धर्मात्मा होवै है। अर्थात् सो पुरुष तिस भजनके प्रभावतें पूर्वले दुराचारपणेकूं शीघ्रही परित्याग करिकै धर्मविषे प्रीतिवाला होवै है। किंवा तिस हमारे भक्तकूं केवल इतनामात्रही फल नहीं होवै है किंतु इसतें अधिकभी फल होवै है। इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कहैं हैं (शश्वच्छांतिं निगच्छति इति) हे अर्जुन ! तिस हमारे भजनके प्रभावतें सो पुरुष नित्य शांतिकूंभी प्राप्त होवै है अर्थात् मैं परमेश्वरके भजन करिकै शुद्ध अन्तःकरणवाला हुआ सो पुरुष तीव्रवैराग्यवान् होइकै सर्व विषय भोगोंकी इच्छातें रहित होवै है। शंका-हे भगवन् ! परमेश्वरका पूजन करणेहाराभी कोईक भक्त पूर्व अभ्यास करेहुए दुराचारकूं नहीं त्याग करता हुआ धर्मात्मा नहीं भी होवैगा। यातैं सो भक्त तौ नाशकूंही प्राप्त होवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन भक्तजनोंके ऊपरि करुणाके परवशताकरिकै क्रोधवान् हुएकी न्याई ता अर्जुनके प्रति कहैं हैं (कौंतेय इति) हे अर्जुन ! पूर्व दुराचारी हुआभी यह पुरुष मैं परमेश्वरके भजनके प्रभावतें ता दुराचारका परित्याग करिकै शीघ्रही धर्मात्मा होवैहै। तथा नित्य शांतिकूं प्राप्त होवै है इस वार्त्ताकूं तुमनैं कोई आश्चर्यरूप नहीं मानणा किंतु यह हमारे भक्तिका प्रभाव निश्चितही है। यातें हे अर्जुन ! इस हमारे भक्तिके प्रभावविषे विवाद करणेहारे जे प्रतिवादी हैं तिन प्रतिवादियोंके सम्मुख स्थित होइकै तथा ऊंची भुजाकरिकै तिन प्रतिवादियोंकी अवज्ञापूर्वक तथा गर्वपूर्वक तूं या प्रकारकी प्रतिज्ञा कर जो मैं परमेश्वरका भक्त अत्यंत दुराचारी हुआ भी तथा प्राणसंकटकूं प्राप्त हुआभी तथा अत्यंत मूढ तथा अशरण हुआ भी नाशकूं प्राप्त होता नहीं। अर्थात् दुर्गकूं प्राप्त

होता नहीं किंतु सर्वप्रकारतें सो हमारा भक्त कृतार्थही होवैहै । हे अर्जुन! इस हमारे भक्तिके प्रभावविषे अजामिल, प्रह्लाद, ध्रुव, गजेन्द्र इसतें आदिलैके अनेक दृष्टांत प्रसिद्ध हैं तथा (न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित्) अर्थ यह–परमेश्वरके भक्तोंकूं कदाचित्भी अशुभकी प्राप्ति होवै नहीं । इत्यादिक अनेक शास्त्रके वचन प्रमाणरूप हैं ॥ ३१ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे आगंतुक दोषकरिकै दुष्टपुरुषोंका भगवद्भक्तिके प्रभावतें विस्तार कथन कऱ्या । अब स्वाभाविक दोषकरिकै दुष्टपुरुषोंकाभी तिस भगवद्भक्तिके प्रभावतें निस्तार कथन करै हैं–

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येपि स्युः पापयोनयः॥
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यांति परां गतिम् ३२

(पदच्छेदः) माम् । हि । पार्थ । व्यपाश्रित्य । ये । अपि । स्युः । पापयोनयः । स्त्रियः । वैश्याः । तथा । शूद्राः । ते । अपि । यांति । पराम् । गतिम् ॥ ३२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरकूं आश्रयणकरिकै जे पुरुष पापयोनि भी हैं तथा स्त्रियां हैं तथा वैश्यहैं तथा शूद्रहैं ते सर्व भी परम गतिकूं प्राप्त होवै है यह वार्त्ता निश्चितैंहीहै ॥ ३२ ॥

भा० टी० हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरके शरणागतकूं प्राप्त होइकै जे प्राणी पापयोनिभी हैं अर्थात् जातिदोषकरिकै दुष्ट जे चांडालादिकभी हैं अथवा जे प्राणी सर्पादिक तिर्यक् योनिवालेभी हैं तथा वेदके अध्ययनादिकोंतें रहित होणेतें अतिनिकृष्ट जे स्त्रियां हैं तथा कृषिवाणिज्यादिक लौकिकव्यापारोंविषे तत्पर जे वैश्य हैं तथा शूद्रत्वजातितैंही वेदके अध्ययनादिकोंके अभावकरिकै परमगतिके अयोग्य जे शूद्र हैं ते सर्वही मैं परमेश्वरकी भक्तिके प्रभावतैं शुद्धअन्तःकरणवाले होइकै ब्रह्मसाक्षात्कारकी प्राप्तिद्वारा मोक्षरूप परमगतिकूंही प्राप्त होवैं हैं । यह वार्त्ता तुमनैनिश्चितही जानणी । इस वार्त्ताविषे किंचित्मात्रभी तुमनैं संशय करणा नहीं। इहां

(मां हि) या वचनविषे स्थित जो हि यह शब्द है ता हिशब्द करिकै इस अर्थविषे शास्त्रप्रमाणकी प्रसिद्धि बोधन करीहै सो शास्त्रप्रमाण यहहै। श्लोक-(किरातहूणांध्रपुलिंदपुल्कसा आभीरकंका यवनाः खशादयः । येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥) अर्थ यह- किरात, हूण, अंध्र, पुलिंद, पुल्कस, आभीर, कंक, यवन, खश इत्यादिक जे नीचजातिवाले प्राणी हैं तथा जे अन्यभी पापआचरणवाले हैं ते सर्वप्राणी जिस परमेश्वरके शरणागतकूं प्राप्त होइकै शुद्धिकूं प्राप्त होवैं हैं, तिस परमेश्वरके ताईं हमारा नमस्कार है इति । इहां (तेऽपि) इस वचनविषे स्थित जो अपि यह शब्द है ता अपि शब्दकरिकै (अपि चेत्सुदुराचारः) इस पूर्वश्लोकविषे कथन करेहुए दुराचारी पुरुषोंकाभी ग्रहण करणा ॥ ३२ ॥

तहां इसप्रकारके स्त्रीशूद्रादिक प्राणीभी जबी परमेश्वरके भक्तितें परम गतिकूं प्राप्त होवैं वैं तबी ब्राह्मणादिक उत्तममनुष्य तिस भगवद्भक्तितें परमगतिकूं प्राप्त होवैं हैं याकेविषे क्या आश्चर्य है ? इस प्रकारके कैमुतिकन्यायकरिकै तिन उत्तम मनुष्योंकूं तिस भक्तिविषे प्रवृत्त करणेवास्तै श्रीभगवान् ता भगवद्भक्तिके प्रभावकूं वर्णन करैं हैं-

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ॥
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्३३॥

(पदच्छेदः) किंम् । पुनः । ब्राह्मणाः । पुण्याः । भक्ताः । राजर्षयः । तथा । अनित्यम् । असुखम् । लोकम् । इमम् । प्राप्य । भजस्व । माम् ॥ ३३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मेरे भक्त उत्तमजातिवाले ब्राह्मण तथा क्षत्रिय परमगतिकूं प्राप्त होवैं हैं याकें विषे पुनः क्या कहणाहै यातें तूं इस अनित्य तथा दुःखयुक्त मनुष्यदेहकूं प्राप्त होइकै मैं परमेश्वरकूं आराधन कर ॥ ३३ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जबी पूर्वउक्त स्त्रीशूद्रादिक प्राणीभी मैं परमेश्वरकी भक्तिकरिकै ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिद्वारा मोक्षरूप परमगतिकूं प्राप्त होवैं हैं । तबी श्रेष्ठ आचारवाले तथा उत्तमजातिवाले जे ब्राह्मण हैं तथा सूक्ष्मवस्तुके विवेक करणेहारे जे क्षत्रिय हैं वे ब्राह्मण तथा क्षत्रिय मैं परमेश्वरके भक्त तिस भक्तिकरिकै ब्रह्मज्ञानद्वारा मोक्षरूप परमगतिकूं प्राप्त होवैं हैं याकेविषे पुनः क्या कहणा है किंतु इस वार्त्ताविषे किसीकूंभी संशय नहीं है । हे अर्जुन ! जिसकारणतैं मैं परमेश्वरभक्तिका महान् प्रभाव है, इसकारणतैं सर्व पुरुषार्थोंके सिद्ध करणेकूं योग्य तथा अत्यंत दुर्लभ इस अधिकारी मनुष्यदेहकूं प्राप्त होइकै तूं जितने कालपर्यंत वह मनुष्यदेह नाशकूं नहीं प्राप्त भया तथा रोगादिकोंकरिकै ग्रस्त नहीं भया तितनेकालपर्यंत अतिशीघ्रतातैं महान् प्रयत्नकरिकै मैं परमेश्वरके शरणागतकूं प्राप्त होउ । हे अर्जुन ! यह मनुष्यदेह कैसा है-अनित्य है अर्थात् शीघ्रही नाश होणेहारा है। पुनः कैसा है यह देह-असुख है अर्थात् गर्भवासतैं आदिलैके अनेकप्रकारके दुःखोंकरिकै ग्रस्त है । हे अर्जुन ! यह शरीर अनित्य है तथा असुखरूप है, यातैं तूं मैं परमेश्वरके भजनविषे विलंब मतकर। तथा इस शरीरके सुखवासतैं उद्यमकूं मतकर । हे अर्जुन ! जैसे पूर्व श्रेष्ठ आचारवाले जनकादिक राजऋषि मैं परमेश्वरके भजनकरिकै आपणे जन्मकूं सफल करते भयेहैं तैसे तूं अर्जुनभी मैं परमेश्वरके भजनकरिकै आपणे जन्मकूं सफल कर। जो तूं इस अधिकारी मनुष्यशरीरकूं प्राप्त होइकै मैं परमेश्वरके चिंतनपरायण नहीं होवैगा तौ यह तुम्हारा अधिकारी मनुष्यशरीरही निष्फल होवैगा । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करीहै। तहां श्रुति-(इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदवेदन्महतिविनष्टिः) अर्थ यह-इस भारतखंडविषे अधिकारी मनुष्यशरीरकूं प्राप्त होइकै यह पुरुष जबी परमात्मादेवकूं साक्षात्कार करैहै तबी इस पुरुषकूं मोक्षरूप सत्यफलकीही प्राप्ति होवैहै। और यह पुरुष जबी इस अधिकारी मनुष्यशरीरकूं पाइकै तिस परमात्मादेवकूं

नही साक्षात्कार करैहै तबी इस पुरुषकूं वारंवार जन्ममरणरूप संसारकीही प्राप्ति होवैहै ॥ ३३ ॥

अब पूर्व कथनकरेहुए भजनके प्रकारकूं कथन करतेहुए श्रीभगवान् इस नवमाध्यायकी समाप्ति करैहैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ॥
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगोनाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

(पदच्छेदः) मन्मनाः । भव । मद्भक्तः । मद्याजी । माम् । नमस्कुरु । माम् । एव । एष्यसि । युक्त्वा । एवम् । आत्मानम् । मत्परायणः ॥ ३४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तूं मैं परमेश्वरविषे मनवाला होउ मेरा भक्त होउ तथा मेरे पूजनपरायण होउ तथा मैं परमेश्वरकूं नमस्कार कर इसप्रकारतैं मैं परमेश्वरके शरणहुआ तूं आपणे अंतःकरणकूं मैं परमेश्वरविषे जोडिकैरिकै मैं परमेश्वरकूं ही प्राप्त होवेगा ॥ ३४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जिसपुरुषका मन केवल मैं परमेश्वरविषेही संलग्न है अन्य पुत्रभार्यादिकोंविषे संलग्न है नहीं तिस पुरुषका नाम मन्मना है ऐसा मन्मना तूं होउ । और जो पुरुष एक मैं परमेश्वरकाही भक्त है धनादिकपदार्थोंकी प्राप्तिवासवै अन्यराजादिकोंका भक्त है नहीं तिस पुरुषका नाम मद्भक्त है ऐसा मद्भक्त तूं होउ । तात्पर्य यह—इस लोकविषे जो राजादिकोंका भृत्य होवै है सो भृत्य धनादिक पदार्थोंकी प्राप्तिवासवै तिन राजादिकोंका भक्त हुआभी तिन राजादिकोंविषे तिस भृत्यका मन संलग्न होवै नहीं किंतु ता भृत्यका मन आपणे स्त्रीपुत्रादिकोंविषेही संलग्न होवै है । यातैं सो भृत्य ता राजाका भक्त हुआभी तन्मना होवै नहीं । और आपणे पुत्रस्त्रीआदिकोंविषे सो भृत्य तन्मना

हुआभी तिन स्त्री पुत्रादिकोंका भक्त होवै नहीं । तैसे तूं अर्जुन मैं पर- मेश्वरविषे भक्तिवाला हुआभी अन्यविषे मनवाला मत होउ । तथा मैं परमेश्वरविषे मनवाला हुआभी अन्यविषे भक्तिवाला मत होउ । किंतु तूं अर्जुन तौ मैं परमेश्वरविषेही मनवाला तथा भक्तिवाला होउ इति । तथा तूं अर्जुन मयाजी होउ अर्थात् एक मैं परमेश्वरकेही पूजनपरायण होउ तथा शरीर मनवाणीकरिकै तूं मैं परमेश्वरकूंही नमस्कार कर । इसप्रकारतै मत्परायण हुआ तूं अर्थात् एक मैं परमेश्वरके शरणागतकूं प्राप्त हुआ तूं आपणे अंतःकरणकूं मै परमेश्वरके चिंतनविषे जोडिकै मैं परमानंदघन स्वप्रकाश सर्व उपद्रवोंतै रहित अभयब्रह्मकूंही घटाकाश महाकाशकी न्याई तथा नदीसमुद्रकी न्याई अभेदरूपकरिकै प्राप्त होवैगा । तात्पर्य यह—जैसे घटरूप उपाधिके निवृत्तहुए घटाकाश अभे- दरूपकरिकै महाकाशभावकूं प्राप्त होवै है तथा जैसे श्रीगंगायमुनादिक नदियां आपणे नामरूपका परित्यागकरिकै समुद्रविषे एकताभावकूं प्राप्त होवै हैं तैसे तूं अर्जुनभी मैं परमेश्वरकी भक्तितै उत्पन्नहुए ब्रह्मसाक्षात्कार- करिकै अविद्यादिक सर्व उपाधियोंतै रहितहुआ अभेदरूपकरिकै मै निर्गुण ब्रह्मकूंही प्राप्त होवैगा । तहां श्रुति—(यथा नद्यः स्यंदमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छंति नामरूपे विहाय । तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुष- मुपैति दिव्यम् ।) अर्थ यह—जैसे श्रीगंगायमुनादिक नदियां आपणे नाम रूपका परित्यागकरिकै समुद्रविषे जाइकै एकताभावकूं प्राप्त होवैं हैं तैसे यह विद्वान् पुरुषभी नामरूपतै रहितहुआ सर्वतै उत्कृष्ट स्वयंज्योति परमात्मापुरुषकूंही अभेदरूपकरिकै प्राप्त होवै है इति । इहां किसी टीका- विषे तौ (मामेव आत्मानमेष्यसि) इसप्रकारतै पदोंकी योजना करिकै (आत्मानम्) इसपदकरिकै परमात्माकाही ग्रहण कऱ्या है ॥ ३४ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद- नानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां श्रीमगवद्गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां नवमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ९ ॥

दशमाध्यायप्रारंभः ।

तहां पूर्व सप्तम अष्टम नवम इन तीन अध्यायोंकरिकै तत्पदार्थरूप परमेश्वरका सोपाधिक स्वरूप तथा निरुपाधिक स्वरूप दिखाया। तिस तत्पदार्थरूप परमेश्वरकी जे विभूतियां हैं ते विभूतियां तिस सोपाधिक स्वरूपके तौ ध्यानविषे उपायभूत है और ते विभूतियां तिस निरुपाधिक स्वरूपके तौ ज्ञानविषे उपायभूत है। ऐसी परमेश्वरकी विभूतियां भी सप्तम अध्यायविषे तौ (रसोहमप्सु कौंतेय) इत्यादिक वचनोंकरिकै और नवम अध्यायविषे तौ (अहं क्रतुरहं यज्ञः) इत्यादिक वचनोंकरिकै संक्षेपतैं कथन करी। तिन संक्षेपतै कथन करीहुई विभूतियोंका विस्तार अब अवश्यकरिकै कहणेयोग्य है। काहेतें कितनेक बहिर्मुखलोकोंकूं सो परमेश्वरका स्वरूप ध्यानकरणेवासतैभी अत्यंत दुर्विज्ञेय है। ऐसे स्वरूपका जो पुनः पुनः कथन है सो तिस स्वरूपके ज्ञानवासतैंहीं है या कारणतै श्रीभगवान्नें यह दशम अध्याय प्रारंभ कीता है। तहां प्रथम अर्जुनके चित्तविषे उत्साह करावणेवासतै परम कृपालु श्रीभगवान् विनाही पूछेतै ता अर्जुनके प्रति कहैं हैं-

श्रीभगवानुवाच ।

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः ॥
यत्तेहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥ १ ॥

(पदच्छेदः) भूयः । एव । महाबाहो । शृणु । मे । परमम् । वचः । यत् । ते । अहम् । प्रीयमाणाय । वक्ष्यामि । हित-काम्यया ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः भी मैं परमेश्वरके उत्कृष्ट वचनकूं तूं श्रवणकर जो वचन मैं परमेश्वर तुम्हारे हितकी कामनाकरिकै तैं प्रीतिवालेके वांई कथन करताहूं ॥ १ ॥

भा० टी०–हे महान् बाहुवाला अर्जुन ! तूं पुनःभी मैं परमेश्वरके अत्यंत उत्कृष्ट वचनकूं श्रवण कर। जो वचन मैं परम आप्त परमेश्वर तुम्हारे इष्टके प्राप्तिकी इच्छाकरिकै तुम्हारे ताईं कथन करताहूं। अब अर्जुनके प्रति तिस वचनके उपदेश करणेकी योग्यताके बोधन करणे-वासतै ता अर्जुनका विशेषण कहैहैं (प्रीयमाणाय इति) हे अर्जुन ! जैसे अमृतके पानतैं प्रीतिका अनुभव करीताहै तैसे मैं परमेश्वरके वचनरूप अमृतके पानतैं तूं प्रीतिकूं अनुभव करणेहाराहै यातैं तुम्हारे ताईं पुनः भी मैं उपदेश करता हूं। इहां (प्रीयमाणाय) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कऱ्या। इनोंके वचनोंकूं श्रवणकरिकै हमारे इष्टकी सिद्धि अवश्यकरिकै होवैगी या प्रकारकी दृढभावना करिकै जो पुरुष प्रीतिपूर्वक तिन वचनोंकूं श्रवण करैहै तिस अधिकारी पुरुषके ताईंही तत्ववेत्ता पुरुषनैं ब्रह्मविद्याका उपदेश करणा। ता प्रीतितैं रहित पुरुषके प्रति ब्रह्मविद्याका उपदेश करणा नहीं। और तिस वचनका जो परम यह विशेषण कथन कऱ्या है ता परम विशेषणकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कऱ्याहै। जिसकारणतै यह हमारा वचन अत्यंत उत्कृष्ट है तिसकारणतैं इस हमारे वचनके श्रवणतैं तुम्हारेकूं अवश्यकरिकै इष्ट अर्थकी प्राप्ति होवैगी ॥ १ ॥

हे भगवन् ! ऐसे वचन तौ पूर्व बहुतवार आप हमारे प्रति कथन करि आये हो। तिन वचनोंकूं पुनः अबी किसवासतै कथन करतेहो ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् दुर्विज्ञेय वस्तुका पुनः पुनः उपदेश करणेतैं ही बोध होवैहै या प्रकारके अभिप्रायकरिकै आपणे स्वरूपकी दुर्विज्ञेयताकूं कथन करैहैं। अथवा। शंका–हे भगवन् ! हमारे प्रति तैं परमेश्वरके स्वरूपका उपदेश करणेहारे इंद्रादिक देवता तथा भृगुआदिक ऋषि बहुत हैं तिनोंके वचनश्रवणतैं ही हमारेकूं आपके स्वरूपका ज्ञान होवैगा। इसलिये आपके कहणेका क्या प्रयोजन है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए जिन इंद्रादिकोंके वचनतैं तूं हमारे स्वरूपका ज्ञान चाहता

है तिन इंद्रादिकोंकूं ही हमारा स्वरूप दुर्विज्ञेय है इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैहै-

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ॥
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) न । मे । विदुः । सुरगणाः । प्रभवम् । न । महर्षयः । अहम् । आदिः । हि । देवानाम् । महर्षीणाम् । च । सर्वशः ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरके प्रभावकूं इंद्रादिकदेवता नहीं जानैहैं तथा भृगुआदिक महान्ऋषिभी नहीं जानै है जिसकारणतैं मैं परमेश्वर तिन देवतावोंका तथा तिन महान् ऋषियोंका सर्वप्रकारतै कारणहूं ॥ २ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! मै परमेश्वरका जो प्रभाव है अर्थात् आकाशादिक सर्वप्रपंचके उत्पत्ति, स्थित, संहार, प्रवेश, नियमन, निग्रह, अनुग्रह इत्यादिकोंके करणेका जो सामर्थ्यरूप प्रभाव है अथवा अनेक विभूतियोंकरिकै आविर्भावरूप जो प्रभाव है तिस हमारे प्रभावकूं इंद्रादिक देवता तथा भृगुआदिक महान्ऋषि सर्वज्ञ हुएभी जानते नहीं । शंका-हे भगवन् ! ते इंद्रादिक देवता तथा भृगुआदिक महान् ऋषि तिस आपके प्रभावकूं किस कारणतै नहीं जानतेहैं ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ताके न जानणेविषे हेतु कहैहैं। (अहमादिर्हि इति) हे अर्जुन ! जिस कारणतै मै परमेश्वर तिन इंद्रादिक देवतावोंका तथा तिन भृगुआदिक महान् ऋषियोंका सर्वप्रकारतै कारण हूं अर्थात् मै परमेश्वर तिन इंद्रादिक देवतावोंके तथा भृगुआदिक ऋषियोंके उत्पादकपणेकरिकै तथा बुद्धिआदिकोंका प्रवर्त्तकपणेकरिकै कारण हूं अथवा मैं परमेश्वर तिनोंका उपादानरूपकरिकै तथा निमित्तरूपकरिकै कारण हूं तिस कारणतैं ते इंद्रादिक देवता तथा भृगुआदिक ऋषि मैं परमेश्वरके कार्य होणेतैं कारणरूप मैं परमेश्वरके प्रभावकूं

जानिसकते नहीं । जैसे पिताके प्रभावकूं पुत्र जानिसकता नहीं । यातें मैं परमेश्वरही आपणा प्रभाव तुम्हारे ताईं कथन करता हूं । तहां परमेश्वरतैं ही सर्वदेवताओं तथा सर्वऋषियोंकी उत्पत्ति होवै है। यह वार्त्ता (तस्माच्च देवा बहुधा संप्रसूताः यस्मिन्युक्ता महर्षयो देवताश्च।) इत्यादिक श्रुतियोंविषे प्रसिद्धहीहै ॥ २ ॥

तहां सो परमेश्वरके प्रभावका ज्ञान महान् फलका हेतु है; यातें कोईक अधिकारीजन ही तिस परमेश्वरके प्रभावकूं जानैहैं । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैहैं । अथवा । शंका—हे भगवन् ! ते इंद्रादिक देवता तथा भृगुआदिक ऋषि जो कदाचित् आप परमेश्वरके प्रभावका उपदेश करणेविषे समर्थ नहीं हैं तौ आपही हमारे प्रति ता आपणे प्रभावका उपदेश करौ परंतु तिस आपके प्रभावके जानणेकरिकै हमारेकूं कौन फल होवैगा? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् ता ज्ञानका फल कथन करैहैं—

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ॥
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) यः । माम् । अजम् । अनादिम् । च । वेत्ति । लोकमहेश्वरम् । असंमूढः । सः । मर्त्येषु । सर्वपापैः । प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जन्मतैं रहित तथा कारणतैं रहित तथा सर्वलोकोंका महान् ईश्वर ऐसे मैं परमेश्वरकूं जो पुरुष जानै है सो पुरुष सर्वमनुष्योंके मध्यविषे संमोहतैं रहितहुआ सर्वपापोंनैं परित्याग करीताहै ३

भा० टी०—हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरही सर्वजगत्का कारण हूं । यातैं नहीं विद्यमान है आदि क्या कारण जिसका ताका नाम अनादि है ऐसा अनादिरूप मैं परमेश्वर हूं । और अनादि होणेतैं ही मैं परमेश्वर अज हूं अर्थात् उत्पत्तिरूप जन्मतैं रहित हूं । तथा सर्वलोकोंका महे-

श्वर हूं । ऐसे मैं परमेश्वरकूं जो अधिकारी पुरुष आपणे आत्मासे अभिन्नरूप करिकै साक्षात्कार करै है सो पुरुष सर्व मनुष्योंके मध्यविषे असंमूढ हुआ अर्थात् अज्ञानकी निवृत्तिद्वारा आत्मा अनात्माके तादात्म्य अध्यासरूप संमोहतै रहित हुआ सर्व पापोंतैं मुक्त होवै है अर्थात् बुद्धिपूर्वक करेहुए तथा अबुद्धिपूर्वक करे हुए भूत भविष्यत् वर्त्तमान सर्व पापोंतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष मुक्त होवै है इहां (प्रमुच्यते) इस वचनविषे स्थित जो प्र यह शब्द है ता प्रशब्दकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कऱ्या यद्यपि अज्ञानी पुरुषभी तिन पापकर्मोंके भोगकरिकै तथा प्रायश्चित्तकरिकै तिन पापकर्मोंतैं मुक्त होवैं है तथापि ते अज्ञानी पुरुष ता करिकै तिन पापकर्मोंतैं अत्यंत मुक्त होवैं नहीं।काहेतैं सर्वपापकर्मोंका कारणरूप जो अज्ञान है तथा ता अज्ञानकृत जो देहादिकोंविषे अहं मम अध्यास है सो अज्ञान तथा अध्यास तिन अज्ञानी पुरुषोंविषे विद्यमान है तिसतैं पुनः पापोंकी उत्पत्ति होवै है और भोगकरिकै निवृत्त हुएभी ते पापकर्म संस्काररूपतै तिन अज्ञानी पुरुषोंविषे बनेरहैं हैं, या कारणतैंही तिन संस्कारोंके वशतैं वे अज्ञानी पुरुष पुनः तिन पापकर्मोंविषे प्रवृत्त होवैं है । और तत्त्ववेत्ता पुरुष तौ आत्मसाक्षात्कारकरिकै अज्ञानरूप मूलकारणकी तथा तत् जन्य अहं मम अध्यासकी तथा संस्कारसहित सर्व पापकर्मोंकी निःशेषतैं निवृत्ति होइजावै है यातै सो तत्त्ववेत्ता पुरुषही तिन सर्वपापकर्मोंतैं अत्यंत मुक्त होवै है । इस अर्थविषे (क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे । ज्ञानाऽग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥) इत्यादिक अनेक श्रुतिस्मृतिवचन प्रमाणरूप हैं ॥ ३ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे (लोकमहेश्वरम्) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं आपणेविषे सर्वलोकोंका महेश्वरपणा कथन कऱ्या । अब तिसी सर्वलोकमहेश्वरपणेकूं विस्तारतैं प्रतिपादन करैं हैं-

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ॥
सुखं दुःखं भवो भावो भयं चाभयमेव च ॥ ४ ॥

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ॥
भवंति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥ ५ ॥

(पदच्छेदः) बुद्धिः । ज्ञानम् । असंमोहः । क्षमा । सत्यम् । दमः । शमः । सुखम् । दुःखम् । भवः । भावः। भयम्। च । अभयम् । एव । च । अहिंसा । समता । तुष्टिः । तपः । दानम् । यशः । अयशः । भवंति । भावाः । भूतानाम् । मत्तः । एव । पृथग्विधाः ॥ ४ ॥ ५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन । बुद्धि ज्ञान असंमोह क्षमा सत्य दम शम सुख दुःख भव भाव भय तथा अभय अहिंसा समता तुष्टि तप दान यश अयश यह लोकप्रसिद्ध नानाप्रकारके कार्यविशेष सर्वप्राणियोंके मैं परमेश्वरतें उत्पन्न होवें हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! सर्व प्राणियोंके यह बुद्धितें आदिलेके अयशपर्यंत कार्यविशेष मैं परमेश्वरतेंही उत्पन्न होवें हैं अन्य किसीतें उत्पन्न होवें नहीं । अब तिन बुद्धिआदिकोंका स्वरूप कथन करें हैं । तहां अंतःकरणविषे जो सूक्ष्म अर्थके विवेककरणेका सामर्थ्यहै ताका नाम बुद्धिहै और आत्मा अनात्मारूप सर्वपदार्थोंका जो अवबोधहै ताका नाम ज्ञानहै और ज्ञातव्यतारूप करिकै अथवा कर्तव्यतारूपकरिकै प्राप्त भये जे पदार्थहैं तिन पदार्थोंविषे व्याकुलतातें रहित होइकै जा विवेकपूर्वक प्रवृत्तिहै अर्थात् ताके इष्टअनिष्टरूप फलके विचारपूर्वक जा प्रवृत्तिहै ताका नाम असंमोहहै और कठोरवाणीकरिकैअथवा दंडादिकों करिकै ताडन करे हुए पुरुषके चित्तका जो निर्विकारपणा है अर्थात् तिस ताडनकरणेहारे प्राणीके अनिष्टका नहीं चिंतनकरणा है ताका नाम क्षमाहै।अथवा आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिक या तीन प्रकारके उपद्रवोंके सहन करणेका जो स्वभाव है ताका नाम क्षमा है । तहां ज्वरादिक रोग आध्यात्मिक उपद्रव कहेजावें हैं । और अतिशीत अतितप्त अतिवर्षा इत्यादिक आधिदैविक उपद्रव कहेजावें हैं । और सर्प

व्याघ्र शत्रु इत्यादिक आधिभौतिक उपद्रव कहेजावैं हैं इति। और प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंकरिकै जो अर्थ जिसप्रकारतैं निश्चय कऱ्या है तिस अर्थकूं तिसी प्रकारतैं कथन करणा याका नाम सत्य है। और श्रोत्रादिक बाह्यइंद्रियोंकी जा शब्दादिक विषयोंतैं निवृत्ति है ताका नाम दम हैं। और अंतःकरणकी जा तिन शब्दादिक विषयोंतैं निवृत्ति है ताका नाम शम है। और केवल धर्म है असाधारण कारण जिसका तथा अनुकूलतारूप करिकैही सर्व प्राणियोंके ज्ञानका विषय ऐसा जो आनंद है ताका नाम सुख है। और केवल अधर्म है असाधारण कारण जिसका तथा प्रतिकूलतारूप करिकै ही सर्वप्राणियोंके ज्ञानका विषय ऐसा जो परिताप है ताका नाम दुःख है। और उत्पत्तिका नाम भव है। और सत्ता नाम भाव है। अथवा (भवोभावः) इस वचनविषे भवः अभावः या प्रकारका पदच्छेद करणा। तहां असत्ता नाम अभावका है। और त्रासका नाम भय है। त्रासतैं रहित होणेका नाम अभय है। इहां (भयं चाभयमेव च) इस वचनविषे स्थित प्रथम चकार तौ पूर्वउक्त बुद्धिआदिकोंके समुच्चय करावणेवास्तै है और दूसरा चकार तौ पूर्व नहीं कथनकरेहुए बुद्धिआदिकोंके विरोधी अबुद्धि अज्ञान संमोह अक्षमा असत्य इत्यादिकोंके समुच्चय करावणेवास्तै है और एव यह शब्द तिन बुद्धि आदिकोंविषे सर्वलोकप्रसिद्धताके बोधन करणेवास्तै है अर्थात् यह बुद्धि आदिक सर्वलोकविषे प्रसिद्धही हैं इति। और स्थावर जंगम सर्वप्राणियोंकी पीडातैं जा निवृत्ति है ताका नाम अहिंसा है अर्थात् शरीर मन वाणीकरिकै जो किसीभी प्राणीमात्रकूं पीडाकी नहीं प्राप्तिकरणी ताका नाम अहिंसा है। और इष्टवस्तुके तथा अनिष्टवस्तुके प्राप्तहुएभी जा चित्तकी रागद्वेषादिकोंतै रहित अवस्था है ताका नाम समता है। और प्रारब्धकर्मके वशतैं यत्किंचित् भोग्यपदार्थोंके प्राप्तहुए इतने पदार्थोंकरिकै ही हमारेकूं तृप्ति है या प्रकारकी जा अलंबुद्धि है जिसकूं संतोष कहै हैं ताका नाम तुष्टि है। और शास्त्रउप-

दिष्टमार्गकरिकै जो शरीरइंद्रियोंका शोषण है अर्थात् कृच्छ्रचांद्रायणादिकव्रतोंकरिकै जो शरीरइंद्रियोंके बलकी क्षीणता करणी है ताका नाम तप है । और उत्तम देशकालविषे सत्पात्रविषे श्रद्धाकरिकै यथाशक्ति परिमाण जो अन्नसुवर्णादिक पदार्थोंका समर्पण है ताका नाम दान है । और धर्मरूप निमित्ततैं उत्पन्नभई जा लोकविषे प्रशंसादिरूप प्रसिद्धि है ताका नाम यश है । और अधर्मरूप निमित्ततैं उत्पन्नभई जा लोकविषे निंदारूप प्रसिद्धि है ताका नाम अयश है यह बुद्धितैं आदिलैके अयशपर्यंत जे कार्यविशेष हैं जे बुद्धिआदिक कार्य धर्मअधर्मादिक साधनोंकी विचित्रता करिकै नानाप्रकारके हैं । ऐसे सर्वप्राणियोंके बुद्धिआदिक पदार्थ आपणे आपणे कारणोंसहित मैं परमेश्वरतैंही उत्पन्न होवैं हैं । अन्य किसीतैं वे बुद्धिआदिक उत्पन्न होवै नहीं । ऐसे सर्वके कारणरूप मैं परमेश्वरविषे तिन सर्वलोकोंका महेश्वरपणा है याकेविषे क्या कहणा है ॥ ४ ॥ ५ ॥

हे अर्जुन ! केवल बुद्धि आदिकोंका कारण होणेतैं मैं परमेश्वरविषे सो सर्वलोकोंका महेश्वरपणा नहीं है । किंतु भृगुआदिक महान् ऋषियोंका तथा स्वायंभुवादिक मनुवोंका कारण होणेतैभी मै परमेश्वरविषे सो सर्वलोकोंका महेश्वरपणा है । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ॥
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥६॥

(पदच्छेदः) महर्षयः । सप्त । पूर्वे । चत्वारः । मनवः । तथा । मद्भावाः । मानसाः । जाताः । येषाम् । लोके । इमाः । प्रजाः ॥६

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सृष्टिके आदिकालविषे उत्पन्नहुए जे भृगुआदिक सप्त महाऋषि हैं तथा सावर्णी आदिक च्यारि मनु हैं जे भृगुआदिक मैं परमेश्वरके चिंतनपरायण हैं तथा मनके संकल्पमात्रतैं उत्पन्नहुए हैं तथा जिनै भृगुआदिकोंकी इसलोकविषे यह ब्राह्मणादिक प्रजा है ते भृगुआदिकभी मैं परमेश्वरतैंही उत्पन्न हुए हैं ॥ ६ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! पूर्व सृष्टिके आदिकालविषे उत्पन्नहुए जे भृगुआदिक सप्त महाऋषि हैं कैसे हैं ते भृगुआदिक सप्तऋषि–वेदोंके पाठकूं तथा वेदोंके अर्थकूं भलीप्रकारतैं जानणेहारे हैं । तथा सर्वज्ञ है । तथा वेदविद्याके संप्रदायकी प्रवृत्ति करणेहारे हैं । या कारणतैंही तिन भृगुआदिक सप्तऋषियोंकूं शास्त्रविषे महाऋषि कहे हैं । तहां तिन भृगुआदिक सप्तऋषियोंके नाम तथा सृष्टिके आदिकालविषे तिन्होंकी उत्पत्ति पुराणोंविषेभी कथन करी है । तहां श्लोक–(भृगुं मरीचिमत्रिं च पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । वसिष्ठं च महातेजाः सोसृजन्मनसा सुतान् ॥) अर्थ यह–भृगु, मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ इन सप्तऋषिरूप पुत्रोंकूं सो महान्तेजवाला ब्रह्मा सृष्टिके आदिकालविषे आपणे मनकरिकै उत्पन्न करताभया इति । तथा सृष्टिके आदिकालविषे उत्पन्नहुए जे सावर्णिआदिक नामकरिकै प्रसिद्ध च्यारि मनु है । अथवा (महर्षयः सप्त) इस वचनकरिकै तौ भृगुआदिक सप्त महाऋषियोंका ग्रहण करणा । और (पूर्वे चत्वारः) इस वचनकरिकै तिन भृगुआदिक सप्तऋषियोंतैंभी पूर्वउक्त हुए सनकादिक च्यारि महाऋषियोंका ग्रहण करणा । और (मनवस्तथा) इस वचनकरिकै स्वायंभुव आदिक चतुर्दश मनुवोंका ग्रहण करणा इति । कैसे हैं ते भृगुआदिक, सर्व मद्भाव हैं । तहां मैं परमेश्वरविषे है भाव कथा भावना जिन्होंकी तिन्होंका नाम मद्भाव है । अर्थात् मैं परमेश्वरका चिंतनरूप भावनाके वशतैं आविर्भूत हुआ है मैं परमेश्वरका ज्ञान तथा ऐश्वर्य तथा नानाप्रकारकी शक्तियां जिनोंकूं । पुनः कैसे हैं ते भृगुआदिक–मानस हैं अर्थात् ब्रह्माके मनके संकल्पमात्रतैंही उत्पन्नहुए है । अन्य मनुष्योंकी न्याईं योनितैं उत्पन्नहुए नहीं । इसी कारणतैंही विशुद्धजन्मवाले होणेतैं ते भृगुआदिक सर्वप्राणियोंतैं श्रेष्ठ हैं । और शास्त्रविषे (योनिं विना न शरीरम्) यह जो वचन कहा है सो इस वचनविषे योनिशब्द स्त्रीके योनिका वाचक नहीं है किंतु सो योनिशब्द कारणका वाचक है अर्थात् कारणतैं विना शरीर

उत्पन्न नहीं होवैहै इति । ऐसे भृगु आदिक सप्त महाऋषि तथा सनकादिक च्यारि महाऋषि तथा स्वायंभुवादिक चतुर्दश मनु यह सर्व सृष्टिके आदिकालविषे हिरण्यगर्भरूप मैं परमेश्वरतैं ही उत्पन्न होते भये हैं । जिन भृगुआदिक सप्तऋषियोंकी तथा सनकादिक च्यारि महाऋषियोंकी तथा स्वायंभुवादिक चतुर्दश मनुवोंकी इसलोकविषे जन्मकरिकै तथा विद्याकरिकै यह ब्राह्मणादिक सर्व प्रजा संततिरूपहै इति । इहां किसी टीकाविषे तौ (लोक इमाः)इस वचनविषे लोकः यह प्रथमा विभक्ति अंतपद ग्रहणकरिकै यह अर्थ कथन कऱ्याहै । जिन भृगु आदिकोंकी यह जरायुजादिक च्यारि प्रकारकी प्रजा तथा ता प्रजाके निवासका आधारभूत यह लोक दोनों संततिरूप हैं इति । अथवा (येषाम्) यह षष्ठी विभक्ति (येभ्यः) इस पंचमी विभक्तिके अर्थविषे है यातैं यह अर्थ सिद्ध होवै है । जिन भृगु आदिकोंतैं यह जरायुजादिक च्यारि प्रकारकी प्रजा तथा यह लोक उत्पन्न होताभया है ऐसे भृगु आदिकोंकाभी कारणरूप मैं परमेश्वरविषे सर्वलोकोंका महेश्वरपणा है याके विषे क्या कहणा है ॥ ६ ॥

इस कारणतें सोपाधिक परमेश्वरके प्रभावकूं कथन करिकै अब तिस प्रभावके ज्ञानका फल कथन करैं हैं–

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ॥
सोऽविकंपेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) एताम् । विभूतिम् । योगम् । च । मम । यः । वेत्ति । तत्त्वतः । सः । अविकंपेन । योगेन । युज्यते । न । अत्र । संशयः ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष मैं परमेश्वरके इस तीन पूर्वउक्त विभूतिकूं तथा योगकूं यथावत् जानै है सो पुरुष अचल योगकरिकै युक्त होवैहै इसविषे कोईभी प्रतिबंध नहीं है ॥ ७ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! पूर्व (बुद्धिर्ज्ञानम्) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै कथन करी हुई जा बुद्धितैं आदिलैके अयशपर्यंत मैं परमेश्वरकी

विभूति है तथा भृगुआदिक सप्त महाऋपिरूप तथा सनकादिक च्यारि महाऋपि रूप तथा स्वायंभुवादिक चतुर्दशमनुरूप जा हमारी विभूति है अर्थात् तिसतिस बुद्धिआदिरूप करिकै तथा तिसतिस महाऋपि आदिरूपकरिकै जा मैं परमेश्वरकी स्थिति है ऐसी मैं परमेश्वरकी विभूतिकूं जो अधिकारी पुरुप गुरुशास्त्रके उपदेशतें यथावत् जानैहै तथा जो अधिकारी पुरुप मैं परमेश्वरके योगकूं यथावत् जानैहै, इहां तिस तिस अर्थके उत्पन्न करणेका सामर्थ्यरूप जो परमऐश्वर्य है ताका नाम योग है ऐसे परम ऐश्वर्यरूप योगकूं जो पुरुप जानै है सो अधिकारीपुरुप चलायमानतातें रहित योगकरिकै युक्त होवैहै। अर्थात् सो पुरुप तत्त्वज्ञानकी स्थिरतारूप समाधिकरिकै युक्त होवैहै। हे अर्जुन! इस हमारी विभूतिके तथा योगके जानणेहारे पुरुषकूं ता समाधिरूप योगकी प्राप्तिविपे कोईभी संशय नहीं है अर्थात् कोईभी प्रतिबंध करणेहारा नही है ॥ ७ ॥

तहां परमेश्वरके जिस विभूति योग दोनोंके ज्ञानकरिकै इस अधिकारी पुरुपकूं अचलसमाधिरूप योगकी प्राप्ति होवैहै तिस ज्ञानके स्वरूपकूं अब श्रीभगवान् च्यारि श्लोकोंकरिकै वर्णन करैं है-

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते ॥
इति मत्वा भजंते मां बुधा भावसमन्विताः ॥८॥

(पदच्छेदः) अहम् । सर्वस्य । प्रभवः । मत्तः । सर्वम् । प्रवर्तते । इति । मत्वा । भजंते । माम् । बुधाः । भावसमन्विताः ॥८॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरही सर्वजगत्के उत्पत्तिका कारणहूं तथा मैं परमेश्वरतेंही सर्व प्रवृत्त होवैहै इसप्रकारतें मानिकरिकै बुद्धिमान् जन प्रेमरूपभावकरिकै युक्त हुए मैं परमेश्वरकूं आराधन करैंहैं ८

भा० टी-हे अर्जुन ! वासुदेवनामा मैं परब्रह्मही इस सर्वजगत्के उत्पत्तिका कारण हूं अर्थात् मैं परमेश्वरही इस सर्वजगत्का उपादानकारणरूप हूं तथा निमित्तकारणरूप हूं तथा इस जगत्के स्थितिनाशादिक

सर्व व्यवहारभी मैं परमेश्वरवेंही प्रवर्त्त होवैंहैं अर्थात् सर्वशक्तिसंपन्न तथा सर्वज्ञ ऐसे मैं अंतर्यामी परमेश्वरकरिकै प्रेरणा कऱ्याहुआ यह सूर्यचंद्रमादिक सर्वजगत् आपणी आपणी मर्यादाका नहीं उल्लंघनकरिकै प्रवर्त्त होवैहै । अथवा प्रत्यक्साक्षी आत्मारूप मैं परमेश्वरकी सत्तास्फूर्तिकूं पाइकै यह बुद्धि इंद्रियादिक सर्वप्रपंच नानाप्रकारकी चेष्टाकूं करै हैं । इस प्रकारके मैं परमेश्वरके स्वरूपकूं जानिकरिकै विवेककरिकै जान्या है तत्त्ववस्तु जिन्होंनैं ऐसे बुद्धिमान् पुरुष परमार्थतत्त्वका ग्रहणरूप प्रेमरूप-भावकरिकै युक्त हुए मैं परमेश्वरकूं भजैंहैं अर्थात् नित्य निरंतर मैं परमेश्वरकाही चिंतन करैं हैं ॥ ८ ॥

हे भगवन् ! सो आपका प्रेमपूर्वक भजन कैसा होवैहै ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् तिस प्रेमपूर्वक भजनका स्वरूप वर्णन करैंहैं—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयंतः परस्परम् ॥
कथयंतश्च मां नित्यं तुष्यंति च रमंति च ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) मच्चित्ताः । मद्गतप्राणाः । बोधयंतः । परस्परम् । कथयंतः । च । माम् । नित्यम् । तुष्यंति । च । रमंति । च ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरविषे है चित्त जिन्होंका तथा मैं परमेश्वरकूं प्राप्तहुए हैं प्राण जिन्होंके तथा परस्पर मैं परमेश्वरकाही बोधन करतेहुए तथा नित्यंही मैं परमेश्वरकूं कथन करतेहुए ते हमारे भक्त संतोषकूं प्राप्त होवैंहैं तथा सुखकूं अनुभव करैंहैं ॥ ९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरविषेही है चित्त जिन्होंका तिनोंका नाम मच्चित्त है अथवा मैं परब्रह्मही हूं चित्तविषे जिन्होंके तिन्होंका नाम मच्चित्त है । अर्थात् जे पुरुष चित्तकरिकै मैं परमेश्वरकाही सर्वदा चिंतन करैं हैं और परमेश्वरकूं ही प्राप्त हुए हैं प्राण क्या चक्षु आदिक इंद्रिय जिन्होंके तिन्होंका नाम मद्गतप्राण है अर्थात् मैं परमेश्वरके वास्तै ही है चक्षुआदिक इंद्रियोंका व्यापार जिन्होंके तिन्होंका

नाम मद्गतप्राण है । अथवा बाह्यविषयोंतै निवृत्त करिकै मैं परमेश्वर विषेही लय करैं हैं चक्षुआदिक सर्व करण जिन्होंनै तिन्होंका नाम मद्गतप्राण है । अथवा मैं परमेश्वरके भजनअर्थ है प्राण क्या जीवन जिन्होंका अन्य किसी प्रयोजनवासतै जिन्होंका जीवन है नहीं तिन्होंका नाम मद्गतप्राण है । तथा जे पुरुष विद्वान् पुरुषोंकी सभाविषे श्रुतिवचनों-करिकै तथा श्रुतिअनुकूल युक्तियोंकरिकै अन्योन्य मैं परमेश्वरकाही बोधन करै है तथा जे पुरुष नित्यप्रति आपणे श्रद्धावान् शिष्योंके ताई मैं परमेश्वरकाही ज्ञेयरूपकरिकै तथा ध्येयरूपकरिकै उपदेश करै है इस-प्रकार मैं परमेश्वरविषे जो चित्तका अर्पण है तथा बाह्यनेत्रादिक करणोंका अर्पण है तथा आपणे जीवनका अर्पण है तथा स्वसमान पुरुषोंका जो परस्पर मैं परमेश्वरका बोधन है तथा आपणेतै न्यूनबुद्धिवाले शिष्योंके ताईं जो मै परमेश्वरका उपदेश करणा है यहही मै परमेश्वरका भजन हैं इस प्रकारके मै परमेश्वरके भजनकरिकैही वे विद्वान् पुरुष तोषकूं प्राप्त हुएहैं अर्थात् इस परमेश्वरके भजनकी प्राप्तिकरिकैही हम कृतकृत्य हुएहै इस भगवद्भजनतैं अन्य कोईभी पदार्थ हमारे इष्टका साधन नहीं है इस प्रकारके ज्ञानरूप संतोषकूं प्राप्त हुएहै । तथा तिस संतोषकरिकै ही ते विद्वान् जन सर्वतैं उत्तम सुखकूं अनुभव करैं हैं । संतोषकरिकै ही उत्तम सुखकी प्राप्ति होवैहै यह वार्त्ता पतंजलि भगवान्नैभी कथन करीहै । तहां सूत्र-(संतोषादनुत्तमः सुखलाभः इति। अर्थ यह-इस अधिकारी पुरुषकूं तिस संतोषतैंही सर्वतैं उत्तम सुखकी प्राप्ति होवैहै। यह वार्त्ता पुराणविषेभी कथन करीहै। तहां श्लोक-(यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् । तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ।) अर्थ यह-इसलोकविषे जितनाक विषयजन्य सुख है तथा स्वर्गादिक लोकों-विषे जितनाक विषयजन्य महान् दिव्यसुखहै ते सर्वसुख तृष्णाकी निवृ-त्तिरूप संतोषजन्यसुखके षोडशवें भागके तुल्यभी नहीं होवैं है ॥ ९ ॥

हे अर्जुन ! जे अधिकारी जन इस पूर्वउक्त प्रकारते मैं परमेश्वरका भजन करैहैं तिन अधिकारी जनोंकूं मैं परमेश्वरभी तिस बुद्धियोगकी प्राप्तिकरिकै आपणे निर्गुणस्वरूपकीही प्राप्ति करूंहूं । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैहैं–

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ॥
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयांति ते ॥१०॥

(पदच्छेदः) तेषाम् । सततयुक्तानाम् । भजताम् । प्रीतिपूर्वकम् । ददामि । बुद्धियोगम् । तम् । येन । माम् । उपयांति । ते १०

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरविषे है एकाग्रबुद्धि जिन्होंकी तथा प्रीतिपूर्वक मैं परमेश्वरका भजन करणेहारे तिन भक्तजनोंके विसं पूर्वउक्त बुद्धियोगकूं मैं परमेश्वर उत्पन्नकरूंहूं जिस बुद्धियोगकरिकै ते भक्तजन मैं परमेश्वरकूं आपणा आत्मारूपकरिकै प्राप्तहोवैं है ॥ १० ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! पूर्व (मच्चित्ता मद्गतप्राणाः) इस श्लोककरिकै कथन कऱ्या जो मैं परमेश्वरके भजनका प्रकार है तिस प्रकारकरिकै जे पुरुष मैं परमेश्वरका भजन करैहैं । तथा सर्वकालविषे मैं परमेश्वरविषे है एकाग्रबुद्धि जिन्होंकी इसी कारणतेंही जे पुरुष लाभ, पूजा, ख्याति इत्यादिक लौकिक प्रयोजनोंकी नहीं इच्छा करतेहुए अत्यंत प्रीतिपूर्वक एक मैं परमेश्वरकाही भजन करैं है । तिन भक्तजनोंके तिस पूर्व उक्त बुद्धियोगकूं मैं परमेश्वरही उत्पन्न करूंहूं । अर्थात (सोऽविकंपेन योगेन युज्यते) इस वचनकरिकै पूर्व कथन कऱ्या जो मैं परमेश्वरके वास्तवस्वरूपकूं विषय करणेहारा सम्यक् दर्शनरूप बुद्धियोग है तिस बुद्धियोगकूं मैं परमेश्वरही उत्पन्न करूंहूं । शंका–हे भगवन् ! तिस बुद्धियोगकरिकै तिन अधिकारी जनोंकूं कौन फल प्राप्त होवैहै?ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता बुद्धियोगका फल कथन करैहै । (येन मामुपयांति ते इति) हे अर्जुन ! जिस बुद्धियोगकरिकै ते हमारे भक्तजन

मैं परमेश्वरकूंही आपणा आत्मारूपकरिकै प्राप्त होवै हैं अर्थात् जैसे घटरूप उपाधिके निवृत्त हुए घटाकाश अभेदरूपकरिकै महाकाशकूं प्राप्त होवै है तथा जैसे श्रीगंगायमुनादिक नदियां आपणे आपणे नाम-रूपका परित्यागकरिकै समुद्रविषे अभेदभावकूं प्राप्त होवैं हैं तैसे ते हमारे भक्तजनभी हमारी भक्तिकरिकै उत्पन्नहुए तत्त्वसाक्षात्कारकरिकै मैं परमे-श्वरकूं अभेदरूपकरिकै प्राप्त होवैं हैं अर्थात् मैं अद्वितीय निर्गुणपरमेश्व-रकूं आपणा आत्मरूपही जानैं हैं ॥ १० ॥

तहां आपणे भक्तजनोंके प्रति परमेश्वरनैं प्राप्त कऱ्या जो तत्त्वज्ञानरूप बुद्धियोग है सो बुद्धियोग जिस अज्ञानकी निवृत्तिरूप व्यापारवाला हुआ आनंदस्वरूप आत्माकी प्राप्तिरूप फलकी प्राप्ति करै है, तिस मध्यवर्ती व्यापारकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

तेषामेवानुकंपार्थमहमज्ञानजं तमः ॥
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥११॥

(पदच्छेदः) तेषाम् । एव । अनुकंपार्थम् । अहम् । अज्ञानजम् । तमः । नाशयामि । आत्मभावस्थः । ज्ञानदीपेन । भास्वता ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिनें भक्तजनोंके ही अनुग्रहार्थ तिन्होंके आत्माकारवृत्तिविषे स्थितहुआ मैं परब्रह्म चिदाभासयुक्त तिसँ वृत्तिज्ञा-नरूप दीपककरिकै तिन्होंके अज्ञानजन्य आवरणरूप तमकूं नाश करूं हूं ॥ ११ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पूर्वउक्त रीतिसें जे अधिकारी जन मैं पर-श्वरका भजन करैं हैं, तिन भक्तजनोंकेही अनुकंपार्थ अर्थात् इन हमारे भक्तजनोंका किसीभी प्रकारकरिकै श्रेय होवै याप्रकारके अनुग्रहवास्तै मैं स्वप्रकाश चैतन्य आनंद अद्वितीयरूप प्रत्यक् आत्मा तिन भक्तजनोंके आत्मभावविषे स्थित हुआ अर्थात् तिन भक्तजनोंकी महावाक्यतैं जन्य जा आत्माकार अंतःकरणकी वृत्ति है ता वृत्तिविषे विषयतारूपकरिकै

स्थित हुआ तिसीही चिदाभासयुक्त अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञानदीपकरिकै अज्ञानजन्य तमकूं नाश करूंहूं । अर्थात् अज्ञान है उपादानकारण जिसका ऐसा जो मिथ्याज्ञानरूप आत्मविषयक आवरणरूप अंधकार है तिस आवरणरूप तमकूं ताके उपादानकारणरूप अज्ञानका नाशकरिकै नाश करूंहूं । काहेतैं लोकप्रसिद्ध सर्व भ्रमस्थलविषे तिस भ्रमका उपादानकारण जो अज्ञान है सो अज्ञान अधिष्ठानके ज्ञानकरिकैही निवृत्त होवैहै अन्य किसी उपायकरिकै सो अज्ञान निवृत्त होवै नहीं । जैसे सर्परजतादिरूप भ्रमका उपादानकारण जो अज्ञान है सो अज्ञान रज्जु शुक्ति आदिक अधिष्ठानके ज्ञानकरिकैही निवृत्त होवै है अन्य किसी उपायकरिकै ता अज्ञानकी निवृत्ति होवै नहीं । तथा सर्व स्थलविषे उपादानकारणके नाश करिकै उपादेयरूप कार्यकाभी अवश्य करिकै नाश होवै है । जैसे मृत्तिका तंतु आदिक उपादानकारणके नाशकरिकै उपादेयरूप घटपटादिक कार्योंकाभी अवश्यकरिकै नाश होवै है । तैसे आत्माका अन्तःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञानकरिकै अज्ञानरूप उपादानकारणके नाश हुएतैं तिस तमरूप उपादेयका नाशभी अवश्यकरिकै होवै है । इहां (ज्ञानदीपेन) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नें आत्मज्ञानविषे दीपककी सादृश्यतारूप रूपालंकार कथन कऱ्या । ता रूपालंकार करिकै श्रीभगवान्नें यह अर्थ सूचन कऱ्या—जैसे दीपक करिकै अंधकारकी निवृत्ति करणेविषे केवल तद्दीपककी उत्पत्तिमात्रही अपेक्षित होवै है तिस दीपककी उत्पत्तितैं भिन्न दूसरे किसी कर्मकी अथवा अभ्यासकी अपेक्षा होवै नहीं । और ता दीपककरिकै अंधकारकी निवृत्ति हुएतैं अनंतर पूर्व विद्यमान घटादिक वस्तुवोंकीही अभिव्यक्ति होवै है पूर्व नहीं उत्पन्न हुई किसी वस्तुकी उत्पत्ति होवै नहीं । तैसे आत्मज्ञानकरिकै अज्ञानकी निवृत्ति करणेविषे तिस आत्मज्ञानकी उत्पत्तिमात्रही अपेक्षित होवै है । तिस आत्मज्ञानकी उत्पत्तितैं भिन्न दूसरे किसी कर्मकी अथवा अभ्यासकी अपेक्षा होवै नहीं। और ताआत्मज्ञानकरिकै अज्ञानकी निवृत्तितैं अनं-

तर पूर्व विद्यमान हुएही ब्रह्मभावरूप मोक्षकी अभिव्यक्ति होवै है कोई पूर्व नहीं उत्पन्न हुए मोक्षकी तिस आत्मज्ञानतैं उत्पत्ति होवै नहीं। जिस उत्पत्ति करिकै तिस मोक्षविषे भी स्वर्गादिक फलोंकी न्याई नाशवत्ता अथवा कर्मादिकोंकी अपेक्षा होवै। और (भास्वता) इस वचन करिकै श्री भगवान्नैं यह अर्थ सूचन कन्या। जैसे वायुतैं रहित देशविषे स्थित प्रकाशमान दीपकविषे तीव्र पवनादिक प्रतिबंधक होवैं नहीं तैसे मैं परमेश्वरकी भक्तिकरिकै प्राप्त हुए आत्मज्ञानविषे असंभावनादिक दोष प्रतिबंधक होवैं नहीं ॥ ११ ॥

इसप्रकारतैं परमेश्वरके विभूतिकूं तथा योगकूं सामान्यतैं श्रवणकरिकै पुनः विशेषकरिकै ता विभूतयोगके श्रवण करणेकी परमउत्कंठाकूं प्राप्तहुआ जो अर्जुन सो प्रथम श्रीभगवान्की स्तुतिकूं करैहै—

अर्जुन उवाच।

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ॥
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥ १२ ॥
आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ॥
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥१३॥

(पदच्छेदः) परम् । ब्रह्म । परम् । धाम । पवित्रम् । परमम् । भवान् । पुरुषम् । शाश्वतम् । दिव्यम् । आदिदेवम् । अजम् । विभुम् । आहुः । त्वाम् । ऋषयः । सर्वे । देवर्षिः । नारदः । तथा । असितः । देवलः । व्यासः । स्वयम् । च । एव । ब्रवीषि । मे ॥ १२ ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! पर ब्रह्म तथा परम धाम तथा परम पवित्र आपहीहो जिसकारणतैं भृगुआदिक सर्व ऋषि तथा देवर्षि नारद तथा असित तथा देवल तथा व्यास यह सर्व हमारे ताई तुम्हारेकूं पुरुष शाश्वत दिव्य आदिदेव अज विभुरूप कथन करै है तथा साक्षात् आपही कथन करते हो ॥ १२ ॥ १३ ॥

भा॰ टी॰—हे भगवन् ! आप परब्रह्मरूप हो अर्थात् तत्त्ववेत्ता पुरुषोंकूं प्राप्त होणेयोग्य जो सर्व उपाधियोंतैं रहित निर्विशेष ब्रह्म है सो आपही हो। इहां (परम्) इस विशेषणकरिकै उपासनाकरणे योग्य सोपाधिक अपरब्रह्मकी व्यावृत्ति कथन करी है। काहेतैं (तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते) यह श्रुति उपासनाकरणे योग्य सोपाधिक अपरब्रह्मका निषेध करिकै निर्विशेष चैतन्यकूंही ब्रह्म कहै है। पुनः कैसे हो आप—परमधाम हो अर्थात् स्थूलतैं आदिलेके अव्याकृतपर्यंत सर्वप्रपंचका आश्रयरूप हो अथवा परमप्रकाशरूप हो। इहांभी (परम्) इस विशेषणकरिकै वृत्तिरूप अपरप्रकाशकी व्यावृत्ति कथन करी है। काहेतैं (ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव) यह श्रुति तिस वृत्तिरूप ज्ञानकूं मनकाही परिणामविशेष कथन करै है। पुनः कैसे हो आप—परम पवित्र हो अर्थात् लोकशास्त्रविषे प्रसिद्ध जितनेक पावन करणेहारे तीर्थादिक हैं तिन सर्वोंतै आप परम उत्तम पावन करणेहारे हो। काहेतैं श्रद्धापूर्वक करेहुए ते तीर्थादिक इस पुरुषके केवल पापकर्मकूंही नाश करैं हैं तिन पापकर्मोंके कारणरूप अज्ञानकूं नाश करते नहीं। और आप परब्रह्म तौ इन अधिकारी पुरुषोंके वृत्तिविषे आरूढ होइकै अज्ञानरूप कारण सहित सर्व पापकर्मोंकूं नाश करो हो। या कारणतैंही (पवित्राणां पवित्रं यो मंगलानां च मंगलम् ।) इत्यादिक स्मृति वचन आपकूं पवित्रकरणेहारे तीर्थादिक सर्व पवित्रोंकाभी पवित्र करणेहारा कथन करैं हैं। तथा सर्व मंगलोंकाभी मंगलरूप कथन करैहैं। शंका—हे अर्जुन ! ऐसा हमारा स्वरूप तुमनैं केवल आपणी बुद्धिकरिकै निश्चय कऱ्याहै अथवा किसी प्रमाणतैं निश्चय कऱ्याहै ? ऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन तिस उक्त स्वरूपविषे परमआप्तरूप ऋषियोंके तथा साक्षात् श्रीभगवान्‌के वचनरूप प्रमाणकूं कथन करैहै (पुरुषं शाश्वतम्) इत्यादिक सार्द्धश्लोककरिकै हे भगवन् ! ज्ञाननिष्ठावाले जे भृगुवसिष्ठादिक सर्व ऋषि हैं तथा देवऋषि जो है तथा असितऋषि जो है तथा देवल-

ऋषि जो है, तथा साक्षात् विष्णुका अवतारूप जो व्यासमुनि है यह सर्वऋषिभी हमारे ताईं इसीप्रकारके तुम्हारे स्वरूपकूं कथन करतेभये हैं। ते भृगु आदिक सर्व ऋषि किसप्रकारके हमारे स्वरूपकूं कथन करतेभये हैं ? ऐसी श्रीभगवान्की शंकाके हुए अर्जुन कहै है (पुरुषमिति) हे भगवन् ! ते भृगु आदिक सर्व ऋषिभी अनंतमहिमावाले आप परमेश्वरकूं पुरुष कहैं हैं अर्थात् (पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परागतिः) इसश्रुतिविषे पुरुषशब्दकरिकै कथन कन्या जो निर्विशेष परब्रह्म है तिस परब्रह्मरूप आपकूं कथन करैहैं। तथा ते ऋषि आपकूं शाश्वत कहैं हैं। अर्थात् भूत भविष्यत् वर्तमान सर्वकालविषे एकरूप कहैं हैं ! तथा ते ऋषि आपकूं दिव्य कहैं हैं। तहां (परमे व्योमन्सर्वा भूतानि) इस श्रुतिविषे परमव्योमशब्दकरिकै कथन कन्या जो स्वस्वरूप है ता स्वस्वरूपका नाम दिव है ता दिवविषे जो विराजमान होवै है ताका नाम दिव्य है। ऐसे दिव्यरूप आपकूं कहैहैं। अर्थात् सर्व प्रपंचतैं रहित कहैहैं। तथा ते ऋषि आपकूं आदिदेव कहैहैं। इहां सर्व जगत्के कारणका नाम आदि है और स्वप्रकाशका नाम देव है जो आदि होवै तथा देव होवै ताका नाम आदिदेव है अर्थात् ते ऋषि आपकूं सर्व जगत्का कारणरूप तथा स्वप्रकाशरूप कहैं हैं। इहां कारणकी स्वप्रकाशता कहणेतैं नैयायिकोंनैं कल्पना करे हुए परमाणुरूप कारणकी तथा सांख्यियोंनैं कल्पना करेहुए प्रधानरूप कारणकी व्यावृत्ति करी । ते प्रधानपरमाणु आदि सर्व जड होणेतैं परप्रकाशही हैं। तथा ते ऋषि आपकूं अज कहैहैं अर्थात् जन्मोंतैं रहित कहैहैं। तथा ते ऋषि आपकूं विभु कहैहैं। अर्थात् सर्वत्र व्यापक कहैं हैं। हे भगवन् ! केवल ते भृगुआदिक ऋषिही हमारे ताईं इसप्रकारके तुम्हारे स्वरूपकूं नहीं कथन करैं हैं किंतु जिस आप परमेश्वरके वेदरूपवचनोंके अनुसारी हुएही तिन भृगुआदिक ऋषियोंके वचन प्रमाणरूप होवैं हैं। ऐसे साक्षात् आप भगवान्ही हमारे ताईं (भोक्तारं यज्ञतपसाम् । सर्वभूतस्थितं यो माम् ।) इत्यादिक वचनों-

करिकै इसी प्रकारके आपके स्वरूपकूं कथन करतेभये हो । यहां यद्यपि (आहुस्त्वामृषयः सर्वे) इस वचनविषे स्थित जो सर्व यह शब्द है ता सर्वशब्दकरिकै ही तिन नारदादिक सर्वऋषियोंका ग्रहण होइसकै है तथापि नारद, असित, देवल, श्रीव्यास इन चारोंका जो अर्जुननैं नाम लैके पृथक् ग्रहण कऱ्याहै सो साक्षात् परमेश्वरके स्वरूपके वक्तापणेकरिकै तिन नारदादिकोंकी अत्यंत श्रेष्ठताके बोधन करणेवासतै है इति । और (आहुस्त्वामृषयः सर्वे) इस वचनकरिकै जो अर्जुननैं आपणे निश्चयविषे ऋषियोंके वचनोंकी संमति कथन करीहै ताकरिकै यह अर्थ सूचन कऱ्याहै । इन अधिकारी पुरुषोंनैं शास्त्रद्वारा आपणी बुद्धिकरिकै निश्चयकऱ्याहुआभी आत्माका स्वरूप है ताके विषे पुनः संशयकी अनुत्पत्तिवासतै ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुषोंकी संमति अवश्य करिकै ग्रहण करणी ॥ १२ ॥ १३ ॥

तहां गुरुशास्त्र उपदिष्ट अर्थविषे इस अधिकारी पुरुषनैं कदाचित्भी संशय नहीं करणा किंतु सो गुरुशास्त्रनैं उपदेश कऱ्याहुआ सर्व अर्थ सत्य है याप्रकारकी सत्यत्वबुद्धिही करणी । इस अर्थकूं सूचनकरताहुआ सो अर्जुन तिन वचनोंविषे आपणे सत्यत्वबुद्धिकूं कथन करैहै—

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ॥
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥ १४ ॥

(पदच्छेदः) सर्वम् । एतत् । ऋतम् । मन्ये । यत् । माम् । वदसि । केशव । न । हि । ते । भगवन् । व्यक्तिम् । विदुः । देवाः । न । दानवाः ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे केशव ! मे अर्जुनकप्रति जो वचन आप कथन करतेहो यह सर्ववचन मैं सत्य मानताहूं जिसकारणतैं हे भगवन् तुम्हारे प्रभावकूं देवताभी नहीं जानतेहैं तथा दानवभी नहीं जानते हैं ॥ १४ ॥

भा० टी०—हे केशव! मैंअर्जुनके प्रति जो पूर्व आपनैं आपका स्वरूप कथन कऱ्या।तथा भृगुआदिकसर्वऋषियोंनैंजो आपका स्वरूप कथनकऱ्याहै तिन सर्व वचनोंकूं मैं अर्जुन सत्यही मानता हूं।हे भगवन् ! तुम्हारेवचनों-विषे हमारेकूं किंचित्मात्रभी अप्रमाणपणेकी शंका नहीं है। इस हमारे हृदयकी वार्त्ताकूं सर्वज्ञ होणेतैं आप जानतेही हो। यह अर्थ अर्जुननैं केशव इस संबोधनकरिकै सूचन कऱ्या। तहां (केशौ वाति अनुकम्पतया अवगच्छतीति केशवः) अर्थ यह—क नाम ब्रह्माका है और ईश नाम रुद्रका है तिन दोनोंकूं अनुग्रहकरिकै जो प्राप्तहोवै ताका नाम केशव है। इसप्रकारकी व्युत्पत्ति अंगीकार करिकै सो केशव शब्द निरतिशय ऐश्वर्यकाही प्रतिपादक है। ऐसे केशवनामवाले आप परमेश्वर हमारे हृदयके वृत्तांतकूं जानतेही हो इति। यातैं हे भगवन् ! जो पूर्व आपनैं (न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः) इत्यादिक वचन कथन करेथे ते सर्व आपके वचन यथार्थही है। हे भगवन् ! अर्थात् हे *समग्रऐश्वर्यादिकषट्भगसंपन्न* ! तुम्हारे प्रभावकूं बहुतबुद्धिमान् इंद्रादिकदेवताभी जानि सकते नहीं। तथा तुम्हारे प्रभावकूं मधुआदिक दानवभी जानिसकते नहीं। तथा तुम्हारे प्रभावकूं भृगुआदिक महान् ऋषिभी जानिसकते नहीं। जबी तिस तुम्हारे प्रभावकूं सर्वज्ञ इंद्रादिक देवता तथा मधुआदिक दानव तथा भृगुआदिक महान् ऋषिभी नहीं जानिसकते तबी इदानींकालके अल्पज्ञ मनुष्य तिस आपके प्रभावकूं नहीं जानैं हैं याकेविषे क्या कहणा है ॥ १४ ॥

हे भगवन् ! जिसकारणतैं आप परमेश्वर तिन देवता ऋषि आदिक सर्वोंका आदिकारण हो तथा तिन देवतावोंकरिकैभी जानणेकूं अशक्य हो तिसकारणतैं तुम आपही आपके प्रभावकूं यथावत् जानते हो। इस अर्थकूं अब अर्जुन कथन करै है—

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ॥
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥ १५ ॥

(पदच्छेदः) स्वयम् । एव । आत्मना । आत्मानम् । वेत्थ । त्वम् । पुरुषोत्तम । भूतभावन । भूतेश । देवदेव । जगत्पते ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे पुरुषोत्तम ! हे भूतभावन ! हे भूतेश ! हे देवदेव ! हे जगत्पते ! श्रीभगवन् ! अन्यके उपदेशवैविनाँही तूं आपणे स्वरूपकरिकै आपणे आत्माकूं जानता है ॥ १५ ॥

भा० टी०—हे भगवन् ! अन्य किसीके उपदेशवैं विनाही तूं आपही आपणे स्वप्रकाशस्वरूपकरिकै आपणे निरुपाधिक स्वरूपकूं तथा सोपाधिक स्वरूपकूं जानता है । तहां आपणे निरुपाधिक शुद्धस्वरूपकूं तौ प्रत्यक्-रूपकरिकै तथा अविषयतारूपकरिकै जानता है । और आपणे सोपाधिक स्वरूपकूं तौ निरतिशयज्ञानऐश्वर्यादिक शक्तिमत् रूपकरिकै जानता है अन्य कोई देवता वा ऋषि वा दानव वा मनुष्य तिस तुम्हारे स्वरूपकूं जानता नहीं । शंका—हे अर्जुन ! अन्यदेवतादिकोंके करिकै जानणेकूं अशक्य स्वरूपकूं मैं परमेश्वरभी कैसे जानूंगा ? ऐसी भगवान्की शंकाकूं निवृत्त करता हुआ अर्जुन अत्यंतप्रेमकी उत्कंठाकरिकै श्रीभगवान्के बहुत संबोधनोंकूं कथन करै है (हे पुरुषोत्तम) अर्थात् हे सर्वपुरुषोंविषे श्रेष्ठ । तात्पर्य यह—तुम्हारी अपेक्षाकरिकै दूसरे सर्वपुरुष अपकृष्टही हैं। यातैं तिन दूसरे पुरुषोंकूं जो अर्थ जानणेकूं अशक्य है सो अर्थ सर्वतैं उत्तम तैं परमेश्वरकूं जानणेकूं शक्यही है इति । अब परमेश्वरविषे कथन कऱ्या जो पुरुषोत्तमपणा है तिस पुरुषोत्तमपणेकूं पुनः च्यारि संबोधन करिकै प्रतिपादन करै है (हे भूतभावन इति) तहां सर्वभूतोंकूं जो उत्पन्न करै है ताका नाम भूतभावन है अर्थात् हे सर्वभूतोंके पिता ! तहां इसलोकविषे कोईक पुरुष पिता हुआभी पुत्रादिकोंका नियंता होतानहीं तैसे परमेश्वरभी तिन सर्व भूतोंका पिता हुआभी तिन सर्वभू-तोंका नियंता नहीं होवैगा किंतु सो परमेश्वर तौ भिन्नही कोई तिन भूतोंका नियंता होवैगा । ऐसी शंकाके निवृत्तकरणेवासतै अर्जुन वा परमेश्वरका अन्य संबोधन कहै है (हे भूतेश इति) अर्थात् हे सर्वभूतोंके नियंता ।

तहां इसलोकविषे कोईक राजादिकपुरुष आपणी प्रजादिकोंके नियंता हुएभी तिन प्रजादिकोंकरिकै आराधन करणेयोग्य होते नहीं तैसे सो परमेश्वरभी तिन सर्वभूतोंका नियंता हुआभी तिन सर्वभूतोंकरिकै आराधनकरणेयोग्य नहीं होवैगा किंतु ता परमेश्वरतें भिन्न ही कोई आराधनकरणेयोग्य होवैगा । ऐसी शंकाके निवृत्त करणेवासतै अर्जुन ता परमेश्वरका अन्यसंबोधन कहै हैं (हे देवदेव इति) तहां सर्वप्राणियोंकरिकै आराधन करणेयोग्य जे इंद्रादिक देवता हैं, तिन इंद्रादिक देवतावोंकरिकै भी जो आराधन कऱ्याजावै है ताका नाम देवदेव है अर्थात् हे देवतावोंतें आदिलेके सर्वप्राणियोंकरिकै आराधन करणेयोग्य ! तहां इसलोकविषे कोईक पुरुष आराधन करणेयोग्य हुआभी पालनकर्त्तारूपकरिकै पति होता नहीं । तैसे सो परमेश्वरभी आराधनकरणेयोग्य हुआभी पालनकर्त्तारूपकरिकै पति नहीं होवैगा । किंतु तिस परमेश्वरतें भिन्नही कोई इस जगत्का पति होवैगा । ऐसी शंकाके निवृत्त करणेवासतै अर्जुन तिस परमेश्वरका अन्य संबोधन कहै है (हे जगत्पते इति) अर्थात् अधिकारीजनोंके प्रति हितका उपदेश करिकै शुभकर्मोंविषे प्रवृत्त करणेहारा तथा अहितका उपदेशकरिकै अशुभकर्मोंतें निवृत्त करणेहारा ऐसा जो देव है ता देवकूं सृष्टिके आदिकालविषे उत्पन्नकरिकै आपही इस सर्व जगत्कूं पालन करते हो । यातें यह अर्थ सिद्ध भया । इस प्रकारके सर्वविशेषणोंकरिकै विशिष्ट आप परमेश्वरही सर्व प्राणियोंके पिता हो तथा सर्व प्राणियोंके गुरु हो तथा सर्व प्राणियोंके राजा हो । इस कारणतेंही आप सर्वप्रकारकरिकै सर्वप्राणियोंकूं आराधन करणेयोग्य हो । ऐसे महान्प्रभाववाले आपविषे पुरुषोत्तमपणाहै याकेविषे क्या कहणाहै ॥ १५ ॥

हे भगवन् ! जिस कारणतें आप परमेश्वरकी विभूतियोंकूं अन्य कोईभी देवता वा ऋषि वा दानव वा मनुष्य जानिसकता नहीं । और ते आपकी विभूतियां हमारेकूं अवश्यकरिकै जानणी चाहियें । तिस कारणतें ते

आपकी विभूतियां आपही हमारे प्रति विस्तारतैं कथन करो, इसप्रकारकी प्रार्थना अर्जुन करैहै—

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ॥
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि १६

(पदच्छेदः) वक्तुम् । अर्हसि । अशेषेण । दिव्याः । हि । आत्मविभूतयः । याभिः । विभूतिभिः । लोकान् । इमान् । त्वम् । व्याप्य । तिष्ठसि ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! जिन विभूतियोंकरिकै इन सर्वलोकोंकूं व्यापकरिकै तुम स्थित हो ते विभूतियां जिस कारणतें दिव्य हैं तिस कारणतैं आपही ते समग्र आपणी विभूतियां कहणेकूं योग्य हो ॥ १६ ॥

भा० टी०—हे भगवन् ! जिन आपणी विभूतियों करिकै आप इस मनुष्यलोकतें आदिलैके ब्रह्मलोक पर्यंत सर्व लोकोंकूं व्याप्तकरिकै स्थित हो ते आपकी असाधारण विभूतियां जिस कारणतें दिव्य हैं अर्थात् अस्मदादिक असर्वज्ञ पुरुषोंनैं आपेही जानणेकूं अशक्य हैं । तथा अवश्यकरिकै जानणी चाहिये । जिस कारणतें आप सर्वज्ञही ते आपणी समग्रविभूतियां कहणेकूं योग्य हो ॥ १६ ॥

हे अर्जुन ! लोकविषे प्रयोजनतें विना किसीभी चेतन प्राणीकी प्रवृत्ति होती नहीं किंतु किसी प्रयोजनका उद्देशकरिकैही सर्व प्राणियोंकी प्रवृत्ति होवै है । यातैं तिन विभूतियोंके जानणे करिकै तुम्हारा जो प्रयोजन सिद्ध होता होवै सो आपणा प्रयोजन तूं प्रथम हमारे प्रति कथन कर पश्चात् मैं तुम्हारे ताईं ते आपणी विभूतियां कथन करौंगा । ऐसी श्रीभगवान्की शंकाके हुए अर्जुन दो श्लोकों करिकै ता आपणे प्रयोजनकूं कथन करै है—

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिंतयन् ॥
केषुकेषु च भावेषु चिंत्योसि भगवन्मया ॥१७॥

(पदच्छेदः) कथम् । विद्याम् । अहम् । योगिन् । त्वाम् । सदा । परिचिंतयन् । केषु । केषु । च । भावेषु । चिंत्यः । असि । भगवन् । मया ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे योगिन् ! मैं स्थूलबुद्धिवाला अर्जुन सर्वदातुम्हारा ध्यानकरता हुआ तुम्हारेकूं किसप्रकारतें जानूं हे भगवन् किनें किनें वस्तुवोंविषे मे अर्जुननै तूं परमेश्वर चिंतनकरणे योग्य है ॥ १७ ॥

भा० टी०—हे योगिन् ! इहां निरतिशय ऐश्वर्यादिक शक्तिका नाम योग है सो योग जिसविषे विद्यमान होवै ताका नाम योगिन् है अर्थात् हे निरतिशयऐश्वर्यादिक शक्तिवाला कृष्ण भगवन् ! अत्यंतस्थूल बुद्धिवाला मै अर्जुन सर्वकालविषे तुम्हारा ध्यान करता हुआ देवादिकोंकरिकै भी जानणेकूं अशक्य तै परमेश्वरकूं किस प्रकारतें जानूं । शंका—हे अर्जुन ! हमारी विभूतियोंविषे मै परमेश्वरकूं ध्यान करता हुआ तूं मै परमेश्वरकूं जानैगा । यहही हमारे जानणेका प्रकार है । ऐसी श्रीभगवान्‌की शंकाके हुए जिन विभूतियोंविषे स्थित आपका ध्यान करता हुआ मै आपकूं जानूंगा तिन विभूतियोंकूंही मै प्रथम जानता नहीं । इस प्रकारके उत्तरकूं अर्जुन कथन करै है (केषुकेषु च भावेषु इति) हे भगवन् ! तुम्हारी विभूतिरूप किनकिन चेतन अचेतनरूप वस्तुवोंविषे मैं अर्जुन करिकै आप चिंतनकरणे योग्य हो ? अर्थात् किनकिन विभूतियोंविषे मैं अर्जुन आपका चिंतन करूं ॥ १७ ॥

हे भगवन् ! जिनजिन विभूतियोंविषे आप चिंतन करणे योग्य हो तिन विभूतियोंकूं मै अर्जुन जानता नही, इस कारणतैं आपही कृपाकरिकै तिन आपणे विभूतियोंकूं कथन करो । इस प्रकारकी प्रार्थना अर्जुन करै है—

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ॥
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् १८

(पदच्छेदः) विस्तरेण। आत्मनः। योगम्। विभूतिम्। च। जनार्दन। भूयः। कथय। तृप्तिः। हि। शृण्वतः। न। अस्ति। मे। अमृतम्॥ १८॥

(पदार्थः) हे जनार्दन ! आप आपणे योगकूं तथा विभूतिकूं पुनः विस्तारकरिकै कथन करो जिसकारणतें तुम्हारे वचनरूप अमृतकूं श्रवण करिकै पानकरतेहुए मैं अर्जुनकी तृप्ति नहीं होवै है॥ १८॥

भा० टी०–हे जनार्दन ! सर्वज्ञपणा तथा सर्वशक्तिसंपन्नपणा इत्यादिक ऐश्वर्यतारूप जो योग है तथा अधिकारीजनोंके ध्यानका आलंबनरूप जा विभूति है ऐसे आपणे योगकूं तथा विभूतिकूं आप पुनः विस्तारकरिकै कथन करो। यद्यपि तिस आपणे योगकूं तथा विभूतिकूं आप पूर्व सप्तम अध्यायविषे तथा नवम अध्यायविषे संक्षेपतैं कथन करिआये हो तथापि अबी तिस योगकूं तथा विभूतिकूं विस्तार करिकै कथन करो। यह अर्थ अर्जुननैं (भूयः) इस शब्दके कहणेकरिकै सूचन कर्‍याहै। और (हे जनार्दन) इस संबोधनके कहणेकरिकै अर्जुननैं श्रीभगवान्‌के प्रति यह अर्थ सूचन कर्‍या। सर्व जनोंनैं स्वर्गादिक सुखोंकी प्राप्तिवासतै तथा मोक्षकी प्राप्तिवासतै जिसके प्रति याचना करीतीहै ताका नाम जनार्दन है। ऐसे आप जनार्दनके आगे यह हमारी याचनाभी उचित है इति। शंका–हे अर्जुन ! पूर्व कथन करेहुए अर्थकी पुनः कथन करणेकी याचना तूं किसवासतै करताहै। पूर्व कथन करेहुए अर्थका पुनः कथन करणा पीसेहुए अन्नकूं पुनः पीसणेकी न्याई संभवता नहीं। ऐसी श्रीभगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन ता पुनः कथनकरणेकी याचनाविषे कारणकूं कहेहै (तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतमिति) हे भगवन् ! जिस कारणतें अमृतकी न्याई पदपदविषे स्वादु स्वादु ऐसे जे आपके वचन हैं ऐसे आपके अमृतमय वचनोंकूं श्रवण इंद्रियरूप मुखकरिकै पान करतेहुए मैं अर्जुनकी तृप्ति होवी नहीं। अर्थात् इन वचनोंकूं श्रवणकरिकै अबी मैं तृप्त हुआहूं याभका-

रकी अलंबुद्धि करिकै तिन वचनोंके श्रवणविषयक हमारी इच्छा निवृत्त होती नहीं । तिसकारणतैं तिस आपणे योगकूं तथा विभूतिकूं पुनः हमारे प्रति विस्तारतैं कथन करो ॥ १८ ॥

अब इस पूर्वउक्त अर्जुनके प्रश्नका उत्तर श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

श्रीभगवानुवाच ।

हंत ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ॥
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यंतो विस्तरस्य मे ॥१९॥

(पदच्छेदः) हंत । ते । कथयिष्यामि । दिव्याः । हि । आत्मविभूतयः । प्राधान्यतः । कुरुश्रेष्ठ । न । अस्ति । अंतः । विस्तरस्य । मे ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे कुरुवंशविषे श्रेष्ठ अर्जुन मैं अबी तुम्हारे ताईं प्रसिद्ध तथा दिव्य आपणी विभूतियां प्रधानताकरिकै कथन करताहूं जिसकारणतैं मैं परमेश्वरकी विभूतियोंके विस्तारका कोई पार नहीं है ॥ १९ ॥

भा० टी०–इहां (हंत) यह शब्द इदानींकालका वाचक है अर्थात् अबीही ते विभूतियां मैं तुम्हारे ताईं कहताहूं अथवा हंत यह शब्द अनुमतिका वाचक है अर्थात् मैं परमेश्वरके आगे तुमनैं जिस अर्थके जानणेकी प्रार्थना करी है सो अर्थ अवश्यकरिकै तुम्हारे ताईं कथन करूंगा तूं व्याकुल मतहोउ । इसप्रकार अर्जुनकूं धैर्य देकरिकै श्रीभगवान् तिस अर्थके कथन करणेका प्रारंभ करैं हैं । हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरकी जे असाधारणविभूतियां दिव्यरूपकरिकै प्रसिद्ध हैं वे आपणी विभूतियां मैं परमेश्वर तैं अर्जुनके ताईं प्रधानताकरिकै कथन करताहूं । अर्थात् आपणी प्रधानप्रधान विभूतियोंकूं मैं कथन करताहूं । शंका–हे भगवन् ! जितनी आपकी प्रधानरूप तथा अप्रधानरूप विभूतियां हैं ते सर्वही विभूतियां आप हमारे ताईं कथन करो । केवल प्रधानप्रधान विभूतियोंकूं किसवासतै कथन करते हो ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन आपणे विभूतियोंकी अनंतताकूं कथन करैं हैं (नास्त्यंतो

विस्तरस्य मे इति) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरकी जितनीक प्रधानरूप तथा अप्रधानरूप सर्वविभूतियां हैं ते सर्वविभूतियां कथन करणेकूं अशक्य हैं। जिसकारणतैं मैं परमेश्वरके तिन विभूतियोंके विस्तारका कोई अंत नहीं है अर्थात् सर्वविभूतियां इतनी हैं या प्रकारकी इयत्तासंख्यातैं रहित हैं। तिस कारणतैं प्रधान प्रधानभूत कोईक विभूतियांही मैं तुम्हारे ताईं कथन करताहूं ॥ १९ ॥

तहां तिन प्रधानप्रधान विभूतियोंविषेभी जो प्रथम मुख्य वस्तु चिंतनकरणेयोग्य है तिसकूं तूं श्रवण कर—

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ॥
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामंत एव च ॥ २० ॥

(पदच्छेदः) अहम् । आत्मा । गुडाकेश । सर्वभूताशयस्थितः । अहम् । आदिः । च । मध्यम् । च । भूतानाम् । अंतः । एव । च ॥ २० ॥

(पदार्थः) हे गुडाकेश अर्जुन ! सर्व भूतोंके हृदयदेशविषे स्थित चैतन्य आनंदघन मैंहीहूं तथा मैं परमेश्वरही सर्वभूतोंका उत्पत्ति हूं तथा स्थिति हूं तथा विनाश हूं ॥ २० ॥

भा० टी०—हे गुडाकेश अर्जुन ! सर्वप्राणियोंके हृदयदेशविषे अंतर्यामिरूपकरिकै तथा प्रत्यक् आत्मारूपकरिकै स्थित जो चैतन्यस्वरूप आनंदघन परमात्मादेव है सो परमात्मा वासुदेव मैं ही हूं। इसप्रकारतैं अभेदरूप करिके तुमनैं मैं परमेश्वरका ध्यान करणा। इहां (हे गुडाकेश) इस संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कऱ्या—गुडाका नाम निद्राका है ता निद्राकूं जो आपणे वश करै है ताका नाम गुडाकेश है। ऐसा निद्रादिक विकारोंकूं आपणे वश करणेहारा तूं अर्जुन अभेदरूपकरिकै मैं परमेश्वरके ध्यानकरणेविषे समर्थ है इति। इतनेकरिकै उत्तम अधिकारी पुरुषोंके ध्यानका प्रकार कथन कऱ्या। अब

मध्यम अधिकारी पुरुषोंके ध्यानका प्रकार निरूपण करैं हैं (अहमादिः इति) हे अर्जुन ! इसप्रकारतें अभेदरूपकरिकै मैं परमेश्वरके ध्यानकरणेविषे जो तूं समर्थ नहीं होवै तौ आगे कथन करणेयोग्य ध्यान तुम्हारेकूं करणेयोग्य है। तिन वक्ष्यमाण ध्यानोंविषेभी प्रथम जो वस्तु ध्यानकरणेयोग्य है तिसकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं। (अहमादिः इति) हे अर्जुन ! लोकविषे चेतनरूपकरिकै प्रसिद्ध जितनेक प्राणी हैं तिन सर्वप्राणियोंका मैं परमेश्वरही उत्पत्ति हूं। तथा मैं परमेश्वरही तिन सर्वप्राणियोंकी स्थिति हूं। तथा मैं परमेश्वरही तिन सर्वप्राणियोंका विनाश हूं। अर्थात् तिन सर्वप्राणियोंकी उत्पत्ति स्थिति नाशरूप करिकै तथा तिन सर्वप्राणियोंका कारणरूप करिकै मैं परमेश्वरही तुम्हारेकूं ध्यान करणेयोग्य हूं। इतने करिकै मध्यम अधिकारीपुरुषोंके ध्यानका प्रकार कथन कऱ्या ॥ २० ॥

हे अर्जुन ! इस प्रकारके ध्यानकरणेविषेभी जो तूं समर्थ नहीं होवै तौ आगे कथन करणेयोग्य बाह्यध्यानही तुम्हारेकूं करणेयोग्य है। इस प्रकारके अभिप्रायकरिकै श्रीभगवान् मंद अधिकारी पुरुषों ऊपरि अनुग्रह करिकै तिन बाह्यध्यानोंकूं इस दशम अध्यायकी समाप्तिपर्यंत विस्तारतैं कथन करैं हैं–

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ॥
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥ २१ ॥

(पदच्छेदः) आदित्यानाम्। अहम्। विष्णुः। ज्योतिषाम्। रविः। अंशुमान्। मरीचिः। मरुताम्। अस्मि। नक्षत्राणाम्। अहम्। शशी ॥ २१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! आदित्योंके मध्यमें विष्णुनामा आदित्य में परमेश्वर हूं तथा प्रकाशकोंके मध्यमें व्यापकप्रकाशवाला रवि मैं हूं तथा मरुद्गणोंके मध्यमें मरीचिनामा मरुत् मैं हूं तथा नक्षत्रोंके मध्यमें चंद्रमा मैं हूं ॥ २१ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! द्वादश आदित्योंके मध्यमें विष्णुनामा आदित्य मैं हूं । अथवा विष्णु कहिये वामन अवतार मैं हूं । तथा अग्नितैं आदिलैके जितनेक प्रकाश करणेहारे हैं तिन सर्व प्रकाशकोंके मध्यविषे सर्वविश्वविषे व्यापक है प्रकाश जिसका ऐसा जो सूर्य है सो मैं हूं। तथा मरुत्नामा जे उनंचास देवताविशेष हैं तिन मरुतोंके मध्यमैं मरीचिनामा मरुत् मैं हूं । तथा अश्विनीतैं आदिलैके जितनेक आकाशविषे स्थित तारागणरूप नक्षत्र है तिन सर्व नक्षत्रोंके मध्यविषे तिन सर्व नक्षत्रोंका अधिपति चंद्रमा मैं हूं। तात्पर्य यह—ते द्वादश सूर्य तथा अग्निआदिक सर्व ज्योति तथा उनंचास मरुद्गण तथा अश्विनीआदिक सर्वनक्षत्र यह सर्वही यद्यपि सामान्यरूपतैं मै परमेश्वरकीही विभूति हैं तथापि तिनोंके मध्यविषे विष्णुनामा आदित्य तथा रविनामा ज्योति तथा मरीचिनामा मरुत् तथा चंद्रमानामा नक्षत्र यह सर्व प्रभावकी अधिकताकरिकै हमारी विशेषविभूति हैं। यातैं तिन द्वादश आदित्योंविषे विष्णुनामा आदित्य परमेश्वरही है याप्रकार परमेश्वरकी बुद्धिकरिकै सो विष्णुनामा आदित्य इन अधिकारी पुरुषोंनैं ध्यान करणेयोग्य है । इस प्रकारतेंही रवि मरीचि चंद्रमा यह तीनों मैं परमेश्वररूप करिकै ध्यान करणेयोग्य हैं । यह ध्यानकी रीति इस दशम अध्यायकी समाप्तिपर्यंत सर्व पर्यायोंविषे जानिलेणी इति । इहां यद्यपि वामन राम इत्यादिक साक्षात् परमेश्वरके अवतारही हैं तथा सर्व ऐश्वर्यतावाले हैं आदित्यादिकोंकी न्याई परमेश्वरकी विभूतिरूप नहीं हैं तथापि जैसे (वृष्णीनां वासुदेवोस्मि) इस वक्ष्यमाण वचनविषे श्रीभगवान्नैं तिस वासुदेवरूपतैं परमेश्वरके ध्यान करावणेवासतै आपणाभी तिन विभूतियोंविषे ही पठन कऱ्या है। तैसे वामन रामादिकोंकाभी तिसतिस रूपतैं परमेश्वरके ध्यान करावणेवासतै श्रीभगवान्नें आपणी विभूतियोंविषे ही पठन् कऱ्या है ॥ २१ ॥

किंच-

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ॥
इंद्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना॥२२॥

(पदच्छेदः) वेदानाम् । सामवेदः । अस्मि । देवानाम् । अस्मि । वासवः । इंद्रियाणाम् । मनः । च । अस्मि । भूतानाम् । अस्मि । चेतना ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! वेदोंके मध्यमें सामवेद मैं हूं तथा देवतावोंके मध्यमें इंद्र मैं हूं तथा इंद्रियोंके मध्यमें मन मैं हूं तथा भूतोंके मध्यमें चेतना मैं हूं ॥ २२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! ऋग् यजुष् साम अथवर्ण इन च्यारि वेदोंके मध्यविषे गायनकी मधुरताकरिके अत्यंत रमणीक जो सामवेद है सो सामवेद मैं हूं । तथा अग्नि वायु आदि सर्व देवताओंके मध्यविषे तिन सर्व देवताओंका अधिपति जो इंद्र है सो इंद्र मैं हूं । तथा, चक्षु, श्रोत्र, त्वक्, रसना, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ, पायु, मन इन एकादश इंद्रियोंके मध्यविषे सर्व इंद्रियोंका प्रवर्त्तक जो मन है सो मन मैं हूं । तथा सर्वप्राणियोंके संबंधी जितनेक परिणाम हैं तिनोंका नाम भूत है। ऐसे परिणामरूप भूतोंके मध्यविषे चैतन्यकी अभिव्यक्ति करणेहारी जा बुद्धिकी वृत्तिरूप चेतना है सा चेतना मैं हूं ॥ २२ ॥

किंच-

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ॥
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम्॥ २३॥

(पदच्छेदः) रुद्राणाम् । शंकरः । च । अस्मि । वित्तेशः । यक्षरक्षसाम् । वसूनाम् । पावकः । च । अस्मि । मेरुः । शिखरिणाम् । अहम् ॥ २३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! रुद्रोंके मध्यमें शंकर मैं हूं तथा यक्षराक्षसों-के मध्यमें कुबेर मैं हूं तथा वसुवोंके मध्यमें अग्नि मैं हूं तथा रत्नोंवाले पर्वतोंके मध्यमें सुमेरु मैं हूं ॥ २३ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! एकादशरुद्रोंके मध्यविषे आपणे भक्तजनोंके ताई निरतिशय मोक्षरूप आनंदकी प्राप्ति करणेहारा जो शंकरनामा रुद्र है सो शंकर मैं हूं। तथा यक्षोंके तथा राक्षसोंके मध्यविषे संपूर्ण धनका अधिपति जो कुबेर है सो कुबेर मैं हूं। तथा अष्टवसुवोंके मध्यविषे अत्यंत श्रेष्ठ जो अग्नि है सो अग्नि मैं हूं तथा नानाप्रकारके रत्नरूप शिखरोंवाले जितनेक पर्वत हैं तिन सर्व शिखरोंके मध्यविषे सुवर्णमय अत्यंत रमणीय जो सुमेरु है सो सुमेरु मैं हूं ॥ २३ ॥

किंच—

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ॥
सेनानीनामहं स्कंदः सरसामस्मि सागरः ॥ २४ ॥

(पदच्छेदः) पुरोधसाम्। च। मुख्यम्। माम्। विद्धि। पार्थ। बृहस्पतिम्। सेनानीनाम्। अहम्। स्कंदः। सरसाम्। अस्मि। सागरः ॥ २४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्वपुरोहितोंके मध्यमें तूं मैं परमेश्वरकूं सर्वतें श्रेष्ठ बृहस्पतिरूप जान तथा सेनापतियोंके मध्यमें स्कंद मैं हूं तथा जलाशयोंके मध्यमें सागर मैं हूं ॥ २४ ॥

भा० टी०—सर्वराजावोंविषे त्रिलोकीका पति, देवराज इंद्र श्रेष्ठ है ऐसे देवराज इंद्रकाभी पुरोहित जो बृहस्पति है सो बृहस्पति सर्व राजा-वोंके पुरोहितोंतें श्रेष्ठ है यातें तिन सर्व पुरोहितोंके मध्यविषे मैं परमे-श्वरकूं तूं बृहस्पतिरूप जान। तथा सर्व सेनापतियोंके मध्यविषे देवता-वोंका सेनापति जो स्कंद है सो स्कंद मैं हूं तथा देवताओंनें खोदे हुए जितनेक जलके रहणेके स्थान हैं तिन जलाशयरूप सरोवरोंके मध्यविषे सगरके पुत्रोंने खोयाहुआ जो सागर है सो सागर मैं हूं ॥ २४ ॥

किंच-

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ॥
यज्ञानां जपयज्ञोस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥२५॥

(पदच्छेदः) महर्षीणाम् । भृगुः । अहम् । गिराम् । अस्मि । एकम् । अक्षरम् । यज्ञानाम् । जपयज्ञः । अस्मि । स्थावराणाम् । हिमालयः ॥ २५ ॥

(पदार्थः) ! हे अर्जुन महाऋषियोंके मध्यमें भृगुनामा ऋषि मैं हूं तथा सर्वगिरावोंके मध्यमें ओंकाररूप एक अक्षर मैं हूं तथा सर्वय-ज्ञोंके मध्यमें जपरूप यज्ञ मैं हूं तथा सर्वस्थावरोंके मध्यमें हिमालयप-र्वत मैं हूं ॥ २५ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! ब्रह्माके पुत्ररूप जितनेक महाऋषि हैं तिन सर्व महाऋषियोंके मध्यविषे अत्यंत तेजस्वी जो भृगुऋषि है सो भृगुऋषि मैं हूं । तथा अर्थके वाचक पदरूप जितनीक गिरा हैं तिन सर्व गिरावोंके मध्यविषे ब्रह्मका वाचक जो एक अक्षररूप ओंकार पद है सो ओंकार मैं हूं । तथा अश्वमेध ज्योतिष्टोम इसतें आदिलेके जितनेक वेदविषे यज्ञ कथन करे हैं तिन सर्वयज्ञोंके मध्यविषे हिंसादिक सर्वदोषोंतें रहित होणेतें अत्यंत शुद्धि करणेहारा जो जपरूप यज्ञ है सो जपरूप यज्ञ मैं हूं । तथा इसलोकविषे चलायमानतें रहित जितनेक स्थितिवाले स्थावर पदार्थ हैं तिन सर्व स्थावरपदार्थोंके मध्यविषे हिमालय पर्वत मैं हूं २५॥

किंच-

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ॥
गंधर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥२६॥

(पदच्छेदः) अश्वत्थः । सर्ववृक्षाणाम् । देवर्षीणाम् । च । नारदः । गंधर्वाणाम् । चित्ररथः । सिद्धानाम् । कपिलः । मुनिः ॥ २६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्ववृक्षोंके मध्यमैं पिप्पलवृक्ष मैं हूं तथा सर्वदेव ऋषियोंके मध्यमें नारद मैं हूं तथा सर्वगंधर्वोंके मध्यमें चित्ररथनामा गंधर्व मैं हूं तथा सर्वसिद्धोंके मध्यमैं कपिल मुनि मै हूं ॥ २६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! वनस्पतिरूप जितनेक वृक्ष हैं तिन सर्व वृक्षोंके मध्यविषे पिप्पलनामा वृक्ष मैं हूं । तथा जे देवता हुएही वेदमंत्रोंके दर्शनकरिकै ऋषिभावकूं प्राप्त हुए हैं तिनोंका नाम देवऋषि है ऐसे देवऋषियोंके मध्यविषे नारदनामा देवऋषि मैं हूं । तथा गायन करणेहारे जितनेक गंधर्व हैं तिन सर्वगंधर्वोंके मध्यविषे चित्ररथनामा गंधर्व मैं हूं । तथा जे पुरुष विनाही प्रयत्नतैं जन्ममात्रकरिकै धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्यता इत्यादिक गुणोंकूं प्राप्त हुए होवैं तथा निश्चय कन्या है परमार्थवस्तु जिनोंनैं तिन पुरुषोंका नाम सिद्ध है ऐसे सिद्धोंके मध्यविषे कपिलमुनिनामा सिद्ध मैं हूं ॥ २६ ॥

किंच

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ॥
ऐरावतं गजेंद्राणां नराणां च नराधिपम् ॥ २७ ॥

(पदच्छेदः) उच्चैःश्रवसम् । अश्वानाम् । विद्धि । माम् । अमृतोद्भवम् । ऐरावतम् । गजेंद्राणाम् । नराणाम् । च । नराधिपम् ॥ २७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्वअश्वोंके मध्यमैं अमृतके मथनकरणेकालविषे उद्भवहुआ उच्चैःश्रवसनामा अश्व मेरेकूं तूं जान तथा सर्वगजोंके मध्यमैं ऐरावतनामा गज मेरेकूं जान तथा सर्वनरोंके मध्यमैं राजारूप मेरेकूं जान ॥ २७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! सर्व अश्वोंके मध्यविषे अत्यन्त श्रेष्ठ जो उच्चैःश्रवसनामा अश्व है जो उच्चैःश्रवसनामा अश्व अमृतकी प्राप्तिवास्तै देवतावोंनैं तथा दैत्योंनैं मथन कियेहुए समुद्रतैं प्रगट होताभया है ऐसा

उच्चैःश्रवसनामा अश्व मेरेकूं तूं जान । तथा सर्वगजोंके मध्यविषे ऐरावतनामा गज मेरेकूं तूं जान। जो ऐरावतनामा गज अमृतकी प्राप्तिवासतैं देवतादैत्योंने मथन करेहुए समुद्रतैं प्रगट होताभया है। तथा सर्वनरोंके मध्यविषे सर्वप्रजाकूं धर्मविषे प्रवृत्त करणेहारा तथा अधर्मतैं निवृत्त करणेहारा जो राजा है सो राजा मेरेकूं तूं जान ॥ २७ ॥

किंच

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ॥
प्रजनश्चास्मि कंदर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥२८॥

(पदच्छेदः) आयुधानाम् । अहम् । वज्रम् । धेनूनाम् । अस्मि । कामधुक् । प्रजनः । च । अस्मि । कंदर्पः । सर्पाणाम् । अस्मि । वासुकिः ॥ २८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्वआयुधोंके मध्यमें वज्र मैं हूं तथा सर्वधेनुवोंके मध्यमें कामधेनु मैं हूं तथा सर्वकामोंके मध्यमें पुत्रकी उत्पत्तिअर्थ काम मैं हूं तथा सर्वसर्पोंके मध्यमें वासुकिनामा सर्प मैं हूं २८

भा० टी०—अस्त्ररूप जितनेक आयुध है तिन सर्व आयुधोंके मध्यविषे दधीचिके अस्थियोंतैं उत्पन्न हुआ जो वज्र है सो वज्र मैं हूं। तथा दुग्धकी प्राप्ति करणेहारी जितनीक धेनु है तिन सर्वधेनुवोंके मध्यविषे मनवांछित कामोंकी प्राप्ति करणेहारी तथा समुद्रके मथनतैं प्रगट हुई जो वसिष्ठकी कामधेनु है सा कामधेनु मैं हूं। तथा मैथुनकी अभिलाषारूप सर्वकामोंके मध्यविषे पुत्रकी उत्पत्तिवासतैं जो कामरूप कंदर्प है सो कामरूप कंदर्प मैं हूं। इहां (प्रजनश्च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार पुत्रकी उत्पत्तितैं विना व्यर्थ मैथुनके हेतुरूप कामकी निवृत्तिकूं बोधन करै है। तथा सर्वसर्पोंके मध्यविषे तिन सर्वसर्पोंका राजा जो वासुकि है सो वासुकि मैं हूं। इहां सर्पजातितैं नागजाति भिन्न होवैहै। तहां सर्प तौ विषवाले होवैं हैं। और नाग विषतैं रहित होवैं हैं इतना दोनोंविषे भेद होवै

है । यातें (अनंतश्चास्मि नागानाम्) इस वक्ष्यमाणवचनविषे पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै नहीं ॥ २८ ॥

किंच–

अनंतश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ॥
पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥२९॥

(पदच्छेदः) अनंतः । च । अस्मि । नागानाम् । वरुणः । यादसाम् । अहम् । पितॄणाम् । अर्यमा । च । अस्मि । यमः । संयमताम् । अहम् ॥ २९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! नागोंके मध्यमें अनंतनाग मैं हूं तथा जलचरोंके मध्यमें वरुण मैं हूं तथा पितरोंके मध्यमें अर्यमा मैं हूं तथा नियमनकरणेहारोंके मध्यमें यम मैं हूं ॥ २९ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! सर्व नागोंके मध्यविषे तिन सर्व नागोंका राजारूप जो शेषनामा अनंत नाग है सो अनंत नाग मैं हूं । तथा जलविषे विचरणेहारे सर्व जीवोंके मध्यविषे तिन सर्व जलचारी जीवोंका राजारूप जो वरुण है सो वरुण मैं हूं तथा सर्व पितरोंके मध्यविषे तिन सर्व पितरोंका राजारूप जो अर्यमानामा पितर है सो अर्यमा मै हूं । तथा धर्म अधर्मके सुखदुःखरूप फलकी प्राप्ति करिकै अनुग्रहनिग्रहरूप संयमकूं करणेहारे जितनेक समर्थ पुरुष हैं तिन सर्वनियमनकर्त्तावोंके मध्यविषे यम मैं हूं ॥ २९ ॥

किंच–

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ॥
मृगाणां च मृगेंद्रोहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥ ३० ॥

(पदच्छेदः) प्रह्लादः । च । अस्मि । दैत्यानाम् । कालः । कलयताम् । अहम् । मृगाणाम् । च । मृगेंद्रः । अहम् । वैनतेयः । च । पक्षिणाम् ॥ ३० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! दैत्योंके मध्यम प्रह्लाद मैं हूं तथा संख्यागणन करणेहारोंके मध्यमें काल मैं हूं तथा मृगादिक पशुवोंके मध्यमें सिंह मैं हूं तथा सर्वपक्षियोंके मध्यमें गरुड मैं हूं ॥ ३० ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! दितिके वंशविषे उत्पन्न भये जितनेक दैत्य हैं तिन सर्व दैत्योंके मध्यविषे आपणे सात्त्विकस्वभावकरिकै सर्वप्राणियोंकूं अतिशय करिकै आनंदकी प्राप्ति करणेहारा जो प्रह्लाद है सो प्रह्लाद मैं हूं। तथा जितनेक संख्याके गणनकरणेहारे हैं तिन सर्वोंके मध्यविषे काल मैं हूं। तथा मृगते आदिलैके जितनेक पशु हैं तिन मृगादिक सर्व पशुवोंके मध्याविषे तिन सर्वपशुवोंका राजा जो सिंह है सो सिंह मैं हूं। तथा सर्व पक्षियोंके मध्यविषे तिन सर्व पक्षियोंका राजारूप तथा विनताका पुत्र जो गरुड है सो गरुड मैं हूं ॥ ३० ॥

किंच–

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ॥
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ३१

(पदच्छेदः) पवनः । पवताम् । अस्मि । रामः । शस्त्रभृताम् । अहम् । झषाणाम् । मकरः । च । अस्मि । स्रोतसाम् । अस्मि । जाह्नवी ॥ ३१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! वेगवालोंके मध्यमें वायु मैं हूं तथा शस्त्रधारियोंके मध्यमें राम मैं हूं तथा मत्स्योंके मध्यमें मकर मैं हूं तथा नदियोंके मध्यमें श्रीगंगाजी मैं हूं ॥ ३१ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जितनेक पावनकरणेहारे पदार्थ हैं अथवा जितनेक वेगवाले पदार्थ हैं तिन सर्वोंके मध्यविषे पवन मैं हूं। तथा युद्धविषे अत्यंतकुशल जितनेक शस्त्रोंके धारण करणेहारे योद्धा हैं तिन सर्वोंके मध्यविषे सर्वराक्षसोंके कुलका नाशकरणेहारा परम शूरवीर जो दशरथका पुत्र श्रीराम है सो राम मैं हूं। तथा सर्व मत्स्योंके मध्यविषे

मकरनामा मत्स्य मैं हूं। तथा वेगकरिकै चलायमान है जल जिन्होंविषे ऐसी जे यमुना गोदावरी आदिक सर्वनदियां हैं तिन सर्व नदियोंके मध्य-विषे तिन सर्व नदियोंतैं श्रेष्ठ श्रीगंगाजी मैं हूं॥ ३१॥

किंच—

सर्गाणामादिरंतश्च मध्यं चैवाहमर्जुन॥
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम्॥३२

(पदच्छेदः) सर्गाणाम्। आदिः। अंतः। च। मध्यम्। च। एव। अहम्। अर्जुन। अध्यात्मविद्या। विद्यानाम्। वादः। प्रवदताम्। अहम्॥ ३२॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! अचेतनरूप कार्योंका उत्पत्ति तथा स्थिति तथा लय मैं परमेश्वर ही हूं तथा सर्वविद्याओंके मध्यमैं अध्यात्म-विद्या मैं हूं तथा विवादकर्त्तापुरुषोंकी कथावोंके मध्यमैं वादनामा कथा मैं हूं॥ ३२॥

भा० टी०—हे अर्जुन! अचेतनरूप करिकै प्रसिद्ध जितनेक उत्पत्ति-मान् कार्यहैं तिन सर्वकार्योंका उत्पत्ति तथा स्थिति तथा लय मैं परमेश्वर-ही हूं। यद्यपि (अहमादिश्च मध्यं च भूतानामंत एव च) इस वचनविषे पूर्व श्रीभगवान्नैं आपणेकूं सर्व भूतोंका उत्पत्तिस्थितिलयरूप कथन कऱ्या तथापि पूर्वभी तौ चेतनरूपकरिकै प्रसिद्ध भूतोंकीही उत्पत्तिस्थि-तिलयरूपता कथन करीथी और अबी इहां अचेतनरूपकरिकै प्रसिद्ध भूतोंकी उत्पत्तिस्थितिलयरूपता कथन करी है। यातैं इहां पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै नहीं इति। तथा सर्वविद्यावोंके मध्यविषे मोक्षके प्राप्तिका हेतुरूप तथा जीवब्रह्मके अभेदका प्रतिपादक ऐसी जा उपनिषद्रूप अध्यात्मविद्या है सा अध्यात्मविद्या मैं हूं तथा परस्पर विवादकर्त्ता पुरुषोंकी जा वाद, जल्प, वितंडा यह तीनप्रकारकी कथा हैं तिन कथा-

वोंके मध्यविषे वादनामा कथा मैं हूं । इहां यद्यपि (प्रवदताम्) यह शब्द विवादकर्त्तापुरुषोंका ही वाचक है तिनविवादकर्त्तापुरुषोंकी कथा-वोंका वाचक है नहीं तथापि जैसे पूर्व (भूतानामस्मि चेतना) इस वचन-विषे भूतानां शब्दकी तिन भूतसंबंधी परिणामोंविषे लक्षणा अंगीकार करीथी तैसे इहांभी प्रवदतां इस शब्दकी तिन विवादकर्त्तापुरुषसंबंधी कथावोंविषे लक्षणा अंगीकार करणी उचित है । तहां परस्पर राग द्वेष-तैं रहित तथा परस्पर जयपराजयकी इच्छातैं रहित तथा परस्पर तत्त्वबोधनकरणेकी इच्छावाले ऐसे जे एकगुरुके पासि अध्ययनकरणेहारे दो शिष्य हैं अथवा गुरुके शिष्य दोनों हैं तिन दोनोंकी जा तत्त्वनिर्णयपर्यंत परस्पर प्रश्न उत्तररूप कथा है ताका नाम वादकथा है । और वादकथाका फलरूप जो तत्त्वनिर्णय है तिस तत्त्वनिर्णयका प्रतिवादियोंके खंडनकरिकै संरक्षणकरणेवासतै परस्पर जीतनेकी इच्छावाले दो पुरुषोंकी जो जयप-राजयमात्रपर्यंत परस्पर कथा है ताका नाम जल्पकथा है तथा वितंडा-कथाहै।तहां छल जाति निग्रहस्थान इन तीनोंकरिकै परपक्षकूं दूषित करणा इतना अंश तौ जल्पकथाविषे तथा वितंडाकथाविषे समानही होवैहै, तथापि वितंडाकथाविषेतौ एकपुरुषनै आपणेपक्षका केवल स्थापनही करीताहै परपक्ष-विषे दूषण दईता नहीं।और अन्यपुरुषनें तौ तिस पक्षविषे केवल दूषण दयीता है आपणे मतका स्थापन करीता नहीं।और जल्पकथा विषे तौ विवादकर्त्ता दोनों पुरुषोंनैं आपणा आपणा पक्ष स्थापनभी करीता है तथा दोनोंनें परपक्षकूं दूषितभी करीता है इतना जल्पवितंडाका परस्पर भेद है । तहां अन्य अर्थके अभिप्राय करिकै उच्चारण करेहुए वचनका अन्य अर्थ कल्पनाकरिकै तिस वक्ता पुरुषकूं जो दूषण देणा है ताका नाम छल है । और असत् उत्तरका नाम जाति है और पराजयके हेतुका नाम निग्रहस्थान है छल जाति निग्रहस्थान इन तीनोंका विभाग तथा उदा-हरण न्यायग्रंथोंविषे प्रसिद्ध है ॥ ३२ ॥

किंच-

अक्षराणामकारोस्मि द्वंद्वः सामासिकस्य च ॥
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ॥ ३३ ॥

(पदच्छेदः) अक्षराणाम् । अकारः । अस्मि । द्वंद्वः । सामासिकस्य । च । अहम् । एव । अक्षयः । कालः । धाता । अहम् । विश्वतोमुखः ॥ ३३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अक्षरोंके मध्यमें अकार अक्षर मैं हूं तथा समाससमूहके मध्यमें द्वंद्वसमास मैं हूं तथा मैं परमेश्वर ही क्षयतैं रहित कालरूप हूं तथा सर्वफलप्रदातावोंके मध्यमें सर्वकर्मोंके फलप्रदाता अंतर्यामी ईश्वर मै हूं ॥ ३३ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! सर्व वर्णरूप अक्षरोंके मध्यविषे (अकारो वै सर्वावाक्) इस श्रुतितैं सर्वावाक्रूपकरिकै कथन कऱ्या जो अकार अक्षर है सो अकार अक्षर मैं हूं । तथा सर्वसमासोंका जो समूह है ताका नाम सामासिक है ऐसे समाससमूहके मध्यविषे उभयपदार्थप्रधान जो रामकृष्णौ यह द्वंद्वसमास है सो द्वंद्वसमास मैं हूं । तहां उपकुंभं इत्यादिक अव्ययीभाव समास तौ पूर्वपदार्थप्रधान होवै है । और राजपुरुषः इत्यादिक तत्पुरुषसमास तौ उत्तर पदार्थ प्रधान होवै है । और चित्रगुः इत्यादिक बहुव्रीहि समास तौ अन्य पदार्थप्रधान होवै है । इस प्रकारतैं द्वंद्वसमासतैं भिन्न कोईभी समास उभयपदार्थप्रधान होवै नहीं यातैं तिन सर्वसमासोंतैं सो द्वंद्वसमास उत्कृष्ट है । और क्षणघटिकादिक नाशवान् कालका अभिमानीरूप तथा तिस सर्वकालकूं जानणेहारा जो परमेश्वरनामा अक्षय काल है जिस परमेश्वररूप अक्षयकालकूं (कालकालो गुणी सर्वविद्यः) इत्यादिक श्रुतियां कालकाभी कालरूप करिकै प्रतिपादन करै हैं, सो अक्षयकालरूपभी मैं परमेश्वरही हूं । यद्यपि (कालः कलयतामहम्) इस वचन करिकै श्रीभगवान्नैं पूर्वही आपणेकूं

कालरूपता कथन करी थी तथापि पूर्व श्रीभगवान्नै आपणेकूं नाशवान् कालरूपता कथन करी थी और अबी इहां अक्षयकालरूपता कथन करी है यातैं इसवचनविषे पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै नहीं । और करहुए कर्मके फलकी प्राप्ति करणेहारे जितनेक राजादिक हैं तिन सर्व फलप्रदातावोंके मध्यविषे सर्व कर्मोंके फलप्रदाता जो ईश्वर है सो अंतर्यामी ईश्वर मैं हूं । इहां किसी टीकाविषे तौ (द्वंद्वः सामासिकस्य च) इस वचनका यह अर्थ कथन कऱ्या है। वेदमंत्रोंके अर्थका कथन करणेवास्तै जो विद्वान् पुरुषोंका अथवा गुरुशिष्यका एकत्र अवस्थान है ताका नाम समास है ता समासविषे तिन सर्वोंनै जितनाक अर्थ निर्णय कऱ्या है ता सर्व अर्थका नाम सामासिक है । तिस सर्व अर्थके मध्यविषे द्वंद्व कहिये रहस्य अर्थ मैं हूं । तहां (द्वंद्वंरहस्ये) इस सूत्रविषे शाब्दिक पुरुषोंने द्वंद्वशब्दकूं रहस्य अर्थका वाचक कह्याहै ॥ ३३ ॥

किंच–

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ॥
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ३४

(पदच्छेदः) मृत्युः । सर्वहरः । च । अहम् । उद्भवः । च । भविष्यताम् । कीर्तिः । श्रीः । वाक् । च । नारीणाम् । स्मृतिः । मेधा । धृतिः । क्षमा ॥ ३४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तथा संहारकर्त्तावोंके मध्यमैं सर्वका संहार करणेहारा मृत्यु मैं हूं तथा भावी कल्याणोंके मध्यमैं उत्कर्परूप उद्भव मैं हूं तथा सर्व नारियोंके मध्यमैं कीर्ति श्री वाक् स्मृति मेधा धृति क्षमा यह धर्मकी सप्त पत्नियां मैं हूं ॥ ३४ ॥

भा॰टी॰–हे अर्जुन ! इसलोकविषे जितनेक संहारकरणेहारेहैं तिन सर्वोंके मध्यविषे सर्वजगत्का संहारकरणेहारा जो मृत्यु है सो मृत्यु मैं हूं । तथा होणेहारे जितनेक कल्याण हैं तिन सर्वकल्याणोंके मध्यविषे

जो ऐश्वर्यका उत्कर्षरूप उद्धव है सो उद्धव मैं हूं । तथा सर्वनारियोंके मध्यविषे धर्मकी पत्नियांरूप जे कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा धृति, क्षमा यह सप्त नारियां हैं ते मैं हूं । तहां इसपुरुषका धर्मीपणा है निमित्त जिसविषे ऐसी जा प्रसिद्धपणेकरिकै च्यारोंदिशावोंविषे स्थित अनेक देशोंमें रहणेहारे लोकोंके ज्ञानकी विषयतारूप प्रख्यातिहै ताका नाम कीर्ति है। और धर्म अर्थ काम इन तीनोंका नाम श्री है । अथवा शरीरकी शोभाका नाम श्री है। अथवा उज्ज्वल कांतिका नाम श्री है । और सर्व अर्थकूं प्रकाश करणेहारी जा संस्कृत वाणीरूप सरस्वती है ताका नाम वाक् है और पूर्व अनुभव करेहुए अर्थकी जा बहुतकालके पीछेभी स्मरण करणेकी शक्ति है ताका नाम स्मृति है। और अनेकग्रन्थोंके अर्थ धारण करणेकी जा शक्ति है ताका नाम मेधा है । और अनेकप्रकारकी पीडाके प्राप्तहुएभी शरीरइंद्रियरूप संघातके स्थिरताकरणेकी जा शक्ति है ताका नाम धृति है । अथवा यथा इच्छापूर्वक प्रवृत्ति करावणेहारे कारणकरिकै चपलताके प्राप्त हुएभी तिस प्रवृत्तितैं निवृत्त करणेकी जा शक्ति है ताका नाम धृति है । और हर्षविषाद दोनोंविषे जा चित्तकी अविकारता है ताका नाम क्षमा है इति । जिन कीर्तिआदिक सप्तनारियोंके आभासमात्रके संबंधकरिकै भी यह जन सर्वलोकोंकरिकै आदर करणेयोग्य होवै है, ऐसी कीर्तिआदिक सप्तनारियोंकूं सर्वनारियोंतैं उत्तमपणा अतिप्रसिद्धही है ॥ ३४ ॥

किंच—

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छंदसामहम् ॥
मासानां मार्गशीर्षोहमृतूनां कुसुमाकरः ॥ ३५ ॥

(पदच्छेदः) बृहत्साम । तथा । साम्नाम् । गायत्री । छन्दसाम् । अहम् । मासानाम् । मार्गशीर्षः । अहम् । ऋतूनाम् । कुसुमाकरः ॥ ३५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! गीतिविशेषरूप सामोंके मध्य मैं बृहत्साम मै हूं तथा छंदोंके मध्यमैं गायत्री छंद मैं हूं तथा मासोंके मध्य मैं मार्गशीर्षमास मैं हूं तथा ऋतुवोंके मध्यमैं वसंतऋतु मैं हूं ॥ ३५ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! ऋगादिक च्यारिवेदोंके मध्यविषे सामवेद मै हूं । या प्रकारके वचनकरिकै सामवेदकी उत्कृष्टता पूर्व हमनैं कथन करीथी तिस सामवेदविषेभी यह अन्यविशेषता है—ऋचावोंके अक्षरोंविषे आरूढ जे गीतिविशेषरूप साम हैं-तिन सर्वसामोंके मध्यविषे (त्वामिद्धि हवामहे) इस ऋचाविषे स्थित गीतिविशेषरूप तथा सर्वका ईश्वररूपकरिकै इंद्रकी स्तुतिरूप जो बृहत्साम है सो बृहत्साम मै हूं । और नियमपूर्वक हैं अक्षर तथा पाद जिसके ताका नाम छंद है ऐसे छंदभावकरिकै विशिष्ट जे वेदकी ऋचा हैं तिन सर्व छंदोंके मध्यविषे द्विजपणेका संपादक जा चतुर्विंशति अक्षरोंवाली गायत्री है जा गायत्री (गायत्री वा इदं सर्वं भूतम्) इत्यादिक श्रुतियोंकरिकै प्रतिपादित है ऐसा गायत्रीनामा छंद मैं हूं । तथा द्वादशमासोंके मध्यविषे अत्यंत शीत आतपतै रहित होणेतैं सुखका हेतु जो मार्गशीर्ष मास है सो मार्गशीर्ष मास मै हूं । तथा षट्ऋतुवोंके मध्यविषे सर्वसुगंधिवाले पुष्पोंका आकार होणेतै अत्यंत रमणीक तथा (वसंते ब्राह्मणमुपनयीत । वसंते ब्राह्मणोऽग्निमादधीत । वसंते ज्योतिषा यजेत ।) इत्यादिक श्रुतियोंकरिकै प्रसिद्ध जो वसंतऋतु है सो वसंतऋतु मैं हूं ॥ ३५ ॥

किंच—

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥
जयोस्मि व्यवसायोस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ३६

(पदच्छेदः) द्यूतम् । छलयताम् । अस्मि । तेजः । तेजस्विनाम् । अहम् । जयः । अस्मि । व्यवसायः । अस्मि । सत्त्वम् । सत्त्ववताम् । अहम् ॥ ३६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! छलकरणेहारे पुरुषोंका जूवारूप छल मैं हूं तथा तेजस्वीपुरुषोंका तेज मैं हूं तथा जयकरणेहारे पुरुषोंका जय मैं हूं तथा व्यवसायवाले पुरुषोंका व्यवसाय मैं हूं तथा सत्त्ववाले पुरुषोंका सत्त्व मैं हूं ॥ ३६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! परका वंचनरूप छलके करणेहारे जे धूर्त पुरुष हैं तिन छलवाले पुरुषोंका जो जूवारूप छल है जो जूवारूप छल सर्वस्वहरणकरणेका कारण है सो जूवारूप छल मैं हूं। तथा अत्यंत उग्रप्रभाववाले जे तेजस्वी पुरुष हैं तिन तेजस्वी पुरुषोंका: जो अप्रतिहत आज्ञारूप तेज है सो तेज मैं हूं। तथा जयकरणेहारे पुरुषोंका जो पराजयहुए पुरुषोंकी अपेक्षाकरिकै उत्कृष्टतारूप जय है सो जय मैं हूं। तथा व्यवसायवाले पुरुषोंका जो नियमतें फलकी प्राप्ति करणेहारा उद्यमरूप व्यवसाय है सो व्यवसाय मैं हूं। तथा सात्त्विकपुरुषोंका जो धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्यतारूप सत्त्व है अर्थात् सत्त्वगुणका कार्य है सो सत्त्व मैं हूं ॥ ३६ ॥

किंच—

वृष्णीनां वासुदेवोस्मि पांडवानां धनंजयः ॥
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशनाकविः ॥ ३७ ॥

(पदच्छेदः) वृष्णीनाम् । वासुदेवः । अस्मि । पांडवानाम् । धनंजयः । मुनीनाम् । अपि । अहम् । व्यासः । कवीनाम् । उशनाकविः ॥ ३७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यादवोंके मध्यमैं वसुदेवका पुत्र कृष्ण मैं हूं तथा पांडवोंके मध्यमैं धनंजय मैं हूं तथा मुनियोंके मध्यमैं व्यासमुनि मैं हूं तथा कवियोंके मध्यमैं शुक्रकवि मैं हूं ॥ ३७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! सर्वयादवोंके मध्यविषे वसुदेवका पुत्र [illegible] रिकै प्रसिद्ध तथा तुम्हारे प्रति ब्रह्मविद्याका उपदेशकरणेहारा यह [illegible]

मैं हूं । तथा सर्वपांडवोंके मध्यविषे धनंजयनामा जो तूं अर्जुन है सो मैं हूं । तथा मननशीलमुनियोंके मध्यविषे श्रीव्यासमुनि मैं हूं । तथा सूक्ष्म अर्थके विवेककरणेहारे कवियोंके मध्यविषे शुक्रनामा कवि मैं हूं ॥ ३७ ॥

किंच-

दंडो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ॥
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥३८॥

(पदच्छेदः) दंडः । दमयताम् । अस्मि । नीतिः । अस्मि । जिगीषताम् । मौनम् । च । एव । अस्मि । गुह्यानाम् । ज्ञानम् । ज्ञानवताम् । अहम् ॥ ३८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! शिक्षाकरणेहारे पुरुषोंका दंड मैं हूं तथा जीवनेकी इच्छावाले पुरुषोंका न्यायरूप नीति मैं हूं तथा गुह्यअर्थोंका मौन मैं हूं तथा ज्ञानवाले पुरुषोंका ज्ञान मैं हूं ॥ ३८ ॥

भा०टी०-हे अर्जुन ! अशिक्षित दुष्टपुरुषोंकूं कुमार्गतैं निवृत्तकरिकै सुमार्गविषे प्रवृत्तकरणेहारे जे राजादिकपुरुष हैं तिन राजादिकोंका जो दुष्टपुरुषोंकूं तिस कुमार्गतैं निवृत्तिकरणेका हेतुरूप दंड है सो दंड मैं हूं । तथा जीतणेकी इच्छावान् पुरुषोंका जो जयके उपायका प्रकाशक न्यायरूप नीति है सा नीति मैं हूं तथा गुह्य अर्थोंके गोपराखणेका हेतुरूप जो वाक् इंद्रियका निग्रहरूप मौन है सो मौन मैं हूं । तात्पर्य यह-जो पुरुष वाक्इंद्रियका निग्रह करिकै तूष्णींस्थित होवैहै तिस पुरुषके अंतरके अभिप्रायकूं कोईभी जानिसकता नहीं । यातें सो वाणीका निग्रहरूप मौन अर्थके गोपराखणेका हेतु है इति । अथवा इसका यह अर्थ करणा । गोप्यपदार्थोंके मध्यविषे संन्याससहित श्रवणमननपूर्वक जो आत्माका निदिध्यासनरूप मौन है सो मौन मैं हूं । तथा ज्ञानवाले सर्व ज्ञानीपुरुषोंका जो वेदांतशास्त्रके श्रवण मनन निदिध्यासन

करिकै जन्य तथा सर्व अज्ञानका विरोधी मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकारका आत्मज्ञान है सो आत्मज्ञान मैं हूं ॥ ३८ ॥

किंच—

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ॥
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्३९

(पदच्छेदः) यत् । च । अपि । सर्वभूतानाम् । बीजम् । तत् । अहम् । अर्जुन । न । तत् । अस्ति । विना । यत् । स्यात् । मया । भूतम् । चराचरम् ॥ ३९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तथा जो चेतन इन सर्वभूतोंका कारण है सोकारण भी मैंहीहूं मैं परमेश्वरतैं विना जो चरअचररूप वस्तु होवै सो वस्तु नहीं है ॥ ३९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जैसे प्रसिद्ध वृक्षोंके प्ररोहका कारण बीज होवैहै तैसे इन सर्व भूतोंके प्ररोहका कारणरूप जो माया उपहित चेतनरूप बीज है सो बीजरूप कारणभी मैंही हूं । हे अर्जुन मैं परमेश्वरतैं विना जो कोई चरअचररूप वस्तु विद्यमान होवै है सो ऐसी कोई वस्तु है नहीं किंतु ते सर्वभूत मैं बीजरूप परमेश्वरका कार्य होणेवैं मैं सत्तास्फुरणरूप परमेश्वरकरिकैही व्याप्त हैं ॥ ३९ ॥

अब इस विभूतिप्रकरणके अर्थका उपसंहार करतेहुए श्रीभगवान् तिस विभूतिकूं संक्षेपतैं कथन करैहैं—

नांतोस्ति मम दिव्यानां विभूतिनां परंतप ॥
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया॥ ४० ॥

(पदच्छेदः) न । अंतः । अस्ति । मम । दिव्यानाम् विभूतीनाम् । परंतप । एषः । तु । उद्देशतः । प्रोक्तः । विभूतेः विस्तरः । मया ॥ ४० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मै परमेश्वरके दिव्य विभूतियोंका कोई अंत नहीं है और येह जो हमनैं तुम्हारेप्रति विभूतिका विस्तार कथन कऱ्याहै सो एकदेशकरिके कथन कऱ्याहै ॥ ४० ॥

भा०टी०— हे परंतप ! अर्थात् हे कामक्रोधादिक शत्रुवोंकूं ताप करणेहारा अर्जुन ! मैं परमेश्वरका तिन दिव्यविभूतियोंका कोई अंत नहींहै अर्थात् ते सर्वविभूतियां इतनी हैं या प्रकारकी संख्या तिन विभूतियोंकी नहीं है । यातैं सर्वज्ञ पुरुषोंनेभी सा हमारे विभूतियोंकी संख्या जानणेकूं वा कहणेकूं समर्थ नहीं होईता । शंका—हे भगवन् ! जबी सर्वज्ञ पुरुषभी तिन विभूतियोंके कहणेकूं समर्थ नहीं है तबी (आदित्यानामहं विष्णुः ।) इत्यादिक वचनोंकरिकै ते आपणी विभूतियां आप कैसे कहतेभये हो ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहै (एष तु इति) हे अर्जुन ! यह जो हमनैं तुम्हारे प्रति आपणी विभूतिका विस्तार कथन कऱ्या है सोभी किसी एकदेशकरिकै कथन कऱ्याहै ॥ ४० ॥

किंच—

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ॥
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंशसंभवम् ॥ ४१ ॥

(पदच्छेदः) यत् । यत् । विभूतिमत् । सत्त्वम् । श्रीमत् । ऊर्जितम् । एव । वा । तत् । तत् । एव । अवगच्छ । त्वम् । मम । तेजोऽशसंभवम् ॥ ४१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो जो प्राणी ऐश्वर्यवाला है तथा लक्ष्मीवाला वे या बलवाला है तिस तिसे प्राणीकूं ही तूं मै परमेश्वरके शक्तिके अंशकरिकै उत्पन्नहुआ जान ॥ ४१ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन इसलोकविषे जो जो प्राणी ऐश्वर्यरूप विभूतिकरिकै युक्तहै तथा जो जो प्राणी श्रीमत्‌है अर्थात् लक्ष्मीकरिकै वा संपदाकरिकै वा शोभाकरिकै वा कांतिकरिकै युक्तहै तथा जो जो प्राणी अत्यंत बला-

दिकोंकरिकै युक्त है तिस तिस प्राणीकूंही तूं मैं परमेश्वरकी शक्तिके अंशकरिकै उत्पन्न हुआ जान । यह भगवान्का वचन पूर्व नहीं कथन करीहुई विभूतियोंकेभी संग्रह करावणेवास्तै है ॥ ४१ ॥

इसप्रकार एकदेशरूप अवयवकरिकै विभूतिकूं कथन करिकै अब सकलतारूप करिकै तिस विभूतिकूं कहैंहैं--

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ॥
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥४२॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगोनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) अथवा । बहुना । एतेन । किम् । ज्ञातेन । तव । अर्जुन । विष्टभ्य । अहम् । इदम् । कृत्स्नम् । एकांशेन । स्थितः । जगत् ॥ ४२ ॥

(पदार्थः) अथवा हे अर्जुन ! इस बहुत ज्ञातकरिकै तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध होवैगा इस सर्व जगतकूं मैं परमेश्वर एकदेशकरिकै धारणकरिकै स्थित हुआहूं ॥ ४२ ॥

भा० टी०--इहां (अथवा) यह पद पूर्वउक्त विभूति पक्षतैं भिन्न पक्षका वाचक है सो पक्षांतर कहैं हैं । हे अर्जुन ! (आदित्यानामहं विष्णुः) इत्यादिक वचनोंकरिकै मंदअधिकारी पुरुषोंके ध्यानवास्तै कथन करी जा हमनैं आपणी सावशेष विभूति है इसबहुतप्रकारकी सावशेष विभूतिके ज्ञानकरिकै तैं उत्तम अधिकारीकूं कौन फल है किंतु कोई भी फल तेरेकूं नहीं । जिसकारणतैं पूर्वउक्त यत्किंचित् विभूतिके ज्ञान हुएभी हमारी सर्वविभूतियोंका ज्ञान होता नहीं । यातैं तैं उत्तम अधिकारीकूं तौ याप्रकारतैं हमारा ध्यान कऱ्या चाहिये । हे. अर्जुन ! मैं परमात्मादेव इस सर्वजगतकूं आपणे एकदेशमात्रकरिकै धारण करिकै अथवा व्याप्त करिकै स्थित हूं मैं परमात्मादेवतैं भिन्न कोई वस्तु है नहीं।

तहां श्रुति--(पादोऽस्यविश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।) अर्थ यह--इस परमात्मादेवका यह सर्वविश्व एक पाद है। और तीन पाद तौ आपणे निर्गुण स्वयंज्योतिस्वरूपविषे स्थित हैं इति। यातैं हे अर्जुन ! द्वादश आदित्योंविषे विष्णुनामा आदित्य मैं हूं तथा नक्षत्रोंके मध्यविषे चंद्रमा मैं हूं इत्यादिक परिच्छिन्न दृष्टिका परित्याग करिकै तूं सर्व जगत्विषे मैं परमात्मादेवकूं व्यापक देख इति । यद्यपि निरवयव निराकार परमात्माका अंश तथा पाद संभवता नहीं तथापि जैसे निरवयव आकाशके घटमठादिक उपाधियोंकरिकै घटाकाश मठाकाश मेघाकाश इत्यादिक अंशोंकी कल्पना होवैहै तैसे निरवयव निराकार परमात्मादेवके भी अविद्यादिक उपाधियोंकरिकै ते अंश तथा पाद कल्पना करे जावैं हैं । वास्तवतैं ते अंश तथा पाद है नहीं ॥ ४२ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां श्रीभगवद्गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां दशमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १० ॥

एकादशाध्यायप्रारंभः ।

तहां पूर्व दशम अध्यायविषे श्रीभगवान् नानाप्रकारकी विभूतिकूं कथनकरिकै ताके अंतविषे (विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ।) इस वचनकरिकै परमेश्वरके सर्व विश्वात्मक स्वरूपकूं कथन करताभया । तिसकूं श्रवणकरिकै परम उत्कंठाकूं प्राप्तहुआ सो अर्जुन परमेश्वरके तिस सर्व विश्वात्मक स्वरूपके साक्षात्कार करणेकी इच्छा करताहुआ तथा पूर्वयुक्त अर्थकी प्रशंसा करता हुआ या प्रकारका वचन कहताभया--

अर्जुन उवाच ।

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ॥
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोयं विगतो मम ॥ १ ॥

(पदच्छेदः) मदनुग्रहाय । परमम् । गुह्यम् । अध्यात्मसंज्ञितम् । यत् । त्वया । उक्तम् । वचः । तेन । मोहः । अयम् । विगतः । मम ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! हमारे अनुग्रहवासतै आपनैं जो परम गुह्य अध्यात्मनामवाला वचन कथन कऱ्या है तिस वचनकरिकै मैं अर्जुनका यह मोह नष्टहोताभया है ॥ १ ॥

भा० टी०—हे भगवन् ! यह हमारे भ्रातापुत्रादिक सर्व बांधव मरणकूं प्राप्त होते हैं और मैं अर्जुन इनोंका हनन करता हूं इसप्रकारके शोकमोहरूप सागरविषे डूब्याहुआ जो मैं अर्जुन हूं तिस हमारे अनुग्रहवासतै अर्थात् तिस शोकमोहकी निवृत्तिरूप उपकारवासतै परमकृपालु सर्वज्ञ आपनैं (अशोच्यानन्वशोचस्त्वम्) इस वचनतैं आदिलैके षष्ठ अध्यायकी समाप्तिपर्यंत त्वंपदार्थका निरूपक जो वाक्य कथन कऱ्या है कैसा है सो वाक्य—परमहै अर्थात् निरतिशयमोक्षरूप पुरुषार्थविषे परिअवसानवालाहै । अथवा परम कहिये शीघ्रही शोकमोहका निवर्त्तक होणेतैं उत्कृष्ट है । पुनः कैसा है सो वचन—गुह्य है अर्थात् शास्त्रनिषिद्ध कर्मविषे प्रवृत्त तथा श्रद्धातैं रहित तथा विषयोंविषे आसक्त ऐसे अनधिकारी पुरुषोंकूं नहीं देणेयोग्य है पुनः कैसा है सो वचन—अध्यात्मसंज्ञित है । अर्थात् आत्माअनात्माके विवेककूं विषय करणेहारा है । तहां आत्माअनात्माके विवेक करणेवासतै जो शास्त्र है ताका नाम अध्यात्म है सो अध्यात्म है संज्ञा क्या नाम जिसका ताका नाम अध्यात्मसंज्ञित है।ऐसे आपके वचनकरिकै मै अर्जुनका यह स्वअनुभवसिद्ध मोह नष्ट होताभया है । अर्थात् मैं अर्जुन इन भीष्म द्रोणादिकोंका हनन करता हूं तथा मैं अर्जुननैं यह भीष्मद्रोणादिक हनन करीते हैं इत्यादिक नानाप्रकारका विपर्ययरूप मोह हमारा तिस आपके वचनकरिकै नष्ट होताभया है । जिस कारणतैं तिस पूर्वउक्त वचनविषे (नायं हंति न हन्यते । न जायते म्रियते वा कदाचित् । वेदाविनाशिनं नित्यम् ।

इत्यादिक वचनोंकारिकै इस आत्माकूं आपनैं सर्वविकारोंतै रहित कथन कन्या है तिस कारणतै सो हमारा मोह अभी नष्ट होताभया है । तहां इस श्लोकके प्रथमपादविषे जो एक अक्षर अधिक है सो आर्ष है अर्थात् ऋषिप्रणीत होणेतैं दुष्ट नहीं है ॥ १ ॥

तहां जैसे त्वंपदार्थका निर्णय है प्रधान जिसविषे ऐसा षष्ठ अध्याय पर्यंत आपका वचन हमनैं श्रवण कन्या है । तैसे तत्पदार्थका निर्णय है प्रधान जिसविषे ऐसा सप्त अध्यायतैं आदिलैके दशम अध्यायपर्यंत आपका वचनभी हमनै श्रवण कन्या है इस वार्त्ताकूं अर्जुन कथन करैहै–

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ॥
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥२॥

(पदच्छेदः) भवाप्ययौ । हि । भूतानाम् । श्रुतौ । विस्तरशः । मया । त्वत्तः । कमलपत्राक्ष । माहात्म्यम् । अपि । च । अव्ययम् ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे कमलपत्राक्ष ! इन भूतोंके उत्पत्तिप्रलय दोनोंतै भगवान्‌तैं ही हमनै विस्तारतै श्रवण करे हैं तथा आपका सोपाधिक महात्म्य तथा निरुपाधिक अव्ययरूप महात्म्य भी हमने श्रवण कन्याहै २

भा० टी०–हे कमलपत्राक्ष श्रीभगवन् ! इहां कमलके पत्रकी न्याई दीर्घ तथा विशाल तथा किंचित् रक्ततायुक्त तथा अत्यंत मनोरम है अक्षि क्या नेत्र जिसके ताका नाम कमलपत्राक्ष है । इस संबोधनकारिकै अर्जुननें भगवान्‌की जो अत्यंत सौंदर्यता कथन करीहै सो परमेश्वरविषयक प्रेमकी अतिशयतातैं कथन करीहै । अथवा (हे कमलपत्राक्ष) इस संबोधनका यह अर्थ करणा–(कमलति प्रकाशयति इति कमलमात्मज्ञानम् ।) अर्थ यह–स्वस्वरूपानंदरूप जो ब्रह्मसुख है ताका नाम कं है तिस ब्रह्मसुखकूं जो प्रकाश करैहै ताका नाम कमल है ऐसा महावाक्यजन्य आत्मज्ञान है । आत्मज्ञानकारिकैही ता ब्रह्मसुखकां प्रकाश

होवै है । तथा (पतनात् त्रायते इति पत्रम् ।) अर्थ यह—इन अधिकारी पुरुषोंकूं इस जन्ममरणके प्रवाहरूप संसारसमुद्रविषे पतनतैं जो रक्षण करैहै ताका नाम पत्र है ऐसा पत्ररूपभी सो आत्मज्ञान ही है अर्थात् कमलरूप होवै तथा सोईही पत्ररूप होवै ताका नाम कमलपत्र है। (कमलपत्रेण अक्ष्यते प्राप्यते इति कमलपत्राक्षः ।) अर्थ यह—तिस कमलपत्रनामा आत्मज्ञानकरिकै जो प्राप्त होवै ताका नाम कमलपत्राक्ष है अर्थात् हे आत्मज्ञानकरिकै प्राप्त होणे योग्य शुद्ध परब्रह्मवैं परमेश्वरतैंही इन सर्वभूतोंके उत्पत्ति प्रलय हमनैं (अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा । प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य । अहं सर्वस्य प्रभवः ।)इत्यादिक वचनोंकरिकै विस्तारतैं श्रवण करे हैं । कोई संक्षेपतैं एकही बार श्रवण नहीं करे । हे भगवन् ! आप परमेश्वरतैं इन सर्व भूतोंके उत्पत्ति प्रलयकूं ही केवल हमनैं नहीं श्रवण कऱ्या किंतु तुम्हारा माहात्म्यभी हमनैं बहुतबार श्रवण कऱ्या है । तहां महात्मारूप परमेश्वरका जो निरतिशय ऐश्वर्यरूप भाव है ताका नाम माहात्म्य है सो माहात्म्य यह है—इस लोकविषे जो कर्ता होवे है सो विकारीही होवे है और यह परमेश्वर तौ इस जगतके उत्पत्ति आदिकोंका करताहुआ भी अविकारीरूपही है और इस लोकविषे जो पुरुष दूसरोंकूं प्रेरणा करिकै शुभ अशुभ कर्म करावैहै सो पुरुष विषमतादोषवाला ही होवै है । और यह परमेश्वर तौ जीवोंकूं प्रेरणा करिकै शुभ अशुभ कर्म करावता हुआभी विषमतादोषतैं रहित है । और इस लोकविषे जो पुरुष विचित्र फलका प्रदाता होवै है सो पुरुष असंग उदासीन होवै नहीं । और यह परमेश्वर तौ बंधमोक्षादिक विचित्र फलका प्रदाता हुआभी असंग उदासीनही है । इसतैं आदिलेके दूसराभी सर्वात्मत्व आदिक सोपाधिक माहात्म्यभी हमनैं बहुतवार श्रवण कऱ्याहै । हे भगवन्! आप परमेश्वरका केवल यह सोपाधिक माहात्म्यही हमनैं श्रवण नहीं कऱ्या किंतु आप परमेश्वरका निरुपाधिक—

अव्ययरूप माहात्म्यभी हमनैं श्रवण कऱ्याहै । इहां व्यय नाम नाशका है ता नाशतैं जो रहित होवै ताका नाम अव्यय है ॥ २ ॥

एवमेतद्यथात्थत्वमात्मानं परमेश्वर ॥
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) एवम् । एतत् । यथा । आत्थ । त्वम् । आत्मानम् । परमेश्वर । द्रष्टुम् । इच्छामि । ते । रूपम् । ऐश्वरम् । पुरुषोत्तम ॥ ३ ॥

(पदार्थः) हे परमेश्वर ! जिस प्रकारतै आपणे आत्माकूं तूं कथन करताहै सो आपका कहणा यथार्थही है तथापि हे पुरुषोत्तम ! तुम्हारो ऐश्वर रूप देखणेकूं मैं इच्छा करता हूं ॥ ३ ॥

भा० टी०—हे परमेश्वर ! जिस सोपाधिक निरतिशय ऐश्वर्यरूप करिकै तथा जिस निरुपाधिक निरतिशय ऐश्वर्यरूपकरिकै आप आपणे स्वरूपकूं कथन करते भये हो सो आपका कहणा यथार्थही है । किसी कालविषेभी आपका अयथार्थ नहीं है । अर्थात् तुम्हारे वचनविषे कहांभी हमारेकूं अविश्वासकी शंका नहीं है । हे पुरुषोत्तम ! यद्यपि हमारा आपके वचनविषे दृढ विश्वास है तथापि कृतार्थ होणेकी इच्छा करिकै मैं अर्जुन तुम्हारे ऐश्वर्यरूपके देखणेकी इच्छा करता हूं । अर्थात् ज्ञान ऐश्वर्य शक्ति बल वीर्य तेज इत्यादि गुणोंकरिकै संपन्न जो आप ईश्वरका अद्भुत स्वरूप है ताका नाम ऐश्वर्यरूप है ता रूपके देखणेकी मैं इच्छा करता हूं । तहां सर्व पुरुषोंतैं सर्वज्ञतादिक गुणोंकरिकै जो उत्तम होवै ताका नाम पुरुषोत्तम है । इस पुरुषोत्तम संबोधनकरिकै अर्जुननैं श्रीभगवान्‌के प्रति यह अर्थ सूचन कऱ्या । हे भगवन् ! तुम्हारे वचनविषे हमारेकूं अविश्वास नहीं है । तथा आपके तिस ऐश्वर्यरूपके देखणेकी इच्छाभी हमारेकूं बहुत है । इस हमारे वृत्तांतकूं आप सर्वज्ञहोणेतैं तथा अंतर्यामी होणेतैं जानतेही हो ॥ ३ ॥

हे अर्जुन ! तुम्हारे करिकै देखणेकूं अशक्य जो हमारा स्वरूप है तिस स्वरूपके देखणेकी इच्छा तूं किसवासतै करता है। जो वस्तु देखणेकूं शक्य होवैहै तिस वस्तुकेही देखणेकी इच्छा करणी उचित होवैहै। ऐसी श्रीभगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन कहै है–

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ॥
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) मन्यसे। यदि। तत्। शक्यम्। मया। द्रष्टुम्। इति। प्रभो। योगेश्वर। ततः। मे। त्वम्। दर्शय। आत्मानम्। अव्ययम् ॥ ४ ॥

(पदार्थः) हे प्रभो ! सो तुम्हारा ऐश्वररूप मैं अर्जुननैं देखणेकूं शक्य है इसप्रकार जबी आप मानते होवौ तबी हे योगियोंके ईश्वर हमारे ताईं आप नाशतैं रहित तिस ऐश्वररूपविशिष्ट आत्माकूं दिखावो ॥ ४ ॥

भा० टी०–तहां सृष्टि, स्थिति, संहार, प्रवेश, प्रशासन इन पांचोंके करणेविषे जो समर्थ होवै ताका नाम प्रभु है। हे प्रभो ! अर्थात् हे सर्वके स्वामिन् ! सो आपका ऐश्वर्यरूप मैं अर्जुननै देखणेकूं शक्य है। ऐसे जबी आप मानतै होवौ अर्थात् ऐसे जबी आप जानते होवौ। अथवा यह अर्जुन इस हमारे रूपको देखै ऐसी जबी आप इच्छा करतेहोवौ तबी हे सर्वयोगियोंके ईश्वर ! तिस आपकी इच्छाके वशतैं मैं अत्यंत जिज्ञासु अर्जुनके ताईं परम कारुणिक आप तिस ऐश्वररूप विशिष्ट तथा नाशतैं रहित आत्माकूं दिखावो अर्थात् तिस आपके स्वरूपकूं हमारे चक्षुवोंका विषय करौ। इहां जे पुरुष अणिमादिक अष्टसिद्धियों करिकै युक्त हैं तिनोंका नाम योगी है तिन सर्व योगियोंका जो ईश्वर होवै ताका नाम योगेश्वर है। इस योगेश्वरसंबोधनकरिकै अर्जुननै यह अर्थ भगवान्‌के प्रति सूचन कऱ्या। अणिमादिक सिद्धियों करिकै युक्त जे योगी पुरुष है ते

योगी पुरुषभी आपणी इच्छाके वशतैं अशक्य कार्यकूंभी सिद्धकरिसकैं हैं। और आप तौ तिन योगियोंके भी ईश्वर हो अर्थात् परमेश्वरके ध्यान करिकैही तिन योगी पुरुषोंकूं ऐसा सामर्थ्य प्राप्त भया है। यातैं आप जो कदाचित् तिस स्वरूपके दिखावणेकी इच्छा करोगे तौ मैं अर्जुन तिस आपके स्वरूपकूं अवश्यकरिकै देखूंगा इति। अथवा (हे योगेश्वर) इस संबोधनका यह दूसरा अर्थ करणा—मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारका जो जीव ब्रह्मके एकत्वका दर्शनरूप ज्ञानयोग है ताका नाम योग है ता योगका जो ईश्वर होवै अर्थात् अधिकारीजनोंके प्रति ता ज्ञानयोगकी प्राप्ति करणेविषे जो समर्थ होवै ताका नाम योगेश्वर है॥ ४ ॥

इस प्रकार अत्यंत भक्त अर्जुन करिकै प्रार्थना करे हुए श्रीभगवान् ता अर्जुनके प्रति तिस स्वरूपके दिखावणेकी इच्छा करते हुए कहैं हैं—

श्रीभगवानुवाच।

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः॥
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च॥ ५ ॥

(पदच्छेदः) पश्य । मे । पार्थ । रूपाणि । शतशः । अथ । सहस्रशः । नानाविधानि । दिव्यानि । नानावर्णाकृतीनि । च ॥ ५ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! नानाप्रकारके वर्ण तथा आकृति हैं जिन्होंके ऐसे नानाप्रकारके अद्भुत अनेक शत तथा अनेकसहस्र मैं परमेश्वरके रूपोंकूं तूं देखें ॥ ५ ॥

भा० टी०—इहां इस श्लोकतैं आदिलेके अगले च्यारिश्लोकोंविषे क्रमतैं (पश्य) इस शब्दकी आवृत्ति करिकै श्रीभगवान् ते आपणे दिव्य रूप मैं तुम्हारेकूं दिखावता हूं तूं सावधान होउ इस प्रकार ता अर्जुनकूं अभिमुख करता भया है। और (शतशः अथ सहस्रशः) इन संख्या वाचक दोनोंपदों करिकै श्रीभगवान्नैं तिन रूपोंविषे अपरिमितरूपता

कर्नर्थ करी है यातें यह अर्थ सिद्ध भया । हे अर्जुन ! विलक्षण विलक्षण नीलपीतादिक वर्ण हैं जिन्होंके तथा विलक्षण विलक्षण अवयवोंकी रचना विशेपरूप आकृति है जिनोंकी ऐसे जे अनेकप्रकारके तथा अत्यंत अद्भुत तथा अपरिमित संख्यावाले मैं परमेश्वरके रूपहैं तिन रूपोंकूं तूं देख अर्थात् तिन रूपोंके देखणेकूं तूं योग्य होउ ॥ ५ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे श्रीभगवान्नें अर्जुनके प्रति आपणे दिव्यरूपोंके दिखावणेकी प्रतिज्ञा करी । अब तिस प्रतिज्ञाके पूर्णकरणे वासतै श्रीभगवान् तिस अर्जुनके प्रति दोश्लोकों करिकै यत्किंचित्मात्र ते आपणे रूप कथन करैं हैं–

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ॥
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) पश्य । आदित्यान् । वसून् । रुद्रान् । अश्विनौ । मरुतः । तथा । बहूनि । अदृष्टपूर्वाणि । पश्य । आश्चर्याणि । भारत ॥ ६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तूं आदित्योंकूं तथा वसुवोंकूं तथा रुद्रोंकूं तथा अश्विनीकुमारोंकू तथा मरुतोंकूं देख तथा पूर्व नही देखेहुए बहुत अद्भुत रूपोंकूं देख ॥ ६ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! तूं द्वादश आदित्योंकूं देख । तथा अष्ट वसुवोंकूं देख । तथा एकादश रुद्रोंकूं देख । तथा दोनों अश्विनीकुमारोंकूं देख । तथा उनंचास मरुतोंकूं देख । तथा इनोंतैं अन्य दूसरेभी देवतावोंकूं तूं देख ! हे अर्जुन ! जे रूपतैं अर्जुननैं तथा किसी अन्यप्राणीनैं इस मनुष्यलोकविषे कबीभी देखे नहीं हैं ऐसे बहुत अद्भुतरूपोंकूं अबी तूं देख इति । तहां (बहूनि) यह वचन (शतशोथ सहस्रशः) इस पूर्वउक्त वचनका व्याख्यानरूपहै । और (आदित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्था ।) यह वचन (नानाविधानि) इस पूर्व उक्तवचनका व्याख्यानरूप है । और (अदृष्टपूर्वाणि) यह वचन (दिव्यानि) इस पूर्व उक्तवच-

नका व्याख्यानरूप है। और (आश्चर्याणि) यह वचन (नानावर्णाकृतीनि च) इस पूर्व उक्तवचनका व्याख्यानरूप है ॥ ६ ॥

हे अर्जुन ! केवल इतनेमात्र रूपोंकूंही तूं देखणेयोग्य नहीं है,किंतु यह स्थावरजंगमरूप सर्वजगतही हमारेदेहविषे स्थित हुआ तूं देख । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करें हैं—

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ॥
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) इह । एकस्थम् । जगत् । कृत्स्नम् । पश्य । अद्य । सचराचरम् । मम । देहे । गुडाकेश । यत् । च । अन्यत् । द्रष्टुम् । इच्छसि ॥ ७ ॥

(पदार्थः)हे अर्जुन ! हमारे इस देहविषे एकअवयवविषे स्थित जंगमस्थावर सहित समस्त जगत्कूं तूं आज देखें तथा जो कोई अन्यभी जयपराजयादिक देखणेकूं इच्छाकरता है सोभी देख ॥ ७ ॥

भा० टी०—हे गुडाकेश ! अर्थात् हे निद्राकूं जयकरणेहारा अर्जुन ! इस हमारे देहविषे किसी एक नखके अग्रमात्ररूप अवयवविषे स्थित इस स्थावरजंगमसहित समग्र जगत्कूं तूं अबी देख । जो सर्व जगत् तिसतिस स्थानविषे भ्रमणकरिकै शतकोटि वर्षपर्यंतभी देखणेकूं अशक्य है तिस सर्व जगत्कूं तूं अभी एकत्र स्थितहुआही देख । हे अर्जुन ! जो कोई अन्यभी जयपराजयादिकोंके देखणेकी इच्छा करता होवै तिन जयपराजयादिकोंकूं भी तूं आपणे संशयकी निवृत्ति करणेवास्तै इस हमारे देहविषे देख ॥ ७ ॥

तहां (मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।) अर्थ यह—सो आपका ऐश्वररूप मैं अर्जुननैं देखणेकूं शक्यहै, इसप्रकार जो आप मानते होवैं तौ सो रूप हमारेकूं दिखावो । यह जो वचन पूर्व अर्जुननैं श्रीभगवानके प्रति कथन कर्या था तिस रूपके देखणेविषे श्रीभगवान् अब किंचित विशेषता कथन करें हैं—

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ॥
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥८॥

(पदच्छेदः) नं । तु । माम् । शक्यसे । द्रष्टुम् । अनेन । एव । स्वचक्षुषा । दिव्यम् । ददामि । ते । चक्षुः । पश्य । मे । योगम् । ऐश्वरम् ॥ ८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तूं पुनः इस आपणी चक्षुकरिकै दिव्यरूप मैं परमेश्वरकूं कदाचित्भी देखणेकूं नहीं समर्थ है इसकारणतैं मैं परमेश्वर तुम्हारे ताईं दिव्य चक्षु देताहूं तिस दिव्य चक्षुकरिकै मैं परमेश्वरके ऐश्वर्यरूप योगकूं तूं देख ॥ ८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! यह स्वभावतैं सिद्ध जो तुम्हारा प्राकृतचक्षु है. इसप्राकृतचक्षुकरिकै दिव्यरूपवाले मैं परमेश्वरके देखणेकूं तूं कदाचित्भी समर्थ नहीं है । शंका—हे भगवन् ! तबी मैं अर्जुन तिस तुम्हारे स्वरूपकूं कैसे देखसकूंगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (दिव्यमिति) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरके तिस दिव्यरूपके देखणेविषे समर्थ ऐसी दिव्य कहिये अप्राकृतचक्षुकूं मैं परमेश्वर तुम्हारे ताईं देता हूं । तिस दिव्यचक्षुकरिकै तूं अर्जुन मैं परमेश्वरके योगकूं अर्थात् न बनते हुए अर्थके बनावणेकी सामर्थ्यतारूप योगकूं देख । कैसा है सो योग—ऐश्वर है अर्थात् मैं ईश्वरकाही असाधारण धर्म है अन्य किसीविषे सो योग रहता नहीं । इहां किसीपुस्तकविषे (न तु मां शक्ष्यसे) इस प्रकारकाभी पाठ होवै है ता पाठका यह अर्थ करणा—तूं अर्जुन इस चक्षुकरिकै दिव्यरूपवाले मैं परमेश्वरके देखणेकूं समर्थ नहीं होवैगा ॥ ८ ॥

तहां श्रीभगवान् अर्जुनके ताईं सो आपणा दिव्यरूप दिखावतेभये । तिसरूपकूं देखिकै अत्यंत विस्मयकूं प्राप्त हुआ सो अर्जुन श्रीभगवान्के प्रति सो देख्याहुआ दिव्यरूप कथन करता भया । इस वृत्तांतकूं (एवमुक्त्वा) इत्यादिक षट् श्लोकोंकरिकै धृतराष्ट्रके प्रति संजय कहै है—

संजय उवाच ।

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः ॥
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) एवम् । उक्त्वा । ततः । राजन् । महायोगेश्वरः । हरिः । दर्शयामास । पार्थाय । परमम् । रूपम् । ऐश्वरम् ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! सो महान्योगेश्वर कृष्णभगवान् इसप्रकारका वचन कहिके तिसतें अनंतर अर्जुनके ताई आपणे दिव्य ऐश्वर रूपकूं दिखावताभया ॥ ९ ॥

भा० टी०—हे धृतराष्ट्र! सो महायोगेश्वर हरि अर्थात् सर्वते उत्कृष्ट तथा सर्वयोगिजनोंका ईश्वर तथा आपणे भक्तजनोंके सर्वक्लेशोंकूं हरणकरणेहारा कृष्ण भगवान् इस प्राकृत चक्षुकरिकैतूं अर्जुन दिव्यरूप मै परमेश्वरकूं नहीं देखसकैगा। यातें मै तुम्हारेकूं दिव्यचक्षु देताहूं,या प्रकारका वचन तिस अर्जुनके प्रति कहिके तिस दिव्यचक्षुके देणेते अनंतर तिस अनन्यभक्त अर्जुनके ताई देखणेविषे अशक्यभी आपणे दिव्य ऐश्वर्यरूपकूं दिखावताभया॥९॥

अब तिस दिव्यरूपकूं अनेक विशेषणोंकरिके युक्त कथन करें हैं—

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ॥
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) अनेकवक्त्रनयनम् । अनेकाद्भुतदर्शनम् । अनेकदिव्याभरणम् । दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे राजन् । अनेक हैं मुख तथा नेत्र जिसविषे तथा अनेक अद्भुत वस्तुवोंका है दर्शन जिसविषे तथा अनेक भूषण हैं जिसविषे तथा दिव्य अनेक उठायेहुए हैं आयुध जिसविषे ऐसे रूपकूं सो भगवान् दिखावता भया ॥ १० ॥

भा० टी०—हे राजन् ! अनेक हैं मुख तथा नेत्र जिसरूपविषे, तथा विस्मयकी प्राप्ति करणेहारे अनेक वस्तुवोंका है दर्शन जिसरूपविषे । तथा

अनेक दिव्यभूषण हैं जिस रूपविषे तथा उठायेहुए हैं चक्र गदा आदिक दिव्य आयुध जिस स्वरूपविषे ऐसे स्वरूपकूं सो कृष्ण भगवान् तिस अर्जुनके ताईं दिखावताभया ॥ १० ॥

किंच—

दिव्यमाल्यांबरधरं दिव्यगंधानुलेपनम् ॥
सर्वाश्चर्यमयं देवमनंतं विश्वतोमुखम् ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) दिव्यमाल्यांबरधरम् । दिव्यगंधानुलेपनम् । सर्वाश्चर्यमयम् । देवम् । अनंतम् । विश्वतोमुखम् ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे राजन् ! दिव्यमाला तथा वस्त्र धारण करेहैं जिसनैं तथा दिव्य गंधवाले वस्तुवोंका है लेपन जिसविषे तथा सर्व आश्चर्यमय तथा प्रकाशरूप तथा अपरिच्छिन्न तथा सर्वओरतैं हैं मुख जिसविषे ऐसे रूपकूं दिखावताभया ॥ ११ ॥

भा० टी०—हे राजन् । पुष्पमय तथा रत्नमय ऐसी जे दिव्यमाला हैं तिन दिव्यमालावोंकूं धारण कन्याहै जिसनैं तथा पीतांबरादिक दिव्य वस्त्रोंकूं धारण कन्याहै जिसनैं तथा दिव्य गंधवाले कर्पूरचंदनादिकोंका है लेपन जिसविषे तथा सर्वाश्चर्यमय है अर्थात् तेज, बल, वीर्य, शक्ति, रूप गुण, अवयव, अवस्थान इत्यादिक सर्व विशेषोंकरिकै अनेक अद्भुतरूपोंवाला है । पुनः कैसा है सो रूप—देव है अर्थात् प्रकाशस्वरूप है । पुनः कैसा है सो रूप—अनंत है अर्थात् देशकाल वस्तु परिच्छेदतैं रहित है । पुनः कैसा है सो रूप—विश्वतोमुख है अर्थात् सर्व ओरतैं हैं मुख जिसविषे ऐसे आपणे स्वरूपकूं श्रीभगवान् ता अर्जुनके प्रति दिखावता भया । इस प्रकारतैं पूर्व अष्टमश्लोकविषे स्थित (दर्शयामास) इस पदोंके साथि इन दोनों श्लोकोंका अन्वय करणा । अथवा (अर्जुनो ददर्श) इस पदका अध्याहार करिकै इन दोनों श्लोकोंका अन्वय करणा । अर्थात् ऐसे स्वरूपकूं सो अर्जुन देखता भया ॥ ११ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे तिस विश्वरूपका (देवं) यह विशेषण कथन कऱ्याथा। अब तिस विशेषणका इस श्लोकविषे विस्तारतै वर्णन करैंहै-

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ॥
यदि भाः सदृशी सास्याद्भासस्तस्यमहात्मनः १२

(पदच्छेदः) दिवि। सूर्यसहस्रस्य। भवेत्। युगपत् ।उत्थिता। यदि । भाः । सदृशी । सा ।स्यात्। भासः।तस्य।महात्मनः ॥१२॥

(पदार्थ) हे राजन् ! आकाशविषे एकही कालमैं जबी सहस्रसूर्यकी प्रभा उत्थित हुई होवै तबी सा प्रभा तिस विश्वरूपकी प्रभाके तुल्य होवै ॥ १२ ॥

भा० टी०—हे राजन् ! आकाशविषे सहस्रसूर्यकी अर्थात् एकही कालविषे उदयहुए अपरिमित सूर्योंके समूहकी एकही कालविषे जो कदाचित् प्रभा उत्थित हुई होवैहै तौ सा प्रभा तिस विश्वरूपकी प्रभाके तुल्य होवै अथवा नहींभी तुल्य होवै । और मैं तो यह मानताहूं तिन सूर्योंकी प्रभातैंभी ता विश्वरूपकी प्रभा अत्यंत उत्कृष्ट है। इसतैं परे दूसरी कोई उपमा है नहीं । तहां एकही कालविषे अपरिमित सूर्योंका उदय होणाही संभवता नहीं । यातैं यह उपमा अभूत उपमा है ता अभूत उपमाकरिकै यह अर्थ सूचन कऱ्या । सर्व प्रकारतैं ता विश्वरूपके प्रभाकी उपमा संभवती नहीं ॥ १२ ॥

तहां पूर्व (इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।) इस वचनकरिकै श्रीभगवाननैं अर्जुनके प्रति आपणे देहके किसी अवयवविषे सर्व जगत्के देखणेकी आज्ञा करीथी सो अर्जुन तिस अर्थकूंभी अनुभव करता भया । यह वार्ताभी संजय धृतराष्ट्रके प्रति कथन करैंहै-

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ॥
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पांडवस्तदा ॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) तत्र। एकस्थम् । जगत् । कृत्स्नम् । प्रविभक्तम्। अनेकधा । अपश्यत् । देवदेवस्य । शरीरे । पांडवः । तदा॥१३॥

(पदार्थः) हे राजन् ! तिसकालविषे सो अर्जुन देवतावोंकरिकै पूज्य भगवान्के तिस विश्वरूपशरीरविषे किसी एकदेशविषे स्थित अनेकप्रकारकरिकै भिन्न भिन्न सर्व जगत्कूं देखता भया ॥ १३ ॥

भा० टी०—हे राजन् ! जिसकालविषे श्रीभगवान्नैं अर्जुनके प्रति आश्चर्यमय विश्वरूप दिखाया तिसकालविषे सो अर्जुन इंद्रादिक सब देवतावोंकरिकै पूज्य भगवान्के तिस विश्वरूप शरीरविषे किसी एक अवयवविषे सर्वजगत्कूं देखता भया । कैसा है सो जगत्—देव, पितर, मनुष्य इत्यादिक अनेक प्रकारोंकरिकै भिन्न भिन्न है ॥ १३ ॥

हे धृतराष्ट्र ! इस प्रकार अद्भुत विश्वरूपके दर्शन हुएभी सो अर्जुन भयकूं नहीं प्राप्त होता भया । तथा तिस रूपकूं देखिकै सो अर्जुन आपणे नेत्रोंकूं भी नहीं मूँदता भया । तथा संभ्रमके वशतैं सो अर्जुन तिस कालविषे अवश्य कर्तव्य अर्थकूं विस्मरणभी नहीं करता भया । तथा भयभीत होइकै सो अर्जुन तिस देशतैं भागताभी नहीं भया । किंतु महान्चित्तक्षोभके प्राप्तहुएभी अत्यंत धैर्यवाला होणेतैं सो अर्जुन तिस कालविषे उचित व्यवहारकूंही करता भया । यह सर्व अर्थ संजय धृतराष्ट्रके प्रति कथन करैहै—

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनंजयः ॥
प्रणम्य शिरसा देवं कृतांजलिरभाषत ॥ १४ ॥

(पदच्छेदः) ततः । सः । विस्मयाविष्टः । हृष्टरोमा । धनंजयः । प्रणम्य । शिरसा । देवम् । कृतांजलिः । अभाषत ॥१४॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! तिसतैं अनंतर विस्मयकरिके प्राप्तहुआ तथा पुलकित रोमांचवाला हुआ सो धनंजय तिस नारायण देवकूं आपणे मस्तककरिकै नमस्कारकरिकै आपणे दोनों हस्त जोडिकै यह वचन कहता भया ॥ १४ ॥

भा० टी०—हे राजन् ! युधिष्ठिर राजाके राजसूय यज्ञवासतै सर्वराजोंकूं जीतिकै सो अर्जुन धनकूं ले आवता भया है यातैं ता अर्जुनकूं

धनंजय कहैहैं। तथा सो अर्जुन साक्षात् महादेवके साथभी युद्ध करता भया हैं। ऐसा अत्यंत प्रसिद्ध पराक्रमवाला तथा अग्निकी न्याईं अत्यंत तेजस्वी तथा अत्यंत धैर्यवान्‌सो अर्जुन तिस विश्वरूपके दर्शनतै अनंतर विस्मयकरिकैं आविष्टहुआ अर्थात् तिस अद्भुतरूपके दर्शनतै उत्पन्न भया जो चित्तका कोई अलौकिक चमत्काररूप विस्मय है ता विस्मयकरिकै व्याप्तहुआ। इसी कारणतैंही हृष्टरोमा हुआ अर्थात् ता विस्मयकरिकै पुलकित हुएहैं सर्व शरीरके रोम जिसके ऐसा सो अर्जुन तिस विश्वरूपके धारण करणे-हारे नारायणदेवकूं भूमिविषे लगाये हुए आपणे मस्तककरिकैं अत्यंत श्रद्धाभक्तिपूर्वक नमस्कार करिकै तथा आपणे दोनों हस्तोंकूं जोडिकै इस वक्ष्यमाण वचनकूं कहताभया ॥ १४ ॥

तहां श्रीभगवान्‌नै हमारे प्रति जो विश्वरूप दिखाया है सो विश्वरूप यद्यपि सर्वलोकोंकरिकै देखणेकूं अशक्य है तथापि श्रीभगवान्‌नैं प्राप्त करेहुए दिव्यचक्षुकरिकै मैं अर्जुन तिस विश्वरूपकूं प्रत्यक्ष देखताहूं। यातैं हमारे कोई अहोभाग्य है इसप्रकार आपणे अनुभवकूं प्रगट करता हुआ सो अर्जुन श्रीभगवान्‌के प्रति कहै है–

अर्जुन उवाच ।

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वास्तथा भूतविशेष-संघान् ॥ ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्॥ १५ ॥

(पदच्छेदः) पश्यामि । देवान् । तव । देव । देहे । सर्वान् । तथा । भूतविशेषसंघान् । ब्रह्माणम् । ईशम् । कमलासनस्थम् । ऋषीन् । च । सर्वान् । उरगान् । च । दिव्यान् ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे देव ! तुम्हारे इस विश्वरूप देहविषे मैं अर्जुन सर्व-देवतावोंकूं देखताहूं तथा स्थावर जंगमरूप भूतोंके समूहकूं देखताहूं तथा कमलरूप आसनविषे स्थित सर्वके नियंता चतुर्मुख ब्रह्माकूं देखता हूं तथा सर्व ऋषियोंकूं देखताहूं तथा दिव्य सर्पोंकूं देखताहूं ॥ १५ ॥

भा० टी०–हे विश्वरूपके धारण करणेहारे नारायण देव ! तुम्हारे इस विश्वरूप देहविषे मैं अर्जुन वसु रुद्र आदित्य इत्यादिक सर्व देवताओंकूं देखता हूं । अर्थात् इस दिव्यचक्षुजन्य ज्ञानका विषय करता हूं । या प्रकारका (पश्यामि) इस शब्दका अर्थ आगेभी सर्व पर्यायोंविषे जानिलेणा । तथा इस तुम्हारे विश्वरूप देहविषे मैं अर्जुन स्थावरजंगमरूप सर्व भूतोंके समूहकूंभी देखता हूं । और सर्व भूतोंका नियंता जो चतुर्मुख ब्रह्मा है जो ब्रह्मा कमलरूप आसनविषे स्थित है अर्थात् पृथिवीरूप कमलका कर्णिकारूप जो सुमेरु है ता सुमेरुरूप आसनविषे स्थित है अथवा विष्णुभगवान्‌के नाभिकमलरूप आसनविषे स्थित है ऐसे चतुर्मुख ब्रह्माकूंभी मैं अर्जुन तुम्हारे इस विश्वरूप देहविषे देखता हूं । तथा वसिष्ठकूं आदिलैके जे ब्रह्माके पुत्ररूप नारदसनकादिक ऋषि हैं तिन सर्व ऋषियोंकूंभी मैं तुम्हारे इस विश्वरूप देहविषे देखता हूं ।। तथा इस लोकविषे अप्रसिद्ध जे वासुकि आदि सर्प हैं तिन सर्पोंकूंभी मैं तुम्हारे इस विश्वरूप देहविषे देखता हूं ॥ १५ ॥

तहां जिस भगवान्‌के विश्वरूप देहविषे सो अर्जुन इन पूर्वउक्त सर्वपदार्थोंकूं देखताभयाहै तिसी विश्वरूप देहकूं सो अर्जुन अब अनेक अद्भुत विशेषणों करिकै वर्णन करैहै–

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोनंतरूपम् ॥ नांतं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रम् । पश्यामि । त्वाम् । सर्वतः । अनंतरूपम् । न । अन्तम् । न । मध्यम् । न । पुनः । तव । आदिम् । पश्यामि । विश्वेश्वर । विश्वरूप ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे सर्व विश्वके ईश्वर ! हे सर्व विश्वरूप अनेक हैं बाहु उदर मुख नेत्र जिसविषे तथा सर्वत्र अनंत हैं रूप जिसके ऐसे तुम्हारेकूं मैं

अर्जुन देखताहूं पुनः तुम्हारे अंतकूं भी मैं नहीं देखताहूं तथा मध्यकूंभी नहीं देखताहूं तथा आदिकूंभी नहीं देखताहूं ॥ १६ ॥

भा० टी०–हे सर्वविश्वका ईश्वर ! तथा हे सर्वविश्वरूप श्रीभगवन् ! अनेक हैं बाहु जिसविषे अनेक हैं उदर जिसविषे अनेकहैं मुख जिसविषे तथा अनेक हैं नेत्र जिसविषे ऐसे तुम्हारे विश्वरूपकूं मैं अर्जुन इस दिव्यचक्षुकरिकै देखता हूं । तथा सर्वत्र अनंत हैं रूप जिसके ऐसे तुम्हारेकूं मैं देखताहूं । तथा तुम्हारे अवसानरूप अंतकूंभी मैं देखता नहीं । तथा तुम्हारे मध्यकूंभी मै देखता नहीं । तथा तुम्हारे आदिकूंभी मैं देखता नहीं । काहेते जो पदार्थ देशकरिकै अथवा कालकरिकै परिच्छिन्न होवैहै तिस पदार्थकाही आदि मध्य अंत होवै है । और आप तौ सर्वदेशविषे तथा सर्वकालविषे विद्यमान हो, यातैं आपका सो आदि मध्य अन्त सम्भववा नहीं । इहां (हे विश्वेश्वर ! हे विश्वरूप !) यह जो दो सम्बोधन भगवान्के अर्जुननैं कथन करे हैं सो तिसकालविषे अतिसंभ्रमतैं कथन करेहैं ॥ १६ ॥

अब अर्जुन तिसी विश्वरूप भगवान्कूं अन्यप्रकारतैं अनेक विशेषणोंकरिकै युक्त कथन करै हैं–

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमंतम् ॥ पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समंताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥ १७ ॥

(पदच्छेदः) किरीटिनम् । गदिनम् । चक्रिणम् । च । तेजोराशिम् । सर्वतः । दीप्तिमंतम् । पश्यामि । त्वाम् । दुर्निरीक्ष्यम् । समंतात् । दीप्तानलार्कद्युतिम् । अप्रमेयम् ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! किरीटकूं धारनकरणेहारे तथा गदाकूं धारणकरणेहारे तथा चक्रकूं धारणकरणेहारे तथा तेजका समूहरूप तथा सर्व ओरतें प्रकाशमान तथा देखणेकूं अशक्य तथा प्रकाशमान अग्नि सूर्य

के प्रभाकी न्याईं प्रभावाले तथा अप्रमेय ऐसे तुम्हारेकूं मैं अर्जुन सर्वओरतैं देखताहूं ॥ १७ ॥

भा० टी०—हे भगवन् ! कैसा है सो आपका विश्वरूप—मस्तक ऊपरि मुकुटकूं धारण करणेहारा है । तथा हस्तोंविषे गदाकूं धारणकरणेहारा है । तथा चक्रकूं धारण करणेहारा है । तथा सर्व ओरतैं प्रकाशमान है तथा सर्वतेजका समूहरूप है । इस कारणतैंही दुर्निरीक्ष है अर्थात् इस दिव्यचक्षुतैं विना देखणेकूं अशक्य है इहां (दुर्निरीक्ष्यम्) इसप्रकारका जो मूलश्लोकविषे पाठ होवै तौ दुःख यह शब्द निषेधका वाचक जानणा अर्थात् सो आपका स्वरूप नहीं देख्याजावै है । पुनः कैसा है सो विश्वरूप, अत्यन्त दीप्तिमान् जो अग्नि सूर्य है तिन अग्निसूर्य दोनोंके प्रभाकी न्याईं है प्रभा जिसकी । तथा अप्रमेय है अर्थात् इस प्रकारका यह स्वरूप है याप्रकारतैं निश्चयकरणेकूं अशक्य है । ऐसे स्वरूपकूं धारण करणेहारे तुम्हारेकूं सर्व ओरतैं मैं अर्जुन इस दिव्यचक्षुकरिकै देखताहूं । यद्यपि (दुर्निरीक्ष्यम्) इस वचनकरिकै अर्जुननैं ता विश्वरूपके दर्शनका निषेध कथन कऱ्याथा । और (पश्यामि) इस वचनकरिकै ता विश्वरूपका दर्शन कथन कऱ्या है । यातैं पूर्व उत्तर वचनका विरोध प्राप्त होवैहै तथापि अधिकारीके भेदतैं ते दोनों वचन संभवै हैं । तहां दिव्यचक्षुतैं रहित पुरुषकूं तौ सो विश्वरूप देखणेकूं अशक्य है । और दिव्यचक्षुवाले पुरुषकूं सो विश्वरूप देखणकूं शक्य है ॥ १७ ॥

हे भगवन् ! बुद्धिमान् पुरुषोंकरिकैभी तर्कना करणेकूं अशक्य ऐसा जो तुम्हारा निरतिशय ऐश्वर्य है ता ऐश्वर्यके दर्शनतैं मैं अर्जुन आप परमेश्वरकूं इस प्रकारका मानताहूं । इस वार्त्ताकूं अर्जुन कथन करै है—

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ॥ त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥ १८ ॥

(पदच्छेदः) त्वम् । अक्षरम् । परमम् । वेदितव्यम् । त्वम् । अस्य । विश्वस्य । परम् । निधानम् । त्वम् । अव्ययः । शाश्वतधर्मगोता । सनातनः । त्वम् । पुरुषः । मतः । मे ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! आपही परम अक्षर हो तथा आपही जानणे योग्य हो तथा आपही इस जगत्का परम आश्रय हो तथा आपही अव्यय हो तथा अनादि धर्मके पालक हो तथा आपही सनातन परमात्मा पुरुष हमारेकूं संमत हो ॥ १८ ॥

भा० टी०–हे भगवन् ! (एतद्वै तदक्षरं गार्गि) इत्यादिक श्रुतिनैं अक्षररूपकरिकै प्रतिपादन कऱ्या हुआ तथा (अव्यक्तात्पुरुषः परः) इत्यादिक श्रुतिनैं सर्वतैं पररूपकरिकै प्रतिपादन कऱ्याहुआ जो निर्गुणब्रह्म है सो निर्गुण ब्रह्मरूपभी आपही हो । जिस कारणतैं आप निर्गुण ब्रह्मरूप हो इस कारणतैं आपही मुमुक्षुजनोंनैं वेदांतशास्त्रके श्रवणादिकोंकरिकै जानणेयोग्य हो । तथा आपही इस सर्वजगत्का परम आश्रय हो अर्थात् इस सर्व कल्पितप्रपंचका अधिष्ठानरूप हो । इसी कारणतैंही आप अव्यय हो अर्थात् नित्य हो । तथा नित्य वेदकरिकै प्रतिपादित होणेतैं शाश्वतरूप जो वर्णाश्रमका धर्म है ता धर्मकेभी आपही पालनकरणेहारे हो । अथवा (शाश्वत धर्मगोप्ता) यह दो पद जानणे । वहां शाश्वत यह पद तौ श्रीभगवान्का संबोधन है अर्थात् हे शाश्वत ! हे नित्यरूप ! इस पक्षविषे अव्ययः इस पदका विनाशतैं रहित यह अर्थ करणा । इसी कारणतैं ही जो सनातन परमात्मादेवरूप पुरुष है सो परमात्मापुरुषभी आपकूंही मैं मानताहूं ॥ १८ ॥

किंच–

अनादिमध्यांतमनंतवीर्यमनंतबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ॥
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपंतम् ॥ १९ ॥

(पदच्छेदः) अनादिमध्यांतम् । अनंतवीर्यम् । अनंतबाहुम् । शशिसूर्यनेत्रम् । पश्यामि । त्वाम् । दीप्तहुताशवक्त्रम् । स्वतेजसा । विश्वम् । इदम् । तपंतम् ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! उत्पत्ति स्थिति नाशतैं रहित तथा अनंत है प्रभाव जिसका तथा अनंत है बाहु जिसकी तथा चन्द्रमा सूर्य हैं नेत्र जिसके तथा प्रज्वलित अग्नि है मुखोंविषे जिसके तथा आपणे तेजकरिकै इस सर्वविश्वकूं तपायमानकरणेहारा ऐसे आपके स्वरूपकूं मैं अर्जुन देखताहूं ॥ १९ ॥

भा० टी०—हे भगवन् ! पुनः सो आपका विश्वरूप कैसा है, उत्पत्तितैंभी रहित है । तथा स्थितितैंभी रहित है । तथा विनाशतैंभी रहित है तथा अपरिमित है वीर्य क्या प्रभाव जिसका तथा अनंत हैं बाहु जिसकी । इहां (अनंतबाहुम्) यह शब्द मुखादिक सर्व अवयवोंकी अनंतताका उपलक्षण है । तथा चन्द्रमा सूर्य यह दोनों हैं नेत्र जिसके । तथा प्रज्वलित अग्नि है मुख जिसका । अथवा प्रज्वलित अग्नि है मुखोंविषे जिसके । तथा आपणे तेजकरिकै इस सर्व जगत्‌कूं तपायमानकरणेहारा है । ऐसे तुम्हारे इस विश्वरूपकूं मैं अर्जुन इस दिव्यचक्षुकरिकै देखता हूं ॥ १९ ॥

अब अर्जुन तिस भगवान्‌के विश्वरूपकी सर्वत्र व्यापकताकूं कथन करै है—

द्यावापृथिव्योरिदमंतरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ॥ दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥ २० ॥

(पदच्छेदः) द्यावापृथिव्योः । इदम् । अंतरम् । हि । व्याप्तम् । त्वया । एकेन । दिशः । च । सर्वाः । दृष्ट्वा । अद्भुतम् । रूपम् । उग्रम् । तव । इदम् । लोकत्रयम् । प्रव्यथितम् । महात्मन् ॥ २० ॥

(पदार्थः) हे महात्मन् तैं एकनैं ही स्वर्गपृथिवीके मध्यमैं यह अंतरिक्ष व्याप्त कऱ्या है तथा सर्व दिशा व्यापकरी है तुम्हारे इस अद्भुत उग्र रूपकूं देखिकै तीन लोक अत्यंतभययुक्त हुए हे ॥ २० ॥

भा० टी०—हे महात्मन् ! अर्थात् हे साधुपुरुषोंकूं अभयकी प्राप्ति करणेहारा विश्वरूप भगवन् ! स्वर्ग पृथिवी इन दोनोंके मध्यविषे स्थित जो यह अंतरिक्ष लोकहै सो अंतरिक्षतैं एकपरमेश्वरनैंही व्याप्त कऱ्या है। तथा पूर्वपश्चिमादिक सर्व दिशाभीतैं विश्वरूपनैं ही व्याप्त करीहैं । इहां अंतरिक्षका तथा दिशावोंका ग्रहण स्थावरजंगमरूप सर्वविश्वका उपलक्षण है । अर्थात् यह स्थावरजंगमरूप सर्व विश्वतैं विश्वरूप परमेश्वरनैंही व्याप्त कऱ्या है । और जो वस्तु जिसनैं व्याप्त करीवाहै सो वस्तु तिसका स्वरूपही होवैहै । जैसे मृत्तिकानैं व्याप्त करेहुए घटशरावादिक कार्य मृत्तिकास्वरूपही होवै हैं तैसे तैं परमेश्वरनैं व्याप्त कऱ्याहुआ यह सर्वविश्व तुम्हाराही स्वरूप है अर्थात् सर्व विश्वरूप तूं ही है । तहां श्रुति—(ब्रह्मैवेदं सर्वम्) अर्थ यह—यह सर्व जगत् ब्रह्मरूपही है इति । हे भगवन् ! तुम्हारे इस विश्वरूपकूं देखिकै तीन लोक भयकरिकै अत्यंत व्यथाकूं प्राप्त होते-भये हैं अब ता विश्वरूपके दर्शनविषे भयकी हेतुता सिद्ध करणेवासतैं ता विश्वरूपके हेतुगर्भित दो विशेषणोंकूं अर्जुन कथन करै है (अद्भुतम् उग्रम् इति) हे भगवन् ! कैसा है सो तुम्हारा विश्वरूप—अद्भुत है अर्थात् आपणे दर्शनतै अत्यंत विस्मयकी प्राप्ति करणेहारा है । पुनः कैसा है सो रूप—उग्र है अर्थात् महान् तेजस्वी होणेतै अत्यंत दुःखकरिकै जान्याजावै है । यातैं हे भगवन् ! अबी इस आपके विश्वरूपकूं अंतर्धान करो ॥ २० ॥

अब मैं परमेश्वरही सर्व पृथिवीके भारका संहार करणेहारा हूं । याप्रकारतैं आपणेविषे सर्व पृथिवीके भारका संहारकरवापणेकूं प्रगट करणेहारे भगवान्कूं देखिकै सो अर्जुन कहै है—

अमी हि त्वां सुरसंघा विशंति केचिद्भीताः प्रांज-
लयो गृणंति ॥ स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः
स्तुवंति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥ २१ ॥

(पदच्छेदः) अमी । हि । त्वां । सुरसंघाः । विशंति । केचित् । भीताः । प्रांजलयः । गृणंति । स्वस्ति । इति । उक्त्वा । महर्षिसिद्धसंघाः । स्तुवंति । त्वाम् । स्तुतिभिः । पुष्कलाभिः २१

(पदार्थः) हे भगवन् ! यह देवतावोंके समूह तुम्हारे प्रति हि प्रवेश करैं हैं तथा केईक पुरुष भयकूं प्राप्तहुए दोनों हाथोंकूं जोडिकै स्तुति करैं है तथा महाऋषि सिद्ध पुरुष इंस जगत्का स्वस्ति होवौ इंस प्रकारका वचन कहिकै तैं परमेश्वरकी परिपूर्ण अर्थके बोधक वचनोंक-रिकै स्तुति करे हैं ॥ २१ ॥

भा० टी०—हे भगवन् ! पृथिवीके भारके उतारणेवासतै मनुष्य-रूपकरिकै अवतारकूं प्राप्तहुए तथा दुष्टजनोंके विनाश करणेवासतै युद्धकूं करतेहुए जे यह वसु आदित्य इत्यादिक देवतावोंके समूह हैं ते सर्व देवगण तुम्हारेविषेही प्रवेश करते हुए हमारेकूं देखणेमें आवैं हैं । इहां (त्वा असुरसंघाः) या प्रकारका पदच्छेदकरिकै इस वचनका यह दूसराभी अर्थ करणा—असुरोंका अंशरूप होणेतैं असुररूप जे यह दुर्योधनादिक हैं जे दुर्योधनादिरूप असुरगण इस पृथिवीविषे भाररूप हैं ऐसे दुर्योधनादिक असुरगण दुष्ट अदृष्टोंकरिकै प्रेरणाकरेहुए आपणे मरणवासतै तुम्हारेविषे प्रवेश करैं हैं । जैसे पतंग आपणे मरणवासतै अग्निविषे प्रवेश करैं हैं। तथा दोनों सेनावोंके मध्यविषे केईक पुरुष भीतहुए अर्थात् भागणेविषे भी असमर्थ हुए आपणे दोनों हाथ जोडिकै दूरतैंही तुम्हारी स्तुति करैं हैं । इसप्रकारतैं महान् युद्धके प्राप्तहुए उत्पा-तादिकोंके निमित्तोंकूं देखिकै इन सर्वविश्वका स्वस्ति होवो अर्थात् रक्षण होवो, इसप्रकारके वचनोंकूं कहिके नारदादिक सर्व महाऋषि तथा

कपिलादिक सर्व सिद्ध युद्धके देखणेवासते तहां आयेहुए सर्व विश्वके विनाशके निवृत्तकरणे वासतै परिपूर्ण अर्थके बोधक तथा गुणोंकी उत्कृष्टताकूं प्रतिपादन करणेहारे ऐसे वचनोंकरिकै आप परमेश्वरकी स्तुतिकूं करैं हैं ॥ २१ ॥

किंच—

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ॥ गंधर्वयक्षासुरसिद्धसंघा वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥ २२ ॥

(पदच्छेदः) रुद्रादित्याः । वसवः । ये । च । साध्याः । विश्वे । अश्विनौ । मरुतः । च । ऊष्मपाः । च । गंधर्वयक्षासुरसिद्धसंघाः । वीक्षंते । त्वाम् । विस्मिताः । च । एव । सर्वे ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे भगवन्! जे रुद्र आदित्य हैं तथा वसु है तथा साध्य हैं तथा विश्वेदेव हैं तथा अश्विनीकुमार है तथा मरुत् है तथा ऊष्मपा हैं गंधर्व तथा यक्ष असुर सिद्धोंके समूह है वे सर्व ही तुम्हारेकूं देखते तथा विस्मयकूं प्राप्त होवैं हैं ॥ २२ ॥

भा० टी०—हे भगवन् ! रुद्र है नाम जिनोंका ऐसा जो देवतावोंका समूह है तथा आदित्य है नाम जिनोंका ऐसा जो देवतावोंका समूह है । तथा वसु है नाम जिनोंका ऐसा जो देवतावोंका समूह है तथा साध्य है नाम जिनोंका ऐसा जो देवतावोंका समूह है तथा विश्व है नाम जिनोंका ऐसा जो देवतावोंका समूह है तथा दोनों अश्विनीकुमार जो हैं तथा मरुत है नाम जिनोंका ऐसे जे उनंचास देवताविशेष हैं । तथा ऊष्मपा है नाम जिनोंका ऐसा जो पितरोंका समूह है जे पितर (ऊष्मभागा हि पितरः) इस श्रुतिविषे ऊष्मपा नामकरिकै कथन करेहैं तथा गंधर्वोंके जो समूह हैं । तथा यक्षोंके जो समूह हैं । तथा असुरोंके जो समूह हैं । तथा सिद्धोंके जो समूह हैं । यह पूर्वउक्त सर्वही वे विश्वरूपवाले परमेश्वरकूं

देखते हैं । तिस अद्भुतरूपके दर्शनतैं अनंतर वे सर्वही विस्मयकूं प्राप्त होवैं हैं ॥ २२ ॥

वहां पूर्व वीसवें श्लोकविषे (लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्) इस वचन करिकै ता विश्वरूपके दर्शनतैं तीन लोकोंकूं भयकी प्राप्ति कथन करीथी । अव तिस पूर्व उक्त अर्थका उपसंहार करैं हैं—

रूपं महत्ते वहुवक्त्रनेत्रं महावाहो वहुबाहूरुपादम् ॥ वहूदरं वहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥ २३ ॥

(पदच्छेदः) रूपम् । महत् । ते । वहुवक्त्रनेत्रम् । महाबाहो । बहुबाहूरुपादम् । बहूदरम् । बहुदंष्ट्राकरालम् । दृष्ट्वा । लोकाः । प्रव्यथिताः । तथा । अहम् ॥ २३ ॥

(पदार्थः) हे महाबाहुवाले भगवन् ! अत्यन्त महान् तथा बहुत हैं मुख नेत्र जिसविषे तथा बहुत हैं बाहु ऊरु पाद जिसविषे तथा बहुत हैं उदर जिसविषे तथा बहुत दंष्ट्रावोंकरिकै अतिभयानक ऐसे तुम्हारे इस विश्वरूपकूं देखिकै सर्वप्राणी तथा मैं अर्जुन व्यथाकूं प्राप्त होते भयेहैं॥२३॥

भा० टी०—हे महान् भुजावाले विश्वरूप भगवन् ! तुम्हारे इस अद्भुत विश्वरूपकूं देखिकै सर्वप्राणी भयकरिकै अतिव्यथाकूं प्राप्त होतेभये हैं । तथा मैं अर्जुनभी ता रूपकूं देखिकै भयकरिकै अतिव्यथाकूं प्राप्त होता भयाहूं कैसा है सो तुम्हारा विश्वरूप—महत् है अर्थात् अत्यंत महत् परिमाणवाला है । पुनः कैसा है सो तुम्हारा रूप—वहुत हैं मुख जिसविषे तथा वहुत हैं नेत्र जिसविषे तथा बहुत हैं भुजा जिसविषे तथा वहुत हैं ऊरु जिसविषे तथा वहुत हैं पाद जिसविषे तथा वहुत हैं उदर जिसविषे तथा जो रूप वहुत दंष्ट्रावोंकरिकै अत्यंत भयानक है ऐसे आपके रूपके देखणे मात्रतैंही हमारे सहित सर्व प्राणी भयकरिकै पीडित होतेभये ॥२३॥

अव अर्जुन ता परमेश्वरके विश्वरूपविषे क्षोभायमानपणा स्पष्टकरिकै निरूपण करैं हैं—

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ॥ दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितांतरात्मा धृतिं न विंदामि शमं च विष्णो ॥ २४ ॥

(पदच्छेदः) नभःस्पृशम् । दीप्तम् । अनेकवर्णम् । व्यात्ताननम् । दीप्तविशालनेत्रम् । दृष्ट्वा । हि । त्वाम् । प्रव्यथितांतरात्मा । धृतिम् । न । विंदामि । शमम् । च । विष्णो ॥ २४ ॥

(पदार्थः) हे विष्णुभगवन् ! संपूर्ण आकाशविषे व्यापक तथा अत्यंत प्रज्वलित तथा अनेक हैं वर्ण जिसविषे तथा विस्फारित हैं मुख जिसविषे तथा प्रज्वलित विशाल हैं नेत्र जिसविषे ऐसे तुम्हारेकूं देखके ही व्यथाकूं प्राप्त हुआहै मन जिसका ऐसा मैं अर्जुन धैर्यकूं तथा शमकूं नहीं प्राप्त होताहूं ॥ २४ ॥

भा० टी०—हे विष्णु ! अर्थात् हे सर्वत्रव्यापक भगवन् ! मैं अर्जुन तुम्हारेकूं देखिकै भयकरिकै केवल व्यथामात्रकूंही नही प्राप्त भयाहूं किंतु भयकरिकै अत्यंत व्यथाकूं प्राप्त हुआ है अंतरात्मा क्या मन जिसका ऐसा मैं अर्जुन तुम्हारेकूं देखिकरिकैही धृतिकूंभी नहीं प्राप्त होताहूं । अर्थात् देहइंद्रियादिक संघातके धारण करणेका सामर्थ्यरूप धैर्यकूंभी नहीं प्राप्त होताहूं । तथा मनकी स्थिरतारूप शमकूंभी नहीं प्राप्त होताहूं । कैसा है सो आपका स्वरूप, इस संपूर्ण आकाशरूप अंतरिक्षलोकविषे व्याप्त होइरह्याहै । अथवा आकाशकी न्याईं सर्वपदार्थोंकूं स्पर्श करिरह्या है । पुनः कैसा है सो आपका स्वरूप, दीप्त है अर्थात् महान् अग्निकी न्याईं अत्यंत प्रज्वलित है । पुनः कैसा है सो स्वरूप, अनेक वर्ण है अर्थात् भयकी प्राप्ति करणेहारे अनेक रूपोंकरिकै युक्त है पुनः कैसा है सो स्वरूप, विस्फारित हुए हैं मुख जिसविषे अर्थात् फाटे हुए हैं मुख जिसविषे । पुनः कैसा है सो स्वरूप, सूर्यमंडलकी न्याईं प्रज्वलित तथा विशाल हैं नेत्र जिसविषे ऐसे आपके स्वरूपकूं देखिकरिकैही भय-

करिकै व्यथाकूं प्राप्त हुआहै मन जिसका ऐसा मैं अर्जुन धृतिकूं तथा शमकूं प्राप्त होता नहीं । इहां (हे विष्णो) इस संबोधनकरिकै अर्जुननैं विश्वरूप भगवान्‌की व्यापकता कथन करी ताकरिकै यह अर्थ बोधन कऱ्या । जिसकारणतै आप विश्वरूप सर्वत्र व्यापक हो तिस कारणतैं तुम्हारे करिकै युक्त भयानक देशकूं परित्याग करिकै मैं अर्जुन अन्यत्र जाणेविषे समर्थ नहींहूं । यातैं यह भयानक विश्वरूप आपनैं अंतर्धान कऱ्या चाहिये ॥ २४ ॥

अब इस पूर्वउक्त अर्थकूंही पुनः दूसरे प्रकारतै कथन करता हुआ अर्जुन श्रीभगवान्‌के प्रसन्नताकी प्रार्थना करै है–.

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ॥ दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ २५ ॥

(पदच्छेदः) दंष्ट्राकरालानि । च । ते । मुखानि । दृष्ट्वा । एव । कालानलसन्निभानि । दिशः । न । जाने । न । लभे । च । शर्म । प्रसीद । देवेश । जगन्निवास ॥ २५ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! दंष्ट्रावोंकरिकै भयंकर तथा प्रलय अग्निके तुल्य तुम्हारे मुखोंकूं देखिकरिकै ही मै अर्जुन दिशावोंकूंभी नहीं जानताहूं तथा सुखकूंभी नहीं प्राप्तहोताहूं । यातैं हे देवेश ! हे जगन्निवास हमारे ऊपरि प्रसन्न होवौ ॥ २५ ॥

भा० टी०–हे भगवन् ! दंष्ट्रावोंकरिकै अत्यंत विकराल होणेतैं भयकी प्राप्ति करणेहारे तथा प्रलयकालके अग्निके तुल्य ऐसे जे आपके मुख हैं तिन आपके मुखोंविषे यद्यपि मैं अर्जुन प्राप्त हुआ नहीं तथापि तिन आपके मुखोंकूं केवल देखिकरिकै ही भयके वशतै मैं अर्जुन पूर्व अपर इत्यादिक भेदकरिकै दिशावोंकूंभी जानता नहीं । इसी कारणतैंही मैं अर्जुन तुम्हारे दर्शनहुएभी सुखकूं प्राप्त होता नहीं । यातैं हे देवेश ! हे

जगन्निवास ! आप हमारे ऊपरि प्रसन्न होवौ । जिसकरिकै भयतैं रहित होईकै मैं अर्जुन तुम्हारे दर्शनजन्य सुखकूं प्राप्त होऊं । तहां अन्य किसीकी नहीं अपेक्षा करिकै जो आपेही प्रकाशमान होवै ताका नाम देवेश है । और आपणी समीपता मात्रतैं जो सर्वकूं चेष्टा करावै ताका नाम ईश है । जो देव होवै सोईही ईश होवै ताका नाम देवेश है अर्थात स्वप्रकाशरूप सर्वके प्रेरकका नाम देवेश है । अथवा इंद्रादिक सर्वदेवतावोंका जो ईश होवै ताका नाम देवेश है और इस सर्वजगत्‌का जो निवास होवै अर्थात अधिष्ठान होवै ताका नाम जगन्निवास है ॥२५॥

तहां पूर्व इस एकादशअध्यायके सप्तमश्लोकविषे (मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नें अर्जुनके प्रति यह वार्त्ता कथन करीथी । सर्वदा हमारे जयकूं तथा दुर्योधनादिकोंके पराजयकूं देखणाही तुम्हारेकूं इष्टहै । तिस जय पराजयकूंभी तूं इस हमारे देहविषेही देख इति । अब तिस आपणे जयकूं तथा दुर्योधनादिकोंके पराजयकूंभी मैं देखताहूं इस अर्थकूं अर्जुन पांच श्लोकोंकरिकै कथन करैहै-

अमी च त्वां धृराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसंघैः ॥ भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥ २६ ॥ वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशंति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ॥ केचिद्विलग्ना दशनांतरेषु संदृश्यंते चूर्णितैरुत्तमांगैः ॥ २७ ॥

(पदच्छेदः) अमी । च । त्वाम् । धृतराष्ट्रस्य । पुत्राः । सर्वे । सह । एव । अवनिपालसंघैः । भीष्मः । द्रोणः । सूतपुत्रः । तथा । असौ । सह । अस्मदीयैः । अपि । योधमुख्यैः । वक्त्राणि । ते । त्वरमाणाः । विशंति । दंष्ट्राकरालानि । भयानकानि । केचित् । विलग्नाः । दशनांतरेषु । संदृश्यंते । चूर्णितैः । उत्तमांगैः ॥२६।२७॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! पुनः यह धृतराष्ट्रके दुर्योधनादिक पुत्र सर्व राजावोंके समूह सहित ही अत्यंत शीघ्रतावाले हुए वे परमेश्वरविषे

प्रवेश करैं हैं तथा भीष्मे तथा द्रोणें तथा यह कर्ण ये तीनों हमारे संबंधीरूपभी मुख्ययोधावों सहित तुम्हारेविषे प्रवेश करैं हैं । हे भगवन् ! दंष्ट्रावोंकरिकै विकराल तथा अतिभयानक ऐसे तुम्हारे मुखोंविषे यह दुर्योधनादिक सर्व शीघ्रही प्रवेश करैं हैं वहां केईकें योधा चूर्णहुए शिरोंकरिकै विशिष्टहुए दांतोंकी मध्यसंधियोंविषे लगेहुए देखणेमें आवैं हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥

भा० टी०—हे भगवन् ! यह धृतराष्ट्रके दुर्योधनादिक सर्व पुत्र शल्य-राजातें आदिलैके सर्व राजावोंसहितही अत्यंत शीघ्रतातें परमेश्वरविषे प्रवेश करते हैं । हे भगवन् ! केवल यह दुर्योधनादिकही तुम्हारेविषे प्रवेश नहीं करते किंतु सर्वलोकोंनैं अजेयतारूप करिकै संभावना कर्‍या-हुआ जो यह भीष्म पितामह है तथा द्रोणाचार्य है तथा सर्वकालविषे हमारा द्वेषी जो यह सूतपुत्र कर्ण है यह तीनोंभी हमारे संबंधीरूप धृष्ट-द्युम्नादिक मुख्य योधावोंसहित तैं परमेश्वरविषे प्रवेश करैं हैं । अब तिस विश्वरूप भगवान्‌विषे तिन दुर्योधनादिकोंके प्रवेशका द्वार कथन करैं हैं—(वक्त्राणि इति) हे भगवन् ! जे आपके मुख दंष्ट्रावोंकरिकै अत्यंत विकराल हैं याकारणतैंही ते मुख अत्यंत भयानक हैं । ऐसे आपके मुखोंविषे ही यह दुर्योधनादिक सर्व अत्यंत शीघ्रतातैं प्रवेश करैं हैं । तिन प्रवेश करणेहारोंविषेभी केईक योधा तौ चूर्णभावकूं प्राप्तहुए मस्त-कोंकरिकै युक्त हुए आपके दांतोंके मध्यसंधियोंविषे लगेहुए हमनैं देखे हैं । और किसी टीकाविषे तौ इन दोनों श्लोकोंके पदोंकी (अमी धृतराष्ट्रस्य पुत्राः त्वां विशंति भीष्मद्रोणादयः ते वक्त्राणि विशंति) या प्रकारतें योजना करिकै यह अर्थ कथन कर्‍या है—धृतराष्ट्रके अत्यंत पापिष्ठ जे दुर्योधनादिक पुत्र हैं ते दुर्योधनादिक पापिष्ठ तो तीनलोक-रूप शरीरवाले आप परमेश्वरविषेही प्रवेश करैं हैं अर्थात् ते दुर्योधनादिक आपणे पापकर्मके अनुसार तैं विश्वरूप भगवान्‌के पायुस्थानविषे स्थित नरकोंकूं ही प्राप्त होवैं हैं । और यह भीष्मद्रोणादिक तौ आप परमेश्वरके

भक्त हैं, यातैं यह भीष्मादिक तौ आप परमेश्वरके जिन मुखोंतैं अग्नि ब्राह्मण देवता उत्पन्न हुए हैं तिन मुखोंविषेही प्रवेश करैं हैं। इस प्रकार दुर्योधनादिकोंके तथा भीष्मादिकोंके गतिकी विलक्षणताके बोधन करणेवासतै इसप्रकारतैं पदोंका अन्वय करणा युक्त है ॥२६॥२७

तहां पूर्वश्लोकविषे दुर्योधनादिक सर्वराजावोंका भगवान्‌के मुखोंविषे प्रवेश कथन कऱ्या सो प्रवेश दो प्रकारका होवै है। एक प्रवेश तौ अबुद्धिपूर्वक होवै है दूसरा प्रवेश बुद्धिपूर्वक होवै है। तहां न जानिकै जो प्रवेश है ताकूं अबुद्धिपूर्वक प्रवेश कहैं हैं। और जानिकै जो प्रवेश है ताकूं बुद्धिपूर्वक प्रवेश कहैं हैं। तहां भगवान्‌के मुखोंविषे तिन राजावोंके अबुद्धिपूर्वक प्रवेशविषे अर्जुन दृष्टांतकूं कथन करै है—

यथा नदीनां बहवोंबुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवंति ॥ तथा तवामी नरलोकवीरा विशंति वक्त्राण्यभितो ज्वलंति ॥ २८ ॥

(पदच्छेदः) यथा। नदीनाम्। बहवः। अंबुवेगाः। समुद्रम्। एव। अभिमुखाः। द्रवंति। तथा। तव। अमी। नरलोकवीराः। विशंति। वक्त्राणि। अभितः। ज्वलंति ॥ २८ ॥

(पदार्थः) हे भगवन्! जैसे नदियोंके बहुत जलोंके वेग समुद्रके अभिमुखहुए समुद्रकूं ही प्रवेश करैं हैं तैसे यह मनुष्यलोकके वीर तुम्हारे सर्व ओरतैं प्रकाशमान मुखोंकूं ही प्रवेश करैं हैं ॥ २८ ॥

भा० टी०—हे भगवन्! जैसे अनेक मार्गोविषे प्रवृत्तहुई जे श्रीगंगायमुनादिक नदियां हैं तिन नदियोंके जे बहुत जलोंके वेग हैं अर्थात् जिन जलोंके जे वेगवाले प्रवाह हैं ते बहुतजलोंके प्रवाह समुद्रके अभिमुख हुए तिस समुद्रविषेही अबुद्धिपूर्वक प्रवेश करैं हैं। तैसे इस मनुष्यलोकविषे शूरवीर जे दुर्योधनादिक राजे हैं वे यह दुर्योधनादिक राजे तैं परमेश्वरके सर्व ओरतैं प्रकाशमान मुखोंविषे अबुद्धिपूर्वक प्रवेश

करै हैं। तहां कितनेक पुस्तकोंविषे (अभितो ज्वलंति) इस वचनके स्थानविषे (अभिविज्ज्वलन्ति) याप्रकारकाभी पाठ होवै है इस प्रकारके पाठ हुएभी सो पूर्वउक्त अर्थही जानणा ॥ २८ ॥

अब श्रीविश्वरूप भगवान्के मुखोंविषे तिन राजावोंके बुद्धिपूर्वक प्रवेशविषे अर्जुन दृष्टांतकूं कथन करै हैं—

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगा विशंति नाशाय समृद्धवेगाः ॥ तथैव नाशाय विशंति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥ २९ ॥

(पदच्छेदः) यथा । प्रदीप्तम् । ज्वलनम् । पतंगाः । विशंति। नाशाय । समृद्धवेगाः । तथा । एव । नाशाय । विशंति। लोकाः। तव । अपि । वक्त्राणि । समृद्धवेगाः ॥ २९ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! जैसे पतंग अत्यंतवेगवाले हुए आपणे नाश वासतै प्रज्वलित अग्निविषे प्रवेशकरै हैं तैसे ही यह दुर्योधनादिक भी अत्यंत वेगवाले हुए आपणे नाशवासतै तुम्हारे मुखोंविषे प्रवेश करैहै २९

भा० टी०—हे भगवन् ! जैसे पतंग अत्यंत वेगवाले हुए आपणे मरणवासतै प्रज्वलित अग्निविषे बुद्धिपूर्वक प्रवेश करै हैं तैसे यह दुर्योधनादिक सर्व राजेभी अत्यंत वेगवाले हुए आपणे मरणवासतै तैं परमेश्वरके मुखोंविषे बुद्धिपूर्वक प्रवेश करै हैं ॥ २९ ॥

तहां पूर्व युद्धकी कामनावाले राजावोंका भगवान्के मुखोंविषे प्रवेशका प्रकार कथन कऱ्या अब तिस प्रवेश कालविषे श्रीभगवान्के प्रवृत्तिके प्रकारकूं तथा भगवानके दीप्तरूप प्रकाशके प्रवृत्तिके प्रकारकूं अर्जुन कहै है—

लेलिह्यसे ग्रसमानः समंताल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ॥ तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं भासस्तवोग्राः प्रतपंति विष्णो ॥ ३० ॥

(पदच्छेदः) लेलिह्यसे । ग्रसमानः । समंतात् । लोकान् । समग्रान् । वदनैः । ज्वलद्भिः । तेजोभिः । आपूर्य । जगत् । समग्रम् । भासः । तव । उग्राः । प्रतपंति । विष्णो ॥ ३० ॥

(पदार्थः) हे विष्णुभगवन् ! संपूर्ण लोकोंकूं ग्रासकरता हुआ तूं आपणे प्रज्वलित मुखोंकरिकै सर्व ओरतैं आस्वादन करता है इस समग्र जगत्कूं आपणी दीप्तियोंकरिकै सर्व ओरतै पूर्णकरिकै याकारणतैं तुम्हारी ते उग्र दीप्तियां संतापकूं उत्पन्न करैं हैं ॥ ३० ॥

भा० टी०-हे विष्णो ! अर्थात् हे सर्वत्र व्यापक विश्वरूप भगवन् इस प्रकार अत्यंत वेगकरिकै तुम्हारे मुखविषे प्रवेश करते हुए जे दुर्योधनादिक सर्व राजे हैं तिन सर्व राजावोंकूं तूं ग्रास करता हुआ अर्थात् तिन आपणे मुखोंद्वारा आपणे उदरविषे प्रवेश करावता हुआ तिन आपणे प्रज्वलित मुखोंकरिकै सर्व ओरतैं आस्वादन करैं है अर्थात् जैसे यह मनुष्य कोई स्वादुवस्तुकूं भक्षण करिकै आपणी जिह्वाकरिकै तालु ओष्ठादिकोंकूं चाटै है तैसे तूं परमेश्वरभी तिन दुर्योधनादिक राजावोंकूं भक्षण करिकै आपणी जिह्वाकरिकै तालु ओष्ठादिकोंकूं चाटै है । क्या करिकै आपणे दीप्तिरूप तेजोंकरिकै इस समग्र जगत्कूं सर्व ओरतैं परिपूर्ण करिकै हे भगवन् ! जिसकारणतैं तूं आपणी दीप्तियों करिकै इस सर्व जगत्कूं सर्व ओरतैं परिपूर्ण करै है तिस कारणतैं ते तुम्हारी अत्यंत तीव्र दीप्तियां प्रज्वलित अग्निकी न्याईं संतापकूं उत्पन्न करैंहैं ॥ ३० ॥

इस प्रकार तिन भगवान्की दीप्तियोंकरिकै व्याकुल हुआ अर्जुन यह साक्षात् परिपूर्ण भगवान् हैं या प्रकारतैं भगवान्के स्वरूपका नहीं स्मरणकरिकै भगवान्के प्रति कहैहैं-

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोस्तु ते देववर प्रसीद ॥ विज्ञातुमिच्छामि भवंतमाद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥ ३१ ॥

(पदच्छेदः) आख्याहि । मे । कः । भवान् । उग्ररूपः । नमः । अस्तु । ते । देववर । प्रसीद । विज्ञातुम् । इच्छामि । भवंतम् । आद्यम् । न । हि । प्रजानामि । तव । प्रवृत्तिम् ॥३१॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! ऐसे उग्ररूपवाले आप कौन हो यह वार्त्ता हमारे ताई कथन करो हे सर्वदेवतावोंविषे श्रेष्ठ ! तुम्हारे ताई हमारा नमस्कार होवै आप प्रसन्न होवो मैं अर्जुन सर्वके कारणरूप तुम्हारेकूं जानणेकी इच्छा करता हूं जिस कारणतै तुम्हारी चेष्टाकूं मैं नहीं जानता हूं ॥ ३१ ॥

भा० टी०—उग्र है क्या अत्यंत क्रूर है रूप क्या आकार जिसका ताका नाम उग्ररूप है अथवा प्रलयकालविषे सर्व जगत्का संहार करणेहारा जो रुद्र है ताका नाम उग्र है ता उग्रके रूपकी न्याई है रूपक्या आकार जिसका ताका नाम उग्ररूपहै।अथवा उग्रहैक्या सर्वलोकोंकूं भयकीप्राप्तिकरणेहारा है रूप जिसका ताका नाम उग्ररूप है। अथवा उग्र है क्या क्रूर है रूप क्या कर्म जिसका ताका नाम उग्ररूप है। ऐसे उग्ररूपवाले आप कौन हो? अर्थात् प्रलयकालके रुद्र हो अथवा प्रलयकालकी अग्नि हो अथवा महान् मृत्यु हो अथवा कालांतक हो अथवा परमपुरुष हो अथवा इन सर्वोतैं कोई अन्य हो । जो अबी आपका स्वरूप है सो स्वरूप मैं अर्जुनके ताई आप कृपाकरिकै कथन करो । या कारणतैंही मैं अर्जुनका आप सर्वजगत्के गुरुरूप परमेश्वरके ताई नमस्कार होवै। हे सर्व देवतावोंविषे श्रेष्ठ भगवन् ! आप हमारे ऊपरि प्रसाद करो अर्थात् क्रूरताका परित्याग करिकै प्रसन्न होवो। हे भगवन् ! सर्व जगत्का कारणरूप जो आप हो तिस कारणरूप आप परमेश्वरकूं मैं अर्जुन विशेषरूपतै जानणेकी इच्छा करताहूं । शंका—हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरका स्वरूप तौ हमारी चेष्टाके दर्शनतही जानणेकूं शक्य है । यातै (को भवान्) यह तुम्हारा प्रश्न संभवता नहीं। ऐसी भगवान्की शंकाके हुए अर्जुन कहैहै (न हि प्रजानामि इति) हे भगवन् ! जिसकारणतैं

मैं अर्जुन आप परमेश्वरका सखा हुआभी आपकी चेष्टारूप प्रवृत्तिकूं जानता नहीं इसकारणतैं आपही आपका स्वरूप हमारे प्रति कथन करो ३१

इसप्रकार अर्जुनकरिकै प्रार्थना कऱ्याहुआ श्रीभगवान् जो आपणा स्वरूप है तथा जिस कार्यके करणेवासतै आपणी प्रवृत्ति है यह सर्व वार्त्ता तीन श्लोकोंकरिकै अर्जुनके प्रति कथन करैहैं–

श्रीभगवानुवाच ।

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ॥ ऋतेपि त्वा न भविष्यंति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥ ३२ ॥

(पदच्छेदः) कालः । अस्मि । लोकक्षयकृत् । प्रवृद्धः । लोकान् । समाहर्तुम् । इह । प्रवृत्तः । ऋते । अपि । त्वा । न । भविष्यंति । सर्वे । ये । अवस्थिताः । प्रत्यनीकेषु । योधाः ३२

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्वलोकोंका संहारकर्त्ता तथा अत्यंत वृद्धिकूं प्राप्त हुआ कालरूप परमेश्वर मैं हूं तथा इस कालविषे दुर्योधनादिकोंकूं भक्षण करणेवासते प्रवृत्त हुआहूं यातैं प्रतिपक्षियोंकी सेनाओंविषे जे योधा स्थित हैं ते सर्व योधा तुम्हारे युद्धरूप व्यापारतैं विना भी नहीं विद्यमान होवेंगे ॥ ३२ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! भूमिविषे भाररूप जे प्राणी हैं तिन दुष्टप्राणियोंके नाशकरणेहारा अथवा प्रलयकालविषे सर्व प्राणियोंके नाश करणेहारा तथा महान् वृद्धिकूं प्राप्तहुआ क्रियाशक्ति उपहित कालरूप परमेश्वर मैं हूं । इसप्रकार आपणे स्वरूपकूं कथन करिकै श्रीभगवान् आपणी प्रवृत्तिकूं कथन करैहैं । (लोकान् इति) हे अर्जुन ! जिस कार्यके करणेवासतै मैं भगवान् अबी प्रवृत्त हुआहूं तिसकूं तूं श्रवण कर। भूमिविषे भाररूप दुर्योधनादिकलोकोंकूं भक्षण करणेवासतै इस लोगविषे मैं प्रवृत्त हुआहूं । शंका–हे भगवन् ! मैं अर्जुनकी प्रवृत्तिवैं विना आप

इन दुर्योधनादिकोंकूं कैसे नाश करोगे ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहें हैं । (ऋतेपि त्वा इति) हे अर्जुन ! तुम्हारेतैं विनाभी अर्थात् तुम्हारे युद्धरूप व्यापारतैं विनाभी केवल मैं परमेश्वरके व्यापार-मात्रकरिकैही यह भीष्म द्रोण कर्णादिक सर्व योधा नाशकूं प्राप्त होवैंगे । तथा इस दुर्योधनकी सेनाविषे इन भीष्मद्रोणादिकोंतै भिन्न दूसरेभी जितनेक योधा स्थित हैं ते सर्वही योधा मैं परमेश्वरनैंही हनन करिराखे हैं । यातें तिन्होंके हननकरणेविषे तैं अर्जुनके युद्धरूप व्यापारका कोई अत्यंत प्रयोजन नहीं है । तुम्हारे व्यापारतैं विनाही यह दुर्योधनादिक सर्व नाश होवैंगे ॥ ३२ ॥

हे भगवन् ! हमारे युद्धरूप व्यापारतैं विनाही जो कदाचित् यह दुर्योधनादिक नाश होवे होवैं तौ आप वारंवार हमारेकूं युद्ध करणेविषे किसवासतै प्रवृत्त करतेहो ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं—

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून्भुंक्ष्व राज्यं समृद्धम् ॥ मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥ ३३ ॥

(पदच्छेदः) तस्मात् । त्वम् । उत्तिष्ठ । यशः । लभस्व । जित्वा । शत्रून् । भुंक्ष्व । राज्यम् । समृद्धम् । मया । एव । एते । निहताः । पूर्वम् । एव । निमित्तमात्रम् । भव । सव्यसाचिन् ॥ ३३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिसकारणतैं तूं युद्धवासतै उद्यमवाला होउ तथा यशकूं प्राप्त होउ तथा शत्रुवोंकूं जीतके निष्कंटक राज्यकूं भोग हे सव्यसाचिन् ! यह तुम्हारे युद्धतैं पूर्वही मैं परमेश्वरनें ही हननकरि छोडेहैं तूं केवल निमित्तमात्र होउ ॥ ३३ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! जिसकारणतैं तुम्हारे युद्धरूप व्यापारतैं विनाभी यह भीष्मद्रोणादिक अवश्यकरिकै नाशकूं प्राप्त होवैंगे तिस कारणतैं तूं अर्जुन अबी युद्धकरणेवासतै उद्यमवाला होउ । वा युद्ध-

विषे इन भीष्मद्रोणादिकोंकूं हनन करिकै तूं यशकूं प्राप्त होउ अर्थात् जे भीष्मद्रोणादिक इंद्रादिक देवतावोंकरिकैभी दुर्जय थे ते भीष्मद्रोणादिक अतिरथि इस अर्जुननैं शीघ्रही जय करिलिये । याप्रकारके यशकूंही तूं प्राप्त होउ । जिसकारणतैं इसप्रकारका यश महान् पुण्यकर्मोंकरिकै प्राप्त होवै है । तिसकारणतें ऐसे यशकी प्राप्तिवासतै तूं इस युद्धविषे प्रवृत्त होउ अर्थात् तुम्हारेकूं इसप्रकारके महान् यशकी प्राप्ति करणेवासतैही मैं भगवान् तुम्हारेकूं इस युद्धविषे प्रवृत्त करताहूं । कोई तुम्हारे युद्धतैं विना यह भीष्मद्रोणादिक नहीं नाश होवैंगे इसवासतैं मैं तुम्हारेकूं युद्धविषे प्रवृत्त करता हूं । हे अर्जुन ! इन शत्रुवोंके मारणेकरिकै तुम्हारेकूं केवल यशकी ही प्राप्ति नहीं होवैगी किंतु इन दुर्योधनादिक शत्रुवोंकूं विनाही प्रयत्नतै जयकरिकै सर्व ऐश्वर्य संपन्न निष्कंटकराज्यकूं भी तूं भोग । शंका–हे भगवन् ! इन भीष्मद्रोणादिक अतिरथि योधावोंके विद्यमान हुए तिन दुर्योधनादिक शत्रुवोंका जय करणा अत्यंत दुर्लभ है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके निवृत्त करणेवासतै श्रीभगवान् कहै हैं (मयैवैते इति) हे अर्जुन ! तुम्हारे युद्धरूप व्यापारतें पूर्वही यह भीष्मद्रोणादिक कालरूप मैं परमेश्वरनैंही आयुपतें रहित करिराखे हैं केवल तुम्हारेकूं लोकविषे यशकी प्राप्ति करणेवासतै यह भीष्मद्रोणादिक सर्व योधा हमनैं रथतैं नीचे गिराये नहीं । यातें हे सव्यसाचिन् ! तूं केवल निमित्तमात्र होउ अर्थात् यह भीष्मद्रोणादिक योधा अर्जुननेंही जय करे हैं याप्रकारके सर्वलोकोंके वचनोंका आस्पद होउ । तहां वामहस्तकरिकैभी शरोंके चलावणेका स्वभाव जिसका होवै ताका नाम सव्यसाची है । तात्पर्य यह– ऐसे महान् पराक्रमवाले तें अर्जुनकूं इन भीष्मद्रोणादिकोंका जय करणा कोई असंभावित नहीं है । किंतु संभवताही है । यातें तुम्हारे युद्धरूप व्यापारतें अनंतर मैं परमेश्वर इन भीष्मद्रोणादिकोंकूं रथतैं नीचे गेरांगा तिसकूं देखिकै सर्वलोक ऐसी कल्पना करैंगे, इस अर्जुननैंही इन भीष्मद्रोणादिकोंकूं हनन कऱ्या है ॥ ३३ ॥

हे भगवन् ! इस दुर्योधनकी सेनाविषे स्थित जो द्रोणाचार्य है सो द्रोणाचार्य कैसा है—सर्व ब्राह्मणोंविषे उत्तम ब्राह्मण है तथा धनुर्वेदका आचार्य है तथा इस सर्वोंका गुरु है तथा दिव्य अस्त्रकरिकै संपन्न है। और इस दुर्योधनकी सेनाविषे स्थित जो भीष्मपितामह है सो भीष्मपितामह कैसा है—आपणी इच्छातें मरणेहारा है तथा दिव्य अस्त्रकरिकै संपन्न है जिस भीष्मपितामहकूं परशुरामनैंभी पराजय कऱ्या नहीं । और इस दुर्योधनकी सेनाविषे स्थित जो जयद्रथ है सो जयद्रथ कैसा है—जिस जयद्रथका वृद्धक्षत्रनामा पिता जो योधा इस हमारे पुत्रका शिर भूमिविषे गेरैगा तिस योधाकाभी शिर तिसी कालविषे भूमिविषे गिरैगा याप्रकारका संकल्प करिकै तपकूं करताभया है । तथा जो जयद्रथ आपभी सर्वदा महादेवके आराधनपरायण है तथा दिव्य अस्त्रकरिकै संपन्न है ऐसा जयद्रथराजाभी जीतणेकूं अशक्य है । और इस दुर्योधनकी सेनाविषे स्थित जो कर्ण है सो कर्ण कैसा है—साक्षात् सूर्यके समान है तथा सूर्यभगवान्के आराधनकरिकै प्राप्तहुआ है दिव्य अस्त्र जिसकूं तथा इंद्रनै दईहुई जा एक पुरुषके नाशकरणेहारी तथा व्यर्थ करणेकूं अशक्य ऐसी शक्ति है ता शक्तिकरिकै युक्त है। इन्होंतै आदिलैके दूसरेभी कृपाचार्य, अश्वत्थामा, भूरिश्रवा इत्यादिक जे महान् प्रभाववाले योधा हैं ते सर्व योधा सर्वप्रकारतैं दुर्जयही हैं । ऐसे भीष्मद्रोणादिक महान् योधावोंके विद्यमान हुए मैं अर्जुन इन दुर्योधनादिक शत्रुवोंकूं जीतिकै निष्कंटक राज्यकूं कैसे भोगोंगा, तथा यशकूं कैसे प्राप्त होवोंगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके निवृत्त करणेवासतै श्रीभगवान् ता शंकाके विषयभूत योधावोंकूं स्वस्ववाचक नामोंकरिकै कथन करतेहुए कहैं हैं—

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथान्यानपि योधवीरान् ॥ मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥३४॥

(पदच्छेदः) द्रोणम् । च । भीष्मम् । च । जयद्रथम् । च । कर्णम् । तथा । अन्यान् । अपि । योधवीरान् । मया । हतान् । त्वम् । जहि । मा । व्यथिष्ठाः । युध्यस्व । जेतासि रणे । सपत्नान् ॥ ३४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! द्रोणाचार्यकूं तथा भीष्मपितामहकूं तथा जयद्रथकूं तथा कर्णकूं तथा इन्होंतैं अन्य भी योधावोंकूं जे योधा मैं परमेश्वरनैही हनन करिराखे हैं तिन सर्वयोधावोंकूं तूं अर्जुन हनन कर तूं मत व्यथाकूं प्राप्त होउ तथा युद्धकूं कर इस संग्रामविषे शत्रुवोंकूं तूं अवश्य जीतैगा ॥ ३४ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! द्रोणाचार्य तथा भीष्मपितामह तथा जयद्रथ तथा कर्ण तथा इन्होंतैं भिन्न दूसरेभी जितनेक महान् योधा हैं, जे भीष्मादिक सर्व योधा यह भीष्मादिक कैसे जय होवैंगे या प्रकारकी तुम्हारी शंकाके विषयभूत हैं वे भीष्मद्रोणादिक सर्व योधा कालरूप मैं परमेश्वरनैं तुम्हारे युद्धतैं पूर्वही हननकरिराखे हैं ऐसे भीष्मद्रोणादिक योधावोंकूं तूं अर्जुन अबी हनन कर । पूर्व हनन किये हुए योधावोंके हनन करणेविषे तुम्हारेकूं कौन परिश्रम होवैगा ? किंतु तिन्होंके हननकरणेविषे तुम्हारेकूं कोई भी परिश्रम होवैगा नहीं । यातै तूं व्यथाकूं मत प्राप्त होउ । अर्थात् यह भीष्मद्रोणादिक महान् योधा कैसा हनन किये जावैंगे इस प्रकारकी भयनिमित्तक पीडारूप व्यथाकूं तू मत प्राप्त होउ । हे अर्जुन ! तिस भयकूं परित्याग करिकै तूं युद्धकूं कर । इसप्रकार भयका परित्याग करिकै जबी तूं युद्धकूं करैगा तबी इस संग्रामविषे थोडीही कालमे इन दुर्योधनादिक सर्व शत्रुवोंकूं जीतैगा । तात्पर्य यह– इस दुर्योधनकी सेनाविषे स्थित जितनेक भीष्मादिक योधा हैं तिन योधावोंविषे किसी योधातै आपणे पराजयकी शंकाकूं तूं मतकर । तथा किसीभी योधाके हननकरणेजन्य पापकी शंकाकूं तूं मतकर ॥ ३४ ॥

तहां दुर्योधनके जय होणेकी आशाके विषयभूत जे द्रोणाचार्य तथा भीष्मपितामह तथा जयद्रथ तथा कर्ण यह च्यारि योधा हैं तिन च्यारोंके हनन हुएतैं अनंतर निराश्रय हुए दुर्योधनकाभी हननही होवैगा इस प्रकार का विचारकरिकै यह धृतराष्ट्र आपणे जयकी आशाका परित्याग करिकै जबी इन पांडवोंके साथि मित्रभावकरिकै युद्धतैं निवृत्त होवैगा तबी पांडवोंकी तथा कौरवोंकी दोनोंकीही शांति होवैगी । इस प्रकारके अभिप्रायवाला संजय तिसतैं अनंतर क्या वृत्तान्त होताभया ऐसी धृतराष्ट्रकी जिज्ञासाके हुए कहैहै—

संजय उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य कृतांजलिर्वेपमानः किरीटी॥नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य॥ ३५ ॥

(पदच्छेदः) एतत् । श्रुत्वा । वचनम् । केशवस्य । कृतांजलिः । वेपमानः । किरीटी । नमस्कृत्वा । भूयः । एव । आह । कृष्णम् । सगद्गदम् । भीतभीतः । प्रणम्य ॥ ३५ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! श्रीभगवान्‌के इस पूर्वउक्त वचनकूं श्रवणकरिकै जोडे हैं दोनोंहस्त जिसनैं तथा कंपायमानहुआ तथा अत्यंतभययुक्त हुआ सो अर्जुन श्रीभगवान्‌कूं नमस्कारकरिकै तथा अत्यंतनम्रहोइकै सगद्गद जैसे होवै तैसे पुनः भी कहताभया ॥ ३५ ॥

भा० टी०—हे धृतराष्ट्र । श्रीभगवान्‌के इस पूर्वउक्त वचनकूं श्रवणकरिकै सो किरीटी अर्जुन अर्थात् इंद्रनैं दिया है किरीट जिसकूं ऐसा परम वीररूपकरिकै प्रसिद्ध अर्जुन कंपायमान हुआ अर्थात् परम आश्चर्यके दर्शन जन्य संभ्रमकरिकै कंपायमान हुआ सो अर्जुन श्रीकृष्णभगवान्‌कूं नमस्कार करिकै सगद्गद जैसे होवै तैसे पुनःभी कहता भया। तहां भयकरिकै अथवा हर्ष करिकै निकस्या हुआ जो अश्रुजल है वा अश्रुवोंकरिकै नत्रोंके

पूर्ण हुए तथा कफकरिकै अवरुद्ध हुए कंठपणेकरिकै जे वाणीके मंदपणा तथा सकम्पपणा इत्यादिक विकारहैं तिनोंका नाम सगद्गद है ऐसे सगद्गद करिकै युक्त जैसे होवै तैसे अर्जुन भीतभीत हुआ अर्थात् अत्यंत भयकरिकै युक्त हुआ पूर्व श्रीकृष्णभगवान्कूं नमस्कार करिकै पुनःभी प्रणाम करिकै अर्थात् अत्यंत नम्र होइकै पुनःभी यह वक्ष्यमाण वचन कहता भया इति। इहां किसी- टीकाविषे (एवाह) इस वचनविषे (एव आह) या प्रकारका पदच्छेद करिकै आह इसपदकूं प्रसिद्धका वाचक अव्ययपद मान्या है काहेतैं आह इस प्रकारका पदच्छेदकरिकै आह इस पदकूं जो वचनरूप क्रियाका वाचक मानिये तौ पुनःअर्जुन उवाच यह वक्ष्यमाण वचन पुनरुक्त होवैगा। यातैं (प्रणम्य अर्जुन उवाच) या प्रकारतैंही पदोंका संबंध करणा (प्रणम्य आह) याप्रकारतै पदोंका संबंध करणा नहीं ॥ ३५ ॥

अब एकादश श्लोकों करिकै अर्जुन श्रीभगवान्के प्रति सो वचन कहै है—

अर्जुन उवाच ।

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ॥रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवंति सर्वे नमस्यंति च सिद्धसंघाः ॥ ३६॥

(पदच्छेदः) स्थाने। हृषीकेश । तव । प्रकीर्त्या । जगत् । प्रहृष्यति । अनुरज्यते । च । रक्षांसि । भीतानि । दिशः । द्रवंति । सर्वे । नमस्यन्ति । च । सिद्धसंघाः ॥ ३६ ॥

(पदार्थः) हे हृषीकेश ! तुम्हारी प्रकीर्तिकरिकै यह सर्व जगत् हर्षकूं प्राप्त होवैहै तथा अनुरागकूं प्राप्त होवैहै तथा राक्षस भयकूं प्राप्तहुए सर्व- दिशावोंविषे भागे जावे हैं तथा सर्व सिद्धोंके समूह नमस्कार करै हैं यह सर्व वार्त्ता युक्तही है ॥ ३६ ॥

भा० टी०—हे हृषीकेश ! अर्थात् हे सर्वइंद्रियोंके प्रवर्त्तक जिसकारणतें तूं परमेश्वर अत्यंत अद्भुतप्रभाववाला है तथा भक्तवत्सल है तिसकारणतें तुम्हारी प्रकीर्तिकरिकै अर्थात् तुम्हारी निरतिशय उत्कृष्टताके कीर्त्तन करिकै तथा श्रवण करिकै केवल मैं अर्जुनही अत्यंत हर्षकूं नहीं प्राप्त होता किंतु राक्षसोंका विरोधी जितनाक चेतनमात्ररूप जगत् है सो सर्वजगत्भी तिस आपकी प्रकीर्तिकरिकै महान् हर्षकूं प्राप्त होवैहै यह वार्त्ताभी युक्तही है। तथा तिस तुम्हारी प्रकीर्ति करिकै यह सर्व जगत् तैं परमेश्वरविषयक अनुरागकूं जो प्राप्त होवै है सोभी युक्त ही है। तथा तिस तुम्हारी प्रकीर्तिकरिकै सर्व राक्षस भयकूं प्राप्त हुए जो सर्व दिशावोंविषे भागे भागे जावे हैं सोभी युक्तही है। तथा सर्व कपिलादिक सिद्धोंके समूह तैं परमेश्वरके ताईं जो श्रद्धाभक्तिपूर्वक नमस्कार करैं है सोभी युक्तही है इति। और किसी टीकाविषे तौ (स्थाने हृषीकेश) इस श्लोकका यह अर्थ कथन कऱ्या है। हे हृषीकेश ! (कालोस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।) अर्थ यह—भूमिविषे भाररूप जे दुष्टजन हैं तिन सर्व दुष्ट लोकोंके संहार करणेवासतै मैं कालरूप परमेश्वर प्रवृत्त हुआहूं। यह वचन आपने पूर्व कथन कऱ्याथा तिस आपके प्रकृष्टवचनरूप प्रकीर्तिकूं श्रवणकरिकै यह साधुलोकरूप जगत् जो परमसंतोषकूं प्राप्त होवैहै सोभी युक्तही है अर्थात् साधुलोकोंके रक्षण करणेवास्तै परमेश्वरने सर्व दुष्टजनोंके संहार किये हुए तिन साधुलोकोंकूं परमसंतोषकी प्राप्ति होणी युक्तही है। तथा तैं परमेश्वरके तिस प्रकृष्टवचनकूं श्रवण करिकै ते साधुलोक तैं भक्तवत्सल तथा सर्वभूतोंके सुहृदरूप परमात्मादेवविषे जो अनुरागकूं करैं हैं सोभी युक्तही है। अर्थात् सर्वलोकोंके उपद्रवकूं निवृत्त करणेवासतै उद्यमवाले तथा परमकृपालुरूप ऐसे तैं परमेश्वरविषे तिन साधुलोकोंका अनुराग होणा युक्तही है। तथा तैं परमेश्वरके तिस प्रकृष्टवचनके श्रवण करिकै सर्व राक्षस भयकूं प्राप्तहुए जो पूर्वादिक दिशावोंके कोणोंविषे भागेभागे जावैं हैं सोभी युक्तही है। तथा

वै परमेश्वरके तिस प्रकट वचनके श्रवणकरिकै सर्वलोकोंके सुखकी इच्छा करणेहारे सर्व सिद्धोंके समूह वैं परमेश्वरके ताईं जो नमस्कार करैं है सोभी युक्तही है । इहां सिद्ध यह शब्द देवजातिमात्रका उपलक्षण है अर्थात् देव, ऋषि, सिद्ध, गंधर्व, चारण इत्यादिक सर्व देवत्वजातिवाले पुरुष हे स्वामिन् ! जो तुमनैं दुष्टजनोंके संहार करणेकी प्रतिज्ञा करी है सा प्रतिज्ञा अवश्यकरिकै पूर्ण करणी । या प्रकारकी प्रार्थनापूर्वक तैं परमेश्वरके ताईं जो प्रणाम करैहैं सोभी युक्तही है । इति । तहां (स्थाने हृषीकेश) यह श्लोक रक्षोघ्ननामा मंत्ररूपकरिकै मंत्रशास्त्रविषे प्रसिद्ध है। जिस मंत्रके अनुष्ठानकरिकै दुष्टराक्षसोंका हनन होवै ता मंत्रका नाम रक्षोघ्नमंत्र है ॥ ३६ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे अर्जुननैं श्रीभगवान्‌विषे सर्वलोकोंके हर्षकी विषयता तथा अनुरागकी विषयता तथा नमस्कार्यता कथन करी । अब तिसी अर्थकी सिद्धि करणेविषे अर्जुन हेतु कहैहै-

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्गरीयसे ब्रह्मणो-प्यादिकर्त्रे ॥ अनंत देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥ ३७ ॥

(पदच्छेदः) कस्मात् । च । ते । न । नमेरन् । महात्मन् । गरीयसे । ब्रह्मणः । अपि । आदिकर्त्रे । अनंत । देवेश । जगन्निवास । त्वम् । अक्षरम् । सत् । असत् । तत्परम् । यत् ॥ ३७ ॥

(पदार्थः) हे महात्मन् ! हे अनंत ! हे देवेश ! हे जगन्निवास ! ब्रह्माके भी गुरुरूप तथा जनकरूप ऐसे आपके ताईं ते सर्वदेवता किंवा-सर्व नहीं नमस्कार करेंगे किंतु करैंगेही। हे भगवन् ! तूं ही सत्‌रूपहै तथा असत्‌रूप है तथा तिनैं दोनोंतैं परै जो अक्षरब्रह्म है सोभी तूं है॥३७॥

भा०टी०- हे महात्मन् ! अर्थात् हे परम उदारचित्तवाला ! तथा हे अनंत ! अर्थात् हे देश काल वस्तु परिच्छेदतैं रहित ! तथा हे देवेश !

अर्थात् हे हरिण्यगर्भादिक सर्व देवतावोंके नियंता ! तथा हे जगन्निवास अर्थात् हे सर्व जगत्का आश्रयरूप ! तुम्हारे ताई ते सर्वसिद्धोंके समूह तथा सर्व देवता किसवासतै नहीं नमस्कार करेंगे किंतु आपके ताई तिन सर्वोंका नमस्कार करणा उचितही है । कैसे हो आप–सर्वजगत्का गुरुरूप जो ब्रह्मा है तिस ब्रह्माकेभी अत्यंत गुरुरूपहो।तथा इस सर्व जगत्का जनक जो ब्रह्मा है तिस ब्रह्माकेभी जनक हो ऐसे आपके ताई तिन सर्वसिद्धादिकोंका नमस्कार उचितही है । इहां (कस्माच्च) इस वचनके अंतविषे स्थित जो चकार है ता चकारकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन कऱ्या । ब्रह्मादिक देवतावोंकाभी नियंतापणा तथा उपदेष्टापणा इत्यादिक हेतुवोंविषे एक एकभी हेतु आप परमेश्वरविषे तिन सर्वसिद्धोंकी नमस्कार्यताका प्रयोजक है । जबी एकएकभी हेतु आपविषे ता नमस्कार्यताका प्रयोजक हुआ तबी महात्मापणा तथा अनंतपणा तथा जगन्निवासपणा इत्यादिक अनेक शुभगुणोंकरिकै युक्त हुआ सो हेतु आपविषे ता नमस्कार्यताका प्रयोजक है याकेविषे क्या आश्चर्य है इति । पुनः कैसे हो आप–सत्रूप हो तथा असत्रूप हो । तहां अस्ति इस प्रकारकी विधिमुख प्रतीति करिकै जो वस्तु प्रतीत होवै है ता वस्तुका नाम सत् है । और नास्ति इसप्रकारकी निषेधमुख प्रतीत करिकै जो वस्तु प्रतीत होवै है ता वस्तुका नाम असत् है । अथवा व्यक्तका नाम सत् है । और अव्यक्तका नाम असत् है । सो सत् असत्रूपभी आपही हो । तथा तिस सत् असत्तंभी सूक्ष्म जो सर्वका मूलकारणरूप अक्षरब्रह्म है सो अक्षरब्रह्मभी आपही हो । त परमेश्वरतें भिन्न कोईभी वस्तु नहीं है । तहां श्रुति–(सर्वं ह्येतद्ब्रह्म) अर्थ यह–यह सर्व जगत् ब्रह्मरूपही है इति । हे भगवन् ! इस पूर्वउक्त सर्व हेतुवोंकरिकै ते सिद्धादिक सर्वलोक तैं परमेश्वरके ताई नमस्कार करैं हैं । तथा अत्यंत हर्षकूं तथा अनुरागकूं करैं हैं इसविषे कोई आश्चर्य नहीं है ॥ ३७ ॥

अब अत्यंत भक्तिके वेगतैं सो अर्जुन पुनः भी श्रीकृष्णभगवानकी स्तुति करै है-

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्॥ वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥ ३८ ॥

(पदच्छेदः) त्वम् । आदिदेवः । पुरुषः । पुराणः । त्वम् । अस्य । विश्वस्य । परम् । निधानम् । वेत्ता । असि । वेद्यम् । च । परम् । च । धाम । त्वया । ततम् । विश्वम् । अनंतरूप ॥ ३८ ॥

(पदार्थः) हे अनन्तरूप ! तूं परमेश्वरही आदिदेव है तथा पुरुष है तथा पुराण है तथा तूंही इस विश्वका परम निधान है तथा सर्वके जानणेहारा है तथा सर्वदृश्यरूप है तथा परम धामरूप है तथा तुमनैही यह सर्वविश्व व्याप्तकऱ्याहै ॥ ३८ ॥

भा० टी०—हे अनंतरूप अर्थात् हे देश काल वस्तु परिच्छेदतैं रहित स्वरूप ! इस सर्व जगत्के उत्पत्तिका हेतु होणेतैं तुमही आदिदेव हो । तथा सर्वत्र अस्ति भाति प्रियरूपकरिकै पूर्ण होणेतैं तुमही पुरुष हो अथवा सर्व शरीररूप पुरियोंविषे शयनकर्त्ता होणेतैं तुमही पुरुष हो । तथा तुमही पुराण हो अर्थात् अनादि हो । अथवा इस शरीरके नाश हुएभी आप नाश होते नहीं यातैं पुराण हो । तथा तुमही इस सर्वविश्वका परम निधान हो अर्थात् इस सर्व विश्वके लयका स्थानरूप हो इहां (आदिदेवः परं निधानम्) इन दोनों पदोंकरिकै अर्जुननैं श्रीभगवान्विषे सर्वजगत्के उत्पत्तिका हेतुपणा तथा लयका स्थानपणा कथन कऱ्या । ताकरिकै परमेश्वरविषे सर्वजगत्का उपादानकारणपणा कथन कऱ्या । काहेतैं जिसतैं कार्य उत्पन्न होवैहै तथा जिसविषे कार्य लय होवैहै सो उपादानकारणही होवैहै । जैसे घटरूप कार्य मृत्तिकातैंही उत्पन्न होवैहै। तथा मृत्तिकाविषेही लय होवै है, यातैं सा मृत्तिका ता घटका उपादान-

कारणही होवै है । इसप्रकारतै परमेश्वरविषे सर्व जगत्का उपादान कारणपणा कहिकै अब सर्वज्ञतारूप हेतुकरिकै सांख्यशास्त्रकल्पित जडप्रधानरूप कारणकी व्यावृत्ति करताहुआ अर्जुन तिस परमेश्वरविषे जगत्का निमित्तकारणपणाभी कथन करैहै । (वेत्तासि इति) हे भगवन् ! सर्वज्ञ होणेतै आपही इस सर्वजगत्के जानणेहारे हो अर्थात् आपही इस सर्वजगत्का कर्त्तारूप निमित्तकारण हो। तहां इस सर्वजगत्कूं जो परमेश्वरतै भिन्न अंगीकार करिये तौ द्वैतभावकी प्राप्ति होवैगी । ता द्वैतभावकी निवृत्ति करणेवासतै अर्जुन कहै है (वेद्यमिति) हे भगवन् ! जितनाक यह दृश्यप्रपंच है सो भी तूंही है अर्थात् ज्ञानस्वरूपतै परमेश्वरविषे इस जडरूप दृश्यप्रपंचका कोईभी वास्तव संबंध है नहीं यातै यह सर्व दृश्यप्रपंचवै परमेश्वरविषे कल्पितही है । और कल्पित वस्तु अधिष्ठानतै पृथक् होवै नहीं । जैसे कल्पित सर्पादिक रज्जुरूप अधिष्ठानतै पृथक् होवै नहीं यातै द्वैतभावकी प्राप्ति होवै नहीं इति । इसीकारणतै ही आप परमधाम हो अर्थात् सत् चित आनंदघन तथा कार्यसहित अविद्यातै रहित जो व्यापक विष्णुका परमपद है सो परमपदभी आपही हो। हे भगवन् ! स्वतः सत्तास्फुर्तितै रहित जो यह सर्व विश्व है सो यह सर्व विश्व स्थितिकालविषे मायिकसंबंधकरिकै तैं सत्तास्फुरणरूप कारणनैंही व्याप्त कऱ्याहै । जैसे रज्जुरूप अधिष्ठाननैं आपणे इदमूरूपकरिकै कल्पित सर्पदंडादिक व्याप्त करैं हैं तैसे ते परमेश्वरनैंही आपणे अस्ति भाति प्रियरूपकरिकै यह सर्व जगत् व्याप्त कऱ्याहै ॥ ३८ ॥

अब अर्जुन श्रीभगवान्‌की सर्वदेवतारूप करिकै स्तुति करैहै—

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांकः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ॥ नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोपि नमोनमस्ते ॥३९॥

(-पदच्छेदः) वायुः । यमः । अग्निः । वरुणः । शशांकः । प्रजापतिः । त्वम् । प्रपितामहः । च । नमः । नमः । ते । अस्तु । सहस्रकृत्वः । पुनः । च । भूयः । अपि । नमः । नमः । ते ॥ ३९ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! वायु यम अग्नि वरुण चंद्रमा प्रजापति तथा प्रपितामह इत्यादिक सर्वदेवतारूप तूं परमेश्वरही है यातें तैं परमेश्वरके ताईं हमारा अनेकसहस्रवार नमस्कार नमस्कार होउ तथा तुम्हारे ताईं पुनः भी वारंवार नमस्कार नमस्कार होउ ॥ ३९ ॥

भा० टी०—हे भगवन् ! तूं परमेश्वरही वायुरूप है । तथा तूं परमेश्वरही यमरूप है तथा तूं परमेश्वरही अग्निरूप है तथा तूं परमेश्वरही वरुणरूप है । तथा तूं परमेश्वरही चंद्रमारूप है । इहां (शशांकः) यह शब्द सूर्यादिक देवतावोकाभी उपलक्षक है अर्थात् तूं परमेश्वरही सूर्यादिक सर्वदेवतारूप है तथा तूं परमेश्वरही प्रजापतिरूप है इहां (प्रजापतिः) इस शब्दकरिकै विराट्का ग्रहण करणा अथवा हिरण्यगर्भका ग्रहण करणा अथवा दक्षादिकोंका ग्रहण करणा । तथा तूं परमेश्वरही प्रपितामहरूप है अर्थात् तिस हिरण्यगर्भकाभी पितारूप जो कारणब्रह्म है सो भी तूं परमेश्वरही है । हे भगवन् ! जिसकारणतैं सर्वदेवतारूप होणेतैं तूं परमेश्वर सर्वप्राणियोंकरिकै नमस्कार करणेयोग्य है तिसकारणतैं मैं अत्यंत अनाथ अर्जुनकाभी तुम्हारे ताईं अनेक सहस्रवार नमस्कार होउ नमस्कार होउ । तथा पुनः भी आपके ताईं वारंवार नमस्कार होउ नमस्कार होउ । इहां पुनः पुनः नमस्कारों की आवृत्तिकरिकै अर्जुननै भक्तिश्रद्धापूर्वक भगवत्के नमस्कारोंविषे अलंबुद्धिका अभाव सूचन कऱ्या अर्थात् तैं परमेश्वरके ताईं श्रद्धाभक्तिपूर्वक पुनः पुनः नमस्कारोंके करणेतैं मैं अर्जुनकी तृप्ति होवी नहीं ॥ ३९ ॥

किंच—

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोस्तु ते सर्वत एव सर्व ॥ अनंतवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोसि सर्वः ॥ ४० ॥

(पदच्छेदः) नमः । पुरस्तात् । अथ । पृष्ठतः । नमः । अस्तु । ते । सर्वतः । एव । सर्व । अनंतवीर्यामितविक्रमः । त्वम् । सर्वम् । समाप्नोषि । ततः । असि । सर्वः ॥ ४० ॥

(पदार्थः) हे सर्व ! तुम्हारे ताईं अग्रभागविषे हमारा नमस्कार होवउ तथा पृष्ठविषेभी नमस्कार होवउ तथा तुम्हारे ताईं सर्वदिशावोंविषे ही नमस्कार होवउ तूं परमेश्वर अनंतवीर्य अमितविक्रमवाला है तथा तूं इस सर्वजगत्कूं व्याप्तकरै है तिसै कारणतै तूं परमेश्वर सर्व कह्याजावै है ॥ ४० ॥

भा०टी०–हे सर्व ! अर्थात् हे सर्वात्मारूप भगवन् ! मैं अर्जुनका तैं परमेश्वरके ताईं अग्रभागविषे भी नमस्कार होवौ । तथा मैं अर्जुनका तैं परमेश्वरके ताईं पृष्ठभागविषे भी नमस्कार होवौ । तथा मै अर्जुनका तैं परमेश्वरके ताईं सर्व दिशावोंविषे नमस्कार होवौ । इहां यद्यपि सर्वात्मारूप व्यापक परमेश्वरके अग्रभाग पृष्ठभागादिक संभवते नहीं, परिच्छिन्न पदार्थकेही ते अग्रभागादिक होवै हैं तथापि अर्जुनने तिस सर्वात्मारूप परमेश्वरके ते अग्रभागादिक कल्पना करिकै कथन करे हैं । वास्तवतै ता सर्वात्मारूप परमेश्वरके ते अग्रभागादिक है नहीं इति । और किसी टीकाविषे तौ (पुरस्तात्) इस पदका कर्मोंके आदिविषे यह अर्थ कऱ्या है । और (पृष्ठतः) इस पदका तिन कर्मोंकी समाप्तिविषे यह अर्थ कऱ्या है । और (सर्वतः) इस पदका तिन कर्मोंके मध्यविषे यह अर्थ कऱ्या है अर्थात् कर्मोंके आदिविषेभी तैं परमेश्वरके ताईं हमारा नमस्कार होवौ । तथा तिन कर्मोंकी समाप्तिविषे भी तैं परमेश्वरके ताईं हमारा नमस्कार होवौ । तथा तिन कर्मोंके मध्यविषे भी तै परमेश्वरके ताईं हमार नमस्कार होवौ । इस व्याख्यानविषे तिस सर्वात्मारूप परमेश्वरके अग्रभागादिक कल्पना करे जावैं नहीं इति । हे भगवन् ! आप कैसे हो–अनंतवीर्य अमितविक्रम हो । तहां अनंत हैं वीर्य जिसका तथा अमित है विक्रम जिसका ताका नाम अनंतवीर्य अमितविक्रम है । वहां

(पदच्छेदः) वायुः । यमः । अग्निः । वरुणः । शशांकः । प्रजापतिः । त्वम् । प्रपितामहः । च । नमः । नमः । ते । अस्तु । सहस्रकृत्वः । पुनः । च । भूयः । अपि । नमः । नमः । ते ॥ ३९ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! वायु यम अग्नि वरुण चंद्रमा प्रजापति तथा प्रपितामह इत्यादिक सर्वदेवतारूप तूं परमेश्वरही है यातें तैं परमेश्वरके ताईं हमारा अनेकसहस्रवार नमस्कार नमस्कार होउ तथा तुम्हारे ताईं पुनः भी वारंवार नमस्कार नमस्कार होउ ॥ ३९ ॥

भा० टी०— हे भगवन् ! तूं परमेश्वरही वायुरूप है । तथा तूं परमेश्वरही यमरूप है तथा तूं परमेश्वरही अग्निरूप है तथा तूं परमेश्वरही वरुणरूप है । तथा तूं परमेश्वरही चंद्रमारूप है । इहां (शशांकः) यह शब्द सूर्यादिक देवतावोंकाभी उपलक्षक है अर्थात् तूं परमेश्वरही सूर्यादिक सर्वदेवतारूप है तथा तूं परमेश्वरही प्रजापतिरूप है इहां (प्रजापतिः) इस शब्दकरिकै विराट्का ग्रहण करणा अथवा हिरण्यगर्भका ग्रहण करणा अथवा दक्षादिकोंका ग्रहण करणा । तथा तूं परमेश्वरही प्रपितामहरूप है अर्थात् तिस हिरण्यगर्भकाभी पितारूप जो कारणब्रह्म है सो भी तूं परमेश्वरही है । हे भगवन् ! जिसकारणतैं सर्वदेवतारूप होणेतैं तूं परमेश्वर सर्वप्राणियोंकरिकै नमस्कार करणेयोग्य है तिसकारणतैं मैं अत्यंत अनाथ अर्जुनकाभी तुम्हारे ताईं अनेक सहस्रवार नमस्कार होउ नमस्कार होउ । तथा पुनः भी आपके ताईं वारंवार नमस्कार होउ नमस्कार होउ । इहां पुनः पुनः नमस्कारों की आवृत्तिकरिकै अर्जुननै भक्तिश्रद्धापूर्वक भगवत्के नमस्कारोंविषे अलंबुद्धिका अभाव सूचन कऱ्या अर्थात् तैं परमेश्वरके ताईं श्रद्धाभक्तिपूर्वक पुनः पुनः नमस्कारोंके करणेतैं मैं अर्जुनको तृप्ति होवी नहीं ॥ ३९ ॥

किंच—

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोस्तु ते सर्वत एव सर्व ॥ अनंतवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोसि सर्वः ॥ ४० ॥

(पदच्छेदः) नमः । पुरस्तात् । अथ । पृष्ठतः । नमः । अस्तु । ते । सर्वतः । एव । सर्व । अनंतवीर्यामितविक्रमः । त्वम् । सर्वम् । समाप्नोषि । ततः । असि । सर्वः ॥ ४० ॥

(पदार्थः) हे सर्व ! तुम्हारे ताईं अग्रभागविषे हमारा नमस्कार होवउ तथा पृष्ठविषेभी नमस्कार होवउ तथा तुम्हारे ताईं सर्वदिशावोंविषे ही नमस्कार होवउ तूं परमेश्वर अनंतवीर्य अमितविक्रमवाला है तथा तूं इस सर्वजगत्कूं व्यापकरै है तिसे कारणतै तूं परमेश्वर सर्व कह्याजावै है ॥ ४० ॥

भा०टी०—हे सर्व ! अर्थात् हे सर्वात्मारूप भगवन् ! मैं अर्जुनका तैं परमेश्वरके ताईं अग्रभागविषे भी नमस्कार होवौ । तथा मैं अर्जुनका तैं परमेश्वरके ताईं पृष्ठभागविषे भी नमस्कार होवौ । तथा मैं अर्जुनका तैं परमेश्वरके ताईं सर्व दिशावोंविषे नमस्कार होवौ । इहां यद्यपि सर्वात्मारूप व्यापक परमेश्वरके अग्रभाग पृष्ठभागादिक संभवते नहीं, परिच्छिन्न पदार्थकेही ते अग्रभागादिक होवैं हैं तथापि अर्जुननैं तिस सर्वात्मारूप परमेश्वरके ते अग्रभागादिक कल्पना करिकै कथन करे हैं । वास्तवतैं ता सर्वात्मारूप परमेश्वरके ते अग्रभागादिक हैं नहीं इति । और किसी टीकाविषे तौ (पुरस्तात्) इस पदका कर्मोंके आदिविषे यह अर्थ कऱ्या है । और (पृष्ठतः) इस पदका तिन कर्मोंकी समाप्तिविषे यह अर्थ कऱ्या है । और (सर्वतः) इस पदका तिन कर्मोंके मध्यविषे यह अर्थ कऱ्या है अर्थात् कर्मोंके आदिविषेभी तैं परमेश्वरके ताईं हमारा नमस्कार होवौ । तथा तिन कर्मोंकी समाप्तिविषे भी तैं परमेश्वरके ताईं हमारा नमस्कार होवौ । तथा तिन कर्मोंके मध्यविषे भी तैं परमेश्वरके ताईं हमार नमस्कार होवौ । इस व्याख्यानविषे तिस सर्वात्मारूप परमेश्वरके अग्रभागादिक कल्पना करे जावैं नहीं इति । हे भगवन् ! आप कैसे हो—अनंतवीर्य अमितविक्रम हो । तहां अनंत है वीर्य जिसका तथा अमित है विक्रम जिसका ताका नाम अनंतवीर्य अमितविक्रम है । तहां

(पदच्छेदः) यत् । च । अवहासार्थम् । असत्कृतः । असि । विहारशय्यासनभोजनेषु । एकः । अथवा । अपि । अच्युत । तत्समक्षम् । तत् । क्षामये । त्वाम् । अहम् । अप्रमेयम् ॥ ४२ ॥

(पदार्थः) हे अच्युत ! तथा परिहासकेवासतै विहारशय्याआसनभोजनविषे एकला स्थितहुआ अथवा कदाचित् तिनसखावोंके सम्मुख स्थितहुआ तूं परमेश्वर मैं अर्जुननै जो पराभव कऱ्या है सो सर्वअपराध मैं अर्जुन तैं अप्रमेयके प्रति क्षमाकरावताहूं ॥ ४२ ॥

भा० टी०—हे अच्युत ! अर्थात् हे सर्वदा निर्विकार ! क्रीडारूप जो विहार है तिस विहारविषे तथा वस्त्रतूलिकादिकों करिके रचीहुई जा शयनकरणेका स्थानरूप शय्या है तिस शय्याविषे तथा सिंहासनादिरूप जो आसन है ता आसनविषे तथा सजातीय बहुतपुरुषोंकी पंक्तिविषे अन्नका भक्षणरूप जो भोजन है ता भोजनविषे सर्वसखावोंकू छोडिके एकले स्थित हुए आपका अथवा परिहास करतेहुए तिन सखावोंके समीप स्थितहुए आपका मैं अर्जुननैं उपहासके वासतै जो पराभव कऱ्या है ते अनुचितवचनरूप सर्व अपराध अथवा असत्करणरूप सर्व अपराध मैं अर्जुन तुम्हारेतैं क्षमाकरावता हूं । कैसे हो आप—अप्रमेय हो अर्थात् अचिंत्यप्रभाववाले हो । तात्पर्य यह—अचिंत्यप्रभाववाला तथा सर्वविकारोंतैं रहित तथा परमकृपालुरूप ऐसे आप परमेश्वरनै तुम्हारे प्रभावकूं न जानणेहारे मैं अर्जुनके वे सर्व अपराध क्षमा करणे ॥ ४२ ॥

अब अर्जुन श्रीभगवान्के प्रति सा पूर्वउक्त अचिंत्यप्रभावता स्पष्टकरिके वर्णन करै है—

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ॥ न त्वत्समोस्त्यभ्यधिकः कुतो न्यो लोकत्रयेप्यप्रतिमप्रभाव ॥ ४३ ॥

(पदच्छेदः) पिता । असि । लोकस्य । चराचरस्य । त्वम् । अस्य । पूज्यः । च । गुरुः । गरीयान् । न । त्वत्समः । अस्ति । अभ्यधिकः । कुतः । अन्यः । लोकत्रये । अपि । अप्रतिम-प्रभाव ॥ ४३ ॥

(पदार्थः) हे उपमातें रहित प्रभाववाला ! इस चराचररूप सर्वलोकका तूं पितारूप है तथा पूज्य है तथा गुरुरूप है तथा गुरुतर है तीनलोकविषे तुम्हारेसमान भी कोई अन्य नहीं है तौ तुम्हारेतें अधिक कहांतें होवे ॥ ४३ ॥

भा०टी०—हे भगवन् ! इस स्थावरजंगमरूप सर्वजगत्मात्रका तूं पिता है अर्थात् जनक है । तहां श्रुति—(यतो वा इमानि भूतानि जायंते) अर्थ यह—जिस परमात्मादेवतें यह सर्वभूतप्राणी उत्पन्न होवै हैं । इत्यादिक श्रुतियां तैं परमेश्वरकूं सर्वजगत्का जनक कहैं हैं । तथा सर्वका ईश्वर होणेतैं आपही पूज्य हो । तथा आपही सर्वशास्त्रके उपदेश करणेहारे गुरुरूप हो । इसी कारणतेंही सर्वप्रकारकरिकै आप गुरुतर हो अर्थात् सर्वतें उत्कृष्ट हो । इसीकारणतेंही हे भगवन् ! तीन लोकोंविषे तैं परमेश्वरके समानभी दूसरा कोई है नहीं तौ तिन तीन लोकोंविषे तैं परमेश्वरतैं अधिक दूसरा कोई कहांतें होवैगा किंतु कोईभी अधिक नहीं है । तात्पर्य यह—तैं परमेश्वरके समान दूसरा कोई, है नहीं । काहेतें जो कदाचित् तैं परमेश्वरके समान दूसरा कोई अंगीकार करिये तौ सो दूसराभी ईश्वरही सिद्ध होवैगा । तहां एक ईश्वर तौ इस जगत्के उत्पन्नकरणेकी इच्छा करैगा और दूसरा ईश्वर तिसी कालविषे इस जगत्के संहारकरणेकी इच्छा करैगा । यातें कोईभी व्यवहार सिद्ध नहीं होवैगा किंतु सर्व व्यवहारोंका लोप होवैगा । यातें तैं परमेश्वरके समान दूसरा कोई है नहीं । जबी तीन लोकोंविषे तैं परमेश्वरके समानबी कोई नहीं भया तबी तुम्हारेतें अधिक कौन होवैगा ? किंतु सर्वप्रकारकरिकै तुम्हारेतें अधिक कोई है नहीं । तहां श्रुति—(न त्वत्समश्चाभ्यधिकश्च

दृश्यते ।) अर्थ यह—तिस परमेश्वरके समानभी कोई देखणेविषे आवता नहीं । तथा तिस परमेश्वरतें अधिकभी कोई देखणेविषे आवता नहीं। इति । तहांते परमेश्वरके समान पुरुषकाही असंभव है इस पूर्वउक्त अर्थविषे अर्जुन हेतु कहै है (हे अप्रतिमप्रभाव इति) इहां सादृश्यका नाम प्रतिमा है; सा सादृशरूप प्रतिमा नहीं है वियमान जिसकूं ताका नाम अप्रतिम है ऐसा अप्रतिम है प्रभाव क्या सामर्थ्य जिसका वाका नाम अप्रतिमप्रभाव है ॥ ४३ ॥

जिसकारणतें आप ऐसे हो तिस कारणतें मैं अर्जुन आपणे अपराधोंकूं क्षमाकरावणेवास्ते आपके आगे दंडवत् प्रणाम करिकै प्रार्थना करता हूं । इस अर्थकूं अब अर्जुन कहै है—

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामह मीशमीड्यम् ॥ पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥ ४४ ॥

(पदच्छेदः) तस्मात् । प्रणम्य । प्रणिधाय । कायम् । प्रसादये । त्वाम् । अहम् । ईशम् । ईड्यम् । पिता । इव । पुत्रस्य । सखा । इव । सख्युः । प्रियः । प्रियायाः । अर्हसि । देव । सोढुम् । ॥ ४४ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! तिसे कारणतें तै परमेश्वरकूं नमस्कार करिके तथा आपणे देहकूं भूमिविषे दंडकी न्याई धारण करिकै मैं अर्जुन सर्वोंकरिकै स्तुति करणेयोग्य तैं ईश्वरकूं प्रसन्न होवो ऐसी प्रार्थना करूं हूं इस कारणतें हे देव ! पुत्रके अपराधकूं पिताकी न्याई तथा सखाके अपराधकूं सखाकी न्याई तथा प्रियाके अपराधकूं पतिकी न्याई हमारे अपराधकूं आप क्षमाकरणेकूं योग्य हो ॥ ४४ ॥

भा० टी०—हे भगवन ! जिसकारणतें तूं परमेश्वर इस सर्व लोकका पितारूप है, तथा सर्वका गुरुरूप है तिसकारणतें मैं अर्जुन तैं परमेश्वरकूं

नमस्कारकरिकै तथा आपणी कायाकूं अत्यंत नीचै धारण करिकै अर्थात् दंडकी न्याईं भूमिविषे पतन होइकैतैं परमेश्वरके प्रसन्नताकी प्रार्थना करताहूं अर्थात् मैं अपराधी अर्जुन तिन आपणे अपराधोंकी तथा करावणेवासतै मैं अर्जुन ऊपरि आप प्रसन्न होवौ या प्रकारकी प्रार्थना आपके आगे करता हूं । कैसे हो आप-ईश हो अर्थात् इस सर्व जगत्के नियंता हो पुनः कैसे हो आप-ईड्य हो अर्थात् ब्रह्मादिक देवतावोंकरिकैभी स्तुति करणेयोग्य हो । इस कारणतैं हे देव ! अर्थात् हे स्वप्रकाशरूप ! जैसे पुत्रके अपराधकूं पिता क्षमा करै है, तथा जैसे सखाके अपराधकूं सखा क्षमा करै है, तथा जैसे पतिव्रता प्रियाके अपराधकूं पति क्षमा करै है, तैसे मैं अर्जुनके अपराधकूंभी आप परमेश्वर क्षमा करणेकूं योग्य हो । जिस कारणतै मैं अर्जुन केवल तुम्हारेही शरण हूं । अन्य किसीके शरण हूं नहीं । तिस कारणतैं आप हमारे अपराधकूं क्षमा करणे योग्य हो इति । इहां (प्रियायार्हसि) इस वचन विषे वत् इस शब्दका लोप तथा विसर्गके लोप हुएभी संधी यह दोनों छांदस हैं ॥ ४४ ॥

इस प्रकार अर्जुन श्रीभगवान्‌के प्रति आपणे अपराधके क्षमाकी प्रार्थना करिकै पुनः श्रीभगवान्‌के प्रति तिस विश्वरूपके उपसंहारपूर्वक पूर्वले रूपके दर्शनकी प्रार्थना दो श्लोकोंकरिकै करैहै-

अदृष्टपूर्वं हृषितोस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ॥ तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ ४५ ॥

(पदच्छेदः) अदृष्टपूर्वम् । हृषितः । अस्मि । दृष्ट्वा । भयेन । च । प्रव्यथितम् । मनः । मे । तत् । एव । मे । दर्शय । देव । रूपम् । प्रसीद । देवेश । जगन्निवास ॥ ४५ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! पूर्वं कबीभी नहीं देखेहुए इस विश्वरूपकूं देखिकै मैं अर्जुन हर्षवान् हुआहूं तथा भयकरिकै मेरा मन व्याकुल हुआहै यातैं मैं

अर्जुनके ताँई सो पहेला रूप ही दिखावो। देवे ! हे देवेश ! हे जगन्निवास ! मेरे ऊपरि प्रसादकूं करौ ॥ ४५ ॥

भा० टी०—हे भगवन् ! मै अर्जुननें पूर्व कदाचित् भी नहीं देख्या हुआ ऐसा जो आपका यह विश्वरूप है तिस आपके विश्वरूपकूं देखिकै मैं अर्जुन हर्षकूं प्राप्त होता भया हूं। तथा तिस विकराल रूपके दर्शनतें उत्पन्न भया जो भय है तिस भयकरिकै हमारा मन व्याकुल होता भया है। यातें हे भगवन् ! मैं अर्जुनके ताँई सो प्राणोतैंभी प्रिय आपणा पूर्वले रूपही दिखावौ। हे देव ! अर्थात् हे स्वप्रकाशरूप ! तथा हे देवेश ! अर्थात् हे सर्व देवतावोंके नियंता ! तथा हे जगन्निवास ! अर्थात् हे सर्व जगत्का आधाररूप ! मै अर्जुन ऊपरि तिस पूर्वले रूपका दर्शनरूप प्रसादकूं करौ ॥ ४५ ॥

अब जिस पूर्वलेरूपके दर्शनकी अर्जुननें प्रार्थना करी है तिसरूपकूं सो अर्जुन विशेपणोंकरिकै कथन करैहै—

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव॥ तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥ ४६ ॥

(पदच्छेदः) किरीटिनम् । गदिनम् । चक्रहस्तम् । इच्छामि त्वाम् । द्रष्टुम् । अहम् । तथा । एव । तेन । एव । रूपेण । चतुर्भुजेन सहस्रबाहो । भव । विश्वमूर्ते ॥ ४६ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! मैं अर्जुनें किरीटवाले तथा गदावाले तथा चक्र है हस्तविषे जिनके ऐसे तुम्हारेकूं पूर्वकीन्याई ही देखणेकूं इच्छताहूं यातें हे सहस्र बाहुवाला हे विश्वमूर्ति ! अबी आप तिसे पूर्वले चतुर्भुज रूपकरिकै ही प्रगट होवौ ॥ ४६ ॥

भा० टी०—हे भगवन् ! किरीटकूं धारण करणेहारे तथा गदाकूं धारण करणेहारे तथा चक्र है हस्तविषे जिसके ऐसे आप परमेश्वरकूं मैं अर्जुन

इस विश्वरूपतै पूर्व जैसे देखता भया हूं तिसी आपके सुन्दरस्वरूपकूं अबी मै अर्जुन देखणेकी इच्छा करताहूं । यातै हे सहस्रबाहो ! अर्थात् हे अनेक सहस्रभुजावोंवाला ! तथा हे विश्वमूर्ते ! अर्थात् हे सर्व विश्वरूप मूर्तिकूं धारणकरणेहारा श्रीभगवन् ! अबी इसकालविषे इस आपके विश्वरूपका उपसंहार करिकै तिस पूर्वले चतुर्भुज स्वरूपकरिकै प्रगट होवौ। इतने कहणे करिकै यह अर्थ सूचन कऱ्या, अर्जुनने सर्वकालविषे श्रीभगवान्का चतुर्भुजादिक स्वरूपही देखियेहै ॥ ४६ ॥

इस प्रकारतै अर्जुनकरिकै प्रार्थना कऱ्याहुआ श्रीभगवान् तिस अर्जुनकूं भयकरिकै पीडितहुआ देखिकै तिस विश्वरूपका उपसंहारकरिकै उचित वचनोकरिकै तिस अर्जुनकूं आश्वासन करताहुआ कहै है—

श्रीभगवानुवाच ।

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ॥ तेजोमयं विश्वमनंतमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥ ४७ ॥

(पदच्छेदः) मया । प्रसन्नेन । तव । अर्जुन । इदम् । रूपम् परम् । दर्शितम् । आत्मयोगात् । तेजोमयम् । विश्वम् । अनंतम् । आद्यम् । यत् । मे । त्वदन्येन । न । दृष्टपूर्वम् ॥ ४७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! प्रसन्नतावाले मैं परमेश्वरनै आपणे सामर्थ्यतै तुम्हारे ताई यह विश्वात्मक श्रेष्ठ रूप दिखायाहै कैसा है सो रूप तेजोमय है तथा सर्वविश्वरूपहै तथा अनंत है तथा अनादि है जो रूप हमारा तुम्हारेतै अन्य किसीनैंभी नहीं पूर्व देख्या है ॥ ४७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! तूं इस हमारे विश्वरूपकूं देखिकै भयकूं मत प्राप्त होउ कोई तुम्हारेकूं भयकी प्राप्ति करणेवासतै मैंने यह विश्वरूप दिखाया नहीं किंतु प्रसन्नतावाले मैं परमेश्वरनैं अर्थात् तें अर्जुन विषयक

अतिशय कृपावाले मैं परमेश्वरनैं तैं अर्जुनके ताईं यह आपणा विश्वरूपात्मक श्रेष्ठरूप आपणे सामर्थ्यतैं दिखाया है सो केवल तुम्हारे ऊपरि कृपादृष्टि करिकैही दिखाया है । तहां (परम्) इस विशेषणकरिकै ता विश्वरूपविषे कथन कऱ्या जो श्रेष्ठत्वरूप परत्व है तिसी परत्वकूंही अब स्पष्टकरिकै कथन करैं है । (तेजोमयमिति) हे अर्जुन ! कैसा है सो हमारा विश्वरूप—तेजोमय है अर्थात् कोटिसूर्यके प्रकाश समान है प्रकाश जिसका । पुनः कैसा है सो रूप—विश्व है अर्थात् सर्व विश्वरूप है । पुनः कैसा है सो रूप—आदिअंततै रहित है । ऐसा आपणा विश्वात्मकरूप मैं परमेश्वरनैं केवल तै अत्यंत प्रियभक्त अर्जुनके ताईंही दिखाया है । शंका—हे भगवन् ! यह विश्वात्मकरूप तैं परमेश्वरनैं प्रसन्न होइकै केवल मैं अर्जुनके ताईंही दिखाया है यह आपका कहणा संभवता नहीं । काहेतैं धृतराष्ट्रके गृहविषे भीष्मादिकोंकूंभी यह विश्वरूप आपनै दिखाया था । तथा बाल्यअवस्थाविषे यशोदा माताकूंभी यह विश्वरूप आपनै दिखाया था । तथा अक्रूरकूंभी यह विश्वरूप आपनै दिखायाथा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए हे अर्जुन ! तिन भीष्मादिकोंकूं जो हमनै विश्वरूप दिखायाथा सो इस विश्वरूपका एक अवांतररूपही था । यातैं सो रूप सर्वतैं उत्तम नहीं था । और यह जो विश्वात्मकरूप हमनै तुम्हारेकूं दिखाया है सो सर्वतैं श्रेष्ठ है दूसरे किसीनैभी पूर्व यह रूप देख्या नहीं । इसप्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं । (यन्मे इति) हे अर्जुन ! जो यह हमारा विश्वात्मकरूप तुम्हारेतैं अन्य किसीनैं भी पूर्व देख्या नहीं सो यह विश्वात्मक आपणा स्वरूप मैं परमेश्वरनैं कृपाकरिकै तैं अर्जुनके ताईं अबी दिखाया है ४७

हे अर्जुन ! इसविश्वरूपका दर्शनरूप जो अत्यंत दुर्लभ हमारा प्रसाद है तिस हमारे प्रसादकूं प्राप्त होइकै तूं अर्जुन अब कृतार्थही हुआ है । इस अभिप्रायकरिकै श्रीभगवान् अब ता विश्वरूपकी दुर्लभताकूं कथन करैं हैं—

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ॥ एवं रूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥ ४८ ॥

(पदच्छेदः) न । वेदयज्ञाध्ययनैः । न । दानैः । न । च । क्रियाभिः । न । तपोभिः । उग्रैः । एवम् । रूपः । शक्यः । अहम् । नृलोके । द्रष्टुम् । त्वदन्येन । कुरुप्रवीर ॥ ४८ ॥

(पदार्थः) हे कुरुवंशविषे अतिशूर वीर अर्जुन ! इस मनुष्यलोकविषे इसप्रकारके विश्वरूपवाला मैं भगवान् तुम्हारेतैं अन्यपुरुषनैं वेदोंके तथा यज्ञोंके अध्ययनकरिकै देखणेकूं नहीं शक्य हूं तथा दानोंकरिकै नहीं देखणेकूं शक्य हूं तथा कर्मोंकरिके भी नहीं देखणेकूं शक्य हूं तथा उग्र तपोंकरिके नहीं देखणेकूं शक्य हूं ॥ ४८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! ऋग्, यजुष्, साम, अथर्वण इन च्यारिवेदोंका जो गुरुमुखतैं अक्षरोंका ग्रहणरूप अध्ययन है तथा पूर्व मीमांसा कल्पसूत्र इत्यादिकों करिकै वेदबोधित कर्मरूपयज्ञोंका जो अर्थ विचाररूप अध्ययन है तिन वेदोंके अध्ययन करिकै तथा यज्ञोंके अध्ययनकरिकै तथा तुलापुरुषदान, कन्यादान, गौ सुवर्ण अन्नदान इत्यादिक दानों करिकै तथा अग्निहोत्रादिक श्रौतस्मार्त्त कर्मोंकरिकै तथा कायइंद्रियोंके शोषक होणेतैं करणेविषे अत्यंत कठिन ऐसे जे कृच्छ्रचांद्रायणादिक तप हैं ऐसे तपोंकरिकै इस मनुष्यलोकविषे इस प्रकारके विश्वरूपवाला मैं परमेश्वर तुम्हारेतैं अन्य पुरुषोंनैं देखणेकूं अशक्य हूं अर्थात् मैं परमेश्वरके अनुग्रहतैं रहित पुरुष वेदोंके अध्ययनकरिकै तथा वेदप्रतिपादित कर्मोंके यथार्थ ज्ञानकरिकै तथा दानोंकरिकै तथा उग्रतपोंकरिके मेरे इस विश्वरूपकूं देखिसकते नहीं । ऐसा अत्यंत दुर्लभ यह विश्वरूप हमनैं कृपाकरिकै तुम्हारेकूं दिखाया है । तिस रूपके दर्शनतैं अबी तूं कृतार्थ हुआ है इति । तहां मूल श्लोकविषे (शक्य अहम्) इस वचनके

स्थानविषे यद्यपि (शक्योऽहम्) इस प्रकारका वचनही करणे योग्य था तथापि (शक्य अहम्) इस वचनविषे जो शक्य इस पदतैं उत्तर विसर्गका लोप है सो छांदस है। और यद्यपि एक नकारके पठनतैंही अध्ययन दान क्रिया तप इन सर्वोंका निषेध होइसकै है तथापि अध्ययन दान क्रिया तप इन च्यारोंके साथि जो भिन्नभिन्न नकारका पठन कऱ्या है सो तिस विश्वरूपके दर्शनविषे तिन अध्ययनादिकोंके निषेधकी दृढतावासतै कथन कऱ्या है। और (न च क्रियाभिः) इस वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार इहां नहीं करे हुए दूसरे साधनोंकाभी समुच्चय करणेवासतै है अर्थात् मैं परमेश्वरके अनुग्रहतै विना दूसरे किसीभी साधनकरिकै यह हमारा विश्वरूप देख्या जाता नहीं ॥ ४८ ॥

हे अर्जुन! तुम्हारे अनुग्रहवासतै मैं परमेश्वरने प्रगट कऱ्या जो यह आपणा विश्वरूप है तिस हमारे विश्वरूप करिकै जो कदाचित् तुम्हारेकूं उद्वेग प्राप्त हुआ है तौ मैं परमेश्वर इस आपणे विश्वरूपका अभी उपसंहार करताहूं तूं व्यथाकूं मत प्राप्तहोउ। इस अर्थकूंअब श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति कथन करैहैं—

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम्॥ व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥ ४९ ॥

(पदच्छेदः) मा। ते। व्यथा। मा। च। विमूढभावः। दृष्ट्वा। रूपम्। घोरम्। ईदृक्। मम। इदम्। व्यपेतभीः। प्रीतमनाः। पुनः। त्वम्। तत्। एव। मे। रूपम्। इदम्। प्रपश्य ॥ ४९

(पदार्थः) हे अर्जुन! मैं परमेश्वरके इसप्रकारके इस घोर रूपकूं देखिकै तैं अर्जुनकूं व्यथा मतहोवो तथा विमूढभावभी मतहोवो किंतु भयतैं रहित प्रसन्नमन हुआ तूं अर्जुन पुनः मैं परमेश्वरके विषे पूर्वले इस रूपकूं ही देख ॥ ४९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! अनेक बाहु मुखादिकों करिकै युक्त होणेतें अत्यंत भयानक जो यह हमारा विश्वरूप है तिस हमारे विश्वरूपकूं देखिकै स्थित हुआ जो तूं अर्जुन है तिस तुम्हारेकूं व्यथा मत प्राप्त होवौ अर्थात् भयरूप निमित्ततें उत्पन्न भई जा पीडा है सा पीडा मत प्राप्तहोवौ। तथा मेरे इस विश्वरूपके दर्शन हुएभी जो तुम्हारेकूं विमूढभाव प्राप्त हुआहै अर्थात् व्याकुलचित्तपणा तथा अपरितोष प्राप्त भयाहै सो विमूढभावभी तुम्हारेकूं मत प्राप्त होवौ किंतु भयतें रहित होइकै तथा प्रसन्न मन होइकै तूं अर्जुन पुनः तिसी हमारे चतुर्भुजरूपकूं देख। अर्थात् इस विश्वरूपतें पूर्व तूं अर्जुन जिस हमारे चतुर्भुज वासुदेव रूपकूं सर्वदा देखताथा तिसी हमारे चतुर्भुजरूपकूं तू अबी भयते रहित होइकै तथा संतोषयुक्त होइकै देख इहां भयते रहितपणा तथा संतोष यह दोनों श्रीभगवान्नै (प्रपश्य) इस वचनविषे स्थित प्र इस शब्दकरिकै कथन करे हैं ॥ ४९ ॥

अब संजय धृतराष्ट्रके प्रति कथन करैहै—

संजय उवाच।

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः॥ आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥ ५० ॥

(पदच्छेदः) इति। अर्जुनम्। वासुदेवः। तथा। उक्त्वा। स्वकम्। रूपम्। दर्शयामास। भूयः। आश्वासयामास। च। भीतम्। एनम्। भूत्वा। पुनः। सौम्यवपुः। महात्मा ॥ ५० ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र!सो कृष्ण भगवान् अर्जुनके प्रति इसप्रकारका वचन कहिकै तिसीप्रकारका आपणा चतुर्भुजरूप पुनः दिखावताभया तथा सो परम-कृपालु भगवान् पुनः तिस सौम्यशरीरवाला होइकै भययुक्त इस अर्जुनकूं आश्वासन करता भया ॥ ५० ॥

भा० टी०—हे धृतराष्ट्र ! सो वासुदेव कृष्णभगवान् ता अर्जुनके प्रति यह पूर्वउक्त वचन कहिकै ता विश्वरूप धारणतें पूर्व जिसप्रकारके रूप-

वाला था तिसीप्रकार आपणा रूप ता अर्जुनके प्रति पुनः दिखावता भया । अर्थात् मस्तक ऊपरि किरीटकूं धारण करणेहारा तथा कानोंविषे मकराकृति कुंडलोंकूं धारण करणेहारा तथा च्यारों भुजावोंविषे शंख, चक्र, गदा, पद्म इन च्यारोंकूं धारण करणेहारा तथा श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमाला, पीतांबर इत्यादिकोंकरिकै शोभायमान इसप्रकारके आपणे पूर्वले रूपकूं तिस अर्जुनके प्रति पुनः दिखावता भया । तथा सो महात्मा कृष्णभगवान् अर्थात् परमकारुणिक तथा सर्वका ईश्वर तथा सर्वज्ञ इत्यादिक कल्याणोका आकाररूप श्रीकृष्णभगवान् पुनः सौम्यवपु होइकै अर्थात् परम अनुग्रहरूप शरीरवाला होइकै पूर्व विश्वरूपके दर्शनतैं भयकूं प्राप्तहुए अर्जुनके प्रति धैर्ययुक्त वचनोंकरिकै आश्वासन करता भया ॥ ५० ॥

तहां श्रीकृष्णभगवान्के तिस पूर्वले चतुर्भुज स्वरूपके दर्शनतैं अनंतर सो अर्जुन भयतैं रहित होइकै श्रीकृष्णभगवान्के प्रति याप्रकारका वचन कहता भया–

अर्जुन उवाच ।

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ॥
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥५१॥

(पदच्छेदः) दृष्ट्वा । इदम् । मानुषम् । रूपम् । तव । सौम्यम् । जनार्दन । इदानीम् । अस्मि । संवृत्तः । सचेताः । प्रकृतिम् । गतः ॥ ५१ ॥

(पदार्थः) हे जनार्दन ! तुम्हारे इस मानुष सौम्य रूपकूं देखिकै अबी मैं अर्जुन अव्याकुलचित्त हुवा हूं तथा स्वस्थताकूं प्राप्तहुआहूं ॥ ५१ ॥

भा० टी०–हे जनार्दन ! तुम्हारे इस सौम्य मानुषरूपकूं देखिकै मैं अर्जुन अबी सचेता हुआहूं अर्थात् पूर्व विश्वरूपके दर्शनजन्य भयकरिकै करेहुए व्यामोहके अभाव करिकै अबी मैं चित्तकी व्याकुलतातैं रहित

हुआहूं । तथा मैं अर्जुन अबी प्रकृतिकूं प्राप्त हुआहूं अर्थात् तिस भयजन्य व्यथातैं रहित होणेतैं स्वस्थताकूं प्राप्त हुआहूं ॥ ५१ ॥

तहां श्रीभगवान्नैं अर्जुनऊपरि कन्या जो विश्वरूपका दर्शनरूप अनुग्रह है ता अनुग्रहकी दुर्लभताकूं श्रीभगवान् अब च्यारि श्लोकोंकरिकै कथन करैं हैं–

श्रीभगवानुवाच ।

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ॥
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः॥५२॥

(पदच्छेदः) सुदुर्दर्शम् । इदम् । रूपम् । दृष्टवानसि । यत् । मम । देवाः । अपि । अस्य । रूपस्य । नित्यम् । दर्शनकांक्षिणः ॥ ५२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरके जिस विश्वरूपकूं तूं अबी देखताभयाहै यह हमारा विश्वरूप अत्यंत देखणेकूं अशक्य है जिसकारणतें देवता भी नित्यही इस विश्वरूपके दर्शनकी इच्छा करैं हैं ॥ ५२ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरके जिस विश्वरूपकूं तूं अबी देखताभया है सो यह हमारा विश्वरूप अत्यंत देखणेकूं अशक्य है । जिस कारणतें इंद्रादिक देवताभी सर्वदा इस हमारे विश्वरूपके दर्शनकी इच्छाहीं करते रहते हैं परंतु जैसे तूं अर्जुन इस हमारे विश्वरूपकूं देखता भया है. तैसे ते इंद्रादिक देवता पूर्वभी इस हमारे विश्वरूपकूं नहीं देखते भये हैं । और आगेभी नहीं देखैंगे ॥ ५२ ॥

हे भगवन् ! ते इंद्रादिक देवता इस आपके विश्वरूपकूं किस कारणतें पूर्व नहीं देखते भये हैं तथा आगे नहीं देखैंगे ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए, मैं परमेश्वरकी अनन्यभक्तितैं रहित होणेतैं वे देवता इस हमारे विश्वरूपकूं पूर्व नहीं देखते भयेहैं तथा आगे नहीं देखैंगे । इसप्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ॥
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥ ५३ ॥

(पदच्छेदः) न । अहम् । वेदैः । न । तपसा । न । दानेन । न । च । इज्यया । शक्यः । एवंविधः । द्रष्टुम् । दृष्टवानसि । माम् । यथा ॥ ५३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तूं जिसप्रकारतें मैं विश्वरूपकूं देखताभयाहै इसप्रकारके विश्वरूपवाला मैं परमेश्वर वेदों के अध्ययनकरिकैभी देखणेकूं नहीं शक्यहूं तथा तपकरिकैभी देखणेकूं नहीं शक्यहूं तथा दानकरिकैभी देखणेकूं नहीं शक्यहूं तथा अग्निहोत्रादिक कर्मकरिकैभी देखणेकूं नहीं शक्य हूं ॥ ५३ ॥

भा० टी०—मैं विश्वरूप परमेश्वरकूं जिसप्रकारतें तू अर्जुन अबी देखताभया है इसप्रकारके विश्वरूपवाला मैं परमेश्वर ऋगादिक च्यारि वेदोंके अध्ययन करिकैभी देखणेकूं शक्य नहीं हूं। तथा कृच्छ्रचांद्रायणादिक तप करिकैभी मैं देखणेकूं शक्य नहीं हूं । तथा तुलापुरुष, कन्या, गौ, सुवर्ण, अन्न इत्यादिक पदार्थोंके दानकरिकैभी मैं देखणेकूं शक्य नहीं हूं । तथा अग्निहोत्रादिक श्रौतस्मार्त्तकर्मोंकरिकैभी मैं देखणेकूं शक्य नहीं हूं । तहां पूर्व(न वेदयज्ञाध्ययनैः)इस श्लोकविषे जो अर्थ कथन कऱ्या था सोईही अर्थ (नाहं वेदैर्न तपसा) इस श्लोकविषे जो अबी पुनः कथन कऱ्याहै सो तिस विश्वरूपके दर्शनकी अत्यंत दुर्लभताके बोधन करणेवासतै कथन कऱ्या है यातें इस श्लोकविषे पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै नहीं ॥ ५३ ॥

हे भगवन् ! इसप्रकारके विश्वरूपवाला तूं जबी वेदोंके अध्ययनकरिकै तथा तपकरिकै तथा दानकरिकै तथा अग्निहोत्रादिक कर्मोंकरिकै देखणेकूं अशक्य है तबी दूसरे किस उपायकरिकै तूं देखणेकूं शक्य है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता विश्वरूपके दर्शनका उपाय कथन करै हैं—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ॥
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥ ५४ ॥

(पदच्छेदः) भक्त्या । तु । अनन्यया । शक्यः । अहम् । एवंविधः । अर्जुन । ज्ञातुम् । द्रष्टुम् । च । तत्त्वेन । प्रवेष्टुम् । च । परंतप ॥ ५४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! हे परंतप ! इसप्रकारके विश्वरूपवाला मैं परमेश्वर अनन्य भक्तिकरिकै ही जानणेकूं शक्यहूं तथा वास्तवरूपकरिकै साक्षात्कार करणेकूं शक्य हूं तथा अभेदरूपकरिकै प्राप्त होणेकूं शक्य हूं ॥ ५४ ॥

भा० टी०—हे परंतप ! अर्थात् हे अज्ञानरूप शत्रुकूं नाशकरणेहारा अर्जुन ! इसप्रकारके दिव्य विश्वरूपकूं धारण करणेहारा मैं परमेश्वर एक अनन्यभक्ति करिकै ही जानणेकूं शक्य हूं। अर्थात् सर्व विषयवासनाका परित्यागकरिकै एक मैं परमेश्वरविषयक जा निरतिशय प्रीतिरूप अनन्यभक्ति है ता अनन्यभक्ति करिकै ही यह अधिकारी जन शास्त्ररूप प्रमाणतें मैं परमेश्वरकूं जानिसके हैं अन्यकिसी उपायकरिकै जानिसकते नहीं। हे अर्जुन ! तिस अनन्यभक्ति करिकै शास्त्रप्रमाणतें मैं परमेश्वर केवल जानणेकूंही शक्य नहीं हूं किंतु तिस अनन्यभक्तिकरिकै मैं परमेश्वर वेदांतवाक्योंके श्रवण मनन निदिध्यासनकी परिपाकताकरिकै आपणे वास्तवस्वरूपतें साक्षात्कार करणेकूंभी शक्य हूं अर्थात् ता अनन्यभक्ति करिकै ये अधिकारी पुरुष श्रवण मननादिक साधनोंकरिकै मैं परमेश्वरकूं मैं ब्रह्मरूप हूं, याप्रकारतें साक्षात्कारभी करैहैं। और तिस साक्षात्कारकी प्राप्तितें अनंतर तिस साक्षात्कारकरिकै अविद्याके निवृत्त हुए मैं परमेश्वर तिन तत्त्ववेत्ता भक्तजनोंकूं आपणे वास्तवस्वरूपतें प्राप्त होणेकूंभी शक्यहूं अर्थात् तिन तत्त्ववेत्ता भक्तजनोंकूं मैं परमेश्वर आपणा आत्मारूपकरिकै प्राप्त होवूंहूं। इहां (हे परंतप) इस संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नें अर्जुनकूं अज्ञानरूप

शक्तिकी निवृत्तिकरिकै आपणे अद्वितीय निर्गुणस्वरूप विषे अभेदरूपकरिकै प्रवेशकी योग्यता सूचन करी। और (शक्यः अहम्) इस वचनके स्थानविषे यद्यपि (शक्योऽहं) इस प्रकारका वचन चाहिये था तथापि शक्य इस पदतैं उत्तर जो विसर्गका लोप कऱ्या है सो पूर्वकी न्याईं छांदस है ॥ ५४ ॥

अब श्रीभगवान्नैं समग्र गीताशास्त्रका सारभूत अर्थ मुमुक्षुजनोंके अनुष्ठानवासतैं इकट्ठाकरिकै कथन करिये है-

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः ॥
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पांडव ॥ ५५ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) मत्कर्मकृत् । मत्परमः । मद्भक्तः । संगवर्जितः । निर्वैरः । सर्वभूतेषु । यः । सः । माम् । एति । पांडव ॥ ५५ ॥

(पदार्थः) हे पांडव ! जो पुरुष मत्कर्मकृत् है तथा मत्परम है तथा मेरा भक्त है तथा संगतैं रहितहै तथा सर्वभूतोंविषे निर्वैर है सो पुरुषही मैं परमेश्वरकूं अभेदरूपकरिकै प्राप्त होवै है ॥ ५५ ॥

भा० टी०-हे पांडव ! अर्थात् हे पांडुराजाके पुत्र अर्जुन ! जो अधिकारी पुरुष मत्कर्मकृत् है अर्थात् जो अधिकारी पुरुष मैं परमेश्वरकी प्रसन्नतावासतैंही वेदविहित अग्निहोत्रादिक श्रौतस्मार्त्तकर्मोंकूं करैहै । शंका-हे भगवन् ! स्वर्गादिक फलोंकी कामनावोंके विद्यमान हुए इस अधिकारी पुरुषविषे सो मत्कर्मकृत्पणा कैसे संभवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहै हैं (मत्परमः इति) हे अर्जुन ! जो अधिकारी पुरुष मत्परम है अर्थात् मैं परमेश्वरही हूं प्राप्तरूपकरिकै निश्चित जिसकूं दूसरे स्वर्गादिक फल जिसकूं प्राप्तव्यरूपकरिकै निश्चित हैं नहीं तिस पुरुषका नाम मत्परम है। जिसकारणतैं सो अधिकारी पुरुष

मत्कर्मकृत् है तथा मत्परम है तिसकारणतें ही सो अधिकारी पुरुष मद्भक्त है । अर्थात् मैं परमेश्वरके प्राप्तिकी आशाकरिकै जो अधिकारी पुरुष सर्वप्रकारोंकरिकै मैं परमेश्वरके भजनपरायण है । शंका–हे भगवन् ! पुत्रादिक पदार्थोंविषे स्नेहके विद्यमान हुए तिस अधिकारी पुरुषविषे सो तुम्हारा भक्तपणाभी कैसे संभवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं–(संगवर्जितः) जो अधिकारी पुरुष संगतैं रहित है अर्थात् पुत्र, स्त्री, धन, गृह इसतैं आदिलैके जितनेक बाह्य अनात्मपदार्थ हैं तिन सर्वपदार्थोंकी इच्छातैं रहित है । शंका–हे भगवन् ! शत्रुवोंविषे द्वेषके विद्यमान हुए तिस अधिकारी पुरुषविषे सो संगतैं रहितपणाभी कैसे संभवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं–(निर्वैरः सर्वभूतेषु इति) हे अर्जुन ! जो अधिकारी पुरुष सर्व भूतोंविषे वैरतैं रहित है अर्थात् जे प्राणी आपणा अपकार करैं हैं ऐसे अपकारी प्राणियोंविषेभी जो पुरुष द्वेषतैं रहित हैं । हे अर्जुन ! इसप्रकार जो अधिकारी पुरुष मत्कर्मकृत् है तथा मत्परम है तथा मद्भक्त है तथा संगतैं रहित है तथा सर्वभूतोंविषे निर्वैर है सो अधिकारी पुरुषही मैं परमेश्वरकूं अभेदरूपकरिकै प्राप्त होवै है । हे अर्जुन ! यह जो सर्व शास्त्रका सारभूत अर्थ हमनैं तुम्हारे प्रति उपदेश कऱ्या है सो यह अर्थही तुम्हारेकूं जानणे योग्य है । इस अर्थके जानणेतैं परे दूसरा कोई तुम्हारेकूं कर्त्तव्य नहीं है इति । और किसी टीकाविषे तौ (मत्परमः) इस पदका यह अर्थ कथन कऱ्या है । (मीयते पदार्थोऽनया इति मा) अर्थ यह–जिसकरिकै पदार्थ निश्चय कऱ्या जावै है ताका नाम मा है अर्थात् नेत्रादिक इंद्रियजन्य अंतःकरणकी वृत्तिकरिकैही सर्व पदार्थ निश्चय करेजावैं हैं यातैं ता इंद्रियजन्य वृत्तिका नाम मा है । तहां मत्परा है क्या सर्वत्र मैं परमेश्वरके स्वरूप ग्रहणपरा है सा इंद्रियजन्यवृत्तिरूप मा जिस पुरुषकी ताका नाम मत्परम है इति । तहां (मत्कर्मकृत् मत्परमः) इन दोनों पदोंकरिकै तौ संपूर्ण कर्मयोग तथा संपूर्ण ध्यानयोग कथन

कऱ्या । जो कर्मयोग तथा ध्यानयोग त्वंपदार्थका शोधक है । और (मद्भक्तः) इस पदकरिकै तौ समग्र उपासनाकांडके अर्थका संग्रह कऱ्या । और (संगवर्जितः) इस पदकरिकै तौ सर्वसंगका परित्याग करिकै एकांतदेशविषे स्थित होइकै यह अधिकारी पुरुष भगवद्ध्याननिष्ठ होवै यह अर्थ कथन कऱ्या । और (निर्वैरः सर्वभूतेषु) इस वचनकरिकै तौ यह अर्थ कथन कऱ्या—यह अधिकारी पुरुष इस सर्व विश्वकूं भगवद्रूप करिकै देखै जो कदाचित् यह अधिकारी पुरुष इस सर्वविश्वकूं भगवद्रूप करिकै नहीं देखैगा तौ भेदबुद्धिवाले इस अधिकारीपुरुषविषे सा निर्वैरताही संभवैगी नहीं । इसप्रकारतें यह श्लोक सर्व गीताशास्त्रके सारभूत अर्थकूं कथन करै हैं । और (हे पांडव) इस संबोधन करिकै श्रीभगवान्नें अर्जुनका विशुद्धवंशविषे जन्म कथन कऱ्या ताकरिकै यह अर्थ सूचन कऱ्या । तूं अर्जुन इस सर्व शास्त्रके सारभूत अर्थकूं जाननेविषे समर्थ है ॥ ५५ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां श्रीभगवद्गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां एकादशोऽध्यायः समाप्तः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशाऽध्यायप्रारंभः ।

तहां पूर्व एकादश अध्यायके अंतविषे (मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः । निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पांडव ॥) इस श्लोकविषे श्रीभगवान्नें च्यारिवार मत् यह शब्द कथन कऱ्याहै तिस मत्शब्दके अर्थविषे यह संशय होवै है जो श्रीभगवान्नें ता मत्शब्दकरिकै निराकार वस्तुका कथन कऱ्या है अथवा साकार वस्तुका कथन कऱ्या है इति । तहां इसप्रकारके संशयकी उत्पत्तिविषे श्रीभगवान्के पूर्वउक्त वचनही कारण हैं काहेतें श्रीभगवान्नें (मत्कर्मकृत्) इस श्लोकतें पूर्व निराकार वस्तुकूं तथा साकार वस्तुकूं दोनोंकूं मत् इस शब्दकरिकै कथन

कऱ्याहै । तहां (बहूनां जन्मनामंते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते । वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥) इत्यादिक वचनोंकरिकै तौ श्रीभगवानूनैं ता मत्शब्दकरिकै निराकार वस्तुकाही कथन कऱ्या है । और विश्वरूपके दर्शनतैं अनंतर (नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया । शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥) इत्यादिक वचनोंकरिकै तौ श्रीभगवानूनैं ता मत्शब्दकरिकै साकार वस्तुकाही कथन कऱ्या है । तहां श्रीभगवान्के तिन दोनों प्रकारके उपदेशोंकी व्यवस्था अधिकारी पुरुषके भेदकरिकैही करणी होवैगी । जो कदाचित् अधिकारी पुरुषके भेदकरिकै तिन दोनों प्रकारके उपदेशोंकी व्यवस्था नहीं करिये तौ तिन दोनों प्रकारके उपदेशोंका परस्पर विरोध प्राप्त होवैगा । इसप्रकार अधिकारी पुरुषके भेदकरिकै तिन दोनों प्रकारके उपदेशोंकी व्यवस्थाके प्राप्त हुए मैं मुमुक्षु अर्जुननैं क्या निराकार वस्तु चिन्तन करणेयोग्य है अथवा साकार वस्तु चिंतन करणेयोग्य है । इस प्रकार आपणे अधिकारके निश्चय करणेवास्तै सगुणविद्या तथा निर्गुणविद्या इन दोनों विद्यावोंके विशेषता जानणेकी इच्छा करताहुआ अर्जुन श्रीभगवानूके प्रति प्रश्न करै है—

अर्जुन उवाच ।

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ॥
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥ १ ॥

(पदच्छेदः) एवम् । सततयुक्ताः । ये । भक्ताः । त्वाम् । पर्युपासते । ये । च । अपि । अक्षरम् । अव्यक्तम् । तेषाम् । के । योगवित्तमाः ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! इसप्रकार निरंतर युक्तहुए तथा एकसाकारवस्तुके शरणहुए जे अधिकारी पुरुष तैं साकारपरमेश्वरकूं निरंतर चिंतन करैं हैं तथा जे विरक्तपुरुष अक्षर अव्यक्तरूप तैं निर्गुणब्रह्मकूंही

निरंतर चिंतन करें हैं तिन दोनोंके मध्यविषे कौंनें पुरुष अतिशैंयकरिकै योगके जानणेहारे हैं ॥ १ ॥

भा० टी०—हे भगवन् ! जे अधिकारी जन (मत्कर्मकृन्मत्परमः) इस पूर्वश्लोक उक्तप्रकारकरिकै सततयुक्त हैं अर्थात् जे पुरुष निरंतर भगवत् अर्पण कर्मादिकोंविषे सावधानताकरिकै प्रवृत्त हुए हैं, तथा जे अधिकारी पुरुष भक्त हैं अर्थात् जे पुरुष एक साकारवस्तुकेही शरणकूं प्राप्त हुए हैं। इसप्रकार सततयुक्त हुए तथा भक्तहुए जे अधिकारी पुरुष इसप्रकारके साकाररूपवाले तैं परमेश्वरकूं श्रद्धाभक्तिपूर्वक निरंतर चिंतन करें हैं। इतने कहणेकरिकै सगुणब्रह्मके चिंतन करणेहारे भक्तजनोंका कथन कऱ्या। अब निर्गुणब्रह्मके चिंतन करणेहारे भक्तोंका कथन करैं हैं (ये चाप्यक्षरमिति) हे भगवन् ! जे अधिकारी पुरुष सर्वसंसारतें विरक्त-हुए तथा सर्वकर्मोंके त्यागवाले हुए अक्षररूप तथा अव्यक्तरूप तैं पर-मेश्वरकूं निरंतर चिंतन करें हैं। तहां (न क्षरति अश्नुते वा इत्यक्षरम्) अर्थ यह—जो वस्तु कदाचित्भी नाशकूं नहीं प्राप्त होवै ताका नाम अक्षर है। अथवा जो वस्तु आपणे सत्तास्फुरणरूप करिकै इस सर्वजगत्कूं व्याप्त करे है ताका नाम अक्षर है ऐसा अक्षररूप निर्गुणब्रह्म हैं। इसी निर्गुणब्रह्मरूप अक्षरकूं बृहदारण्यक उपनिषद्विषे याज्ञवल्क्य मुनिनैं गार्गीके प्रति स्थूलसूक्ष्मादिक सर्व उपाधियोंतें रहित कथन कऱ्या हैं। तहां श्रुति—(एतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदंत्यस्थूलमनण्वह्रस्वम-दीर्घम्) अर्थ यह—हे गार्गि ! इसी निर्गुणब्रह्मरूप अक्षरकूं ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण स्थूलभावतें रहित कहें हैं, तथा अणुभावतें रहित कहे हैं, तथा ह्रस्वभावतें रहित कहे हैं तथा दीर्घभावतें रहित कहें हैं इति । जिस कार-णतें सो निर्गुणब्रह्मरूप अक्षर सर्व उपाधियोंतें रहित है इस कारणतेंही सो निर्गुणब्रह्मरूप अक्षर अव्यक्त है अर्थात् नेत्रादिक सर्व कारणोंका अविषय है। ऐसे अक्षररूप तथा अव्यक्तरूपतें निराकार निर्गुण परमे-श्वरकूं जे अधिकारी पुरुष श्रद्धाभक्तिपूर्वक निरंतर चिंतन करैं है तिन

दोनों प्रकारके अधिकारी जनोंके मध्यविषे कौन अधिकारी जन योगवित्तम हैं अर्थात् कौन अधिकारी जन अतिशयकरिकै योगके जानणेहारे हैं । अथवा कौन अधिकारी जन अतिशयकरिकै समाधिरूप योगकूं प्राप्त हुए हैं तहां समाधिरूप योगकूं जे पुरुष जानैं हैं अथवा प्राप्त होवैं हैं तिन्होंका नाम योगवित् है तिन योगवित् पुरुषोंके मध्यविषे जे अत्यंत श्रेष्ठ होवैं तिनोंका नाम योगवित्तम है । अर्थात् इसप्रकारके योगवित् तौ ते दोनोंप्रकारके अधिकारी जन हैं तिन दोनोंप्रकारके अधिकारी जनोंके मध्यविषे कौन अधिकारी जन अत्यंत श्रेष्ठ योगवित् हैं अर्थात् तिन अधिकारी पुरुषोंका ज्ञान मैं अर्जुननैं अनुसरण करणेयोग्य है । तात्पर्य यह—सगुणब्रह्मके जानणेहारे पुरुषोंका ज्ञान हमारेकूं अनुसरण करणेयोग्य है अथवा निर्गुणब्रह्मके जानणेहारे पुरुषोंका ज्ञान हमारेकूं अनुसरण करणेयोग्य है ॥ १ ॥

तहां सर्वज्ञ श्रीकृष्णभगवान् तिस अर्जुनका सगुणविद्याविषेही अधिकारकूं देखताहुआ तिस अर्जुनके प्रति सा सगुणविद्याही विधान करैगा । तथा यथाअधिकारके अनुसार ता विद्याके न्यूनअधिकतायुक्त साधनोंकाभी विधान करैगा । इसकारणतैं प्रथम साकारब्रह्मविद्याविषे ता अर्जुनकी रुचि करावणेवासतै ता साकारब्रह्मविद्याकी स्तुति करताहुआ सा प्रथम साकारब्रह्मविद्या ही श्रेष्ठ है इसप्रकारके उत्तरकूं कथन करैं हैं—

श्रीभगवानुवाच ।

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ॥
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) मयि । आवेश्य । मनः । ये । माम् । नित्ययुक्ताः । उपासते । श्रद्धया । परया । उपेताः । ते । मे । युक्ततमाः । मताः ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जे अधिकारी पुरुष आपणे मनकूं मैं सगुणब्रह्मविषे एकाग्रकरिकै नित्ययुक्तहुए तथा सात्त्विक श्रद्धाकरिकै

युक्तहुए मैं साकारब्रह्मकूं चिंतनकरैं हैं ते अधिकारीजन मैं परमेश्वरकूं युक्ततम अभिमत हैं ॥ २ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! मैं भगवान् वासुदेव परमेश्वर सगुणब्रह्मविषे आपणे मनकूं आवेश करिकै अर्थात् अनन्यशरणता करिकै तथा निरतिशयप्रियताकरिकै आपणे मनकूं मैं सगुणब्रह्मविषे प्रवेश करिकै, तात्पर्य यह—जैसे हिंगुलके रंगके साथि मिलिकै लाख तन्मय होइजावैहै तैसे आपणे मनकूं मैं परमेश्वरमय करिकै जे अधिकारी पुरुष नित्ययुक्त हुए अर्थात् निरंतर मैं परमेश्वरके चिंतनविषयक उद्यमवाले हुए, तथा जे अधिकारी पुरुष परमश्रद्धाकरिकै युक्तहुए अर्थात् आराधन कऱ्याहुआ यह सगुणपरमेश्वर अवश्यकरिकै हमारा निस्तार करैगा या प्रकारकी आस्तिक्य बुद्धिरूप सात्त्विक श्रद्धाकरिकै युक्त हुए सर्व योगेश्वरोंकाभी ईश्वररूप तथा सर्वज्ञ तथा समग्रकल्याणगुणोंका स्थानरूप ऐसे साकारब्रह्मरूप मैं परमेश्वरकूं सर्वदा चिंतन करैं हैं, ते अधिकारी जनही मैं परमेश्वरकूं युक्ततमरूप करिकै अभिमत हैं । अर्थात् ते अधिकारी पुरुष सर्वकालविषे मैं परमेश्वरविषे आसक्तचित्तवाले होणेतैं सर्वविषयोंतैं विमुख होइक मैं परमेश्वरका चिंतन करतेहुए संपूर्ण दिनरात्रियोंकूं व्यतीत करैहैं । यातें ते सगुणब्रह्मके चिंतन करणेहारे अधिकारी जनही मैं परमेश्वरकूं युक्ततमरूप करिकै अभिप्रेत हैं । अर्थात् मैं परमेश्वर तिन अधिकारीजनोंकूं सर्वयोगीजनोंतैं श्रेष्ठ मानताहूं ॥ २ ॥

हे भगवन् ! निर्गुणब्रह्मके जानणेहारे पुरुषोंकी अपेक्षाकरिकै तिन सगुणब्रह्मके जानणेहारे पुरुषोंविषे कौन अतिशयता है ? जिस अतिशयता करिकै ते सगुणब्रह्मके जानणेहारे पुरुषही आपकूं युक्ततमरूपकरिकै अभिमत हैं । ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् तिस अतिशयताकूं कथन करते हुए प्रथम तिस अतिशयताके निरूपक निर्गुणब्रह्मके वेत्तावोंकी दो श्लोकोंकरिकै स्तुतिकूं कथन करैं हैं—

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ॥
सर्वत्रगमचिंत्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ ३ ॥
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ॥
ते प्राप्नुवंति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) ये । तु । अक्षरम् । अनिर्देश्यम् । अव्यक्तम् । पर्युपासते । सर्वत्रगम् । अचिंत्यम् । च । कूटस्थम् । अचलम् । ध्रुवम् । संनियम्य । इंद्रियग्रामम् । सर्वत्र । समबुद्धयः । ते । प्राप्नुवंति । माम् । एव । सर्वभूतहितेरता ॥ ३ । ४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः जे अधिकारीजन इंद्रियोंके समूहकूं निरुद्धकरिके सर्वत्र समबुद्धिवालेहुए तथा सर्वभूतोंके हितविषे प्रीतिवाले हुए अनिर्देश्य अव्यक्त सर्वव्यापक अचिंत्य तथा कूटस्थ अचल ध्रुव ऐसे निर्गुणब्रह्मरूप अक्षरकूं निरंतर चिंतन करै हैं ते अधिकारीपुरुषभी मैं निर्गुणब्रह्मकूं ही प्राप्तहोवैं है ॥ ३ ॥ ४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जे अधिकारी जन अक्षररूप मैं निर्गुणब्रह्मकूं निरंतर चिंतन करैहैं ते अधिकारी पुरुषभी मैं अक्षररूप निर्गुणब्रह्मकूंही प्राप्त होवैं है । जो अक्षररूप निर्गुणब्रह्म बृहदारण्यक उपनिषद्विषे याज्ञवल्क्यमुनिनैं गार्गीके प्रति (एतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदंत्यस्थूलमनणवह्रस्वमदीर्घम् ।) इत्यादिक वचनोंकरिकै कथन कन्याहै। इहां (ये तु) इस वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तु शब्द पूर्व कथन करे हुए सगुणब्रह्मके उपासकोंतैं इन निर्गुणब्रह्मके उपासकोंविषे विलक्षणताके बोधन करणेवासतै है । अब तिस अक्षरविषे निर्गुणब्रह्मरूपताके सिद्ध करणेवासतै ता अक्षरके सप्त विशेषणोंकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं । हे अर्जुन ! सो निर्विशेष ब्रह्मरूप अक्षर कैसा है—अनिर्देश्य है अर्थात् सो अक्षरब्रह्म किसी शब्दकरिकै कथन करणेकूं अशक्य है । शंका—हे भगवन् ! सो अक्षरब्रह्म शब्दकरिकै क्यों नहीं कथन कन्या

जावै है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् ता अनिर्देश्यपणेविषे हेतु कहैं हैं (अव्यक्तमिति) हे अर्जुन ! जिसकारणतें सो अक्षर अव्यक्तहै अर्थात् शब्दकी प्रवृत्तिके निमित्तभूत जे जाति, गुण, क्रिया सम्बन्ध यह च्यारि धर्म हैं तिन च्यारोंतैं सो अक्षर रहितहै तिस कारणतैं सो अक्षरब्रह्म किसीभी शब्दकरिकै कथन कऱ्या जाता नहीं। तात्पर्य यह- लोकविषे जिसजिस अर्थविषे जो जो शब्द प्रवृत्त होवै है सो सो शब्द तिस तिस अर्थविषे जातिकूं अथवा गुणकूं अथवा क्रियाकूं अथवा संबंधकूं द्वारभूत करिकेही प्रवृत्त होवैहै । जैसे ब्राह्मण इत्यादिक शब्द ब्राह्मणत्वादिक जातिकूं लैकेही स्वस्व अर्थविषे प्रवृत्त होवैं हैं । और शुक्ल नील इत्यादिक शब्द शुक्लनीलादिक गुणोंकूं लैकेही स्वस्व अर्थविषे प्रवृत्त होवैं हैं । और पाचक पाठक इत्यादिक शब्द तौ पाकादिरूप क्रियाकूं लैकेही स्वस्व अर्थविषे प्रवृत्त होवैं हैं । और पिता पुत्र इत्यादिक शब्द तौ जन्यजनकभाव आदिक संबंधकूं लैकेही स्वस्व अर्थविषे प्रवृत्त होवै हैं। इस प्रकारतैं सर्वशब्द जातिगुणादिक निमित्तकूं लेकही आपणे आपणे अर्थविषे प्रवृत्त होवैं हैं । और निर्विशेष अक्षरब्रह्मविषे ते जातिगुणादिक विशेषधर्म हैं नहीं यातैं ता अक्षरब्रह्मविषे किसीभी शब्दकी प्रवृत्ति होवै नहीं इति । शंका-हे भगवन् ! सो अक्षरब्रह्म तिन जातिगुणादिक धर्मोंतैं रहित किस हेतुतैं ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन जातिआदिकोंतैं रहितपणेविषे हेतु कहैंहैं (सर्वत्रगमिति) हे अर्जुन ! जिसकारणतैं सो अक्षरब्रह्म सर्वत्रग है अर्थात् सर्वत्र व्यापक है तथा सर्वका कारण है तिसकारणतैं सो अक्षरब्रह्म तिन जातिगुणादिकोंतैं रहित है। जो पदार्थ परिच्छिन्न होवैहै तथा कार्य होवै है सो पदार्थही तिन जातिगुणादिक धर्मवाला होवैहै । यद्यपि नैयायिक आकाश, काल, दिशा इन तीनोंविषे अकार्यपणा तथा व्यापकपणा अंगीकार करिकैभी तिन तीनोंविषे जातिगुणादिक अंगीकार करै हैं यातैं परिच्छिन्नकार्यविषेही ते जातिगुणादिक रहैं हैं यह नियम संभवता नहीं।

तथापि वेदांतसिद्धांतविषे तिन आकाशादिकोंविषेभी कार्यपणा तथा परिच्छिन्नपणाही अंगीकार है। तहां (आत्मन आकाशः संभूतः ।) अर्थ यह—आत्मातें आकाश उत्पन्न होताभया इत्यादिक श्रुतियोंनें तिन आकाशादिकोंकी आत्मातें उत्पत्ति कथन करी है। (और यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति ।) इत्यादिक श्रुतियोंनें व्यापक आत्मातें भिन्न आकाशादिक सर्वप्रपंचकूं परिच्छिन्न कह्या है। यातें आकाशादिकोंविषे ता नियमका भंग होवै नहीं और जिसकारणतें सो अक्षरब्रह्म सर्वत्र व्यापक है तिस कारणतें सो अक्षरब्रह्म अचिंत्य है अर्थात् सो अक्षरब्रह्म जैसे शब्दके प्रवृत्तिका विषय नहीं है तैसे मनके प्रवृत्तिकाभी विषय नहीं है। शब्दके प्रवृत्तिकी न्याई मनकी प्रवृत्तिभी परिच्छिन्नवस्तुकूंही विषय करै है। ता अक्षरब्रह्मविषे परिच्छिन्नपणा है नहीं यातें ता अक्षरब्रह्मविषे मनके प्रवृत्तिकी भी विषयता संभवै नहीं। तहां श्रुति—(यतो वाचो निवर्त्तंते अप्राप्य मनसा सह इति ।) अर्थ यह—मन सहित वाणी जिस अक्षरब्रह्मकूं न प्राप्तहोइकै जिस अक्षरब्रह्मतें निवर्त्त होइजावैं हैं इति । शंका—हे भगवन्! सो अक्षरब्रह्म जो कदाचित् वाणीका तथा मनका नहीं विषय होवै तौ श्रुतिवचन तथा व्याससूत्र ता ब्रह्मविषे वाणीकी विषयता तथा मनकी विषयता किसवासतै कथन करते हैं । तहां श्रुति—(तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामीति।दृश्यते त्वग्र्यया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः इति । मनसैवानुद्रष्टव्यमिति ।) अर्थ यह—हे शाकल्य ! केवल उपनिषद्प्रमाणकरिकै जानणे योग्य जो परब्रह्म है तिस परब्रह्मका स्वरूप मैं याज्ञवल्क्य तुम्हारेसैं पूछताहूं । और सूक्ष्मदर्शी विद्वान् पुरुषोंनें विषयवासनातें रहित एकाग्र सूक्ष्मबुद्धिकरिकै ही यह आत्मादेव साक्षात्कार करीताहै । और यह आत्मादेव केवल शुद्धमनकरिकैही देख्या जावैहै इति । तहां व्याससूत्र—(शास्त्रयोनित्वात्) अर्थ यह—उपनिषद्रूप शास्त्र है योनि क्या प्रमाण जिसविषे ऐसा परब्रह्म है । इत्यादिक श्रुतिसूत्रवचन तिस परब्रह्मविषेभी उपनिद्रूप वाणीकी विषयता तथा शुद्धमनकी विषयता

कथन करेहैं। ब्रह्मकूं अविषय मानणेविषे वे सर्व असंगत होवैंगे। समाधान— हे अर्जुन ! महावाक्यरूप शब्दप्रमाणतैं उत्पन्नभई जा बुद्धिकी अंत्यवृत्ति है ता बुद्धिकी वृत्तिविषे अविद्याकल्पित संबंधकरिकै परमानंदबोधरूप शुद्धवस्तुके प्रतिबिंबित हुएहीं कल्पितरूप अविद्याकी तथा ता अविद्याके कार्यकी निवृत्ति होवैहै। याकारणतैंही उपचारमात्रतैं तिस परब्रह्मविषे वाणीकी विषयता तथा बुद्धिकी विषयता कथन करी है अर्थात् महावाक्यजन्य शुद्धबुद्धिकी वृत्ति चिदाभासकरिकै युक्तहुई ब्रह्माश्रित तथा ब्रह्मविषयक अविद्याकी निवृत्तिमात्र करै है। जिसकूं शास्त्रविषे वृत्तिव्याप्ति कहैं है तिसकूं अंगीकार करिकैही श्रुतिसूत्रवचनोंनैं ता ब्रह्मविषे वाणीकी विषयता तथा मनकी विषयता कथन करी है। जैसे देहादिक अनात्मपदार्थोंविषे फलव्याप्तिरूप मुख्यविषयता है तैसे ब्रह्मविषे कोई मुख्यविषयता कथन करी नहीं इस सर्व अभिप्रायकरिकै श्रीभगवान् तिस अक्षरविषे कल्पित अविद्याके संबंधका उपपादन करणेवासतै कहैं हैं— (कूटस्थम् इति) तहां जो वस्तु वास्तवतैं मिथ्याभूत हुआभी सत्यरूपकरिकै प्रतीत होवैहै ता वस्तुकूं लोकविषे कूट इस नामकरिकै कथन करैहै। जैसे इसलोकविषे जो साक्षीपुरुष वास्तवतैं मिथ्यावादी हुआभी सत्यवादी पुरुषकी न्याईं प्रतीत होवैहै ता साक्षीकूं कूटसाक्षी कहैं हैं तैसे मायाअविद्यारूप यह अज्ञानभी आपणे कार्यप्रपंचसहित वास्तवतैं मिथ्याभूत हुआभी विचारहीन पुरुषोंकूं सत्यरूपकरिकै प्रतीत होवैहै। यातैं यह कार्यप्रपंचसहित अज्ञानभी कूट इसनामकरिकै कह्याजावैहै। ता कार्यप्रपंचसहित अज्ञाननाम कूटविषे जो वस्तु आध्यासिक संबंधकरिकै अधिष्ठानरूपतैं स्थित होवैहै ता वस्तुका नाम कूटस्थ है अर्थात् कार्यप्रपंचसहित अज्ञानका अधिष्ठानरूप जो परब्रह्म है ताका नाम कूटस्थ है। इतने कहणेकरिकै पूर्वउक्त सर्व अनुपपत्तियोंका परिहार कऱ्या। इस कारणतैंही सर्व विकारोंकूं अविद्याकरिकै कल्पित होणेतैं ता अविद्याका अधिष्ठानरूप साक्षीचैतन्य निर्विकार है, इस अर्थकूं

अब श्रीभगवान् कथन करैंहै (अचलमिति) तहां विकारका नाम चलन है ता चलनरूप विकारतैं जो रहित होवे ताका नाम अचल है । अचल होणेतैही सो अक्षरब्रह्म ध्रुव है अर्थात् परिणामीभावतै रहित नित्य है । इसप्रकारके अक्षर शुद्ध ब्रह्मरूप मैं परमेश्वरकूं जे अधिकारी जन चिंतन करैंहैं अर्थात् ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखतैं वेदांतशास्त्रके श्रवणकरिकै प्रमाणगत असंभावनाकी निवृत्ति करिकै तथा मननकरिकै प्रमेयगत असंभावनाकी निवृत्तिकरिकै तिसतैं अनंतर विपरीतभावनाकी निवृत्ति करणेवासतै जे अधिकारी पुरुष ध्यानकूं करैंहैं अर्थात् अनात्माकार विजातीय वृत्तियोंका तिरस्कार करिकै तैलधाराकी न्याई विच्छेदतैं रहित सजातीयवृत्तियोंका प्रवाहरूप निदिध्यासनभूत ध्यानकरिकै ते अधिकारी पुरुष मैं निर्गुणब्रह्मकूं विषय करै हैं । शंका–हे भगवन् ! श्रोत्रादिक इंद्रियोंका आपणे आपणे शब्दादिक विषयोंके साथि संबधके विद्यमान हुए सो विजातीयवृत्तियोंका तिरस्कार कैसे होवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं (सन्नियम्यैंद्रियग्राममिति) हे अर्जुन । जे अधिकारी जन आपणे श्रोत्रादिक इंद्रियोंके समूहकूं आपणे आपणे शब्दादिक विषयोंतै निवृत्त करिकै मैं निर्गुणब्रह्मका ध्यान करै है । इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं शमदमादिक षट्संपत्ति कथन करी। शंका–हे भगवन् ! विषयभोगकी वासनाके विद्यमान हुए तिन शब्दादिक विषयोतै श्रोत्रादिक इंद्रियोंकी निवृत्ति कैसे संभवैगी ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (सर्वत्र समबुद्धयः इति) हे अर्जुन ! सर्वविषयोंविषे सम है क्या तुल्य है अर्थात् हर्षविषाद दोनोंतै तथा राग द्वेष दोनोंतैं रहित है बुद्धि जिन्होंकी तिन्होंका नाम सर्वत्रसमबुद्धिहै । तात्पर्य यह–सम्यक्ज्ञानकरिकै जिन पुरुषोंका हर्षविषाद आदिकोंका कारणरूप अज्ञान निवृत्त होइगयाहै तथा विषयोंविषे दोषदर्शनके अभ्यासकरिकै जिन पुरुषोंकी सर्व विषयइच्छा निवृत्त होइगई है, ऐसे तत्त्ववेत्ता पुरुषोंका नाम सर्वत्रसमबुद्धि है । ऐसे सर्वत्रसमबुद्धिवाले हुए जे अधिकारी पुरुष मैं निर्गुणब्रह्मका

चिंतन करैंहैं । इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नै वशीकारनामा वैराग्य कथन कऱ्या । इसीकारणतैंही सर्वत्र आत्मदृष्टिकरिकै हिंसाके कारणरूप द्वेषतैं रहित होणेतैं जे अधिकारी पुरुप सर्वभूतोंके हितविषे प्रीतिवाले हैं । अर्थात् (अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा) इसमंत्रकरिकै सर्वभूतप्राणियोंके तांई दईहुईहै अभयरूप दक्षिणा जिन्होंनै ऐसे जे परमहंस संन्यासी हैं । तहां संन्यासियोंनैं सर्वभूतप्राणियोंके तांई अभयदान देणा यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करीहै । तहां श्रुति-(अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा संन्यासमाचरेत् ।) अर्थ यह-यह अधिकारी पुरुप शरीरकरिकै तथा मनकरिकै तथा वाणीकरिकै सर्व स्थावरजंगमरूप प्राणियोंके तांई अभयदान देकरिकै संन्यास आश्रमकूं ग्रहण करै । इसप्रकारके सर्वसाधनोंकरिकै संपन्न हुए ते सर्वतैं विरक्त अधिकारी जन आप ब्रह्मरूप हुएभी सर्वसाधनोंका फलभूत तथा संशयतैं रहित ऐसे आत्मसाक्षात्कार करिकै मैं अक्षर ब्रह्मरूपकूंही प्राप्त होवैं है अर्थात् ते तत्त्ववेत्ता-पुरुप तिस तत्त्वसाक्षात्कारतैं पूर्वभी मैं निर्गुणब्रह्मरूप हुएही तिस तत्त्वसाक्षात्कार करिकै अविद्याके निवृत्तहुए मैं निर्गुणब्रह्मरूप हुएही स्थित होवैं हैं । तहां श्रुति-(ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति ।) अर्थ यह-यह अधिकारी जन ब्रह्मरूप हुआही ब्रह्मरूपकूं प्राप्त होवैंहै । और मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकारतैं आपणा आत्मारूपकरिकै ब्रह्मकूं जानणेहारा पुरुप ब्रह्मरूपही होवै है इति । तहां ज्ञानवान् पुरुप ब्रह्मरूपही है यह वार्त्ता (ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं आपही इस गीताशास्त्रविषे कथन करी है ॥ ३ ॥ ४ ॥

अब इस निर्गुणब्रह्मके चिंतनकरणेहारे अधिकारी जनोंतैं पूर्व कथन करे हुए सगुणब्रह्मके चिंतन करणेहारे अधिकारी जनोंकी अतिशयताकूं दिखावते हुए श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति कहैंहैं-

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ॥
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ ५ ॥

(पदच्छेदः) क्लेशः । अधिकतरः । तेषाम् । अव्यक्तासक्तचेतसाम् । अव्यक्ता । हि । गतिः । दुःखम् । देहवद्भिः । अवाप्यते ॥ ५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! निर्गुणब्रह्मविषे आसक्त हैं चित्त जिन्होंका तिनपुरुषोंकूं अतिअधिक क्लेश होवै जिसकारणतैं देहाभिमानी पुरुषोंने सो निर्गुण ब्रह्म बहुतदुःखकरिकै पावता है ॥ ५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! सगुणब्रह्मके चिंतन करणेहारे जे अधिकारी पुरुष पूर्व कथन करेथे तिन अधिकारी जनोंकूंभी सर्वविषयोंतैं आपणे मनकूं निवृत्त करिकै सगुणब्रह्मविषे ता मनके जोडणेविषे तथा निरंतर परमेश्वरकी प्रसन्नता अर्थ निष्काम कर्मपरायण होणेविषे तथा परमसात्विक श्रद्धाकरिकै युक्त होणेविषे अधिक क्लेश तौ प्राप्त होवै हैं, परंतु तिन सगुणब्रह्मके चिंतन करणेहारे पुरुषोंकूं अधिकतर क्लेश प्राप्त होवै नहीं अर्थात् अत्यंत अधिक क्लेश प्राप्त होवै नहीं । और निर्गुणब्रह्मके चिंतनपरायण हैं चित्त जिन्होंका ऐसे जे पूर्वउक्त श्रवणादिक साधनोंवाले अधिकारी जन हैं तिन निर्गुणब्रह्मके चिंतनपरायण अधिकारी जनोंकूं तौ अधिकतर क्लेश प्राप्त होवै है । अर्थात् अतिशयकरिकै अधिक आयासरूप क्लेश प्राप्त होवै है । अब इस पूर्वउक्त अर्थविषे श्रीभगवान् हेतु कहैं हैं (अव्यक्ता हि गतिर्दुःखमिति) जिसकारणतैं देहविषे अहंमम अभिमानवाले पुरुषोंने सा अव्यक्तरूप गति बहुत दुःखकरिकै पाईती हैं वहां मुमुक्षुजन तत्त्वज्ञानकरिकै प्राप्त होवै जिसकूं ऐसा जो गंतव्यफलरूप निर्गुणब्रह्म है ताका नाम गति है । तहां श्रुति—(सा काष्ठा सा परा गतिः ।) अर्थ यह—सो निर्गुणब्रह्मही सर्वका अवधिरूप है तथा परागतिरूप है इति । सो निर्गुणब्रह्म नेत्रादिक इंद्रियोंका विषय है नहीं यातैं ता निर्गुणब्रह्मरूप गतिकूं अव्यक्त कह्या है अर्थात् देहाभिमानी पुरुषोंने सा अक्षरब्रह्मरूप गति बहुत दुःखकरिकैही पाईती है । तहां प्रथम तौ विवेक, वैराग्य, शमदमादि षट्संपत्ति, मुमुक्षुता इन चतुष्टयसा-

धनोंकरिसंपन्न होणा। तिसतैं अनंतर विधिपूर्वक सर्व कर्मोंका संन्यास करिकै श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ गुरुके समीप जाणा । तिसतैं अनंतर तिस ब्रह्म-वेत्ता गुरुके मुखतैं वेदान्तवाक्योंका श्रवण करणा । तिसतैं अनंतर तिसतिस वाक्यके विचारकरिकै तिसतिस भ्रमकी निवृत्ति करणी। इत्यादिक साधनोंके करणेविषे तिन देहाभिमानी पुरुषोंकूं महान प्रयासकी प्राप्ति प्रत्यक्षही सिद्ध है । इसी अभिप्रायकरिकै श्रीभगवान्नें (क्लेशोधिकतरस्तेषाम्) यह वचन कथन कऱ्या है। यद्यपि सगुणब्रह्मके जानणेहारे पुरुषोंकूं तथा निर्गुणब्रह्मके जानणेहारे पुरुषोंकूं एकही मोक्षरूप फलकी प्राप्ति होवै है. यातैं निर्गुणब्रह्मवेत्ता पुरुषोंतैं सगुणब्रह्मवेत्ता पुरुषविषे श्रेष्ठता कहणी संभवती नहीं, तथापि एकही फलकूं जे पुरुष दुष्कर उपायकरिकै प्राप्त होवैं हैं तिन पुरुषोंकी अपेक्षाकरिकै तिस फलकूं जे पुरुष सुगमउपायकरिकै प्राप्त होवैं हैं वे पुरुष श्रेष्ठ कहे जावैं है यह भगवान्का अभिप्राय है । यद्यपि पूर्व नवम अध्यायके द्वितीयश्लोकविषे (सुसुखं कर्तुमव्ययम्) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नें अधिकारी पुरुषोंकूं सुखेनही ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति कथन करीथी । और इहां (अव्यक्ता हि गतिर्दुःखम्) इस वचनकरिकै बहुत दुःखकरिकै ता निर्गुणब्रह्मकी प्राप्ति कथन करी है। यातैं तिस पूर्व उत्तर वचनका परस्पर विरोध प्रतीत होवै है तथापि श्रीभगवान्का यह अभिप्राय है–विवेकादिकसर्व साधनोंकरिकै संपन्न जे निष्काम अधिकारी जन हैं तिन अधिकारी जनोंकूं तौ सुखेनही निर्गुणब्रह्मकी प्राप्ति होवै है । और जिन पुरुषोंका देहादिकोंविषे अहंमम अभिमान है ऐसे सकामपुरुषोंकूं बहुत दुःखकरिकैही सा निर्गुणब्रह्मकी प्राप्ति होवै है। इस अभिप्रायकरिकैही श्रीभगवान्नें इहां (देहवद्भिः) इस वचनकरिकै देहाभिमानी पुरुषही कथन करे हैं । ऐसे देहाभिमानी पुरुषोंकूं सगुणब्रह्मका चिंतनही सुगम है । यातैं पूर्वउत्तरवचनोंका विरोध होवै नहीं ॥ ५ ॥

हे भगवन् ! सगुणब्रह्मवेत्ता पुरुषोंकूं तथा निर्गुणब्रह्मवेत्ता पुरुषोंकूं जो कदाचित् एकही फलकी प्राप्ति होती होवै तौ क्लेशकी अल्पताकरिकै सगुणब्रह्मवेत्ता पुरुषोंविषे तौ उत्कृष्टता होवै और क्लेशकी अधिकताकरिकै निर्गुणब्रह्मवेत्ता पुरुषोंविषे निकृष्टता होवै परंतु तिन दोनोंकूं एक फलकी प्राप्ति होती नहीं किंतु तिन दोनोंकूं भिन्नभिन्न फलकी ही प्राप्ति होवै है । तहां निर्गुणब्रह्मवेत्ता पुरुषोंकूं तौ अविद्याकी तथा ताके कार्यप्रपंचकी निवृत्तिपूर्वक निर्विशेष परमानंद ब्रह्मरूपताकी प्राप्तिरूप फल प्राप्त होवै है । और सगुणब्रह्मवेत्ता पुरुषोंकूं तौ अधिष्ठानरूप निर्गुण ब्रह्मका साक्षात्कार है नहीं यातैं तिन्होंके अविद्याकी निवृत्ति होवै नहीं किंतु ते सगुणब्रह्मवेत्ता पुरुष हिरण्यगर्भरूप कार्यब्रह्मके लोकविषे जाइकै तहां ऐश्वर्यविशेषरूप फलकूं प्राप्त होवैं हैं यातैं तिन निर्गुणब्रह्मवेत्ता पुरुषोंकूं मोक्षरूप अधिकफलकी प्राप्तिवासतै जो आयासकी अधिकता है सो आयासकी अधिकता तिन निर्गुणब्रह्मवेत्ता पुरुषोंविषे न्यूनताकी प्राप्ति करै नहीं । अल्पफलवासतै आयासकी अधिकताही न्यूनताकी प्राप्ति करै है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं । समाधान—हे अर्जुन ! सगुणब्रह्मकी उपासनाकरिकै निवृत्त होइगए हैं सर्व प्रतिबंध जिन्होंके ऐसे जे सगुणब्रह्मके उपासक हैं तिन उपासक पुरुषोंकूं ता ब्रह्मलोकविषे केवल ऐश्वर्यविशेषकी प्राप्तिरूप फलही प्राप्त होवै नहीं किंतु तिन उपासक पुरुषोंकूं ता ब्रह्मलोकविषे गुरुके उपदेशतैं विनाही तथा श्रवण मनन निदिध्यासनादिकोंकी आवृत्तिरूप क्लेशतैं विनाही ईश्वरकी प्रसन्नता करिकै सहकृत तथा आपेही स्फुरण हुए ऐसे वेदांतवाक्यकरिकै तत्त्वज्ञानकी भी उत्पत्ति होवै है । तिस तत्त्वज्ञानकरिकै कार्यसहित अविद्याके निवृत्तहुए तिस ब्रह्मलोकविषेही ऐश्वर्यभोगके अंतविषे तिन उपासक पुरुषोंकूं निर्गुणब्रह्मविद्याका फलरूप परमकैवल्यमुक्ति प्राप्त होवैहै । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करीहै । तहां श्रुति—(स एतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरीशयं पुरुषमीक्षते ।) अर्थ यह—प्राप्त हुआहै

हिरण्यगर्भका ऐश्वर्य जिसकूं ऐसा सो उपासक पुरुष तिस ब्रह्मलोकके ऐश्वर्यभोगके अंतविषे इन सर्व जीवोंका समष्टिरूप तथा श्रेष्ठ ऐसे हिरण्यगर्भतैं भी पर कहिये विलक्षण तथा श्रेष्ठ तथा हृदयरूप गुहाविषे स्थित तथा सर्वत्र परिपूर्ण ऐसा जो प्रत्यक् अभिन्न अद्वितीय परमात्मादेव है तिस परमात्मा देवकूं साक्षात्कार करैहै अर्थात् ता ब्रह्मलोकविषे गुरुके उपदेशतैं विना आपेही स्फुरणहुआ जो वेदांतवाक्यरूप प्रमाण है ता प्रमाणकरिकै सो उपासक पुरुष ता परब्रह्मकूं साक्षात्कार करै है। ता साक्षात्कार करिकैही सो उपासक पुरुष ता ब्रह्मलोकविषे कैवल्यमुक्तिकूं प्राप्त होवैहै इति। इस प्रकार पूर्वउक्त क्लेशतैं विनाही सगुणब्रह्मवेत्ता पुरुषोंकूं ईश्वरके प्रसादतैं निर्गुणब्रह्मविद्याका मोक्षरूप फल प्राप्त होवै है। इस सर्व अर्थकूं श्रीभगवान् दोश्लोकोंकरिकै कथन करै हैं-

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ॥
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायंत उपासते ॥ ६॥
तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात् ॥
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥७॥

(पदच्छेदः) ये । तु । सर्वाणि । कर्माणि । मयि । संन्यस्य । मत्पराः । अनन्येन । एव । योगेन । माम् । ध्यायंतः । उपासते । तेषाम् । अहम् । समुद्धर्त्ता । मृत्युसंसारसागरात् । भवामि । न । चिरात् । पार्थ । मयि । आवेशितचेतसाम् ॥ ६॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! पुनः जे पुरुष सर्व कर्मोंकूं मैं सगुणब्रह्मविषे अर्पणकरिकै मेरेपरायण हुए तथा अनन्य समाधिरूपयोगकरिकै मैं परमेश्वरकूं ही चिंतनकरतेहुए मेरीउपासना करैहैं तिनें मैं परमेश्वरविषे आवेशितचित्तवाले पुरुषोंका मैं परमेश्वर मृत्युयुक्त संसारसमुद्रतैं शीघ्रही उद्धारकरणेहारा होवूंहूं ॥ ६ । ७ ॥

भा० टी०-इहां (ये तु) या वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तुशब्द पूर्वउक्त अर्जुनकी शंकाके निवृत्ति करणेवास्तेहै। हे अर्जुन !

जे अधिकारी जन मैं सगुण परमेश्वरविषे नित्य नैमित्तिक स्वाभाविक इत्यादिक सर्वकर्मोंकूं अर्पण करिकै मत्पर हुए हैं अर्थात् मैं भगवान् वासुदेवही हूं पर क्या प्रकृष्टप्रीतिका विषय जिन्होंकूं तिन्होंका नाम मत्पर है । अथवा मैं परमेश्वरही हूं पर क्या सर्व कर्मोंकरिकै प्राप्य जिन्होंकूं तिन्होंका नाम मत्पर है । अथवा मैं परमेश्वरही हूं पर क्या ध्यानका विषय जिन्होंकूं तिन्होंका नाम मत्पर है । अथवा मैं विश्वरूप परमात्माही हूं पर क्या आपणेतैं अन्य ज्ञातव्य द्रष्टव्य पदार्थ जिनोंकूं तिनोंका नाम मत्पर है । अर्थात् आपणेतैं अन्यवस्तुविषे सर्वत्र मैं परमेश्वरकूं देखणेहारे पुरुषोंका नाम मत्पर है । ऐसे मत्परहुए जे अधिकारी पुरुष अनन्ययोगकरिकै मैं परमेश्वरकूं चिंतन करैं हैं तहां मैं भगवान् वासुदेवकूं त्यागकै नहीं विद्यमान है अन्य आलंबन जिसविषे ताका नाम अनन्य है । ऐसा अनन्यरूप जो समाधिरूप योग है जिस अनन्यसमाधिरूप योगकूं शास्त्रविषे एकांतभक्तियोग इसनामकरिकै कथन कऱ्याहै । ऐसे अनन्ययोगकरिकै मैं परमेश्वरकूं चिंतन करतेहुए अर्थात् सर्वसौंदर्यके सारका निधानरूप तथा आनंदघनरूप विग्रहवाला तथा दोभुजावोंकरिकै युक्त अथवा च्यारिभुजावों करिकै युक्त तथा सर्वजनोंके मनकूं मोहनकरणेहारी मुरलीकूं अतिमनोहर सप्तस्वरोंकरिकै बजावणेहारा तथा शंख, चक्र, गदा, पद्म इन च्यारोंकूं हस्तोंविषे धारण करणेहारा ऐसा जो मैं भगवान् वासुदेव हूं तिस मैं भगवान् वासुदेवकूं चिंतन करतेहुए अथवा नरसिंह, राघव, वामन इत्यादिरूप मैं परमेश्वरकूं चिंतन करतेहुए अथवा पूर्व दिखायेहुए विश्वरूप मैं परमेश्वरकूं चिंतन करतेहुए जे अधिकारी जन मैं परमेश्वरकी उपासना करैं अर्थात् ऐसे मैं परमेश्वरविषयक व्यवधानतैं रहित सजातीयचित्तवृत्तियोंके प्रवाहकूं जे अधिकारी पुरुष करैं हैं। अथवा (उपासते) इस पदका यह दूसरा अर्थ करणा—जे अधिकारी जन मैं परमेश्वरके समीपवर्तिपणेकरिकै स्थित होवैं हैं ऐसे जे मैं परमेश्वरविषे आवेशितचित्तवाले पुरुष हैं अर्थात् पूर्वउक्त मैं सगुणब्रह्मविषे आवेशित

कऱ्या है क्या एकाग्रताकरिकै प्रवेशित कऱ्याहै चित्त जिनोंने तिनोंका नाम मय्यावेशितचेतस् है ऐसे सगुणब्रह्मके चिंतनपरायण पुरुषोंका मैं भगवन् वासुदेव मृत्युसंसारसागरतैं समुद्धर्ता होवूंहूं । वहां मृत्युकरिकै युक्त जो मिथ्या अज्ञान तथा वा अज्ञानका कार्यभूत यह संसार है सो मृत्युयुक्त संसारही प्रसिद्ध सागरकी न्याई दुस्तर होणेतैं सागररूप है ऐसे मृत्युसंसारसागरतैं मैं परमेश्वर तिन उपासक पुरुषोंका समुद्धर्ता होवूं हू । अर्थात् तिन उपासक पुरुषोंकूं मैं परमेश्वर ज्ञानरूप आश्रयकी प्राप्ति करिकै विनाही आयासतैं तथा थोडेही कालविषे सर्वप्रपंचके बाधका अवधिभूत शुद्धब्रह्मरूप ऊर्ध्वस्थानविषे धारण करणेहारा होवूंहूं । इहां (हे पार्थ) यह जो अर्जुनका संबोधन भगवान्‌नें कह्याहै सो तूं अर्जुन हमारे पिताके भगिनीका पुत्र है तथा हमारा अनन्यभक्त है यातें इस मृत्युयुक्त संसारसागरतैं तैं अर्जुनकाभी मैं परमेश्वर अवश्यकरिकै उद्धार करूंगा तूं भय मतकर । याप्रकारके आश्वासन करणेवासतैं कथन कऱ्या है ॥ ६ ॥ ७ ॥

वहां इतने ग्रंथ करिकै सगुणब्रह्मके उपासनाकी स्तुति कथन करी । अब तिस सगुणब्रह्मकी उपासनाका विधान करैं हैं-

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ॥
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥ ८ ॥

(पदच्छेदः) मंयि । एँव । मंनः । आँधत्स्व । मंयि । बुँद्धिम् । निवेशंय । निवँसिष्यसि । मंयि । एँव । अँतः । ऊंर्ध्वंम् । नँ । संशँयः ॥ ८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तूं आपणे मनकूं मैं सगुणब्रह्मविषेही स्थितकर तथा आपणे बुद्धिकूंभी मैं सगुणब्रह्मविषेही स्थितकर ताकरिकै इस देहपाततैं अनन्तर तूं मैं शुद्धब्रह्मविषे ही अभेदरूपतैं निवास करैगा याकेविषे कोई संशय तुननैं नहीं करणा ॥ ८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! तूं आपणे संकल्पविकल्परूप मनकूं मैं सगुणब्रह्मविषेही स्थित कर अर्थात् ता मनके सर्ववृत्तियोंकूं मैं सगुणपरमेश्वरविषयक कर । मैं परमेश्वरतैं भिन्न दूसरे शब्दादिक विषयोंकूं ता मनके वृत्तियोंका विषय नहीं कर । तथा आपणी निश्चयरूप बुद्धिकूंभी मैं सगुणब्रह्मविषे ही स्थित कर अर्थात् ता बुद्धिकी सर्व वृत्तियां मैं सगुणब्रह्मविषयक ही कर । तात्पर्य यह—दूसरे सर्वविषयोंका परित्याग करिकै तूं सर्वकालविषे मैं सगुणब्रह्मकूंही चिंतन कर । शंका—हे भगवन् ! इसप्रकारतैं आप सगुणब्रह्मके चिंतन करणेतैं हमारेकूं कौन फल प्राप्त होवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता चिंतन करणेका फल कथन करें हैं । (निवसिष्यसि इति) हे अर्जुन ! इस प्रकारतैं जबी तूं निरंतर मैं सगुण ब्रह्मका चिंतन करैगा तबी मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकारके आत्मज्ञानकूं प्राप्त होइकै तूं इस देहके पाततैं अनंतर मैं निर्गुण शुद्धब्रह्मविषेही अभेदरूपकरिकै निवास करैगा । इसप्रकारके सगुणब्रह्मकी उपासनाके मोक्षरूप फलविषे तुमने किंचित्मात्रभी संशय नहीं करणा अर्थात् ता सगुणब्रह्मके उपासककूं तिस मोक्षरूप फलकी प्राप्तिविषे तुमनैं किंचित्मात्रभी प्रतिबंधककी शंका नहीं करणी । इहां यद्यपि (एव अत ऊर्ध्वम्) इस वचनविषे (एवात ऊर्ध्वम्) इसप्रकारकी संधि करणी चाहितीथी तथापि श्रीभगवान्‌ने जो इहां संधि नहीं करी सो श्लोकके पूर्णवासतैं नहीं करी ॥ ८ ॥ तहां पूर्वश्लोकविषे सगुणब्रह्मके ध्यानका प्रकार कथन कऱ्या अब तिस सगुणब्रह्मके ध्यान करणेविषेभी अशक्त जे अधिकारी जन हैं तिन अधिकारीजनोंनें ता अशक्तिकी तारतम्यताकरिकै प्रथम तौ प्रतिमादिक बाह्य वस्तुवोंविषे भगवान्‌के ध्यानका अभ्यास करणा अर्थात् तिन प्रतिमादिकोंविषे भगवद्बुद्धि करणी और तिन प्रतिमादिकोंके ध्यान करणेविषेभी जे पुरुष अशक्त हैं तिन अधिकारी जनोंनें तौ श्रवणकीर्त्तनादिरूप भागवतधर्मोंका अनुष्ठान करणा और तिन भागवत धर्मोंके अनुष्ठान करणेविषेभी जे पुरुष अशक्त हैं तिन अधिकारी जनोंनें तौ

सर्व कर्मोंके फलका परित्याग करणा अर्थात् फलकी इच्छातैं रहित होइकै कर्मोंकूं करणा । इसप्रकारके तीन साधनोंकूं तीन श्लोकोंकरिकै श्रीभगवान् कथन करै हैं-

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ॥
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) अथ । चित्तम् । समाधातुम् । न । शक्नोषि । मयि । स्थिरम् । अभ्यासयोगेन । ततः । माम् । इच्छ । आप्तुम् । धनंजय ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे धनंजय ! जबी तूं मैं सगुणब्रह्मविषे आपणे चित्तकूं स्थिर स्थापनकरणेकूं नहीं समर्थ होवै तबी अभ्यासयोगकरिकै मैं परमेश्वरकूं प्राप्तहोणे अर्थ इच्छा कर ॥ ९ ॥

भा० टी०-इहां श्लोकके आदिविषे स्थित जो अथ यह शब्द है सो अथ शब्द पूर्वयुक्त पक्षकी अपेक्षाकरिकै दूसरे पक्षके आरंभका बोधक है । हे धनंजय ! जबी तूं मैं सगुणब्रह्मविषे जैसे चित्त स्थिर होवै तैसे आपणे चित्तकूं स्थापनकरणेविषे अशक्त होवै तबी तूं अभ्यासयोगकरिकै मैं परमेश्वरकूं प्राप्त होणेवासतै इच्छा कर अर्थात् प्रयत्न कर । वहां सुवर्णादिक धातुमय अथवा पाषाणमय जे विष्णुशिवादिकोंकी प्रतिमा हैं तिन बाह्य प्रतिमादिक आलंबनविषे सर्वओरतैं निवृत्त करेहुए चित्तका जो पुनः पुनः स्थापन है ताका नाम अभ्यास है । तिस अभ्यासपूर्वक जो समाधिरूप योग है ताका नाम अभ्यासयोग है ऐसे अभ्यासयोगकरिकै मैं परमेश्वरकूं प्राप्त होणेवासतै तूं प्रयत्न कर । इहां श्रीभगवान्नै (हे धनंजय) इस संबोधनके कहणेकरिकै यह अर्थ सूचन कऱ्या । युधिष्ठिर राजाके राजसूय यज्ञवासतै बहुत शत्रुवोंकूं जीतकरिकै तूं धनकूं ले आवता भया है । यातैं तुम्हारा धनंजय यह नाम होताभया है ऐसा धनंजयनामवाला तूं अर्जुन एक मनरूप शत्रुकूं जीतिकै

तत्त्वज्ञानरूप धनकूं हरण करैगा यह वार्त्ता तुम्हारेविषे कोई आश्चर्यरूप नहीं है ॥ ९ ॥

अभ्यासेप्यसमर्थोसि मत्कर्मपरमो भव ॥
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) अभ्यासे । अपि । असमर्थः । असि । मत्कर्मपरमः । भव । मदर्थम् । अपि । कर्माणि । कुर्वन् । सिद्धिम् । अवाप्स्यसि ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पूर्वउक्त अभ्यासविषे भी जबी तूं असमर्थ होवैं तबी तूं भागवतकर्मपरायण होउ मैं परमेश्वरअर्थ कर्मोंकूं भी करताहुआ तूं ब्रह्मभावकूं प्राप्त होवैगा ॥ १० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पूर्व श्लोकविषे कथन कन्या जो अभ्यास है ता अभ्यासके करणेविषे भी जबी तूं असमर्थ होवैं तबी तूं मत्कर्मपरम होउ । तहां मैं परमेश्वरकी प्रसन्नताअर्थ जे कर्म हैं तिन कर्मोंका नाम मत्कर्म है ते भगवत्की प्रसन्नता वास्ते भजनरूप कर्म शास्त्रविषे नव प्रकारके कहेहैं । तहां श्लोक (श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥) अर्थ यह—सर्वत्र व्यापक विष्णुभगवान्‌के रामकृष्णादिक नामोंकूं श्रवण करणा १ । तथा ता विष्णुके नामोंकूं आपणे मुखकरिकै कथन करणा २ । तथा आपणे मनकरिकै ता विष्णुका सर्वदा स्मरण करणा ३ । तथा ता विष्णुके पादोंका सेवन करणा ४ । तथा चंदन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप इत्यादिकपदार्थोंकरिकै ता विष्णुका अर्चन करणा ५ । तथा शरीर,मन, वाणीकरिकै ता विष्णुके ताईं नमस्काररूप वंदन करणा ६ । तथा ता विष्णुका दासभाव करणा ७ । तथा ता विष्णुका सखाभाव करणा ८ । तथा ता विष्णुके ताईं आपणे शरीररूप आत्माका अर्पण करणा ९ । इहां यद्यपि सर्वत्र व्यापक विष्णुके साक्षात् पादोंका सेवन तथा अर्चन संभवता

नहीं तथापि (द्वे रूपे वासुदेवस्य चलं चाचलमेव च । चलं संन्यासिनो रूपमचलं प्रतिमादिकम् ॥) इस शास्त्रके वचनविषे विष्णुके दो रूप कथन करे हैं। तहां संन्यासी वो तिस विष्णुका चलरूप है और सुवर्णादिक धातुमय तथा पाषाणमय प्रतिमादिक ता विष्णुका अचलरूप है। ता संन्यासीके अथवा विष्णुकी प्रतिमाके पादोंका सेवन तथा अर्चन संभवै है इति। इसी श्रवणादिक नवप्रकारके भजनकूं शास्त्रविषे भागवत धर्म कहे है। ऐसे भागवतधर्मनामा मत्कर्मोंके करणेविषे तूं तत्पर होउ। इसप्रकार मैं परमेश्वरकी प्रसन्नतावासतै तिन श्रवणकीर्तनादिक भागवतकर्मोंकूं भी करताहुआ तूं अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा तथा आत्मज्ञानकी प्राप्तिद्वारा निर्गुणब्रह्मभावकी प्राप्तिरूप सिद्धिकूं प्राप्त होवैगा ॥ १० ॥

अथैतदप्यशक्तोसि कर्त्तुं मद्योगमाश्रितः ॥
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) अथ। एतत्। अपि। अशक्तः। असि। कर्त्तुम्। मद्योगम्। आश्रितः। सर्वकर्मफलत्यागम्। ततः। कुरु। यतात्मवान् ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जबी तूं इस पूर्वउक्त भागवतकर्मके भी करणेकूं अशक्त होवै तबी मैं परमेश्वरके योगकूं आश्रयणकरताहुआ तथा यतात्मवान् हुआ तूं सर्वकर्मोंके फलके त्यागकूं कर ॥ ११ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! बाह्यविषयोंविषे प्रीतिमान् ऐसा जो चित्त है ऐसे बहिर्मुखचित्तवाला होणेतै जबी तूं पूर्वश्लोकउक्त श्रवणकीर्त्तनादिक भागवतधर्मोंकूंभी संपादन करणेविषे असमर्थ होवै तबी तूं मद्योगकूं आश्रित हुआ अर्थात् एक मैं परमेश्वरके शरणताकूं आश्रयण करताहुआ अथवा मैं परमेश्वरविषे जो सर्वकर्मोंका अर्पण है ताका नाम मद्योग है ऐसे मद्योगकूं आश्रयण करता हुआ तथा यतात्मवान् हुआ इहां शब्दादिक सर्वविष-

याँतै निवृत्त करे है श्रोत्रादिक सर्व इंद्रिय जिसनैं ताका नाम यत है । और विवेकीका नाम आत्मवान् है । यत होवै सोईही आत्मवान् होवै ताका नाम यतात्मवान् है अर्थात् श्रोत्रादिक सर्व इंद्रियोंके निरोधवाले विवेकी पुरुषका नाम यतात्मवान् है । ऐसा यतात्मवान् हुआ तूं अर्जुन उक्तपूर्व श्रौतस्मार्तरूप सर्वकर्मोंके फलके त्यागकूं कर अर्थात् तिन कर्मोंके फलकी इच्छाका तूं परित्याग कर ॥ ११ ॥

तहां पूर्व सगुणब्रह्मकी उपासना, अभ्यासयोग, भागवतधर्म, कर्मके फलका त्याग यह च्यारि साधन अधिकारीके भेदतैं विधान करे तिन च्यारिसाधनोंके मध्यविषे अंतमें विधान कऱ्या जो कर्मोंके फलका त्यागरूप साधन है तिस त्यागरूप साधनविषेही पूर्वउक्त साधनोंके विधानका परिअवसान है । या कारणतैं तिन कर्मोंके फलका त्यागरूप साधनविषे अधिकारी जनोंकी प्रवृत्ति करणेवासतै श्रीभगवान् इस सर्वकर्मोंके फलका त्यागरूप साधनकी स्तुति कथन करैं हैं–

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ॥
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छांतिरनंतरम् ॥ १२ ॥

(पदच्छेदः) श्रेयः । हि । ज्ञानम् । अभ्यासात् । ज्ञानात् । ध्यानम् । विशिष्यते । ध्यानात् । कर्मफलत्यागः । त्यागात् । शांतिः । अनन्तरम् ॥ १२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अभ्यासतैं ज्ञान ही श्रेष्ठ है ता ज्ञानतैं ध्यान श्रेष्ठ है ता ध्यानतैं कर्मोंके फलका त्याग श्रेष्ठ है जिस त्यागतैं अनन्तर मोक्षरूप शांति होवै है ॥ १२ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! ज्ञानकी प्राप्तिवासतै कऱ्या जो श्रवणका अभ्यास है तिस अभ्यासतैं ज्ञानही श्रेष्ठ है अर्थात् श्रवणकरिकै तथा मनन करिकै उत्पन्न भया जो आत्मविषयक निश्चयरूप ज्ञान है जिस ज्ञानकूं श्रवणज्ञान तथा मननज्ञान कहै है । तथा जो ज्ञान प्रमाणगत असंभाव-

नाका तथा प्रमेयगत असंभावनाका निवर्त्तक है ऐसा ज्ञान तिस अभ्यासतैं श्रेष्ठ है। और तिस श्रवणमननजन्य ज्ञानतैं निदिध्यासनरूप ध्यान अत्यंत श्रेष्ठ है। काहेतैं सो निदिध्यासनरूप ध्यान व्यवधानतैं रहित हुआही आत्मसाक्षात्कारका हेतु है। और सो श्रवणज्ञान तथा मननज्ञान ता निदिध्यासनद्वारा आत्मसाक्षात्कारका हेतु है। व्यवधानतैं रहित हुआ सो ज्ञान आत्मसाक्षात्कारका हेतुहै नहीं। यातैं तिस ज्ञानतैं निदिध्यासनरूप ध्यानकी श्रेष्ठता युक्त है। इस प्रकारतैं सो निदिध्यासनरूप ध्यान यद्यपि सर्व साधनोंतैं श्रेष्ठ है तथापि अज्ञानी पुरुषनैं कऱ्या जो सर्वकर्मोंके फलका त्याग है सो कर्मोंके फलका त्याग तिस अज्ञानी पुरुषकूं ता ध्यानतैंभी श्रेष्ठ है। इस अभिप्रायकरिकै श्रीभगवान् तिस कर्मफलके त्यागकी स्तुति करै है (ध्यानात्कर्मफलत्याग इति) हे अर्जुन ! अज्ञानी पुरुषनै कऱ्या जो कर्मोंके फलका त्याग है सो कर्मोंके फलका त्याग तिस अज्ञानी पुरुषकूं तिस निदिध्यासनरूप ध्यानतैंभी श्रेष्ठ है। काहेतैं निगृहीतचित्तवाले पुरुषनैं कऱ्या जो सर्वकर्मोंके फलका त्यागहै तिस त्यागतैं इस अधिकारी पुरुषकूं अज्ञानसहित सर्वसंसारका उपशमरूप शांति व्यवधानतैं विनाही प्राप्त होवै है। सा शांति कालांतरकी अपेक्षा करै नहीं। यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करीहै। तहा श्रुति-(यदा सर्वे प्रमुच्यंते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्मश्नुते ॥) अर्थ यह-इस जीवके हृदयविषे स्थित जे काम हैं ते सर्वकाम जिस कालविषे निवृत्त होवै हैं तिसीकालविषेही यह जीव अमृत होवै है तथा इसी देहविषे ब्रह्मभावकूं प्राप्त होवैहै इति। इत्यादिक श्रुतिवचनोंतैं सर्वकर्मोंके त्यागविषे मोक्षका साधनपणा जान्या जावै है। और इस गीताशास्त्रविषेभी स्थितप्रज्ञ पुरुषके लक्षणोंविषे (प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं आपही सर्वकर्मोंके त्याग विषे मोक्षका साधनपणा कथन कऱ्याहै। यद्यपि श्रुतिविषे तथा स्थितप्रज्ञके लक्षणोंविषे सर्वकर्मोंके त्यागकूं ही मोक्षका साधनपणा कथन कऱ्या है। कर्मोंके फलके त्यागकूं मोक्षका

साधनपणा कह्या नहीं तथापि ते कर्मके फलभी कामरूपही है । यातें तिन कर्मोंके फलोंका जो त्याग है सो त्यागभी कामका त्यागही है । वा कामत्यागस्वरूप सामान्यधर्मकूं लेके श्रीभगवान्नें ता कर्मफलके त्यागकी कामत्यागके फलकरिकै स्तुति करी है । जैसे पूर्व अगस्त्य ब्राह्मण समुद्रकूं पान करताभयाहै तथा परशुराम ब्राह्मण इस पृथिवीकूं क्षत्रियराजावोंवें रहित करता भयाहै सो ब्राह्मणपणा इदानींकालके ब्राह्मणोंविषेभी है । यातें वा ब्राह्मणत्व सामान्यधर्मकूं लेके इदानींकालके ब्राह्मणभी अपरिमित पराक्रमवत्ताकरिकै स्तुति करे जावैं हैं । तैसे सो कर्मके फलका त्यागभी कामत्यागके फलकरिकै स्तुति कऱ्या जावै है इति । और किसी टीकाविषे तौ (श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासात्) इस श्लोकका यह अर्थ कऱ्याहै—निदिध्यासनरूप अभ्यासतें श्रवणमननजन्य परोक्षज्ञान श्रेष्ठ है । और तिस परोक्षज्ञानतें विष्णुके नामोंका श्रवणकीर्तनरूप ध्यान श्रेष्ठ है । और तिस ध्यानतें कर्मोंके फलका त्याग श्रेष्ठ है । कैसा है सो कर्मोंके फलका त्याग जिस त्यागतें उत्तरव्यवधानतें विनाही चित्तशुद्धि आदिकोंकी उत्पत्तिद्वारा मोक्षरूप शांति प्राप्त होवै है । इहां यद्यपि निदिध्यासनरूप अभ्यासकी अपेक्षाकरिकै सो परोक्षज्ञान बाह्यसाधन है । और वा परोक्षज्ञानकी अपेक्षाकरिकै सो श्रवणकीर्तनादिरूप ध्यान बाह्यसाधन है और ता ध्यानकी अपेक्षाकरिकै सो कर्मोंके फलका त्याग बाह्यसाधनहै । यातें अंतरसाधनकी अपेक्षाकरिकै बाह्यसाधनविषे श्रेष्ठता कहणी असंगत है तथापि अंतरसाधनकी अपेक्षाकरिकै बाह्यसाधन करणेकूं सुगम होवैहै । और सोपानक्रमकरिकै बाह्यसाधनकी प्राप्तिपूर्वक ही अंतरसाधनकी प्राप्ति होवै है यातें श्रीभगवान्नें तिन बाह्यसाधनोंविषे अधिकारी जनोंकी प्रवृत्ति करावणेवास्तै पूर्वपूर्व साधनकी अपेक्षाकरिकै तिसतिस बाह्यसाधनविषे श्रेष्ठता कथन करीहै ॥ १२ ॥

तहां पूर्व मंद अधिकारीके प्रति अतिदुष्कर होणेतें निर्गुण अक्षरब्रह्मके उपासनाकी निंदा करिकै अतिसुगम सगुणब्रह्मकी उपासना विधान करी ।

ता सगुणब्रह्मकी उपासनाके करणेविषेभी जे पुरुष असमर्थ है तिन पुरुषोंके अशक्तिकी तारतम्यताके अनुसार दूसरेभी अभ्यासादिक तीन साधन श्रीभगवान्नैं विधान करे। ता सगुणब्रह्मकी उपासनाके विधान करणेविषे तथा अभ्यासिक तीन साधनोंके कहणेविषे श्रीभगवान्का यह अभिप्राय है। यह अधिकारी जन किसी भी प्रकारकरिकै सर्वप्रतिबंधकोंतै रहितहोइकै तथा उत्तम अधिकारी होइकै सर्वसाधनोंका फलरूप निर्गुणब्रह्मविद्याविषे प्रवेश करै इति। काहेतैं साधनोंका जो विधान होवै है सो फलकी प्राप्तिवासतै ही होवैहै। फलतैं विना साधनोंका विधान होवै नहीं। यातैं इहां श्रीभगवान्नै जो सगुणब्रह्मकी उपासना तथा अभ्यासादिक तीन साधन विधान करे हैं ते सर्व साधन निर्गुणब्रह्मविद्यारूप फलकी प्राप्तिवासतैही विधान करे है। यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथन करीहै। तहां श्लोक-(निर्विशेषं परं ब्रह्म साक्षात्कर्त्तुमनीश्वराः। ये मंदास्तेऽनुकंप्यन्ते सविशेषनिरूपणैः ॥ १ ॥ वशीकृते मनस्येषां सगुणब्रह्मशीलनात्। तदेवाविर्भवेत्साक्षादपेतोपाधिकल्पनम् ॥ २ ॥) अर्थ यह-जे मंद अधिकारी जन निर्विशेषपरब्रह्मके साक्षात्कार करणेकूं समर्थ नहीं होवैंहैं ते मंद अधिकारी जन सगुणब्रह्मके निरूपणकरिकै अनुग्रहके विषय करीते हैं अर्थात् श्रुतिभगवतीनैं तथा ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंनैं तिन मंदअधिकारी पुरुषोंके ऊपरि अनुग्रह करिकै सगुणब्रह्मका निरूपण करीताहै ॥ १ ॥ तिस सगुणब्रह्मके ध्यानतैं जबी तिन मंदअधिकारी पुरुषोंका मन वश होवैहै तबी तिन अधिकारीजनोंकूं सर्वउपाधियोंकी कल्पनातैं रहित तिस निर्गुणब्रह्मका सक्षात्कार होवैहै इति ॥ २ ॥ यह वार्त्ता पतंजलिभगवान्नैंभी योगसूत्रोंविषे कथन करीहै। तहां सूत्र-(समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्। ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोप्यंतरायाभावश्च।) अर्थ यह-इस अधिकारी जनकूं ईश्वरके चिंतनरूप ईश्वरप्रणिधानतैं समाधिकी प्राप्ति होवैहै। तिस ईश्वरके प्रणिधानतैंही इस अधिकारी पुरुषकूं प्रत्यक्चेतनका साक्षात्कार होवैहै। तथा विघ्नरूप अंतरायोंका अभाव होवैहै इति यातैं

पूर्व (क्लेशोधिकतरस्तेषाम्) इत्यादिक वचनोंकरिकै जो निर्गुणब्रह्मके उपासनाकी निंदा करीथी । सो निंदा सगुणब्रह्मकी उपासनाके स्तुतिवासतै करीथी । कोई निर्गुणब्रह्मकी उपासनाके निषेधकरणे वासतै सा निंदा नहीं करीथी । जैसे उदितहोमके विधानविषे जो अनुदित होमकी निंदा करी है सा निंद्रा तिस उदितहोमकी स्तुतिवासतही करी है । कोई अनुदितहोमके निषेध करणेवासतै सा निंदा नहीं करीहै तहां सूर्यके उदय हुए जो होम कऱ्या जावैहै ताकूं उदितहोम कहैंहैं । और सूर्यके उदयहुएतैं प्रथम जो होम कऱ्या जावैहै ताकूं अनुदित होम कहैं हैं । तैसे सगुणउपासनाके विधानविषे जो निर्गुणउपासनाकी निंदा करी है सा निंदाभी तिस सगुणउपासनाकी स्तुतिवासतै है कोई निर्गुणउपासनाके निषेधवासतै सा निंदा नहींहै । काहेतै शास्त्रकारोंनें यह न्याय कह्या है—(नहि निंदा निंद्यं निंदितुं प्रवर्त्ततेऽपि तु विधेयं स्तोतुम् ।) अर्थ यह—शास्त्रविषे जो निंदावचन होवैं हैं ते निंदावचन तिस निंद्यवस्तुके निंदन करणेवासतै प्रवृत्त नहीं होवैं हैं किंतु. प्रसंगविषे प्राप्त विधेय अर्थके स्तुति करणेवासतै ते निंदावचन प्रवृत्त होवैं हैं इति । यातैं निर्गुण अक्षरब्रह्मके उपासक ही वास्तवतैं योगवित्तम हैं । ऐसे निर्गुणब्रह्मवेत्ता पुरुषही श्रीभगवान्नें (प्रियो हि ज्ञानिनोत्यर्थमहं स च मम प्रियः । उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ॥) इत्यादिक वचनोंकरिकै पुनः पुनः श्रेष्ठतारूपकरिकै कथन करें हैं । हे अर्जुन ! तुमनैंभी अधिकारकूं संपादन करिकै तिन निर्गुणब्रह्मवेत्ता पुरुषोंका ही ज्ञान तथा सर्वधर्म अनुसरण करणेयोग्य है । इसप्रकारतैं अर्जुनके प्रति बोध करणेकी इच्छा करताहुआ तथा ता अर्जुनके परम हितकी इच्छा करताहुआ श्रीकृष्णभगवान् सप्तश्लोकोंकरिकै तिन अभेददर्शनवाले तथा कृतकृत्यभावकूं प्राप्त हुए निर्गुणब्रह्मके उपासकोंकी स्तुति करैं हैं—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ॥
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) अद्वेष्टा । सर्वभूतानाम् । मैत्रः । करुणः । एव । च । निर्ममः । निरहंकारः । समदुःखसुखः । क्षमी ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष सर्वभूतोंका अद्वेष्टा है तथा मैत्रीवाला ही है तथा करुणावाला है तथा निर्मम है तथा निरहंकार है तथा सम हैं दुःखसुख जिसकूं तथा क्षमावाला है ॥ १३ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! सो निर्गुणके ब्रह्मवेत्ता पुरुष स्थावरजंगमरूप सर्व भूतोंकूं आपणा आत्मारूपकरिकै देखै है । यातैं जो पदार्थ आपणे दुःखकाभी हेतु है तिस पदार्थविषेभी तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकी प्रतिकूलबुद्धि होवै नहीं और जिस वस्तुविषे यह वस्तु हमारे दुःखका साधन है याप्रकारकी प्रतिकूलबुद्धि होवै है तिस वस्तुविषेही द्वेष होवै है ता प्रतिकूलबुद्धितैं विना द्वेष होवै नहीं । ता प्रतिकूलबुद्धिके अभाव हुए सो तत्त्ववेत्ता पुरुष तिन सर्वभूतोंका द्वेष करता होवै नहीं किंतु सो तत्त्ववेत्ता पुरुष तिन सर्वभूतोंविषे मैत्रीवालाही होवै है अर्थात् तिन सर्वभूतोंविषे स्नेहवाला ही होवै है । अब ता मैत्रीभावविषे हेतु कहै हैं । (करुणः इति) हे अर्जुन ! जिसकारणतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष करुणावाला है इसकारणतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष तिन सर्वभूतोंविषे मैत्रीवाला है तहां दुःखीप्राणियोंविषे जो दया करणी है वाका नाम करुणा है ऐसी करुणावाले पुरुषका नाम करुण है अर्थात् सो तत्त्ववेत्ता पुरुष सर्वभूतोंके ताईं अभयदान देणेहारा परमहंस संन्यासी है । तथा सो तत्त्ववेत्ता पुरुष निर्मम है अर्थात् आपणे देहविषेभी यह देह हमारा है याप्रकारकी ममताबुद्धितैं रहित है । तथा सो पुरुष निरहंकार है । अर्थात् जैसे अज्ञानी पुरुष श्रेष्ठ आचारकरिकै तथा वेदविद्यादिकोंकरिकै अहंकारकूं प्राप्त होवै है तैसे सो तत्त्ववेत्ता पुरुष तिन श्रेष्ठ

आचार विद्यादिकोंकरिकै अहंकारकूं प्राप्त होता नहीं। तथा द्वेष राग इन दोनोंतैं रहित होणेतैं सम हैं दुःख सुख दोनों जिसकूं इसीकारणतैंही सो तत्त्ववेत्ता पुरुष क्षमावाला है अर्थात् ताडनादिकोंकरिकैभी विक्रियाकूं प्राप्त होता नहीं ॥ १३ ॥

अब पूर्वश्लोकविषे कथन करैहुए निर्गुणब्रह्मवेत्ता पुरुषके अन्यभी विशेषणोंकूं कथन करैं हैं—

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ॥
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१४॥

(पदच्छेदः) संतुष्टः। सततम्। योगी। यतात्मा। दृढनिश्चयः। मयि। अर्पितमनोबुद्धिः। यः। मद्भक्तः। सः। मे। प्रियः ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! जो पुरुष सर्वदा संतुष्ट है तथा समाहितचित्तवाला है तथा वशकऱ्या है संघात जिसनैं तथा दृढ है निश्चय जिसका तथा मैं परमेश्वरविषे अर्पण करे हैं मन बुद्धि जिसनैं ऐसा जो मेरा भक्त है सो भक्त मैं परमेश्वरकूं प्रिय है ॥ १४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन! जो पुरुष सर्वकालविषे संतुष्ट है अर्थात् शरीरकी स्थितिके कारणरूप जे अन्नवस्त्रादिक पदार्थ हैं तिन अन्नादिक पदार्थोंकी प्राप्तिविषे अथवा अप्राप्तिविषे जो पुरुष संतोषवाला है। इहां (सततम्) इसपदका सर्वविशेषणोंके साथि संबंध करणा। तथा जो पुरुष सर्वदा योगी है अर्थात् सर्वकालविषे जो पुरुष समाहितचित्तवाला है। तथा जो पुरुष यतात्मा है अर्थात् आपणे वश कऱ्या है शरीरइंद्रियादिरूप संघात जिसनैं। तथा जो पुरुष दृढनिश्चय है। तहां दृढ है क्या कुतार्किकपुरुषोंनैं अभिभवकरणेकूं अशक्य होणेतैं स्थिर है निश्चय क्या अकर्त्ता अभोक्ता सच्चिदानंद अद्वितीय ब्रह्म मैं हूं याप्रकारका ज्ञान जिसका ताका नाम दृढनिश्चय है अर्थात् स्थितप्रज्ञपु-

रुपका नाम दृढनिश्चय है। तथा मैं निर्गुण शुद्ध ब्रह्मविषे समर्पण कर्या है संकल्पविकल्पात्मक मन तथा निश्चयात्मक बुद्धि जिसनैं इसप्रकारका जो हमारा भक्त है अर्थात् सर्व उपाधितैं रहित शुद्ध अक्षरब्रह्मकूं आपणा आत्मारूपकरिकै जानणेहारा जो तत्त्ववेत्ता पुरुष है सो ब्रह्मवेत्ता पुरुष मैं परमेश्वरकूं आपणा आत्मारूप होणेतै अत्यंत प्रिय है। याप्रकारका अर्थ अगले श्लोकोंविषेभी जानिलेणा ॥ १४ ॥

अब पुनः भी तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषके विशेषणोंकूं निरूपण करैहै—

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ॥
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ १५ ॥

(पदच्छेदः) यस्मात् । न । उद्विजते । लोकः । लोकात् । न । उद्विजते । च । यः । हर्षामर्षभयोद्वेगैः । मुक्तः । यः । सः । च । मे । प्रियः ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिसपुरुषतै यहलोक नहीं संतापकूं प्राप्त होवै है तथा जो पुरुष तिसलोकतै नहीं संतापकूं प्राप्त होवै है तथा जो पुरुष हर्षअमर्षभयउद्वेग इन च्यारोंनैं परित्याग कर्याहै सो तत्त्ववेत्तापुरुष मैं परमेश्वरकूं अत्यंत प्रिय है ॥ १५ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! सर्वप्राणियोंकूं अभयकी प्राप्ति करणेहारे जिस परमहंस संन्यासीतैं कोईभी प्राणी संतापकूं प्राप्त होवै नहीं अर्थात् जो तत्त्ववेत्ता पुरुष किसीभी प्राणीकूं शरीर मन वाणीकरिकै पीडाकी प्राप्ति करता नहीं तथा विनाही अपराधतैं संतापकी प्राप्ति करणेहारे जे दुष्ट प्राणी है ऐसे दुष्टप्राणीरूप लोकतै जो पुरुष संतापकूं प्राप्त होता नहीं जिसकारणतै सो तत्त्ववेत्ता पुरुष सर्वत्र अद्वैत आत्मदर्शी है तथा परम-कारुणिक होणेतैं क्षमास्वभाववाला है । तथा जो पुरुष हर्ष अमर्ष भय उद्वेग इन च्यारोंनैं परित्याग कर्याहै । तहां इष्टवस्तुके लाभ हुए जो रोमांच अश्रुपातादिकोंका हेतुरूप तथा आनंदका अभिव्यंजक चित्तकी वृत्तिविशेष है ताका नाम हर्ष है। और दूसरेकी उत्कृष्टताका असंहनरूप

जा चित्तकी वृत्तिविशेष है ताका नाम अमर्ष है । और व्याघ्र चौर शत्रु इत्यादिक अनिष्ट वस्तुवोंके दर्शनजन्य जा त्रासरूप चित्तकी वृत्ति-विशेष है ताका नाम भय है । और जनोंतैं रहित एकांतस्थानविषे सर्व परिग्रहतैं शून्य एकाकी स्थित हुआ मैं कैसे जीवूंगा इसप्रकारकी व्याकुलतारूप जा चित्तकी वृत्तिविशेष है ताका नाम उद्वेग है । ऐसे हर्ष, अमर्ष, भय, उद्वेग इन च्यारोंनैं जो पुरुष परित्याग कऱ्या है अर्थात् सो ब्रह्मवेत्ता पुरुष अद्वैतदर्शी होणेतैं तिन हर्षादिकोंके योग्य है नहीं । यातैं तिन हर्षादिकोंनैं आपेही सो तत्त्ववेत्तापुरुष परित्याग करदिया है कोई सो तत्त्ववेत्ता पुरुष तिन हर्षादिकोंके त्यागवास्तै आप व्यापारवाला हुआ नहीं यह वार्ता स्मृतिविषेभी कथन करीहै । तहां श्लोक—(यथा पर्वतमादीप्तं नाश्रयंति मृगद्विजाः । तद्वद्ब्रह्मविदो दोषा नाश्रयंते कदाचन॥ १ ॥ मंत्रौषधबलैर्यद्वज्जीर्यते भक्षितं विषम् । तद्वत्सर्वाणि कर्माणि जीर्यंते ज्ञानिनः क्षणात् ॥ २ ॥) अर्थ यह—जैसे अग्निकरिकै दग्धहुए पर्वतकूं मृगादिक पशु तथा पक्षी आश्रयण करते नहीं तैसे ब्रह्मवेत्ता पुरुषकूं रागद्वेषादिक दोष आश्रयण करते नहीं ॥ १ ॥ और जैसे भक्षण कऱ्या हुआ विष मंत्र औषधिके बलकरिकै जीर्णभावकूं प्राप्त होइजावैहै तैसे ज्ञानवान् पुरुषके पुण्यपापरूप सर्वकर्म एकक्षणमात्रविषे नाशकूं प्राप्त होवैंहै ॥ २॥ इस प्रकारके गुणोंवाला जो मैं परमेश्वरका भक्त है सो ब्रह्मवेत्ता भक्त मैं परमेश्वरकूं आपणा आत्मारूप होणेतैं अत्यंत प्रिय है॥ १५ ॥

किंच—

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ॥
सर्वारंभपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥१६ ॥

(पदच्छेदः) अनपेक्षः । शुचिः । दक्षः । उदासीनः । गतव्यथः । सर्वारंभपरित्यागी । यः । मद्भक्तः । सः । मे । प्रियः ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष निरपेक्ष है तथा शुचि है तथा दक्ष है तथा उदासीन है तथा गतव्यथ है तथा सर्व आरंभपरित्याग करे हैं जिसनैं ऐसा जो मेरा भक्त है सो भक्त मैं परमेश्वरकूं अत्यंत प्रिय है ॥ १६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो पुरुष अनपेक्षहै अर्थात् विनाही प्रयत्नतैं यदृच्छामात्रकरिकै प्राप्तहुएभी जे भोगकेसाधनहैं तिन सर्व भोगके साधनोंविषे निस्पृह है, तथा जो पुरुष शुचि है अर्थात् बाह्यअंतर दो प्रकारके शौच-करिकै युक्त है तहां जलमृत्तिकादिकोंकरिकै शरीरका प्रक्षालन करणा याका नाम बाह्यशौच है । और मैत्री करुणादिकोंकरिकै अंतःकरणकूं रागद्वेषादिकोंतैं रहित करणा याका नाम अंतरशौच है । तथा जो पुरुष दक्ष है अर्थात् अवश्यकरिकै जानणेयोग्य तथा अवश्यकरिकै करणेयोग्य ऐसे अर्थोंके प्राप्त हुए जो पुरुष तिसतिस अर्थके जानणेकूं तथा करणेकूं समर्थ है । तथा जो पुरुष उदासीन है अर्थात् जो पुरुष किसीभी मित्रा-दिकोंके पक्षकूं ग्रहण करता नहीं । तथा जो पुरुष गतव्यथ है अर्थात् किसी दुष्टपुरुषोंनें ताडन कियेहुएभी नहीं उत्पन्न हुई है पीडारूप व्यथा जिसकूं । तथा जो पुरुष सर्वारंभपरित्यागी है तहां इस लोकके फलकी प्राप्ति करणे-हारे तथा परलोकके फलकी प्राप्ति करणेहारे जितनेक लौकिक वैदिक कर्म है तिन कर्मोंका नाम सर्वारंभ है ऐसे सर्वारंभोंकूं परित्याग कऱ्या है जिसनैं ऐसा जो परमहंस संन्यासी है ताका नाम सर्वारंभपरित्यागी है । इस प्रकारका जोमैं परमेश्वरका भक्तहै सो ब्रह्मवेत्ता भक्त मैं परमेश्वरकूं आपणा आत्मारूप होणेतै अत्यंत प्रिय है ॥ १७ ॥

किंच—

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति ॥
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥१७॥

(पदच्छेदः) यः । न । हृष्यति । न । द्वेष्टि । न । शोचति । न । कांक्षति । शुभाशुभपरित्यागी । भक्तिमान् । यः । सः । मे । प्रियः ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष नहीं हर्ष करै है नहीं द्वेष करैहै तथा नहीं शोक करैहै तथा नहीं इच्छा कर है तथा शुभ अशुभकर्मोंका परित्याग कऱ्या है जिसने ऐसौ जो भक्तिमान् पुरुष है सो पुरुष परमेश्वरकूं प्रिय है ॥ १७ ॥

भा० टी०—वहां पूर्व त्रयोदशश्लोकविषे (समदुःखसुखः) यह विशेषण कथन कऱ्या था तिस विशेषणकाही अब विस्तारसे वर्णन करै हैं । हे अर्जुन ! जो पुरुष प्रियवस्तुके प्राप्त हुए हर्षकूं प्राप्त होता नहीं तथा अप्रियवस्तुके प्राप्तहुए जो पुरुष द्वेषकूं प्राप्त होता नहीं तथा प्राप्त प्रियवस्तुके वियोग हुए जो पुरुष शोककूं करता नहीं तथा जो पुरुष इष्टवस्तुके संयोगकी तथा अनिष्टवस्तुके वियोगकी इच्छा करता नहीं । अब (सर्वारंभपरित्यागी) इस पूर्वउक्त विशेषणका वर्णन करै है (शुभाशुभपरित्यागी इति) हे अर्जुन ! सुखकी प्राप्ति करणेहारे जे शुभ कर्म हैं तथा दुःखकी प्राप्ति करणेहारे जे अशुभ कर्म है तिन दोनों प्रकारके कर्मोंका परित्याग कऱ्या है जिसनैं ऐसा मैं परमेश्वरकी भक्तिवाला जो ब्रह्मवेत्ता पुरुष है सो ब्रह्मवेत्ता भक्त मै परमेश्वरकूं आपणा आत्मारूप होणेतैं अत्यंत प्रिय है ॥ १७ ॥

किंच—

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ॥
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥ १८ ॥

(पदच्छेदः) समः । शत्रौ । च । मित्रे । च । तथा । मानापमानयोः । शीतोष्णसुखदुःखेषु । समः । संगविवर्जितः ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः जो पुरुष शत्रुविषे तथा मित्रविषे समानहै तथा मान अपमान दोनोंविषे समान है तथा शीतउष्णसुखदुःख इन सर्वांविषे समान है तथा संगतें रहितहै ॥ १८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! इस लोकविषे जो प्राणी किसीका अपकार करै है ताकूं शत्रु कहैं हैं । और जो प्राणी किसीका उपकार करै है ताकूं मित्र कहैं हैं । ऐसे अपकार करणेहारे शत्रुविषे तथा उपकार करणेहारे मित्रविषे जो पुरुष समहै अर्थात् आपणे पापपुण्यरूप प्रारब्धकर्मके वशतैंही इस देहका कोई प्राणी अपकारकर्त्ता शत्रु होवै है तथा कोई प्राणी उपकारकर्ता मित्र होवै है या प्रकारका मनविषे विचार करिकै जो पुरुष तिस शत्रुविषे तथा मित्रविषे समदृष्टिही होवै है । तथा जो पुरुष सुहृद्पुरुषोंनें करेहुए पूजनरूप मानविषे तथा दुष्टपुरुषोंनें करेहुए तिरस्काररूप अपमानविषे सम है अर्थात् ता मान अपमानकृत हर्षविषादरूप विकारकूं प्राप्त होता नहीं । तथा प्रारब्धकर्मके वशतैं प्राप्त हुए जे शीतउष्ण सुख दुःख इत्यादिक द्वंद्वधर्म हैं तिन शीतउष्णादिक द्वंद्वधर्मोंविषेभी जो पुरुष समानहै । तथा जो पुरुष संगतैं रहितहै । अर्थात् इसलोकविषे चेतनरूप करिकै प्रसिद्ध तथा अचेतन रूप करिकै प्रसिद्ध जितनेक पदार्थ हैं तिन सर्व पदार्थोंके यह पदार्थ अत्यंत रमणीक हैं याप्रकारके शोभन अध्यासतैं रहित है ॥ १८ ॥

किंच—

तुल्यनिंदास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् ॥
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥१९॥

(पदच्छेदः) तुल्यनिंदास्तुतिः । मौनी । संतुष्टः । येन । केनचित् । अनिकेतः । स्थिरमतिः । भक्तिमान् । मे । प्रियः । नरः ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तुल्य है निंदास्तुति जिसकूं तथा जो पुरुष मौनवाला है तथा जिसे किसे अन्नवस्त्रादिकों करिकै संतुष्ट है तथा

गृहतैं रहित है तथा स्थिर है मति जिसकी ऐसा भक्तिमान् पुरुष मैं परमेश्वरकूं प्रिय है ॥ १९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! किसीके दोषोंका कथन करणा याका नाम निंदा है और किसीके गुणोंका कथन करणा याका नाम स्तुति है। ऐसी निंदा तथा स्तुति दोनों तुल्य हैं जिसकूं अर्थात् जैसे अज्ञानी पुरुष आपणी स्तुतिकूं श्रवणकरिकै सुखी होवै है तथा आपणी निंदाकूं श्रवणकरिकै दुःखी होवै है तैसे जो पुरुष आपणी स्तुति निंदाकरिकै सुखदुःखकूं प्राप्त होता नहीं। तथा जो पुरुष मौनी है अर्थात् जिस पुरुषनें आपणे वाक्इंद्रियका निरोध कऱ्या है। शंका—हे भगवन् ! आपणे शरीरयात्राके निर्वाहवासतै तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूंभी वाक् इंद्रियका व्यापार अवश्यकरिकै अपेक्षित होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहै हैं (संतुष्टो येन केनचित् इति) हे अर्जुन ! आपणे प्रयत्नतैं विनाही बलवान् प्रारब्धकर्मनै प्राप्त करे जे शरीरकी स्थितिके हेतुरूप अन्नवस्त्रादिक पदार्थ हैं तिन जिसी किसी प्रकारके अन्नवस्त्रादिक पदार्थोंकरिकै ही जो पुरुष संतुष्ट है अर्थात् तिसतैं अधिक पदार्थोंकी इच्छातैं रहित है । तथा जो पुरुष अनिकेत है अर्थात् नियमपूर्वक एकस्थानविषे निवासतैं रहित है। तथा जो पुरुष स्थिरमति है । तहां स्थिर है क्या परमार्थ सत्यवस्तुविषयक है मति क्या बुद्धिकी वृत्ति जिसकी ताका नाम स्थिरमति है । इस प्रकारका जो भक्तिमान् पुरुष है सो भक्तिमान् पुरुष मैं परमेश्वरकूं आपणा आत्मारूप होणेतैं अत्यंत प्रिय है। तहां शास्त्रविषे निर्गुणब्रह्मके भक्तिका यह लक्षण कथन कऱ्या है । तहां श्लोक—(एकांतभक्तिर्गोविंदे यत्सर्वत्र तदीक्षणम्। अहेतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे । लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य उदाहृतम् ॥) अर्थ यह—सर्वप्रपंचविषे अस्ति भाति प्रियरूपकरिकै जो परमात्मादेवका दर्शन है यहही ता परमात्मादेवविषे एकांत भक्ति है अर्थात् अनन्यभक्ति है। और विपरीतभावनाकी निवृत्ति आदिक

प्रयोजनतैं रहित तथा विजातीयवृत्तिके व्यवधानतैं रहित ऐसी जा ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंकी प्रत्यक् अभिन्न परमात्मादेवविषे अखंडाकार वृत्तिरूप भक्ति है, यहही विद्वान् पुरुषोंनैं निर्गुणब्रह्म विषयक भक्तिका स्वरूप कथन कऱ्या है इति । इस प्रकारकी भक्तिवाला ब्रह्मवेत्ता पुरुष ही इहां श्रीभगवान्नैं भक्तिमान् इस शब्दकरिकै तथा भक्त इस शब्दकरिकै कथन कऱ्या है । और इहां श्रीभगवान्नैं जो पुनः पुनः भक्तिका कथन कऱ्या है सो परमेश्वरकी अनन्यभक्तिही मोक्षकी प्राप्ति विषे पुष्कल कारण है इस अर्थके दृढ करावणेवासतै कथन कऱ्या है । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है । तहां श्रुति-(यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मनः ॥) अर्थ यह-जिस अधिकारी पुरुषकी परमात्मादेवविषे अनन्यभक्ति है तथा जैसे परमात्मादेवविषे अनन्यभक्ति है तैसेही ब्रह्मवेत्ता गुरुविषे अनन्य भक्ति है तिस महात्मा पुरुषकूं ही यह वेदकरिकै प्रतिपादित अर्थ प्रकाशमान होवै हैं ॥ १९ ॥

तहां (अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्) इत्यादिक श्लोकोंकरिकै निर्गुण अक्षरब्रह्मके चिंतन करणेहारे जीवन्मुक्त परमहंस संन्यासियोंके लक्षणरूप तथा स्वभावतैही सिद्ध अद्वेष्टृत्वादिक धर्म कथन करे । यह वार्त्ता वार्तिकग्रंथविषे सुरेश्वराचार्यनैभी कथन करी है । तहां श्लोक-(उत्पन्नात्मावबोधस्य ह्यद्वेष्टृत्वादयो गुणाः । अयत्नतो भवंत्येव न तु साधनरूपिणः ॥ अर्थ यह-जिस पुरुषकूं गुरुशास्त्रके उपदेशतें मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारका आत्मसाक्षात्कार उत्पन्न हुआ है तिस ब्रह्मवेत्ता पुरुषके ते भगवत् उक्त अद्वेष्टृत्वादिक गुण विनाही प्रयत्नतैं स्वभावतैही सिद्ध होवैं है । जैसे मुमुक्षुजनविषे ते अद्वेष्टृत्वादिक गुण प्रयत्नकरिकै साध्य होवैं है तथा साधनरूप होवैं हैं तैसे ब्रह्मवेत्ता पुरुषविषे ते अद्वेष्टृत्वादिक गुण प्रयत्नकरिकै साध्य होवै नहीं तथा साधनरूपभी होवैं नहीं इति । यहही अद्वेष्टृत्वादिक धर्म पूर्व कथन करेहुए स्थितप्रज्ञ पुरुषके लक्षणरूपकरिकै

कथन करे हैं। तेही यह अद्वेष्टृत्वादिक प्रयत्नकरिकै संपादन करेहुए मुमुक्षुजनके मोक्षका साधनरूपक होवैं हैं। इस अर्थकूं प्रतिपादन करते हुए श्रीभगवान् इस द्वादश अध्यायकी समाप्ति करैं हैं—

ये तु धर्मामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ॥
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेतीव मे प्रियाः ॥२०॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

(पदच्छेदः) ये । तु । धर्मामृतम् । इदम् । यथा । उक्तम् । पर्युपासते । श्रद्दधानाः । मत्परमाः । भक्ताः । ते । अतीव । मे । प्रियाः ॥ २० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः जे मुमुक्षुजन श्रद्धावान् हुए तथा मैं परमेश्वरपरायण हुए इस पूर्व उक्त धर्मरूप अमृतकूं संपादन करैं हैं वे मुमुक्षु भक्तजनभी मै परमेश्वरकूं अत्यंत प्रिय हैं ॥ २० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पूर्व कथनकरेहुए जीवन्मुक्त पुरुषोंतें विलक्षण जे मोक्षकी इच्छावान् संन्यासी श्रद्धावान् हुए अर्थात् यह अद्वेष्टृत्वादिक धर्मही मुक्तिके साधन हैं याप्रकारकी विश्वासरूप श्रद्धाकरिकै युक्तहुए। तथा जे मुमुक्षुजन मत्परम हुए अर्थात् मैं अक्षर निर्गुणब्रह्मही हूं परम क्या प्राप्त होणेयोग्य निरतिशय गति जिन्होंकूं ऐसे मत्परमहुए इस पूर्वउक्त धर्मरूप अमृतकूं संपादन करैं है अर्थात् मोक्षरूप अमृतके साधन होणेतैं अमृतरूप अथवा अमृतकी न्याईं आस्वादन करणे योग्य होणेतैं अमृतरूप ऐसे जे (अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्) इत्यादिक वचनोंकरिकै कथन करेहुए अद्वेष्टृत्वादिक धर्म हैं तिन धर्मरूप अमृतकूं जे मुमुक्षुजन प्रयत्नतैं संपादन करैं हैं ते भक्तजन अर्थात् मैं निरुपाधिक ब्रह्मकूं भजन करणेहारे पुरुष मैं परमेश्वरकूं अत्यंत प्रिय हैं। यह श्रीभगवान्‌का वचन (प्रियो हि ज्ञानिनोत्यर्थमहं स च मम प्रियः ।) इस पूर्वउक्त

वचनकरिकै सूचन करेहुए अर्थका उपसंहाररूप है । यातैं इस श्लोकका यह अर्थ सिद्ध भया । जिसकारणतैं इस अद्वेष्टृत्वादिक धर्मरूप अमृतकूं श्रद्धाकरिकै संपादन करताहुआ यह अधिकारी पुरुष परमेश्वरका अत्यंत प्रिय होवैहै तिसकारणतैं ज्ञानवान् पुरुषके स्वभावसिद्ध होणेतैं लक्षणरूप-हुएभी यह अद्वेष्टृत्वादिक धर्म तत्त्वके जानणेकी इच्छावान् तथा विष्णुके परमपदके प्राप्तिकी इच्छावान् ऐसे मुमुक्षुजननैं आत्मज्ञानका उपायरूप करिकै अत्यंत प्रयत्नतैं संपादन करणे इति । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । पूर्वउक्त सोपाधिक सगुणब्रह्मके ध्यानकी परिपक्वतातैं अनंतर निरुपाधिक निर्गुण ब्रह्मका चिंतन करणेहारा तथा अद्वेष्टृत्वादिक धर्मोंकरिकै युक्त तथा निरंतर श्रवण मनन निदिध्यासकूं करताहुआ ऐसा जो उत्तम अधिकारी पुरुष है तिस उत्तम अधिकारी पुरुषकूं वेदांतवाक्योंके अर्थका तत्त्वसाक्षात्कार अवश्यकरिकै होवैहै । तिस तत्त्वसाक्षात्कारतैं ता अधिकारी पुरुषकूं अवश्यकरिकै मुक्तिकी प्राप्ति होवैहै । यातैं मुक्तिका हेतुरूप जो वेदांतमहावाक्योंका अर्थ है तिस अर्थके अन्वययोग्य जो तत्पदार्थरूप परमेश्वर है सो तत्पदार्थरूप परमेश्वर इन अधिकारी जनोंनै अवश्यकरिकै चिंतन करणा । यह अर्थ उपासनाकाण्डरूप इस मध्यके षट्ककरिकै सिद्धभया ॥ २० ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां श्रीमगवद्गीतागूढार्थदीपिकाख्याया द्वादशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायप्रारंभः ।

तहां पूर्व प्रथम अध्यायतैं लेकै षष्ठ अध्यायपर्यंत प्रथमषट्कविषे त्वंपदार्थका निरूपण कऱ्या । और सप्तम अध्यायतैं लेकै द्वादश अध्यायपर्यंत द्वितीयषट्कविषे तत्पदार्थका निरूपण कऱ्या । अब तिन शोधित तत् त्वंपदार्थका अभेदरूप महावाक्यके अर्थकूं कथनकरणेहारा तथा

तत्त्वज्ञान हैं प्रधान जिसविषे ऐसा जो त्रयोदश अध्यायतैं आदिलैके अष्टादश अध्यायपर्यंत तृतीयषट्क है तिस तृतीयषट्का आरंभ करै हैं। तहां पूर्व द्वादश अध्यायविषे (तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् । भवामि) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नें आपणेविषे अधिकारी जनोंका मृत्युसंसारसागरतैं उद्धारकर्तापणा कथन कऱ्याथा । सो आत्मविषयक अज्ञानरूप मृत्युतैं इन अधिकारीजनोंका उद्धरण आत्माके ज्ञानतैं विना संभवता नहीं किंतु (तरति शोकमात्मवित् । तरत्यविद्यां विततां हृदि यस्मिन्निवेशिते ।) इत्यादिक श्रुति स्मृतिवचन आत्माके ज्ञानतैं ही अविद्यारूप अज्ञानकी निवृत्ति कथन करैहैं । यातैं जिस प्रकारके आत्मज्ञानकरिकै तिस मृत्युसंसारकी निवृत्ति होवैहै । तथा जिस तत्त्वज्ञानकरिकै युक्त अद्वेष्टृत्वादिक गुणोंवाले संन्यासी पूर्व द्वादश अध्यायविषे वर्णन करेथे, सो आत्मतत्त्वज्ञान अबी अवश्यकरिकै कहणे योग्य है। और सो तत्त्वज्ञान अद्वितीय परमात्माके साथि जीवात्माके अभेदकूं ही विषय करै हैं । काहेतैं जन्ममरणतैं आदि-लैके जितनेक अनर्थ हैं तिन सर्व अनर्थोंका जीवब्रह्मका भेदभ्रमही कारण है । तहां श्रुति-(मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ।) अर्थ यह-जो पुरुष इस अद्वितीय ब्रह्मविषे द्वैतभावकूं देखै है सो पुरुष वारंवार जन्ममरणकूं प्राप्त होवै है इति । ऐसें भेदभ्रमकी निवृत्ति जीवब्रह्मके अभेद ज्ञानतैं विना होवै नहीं किंतु जीवब्रह्मके अभेदज्ञानतैंही ता भेदभ्रमकी निवृत्ति होवैहै याकेविषे यह शंका होवै है । मैं सुखी हूं मैं दुःखी हूं मैं कर्ता हूं मैं भोक्ता हूं इस प्रकारका अनुभव सर्व प्राणियोंविषे होवै है। यातैं यह जीवात्मा तौ सुखदुःखादिरूप संसारवाले है तथा शरीर शरीरविषे भिन्नभिन्न हैं। जो कदाचित् सर्व शरीरोंविषे एकही आत्मा होवै तौ एक शरीरविषे सुख दुःखके अनुभव हुए सर्व शरीरविषे ता सुखदुःखका अनुभव होणा चाहिये सो होता नहीं । यातैं शरीर शरीरोंविषे आत्मा भिन्नभिन्न है और परमात्मा देव तौ ता सुखदुःखादिरूप संसारतैं रहित है तथा एक

है।ऐसे अनेक संसारी जीवोंका एक असंसारी परमात्माके साथि अभेद संभवता नहीं । ऐसी शंकाके प्राप्त हुए सो सुखदुःखादिरूप संसार तथा भिन्नपणा अविद्याकल्पित अनात्मवस्तुके ही धर्म हैं । जीवात्माका संसारीपणा तथा भिन्नपणा धर्म है नहीं या प्रकारका विवेचन अवश्य करया चाहिये तिस विवेचनके अर्थ देह इंद्रिय अन्तःकरण प्राण इत्यादिरूप क्षेत्रोंतैं भिन्न करिकै क्षेत्रज्ञनामा जीवात्मा पुरुष तिन सर्व क्षेत्रोंविषे एकही है तथा निर्विकार है इस अर्थके प्रतिपादन करणेवासतै इस त्रयोदश अध्यायविषे क्षेत्र क्षेत्रज्ञका विवेचन करें हैं । तहां पूर्व सप्तम अध्यायविषे श्रीभगवान्नैं जा भूमिआदिक अष्टप्रकारकी अपरानामा प्रकृति क्षेत्रज्ञरूपकरिकै सूचन करी थी तथा जीवरूप परा प्रकृति क्षेत्रज्ञरूप करिकै सूचन करी थी तिसी क्षेत्र क्षेत्रज्ञरूप दोनों प्रकृतियोंके स्वरूपकूं भिन्नभिन्नकरिकै निरूपण करतेहुए श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति कहैंहैं-

श्रीभगवानुवाच ।

इदं शरीरं कौंतेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ॥
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञमिति तद्विदः ॥ १ ॥

(पदच्छेदः) इदम् । शरीरम् । कौंतेय । क्षेत्रम् । इति । अभिधीयते । एतत् । यः । वेत्ति । तम् । प्राहुः । क्षेत्रज्ञम् । इति । तद्विदः ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह शरीर क्षेत्र इस नामकरिकै कह्याजावै है और इस क्षेत्रकूं जो जानैहै तिसकूं क्षेत्रके जानणेहारे पुरुष क्षेत्रज्ञ इस नामकरिकै कथनकरें हैं ॥ १ ॥

भा० टी०-हे कौंतेय ! अर्थात् हे कुंतीमाताके पुत्र अर्जुन ! श्रोत्रादिक इंद्रियोंसहित तथा चतुष्टय अन्तःकरणसहित तथा पंचप्राणोंसहित जो यह सुखदुःखके भोगका आयतनरूप शरीर है सो शरीर क्षेत्र इस नामकरिकै कह्याजावै है । अब क्षेत्रशब्दका अर्थ निरूपण करें हैं । तहां अवि-

यातें रिकै जो आत्मक्षय करै है तथा विद्याकरिकै आत्माकूं रक्षण करै है ताका नाम क्षेत्रहै। अथवा रागद्वेषादिक दोषोंकरिकै युक्त पुरुष क्षयकूं प्राप्त होवै जिस करिकै ताका नाम क्षेत्र है। अथवा शमदमादिक साधनयुक्त पुरुषकूं जन्ममरणादिक अर्थरूप क्षयतैं जो रक्षण करै है ताका नाम क्षेत्र है। अथवा सर्वकालविषे दीपशिखाकी न्याई जो आप क्षयकूं प्राप्त होता जावै है ताका नाम क्षेत्र है। अथवा सुखदुःखादिरूप फलकी उत्पत्तिविषे जो लोक प्रसिद्ध भूमिरूप क्षेत्रकी न्याईं आचरण करैहै ताका नाम क्षेत्रहै इति।ऐसे इस शरीररूप क्षेत्रकूं जो जानै है अर्थात् इस शरीररूप क्षेत्रविषे जो अहंमम अभिमान करै है तिसकूं क्षेत्रज्ञ इस नाम करिकै कथन करै हैं। तात्पर्य यह—जैसे कृषीकरणेहारा कृषीवल पुरुष भूमिरूप क्षेत्रके फलका भोक्ता होवैहै तैसे यह जीवात्माभी इस संघातरूप क्षेत्रके सुखदुःखरूप फलका भोक्ता होवै है। यातें इस जीवात्माकूं क्षेत्रज्ञ इस नामकरिकै कथन करैं हैं। शंका—हे भगवन्! इस जीवात्माकूं क्षेत्रज्ञ इस नाम करिकै कौन कथन करैं हैं? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (तद्विदः इति) हे अर्जुन! यह क्षेत्र असत् जड दुःखरूप है। और यह क्षेत्रज्ञ आत्मा सत् चित् आनंदरूप है इसप्रकारतें इस क्षेत्रक्षेत्रज्ञ दोनोंके भेदकूं जानणेहारे जे विवेकी पुरुष हैं ते विवेकी पुरुष ही इस जीवात्माकूं क्षेत्रज्ञ इस नाम करिकै कथन करैं हैं इति। इहां किसीके मूलपुस्तकविषे (श्रीभगवानुवाच ॥ इदं शरीरं कौंतेय क्षेत्रमित्यभिधीयते) इस श्लोकतें पूर्व अर्जुनका प्रश्नरूप यह श्लोक है—(अर्जुन उवाच ॥ प्रकृतिं पुरुषं चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च। एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानं ज्ञेयं च केशव ॥) अर्थ यह—हे केशव! प्रकृति क्या है तथा पुरुष क्या है तथा क्षेत्र क्याहै तथा क्षेत्रज्ञ क्याहै तथा ज्ञान क्याहै तथा ज्ञेय क्याहै इस सर्वअर्थके जानणेकी मैं इच्छा करता हूं। आप कृपा करिकै सो सर्व अर्थ हमारेप्रति कथन करो इति। परंतु यह श्लोक श्रीभाष्यकारोंतें आदिलैके किसीभी टीकाकारनैं ग्रहण कर्या नहीं यातें यह जान्या जावै है यह अर्जुनके प्रश्नका

श्लोक पश्चात् किसी विद्वाननैं पाया है इसी कारणतैं इस त्रयोदश अध्यायके प्रारंभविषे यह श्लोक हमने लिख्या नहीं ॥ १ ॥

इस प्रकार देह इंद्रिय अंतःकरणादि रूप क्षेत्रतैं विलक्षण स्वप्रकाश क्षेत्रज्ञकूं कथनकरिकै अब तिस क्षेत्रज्ञनामा जीवात्माका जो असंसारी परमात्माके साथि एकतारूप पारमार्थिक स्वरूप है तिस स्वरूपकूं श्रीभगवान् कथन करैहैं-

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) क्षेत्रज्ञम् । च । अपि । माम् । विद्धि । सर्वक्षेत्रेषु । भारत । क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः । ज्ञानम् । यत् । तत् । ज्ञानम् । मतम् । मम ॥ २ ॥

पदार्थः) हे भारत ! पुनः सर्वक्षेत्रियोंविषे स्थित क्षेत्रज्ञकूं तूं मैं अद्वितीयब्रह्मरूप ही जान ऐसे क्षेत्रक्षेत्रज्ञ दोनोंका जो ज्ञान है सो ज्ञानही मैं परमेश्वरकूं अभिमत है ॥ २ ॥

भा० टी०-हे भारत ! अर्थात् हे भरतराजाके वंशविषे उत्पन्न हुआ अर्जुन ! अथवा आत्माकार वृत्तिका नाम भा है ता आत्माकार अखंडवृत्तिविषे जो सर्वदा रमण करैहै अथवा ता अखंडवृत्तिविषे जो सर्वदा प्रीतिवाला है ताका नाम भारत है अर्थात् हे आत्मज्ञानविषे प्रीतिवाला अर्जुन ! पूर्वउक्त देहइंद्रियादिसंघातरूप सर्व क्षेत्रोंविषे अधिष्ठानरूप करिकै स्थित जो एक क्षेत्रज्ञ है जो क्षेत्रज्ञ स्वप्रकाशचैतन्यरूप है तथा नित्य है तथा विभु है तथा अविद्याकरिकै आरोपित है कर्तृत्व-भोक्तृत्वादिक धर्म जिसविषे ऐसे तिस क्षेत्रज्ञकूं तूं अर्जुन तिस अविद्याकल्पित रूपका परित्याग करिकै मैं परमेश्वररूप जान अर्थात् अंतःकरणादिक सर्व उपाधियोंतैं रहित तिस प्रत्यक् आत्मरूप क्षेत्रज्ञकूं तूं असंसारी अद्वितीय ब्रह्मानंदरूप जान । तहां श्रुति-(अयमात्मा ब्रह्म अहं

ब्रह्मास्मि तत्त्वमसि प्रज्ञानमानदं ब्रह्म ।) अर्थ यह—जीवात्मा ब्रह्मरूप है। तथा मैं ब्रह्मरूप हूं तथा सो सर्वब्रह्म तूं है। तथा यह आनंदरूप प्रज्ञाननामा जीवात्मा ब्रह्मरूपहै इति।हे अर्जुन!इस पूर्वउक्त क्षेत्रका तथा क्षेत्रज्ञका जो ज्ञान है अर्थात् मायाकरिकै कल्पित होणेतैं यह क्षेत्र तौ रज्जुसर्पकी न्याईं मिथ्यारूप है। और तिस क्षेत्ररूप भ्रमका अधिष्ठान होणेतैं यह क्षेत्रज्ञनामा आत्मा परमार्थ सत्य है। याप्रकारतै जो तिस क्षेत्रका तथा क्षेत्रज्ञका ज्ञान है सोईही ज्ञानमोक्षका साधन होणेतैं मैं परमेश्वरकूं ज्ञानवैं भिन्न दूसरे जितनेक लौकिक वैदिक ज्ञान है ते सर्व ज्ञान ता अविद्याके विरोधी हैं नहीं। यातै ते सर्वज्ञानअज्ञानरूपकरिकै संमत हैं अर्थात् तिसी ज्ञानकूं मैं परमेश्वर अविद्याका विरोधी प्रकाशरूप मानता हूं । इस प्रकारके ज्ञानरूप ही है इति । इहां किसी टीकाविषे तौ (क्षेत्रज्ञं चापि) इस वचनविषे जो चकार है ता चकारकरिकै पूर्वउक्त क्षेत्रकाभी. ग्रहण कऱ्या है अर्थात् क्षेत्रज्ञरूप तथा क्षेत्ररूप मैं परमेश्वरकूं ही तूं जान । तहां क्षेत्रज्ञनामा जीवात्माकी ब्रह्मरूपताविषे तौ पूर्वही श्रुतिरूप प्रमाण कथन कऱ्या है। और क्षेत्रकी ब्रह्मरूपताविषे तौ (ब्रह्मैवेदं सर्वं, सर्वं खल्विदं ब्रह्म ।) इत्यादिक अनेक श्रुतिवचन प्रमाणरूप हैं ॥ २ ॥

तहां पूर्व दो श्लोकोंकरिकै संक्षेपतैं कथन करेहुए अर्थकूं अब विस्तारतै कहणेवासतै श्रीभगवान् आरंभ करैं हैं—

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत् ॥
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) तत् । क्षेत्रम् । यत् । च । यादृक् । च । यद्विकारि । यतः । च । यत् । सः । च । यः । यत्प्रभावः । च । तत् । समासेन । मे । शृणु ॥ ३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो शरीररूप क्षेत्र जिसस्वभाववाला है तथा जिसइच्छादिकधर्मवाला है तथा जिस इंद्रियादिकविकारोंवाला है तथा

जिस क्षेत्ररूप कारणतैं जो कार्य उत्पन्न होवै है तैंथा सो क्षेत्रज्ञ जिस-स्वभाववाला है तैंथा जिसप्रभाववाला है सो क्षेत्रज्ञका स्वरूप मेरे वचनतैं तूं संक्षेपकरिकै श्रवण कर ॥ ३ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! (इदं शरीरं कौंतेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।) इस पूर्व उक्त वचनकरिकै कथन कऱ्या जो देह, इंद्रिय, अंतःकरण इत्यादिक जडवर्गरूप क्षेत्र है सो क्षेत्र आपणे स्वरूपकरिकै जिस जड दृश्य परिच्छिन्न आदिक स्वभाववाला है तथा सो क्षेत्र जिन इच्छाद्वेषादिक धर्मोवाला है। तथा सो क्षेत्र जिन इंद्रियादिक विकारोंकरिकै युक्त है। तथा जिस क्षेत्ररूप कारणतै जो कार्य उत्पन्न होवै है। अथवा (यतश्च यत्) इस वचनका यह दूसरा अर्थ करणा । सो क्षेत्र जिस प्रकृतिपुरुषके संयोगतैं उत्पन्न होवै है। तथा जिस स्थावर जंगमादिक भेदकरिकै भिन्नभिन्न है इति। इतने करिकै क्षेत्रके स्वरूपका विचार कऱ्या । अब क्षेत्रक्षेत्रज्ञके स्वरूपका विचार करैं हैं (स च इति) हे अर्जुन ! (एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ।) इस वचनकरिकै पूर्व कथन कऱ्या जो क्षेत्रज्ञ है सो क्षेत्रज्ञभी आपणे स्वरूपतैं जिस स्वप्रकाश चैतन्य आनंदस्वभाववाला है, तथा उपाधिकृत जिन शक्तिरूप प्रभावोंवाला है इति । तिन सर्व विशेषणों करिकै विशिष्ट क्षेत्रके यथार्थ स्वरूपकूं तथा क्षेत्रज्ञके यथार्थ स्वरूपकूं तूं अर्जुन मैं परमेश्वरके वचनतैं संक्षेपकरिकै श्रवण कर अर्थात् तिस क्षेत्रक्षेत्रज्ञके स्वरूपकूं श्रवणकरिकै तूं निश्चय कर ॥ ३ ॥

हे भगवन् ! पूर्व श्लोकविषे आपनै यह वचन कह्याथा । तिस क्षेत्र-क्षेत्रज्ञके स्वरूपकूं तूं मेरे वचनतैं संक्षेपकरिकै श्रवण कर इति। सो यह आपका कहणा तबी संभवै जबी सो क्षेत्रक्षेत्रज्ञका स्वरूप पूर्व किसीनैं विस्तारतैं कथन कऱ्या होवै । काहेतैं जो अर्थ पूर्व किसीनैं विस्तारतैं कथन करीता है सो अर्थही पश्चात् संक्षेपकरिकै कथन कऱ्या जावै है। पूर्व विस्तारतैं नहीं कथन करेहुए अर्थका संक्षेपकरिकै कथन संभवता

नहीं। सो इस क्षेत्रक्षेत्रज्ञका स्वरूप पूर्व किन्होंनें विस्तारकरिके कथन कऱ्या है। जिस विस्तारकरिके कथन करे हुए अर्थका आप अबी संक्षेपकरिकै कथन करते हो ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् श्रोतापुरुषोंके बुद्धिविषे तिस क्षेत्रक्षेत्रज्ञके स्वरूपविषय प्रीतिके उत्पन्न करणेवास्ते तिस क्षेत्रक्षेत्रज्ञके स्वरूपकी स्तुति करते हुए कहैं हैं—

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छंदोभिर्विविधैः पृथक्॥
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः॥ ४॥

(पदच्छेदः) ऋषिभिः। बहुधा। गीतम्। छंदोभिः। विविधैः। पृथक्। ब्रह्मसूत्रपदैः। च। एव। हेतुमद्भिः। विनिश्चितैः॥ ४॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! सो क्षेत्रक्षेत्रज्ञका स्वरूप वसिष्ठादिक ऋषियोंनें बहुतप्रकारतें निरूपण कऱ्या है तथा बहुतप्रकारके ऋगादिक वेदोंनैंभी भिन्नभिन्नकरिकै कथन कऱ्या है तथा युक्तियोंवाले तथा निश्चित अर्थवाले ऐसे ब्रह्मसूत्रपदोंनैं भी सो स्वरूप बहुतप्रकारतें कथन कऱ्याहै॥ ४॥

भा० टी०—हे अर्जुन! यह क्षेत्रक्षेत्रज्ञका स्वरूप वसिष्ठादिक ऋषियोंनैभी योगशास्त्रविषे धारणाध्यानका विषयरूपकरिकै बहुतप्रकारतें निरूपण कऱ्या है। इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नें ता स्वरूपविषे योगशास्त्रकरिकै प्रतिपाद्यपणा कथन कऱ्या। तथा विविध छंदोंनैभी सो स्वरूप पृथक् पृथक्करिकै निरूपण कऱ्या है अर्थात् नित्यनैमित्तिक काम्यकर्मादिकोंकूं विषय करणेहारे जे ऋगादिक वेदोंके मंत्र हैं तथा ब्राह्मण हैं तिन्होंनैंभी भिन्न भिन्न करिकै सो क्षेत्रक्षेत्रज्ञका स्वरूप निरूपण कऱ्या है इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं ता स्वरूपविषे कर्मकांडकरिकै प्रतिपाद्यपणा कथन कऱ्या। तथा ब्रह्मसूत्रपदोंनैंभी सो क्षेत्रक्षेत्रज्ञका स्वरूप बहुतप्रकारतें निरूपण कऱ्या है। तहां ब्रह्म इस पदका सूत्र इस पदके साथि तथा पद इस पदके साथि अन्वय करणेतें ब्रह्म—

सूत्र ब्रह्मपद यह दोप्रकारके वचन सिद्ध होवैं हैं। तहां जिन वाक्योंनै किंचित्‌मात्र व्यवधानकरिकै ब्रह्मका प्रतिपादन करीता है तिन वाक्योंका नाम ब्रह्मसूत्र है जैसे–(यतो वा इमानि भूतानि जायंते । येन जातानि जीवंति यत्प्रयंत्यभिसंविशंति तद्ब्रह्म ।) अर्थ यह–जिसतैं यह सर्व भूत उत्पन्न होवैं हैं। तथा उत्पन्न हुए वे सर्व भूत जिस करिकै जीवते हैं। तथा विनाशकूं प्राप्त हुए वे सर्वभूत जिसविषे लय भावकूं प्राप्त होवैं हैं सोईही ब्रह्म है इति । इत्यादिक ब्रह्मके तटस्थ लक्षणकूं प्रतिपादन करणेहारे जे उपनिषद्‌वाक्य हैं तिन वाक्योंका नाम ब्रह्मसूत्र हैं और जिन-वाक्योंनैं साक्षात्‌ही ता ब्रह्मका प्रतिपादन करीता है तिन वाक्योंका नाम ब्रह्मपद है। जैसे ब्रह्मके स्वरूपलक्षणकूं प्रतिपादन करणेहारे (सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म ।) इत्यादिक उपनिषद्‌वाक्य हैं ऐसे ब्रह्मसूत्ररूप वाक्योंनै तथा ब्रह्मपदरूप वाक्योंनैभी सो क्षेत्रक्षेत्रज्ञका स्वरूप बहुत प्रकारतें निरूपण कऱ्या है। कैसे हैं ते ब्रह्मसूत्रपदरूपवाक्य–हेतुमत्‌ हैं अर्थात्‌ इष्ट अर्थके साधक अनेक युक्तियोंके प्रतिपादक है । ते युक्तियां यह हैं– छांदोग्य उपनिषदविषे उद्दालक ऋषिनैं श्वेतकेतुपुत्रके प्रति यह वचन कह्या है–(सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्‌ ।) अर्थ यह–हे प्रियदर्शन श्वेतकेतो ! यह दृश्यमान जगत्‌ आपणी उत्पत्तितैं पूर्व सत्‌रूप होता भया । सो सत्‌ एक अद्वितीयरूप होता भया इति। इसप्रकारका उपक्रमकरिकै पश्चात्‌ यह वचन कह्या है–(तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सदजायत ।) अर्थ यह–केईक वादी तौ ऐसे कहैं हैं। यह दृश्यमान जगत्‌ आपणी उत्पत्तितैं पूर्व असत्‌ होता भया सो असत्‌ एक अद्वितीयरूप होताभया । तिस असत्‌कारणतैं यह सत्‌कार्य उत्पन्न होता भया इति । इस वचनकरिकै नास्तिकोंके मतका कथनकरिकै तिसतैं अनंतर सो उद्दालक ऋषि या प्रकारका वचन कहता भया। (कुतस्तु खलु सौम्यैवं स्यादिति होवाच कथमसतः सज्जायेत ।) अर्थ यह–हे प्रियदर्शन श्वेतकेतु ! यह नास्तिकोंका कहणा कैसे संभवैगा ?

किंतु नहीं संभवेगा । जिसकारणतैं असत् कारणतैं सत्कार्यकी उत्पत्ति कदाचित्भी होती नहीं जो कदाचित् असत्तैंभी सत्की उत्पत्ति होती-होवै तौ. असत् वंध्यापुत्रतैं भी सत्पुत्रकी उत्पत्ति होणी चाहिये । और होती नहीं।इत्यादिक अनेक प्रकारकी युक्तियोंकूं प्रतिपादन करणेहारे ते ब्रह्म-सूत्रपदरूप वचनहैं।पुनः कैसे हैं ते ब्रह्मसूत्रपदरूप वचन—विनिश्चितहैं अर्थात् उपक्रम उपसंहार वाक्योंकी एकवाक्यताकरिकै संशयतैं रहित अर्थके प्रति-पादक हैं।इस प्रकारके ब्रह्मसूत्रपदरूप वाक्योंनैंभी सो क्षेत्रक्षेत्रज्ञका स्वरूप बहुत प्रकारतैं निरूपण कऱ्याहै । इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्‌नैं तिस क्षेत्रक्षेत्रज्ञके स्वरूपविषे ज्ञानकांडकरिकै प्रतिपाद्यपणा निरूपण कऱ्या । इस प्रकार पूर्व वसिष्ठादिक ऋषियोंनैं तथा ऋगादिक वेदोंके मंत्रोंनैं तथा ब्रह्मसूत्रपदोंनैं अत्यंत विस्तारतैं कथन कऱ्या जो क्षेत्रक्षेत्रज्ञका यथार्थ स्वरूप है तिसी स्वरूपकूं मैं कृष्ण भगवान् तैं अर्जुनके ताईं संक्षेप करिकै कथन करताहूं। तिसकूं तूं श्रवण कर इति । अथवा (ब्रह्म-सूत्रपदैः) इस वचनविषे ब्रह्मसूत्र होवैं तेही पद होवैं या प्रकारका कर्मधारय समास अंगीकार करणा । तहां (आत्मेत्येवोपासीत) अर्थ यह—यह अधिकारी पुरुष सर्वत्र व्यापक आत्मा मैं हूं या प्रकारका चिंतन करै । इत्यादिक वाक्य तौ विद्यासूत्र कहे जावैं हैं । और (न स वेद यथा पशुः) अर्थ यह—आपणे आत्मातैं देवताकूं भिन्न मानिकै जो पुरुष ता देवताकी उपासना करैहै सो भेददर्शी पुरुष पशुकी न्याईं किंचित्मात्रभी जानता नहीं । इत्यादिक वचन तौ अविद्यासूत्र कहे जावैं हैं इति । और किसी टीकाविषे तौ (ब्रह्मसूत्रपदैः) इस वचनकरिकै (जन्माद्यस्य यतः) इत्यादिक वेदांतसूत्रोंका ग्रहण कऱ्या है ॥ ४ ॥

इस प्रकार क्षेत्रक्षेत्रज्ञके स्वरूप जानणेविषे अर्जुनकी रुचि उत्पन्नक-रिकै अब श्रीभगवान् तिस अर्जुनके ताईं दो श्लोकोंकरिकै प्रथम क्षेत्रका स्वरूप कथन करैं हैं—

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ॥
इंद्रयाणि दशैकं च पंच चेंद्रियगोचराः ॥ ५ ॥
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः ॥
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) महाभूतानि । अहंकारः । बुद्धिः । अव्यक्तम् । एव । च । इंद्रियाणि । दश । एकम् । च । पंच । च । इंद्रियगोचराः । इच्छा । द्वेषः । सुखम् । दुःखम् । संघातः । चेतना । धृतिः । एतत् । क्षेत्रम् । समासेन । सविकारम् । उदाहृतम् ॥ ५।६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पंचमहाभूत अहंकार बुद्धि तथा अव्यक्त तथा दश श्रोत्रादिकइंद्रिय तथा एक मन तथा श्रोत्रादिकइंद्रियोंके विषय शब्दादिकपंच तथा इच्छा द्वेष सुख दुःख संघात चेतना धृति यह सर्व विकारसहित संक्षेपकरिकै क्षेत्ररूप कहे है ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पृथिवी जल तेज वायु आकाश यह जे पंचमहाभूत हैं, तथा तिन पंचमहाभूतोंका कारण जो अभिमानलक्षण अहंकार है, तथा तिस अहंकारका कारणरूप जो अध्यवसायलक्षण महत्तत्त्वनामा बुद्धि है तथा तिस महत्तत्त्वनामा बुद्धिका कारणरूप, तथा सत्त्वरजतमगुणात्मक ऐसा जो प्रधानरूप अव्यक्त है।जो अव्यक्त सर्वका कारणरूप ही है किसीकाभी कार्यरूप है नहीं । यह महाभूतोंतैं आदिलैके अव्यक्तपर्यंत अष्टप्रकारकी प्रकृति कहीजावैहै यह अर्थ सांख्यमतके अनुसार कथन कन्या । अब वेदांतमतके अनुसार अर्थ करैहै—तहां अव्यक्तशब्दकरिकै तौ अनिर्वचनीय अव्याकृतका ग्रहण करणा जिस अव्याकृतकूं (मम माया दुरत्यया) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं मायानामा परमेश्वरकी शक्तिरूप कथन कन्याहै । और बुद्धिशब्दकरिकै तौ सृष्टिके आदिकालविषे स्रष्टव्य प्रपंचविषयक-मायाका वृत्तिरूप ईक्षणका ग्रहण करणा और अहंकारशब्दकरिकै तौ तिस ईक्षणतैं अनंतर भावी ता मायाका वृत्तिरूप बहुत

होणेके संकल्पका ग्रहण करणा । तिस संकल्पतैं अनंतर आकाशा-दिक क्रमकरिकै पंचमहाभूतोंकी उत्पत्ति ग्रहण करणी इति । और सांख्यशास्त्रकरिकै सिद्ध जे अव्यक्त महातत्व अहंकार यह तीन तत्त्व हैं ते तीनों वेदांतसिद्धांतविषे अंगीकार करे नहीं उलटा (ईक्षतेर्नाशब्दम्) इत्यादिक सूत्रोंके व्याख्यानविषे श्रीभाष्यकारोंनैं ते सांख्यशास्त्रकल्पितप्रधानादिक पदार्थ बहुत विस्तारतें खंडन करेहैं। तहां (मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् । ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् ।) इस श्रुतिकरिकै प्रतिपादन करी जा मायानामा परमेश्वरकी शक्ति है सा मायाशक्तिही इहां श्रीभगवान्नैं अव्यक्तशब्दकरिकै कथन करीहै। और (तदैक्षत) इस श्रुतिनैं कथन कऱ्या जो स्रष्टव्य जगत्‌विषयक मायाका वृत्तिरूप ईक्षण है सो ईक्षणही इहां श्रीभगवान्नैं बुद्धिशब्दकरिकै कथन कऱ्या है। और (बहुस्यां प्रजायेय) इस श्रुतिनें कथन कऱ्या जो ता मायाका वृत्तिरूप बहुत होणेका संकल्प है सो परमेश्वरका संकल्प ही इहां श्रीभगवान्नैं अहंकारशब्दकरिकै कथन कऱ्याहै । तिसतैं अनंतर (तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूत आकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी ।) इस श्रुतिनैं यथाक्रमतैं आकाशादिक पंचमहाभूतोंकी उत्पत्ति कथन करीहै । इत्यादिक श्रुतिप्रमाणकरिकै सिद्ध यह वेदांतपक्षही श्रेष्ठ है इति । और श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसन, घ्राण यह जे पंच ज्ञानइंद्रिय है । तथा वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ यह जे पंच कर्मइंद्रिय हैं यह दोनों मिलिके दश इंद्रिय होवैं हैं। तथा संकल्पविकल्परूप जो एक मन है तथा तिन श्रोत्रादिक दश इंद्रियोंके जे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह पंच विषय हैं तहां श्रोत्रादिक पंच ज्ञानइंद्रियोंके तो यह शब्दादिक पंच ज्ञाप्यत्वरूप करिकै विषय हैं और वागादिक पंचकर्मइंद्रियोंके तो ते शब्दादिक पंच कार्यत्वरूपकरिकै विषय हैं। तहां पूर्व कथन करी हुई अष्ट प्रकारकी प्रकृति पंच ज्ञानइंद्रिय, पंच कर्मइंद्रिय, पंच विषय, एक मन इन सर्वोंकूं सांख्यशास्त्रवाले चौवीस

तत्त्व कहैं हैं इति । और सुखविषे तथा सुखके साधनोंविषे यह सुख हमारेकूं प्राप्त होवै तथा यह सुखके साधन हमारेकूं प्राप्त होवैं या प्रकारकी स्पृहारूप जा चित्तकी वृत्तिविशेष है जिसकूं शास्त्रविषे कामभी कहैंहैं तथा रागभी कहैं है ताका नाम इच्छा है और दुःखविषे तथा दुःखके साधनोंविषे यह दुःख हमारेकूं मत प्राप्त होवै तथा दुःखके साधन हमारेकूं मत प्राप्त होवैं या प्रकारकी जा पूर्वउक्त स्पृहाका विरोधी चित्तकी वृत्तिविशेष है जिसकूं शास्त्रविषे क्रोधीभी कहैं है तथा ईर्ष्याभी कहैंहैं ताका नाम द्वेष है । और निरुपाधिक इच्छाका विषयभूत तथा धर्म है असाधारण कारण जिसका तथा परमसत्यसुखका अभिव्यंजक ऐसी जा चित्तकी वृत्तिविशेष है ताका नाम सुख है । और निरुपाधिक द्वेषका विषयभूत तथा अधर्म है असाधारण कारण जिसका ऐसी जा चित्तकी वृत्तिविशेष है ताका नाम दुःख है । और पंचमहाभूतोंका परिणामरूप ऐसा जो इंद्रियों सहित शरीर है ताका नाम संघात है । और स्वरूपज्ञानका अभिव्यंजक तथा प्रमाण है असाधारण कारण जिसका ऐसी जा प्रमाज्ञाननामा चित्तकी वृत्तिविशेष है ताका नाम चेतना है । और व्याकुलताकूं प्राप्त हुए देहइंद्रियोंके स्थित करणेका हेतुरूप जो प्रयत्न है ताका नाम धृति है । इहां इच्छादिकोंका ग्रहण अंतःकरणके सर्व धर्मोंका उपलक्षण है ते अंतःकरणके धर्म श्रुतिविषे यह कहे हैं । तहां श्रुति-(कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धाधृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव ।) अर्थ यह-इच्छा, संकल्प, संशय, श्रद्धा, अश्रद्धा, धृति, अधृति, लज्जा, वृत्तिज्ञान, भय यह सर्व मनरूपही हैं इति । यह श्रुतिवचन (मृद्घटः) इस वचनकी न्याईं मनरूप उपादानकारणके साथि कामादिक कार्योंका अभेद कथनकरिकै तिन कामादिक कार्योंविषे मनका धर्मपणा कथन करैहै । इस प्रकार पंचमहाभूतोंतैं आदिकलैके धृतिपर्यंत पूर्व कथन करे हुए जितनेक जडपदार्थ हैं ते सर्व जडपदार्थ क्षेत्रज्ञनामा साक्षीकरिकै भास्यमान होणेतैं तिस क्षेत्रज्ञ साक्षीतैं भिन्न है । ऐसे यह

सर्व जड पदार्थ हमनें संक्षेपकरिकै क्षेत्र इस नामकरिकै कथन करे हैं। तथा वे क्षेत्ररूप सर्व पदार्थ भास्य अचेतनरूपही हैं। शंका हे भगवन्! शरीर इंद्रियोंका संघात ही चेतनरूप होणेतैं क्षेत्रज्ञ है इस प्रकार लोकायतिक मानैंहैं। और चेतनरूप क्षणिक विज्ञान ही आत्मा है, इस प्रकार सुगत मानैं हैं। और इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान यह सर्व आत्माके लिंग हैं इस प्रकार नैयायिक मानैं हैं। यातैं पंचमहाभूतोंतैं आदिलैके धृतिपर्यंत यह सर्व क्षेत्ररूप हैं यह आपका कहणा कैसे संभवैगा? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता क्षेत्रके लक्षणकूं कहैंहैं (सविकारमिति) तहां जन्मतैं आदिलैके विनाशपर्यंत जो परिणाम ताका नाम विकार है तिस विकारसहित जो होवै ताका नाम सविकार है अर्थात् उत्पत्तिनाशादिक विकारोंवालेका नाम सविकार है। तहां पंचमहाभूतोंतैं आदिलैके धृतिपर्यंत जे पदार्थ पूर्व कथन करे हैं ते सर्व पदार्थ सविकाररूप हैं यातैं ते सर्वपदार्थ तिस विकारके साक्षी होइसकैं नहीं, काहेतैं आपणा उत्पत्ति विनाश आपणे करिकै देख्या जाता नहीं। और ता उत्पत्ति नाशतैं भिन्न दूसरेभी जितनेक आपणे धर्म हैं तिन धर्मोंकाभी आपणे दर्शनतैं विना दर्शन संभवता नहीं। जिस कारणतैं धर्मीके दर्शनतैं अनंतरही ताके धर्मोंका दर्शन होवै है। तहां जो कदाचित् आपणे करिकै ही आपणा दर्शन मानिये तौ ता दर्शनरूप क्रियाका कर्त्तापणा तथा कर्मपणा आपणेविषे प्राप्त होवैगा। सो एकही वस्तुविषे एकही कालविषे एकही क्रियाका कर्त्तापणा तथा कर्मपणा अत्यंत विरुद्ध है यातैं सविकार वस्तु ता उत्पत्तिनाशादिक विकारका साक्षी होइसकै नहीं किंतु निर्विकार वस्तुही तिन सर्व विकारोंका साक्षी सिद्ध होवै है यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। विकारीपणाही तिस क्षेत्रका चिह्न है अर्थात् जिस जिस पदार्थविषे सो विकारीपणा है सो सो पदार्थ क्षेत्ररूपही जानणा। कोई नाम लैके परिगणन ता क्षेत्रका चिह्न है नहीं ॥ ५ ॥ ६ ॥

इस प्रकार क्षेत्रके स्वरूपका प्रतिपादन करिकै तिस क्षेत्रज्ञकूं क्षेत्रतै भिन्नकरिकै विस्तारतै प्रतिपादन करणेवासतै तिस क्षेत्रज्ञके ज्ञानकी योग्यता अर्थ श्रीभगवान् प्रथम अमानित्वादिक वीस साधनोंकूं पंचश्लोकोंकरिकै कथन करै हैं-

अमानित्वमदंभित्वमहिंसा क्षांतिरार्जवम् ॥
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) अमानित्वम् । अदम्भित्वम् । अहिंसा । क्षांतिः । आर्जवम् । आचार्योपासनम् । शौचम् । स्थैर्यम् । आत्मविनिग्रहः ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अमानिपणा अदंभिपणा अहिंसा क्षांति आर्जव आचार्यकी उपासना शौच स्थैर्य आत्माका निग्रह यह सब ज्ञानके साधन होणेतै ज्ञानरूप हैं ॥ ७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! तहां जे गुण आपणेविषे विद्यमान हैं तथा जे गुण आपणेविषे नहीं विद्यमान हैं ऐसे विद्यमान गुणोंकरिकै तथा अविद्यमान गुणोंकरिकै जा आपणी स्तुति है ताका नाम मानीपणा है ता मानीपणेतै जो रहित होणा है ताका नाम अमानित्व है १ । और लाभ पूजा ख्यातिके वासतै जो लोकोंके आगे आपणे धर्मोंका प्रगट करणा है ताका नाम दंभीपणा है ता दंभीपणेतै जो रहित होणा है ताका नाम अदंभित्व है २ । और शरीर मन वाणीकरिकै जो प्राणियोंका पीडन है ताका नाम हिंसा है ता हिंसातै जो रहित होणा है ताका नाम अहिंसा है ३ । और चित्तके क्रोधादिक विकारोंका कारणरूप जो दुष्टपुरुषोंकृत अपराध है ता अपराधके प्राप्तहुएभी जो निर्विकार चित्तपणे करिकै तिस अपराधका सहन करणा है ताका नाम क्षांति है ४ । और जैसा आपणे हृदयविषे होवै तैसाही बाह्य व्यवहार करणा याप्रकारका जो अकुटिलपणा है ताका नाम आर्जव है अर्थात् अन्य-

प्राणियोंकी वंचना करणेतें रहित होणेका नाम आर्जव है ५ । और ब्रह्मविद्याका उपदेश करणेहारा जो आचार्य है तिस आचार्यका जो श्रद्धाभक्तिपूर्वक पूजन नमस्कारादिकोंकरिकै सेवन है ताका नाम आचार्योपासन है ६ । और शुद्धिका नाम शौच है । सो शौच दो प्रकारका होवै है–एक तौ बाह्य शौच होवैहै और दूसरा अंतरशौच होवैहै । तहां जलमृत्तिकाकरिकै शरीरके मलोंका जो प्रक्षालन है ताका नाम बाह्यशौच है। और विषयोंविषे दोषदर्शनरूप विरोधी वासनावोंकरिकै मनके रागद्वेषादिक मलोंकी जो निवृत्ति करणी है ताका नाम अंतरशौचहै ७ । और मोक्षके साधनोंविषे प्रवृत्त हुए पुरुषोंकूं अनेकप्रकारके विघ्नोंके प्राप्त हुएभी तिस उद्यमका न परित्याग करिकै जो पुनः पुनः प्रयत्नकी अधिकता है ताका नाम स्थैर्य है ८।और देह इंद्रियोंका संघातरूप आत्माका मोक्षतैं प्रतिकूलविषे स्वभावतैं प्राप्त प्रवृत्तिकूं निरुद्ध करिकै जो मोक्षके साधनोंविषेही व्यवस्थापन है ताका नाम आत्मविनिग्रह है ९ । यह अमानित्वादिक सर्व ज्ञानके साधन होणेतै ज्ञानरूप कहेहैं । इस प्रकारतें इस श्लोकका तथा वक्ष्यमाण श्लोकोंका एकादश श्लोकके (एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तम्) इस वचनके साथि अन्वय करणा ॥ ७ ॥

किंच–

इंद्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ॥
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८ ॥

(पदच्छेदः) इंद्रियार्थेषु । वैराग्यम् । अनहंकारः । एव । च । जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! श्रोत्रादिक इंद्रियोंके शब्दादिक विषयोंविषे जो वैराग्यहै तथा अहंकारतै जो रहितपणाहै तथा जन्म, मृत्यु, जरा व्याधि, दुःख, दोष इन सर्वोंका जो पुनः पुनः दर्शन है ॥ ८ ॥

भा॰टी॰–हे अर्जुन ! श्रोत्रादिक इंद्रियोंके शब्दादिक विषयोंविषे अथवा इस लोकके तथा परलोकके विषयभोगोंविषे रागकी विरोधी

इस प्रकार क्षेत्रके स्वरूपका प्रतिपादन करिकै तिस क्षेत्रज्ञकूं क्षेत्रतैं भिन्नकरिकै विस्तारतैं प्रतिपादन करणेवास्तै तिस क्षेत्रज्ञके ज्ञानकी योग्यता अर्थ श्रीभगवान् प्रथम अमानित्वादिक वीस साधनोंकूं पंचश्लोकोंकरिकै कथन करै है-

अमानित्वमदंभित्वमहिंसा क्षांतिरार्जवम् ॥
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) अमानित्वम् । अदम्भित्वम् । अहिंसा । क्षांतिः । आर्जवम् । आचार्योपासनम् । शौचम् । स्थैर्यम् । आत्मविनिग्रहः ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अमानिपणा अदंभिपणा अहिंसा क्षांति आर्जव आचार्यकी उपासना शौच स्थैर्य आत्माका निग्रह यह सब ज्ञानके साधन होणेतें ज्ञानरूप हैं ॥ ७ ॥

भा॰ टी॰—हे अर्जुन ! तहां जे गुण आपणेविषे विद्यमान हैं तथा जे गुण आपणेविषे नहीं विद्यमान हैं ऐसे विद्यमान गुणोंकरिकै तथा अविद्यमान गुणोंकरिकै जा आपणी स्तुति है ताका नाम मानीपणा है ता मानीपणेतें जो रहित होणा है ताका नाम अमानित्व है १ । और लाभ पूजा ख्यातिके वास्तै जो लोकोंके आगे आपणे धर्मोंका प्रगट करणा है ताका नाम दंभीपणा है ता दंभीपणेतें जो रहित होणा है ताका नाम अदंभित्व है २ । और शरीर मन वाणीकरिकै जो प्राणियोंका पीडन है ताका नाम हिंसा है ता हिंसातें जो रहित होणा है ताका नाम अहिंसा है ३ । और चित्तके क्रोधादिक विकारोंका कारणरूप जो दुष्टपुरुषोंकृत अपराध है ता अपराधके प्राप्तहुएभी जो निर्विकार चित्तपणे करिकै तिस अपराधका सहन करणा है ताका नाम क्षांति है ४ । और जैसा आपणे हृदयविषे होवै तैसाही बाह्य व्यवहार करणा याप्रकारका जो अकुटिलपणा है ताका नाम आर्जव है अर्थात् अन्य-

प्राणियोंकी वंचना करणेतें रहित होणेका नाम आर्जव है ५ । और ब्रह्मविद्याका उपदेश करणेहारा जो आचार्य है तिस आचार्यका जो श्रद्धाभक्तिपूर्वक पूजन नमस्कारादिकोंकरिकै सेवन है ताका नाम आचार्योपासन है ६ । और शुद्धिका नाम शौच है । सो शौच दो प्रकारका होवै है—एक तौ बाह्य शौच होवैहै और दूसरा अंतरशौच होवैहै । तहां जलमृत्तिकाकरिकै शरीरके मलोंका जो प्रक्षालन है ताका नाम बाह्यशौच है। और विषयोंविषे दोषदर्शनरूप विरोधी वासनावोंकरिकै मनके रागद्वेषादिक मलोंकी जो निवृत्ति करणी है ताका नाम अंतरशौचहै ७ । और मोक्षके साधनोंविषे प्रवृत्त हुए पुरुषोंकूं अनेकप्रकारके विघ्नोंके प्राप्त हुएभी तिस उद्यमका न परित्याग करिकै जो पुनः पुनः प्रयत्नकी अधिकता है ताका नाम स्थैर्य है ८।और देह इंद्रियोंका संघातरूप आत्माका मोक्षतें प्रतिकूलविषे स्वभावतें प्राप्त प्रवृत्तिकूं निरुद्ध करिकै जो मोक्षके साधनोंविषेही व्यवस्थापन है ताका नाम आत्मविनिग्रह है ९ । यह अमानित्वादिक सर्व ज्ञानके साधन होणेतें ज्ञानरूप कहेहैं । इस प्रकारतें इस श्लोकका तथा वक्ष्यमाण श्लोकोंका एकादश श्लोकके (एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तम्) इस वचनके साथि अन्वय करणा ॥ ७ ॥

किंच—

इंद्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ॥
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८ ॥

(पदच्छेदः) इंद्रियार्थेषु । वैराग्यम् । अनहंकारः । एव । च । जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! श्रोत्रादिक इंद्रियोंके शब्दादिक विषयोंविषे जो वैराग्यहै तथा अहंकारतें जो रहितपणाहै तथा जन्म, मृत्यु, जरा व्याधि, दुःख, दोष इन सर्वोंका जो पुनः पुनः दर्शन है ॥ ८ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! श्रोत्रादिक इंद्रियोंके शब्दादिक विषयोंविषे अथवा इस लोकके तथा परलोकके विषयभोगोंविषे रागकी विरोधी

जा स्पृहारूप चित्तकी वृत्तिविशेष है ताका नाम वैराग्य है १० । और लोकविषे आपणी स्तुतिके अभाव हुएभी मनविषे प्रगट हुआ जो मैं सर्वते उत्कृष्ट हूं याप्रकारका गर्व है ताका नाम अहंकार है ता अहंकारका जो अभाव है ताका नाम अनहंकार है ११ । और माताके उदरविषे नवमासपर्यंत निवासकरिकै योनिद्वारा जो बाह्य निकसणा है ताका नाम जन्म है और प्राणोंके उत्क्रमणकालविषे सर्व मर्मस्थानोंका जो छेदन है ताका नाम मृत्यु है । और जिस अवस्थाविषे बुद्धिकी मंदता तथा सर्व अंगोंकी शिथिलता तथा स्वजनादिकृत परिभव इत्यादिक दोष प्राप्त होवैं है ता अवस्थाका नाम जरा है । और ज्वर अतीसार आदिक रोगोंका नाम व्याधि है । और अध्यात्म अधिभूत अधिदैव यह तीनों उपद्रव हैं निमित्त जिसविषे ऐसा जो इष्टवस्तुके वियोगजन्य तथा अनिष्टवस्तुके संयोगजन्य चित्तका परितापरूप परिणामविशेष है ताका नाम दुःख है । और वात, पित्त, श्लेष्म, मल, मूत्र इत्यादिकोंकरिकै परिपूर्ण होणेतै जो इस शरीरविषे निंदितपणा है ताका नाम दोष है ऐसे जन्मका तथा मृत्युका तथा ज्वरका तथा व्याधियोंका तथा दुःखोंका तथा दोषका जो अनुदर्शन है अर्थात् पुनःपुनः विचार करिकै देखणा है । अथवा जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि दुःख इन पांचोंविषे दोषका पुनः पुनःदर्शन है। अथवा जन्म. मृत्यु, जरा, व्याधि इन च्यारोंविषे दुःखरूप दोषका जो पुनः पुनः दर्शन है । अथवा जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि इन च्यारोंविषे दुःखका तथा दोषका जो पुनःपुनः दर्शन है । तहां जन्मविषे तौ माताके उदरविषे नवमास पर्यंत अत्यंत संकुचित होइकै स्थित होणा । तथा माताके मलविषे स्थित कृमियोंकरिकै दंशन होणा । तथा माताके जठराग्निकरिकै दाह होणा तथा जरायु चर्मकरिकै वेष्टित होणा। तथा जन्मकालविषे प्रसववायुकरिकै आकर्षण होणा। तथा अत्यंत अल्पयोनियंत्रतैं निकसणा । तथा मलमूत्रविषे स्थित होणा इसतैं आदिलेके अनेकप्रकारके दुःख तथा दोष ता जन्मविषे हैं । और मृत्युविषे तौ सर्व

नाडियोंका आकर्षण होणा । तथा मर्मस्थानोंका छेदन होणा । तथा प्राणोंका आकुंचन होणा । तथा ऊर्ध्वश्वास होणे । तथा अत्यंत व्यथाकरिकै मलमूत्रादिकोंका बाह्य निकसणा इसतैं आदिलैके अनेकप्रकारके दुःख तथा दोष ता मृत्युविषे हैं । और जराअवस्थाविषे तौ सर्व अंगोंकी शिथिलता होणी । तथा श्रोत्रादिक इंद्रियोंकी मंदता होणी तथा शरीरविषे कंपादिक होणे । तथा कास श्वास होणा । तथा उठते हुए नीचे पड़िजाणा । तथा आपणे स्वजनोंकरिकै निरादरकूं प्राप्त होणा । तथा शरीरके द्वारोंतैं मल मूत्र लाल आदिकोंका प्राप्तहोणा । इसतैं आदिलैके अनेक प्रकारके दुःख तथा दोष ता जराअवस्थाविषे हैं । और ज्वरादिक व्याधियोंविषे तौ शरीरविषे दुर्बलता होणी । तथा शीतज्वरादिकोंके वेग करिकै परितापादिक होणे । तथा अत्यंत कटुकषाय औषधोंका पान करणा । तथा देहविषे दुर्गंध होणा । तथा स्वेदादिकोंका निकसणा । इसतैं आदिलैके अनेक प्रकारके दुःख तथा दोष तिन व्याधियोंविषे हैं । ते जन्ममरणादिकोंके दुःख तथा दोष आत्मपुराणके प्रथम अध्यायविषे हम विस्तारतैं कथन करिआये हैं । यातैं इहां संक्षेपतैं कथन करेहैं । याप्रकारके दुःखदोषोंका दर्शन विषयोंतैं वैराग्यका हेतु होणेतैं आत्मज्ञानविषे उपकार करैहै । यातैं इन अधिकारीजनोंनैं सो दुःखदोषोंका दर्शन अवश्यकरिकै संपादन करणा १२ ॥ ८ ॥

किंच—

असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु ॥
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) असक्तिः । अनभिष्वंगः । पुत्रदारगृहादिषु । नित्यम् । च । समचित्तत्वम् । इष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुत्रस्त्रीगृहादिक पदार्थोंविषे सक्तितैं रहितहोणा तथा अभिष्वंगतैं रहित होणा तथा इष्टअनिष्टकी प्राप्तिविषे सर्वदा समचित्त रहणा ॥ ९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! यह पदार्थ हमारे हैं इतने अभिमानमात्र करिकै जो तिन पदार्थोंविषे प्रीति है ताका नाम सक्ति है तिस सक्तितैं रहितका नाम असक्ति है १३ । और यह पदार्थ मैं ही हूं याप्रकारकी अभेदभावना करिके जो तिन पदार्थोंविषे प्रीतिकी अतिशयता है अर्थात् तिन पदार्थोंके सुखीदुःखी हुए मैं ही सुखी दुःखी होवूंहू या प्रकारका जो अत्यंत अभिनिवेश है ताका नाम अभिष्वंग है । ता अभिष्वंगतै रहित होणेवैं रहित होणेका नाम अनभिष्वंग है १४ । शंका—हे भगवन् ! सक्ति, अभिष्वंग यह दोनों किन पदार्थोंविषे परित्याग करणेयोग्य हैं ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं (पुत्रदारगृहादिषु इति) हे अर्जुन ! पुत्रोंविषे तथा स्त्रियोंविषे तथा गृहोंविषे सा सक्ति तथा अभिष्वंग परित्याग करणे योग्य हैं । इहां (पुत्रदारगृहादिषु) इस वचनविषे स्थित जो आदिशब्द है ता आदिशब्दकरिकै इनोंतै भिन्न दूसरेभी जितनेक स्नेहके विषय धन भृत्य आदिक पदार्थ हैं तिन सर्वोंका ग्रहण करणा । अर्थात् स्नेहके विषय सर्व पदार्थोंविषे सक्तितैं रहित होणा तथा अभिष्वंगतै रहित होणा । और इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिविषे सर्वदा समचित्त होणा अर्थात् प्रिय पदार्थोंकी प्राप्तिविषे तौ हर्षकूं नहीं करणा और अप्रिय पदार्थोंकी प्राप्तिविषे विषादकूं नहीं करणा इसीका नाम समचित्तपणा है ॥ १५ ॥ ९ ॥

किंच—

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ॥
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) मयि । च । अनन्ययोगेन । भक्तिः । अव्यभिचारिणी । विविक्तदेशसेवित्वम् । अरतिः । जनसंसदि ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अनन्ययोगकरिके अव्यभिचारिणी ऐसी जा मैं परमेश्वरविषे भक्ति है तथा एकांतदेशका सेवन है तथा विषयीजनोंकी सभाविषे जा अप्रीति है ॥ १० ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! मैं भगवान् वासुदेव परमेश्वरविषे जा भक्ति है अर्थात् यह परमेश्वर सर्वतैं उत्कृष्ट है याप्रकारके सर्वतैं उत्कृष्टताज्ञानपूर्वक जा मेरेविषे निरतिशय प्रीति है । कैसी होवै सा भक्ति—अनन्ययोग करिकै अव्यभिचारिणी होवै । तहां इस भगवान् वासुदेवतैं परे दूसरा कोई है नहीं यातैं सो भगवान् वासुदेवही हमारी गति है या प्रकारका जो निश्चय है ताका नाम अनन्ययोग है । ऐसे अनन्ययोगकरिकै जा भक्ति अव्यभिचारिणी है अर्थात् किसीभी प्रतिकूल हेतुनैं निवृत्त करणेकूं अशक्य है ऐसी भक्तिभी ज्ञानकाही हेतु है । यह वार्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथन करी है । (प्रीतिर्न यावन्मयि वासुदेवे न मुच्यते देहयोगेन तावत्) अर्थ यह—इस अधिकारी पुरुषकी जब पर्यंत मैं भगवान् वासुदेवविषे निरतिशयप्रीति नहीं है तब पर्यंत यह अधिकारी पुरुष देहके संबंधतैं रहित होवै नहीं इति १६ । और विविक्तदेशका सेवित्व जो है तहां जो देश स्वभावतैं ही शुद्ध होवै अथवा संस्कारोंकरिकै शुद्ध कन्या होवै तथा अशुचि सर्पव्याघ्रादिकोंतैं रहितहोवै तथा चित्तकी प्रसन्नता करणेहारा होवै ता देशका नाम विविक्तदेश है । ऐसा नदीतीर पर्वतकी गुहा आदिक जो देश हैं ऐसे विविक्तदेशके सेवनकरणेका जो स्वभाव है ताका नाम विविक्तदेशसेवित्व है १७ । और आत्मज्ञानतैं विमुख तथा विषयभोगलंपटताका उपदेश करणेहारे ऐसे जे विषयी बहिर्मुखजन हैं तिन विषयी जनोंकी जा सभा है जा सभा तत्त्वज्ञानका अत्यंत प्रतिकूल है ता विषयी पुरुषोंकी सभाविषे जो अरति है अर्थात् ता सभाविषे जो नहीं रमण करणा है १८ । और तत्त्वज्ञानके अनुकूल ऐसी जा महात्मा जनोंकी सभा है तिस सभाविषे तौ इस अधिकारी जननैं अवश्यकरिकै प्रीति करणी । यह वार्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथन करी है । तहां श्लोक—(संगः सर्वात्मना हेयः स चेत्त्यक्तुं न शक्यते । स सद्भिः सह कर्त्तव्यः सतां संगो हि भेषजम् ॥) अर्थ यह—इस अधिकारी जननैं सर्व प्रकार करिकै संगका परित्याग करणा और जो कदाचित् सर्व प्रकारतैं ता संगका परित्याग नहीं कियाजावै तौभी

इसअधिकारी जननें विषयी बहिर्मुख पुरुषोंका संग कदाचित्‌भी नहीं करणा किंतु महात्मा जनोंके साथि सो संग करणा । जिस कारणतें सो महात्माजनोंका संग इस संसाररूप रोगके निवृत्त करणेका भेषज है ॥ १० ॥

किंच–

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ॥
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) अध्यात्मज्ञाननित्यत्वम् । तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् । एतत् । ज्ञानम् । इति । प्रोक्तम् । अज्ञानम् । यत् । अतः । अन्यथा ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अध्यात्मज्ञानविषे जा निष्ठा है तथा तत्त्वज्ञानके प्रयोजनका जो दर्शन है यह अमानित्वादिक सर्व ज्ञान इसनाम करिकै कथन करे हैं इन्होंतें विपरीत जे मानित्वादिक हैं ते सर्व अज्ञानरूपही हैं ॥ ११ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! आत्माकूं आश्रयणकरिकै प्रवृत्तहुआ जो आत्म-अनात्मविवेकज्ञान है ताका नाम अध्यात्मज्ञान है तिस अध्यात्मज्ञानविषे ही जा अत्यंतनिष्ठा है ताका नाम अध्यात्मज्ञाननित्यत्व है । जिस कारणतें तिस विवेकविषे निष्ठावान् पुरुष ही महावाक्यार्थ ज्ञानविषे समर्थ होवै है । इस कारणतें इस अधिकारी पुरुषनें तिस अध्यात्मज्ञानविषे निष्ठा अवश्यकरिकै करणी १९ । और तत्त्वज्ञानके अर्थका जो दर्शन है । तहां (अहं ब्रह्मास्मि तत्त्वमसि) इत्यादिक वेदांतवाक्य हैं कारण जिसके तथा अमानित्वादिक सर्व साधनोंके परिपाकका फलरूप ऐसा जो मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारका साक्षात्कार है ताका नाम तत्त्वज्ञान है ऐसे तत्त्वज्ञानका जो अर्थ है अर्थात् अविद्यादिक सर्व अनर्थोंकी निवृत्तिरूप तथा परमानंदकी प्राप्तिरूप जो मोक्षरूप प्रयोजन है तिस तत्त्वज्ञानके मोक्षरूप अर्थका जो दर्शन है अर्थात् पुनःपुनः विचारकरिकै देखणा है ताका नाम तत्त्वज्ञानार्थदर्शन है २० । ऐसा तत्त्वज्ञानार्थद-

र्शनभी इस अधिकारी पुरुषकूं अवश्यकरिकै कर्त्तव्यहै । काहेतैं तिस तत्त्वज्ञानके फलके दर्शन हुएतैं अनंतर ही तिसके साधनोंविषे प्रवृत्ति होवै है फलके ज्ञानतैं विना तिसके साधनोंविषे प्रवृत्ति होवै नहीं । इस प्रकार अमानित्वतैं आदिलैके तत्त्वज्ञानार्थदर्शन पर्यंत कथन करे जे वीस २० साधन हैं, ते वीस साधन आत्मज्ञानकी प्राप्तिके हेतुरूप होणेतैं ज्ञान इस नामकरिकै कथन करे हैं । इन अमानित्वादिक साधनोंतैं विपरीत जे मानित्व, दंभित्व, हिंसा, अक्षांति, अनार्जव इत्यादिक हैं ते मानित्वादिक आत्मज्ञानके विरोधी होणेतैं अज्ञान इस नामकरिकै कथन करे हैं । यातैं इन अधिकारी पुरुषोंनैं तिन अज्ञाननामा मानित्व दंभित्वादिकोंका परित्याग करिकै ते ज्ञाननामा अमानित्व अदंभित्वादिक वीस साधन अवश्यकरिकै संपादन करणे ॥ ११ ॥

हे भगवन् ! अमानित्वतैं आदिलैके तत्त्वज्ञानार्थदर्शन पर्यंत पूर्व कथन करे जे ज्ञाननामा वीस साधन हैं तिन साधनोंकरिकै कौन वस्तु जानणे योग्य है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् षट् श्लोकोंकरिकै तिस ज्ञेयवस्तुका निरूपण करै हैं—

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ॥
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते॥ १२ ॥

(पदच्छेदः) ज्ञेयम् । यत् । तत् । प्रवक्ष्यामि । यत् । ज्ञात्वा । अमृतम् । अश्नुते । अनादिमत् । परम् । ब्रह्म । न । सत् । तत् । न । असत् । उच्यते ॥ १२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मुमुक्षुजननैं जो वस्तु जानणे योग्य है सो ज्ञेयवस्तु मैं तुम्हारे ताईं कथन करताहूं जिस ज्ञेयवस्तुकूं जानिकै यह मुमुक्षु अमृतभावकूं प्राप्त होवै है सो ज्ञेयवस्तु अनादिमत् परं ब्रह्म है सो ब्रह्म नहीं तो सत् कह्या जावै है तथा नहीं असत् कह्याजावैहै ॥ १२॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! इस मुमुक्षु जननैं पूर्व उक्त अमानित्वादिक साधनोंकरिकै जो वस्तु जानणे योग्य है सो ज्ञेयवस्तु मैं भगवान् तैं अर्जु-

नके ताईं स्पष्टकरिके कथन करताहूं। अब श्रीभगवान् ता श्रोता अर्जुनकूं तिस ज्ञेयवस्तुके अभिमुख करणेवासतै उत्तमफलकरिकै ता ज्ञेयवस्तुकी स्तुति करैं हैं (यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते इति।) हे अर्जुन ! जिस वक्ष्यमाण ज्ञेयवस्तुकूं जानिकरिके यह अधिकारी पुरुष अमृतभावकूं प्राप्त होवै है अर्थात् इस अनर्थरूप संसारतैं मुक्त होवै है। शंका—हे भगवन् ! जिस ज्ञेयवस्तुकूं जानिकै यह अधिकारी पुरुष मुक्त होवै है सो ज्ञेयवस्तु कैसा है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता ज्ञेयवस्तुका स्वरूप कथन करैं हैं (परं ब्रह्म इति) हे अर्जुन ! परं कहिये अतिशयतातै रहित, तथा ब्रह्म कहिये देशकालवस्तुपरिच्छेदतैं रहित ऐसा जो परमात्मा देव है सो परमात्मा देव ही ज्ञेयरूप है अर्थात इस मुमुक्षुजननैं पूर्वउक्त साधनों-करिके जानणेयोग्य है। कैसा है सो परब्रह्म—अनादिमत् है। तहां कारणका नाम आदि है। अथवा उत्पत्तिका नाम आदि है सो आदि जिस वस्तुका होवै ता वस्तुका नाम आदिमत् है। ऐसे आदिमत् देहादिक पदार्थ हैं तिन आदिमत्पदार्थोंतै जो विलक्षण होवै अर्थात् कारणतैं तथा उत्पत्तितैं रहित होवै ताका नाम अनादिमत् है अर्थात् सर्वविकारोंतै विलक्षण वस्तुका नाम अनादिमत् है। और किसी टीका-विषे तौ (अनादिमत्परम्) यह एकही पद अंगीकारकरिकै यह अर्थ कन्या है। तहां कार्यका नाम आदिमत् है। और कारणका नाम पर है। ता कार्यकारण दोनोंतें जो अन्य होवै ताका नाम अनादिमत्पर है। और अन्य किसी टीकाविषे तौ (अनादि मत्परम्) या प्रकारके दो पद अंगीकारकरिकै यह अर्थ कन्या है। तहां सो ब्रह्म अनादि है अर्थात् उत्पत्तितें रहित है। तथा सो ब्रह्म मत्पर है अर्थात् मैं सगुणब्रह्मतें पर निर्वि-शेषरूप है इति। और अन्य किसी टीकाविषे तौ (मत्परम्) इस पदका यह अर्थ कन्या है—मैं भगवान वासुदेव हूं परा शक्ति जिसकी ताका नाम मत्पर है। सो यह व्याख्यान समीचीन नहीं है। काहेतैं जिस ज्ञेयवस्तुकूं जानिकै यह अधिकारी पुरुष अमृतभावकूं प्राप्त होवै है सो ज्ञेयवस्तु मैं

तुम्हारे प्रति कथन करता हूं, या प्रकारका वचन श्रीभगवान्नें पूर्वकथन कऱ्या है। सा मोक्षकी प्राप्ति निर्विशेष शुद्धब्रह्मके ज्ञानतें ही होवैहै। शक्तिवाले सविशेष ब्रह्मके ज्ञानतें सा मोक्षकी प्राप्ति होवै नहीं। यातें इहां श्रीभगवान्नें निर्विशेष ब्रह्मही कथन कऱ्या है। ऐसे निर्विशेष ब्रह्मविषे शक्तिमत्त्व कहणा असंगत है इति। अब श्रीभगवान् ता ज्ञेयब्रह्मकी निर्विशेषताकूं कथन करें हैं (न सत्तन्नासदुच्यते इति।) तहां जो वस्तु अस्ति इस प्रकारतें विधिमुखकरिकै प्रमाणका विषय होवै है सो वस्तु सत् इस नामकरिकै कह्या जावै है। और जो वस्तु नास्ति इस प्रकारतें निषेधमुख करिकै प्रमाणका विषय होवै है सो वस्तु असत् इस नामकरिकै कह्या जावै है। और सो ज्ञेयब्रह्म तौ निर्विशेष है तथा स्वप्रकाश चैतन्यस्वरूप है यातें सो ब्रह्म सत् असत् दोनोंतें विलक्षण होणेतें सत्भी नहीं कह्या जावै तथा असत्भी नहीं कह्या जावैहै। तहां श्रुति-(यतो वाचो निवर्त्तते अप्राप्य मनसा सह।) अर्थ यह-मनसहित वाणी जिस निर्गुण ब्रह्मकूं प्राप्त होइकै जिस निर्गुण ब्रह्मकूं न प्राप्त होइकै जिस निर्गुण ब्रह्मतें निवृत्त होजावैं है इति। हे अर्जुन! जिसकारणतें सो ज्ञेयब्रह्म सत् नहीं है अर्थात् भावत्व धर्मका आश्रय नहीं है तथा असत् नहीं है अर्थात् अभावत्वधर्मका आश्रय नहीं है, इस कारणतें सो ज्ञेयब्रह्म किसी भी शब्दनें शक्तिरूप मुख्यवृत्तिकरिकै कथन नहीं करता। तात्पर्य यह-जाति, गुण, क्रिया, संबंध यह च्यारी शब्दकी प्रवृत्तिके हेतु होवैं है। जैसे गौ अश्व इत्यादिक शब्द तौ गोत्व अश्वत्व इत्यादिक जातियोंकूं लैके आपणेआपणे अर्थविषे प्रवृत्त होवै हैं। और शुक्ल कृष्ण इत्यादिक शब्दतौ शुक्ल नील इत्यादिक गुणोंकूं लैके आपणे आपणे अर्थविषे प्रवृत्त होवैंहैं। और पाचक, पाठक इत्यादिक शब्दतौ पाक पाठ इत्यादिक क्रियावोंकूं लैके आपणे आपणे अर्थविषे प्रवृत्त होवैं है। और धनी, गोमान् इत्यादिक शब्द तौ स्वस्वामिभाव आदिक संबंधोंकूं लैके आपणे आपणे अर्थविषे प्रवृत्त होवैं हैं। इहां गुण, क्रिया, संबंध

इन तीनोंतैं भिन्न जितनेक जातिरूप धर्म हैं तथा उपाधिरूप धर्म हैं ते सर्वधर्म जातिशब्दकरिकै ग्रहण करणे । तहां (न सत्तन्नासदुच्यते) इस वचनकरिकै श्रीभगवानूनैं तिस ज्ञेय ब्रह्मविषे जातिका निषेध कथन कऱ्या है सो जातिका निषेध गुण, क्रिया, संबंध इन तीनोंके निषेधकाभी उपलक्षण है अर्थात् तिस ज्ञेय ब्रह्मविषे जाति, गुण, क्रिया, संबंध यह च्यारों नहीं हैं। तहां (एकमेवाद्वितीयम् ।) यह श्रुति तिस ब्रह्मकूं एक अद्वितीयरूप कहती हुई ता ब्रह्मविषे जातिका निषेध करैहै । काहेतैं अनेक व्यक्तियोंविषे रहणेहारा जो एक धर्म है ताकूं जाति कहैं हैं । जैसे अनेक गौव्यक्तियोंविषे रहणेहारा जो एक गोत्वधर्म है ताकूं जाति कहै है । ऐसी जाति एक अद्वितीय ब्रह्मविषे संभवती नहीं। और (निर्गुणं निष्क्रिय शांतम्) यह श्रुति यथाक्रमतैं तिस ब्रह्मविषे गुण, क्रिया संबंध इन तीनोंका निषेध करै है । तहां (निर्गुणम्) इस पद करिकै तौ गुणोंका निषेध करैहै और (निष्क्रियम्) इस पदकरिकै क्रियाका निषेध करैहै और (शांतम्) इसपदकरिकै संबंधका निषेध करैं है । और (असंगो ह्ययं पुरुषः । अथातः आदेशो नेति नेति ।) यह दोनों श्रुतियां तौ तिस ज्ञेयब्रह्मविषे सर्व प्रपंचमात्रका निषेध करैं हैं । ऐसा जातिआदिक सर्वधर्मोंतै रहित सो निर्गुण ब्रह्म किसीभी शब्दनैं कथन करीता नहीं इति । शंका-हे भगवन् । सो निर्गुण ब्रह्म जो कदाचित् किसीभी शब्दकरिकै नहीं कथन कऱ्या जावैहै तौ (ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि ।) अर्थ यह-जो ज्ञेयवस्तु है तिसकूं मैं तुम्हारे प्रति कथन करताहूं । यह आपका वचन कैसे संगत होवैगा । तथा-(शास्त्रयोनित्वात् ।) अर्थ यह-उपनिषद्रूप वेदांतशास्त्र है योनि क्या प्रमाण जिसविषे ऐसा सो ब्रह्महै यह व्यास भगवान्का सूत्रभी कैसे संगत होवैगा ? समाधान हे अर्जुन ! तिस निर्गुणब्रह्मकूं उपनिषद्रूप शास्त्र जो प्रतिपादन करैहै सो शक्तिरूप मुख्यवृत्तिकरिकै प्रतिपादन करता नहीं किंतु यथाकथंचित् लक्षणावृत्तिकरिकै सो शब्द तिस निर्गुणब्रह्मकूं प्रतिपादन करैहै सो प्रतिपादन कर-

णेका प्रकार तौ द्वितीय अध्यायविषे (आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनम्) इस श्लोकविषे विस्तारतैं कथन करि आये हैं। यातैं तिस ज्ञेय ब्रह्मविषे शब्दकी प्रवृत्तिके निषेध करणेहारे (न सत्तन्नासदुच्यते) इस वचनके साथि (ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि) इस हमारे वचनका तथा (शास्त्रयोनित्वात्) इस सूत्रवचनका विरोध होवै नहीं इति । और किसी टीकाविषे तौ (न सत्तन्नासदुच्यते) इस वचनका यह अर्थ कऱ्याहै सो ज्ञेयब्रह्म प्रधानपरमाणु आदिकोंकी न्याई सत् इस नामकरिकै कह्या जावै नहीं । तथा शून्यकी न्याई असत् इस नामकरिकैभी कह्या जावै नहीं । तहांश्रुति-(नासदासीन्नोसदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमापरो यदिति।)अर्थ यह-इस सृष्टितैं पूर्व शून्यभी नहीं होताभया । तथा त्रिगुणात्मक प्रधानभी नहीं होताभया । तथा परमाणुभी नहीं होतेभये । तथा अव्यक्तभी नहीं होताभया ॥ १२॥

तहां पूर्व श्लोकविषे (न सत् उच्यते) इस वचनकरिकै तिस निरुपाधिक शुद्ध ब्रह्मविषे सत् शब्दकी तथा ता सत्शब्दजन्य ज्ञानकी अविषयता कथन करी ता कहणेकरिकै यह शंका प्राप्त हुई-तिस ज्ञेयब्रह्मकूं जो कदाचित् सत् शब्दका तथा ता सत्शब्दजन्यज्ञानका अविषय मानोगे तौ सो ब्रह्म वंध्यापुत्र शशशृङ्गकी न्याई असत् ही होवैगा । इस प्रकारकी शंकाकूं श्रीभगवान् (नासदुच्यते) इस वचनकरिकै सामान्यतैं निवृत्त करतेभये अब तिसी असत्पणेकी शंकाकूं विस्तारतैं निवृत्त करणे वास्तै श्रीभगवान् सर्वप्राणियोंके श्रोत्रादिक करणरूप उपाधिद्वारा चेतनक्षेत्रज्ञरूपता करिकै तिस ज्ञेयब्रह्मके अस्तिपणेकूं प्रतिपादन करैं हैं-

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ॥
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) सर्वतःपाणिपादम् । तत् । सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् । सर्वतःश्रुतिमत् । लोके । सर्वम् । आवृत्य । तिष्ठति ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो ज्ञेयब्रह्म कैसाहै सर्वदेहोंविषे हैं हस्तपाद जिसके तथा सर्वदेहोंविषे हैं नेत्रशिरमुख जिसके तथा सर्वदेहोंविषे श्रव-

णइंद्रियवाला है तथा सर्वप्राणियोंके शरीरविषे सर्वअचेतनवर्गकूं व्याप्यक रिकै स्थित है ॥ १३ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! पूर्व हमनैं कथन कऱ्या जो ज्ञेयब्रह्म है सो ज्ञेयब्रह्म कैसा है-सर्वतःपाणिपाद है । तहां सर्वदेहोंविषे स्थित जे अचेतनरूप पाणि हैं तथा पाद है ते अचेतनरूप सर्व पाणिपाद आपणे आपणे व्यापारविषे प्रवृत्त करीते है जिस चेतनरूप क्षेत्रज्ञाननैं ता चेतनका नाम सर्वतःपाणिपाद है । तहां लोकविषे जितनीक अचेतन पदार्थोंकी प्रवृत्तियां है ते सर्व प्रवृत्तियां चेतनरूप अधिष्ठानपूर्वक ही होवैंहै । चेतनरूप अधिष्ठानतैं विना जड पदार्थोंकी प्रवृत्ति कहींभी देखणेविषे आवती नहीं । जैसे रथादिक जडपदार्थोंकी प्रवृत्ति चेतनपुरुषपूर्वकही होवैहै तैसे हस्तपादादिक सर्व जडपदार्थोंकी प्रवृत्तियांभी चेतनब्रह्मपूर्वक ही होवैंहैं । ऐसे हस्तपादादिक सर्व जडवर्गके प्रवृत्तक चेतनक्षेत्रज्ञरूप ब्रह्मविषे नास्तिकपणेकी शंका कदाचित्भी संभवती नहीं इति । या प्रकारकी युक्ति (सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्) इत्यादिक सर्व पर्यायोंविषे जानिलेणी । इहां पाणिपाद इन दो इंद्रियोंका ग्रहण वागादिक सर्व कर्मइंद्रियोंका उपलक्षण है । पुनः कैसा है सो ज्ञेयब्रह्म-सर्वतोक्षिशिरोमुख है । तहां सर्व देहोंविषे स्थित जितनेक अक्षि है तथा शिर हैं तथा मुख है ते सर्व अक्षिशिर मुख आपणे आपणे व्यापारविषे प्रवृत्त करीतेहैं जिस चैतन्यनैं ताका नाम सर्वतोक्षिशिरोमुख है। पुनः कैसा है सो परब्रह्म-सर्वतःश्रुतिमत् है । तहां सर्वदेहोंविषे स्थित जितनेक श्रवणइंद्रिय हैं ते सर्व श्रवणइंद्रिय आपणे आपणे व्यापारविषे प्रवृत्त करीते है जिस चैतन्यनैं ताका नाम सर्वतःश्रुतिमत्है।इहां अक्षि श्रोत्र इन दोनों इंद्रियोंका ग्रहण सर्व ज्ञानइंद्रियोंका तथा मन बुद्धि आदिकोंका उपलक्षणहै । पुनः कैसाहै सो परब्रह्म-सर्वदेहोंविषे सो एकही नित्य विभु चेतन सर्वजडवर्गकूं अध्यासिक संबंधकरिकै आपणे सत्तास्फूर्तिरूपतैं व्याप्यकरिकै स्थित हुआहै अर्थात् निर्विकारस्थितिकूंही प्राप्त हुआ है । तात्पर्य यह-जैसे रज्जुरूप अधिष्ठान आपणेविषे कल्पित

सर्पादिकोंके गुणकरिकै तथा दोषकरिकै लिंपायमान होवै नहीं तैसे आपणेविषे अध्यस्त जडप्रपंचके दोषकरिकै तथा गुणकरिकै सो चेतन देव लेशमात्रवैंभी बंधायमान होवै नहीं इति। तहां सर्व देहोंविषे एकही चेतन है सो चेतन नित्य है तथा विभु है। देह देहविषे भिन्नभिन्न चेतन हैं नहीं। यह सर्व वार्त्ता पूर्व विस्तारतैं प्रतिपादन करिआयेहैं। तहां इस श्लोककरिकै श्रीभगवान्नैं यह दो अनुमान सूचन करे। श्रोत्रादिक प्रपंच ज्ञानइंद्रिय तथा वागादिक पंच कर्म इंद्रिय तथा मन बुद्धिआदिक चतुष्टय अंतःकरण यह सर्व चेतनशक्तिनिमित्तक स्वस्वव्यापारवाले हैं। स्वभावतैं जड होणेतैं चर्ममय अथवा काष्ठमय प्रतिमादिकोंकी न्याईं इति। तथा देह इंद्रियादिक सर्व स्वभावतैं जड है दूसरे चेतन अधिष्ठाताकी बुद्धिपूर्वक प्रवृत्तिवाले होणेतैं रथादिकोंकी न्याईं इति। इस प्रकारतै सर्व प्राणियोंके देहइंद्रियादिक उपाधियोंकरिकै तिस ज्ञेयब्रह्मका अस्तिपणा निश्चय कऱ्याजावै हैं ॥ १३ ॥

तहां (अध्यारोपापवादाभ्यां निःप्रपंचं प्रपंच्यते।) अर्थ यह—शुद्धब्रह्मविषे प्रथम इस सर्वप्रपंचका अध्यारोप करिकै तिसतैं अनंतर तिस सर्वप्रपंचका निषेधरूप अपवादकरिकै सो शुद्धब्रह्म श्रुति भगवतीनैं तथा ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंनै अधिकारी शिष्योंके प्रति आत्मारूपकरिकै प्रतिपादन करीताहै इति। इस वृद्ध पुरुषोंके न्यायकूं अनुसरण करिकै तिस ज्ञेयब्रह्मविषे सर्व प्रपंचका अध्यारोप करिकै (अनादिमत्परं ब्रह्म) इस पूर्वउक्त वचनका पूर्वले श्लोकविषे व्याख्यान कऱ्या। अब तिस अध्यारोपित सर्व प्रपंचका अपवाद करिकै (न सत्तन्नासदुच्यते) इस पूर्वउक्त वचनके व्याख्यान करणे अर्थ अधिकारी जनोंके प्रति निरुपाधिक स्वरूपके जानणेवासतै श्रीभगवान् आरंभ करैंहैं—

सर्वेंद्रियगुणाभासं सर्वेंद्रियविवर्जितम् ॥
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥ १४ ॥

(पदच्छेदः) सर्वेंद्रियगुणाभासम् । सर्वेंद्रियविवर्जितम् । असक्तम् । सर्वभृत् । च । एव । निर्गुणम् । गुणभोक्तृ । च ॥ १४ ॥

(पदार्थः)हे अर्जुन ! सो ज्ञेयब्रह्म सर्वइंद्रियोंतें रहित है तथा सर्वइंद्रियोंके व्यापारकरिकै भासमान है तथा सर्वसंबंधतें रहित है तथा सर्वके धारणकरणेहाराही है तथा सत्त्वादिक गुणोंतें रहितहै तथा तिन सत्त्वादिक गुणोंका भोक्ताहै ॥ १४ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! सो ज्ञेय परब्रह्म परमार्थतें तौ श्रोत्रादिक सर्व इंद्रियों तें रहित है आपणी मायाकरिकै सर्व इंद्रियोंके गुणोंकरिकै भासमान है । तहां बाह्यकरणरूप जे श्रोत्रवागादिक दश इन्द्रिय हैं । तथा अंतःकरणरूप जो मन बुद्धि हैं तिन सर्व इंद्रियोंके जे गुण हैं अर्थात् श्रवण, वचन, संकल्प, निश्चय इत्यादिक जे व्यापार हैं तिन सर्व इंद्रियोंके गुणोंकरिकै सो ज्ञेयब्रह्म भासमान होवै है अर्थात् सो परब्रह्म तिन सर्व इंद्रियोंके व्यापारकरिकै व्यापारवालेकी न्याई प्रतीत होवै है तहां श्रुति–(ध्यायतीव लेलायतीव ।) अर्थ यह–बुद्धिआदिक उपाधियोंके संबंधतें यह आत्मादेव ध्यान करताकी न्याई तथा चलायमान हुएकी न्याई प्रतीत होवै है इति । इस श्रुतिविषे ध्यायति इस शब्दकरिकै कथन कऱ्या जो ध्यान है सो ध्यान सब ज्ञानइंद्रियोंके व्यापारोंका उपलक्षण है । और लेलायति इस शब्दकरिकै कथन कऱ्या जो चलनरूप लेलायनहै सो लेलायन सर्व कर्मइंद्रियोंके व्यापारोंका उपलक्षण है । अर्थात् तिन इंद्रियोंके तादात्म्य अध्यासतें यह आत्मादेव मैं देखताहूं मैं श्रवण करता हूं मैं बोलता हूं मैं चालता हूं इस प्रकारतें तिसतिस इंद्रियके व्यापार विशिष्ट हुआ प्रतीत होवै है । और वास्तवतें तिन सर्व इंद्रियोंतें रहित है तहां श्रुति–(पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः । अपाणिपादो जवनो गृहीता) अर्थ यह–यह आत्मादेव वास्तवतें चक्षुतें रहित हुआभी देखै है तथा वास्तवतें श्रोत्रइंद्रियतें रहित हुआभी शब्दकूं श्रवण करै है । तथा वास्तवतें हस्तइंद्रियतें रहित हुआभी वस्तुकूं ग्रहण करै है । तथा वास्तवतें पादइंद्रियतें

रहित हुआभी शीघ्रगमनवाला है इति । पुनः कैसा है सो परब्रह्म–परमार्थतें तौ सर्व संबंधोंतें रहित है । तहां श्रुति–(असंगो ह्ययं पुरुषः । असंगो न हि सज्जते ।) अर्थ यह–यह परमात्मा पुरुष सर्व संगतें रहित होणेतें असंग है । तथा यह असंग आत्मादेव किसीभी पदार्थके साथि संबंधकूं प्राप्त होवै नहीं इति । इस प्रकार परमार्थतें असंगहुआभी सो परब्रह्म आपणी मायाशक्ति करिकै सर्वभृत् है । तहां लोकविषे अधिष्ठानतें विना कोईभी भ्रम होता नहीं किंतु रज्जु शुक्ति आदिक अधिष्ठान विषेही सर्परजतादिकोंका भ्रम होवै है । यातें जो चैतन्य आपणे सत्तरूपकरिकै सर्व कल्पित प्रपंचकूं धारण करै है तथा पोषण करै है ताका नाम सर्वभृत् है पुनः कैसा है सो ज्ञेय ब्रह्म–निर्गुण है अर्थात् परमार्थतें तौ सत्त्व रज तम इन तीन गुणोंतें रहित है तथा गुणोंका भोक्ता है अर्थात् शब्दस्पर्शादिक विषयद्वारा सुख दुःख मोहके आकारकरिकै परिणामकूं प्राप्त हुए जे सत्त्व, रज, तम यह तीन गुण हैं तिन गुणोंका भोक्ता है तथा उपलब्धा है । तहां श्रुति–(साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ।) अर्थ यह–यह परमात्मा देव सर्वका साक्षीहै तथा चेतनहै तथा अद्वितीय है तथा सत्त्वादिक सर्वगुणोंतें रहितहै ॥ १४ ॥

किंच–

बहिरंतश्च भूतानामचरं चरमेव च ॥
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चांतिके च तत् ॥ १५ ॥

(पदच्छेदः) बहिः । अंतः । च । भूतानाम् । अचरम् । चरम् । एव । च । सूक्ष्मत्वात् । तत् । अविज्ञेयम् । दूरस्थम् । च । अन्तिके । च । तत् ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो ज्ञेयब्रह्म ही सर्व भूतोंके बाह्य है तथा अंतर है तथा स्थावररूप है तथा जंगमरूप है तथा सूक्ष्म होणेतें अविज्ञेय है तथा सो ज्ञेयब्रह्म अत्यंत दूरस्थित है तथा अत्यंत समीप है ॥ १५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पुनः कैसा है सो ज्ञेयब्रह्म—उत्पत्तिधर्मवाले जितनेक कल्पित कार्य हैं तिन सर्व कल्पितकार्योंके बाह्य तथा अंतर सो एकही अकल्पित अधिष्ठानरूप ब्रह्म व्यापक है। अर्थात् जैसे रज्जुविषे कल्पित जे सर्प, दंड, माला जलधारा आदिक हैं तिन कल्पित सर्पादिकोंके बाह्य तथा अंतर सो रज्जुरूप अधिष्ठान ही व्यापक होवै है तिन सर्वभूतोंके बाह्य तथा अंतर सो अधिष्ठानरूप ब्रह्मही सर्व प्रकारकरिकै व्यापक है। तहां श्रुति—(तदंतरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।) अर्थ यह—सो अधिष्ठानरूप परब्रह्म ही इस सर्वप्रपंचके अंतर तथा बाह्य व्यापक है इति। सर्वत्र व्यापक होणेतें सो परब्रह्मही सर्व स्थावरभूतरूप है तथा सर्व जंगमभूतरूप है। काहेतें इस लोकविषे जो जो कल्पित पदार्थ होवै है सो अधिष्ठानतें भिन्नसत्तावाला होवै नहीं किंतु सो कल्पित पदार्थ अधिष्ठानरूपही होवै है। जैसे रज्जुविषे कल्पित सर्पादिक अधिष्ठान रज्जुरूपही है तैसे अधिष्ठानब्रह्मविषे कल्पित यह स्थावर जंगमरूप जगत्भी तिस अधिष्ठान ब्रह्मतें भिन्नसत्तावाला नहीं है किंतु ता अधिष्ठानब्रह्मरूप ही है। यातें इन स्थावरजंगम पदार्थोंकू अधिष्ठान ब्रह्मरूपता युक्तही है। तहां श्रुति—(सर्वं ह्येतद्ब्रह्म) अर्थ यह—यह स्थावरजंगमरूप सर्व जगत् ब्रह्मरूपही है। शंका—हे भगवन् ! इस प्रकारतें सो ज्ञेयब्रह्म जो सर्वका आत्मारूप है तौ सर्व प्राणी तिस परब्रह्मकूं स्पष्टकरिकै क्यों नहीं जानते ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ताके न जानणेविषे हेतु कहै है—(सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयमिति) हे अर्जुन ! सो परब्रह्म सर्वका आत्मारूप हुआभी अत्यंत सूक्ष्म होणेतें तथा रूपादिक गुणोंतें रहित होणेतें अविज्ञेय है अर्थात् यह ब्रह्म इसी प्रकारका ही है। या प्रकारतें स्पष्ट ज्ञानके योग्य होवै नहीं। तहां श्रुति—(सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यम्।) अर्थ यह—सो परब्रह्म आकाशादि सूक्ष्मपदार्थोंतें भी अत्यन्त सूक्ष्म है तथा नित्य है इति। इसी कारणतें ही सो परब्रह्म विवेक वैराग्यादिक साधनोंतें रहित पुरुषोंकूं सहस्रकोटि वर्षों

करिकैभी प्राप्त होवा नहीं । यातैं सो परब्रह्म तिन बहिर्मुख पुरुषोंकूं दूरस्थ है अर्थात् लक्षकोटि योजनमार्गके अंतरायवाले देशकी न्याई अत्यंत दूर है । और जे पुरुष तिन विवेकवैराग्यादिक साधनोंकरिकै संपन्न हैं तिन पुरुषोंकूं सो परब्रह्म आपणा आत्मारूप होणेतैं अत्यंत समीप है । तहां श्रुति-(दूरात्सुदूरे तदिहांतिके च पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम् ।) अर्थ यह-जे पुरुष विवेकवैराग्यादिक साधनोंतैं रहित हैं ऐसे बहिर्मुख पुरुषोंकू तौ यह परमात्मा देव अत्यंत दूर लोकालोकपर्वततैंभी अत्यंत दूर है । और जे पुरुष विवेकवैराग्यादिक साधनसंपन्न होइकै ब्रह्मवेत्ता गुरुके शरणकूं प्राप्त हुए हैं ऐसे उत्तम अधिकारी पुरुषोंकूं परब्रह्म अत्यंत समीप हृदयदेशविषेही साक्षात्कार होवै है ॥ १५ ॥

तहां पूर्व त्रयोदश श्लोकविषे (सर्वमावृत्य तिष्ठति) इस बचनकरिकै एकही परमात्मा देव सर्व जडवर्गकूं व्यापकरिकै स्थित हुआ है यह अर्थ सामान्यतैं कथन कऱ्या । अब देहविषे आत्माके भेद मानणेहारे वादियोंके खंडन करणेवास्तै तिस अर्थकूं श्रीभगवान् स्पष्टकरिकै वर्णन करैं हैं-

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ॥
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) अविभक्तम् । च । भूतेषु । विभक्तम् । इव । च । स्थितम् । भूतभर्तृ । च । तत् । ज्ञेयम् । ग्रसिष्णु । प्रभविष्णु । च ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः सो परब्रह्म सर्वप्राणियोंविषे एकही है तथा भिन्नहुएकी न्याई स्थित है सो परब्रह्मही सर्वभूतोंका धारण करणेहारा तथा संहार करणेहारा तथा उत्पन्नकरणेहारा तुमनैं जानणा ॥ १६ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! सो परब्रह्म सर्वप्राणियोंविषे एकही व्यापक है देहदेहविषे भिन्नभिन्न है नहीं । जिस कारणतैं सो परब्रह्म आकाशकी

न्याई सर्वत्र व्यापक है तहां श्रुति—(एको देवः सर्वभूतेषु गूढः ।) अर्थ यह—जैसे सर्व काष्ठोंविषे अग्नि गुह्य होइके रह्या है तैसे सो एकही परमात्मा देव सर्वभूतोंविषे गुह्य होइके रह्या है इति । इसप्रकार वास्तवतैं एक अद्वितीयरूप हुआभी सो परब्रह्म इन देहोंके साथि तादात्म्यकरिकै प्रतीत होवै है । यातैं सो परब्रह्म देहदेहविषे भिन्न भिन्न हुएकी न्याई स्थित है । अर्थात् जैसे एकही आकाशविषे घटमठादिकउपाधियोंकरिकै मिथ्याभेद प्रतीत होवै है सो मिथ्याभेद वास्तवतैं आकाशकी एकताकूं निवृत्त करिसकै नहीं, तैसे एकही परमात्मा देवविषे देहादिक उपाधियोंकरिकै मिथ्याभेद प्रतीत होवै है, सो मिथ्याभेद तिस परमात्मादेवकी वास्तव एकताकूं निवृत्त करिसकै नहीं । शंका—हे भगवन् ! इस प्रकारतैं सो क्षेत्रज्ञ चेतन-सर्वभूतोंविषे व्यापक होवो । परंतु सर्व जगत्का कारण जो ब्रह्म है सो कारणब्रह्म तौ ता क्षेत्रज्ञ चेतनतैं भिन्न ही है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं (भूतभर्तृ च इति) हे अर्जुन!सो ब्रह्म भूतभर्तृ है अर्थात् जो ब्रह्म स्थितिकालविषे अधिष्ठानतारूप करिकै सर्वभूतोंको धारण करैहै तथा पोषण करै है । तथा जो ब्रह्म प्रलयकालविषे तिन सर्वभूतोंका संहार करैहै । तथा जो ब्रह्म सृष्टिकालविषे तिन सर्वभूतोंकूं उत्पन्न करैहै । जैसे रज्जुआदिक अधिष्ठान् मायाकल्पित सर्पादिकोंके उत्पत्ति स्थिति लयका कारण होवै है तैसे इस सर्वजगत्के उत्पत्ति, स्थिति, लयका कारणरूप जो ब्रह्म है सो ब्रह्म ही सर्वदेहोंविषे एक क्षेत्रज्ञरूप तुमनें जानणा । तिस ब्रह्मतैं सो क्षेत्रज्ञ चेतन भिन्न नहीं जानणा ॥ १६ ॥

हे भगवन् ! सर्वत्र विद्यमान हुआभी सो ज्ञेयब्रह्म जबी नहीं प्रतीत होवैहै तबी सो ज्ञेयब्रह्म जड ही होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए सो ज्ञेयब्रह्म नहीं प्रतीत होणेमात्रकरिकै जड होवै नहीं । काहेतैं सो परब्रह्म यद्यपि स्वयंज्योतिरूप है तथापि सो परब्रह्म रूपादिक गुणोंतैं रहित है। यातैं तिस परब्रह्मविषे नेत्रादिक इंद्रियजन्य ज्ञानकी अविषयत

संभव होइसके है । इस प्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् कहैं हैं (ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः इति) अथवा पूर्वश्लोकके उत्तरार्द्धकरिकै तिस ज्ञेयब्रह्मका जगत्‌की उत्पत्ति स्थिति लय कर्तृत्वरूप तटस्थ लक्षण कथन्न कन्याथा । अब (ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः) इस श्लोककरिकै तिस ज्ञेयब्रह्मका स्वरूपलक्षण कथन करैं हैं—

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ॥
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य धिष्ठितम् ॥१८॥

(पदच्छेदः) ज्योतिषाम् । अपि । तत् । ज्योतिः । तमसः । परम् । उच्यते । ज्ञानम् । ज्ञेयम् । ज्ञानगम्यम् । हृदि । सर्वस्य । धिष्ठितम् ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो ज्ञेयब्रह्म सूर्यादिक ज्योतियोंका भी ज्योति है तथा जडवर्गरूपतें पर कह्या है तथा ज्ञानरूप है तथा ज्ञेयरूप है तथा ज्ञानकरिकै प्राप्य है तथा सर्वप्राणियोंके बुद्धिविषे स्थित है ॥ १७ ॥

भा॰टी॰—हे अर्जुन ! पुनः सो ज्ञेयब्रह्म कैसा है—ज्योतियोंकाभी ज्योतिहै अर्थात् अनात्मपदार्थोंकूं प्रकाश करणेहारे जे आदित्य, चंद्रमा, अग्नि, विद्युत् इत्यादिक बाह्यज्योति हैं तथा मन बुद्धि आदिक अंतरज्योति हैं तिन सर्वज्योतियोंकाभी सो परब्रह्म प्रकाश करणेहारा है । तहां चैतन्य ज्योतिविषे सूर्यादिक जडज्योतियोंका प्रकाशकपणा युक्तिकरिकैभी संभव होइसकैहै । तथा इस अर्थकूं साक्षात् श्रुति भगवतीभी कथन करैहै । तहां श्रुति—(येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः । तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।) अर्थ यह—जिस स्वयंज्योति परमात्मा देवकरिकै यह तेजयुक्त सूर्य तपायमान होवै है । तथा जिस परमात्मादेवके प्रकाशकरिकै यह सूर्य चंद्रादिक सर्व जगत् प्रकाशमान होवैहै इति । तथा यह वार्त्ता श्रीभगवान् आपही (यदादित्यगतं तेजः) इत्यादिक वचनकरिकै कथन करैगा । यातैं चैतन्य ब्रह्मरूप ज्योतिकरिकै सूर्यादिक जड ज्योतियोंका

प्रकाश संभवै है इति। शंका—हे भगवन् ! सो चैतन्यस्वरूप ब्रह्म स्वभावतैं जडपणेतैं रहित हुआभी जडपदार्थोंके साथि संबंधवाला होवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (तमसः परमुच्यते इति।) हे अर्जुन ! सो परब्रह्म जडवर्गरूप तमतैं पर कह्या है अर्थात् अविद्या तथा ता अविद्याका कार्यरूप यह सर्वप्रपंच यह दोनों अपारमार्थिक हैं। और सो चैतन्यरूप ज्ञेयब्रह्म पारमार्थिक है ता असत् जगत्का तथा सत् ब्रह्मका कोईभी संबंध संभवता नहीं। यातैं श्रुति भगवतीनैं तथा ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंनैं सो ज्ञेयब्रह्म अविद्याके तथा ताके कार्यरूप प्रपंचके संबंधनतें रहित कथन कर्‍या है। तहां श्रुति—(अक्षरात्परतः परः। आदित्यवर्ण तमसः परस्तात्) अर्थ यह—आत्मज्ञानतै विना अन्य उपायकरिकै नहीं नाश होणेहारी तथा आपणे कार्यकी अपेक्षाकरिकै पर ऐसी जा अविद्या है तिस अविद्यातैंभी सो परब्रह्म पर है तथा सो परब्रह्म सूर्यकी न्याई दूसरे प्रकाशककी नहीं अपेक्षा करताहुआ सर्व प्रपंचका प्रकाश करैहै। तथा अविद्यारूप तमतैं पर है इति। यह वार्त्ता ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंनैं भी कथन करीहै। तहां श्लोक—(निःसंगस्यैव संगेन कूटस्थस्य विकारिणा। आत्मनोऽनात्मना योगो वास्तवो नोपपद्यते ॥) अर्थ यह—सर्वसंगतैं रहित कूटस्थ आत्माका संगवान् विकारी अनात्मवस्तुके साथि वास्तव-संबंध संभवता नहीं इति। अथवा (तमसः परमुच्यते) इस वचनकरिकै श्रीभगवाननैं तिस ज्ञेयब्रह्मविषे जडवर्गरूप तमतैं भिन्नपणा कथन कर्‍याहै ता भिन्नपणेकी सिद्धि करणेवासतै तिस ज्ञेयब्रह्मका (ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः) इस वचनकरिकै हेतुगर्भित विशेषण कथन कर्‍याहै ताकरिकै यह अनुमान सिद्ध होवै है सो ज्ञेयब्रह्म तिस जडवर्गरूप तमतैं भिन्न होणेकूं योग्य है ज्योतियोंकाभी ज्योतिरूप होणेतैं जो पदार्थ जडवर्गतैं भिन्न नहीं होवै है सो पदार्थ ज्योतियोंका ज्योतिरूपभी नहीं होवैहै जैसे घटादिक जड पदार्थ हैं इति। जिस कारणतैं सो ज्ञेयब्रह्म स्वयंज्योतिरूप है तथा सर्व जडपदार्थोंके संबंधतैं रहित है। तिस कारणतैं सो

ज्ञेयब्रह्म ज्ञानरूप है । अथवा शंका–हे भगवन् ! जैसे चंद्ररूप ज्योतिका प्रकाश करणेहारा तथा भौतिकत्वरूपकरिकै ता चंद्रके सजातीय सूर्यरूप ज्योति है यह वार्त्ता ज्योतिषशास्त्रविषे प्रसिद्ध है तैसे तिन सूर्यादिक ज्योतियोंका प्रकाश करणेहारा तथा तिन सूर्यादिकोंके सजातीय कोई अलौकिक ज्योति होवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं–(ज्ञानमिति) हे अर्जुन ! सो सूर्यादिज्योतियोंका प्रकाश करणेहारा ज्ञेयब्रह्म कैसा है-ज्ञानरूप है । अर्थात् प्रमाणजन्य चित्तवृत्तिकरिकै अभिव्यक्त संवित्‌रूप है कोई अलौकिक भौतिक ज्योति नहीं है । ऐसा ज्ञानरूप होणेतैं ही सो परब्रह्म ज्ञेयरूप है अर्थात् अज्ञाव होणेतैं सो परब्रह्म अधिकारी जनोंनैं जानणेकूं योग्य है । ता ज्ञानरूप ब्रह्मतैं भिन्न जडपदार्थोंविषे सो अज्ञावपणा रहै नहीं । यातैं वे जडपदार्थ जानणे योग्य नहीं हैं । शंका–हे भगवन् ! ऐसा ज्ञेयब्रह्म इन सर्वप्राणियोंनैं किसवास्तै नहीं जानीता है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं (ज्ञानगम्यमिति) हे अर्जुन ! पूर्व अमानित्वतै आदिलैके तत्त्वज्ञानार्थ-दर्शनपर्यंत कथन करे जे बीस साधन हैं जे साधन ज्ञानके हेतु होणेतैं ज्ञानशब्दकरिकै कथन करे हैं। ऐसे ज्ञानरूप साधनोंकरिकैही सो ज्ञेयब्रह्म प्राप्त होवैहै । तिन साधनोंतैं विना प्राप्त होवै नहीं । यातैं अमानित्वादिक साधनसंपन्न पुरुष ही तिस ज्ञेयब्रह्मकूं प्राप्त होवैहै । तिन साधनोंतैं रहित बहिर्मुख पुरुष तिस ज्ञेयब्रह्मकूं प्राप्त होते नहीं इति । शंका–हे भगवन् ! यज्ञादिक साधनोंकरिकै प्राप्त होणेयोग्य स्वर्गादिक जैसे देशकालकरिकै व्यवहित होवैं हैं तैसे अमानित्वादिक साधनोंकरिकै प्राप्त होणेयोग्य सो ज्ञेयब्रह्मभी देशकालकरिकै व्यवहितही होवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (हृदि सर्वस्य धिष्ठितमिति) हे अर्जुन ! सो ज्ञेयब्रह्म स्वर्गादिकोंकी न्याई कोई व्यवहित नहीं है किंतु सर्व प्राणि-योंकी बुद्धिविषे ही स्थित है अर्थात् सो ज्ञेयब्रह्म सामान्यतैं सर्व प्रपंच-विषे स्थित हुआभी विशेषरूपकरिकै तिस बुद्धिविषे ही जीवरूपकरिकै

तथा अंतर्यामिरूपकरिकै अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होवैहै । जैसे सामान्यतैं सर्वपदार्थोंविषे स्थित हुआभी सूर्यका तेज दर्पण सूर्यकांतमणि इत्यादिक स्वच्छ पदार्थोंविषे विशेषरूपकरिकै अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होवै है, तैसे स्थावरजंगमरूप सर्वजगत्विषे सामान्यरूपतैं स्थित हुआभी सो परब्रह्म ता बुद्धिविषे विशेषकरिकै अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होवैहै । तात्पर्य यह—सो परब्रह्म सर्वप्राणियोंका आपणा आत्मारूप होणेतैं वास्तवतैं अत्यंत अव्यवहित हुआभी भ्रांतिकरिकै व्यवहितकी न्यांई प्रतीत होवैहै सोईही ज्ञेयब्रह्म तत्त्वज्ञानकरिकै सर्व भ्रमके कारणरूप अज्ञानकी निवृत्तिकरिकै आपणा आत्मरूपकरिकै प्राप्त होवैहै ॥ १७ ॥

तहां पूर्व कथन करे हुए क्षेत्रादिकोंकूं तथा अधिकारीकूं तथा फलकूं कथन करते हुए श्रीभगवान् इस पूर्वप्रसंगका उपसंहार करे हैं—

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ॥
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥ १८ ॥

(पदच्छेदः) इति । क्षेत्रम् । तथा । ज्ञानम् । ज्ञेयम् । च । उक्तम् । समासतः । मद्भक्तः । एतत् । विज्ञाय । मद्भावाय । उपपद्यते ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरने तुम्हारे ताईं इस पूर्वउक्तप्रकारकरिकै क्षेत्र तथा ज्ञान तथा ज्ञेय संक्षेपकरिकै कथन कऱ्या मेरा भक्त इन क्षेत्रादिक तीनोंकूं जानिकरिकै मेरेभावकी प्राप्तिवासतै योग्य होवैहै ॥ १८ ॥

भा० टी०—इस पूर्वउक्त प्रकारकरिकै मैं परमेश्वरनै तुम्हारे ताईं महाभूतोंतै आदिलेके धृतिपर्यंत क्षेत्रका स्वरूप संक्षेपतैं कथन कऱ्या । तथा अमानित्वतैं आदिलेके तत्त्वज्ञानार्थदर्शनपर्यंत ज्ञानभी संक्षेपतैं कथन कऱ्या । तथा (अनादिमत्परं ब्रह्म) इस वचनतैं आदिलेके (हृदि सर्वस्य धिष्ठितम्) इस वचनपर्यंत ज्ञेयब्रह्मभी संक्षेपतैं कथन कऱ्या

अर्थात् जे क्षेत्र, ज्ञान, ज्ञेय यह तीनों श्रुतिस्मृतियोंविषे अत्यंत विस्तारतैं कथन करेहैं ते तीनों तिन श्रुतिस्मृतिवचनोंतैं आकर्षणकरिकै मंदबुद्धि पुरुषोंके अनुग्रहवासतै मैं परमेश्वरनैं संक्षेपकरिकै तुम्हारे ताईं कथन करेहैं । इतना ही सर्ववेदोंका अर्थ है तथा इस गीताशास्त्रका अर्थ है इति । तहां इस अर्थविषे पूर्व द्वादश अध्यायविषे कथन करे हैं लक्षण जिसके ऐसा जो मैं परमेश्वरका भक्त है सो मेरा भक्तही अधिकारी है, इस अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करैंहैं (मद्भक्तः इति) अर्थात् परमगुरुरूप मैं भगवान् वासुदेवविषे समर्पण करे हैं सर्वकर्म जिसनैं तथा एक मैं परमेश्वरके ही शरणकूं प्राप्त हुआ जो मैं परमेश्वरका भक्त है सो मेरा भक्त ही इन पूर्व उक्त क्षेत्र, ज्ञान, ज्ञेय तीनोंकूं भलीप्रकारतैं जानिकै मेरे भावकी प्राप्तिवासतै योग्य होवैहै अर्थात् सर्व अनर्थोंतैं रहित परमानंद ब्रह्मभावरूप मोक्षकी प्राप्तिवासतै योग्य होवै है । तहां परमेश्वरकी भक्तिकरिकै ही इस अधिकारी पुरुषकूं ब्रह्मभावकी प्राप्ति होवै है यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है। तहां श्रुति--(यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मनः ॥) अर्थ यह--जिस अधिकारी पुरुषकी परमात्मादेवविषे अनन्यभक्ति है और जैसी परमात्मादेवविषे अनन्यभक्ति है तैसी ही ब्रह्मवेत्तागुरुविषे अनन्यभक्ति है, तिस महात्मा पुरुषकूं ही यह वेदांतप्रतिपादित अर्थ हृदयविषे प्रकाशमान होवै है इति । और यह अधिकारी पुरुष ज्ञेयब्रह्मकूं आपणा आत्मारूप जानिकै ब्रह्मरूप होवै है । यह वार्ताभी श्रुतिविषे कथन करी है । तहां श्रुति--(ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति) अर्थ यह--यह अधिकारी पुरुष मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारतैं ब्रह्मकूं आपणा आत्मारूप जानिकै ब्रह्मरूप ही होवै है । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । परमपुरुषार्थके प्राप्तिकी इच्छावान् यह अधिकारी पुरुष अत्यंत तुच्छविषयभोगोंकी इच्छाका परित्याग करिकै सर्वकालविषे एक मैं परमेश्वरके शरण हुआ आत्मज्ञानके अमानित्वादिक साधनोंकूं ही प्रयत्नतैं संपादन करै ॥ १८ ॥

तहां इस पूर्वउक्त ग्रंथकरिकै (तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च) इस वचनका व्याख्यान कऱ्या । अब (यद्विकारि यतश्च यत् । स च यो यत्प्रभावश्च) इस वचनका व्याख्यान करणा प्राप्त भया । तहां प्रकृति पुरुष इन दोनोंकूं संसारका हेतुपणा कथन करिकै (यद्विकारि यतश्च यत्) इस वचनका अर्थ (प्रकृतिं पुरुषं चैव) इत्यादिक दो श्लोकों करिकै विस्तारतैं कथन करैं हैं । और (स च यो यत्प्रभावश्च) इस वचनका अर्थ तौ (पुरुषः प्रकृतिस्थो हि) इत्यादिक दो श्लोकोंक- रिके विस्तारतैं कथन करैंगे । तहां पूर्व सप्तम अध्यायविषे क्षेत्रनामा अपरा प्रकृति तथा क्षेत्रज्ञ जीवनामा परा प्रकृति इन दोनों प्रकृति- योंकूं कथन करिकै (एतद्योनीनि भूतानि) इस वचनकरिकै तिन दोनों प्रकृतियोंविषे सर्व भूतोंकी कारणता कथन करीथी । अब तिन दोनों प्रकृतियोंविषे अनादिपणा कथन करिकै सर्व भूतोंविषे तिन दोनों प्रकृतियोंके कार्यपणेकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं-

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ॥
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥ १९ ॥

(पदच्छेदः) प्रकृतिम् । पुरुषम् । च । एवं । विद्धि । अनादी । उभौ । अपि । विकारान् । च । गुणान् । च । एव । विद्धि । प्रकृतिसंभवान् ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! प्रकृतिकूं तथा पुरुषकूं दोनोंकूं भी तूं अनादि ही जान तथा विकारोंकूं तथा गुणोंकूं प्रकृतितैं उत्पन्नहुआ ही तूं जान ॥ १९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! माया अज्ञान अविद्या यह है नाम जिसके ऐसी जा त्रिगुणात्मिका परमेश्वरकी शक्ति है जा मायाशक्ति पूर्व सप्तमअध्यायविषे अष्टप्रकारकी कथन करीथी तथा अपरा प्रकृति इस नामकरिकै कथन करीथी सा क्षेत्रनामा अपरा प्रकृति इहां प्रकृतिश-

ब्दकरिके ग्रहण करणी । और पूर्व सप्तमअध्यायविषे जा क्षेत्रज्ञरूप जीवनामा परा प्रकृति कथन करीथी सा जीवनामा परा प्रकृतिही इहां पुरुषशब्दकरिके ग्रहण करणी । ऐसे प्रकृति पुरुष दोनोंकूभी तूं अनादि ही जान । तहां नहीं वियमान है आदि क्या कारण जिसका ताका नाम अनादि है ऐसा अनादिरूप तिन दोनोंकूं तूं जान । तहां (मायां प्रकृतिं विद्यात्) इस श्रुतिनैं तिस मायारूप प्रकृतिकूंही सर्वजगत्का कारण कह्या है ऐसी सर्वजगत्के कारणरूप प्रकृतिविषे सो अनादिपणा युक्त है । काहेतैं जो कदाचित् तिस मायानामा प्रकृतिकूंभी अन्य किसी कारणकी अपेक्षा मानिये तौ तिस प्रकृतिके कारणकूंभी किसी अन्य कारणकी अपेक्षा होवैगी तिस अन्यकारणकूंभी किसी अन्यकारणकी अपेक्षा होवैगी इस प्रकारतै कारणोंकी अनवस्था प्राप्त होवैगी यातैं ता मायारूप प्रकृतिविषे सो अनादिपणा ही मानणे योग्य है । किंवा तिस मायारूप प्रकृतिविषे केवल युक्तिकरिकै ही सो अनादिपणा नहीं किंतु (अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्) यह साक्षात् श्रुतिभी तिस प्रकृतिविषे अनादिपणेकूं कथन करै है । किंवा जैसे मायारूप प्रकृतिविषे सो अनादिपणा युक्तिकरिकै तथा श्रुतिकरिकै सिद्ध है । तैसे क्षेत्रज्ञनामा जीवात्मा पुरुषविषेभी सो अनादिपणा युक्तकरिकै तथा श्रुतिकरिकै सिद्ध है सो दिखावैं हैं । इन सर्वप्राणीमात्रकूं जन्मकालविषेही हर्ष, शोक, भय, सुख, दुःख, प्रवृत्ति इत्यादिक प्राप्त होवैं है तिन हर्षशोकादिकोंविषे इस जन्मके तौ धर्म अधर्म संस्कार कारण हैं नहीं किंतु तिन जीवोंकूं वे हर्ष शोकादिक पूर्वजन्मके धर्म अधर्मकरिकै तथा संस्कारोंकरिकै ही प्राप्त होवैं हैं । ते धर्म अधर्मादिक धर्म आश्रयतैं विना संभवते नहीं । यातैं इस जन्मतैं पूर्वजन्मोंविषेभी ता जीवात्माकी वियमानता अंगीकार करणी होवैगी इस प्रकारतै धर्म अधर्मादिकोंकी आश्रयतारूपकरिकै इस जीवात्माविषे अनादिपणा सिद्ध होवै है । किंवा इस जीवात्माकूं जो कदाचित अनादि नहीं मानियें किंतु उत्पत्तिवाला मानियें तौ पूर्व करे हुए पुण्यपाप

कर्मोंका सुखदुःखरूप फलके भोगवें विना ही नाश होवैगा । तथा पूर्व नहीं करे हुए पुण्यपापरूपकर्मोंके सुखदुःखरूप फलका भोग होवैगा । या प्रकारके कृतनाश तथा अकृताभ्यागम यह दोनों दोष प्राप्त होवेंगे तिन दोनों दोषोंकी निवृत्ति वासतैंभी इस जीवात्माकूं अनादिही मान्या चाहिये और (अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते) इत्यादिक श्रुतियांभी तिस जीवात्माकूं अनादिही कथन करैं है इति । हे अर्जुन ! जिस कारणतैं सा मायानामा प्रकृति अनादि है इस कारणतैं वा मायानामा प्रकृतिविषे जो पूर्व सर्व भूतोंका कारणपणा कथन कन्या था सो संभव होइसकै है । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं (विकारांश्चेति) हे अर्जुन ! आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी यह जे पंच महाभूत है तथा श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसन, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ, पायु, मन यह जे एकादश इंद्रिय है इन षोडशोंका नाम विकार है। तथा सुख दुःख मोहरूप जे सत्त्व, रज, तम यह तीन गुण हैं तिन षोडश विकारोंकूं तथा तीन गुणोंकूं तूं तिस मायारूप प्रकृतितैंही उत्पन्न हुआ जान ॥ १९ ॥

अब तिन विकारोंविषे प्रकृतिजन्यत्वका विवेचन करते हुए श्रीभगवान् तिस क्षेत्रज्ञ पुरुषविषे संसारका हेतुपणा दिखावैं हैं—

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ॥
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥ २० ॥

(पदच्छेदः) कार्यकरणकर्तृत्वे । हेतुः । प्रकृतिः । उच्यते । पुरुषः । सुखदुःखानाम् । भोक्तृत्वे । हेतुः । उच्यते ॥ २० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! कार्यकरणोंके कर्तापणेविषे सा प्रकृतिही हेतु कहीजावै है तथा सुखदुःखोंके भोक्तापणेविषे सो पुरुषही हेतु कह्या जावै है ॥ २० ॥

भा० टी०–इहां शरीरका नाम कार्य है और ता शरीरविषे स्थित जे पंच ज्ञानइंद्रिय पंच कर्मइंद्रिय मन बुद्धि चित्त यह त्रयोदश इंद्रिय

हैं तिनोंका नाम करण है। इहां इस देहका आरंभ करणेहारे आकाशादिक पंच भूत तथा शब्दादिक पंच विषय यह सर्व ता शरीररूप कार्यके ग्रहणकरिकै ग्रहण करणे। और सुखदुःखमोहरूप सत्त्व रज तम यह तीन गुण तिस करणके आश्रित होणेतैं ता करणके ग्रहणकरिकै ग्रहण करणे। ऐसे कार्योंके तथा करणोंके कर्तृत्वविषे अर्थात् तिस कार्यकरणके आकार परिणामविषे महाऋपियोंनैं सा मायारूप प्रकृति ही कारणरूप कही है। तहां किसी पुस्तकविषे (कार्यकारणकर्तृत्वे) या प्रकारकाभी पाठ होवै है। इस प्रकारके पाठविषेभी यह पूर्वउक्त अर्थ ही जानणा। इस प्रकार मायारूप प्रकृतिविषे संसारका कारणपणा कथन करिकै अब तिस क्षेत्रज्ञनामा पुरुषविषेभी जिस प्रकारका सो कारणपणा है ताकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं (पुरुषः इति) हे अर्जुन ! जो क्षेत्रज्ञरूप जीवनामा पुरुष पूर्व परा प्रकृति इस नामकरिकै कथन कऱ्या था सो क्षेत्रज्ञ पुरुष सुखदुःखोंके भोक्तृत्वविषे कारण कह्या जावै है। अर्थात् सुखदुःखमोहरूप सर्व भोग्य पदार्थोंके वृत्तियुक्त अनुभवविषे कारण कह्या जावै है इति। और किसी टीकाविषे तौ (कार्यकरणकर्तृत्वे) इस श्लोकका यह अर्थ कथन कऱ्या है। ता क्षेत्रज्ञ पुरुषके कार्यपणेविषे तथा करणपणेविषे तथा कर्त्तापणेविषे सा मायारूप प्रकृतिही ता पुरुषके साथि तादात्म्यभावकूं प्राप्त हुई कारण होवै है। जैसे अग्निके साथि तादात्म्यभावकूं प्राप्त हुआ लोह तिस अग्निके चतुष्कोणत्व आदिकोंका कारण होवै है तैसे ता पुरुषके साथि तादात्म्यभावकूं प्राप्त हुई सा मायारूप प्रकृतिही ता पुरुषके कार्यपणेविषे तथा करणपणेविषे तथा कर्त्तापणेविषे कारण होवै है। इस प्रकार ता प्रकृतिके सुखदुःखोंके भोक्तापणेविषे सो क्षेत्रज्ञ पुरुषही ता प्रकृतिविषे आपणे आभासरूप छायाकी प्राप्तिकरिकै कारण होवै है। जैसे अग्नि लोहविषे आपणी छायाकी प्राप्तिकरिकै ता लोहके दाह कर्त्तापणेविषे कारण होवै है तैसे सो क्षेत्रज्ञ पुरुषभी ता प्रकृतिविषे आपणे छायाकी प्राप्तिकरिकै ता प्रकृतिके सुखदुःखोंके भोक्तापणेविषे कारण होवै

है सो दिखावें है । कार्यपणा, करणपणा, कर्त्तापणा यह तीनों वास्तवतें प्रकृतिके विकाररूप देह इंद्रिय बुद्धिके धर्म हुएभी चेतन आत्माविषे आरोपण करे जावें हैं । जैसे मैं गौर हूं, मैं इस मनुष्यका पुत्र हूं, मैं काणा हूं, मैं खंज हूं, मैं कर्त्ता हूं, इस प्रकारतें देहादिकोंके कार्यत्वादिक धर्म चेतन आत्माविषे आरोपित हुए प्रतीत होवें हैं । और तिस चेतन आत्माके आभासरूप छायाकूं प्राप्तहुई सा बुद्धिभी मैं चेतनतावाली हूं तथा सुख दुःखादिकोंकूं मैं जानती हूं इसप्रकारतें चेतन आत्माके धर्मोंकूं आपणेविषे मानै है । इसप्रकारका जो प्रकृति पुरुष दोनोंविषे परस्पर धर्मोंका अध्यासहै सो अध्यासही इस संसारका कारण सिद्ध होवै है । इतने कहणे करिकै जो सांख्यवादियोंनैं केवल पुरुषविषेही भोक्तापणा मान्या है सोभी खंडन हुआ जानणा । जो कदाचित् ऐसा नहीं अंगीकार करिये किंतु प्रकृतिकूं तौ कर्त्ता मानियें और पुरुषकूं भोक्ता मानियें तौ कर्तृत्व भोक्तृत्व इन दोनोंका एक अधिकरण सिद्ध नहीं होवैगा किंतु भिन्नभिन्न अधिकरण सिद्ध होवैगा सो अत्यंतविरुद्ध है और भोक्तापुरुषविषे निर्विकारपणाभी सिद्ध होवैगा नहीं ॥ २० ॥

हे भगवन् ! (पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते) इस वचनकरिकै पूर्व आपनैं क्षेत्रज्ञनामा पुरुषविषे सुखदुःखका भोक्तृत्वरूप संसारीपणा कथन कऱ्या सो तिस पुरुषके संसारीपणेविषे कोई निमित्त है अथवा नहीं है । तहां किसी निमित्तवैं विना जो तिस पुरुषविषे संसारीपणा मानोगे तौ मुक्तिकालविषे तिस पुरुषविषे सो संसारीपणा होणा चाहिये । इस दोषकी निवृत्ति करणेवासतै वा पुरुषके संसारीपणेविषे कोई निमित्त अंगीकार करणा होवैगा । सो निमित्त कौन है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता निमित्तकूं कथन करैहैं—

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान्गुणान् ॥
कारणं गुणसंगोस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥ २१ ॥

कथन करी है (पश्वादिभिश्चाविशेषात् ।) अर्थ यह–व्यवहारकालविषे विद्वान् पुरुषकी पशुआदिकोंके साथि तुल्यताही होवै है अर्थात् जैसे पशुआदिक इष्टवस्तुकूं देखिकै प्रवृत्त होवैं हैं अनिष्ट वस्तुकूं देखिकै निवृत्त होवैं हैं तैसे सो विद्वान् पुरुषभी इष्टवस्तुकूं देखिकै तौ प्रवृत्त होवै है और अनिष्ट वस्तुकूं देखिकै निवृत्त होवै है इति। शंका–हे भगवन् ! प्रकृतिविषे स्थित होइकै ता प्रकृतिजन्य-सुखदुःखादिक गुणोंके भोगविषे जो विद्वान् पुरुषकी तथा अविद्वान् पुरुषकी समानताही अंगीकार करौगे तौ जैसे सो विद्वान् पुरुष मुक्तहै तैसे सो अविद्वान् पुरुषभी क्यों नहीं मुक्त होता?तथा जैसे सो अविद्वान् पुरुष बंधायमानहै तैसे सो विद्वान् पुरुषभी क्यों नहीं बंधायमान होता ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु इति ।) हे अर्जुन ! देहइंद्रियविषयरूप गुणोंविषे जो इस पुरुषका संग है अर्थात् यह मैं हूं यह मेरे हैं इस प्रकारका जो अहंमम अभिमानरूप अभिनिवेश है सो गुणसंगही इस पुरुषके सत् असत् योनिजन्मोंविषे कारण है । तहां विद्वान् पुरुषोंविषे तौ सो जन्मका कारणरूप गुणसंग है नहीं। यातैं ते विद्वान् पुरुष जन्मादिक बंधकूं प्राप्त होवैं नहीं । और अविद्वान् पुरुषोंविषे तौ सो जन्मका कारणरूप गुणसंग विद्यमान है । यातैं ते अविद्वान् पुरुष मुक्तिकूं प्राप्त होवैं नहीं। तहां दृष्टांत–जैसे किसी पुरुषके देहविषे पिशाच प्रवेश करै है तहां तिस देहविषे ता पिशाचकाभी संबंध है । तथा तिस देहपति जीवकाभी संबंध है । तिस देहसंबंधके समान हुएभी जिस कालविषे सो पिशाच तिस देहके अभिमानकूं धारण करै है तिस कालविषे तौ सो पिशाच ही तिस देहकी पीडाकरिकै पीडित होवै है । सो देहपति जीव ता देहकी पीडाकरिकै पीडित होवै नहीं । और जिसकालविषे सो देहपति जीव ही तिस देहके अभिमानकूं धारण करै है तिस कालविषे सो देहपति जीव ही तिस देहकी पीडाकरिकै पीडित होवैहै सो पिशाच ता देहकी पीडाकरिकै पीडित होवै नहीं । इस प्रकारतैं अहंमम अभिमानरूप

संगविषे ही अंधकपणा प्रसिद्ध देखणेविषे आवै है । समीपतामात्रविषे सो अंधकपणा देखणेविषे आवता नहीं । यातैं विद्वान् पुरुषविषे तथा अविद्वान् पुरुषविषे देहसंबन्धके समान हुएभी अहंममअभिमानरूप संगकृत तथा ता संगके अभावकृत तिन दोनोंविषे महान् विशेषता है ॥ २१ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे प्रकृतिके मिथ्या तादात्म्य अध्यासतैं ही पुरुषकूं संसारकी प्राप्ति होवैहै ता प्रकृतिके तादात्म्यतैं विना स्वरूपतै ता पुरुषविषे सो संसार है नहीं यह वार्त्ता कथन करी । अब तिस क्षेत्रज्ञनामा पुरुषका किस प्रकारका सो वास्तवस्वरूप है जिस स्वरूपविषे सो संसार नहीं संभवै है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् तिस क्षेत्रज्ञनामा पुरुषके स्वरूपकूं साक्षात् दिखावते हुए कहैं हैं–

उपद्रष्टानुमंता च भर्त्ता भोक्ता महेश्वरः ॥
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥२२॥

(पदच्छेदः) उपद्रष्टा । अनुमंता । च । भर्त्ता । भोक्ता । महेश्वरः । परमात्मा । इति । च । अपि । उक्तः । देहे । अस्मिन् । पुरुषः । परः ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इस देहविषे वर्त्तमानहुआभी यह पुरुष सर्वतें भिन्न है जिसकारणतें यह पुरुष उपद्रष्टा है तथा अनुमंता है तथा भर्त्ता है तथा भोक्ता है तथा महेश्वर है तथा श्रुतिविषे परमात्मा इसनामकरिकै भी कथन कऱ्याहै ॥ २२ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! तिस मायारूप प्रकृतिका परिणामरूप जो यह देह है इस देहविषे जीवरूपकरिकै वर्त्तमानहुआभी यह क्षेत्रज्ञनामा पुरुष पर है अर्थात् तिस प्रकृतिजन्य गुणोंके संबंधतें रहित है तथा आपणे स्वरूपकरिकै परमार्थतैं असंसारी है । अब तिस पुरुषके वास्तवतै असंगपणेविषे श्रीभगवान् उपद्रष्टा, अनुमंता, भर्त्ता, भोक्ता, महेश्वर, परमात्मा इन षट् हेतुगर्भित विशेषणोंकूं कथन करैहै । (उपद्रष्टा इति) हे

अर्जुन ! सो क्षेत्रज्ञनामा पुरुष कैसा है—उपद्रष्टा है अर्थात् जैसे यज्ञरूपकर्मकी सिद्धि करणेवासतै व्यापारवाले हुए जे ऋत्विक् हैं तथा यजमान हैं तिन ऋत्विक्यजमानके समीपवर्त्ती जो कोई अन्यपुरुष है सो अन्यपुरुष आप तिस यज्ञके अनुकूल व्यापारतें रहित हुआभी यज्ञविद्याविषे कुशल होणेतें तिन ऋत्विक्यजमानके व्यापारोंविषे स्थित गुणदोषोंकूं देखै है । तैसे यह क्षेत्रज्ञनामा पुरुष देहइंद्रियादिकोंके व्यापारविषे आप नहीं व्यापारवाला हुआ तथा तिन देहइंद्रियादिकोंतें विलक्षण हुआ तिन व्यापारसहित देहइंद्रियादिकोंकूं समीप स्थित होइकै देखै है। सो क्षेत्रज्ञनामा पुरुष तिन देहइंद्रियादिकोंकी न्याईं आप कर्त्ता होवै नहीं । यातें यह आत्मादेव उपद्रष्टा कह्या जावै है । तहां श्रुति–(स यत्तत्र किंचित्पश्यत्यनन्वागतस्तेन भवत्यसंगो ह्ययं पुरुषः ।) अर्थ यह–यह आत्मादेव पुरुष तिन जाग्रत्स्वप्नादिक अवस्थावोंविषे जिसजिस पदार्थकूं देखै है तिसतिस पदार्थके साथि संबंधवाला होवै नहीं । जिस कारणतें यह आत्मापुरुष असंग है इति । अथवा देह, चक्षु, मन, बुद्धि, आत्मा इन पांच द्रष्टावोंके मध्यविषे बाह्यदेहादिक च्यारि द्रष्टावोंकी अपेक्षाकरिकै अव्यवहितद्रष्टा जो आत्मा पुरुष है सो आत्मापुरुष उपद्रष्टा कह्या जावै है । तहां उपद्रष्टा इस वचनविषे स्थित जो उप यह शब्द है ता उपशब्दका समीपता अर्थ है। सो अव्यवधानरूप समीपता अर्थ प्रत्यक् आत्माविषे ही घटै है अन्य किसी अनात्मपदार्थविषे घटता नहीं । इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नें यह अनुमान सूचन कर्या । आत्मा देहइंद्रियादिक है भिन्न है उपद्रष्टा होणेतें । जैसे यज्ञका उपद्रष्टा पुरुष ता यज्ञके कर्त्ता ऋत्विक्यजमानतें भिन्न होवै है इति । पुनः कैसा है सो क्षेत्रज्ञ आत्मापुरुष—अनुमंता है, अर्थात् देहइंद्रियोंकी प्रवृत्तिविषे आप नहीं प्रवृत्त हुएभी प्रवृत्त हुएकी न्याईं समीपतामात्रकरिकै तिनोंकें अनुकूल होणेतें सो क्षेत्रज्ञ पुरुष अनुमंता कह्या जावै है। अथवा आपणे आपणे व्यापारोंविषे प्रवृत्त हुए जे देहइंद्रियादिक हैं

तिन देहइंद्रियादिकोंकूं जो कदाचित्भी आपणे व्यापारतैं निवृत्त करता नहीं । सो तिन देहइंद्रियादिकोंका साक्षीरूप पुरुष अनुमंता कह्या जावै है । तहां श्रुति-(अनुमंता साक्षी च उपद्रष्टानुद्रष्टानुमंतैष आत्मा ।) अर्थ यह-यह आत्मादेव अनुद्रष्टा है तथा साक्षी है तथा यह आत्मादेव उपद्रष्टा है तथा अनुमंता है इति । इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अनुमान सूचन कऱ्या । आत्मा देहइंद्रियादिकोंतैं भिन्न है अनुमन्ता होणेतैं । जैसे विवादकर्त्ता पुरुषतैं तटस्थ पुरुष भिन्न होवै है इति । पुनः कैसा है सो क्षेत्रज्ञपुरुष-भर्त्ता है, अर्थात् चैतन्यके आभासकरिकै युक्त तथा संघातभावकूं प्राप्त हुए जे देह, इंद्रियें, मन, बुद्धि हैं तिन देह इंद्रियादिकोंकूं सो क्षेत्रज्ञ आत्मापुरुष आपणी सत्ताकरिकै तथा स्फुरणकरिकै धारण करणेहारा है तथा पोषण करणेहारा है । इतनेकहणे करिकै श्रीभगवान्नैं यह अनुमान सूचन कऱ्या-आत्मा देहइंद्रियादिकोंतैं भिन्न है भर्त्ता होणेतैं । जैसे पुत्रादिकोंका भरण करणेहारा पिता तिन पुत्रादिकोंतैं भिन्न होवै है इति । पुनः कैसा है सो क्षेत्रज्ञ आत्मापुरुष-भोक्ता है, अर्थात् बुद्धिकी सुखदुःखमोक्षरूप जे वृत्तियां विशेष हैं तिन वृत्तियोंकूं स्वरूप चैतन्यकरिकै प्रकाश करताहुआ यह आत्मादेव निर्विकार हुआ ही तिन सुखादिकोंका उपलब्धा है । इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अनुमान सूचन कऱ्या । आत्मा बुद्धि आदिकोंतैं भिन्न है भोक्ता होणेतै । जैसे देवदत्तनामा भोक्ता पुरुष अन्नादिक भोज्य पदार्थोंतै भिन्न होवै है इति । पुनः कैसा है सो क्षेत्रज्ञपुरुष-महेश्वर । तहां महान् होवै सोई ही ईश्वर होवै है ताका नाम महेश्वर है । तहां सर्वका आत्मारूप होणेतैं सो क्षेत्रज्ञ पुरुष महान् कह्या जावै है । और स्वतंत्र होणेतैं ईश्वर कह्या जावै है । अथवा जैसे चुंबक पाषाणकी समीपताकरिकै लोह चेष्टा करै है वैसे जिसकी समीपतामात्रकरिकै यह बुद्धि आदिक सर्व पदार्थ नानाप्रकारकी चेष्टा करै है सो क्षेत्रज्ञ आत्मा ईश्वर कह्या जावै है । तहां श्रुति-(महतो महीयान् ईशानो भूतभव्यस्य)

अर्थ यह—यह आत्मादेव आकाशादिक महान्पदार्थोंतैंभी अत्यंत महान् है तथा भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान, सर्व जगत्का प्रेरणा करणेहारा ईशान है इति। इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अनुमान सूचन कऱ्या। आत्मा प्रकृतितैं तथा ताके कार्यतै भिन्न होणेकूं योग्य है महेश्वर होणेतैं। जैसे महाराजा आपणी प्रजातैं भिन्न होवै है इति। पुनः कैसा है सो क्षेत्रज्ञपुरुष—श्रुतिविषे परमात्मा इस शब्दकारिकै कथन कऱ्या है अर्थात् अविद्याके वशतैं आत्मस्वरूपकारिकै कल्पना करे जे देहतै आदिलैके बुद्धिपर्यंत जडपदार्थ हैं तिन सर्व जडपदार्थोंतें जो उत्कृष्ट होवै ताकूं परम कहै हैं ऐसा परम जो पूर्वउक्त उपद्रष्टृत्वादिक विशेषणविशिष्ट आत्मा है ताका नाम परमात्मा है। यह वार्त्ता। (उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।) इस वचनकरिकै श्रीभगवान् आपही आगे कथन करैगा। इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अनुमान सूचन कऱ्या है। आत्मा देहइंद्रियादिकोंतैं भिन्न है परमात्मा होणेतैं। जो देहइंद्रियादिकोंतैं भिन्न नहीं होवै है सो परमात्माभी नहीं होवैहै जैसे देहइंद्रियादिक है इति। और किसी टीकाविषे तौ (उपद्रष्टानुमंता च.) इस श्लोकका यह अर्थ कऱ्या है। तहां पूर्व (स च यो यत्प्रभावश्च) इस वचनकरिकै क्षेत्रज्ञ तथा ता क्षेत्रज्ञका प्रभाव इन दोनोंके वर्णन करणेकी प्रतिज्ञा करीथी। तहां क्षेत्रज्ञका स्वरूप तौ पूर्व वर्णन कऱ्या। अब इस श्लोककरिकै ता क्षेत्रज्ञके प्रभावका वर्णन करैहै। (उपद्रष्टा इति) तहां पूर्व श्लोकविषे पुरुषका देहइंद्रिय मन आदिक गुणोंके साथि जो संग है सो. गुणसंगही इस पुरुषके जन्मका कारण है यह वार्त्ता कथन करीथी। तहां सो गुणसंग च्यारि प्रकारका होवैहै। एक तौ पुरुषका निषेधकरिकै तिस गुणमात्रकी प्रधानताकरिकै गुणसंग होवैहै और दूसरा तिस पुरुषकूं अंतरभूतकरिकै तिस गुणकी प्रधानताकरिकै गुणसंग होवैहै। और तीसरा पुरुषकी तथा तिन गुणोंकी समप्रधानताकरिकै सो गुणसंग होवैहै और चौथा तिन गुणोंकी अप्रधानताकरिकै तथा ता पुरुषकी प्रधानताकरिकै

गुणसंग होवैहै। तहां प्रथम गुणसंगविषे तौ देह इंद्रिय मन आदेरूप गुणोंके संघातकूं ही आत्मारूपकरिकै देखता हुआ यह पुरुष भोक्ता कह्या जावैहै। जैसे देहादिकोंकूं ही आत्मा मानणेहारे चार्वाकादिक हैं। और दूसरे गुणसंगविषे तौ तिन देहइंद्रियादिरूप गुणोंकूं ही प्रधान होणेतैं आत्माविषे वास्तवकर्तृत्वादि अभिमानकरिकै यह पुरुष कर्मके फलका भर्त्ता कह्या जावैहै। जैसे नैयायिक आदिक हैं। और तीसरे गुणसंगविषे तौ आत्माके साथि तिन गुणोंकी समप्रधानताकरिकै गुणविषे स्थितभी भोक्तापणेकूं असंगभी आत्माविषे वस्त्रविषे भल्लातकके अंकोंकी न्याईं यह पुरुष मानता हुआ अनुमंता कह्या जावैहै। जैसे सांख्यशास्त्रवाले पुरुष हैं। और चौथे गुणसंगविषे तौ सर्वप्रकारतें तिन गुणोंके धर्मोंका आत्माविषे प्रवेश नहीं देखताहुआ उदासीन बोधरूपताकरिकै तिन सर्वगुणोंके प्रचारोंकूं देखताहुआ यह पुरुष उपद्रष्टा कह्या जावै है। जैसे हम वेदांतियोंका साक्षी आत्मा है। तहां पूर्व कथन करे जे भोक्ता, भर्त्ता, अनुमंता, उपद्रष्टा यह च्यारि गुणोंके संगवाले हैं तिन च्यारों गुणसंगियोंविषे उपद्रष्टा तौ उत्तम है और अनुमंता मध्यम है और भर्त्ता अधम है और भोक्ता अधमतैं अधम है। और जो चैतन्यदेव तिन गुणोंके संगतैं भोक्तादिभावकूं प्राप्त हुआहै सोईही चैतन्यदेव जिस कालविषे तिन सर्वगुणोंकूं आपणे वशकरिकै क्रीडा करैहै तिस कालविषे महेश्वर इस नामकरिकै कह्या जावैहै। और जो चैतन्यदेव इस जगत्के उत्पत्ति स्थिति लयका कर्त्ता प्रभु अंतर्यामी है सोईही चैतन्यदेव तिन सर्वगुणोंका परित्यागकरिकै स्थित हुआ परमात्मा इस नामकरिकैभी कह्या जावैहै। यद्यपि उपद्रष्टाभी गुणोंका परित्याग करिकै तिन गुणोंका साक्षीरूप करिकै स्थित होवैहै तथापि संघात उपहित तिसीही उपद्रष्टाकूं दूसरे संघातके प्रचारका द्रष्टापणा है नहीं और परमात्मादेव तौ सर्वसंघातोंके प्रचारोंका द्रष्टा है। यातैं सर्वतैं उत्कृष्ट होणेतैं यह परम आत्मा है। इस परमात्माकूं

(उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः । यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥) इस श्लोककरिकै श्रीभगवान् आगे कथन करेगा । तहां महेश्वर परमात्मा यह दोनोंभी गुणसंगी ही हैं । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया-इस देहविषे विद्यमान तथा सर्वगुणोंकूं आपणेविषे लयकरिकै स्थित ऐसा जो सर्वगुणोंतैं रहित असंड एकरस अद्वितीय आत्मा है सो एक आत्मादेव ही तिस गुणसंगकरिकै उपद्रष्टा, अनुमंता, भर्त्ता, भोक्ता, महेश्वर, परमात्मा यह षट् प्रकारका होवै है । यह ही इस क्षेत्रज्ञ आत्माका प्रभाव है । तहां अनुमंता, भर्त्ता, भोक्ता इन तीन रूपोंकरिकै तौ यह आत्मादेव बंधायमान होवैहै । और उपद्रष्टा, महेश्वर, परमात्मा इन तीन रूपोंकरिकै तौ यह आत्मादेव नित्यमुक्त एक अद्वितीयरूप ही होवैहै ॥ २२ ॥

तहां पूर्व (स च यो यत्प्रभावश्च) इस वचनका व्याख्यान कऱ्या अर्थात् क्षेत्रज्ञका स्वरूप तथा ताका प्रभाव वर्णन कऱ्या । अब (यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते) यह जो वचन पूर्व कथन कऱ्याथा ताका उपसंहार करै हैं-

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ॥
सर्वथा वर्तमानोपि न स भूयोभिजायते ॥ २३ ॥

(पदच्छेदः) यः । एवम् । वेत्ति । पुरुषम् । प्रकृतिम् । च । गुणैः । सह । सर्वथा । वर्तमानः । अपि । न । सः । भूयः । अभिजायते ॥ २३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो अधिकारी पुरुष इस पूर्वउक्तप्रकारतें क्षेत्रपुरुषकूं तथा आपणे विकारों सहित अविद्यारूप प्रकृतिकूं जानैहै सो पुरुष सर्वप्रकारतें वर्तमानहुआ भी पुनः नहीं जन्मकूं प्राप्त होवैहै ॥ २३ ॥

भा०टी०-हे अर्जुन ! जो अधिकारीपुरुष इस पूर्वउक्त प्रकारकरिकै क्षेत्रज्ञनामा पुरुषकूं जानै है अर्थात् यह सर्वत्र व्यापक परमात्मादेव मैं हूं

या प्रकारतैं जो पुरुष इस क्षेत्रज्ञ आत्माकूं गुरुशास्त्रके उपदेशतैं साक्षात्कार करैहै । तथा जो पुरुष देहादि विकारों सहित अविद्यारूप प्रकृतिकूं जानैहै अर्थात् यह देहादिक विकारोंसहित अविद्यारूप प्रकृति आत्मज्ञान-करिकै बाधित होणेतैं मिथ्याभूत ही है वा आत्मज्ञानकरिकै हमारा अज्ञान तथा ता अज्ञानकार्यरूप प्रपंच दोनों निवृत्त होइगयेहैं इस प्रकारतैं जो पुरुष ता गुणसहित प्रकृतिकूं जानैहै सो तत्त्ववेत्ता पुरुष सर्वथा वर्त्तमान हुआभी अर्थात् अतिप्रबल प्रारब्धकर्मके वशतैं देवराज इंद्रकी न्याई शास्त्रविधिका उल्लंघन करिकै वर्त्तमानहुआभी पुनः जन्मकूं प्राप्त होता नहीं । अर्थात् इस विद्वान् पुरुषकूं जिस शरीरविषे आत्मज्ञानकी प्राप्ति हुईहै तिस शरीरके पात हुएतैं अनंतर सो तत्त्ववेत्ता पुरुष पुनः द्वितीयदे-हकूं ग्रहण करै नहीं । काहेतैं अविद्याकरिकै ही इस पुरुषकूं पुनः जन्मकी प्राप्ति होवैहै । ब्रह्मविद्याकरिकै ताअविद्यारूप कारणका जबी नाश होवैहै तबी ता अविद्याके जन्मादिक कार्योंकाभी अभाव होइजावैहै । यह वार्त्ता पूर्व बहुतवार कथन करिआयेहैं किंतु पुण्यपापकर्मोंकरिकै ही इस पुरुषकू पुनः जन्मकी प्राप्ति होवैहै । ते पुण्यपापकर्म इस तत्त्ववेत्ता पुरुषके आत्मज्ञानकरिकै नाश होइजावै है या कारणतैं भी तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं पुनः जन्मकी प्राप्ति होवै नहीं । यह वार्त्ता ब्रह्मसूत्रोंविषे श्रीव्यासभगवान्-नैंभी कथन करी है । तहां सूत्र—(तदधिगम उत्तर पूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात् ॥) अर्थ यह—मैं ब्रह्मरूप हूं इस प्रकारके आत्मसाक्षा-त्कारके प्राप्तहुए इस तत्त्ववेत्ता पुरुषके पूर्वले पुण्यपापरूप सर्व संचित-कर्म नाशकूं प्राप्त होवैहैं । और तिस आत्मज्ञानतैं उत्तर करेहुए कर्मोंका तिस तत्त्ववेत्तापुरुषकूं स्पर्शही नहीं होवै है । यह वार्त्ता अनेक श्रुतिस्मृतियों-विषे कथन करीहै इति । इहां (सर्वथा वर्त्तमानोपि) इस वचनविषे स्थित जो अपि यह शब्द है ता अपिशब्दकरिकै श्रीभगवान्नैं यह कैमुतिकन्याय सूचन करया । अतिप्रबल प्रारब्धकर्मके वशतैं देवराज इंद्रकी न्याई शास्त्रविधिका उल्लंघन करिकै वर्त्तमान हुआभी यह तत्त्ववेत्ता

पुरुष जबी पुनः जन्मकूं नहीं प्राप्त होवैहै तबी शास्त्रविधिका नहीं उल्लंघनकरिकै आपणे श्रेष्ठ आचारविषे वर्तमानहुआ सो तत्त्ववेत्ता पुरुष पुनः जन्मकूं नहीं प्राप्त होवैहै याकेविषे क्या कहणा है इति। तहां देवराज इन्द्र शास्त्रविधिका उल्लंघन करिकै जैसे विश्वरूपनामा पुरोहितकूं तथा अनेक संन्यासियोंकूं हनन करताभया है सो सर्व वार्ता आत्मपुराणके द्वितीय अध्यायविषे हम विस्तारतें निरूपण करिआये है ॥ २३ ॥

तहां पूर्व कथन करे हुए फलसहित आत्मज्ञानविषे अधिकारीजनोंके भेदकरिकै साधनोंके विकल्पोंकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं है— ।

ध्यानेनात्मनि पश्यंति केचिदात्मानमात्मना ॥
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥ २४ ॥

(पदच्छेदः) ध्यानेन । आत्मनि । पश्यंति । केचित् । आत्मानम् । आत्मना । अन्ये । सांख्येन । योगेन । कर्मयोगेन । च । अपरे ॥ २४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! केईक अधिकारीजन तौ ध्यानकरिकैही आपणी बुद्धिविषे प्रत्यक्आत्माकूं ध्यानयुक्त अंतःकरणकरिकै साक्षात्कार करैं हैं और दूसरे अधिकारी जन तौ सांख्य योगकरिकै आत्माकूं साक्षात्कार करैं है तथा अन्य केईक अधिकारी जन तौ कर्मयोगकरिकै आत्माकूं साक्षात्कार करैं है ॥ २४ ॥

भा० टी०—तहां इस लोकविषे च्यारिप्रकारके अधिकारी जन होवैं हैं। तहां एकअधिकारी जन तौ उत्तम होवै है। और दूसरे अधिकारी जन मध्यम होवैं है। और तीसरे अधिकारी जन मंद होवैहैं और चौथे अधिकारी जन मंदतर होवैं हैं। तिन च्यारोंविषे प्रथम उत्तम अधिकारी जनोंके आत्मज्ञानके साधनकूं श्रीभगवान् कथन करैंहै। (ध्यानेन इति) तहां देहादिक अनात्मपदार्थाकार विजातीयवृत्तियोंके व्यवधानतें रहित आत्माकार सजातीय वृत्तियोंका प्रवाहरूप जो आत्मचिंतन है जिस

आत्मचिंतनकूं शास्त्रविषे निदिध्यासनशब्दकरिकै कथन करथा है तथा जो आत्मचिंतनकूं श्रवणमननका फलरूप है । तथा जिस आत्मचिंतनकरिकै देहादिकोंविषे आत्मत्वबुद्धिरूप विपरीतभावनाकी निवृत्ति होवै है ता निदिध्यासनरूप आत्मचिंतनका नाम ध्यान है । ऐसे ध्यानकरिकै ही केईक उत्तम अधिकारी जन आपणी बुद्धिविषे प्रत्यक्चेतनरूप आत्माकूं ता ध्यानयुक्त शुद्ध अंतःकरणकरिकै साक्षात्कार करैं हैं इति । अब मध्यम अधिकारी जनोंके आत्मज्ञानके साधनकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं (अन्ये सांख्येन योगेन इति) तहां पूर्व उक्त निदिध्यासनरूप ध्यानतैं पूर्व भावी ऐसा जो श्रवण मननरूप आत्मचिंतन है जो आत्मचिंतन नित्य अनित्यवस्तुका विवेक, वैराग्य, शमदमादि षट् संपत्, मुमुक्षुता इन च्यारि साधनोंतैं उत्तर कऱ्या जावैहै । तथा जो आत्मचिंतन यह त्रिगुणात्मक मायाके परिणामरूप सर्व अनात्मपदार्थ मिथ्याभूत हैं और तिन सर्व मिथ्यापदार्थोंका साक्षीरूप नित्य विभु निर्विकार सत्य समस्त जडपदार्थोंके संबंधतैं रहित ऐसा जो प्रत्यक् चेतन आत्मा है सो मैं हूं इस प्रकारके वेदांतवाक्योंके विचारकरिकै जन्य है । तथा जो आत्मचिंतन प्रमाणगत असंभावनाका तथा प्रमेयगत असंभावनाका निवर्त्तक है ता श्रवणमननरूप आत्मचिंतनका नाम सांख्ययोग है । ऐसे सांख्ययोगकरिकै केईक मध्यम अधिकारी जन आपणी बुद्धिविषे तिस प्रत्यक् आत्माकूं ता ध्यानकी उत्पत्तिद्वारा साक्षात्कार करैंहैं इति । अब तीसरे मंद अधिकारी जनोंके आत्मज्ञानके साधनकूं श्रीभगवान् कहैं हैं । (कर्मयोगेन चापरे इति) तहां फलकी इच्छातैं रहित होइकै केवल ईश्वरअर्पण बुद्धिकरिकै करेहुए ऐसे जे तिसतिस वर्णआश्रमके उचित अग्निहोत्रादिक कर्म हैं तिन कर्मोंका नाम कर्मयोग है । ऐसे कर्मयोगकरिकै केईक मंद अधिकारी जन आपणी बुद्धिविषे तिस प्रत्यक् आत्माकूं अंतःकरणकी शुद्धि, श्रवण, मनन, ध्यान इन च्यारोंकी उत्पत्तिद्वारा साक्षात्कार करैं है ॥ २४ ॥

अब चौथे मंदतर अधिकारी जनोंके आत्मज्ञानके साधनकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

अन्ये त्वेवमजानंतः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ॥
तेपि चातितरंत्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥ २५॥

(पदच्छेदः) अन्ये। तु। एवम्। अजानंतः। श्रुत्वा। अन्येभ्यः। उपासते। ते। अपि। च। अतितरंति। एव। मृत्युम्। श्रुति-परायणाः ॥ २५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः अन्यअधिकारी जन तौ पूर्वउक्तउपाय-करिकै आत्माकूं नहीं जानतेहुए अन्यगुरुवोंतैं श्रवणकरिकै आत्माका चिंतन करैं हैं ते अधिकारीजन भी श्रवणपरायणहुए इस मृत्युयुक्त संसारकूं अवश्य अतिक्रमण करैं हैं ॥ २५ ॥

भा०टी०—इहां (अन्ये तु) इस वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तु शब्द पूर्व श्लोकविषे कथन करे हुए तीन प्रकारके अधिकारियोंतैं इन मंदतर अधिकारियोंविषे विलक्षणताके बोधन करणेवासतै हैं सा विलक्षणता दिखावैं हैं । हे अर्जुन । पूर्वश्लोकविषे कथन करे जे ध्यान, सांख्ययोग, कर्मयोग यह तीन उपाय हैं तिन तीनों उपायोंविषे किसीभी उपायकरिकै आत्माकूं नहीं जानते हुए केईक मंदतर अधिकारी जन तौ अन्य परम कारुणिक आचार्योंतैं श्रवणकरिकै उपासना करैं हैं अर्थात् तुम इस आत्माकूं इस प्रकारतैं चिंतन करौ इस प्रकारतैं तिन कृपालु आचार्योंकरिकै उपदेश करे हुए तथा तिन गुरुवोंके वचनोंविषे अत्यंत श्रद्धावाले हुए तिसी प्रकारतैं आत्माकूं चिंतन करैं हैं। वे श्रुतिपरायणपुरुषभी अर्थात् आपणी बुद्धकरिकै ता विचारविषे असमर्थ हुएभी अत्यंत श्रद्धावान् ताकरिकै ता गुरुके उपदेश श्रवणमात्रपरायण हुएभी मृत्युयुक्त इस संसारकूं अवश्यकरिकै अतिक्रमण करैं हैं । तात्पर्य यह— ध्यानविषे प्रवृत्तिकी अतिशयतातैं तिन पुरुषोंकूं चित्तकी शुद्धिवासतै

कर्मोंकीभी अपेक्षा है नहीं और वेदउक्त तत्त्वविषे दृढ निश्चयतैं तिन पुरुषोंकूं असंभावनाकी निवृत्तिवासतै श्रवणमननकीभी अपेक्षा है नहीं इति । इहां (तेपि) इस वचनविषे स्थित जो अपि यह शब्द है ता अपिशब्दकरिकै श्रीभगवान्नें यह कैमुतिकन्याय सूचन कऱ्या । जे आप विचारकरणेविषे समर्थ नहीं है किंतु अन्य गुरुवोंतैं श्रवणमात्र करिकै आत्माका चिंतन करैं हैं ते पुरुषभी जबी इस मृत्युयुक्त संसारकूं अतिक्रमण करैं हैं तबी आप विचारविषे समर्थ पुरुष इस मृत्युयुक्त संसारकूं अतिक्रमण करैं है याकेविषे क्या कहणा है इति । तहां आत्मज्ञानकरिकै जो कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्ति करणी है यहही ता मृत्युयुक्त संसारका अतिक्रमण है ॥ २५ ॥

तहां अधिष्ठानब्रह्मके आश्रित रहणेहारी तथा ता ब्रह्मकूं ही विषय करणेहारी ऐसी जा अनिर्वचनीय अविद्या है ता अविद्याकरिकै ही यह सर्व संसार उत्पन्न हुआ है । यातैं ता अधिष्ठानब्रह्मकूं विषयकरणेहारी जा मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकारका आत्मज्ञानरूप ब्रह्मविद्या है ता ब्रह्मविद्याकरिकै ता अविद्याके निवृत्त हुए इस अधिकारी पुरुषकूं मोक्षकी प्राप्ति बनि सकै है । इस अर्थके निश्चय करावणेवासतै इस त्रयोदश अध्यायकी समाप्तिपर्यंत श्रीभगवान्नें संसारका तथा ता संसारके निवर्त्तक आत्मज्ञानका दोनोंका विस्तारतैं निरूपण करीता है । तहां (कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु) यह जो वचन पूर्व कथन कऱ्या था तिस वचनके अर्थकूंही अब श्रीभगवान् स्पष्टकरिकै निरूपण करैं है-

यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजंगमम् ॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥ २६ ॥

(पदच्छेदः) यावत् । संजायते । किंचित् । सत्त्वम् । स्थावरजंगमम् । क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् । तत् । विद्धि । भरतर्षभ ॥ २६ ॥

(पदार्थः) हे भरतवंशविषे श्रेष्ठ अर्जुन ! जितना कोई स्थावरजंगमरूप वस्तु उत्पन्न होवै है तिस सर्वकूं तूं क्षेत्रक्षेत्रज्ञ दोनोंके संयोगतैं उत्पन्नहुआ जानै ॥ २६ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! तीन लोकोंविषे कोई वस्तु स्थावररूप अथवा जंगमरूप उत्पन्न हुवा होवै है तिन सर्व वस्तुवोंकूं तूं क्षेत्रक्षेत्रज्ञ दोनोंके संयोगतैं ही उत्पन्न हुआ जान । तहां अविद्या तथा ता अविद्याका कार्यरूप जितनाक जड अनिर्वचनीय भाव अभावरूप दृश्यप्रपंच है यह सर्व क्षेत्ररूप है । और ता क्षेत्रतैं विलक्षण तथा ता क्षेत्रका प्रकाशक तथा स्वप्रकाशपरमार्थ सत् तथा असंग उदासीन तथा सर्वधर्मोंतैं रहित ऐसा जो अद्वितीय चैतन्य है ताका नाम क्षेत्रज्ञ है । ऐसे क्षेत्र क्षेत्रज्ञ दोनोंका जो मायाके वशतैं परस्पर अविवेक निमित्तक सत्य अनृत मिथुनीकरणरूप मिथ्यातादात्म्य अध्यास है यह ही ता क्षेत्रक्षेत्रज्ञका संयोग है ऐसे क्षेत्रक्षेत्रज्ञके संयोगतैंही यह स्थावर जंगमरूप सर्व कार्य उत्पन्न होवै है इस प्रकारतैं तूं निश्चय कर। या कहणेतैं यह अर्थ सिद्ध भया । आपणे वास्तवस्वरूपके अज्ञानतैं ही यह संसार प्रतीत होवै है । ता स्वरूपके ज्ञानतैं यह संसार नाशकूंही प्राप्त होवै है । जैसे स्वप्नादिक मिथ्यापदार्थ अधिष्ठानवस्तुके यथार्थ स्वरूपके अज्ञानतैं ही प्रतीत होवैंहैं ता स्वरूपके ज्ञान हुएतैं निवृत्त होइ जावैं हैं ॥ २६ ॥

इस प्रकार अविद्यारूप संसारकूं कथन करिकै अब तिस संसारकी निवृत्ति करणेहारी ब्रह्मविद्याके कथन करणेवासतै (य एवं वेत्ति पुरुषम्) इस पूर्वउक्त वचनके अर्थकूं श्रीभगवान् स्पष्टकरिकै निरूपण करैं हैं–

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठंतं परमेश्वरम् ॥
विनश्यत्स्वविनश्यंतं यः पश्यति स पश्यति ॥ २७ ॥

(पदच्छेदः) समम् । सर्वेषु । भूतेषु । तिष्ठंतम् । परमेश्वरम् । विनश्यत्सु । अविनश्यंतम् । यः । पश्यति । सः । पश्यति ॥ २७ ॥

(-पदार्थः) हे अर्जुन ! नाशवान् सर्व भूतोंविषे सम तथा निर्विकाररूपतें स्थित तथा विनाशतें रहित तथा परमेश्वररूप ऐसे आत्माकूं जो पुरुष देखै है सो पुरुषही देखैहै ॥ २७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन! उत्पत्ति धर्मवाले जितनेक स्थावर जंगम प्राणीरूप भूत हैं कैसे है ते सर्वभूत—अनेक प्रकारके जन्मादिक परिणाम स्वभावताकरिकै तथा गुणप्रधानभावकी प्राप्तिकरिकै विषमस्वभाववाले हैं। इस कारणतें ही ते भूत अत्यंत चंचल हैं अर्थात् क्षणक्षणविषे परिणामी हैं ता परिणामकूं न प्राप्त होइकै एक क्षणमात्रभी स्थित होणेकूं समर्थ हैं नहीं। इसी कारणतें ही ते सर्वभूत परस्पर बाध्यबाधकभावकूं प्राप्त होवैं हैं। इसी कारणतें ही ते सर्वभूत विनाशवान् हैं अर्थात् मायागंधर्वनगरादिकोंकी न्याई दृष्टनष्टस्वभाववाले हैं। जो पदार्थ देखतेदेखते ही नष्ट होइजावै है सो पदार्थ दृष्टनष्टस्वभाववाला कह्या जावै है। ऐसे सर्व स्थावरजंगमरूप भूतोंविषे आत्मादेव सम है अर्थात् सर्वत्र एकरूप है तथा सर्व देहोंविषे एक है। तथा जो आत्मादेव तिन सर्व भूतोंविषे जन्मादिक परिणामोंतें रहित ता करिकै निर्विकाररूपतें स्थित है। तथा जो आत्मादेव परमेश्वर है अर्थात् देहादिक सर्व जडवर्गके प्रति सत्तास्फूर्तिका प्रदाता होणेतें बाध्यबाधकभावतें रहित है। तहां नाश होणे योग्य वस्तुकूं बाध्य कहैं है। और नाश करणेहारे वस्तुकूं बाधक कहैं हैं। ऐसे बाध्यबाधकभावतें रहित है। तथा सर्व दोषोंतें रहितहै। पुनः कैसा है सो आत्मादेव—अविनाशी है अर्थात् मायागंधर्वनगरादिकोंकी न्याई दृष्टनष्टप्राय इस सर्व द्वैतके बाधहुएभी जो बाधकूं प्राप्त होता नहीं। तहां श्रुति—(अविनाशी वा अरेऽयमात्मा) अर्थ यह—हे मैत्रेयि ! यह आत्मादेव नाशतें रहित है इति। इस रीतिसैं सर्व प्रकार करिकै इस जडप्रपंचतें विलक्षण जो प्रत्यक् आत्मा है तिस प्रत्यक्आत्माकूं जो अधिकारी जन वेदांतशास्त्ररूप चक्षुकरिकै सर्वजडवर्गतें भिन्नकरिकै देखै है सोईही अधिकारीजन आत्माकूं देखैहै जैसेजाग्रत्के बोधकरिकै स्वप्नभ्रमकूंनिवृत्त करताहुआ वहीसम्यक्देखैहै और

जो पुरुष इसप्रकारतें आत्माकूं नहीं देखे है सो अज्ञानी पुरुष तौ स्वप्नदर्शी पुरुषकी न्याईं भ्रांतिकरिकै विपरीत देखताहुआभी नहीं ही देखै है। काहेतें जो जो भ्रम होवै है सो सो भ्रम अदर्शनरूप ही होवै है। भ्रमविषे दर्शनरूपता संभवती नहीं। जैसे रज्जुकूं सर्परूपकरिकै देखताहुआभी भ्रांतपुरुष यह देखता है या प्रकारतें कह्या जावै नहीं किंतु यह नहीं देखता है या प्रकारतें ही कह्या जावै है। काहेतें ता कल्पितसर्पका जो दर्शन है सो दर्शन ता रज्जुका अदर्शनरूप ही है। ता रज्जुके अदर्शनतें सो सर्पका दर्शन भिन्न नहीं है यातें ता सर्पकूं देखताहुआभी सो भ्रांतपुरुष नहींही देखै है यातें यह अर्थ सिद्ध भया। इस प्रकारके सर्व उपाधियोंतें रहित शुद्ध आत्माके दर्शनतें सो आत्माका अदर्शनरूप अविद्या निवृत्त होइ जावै है ता अविद्यारूप कारणकी निवृत्तितें अनंतर ताके कार्यरूप संसारकीभी निवृत्ति होइजावै है। ऐसा आत्मज्ञान इस अधिकारी पुरुषनें अवश्यकरिकै संपादन करणा इति। तहां इस श्लोकविषे यद्यपि श्रीभगवान्नें (आत्मानम्) या प्रकारका आत्मारूप विशेष्यका वाचक पद कथन कऱ्या नहीं तथापि जहां विशेषणवाचक पद होवै है तहां विशेष्यवाच पदकी अर्थतें ही प्राप्ति होवै है यह शास्त्रवेत्ता पुरुषोंका नियम है। ते विशेषणवाचक पद इहांभी (समं तिष्ठंत. परमेश्वरम्। अविनश्यन्तम्) यह विद्यमान हैं। यातें आत्मारूप विशेष्यका लाभ इहां अर्थतें ही प्राप्त होवै है। अथवा (परमेश्वरम्) यह पद ही ता आत्मारूप विशेष्यका वाचक जानणा ॥ २७ ॥

अब अधिकारी जनोंकी ता आत्मदर्शनविषे रुचि उत्पन्न करणेवासतें इस पूर्वश्लोकउक्त आत्मदर्शनकी श्रीभगवान् फलकरिकै स्तुति करैं हैं—

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ॥
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्॥२८॥

(पदच्छेदः) समम् । पश्यन् । हि । सर्वत्र । समवस्थितम् । ईश्वरम् । न । हिनस्ति । आत्मना । आत्मानम् । ततः । याति । पराम् । गतिम् ॥ २८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्वभूतोंविषे सम तथा समवस्थित तथा ईश्वररूप ऐसे आत्माकूं देखताहुआ यह विद्वान् पुरुष जिसकारणतैं आत्माकरिकै आत्माकूं नहीं हननकरै है तिसकारणतैं परम गतिकूं प्राप्त होवै है ॥ २८ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! स्थावरजंगमरूप सर्व भूतोंविषे जो आत्मा सम है अर्थात् सर्वत्र एकरूप है तथा जो आत्मा समवस्थित है अर्थात् जन्मतैं आदिलैके विनाशपर्यंत सर्वभावविकारोंतैं रहित हुआ स्थित है। तथा जो आत्मा ईश्वर है अर्थात् सर्वप्राणियोंके प्रवृत्तिका कारण है। इस प्रकारके पूर्वउक्त सर्व विशेषणोंकरिकै विशिष्ट जो आत्मा है तिस आत्माकूं देखताहुआ अर्थात् इस प्रकारका आत्मादेव मैं हूं या प्रकारतैं शास्त्रदृष्टिकरिकै तिस आत्माकूं साक्षात्कार करताहुआ यह विद्वान् पुरुष जिस कारणतैं आपणे आत्माकरिकै आपणे आत्माकूं हनन करता नहीं तिस कारणतैं सो विद्वान् पुरुष परम गतिकूं प्राप्त होवै है । और इस लोकविषे जितनेक अज्ञानी जन हैं ते सर्वही अज्ञानी जन परमार्थतैं सत्रूप तथा एक अद्वितीयरूप तथा अकर्ता अभोक्तारूप तथा परमानंदरूप ऐसे आत्माकूं अस्ति भाति रूप वस्तुविषेभी नास्ति न भाति इस प्रकारकी प्रतीति करावणेविषे समर्थ ऐसी अविद्याकरिकै आपही तिरस्कार करतेहुए न हुए जैसा करैं हैं । यातैं ते सर्व अज्ञानी जन ता आत्माकूं हनन ही करैं हैं । अथवा अविद्याकरिकै आत्मत्वरूपकरिकै ग्रहण कऱ्या जो देहइंद्रियादिकोंका संघातरूप आत्मा है तिस संघातरूप पुरातन आत्माकूं हननकरिकै पुण्यपापकर्मके वशतैं पुनः नवीन संघातरूप आत्माकूं ग्रहण करैं हैं । या कारणतैंभी वे अज्ञानी जन ता आत्माकूं हननही करैं हैं । यातैं दोनों प्रकारतैं ते सर्व अज्ञानी

जन आत्महत्यारे ही हैं । ऐसे आत्महत्यारे अज्ञानी जनोंकूं लक्ष्यकरिकै ही यह शकुंतलाका वचनरूप स्मृति प्रवृत्त हुई है । तहां श्लोक-(किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा । योऽन्यथा संतमात्मानमन्यथा प्रतिपाद्यते ॥) अर्थ यह-जो पुरुष सत्, चित्, आनंद, विभु आत्माकूं असत्, जड, दुःख परिच्छिन्नरूप मानै है तिस आत्माके अपहरण करणेहारे चौर पुरुषनैं कौन पाप नहीं कऱ्या है किंतु तिस पुरुषनैं सर्व पाप करे हैं इति । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है तहां श्रुति-(असुर्या नाम ते लोका अंधेन तमसावृताः । तांस्ते प्रेत्याभिगच्छंति ये के चात्महनो जनाः ॥) अर्थ यह-दंभदर्पादिक आसुरी संपदावाले पुरुषोंकूं प्राप्त करणेहारे तथा अंधतमकरिकै आवृत ऐसे जे नरकादिक लोक हैं तिन लोकोंकूं ते पुरुष मरिकै प्राप्त होवैं हैं जे पुरुष आत्महन हैं । तहां देहादिक अनात्मपदार्थोंविषे जे पुरुष आत्मअभिमान करैं हैं तिन पुरुषोंका नाम आत्महन है इति । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । जो पुरुष आत्माकूं गुरुशास्त्रके उपदेशतैं साक्षात्कार करै है सो पुरुष देहादिक अनात्मपदार्थोंविषे आत्मअभिमानकूं शुद्धआत्माके दर्शनकरिकै नाश करै है । यातैं आपणे वास्तवस्वरूपके लाभतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष आपणे आपणे आत्माकूं आपणे आत्माकरिकै नाश करता नहीं । इसी कारणतैं ही सो तत्त्ववेत्ता पुरुष परा गतिकूं प्राप्त होवै है अर्थात् कार्यसहित अविद्याकी निवृत्तिपूर्वक परमानन्दकी प्राप्तिरूप मुक्तिकूं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष प्राप्त होवैहै ॥ २८ ॥

हे भगवन् ! शुभ अशुभ कर्मोंकूं करणेहारे देहदेहविषे भिन्नभिन्न ही आत्मा हैं । तथा तिसतिस सुखदुःखादिरूप विचित्रफलके भोक्ता होणेतैं ते आत्मा विषमस्वभाववालेभी हैं । यातैं सर्वभूतोंविषे स्थित एक आत्माकूं सम देखताहुआ यह पुरुष आपणे आत्माकरिकै आपणी आत्माकूं नहीं हनन करैहै यह आपका वचन कैसे संगत होवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कैहैं-

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ॥
यः पश्यति तथात्मानमकर्त्तारं स पश्यति ॥२९॥

(पदच्छेदः) प्रकृत्या । एव । च । कर्माणि । क्रियमाणानि । सर्वशः । यः । पश्यति । तथा । आत्मानम् । अकर्त्तारम् । सः । पश्यति ॥ २९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मायारूपप्रकृतिनैंही सर्वप्रकारकरिकै सर्व-कर्म करीते हैं इसप्रकार जो विवेकीपुरुष देखताहै तथा क्षेत्रज्ञ आत्माकूं जो अकर्त्ता देखैहै सोईही पुरुष सम्यक् देखता है ॥ २९ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! शरीरकरिकै तथा मनकरिकै तथा वाणीकरिकै आरंभ करणे योग्य जे लौकिक वैदिककर्महैं ते सर्वकर्म सर्वप्रकारकरिकै प्रकृति-नैंही करीते हैं अर्थात् देहइंद्रियादिकरूप संघातके आकारपरिणामकूं प्राप्त हुई तथा सर्वविकारोंका कारणरूप ऐसी जा त्रिगुणात्मक भगवत्की माया है तिस मायारूप प्रकृतिनैं ही ते सर्व कर्म करीते हैं । सर्व विका-रोंतैं शून्य क्षेत्रज्ञनामा पुरुषनैं वे कर्म करीते नहीं । इस प्रकारतैं जो विवेकी पुरुष शास्त्ररूप चक्षुकरिकै देखै है । इसप्रकार तिस प्रकृति-रूप क्षेत्रनैं करेहुए जे कर्म हैं तिन सर्वकर्मोंविषे जो पुरुष क्षेत्रज्ञ आत्माकूं अकर्त्तारूप देखैहै तथा सर्व उपाधियोंतैं रहित देखैहै तथा असंग देखैहै तथा सर्वत्र एक देखै है तथा सर्वत्र सम देखैहै सो पुरुषही परमार्थदर्शी होणेतैं देखता है । ऐसे आत्माके स्वरूपकूं न जानणेहारे सर्व अज्ञानी जन अंधही हैं । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । जन्ममरणादिक विका-रवाले क्षेत्रका तिसतिस विचित्र कर्मका कर्त्तापणेकरिकै देहदेहविषे भेद हुएभी तथा विषमता हुएभी निर्विशेष अकर्त्ता आत्माके भेदविषे तथा विषमता विषे किंचित्मात्रभी प्रमाण नहीं है । जैसे घटमठादिक सर्व उपाधियोंतैं रहित आकाशके भेदविषे तथा विष-मताविषे किंचित्मात्रभी प्रमाण नहीं है तैसे निर्विशेष अकर्त्ता आत्माके

भेदविषे तथा विषमताविषे किंचित्‌मात्रभी प्रमाण नहीं है। यह वार्त्ता पूर्व अनेकवार प्रतिपादन करि आये हैं ॥ २९ ॥

तहां पूर्व आपादतें क्षेत्रके भेददर्शनका कथन करिकै क्षेत्रज्ञके भेददर्शनका निषेध कऱ्या।अब श्रीभगवान् तिस क्षेत्रके भेददर्शनकूंभी मायिकत्वरूप हेतुकरिकै निषेध करैं हैं–

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ॥
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ३० ॥

(पदच्छेदः) यदा । भूतपृथग्भावम् । एकस्थम् । अनुपश्यति। ततः । एव । च। विस्तारम् । ब्रह्म । संपद्यते । तदा ॥ ३० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह अधिकारीपुरुष जिसकालविषे भूतोंके पृथक्‌भावकूं एकआत्माविषे स्थित देखताहै तथा तिस एकआत्मातैं ही तिन भूतोंके विस्तारकूं देखताहै तिस कालेविषे एकब्रह्मही होवैहै ॥ ३० ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! यह अधिकारी पुरुष जिस कालविषे स्थावर जंगमरूप सर्वजडभूतोंके परस्पर भिन्नत्वरूप पृथक्‌भावकूं एकविषे स्थित देखता है अर्थात् एकही सत्‌रूप अधिष्ठान आत्माविषे तिस भूतोंके पृथक्‌भावकूं कल्पित देखता है । तात्पर्य यह–जो जो वस्तु कल्पित होवै है सो सो कल्पितवस्तु अधिष्ठानतैं भिन्न होवै नहीं । जैसे रज्जुविषे कल्पित सर्पदंडादिक तिस रज्जुरूप अधिष्ठानतैं भिन्न होवै नहीं तथा जैसे कनकविषे कल्पित कुंडलकंकणादिक भूषण तिस कनकतैं भिन्न होवैं नहीं । तैसे सत्‌रूप आत्माविषे कल्पित यह सर्व भूतोंका पृथक्‌भावभी तिस अधिष्ठान आत्मातैं भिन्न है नहीं । इस प्रकार गुरुशास्त्रके उपदेशतैं अनंतर जो पुरुष आपणे स्वरूपका विचार करै है अर्थात् यह सर्व जगत् आत्मारूपही है आत्मातैं भिन्न सत्तावाला यह जगत् नहीं है इस प्रकारतैं जो पुरुष विचारकरिकै देखै है।इस प्रकार तिस अधिष्ठान आत्मातैं सर्वभूतोंके अपृथक्‌हुएभी जो पुरुष तिस एक आत्मातैं ही मायाके वशतैं तिन सर्वभूतों-

नष्ट होवैं हैं । और यह आत्मादेव तौ तिन सर्व धर्मोंतैं रहित है । यातैं यह आत्मादेव तिन धर्मोंके व्ययकरिकै भी व्ययकूं प्राप्त होवै नहीं । तहां श्रुति–(अविनाशी वा अरेऽयमात्मानुच्छित्तिधर्मा।) अर्थ यह–हे मैत्रेयि ! यह आत्मादेव स्वरूपतैंभी नाशादिकविकारोंतैं रहित है । तथा धर्मोंके नाशादिक विकारोंकरिकैंभी नाशादिक विकारोंकूं प्राप्त होवै नहीं । जिस कारणतैं यह आत्मादेव सर्व धर्मोंतैं रहित है इति । हे अर्जुन ! जिस कारणतैं यह आत्मादेव जन्म, अस्ति, वृद्धि, विपरिणाम, अपक्षय, विनाश इन षट्भावविकारोंतैं रहित है इस कारणतैं यह आत्मादेव आध्यासिक संबंध करिकै इस शरीरविषे स्थित हुआभी तिस शरीरके प्रवृत्त हुएभी यह आत्मादेव किंचित्मात्रभी करता नहीं । जैसे आध्यासिक संबंधकरिकै जलविषे स्थित हुआभी सूर्य ता जलके चलायमान हुएभी चलायमान होवै नहीं । तैसे आध्यासिक संबंधकरिकै इस शरीरविषे स्थित हुआभी यह आत्मादेव ता शरीरके प्रवृत्त हुएभी किंचित्मात्रभी करता नहीं । हे अर्जुन ! जिस कारणतै यह आत्मादेव किसीभी लौकिक वैदिक कर्मकूं करता नहीं तिस कारणतै यह आत्मादेव किसीभी कर्मके फलकरिकै लिपायमान होवै नहीं । काहेतैं इस लोकविषे जो जो पुरुष जिसजिस शुभ अशुभ कर्मकूं करै है सो सो पुरुष ही तिसतिस कर्मके सुखदुःखरूप फलकरिकै लिपायमान होवै है । तिसतिस कर्मकूं नहीं करताहुआ पुरुष तिसतिस कर्मके फलकरिकै लिपायमान होवै नहीं । और यह आत्माभी कर्मकूं करता नहीं । यातैं यह आत्मादेव किसीभी कर्मके फलकरिकै लिपायमान होवै नहीं । तहां (इच्छा द्वेषः सुखं दुःखम्) इत्यादिक वचनकरिकै तिन इच्छाद्वेषादिकोंविषे क्षेत्रकाही धर्मपणा कथन कऱ्या है । और (प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि) इस वचनकरिकै सर्व कर्मोंविषे मायाकाही कार्यपणा कथन कऱ्या है । असंग आत्माका कोई धर्म नहीं है तथा कोई कार्य नहीं है या कारणतै ही परमार्थदर्शी विद्वान् पुरुषोंकूं सर्वकर्मोंके अधिकारका अभाव पूर्व कथन करिआये हैं । इतने करिकै आत्माविषे सर्वधर्मोंतैं

रहितपणा कथन करिकै स्वगतभेदभी निवृत्त करे । और (प्रकृत्यैव च कर्माणि) इस श्लोकविषे तौ पूर्व सजातीय भेद निवृत्त कऱ्याथा । और (यदा भूतपृथग्भावम्) इस श्लोकविषे तौ पूर्व विजातीयभेद निवृत्त कऱ्याथा । और (अनादित्वान्निर्गुणत्वात्) इस श्लोकविषे तौ स्वगतभेद निवृत्त कऱ्या है । यातैं सजातीयभेद, विजातीयभेद, स्वगतभेद इन तीन भेदोंतैं रहित होणेतें अद्वितीय ब्रह्मरूप ही यह आत्मा है यह अर्थ सिद्ध भया इति । तहां समान जातिवाले पदार्थोंका जो परस्पर भेद है ताका नाम सजातीयभेद है । जैसे एकवृक्षविषे दूसरे वृक्षका भेदहै । और विरुद्धजातिवाले पदार्थोंका जो परस्पर भेद है ताका नाम विजातीय भेद है। जैसे तिसी वृक्षविषे पाषाणका भेद है । और एकही वस्तुविषे आपणे अवयवोंकरिकै जो भेद है ताका नाम स्वगतभेद है । जैसे तिस एकही वृक्षविषे शाखा, पत्र, पुष्प, फल इत्यादिक अवयवोंकरिकै भेद है । और (एको देवः सर्वभूतेषु गूढः ।) यह श्रुति सर्व भूतोंविषे एकही आत्मा कहै है । वा आत्माके समानजातिवाला दूसरा कोई आत्मा है नहीं । यातैं आत्माविषे सजातीयभेद संभवै नहीं । और (अतोऽन्यदार्त्तम्) यह श्रुति आत्मातैं भिन्न सर्व जगत्कूं कल्पित कहै है । और कल्पितवस्तुकी अधिष्ठानतै भिन्न सत्ता होवै नहीं । यातैं आत्माविषे विजातीयभेदभी संभवै नहीं । और (निष्कलम्, निर्गुणम्, निष्क्रियम्, शांतम्) यह श्रुति आत्माकूं निरवयव निर्गुण निष्क्रिय कहै है । यातैं आत्माविषे स्वगतभेदभी संभवै नहीं ॥ ३१ ॥

तहां शरीरविषे स्थित हुआभी यह आत्मादेव आप असंग होणेतैं तिस शरीरके कर्मोंकरिकै लिपायमान होता नहीं यह अर्थ पूर्वश्लोकविषे कथन कऱ्या । अब श्रीभगवान् तिस पूर्वउक्त अर्थविषे दृष्टांतकूं कथन करैं हैं–

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ॥
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते॥ ३२ ॥

(पदच्छेदः) यथा । सर्वगतम् । सौक्ष्म्यात् । आकाशम् । न । उपलिप्यते । सर्वत्र । अवस्थितः । देहे । तथा । आत्मा । न । उपलिप्यते ॥ ३२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जैसे सर्वत्र व्यापकभी आकाश असंगस्वभाववाला होणेतैं नहीं लिपायमान होवै है तैसे सर्व देहोंविषे स्थितहुआभी यह आत्मादेव असंगस्वभाववाला होणेतैं नहीं लिपायमान होवै है ॥ ३२ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जैसे घटमठतैं आदिलैके जितनेक दुष्ट तथा अदुष्ट मूर्त द्रव्य हैं तिन सर्व द्रव्योंविषे अंतर तथा बाह्य व्याप्यकरिकै वर्त्तमान हुआभी यह आकाश सूक्ष्म होणेतैं अर्थात् असंगस्वभाववाला होणेतैं तिन मूर्त्तद्रव्योंके सुगंध, दुर्गंध, वर्षा, आतप, अग्नि, धूम, रज, पंक इत्यादिक गुणदोषोंकरिकै लिपायमान होता नहीं । तैसे देव, मनुष्य, पशु इत्यादिक उच्च नीच सर्व देहोंविषे अंतर बाह्य सर्वत्र व्याप्यकरिकै स्थित हुआभी यह आत्मादेव असंग स्वभाववाला होणेतैं तिन देहादिकृत शुभ अशुभ कर्मोंकरिकै लिपायमान होता नहीं । तहां श्रुति–(असंगो न हि सज्जते) अर्थ यह–यह आत्मादेव असंग होणेतैं किसीभी वस्तुके साथि संबंधकूं प्राप्त होवै नहीं ॥ ३२ ॥

किंवा इस आत्मादेवविषे केवल असंगतारूप हेतुतैं ही अलेपता नहीं है किंतु प्रकाशकत्वरूप हेतुतैंभी इस आत्मादेवविषे सा अलेपता है । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् दृष्टांतकरिकै कथन करै हैं–

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ॥
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥ ३३ ॥

(पदच्छेदः) यथा । प्रकाशयति । एकः । कृत्स्नम् । लोकम् । इमम् । रविः । क्षेत्रम् । क्षेत्री । तथा । कृत्स्नम् । प्रकाशयति । भारत ॥ ३३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जैसे एकही सूर्य इस सर्व लोककूं प्रकाश करैहै तैसे क्षेत्रज्ञनामा आत्मा इस सर्व क्षेत्रकूं प्रकाश करैहै ॥ ३३ ॥

भा०टी०-हे अर्जुन ! जैसे एकही सूर्य इस रूपवान् देहादिक सर्व वस्तुवोंकूं प्रकाश करै है परंतु तिन प्रकाश्यरूप देहादिक वस्तुवोंके धर्मोंकरिकै सो सूर्य लिपायमान होता नहीं । तथा तिन प्रकाशरूप देहादिक वस्तुवोंके भेदकरिकै सो सूर्य भेदकूंभी प्राप्त होता नहीं । तैसे सो एक ही क्षेत्रज्ञ आत्मा पूर्वउक्त सर्व क्षेत्रकूं प्रकाश करै है । इस कारणतैंही सो क्षेत्रज्ञ आत्मा तिस प्रकाश्यरूप क्षेत्रके धर्मोंकरिकै लिपायमान होवै नहीं। तथा तिस प्रकाश्यरूप क्षेत्रज्ञके भेदकरिकै सो क्षेत्रज्ञ आत्मा भेदकूं प्राप्त होवै नहीं । इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अनुमान सूचन कऱ्या । क्षेत्रज्ञ आत्मा क्षेत्रके धर्मोंकरिकै लिपायमान होवै नहीं । तथा ता क्षेत्रज्ञके भेदकरिकै भेदकूं प्राप्त होवै नहीं तिस क्षेत्रका प्रकाश होणेतैं । जो जिस वस्तुका प्रकाशक होवैहै सो तिस प्रकाश्य वस्तुके धर्मोंकरिकै लिपायमान होवै नहीं । तथा तिस प्रकाश्य वस्तुभेदकरिकैभी भेदकूं प्राप्त होवै नहीं जैसे सूर्य है इति । किंवा क्षेत्रज्ञ आत्मा क्षेत्रके धर्मोंकरिकै लिपायमान नहीं होवै है यह वार्त्ता केवल अनुमान प्रमाणकरिकै ही सिद्ध नहीं है किंतु साक्षात् श्रुति भगवतीभी इस अर्थकूं कथन करै है । तहां श्रुति- (सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः । एकस्तथा सर्वभूतांतरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥) अर्थ यह-जैसे सर्वलोकका चक्षुरूप सूर्य चक्षुके विषयरूप बाह्यपदार्थोंके दोषोंकरिकै लिपायमान होवै नहीं तैसे सर्व पदार्थोंका प्रकाश करणेहारा तथा देहादिक संघाततैं भिन्न ऐसा जो सर्वभूतोंका अंतर आत्मा है सो एक अद्वितीय आत्माभी प्रकाश्यरूप देहादिकोंके दुःखोंकरिकै लिपायमान होवै नहीं ॥ ३३ ॥

अब श्रीभगवान् इस त्रयोदश अध्यायके अर्थका फलसहित उपसंहार करैहैं-

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमंतरं ज्ञानचक्षुषा ॥
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यांति ते परम्॥३४॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञनिर्देशयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः । एवम् । अंतरम् । ज्ञानचक्षुषा । भूतप्रकृतिमोक्षम् । च । ये । विदुः । यांति । ते । परम् ॥ ३४ ॥

(पदार्थ) हे अर्जुन ! जे पुरुष क्षेत्रक्षेत्रज्ञदोनोंके विलक्षणताकूं पूर्वउक्तकारणतैं ज्ञानरूपचक्षुकरिकै जानतेहैं तथा भूतोंके कारणरूप मायाके अत्यंताभावकूं जानतेहैं ते अधिकारीपुरुष कैवल्यमुक्तिकूं प्राप्त होवैहैं ॥ ३४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पूर्व कथन कऱ्या जो क्षेत्र है तथा क्षेत्रज्ञ है तिन दोनोंके विलक्षणताकूं जे पुरुष ज्ञानरूप चक्षुकरिकै जानते हैं अर्थात् यह क्षेत्र तौ जड है तथा कर्त्ता है तथा विकारी है तथा परिच्छिन्न है। और यह क्षेत्रज्ञ आत्मा तौ चेतन है तथा अकर्त्ता है तथा अविकारी है तथा अपरिच्छिन्न है । इस प्रकारकी दोनोंकी विलक्षणताकूं जे अधिकारी पुरुष गुरुशास्त्रके उपदेशजन्य आत्मज्ञानरूप चक्षुकरिकै जानते हैं । तथा जे अधिकारी पुरुष भूतप्रकृतिके मोक्षकूं जानते हैं । तहां आकाशादिक सर्वभूतोंका कारणरूप जा माया, अविद्या, अज्ञान इत्यादिक नामोंवाली परमेश्वरकी शक्ति है जिस मायाशक्तिकूं (मायां तु प्रकृतिं विद्यात्) इत्यादिक श्रुतियां कथन करे हैं। ता मायाशक्तिका नाम भूतप्रकृति है ता भूतप्रकृतिकी जा मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकारकी परमार्थभूत आत्मविद्याकरिकै आत्यंतिक निवृत्ति है ताका नाम भूतप्रकृतिमोक्ष है ऐसे भूतप्रकृतिमोक्षकूंभी जे अधिकारी पुरुष तिस ज्ञानरूप चक्षुकरिकै जानतेहैं ते अधिकारी जनही परमार्थ आत्मवस्तुस्वरूप कैवल्यमुक्तिकूं प्राप्त होवैहैं । ऐसी कैवल्यमुक्तिकूं प्राप्त होइकै ते अधिकारी जन पुनः देहकूं ग्रहण करें नहीं । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । जो पुरुष पूर्वउक्त अमानित्वादिक साधनोंकरिकै

संपन्न है तथा पूर्वउक्त क्षेत्रक्षेत्रज्ञ दोनोंके विलक्षणता ज्ञानवाला है तिस अधि-कारी पुरुषकूंही सर्व अनर्थोंकी निवृत्ति करिकै परम पुरुषार्थकी प्राप्ति होवैहै। यातैं परमपुरुषार्थकी इच्छावान् पुरुषनैं वे अमानित्वादिक साधन अवश्यकरिकै संपादन करणे। तथा सो क्षेत्रक्षेत्रज्ञ दोनोंका विवेकज्ञान अवश्य करिकै संपादन करणा॥ ३४॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद-नानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां गीतागूढार्थदीपिकाख्याया त्रयोदशोऽध्यायः समाप्तः॥ १३॥

अथ चतुर्दशाऽध्यायप्रारंभः।

तहां पूर्व त्रयोदश अध्यायविषे (यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावर-जंगमम्। क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ॥) इस श्लोककरिकै श्रीभगवान्नैं क्षेत्रक्षेत्रज्ञ दोनोंके संयोगतैं सर्व स्थावर जंगम भूतोंकी उत्पत्ति कथन करीथी। तहां ईश्वरकूं नहीं अंगीकार करणेहारे निरीश्वर सांख्यमतका खंडन करिकै ता क्षेत्र क्षेत्रज्ञके संयोगकूं ईश्वरके आधीनपणा अवश्यकरिकै कह्या चाहिये। तथा तिस त्रयोदश अध्यायविषे (कारणं गुणसंगोस्य सदसद्योनिजन्मसु।) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं गुणोंके संगकूंही जन्मका कारण कह्याथा। तहां किस गुणविषे किसप्रकारक-रिकै संग होवैहै। तथा वे गुण कौन हैं तथा वे गुण किसप्रकारकरिकै इस जीवकूं बंधायमान करैहैं। यह अर्थभी अवश्यकरिकै कह्या चाहिये। तथा (भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यांति ते परम्।) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं भूतप्रकृतिके मोक्षका कथन कऱ्याथा। तहां भूतप्रकृतिनाम-वाले सत्त्वादिक गुणोंतैं इस अधिकारी पुरुषका किसप्रकारकरिकै मोक्ष होवैहै। तथा तिस मुक्तहुए पुरुषके कौन लक्षण हैं। यह अर्थभी अव-श्यकरिकै कह्या चाहिये। इस सर्व अर्थकूं विस्तारतैं कहणेवास्तै श्रीभगवान्नैं यह चतुर्दश अध्याय आरंभ करीताहै। तहां श्रोतापुरुषोंकी

रुचि उत्पन्न करणेवासतै श्रीभगवान् आगे वक्ष्यमाण अर्थकी दो श्लोकों-
करिकै स्तुति करते हुए कहें है–

श्रीभगवानुवाच ।

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ॥
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः॥१॥

(पदच्छेदः) परम् । भूयः । प्रवक्ष्यामि । ज्ञानानाम् । ज्ञानम् । उत्तमम् । यत् । ज्ञात्वा । मुनयः । सर्वे । पराम् । सिद्धिम् । इतः । गताः ॥ १ ॥

पदार्थः) हे अर्जुन ! ज्ञानसाधनोंके मध्यमैं उत्तम तथा श्रेष्ठ ऐसे ज्ञानसाधनोंकूं मै भगवान् पुनःभी तुम्हारे प्रति कथन करताहूं जिस साधनकूं अनुष्ठानकरिकै सर्व मुनि इसदेहबंधनतै परम कैवल्यमुक्तिकूं प्राप्त होतेभये हैं ॥ १ ॥

भा० टी०–तहां (ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानम्) अर्थ यह–जिस साधन-करिकै आत्मवस्तु जान्याजावै है ताका नाम ज्ञान है । याप्रकारकी व्युत्पत्ति करिकै इहां ज्ञानशब्द परमात्मविषयक ज्ञानके साधनका वाचक है । कैसा है सो ज्ञान–पर है अर्थात् परमात्मरूप परवस्तुविषयक होणेतैं श्रेष्ठ है । पुनः कैसा है सो ज्ञान–ज्ञानोंके मध्यविषे उत्तम है अर्थात् (तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषंति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन ") इस श्रुतिनें विधान करे जे यज्ञदानादिक ज्ञानके बहिरंगसाधन हैं तिन सर्व बहिरंगसाधनोंके मध्यविषे उत्तमफलका हेतु होणेतैं उत्तम है । कोई पूर्वउक्त अमानित्वादिक साधनोंके मध्यविषे सो ज्ञान उत्तम नहीं है । काहेतें वे अमानित्वादिक साधनभी अंतरंगसाधन होणेतें उत्तमफलके ही हेतु हैं । तहां (परम्) इस विशेषणकरिकै तौ तिस ज्ञानविषे उत्कृष्ट-वस्तुविषयकत्व कथन कर्या और (उत्तमम्) इस विशेषणकरिकै तौ तिस ज्ञानविषे उत्कृष्टफलवत्त्व कथन कर्या । यातें तिन दोनों पदोंविषे पुनरु-

क्तिदोषकी प्राप्ति होवै नहीं। ऐसे उत्कृष्ट वस्तुकूं विषय करणेहारे तथा उत्कृष्टफलकी प्राप्ति करणेहारे आत्मज्ञानके साधनरूप ज्ञानकूं मैं श्रीभगवान् तैं अर्जुनके प्रति पुनः भी कथन करताहूं। अर्थात् इसतैं पूर्व अध्यायोंविषे जो ज्ञान अनेकवार हमनैं तुम्हारे प्रति कथन कऱ्या है सोईही ज्ञान अबी पुनः भी पूर्वउक्त प्रकारतैं किंचित् विलक्षणप्रकारकरिकै मैं तुम्हारे प्रति कथन करताहूं। जिस साधनरूप ज्ञानकूं श्रद्धाभक्तिपूर्वक अनुष्ठान करिकै सर्वही मननशील संन्यासी कैवल्यमोक्षरूप परमसिद्धिकूं इस देहसंबंधतैं प्राप्त होते भयेहैं ॥ १ ॥

तहां तिस साधनरूप ज्ञानकू प्राप्तहुए इस पुरुषकूं सा मोक्षरूप परमसिद्धि अवश्यकरिकै प्राप्त होवैहै। याप्रकारके नियमकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ॥
सर्गेपि नोपजायंते प्रलये न व्यथंति च ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) इदम्। ज्ञानम्। उपाश्रित्य। मम। साधर्म्यम्। आगताः। सर्गे। अपि। न। उपजायंते। प्रलये। न। व्यथंति। च ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इस साधनरूप ज्ञानकूं अनुष्ठान करिकै मैं परमेश्वरके अद्वितीयनिर्गुणस्वरूपकूं अत्यंत अभेदकरिकै प्राप्तहुए विद्वान् पुरुष सृष्टिकालविषे भी नहीं उत्पन्न होवैं हैं तथा प्रलयकालविषे नहीं लय होवैं हैं ॥ २ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! इस साधनरूप ज्ञानकूं श्रद्धाभक्तिपूर्वक अनुष्ठान करिकै मैं परमेश्वरके अद्वितीय निर्गुणरूपकूं अत्यंत अभेदरूपकरिकै प्राप्तहुए अर्थात् हमही अद्वितीय निर्गुणब्रह्मरूप हैं। याप्रकारतैं आपणे आत्माकूं अद्वितीय निर्गुण ब्रह्मरूप जानतेहुए विद्वान् पुरुष सर्गविषेभी नहीं उत्पन्न होवैं हैं तथा प्रळयविषेभी नहीं लय होवैं हैं। अर्थात् हिर-

ण्यगर्भादिकोंके उत्पन्न हुएभी ते तत्त्ववेत्ता पुरुष उत्पन्न होवैं नहीं। तथा ता हिरण्यगर्भके विनाशकालरूप प्रलयविषेभी ते तत्त्ववेत्ता पुरुष लयभावकूं प्राप्त होवैं नहीं ॥ २ ॥

इस प्रकार दो श्लोकोंकरिकै तिस ज्ञानकी प्रशंसा करिकै श्रोतापुरुषोंकूं श्रीभगवान् तिस ज्ञानके अभिमुख करते भये । अब परमेश्वरके अधीन वर्त्तणेहारे जे प्रकृतिपुरुष हैं तिन प्रकृतिपुरुष दोनोंकूंही सर्वभूतोंके उत्पत्तिका कारणपणा है। सांख्यशास्त्रकी न्याईं स्वतंत्र तिस प्रकृति पुरुष दोनों-विषे सर्वभूतोंका कारणपणा है नहीं । इस विवक्षित अर्थकूं श्रीभगवान् दो श्लोकोंकरिकै कथन करैं हैं-

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ॥
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) मम । योनिः । महद्ब्रह्म । तस्मिन् । गर्भम् । दधामि । अहम् । संभवः। सर्वभूतानाम् । ततः । भवति। भारत॥ ३॥

(पदार्थः) हे भारत ! त्रिगुणात्मकमाया मैं ईश्वरके गर्भाधानका स्थान है तिस मायाविषे मैं ईश्वर संकल्परूप गर्भकूं धारण करूंहूं तिस-गर्भाधानतैंही सर्वभूतोंकी उत्पत्ति होवै है ॥ ३ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरका महद्ब्रह्म योनि है। इहां महद्ब्रह्मशब्दकरिकै अव्याकृतका ग्रहण करणा । जिस अव्याकृतकूं शास्त्र-विषे अविद्या, अज्ञान, प्रकृति, त्रिगुणात्मिका माया इत्यादिक नामोंकरिकै कथन करैं हैं। सो अव्याकृत आपणे आकाशादिक सर्वकार्योंकी अपेक्षाकरिकै अधिक होणेतैं महत् कह्या जावै है। तथा आपणे सर्व कार्योंके वृद्धिका हेतु होणेतैं ब्रह्म कह्या जावै है। अथवा ब्रह्मका उपाधिरूप होणेतैं सो अव्याकृत ब्रह्म कह्या जावै है । अथवा महत्तत्त्वनामा प्रथम कार्यके वृद्धिका हेतु होणेतैं सो अव्याकृत महद्ब्रह्म कह्या जावै है। ऐसे महद्ब्रह्म नामवाली त्रिगुणात्मक माया मैं परमेश्वरकी योनि है अर्थात्

गर्भाधान करणेका स्थानरूप है। ऐसी मायारूप योनिविषे मैं परमेश्वर गर्भकूं धारण करूं हूं। अर्थात् सर्व भूतोंके जन्मका कारणरूप जो (एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेय) इसप्रकारका ईक्षणरूप संकल्प है तिस संकल्परूप गर्भकूं तिस मायारूप योनिविषे धारण करूंहूं अर्थात् तिस संकल्पका विषय करूंहूं। जैसे इसलोकविषे कोईक पिता पुण्यपापकरिकै युक्तहुए तथा व्रीहियवादिक आहाररूपकरिकै आपणेविषे लीन हुये ऐसे पुत्रकूं स्थूलशरीरके साथि संबंधकरणेवासतै आपणी स्त्रीकी योनिविषे वीर्यके सिंचनपूर्वक गर्भकूं धारण करै है तिस गर्भाधानतैं सो पुत्र स्थूलशरीरके साथि संबंधवाला होवै है। तिस शरीरके संबंधवासतै मध्यविषे कलिल बुद्बुद आदिक अनेक अवस्था होवैं हैं। तैसे प्रलयकालविषे मैं परमेश्वरविषे लीन हुए जे अविद्या काम कर्मवाले क्षेत्रज्ञनामा जीव हैं तिन जीवोंकूं सृष्टिकालविषे कार्यकारणसंघातरूप भोग्य क्षेत्रके साथि संबंध करणेवासतैही मैं परमेश्वर चिदाभासरूप वीर्यके सिंचनपूर्वक तिस मायाकी वृत्तिरूप गर्भकूं धारण करूं हूं। तिस शरीरके संबंधवासतैही मध्यविषे आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी इत्यादिकोंकी उत्पत्तिरूप अवस्था होवैं हैं। तिस मायारूप योनिविषे मैं परमेश्वरकृत गर्भाधानतैंही हिरण्यगर्भादिक सर्व भूतोंकी उत्पत्ति होवै है। मैं परमेश्वरकृत गर्भाधानतैं विना तिन सर्वभूतोंकी उत्पत्ति होवै नहीं ॥ ३ ॥

हे भगवन्! मायारूप योनिविषे मैं परमेश्वरकृत गर्भाधानतैं सर्वभूतोंकी उत्पत्ति कैसे संभवैगी? जिसकारणतैं देवतादिक देहविशेषोंके दूसरे कारणभी संभव होइसकै हैं। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहै हैं—

सर्वयोनिषु कौंतेय मूर्त्तयः संभवन्ति याः ॥
तासां ब्रह्ममहद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) सर्वयोनिषु। कौंतेय। मूर्त्तयः। संभवंति। याः। तासाम्। ब्रह्ममहत्। योनिः। अहम्। बीजप्रदः। पिता ॥ ४ ॥

(पदार्थः) हे कौंतेय ! देवादिक सर्वयोनियोंविषे जे शरीर उत्पन्न होवैं है तिनशरीरोंका सा मायाँही मातारूप है मैं परमेश्वर तौ गर्भाधानका कर्त्ता पितारूप हूं ॥ ४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! देव, पितर, मनुष्य, पशु, मृग इत्यादिक सर्वयोनियोंविषे जे जे मूर्तियां उत्पन्न होवै है अर्थात् जरायुज, अंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज इन भेदकरिकै विलक्षण तथा नानाप्रकारके आकारवाले जे जे शरीर उत्पन्न होवैं हैं, तिन शरीररूप सर्व मूर्तियोंका तिसतिस मूर्तिके कारणभावकूं प्राप्तहुई सा अव्याकृतनामा मायाही मातारूप है। और मैं परमेश्वर तौ तिस मायारूप योनिविषे गर्भाधान करणेहारा तिन सर्वशरीरोंका पितारूप हूं। यातै यह अर्थ सिद्ध भया—तिन देवादिक शरीरोंके लोकप्रसिद्ध जे जे कारण प्रतीत होवैं हैं ते सर्व कारण तिस अव्याकृतनामा मायारूप ब्रह्मकेही अवस्थाविशेषरूप हैं। यातै (संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत।) यह भगवान्का वचन युक्तही है ॥ ४ ॥

तहां पूर्व ईश्वरकूं नहीं अंगीकार करणेहारे निरीश्वरवादी सांख्यशास्त्रका खंडन करिकै क्षेत्रक्षेत्रज्ञके संयोगकूं ईश्वरके अधीनपणा कथन कऱ्या। अब किस गुणविषे किसप्रकारकरिकै संग होवैहै। तथा ते गुण कौन हैं। तथा वे गुण किसप्रकारकरिकै इस पुरुषकूं बंधायमान करैहैं—इस सर्व अर्थकूं श्रीभगवान् (सत्त्वरजस्तमः) इस श्लोकतैं आदिलैके (नान्यं गुणेभ्यः कर्त्तारम्) इस श्लोकतैं पूर्व चतुर्दशश्लोककरिकै कथन करैहैं—

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ॥
निबध्नंति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥५॥

(पदच्छेदः) सत्त्वम्। रजः। तमः। इति। गुणाः। प्रकृतिसंभवाः। निबध्नंति। महाबाहो। देहे। देहिनम्। अव्ययम् ॥५॥

(पदार्थः) हे महान् बाहुवाला अर्जुन ! सत्त्व रज तम यह मायातैं उत्पन्नहुए तीनगुण इसदेहविषे अव्यय जीवात्माकूं बंधायमान करैं हैं॥ ५॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! सत्त्व रज तम इस नामवाले जे तीन गुण हैं ते सत्त्वादिक तीनों गुण चैतन्यपुरुषके प्रति नित्यही परतंत्र हैं कदाचित्‌भी ते गुण स्वतंत्र होवैं नहीं । काहेतैं इस श्लोकविषे जे जे पदार्थ अचेतनरूप हैं ते सर्व अचेतनपदार्थ चैतन्य पुरुषके अर्थही होवैं हैं । जैसे गृहादिक अचेतनपदार्थ चेतन गृहीपुरुषके अर्थही होवैं हैं । तैसे ते सत्त्वादिक तीन गुणभी अचेतन होणेतैं चेतन पुरुषके अर्थही हैं । जैसे नैयायिक रूपादिक गुणोंकूं पृथिवी आदिक द्रव्यके आश्रित मानैं है तैसे यह सत्त्वादिक तीन गुण किसी द्रव्यके आश्रित है नहीं । तथा जैसे नैयायिक पृथिवीआदिक गुणीद्रव्यतैं रूपादिक गुणोंकूं भिन्न मानैंहैं तैसे इहां सिद्धांतविषे तिन सत्त्वादिक गुणोंका मायारूप प्रकृतितैं भिन्नपणा विवक्षित हैं नहीं । जिसकारणतैं सिद्धांतविषे सा मायारूप प्रकृति सत्त्वादिक तीन गणरूपही है । शंका–हे भगवन् ! ते सत्त्वादिक तीन गुण जो कदाचित् प्रकृतिरूपही होवैं तौ (प्रकृतिसंभवाः) इस वचनकरिकै तिन गुणोंकी प्रकृतितैं उत्पत्ति किसवास्तै कथन करी है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं । (प्रकृतिसंभवाः ।) हे अर्जुन ! सत्त्व रज तम इन तीन गुणोंकी जा साम्यअवस्था है ताका नाम प्रकृति है । जिस प्रकृतिकूं शास्त्रविषे भगवतकी माया कहैंहै–ऐसी मायारूप प्रकृतितैं ते सत्त्वादिक तीन गुण परस्पर अंग अंगीभावकरिकै विषमताकरिकै परिणामकूं प्राप्त होवैंहैं । याकारणतैं ते सत्त्वादिक गुण (प्रकृतिसंभवाः) इस नामकरिकै कहेजावैं हैं । ते सत्त्वादिक तीन गुण इस देहविषे अर्थात् तिस प्रकृतिके कार्यरूप शरीर इंद्रियसंघातविषे अव्ययरूप देहीकूं अर्थात् वास्तवतैं जन्ममरणादिक सर्व विकारोंतैं रहित होणेतैं अव्ययरूप तथा अविद्याकरिकै देहके साथि तादात्म्यभावकूं प्राप्तहुए जीवकूं बंधायमान करैं हैं । अर्थात् वास्तवतैं निर्विकाररूपभी तिस जीवात्माकूं ते सत्त्वादिक गुण आपणे विकारोंकरिकै युक्तहुएकी न्याई दिखावैं हैं यहही तिन सत्त्वादिक गुणोंकृत तिस जीवात्माविषे बंध है । या प्रकारका (निबध्नंति) इस शब्दका

अर्थ अगले श्लोकोंविषेभी जानिलेणा । तहां दृष्टांत—जैसे जलकरिके भरेहुए पात्र आकाशविषे स्थित सूर्यकूं प्रतिबिंबाध्यासकरिकै आपणेविषे स्थित कंपादिक विकारोंकरिकै युक्तहुएकी न्याईं दिखावैं है तैसे ते सत्त्वादिक तीन गुणभी वास्तवतैं निर्विकार आत्माकूंभी आपणेविषे स्थित विकारोंकरिकै युक्तहुएकी न्याईं दिखावै हैं। आत्माविषे जैसे वास्तवतैं बंधन नहीं संभवै है तैसे (शरीरस्थोपि कौंतेय न करोति न लिप्यते ।) इस वचनविषे पूर्व विस्तारतैं कथन करिआयेहैं ॥ ५ ॥

तहां पूर्व श्लोकविषे सत्त्व रज तम इन तीन गुणोंविषे इस जीवात्माका बंधकपणा कथन कऱ्या । अब कौन गुण किसके संगकरिकै इस जीवात्माकूं बंधायमान करैहै इस अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करै हैं—

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ॥
सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) तत्रं । सत्त्वम् । निर्मलत्वात् । प्रकाशकम् । अनामयम् । सुखसंगेन । बध्नाति । ज्ञानसंगेन । च । अनघ ॥ ६ ॥

(पदार्थः) हे सर्वव्यसनोंतें रहित अर्जुन ! तिन तीन गुणोंके मध्यविषे स्वच्छ होणेतें प्रकाशक तथा दुःखतें रहित ऐसा सत्त्वगुण इसजीवात्माकूं सुखसंगकरिकै तथा ज्ञानसंगकरिकै बंधायमान करैहै ॥ ६ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! सत्त्व, रज, तम यह पूर्व कथन करे जे तीन गुण है तिन तीन गुणोंके मध्यविषे प्रथम जो सत्त्वगुण है सो सत्त्वगुण कैसा है—प्रकाशक है । अर्थात् चैतन्यका तमोगुणकृत जो आवरण है ता आवरणका नाश करणेहारा है । ता प्रकाशकताविषे हेतु कहे हैं । (निर्मलत्वात् इति) अर्थात् आपणे स्वच्छ स्वभावताकरिकै चेतनके प्रतिबिंबके ग्रहण करणेयोग्य होणेतें सो सत्त्वगुण प्रकाशक है किंवा सो सत्त्वगुण केवल चैतन्यकाही अभिव्यंजक नहीं है किंतु अनामयभी है अर्थात् दुःखरूप आमयका विरोधी जो सुख है तिस सुखकाभी सो सत्त्व

गुण अभिव्यंजक है । इस प्रकार चैतन्यका तथा सुखका अभिव्यंजक जो सत्त्वगुण है, सो सत्त्वगुण इस जीवात्माकूं सुखसंगकरिकै तथा ज्ञानसंगकरिकै बंधायमान करै है । इहां सुखशब्दकरिकै तथा ज्ञानशब्द करिकै अंतःकरणका परिणामरूप सुखका तथा ज्ञानका ग्रहण करणा। कोई आत्मस्वरूप सुखका तथा ज्ञानका ता सुखज्ञानशब्दकरिकै ग्रहण करणा नहीं । काहेतें (इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः) इस पूर्वउक्त श्लोकविषे सुखकूं तथाचेतनारूप ज्ञानकूंभी इच्छाद्वेषादिकोंकी न्याईं क्षेत्रकाही धर्मरूप करिकै कथन कऱ्या है । तहां अंतःकरणका धर्मरूप जो सुख है तथा ज्ञान है, ता सुख ज्ञान दोनोंका जो आत्माविषे अध्यास है जो अध्यास मैं सुखी हूं मैं जानता हूं इस प्रकारकी प्रतीति करिकै सिद्ध है ताका नाम सुखसंग है । तथा ज्ञानसंग है । ऐसे सुखसंग करिकै तथा ज्ञान संग करिकै सो सत्त्वगुण इस जीवात्माकूं बंधायमान करै है तहां विषयके धर्म प्रकाशकरूप विषयीके होवैं नहीं । जैसे घटादिके विषयोंके धर्म प्रकाशक सूर्यके होवैं नहीं । यातें यह सर्व बंध अविद्यामात्रही है यह वार्त्ता पूर्व अनेकवार कथन करिआये हैं ॥ ६ ॥

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम् ॥
तन्निबध्नाति कौंतेय कर्मसंगेन देहिनम् ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) रजः । रागात्मकम् । विद्धि । तृष्णासंगसमुद्भवम् । तत् । निबध्नाति । कौंतेय । कर्मसंगेन । देहिनम् ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे कौंतेय ! तृष्णासंग दोनोंकी उत्पत्ति है जिसतें ऐसे रजोगुणकूं तूं रागरूप जान सो रजोगुण इस देहाभिमानी जीवकूं कर्मसंगकरिकै बंधायमान करैहै ॥ ७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! तहां यह पुरुष शब्दादिक विषयोंविषे रंजनकूं प्राप्त होवै जिसकरिकै ताका नाम राग है । सो रागही है आत्मा क्या स्वरूप जिसका ताका नाम रागात्मक है । ऐसा रागात्मक रजोगु-

अर्थ अगले श्लोकोंविषेभी जानिलेणा । तहां दृष्टांत-जैसे जलकरिके भरेहुए पात्र आकाशविषे स्थित सूर्यकूं प्रतिबिंबाध्यासकरिकै आपणेविषे स्थित कंपादिक विकारोंकरिकै युक्तहुएकी न्याई दिखावैं है वैसे ते सत्त्वादिक तीन गुणभी वास्तवतैं निर्विकार आत्मकूंभी आपणेविषे स्थित विकारोंकरिकै युक्तहुएकी न्याई दिखावै हैं। आत्माविषे जैसे वास्तवतैं बंधन नहीं संभवै है तैसे (शरीरस्थोपि कौंतेय न करोति न लिप्यते ।) इस वचनविषे पूर्व विस्तारतें कथन करिआयेहैं ॥ ५ ॥

तहां पूर्व श्लोकविषे सत्त्व रज तम इन तीन गुणोंविषे इस जीवात्माका बंधकपणा कथन कऱ्या । अब कौन गुण किसके संगकरिकै इस जीवात्माकूं बंधायमान करैहै इस अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं-

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ॥
सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) तत्र । सत्त्वम् । निर्मलत्वात् । प्रकाशकम् । अनामयम् । सुखसंगेन । बध्नाति । ज्ञानसंगेन । च । अनघ ॥ ६ ॥

(पदार्थः) हे सर्वव्यसनोंतै रहित अर्जुन ! तिन तीन गुणोंके मध्यविषे स्वच्छ होणेतैं प्रकाशक तथा दुःखतैं रहित ऐसा सत्त्वगुण इसजीवात्माकूं सुखसंगकरिकै तथा ज्ञानसंगकरिकै बंधायमान करैहै ॥ ६ ॥

भा॰टी॰-हे अर्जुन ! सत्त्व, रज, तम यह पूर्व कथन करे जे तीन गुण है तिन तीन गुणोंके मध्यविषे प्रथम जो सत्त्वगुण है सो सत्त्वगुण कैसा है-प्रकाशक है । अर्थात् चैतन्यका तमोगुणकृत जो आवरण है ता आवरणका नाश करणेहारा है । ता प्रकाशकताविषे हेतु कहै है । (निर्मलत्वात् इति) अर्थात् आपणे स्वच्छ स्वभावताकरिकै चेतनके प्रतिबिंबके ग्रहण करणेयोग्य होणेतें सो सत्त्वगुण प्रकाशक है किंवा सो सत्त्वगुण केवल चैतन्यकाही अभिव्यंजक नहीं है किंतु अनामयभी है अर्थात् दुःखरूप आमयका विरोधी जो सुख है तिस सुखकाभी सो सत्त्व

गुण अभिव्यंजक है । इस प्रकार चैतन्यका तथा सुखका अभिव्यंजक जो सत्त्वगुण है, सो सत्त्वगुण इस जीवात्माकूं सुखसंगकरिकै तथा ज्ञानसंगकरिकै बंधायमान करै है । इहां सुखशब्दकरिकै तथा ज्ञानशब्द करिकै अंतःकरणका परिणामरूप सुखका तथा ज्ञानका ग्रहण करणा। कोई आत्मस्वरूप सुखका तथा ज्ञानका वा सुखज्ञानशब्दकरिकै ग्रहण करणा नहीं । काहेतें (इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः) इस पूर्वउक्त श्लोकविषे सुखकूं तथाचेतनारूप ज्ञानकूंभी इच्छाद्वेषादिकोंकी न्याई क्षेत्रकाही धर्मरूप करिकै कथन कऱ्या है । तहां अंतःकरणका धर्मरूप जो सुख है तथा ज्ञान है, वा सुख ज्ञान दोनोंका जो आत्माविषे अध्यास है जो अध्यास मैं सुखी हूं मैं जानता हूं इस प्रकारकी प्रतीति करिकै सिद्ध है ताका नाम सुखसंग है । तथा ज्ञानसंग है । ऐसे सुखसंग करिकै तथा ज्ञान संग करिकै सो सत्त्वगुण इस जीवात्माकूं बंधायमान करै है तहां विषयके धर्म प्रकाशकरूप विषयीके होवैं नहीं । जैसे घटादिके विषयोंके धर्म प्रकाशक सूर्यके होवैं नहीं । यातें यह सर्व बंध अविद्यामात्रही है यह वार्त्ता पूर्वं अनेकवार कथन करिआये है ॥ ६ ॥

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम् ॥
तन्निबध्नाति कौंतेय कर्मसंगेन देहिनम् ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) रजः । रागात्मकम् । विद्धि । तृष्णासंगसमुद्भवम् । तत् । निबध्नाति । कौंतेय । कर्मसंगेन । देहिनम् ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे कौंतेय ! तृष्णासंग दोनोंकी उत्पत्ति है जिसतें ऐसे रजोगुणकूं तूं रागरूप जान सो रजोगुण इस देहाभिमानी जीवकूं कर्मसंगकरिकै बंधायमान करैहै ॥ ७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! तहां यह पुरुष शब्दादिक विषयोंविषे रंजनकूं प्राप्त होवै जिसकरिकै ताका नाम राग है । सो रागही है आत्मा क्या स्वरूप जिसका ताका नाम रागात्मक है । ऐसा रागात्मक रजोगु-

णकूं तूं जान । यद्यपि सो राग तिस रजोगुणका धर्म है, तथापि धर्म धर्मी दोनोंका तादात्म्यही होवै है । यातैं ता रजोगुणकूं रागरूप कह्या है । इसी कारणतैंही सो रजोगुण तृष्णासंगसमुद्भव है । तहां अप्राप्तवस्तुके प्राप्तिकी जा अभिलाषा है ताका नाम तृष्णा है । और प्राप्तवस्तुके विनाशके प्राप्त हुएभी जो तिस वस्तुके रक्षण करणेकी अभिलाषा है ताका नाम आसंग है । तिस तृष्णा आसंग दोनोंकी उत्पत्ति है जिसतैं ताका नाम तृष्णासंगसमुद्भव है । ऐसा रजोगुण वास्तवतैं अकर्त्तारूप हुए भी कर्तृत्व अभिमानवाले जीवात्माकूं कर्म संगकरिकै बंधायमान करै है । तहां इस लोकके फलका हेतुरूप तथा परलोकके फलका हेतुरूप जे लौकिक वैदिक कर्म हैं तिन कर्मोंविषे मैं इस कर्मकूं करूंहूं मैं इस कर्मकूं भोगौंगा इस प्रकारका जो अभिनिवेश विशेष है ताका नाम कर्मसंग है । ऐसे कर्मसंगकरिकै सो रजोगुण इस जीवात्माकूं बंधायमान करै है । जिसकारणतैं सो रजोगुण केवल प्रवृत्तिकाही हेतुहै ॥ ७ ॥

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ॥
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥ ८ ॥

(पदच्छेदः) तमः । तु । अज्ञानजम् । विद्धि । मोहनम् । सर्वदेहिनाम् । प्रमादालस्यनिद्राभिः । तत् । निबध्नाति । भारत ८

(पदार्थः) हे भारत ! पुनः तमोगुणकूं तूं अज्ञानजन्य जान जो तमोगुण सर्व जीवोंकूं भ्रांतिका जनक है सो तमोगुण प्रमादआलस्यनिद्राकरिकै इस जीवकूं बंधायमान करै है ॥ ८ ॥

भा० टी०—तहां (तमस्तु) इस वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तु शब्द पूर्वउक्त सत्त्व रज दोनोंकी अपेक्षाकरिकै इस तमोगुणविषे विलक्षणताके बोधनकरणेवासतै है । हे अर्जुन ! तमोगुणकूं तूं आवरणशक्तिरूप अज्ञानतैं उत्पन्न हुआ जान । इसकारणतैंही सो तमोगुण सर्व देहाभिमानी जीवोंका मोहन है अर्थात् अविवेक रूपता-

करिकै भ्रांतिका जनक है । ऐसा तमोगुण इस देहाभिमानी जीवकूं प्रमादकरिकै तथा आलस्यकरिकै तथा निद्राकरिकै बंधायमान करै है । तहां वस्तुके विवेककरणेका जो असामर्थ्य है ताका नाम प्रमाद है । सो प्रमाद तौ सत्त्व गुणके प्रकाशरूप कार्यका विरोधी होवै है। और प्रवृत्ति करणेका जो असामर्थ्य है ताका नाम आलस्य है सो आलस्य तौ रजोगुणके प्रवृत्तिरूप कार्यका विरोधी होवै है । और तमोगुणकूं आलंबनकरणेहारी जा लयरूप वृत्तिविशेष है ताका नाम निद्रा है । सा निद्रा तौ सत्त्वगुणके कार्यका तथा रजोगुणके कार्यका दोनोंकाही विरोधी होवै ॥ ८ ॥

हे भगवन् ! पूर्वउक्त कार्योंके मध्यविषे किस कार्यविषे किस गुणकी उत्कर्षता है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं—

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत ॥
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) सत्त्वम् । सुखे । संजयति । रजः । कर्मणि । भारत । ज्ञानम् । आवृत्य । तु । तमः । प्रमादे । संजयति । उत ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे भारत ! सत्त्वगुण इस पुरुषकूं सुखविषे युक्तकरै है तथा रजोगुण कर्मविषे युक्त करै है और तमोगुण तो ज्ञानकूं आच्छादन करिकै प्रमादविषे भी युक्तकरै है ॥ ९ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! सो पूर्वउक्त सत्त्वगुण उत्कर्षताकूं प्राप्त हुआ इस देहाभिमानी जीवकूं सुखविषे युक्त करै है अर्थात् दुःखके कारणका अभिभव करिकै इस पुरुषकूं सुखविषे जोडै है। इसप्रकार सो रजोगुणभी उत्कर्षताकूं प्राप्तहुआ सुखके कारणोंका अभिभवकरिकै इस जीवात्माकूं लौकिकवैदिक कर्मोंविषे युक्त करै है और तमोगुण तौ प्रयाणके बलकरिकै उत्पन्नहुएभी सत्त्वगुणके कार्यरूपज्ञानकूं आवृत्त करिकै इस पुरुषकूं प्रमाद-

विषे युक्त करै है। तहां जिस वस्तुका जानणा अवश्यकरिकै प्राप्त होवै ता वस्तुकाभी जोनहीं जानणा है ताका नाम प्रमाद है । ऐसे प्रमादविषे सो तमोगुण इस पुरुषकूं जोडै है। इहां (संजयत्युत) इस वचनविषे स्थित जो उत यह शब्द है सो उतशब्द अपि इस शब्दके अर्थका वाचक है ता करिकै आलस्य निद्रा इन दोनोंकाभी ग्रहण करणा। अर्थात् सो तमोगुण इस जीवात्माकूं आलस्यविषे तथा निद्राविषे भी जोडै है। तहां जो कार्य अवश्यकरिकैं करणेयोग्य है ता कार्यकाभी जो नहीं करणा है ताका नाम आलस्य है। और लयनामा तामसी वृत्तिविशेषका नाम निद्रा है ॥ ९ ॥

हे भगवन् ! इस पूर्वश्लोकविषे कथन कऱ्या जो सत्त्वादिक तीन गुणोंका कार्य है तिस आपणे आपणे कार्यकूं वे सत्त्वादिक तीन गुण किस कालविषे करैं हैं ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं–

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ॥
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥ १०॥

(पदच्छेदः) रजः। तमः । च । अभिभूय । सत्त्वम् । भवति। भारत । रजः । सत्त्वम् । तमः। च । एव । तमः। सत्त्वम् । रजः। तथा ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे भारत ! रजोगुणकूं तथा तमोगुणकूं अभिभवकरिकै जबी सत्त्वगुण वृद्धिकूं प्राप्त होवै तथा रजोगुणकूं तथा सत्त्वगुणकूं अभिभवकरिकै जबी तमोगुण वृद्धिकूं प्राप्त होवै है तथा तमोगुणकूं तथा सत्त्वगुणकूं अभिभवकरिकै जबी रजोगुण वृद्धिकूं प्राप्त होवै है तबी वे सत्त्वादिक गुण आपणे आपणे कार्यकूं करैं हैं ॥ १० ॥

भा० टी०–हे अर्जुन। जिसकालविषे रज तम इन दोनोंही गुणोंकूं एकही कालविषे अभिभव करिकै अर्थात् तिरस्कारकरिकै सो सत्त्वगुण वृद्धिकूं प्राप्त होवैहै तिसकालविषे सो सत्त्वगुण पूर्वउक्त आपणे कार्यकूं

असाधारणतारूप करिकै उत्पन्न करै है । इस प्रकार सो रजोगुणभी जिसकालविषे सत्त्वगुणकूं तथा तमोगुणकूं दोनोंकूं एकही कालविषे अभिभवकरिकै वृद्धिकूं प्राप्त होवैहै तिसकालविषेही सो रजोगुण पूर्वउक्त आपणे कार्यकूं असाधारणतारूप करिकै उत्पन्न करैहै । इस प्रकार तमोगुणभी जिसकालविषे सत्त्वगुणकूं तथा रजोगुणकूं दोनोंकूं एकही कालविषे अभिभवकरिकै वृद्धिकूं प्राप्त होवैहै, तिस कालविषेही सो तमोगुण पूर्वउक्त आपणे कार्यकूं असाधारणतारूप करिकै उत्पन्न करैहै ॥ १० ॥

हे भगवन् ! तिन सत्त्वादिक तीन गुणोंकी वृद्धि किस लिंगकरिकै जानी जावैहै ता वृद्धिके ज्ञान हुएही यह पुरुष ताके निवृत्त करणेविषे समर्थ होवैगा ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् वृद्धिकूं प्राप्त हुए तिन सत्त्वादिक तीन गुणोंके लिंगोंकूं तीन श्लोकोंकरिकै कथन करै हैं—

सर्वद्वारेषु देहेस्मिन्प्रकाश उपजायते ॥
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) सर्वद्वारेषु । देहे । अस्मिन् । प्रकाशः । उपजायते । ज्ञानम् । यदा । तदा । विद्यात् । विवृद्धम् । सत्त्वम् । इति । उत ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इस देहविषे श्रोत्रादिक सर्वइंद्रियोंविषे जिसकालमें ज्ञानरूप प्रकाश उत्पन्न होवैहै तिसकालविषे सत्त्वगुण वृद्धिकूं प्राप्त हुआहै इसप्रकार जानणा ॥ ११ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! इस जीवात्माका सुखदुःखके भोगका स्थानरूप जो यह देहहै इस देहविषे स्थित जे शब्दादिक विषयोंके उपलब्धिका साधनरूप श्रोत्रादिक इंद्रियरूप सर्वद्वारहैं तिनइंद्रियरूप सर्वद्वारोंविषे जिसकालमें ज्ञानरूप प्रकाश उत्पन्न होवैहै अर्थात् जैसे दीपक आपणे विषयरूप घटादिक पदार्थोंके अंधकाररूप आवरणका विरोधी होवैहै।तैसे आपणे

शब्दादिक विषयोंके आवरणका विरोधी ऐसा जो तिन शब्दादिक विषयाकार बुद्धिका वृत्तिरूप परिणामविशेष है ताका नाम प्रकाश है। ऐसा ज्ञानरूप प्रकाश जिसकालविषे उत्पन्न होवैहै। तिसकालविषे तिस ज्ञानप्रकाशरूप लिंगकरिकै यह पुरुष अबी प्रकाशरूप सत्त्वगुण वृद्धिकूं प्राप्तहुआहै इसप्रकार जानैं। इहां (विवृद्धं सत्त्वमित्युत) इस वचनके अंतविषे स्थित जो उत यह शब्द है सो उतशब्द अपि इस शब्दके अर्थका वाचक है ताकरिकै यह अर्थ बोधन कऱ्या—जैसे ज्ञानरूप प्रकाशकरिकै सत्त्वगुणकी वृद्धि जानी जावैहै तैसे सुखादिक लिंगोंकरिकैभी यह पुरुष ता सत्त्वगुणकी वृद्धिकूं जानै। और किसी टीकाविषे तौ उत इस शब्दका यह अर्थ कऱ्या है—सत्त्वगुणकी वृद्धिकी न्याईं यह पुरुष तिस ज्ञानरूप प्रकाशकरिकै रज तम इन दोनों गुणोंके क्षीणताकूंभी जानै ॥ ११ ॥

लोभः प्रवृत्तिरारंभः कर्मणामशमः स्पृहा ॥
रजस्येतानि जायंते विवृद्धे भरतर्षभ ॥ १२ ॥

(पदच्छेदः) लोभः । प्रवृत्तिः । आरंभः । कर्मणाम् । अशमः । स्पृहा । रजसि । एतानि । जायंते । विवृद्धे । भरतर्षभ ॥ १२ ॥

(पदार्थः) हे भरतर्षभ ! रजोगुणके वर्द्धमानहुए लोभ प्रवृत्ति कर्मोंका आरंभ अशम स्पृहा यह सर्व उत्पन्न होवैं है ॥ १२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! रागात्मक रजोगुणके वर्द्धमान हुए इस पुरुषविषे लोभ, प्रवृत्ति, कर्मोंका आरंभ, अशम, स्पृहा, इतने रागात्मक लिंग उत्पन्न होवैं है। अर्थात् इन लोभादिक लिंगोंकरिकै यह पुरुष रजोगुणके वृद्धिकूं जाने। तहां महान् धनादिक पदार्थोंके प्राप्ति हुएभी दिन दिनविषे वृद्धिकूं प्राप्त हुई जा विन धनादिक प्राप्तिकी अभिलाषा है ताका नाम लोभ है। अर्थात् आपणे विषयकी प्राप्ति करिकैभी नहीं निवृत्त हुई जा इच्छाविशेष है ताका नाम लोभ है। और निरंतरही

प्रयत्नवाला होणा याका नाम प्रवृत्ति है । और बहुत धनके खर्च करणेतें सिद्ध होणेहारे तथा शरीरकूं आयासकी प्राप्ति करणेहारे ऐसे जे काम्य निषिद्ध लौकिक महागृहादिविषयक व्यापार हैं तिनोंका नाम कर्म है । ऐसे कर्मोंका जो उद्यम है ताका नाम कर्मोंका आरंभ है । और इस कार्यकूं करिकै पुनः मैं इस दूसरे कार्यकूं करौंगा इस दूसरे कार्यकूं करिकै पुनः मैं इस तीसरे कार्यकूं करौंगा याप्रकारके संकल्पोंके प्रवाहकी जो नहीं उप-रामता होणी है ताका नाम अशम है । और परधनादिकोंके देखणे-मात्रकरिकै जो जिसी किसी उपायकरिकै तिन परधनादिकोंके ग्रहण कर-णेकी इच्छा है ताका नाम स्पृहा है । इसप्रकार लोभतें आदिलैके स्पृहा-पर्यंत कथन करे जे लिंग हैं तिन लिंगोंकरिकै यह पुरुष वृद्धिकूं प्राप्त हुए रजोगुणकूं जानैं ॥ १२ ॥

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ॥
तमस्येतानि जायंते विवृद्धे कुरुनंदन ॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) अप्रकाशः । अप्रवृत्तिः । च । प्रमादः । मोहः । एव । च । तमसि । एतानि । जायंते । विवृद्धे । कुरुनंदन ॥ १३

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तमोगुणके वर्द्धमानहुए ही अप्रकाश तथा अप्रवृत्ति तथा प्रमाद तथा मोह इतनैं लिंग उत्पन्न होवै हैं ॥ १३ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जिसकालविषे तमोगुणकी वृद्धि होवै है तिसकालविषे अप्रकाश, अप्रवृत्ति, प्रमाद, मोह इतने लिंग उत्पन्न होवैं हैं अर्थात् यह पुरुष इतने अव्यभिचारी लिंगोंकरिकैही तमोगुणके वृद्धिकूं जानैं । तहां गुरुशास्त्रादिक बोधके कारणोंके विद्यमान हुएभी जो सर्व-प्रकारतें ता बोधकी अयोग्यता है ताका नाम अप्रकाश है । और उत्पन्न कऱ्या है आपणे अर्थका बोधन जिसनैं ऐसा जो प्रवृत्तिका कारणरूप (अग्निहोत्रं जुहुयात्) इत्यादिक शास्त्र है ता शास्त्रके विद्यमान हुएभी जो सर्वप्रकारतें तिन अग्निहोत्रादिक कर्मोंविषे प्रवृत्तिकी अयोग्यता है

ताका नाम अप्रवृत्ति है । और तिसकालविषे कर्त्तव्यतारूप करिके प्राप्त हुए अर्थका भी जो तिसकालविषे स्मरण नहीं होणा ताका नाम प्रमाद है और निद्राका तथा विपर्ययका नाम मोह है ॥ १३॥

अब मरणकालविषे वृद्धिकूं प्राप्तहुए तिन सत्त्वादिक तीन गुणोंके फल-विशेषकूं श्रीभगवान् दो श्लोकोंकरिकै कथन करै है-

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ॥
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥ १४ ॥

(पदच्छेदः) यदा । सत्त्वे । प्रवृद्धे । तु । प्रलयम् । याति । देहभृत् । तदा । उत्तमविदाम् । लोकान् । अमलान् । प्रतिपद्यते ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः यह देहाभिमानी जीव जबी सत्त्वगुणके वर्द्धमानहुए मृत्युकूं प्राप्तहोवै है तबी उपासक पुरुषोंके मलरहित लोकोंकूं प्राप्त होवै है ॥ १४ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! यह देहाभिमानी जीव जबी सत्त्वगुणके वृद्धि हुए मृत्युकूं प्राप्तहोवै है तबी यह जीव उत्तमवित् पुरुषोंके लोकोंकूं प्राप्त होवै है । तहां हिरण्यगर्भादिक देवतावोंका नाम उत्तम है तिन उत्त-मोंकू जे पुरुष जानैं हैं अर्थात् तिन हिरण्यगर्भादिक देवतावोंकी जे पुरुष उपासना करैं हैं तिन पुरुषोंका नाम उत्तमवित् है । तिन उत्तम-वित् पुरुषोंके जे लोक हैं अर्थात् दिव्यसुखोंके भोगके जे स्थानविशेष हैं जे लोक अमल हैं अर्थात् रजतमरूप मलतैं रहित हैं ऐसे लोकोंकूं सो पुरुष प्राप्त होवै है ॥ १४ ॥

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसंगिषु जायते ॥
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥ १५ ॥

(पदच्छेदः) रजसि । प्रलयम् । गत्वा । कर्मसंगिषु । जायते । तथा । प्रलीनः । तमसि । मूढयोनिषु । जायते ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह देहाभिमानी जीव रजोगुणकी वृद्धिहुए मृत्युकूं प्राप्त होइकै कर्मके अधिकारी मनुष्योंविषे उत्पन्न होवै है तथा तमोगुणकी वृद्धिहुए मरणकूं प्राप्तहुआ यह जीव पश्वादिक योनियोंविषे उत्पन्न होवै है ॥ १५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! यह देहाभिमानी जीव जबी रजोगुणकी वृद्धिहुए मृत्युकूं प्राप्त होवै है तबी कर्मसंगियोंविषे उत्पन्न होवै है अर्थात् श्रुतिस्मृतिकरिकै विधान करे जे अग्निहोत्रादिक कर्म हैं तथा श्रुतिस्मृतिकरिकै निषिद्ध करे जे हिंसादिक कर्म हैं तिन कर्मोंविषे तथा तिन कर्मोंके फलोंविषे अधिकारी जे मनुष्य हैं तिन्होंका नाम कर्मसंगी है ऐसे कर्मसंगी मनुष्योंविषे जो जीव जन्मकूं प्राप्त होवै है । इस प्रकार तमोगुणकी वृद्धि हुए यह जीव जबी मृत्युकूं प्राप्त होवै है तबी यह जीव कार्य अकार्यके विचारतें रहित पश्वादिक मूढयोनियोंविषे जन्मकूं प्राप्त होवैहै ॥ १५ ॥

अब सत्त्वादिक तीन गुणोंविषे आपणे अनुसार कर्मद्वारा विचित्रफलकी हेतुताकूं श्रीभगवान् संक्षेपकरिकै कथन करैं है—

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ॥
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) कर्मणः । सुकृतस्य । आहुः । सात्त्विकम् । निर्मलम् । फलम् । रजसः । तु । फलम् । दुःखम् । अज्ञानम् । तमसः । फलम् ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! महर्षिजन सात्त्विक धर्मका सात्त्विक निर्मल फल कथन करैं है पुनः राजसधर्मका दुःखरूप फल कहैं हैं तथा तामसधर्मका अज्ञानरूप फल कहैं ॥ १६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! महर्षिजन उत्तम सात्त्विकधर्मका सात्त्विक तथा निर्मल फल कहैंहैं अर्थात् सत्त्वगुणकरिकै प्राप्तहुआ तथा रजतमरूप मलकरिकै नहीं मिल्या हुआ ऐसा जो सुखरूप फल है, सो सुखरूप फल

ता सात्त्विक धर्मका कहैं हैं। और पापमिश्रित पुण्यरूप जो राजसधर्म है तिस राजसधर्मका तौ ते महर्षि राजस दुःखरूप फल कहैं हैं अर्थात् रजोगुणतैं उत्पन्नहुआ जो बहुतदुःखकरिकै मिश्रित अल्प सुख है सो तिस राजसधर्मका फल कह्याजावैहै। काहेतैं जो जो कार्य होवैहै सो सो कार्य आपणे कारणके सदृश ही होवैहै। यातैं पापमिश्रित पुण्यरूप राजसकर्मका बहुतदुःखकरिकै मिश्रित अल्पसुखरूप फल युक्तही है। और ते महर्षिजन तामसधर्मका तौ अज्ञानरूप फलही कहैहै अर्थात् तमोगुणकरिकै जन्य होणेतैं तामसरूप ऐसा जो अविवेकप्रयुक्त दुःख है सो दुःख तिस तामसधर्मकाही फल कह्याजावैहै। तहां सात्त्विकादिक कर्मोंका लक्षण तौ (नियतं संगरहितम्) इत्यादिक वचनोंकरिकै अष्टादश अध्यायविषे श्रीभगवान् आपही कथन करैंगे। इहां इस श्लोकविषे श्रीभगवान्नैं रज तम इन दोनोंशब्दोंका जो रजोगुणके कार्यरूप कर्मविषे तथा तमोगुणके कार्यरूप कर्मविषे प्रयोग कऱ्या है सो कार्य कारण दोनोंके अभेदकूं अंगीकार करिकै कऱ्या है ॥ १६ ॥

अब श्रीभगवान् इसप्रकारके फलकी विचित्रताविषे पूर्वउक्त हेतुकूंही कथन करैंहै-

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ॥
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥ १७ ॥

(पदच्छेदः) सत्त्वात् । संजायते । ज्ञानम् । रजसः । लोभः । एव । च । प्रमादमोहौ । तमसः । भवतः । अज्ञानम् । एव । च ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सत्त्वगुणतैं ज्ञान उत्पन्न होवै है तथा रजोगुणतै लोभ ही उत्पन्न होवै है तथा तमोगुणतैं प्रमादमोह दोनों उत्पन्न होवै हैं तथा अज्ञान भी होवै है ॥ १७ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! श्रोत्रादिक इंद्रिय हैं द्वार जिसके ऐसा जो शब्दादिविषयक ज्ञान है सो प्रकाशरूप ज्ञान तौ केवल सत्त्वगुणतेंही उत्पन्न होवैहै इसकारणतें प्रकाशरूप ज्ञानके अनुसारी सात्त्विककर्मका प्रकाशकी बाहुल्यतावाला सुखरूप फलही होवैहै । और कोटिविषयोंकी प्राप्तिकरिकैभी निवृत्त करणेकूं अशक्य जा अभिलाषाविशेष है ताका नाम लोभ है। ऐसा लोभ रजोगुणतेंही उत्पन्न होवैहै । तहां निरंतर वृद्धिकूं प्राप्त हुआ तथा पूरणकरणेकूं अशक्य ऐसें लोभकूं दुःखका हेतुपणा प्रसिद्धही है यातें तिस लोभपूर्वक कन्या जो राजसकर्म है तिस राजसकर्मकाभी दुःखही फल होवैहै । और तमोगुणतै प्रमाद मोह यह दोनों उत्पन्न होवैं हैं तथा अज्ञानभी उत्पन्न होवैहै । इहां अज्ञानशब्दकरिकै अप्रकाशका ग्रहण करणा । और प्रमादमोह इन दोनों शब्दोंका अर्थ तौ (अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च) इसपूर्वउक्त श्लोकविषे कथन करिआये है ॥ १७ ॥

अब सत्त्वादिक तीन गुणोंके वृत्तविषे स्थित पुरुषोंका (यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु) इस पूर्वउक्त श्लोकविषे कथन कन्या जो फल है तिसीही फलकूं ऊर्ध्वभावकरिकै तथा अधोभावकरिकै कथन करैं हैं—

ऊर्ध्वं गच्छंति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठंति राजसाः ॥
जघन्यगुणवृत्तस्था अधो गच्छंति तामसाः॥१८॥

(पदच्छेदः) ऊर्ध्वं । गच्छंति । सत्त्वस्थाः । मध्ये । तिष्ठंति । राजसाः । जघन्यगुणवृत्तस्थाः । अधः । गच्छंति । तामसाः ॥ १८॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सत्त्ववृत्तविषे स्थितपुरुष ऊपरिलेलोकोंकूं जावैहैं और रजोवृत्तविषे स्थितपुरुष मनुष्यलोकविषे स्थित होवैहैं और निकृष्ट तमोगुणके वृत्तविषे स्थित तामसपुरुष अधः गमन करैहैं ॥ १८ ॥

भा० टी०—तहां तीसरे तमोगुणके अंतविषे वृत्त यह शब्द श्रीभगवान्‌ने कथन कन्या है यातें सत्त्व रज इन आदिके दो गुणोंके अंतविषेभी सो वृत्तशब्द श्रीभगवान्‌कूं विवक्षित है यातें यह अर्थ सिद्ध होवैहैं। सत्त्वगुणका

जो शास्त्रजन्य ज्ञानरूप तथा शुभकर्मरूप वृत्त है तिस सत्त्वगुणके वृत्तविषे स्थित हुए अर्थात् श्रद्धापूर्वक तिस वृत्तकूं धारण करतेहुए यह पुरुष ब्रह्म-लोकपर्यंत ऊपरिले देवलोकोंकूं प्राप्त होवैहैं अर्थात् तिस ज्ञानकर्मकी न्यून अधिकताकारिकै ते पुरुष न्यून अधिकतावाले तिन देवतावोंविषेही उत्पन्न होवैहैं । मनुष्यशरीरकूं तथा पश्वादिशरीरकूं ते सात्त्विक पुरुष प्राप्त होवै नहीं । और जे पुरुष रजोगुणके लोभादि पूर्वक राजस कर्म-रूप वृत्तविषे स्थित हैं अर्थात् जे पुरुष तिस राजस कर्मरूप वृत्तकूं अत्यंत प्रीतिपूर्वक करैहै ते राजस पुरुष तौ पुण्यपापमिश्रित इस मनुष्यलोकविषेही स्थित होवैहैं । ते राजस पुरुष देवशरीरकूं तथा पशुआदिक शरीरकूं प्राप्त होवैं नहीं किंतु इन मनुष्योंविषेही ते राजस पुरुष उत्पन्न होवैहैं । और सत्त्व रज इन दोनों गुणोंकी अपेक्षा करीकै पश्चात् भावी होणेतैं तिन दोनोंतैं निकृष्ट ऐसा जो तमोगुण है तिस तमोगुणके निद्रा आलस्यादिरूप वृत्तविषे प्रीतिवाले जे तामस पुरुष हैं, ते तामस पुरुष तौ अधोगमन करैं हैं । अर्थात् पशुआदिक योनयोंवि-षेही उत्पन्न होवैं हैं । ते तामस पुरुष मनुष्यशरीरकूं तथा देवताशरीरकूं प्राप्त होवैं नहीं । तहां सात्त्विक पुरुष तथा राजस पुरुषभी कदाचित् तिस तमोगुणके निद्रा आलस्यादिक वृत्तविषे स्थित होवैं हैं यातैं तिन्हों-कूंभी पश्वादिक शरीरोंकी प्राप्ति होणी चाहिये । ऐसी शंकाके निवृत्त करणेवासतै श्रीभगवान् तिन तमोगुणके वृत्तविषे स्थित पुरुषोंका विशे-षण कथन करैहैं (तामसाः इति) तहां जिन पुरुषोंविषे सर्वकालमें तमोगुणही प्रधान है तिन पुरुषोंका नाम तामस है । ऐसे तामस पुरुषही पशुआदिक योनियोंविषे जन्मैं हैं । और सात्त्विकपुरुष तथा राजस पुरुष कदाचित् तिस तमोगुणके निद्रा आलस्यादिक वृत्तविषे स्थितभी होवैं हैं तौभी तिन्होंविषे सो तमोगुण प्रधान होवै नहीं किंतु अत्यंत गौण होवैहै । यातैं ते सात्त्विक पुरुष तथा राजस पुरुष पशुआदिक योनियोंविषे उत्पन्न होवैं नहीं । इहां किसी मूलपुस्तकविषे (जघन्यगुणवृत्तिस्थाः)

इसप्रकारका भी पाठ होवैहै । इस पाठविषेभी सो पूर्वउक्त अर्थही जानणा ॥ १८ ॥

वहां इस चतुर्दश अध्यायविषे श्रीभगवान्नें तीन अर्थोंके कथन करणेकी प्रतिज्ञा करीथी । वहां एक तौ क्षेत्रक्षेत्रज्ञ दोनोंके संयोगकूं ईश्वरके अधिनपणा १ । और दूसरा ते गुण कौन हैं तथा ते गुण किसप्रकार इस जीवात्माकूं बंधायमान करैंहै २ । और तीसरा तिन गुणोंतैं इस पुरुषका किसप्रकारकरिकै मोक्ष होवैहै तथा तिस गुणातीत मुक्तपुरुषका कौन लक्षण है ३ । इन तीनों अर्थोंविषे आदिके दोअर्थ तौ पूर्व विस्तारतैं कथन करे । अब तीसरे अर्थका कथन करणा परिशेषतैं रह्या ताके विषेभी सत्त्व रज तम इन तीन गुणोंकूं मिथ्याज्ञानरूप होणेतैं इस पुरुषका सम्यक्ज्ञानतैं तिन गुणोंतैं मोक्ष होवैहै इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैंहैं—

नान्यं गुणेभ्यः कर्त्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति ॥
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोधिगच्छति ॥ १९॥

(पदच्छेदः) न । अन्यम् । गुणेभ्यः । कर्त्तारम् । यदा । द्रष्टा । अनुपश्यति । गुणेभ्यः । च । परम् । वेत्ति । मद्भावम् । सः । अधिगच्छति ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिसकालविषे यह द्रष्टापुरुष सत्त्वादिक गुणोंतैं अन्य कर्त्ताकूं नहीं देखताहै तथा तिनेगुणोंतैं आत्माकूं परं जानताहै जिसकालविषे सो द्रष्टापुरुष ब्रह्मभावकूं प्राप्त होवैहै ॥ १९ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! कार्य, कारण, विषय इन तीन आकारोंकरिकै परिणामकूं प्राप्तहुए जे सत्त्वादिक तीन गुण है तिन गुणोंतैं अन्य किसी कर्त्ताकूं जिसकालविषे यह द्रष्टापुरुष विचारविषे कुशल हुआ नहीं देखै है अर्थात् विचारतैं पूर्व तिन गुणोंतैं अन्य आत्माकूं कर्त्तारूप देखताहुआभी जो पुरुष विचारतै पश्चात् तिन सत्त्वादिक गुणोंतैं अन्य

कर्त्ताकूं नहीं देखेहै किंतु ते सत्त्वादिक गुणही अंतःकरण, बहिःकरण, शरीर, विषय इत्यादिक भावकूं प्राप्त हुए सर्व लौकिक वैदिक कर्मोंके कर्त्ता होवैहैं । इसप्रकार जो पुरुष तिन सत्त्वादिक गुणोंकूंही कर्त्ता देखेहै तथा तिस तिस अवस्थाविशेषरूप करिकै परिणामकूं प्राप्तहुए जे सत्त्वादिक गुण हैं तिन गुणोंतैं जो पुरुष आत्माकूं पर जानैहै अर्थात् जैसे आकाशविषे स्थित सूर्य भूमिविषे स्थित जलके साथि तथा ता जलके कंपादिक विकारोंके साथि संबंधवाला होवै नहीं तैसे जो आत्मादेव सत्त्वादिक तीन गुणोंके साथि तथा तिन गुणोंके कार्योंके साथि संबंधवाला है नहीं तथा तिन कार्यसहित गुणोंका प्रकाशक है तथा जन्ममरणादिक सर्व विकारोंतैं रहित है तथा सर्वप्रपंचका साक्षी है तथा सर्वत्र सम है, ऐसे एक अद्वितीयरूप क्षेत्रज्ञ आत्माकूं जो द्रष्टापुरुष गुरुशास्त्रके उपदेशतैं जानैहै तिस कालविषे सो द्रष्टा पुरुष मैं परमेश्वरके भावकूं प्राप्त होवैहै । अर्थात् सो पुरुष मैंही ब्रह्मरूप हूं याप्रकारतैं अभेदरूपकरिकै मैं निर्गुणब्रह्मकूं प्राप्त होवैहै । तहां श्रुति–(ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति ।) अर्थ यह मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकारतैं ब्रह्मकूं आपणा आत्मारूप जानताहुआ यह पुरुष ब्रह्मरूपही होवैहै ॥ १९ ॥

हे भगवन् ! इसप्रकार सत्त्वादिक तीन गुणोंकूंही कर्त्तापणा देखणेहारा तथा तिन गुणोंतैं आत्माकूं पर देखणेहारा पुरुष तिस निर्गुणब्रह्मभावकूं किस प्रकार करिकै प्राप्त होवै है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् तिसप्रकारकूं कथन करैं हैं ।

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ॥
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥ २० ॥

(पदच्छेदः) गुणान् । एतान् । अतीत्य । त्रीन् । देही । देहसमुद्भवान् । जन्ममृत्युजरादुःखैः । विमुक्तः । अमृतम् । अश्नुते ॥ २० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! देहके उत्पत्तिका बीजरूप इन सत्त्वादिक तीन गुणोंकूं परित्यागकरिकै जन्ममृत्युजरादुःख इनोंकरिकै विमुक्तहुआ यह विद्वान् पुरुष मोक्षकूं प्राप्त होवैहै ॥ २० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! देहकी उत्पत्तिके बीजरूप ऐसे जे मायारूप सत्त्व, रज, तम यह तीन गुण हैं इन तीनगुणोंकूं अतिक्रमणकरिकै अर्थात् जीवित कालविषेही तत्त्वज्ञान करिकै तिन गुणोंका बाधकरिकै जन्मकरिकै तथा मृत्युकरिकै तथा जराकरिकै तथा आध्यात्मिकादिक दुःखोंकरिकै विमुक्त हुआ अर्थात् जीवितकालविषेही तिन मायामय जन्ममृत्यु आदिकोंके संबंधतें रहित हुआ यह विद्वान् पुरुष अमृतकूं प्राप्त होवै है । अर्थात् सर्व अनर्थोंकी निवृत्तिपूर्वक ब्रह्मभावकी प्राप्तिरूप मोक्षकूं प्राप्त होवैहै ॥ २० ॥

तहां इन सत्त्वादिक तीन गुणोंका अतिक्रमणकरिकै यह विद्वान् पुरुष जीवितकालविषेही मोक्षरूप अमृतकूं प्राप्त होवै है, इस पूर्वउक्त अर्थकूं श्रवणकरिकै अर्जुन तिस गुणातीत पुरुषके लक्षण जानणेकी तथा आचार जानणेकी तथा गुणातीतपणेके उपाय जानणेकी इच्छा करता हुआ श्रीभगवान्के प्रति प्रश्न करैहै—

कैर्लिंगैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ॥
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्त्तते ॥ २१ ॥

(पदच्छेदः) कैः । लिंगैः । त्रीन् । गुणान् । एतान् । अतीतः । भवति । प्रभो । किमाचारः । कथम् । च । एतान् । त्रीन् । गुणान् । अतिवर्त्तते ॥ २१ ॥

(पदार्थः) हे प्रभो ! इन सत्त्वादिक तीन गुणोंकूं अतिक्रमण करणेहारा पुरुष किन लिंगोंकरिकै विशिष्ट होवै है तथा किस आचारवाला होवै है तथा इन तीन गुणोंकूं किस प्रकार करिकै अतिक्रमण करै है ॥ २१ ॥

भा० टी०—हे प्रभो ! सत्त्व रज तम इन तीन गुणोंकूं अतिक्रमण कर-णेहारा जो तत्त्ववेत्ता पुरुष है सो गुणातीत तत्त्ववेत्ता पुरुष किन लिंगों-करिकै विशिष्ट होवै है अर्थात् जिन लक्षणरूप लिंगोंकरिकै सो तत्त्व-वेत्ता पुरुप जान्या जावै है ते लक्षणरूप लिंग आप हमारे प्रति कथन करो । इति प्रथमप्रश्नः ॥ तथा गुणातीत तत्त्ववेत्ता पुरुष कौन आ-चार होवै है अर्थात् सो तत्त्ववेत्ता पुरुष यथेष्ट चेष्टावाला होवै है अथवा नियमपूर्वक चेष्टावाला होवै है ; सो तत्त्ववेत्ता पुरुषका आचारभी आप हमारे प्रति कथन करो । इति द्वितीयप्रश्नः ॥ तथा सो तत्त्ववेत्ता पुरुष किस प्रकार करिकै इन तीन गुणोंकूं अतिक्रमण करै है अर्थात् तिस गुणा-तीतपणेका उपाय कौन है सो उपायभी आप हमारे प्रति कथन करो । इति तृतीयप्रश्नः ॥ इहां (हे प्रभो) इस संबोधनके कहणे करिकै अर्जु-ननैं श्रीभगवानूके प्रति यह अर्थ सूचन कर्‍या—दुःखादिकोंको निवृत्त करणे-विषे जो समर्थ होवै ताका नाम प्रभु है । जैसे राजादिक समर्थ पुरुष आपणे भृत्योंके दुःखकूं निवृत्त करैहैं तैसे समर्थ होणेतैं आप भगवान्नैंही मैं भृत्यका दुःख निवृत्त करणे योग्यहै ॥ २१ ॥

तहां यद्यपि इस गीताशास्त्रके द्वितीय अध्यायविषे (स्थितप्रज्ञस्य का भाषा) इत्यादिक वचनोंकरिकै यह सर्व अर्थ पूर्वही अर्जुननैं पूछा था । तथा (प्रजहाति यदा कामान्) इत्यादिक वचनों करिकै मैं भगवानूनैं तिसका उत्तरभाग पूर्वही कथन कर्‍या था तथापि यह अर्जुन तिस पूर्वउक्त अर्थकूं पुनः प्रकारान्तरकरिकै जानणेकी इच्छा करता हुआ अबी पूछै है । इस प्रकारके ता अर्जुनके अभिप्रायकूं निश्चय करिकै श्रीभगवान् तिस पूर्वउक्त प्रकारतैं विलक्षण प्रकार करिकै तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषके लक्षणा-दिकोंकूं पांच श्लोकोंकरिकै कथन करै हैं । तहां सो गुणातीत पुरुष किनलक्षणरूप लिंगोंकरिकै विशिष्ट होवैहै । इसप्रथमप्रश्नके उत्तरकूं एकश्लो-ककरिकै कथन करैहैं—

श्रीभगवानुवाच ।

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पांडव ॥
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति ॥ २२ ॥

(पदच्छेदः) प्रकाशम् । च । प्रवृत्तिम् । च । मोहम् । एव । च । पांडव । न । द्वेष्टि । संप्रवृत्तानि । न । निवृत्तानि । कांक्षति ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! प्रवृत्तहुए प्रकाशकूं तथा प्रवृत्तिकूं तथा मोहकूं जो पुरुष कदाचित्भी नहीं द्वेष करै है तथा निवृत्तहुए तिन्होंकूं नहीं इच्छा करैहै सो पुरुष गुणातीत कह्या जावै है ॥ २२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! सत्त्वगुणका कार्यरूप जो प्रकाश है तथा रजोगुणका कार्यरूप जो प्रवृत्ति है तथा तमोगुणका कार्यरूप जो मोह है इहां प्रकाश, प्रवृत्ति, मोह यह तीनों कार्य सत्त्वादिक तीन गुणोंके दूसरे भी सर्वकार्योंके उपलक्षण हैं । ते सत्त्वादिक तीन गुणोंके प्रकाशादिक सर्व कार्य आपणी आपणी कारण सामग्रीके वशतैं उत्पन्न हुए यद्यपि दुःख-रूपही होवै हैं तथापि जो विद्वान् पुरुष दुःखबुद्धि करिकै तिन कार्योंविषे द्वेषकूं नहीं करै है अर्थात् यह दुःखरूप गुणोंके कार्य काहेकूं उत्पन्न हुए हैं या प्रकारतैं जो विद्वान् पुरुष तिन्होंविषे द्वेषकूं करता नहीं । और ते सत्त्वादिक गुणोंके प्रकाशादिक कार्य आपणे आपणे विनाशकी सामग्रीके वशतैं निवृत्तहुए यद्यपि सुखरूपही होवैं हैं, तथापि जो विद्वान् पुरुष सुख बुद्धिकरिकै तिन्होंकी इच्छा नहीं करै है अर्थात् सुखरूप यह गुणोंके कार्यों-की निवृत्ति हमारेकूं सर्वदा प्राप्त होवै या प्रकारकी जो पुरुष इच्छाकरता नहीं । काहेतैं सो विद्वान् पुरुष तिन सत्त्वादिक गुणोंकूं तथा तिन सत्त्वा-दिक गुणोंके कार्योंकूं स्वप्नकी न्याई मिथ्यारूपही जानै है । और मिथ्या-रूप करिकै जान्या हुआ पदार्थ इस पुरुषके रागका वा द्वेषका विषय होवै नहीं । जैसे मिथ्यारूप करिकै जान्याहुआ शुक्तिरजत इस पुरुषके

रागका विषय नहीं होवै है । और मिथ्यारूप करिकै जान्या हुआ रज्जु सर्प इस पुरुषके द्वेषका विषय नहीं होवै है । इस प्रकार सत्त्वादिक तीन गुणोंके प्रकाशादिक कार्योंकी प्रवृत्तिविषे जो पुरुष द्वेषतें रहित है । तथा तिन कार्योंकी निवृत्तिविषे जो पुरुष रागतें रहित है सो विद्वान् पुरुष गुणातीत कह्या जावै है । इस प्रकार इस श्लोकका चतुर्थ श्लोकविषे स्थित (गुणातीतः स उच्यते ।) इस वचनके साथि अन्वय करणा । तहां श्रीभगवान्नैं यह जो गुणातीत पुरुषका लक्षण कथन कर्या है सो यह गुणातीत पुरुषका लक्षण तिस गुणातीत पुरुषकूंही प्रत्यक्ष है दूसरे किसीकूं प्रत्यक्ष है नहीं । काहेतें एक पुरुषके अन्तःकरणविषे रह्या जो द्वेष है तथा वा द्वेषका अभाव है तथा राग है तथा वा रागका अभाव है तिन द्वेषादिकोंकूं दूसरा पुरुष जानि सकता नहीं । यातें यह गुणातीत पुरुषका लक्षण स्वार्थलक्षणही है परार्थलक्षण है नहीं । तहां जो लक्षण केवल आपणेकूंही ज्ञात होवै है सो लक्षण स्वार्थलक्षण कह्या जावै है । और जो लक्षण दूसरेकूंभी ज्ञात होवै है सो लक्षण परार्थ लक्षण कह्या जावै है । इसी स्वार्थलक्षणकूं शास्त्रविषे स्वसंवेद्य कहे हैं । और इसी परार्थलक्षणकूं शास्त्रविषे परसंवेद्य कहे है ॥ २२ ॥

अब सो गुणातीत पुरुष किस आचारवाला होवै इस द्वितीयप्रश्नके उत्तरकूं श्रीभगवान् तीनश्लोकोंकरिकै वर्णन करै हैं-

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ॥
गुणा वर्त्तंत इत्येव योऽवतिष्ठति नेंगते ॥ २३ ॥

(पदच्छेदः) उदासीनवत् । आसीनः । गुणैः । यः । न । विचाल्यते । गुणाः । वर्त्तंते । इति । एव । यः । अवतिष्ठति । न । इंगते ॥ २३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन । जो पुरुष उदासीन पुरुषकी न्याई स्थित है तथा सत्त्वादिकगुणोंनें नहीं चलायमान करीता तथा ते गुण ही परस्पर

वर्त्तते हैं इस प्रकारका निश्चयकरिकै जो पुरुष स्थित होवै है तथा नहीं किंचितुमात्रभी व्यापार करै है सो पुरुष गुणातीत कह्या जावैहै ॥ २३ ॥

भा० टी०--हे अर्जुन ! परस्पर विवाद करणेहारे जे दो पुरुष हैं तिन दोनोंके मध्यविषे किसीकेभी पक्षकूं जो पुरुष अंगीकार करता नहीं ता पुरुषका नाम उदासीन है । सो उदासीन पुरुष जैसे किसी पुरुषविषे रागकूंभी करता नहीं तथा किसी पुरुषविषे द्वेषकूंभी करता नहीं किंतु सो उदासीन पुरुष रागद्वेषतैं रहित हुआ स्थित होवै है । तिस उदासीन पुरुष की न्याईं जो पुरुष रागद्वेषतैं रहित होइकै आपणे सत् आनंदस्वरूपविषेही स्थित होवै है । तथा सुखदुःखादिरूप आकारकरिकै परिणामकूं प्राप्तहुए ते सत्त्वादिक तीन गुण हैं ऐसे तीन गुणोंनैंभी जो पुरुष आपणे स्वरूपकी स्थितितैं चलायमान करीता नहीं किंतु देह, इंद्रिय, विषय इत्यादिरूप आकारकरिकै परिणामकूं प्राप्तहुए ते सत्त्वादिक गुणही आपसमैं साधकबाधक भावकरिकै तथा ग्राह्यग्राहक भावकरिकै तथा उपकार्य उपकारक भावकरिकै वर्त्तते हैं । इन सर्व गुणोंका प्रकाशक जो मैं आत्मा हूं तिस मैं आत्माका किसीभी प्रकाश्यवस्तुके धर्मसाथि संबंध है नहीं । जैसे घटादिक सर्वपदार्थोंकूं प्रकाश करणेहारे सूर्यका किसीभी प्रकाश्यरूप घटादिक पदार्थोंके धर्मोंके साथि संबंध है नहीं । और यह सर्वप्रपंच दृश्यरूप है तथा जडरूप है तथा स्वप्नकी न्याईं मिथ्याही है और मैं आत्मा तौ द्रष्टा हूं तथा स्वयंज्योतिस्वरूप हूं तथा परमार्थ सत्य हूं तथा सर्व विकारोंतैं रहित हूं तथा द्वैतभावतैं रहित हूं इस प्रकारका निश्चय करिकै जो पुरुष आपणे स्वरूपविषेही स्थित होवैहै किसीभी कार्यकी सिद्धिवासतै व्यापारवाला होता नहीं ऐसा तत्त्ववेत्ता पुरुष गुणातीत कह्याजावैहै । इसप्रकार इस श्लोकका तीसरे श्लोकविषे स्थित (गुणातीतः स उच्यते) इस वचनके साथि अन्वय करणा । इहां (योवतिष्ठति) इस वचनके स्थानेविषे (योनुतिष्ठति) इसप्रकारकाभी किसी पुस्तकविषे पाठ होवैहै सो इस प्रकारके पाठविषेभी सो पूर्वउक्त अर्थही जानणा ॥ २३ ॥

किंच–

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकांचनः ॥
तुल्यप्रियाप्रियोधीरस्तुल्यनिंदात्मसंस्तुतिः॥२४॥

(पदच्छेदः) समदुःखसुखः । स्वस्थः । समलोष्टाश्मकांचनः । तुल्यप्रियाप्रियः । धीरः । तुल्यनिंदात्मसंस्तुतिः ॥ २४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! सम है दुःख सुख दोनों जिसकूं तथा स्वरूपविषे है स्थिति जिसकी तथा सम हैं लोष्ट अश्म कांचन जिसकूं तथा तुल्य हैं प्रिय अप्रिय दोनों जिसकू तथा तुल्य हैं आपणी निंदा स्तुति दोनों जिसकूं ऐसा धीरपुरुष गुणातीत कह्याजावै है ॥ २४ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! तिस तत्त्ववेत्ता पुरुपका दुःखविषे तौ द्वेष नहीं है तथा सुखविषे राग नहींहै । और ते दुःखसुख दोनोंही अनात्मारूप अंतःकरणके ही धर्म हैं । तथा स्वप्नकी न्याई मिथ्यारूप हैं । यातैं राग-द्वेषतैं रहितपणेकरिकै तथा अनात्मधर्मपणेकरिकै तथा मिथ्यापणेकरिकै सम हैं ते दुःख सुख दोनों जिस पुरुषकूं ताका नाम समदुःखसुख है । शंका–हे भगवन् ! तिस तत्त्ववेत्ता पुरुपकूं ते दुःख सुख दोनों किस हेतु सम हैं ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् ताके विषे हेतु कहैं हैं (स्वस्थः इति) हे अर्जुन ! जिसकारणतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुप स्वस्थ है अर्थात् द्वैतदर्शनतैं रहित होणेतैं जो तत्त्ववेत्ता पुरुप आपणे आनंदस्वरूप आत्माविषेंही स्थित है, इस कारणतैंही तिस तत्त्ववेत्ता पुरुपकूं ते दुःख सुख दोनों सम हैं । आत्माविषे स्थितितैं रहित बहिर्मुख पुरुपकूं तिन दुःख सुख दोनोंविषे विषमता होवै है । हे अर्जुन ! जिस-कारणतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुप आनंदस्वरूप आत्माविषेही स्थित है तिस कारणतैं ही सो तत्त्ववेत्ता पुरुप समलोष्टाश्मकांचन है । तहां सम हैं क्या ग्रहणत्यागभावतैं रहित हैं लोष्ट अश्म कांचन यह तीनों जिसकूं ताका नाम समलोष्टाश्मकांचन है तहां मृत्तिकाके पिंडका नाम लोष्ट है और

पाषाणका नाम अश्म है और सुवर्णका नाम कांचन है अर्थात् जो तत्त्ववेत्ता पुरुष लोष्टादिक तुच्छवस्तुवोंविषे तौ त्यागबुद्धितैं रहित है तथा सुवर्णादिक महान् पदार्थोंविषे ग्रहणबुद्धितैं रहित है हे अर्जुन ! जिस कारणतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष समलोष्टाश्मकांचन है, इसकारणतैंही सो तत्त्ववेत्ता पुरुष तुल्यप्रियाप्रिय है । तहां तुल्य हैं सुखका साधनरूप प्रिय तथा दुःखका साधनरूप अप्रिय दोनों जिस पुरुषकूं ताका नाम तुल्यप्रियाप्रियहै अर्थात् जिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं सो प्रियपदार्थ तौ यह प्रियपदार्थ हमारे हितका साधन है या प्रकारकी हितसाधनता बुद्धिका विषय नहीं है । और सो अप्रियपदार्थ तौ यह अप्रियपदार्थ हमारे अहितका साधन है याप्रकारकी अहितसाधनता बुद्धिका विषय नहीं है किंतु ते प्रियअप्रिय दोनों तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकी उपेक्षाके बुद्धिकेही विषय होवैं हैं । तथा जो पुरुष धीर है अर्थात् बुद्धिमान् है । अथवा धृतिमान् है । हे अर्जुन ! जिसकारणतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष धीर है इसकारणतैंही सो तत्त्ववेत्ता पुरुष तुल्यनिंदात्मसंस्तुति है । तहां आपणे दोषोंके कथनका नाम निंदा है और आपणे गुणोंके कथनका नाम स्तुति है । तुल्य हैं आपणे निंदा तथा स्तुति दोनों जिस पुरुषकूं ताका नाम तुल्यनिंदात्मसंस्तुति है ऐसा तत्त्ववेत्ता पुरुष गुणातीत कह्या जावै है । इस प्रकारतैं इस श्लोकका द्वितीयश्लोकविषे स्थित (गुणातीतः स उच्यते) इस वचनके साथि अन्वय करणा ॥ २४ ॥

किंच–

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ॥
सर्वारंभपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥ २५ ॥

(पदच्छेदः) मानापमानयोः । तुल्यः । तुल्यः । मित्रारिपक्षयोः । सर्वारंभपरित्यागी । गुणातीतः । सः । उच्यते ॥ २५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष मानअपमानदोनोंविषे तुल्य है तथा मित्रपक्षशत्रुपक्ष दोनोंविषे तुल्य है तथा सर्व आरंभ परित्याग करे हैं जिसनैं सो पुरुष गुणातीत कह्याजावै है ॥ २५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो तत्त्ववेत्ता पुरुष मान अपमान दोनों-विषे तुल्य है तहां सत्कारका नाम मान है जिस सत्कारकूं लोकविषे आदर कहै हैं। और तिरस्कारका नाम अपमान है जिस तिरस्कारकूं लोकविषे अनादर कहैं हैं । तिस मान अपमान दोनोंविषे जो पुरुष तुल्य है अर्थात् मानकी प्राप्तिविषे जिस पुरुषकूं हर्ष नहीं होवै है तथा अपमानकी प्राप्ति-विषे जिस पुरुषकूं विषाद नहीं होवै है। तहां पूर्वश्लोकविषे (तुल्यनिंदा-त्मसंस्तुतिः ।) इस वचनकरिकै कथन करी जा निंदा स्तुति है तथा इस श्लोकविषे कथन कऱ्या जो मान अपमान है तिन दोनोंविषे इतना भेद है । निंदा स्तुति यह दोनों तौ शब्दरूपही होवैं हैं । काहेतैं दोषोंके कथ-नका नाम निंदा है और गुणोंके कथनका नाम स्तुति है सो कथन शब्दरू-पही है । और मान अपमान तौ शब्दतैं विनाभी शरीर मनका व्यापारविशेषरूप होवैं हैं । इतना तिन दोनोंविषे भेद है इति । और किसी मूलपुस्तकविषे तौ (मानावमानयोस्तुल्यः) इसप्र-कारकाभी पाठ होवै है इसप्रकारके पाठ विषे सो पूर्वउक्त अर्थही जानणा । तथा जो तत्त्ववेत्ता पुरुष मित्रपक्ष शत्रुपक्ष दोनोंविषे तुल्य है अर्थात् सो तत्त्ववेत्ता पुरुष जैसे मित्रपक्षके द्वेषका अविषय होवै है वैसे शत्रुप-क्षकेभी द्वेषका अविषय होवै है । अथवा जो तत्त्ववेत्ता पुरुष मित्रपक्षविषे तौ अनुग्रह नहीं करै है । और शत्रुपक्षविषे निग्रह नहीं करै है । तथा जो तत्त्ववेत्ता पुरुष सर्वारंभपरित्यागी है । इहां शरीर मन वाणीकरिकै जिन्हों-का आरंभ कऱ्याजावै है तिन्होंका नाम आरंभ है ऐसे लौकिक वैदिक कर्म हैं तिन कर्मरूप सर्व आरंभोंका परित्याग करचा है जिसनैं वाका नाम सर्वारंभपरित्यागी है । अर्थात् इस देहकी यात्रामात्रविषे उपयोगी जे भिक्षाअटनादिक कर्म हैं तिन कर्मोंतैं भिन्न दूसरे सर्व कर्मोंका परित्याग

करचा है जिसनें ताका नाम सर्वारंभपरित्यागी है। इसप्रकार (उदासी-नवदासीनः) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै कथन करे हुए जे आचार हैं ऐसे आचारोंकरिकै युक्त जो है सो ही तत्त्ववेत्ता पुरुष गुणातीत कह्या-जावै है।तात्पर्य यह-(उदासीनवदासीनः)इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै कथन करे जे उपेक्षकत्वादिक धर्म हैं ते उपेक्षकत्वादिक धर्म आत्मज्ञानकी उत्पत्तिवैं पूर्व तौ प्रयत्नसाध्य होवैं हैं अर्थात् आत्मज्ञानकी इच्छावान् अधिकारी पुरुष-नें तिस आत्मज्ञानके साधनरूपकरिकै ते उपेक्षकत्वादिक सर्व धर्म अनुष्ठान करणे। और तिस आत्मज्ञानकी उत्पत्तिवैं अनंतर तिस गुणातीत जीव-न्मुक्त पुरुषके तौ ते उपेक्षकत्वादिक सर्व धर्म विनाही प्रयत्नतें सिद्ध लक्ष-णकरिकै स्थित होवैं हैं ॥ २५ ॥

अब यह अधिकारी पुरुष किस उपायकरिकै तिन गुणोंकूं अतिक्रमण करै है इस तृतीयप्रश्नके उत्तरकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं-

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ॥
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २६ ॥

(पदच्छेदः) माम् । च । यः । अव्यभिचारेण । भक्तियोगेन । सेवते । सः । गुणान् । समतीत्य । एतान् । ब्रह्मभूयाय । कल्पते २६

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः जो पुरुष मैं परमेश्वरकूं अनन्य भक्ति-योगकरिकै चिंतन करै है सो मेरा भक्त इनपूर्वउक्त सत्त्वादिक गुणोंकूं अतिक्रमणकरिकै ब्रह्महोणेवासतै समर्थ होवै है ॥ २६ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! सर्वभूतोंका अंतर्यामी तथा आपणी माया-शक्तिकरिकै क्षेत्रज्ञभावकूं प्राप्तहुआ ऐसा जो मैं परमानंदघन भगवान् वासुदेव हूं तिस मैं परमेश्वरकूं ही जो अधिकारी पुरुष अव्यभिचारी भक्तियोगकरिकै सेवन करै है। तहां विजातीय वृत्तियोंके व्यवधानतें रहित जो तैलधाराकी न्याई मैं परमात्मादेवविषयक सजातीय वृत्तियोंका प्रवाह है ताका नाम अव्यभिचारी भक्तियोग है । जो भक्तियोग पूर्व

द्वादश अध्यायविषे विस्तारतैं निरूपण कऱ्या है। ऐसे परमप्रेमरूप अनन्यभक्तियोगकरिकै जो पुरुष मैं नारायणकूं सर्वदा चिंतन करै है सो मैं परमेश्वरका अनन्यभक्त इन पूर्वउक्त सत्त्वादिक तीन गुणोंकूं अतिक्रमण करिकै अर्थात् अद्वैतदर्शनकरिकै तिन सत्त्वादिक तीन गुणोंकूं बाधकरिकै निर्गुणब्रह्मभावकी प्राप्तिरूप मोक्षवासतै समर्थ होवै है। यातैं सर्वकालविषे मैं परमेश्वरका चिंतनही तिस गुणातीतपणेका उपाय है ॥ २६ ॥

तहां मैं परमात्मादेवके चिंतन करणेहारा पुरुष मोक्षकूंही प्राप्त होवै है. इस पूर्वउक्त अर्थविषे श्रीभगवान् आपणी महानतारूप हेतुकूं कथन करैहैं-

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ॥
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकांतिकस्य च ॥२७॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासुपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

(पदच्छेदः) ब्रह्मणः । हि । प्रतिष्ठा । अहम् । अमृतस्य । अव्ययस्य । च । शाश्वतस्य । च । धर्मस्य । सुखस्य । ऐकांतिकस्य । च ॥ २७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस कारणतैं अमृतरूप तथा अव्ययरूप तथा शाश्वतरूप तथा धर्मरूप तथा अव्यभिचारी सुखरूप ऐसे सोपाधिककारणब्रह्मका मैं निरुपाधिक वासुदेव वास्तवस्वरूप हूं तिसकारणतैं मैं परमेश्वरकी भक्तितैं मोक्षकी प्राप्ति युक्तही है ॥ २७ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! तत्त्वमसि इस वाक्यविषे स्थित जो तत्पद है तिस तत् पदका वाच्यअर्थरूप तथा सर्वजगत्के उत्पत्तिस्थितिलयका कारणरूप ऐसा जो मायाविशिष्ट सोपाधिक ब्रह्म ऐसे सोपाधिक ब्रह्मका मैं निर्विकल्पक वासुदेवही प्रतिष्ठा हूं अर्थात् पारमार्थिकरूप तथा निर्विकल्पकरूप तथा सत्चित् आनंदरूप ऐसा जो सर्व उपाधियोंतैं रहित तत्पदका लक्ष्य अर्थरूप है सो लक्ष्य अर्थरूप मैंही हूं। तहां (प्रतिष्ठत्यत्रेति प्रतिष्ठा) इसप्रकारकी व्यु-

त्पत्तिकरिकै कल्पितरूपतैं रहित अकल्पितरूपही प्रतिष्ठाशब्दका अर्थ सिद्ध होवैहै। हे अर्जुन ! जिसकारणतैं मैं निरुपाधिक शुद्धब्रह्मही तिस सोपाधिक ब्रह्मका वास्तवस्वरूप हूं, तिसकारणतैं अधिकारी पुरुष मैं निरुपाधिक शुद्धब्रह्मका निरंतर चिंतन करैहै । सो अधिकारी पुरुष मैं निर्गुणब्रह्मभावकी प्राप्तिरूप मोक्षवास्तै समर्थ होवैहै यह पूर्वउक्त अर्थ युक्तही है इति। शंका—हे भगवन् ! किसप्रकारके ब्रह्मकी आप प्रतिष्ठा हो ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् तिस ब्रह्मके विशेषणोंकूं कथन करैहैं—(अमृतस्य इति) हे अर्जुन ! जिस ब्रह्मका मैं परमेश्वर प्रतिष्ठारूप हूं सो ब्रह्म कैसा है—अमृत है अर्थात् विनाशतैं रहित है तहां श्रुति—(एतदमृतमभयमेतद्ब्रह्म ।) अर्थ यह—यह ब्रह्मही अमृतरूप है तथा अभयरूप है इति । पुनः कैसा है सो ब्रह्म—अव्यय है अर्थात् विपरिणामतैं रहित है । पुनः कैसा है सो ब्रह्म—शाश्वत है अर्थात् अपक्षयतैं रहित है । इहां विनाश, विपरिणाम, अपक्षय इन तीन विकारोंका निषेध जन्म, अस्ति, वृद्धि इन तीन विकारोंके निषेधकाभी उपलक्षण है अर्थात् सो ब्रह्म षट्भावविकारोंतैं रहित है । पुनः कैसा है सो ब्रह्म—धर्मरूप है अर्थात् ज्ञाननिष्ठारूप धर्मकरिकै प्राप्त होणेयोग्य है । पुनः कैसा है सो ब्रह्म—सुखरूप है अर्थात् परमानंदरूप है । अब तिस सुखविषे विषय इंद्रियके संयोगकरिकै जन्यत्वकूं निवृत्त करणेवास्तै ता सुखका विशेषण कथन करैं हैं (ऐकांतिकस्य इति) कैसा है सो सुख ऐकांतिक है अर्थात् जो सुख विषयजन्य सुखकी न्याई व्यभिचारी नहींहै किंतु सर्वदेशविषे तथा सर्वकालविषे जो सुख विद्यमान है इसीही व्यापक सुखकूं (यो वै भूमा तत्सुखम्) यह श्रुतिभी कथन करैहै ऐसे अमृतादिक सर्वविशेषणोंकरिकै विशिष्ट ब्रह्मका मैं परमेश्वर जिसकारणतैं वास्तवस्वरूप हूं तिसकारणतैंही मैं परमेश्वरका अनन्यभक्त इस संसारबंधतैं मुक्त होवैहै इति । तहां इसप्रकारका श्रीकृष्णभगवान्का स्वरूप ब्रह्मानैभी श्रीकृष्णभगवान्के प्रति कथन कऱ्याहै । तहां श्लोक—(एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः सत्यः स्वयंज्योतिरनंत

आद्यः। नित्योऽक्षरोजस्रसुखो निरंजनःपूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः॥) अर्थ यह—हे श्रीकृष्णभगवन् ! आप कैसे हो एक हो अर्थात् सर्वत्र एकरूप हो तथा सर्वप्राणियोंका आत्मारूप हो। तथा पुरुष हो अर्थात् सर्वशरीररूप पुरियोंविषे अस्ति भाति प्रिय रूपकरिकै स्थित हो। तथा पुराण हो अर्थात् इसतैं पूर्वभी विद्यमान हो तथा सत्य हो अर्थात् तीन कालोंविषे बाधतैं रहित हो। तथा स्वयंज्योति हो अर्थात् आपणे प्रकाशवासतै इतरप्रकाशकी अपेक्षातैं रहित हो। तथा अनंत हो अर्थात् देशकाल वस्तु परिच्छेदतैं रहित हो। तथा आद्य हो अर्थात् सर्वका आदिकारण हो। तथा नित्य हो अर्थात् उत्पत्तिविनाशतैं रहित हो। तथा अक्षर हो तथा व्यापक सुखस्वरूप हो। तथा निरंजन हो अर्थात् अज्ञानरूप अंजनतैं रहित हो तथा सर्वत्र परिपूर्ण हो। तथा द्वैतभावतैं रहित हो। तथा सर्व उपाधियोंतैं रहित हो। तथा अमृतरूप हो अर्थात् मोक्षस्वरूप हो इति। इस श्लोकविषे श्रीब्रह्मानैं श्रीकृष्णभगवान्कूं सर्वउपाधियोंतैं रहित आत्मारूप तथा ब्रह्मरूप कह्या है। और इसी प्रकारका श्रीकृष्ण भगवान्का स्वरूप श्रीशुकदेवनैंभी स्तुतिप्रसंगतैं विनाही कथन कऱ्या है। तहां श्लोक—(सर्वेषामेव वस्तूनां भावार्थो भवति स्थितः। तस्यापि भगवान् कृष्णः किमतद्वस्तु रूप्यताम्॥) अर्थ यह—जितनी कार्यरूप वस्तु है तिन सर्व कार्यरूप वस्तुवोंका जो भावार्थ है क्या सत्तारूप परमार्थस्वरूप है सो भावार्थ कार्यरूपकरिकै जायमान सोपाधिक ब्रह्मविषेही स्थित है। काहेतैं सिद्धांतविषे कारणकी सत्तातैं पृथक् कार्यकी सत्ता अंगीकार है नहीं। जैसे कुंडलकंकणादिक भूषणरूप कार्योंकी सुवर्णरूप कारणकी सत्तातैं पृथक् सत्ता है नहीं। तथा जैसे घटशरावादिक कार्योंकी मृत्तिकारूप कारणकी सत्तातैं पृथक् सत्ता है नहीं। वैसे इस प्रपंचरूप कार्यकीभी तिस सोपाधिक ब्रह्मरूप कारणकी सत्तातैं पृथक् सत्ता है नहीं यह वार्ता (तदनन्यत्वमारंभणशब्दादिभ्यः।) इस सूत्रके व्याख्यानविषे श्रीभाष्यकारोंनैं विस्तारतैं

कथन करीहै । और तिस कारणरूप सोपाधिकब्रह्मकाभी सो सत्तारूप भावार्थ श्रीकृष्णभगवान् है । काहेतें सो सोपाधिक कारणब्रह्म निरुपाधिक ब्रह्मविषेही कल्पित है । और जो जो कल्पित वस्तु होवै है सो सो अधिष्ठानतें पृथक् होवै नहीं । जैसे रज्जुविषे कल्पित सर्प रज्जुरूप अधिष्ठानतें पृथक् नहीं है । और श्रीकृष्णभगवान् ही सर्व कल्पनावोंका अधिष्ठानरूप होणेतें परमार्थसत्य निरुपाधिक ब्रह्मरूप है । यातें यह निरुपाधिक ब्रह्मरूप श्रीकृष्णभगवान्ही तिस कारणरूप सोपाधिक ब्रह्मका परमार्थसत्तारूप भावार्थ है । ऐसे अधिष्ठानब्रह्मरूप श्रीकृष्णभगवान्तें अन्य कोईभी वस्तु पारमार्थिक है नहीं किंतु सो परब्रह्मरूप श्रीकृष्णभगवान् ही एक पारमार्थिक है इति । इसीही अर्थकूं श्रीभगवान्नें इहां (ब्रह्मणोहि प्रतिष्ठाहम्) इस वचनकरिकै कथन कऱ्याहै इति । अथवा (ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम् ।) इस श्लोकका यह दूसरा अर्थ करणा । शंका हे भगवन् । जो पुरुष जिस देवताका ध्यान करैहै सो पुरुष तिसीही देवताभावकूं प्राप्त होवै है । यातें तुम्हारा भक्त तुम्हारे भावकूं तौ प्राप्त होवैगा परंतु सो तुम्हारा भक्त ब्रह्मभावकूं कैसे प्राप्त होवैगा ? किंतु ब्रह्मभावकूं नहीं प्राप्त होवैगा । जिसकारणतें आप तिस ब्रह्मतें जुदाही हो । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् आपकूं ब्रह्मरूपता कथन करैं है (ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहमिति) हे अर्जुन । सर्वउपाधियोंतें रहित परमात्मादेवरूप शुद्ध ब्रह्मका परिअवसानरूप प्रतिष्ठा मैंही हूं अर्थात् मेरेतें सो परब्रह्म भिन्न नहीं है किंतु मैंही परब्रह्मरूप हूं तथा अव्ययरूप अमृतकीभी मैंही प्रतिष्ठा हूं । तहां सर्व अनर्थकी निवृत्तिपूर्वक परमानंदकी प्राप्तिरूप जो मोक्ष है ताका नाम अमृत है सो मोक्षरूप अमृत किसी प्रकारकरिकैभी नाश होता नहीं । यातें सो मोक्षरूप अमृत अव्यय कह्याजावैहै । ऐसे विनाशतें रहित मोक्षरूप अमृतकाभी मैं परमात्मादेवविषेही परिअवसान है अर्थात् मैं परमात्मादेवकी अभेदरूपकरिकै प्राप्तिही मोक्ष है तथा शाश्वतधर्मकाभी मैं ही प्रतिष्ठा हूं । तहां नित्यमोक्ष है फल जिसका ऐसा जो ज्ञाननिष्ठा-

रूप धर्म है ताका नाम शाश्वतधर्म है । ऐसा मोक्षरूप फलकी प्राप्ति करणे-हारा ज्ञाननिष्ठारूप धर्मभी मैं परमेश्वरविषेही परिअवसानवाला है अर्थात् तिस ज्ञाननिष्ठारूप धर्मकरिकै मैं परमात्मादेवतैं भिन्न दूसरा कोई वस्तु प्राप्त होता नहीं किंतु मैं परमात्मादेवही तिस ज्ञाननिष्ठारूप धर्मकरिकै प्राप्त होता हूं । तथा ऐकांतिक सुखकीभी मैंही परिअवसानरूप प्रतिष्ठा हूं । अर्थात् परमानंदस्वरूप होणेतैं मैं परमात्मादेवही सर्व मुमुक्षुजनोंकूं अभेदरूपकरिकै प्राप्त होणेयोग्य हूं । मै परमात्मादेवतैं भिन्न दूसरा किंचि-त्मात्रभी सुख प्राप्त होणेयोग्य नहीं है । तहां श्रुति–(यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति ।) अर्थ यह–देश, काल, वस्तु, परिच्छेदतैं रहित सर्वत्र व्यापक परमात्मादेवही सुखरूप है परिच्छिन्नपदार्थोंविषे किंचि-त्मात्रभी सुख नहीं है इति । हे अर्जुन ! जिसकारणतैं मै परमात्मादेव इसप्रकारका हूं तिसकारणतैं मैं परमात्मादेवका अनन्यभक्त ब्रह्मभावकूंही प्राप्त होवैहै यह पूर्वउक्त अर्थ युक्तही है । और किसीटीकाविषे तौ (ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्) इस श्लोकका यह अर्थ कन्याहै–इस गीताके चतुर्थ अध्यायविषे (एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।) इस वचनविषे स्थित ब्रह्मशब्दकरिकै वेदकाही ग्रहण कन्या है । यातैं इहां भी ब्रह्मशब्दकरिकै वेदकाही ग्रहण करणा । ऐसे ब्रह्मनामा वेदका मैं परमात्माही प्रतिष्ठा हूं अर्थात् सर्व वेदोंका तात्पर्यकरिकै परिअवसानका स्थान मैं परब्रह्मही हूं । तहां श्रुति (सर्वे वेदा यत्पदमामनंति ।) अर्थ यह–कर्म, उपासना, ज्ञान यह तीनकांडरूप ऋगादिक सर्ववेद साक्षात् वा परंपराकरिकै जिस परब्रह्मरूप पदकूंही कथन करैं हैं इति । कैसा है सो वेद–अमृतहै अर्थात् कर्म ब्रह्म इन दोनोंके प्रतिपादनद्वारा मोक्षरूप अमृ-तका साधनहै।पुनःकैसा हैसो वेद अव्यय है अर्थात् उत्पत्तिविनाशतैं रहित होणेतें सोवेदअपौरुषेयहै अपौरुषेयहोणेतहीसोवेदअप्रामाण्यशंकारूप कलंकतें रहित स्वतः प्रमाणरूप है । और शाश्वतधर्मकाभी मैं ही प्रतिष्ठा हूं अर्थात् जैसे काम्य धर्म स्वर्गादिक फलकी प्राप्ति करिकै नाश होइ जावै है वैसे

भगवत्‌विषे अर्पण कऱ्या हुआ यह नित्यधर्म नाश होवै नहीं।तथा विविदिषादिकोंकी उत्पत्तिद्वारा मोक्षरूप शाश्वतफलका हेतु होवै है। यातैं भगवत्‌विषे अर्पण कऱ्या हुआ सो नित्यधर्म शाश्वतधर्म कह्याजावै है।ऐसे शाश्वतधर्मकरिकै प्राप्त होणेयोग्य परमफलरूपभी मैं परमात्मादेवही हूं।और विषय संबंधजन्य सुखतैं रहित ऐसा जो स्वरूपभूत मोक्षसुख है ताका नाम ऐकांतिक सुखहै। ऐसे ऐकांतिक सुखकाही मैं परमात्मादेवही प्रतिष्ठा हूं अर्थात् पराकाष्ठारूपहूं। हे अर्जुन! जिसकारणतैं मैं परमात्मादेव इस प्रकारकाहूं तिसकारणतैं ऐसे मैं परमात्मादेवकूं चिंतनकरणेहारा अधिकारीजन ब्रह्मभावकूंही प्राप्तहोवैहै यह पूर्वउक्त अर्थ युक्तही है ॥ २७ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां चतुर्दशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशाऽध्यायप्रारंभः।

तहां पूर्व चतुर्दश अध्यायविषे संसारबंधनके हेतुभूत सत्त्वादिक तीन गुणोंको कथन करिकै इस अधिकारी पुरुषकूं मैं परमेश्वरके अनन्य भक्तियोगकरिकै तिन सत्त्वादिक तीन गुणोंके अतिक्रमणपूर्वक ब्रह्मभावरूप मोक्ष प्राप्त होवै है।यह अर्थ श्रीभगवान्‌नैं(मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥) इस वचनकरिकै कथन कऱ्या । तहांतैं मनुष्यके भक्तियोगकरिकै इस अधिकारी पुरुषकूं ब्रह्मभावकी प्राप्ति कैसे होवैगी ? किंतु नहीं होवैगी । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् आपणेविषे ब्रह्मरूपताके बोधनकरणेवास्तै (ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च । शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकांतिकस्य च ॥) यह सूत्ररूप श्लोक कथन करता भया । इसी सूत्रभूत श्लोकके अर्थकूं विस्तारतैं वर्णन करणेहारा यह वृत्तिरूप पंचदश अध्याय श्रीभगवान्‌नैं प्रारंभ करीता है । जिसकारणतैं श्रीकृष्णभगवान्‌के वास्तव स्वरूपकूं जानिकै

तिसके निरतिशय प्रेमरूप भजनकरिकै गुणातीत हुए यह अधिकारीलोग किसीभी प्रकारकरिकै ब्रह्मभावरूप मोक्षकूं प्राप्त होवैं हैं इति । तहां (ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्) इत्यादिक भगवान्के वचनकूं श्रवणकरिकै मैं अर्जुनके तुल्य मनुष्यरूप यह कृष्ण ब्रह्मकाभी मैं प्रतिष्ठा हूं इस प्रकारका वचन कैसे कहता है इस प्रकारके विस्मय करिकै युक्त हुए तथा पूछणेयोग्य अर्थकी अस्फूर्तिरूप अप्रतिभा करिकै तथा लज्जाकरिकै किंचित्मा-त्रभी पूछणेकूं असमर्थ हुए ऐसे अर्जुनकूं जानिकरिकै कृपाकरिकै ता अर्जुनके प्रति आपणे स्वरूपके कहणेकी इच्छा करते हुए श्रीभगवान् कहैं हैं। तहां संसारतैं विरक्त पुरुषकूं ही परमेश्वरके वास्तवस्वरूपके ज्ञानविषे अधिकार है। वैराग्यतैं रहित पुरुषकूं ता ज्ञानविषे अधिकार है नहीं। यातै प्रथम वैराग्य संपादन करया चाहिये । तहां पूर्व अध्यायविषे कथन करया जो परमेश्वरके अधीन वर्त्तणेंहारे प्रकृतिपुरुषके संयोगका कार्य-रूप संसार है तिस संसारकूं वृक्षरूप कल्पनाकरिकै वर्णन करैं हैं। तिस संसारतैं वैराग्यकी प्राप्तिवास्तै जिसकारणतैं सोवैराग्यभी तिसपूर्वउक्त गुणाती-तपणेका उपायरूपहीहै-

श्रीभगवानुवाच ।

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ॥
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ १ ॥

(पदच्छेदः) ऊर्ध्वमूलम् । अधःशाखम् । अश्वत्थम् । प्राहुः । अव्ययम् । छंदांसि । यस्य । पर्णानि । यः । तम् । वेद । सः । वेदवित् ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! श्रुतिस्मृतियां इससंसारवृक्षकूं ऊर्ध्वमूलवाला तथा अधःशाखावाला तथा अश्वत्थ तथा अव्यय कहै हैं जिससंसारवृक्षके कर्मकां-डरूपवेद पर्ण हैं तिसे संसाररूप वृक्षकूं जो पुरुष जानता है सो पुरुषही वेदवेत्ता है ॥ १ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! यह संसाररूप वृक्ष कैसा है ऊर्ध्वमूलहै। तहां स्वप्रकाशपरमानंदरूप होणेतैं तथा नित्य होणेतैं सर्वतैं उत्कृष्ट कारण रूप जो ब्रह्महै ताका नाम ऊर्ध्व है सो ऊर्ध्व है मूल क्या कारण जिसका ताका नाम ऊर्ध्वमूलहै। अथवा सर्वसंसारके बाध हुएभीबाधतैंरहित तथा सर्वसंसारभ्रमका अधिष्ठान ऐसा जो ब्रह्म है ताका नाम ऊर्ध्व है सो ऊर्ध्व है आपणी माया-शक्ति करिकै मूल क्या कारण जिसका ताका नाम ऊर्ध्वमूल है। पुनः कैसाहै यह संसाररूप वृक्ष अधःशाखहै। इहां (अधः) इस शब्दकरिकै पश्चात् उत्पन्नहुए कार्यरूप उपाधिवाले हिरण्यगर्भादिकोंका ग्रहण करणा। और जैसे लोक-प्रसिद्ध वृक्षकी शाखा पूर्वपश्चिमादिक दिशावोंविषे प्रसृत होवैं हैं वैसे ते हिरण्यगर्भादिकभी नानादिशावोंविषे प्रसृत हुए हैं। यातैं ते हिरण्यग-र्भादिक हैं प्रसिद्ध शाखावोंकी न्याईं शाखा जिसकी ताका नाम अधःशाख है। पुनः कैसा है यह संसाररूप वृक्ष अश्वत्थ है। तहां जो वस्तु यह वस्तु अगले दिनविषे रहैगा या प्रकारके विश्वासके योग्य नहीं होवै ताका नाम अश्वत्थ है इस प्रकारके विश्वासके अयोग्य होणेतैं यह संसा-रवृक्ष अश्वत्थ है। पुनः कैसा है यह संसाररूप वृक्ष—अव्यय है अर्थात् अनादि अनंतरूप जो यह देहादिकोंका प्रवाह है तिसका यह संसाररूप वृक्ष आश्रय है। तथा आत्मज्ञानतैं विना अन्य किसी उपायकरिकै इस संसारवृक्षका उच्छेद होता नहीं। यातैं यह संसारवृक्ष अव्यय है। इस प्रकारतैं श्रुतिस्मृतियां इस मायामय संसारवृक्षकूं ऊर्ध्वमूलवाला तथा अधःशाखावाला तथा अश्वत्थरूप तथा अव्ययरूप कथन करैं हैं। तहां श्रुति— ऊर्ध्वमूलोऽर्वाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः।) अर्थ यह—सर्वतैं उत्कृष्ट जो ब्रह्म है ताका नाम ऊर्ध्व है सो ऊर्ध्व है मूल क्या कारण जिसका ताका नाम ऊर्ध्वमूल है। और अर्वाक् नाम निकृष्टका है ऐसे निकृष्ट कार्यरूप उपाधिवाले हिरण्यगर्भादिक हैं। अथवा महत्तत्त्व अहं-कार पंचतन्मात्रा इत्यादिक हैं ते हिरण्यगर्भादिक अथवा महत्तत्त्व अहं-कारादिक प्रसिद्ध शाखाकी न्याईं शाखा हैं जिसकी ताका नाम अ२

तिसके निरतिशय प्रेमरूप भजनकरिकै गुणातीत हुए यह अधिकारीलोग किसीभी प्रकारकरिकै ब्रह्मभावरूप मोक्षकूं प्राप्त होवैं हैं इति । तहां (ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्) इत्यादिक भगवान्के वचनकूं श्रवणकरिकै मैं अर्जुनके तुल्य मनुष्यरूप यह कृष्ण ब्रह्मकाभी मैं प्रतिष्ठा हूं इस प्रकारका वचन कैसे कहता है इस प्रकारके विस्मय करिकै युक्त हुए तथा पूछणेयोग्य अर्थकी अस्फूर्तिरूप अप्रतिभा करिकै तथा लज्जाकरिकै किंचित्मात्रभी पूछणेकूं असमर्थ हुए ऐसे अर्जुनकूं जानिकरिकै कृपाकरिकै ता अर्जुनके प्रति आपणे स्वरूपके कहणेकी इच्छा करते हुए श्रीभगवान् कहैं है। तहां संसारतैं विरक्त पुरुपकूं ही परमेश्वरके वास्तवस्वरूपके ज्ञानविषे अधिकार है। वैराग्यतैं रहित पुरुपकूं ता ज्ञानविषे अधिकार है नहीं। यातैं प्रथम वैराग्य संपादन कऱ्या चाहिये । तहां पूर्व अध्यायविषे कथन करया जो परमेश्वरके अधीन वर्त्तणेहारे प्रकृतिपुरुपके संयोगका कार्यरूप संसार है तिस संसारकूं वृक्षरूप कल्पनाकरिकै वर्णन करैं हैं। तिस संसारतै वैराग्यकी प्राप्तिवासतै जिसकारणतैं सोवैराग्यभी तिसपूर्वउक्त गुणातीतपणेका उपायरूपहीहै—

श्रीभगवानुवाच ।

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ॥
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ १ ॥

(पदच्छेदः) ऊर्ध्वमूलम् । अधःशाखम् । अश्वत्थम् । प्राहुः । अव्ययम् । छंदांसि । यस्य । पर्णानि । यः । तम् । वेद । सः । वेदवित् ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! श्रुतिस्मृतियां इससंसारवृक्षकूं ऊर्ध्वमूलवाला तथा अधःशाखावाला तथा अश्वत्थ तथा अव्यय कहै हैं जिससंसारवृक्षके कर्मकांडरूपवेद पर्ण हैं तिसे संसाररूप वृक्षकूं जो पुरुप जानता है सो पुरुपही वेदवेत्ता है ॥ १ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! यह संसाररूप वृक्ष कैसा है ऊर्ध्वमूलहै । तहां स्वप्रकाशपरमानंदरूप होणेतैं तथा नित्य होणेतैं सर्वतैं उत्कृष्ट कारण रूप जो ब्रह्महै ताका नाम ऊर्ध्व है सो ऊर्ध्व है मूल क्या कारण जिसका ताका नाम ऊर्ध्वमूलहै। अथवा सर्वसंसारके बाध हुएभीबाधतैंरहित तथा सर्वसंसारभ्रमका अधिष्ठान ऐसा जो ब्रह्म है ताका नाम ऊर्ध्व है सो ऊर्ध्व है आपणी मायाशक्ति करिकै मूल क्या कारण जिसका ताका नाम ऊर्ध्वमूल है।पुनः कैसाहै यह संसाररूप वृक्ष अधःशाखहै।इहां(अधः)इस शब्दकरिकै पश्चात् उत्पन्नहुए कार्यरूप उपाधिवाले हिरण्यगर्भादिकोंका ग्रहण करणा । और जैसे लोकप्रसिद्ध वृक्षकी शाखा पूर्वपश्चिमादिक दिशावोंविषे प्रसृत होवैं हैं वैसे ते हिरण्यगर्भादिकभी नानादिशावोंविषे प्रसृत हुए हैं । यातैं ते हिरण्यगर्भादिक हैं प्रसिद्ध शाखावोंकी न्याई शाखा जिसकी ताका नाम अधःशाख है । पुनः कैसा है यह संसाररूप वृक्ष अश्वत्थ है । तहां जो वस्तु यह वस्तु अगले दिनविषे रहैगा या प्रकारके विश्वासके योग्य नहीं होवै ताका नाम अश्वत्थ है इस प्रकारके विश्वासके अयोग्य होणेतैं यह संसारवृक्ष अश्वत्थ है। पुनः कैसा है यह संसाररूप वृक्ष—अव्यय है अर्थात अनादि अनंतरूप जो यह देहादिकोंका प्रवाह है तिसका यह संसाररूप वृक्ष आश्रय है । तथा आत्मज्ञानतैं विना अन्य किसी उपायकरिकै इस संसारवृक्षका उच्छेद होता नहीं। यातैं यह संसारवृक्ष अव्यय है । इस प्रकारतैं श्रुतिस्मृतियां इस मायामय संसारवृक्षकूं ऊर्ध्वमूलवाला तथा अधःशाखावाला तथा अश्वत्थरूप तथा अव्ययरूप कथन करैं हैं। तहां श्रुति— ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः ।) अर्थ यह—सर्वतैं उत्कृष्ट जो ब्रह्म है ताका नाम ऊर्ध्व है सो ऊर्ध्व है मूल क्या कारण जिसका ताका नाम ऊर्ध्वमूल है । और अवाक् नाम निकृष्टका है ऐसे निकृष्ट कार्यरूप उपाधिवाले हिरण्यगर्भादिक हैं । अथवा महत्तत्त्व अहंकार पंचतन्मात्रा इत्यादिक हैं वे हिरण्यगर्भादिक अथवा महत्तत्त्व अहंकारादिक प्रसिद्ध शाखाकी न्याई शाखा हैं जिसकी ताका नाम अवा-

क्शाख है। ऐसा ऊर्ध्वमूल तथा अर्वाक्शाख यह संसाररूप अश्वत्थवृक्ष सनातन है इति । इत्यादिक श्रुतियां कठवल्ली उपनिषद्विषे पठन करी हैं। तहां इस श्रुतिविषे स्थित जो अर्वाक्शाखः यह पद है सो पद मूलश्लोकविषे स्थित अधःशाखम् इस पदके समान अर्थवाला है । और श्रुतिविषे स्थित जो सनातनः यह पद है सो पद मूलश्लोकविषे स्थित अव्ययम् इस पदके समान अर्थवाला है । इसीप्रकारके इस संसाररूप वृक्षकू स्मृतिवचनभी कथन करें है । तहां स्मृति—(अव्यक्तमूलप्रभवस्तस्यैवानुग्रहोत्थितः । बुद्धिस्कंधमयश्चैव इंद्रियान्तरकोटरः ॥ १ ॥ महाभूतविशाखश्च विषयैः पत्रवांस्तथा । धर्माधर्मसुपुष्पश्च सुखदुःखफलोदयः ॥ २ ॥ आजीव्यः सर्वभूतानां ब्रह्मवृक्षः सनातनः । एतद्ब्रह्मवनं चैव ब्रह्मा चरति साक्षिवत् ॥ ३ ॥ एतच्छित्त्वा च भित्त्वा च ज्ञानेन परमासिना । ततश्चात्ममतिं प्राप्य तस्मान्नावर्त्तते पुनः ॥ ४ ॥ अर्थ यह—अव्याकृत है नाम जिसका ऐसा जो मायाविशिष्ट ब्रह्म है ताका नाम अव्यक्त है सो अव्यक्तही मूल कहिये कारणरूप है । ऐसे अव्यक्तरूप मूलतें है प्रभव क्या उत्पत्ति जिसकी ताका नाम अव्यक्तमूलप्रभव है । ऐसा यह संसाररूप वृक्ष है । तथा तिस अव्यक्तरूप मूलके अनुग्रहतैंही यह संसारवृक्ष उत्थित हुआहै अर्थात् तिस अव्यक्तरूप मूलके दृढपणेकरिकै ही यह संसाररूप वृक्ष महान् वृद्धिकूं प्राप्त हुआ है । और जैसे लोकप्रसिद्ध वृक्षकी शाखा स्कंधतें उत्पन्न होवैं हैं तैसे बुद्धितें ही इस संसारके नानाप्रकारके परिणाम उत्पन्न होवैं हैं। इस प्रकारके समानधर्मपणेकरिकै यह बुद्धिही स्कंधरूप है । ऐसे बुद्धिरूप स्कंधवाला होणेतें यह संसारवृक्ष बुद्धिस्कंधमय कह्या जावै है । और जैसे प्रसिद्ध वृक्षके भीतर छिद्ररूप कोटर होवैं हैं तैसे इस संसारवृक्षविषे श्रोत्रादिक इंद्रियोंके छिद्र ही कोटररूप है इति ॥ १ ॥ और जैसे यह प्रसिद्धवृक्ष अनेकशाखावोंवाला होवै है तैसे यह संसाररूप वृक्षभी आकाशादिक पंचमहाभूतरूप विविधप्रकारकी शाखावोंवाला है । अथवा विशाखा यह शब्द स्तंभका वाचक है यातें महा-

भूत हैं विशाखा क्या स्वंभ जिसके ताका नाम महाभूतविशाखा है । और जैसे लोकप्रसिद्ध वृक्ष पत्रोंवाला होवै है तैसे यह संसाररूप वृक्षभी शब्द-स्पर्शादिक विषयरूप पत्रोंवाला है । और जैसे लोकप्रसिद्ध वृक्षविषे पुष्प होवैं हैं तथा तिन पुष्पोंतैं फल उत्पन्न होवैं हैं वैसे यह संसार वृक्षभी धर्म अधर्मरूप पुष्पोंवाला है । तथा तिन धर्म अधर्मरूप पुष्पोंतैं उत्पन्न हुए सुखदुःखरूप फलोंवाला है इति ॥ २ ॥ और जैसे लोकप्रसिद्ध वृक्ष पक्षी आदिकोंका उपजीव्य होवै है, तैसे यह संसाररूप वृक्षभी सर्वभूतप्राणियोंका उपजीव्य है जिसतैं उपजीवन होवै ताका नाम उपजीव्य है । और इस संसारवृक्षकूं परमात्मादेव ब्रह्मनैं आश्रित कऱ्या है, यातैं इस संसारवृक्षकूं ब्रह्मवृक्ष कहैं हैं और यह संसारवृक्ष आत्मज्ञानतैं विना दूसरे किसीभी उपा-यकरिकै छेदन कऱ्या जाता नहीं । यातैं यह संसारवृक्ष सनातन कह्या जावै है । और यह संसारवृक्ष जीवात्मारूप ब्रह्मका भोग्य है, यातैं इस संसारवृक्षकूं ब्रह्मवन कहैं हैं । ऐसे संसाररूप वृक्षविषे शुद्धब्रह्म-तौ साक्षीकी न्याईं विराजमान है अर्थात् इस संसारके गुणदोषोंक-रिकै सो ब्रह्म लिपायमान होवै नहीं इति ॥ ३ ॥ ऐसा संसारवृक्षकूं अहंब्रह्मास्मि इस प्रकारके दृढ आत्मज्ञानरूप खड्ग करिकै छेदन करिकै तथा भेदन करिकै अर्थात् मूलसहित नाश करिकै यह अधिकारी पुरुष आत्मारूप गतिकूं प्राप्त होइकै तिस आत्मारूप मोक्षतैं पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होवता नहीं इति ॥ ४ ॥ इत्यादिक अनेक स्मृतियां इस संसारकूं वृक्षरूप करिकै वर्णन करैंहैं । यद्यपि लोकविषे ऐसा कोई वृक्ष प्रसिद्ध है नहीं जिसका मूल तौ ऊपरि होवै और शाखा नीचे होवैंहैं । तथा श्रीगंगाजीके तरंगोंकरिकै हन्यमान हुआ जो गंगाका उँचा तीर है तिस तीरतैं वायुनैं नीचै पतन कऱ्या जो महान् अश्वत्थका वृक्ष है तिस वृक्षका मूल तौ ऊपरि होवैहै और शाखा नीचे होवैंहैं । तिसी अश्वत्थ वृक्षकूं उपमानकरिकै श्रीभगवान्नैं इस संसाररूप वृक्षकूं ऊर्ध्वमूलवाला तथा अधःशाखावाला कह्या है । यातैं इस भगवान्के वचनविषे किंचित्मात्रभी

विरोधकी प्राप्ति होवे नहीं इति । पुनः कैसा है यह मायामय संसाररूप अश्वत्थवृक्ष—वेदरूप छंद जिसके पर्ण हैं अर्थात् तत्त्ववस्तुका आवरक होणेतें अथवा संसाररूप वृक्षका रक्षक होणेतें यह कर्मकांडरूप ऋग्, यजुष्, साम, अथर्वण यह च्यारिवेद प्रसिद्धपर्णोंकी न्याई जिस संसाररूप वृक्षके पर्णरूप हैं । तात्पर्य यह—जैसे प्रसिद्ध पर्ण वृक्षके परिरक्षणवास्तैंही होवैहैं तैसे यह कर्मकांडरूप वेदभी इस संसाररूप वृक्षके परिरक्षणवास्तैही हैं । काहेतै ते कर्मकांडरूप वेद धर्म अधर्म तथा तिन्होंका कारण तथा तिन्होंका फल इन च्यारोंकूं ही प्रकाश करेंहैं । ता करिकै ते कर्मकांडरूप वेद इस संसाररूप वृक्षका परिरक्षण करें है यातैं तिन कर्मकांडरूप वेदोंविषे संसाररूप वृक्षकी पर्णरूपता युक्तही है इति । हे अर्जुन ! जो अधिकारी पुरुष इस प्रकारके मूलसहित मायामय अश्वत्थरूप संसारवृक्षकूं जानवाहै सोईही अधिकारी पुरुष वेदवित् है अर्थात् कर्मकांडरूप वेदका जो कर्मरूप अर्थ है तथा ज्ञानकांडरूप वेदका जो ब्रह्मरूप अर्थ है तिस कर्मरूप अर्थकूं तथा ब्रह्मरूप अर्थकूं सोईही अधिकारी पुरुष जानता है इति । तहां इस संसारवृक्षका मूल तौ ब्रह्म है और हिरण्यगर्भादिक जीव इस संसारवृक्षकी शाखारूप हैं । ऐसा यह संसारवृक्ष आपणे स्वरूपकरिकै तौ विनाशवान् ही है और प्रवाहरूप करिकै तौ यह संसारवृक्ष अनंत है । ऐसा यह संसारवृक्ष वेदउक्त कर्मरूप जलकरिकै तौ सिंचन कऱ्या जावै है और ब्रह्मज्ञानरूप खड्गकरिकै छेदन कऱ्याजावैहै । इतना ही सर्व वेदोंका अर्थ है । इस प्रकारके वेदके अर्थकूं जो अधिकारी पुरुष जानता है सो अधिकारी पुरुष ही सर्व अर्थोंकूं जानता है । इस कारणतें तिस मूलसहित संसारवृक्षके ज्ञानकी श्रीभगवान् स्तुति करेंहैं (यस्तं वेद स वेदवित् इति) ॥ १ ॥

अब श्रीभगवान् तिस पूर्वउक्त संसारवृक्षके अवयवोंकी दूसरीभी कल्पना कथन करें हैं—

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ॥ अधश्च मूलान्यनुसंततानि कर्मानुबंधीनि मनुष्यलोके ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) अधः । च । ऊर्ध्वम् । प्रसृताः । तस्य । शाखाः । गुणप्रवृद्धाः । विषयप्रवालाः । अधः । च । मूलानि । अनुसंततानि । कर्मानुबंधीनि । मनुष्यलोके ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिस संसारवृक्षकी शाखा नीचैं तथा ऊपरि पसरिहुईहैं जे शाखा सत्त्वादिगुणोंकरिकै बंधीहुई हैं तथा शब्दादिकविषयरूप पल्लवोंवाली हैं तथा तिस संसारवृक्षके वासनारूप मूल नीचैं तथा ऊपरि अनुस्यूत हैं जे मूल अधिकारी मनुष्यदेहविषे पुण्यपापरूप कर्मके जनक हैं ॥ २ ॥

भा० टी०–तहां पूर्वश्लोकविषे कार्यरूप उपाधिवाले हिरण्यगर्भादिक जीव इस संसारवृक्षकी शाखारूपकरिकै कथन करेथे । अब तिन शाखावोंविषेभी जो विशेषता स्थित है तिस विशेषताकूं श्रीभगवान् कथन करैहैं (अधश्चोर्ध्वमृइति) हे अर्जुन ! तिन शाखारूप जीवोंविषेभी जे निषिद्ध आचरणवाले दुष्कृती जीव हैं ते दुष्कृतीजीव तौ इस संसारवृक्षकी नीचे पसरीहुई शाखा हैं अर्थात् ते पापी जीव पश्वादिक नीचयोनियोंविषे विस्तारकूं प्राप्तहुई शाखा हैं । और शास्त्रविहित आचरणवाले जे सुकृती जीव हैं ते धर्मात्मा जीव तौ इस संसारवृक्षकी ऊपरि पसरी हुई शाखा हैं अर्थात् जे धर्मात्मा पुरुष देवयोनियोंविषे विस्तारकूं प्राप्त हुई शाखा हैं।इसप्रकार मनुष्यलोकतें आदिलैके पशु, पक्षी, वृक्ष नारकीय शरीरपर्यंत नीचै स्थानोंविषे तथा तिसी मनुष्यलोकतें लैके ब्रह्मलोकपर्यंत ऊपरिले स्थानोंविषे तिस संसाररूप वृक्षकी जीवरूप शाखा विस्तारकूं प्राप्तहुई हैं । कैसी हैं ते शाखा–गुणोंकरिकै प्रवृद्ध हुई हैं अर्थात् जैसे प्रसिद्ध वृक्षकी शाखा जलके सिंचनकरिकै स्थूलभावकूं

प्राप्त होवैं हैं । तैसे देह इंद्रिय विषय इत्यादिक आकारोंकरिकै परिणामकूं प्राप्त हुए जे सत्त्व, रज, तम यह तीन गुण हैं तिन तीन गुणरूप जलकरिकै ते जीवरूप शाखा स्थूलभावकूं प्राप्तहुई हैं । पुनः कैसी हैं ते शाखा–विषयरूप पल्लवोंवाली हैं अर्थात् जैसे लोकप्रसिद्ध वृक्षकी शाखावोंके अग्रभागके साथि कोमलअंकुररूप पल्लवोंका संबंध होवैहै तैसे पूर्वउक्त जीवरूप शाखावोंके अग्रभागस्थानीय जे इंद्रियजन्य वृत्तियां हैं तिन वृत्तियोंके साथि तिन शब्दादिक विषयोंका संबंध है । या कारणतें ते शब्दादिक विषय तिन शाखावोंके कोमलपल्लवरूप हैं । पुनः कैसा है यह संसाररूप वृक्ष–जिस संसारवृक्षके अवांतर मूल नीचे तथा ऊपरि अनुस्यूत होइकै रहैं हैं तहां तिसतिस पदार्थके भोगकरिकै जन्य जे रागद्वेषादिक वासना हैं जे वासना इस पुरुषकी धर्म अधर्मविषे प्रवृत्ति करावैं हैं ते रागद्वेषादिक वासना ही इस संसारवृक्षके अवांतरमूल हैं । और पूर्व श्लोकविषे इस संसारवृक्षका जो मायाविशिष्ट ब्रह्मरूप मूल कथन कऱ्याथा सो मुख्यमूल कथन कऱ्याथा । और अबी वासनारूप अवांतरमूल कथन करैंहैं । यातैं इहां पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै नहीं इति । कैसे हैं ते वासनारूप अवांतरमूल–कर्मानुबंधी हैं । तहां धर्मअधर्मरूप कर्म हैं पश्चात् भावी जिन्होंके तिन्होंका नाम कर्मानुबंधी है अर्थात् ते रागद्वेषादिक वासनारूप अवांतरमूल प्रथम आप उत्पन्न होइकै पश्चात् ता धर्मअधर्मरूप कर्मकूं उत्पन्न करैंहैं । तहां ते वासनारूप मूल किसस्थानविषे तिस धर्म अधर्मरूप कर्मकूं उत्पन्न करैंहैं ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् ता स्थानका कथन करैंहैं (मनुष्यलोके इति) वहां मनुष्य होवै सोईही लोक होवै ताका नाम मनुष्यलोक है अर्थात् अधिकारी ब्राह्मणादिक देहोंका नाम मनुष्यलोक है । ऐसे अधिकारी ब्राह्मणादिक शरीरोंविषे ही ते वासनारूप मूल बाहुल्यताकरिकै तिस धर्मअधर्मरूप कर्मकूं उत्पन्न करैंहैं। जिस कारणतें शास्त्रविषे मनष्यकूं ही कर्मका अधिकार कथन कऱ्या है ॥ २ ॥

अब श्रीभगवान् इस पूर्वउक्त संसारविषे अनिर्वचनीयता कथन करिकै ताके छेदनके उपायकूं कथन करें हैं–

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नांतो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा ॥ अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसंगशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) न । रूपम् । अस्य । इह । तथा । उपलभ्यते । न । अंतः । न । च । आदिः । न । च । संप्रतिष्ठा । अश्वत्थम् । एनम् । सुविरूढमूलम् । असंगशस्त्रेण । दृढेन । छित्त्वा ॥ ३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इस संसारविषे स्थित प्राणियोंनैं इस संसारवृक्षका तिसे प्रकारका रूप नहीं जानीता है तथा अन्तभी नहीं जानीता है तथा आदिभी नहीं जानीता है तथा मध्यभी नहीं जानीता है ऐसे दृढमूलवाले इस अश्वत्थरूप संसारवृक्षकूं अत्यंतदृढ वैराग्यरूप शस्त्रकरिकै छेदनकरिकै ब्रह्म जानणेयोग्य है ॥ ३ ॥

भा॰टी॰–हे अर्जुन ! पूर्व वर्णन कऱ्या जो यह संसाररूप वृक्ष है सो कैसा है–इस संसारविषे स्थित प्राणियोंनैं इस संसार वृक्षका जिस प्रकारका ऊर्ध्वमूल अधःशाख इत्यादिकरूप पूर्व वर्णन कऱ्या है तिस प्रकारका रूप नहीं जानीता है। काहेतें जैसे स्वप्नके पदार्थ तथा मृगतृष्णाका जल तथा मायारचित पदार्थ तथा गंधर्वनगर यह सर्व मिथ्या होणेतें दृष्टनष्ट स्वरूपवाले ही हैं। तैसे यह संसारवृक्षभी मिथ्या होणेतें दृष्टनष्टस्वरूपवालाही है। तहां जो पदार्थ देखतेदेखते नष्ट होइजावै है ताका नाम दृष्टनष्ट है। ऐसे दृष्टनष्टस्वभाववाले इस संसारवृक्षका सो पूर्वउक्त ऊर्ध्वमूल अधःशाख इत्यादिकरूप इन जीवोंकूं देखणेविषे आवता नहीं। इसी कारणतें ही इस संसारवृक्षका अवसानरूप अंतभी नहीं प्रतीत होवैहै अर्थात् इतने कालके व्यतीतहुएतैं पश्चात् यह संसारवृक्ष समाप्तिकूं प्राप्त होवैगा। इस प्रकारतें इस संसारवृक्षका अंतभी जान्या जाता नहीं जिस-

कारणतैं यह संसारवृक्ष परिअवसानरूप अंततैं रहित है । तथा इस संसारवृक्षका आदिभी नहीं प्रतीत होवैहै अर्थात् इस कालतैं लैके यह संसारवृक्ष प्रवृत्त हुआ है या प्रकारतैं इस संसारवृक्षका आदिभी जान्याजाता नहीं । जिसकारणतैं यह संसारवृक्ष अनादि है । तथा इस संसारवृक्षकी स्थितिरूप प्रतिष्ठाभी प्रतीत होती नहीं अर्थात् मध्यभी प्रतीत होता नहीं । काहेतैं आदि अंत दोनोंकी अपेक्षाकरिकै ही मध्य कह्या जावै है ता आदि अंतके असिद्ध हुए सो मध्यभी सिद्ध होवै नहीं । इस प्रकारका यह संसार जिस कारणतैं दुश्छेद्य है तथा सर्व अनर्थोंके करणेहारा है तिस कारणतैं अनादि अज्ञानकरिकै अत्यंत दृढ बांध्या है मूल जिसका ऐसे इस पूर्वउक्त अश्वत्थरूप संसारवृक्षकूं दृढ असंगशस्त्रकरिकै यह अधिकारी पुरुष छेदन करै । इहां विषयसुखकी स्पृहाका नाम संग है ता संगका विरोधी जो वैराग्य है ताका नाम असंग है अर्थात् पुत्रएषणा, वित्तएषणा, लोकएषणा इन तीन एषणावोंका त्यागरूप जो वैराग्य है ताका नाम असंग है । और जैसे लोकप्रसिद्ध कुठारादिक शस्त्र लोकप्रसिद्ध वृक्षके विरोधी होवै है तैसे यह वैराग्यभी इस रागद्वेषादिरूप संसारवृक्षका विरोधी है । यातैं यह वैराग्यभी शस्त्ररूप है। कैसा है यह वैराग्यरूप असंगशस्त्र-दृढ है अर्थात् मैं ब्रह्मरूप हूं इसप्रकारके ब्रह्मज्ञानकी उत्कट इच्छाकरिकै दृढ कन्या है । और जैसे लोकप्रसिद्ध शस्त्र पाषाणविशेषके घर्षणतैं तीक्ष्ण होवै है तैसे जो वैराग्यरूप असंगशस्त्र पुनः पुनः विवेकअभ्यासकरिकै तीक्ष्ण हुआ है, ऐसे दृढ असंगशस्त्रकरिकै यह अधिकारी पुरुष तिन पूर्वउक्त संसार वृक्ष मूलसहित उच्छेदन करै अर्थात् वैराग्य, शम, दम इत्यादिक साधन संपत्ति करिकै सर्व कर्मोंके संन्यासकूं करै । यह ही तिस संसारवृक्षका छेदनहै ॥ ३ ॥

हे भगवन् ! ऐसे संसाररूप अश्वत्थ वृक्षकूं असंगशस्त्रसैं छेदन करिकै इसअधिकारी पुरुषकूं तिसतैं अनंतरभी कुछ कर्त्तव्य है अथवा इतनैमात्रकरिकैही कृतकृत्यता है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् तिसतैं अनन्तर कर्त्तव्यताकूं कथन करै हैं-

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तंति भूयः ॥ तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) ततः । पदम् । तत् । परिमार्गितव्यम् । यस्मिन् । गताः । न । निवर्त्तंति । भूयः । तम् । एव । च । आद्यम् । पुरुषम् । प्रपद्ये । यतः । प्रवृत्तिः । प्रसृता । पुराणी ॥ ४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिसतैं अनंतर सो ब्रह्मरूप पदही जानणेयोग्यहै जिसपदविषे स्थितहुए विद्वान्पुरुष पुनः नहीं जन्मकूं प्राप्तहोवैंहैं तथा जिस पुरुषतैं इस संसारवृक्षकी प्रवृत्ति अनादि पसरीहुईहै तिस आद्य पुरुषकेही मैं शरणकूं प्राप्त हुआहूं ॥ ४ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! यह अधिकारी पुरुष तिस वैराग्यरूप असंगशस्त्रकरिकै पूर्वउक्त संसाररूप वृक्षकूं मूलसहित उच्छेदनकरिकै तिसतैं अनंतर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठगुरुके समीप जाइकै तिस संसाररूप अश्वत्थवृक्षतैं ऊर्ध्वस्थित जो शुद्धब्रह्मरूप वैष्णवपद है जो पद (तद्विष्णोः परमं पदम्) इत्यादिक श्रुतियोंनैं प्रतिपादन कऱ्या है सो शुद्धब्रह्मरूप पद ही इस अधिकारी पुरुषनैं श्रवणमननरूप वेदांतवाक्योंके विचार करिकै जानणेकूं योग्य है । तहां श्रुति–(सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः ।) अर्थ यह–सो परब्रह्मही इस अधिकारी पुरुषकूं अन्वेषण करणेकूं योग्य है तथा सो ब्रह्मही इस अधिकारी पुरुषकूं जानणेकी इच्छाकरणे योग्य है इति । वहां मार्गकरिकै जो वस्तुका खोजणा है ताका नाम अन्वेपण है । शंका–हे भगवन् ! सर्व कर्मोंके संन्यास पूर्वक श्रवणादिक साधनोंकरिकै इस अधिकारी पुरुषनैं जो पद जानणे योग्य है सो पद कौन है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहै हैं (यस्मिन्गता न निवर्वति भूयः इति) हे अर्जुन ! जिस पदविषे अहं ब्रह्मास्मि या प्रकारके ज्ञानकरिकै प्राप्तहुए तत्त्ववेत्ता पुरुष पुनः संसारकी प्राप्ति वासतै नहीं आवै हैं अर्थात् पुनः

जन्मकूं नहीं प्राप्त होवै है सो अद्वितीय ब्रह्मरूप पदही इस अधिकारी पुरुषनैं श्रवणादिक साधनों करिकै जानणे योग्य है । शंका-हे भगवन् ! सो निर्गुण ब्रह्मरूप पद किस उपायकरिकै जान्या जावै है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् ता पदके जानणेका उपाय कथन करैं हैं (तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये इति ।) हे अर्जुन ! पूर्व जो अद्वितीय निर्गुण ब्रह्मपद शब्दकरिकै कथन कर्या है तिसीही परब्रह्मरूप आद्यपुरुषके मैं अधिकारी जन शरणकूं प्राप्त हुआ हूं इस प्रकारतें जो तिस एक परब्रह्मकी शरणता है ता शरणता करिकै ही सो परब्रह्मरूप पद जान्या जावै है। तहां सर्व जगत्के आदिविषे जो विद्यमान होवै ताका नाम आद्य है और यह सर्व जगत् जिसनैं आपणे अस्ति भाति प्रियरूपकरिकै पूर्ण कर्या है ताका नाम पुरुष है। अथवा इन शरीररूप सर्वपुरियोंविषे जो अधिष्ठानरूपकरिकै शयन करै है ताका नाम पुरुष है । ऐसे आद्यपुरुषरूप परब्रह्मका जो निरंतर चिंतनरूप अनन्यभक्ति है सा अनन्यभक्ति ही तिस परब्रह्मरूप पदके साक्षात्कारका उपाय है इति। शंका-हे भगवन् ! सो कौन पुरुष है जिसके शरणकूं प्राप्त हुआ यह अधिकारी पुरुष तिस वैष्णवपदकूं जानता है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहै हैं (यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी इति ।) हे अर्जुन ! जिस आद्यपुरुषतें मायाके योगकरिकै इस मायामय संसारवृक्षकी यह अनादि प्रवृत्ति चली हुई है जैसे ऐंद्रजालिक पुरुषतें मायामय हस्ति आदिकोंकी प्रवृत्ति होवै है। तैसे जिस आद्यपुरुषतें इस मायामय संसारवृक्षकी प्रवृत्ति हुई है । ऐसे आद्यपुरुषके शरणकी प्राप्तिही तिस पदके जानणेका उपाय है ॥ ४ ॥

अब तिस वैष्णवपदके ज्ञानपूर्वक तिस वैष्णवपदकूं प्राप्त होणेहारे अधिकारी पुरुषोंके तिस पदकी प्राप्तिवासतै दूसरे साधनोंकूं भी श्रीभगवान् कथन करैं हैं-

निर्मानमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः॥द्वंद्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छंत्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥ ५ ॥

(पदच्छेदः) निर्मानमोहाः । जितसंगदोषाः । अध्यात्मनित्याः । विनिर्वृत्तकामाः । द्वंद्वैः । विमुक्ताः । सुखदुःखसंज्ञैः । गच्छंति । अमूढाः । पदम् । अव्ययम् । तत् ॥ ५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मानमोह दोनों निवृत्तहुए है जिन्होंवैं तथा जीत्या है संगदोष जिन्होंनैं तथा परमात्मस्वरूपके विचारविषे तत्पर तथा निर्वृत्तहुए हैं काम जिन्होंके तथा सुखदुःखनामवाले शीतउष्णादिकद्वंद्वोंनैं परित्यागकरेहुए ऐसे विद्वान् पुरुष तिसे अव्यय पदकूं प्राप्त होवैं हैं ॥ ५ ॥

भा० टी०– हे अर्जुन ! गर्व है नाम जिसका ऐसा जो अहंकार है ता अहंकारका नाम मान है । और अविवेकका नाम मोह है । अथवा विपर्ययका नाम मोह है । तिस मान मोह दोनोंतैं जे पुरुष निकसे हुए हैं तिन पुरुषोंका नाम निर्मानमोह है । अथवा ते मान मोह दोनों निवृत्त हुए हैं जिन्होंवैं तिनोंका नाम निर्मानमोह है । अर्थात् अहंकार अविवेक दोनोंतैं रहित पुरुषोंका नाम निर्मानमोह है । तथा जे पुरुष जितसंगदोष हैं अर्थात् प्रिय अप्रिय पदार्थोंकी समीपताके प्राप्त हुएभी जे पुरुष रागद्वेषतैं रहित हैं अथवा जीत्याहुआहै संग तथा दोष जिनोंनैं तिनोंका नाम जितसंगदोष है । इहां संगशब्दकरिकै तौ मैं कर्त्ता हूं याप्रकारके कर्तृत्व अभिमानका ग्रहण करणा । और दोषशब्दकरिकै रागद्वेषादिक दोषोंका ग्रहण करणा । तथा जे पुरुष अध्यात्मनित्य हैं । अर्थात् जे पुरुष परमात्मादेवके वास्तवस्वरूपके विचारविषे निरंतर तत्पर हैं । तथा जे पुरुष विनिवृत्तकाम हैं तहां विशेषकरिकै निवृत्त हुए हैं विषयभोगरूप काम जिन्होंके तिनोंका नाम विनिवृत्तकाम है अर्थात् जिन पुरुषोंनैं विवेक-

वैराग्यद्वारा सर्व कर्म त्याग करेहैं तिनोंका नाम विनिवृत्तकाम है । और सुखदुःखका हेतु होणेतैं सुखदुःखनामवाले ऐसे जे शीतउष्ण क्षुधा-पिपासा इत्यादिक द्वंद्वहैं ऐसे द्वंद्वोंनैं जे पुरुष परित्याग करैंहैं । और किसी मूलपुस्तकविषे तौ (सुखदुःखसंगैः) इस प्रकारका जो पाठ होवै है ताका यह अर्थ करणा—सुख दुःख दोनोंके साथि है संग क्या संबंध जिनोंका ऐसे जे शीतउष्णादिक द्वंद्व हैं तिन द्वंद्वोंनैं जे पुरुष परित्याग करे हैं, इस-प्रकारके अमूढपुरुष अर्थात् वेदांतप्रमाणतैं उत्पन्न हुए सम्यक् आत्म-ज्ञानकारिकै निवृत्त कऱ्या है आत्माका अज्ञान जिन्होंनैं ऐसे तत्त्ववेत्ता पुरुष ही तिस पूर्वउक्त अविनाशी परब्रह्मपदकूं प्राप्त होवैं है ॥ ५ ॥

वहां इन पूर्व उक्त साधनोंकरिकै प्राप्त होणेयोग्य जो अद्वितीय निर्गुण ब्रह्मरूप वैष्णवपद है तिसीही गंतव्यपदकूं अब श्रीभगवान् विशेषणोंक-रिकै कथन करैंहैं—

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ॥
यद्गत्वा न निवर्त्तंते तद्धाम परमं मम ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) न । तत् । भासयते । सूर्यः । न । शशांकः । न । पावकः । यत् । गत्वा । न । निवर्त्तंते । तत् । धाम । परमम् । मम ॥ ६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस पदकूं प्राप्त होयकै तत्त्ववेत्ता पुरुष नहीं आवृत्तिकूं प्राप्त होवैं हैं तिस पदकूं सूर्यभी नहीं प्रकाश करिसकैहै तथा चंद्रमाभी नहीं प्रकाश करिसकैहै तथा अग्निभी नहीं प्रकाश करिसकैहै जिसकारणतैं मैं विष्णुका स्वरूपभूत सो पद सर्वतैं उत्कृष्ट स्वयंप्रकाशस्वरूप है ॥ ६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पूर्वउक्त साधनोंकरिकै जिस निर्गुण अद्वितीय ब्रह्मरूप वैष्णवपदकूं प्राप्त होइकै तत्त्ववेत्ता पुरुष पुनः आवृत्तिकूं नहीं प्राप्त होवैहै अर्थात् पुनः जन्मकूं नहीं प्राप्त होवैहै तिस

परब्रह्म पदकूं सर्वजगत्के प्रकाश करणेकी शक्तिवाला सूर्यभी प्रकाश करिसकता नहीं। शंका—हे भगवन्! सूर्यके अस्त हुएभी चंद्रमाकृत प्रकाश देखणेविषे आवैहै। यातैं सो चंद्रमा ही तिस पदकूं प्रकाश करैगा? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं (न शशांक इति) हे अर्जुन!सो चंद्रमाभी तिस पदकूं प्रकाश करिसकता नहीं। शंका—हे भगवन्! सूर्य चंद्रमा दोनोंके अस्त हुएभी अग्निकृत प्रकाश देखणेमें आवै है। यातैं सो अग्निही तिस पदकूं प्रकाश करैगा? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (न पावकः इति) हे अर्जुन! सो अग्निभी तिस पदकूं प्रकाश करिसकता नहीं। शंका—हे भगवन् सूर्य, चंद्रमा, अग्नि यह तीनों तिस पदकूं प्रकाश नहीं करिसकते इस प्रकारकी प्रतिज्ञामात्रतैं तिस अर्थकी सिद्धि होइसकती नहीं। जो कदाचित् प्रतिज्ञामात्रतैं ही अर्थकी सिद्धि होती होवै तौ वंध्यापुत्रोऽस्ति इस प्रतिज्ञामात्रकरिकै वंध्या-पुत्रकीभी सिद्धि होणी चाहिये और होती नहीं। यातैं तिस प्रतिज्ञा करे-हुए अर्थकी सिद्धिविषे कोई हेतु कह्या चाहिये सो हेतु कौन है? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ताकेविषे तिस परब्रह्मकी स्वयंप्रका-शतारूप हेतकूं कथन करैं हैं (तद्धाम परमं मम इति) हे अर्जुन! जिस कारणतैं मैं व्यापक विष्णुका स्वरूपभूत सो पद धामरूप है अर्थात् स्वप्रकाशरूप है। तथा सूर्य, चंद्रमा, अग्नि इत्यादिक सर्व जड ज्योति-योंकूं प्रकाश करणेहारा है। तथा परम है अर्थात् सर्वतैं उत्कृष्ट है। तिस कारणतैं ते सूर्यचंद्रमादिक तिस पदकूं प्रकाश करिसकते नहीं। लोकविषेभी जो वस्तु तिस ज्योतिकरिकै भास्यमान होवै है सो भास्य-वस्तु तिस स्वभासक ज्योतिकूं प्रकाश करिसकता नहीं।जैसे सूर्यरूप ज्योतिक-रिकै भास्यमान घटादिक पदार्थ स्वभासकसूर्यरूप ज्योतिकूं प्रकाश करि-सकते नहीं तैसे यह सूर्यचंद्रमादिक जड ज्योतिभी स्वभासक चैतन्य परब्रह्मरूप ज्योतिकूं प्रकाश करिसकते नहीं। इतने कहणे करिकै श्रीभ-गवान्नैं यह अनुमान सूचन करया। सूर्य चंद्रमादिक परब्रह्मके प्रका-

शक नहीं हैं तिस परब्रह्मकरिकै भास्यमान होणेतैं जो वस्तु जिस ज्योति-करिकै भास्यमान होवै है सो भास्यवस्तु तिस स्वभासक ज्योतिकूं प्रकाश करता नहीं है। जैसे घटादिक पदार्थ सूर्यकूं प्रकाश करते नहीं इति। यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है। तहां श्रुति–(न तत्र सूर्यो भाति न चंद्रतारकं नेमा विद्युतो भांति कुतोयमग्निः। तमेव भांतमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥) अर्थ यह–तिस परब्रह्मरूप पदकूं सूर्यभी नहीं प्रकाश करिसकता, तथा चंद्रमा तारागणभी नहीं प्रकाश करिसकते, तथा यह विद्युत्भी नहीं प्रकाश करिसकती तौ यह अल्पप्रकाशवाला अग्नि तिस परब्रह्मकूं कैसे प्रकाश करिसकैगा किंतु नहीं प्रकाश करिसकैगा। और तिस परब्रह्मके प्रकाशमान हुएतैं पश्चात्ही यह सर्व जगत् प्रकाशमान होवै है। तथा तिस परब्रह्मकी प्रकाशरूप दीप्तिकरिकै यह सर्व जगत् प्रतीत होवै है इति। तहां तिस परब्रह्मरूप पदकूं स्वप्रकाशरूपता कहणे-करिकै श्रीभगवान्नें इस शंकाके निवृत्ति करी। सो परब्रह्मरूप वैष्णवपद वेद्य है अथवा नहीं अर्थात् किसीके ज्ञानका विषय है अथवा नहीं जो कहो सो पद वेद्य है तौ जो वस्तु वेद्य होवै है सो वस्तु आपणेतैं भिन्न वेदितृ पुरुषकी अपेक्षा अवश्य करै है। जैसे घटादिक वेद्यवस्तु आपणेतैं भिन्न वेदितृ पुरुषकी अपेक्षा अवश्य करै है तैसे सो वेद्यपदभी आपणे भिन्न किसी वेदितृ पुरुषकी अपेक्षा अवश्य करैगा। यातैं तुम्हारे मत-विषे द्वैतभावकी प्राप्ति होवैगी। और सो पद अवेद्य है यह दूसरा पक्ष जो अंगीकार करौ तौ तिस पदविषे अपुरुषार्थरूपता प्राप्त होवैगी। जिसकारणतैं अवेद्यपदविषे पुरुषार्थरूपता संभवती नहीं इति। इस शंकाकी निवृत्ति करी। काहेतैं सो पद ब्रह्मरूप पद अवेद्य हुआभी आप परोक्षरूप ही है। तहां श्रुति–(यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म) अर्थ यह–जो ब्रह्म साक्षात् अपरोक्षरूप है इति। यातैं द्वैतभावकी प्राप्ति तथा पुरुषार्थरूपताकी हानि होवै नहीं। तहां तिस परब्रह्मरूप पदविषे अवेद्यरूपता तौ श्रीभगवान्नें (न तद्भासयते सूर्यो) इस श्लोकविषे सूर्यादिकोंकरिकै अभास्यमानस्वरूप

हेतुकरिकै कथन करी है । और सर्वकी प्रकाशकताकरिकै स्वयं अपरोक्षपणा तौ (यदादित्यगतं तेजः ।) इस वक्ष्यमाण श्लोकविषे श्रीभगवान् कथन करैगा । इस प्रकार दोनों श्लोकोंकरिकै श्रीभगवान्नै (न तत्र सूर्यो भाति) इस पूर्वउक्त श्रुतिके दोनों विभागोंका अर्थ कथन करचा इति । और किसी टीकाविषे तौ (न तद्भासयते सूर्यो) इस श्लोकका यह अर्थ कथन कऱ्या है । तिस परब्रह्मपदकूं सूर्यभी नहीं प्रकाश करै है। काहेतैं सो पद रूपादिक गुणोंतैं रहित होणेतैं चक्षु इंद्रियका विषय है नहीं । जो रूपवान् वस्तु चक्षुइंद्रियका होवै है सो रूपवान् वस्तुही तिस चक्षुऊपरि अनुग्रह करणेहारे सूर्यनैं प्रकाश करीताहै । जैसे रूपवान् घटादिक पदार्थ चक्षुइंद्रियका विषय होणेतै सूर्यनैं प्रकाश करीते हैं । और यह परब्रह्मरूप पद तौ रूपवान् हुआ चक्षुइंद्रियका विषय है नहीं । यातैं इस पदकूं सो सूर्य प्रकाश करिसकता नहीं । वहां (न तत्र चक्षुर्गच्छति न चक्षुषा गृह्यते।)इत्यादिक श्रुतियां तिस परब्रह्मविषे चक्षुइंद्रियकी अविषयताकूं कथन करै हैं । इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नै तिस पदविषे सर्व बाह्यइंद्रियोंकी निवृत्ति कथन करी । अब तिस पदविषे मनकी व्यावृत्ति कथन करै हैं (न शशांकः इति ।) हे अर्जुन । तिस पदकूं चंद्रमाभी नहीं प्रकाश करिसकै है । काहेतै जो वस्तु मनकरिकै ग्रहण करी जावै है तिस वस्तुकूही सो मनऊपरि अनुग्रह करणेहारा चंद्रमा प्रकाश करै है । और यह परब्रह्मरूप पद तौ तिस मनकरिकै ग्रहण होता नहीं । यातै इस परब्रह्मकूं सो चंद्रमाभी प्रकाश करिसकता नहीं । वहां (यन्मनसा न मनुते) इत्यादिक श्रुतियां तिस ब्रह्मरूप पदविषे मनकी विषयताका निषेध करै हैं । और तिस परब्रह्मरूप पदकूं अग्निभी प्रकाश करिसकता नहीं । काहेतैं जो वस्तु वाक्इंद्रियका विषय होवैहै तिस वस्तुकूंही सो वाक्इंद्रियऊपरि अनुग्रह करणेहारा अग्नि प्रकाश करै है ता वाक्इंद्रियके अविषयक वस्तुकूं सो अग्नि प्रकाश करिसकता नहीं । और (यद्वाचानभ्युदितम् । न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा ।) इत्यादिक

श्रुतियोंनै तिस परब्रह्मविषे वाक्इंद्रियकी विषयताका निषेध कर्या है। यातैं तिस परब्रह्मकूं सो अग्नि प्रकाश करिसकता नहीं । हे अर्जुन ! जिसकारणतैं सो परब्रह्मरूप पद चक्षु, मन, वाक् इन तीनोंका अविषय है तिस कारणतैं सो परब्रह्मरूप पद स्थूलसूक्ष्मकारणरूप सर्वप्रपंचतैं रहित प्रत्यक् अद्वितीयरूप है। इस प्रकार (नांतःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञमस्थूलम-नण्वह्रस्वमदीर्घम् ।) इत्यादिक श्रुतियोंनैं सर्वधर्मोतैं रहितकरिकै जो प्रत्यक् अभिन्न अद्वितीय ब्रह्म प्रतिपादन कर्या है सो अद्वितीय ब्रह्म मैं परमेश्वरका परम धाम है अर्थात् परमभावतैं रहित जो अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञान है तिस वृत्तिरूप ज्ञानतैं अन्य चिन्मात्र ज्योतिरूप है । इहां राहोःशिरः इस वाक्यविषे राहुपदतैं उत्तरसंबंधका वाचक षष्ठीविभक्तिके विद्यमान हुएभी जैसे राहुका शिर है इस प्रकारका बोध होता नहीं किंतु राहुतैं अभिन्न शिर है इस प्रकारका अभेद बोधही होवैहै । तैसे (तद्धाम परमं मम) इस वचनविषे मम इस पदतैं उत्तरसंबंधका वाचक षष्ठीविभक्तिके विद्यमान हुए भी मेरा परम धाम है या प्रकारका बोध होवै नहीं किंतु मैं परमेश्वरतैं अभिन्न सो स्वप्रकाश ब्रह्मरूप धामहै या प्रकारका अभेद बोधही होवै है इति । हे अर्जुन । जिसकारणतै सो अद्वितीय स्वयंज्योति ब्रह्मरूप पद मैं परमेश्वरका स्वरूपही है इस कारणतैं ही जिस स्वयंज्योति ब्रह्मपदकूं अहं ब्रह्मास्मि इस ज्ञानपूर्वक प्राप्त होइकै विद्वान् पुरुष पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होवे नहीं। अर्थात् पुनः जन्मकूं प्राप्त होते नहीं काहेतै पुनः आवृत्तिका कारणरूप जो मूल अज्ञानहै सो मूलअज्ञान तिन पुरुषोंका मै पर-ब्रह्मके अभेदज्ञानतैं निवृत्त होइगया है। या कारणतैं ते तत्त्ववेत्ता पुरुष पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होवे नहीं इति । इसकारणतै इस श्लोकके व्याख्यान किये हुएही (यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विंदते अथ सोऽभयं गतो भवति।) इस श्रुतिके अर्थकी तिस श्लोकविषे अनुकूलता होवै हैं । इस श्रुतिका यह अर्थ है—जिस काल-विषे यह अधिकारी पुरुष इस अदृश्य, अनात्म, अनिरुक्त, अनिलयन

ब्रह्मविषे भयतैं रहित स्थितिकूं प्राप्त होवैहै, तिस कालविषे यह अधिकारी पुरुष पुनरावृत्तिके भयतैं रहित ब्रह्मभावकूं प्राप्त होवैहै इति । इस श्रुतिविषे अदृश्य, अनात्म्य, अनिरुक्त, अनिलयन यह च्यारि विशेषण ब्रह्मके कथन करे हैं । तहां चक्षुकी दृष्टिका जो अविषय होवै ताका नाम अदृश्य है । इस अदृश्य विशेषणकरिकै तिस ब्रह्मविषे सूर्यकृत भास्यत्वका निषेध कऱ्या । और मनरूप आत्माका जो विषय होवै है ताका नाम आत्म्य है तिसतैं जो भिन्न होवै ताका नाम अनात्म्य है । इस अनात्म्यविशेषणकरिकै तिस ब्रह्मविषे मनकी अविषयता कथन करिकै चंद्रमाकृत भास्यत्वका निषेध कऱ्या । और स्थूल सूक्ष्मरूप सर्व जगत लयकूं प्राप्त होवै जिसविषे ताका नाम निलयन है । ऐसा अव्याकृतरूप कारण है तिस कारणरूप निलयनतैं जो भिन्न होवै ताका नाम अनिलयन है। इसीकारणतैं ही सो ब्रह्म अनिरुक्त है अर्थात् कथन करणेकूं अयोग्य है । इस अनिरुक्त विशेषणकरिकै तिस परब्रह्मविषे वाक्इंद्रियकी अविषयता कथन करिकै अग्निकृत प्रकाशका निषेध कऱ्या इति । और केईक भेदवादी तौ (न तद्भासयते सूर्यः) इस श्लोकका यह अर्थ करैहैं—सूर्य, चंद्रमा, अग्नि इन तीनोंकरिकै अप्रकाश्य तथा अर्चिरादि मार्गकरिकै प्राप्त होणेयोग्य तथा ब्रह्मलोकतैंभी ऊपरि स्थित तथा अप्राकृत तथा नित्य ऐसा वैष्णवपद देशांतरविषे स्थित है तिस वैष्णवपदकूं अर्चिरादि मार्गद्वारा प्राप्त होइकै यह अधिकारी जन पुनः आवृत्तिकूं नहीं प्राप्तहोवै है इति । सो यह तिन भेदवादियोंका अर्थ अत्यंत विरुद्ध है । काहेतैं (न रूपमस्येह तथोपलभ्यते ।) इस श्लोकविषे सर्व दृश्यपदार्थोंकूं मिथ्यारूप ही कथन कऱ्याहै।और(अतोऽन्यदार्तम्।)अर्थ यह—इस परमात्मादेवतैं भिन्न सर्व अनात्मपदार्थ मिथ्या हैं।इस श्रुतिनैंभी परमात्मादेवतैं भिन्न सर्व दृश्यपदार्थोंकूं मिथ्या कह्या है सो दृश्यपणा जैसे इन लोकोंविषे है तैसे तिस वैष्णवलोकविषेभी सो दृश्यपणा तुल्यहीहै।यातैं देशांतरविषे स्थित तिस वैष्णवलोकविषेभी सो मिथ्यापणा अ...

होवैगा । ऐसे मिथ्यालोकविषे प्राप्त हुए पुरुषोंकी पुनरावृत्तिभी अवश्य करिकै होवैगी । यातैं यह भेदवादियोंका व्याख्यान समीचीन नहीं है किंतु पूर्वउक्त व्याख्यान ही समीचीन है ॥ ६ ॥

हे भगवन् ! (यद्गत्वा न निवर्तन्ते) यह आपका वचन असंगत है काहेतैं यह अधिकारी पुरुष जो कदाचित् तिस पदविषे जावैंगे तौ तिस पदतैं अवश्यकरिकै निवृत्तभी होवैंगे । जैसे स्वर्गविषे गयेहुए कर्मीपुरुष ता स्वर्गतैं अवश्यकरिकै पीछे आवैं हैं । और यह अधिकारी पुरुष जो कदाचित् तिस पदतैं पीछे नहीं आवैंगे तौ तिस पदविषे जावैंगेभी नहीं । यातैं यह अधिकारी पुरुष तिस पदविषे जाते हैं और तिस पदतैं पुनः आवते नहीं यह दोनों वचन परस्पर विरुद्ध हैं । और जो जहां जाता है सो तहांतैं अवश्य फिर आवता है यह वार्त्ता शास्त्रविषेभी कथन करी है । तहां श्लोक-(सर्वे क्षयांता निचयाः पतनांताः समुच्छ्रयाः । संयोगा विप्रयोगांता मरणांतं हि जीवितम् ।) अर्थ यह-जे पदार्थ वृद्धिवाले हैं ते पदार्थ अंतविषे अवश्य क्षयवाले होवैं हैं । और जे पदार्थ उच्चस्थान विषे प्राप्त हुएहैं ते पदार्थ अंतविषे अवश्य करिकै नीचे पतन होवैं हैं।और जे पदार्थ संयोगवाले हुएहैं ते पदार्थ अंतविषे अवश्य वियोगवाले होवैं हैं।और जिस पदार्थका जन्म हुआ है सो पदार्थ अंतविषे अवश्य मरणकूं प्राप्त होवै है इति।और जो आप यह वचन कहो अनात्मवस्तुकी प्राप्तिही अंतविषे पुनरावृत्तिवाली होवै है आत्माकी प्राप्ति अंतविषे पुनरावृत्तिवाली होवै नहीं सो यह आपका कहणा भी संभवता नहीं।काहेतैं(सता सोम्य तदा संपन्नो भवति) इस श्रुतिनैं सुषुप्तिअवस्थाविषे सर्व प्राणीमात्रकूं आत्मभावकी प्राप्ति कथन करी है । परंतु सा आत्मभावकी प्राप्ति अंतविषे पुनरावृत्ति-वाली ही है । जो कदाचित् सुषुप्तिविषे आत्मभावकूं प्राप्त हुए प्राणियोंकी जाग्रत्विषे पुनरावृत्ति नहीं अंगीकार करिये तौ तिस सुषुप्तिमात्रकरिकै ही सर्व प्राणी मुक्त होवैंगे । यातैं मुक्तहुए तिन सुषुप्तपुरुषोंका पुनः उत्थान नहीं होणा चाहिये और तिन सुषुप्तपुरुषोंकी पुनरावृत्ति तौ देखणेविषे

आवै है । यातें तिस परब्रह्मरूप पदकी प्राप्तिविषे (यद्गत्वा) यह वचन कहणा संभवता नहीं । और तिस गमनकूं जो गौण मानिये तौभी तिस पदतें अनिवृत्ति नहीं संभवै है । इस प्रकारकी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं है। हे अर्जुन। तिस ब्रह्मरूप पदकूं प्राप्तहोणेहारा जो जीवात्मा है सो जीवात्मा तिस गंतव्यब्रह्मतें कोई भिन्न नहीं है किंतु यह जीवात्मा तिस गंतव्यब्रह्मतें अभिन्न ही है । और यह जीवात्मा ब्रह्मरूप ही है इस अर्थकूं (तत्त्वमसि, अहंब्रह्मास्मि, प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म, ।) इत्यादिक अनेक श्रुतियां कथन करैं हैं यातें (यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते) इस वचन करिकै कथन करी जा जीवात्माकूं ब्रह्मकी प्राप्ति है । सा प्राप्ति स्वर्गादिकोंके प्राप्तिकी न्याई मुख्य नहीं है किंतु सा प्राप्ति गौण है । अर्थात् अज्ञानमात्रकरिकै व्यवहित जो ब्रह्म है तिस ब्रह्मकी अहंब्रह्मास्मि इस प्रकारका ज्ञानमात्रही प्राप्ति कही जावै है । तहां जिसपक्षमैं अंतःकरण विषे अथवा अविद्याविषे जो ब्रह्मका प्रतिबिंबहै सो प्रतिबिंब ही जीवहै तिस पक्षविषे तौ जैसे जलविषे प्रतिबिंबितसूर्यका ता जलके अभाव हुए बिंबभूत सूर्यके प्रति गमन होवै है । तथा तिस बिंबभूत सूर्यतें तिस प्रतिबिंबकी पुनः आवृत्ति होती नहीं । तैसे अन्तःकरणादिक उपाधियोंके अभाव हुए इस प्रतिबिंबरूप जीवकाभी तिस निरुपाधिक बिंबरूप ब्रह्मके प्रति गमन होवै है । तथा तिस ब्रह्मतें इस जीवात्माकी पुनः आवृत्ति होती नहीं । और जिस पक्षमैं बुद्धिअवच्छिन्न जो ब्रह्मका भाग है ताका नाम जीव है तिस पक्षविषे तौ जैसे घटाकाशका घटरूप उपाधिके निवृत्तहुए महाकाशके प्रति गमन होवै है । तथा तिस महाकाशतें ता घटाकाशकी पुनः आवृत्ति होती नहीं तैसे इस जीवात्माकाभी तिस बुद्धिरूप उपाधिके निवृत्तहुए तिस ब्रह्मके प्रति गमन होवै है । तथा तिस ब्रह्मतें इस जीवात्माकी पुनः आवृत्ति होवी नहीं । इहां जैसे वास्तवतें बिंबरूप सूर्यतें अभिन्न प्रतिबिंबरूप सूर्यका तिस बिंबरूप सूर्यके प्रति गमन तथा तिसतें अनावृत्ति यह दोनों गौण हैं मुख्य नहीं हैं और जैसे वास्तवतें महाकाशतें अभिन्न

घटाकाशका तिस महाकाशके प्रति गमन तथा तिसतैं अनावृत्ति यह दोनों गौण हैं मुख्य नहीं हैं तैसे वास्तवतैं ब्रह्मतैं अभिन्न इस जीवात्माका जो तिस ब्रह्मके प्रति गमनहै तथा तिस ब्रह्मतैं अनावृत्ति है यह दोनोंभी गौण है मुख्य नहीं हैं। आपणेतैं भिन्नवस्तुके प्रति जो गमन है तथा तिसतैं अनावृत्ति है सो गमन तथा अनावृत्ति दोनों ही मुख्य कहे जावैं हैं। इसप्रकार वास्तवतैं जीवब्रह्मके अभेदहुएभी जो तिन्होंका भेदभ्रम होवै है सो भेद भ्रम केवल अंतःकरणादिक उपाधिके वशतैंही होवै है। जैसे घटरूप उपाधिके वशतैं घटाकाशका महाकाशतैं भेदभ्रम होवै है ता अंतःकरणादिक उपाधिके निवृत्तहुए सो भेदभ्रमभी निवृत्त होइजावै है इति। और सुषुप्तिअवस्थाविषे तौ जीवका उपाधिभूत सो संस्कारकर्मादिविशिष्ट अंतःकरण आपणे कारणरूप अज्ञानविषे सूक्ष्मरूपकरिके स्थित होवै है। तातैं तिस अज्ञानरूप कारणतैंही तिस अंतःकरणका पुनरुद्भव होवै है। और आत्मज्ञानकरिकै जबी अज्ञानकी निवृत्ति होवै है तबी अज्ञानरूप कारणके अभाव हुए अंतःकरणादिक कार्योंकी उत्पत्ति कहांतैं होवैगी किंतु नहीं उत्पत्ति होवैगी। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया—इस जीवके अहं ब्रह्मास्मि इस प्रकारके वेदांतवाक्यजन्य साक्षात्कारतै मैं ब्रह्म नहीं हूं इस प्रकारके अज्ञानकी जा निवृत्ति है सा अज्ञानकी निवृत्ति ही श्रीभगवान्नैं (यद्गत्वा) इस वचनकरिकै कथन करी है। और आत्मसाक्षात्कार करिकै निवृत्त हुआ जो अनादि अज्ञान है तिस अज्ञानके पुनः उत्थानके अभावतैं जो तिस अज्ञानके कार्यरूप संसारका अभाव है सो संसारका अभाव ही श्रीभगवान्नैं (न निवर्त्तन्ते) इस वचनकरिकै कथन कऱ्या है। यातैं श्रीभगवान्के वचनोंविषे किंचित्मात्रभी विरोधकी प्राप्ति होवै नहीं। और इस जीवका पारमार्थिक स्वरूप ब्रह्मही है यह वार्त्ता पूर्व अनेकवार कथन करिआये है। यह पूर्वउक्त सर्व अर्थ श्रीभगवान्नैं इसतैं उत्तरग्रंथकरिकै प्रतिपादन करियेगा। तहां यह- जीवात्मा वास्तवतैं ब्रह्मरूपही है, यातैं ब्रह्मसाक्षात्कारकरिकै अज्ञानके निवृत्तहुए तिस ब्रह्मरूपताकूं प्राप्तहुए जीवकी

तिस ब्रह्मरूपतातें पुनः आवृत्ति होती नहीं । इस अर्थकूं श्रीभगवान् (ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।) इस अर्द्धश्लोककरिकै कथन करैगा । और सुषुप्तिअवस्थाविषे तौ सर्व कार्योंके संस्कारसहित अज्ञान विद्यमान है । या कारणतें ही इस जीवात्माकूं तिस सुषुप्तितें पुनः संसारकी प्राप्ति होवै है । इस अर्थकूं श्रीभगवान् (मनःषष्ठानींद्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ।) इस अर्धश्लोककरिकै कथन करैगा । तिसतैं अनंतर वास्तवतै असंसारीरूप हुआभी मायाकरिकै संसारीभावकूं प्राप्त हुआ तथा मंदमतिपुरुषोंनै देहके साथि तादात्म्यभावकूं प्राप्त कऱ्याहुआ ऐसा जो यह जीवात्मा है तिस जीवात्माका तिस देहतैं व्यतिरेकपणेकूं श्रीभगवान् (शरीरं यदवाप्नोति) इस श्लोककरिकै कथन करैगा । और शब्दादिक विषयोंविषे श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं प्रवृत्त करणेहारा जो यह जीवात्मा है तिस जीवात्माका तिन श्रोत्रादिक इंद्रियोंतैं व्यतिरेकपणेकूं श्रीभगवान् (श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च) इस श्लोककरिकै कथन करैगा । तहां इसप्रकार देहइंद्रियादिकोंतै विलक्षण आत्माकूं उत्क्रांतिआदिक अवस्थावोंविषे सर्व प्राणी किसवास्तै नहीं देखते हैं ? ऐसी शंकाके प्राप्त हुए विपयवासनाकरिकै विक्षिप्तचित्तवाले पुरुष दर्शनयोग्यभी तिस आत्मादेवकूं नहीं देखिसकै हैं । इस प्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् (उत्क्रामंतं स्थितं वापि) इस श्लोककरिकै कथन करैगा । तहां (उत्क्रामंतम्) इस श्लोकविषे स्थित जो (पश्यंति ज्ञानचक्षुपः) यह वचन है इस वचनके अर्थकूं श्रीभगवान् (यतंतो योगिनश्चैनं पश्यंत्यात्मन्यवस्थितम्) इस अर्द्धश्लोककरिकै वर्णन करैगा । और (विमूढा नानुपश्यंति) इस वचनके अर्थकूं तौ (यतंतोप्यकृतात्मानो नैनं पश्यंत्यचेतसः ।) इस अर्धश्लोककरिकै वर्णन करैगा । इस प्रकारतें इन वक्ष्यमाण पंचश्लोकोंकी परस्परसंबंधरूप संगति सिद्ध होवै है । अभी आगे इन पंचश्लोकोंके केवल अक्षरोंके अर्थकूं वर्णन करैंगे—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ॥
मनःषष्ठानींद्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) मम । एव । अंशः । जीवलोके । जीवभूतः । सनातनः । मनःषष्ठानि । इंद्रियाणि । प्रकृतिस्थानि । कर्षति ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इस संसारविषे मैं परमात्माका अंश सनातन जीवरूप है सो जीव मन है छठा जिनोंविषे ऐसे प्रकृतिविषे स्थित श्रोत्रादिकइंद्रियोंकूं आकर्षण करै है ॥ ७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! वास्तवतैं अंशअंशीभावतैं रहित जो मैं परमात्मादेव हूं तिस मैं परमात्मादेवका ही मायाकरिकै कल्पित अंशकी न्याई अंशरूप इस संसारविषे वियमान है अर्थात् जैसे वास्तवतैं अंशअंशीभावतैं रहित सूर्यका जलविषे स्थित मिथ्याभेदवाला अंशकी न्याई अंशरूप प्रतिबिंब होवैहै तथा जैसे वास्तवत अंशअंशीभावतैं रहित महाकाशका घटविषे स्थित मिथ्याभेदवाला अंशकी न्याई अंशरूप घटाकाश होवै है तैसे वास्तवतैं अंशअंशीभावतैं रहित मैं परमात्मादेवकाभी इस संसारविषे मिथ्याभेदवाला अंशकी न्याई अंश वियमान है सो मैं परमात्मादेवका अंश प्राणोंका धारणरूप उपाधिकरिकै जीवभूत हुआ है अर्थात् कर्ता, भोक्ता, संसारी इस प्रकारकी मिथ्याही प्रसिद्धिकूं प्राप्त हुआ है । कैसा है सो जीवरूप अंश—सनातन है क्या नित्य है अर्थात् अंतःकरणादिक उपाधिकृत परिच्छिन्नताके हुएभी वास्तवतैं सो जीवात्मा परमात्मस्वरूपही है । काहेतैं श्रुतिविषे तिस परमात्मादेवका ही इस शरीरविषे जीवरूपकरिकै प्रवेश कथन कऱ्याहै । तहां श्रुति—(स एप इह प्रविष्ट आनखाग्रेभ्यः । तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् ।) अर्थ यह—सो परमात्मादेव ही इस संघातविषे नखके अग्रभागतैं लेकै प्रवेश करताभया । और सो परमात्मा देव इस संघातकूं उत्पन्न करिकै आपही जीवरूप होइकै इस संघातविषे प्रवेश करताभया इति । यातैं आत्माज्ञानतैं

अज्ञानके निवृत्तहुए यह जीवात्मा आपणे स्वरूपभूत ब्रह्मकूं प्राप्त होइकै तिस ब्रह्मतैं पुनः आवृत्तिकूं नहीं प्राप्त होवै है यह अर्थ जो पूर्व कथन कऱ्या था सो युक्त ही है। शंका—हे भगवन् ! स्वस्वरूपकूं प्राप्त हुआभी यह जीवात्मा सुषुप्तिअवस्थातैं पुनः किसप्रकार आवै है? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहै हैं। (मनःषष्ठानि इति।) हे अर्जुन ! मन है छठा जिनोंविषे ऐसे जे श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसन, घ्राण यह पंच ज्ञान इंद्रिय हैं अर्थात् इंद्ररूप आत्माके शब्दादिक विषयोंके उपलब्ध-कारणरूपकरिकै लिंगरूप जे श्रोत्रादिक इंद्रिय हैं। जे श्रोत्रादिक इंद्रिय जाग्रत्स्वप्नके भोगजनक कर्मोंके क्षयहुए प्रकृतिविषे स्थित हैं अर्थात् अज्ञानरूप प्रकृतिविषे सूक्ष्मरूपकरिकै स्थित हैं ऐसे मनसहित इंद्रियोंकूं सो जीवात्मा पुनः जाग्रत भोगोंके जनककर्मोंके उदयहुए तिन भोगोंके वास्तै आकर्षण करै है अर्थात् जैसे कूर्मनामा जंतु आपणे शरीरविषे लीन करे हुए शिर पादादिक अंगोंकूं पुनः तिस आपणे शरीरतैं बाह्य प्रगट करै है तैसे सो जीवात्माभी तिस अज्ञानरूप प्रकृतितैं मनसहित इंद्रियोंकूं शब्दादिक विषयोंके ग्रहणकी योग्यता रूपकरिकै पुनः प्रगट करै है यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। आत्मज्ञानतैं अनावृत्ति हुएभी अज्ञानतैं पुन आवृत्ति कोई अनुपपन्न नहीं है किंतु अज्ञानतैं इस जीवात्माकी पुनः आवृत्ति युक्तही है ॥ ७ ॥

हे भगवन् ! यह जीवात्मा किसकालविषे तिन मन सहित इंद्रियोंकूं आकर्षण करै है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहै हैं—

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ॥
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गंधानिवाशयात् ॥ ८ ॥

(पदच्छेदः) शरीरम् । यत् । अवाप्नोति । यत् । च । अपि । उत्क्रामति । ईश्वरः । गृहीत्वा । एतानि । संयाति । वायुः । गंधान् । इव । आशयात् ॥ ८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिसकालविषे यह जीवात्मा उत्क्रमणकरै है तिसकालविषे तिन इंद्रियोंकूं आकर्षण करै है तथा जिसकालविषे दूसरे शरीरकूं प्राप्तहोवैहै तिसकालविषे इन मनसहितइंद्रियोंकूं ग्रहणकरिकै भी जावैहै जैसे पुष्पादिकस्थानतैं वायु गन्धकूं ग्रहणकरिकै जावैहै ॥ ८ ॥

भा० टी०- हे अर्जुन ! देहइंद्रियरूप संघातका स्वामी होणेतैं ईश्वररूप जो यह जीवात्मा है सो यह जीवात्मा जिसकालविषे उत्क्रमण करैहै अर्थात् इस देहतैं बाह्यनिर्गमन करै है तिस कालविषे यह जीवात्मा जिस देहतैं बाह्य निर्गमन करैहै तिस देहतैं मनसहित श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं आकर्षण करैहै । हे अर्जुन ! यह जीवात्मा तिन मनसहित इंद्रियोंकूं केवल आकर्षणही नही करै है किंतु यह जीवात्मा जिसकालविषे इस पूर्व शरीरतै दूसरे शरीरकूं प्राप्त होवै है तिसकालविषे तिन मनसहित श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं ग्रहण करिकैभी जावै है । तिन इंद्रियोंकूं छोडिकै जाता नहीं अर्थात् जैसे तिस परित्याग करेहुए पूर्वले शरीरविषे पुनः आवै नहीं तैसे तिन इंद्रियोंकूं ग्रहणकरिकै जावैहै । यह अर्थ (संयाति) इस वचनविषे सम् इस शब्दकरिकै श्रीभगवान्नें सूचन कऱ्या । अब स्थूलशरीरके विद्यमान हुएही तिस शरीरतें इंद्रियोंके ग्रहण करणेविषे श्रीभगवान् दृष्टांतकूं कथन करैं हैं-(वायुर्गंधानिवाशयात् इति) हे अर्जुन ! जैसे पुष्पादिकस्थानतैं गंधरूप सूक्ष्म अंशोंकूं ग्रहण-करिके वायु पूर्वादिक दिशावोंविषे गमन करैहै तैसे जीवात्माभी इस स्थूल-देहतैं मनसहित इंद्रियोंकूं ग्रहणकरिकै परलोकविषे गमन करै है ॥ ८ ॥

अब श्रीभगवान् तिन इंद्रियोंका कथन करतेहुए जिस प्रयोजनवास्तै यह जीवात्मा तिन इंद्रियोंकूं ग्रहणकरिकै निर्गमन करैहै तिस प्रयोजनकूं कथन करैं हैं-

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ॥
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) श्रोत्रम् । चक्षुः । स्पर्शनम् । च । रसनम् । घ्राणम् । एव । च । अधिष्ठाय । मनः । च । अयम् । विषयान् । उपसेवते ९

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यहजीवात्मा श्रोत्रइंद्रियकूं तथा चक्षुइंद्रियकूं तथा त्वक्इंद्रियकूं तथा रसनइंद्रियकूं तथा घ्राणइंद्रियकूं तथा मनकूं आश्रयणकरिकै ही शब्दादिकविषयोंकू भोगता है ॥ ९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन! यह जीवात्मा श्रोत्रइंद्रियकूं तथा चक्षुइंद्रियकूं तथा त्वक् इंद्रियकू तथा रसनइंद्रियकू तथा घ्राणइंद्रियकूं तथा मनकूं आश्रयणकरिकै ही शब्दस्पर्शादिक विषयोंकूं भोगै है । इहां (घ्राणमेव च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है तिस चकारकरिकै वागादिक पंच कर्मइंद्रियोंका तथा प्राणकाभी ग्रहण करणा। और (मनश्च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है तिस चकारकरिकै बुद्धि, चित्त, अहंकार इन तीनोंकाभी ग्रहण करणा। अर्थात् पंच ज्ञानइंद्रिय, पंच कर्मइंद्रिय, पंच प्राण, चतुष्टय अंतःकरण इन सर्वोकूं आश्रयणकरिकै ही यह जीवात्मा शब्दादिक विषयोंकूं भोगै है । तिन इंद्रियादिकोंके आश्रयण कियेत विना केवल शुद्ध आत्मा तिन शब्दादिक विषयोंकू भोगता नहीं । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है तहां श्रुति–(आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ।) अर्थ यह–देह श्रोत्रादिक इंद्रियोंकरिकै तथा मनकरिक युक्तहुआही आत्मा भोक्ता होवै है । इस प्रकार वेदवेत्ता बुद्धिमान् पुरुष कथन करै है ॥ ९ ॥

ऐसे दर्शनयोग्यभी आत्माकूं मूढपुरुष देखते नहीं किंतु विवेकी पुरुष ही देखैं हैं । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

उत्क्रामंतं स्थितं वापि भुंजानं वा गुणान्वितम् ॥
विमूढा नानुपश्यंति पश्यंति ज्ञानचक्षुषः ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) उत्क्रामंतम् । स्थितम् । वा । अपि । भुंजानम् । वा । गुणान्वितम् । विमूढाः । न । अनुपश्यंति । पश्यंति । ज्ञानचक्षुषः ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! उत्क्रमणकरतेहुए अथवा किसीहीदेशविषे स्थितहुए अथवा विषयोंकूं भोगतेहुए तथा गुणोंकरिकै युक्तहुए ऐसे आत्माकूं भी विमूढपुरुष नहीं देखसकते हैं किंतु ज्ञानरूपचक्षुवाले पुरुषही तिस आत्माकूं देखते हैं ॥ १० ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! वास्तवतैं गमनादिक सर्वविकारोंतैं रहितहुआभी अंतःकरणादिक उपाधिके तादात्म्यअध्यासतैं पूर्वशरीरका परित्यागकरिकै दूसरे शरीरके प्रति गमन करताहुआ जो यह आत्मा है । अथवा तिस पूर्वले शरीरविषे ही स्थितहुआ जो यह आत्मा है । अथवा तिस दूसरे शरीरविषे शब्दादिक विषयोंकूं भोगता हुआ जो यह आत्मा है । तथा सुख, दुःख, मोह, रूप, सत्त्व, रज, तम इन गुणोंकरिकै युक्त जो यह आत्मा है इस प्रकारकी सर्व अवस्थावोंविषे दर्शनके योग्यभी इस आत्माकूं विमूढपुरुष नहीं देखिसकै हैं । वहां इस श्लोकके विषयभोगोंकी तथा स्वर्गादिक लोकोंके विषयभोगोंकी वासनावोंकरिकै आकर्षण हुआ है चित्त जिनोंका ऐसे जे आत्मा, अनात्माके विवेक करणेविषे अयोग्य पुरुषहैं तिनोंका नाम विमूढ है ऐसे विमूढ पुरुष तिन उत्क्रमणादिक अवस्थावोंविषे इस आत्मादेवकूं देहादिकोंतैं भिन्नकरिकै जानिसकते नहीं यह बडा कष्टहै । और जे पुरुष श्रुतिप्रमाणजन्य ज्ञानरूप चक्षुवाले हैं ते विवेकी पुरुष तौ तिन उत्क्रमणादिक सर्व अवस्थावोंविषे इस आत्मादेवकूं देहादिकोंतैं भिन्न करिकै देखैं हैं ॥ १० ॥

अब (पश्यंति ज्ञानचक्षुषः) इस वचनके अर्थकूं तथा (विमूढा नानुपश्यंति) इस वचनके अर्थकूं यथाक्रमतैं स्पष्टकरिकै वर्णन करैं हैं–

यतंतो योगिनश्चैनं पश्यंत्यात्मन्यवस्थितम् ॥
यतंतोप्यकृतात्मानो नैनं पश्यंत्यचेतसः ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) यतंतः । योगिनः । च । एनम् । पश्यंति । आत्मनि । अवस्थितम् । यतंतः । अपि । अकृतात्मानः । न । एनम् । पश्यंति । अचेतसः ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! प्रयत्नकरतेहुए योगीपुरुष ही आपणी बुद्धिविषे स्थित इस आत्माकूं देखते हैं और प्रयत्न करतेहुएभी अशुद्धअंतःकरणवाले अविवेकी पुरुष इस आत्माकूं नहीं देखते हैं ॥ ११ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! ध्यानादिक उपायोंकरिकै यत्न करतेहुए जे शुद्ध अन्तःकरणवाले योगीपुरुष है, ते योगीपुरुष ही आपणी बुद्धिविषे स्थित इस आनंदस्वरूप आत्माकूं साक्षात्कार करैं हैं। और जिन पुरुषोंनें यज्ञादिक निष्काम कर्मोंकरिकै आपणे अंतःकरणकूं शुद्ध नहीं कऱ्या है तथा अशुद्ध अंतःकरणवाले होणेतैं ही जे पुरुष आत्मानात्माके विवेकतैं रहित हैं ते अशुद्ध अंतःकरणवाले अविवेकी पुरुष तौ प्रयत्न करतेहुएभी इस आत्मादेवकूं साक्षात्कार करिसकते नहीं ॥ ११ ॥

तहां सर्व जगत्के प्रकाश करणेविषे समर्थभी सूर्यचंद्रमादिक जिस परब्रह्मरूप पदकूं प्रकाश करणेविषे समर्थ होते नहीं। तथा जिस पदकूं प्राप्त हुए मुमुक्षुजन पुनः संसारकी प्राप्तिवास्तै आवते नहीं। और जैसे महाकाशतैं घटादिक उपाधिकृत भेदवाले हुए घटाकाशादिक तिस महाकाशके कल्पित अंशभावकूं प्राप्त होवैं है तैसे जिस परब्रह्मरूप पदके उपाधिकृत भेदकूं प्राप्त होइकै कल्पित अंशादिक तिस महाकाशके साथि अभेद भावकूं प्राप्त होवैं है वैसे महावाक्यजन साक्षात्कारकरिकै अविद्यादिक उपाधियोंके निवृत्त हुए यह जीव जिस परब्रह्मरूप पदके साथि अभेदभावकूं प्राप्त होवै है तिस परब्रह्मरूप पदके सर्वात्मपणेकूं तथा सर्वव्यवहारोंके साधकपणेकूं दिखायकरिकै (ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्) इस पूर्व अध्यायउक्त वचनके अर्थका वर्णन करणेवास्तै अब च्यारि श्लोकोंकरिकै श्रीभगवान् आपणे विभूतियोंके संक्षेपकूं कथन करैं हैं—

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ॥
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥ १२ ॥

(पदच्छेदः) यत् । आदित्यगतम् । तेजः । जगत् । भासयते । अखिलम् । यत् । चंद्रमसि । यत् । च । अग्नौ । तत् । तेजः । विद्धि । मामकम् ॥ १२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! आदित्यविषे स्थित जो तेज है तथा चंद्रमाविषे स्थित जो तेज है तथा अग्निविषे स्थित जो तेज है जो तेज इस सर्व जगत्कूं प्रकाश करता है तिसे तेजकूं तूं मेरा स्वरूपही जान ॥ १२॥

भा० टी०—तहां (न तत्र सूर्यो भाति न चंद्रतारकं नेमा विद्युतो भांति कुतोयमग्निः ।) यह श्रुतिका अर्द्धभाग (न तद्भासयते सूर्यः) इत्यादिक श्लोककरिके पूर्व व्याख्यान कऱ्या था अब (तमेव भांतमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।) यह श्रुतिका अर्द्धभाग (यदादित्यगतं तेजो) इस श्लोककरिके श्रीभगवान्नें व्याख्यान करीता है । हे अर्जुन ! आदित्यविषे स्थित जो चैतन्यात्मक ज्योतिरूप तेज है । तथा चंद्रमाविषे स्थित जो चैतन्यात्मक ज्योतिरूप तेज है । तथा अग्निविषे स्थित जो चैतन्यात्मक ज्योतिरूप तेज है जो चैतन्य ज्योतिरूप तेज इस सर्वजगत्कूं प्रकाश करै है तिस चैतन्यात्मक ज्योतिरूप तेजकूं तूं अर्जुन मैं परमात्माका स्वरूपभूत ही जान । यद्यपि स्थावरजंगमरूप सर्वपदार्थोंविषे सो चैतन्यात्मक ज्योति समानही है तथापि सत्त्वगुणकी उत्कर्षताकरिकै ते आदित्यादिक सर्वतैं उत्कृष्ट हैं या कारणतैं तिन आदित्यादिकोंविषे ही सो चैतन्यरूप ज्योति अतिशयकरिकै अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होवैहै । तमोगुणप्रधान तथा रजोगुणप्रधान अन्य पदार्थोंविषे स्वरूपतैं विद्यमान हुआभी सो चैतन्यरूप ज्योति स्पष्टकरिकै अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होता नहीं । यातैं तिन पदार्थोंकी अपेक्षाकरिकै आदित्यादिकोंविषे विशेष्यता बोधन करणेवासतै श्रीभगवान्नें इहां आदित्यचंद्रमादिकोंका ग्रहण कऱ्या है । जैसे मुखकी समीपताके तुल्य हुएभी काष्ठभित्तिआदिक अस्वच्छ पदार्थोंविषे सो मुख प्रतिबिंबरूपकरिकै अभिव्यक्त होवै नहीं । और स्वच्छ तथा अतिस्वच्छ ऐसे जे दर्पणादिक पदार्थ हैं तिन दर्पणादिक

पदार्थोंविषे तौ ता स्वच्छताकी न्यून अधिकताकरिकै सो मुखभी न्यूनअधिकभावतैं प्रतिबिंबरूपकरिकै अभिव्यक्त होवैहै । तैसें सो चैतन्यरूप ज्योतिभी स्वरूपतैं सर्वपदार्थोंविषे विद्यमान हुआभी सत्त्वगुणप्रधान आदित्यादिकोंविषे ही स्पष्टरूपकरिकै अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होवै है । तमोगुणप्रधान घटादिक पदार्थोंविषे स्पष्टरूपकरिकै अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होता नहीं इति । अथवा (यदादित्यगतं तेजो) इस वचनविषे तेजशब्दका कथन करिकै (तत्तेजो विद्धि मामकम् ।) इस वचनविषे जो पुनः तेजशब्दका कथन कन्या है तिसतैं इस श्लोकका यह दूसरा अर्थभी प्रतीत होवैहै—आदित्यविषे तथा चंद्रमाविषे तथा अग्निविषे स्थित जो परके प्रकाशकरणेविषे समर्थ श्वेतभास्वररूप तेज है जो तेज रूपवान् सर्ववस्तुरूप जगत्कूं प्रकाश करैहै सो तेज मैं परमेश्वरकाही तूं जान अर्थात् मैं परमेश्वरके विभूतिरूप तिस तेजविषे तूं मैं परमेश्वरकी बुद्धि कर इति । इस प्रकारतैं परमेश्वरकी विभूति कथन करणेवासतै यह दूसरा अर्थभी संभव होइसकैहै। जो कदाचित् इस श्लोककूं परमेश्वरकी विभूति कथन करिकै नहीं अंगीकार करिये तौ पुनः तेजशब्दके ग्रहणतैं विनाही (तन्मामकं विद्धि) इतनेमात्र वचनकूं ही श्रीभगवान् कथन करता भया इति । और किसी टीकाविषे तौ (यदादित्यगतं तेजो) इस श्लोकका यह अर्थ कन्या है । आदित्य, चंद्रमा, अग्नि इन शब्दोंकरिकै चक्षुआदिक करणोंके अधिष्ठानतारूप सूर्यादिक देवतावोंका तथा सूर्यादिक देवतावोंकरिकै अनुगृहीत चक्षुआदिक करणोंका ग्रहण करणा । यातैं यह अर्थ सिद्ध होवै है । चक्षुआदिक बाह्यकरणोंके अधिष्ठातारूप जे सूर्यादिक देवता हैं तथा तिन सूर्यादिक देवतावोंकरिकै अनुगृहीत जे चक्षुआदिकबाह्यकरण हैं तिन दोनोंविषे विद्यमान जो रूपादिकविषयोंके प्रकाशकरणेका सामर्थ्यरूप तेज है सो तेज मैं परमेश्वरकाही तूं जान । तहां श्रुति–(येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः येन चक्षुंषि पश्यंति ।) अर्थ यह–जिस चैतन्यरूप तेजकरिकै यह सूर्य तप्त करैहै । तथा जिस

चैतन्यरूप तेजकरिकै यह चक्षुरूपादिक पदार्थोंकूं देखैहैं इति । इसप्रकार मनविषे तथा ता मनके अभिमानी चंद्रमादेवताविषे जो अंतरप्र चके प्रकाशकरणेका सामर्थ्यरूप तेजहै तिस तेजकूंभी तूं मैं परमेश्वरकाही जान । इस प्रकार वाक्इंद्रियविषे तथा ता वाक्इंद्रियके अभिमानी अग्निदेवताविषे जो अव्याकृतआदिक विषयोंके प्रकाशकरणेका सामर्थ्यरूप तेज है तिस तेजकूंभी तूं मैं परमेश्वरका ही जान ॥ १२ ॥

किंच-

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ॥
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः १३

(पदच्छेदः) गाम् । आविश्य । च । भूतानि । धारयामि । अहम् । ओजसा । पुष्णामि । च । ओषधीः । सर्वाः । सोमः । भूत्वा । रसात्मकः ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः आपणे बलकरिकै इस पृथिवीकूं अत्यंत दृढकरिकै सर्वभूतोंकूं मैंपरमेश्वरही धारण करूंहूं तथा सर्वरसस्वभाववाला सोमरूप होईके सर्व ओषधियोंकूं मैं परमेश्वरही पुष्टिवाला करूंहूं ॥ १३॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! मैं परमेश्वर ही पृथिवीदेवतारूपकरिकै इस पृथिवीकूं सर्वओरतैं व्याप्त करिकै तथा धूलीमुष्टिके तुल्य इस पृथिवीकूं आपणे बलकरिकै अत्यंत दृढकरिकै इस पृथिवीऊपरि रहणेहारे स्थावर-जंगमरूप सर्वभूतोंकूं धारण करताहूं जैसे वायु आपणी शक्तिकरिकै मेघ-मंडलविषे प्रवेशकरिकै ता मेघमंडलविषे स्थित जलोंकूं धारण करै है वैसे मैं परमेश्वरभी पृथिवी देवतारूप करिकै इस पृथिवीविषे प्रवेशकरिकै आपणी शक्तिकरिकै इस पृथिवीकूं अत्यंत दृढकरिकै तिन स्थावरजंगमरूप सर्वभूतों-कूं धारण करूंहूं।जो कदाचित् मैं परमेश्वर आपणे बलकरिकै इस पृथिवीकूं अत्यंत दृढकरिकै इन सर्वभूतोंकूं धारण करता होवों तौ सिकताके मुष्टितुल्य यह पृथिवी शीघ्रही विशीर्णभावकूं प्राप्त होवैगी । अथवा यह पृथिवी

अधोदेश चलीजावैगी। यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है। तहां श्रुति-(येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा। सदाधारपृथिवीम्।) अर्थ यह-जिस परमात्मादेवनें स्वर्गलोक तथा महान् पृथिवी अत्यंत दृढ करे हैं। जिसकरिकै गुरुत्वधर्मवाले हुएभी यह स्वर्ग तथा पृथिवी नीचे पतन होते नहीं। तथा यह पृथिवी सत्य परमात्मा देवकेही आधार है इति। किंवा सर्वरसस्वभाववाला जो सोम है तिस सोमरूप होइकै मैं परमेश्वर ही पृथिवीवैं उत्पन्नहुई व्रीहियवादिक सर्व ओषधियोंकूं पुष्टिमान करूंहूं तथा स्वादुरसवाला करूंहूं ॥ १३ ॥

किंच-

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ॥
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ १४ ॥

(पदच्छेदः) अहम्। वैश्वानरः। भूत्वा। प्राणिनाम्। देहम्। आश्रितः। प्राणापानसमायुक्तः। पचामि। अन्नम्। चतुर्विधम् ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरही जठराग्निरूप होईकै सर्वप्राणियोंके देहकूं आश्रयण करताहुआ तथा प्राण अपानकरिकै प्रज्वलितहुआ च्यारि प्रकारके अन्नकूं पाचन करूंहूं ॥ १४ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! (अयमग्निर्वैश्वानरो योयमंतः पुरुषो येनेदमन्नं पच्यते।) अर्थ यह-जो अग्नि इस पुरुषके अंतरस्थितहै तथा जिस अग्निनें यह च्यारीप्रकारका अन्न पाचन करीताहै सो यह अग्नि वैश्वानर है इति। इस श्रुतिनें वैश्वानर नामकरिकै कथन करचा जो जठराग्नि है सो जठराग्निरूप होइकै मैं परमेश्वर ही सर्वप्राणियोंके देहोंके अंतर प्रविष्टहुआ तथा तिस जठराग्निकूं प्रज्वालनकरणेहारे प्राणअपानकरिकै युक्तहुआ प्राणियोंनें भोजन करेहुए भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य इस च्यारिप्रकारके अन्नकूं पाचन करूंहूं। तहां जो वस्तु दांतोंसें खंडनकरिकै भक्षण कऱ्याजावै है ता वस्तुकूं भक्ष्य कहै हैं। जैसे पूरी अपूपादिक हैं तिस भक्ष्यवस्तुकूं चर्व्यभी

कहेहैं । और जो वस्तु दांतोंके व्यापारतैं विनाही केवल जिह्वासैं हलाइकै भीतर निगल्या जावैहै ता वस्तुकूं भोज्य कहैं हैं । जैसे पायस सूपादिक हैं । और जो वस्तु जिह्वाविषे प्राप्तहुआ ही रसके स्वादमात्रकरिकै भीतर निगल्या जावै है तथा किंचित् द्रवीभूत होवै है ता वस्तुकूं लेह्य कहैं हैं । जैसे गुड आम्ररस शिखरिण्य आदिक हैं । और जो वस्तु दांतोंसैं निष्पीडन करिकै ताके रसअंशकूं भीतर निगलिकै परिशेषतैं रहेहुए असार अंशकूं बाह्य परित्याग करीता है ता वस्तुकूं चोष्य कहैं हैं । जैसे इक्षुदंडादिक हैं इति । और किसी टीकाविषे तौ (पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ।) इस वचनका यह अर्थ कऱ्या है—मैं परमेश्वर ही जठराग्निरूप होइकै मनुष्यादिक सर्वप्राणियोंके अंतरस्थित हुआ पार्थिव, आप्य, तैजस, वायव्य इस च्यारिप्रकारके अन्नकूं पाचन करूंहूं । तहां मनुष्यादिक प्राणियोंका तौ व्रीहियवादिक पार्थिव अन्न है । और चातकादिक प्राणियोंका तौ जलरूप आप्य अन्न है । और वालखिल्यादिक प्राणियोंका तौ अग्निरूप तैजस अन्न है । और सर्पादिक प्राणियोंका तौ वायुरूप वायव्य अन्न है इति । तहां जो भोक्ता है सो अग्नि वैश्वानररूप है । और जो भोज्य अन्न है सो सोमरूप है । इसप्रकार यह अग्नि सोम दोनोंही सर्वरूप हैं । इसप्रकारके ध्यान करणेहारे पुरुषकूं अन्नके दोषका लेप होवै नहीं । इस प्रकारका जो शास्त्रविषे फलसहित ध्यान कथन कऱ्या है सो भी इहां जानिलेणा ॥ १४ ॥

किंच–

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनञ्च ॥ वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदांतकृद्वेदविदेव चाहम् ॥ १५ ॥

(पदच्छेदः) सर्वस्य । च । अहम् । हृदि । संनिविष्टः । मत्तः । स्मृतिः । ज्ञानम् । अपोहनम् । च । वेदैः । च । सर्वैः । अहम् । एव । वेद्यः । वेदांतकृत् । वेदवित् । एव । च । अहम् ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः मैंपरमात्मादेवही सर्वप्राणियोंके बुद्धि-विषे जीवात्मारूप होइकै प्रविष्टहुआहूं इसकारणतै मैं आत्मादेवतैंही तिन सर्वप्राणियोंकूं स्मृति तथा ज्ञान तथा तिस स्मृतिज्ञान दोनोंका अभाव होवै है तथा सर्व वेदोंकैरिकै मैं परमेश्वर ही जानणेयोग्य हूं तथा वेदांतअर्थके संप्रदायका प्रवर्त्तक हूं तथा मैं परमेश्वर ही सर्व वेदोंके अर्थका वेत्ता हूं ॥ १५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! ब्रह्मातैं आदिलैके स्थावरपर्यंत जितनेक ऊंच नीच प्राणी हैं तिन सर्वप्राणियोंकी बुद्धिविषे मैं परमात्मादेव ही जीवात्मारूप होइकै प्रविष्ट हुआहूं । तहां श्रुति—(स एव इह प्रविष्टः । अनेन जीवेनात्मानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि ॥) अर्थ यह—सो परमात्मादेव जीवात्मारूप होइकै इस संघातविषे प्रवेश करताभया । और इस जीवात्मारूप करिकै इस संघातविषे प्रवेशकरिकै मै परमात्मादेव नामरूपकूं स्पष्ट करूं इति । इत्यादिक अनेक श्रुतियां इन सर्वसंघातोंविषे परमात्मादेवका ही जीवात्मारूपकरिकै प्रवेशकूं कथन करैं है। इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं जीवब्रह्मका अभेद कथन कऱ्या । इसीही जीवब्रह्मके अभेदकूं (तत्त्वमसि अहंब्रह्मास्मि) इत्यादिक श्रुतियांभी कथन करैं हैं । हे अर्जुन ! जिस कारणतैं मै परमात्मादेवही इन सर्वप्राणियोंकी बुद्धिविषे जीवात्मारूप होइकै प्रविष्ट हुआहूं । इसकारणतैं इन सर्व प्राणियोंकूं जा जा स्मृति होवै है तथा जो जो ज्ञान होवै है सा स्मृति तथा सो ज्ञान मैं आत्मादेवतैं ही होवै है । तहां पूर्व अनुभव करेहुए अर्थकूं विषय करणेहारी जा संस्कारजन्य अंतःकरणकी वृत्तिविशेष है ताका नाम स्मृति है सा स्मृति अयोगीपुरुषोंकूं तौ इस जन्मविषे पूर्व अनुभव करेहुए अर्थविषयक ही होवै है । और योगी पुरुषोंकूं तौ जन्मांतरोंविषे अनुभव करेहुए अर्थविषयकभी होवै है । इस प्रकार सो प्रत्यक्ष ज्ञानभी अयोगीपुरुषोंकूं तौ विषयइंद्रियके संयोगजन्यही होवै है । और योगीपुरुषोंकूं तौ देशकालकरिकै व्यवहित वस्तुकाभी सो प्रत्यक्षज्ञान होवै है । सो

दोनोंप्रकारका ज्ञान तथा सो दोनों प्रकारकी स्मृति मैं आत्मादेवतैंही होवै है। और काम, क्रोध; शोक, मोह, इत्यादिकोंकरिकै व्याकुल है चित्त जिन्होंका ऐसे पुरुषोंकूं जो तिस स्मृतिका तथा ज्ञानका अभाव होवै है सो अभावरूप अपोहनभी मैं आत्मादेवतै ही होवै है इति। इस प्रकार श्रीभगवान् आपणी जीवरूपताकूं कथन करिकै अब ब्रह्मरूपताकूं कथन करै है-(वेदैश्च सर्वैः इति) हे अर्जुन। ऋग्, यजुष, साम, अथर्वण इन च्यारि वेदोंकरिकै मै परमात्मादेव ही जानणेयोग्य हूं। तहां श्रुति-(सर्वे वेदा यत्पदमामनंति।) अर्थ यह-कर्मकांड, उपासनाकांड; ज्ञानकांड यह तीनकांडरूप जितनेक ऋगादिक वेद हैं ते सर्व वेद जिस परमात्मादेवरूप पदकूं कथन करै हैं इति। यद्यपि ऋगादिक वेदोंके कर्मकांड तथा उपासना कांड इंद्रादिक देवतावोंकूं ही कथन करै हैं तथापि मैं परमात्मादेव ही तिन इंद्रादिक सर्व देवतावोंका आत्मारूप हूं यातैं तिन इंद्रादिक देवतावोंकूं कथन करतेहुएभी ते कर्मउपासनाकांड मैं परमात्मादेवकूं ही कथन करैहैं। तहां परमात्मादेव ही इंद्रादिक सर्वदेवतारूप हैं इस अर्थकूं (इंद्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदंत्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः। एष उह्येव सर्वे देवाः।) इत्यादिक अनेक श्रुतियां कथन करैहैं। पुनः कैसा हूं मैं परमात्मादेव-वेदांतकृत हूं अर्थात् वेद व्यासादिकरूपकरिकै मैं परमात्मादेवही उपनिषद्रूप वेदांत अर्थके संप्रदायका प्रवर्त्तक हूं। हे अर्जुन! केवल वेदांतअर्थके संप्रदायमात्रका ही मैं प्रवर्तक नहींहूं किंतु वेदवित्भी मैंही हूं अर्थात् कर्मकांड, उपासनाकांड ज्ञानकांड यह तीनकांडरूप जितनेक मंत्रब्राह्मणरूप सर्व वेद है तिन सर्व वेदोंके अर्थकूं जानणेहाराभी मैं परमात्मादेवही हूं। यातैं (ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्) यह जो पूर्वअध्यायविषे वचन कह्याथा सो यथार्थही है इति। और किसी टीकाविषे तौ (सर्वस्य चाहम्) इस श्लोकका यह अर्थ कऱ्या है-सर्व प्राणियोंकी बुद्धिरूप गुहाविषे मैं परमात्मादेव क्षेत्रज्ञनामा जीवरूपकरिकै अत्यंत समीपहुआ स्थित हूं। इस

कारणतैं सर्वप्राणिरूप मैं परमेश्वर ही हूं । इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं जीवब्रह्मविषे भेददृष्टि कदाचित्भी नहीं करणी यह अर्थ सूचना कन्या । तहां यह सर्व जगत् परमेश्वररूपही है इस प्रकार सर्वत्र परमेश्वरबुद्धिकरिकै जे पुरुष परमेश्वरकी उपासना करैंहैं तथा जे पुरुष तिस उपासनाकूं नहीं करैंहैं तिन दोनोंप्रकारके पुरुषोंकूं जो फल प्राप्त होवैहै तिस फलकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं । (मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च इति) हे अर्जुन मैं परमेश्वरकी उपासनाकरिकै शुद्ध हुआहै अंतःकरण जिन्होंका ऐसे अधिकारी पुरुषोंकूं तौ मैं परमेश्वरतैं ही गुरुशास्त्रके अनुग्रहकरिकै स्मृति होवैहै अर्थात् (स आत्मा तत्त्वमसि) इस वचनकरिकै श्रीगुरुवोंनैं जो त्रिविधपरिच्छेदतैं रहित निर्विशेष आत्मा तूं है इस प्रकारतैं बोधन कन्याहै सो निर्विशेष शुद्ध आत्मा मैं हूं इस प्रकारकी जो तिसीहीआत्माविषे स्वात्मपणेकी स्मृति है सा स्मृतिभी तिन अधिकारीपुरुषोंकूं मैं परमेश्वरतैंही होवै है । तथा यह सर्व जगत् तथा मैं ब्रह्मरूप ही है । इस प्रकार सर्व जगत्विषे तथा आपणेविषे जो ब्रह्ममात्रपणेका ज्ञान है सो ज्ञानभी तिन उपासक पुरुषोंकूं मैं परमेश्वरतैं ही होवैहै । और जे पुरुष मैं परमेश्वरकी उपासनातैं रहित हैं तथा मलिनबुद्धिवाले हैं तथा रागद्वेषादिक दोषोंकरिकै दुष्ट हैं ऐसे बहिर्मुख पुरुषोंकूं तिस स्मृतिका तथा तिस ज्ञानका जो आपोहन है अर्थात् अप्राप्ति है सा अप्राप्तिभी मैं परमेश्वरतैंही होवैहै । हे अर्जुन ! पुनः मैं परमेश्वर कैसा हूं—वेदांतकृत् हूं अर्थात् हिरण्यगर्भरूप ब्रह्माके ताईं, वेदांतकी प्राप्तिरूप अनुग्रह कर्त्ता मैं परमेश्वरही हूं । तहां श्रुति—(यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।) अर्थ यह—जो परमेश्वर पूर्व हिरण्यगर्भरूप ब्रह्माकूं उत्पन्न करताभया तथा जो परमेश्वर तिस ब्रह्माके ताईं सर्ववेदोंकूं देताभया इति । अथवा (वेदान्तकृत्.) इस वचनका यह अर्थ करणा—इस लोकविषे अधिकारी शिष्योंके ताईं आचार्यरूपकरिकै वेदांतके अर्थका प्रकाश करणेहारा मैं परमेश्वरही हूं । पुनः कैसा हूं मैं—वेदवित् हूं । तहां वेदका अर्थरूप जो

निर्विशेष अद्वितीय ब्रह्म है तिस ब्रह्मकूं जो पुरुष मैं परमेश्वरके अनुग्रहतैं तथा ब्रह्मवेत्तागुरुके अनुग्रहतैं आपणा आत्मारूपकरिकै जानैहै ताकानाम वेदवित् है ऐसा ब्रह्मवेत्ता पुरुष है सो ब्रह्मवेत्ता पुरुषभी मैं परमेश्वर ही हूं यह वार्त्ता (ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्) इस वचनकरिकै पूर्वभी कथन करि आये हैं । तहां (सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टः ।) इस वचनकरिकै सर्व प्राणीमात्रकूं आपणा आत्मारूपकरिकै श्रीभगवान्नैं जो पुनः वेदान्तकृत, मैं हूं तथा वेदवित् मैं हूं यह वचन कथन कऱ्या है सो इस अर्थके बोधन करणेवासतै कथन कऱ्या है–मूढपुरुषोंनैं तथा बुद्धिमान् पुरुषोंनैं वेदांतशास्त्रके उपदेशकर्त्ता गुरुविषे तथा अन्यभी ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंविषे परमेश्वर बुद्धि अवश्यकरिकै करणी इति । तहां (यदादित्यगतं तेजः) इत्यादिक वचनोंकरिकै मुमुक्षुजनकृत उपासनावासतै श्रीभगवान्नैं आपणी विभूति कथन करी सा विभूतिही परमेश्वरका पारमार्थिकरूप होवैगा । ऐसी शंकाके प्राप्तहुए श्रीभगवान् आपणे यथार्थस्वरूपके बोधन करणेवासतै कहैहैं (वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः इति ।) हे अर्जुन ! ऋग, यजुष, साम, अथर्वण इन च्यारि वेदोंविषे स्थित जितनेक उपनिषद्रूप वेदांत हैं तिन वेदांतोंकरिकै मैं परमात्मादेवही जानणेयोग्य हूं । अर्थात् (सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म । विज्ञानमानंदं ब्रह्म। आनंदो ब्रह्म । ब्रदेतद्ब्रह्मापूर्वमनपरम् । अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम् । अप्राणममुखमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमचक्षुष्कमनामगोत्रमशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम् । निष्कलं निष्क्रियं शांतं नित्यं शुद्धं बुद्धं मुक्तं सत्यं सूक्ष्मं परिपूर्णमद्वयं सदानंदचिन्मात्रं शांतं चतुर्थं मन्यंते। स आत्मा स विज्ञेयः तत्त्वमसि ।) इत्यादिक वचनोंकरिकै मुमुक्षुजनोंनैं जानणेयोग्य जो निर्विशेष नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव सच्चिदानंद एकरस अद्वितीय परमात्मादेव है सो परमात्मादेवरूपही मैं परमार्थतैं हूं पूर्वउक्त मायोपाधिक स्वरूप मैं परमार्थतैं नहीं ॥ १५ ॥

इस प्रकार आपणे सोपाधिकस्वरूपकूं कथन करिकै श्रीभगवान् कृपाकरिकै अर्जुनके ताईं क्षरअक्षरनामा कार्यकारणरूप दो उपाधियोंतैं

रहित निरुपाधिक शुद्ध आपणे स्वरूपकूं तीन श्लोकों करिकै प्रतिपादन करैं हैं–

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च॥
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥१६॥

(पदच्छेदः) द्वौ । इमौ । पुरुषौ । लोके । क्षरः । च । अक्षरः । एव । च । क्षरः । सर्वाणि । भूतानि । कूटस्थः । अक्षरः । उच्यते ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! संसारविषे यहे दो ही पुरुष हैं एक तौ क्षरपुरुष है तथा दूसरा अक्षर पुरुष है तहां कार्यरूप सर्व भूत तौ क्षर पुरुष कह्यौ जावे है और कारणरूप माया अक्षरपुरुष कह्याजावैहै ॥ १६ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! चैतन्यपुरुषका उपाधिरूप होणेतैं पुरुषशब्दकरिकै कथन करे हुए दो पुरुष ही इस संसारविषे हैं। कौन हैं ते दो पुरुष ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं–(क्षरश्चाक्षर एव च इति।) हे अर्जुन ! एक तौ क्षरनामा पुरुष है और दूसरा अक्षरनामा पुरुष है। अर्थात् उत्पत्तिविनाशवाला जितनाक कार्यसमूह है सो कार्य समूह तौ क्षरनामा पुरुष है और आत्मज्ञानतैं विना विनाशतैं रहित तथा क्षरनामा पुरुषके उत्पत्तिका बीजरूप ऐसी जा भगवतकी मायाशक्ति है सा कारणउपाधिरूप मायाशक्ति दूसरा अक्षरनामा पुरुष है। इसी प्रकारके तिन दोनों पुरुषोंके स्वरूपकूं श्रीभगवान् आपही स्पष्टकरिकै कथन करैं हैं (क्षरः सर्वाणि भूतानि इति।) हे अर्जुन ! उत्पत्तिविनाशवाले जितनेक कार्य हैं ते सर्व कार्य तौ क्षरः इस नामकरिकै कहे जावैं हैं। और कूटस्थ अक्षर इस नामकरिकै कह्या जावै है। तहां यथार्थवस्तुका आच्छादनकरिकै अयथार्थवस्तुका जो प्रकाशन है जिसकूं वंचनभी कहैं हैं तथा मायाभी कहैं है ताका नाम कूट है तिस कूटरूप करिकै जो स्थित होवै ताका नाम कूटस्थ है अर्थात् आवरणशक्ति, विक्षेपशक्ति इन दोनों रूपों-

करिकै जो स्थित होवै ताका नाम कूटस्थ है। ऐसे कूटस्थ नामवाली भगवत्की मायाशक्तिरूप कारणउपाधि है सा मायाशक्तिरूप कारणउपाधि इस सर्व संसारका बीजरूप होणेतैं तथा आत्मज्ञानतैं विना अन्य उपाय करिकै नहीं नाशहोणेतैं अनंत है। यातैं सा मायाशक्तिरूप कारणउपाधि अक्षर इस नामकरिकै कही जावै है इति।और किसी टीकाविषे तौ क्षरशब्द करिकै सर्व अचेतनवर्गका ग्रहण करिकै (कूटस्थोऽक्षर उच्यते) इस वचनकरिकै क्षेत्रज्ञनामा जीवात्माका ग्रहण कऱ्या है। सो यह व्याख्यान समीचीन नहीं है। काहेतैं (उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः) इस वक्ष्यमाणवचन करिकै तिस क्षेत्रज्ञ आत्माकूं ही पुरुषोत्तमरूपकरिकै प्रतिपादन करया है यातैं इहां क्षर, अक्षर इन दोशब्दोंकरिकै कार्यउपाधि कारण उपाधि यह दोनों जडउपाधि ही ग्रहणकरणे योग्य हैं ॥ १६ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे क्षरशब्दकरिकै सर्वकार्यरूप उपाधिका कथन करया। और अक्षर शब्दकरिकै भगवत्की मायाशक्तिरूप कारणउपाधिका कथन करया। अब इस श्लोकविषे तिन क्षरअक्षररूप दोनों उपाधियोंतैं विलक्षण तथा तिन दोनों उपाधियोंके दोषोंकरिकै अलिपायमान ऐसा जो नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव उत्तम पुरुष है तिस उत्तम पुरुषका श्रीभगवान् कथन करैहैं-

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ॥
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ १७ ॥

(पदच्छेदः) उत्तमः। पुरुषः। तु। अन्यः। परमात्मा। इति। उदाहृतः। यः। लोकत्रयम्। आविश्य। बिभर्ति। अव्ययः। ईश्वरः ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः अत्यंतउत्कृष्ट चेतनपुरुष तौ तिस क्षरअक्षर-दोनोंतैं भिन्नही है तथा परमात्मा इस नामकरिकै कथन कऱ्या है जो

चेतन पुरुष तीनलोकोंकूं स्वाश्रितकरिकै धारणकरै है तथा अव्ययरूपहै तथा ईश्वररूप है ॥ १७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! अत्यंत उत्कृष्ट प्रत्यक्चेतन आत्मारूप पुरुष तौ अन्यही है अर्थात् क्षरशब्दकरिकै कथन कऱ्या जो कार्यसमूह है तथा अक्षरशब्दकरिकै कथन कऱ्या जो मायारूप कारणउपाधि है तिन दोनों जड उपाधियोंतैं अत्यंत विलक्षण तथा तिन दोनो उपाधियोंका प्रकाशकरणेहारा प्रत्यक्चेतनस्वरूप उत्तम पुरुष तीसराही है । जो चेतनपुरुष वेदांतशास्त्रोंविषे परमात्मा इस नामकरिकै कथन कऱ्या है अर्थात् अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनंदमय यह जे पंचकोश है जे पंचकोश अज्ञानकरिकै तिन तिन वादियोंने आत्मरूपकरिकै कल्पना करे है ऐसे पंचकोशोंतैं जो परम होवै तथा आत्मा होवै ताका नाम परमात्मा है । तहां सो चेतनरूप उत्तमपुरुष अकल्पित होणेतै तिन कल्पित पंचकोशोंतै अत्यंत उत्कृष्ट होणेतै परम है । तथा (ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठा) इस श्रुतिनैं सर्वका अधिष्ठानरूपकरिकै कथन कऱ्या है तथा सर्वभूतोंका प्रत्यक्चेतनरूप है । इसकारणवैं वेदांतशास्त्रोंविषे सो चेतनरूप उत्तमपुरुष परमात्मा इस नामकरिकै कथन कऱ्याहै इति । हे अर्जुन ! जो परमात्मादेव भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोकइन तीनलोकरूप सर्व जगत्कूं आपणी मायाशक्तितैं स्वाश्रितकरिकै आपणी सत्तास्फूर्ति देकरिकै धारण करैहै तथा पोषण करै है । तहां श्रुति—(व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः) अर्थ यह—कार्यकारणरूप सर्वजगत्कूं परमेश्वर धारण करै है तथा भरण करैहै इति । पुनः कैसा है—अव्यय है अर्थात् जन्ममरणादिक सर्वविकारोंतैं शून्य है तथा ईश्वर है अर्थात् सूर्यचंद्रादिक सर्वजगत्का नियंता नारायणरूप है ऐसा उत्तमपुरुष वेदांतोंविषे परमात्मा इस नामकरिकै कथन कऱ्या है तहां श्रुति—(स उत्तमः पुरुषः) अर्थ यह—सो परमात्मादेव ही उत्तम पुरुष है इति । इहां प्रत्यक्चेतनरूप आत्माके जे (अव्ययः ईश्वरः) यह दो विशेषण कथन करेहैं ते दोनों विशेषण हेतुगर्भितवि-

शेषण हैं ताकरिकै यह दो अनुमान सिद्ध होवैंहैं। चेतन आत्मा तिस पूर्वउक्त अक्षरनामा दोपुरुषोंतैं भिन्न होणेकूं योग्य है अव्यय होणेतैं। जो वस्तु तिन क्षरअक्षर दोनोंतैं भिन्न नहीं होवै है सो वस्तु अव्ययभी नहीं होवैहै जैसे बुद्धिआदिक हैं इति। तथा चेतन आत्मा तिन क्षरअक्षर दोनोंतैं भिन्न होणेकूं योग्य है ईश्वर होणेतैं। जैसे प्रजाका नियंता महाराजा तिस प्रजातैं भिन्नहीं होवैहै ॥ १७ ॥

अब पूर्व कथन कऱ्या जो क्षरअक्षर दोनोंतैं विना विलक्षण परमात्मादेव है तिस परमात्मादेवका पुरुषोत्तम यह प्रसिद्धनाम कथन करिकै ऐसा परमात्मादेव मैंही हूं इस प्रकारतैं (ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहं तद्धाम परमं मम।) इत्यादिक वचनोंकरिकै पूर्व कथन करेहुए आपणे महिमाके निश्चय करावणेवासतै श्रीभगवान् आपणे स्वरूपकूं दिखावैं हैं—

यस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपि चोत्तमः ॥
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥१८॥

(पदच्छेदः) यस्मात्। क्षरम्। अतीतः। अहम्। अक्षरात्। अपि। च। उत्तमः। अतः। अस्मि। लोके। वेदे। च। प्रथितः। पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिसकारणतैं मैं परमेश्वर क्षरकूं अतिक्रमण करताभयाहूं तथा अक्षरतैं भी अत्यंत उत्कृष्टहूं इस कारणतैं लोकविषे तथा वेदविषे पुरुषोत्तम इस नामकरिकै प्रसिद्ध हुआहूं ॥ १८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! कार्यरूप होणेतैं विनाशवान् तथा स्वप्नादिकोंकी न्याईं मायामय ऐसा जो अश्वत्थनामा यह संसारवृक्ष है तिस संसारवृक्षरूप क्षरकूं मैं परमेश्वर जिसकारणतैं अतिक्रमण करताभयाहूं। तथा माया, अविद्या, अज्ञान, भगवत्शक्ति इत्यादिक नामोंकरिकै प्रसिद्ध जो अव्याकृतरूप कारण है जिस अव्याकृतरूप कारणकूं (अक्षरात्परतः परः) इस श्रुतिविषे अक्षर इस नामकरिकै कथन कऱ्याहै तथा जो

मायारूप अक्षर इस संसारवृक्षका बीजरूप है ऐसे सर्वजगत्के कारणरूप मायानामा अक्षरतैंभी मैं परमेश्वर उत्तम हूं अर्थात् चैतन्यरूप होणेतैं मैं परमेश्वर तिंस जडरूप अक्षरतैं अत्यंत उत्कृष्ट हूं । इस कारणतैं अर्थात् चैतन्यपुरुषका उपाधिरूप जे क्षरअक्षर दोनों है जे क्षरअक्षर दोनों चेतन पुरुषके तादात्म्य अध्यासतैं पुरुष इस नामकरिकै कहे जावैं है ऐसे क्षरअक्षररूप दोनों उपाधियोंतैं अत्यंत उत्कृष्ट होणेतैं मै परमेश्वर इस लोकविषे तथा वेदविषे पुरुषोत्तम इस नाम करिकै प्रसिद्ध हुआ हूं । तहां कविपुरुषोंकरिकै रचित काव्यादिरूप लोकविषे तौ-(हरिर्यथैकः पुरुषोत्तमः ।) इत्यादिक वचनोंकरिकै मैं परमेश्वर पुरुषोत्तम इस नाम-करिकै प्रसिद्ध हूं । और वेदविषे तौ (स उत्तमः पुरुषः) इत्यादिक वचनोंकरिकै मैं परमेश्वर पुरुषोत्तम इस नामकरिकै प्रसिद्ध हूं ॥ १८ ॥

अब श्रीभगवान् पूर्व उक्त अर्थसहित तिस पुरुषोत्तमनामके ज्ञानका फल वर्णन करैं हैं-

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ॥
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥ १९ ॥

(पदच्छेदः) यः । माम् । एवम् । असंमूढः । जानाति । पुरुषोत्तमम् । सः । सर्ववित् । भजति । माम् । सर्वभावेन । भारत ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष संमोहतैं रहितहुआ मै परमेश्वरकूं इसप्रकार पुरुषोत्तमरूप जानताहै सो पुरुषही सर्वज्ञ होवैहै तथा भक्ति-योगकरिकै मैंपरमेश्वरकूं सेवनकरैहै ॥ १९ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जो अधिकारी पुरुष असंमूढ हुआ अर्थात् यह कृष्णभी कोई मनुष्यविशेषही है या प्रकारके संमोहतैं रहित हुआ मैं परमेश्वरकूं पुरुषोत्तमनामके अर्थ ज्ञानपूर्वक पुरुषोत्तमरूप ही जानै है मनुष्यरूप जानता नहीं सो अधिकारी पुरुष ही मैं परमेश्वरकूं

निरतिशय प्रेमलक्षण भक्तियोगकरिकै सेवन करै है । तथा सो अधिकारी पुरुष ही सर्ववित् है अर्थात् मैं परमेश्वरकूं सर्वका आत्मारूपकरिकै जानणेहारा सो पुरुष ही सर्वज्ञ है। यातैं (मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते । स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ।) यह जो पूर्व वचन कह्या था सो वचन युक्तहीहै। तथा (ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्) यह जो वचन पूर्व कथन कऱ्या था सो वचनभी युक्तही है ॥ १९ ॥

अब श्रीभगवान् इस पंचदश अध्यायके अर्थकी स्तुति करतेहुए इस अध्यायका उपसंहार करै हैं–

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ ॥
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥२०॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

(पदच्छेदः) इति । गुह्यतमम् । शास्त्रम् । इदम् । उक्तम् । मया । अनघ । एतत् । बुद्ध्वा । बुद्धिमान् । स्यात् । कृतकृत्यः । च । भारत ॥ २० ॥

(पदार्थः) हे सर्वव्यसनोंतैं रहित भारत ! मैंभगवान्नैं तुम्हारेप्रति इसंपूर्वउक्तप्रकारकरिकै अत्यंत रहस्यरूप तथा संपूर्णशास्त्ररूप यहँ पंचदशाध्याय कथनकऱ्याहै इसकूं जानिकै यह पुरुष आत्मज्ञानवाला होवैहै तथा कृतकृत्य होवैहै ॥ २० ॥

भा० टी०–हे अनघ !अर्थात् हे सर्वव्यसनोंतैं रहित तथा हे भारत! अर्थात् हे भरतवंशविषे उत्पन्नहुए अर्जुन ! मैं भगवान्नैं तैं अर्जुनके प्रति इस पंचदश अध्यायविषे पूर्वउक्त प्रकारकरिकै अत्यंत रहस्यरूप संपूर्ण शास्त्र ही संक्षेपकरिकै कथन कऱ्याहै अर्थात् अष्टादश अध्यायरूप सर्व गीताशास्त्रका जितनाक अर्थ है सो संपूर्ण अर्थ हमनैं संक्षेपकरिकै इस पंचदश अध्यायविषे तुम्हारे प्रति कथन कऱ्याहै । यातैं इस पंचदश

अध्यायके अर्थकूं ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखतैं निश्चयकरिकै यह अधिकारी पुरुष बुद्धिमान् होवैहै अर्थात् मैं ब्रह्मरूप हूं इस प्रकारके आत्मज्ञानवाला होवैहै तथा सो अधिकारी पुरुष कृतकृत्यभी होवैहै।तहां इसअधिकारी पुरुषकूं तिसतिस वर्ण आश्रमविषे करणेयोग्य जितनेक शुभकर्म हैं ते सर्व शुभकर्म करेहुए हैं जिस पुरुषनैं अर्थात् जिस पुरुषकूं पुनः कोई कर्म करणेयोग्य रह्या नहीं ता पुरुषका नाम कृतकृत्यहै तात्पर्य यह—श्रेष्ठकुलविषे जन्मकूं प्राप्तहुए ब्राह्मणनैं जो जो शास्त्रविहितकर्म करणेयोग्यहै सो सर्व कर्म परमात्मादेवके साक्षात्कार हुए कन्या जावै है तिस परमात्मादेवके साक्षात्कारतैं विना किसी भीपुरुषके तिन कर्त्तव्य कर्मोंकी समाप्ति होती नहीं। इहां (हे अनघ हे भारत) इन दोनों संबोधनोंकरिकै श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन करताभया।इस पंचदश अध्यायके अर्थकूं जानिकै जबी साधारण पुरुषभी आत्मज्ञानवाला होइकै कृतकृत्य होवैहै तबी तूं अर्जुन तौ महाकुलविषे जन्मकूं प्राप्त हुआ है तथा आप सर्वव्यसनोंतैं रहितहैं यातैं कुलके गुणोंकरिकै तथा आपणे गुणोंकरिकै युक्त हुआ तूं अर्जुन इस पंचदश अध्यायके अर्थकूं जानिकै आत्मज्ञानवाला होइकै कृतकृत्य होवैगा याकेविषे क्या कहणाहै इति । और (हे अनघ) इस संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं यहभी अर्थ सूचन कन्या—सर्व व्यसनोंतैं रहित अधिकारी पुरुषके प्रतिही ब्रह्मवेत्ता गुरुनैं यह अत्यंत गुह्य ब्रह्मविद्या उपदेश करणी । व्यसनोंवाले पुरुषकूं यह ब्रह्मविद्या उपदेश करणी नहीं॥ २० ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां पंचदशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १५ ॥

अथ षोडशाऽध्यायप्रारंभः ।

. तहां पूर्वले अध्यायविषे (अधश्च मूलान्यनुसंततानि कर्मानुबंधीनि मनुष्यलोके ।) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नें मनुष्यदेहविषे पूर्वले पुण्यपापकर्मोंके अनुसार अभिव्यक्तिकूं प्राप्तहुई शुभवासनावोंकूं संसारवृक्षका अवांतर मूलरूपकरिकै कथन कऱ्या था ते वासना ही पूर्व नवमें अध्यायविषे प्राणियोंकी प्रकृतिरूप करिकै दैवी, आसुरी, राक्षसी यह तीनप्रकारकी सूचन करीथी । तहां वेदनें बोधन करे जे नित्यनैमित्तिक कर्म हैं तथा आत्मज्ञानके शमदमादिक उपाय हैं तिन दोनोंके अनुष्ठान करणेविषे प्रवृत्ति करावणेहारी जा सात्त्विकी शुभवासना है सा सात्त्विकी शुभवासना दैवी प्रकृति कही जावै है । और वेदउक्त निषेधका उल्लंघन करिकै स्वभावतैं सिद्ध रागद्वेषके अनुसारी तथा सर्व अनर्थोंका कारणरूप जा प्रवृत्ति है ता प्रवृत्तिका हेतुभूत जा राजसी तामसीरूप अशुभवासना है सा अशुभवासना आसुरी प्रकृति तथा राक्षसी प्रकृति कही जावै है । तहां विषयभोगोंकी प्रधानताकरिकै रागकी प्रबलतातैं ता अशुभवासनाविषे आसुरी प्रकृतिपणा है । और हिंसाकी प्रधानताकरिकै द्वेषकी प्रबलतातैं ता अशुभवासनाविषे राक्षसी प्रकृतिपणा है । इतना दोनोंका अवांतरभेद है इति । अब इस अध्यायविषे यह वार्त्ता कहैं हैं । शास्त्रके अनुसारिपणेकरिकै तिस शास्त्रविहित अर्थविषे प्रवृत्तिकरावणेहारी जा सात्त्विकी शुभवासना है सा सात्त्विकी शुभवासना तौ दैवीसंपद् कही जावै है । और शास्त्रका उल्लंघनकरिकै तिस शास्त्रनिषिद्ध विषयोंविषे प्रवृत्तिकरावणेहारी जा राजसी तामसीरूप अशुभवासनाहै सा अशुभवासना राक्षसी, आसुरी इन दोनोंकी एकताकरिकै आसुरीसंपद् कही जावै है । इस रीतिसैं शुभरूपताकरिकै तथा अशुभरूपताकरिकै दोप्रकारका ही वासनावोंका भेद है । यहही दोप्रकारका भेद (द्वयाहप्राजापत्या देवाश्चासुराश्च ।) इत्यादिक श्रुतियोंविषे कथन कऱ्या है । तहां दैवीसंपद्रूप शुभवासना

तो इस अधिकारी पुरुषके मोक्षका हेतु है । और आसुरीसंपद्रूप अशुभवासना इस पुरुषके बंधका हेतु है । यातैं दैवीसंपद्रूप शुभवासना तौ इस अधिकारी पुरुषनैं अवश्यकरिकै ग्रहण करणेयोग्य है । और आसुरीसंपद्रूप अशुभवासना अवश्यकरिकै परित्यागकरणेयोग्य है सो शुभवासनावोंका ग्रहण तथा अशुभवासनावोंका परित्याग तिन शुभवासनावोंके स्वरूप जानेतैं विना होवै नहीं । यातैं श्रीभगवान्नैं तिन शुभवासनावोंके ग्रहण करावणेवास्तै तथा तिन अशुभवासनावोंके परित्याग करावणेवास्ते तिन शुभवासनावोंके स्वरूपकूं कथन करणेहारा यह षोडशाध्याय प्रारंभ करीता है । तहां प्रथम तीन श्लोकोंकरिकै श्रीभगवान् ग्रहणकरणेयोग्य दैवीसंपद्के स्वरूपकूं कथन करैं है—

श्रीभगवानुवाच ।

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ॥
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ १ ॥

(पदच्छेदः) अभयम् । सत्त्वसंशुद्धिः । ज्ञानयोगव्यवस्थितिः । दानम् । दमः । च । यज्ञः । च । स्वाध्यायः । तपः । आर्जवम् ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अभय अंतःकरणकी शुद्धि ज्ञान योग दोनोंविषे स्थिति दान तथा दम तथा यज्ञ स्वाध्याय तप आर्जव यह सर्व दैवीसंपद्रूप हैं ॥ १ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! शास्त्रनैं उपदेश कऱ्या जो अर्थ है ता अर्थविषे संशयतैं रहित होइकै जो तिस अर्थके अनुष्ठान करणेविषे तत्परता है ताका नाम अभय है । अथवा सर्वपरिग्रहतैं रहित एकाकी स्थितहुआ मैं कैसे जीवोंगा इसप्रकारके भयतैं जो रहितपणा है ताका नाम अभय है । और अंतःकरणकी जा सम्यक् निर्मलता है ताका नाम सत्त्वसंशुद्धि है । तहां ता अंतःकरणकी शुद्धिविषे जा परमेश्वरके स्वरूप जानणेकी

योग्यता है यहही ता अंतःकरणकी शुद्धिविषे सम्यक्‌पणा है । अथवा परवंचन, माया, अनृत इत्यादिकोंका जो परित्याग है ताका नाम सत्त्वसंशुद्धि है । तहां आपणे अर्थकी सिद्धि करणेवासतै जिसीकिसी मिसकरिकै जो परका वशकरणा है ताका नाम परवंचन है । और हृदयविषे अन्यप्रकारका अभिप्रायराखिकै बाह्यतैं अन्यप्रकारका व्यवहार करणा याका नाम माया है । और जैसा वृत्तांत देख्या होवै तैसा वृत्तांत मुखतै नहीं कथन करणा किंतु तिसतैं अन्यथाही कथन करणा याका नाम अनृत है । इत्यादिकोंतैं जो रहितपणा है ताका नाम सत्त्वसंशुद्धि है । और अध्यात्मशास्त्रतै जो आत्माके स्वरूपका निश्चय है ताका नाम ज्ञान है । और चित्तकी एकाग्रताकरिकै तिस स्वरूपका जो आपणे अनुभवविषे आरूढपणा है ताका नाम योग है । तिस ज्ञान योग दोनोंविषे जा व्यवस्थिति है अर्थात् सर्वकालविषे तत्परता है ताका नाम ज्ञानयोगव्यवस्थिति है । अथवा (अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।) इस वचनका यह दूसरा अर्थ करणा (अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा) अर्थ यह–हमारेतैं सर्व भूतप्राणियोंके ताईं अभय प्राप्त होवै इस प्रकारका अभयदान देणेका संकल्प संन्यासके ग्रहण कालविषे होवै है ता संकल्पका जो परिपालन है अर्थात् शरीर, मन, वाणीकरिकै जो किसीभी प्राणीकूं भयकी प्राप्ति नहीं करणी है ताका नाम अभय है । यह अभयरूप धर्म दूसरेभी परमहंसके सर्व धर्मोंका उपलक्षण है । और श्रवण मनन निदिध्यासन इन तीनोंकी परिपक्वताकरिकै अन्तःकरणका असंभावना विपरीतभावनादिक मलोंतैं जो रहितपणा है ताका नाम सत्त्वसंशुद्धि है । और अहंब्रह्मास्मि इसप्रकारका जो आत्मसाक्षात्कार है । ताका नाम ज्ञान है । और मनोनाश वासनाक्षय इन दोनोंके अनुकूल जो पुरुषप्रयत्न है ताका नाम योग है । तिस ज्ञान योग दोनों करिकै जा संसारी जनोंतैं विलक्षण जीवनमुक्तिरूप अवस्थिति है ताका नाम ज्ञानयोगव्यवस्थिति है । इस प्रकारके व्याख्यान किये हुए यह अभयादिक दैवी संपद् फलरूपही जानणी । तहां भगवद्भक्तितैं विना

सा अन्तःकरणकी शुद्धि होती नहीं । यातैं, ता अन्तःकरणकी शुद्धिके कथन करिकै सा भगवद्भक्तिभी कथन हुई जानणी । काहेतैं (महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः । भजंत्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥) इस नवमे अध्यायके श्लोकविषे दैवीसंपद्विषे भगवद्भक्तिका भी कथन कऱ्या था और सा भगवद्भक्ति अत्यंत श्रेष्ठ है । यातैं श्रीभगवानूनैं इहां अभयादिकोंके साथि तिस भगवद्भक्तिका पठन कऱ्या नहीं इति । इस प्रकार महान् भाग्यवाले परमहंस संन्यासियोंके फलभूत दैवीसंपद्कूं कथन करिकै श्रीभगवान् अब तिन संन्यासियोंतैं अन्य गृहस्थादिकोंके साधनभूत दैवीसंपद्कूं कथन करैं हैं–(दानं दमश्च इति) तहां आपणे ममत्वअभिमानके विषय जे अन्न, सुवर्ण, गौ, भूमि, गृह, इत्यादिक पदार्थ हैं तिन अन्नादिक पदार्थोंका यथाशक्ति परिमाण तथा श्रद्धाभक्तिपूर्वक जो अतिथि ब्राह्मणादिकोंके ताईं देणा है ताका नाम दान है । और श्रोत्रादिक बाह्य इंद्रियोंका जो स्वस्वविषयतैं निवृत्तिरूप संयम है ताका नाम दम है । यद्यपि गृहस्थ पुरुषोंविषे सर्व प्रकारतैं इंद्रियोंका संयम संभवता नहीं तथापि ऋतुकालादिकोंतैं अतिरिक्त कालविषे जो मैथुनादिकोंका नहीं करणा है यह ही तिन गृहस्थोंके इंद्रियोंका संयम है । इहां (दमश्च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार इहां नहीं कथन करे हुए दूसरेभी निवृत्तिरूप धर्मोंके समुच्चय करावणेवासतै है । और शास्त्रविहित कर्मविशेषका नाम यज्ञ है सो यज्ञ दोप्रकारका होवै है । एक तौ श्रौतयज्ञ होवै है और दूसरा स्मार्त्तयज्ञ होवै है । तहां अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, सोमयाग इत्यादिक श्रौतयज्ञ कहे जावैंहैं । और देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, यह च्यारों स्मार्त्तयज्ञ कहे जावैं हैं । यद्यपि ब्रह्मयज्ञभी स्मार्त्तयज्ञ ही कह्या जावै है तथापि इहां तिस ब्रह्मयज्ञका स्वाध्यायपदकरिकै पृथक्ही कथन कऱ्या है । यातैं इहां यज्ञ शब्दकरिकै च्यारिही स्मार्त्तयज्ञ ग्रहण करे हैं । इहां (यज्ञश्च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार इहां नहीं कथन करे हुए

दूसरेभी प्रवृत्तिरूप धर्मोंके समुच्चय करावणेवासते हैं यह दान, दम, यज्ञ इन तीनों गृहस्थपुरुषके ही दैवीसंपद्रूप हैं । और पुण्यविशेषकी उत्पत्तिवासतै जो ऋगादिकवेदोंका अध्ययन है ताका नाम स्वाध्याय है । इस स्वाध्यायकूं ही ब्रह्मयज्ञ कहैं हैं यद्यपि पूर्वउक्त यज्ञशब्दकरिकै पंचप्रकारके स्मार्त्तयज्ञोंका कथन संभव होइसकै है तथापि तिस स्वाध्यायविषे ब्रह्मचारीका असाधारण धर्मपणा कथन करणेवासतै श्रीभगवान्नैं इहां स्वाध्यायका पृथक् कथन कर्‍या है । और आगे सप्तदश अध्यायविषे कथन कर्‍या जो शारीर, वाचिक, मानसिक यह तीन प्रकारका तप है सो तीन प्रकारका तप ही इहां तप शब्दकरिकै ग्रहण करणा । सो तप वानप्रस्थका असाधारण धर्म है । इस प्रकार संन्यास, गृहस्थ, ब्रह्मचर्य वानप्रस्थ इन च्यारि आश्रमोंके असाधारण कर्मोंकूं कथन करिकै अब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन च्यारिवर्णोंके असाधारणकर्मोंका कथन करैं हैं (आर्जवम् इति) तहां वक्रभावका जो परित्याग है ताका नाम आर्जवहै अर्थात् श्रद्धावान् श्रोतार्योंके समीप निश्चयकरेहुए अर्थका जो नहीं गुह्य रखणाहै ताका नाम आर्जवहै ॥ १ ॥

किंच-

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शांतिरपैशुनम् ॥
दयाभूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) अहिंसा । सत्यम् । अक्रोधः । त्यागः । शांतिः । अपैशुनम् । दया । भूतेषु । अलोलुप्त्वम् । मार्दवम् । ह्रीः । अचापलम् ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अहिंसा सत्य अक्रोध त्याग शान्ति अपैशुन सर्वभूतोंविषे दया अलोलुप्त्व मार्दव ह्री अचापल यह सर्व दैवीसंपद्रूप हैं ॥ २ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! प्राणियोंके जीविकारूप वृत्तिका जो छेदन है ताका नाम हिंसा है ता हिंसातैं जो रहितपणा है ताका नाम अहिंसा है। अर्थात् जिसजिस प्राणीका जिसजिस वृत्तितैं जीवन होता होवै तिसतिस प्राणीके तिसतिस वृत्तिका कदाचित्भी छेदन नहीं करणा याका नाम अहिंसा है। और अनर्थका अजनक ऐसा जो यथार्थ अर्थका बोधक वचन है तिस वचनका सर्वदा उच्चारण करणा याका नाम सत्य है। तहां जिस यथार्थ अर्थके बोधकवचनके उच्चारणतैं ब्राह्मणादिकोंकी हिंसा होवैहोवै तिसविषे सत्यताके निवृत्त करणेवासतैं अनर्थका अजनक यह विशेषण कथन कऱ्या है। और अन्यप्राणियोंनैं वाणीकरिकै निरादर कियेहुए तथा ताडन कियेहुएतैं उत्पन्न भया जो क्रोध है ता क्रोधका तिसी कालविषे जो उपशमन है ताका नाम अक्रोध है। और शास्त्रकी विधिपूर्वक सर्वकर्मोंका जो संन्यास है ताका नाम त्याग है यद्यपि कहां दानकूंभी त्याग कहै हैं तथापि सो दान पूर्वश्लोकविषे कथन करि आयेहैं यातैं इहां त्यागशब्दकरिकै सर्वकर्मोंका संन्यास ही ग्रहण करणा। और अंतःकरणका जो उपशम है ताका नाम शांति है। और परोक्षकालविषे अन्यपुरुषके दोषोंकूं अन्यपुरुषके आगे जो प्रगट करणा है ताका नाम पैशुन है तिस पैशुनके अभावका नाम अपैशुन है। और दुःखीप्राणियों ऊपरि जा कृपा है ताका नाम दया है। और विषयोंके समीप प्राप्त हुएभी तथा भोगकी सामर्थ्यताके विद्यमान हुएभी जो इंद्रियोंका अविक्रियपणा है ताका नाम अलोलुप्त्व है। और क्रूरस्वभावतैं रहितपणेका नाम मार्दव है। अर्थात् व्यर्थ पूर्वपक्षादिकोंकूं करणेहारे शिष्यादिकोंके प्रतिभी अप्रियवाणीतैं रहित होइकै जो प्रियवाणीकरिकै बोधन करणा है ताका नाम मार्दव है। और नहीं करणेयोग्य कार्यविषयक प्रवृत्तिके आरंभविषे तिस प्रवृत्तिका प्रतिबंधक जा लोकलज्जा है ताका नाम ह्री है। और प्रयोजनतैं विनाभी जो वाक्, पाणि, पाद इत्यादिक इंद्रियोंके व्यापारका करणा है ताका नाम चापल है। ता चापलका जो अभाव है

ताका नाम अचापल है । तहां आर्जवतैं लैके अचापलपर्यंत यह पूर्वउक्त ब्राह्मणके दैवीसंपद्रूप असाधारण धर्म हैं ॥ २ ॥

किंच–

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ॥
भवंति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) तेजः । क्षमा । धृतिः । शौचम् । अद्रोहः । नातिमानिता । भवंति । संपदम् । दैवीम् । अभिजातस्य । भारत ३ ॥

(पदार्थः) हे भारत ! तेज क्षमा धृति शौच अद्रोह नातिमानिता यह सर्व सत्त्वगुणमयी वासनाकूं संपादनकरिकै जन्मेहुए पुरुष प्रात होवैं हैं ॥ ३ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! प्रगल्भताका नाम तेज है अर्थात् स्त्रीबालकादिक मूढजनोंकरिकै जो अभिभवकूं नहीं प्राप्त होणा है ताका नाम तेज है । और सामर्थ्यके विद्यमान हुएभी जो परिभव करणेहारे पुरुषोंऊपरि क्रोध नहीं करणा है ताका नाम क्षमा है । और व्याकुलताकूं प्राप्तहुएभी देहइंद्रियोंके स्थिरता करणेका जो प्रयत्नविशेष है जिस प्रयत्नविशेषकरिकै स्थिर करेहुए शरीर इंद्रिय व्याकुलताकूं प्राप्त होते नहीं ता प्रयत्नविशेषका नाम धृति है । यह तेज, क्षमा, धृति तीनों क्षत्रियके दैवीसंपद्रूप असाधारण धर्म हैं । और धनादिक अर्थोंके संपादनादिकोंविषे जो माया अनृतआदिकोंतैं रहितपणा है ताका नाम शौच है यह शौच अंतरका शौच ही जानणा । मृत्तिका जलादिकोंकरिकै जन्य शरीरकी शुद्धिरूप बाह्य शौचका इहां शौचशब्दकरिकै ग्रहण करा नहीं काहेतैं तिस शौचकूं शरीरकी शुद्धिरूपताकरिकै बाह्यपणा होणेतैं अंतःकरणकी वासनारूपता है नहीं । और इहां प्रसंगविषे तौ सात्त्विकादिक भेदकरिकै भिन्न अंतःकरणकी वासनावोंका ही दैवी आसुरी संपद्रूपकरिकै प्रतिपादन विवक्षित है । यातैं ता शौच-

पदकरिकै तिस बाह्यशौचका ग्रहण करणा नहीं । और स्वाध्यायकी न्याई जिसीकिसी रूपकरिके तिस बाह्यशौचकूंभी जो वासनारूप अंगीकार करिये तौ शौचशब्दकरिकै तिस बाह्यशौचकाभी ग्रहण करणा इति । और किसी प्राणीके हनन करणेकी इच्छा करिकै जो शस्त्रादिकोंका ग्रहण है ताका नाम द्रोह है ता द्रोहतैं जो निवृत्ति है ताका नाम अद्रोह है । यह शौच अद्रोह दोनों वैश्यके दैवीसंपद्रूप असाधारण धर्म हैं । और अत्यंत मानीपणेका नाम अतिमानिता है अर्थात् आपणेविषे पूज्यत्व अतिशयकी जा भावना है ताका नाम अतिमानिता है । ता अतिमानिताका जो अभाव है ताका नाम नातिमानिता है अर्थात् आपणेकरिकै पूज्य जे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यह तीन वर्ण हैं तिन्होंके आगे जो नम्रभाव है ताका नाम नातिमानिता है । यह नातिमानिता शूद्रका दैवीसंपद्रूप असाधारण धर्म है इति । इहां (तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषंति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन) इत्यादिक श्रुतियोंनें आत्मज्ञानके इच्छाके उपायरूपकरिकै कथन करे असाधारणरूप तथा साधारणरूप वर्णआश्रमके धर्म हैं ते सर्व धर्मभी इहां दैवीसंपद्रूप करिकै ग्रहण करणे । इस प्रकार अभयधर्मतैं आदिलैके नातिमानिताधर्मपर्यंत तीन श्लोकोंकरिकै कथन करे जे भिन्नभिन्न वर्णआश्रमके धर्म हैं ते धर्म इस पुरुषविषे उत्पन्न होवैं हैं । तहां किसीप्रकारके पुरुषविषे ते धर्म उत्पन्न होवैं हैं ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (संपदं दैवीम् । अभिजातस्य इति) हे अर्जुन । इस शरीरके आरंभकालविषे पूर्वले पुण्यकर्मोंकरिकै अभिव्यक्तिकूं प्राप्तहुआ जो शुद्धसत्त्वगुणमय वासनावोंका समूह है तिस शुभवासनावोंके समूहकूं आपणे अंतःकरणविषे प्रादुर्भावहुआ देखिकै जन्मकूं प्राप्तहुआ जो पुरुष है जिस पुरुषकूं आगे श्रेयकी प्राप्ति होणी है तिस पुरुषकूं ही यह अभयादिक धर्म प्राप्त होवें हैं । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है । तहां श्रुति-(पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन ।) अर्थ यह—पूर्वपूर्वजन्मके पुण्यकर्मकी वासनाकरिकै यह पुरुष उत्तर उत्तर जन्मविषे पुण्यवान् होवै

है। और पूर्वपूर्वजन्मके पापकर्मकी वासनाकरिकै यह पुरुष उत्तरउत्तर जन्मविषे पापवान् होवै है इति। इहां (हे भारत) इस संबोधनके कहणेकरिकै श्रीभगवान्नै यह अर्थ सूचन कऱ्या-शुद्धवंशविषे उत्पन्न होणेतैं तूं अर्जुन अत्यंत पवित्र है। यातै तूं अर्जुन इस पूर्वउक्त दैवीसंपद्रूप धर्मोंके संपादन करणेकूं योग्य है ॥ ३ ॥

तहां पूर्व तीन श्लोकोंकरिकै ग्राह्यतारूपकरिकै दैवीसंपद्कूं कथन कऱ्या। अब श्रीभगवान् परित्यागकरिकै आसुरी संपद्कूं एक श्लोककरिकै संक्षेपतै कथन करैं हैं-

दंभो दर्पोऽतिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ॥
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) दंभः। दर्पः। अतिमानः। च। क्रोधः। पारुष्यम्। एव। च। अज्ञानम्। च। अभिजातस्य। पार्थ। संपदम्। आसुरीम् ॥ ४ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! रजतमोगुणमय अशुभवासनाकूं संपादनकरिकै जन्मेहुए पुरुषकूं दंभ दर्प तथा अतिमान क्रोध तथा पारुष्य तथा अज्ञान यह दोषही प्राप्त होवैं है ॥ ४ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! आपणे महान्पणेकी सिद्धिवासतै लोकोंके समीप आपणेकूं अत्यंत धर्मात्मापणेकरिकै, जो प्रसिद्ध करणा है ताका नाम दंभ है और धन, विद्या, कुल, स्वजन, रूप, कर्म इत्यादिक हैं निमित्त जिसविषे ऐसा जो श्रेष्ठपुरुषोंके अपमान करणेका हेतुभूत गर्वविशेष है ताका नाम दर्प है। और आपणेविषे जो अत्यंत पूज्यत्वरूप अतिशयताका आरोप है ताका नाम अतिमान है। जिस अतिमानकरिकै असुर पराभवकूं प्राप्त होतेभये हैं। यह वार्त्ता (देवाश्चासुराश्चोभये प्राजापत्याः पस्पृधिरे ततोऽसुरा अतिमानेनैव कस्मिन्वयं जुहुयामेति स्वेष्वेवास्येषु जुह्वतश्चेरुस्तेऽतिमानेनैव पराबभूवुस्तस्मान्नातिमन्येत पराभवस्य ह्येतन्मुखं

यदतिमानः इति ।) इसप्रकार शतपथब्राह्मणविषे कथन करी है । और आपणे अनिष्ट करणेविषे तथा परके अनिष्ट करणेविषे प्रवृत्ति करावणेहारा जो अभिज्वलनरूप अंतःकरणकी वृत्तिविशेष है जिसकूं क्षोभभी कहैं हैं ताका नाम क्रोध है । और प्रत्यक्ष अत्यंत रूक्षवचनका जो उच्चारण है ताका नाम पारुष्य है । इहां (पारुष्यमेव च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार इहां नहीं कथन करेहुए जे भावरूप चपलतादिक दोष हैं तिन सर्वदोषोंके समुच्चय करावणेवासतै है । और यह कार्य हमारेकूं करणेयोग्य है यह कार्य हमारेकूं नहीं करणेयोग्य है या प्रकारका जो कर्त्तव्यविषयक विवेक है ता विवेकके अभावका नाम अज्ञान है । इहां (अज्ञानं च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार इहां नहीं कथन करेहुए जे अभावरूप अधृतिआदिक दोष हैं तिन दोषोंकेभी समुच्चय करावणेवासतै है । तहां ऐसे दंभादिक दोष किस पुरुषकूं प्राप्त होवैं हैं ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं-(आसुरीं संपदम् । अभिजातस्य इति ।) हे अर्जुन ! इस शरीरके आरंभकालविषे पूर्वले पापकर्मोंकरिकै अभिव्यक्तिकूं प्राप्त हुआ तथा असुरपुरुषोंके प्रीतिका विषय ऐसा जो रजोगुण तमोगुणमय अशुभवासनावोंका समूह है तिस अशुभवासनावोंके समूहकूं आपणे अंतःकरणविषे प्रादुर्भावहुआ देखिकै जन्मकूं प्राप्त हुआ जो पुरुष है जिस पुरुषका आगे अश्रेय होणा है ऐसे निंदित पुरुषकूं ते दंभतैं लैके अज्ञानपर्यंत सर्व दोषही प्राप्त होवैं हैं । पूर्वउक्त अभयादिक गुण तिस पुरुषकूं कदाचित्भी प्राप्त होवैं नहीं । इहां (हे पार्थ) इस संबोधनके कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन कऱ्या । विशुद्धकुलविषे उत्पन्न हुई पृथामाताका तूं पुत्र है यातैं इस दंभदर्पादिक असुरसंपद्के तूं योग्य नहीं है इति । इहां मूलश्लोकविषे (अतिमानश्च) इस पदके स्थानविषे (अभिमानश्च) इस प्रकारका पाठ यद्यपि बहुत पुस्तकोंविषे है तथापि श्रीभाष्यकारोंनैं तथा भाष्यके व्याख्यानकर्ता श्रीस्वामी आनंदगिरिनैं तथा श्रीस्वामी

मधुसूदननैं (अतिमानश्च) इसप्रकारके पाठकूं अंगीकार करिकै ही व्याख्यान कर्याहे । यातैं इहां (अतिमानश्च) इसप्रकारका ही पाठ लिख्या है ॥ ४ ॥

तहां पूर्व च्यारि श्लोकोंकरिकै दैवीसंपद् तथा आसुरीसंपद् यह दो प्रकारकी संपद् कथन करी । अब अधिकारी जनोंकूं तिस दैवीसंपद्विषे प्रवृत्त करणेवासतै तथा तिस आसुरीसंपद्तैं निवृत्त करणेवासतै श्रीभगवान् इन दोनों संपदोंके भिन्न भिन्न फलोंकूं कथन करैं हैं-

दैवीसंपद्विमोक्षाय निबंधायासुरी मता ॥
मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोसि पांडव ॥ ५ ॥

(पदच्छेदः) दैवीसंपत् । विमोक्षाय । निबंधाय । आसुरी । मता । मा । शुचः । संपदम् । दैवीम् । अभिजातः । असि । पांडव ॥ ५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! दैवीसंपत् मोक्षवासतै होवैहै और आसुरीसंपत् बंधकेवासतै मानीहै हे पांडव । तूं दैवी सम्पद्कूं संपादनकरिकै जन्म्या है यातैं तूं मत शोककर ॥ ५ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन च्यारिवर्णके मध्यविषे तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास इस च्यारि आश्रमोंके मध्यविषे जिसजिस वर्णके प्रति तथा जिसजिस आश्रमके प्रति वेदभगवान्नैं जाजा फलकी इच्छातैं रहित सात्त्विकी क्रिया विधान करी है सासा क्रिया तिसीतिसी वर्णकी तथा तिसीतिसी आश्रमकी दैवीसंपत् कही जावै है । सा दैवीसंपद् सत्त्वशुद्धि, भगवद्भक्ति, ज्ञानयोगव्यवस्थिति इतने पर्यंत सिद्ध हुई इस अधिकारी पुरुषकूं संसारबंधनतैं विमोक्षवासतै ही होवैहै । अर्थात् सा दैवीसंपत् इस अधिकारी पुरुषकूं कैवल्यमोक्षकी ही प्राप्ति करै है । यातैं आपणे श्रेयकी इच्छा करणेहार पुरुषोंनैं सा दैवीसंपत् ही ग्रहण करणे योग्य है इति । और तिन च्या-

रिवर्णोंके मध्यविषे तथा तिन च्यारि आश्रमोंके मध्यविषे जिस जिस वर्णके प्रति तथा जिस जिस आश्रमके प्रति वेदभगवान्नैं जा जा फलकी इच्छापूर्वक तथा अहंकारपूर्वक राजसी तामसी क्रिया निषेध करी है सा सा निषिद्ध क्रियाही तिस तिस वर्णकी तथा तिसतिस आश्रमकी आसुरीसंपत् कही जावै है। इसी आसुरीसंपत्विषेही राक्षसी प्रकृतिका अंतर्भाव है। सा आसुरीसंपत् तौ नियमतैं संसाररूप बंधके वास्तै ही शास्त्रोंकूं तथा शास्त्रवेत्ता पुरुषोंकूं संमत है। अर्थात् सर्वशास्त्र सर्वशास्त्रवेत्ता तिस पुरुष आसुरीसंपत्कूं वारंवार जन्ममरणरूप संसारबंधकाही कारण कहैं हैं। यातैं श्रेयके प्राप्तिकी इच्छावान् अधिकारी पुरुषोंनैं सा आसुरीसंपत् अवश्यकरिकै परित्याग करणे योग्य है। तहां मैं अर्जुन दैवीसंपत्करिकै युक्त हूं अथवा आसुरीसंपत्करिकै युक्त हूं इस प्रकारके संशययुक्त अर्जुनके प्रति श्रीभगवान् धैर्य देवैं हैं (माशुचः इति) हे अर्जुन! मैं अर्जुन आसुरीसंपत्करिकै युक्त हूं इसप्रकारकी शंकाकरिकै तूं शोककूं मत प्राप्त होउ। जिसकारणतैं तूं अर्जुनभी इस शरीरके आरंभकालविषे पूर्वले पुण्यकर्मोंकरिकै अभिव्यक्तिकूं प्राप्त हुई सात्त्विकी शुभवासनावोंकूं आपणे अंतःकरणविषे प्रादुर्भाव हुआ देखिकैही इस जन्मकूं प्राप्त हुआ है। अर्थात् इस जन्मतैं पूर्वभी तुमनैं कल्याणकाही संपादन कऱ्याहै और आगेभी तुम्हारा कल्याणही होणा है इस कारणतैं आपणेविषे आसुरीसंपत्की शंकाकरिकै तुम्हारेकूं शोक करणा उचित नहीं है इति। इहां (हे पांडव) इस संबोधनके कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कऱ्या। जबी पांडुराजाके दूसरे पुत्रोंविषेभी सा दैवीसंपत् प्रसिद्धही देखणेविषे आवै है तबी मैं परमेश्वरके अनन्यभक्त तैं अर्जुनविषे सा दैवीसंपत् है याकेविषे क्या कहणा है॥ ५॥

हे भगवन्! राक्षसी प्रकृतिका तौ आसुरीसंपत्विषे अंतर्भाव होवौ। काहेतैं शास्त्रनिषिध क्रियाकी अभिमुखता आसुरीसंपत्विषे तथा राक्षसी प्रकृतिविषे तुल्य ही है। और त्रिस्थलीस्थलविषे आसुरीसंपत् राक्षसीप-

कृति इन दोनोंका जो भिन्न भिन्न कथन करया है सोभी विषयभोगकी प्रधानताकरिकै तथा जीवहिंसाकी प्रधानताकरिकै संभव होइसकै है परंतु दैवीसंपत् आसुरीसंपत् इन दोनोंतें भिन्न तीसरी मानुषी प्रकृति तौ जुदीही है । काहेतें श्रुतिविषे सा मानुषी प्रकृति जुदीही कथन करी है । तहां श्रुति-(त्रयाः प्राजापत्याः प्रजापतौ पितरि ब्रह्मचर्यमूषुर्देवा मनुष्या असुरा इति ।) अर्थ यह-प्रजापतितें उत्पन्न हुए देवता, मनुष्य, असुर यह तीनों तिस प्रजापतिपिताके समीप ब्रह्मचर्यकूं करते भये । यातें सा तीसरी मानुषी प्रकृतिभी आसुरीसंपत्की न्याई हेयकोटिविषे कही चाहिये । अथवा दैवीसंपत्की न्याई उपादेयकोटिविषे कही चाहिये । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं-

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ॥
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः)द्वौ । भूतसर्गौ । लोके । अस्मिन् । दैवः । आसुरः । एव । च । दैवः । विस्तरशः । प्रोक्तः । आसुरम् ।पार्थ । मे । शृणु ॥ ६ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! इस लोकविषे दोप्रकारके ही भूतसर्ग है एक तौ दैवसर्ग है और दूसरा आसुरसर्ग है तहां दैवसर्ग तौ हमनें तुम्हारेप्रति पूर्व विस्तारतें कथन कऱ्या है अब दूसरे आसुरसर्गकूं तूं हमारेतें श्रवणकर ॥ ६ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! इस संसारविषे दो प्रकारके ही भूतसर्ग है अर्थात् दो प्रकारकी ही मनुष्योंकी सृष्टि है । तहां वे दोप्रकारके सर्ग कौन हैं ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं । (दैव आसुर एव च) हे अर्जुन ! एक तौ दैवसर्ग है और दूसरा आसुरसर्ग है । इन दोनों सर्गोंतें भिन्न तीसरा कोई राक्षससर्ग अथवा मनुष्यसर्ग

है नहीं। तहां जो मनुष्य जिसकालविषे शास्त्रजन्य संस्कारोंकी प्रबलता-करिकै स्वभावसिद्ध रागद्वेषकूं अभिभवकरिकै केवल धर्मपरायण ही होवै है सो मनुष्य तिस कालविषे देव कह्या जावै है । और जो मनुष्य जिस कालविषे स्वभावसिद्ध रागद्वेषकी प्रबलताकरिकै शास्त्रजन्य संस्कारोंकूं अभिभवकरिकै केवल अधर्मपरायण ही होवै है सो मनुष्य तिस कालविषे असुर कह्या जावै है । इस रीतितैं दो प्रकारका ही मनुष्यसर्ग सिद्ध होवै है । जिस कारणतैं धर्म अधर्म इन दोनोंतैं भिन्न तीसरी कोई कोटि है नहीं किंतु लोकविषे तथा वेदविषे धर्म अधर्म यह दो कोटि ही प्रसिद्ध हैं । तहां दोप्रकारका ही भूतसर्ग है यह वार्त्ता श्रुतिविषे भी कथन करी है । तहां श्रुति-(द्वयाहप्राजापत्या देवाश्चासुराश्च ततः कनीयसा एव देवा ज्यायसा असुराः ।) अर्थ यह-प्रजापतितैं उत्पन्न हुए दोप्रकारके ही भूतसर्ग है एक तौ देव हैं दूसरे असुर है । तहां असुरोंतैं देवता छोटे है । और देवतावोंतैं असुर बडे हैं इति । और दम, दान, दया इन तीनोंका विरोध करणेहारा जो (त्रयाः प्राजापत्याः) इत्यादिक वाक्य हैं तिन वाक्योंविषे तौ दम, दान, दया इन तीनोंतैं रहित मनुष्य ही असुर-भाववाले हुए किसी समान धर्मकरिकै देव कहे जावैं हैं, तथा मनुष्य कहे जावैं हैं, तथा असुर कहेजावैंहैं । यातैं तिस वाक्यतैं तीसरे भूतसर्गकी सिद्धि होवै नहीं । तहां तिस प्रसंगविषे प्रजापतिनैं एक ही दम इस अक्ष-रकरिकै दमतैं रहित मनुष्योंके प्रति तौ इंद्रियोंका निग्रहरूप दमका उप-देश कऱ्या है और दानतैं रहित मनुष्योंके प्रति तौ दानका उपदेश कऱ्या है और दयातैं रहित मनुष्योंके प्रति तौ दयाका उपदेश कऱ्या है । इस प्रकार एक मनुष्यत्वजातिवाले मनुष्योंके प्रति ही प्रजापतिनैं अधिका-रभेदतैं दम, दान, दया इन तीनोंका उपदेश कऱ्या है । कोई तिस वच-नविषे परस्पर विजातीय देव, असुर, मनुष्य यह तीनों विवक्षित नहीं हैं जिस कारणतैं शास्त्रके उपदेशका मनुष्य ही अधिकारी होवै है ।

देवता तथा असुर शास्त्रउपदेशके अधिकारी होवैं नहीं । यातैं यह अर्थ सिद्धभया-राक्षसी प्रकृति तथा मानुषी प्रकृति यह दोनों प्रकृतियां आसुरी संपत्विषे ही अंतर्भूत हैं ता आसुरीसंपत्तैं वे दोनों भिन्न नहीं हैं । यातैं देवसर्ग आसुरसर्ग यह दो प्रकारके ही भूतसर्ग हैं यह जो पूर्व वचन कह्या था सो युक्त ही है इति । हे अर्जुन ! तिन दो प्रकारके भूतसर्गोंविषे प्रथम जो दैवभूतसर्ग है सो दैवभूतसर्ग तौ हमनै तुम्हारे प्रति पूर्व विस्तारतैं कथन कऱ्या है । तहां द्वितीय अध्यायविषे तौ स्थितप्रज्ञपुरुषके लक्षणविषे सो दैवभूतसर्ग कथन कऱ्या है । और द्वादश अध्यायविषे तौ भगवद्भक्तके लक्षणविषे सो दैवभूतसर्ग कथन करचा है । और त्रयोदश अध्यायविषे तौ ज्ञानके लक्षणविषे सो दैवसर्ग कथन कऱ्या है । और चतुर्दश अध्यायविषे तो गुणातीत पुरुषके लक्षणविषे सो दैवसर्ग कथन करचा है । और इस षोडश अध्यायविषे तौ (अभयं सत्त्वसंशुद्धिः) इत्यादिक वचनोंकरिकै सो दैवसर्ग कथन करचा है । अब दूसरे आसुरभूतसर्गकूं मैं विस्तारतैं प्रतिपादन करताहूं । तिसकूं तूं श्रवण कर अर्थात् तिस असुरभूतसर्गके परित्याग करणेवास्तै प्रथम तिस आसुरभूत सर्गकूं तूं निश्चय कर । काहेतैं जिस अनिष्टपदार्थका भलीप्रकारतैं ज्ञान होवै है सो अनिष्टपदार्थ ही परित्याग करचा जावै है । तिस पदार्थके स्वरूप जानेतैं विना तिस पदार्थका परित्याग करचाजावै नहीं इति । तहां (हे पार्थ) इस संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं अर्जुनविषे आपणा संबंधीपणा कथन करचा । ताकरिकै अर्जुनविषयक उपेक्षाका अभाव सूचन करचा अर्थात् मैं परमेश्वर कदाचित्भी तुम्हारी उपेक्षा नहीं करोंगा ॥ ६ ॥

अब (तानहं द्विषतः क्रूरान्) इस श्लोकतै पूर्वस्थित द्वादश श्लोकोंकरिकै श्रीभगवान् परित्याग करणेयोग्य आसुरी संपदकूं प्राणियोंका विशेषणरूप करिकै कथन करैं हैं--

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ॥
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥७॥

(पदच्छेदः) प्रवृत्तिम् । च । निवृत्तिम् । च । जनाः । न । विदुः । आसुराः । न । शौचम् । न । अपि । च । आचारः । न । सत्यम् । तेषु । विद्यते ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! असुरस्वभाववाले मनुष्य धर्मकूं तथा अधर्मकूं नहीं जानते हैं इसकारणतेंही तिनआसुरमनुष्योंविषे शौच नहीं रहे है तथा आचार भी नहीं रहे है तथा सत्य भी नहीं रहे है ७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! दंभदर्पादिरूप असुरस्वभाववाले मनुष्य प्रवृत्तिकूंभी जानते नहीं अर्थात् प्रवृत्तिका विषयभूत जो धर्म है तिस धर्मकूंभी ते आसुर मनुष्य जानते नहीं । इहां (प्रवृत्तिं च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है ता चकारकरिकै तिस धर्मके प्रतिपादक विधिवाक्यका ग्रहण करणा अर्थात् ता धर्मके प्रतिपादक विधिवाक्यकूंभी ते आसुरमनुष्य जानते नहीं । तथा ते आसुरमनुष्य निवृत्तिकूं भी जानते नहीं अर्थात् निवृत्तिका विषयभूत जो अधर्म है तिस अधर्मकूंभी ते आसुर मनुष्य जानते नहीं । इहां (निवृत्तिं च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है ता चकारकरिकै तिस अधर्मके प्रतिपादक निषेधवाक्यका ग्रहण करणा । अर्थात् ता अधर्मके प्रतिपादक निषेधवाक्यकूंभी ते आसुरमनुष्य जानते नहीं । इसीकारणतें ही तिन आसुरमनुष्योंविषे बाह्यशौच तथा अंतरशौच यह दोप्रकारका शौचभी नहीं रहे है । तहां जल मृत्तिकादिकोंकरिकै जा शरीरकी शुद्धि है ताका नाम बाह्यशौच है । और मैत्री करुणादिकोंकरिकै जो रागद्वेषादिकोंतें रहितपणा है ताका नाम अंतरशौच है । और मनुआदिक श्रेष्ठपुरुषोंनें धर्मशास्त्रविषे कथन करया जो आचार है सो आचारभी तिन आसुरमनुष्योंविषे रहता नहीं । तथा प्रिय हित यथार्थ भाषणरूप जो सत्य है, सो सत्यभी तिन आसुरपुरुषोंविषे रहता

नहीं। ऐसे शौचतै रहित तथा आचारतै रहित तथा मिथ्यावादी मायावी आसुरमनुष्य इस लोकविषे भी प्रसिद्धही हैं ॥ ७ ॥

हे भगवन्! प्रवृत्तिका विषयभूत जो धर्म है तथा निवृत्तिका विषयभूत जो धर्म है तिन धर्म अधर्म दोनोंका प्रतिपादक वेदरूप प्रमाण विद्यमान ही है। कैसा है सो वेदरूप प्रमाण–भ्रम प्रमाद आदिक सर्व दोषोंतैं रहित है तथा साक्षात् परमेश्वरकी आज्ञारूप है तथा सर्वलोकोंविषे प्रसिद्ध है। और तिस वेदके अनुसारी स्मृति पुराण इतिहास आदिकभी तिस धर्म अधर्मके प्रतिपादक विद्यमानही हैं। ऐसे प्रमाणभूत वेदोंके तथा स्मृति पुराण इतिहास आदिकोंके विद्यमान हुएभी तिन असुर पुरुषोंकूं तिस धर्मअधर्मका अज्ञान तथा ताके प्रमाणका अज्ञान किसकारणतैं होवै ? और तिन पुरुषोंकूं ता धर्मअधर्मके तथा ताके बोधकप्रमाणके ज्ञान हुए वेदरूप आज्ञाके उल्लंघन करणेहारे पुरुषोंकूं शासन करणेहारे परमेश्वरके विद्यमानहुए तिन पुरुषोंकूं वेदउक्त अर्थका न अनुष्ठानकरिकै शौच आचारादिकोंतैं रहितपणाभी किसकारणतै होवैहै जिसकारणतै दुष्टजनोंकूं शासना करणेहारा परमेश्वरभी लोकविषे तथा वेदविषे प्रसिद्धही है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं–

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ॥
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥ ८ ॥

(पदच्छेदः) असत्यम् । अप्रतिष्ठम् । ते । जगत् । आहुः । अनीश्वरम् । अपरस्परसंभूतम् । किम् । अन्यत् । कामहैतुकम् ॥ ८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! ते आसुरपुरुष इस जगत्कूं असत्य अप्रतिष्ठ अनीश्वर अपरस्परसंभूत कामहैतुक कहैं हैं इस जगत्का दूसरा कोई कारण नहींहै ॥ ८ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! ते आसुरपुरुष इस जगत्कूं असत्य कहै है। वहां प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंकरिकै नहीं बाधकूं प्राप्तहुआ है तात्पर्यका विषय

जिसका ऐसा जो तत्त्ववस्तुका बोधक वेदरूप प्रमाण है तथा तिस वेद-रूपप्रमाणके अनुसारी जे स्मृति, पुराण इतिहास आदिक हैं तिन्होंका नाम सत्य है ऐसा सत्य नहीं है विद्यमान जिसविषे ताका नाम असत्य है । ऐसा असत्यरूप इस जगतकूं कहैहैं । यद्यपि ऋगादिक च्यारि वेद तथा मनु-स्मृति आदिक स्मृतियां तथा भागवतादिक अष्टादश पुराण तथा महा-भारतादिक इतिहास प्रत्यक्षप्रमाणकरिकै सिद्ध हैं तिन प्रत्यक्षसिद्ध वेदा-दिकोंका निषेध करणा संभवता नहीं तथापि ते आसुरपुरुष तिन वेदोंकी तथा स्मृति, पुराण, इतिहास आदिकोंकी प्रमाणताकूं अंगीकार करते नहीं । यातैं प्रमाणतारूप विशेषणके अभावतैं तिस प्रमाणताविशिष्ट वेदादिकोंका अभाव कथन कऱ्या है । और असत्य होणेतैंही इस जगतकूं ते आसुर-पुरुष अप्रतिष्ठ कहैं हैं । तहां नहीं है धर्मअधर्मरूप प्रतिष्ठा व्यवस्थाका हेतु जिसका ताका नाम अप्रतिष्ठ है अर्थात् ते आसुरपुरुष धर्मअधर्मकूं इस जगत्के व्यवस्थाका हेतु मानते नहीं । तथा ते आसुरपुरुष इस जग-त्कूं अनीश्वर कहैहैं । तहां शुभअशुभ कर्मके सुखदुःखरूप फलके देणेविषे नहीं है ईश्वर नियंता जिसका ताका नाम अनीश्वर है । ऐसा अनीश्वर इस जगतकूं कहे हैं । तात्पर्य यह—बलवान् पापरूप प्रतिबंधके वशतैं ते आसुरपुरुष वेदोंकूं तथा स्मृति, पुराण, इतिहासादिकोंकूं प्रमा-णरूप मानते नहीं । इसी कारणतैं ही ते आसुरपुरुष तिन वेद स्मृति आदिकोंकरिकै बोधित धर्मअधर्मकूं तथा ईश्वरकूं अंगीकार करते नहीं । इसी कारणतैं ही ते आसुरपुरुष निर्भय होइकै निषिद्ध आचरणकूं ही करैं हैं । ता निषिद्ध आचरणकरिकै ते आसुरपुरुष धर्मरूप पुरुषार्थतैं तथा मोक्षरूप पुरुषार्थतैं भ्रष्टही होवैं हैं इति । शंका—हे भग-वन् ! केवल शास्त्रप्रमाणकरिकै जानणेयोग्य जो धर्मअधर्म है ता धर्मअधर्मकी सहायताकरिकै इस सर्वजगत्का कारणरूप जो प्रकृतिका अधिष्ठाता परमेश्वर है ता कारणरूप परमेश्वरतैं रहित इस जगत्कूं ते आसुर पुरुष जो अंगीकार करैंगे तौ कारणके अभावहुए तिस जगत्रूप

कार्यकी उत्पत्ति तिनोंके मतविषे कैसे होवैगी ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहें हैं (अपरस्परसंभूतम् इति ।) हे अर्जुन ! ते आसुर पुरुष इस जगत्कूं ईश्वरतैं उत्पन्नहुआ मानते नहीं किंतु इस जगत्कूं अपरस्परसंभूत मानैं हैं अर्थात् विषयसुखकी अभिलाषारूप कामनैं प्रेरणा कऱ्या ही पुरुष है तथा स्त्री है । तिस पुरुष स्त्री दोनोंके संयोगतै ही यह जगत् उत्पन्न हुआहै । यातैं यह जगत् कामहैतुक है अर्थात् इस जगत्का सो काम ही कारण है । ता कामतै भिन्न दूसरा कोई इस जगत्का कारण है नहीं । शंका—हे भगवन् ! इस जगत्की उत्पत्तिविषे धर्मअधर्मकूंभी कारण मान्या चाहिये । काहेतैं जो कदाचित् धर्मअधर्मकूं इस जगत्का कारण नहीं मानिये तौ इस जगत्विषे कोई प्राणी दुःखी है कोई प्राणी सुखी है कोई प्राणी मूर्ख है कोई प्राणी पंडित है इस प्रकारकी व्यवस्था नहीं होवैगी । और धर्मअधर्मकूं इस जगत्का कारण मानणेविषे सा व्यवस्था सिद्ध होइसकैहै । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं (किमन्यत् इति ।) हे अर्जुन ! ते आसुरपुरुष धर्मअधर्मरूप अदृष्टकूं इस जगत्का कारण मानते नहीं । काहेतै धर्मअधर्मरूप अदृष्टके अंगीकार कियेहुए अंतविषे स्वभावविषे ही परिअवसान होवैगा । ता स्वभावकरिकै ही इस जगत्विषे सुखदुःखादिकोंकी विचित्रता संभव होइसकैहै । ता विचित्रताके वासतै धर्मअधर्मरूप अदृष्टकी कल्पना काहेवासतै करणी । और शास्त्रविषेभी यह नियम कह्याहै । (दृष्टे संभवति अदृष्टकल्पनाया अन्यायत्वात् ।) अर्थ यह —कार्यकी उत्पत्तिविषे दृष्टकारणके संभवहुए अदृष्टकारणकी कल्पना करणी अयुक्त है इति । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया—काम ही सर्वप्राणियोंका कारण है । तिस कामतैं भिन्न दूसरा कोई धर्म अधर्मरूप अदृष्ट तथा ईश्वरादिक इस जगत्का कारण है नहीं । इसप्रकार ते आसुरपुरुष इस जगत्कूं केवल कामहेतुकही कहैंहैं । यह पूर्वउक्त दृष्टि देहात्मवादी लौकायतिक पुरुषोंकी कथन करी है ८ ॥

हे भगवन् ! यह पूर्वउक्त लोकायतिक पुरुषोंकी दृष्टिभी शास्त्रीयदृष्टिकी न्याईं इष्टरूपही होवैगी । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए मुमुक्षुजनोंकूं तिस दृष्टितैं निवृत्त करणेवासतै श्रीभगवान् ता दृष्टिविषे अनिष्टरूपताकूं कथन करैहैं—

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ॥
प्रभवंत्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥९॥

(पदच्छेदः) एताम् । दृष्टिम् । अवष्टभ्य । नष्टात्मानः । अल्पबुद्धयः । प्रभवंति । उग्रकर्माणः । क्षयाय । जगतः । अहिताः ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इस पूर्वउक्त दृष्टिकूं आश्रयणकरिकै ते नष्टात्मा अल्पबुद्धि उग्रकर्मवाले शत्रुपुरुष सर्वप्राणियोंके नाशकरणेवासतै व्याघ्रसर्पादिरूपकरिकै उत्पन्न होवैं हैं ॥ ९ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! इस पूर्व श्लोकविषे कथन करी जा लोकायतिक पुरुषोंकी दृष्टि है तिस दृष्टिकूं आश्रयकरिकै ते आसुरपुरुष नष्टात्मा होवैहैं । तहां काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादिरूप रजतमदोषकरिकै नष्टहुआ है क्या आवृत हुआ है आत्मा क्या विवेकबुद्धि जिन्होंकी तिन्होंका नाम नष्टात्मा है अर्थात् ते आसुरपुरुष परलोकके साधनोंतें भ्रष्टहुए हैं । पुनः कैसे हैं ते आसुरपुरुष—अल्पबुद्धि हैं तहां अत्यंत तुच्छ जे स्रक्, चंदन, वनिता इत्यादिक विषयोंके भोग हैं तिन्होंका नाम अल्प है ऐसे विषयभोगरूप अल्पविषे है बुद्धि जिन्होंकी तिन्होंका नाम अल्पबुद्धि है । अथवा मल, मांस, रुधिर, अस्थि, मज्जा इत्यादिक निंदितपदार्थोंका समूहरूप जो यह देह है ताका नाम अल्प है ऐसे अल्पदेहविषे है अहंबुद्धि जिन्होंकी तिनोंका नाम अल्पबुद्धि है अर्थात् दृष्टिविषयसुखमात्रका उद्देशाकरिकै प्रवृत्त हुई है बुद्धि जिन्होंकी तिनोंका नाम अल्पबुद्धि है । पुनः कैसे हैं ते आसुरपुरुष—उग्रकर्मा हैं । तहां उग्र हैं क्या अत्यंत क्रूर हैं कर्म जिन्होंके तिन्होंका नाम उग्रकर्मा है अर्थात् देहमात्रका पोषण है प्रयोजन जिन्होंका तथा जीवोंकी हिंसा है प्रधान जिन्होंविषे

ऐसे जे शास्त्रनिषिद्धकर्म हैं तिन शास्त्रनिषिद्धकर्मोंकूं ही ते आसुरपुरुष सर्वदा करैं हैं। पुनः कैसे हैं ते आसुरपुरुष–अहित हैं अर्थात् अपकार-कियेतैं विनाही सर्वप्राणीमात्रके शत्रु हैं। इस प्रकार पूर्वउक्त लोकायतिक पुरुषोंकी दृष्टिकूं आश्रयणकरिकै नष्टात्मा हुए तथा अल्पबुद्धि हुए तथा उग्रकर्मा हुए तथा शत्रु हुए ते आसुरपुरुष सर्वप्राणीमात्रके नाश करणे-वासतै व्याघ्रसर्पादिकरूपकरिकै उत्पन्न होवैं हैं। यातैं यह पूर्वश्लोकउक्त लोकायतिक पुरुषोंकी दृष्टि ही अत्यंत अधोगतिका हेतु है। इस कारणतैं श्रेयकी इच्छावान् पुरुषोंनैं सर्वप्रकार करिकै सा दृष्टि परित्याग करणे योग्य है ॥ ९ ॥

इसप्रकार व्याघ्रसर्पादिक तामसी योनियोंविषे बहुतकालपर्यंत भ्रमण करते हुए ते आसुरपुरुष जबी किसी कर्मके वशतैं पुनः मनुष्ययोनिकूं प्राप्त होवै है तबी भी ते आसुरपुरुष आपणे श्रेयके उपायविषे प्रवृत्त होवै नहीं किंतु अश्रेयके उपायविषेही प्रवृत्त होवैं हैं इस अर्थकूं अब श्रीभग-वान् कथन करैं हैं–

काममाश्रित्य दुष्पूरं दंभमानमदान्विताः ॥
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्त्ततेऽशुचिव्रताः ॥१०॥

(पदच्छेदः) कामम् । आश्रित्य । दुष्पूरम् । दंभमानमदा-न्विताः । मोहात् । गृहीत्वा । असद्ग्राहान् । प्रवर्त्तते । अशुचि-व्रताः ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! दुष्पूर कामकूं आश्रयणकरिकै दंभमानमदक-रिकै युक्तहुए तथा अशुचिव्रतवालेहुए ते आसुरपुरुष अविवेकतैं अशुभ-निश्चयोंकूं ग्रहणकरिकै वेदविरुद्धकर्मोंविषेही प्रवृत्त होवै हैं ॥ १० ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! शतकोटि वर्षपर्यंतभी विषयोंके भोगकरिकै नहीं पूर्ण होणेहारा ऐसा जो तिस तिस इष्टविषयोंकी अभिलाषारूप काम है ऐसे दुष्पूर कामकूं आश्रयण करिकै ते आसुरपुरुष दंभ, मान, मद

इन तीनोंकरिकै युक्त होवैं हैं। तहां अनंतरवैं धर्मनिष्ठातैं रहित होइकै भी जो बाह्यतैं लोकोंके आगे आपणा धर्मात्मापणा प्रगट करणा है ताका नाम दंभ है। और वास्तवतैं पूज्यभावके अयोग्य हुएभी जो लोकोंके आगे आपणा पूज्यपणा प्रगट करणा है ताका नाम मान है। और वास्तवतैं आपणेविषे अधिकता नहीं हुएभी जो अधिकताका आरोपण है ताका नाम मद है। जो मद श्रेष्ठपुरुषोंके अपमान करणेका हेतुरूप है। ऐसे दंभ, मान, मद तीनोंकरिकै युक्त हुए ते आसुरपुरुष केवल अविवेकतैं असद्ग्राहोंकूं ग्रहण करिकै अर्थात् इस मंत्रकरिकै इस देवताकूं आराधन करिकै हम इन स्त्रियोंका आकर्षण करैंगे। तथा इस मंत्रकरिकै इस देवताकूं आराधन करिकै हम महान्‌निधियोंकूं संपादन करैंगे। तथा इस मंत्रकरिकै इस देवताकूं आराधन करिकै हम इस शत्रुकूं मारैंगे इत्यादिक दुराग्रहरूप अशुभनिश्चयोंकुं केवल अविवेकरूप मोहतैं ग्रहणकरिकै ते आसुरपुरुष अशुचिव्रत होवैं हैं। तहां श्मशानादिक देश तथा उच्छिष्टत्वादिक अवस्था तथा मद्यमांसादिकोंका भक्षण इत्यादिक अशौचकी अपेक्षाकरिकै सिद्ध होणेहारे जे वाममंत्रउक्त व्रत हैं ते अशुचिव्रत हैं जिन्होंके तिनोंका नाम अशुचिव्रत है। ऐसे अशुचिव्रत हुए ते आसुरपुरुष केवल दृष्टफलकी प्राप्ति करणेहारे क्षुद्रदेवताओंका आराधनरूप जिसीकिसी वेदविरुद्ध कर्मविषेही प्रवृत्त होवैं हैं। ऐसे आसुरपुरुष मरिकै अशुचि नरकविषे पतन होवैं हैं। इस प्रकारवैं इस श्लोकका (पतंति नरकेऽशुचौ) इस वक्ष्यमाण वचनके साथि अन्वय करणा ॥ १० ॥

अब श्रीभगवान् इन पूर्वउक्त आसुरपुरुषोंकूं ही पुनः आसुरी संपद्‌रूप अनेक विशेषणोंकरिकै कथन करैंहैं—

चिंतामपरिमेयां च प्रलयांतामुपाश्रिताः ॥
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) चिंताम् । अपरिमेयाम् । च । प्रलयांताम् । उपाश्रिताः । कामोपभोगपरमाः । एतावत् । इति । निश्चिताः ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तथा मरण पर्यंत स्थित अपारिमित चिंताकूं जिन्होंनें आश्रयण कऱ्याहै तथा शब्दादिकविषयोंका भोगही है परम-पुरुषार्थ जिन्होंकूं तथा यह विषयजन्यदृष्टही सुख है तिसप्रकार है निश्चय जिन्होंका ॥ ११ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! अप्राप्तवस्तुकी प्राप्तिरूप जो योग है तथा प्राप्तवस्तुका परिरक्षणरूप जो क्षेम है तिस आपणे योगक्षेमके उपायका चिंतनरूप जा चिंता है कैसी है सा चिंता-अपरिमेय है अर्थात् असंख्यात पदार्थविषयक होणेतैं सा चिंताभी असंख्याता है सा चिंता इतनी संख्या-वाली है इस प्रकारतैं निश्चय करणेकूं अशक्य है पुनः कैसी है सा चिंता प्रलयांता है । इहां मरणका नाम प्रलय है, सो मरणरूप प्रलय है अन्त जिसका ताका नाम प्रलयांता है अर्थात् जीवितकालपर्यंत वर्त्तमान है । ऐसी अपरिमेय तथा प्रलयांत चिंताकूं ते आसुर पुरुष आश्रयण करैं हैं । इहां (चिंतामपरिमेयां च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार पूर्वउक्त अशुचिव्रतके समुच्चय करावणेवासतै है । अर्थात् ते आसुरपुरुष केवल अशुचिव्रतवाले हुए तिन वेदविरुद्ध कर्मोंविषे प्रवृत्त होते नहीं किंतु इस प्रकारकी चिंताकूं आश्रयण करते हुएभी ते आसुरपुरुष तिन वेदविरुद्ध कर्मोंविषे प्रवृत्त होवैं है इति । हे अर्जुन ! ते आसुरपुरुष सर्वकालविषे अनंत चिंतावोंकरिकै युक्त हुएभी कदाचित्भी परलोककी चिंताकरिकै युक्त होते नहीं । किंतु ते आसुर पुरुष कामोपभोगपरमही होवैं हैं । तहां कृपण पुरुषोंके कामनाका विषयभूत जे शब्दस्पर्शादिक दृष्टविषय है तिन्होंका नाम काम है तिन शब्दादिक विषयरूप कामोंका उपभोग है परम क्या पुरुषार्थ जिन्होंकूं, धर्मादिक जिन्होंकूं पुरुषार्थरूप है नहीं तिन्होंका नाम कामोपभोगपरम है । अर्थात् ते आसुरपुरुष इस लोकके

स्रक् चंदन, वनिता आदिक विषयोंके भोगकूं ही परमपुरुषार्थरूप करिकै मानैं हैं । धर्मकूं तथा मोक्षकूं पुरुषार्थरूप मानते नहीं । शंका–हे भगवन् ! ते आसुरपुरुष जैसे इस लोकके विषयजन्यसुखकी कामना करैं हैं तैसे परलोकके उत्तमसुखकी कामना किसवासतै नहीं करते हैं ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं । (एतावदिति निश्चिताः ।) तहां इस लोकविषे शब्दस्पर्शादिक विषयोंके भोगतैं जन्य जो दृष्टसुख है सोईही सुख है इस दृष्टसुखतैं भिन्न इस शरीरके वियोग हुएतैं अनंतर भोगणेयोग्य दूसरा कोई सुख है नहीं । काहेतैं इस स्थूलशरीरतैं भिन्न दूसरा कोई भोक्ता है नहीं जो भोक्ता परलोकविषे जाइकै तिस सुखकूं भोगै किंतु यह स्थूलशरीर ही भोक्ता आत्मा है । इस प्रकारके निश्चयवाले हुए ते आसुर पुरुष परलोकके सुखकी कामना करते नहीं । यह आसुरपुरुषोंका मत बृहस्पतिनैंभी कथन कऱ्या है । तहां सूत्र (चैतन्यविशिष्टः कायः पुरुषः । काम एवैकः पुरुषार्थः ।) अर्थ यह–चैतन्यरूप धर्मकरिकै विशिष्ट जो यह स्थूलशरीर है सो यह स्थूलशरीर ही आत्मा है । और इस लोकके स्रक्चन्दनवनितादिक विषयोंका भोग ही परमपुरुषार्थ है इति । यद्यपि बृहस्पति वैदिकपुरुष है तथापि असुरोंके मोहकरणेवासतै तिस बृहस्पतिनैं इसप्रकारके सूत्र रचे हैं। याकारणतैंही वैदिकपुरुष तिन सूत्रोंकूं प्रमाणरूप मानते नहीं ॥ ११ ॥

किंच–

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ॥
ईहते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् ॥ १२ ॥

(पदच्छेदः)आशापाशशतैः । बद्धाः । कामक्रोधपरायणाः । ईहंते । कामभोगार्थम् । अन्यायेन । अर्थसंचयान् ॥ १२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! आशारूपपाशोंके समूहकरिकै बांधेहुए तथा काम क्रोध दोनों हैं आश्रय जिन्होंके ऐसे ते आसुर पुरुष विषय भोगवासतै ही अन्यायकरिकै धनादिकपदार्थोंकूं इच्छंते हैं ॥ १२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जिस वस्तुके प्राप्तिका उपाय करणेकूं अशक्य है तिस वस्तुके प्राप्तिकी जा प्रार्थना है ताका नाम आशा है । अथवा जिस वस्तुके प्राप्तिका उपाय आपणेकूं ज्ञात नहीं है तिस वस्तुके प्राप्तिकी जा प्रार्थना है ताका नाम आशा है । ते आशा ही लोकप्रसिद्ध पाशकी न्याईं इस पुरुषके बंधनका हेतु होणेतें पाशरूप है । ऐसे आशारूप पाशोंके अनेक शतोंकरिकै अर्थात् अनेक समूहोंकरिकै ते आसुरपुरुष बाँध्ये हुए है । अर्थात् जैसे लोकप्रसिद्ध रज्जुआदिक पाशोंकरिकै बांध्येहुए चौरादिक दुष्टपुरुष तिन रज्जु आदिक पाशोंनें आपणे गृहादिक स्थानोंतें निकासिकै जहां तहां भ्रमण कराइते हैं वैसे आशारूप पाशोंकरिकै बांध्येहुए यह आसुरपुरुषभी तिन आशारूप पाशोंनें श्रेयरूप स्वस्थानतें निकासिकै जहां तहां भ्रमण कराइते हैं पुनः कैसे हैं ते आसुरपुरुष—कामक्रोधपरायण हैं तहां काम क्रोध यह दोनों हैं पर अयन क्या आश्रय जिन्होंका तिन्होंका नाम कामक्रोधपरायण है अर्थात् परस्त्रियोंके संभोगकी अभिलाषाकरिकै तथा परके अनिष्ट करणेकी अभिलाषा करिकै ते आसुरपुरुष सर्वदा युक्त हैं । ऐसे आसुरपुरुष केवल स्रक्, चंदन, वनिता आदिक विषयोंके भोगवासतै ही धनादिक पदार्थोंके इकट्ठे करणेकी इच्छा करें हैं कोई धर्मके वासतै ते आसुरपुरुष धनादिक पदार्थोंके इकट्ठे करणेकी इच्छा करते नहीं । और ते आसुरपुरुष विषयभोगवासतै जो धनके इकट्ठे करणेकी इच्छा करें हैं सो भी शास्त्रउक्तमार्गकरिकै ता धनके इकट्ठे करणेकी इच्छा करते नहीं । किंतु केवल अन्यायकरिकै ही ता धनके इकट्ठे करणेकी इच्छा करेंहैं । तहां छलकपटकरिकै अथवा बलात्कारसें जो परके धनका हरण करणा है ताका नाम अन्याय है अर्थात् शास्त्रतें विरुद्ध मार्गकरिकै जो धनका संपादन करणा है ताका नाम अन्याय है । इहां (अर्थसंचयान्) इस बहुवचनकरिकै श्रीभगवान्नें तिन आसुरपुरुषोंविषे लोभ दिखाया काहेतें तिन आसुरपुरुषोंकूं धनकी प्राप्ति हुएभी

तिस धनकी तृष्णा निवृत्त होती नहीं किंतु सा धनकी तृष्णा दिनदिनविषे वृद्धिकूं प्राप्त होती जावैहै । और धनादिक विषयोंके प्राप्तहुएभी जो दिन-दिनविषे तिंन विषयोंके तृष्णाकी वृद्धि है तिसकूं ही शास्त्रविषे तथा लोकविषे लोभ कहैं हैं ॥ १२ ॥

हे भगवन् ! तिन आसुरपुरुषोंके चित्तविषे इस प्रकारकी धनकी तृष्णा है यह वार्त्ता कैसे जानीजावैहै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन आसुरपुरुषोंके इस प्रकारकी धनकी तृष्णाकूं तिन आसुरपुरुषोंके मनोराज्योंके कथन करिकै वर्णन करैहैं—

इदमद्य मयालब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ॥
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) इदम् । अद्य । मया । लब्धम् । इमम् । प्राप्स्ये । मनोरथम् । इदम् । अस्ति । इदम् । अपि । मे । भविष्यति । पुनः । धनम् ॥ १३ ॥

(पदार्थः) यह धन इसकालविषे हमनैं पायाहै इस मनोरथकूं मैं शीघ्रही प्राप्त होऊंगा तथा यह धन हमारे गृहविषे पूर्वही विद्यमान है तथा यह धन भी अगले वर्षविषे पुनः बहुत होवैगा ॥ १३ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! ते आसुरपुरुष निरंतर धनकी तृष्णाकरिकै युक्त हैं इस कारणतें ही ते आसुरपुरुष इस प्रकारके मनोराज्योंकूं करैं हैं । यह धन हमनें अबी इस उपायकरिकै पाया है और इस धनतें अन्य दूसरेभी मनकी तुष्टि करणेहारे धनकूं मैं अबी शीघ्रही प्राप्त होवैंगा और यह धन हमारे गृहविषे पूर्व ही इकठा कऱ्या हुआ है सो यह धनभी इस उपायकरिकै अगले वर्षविषे पुनः बहुत होवैगा । इस प्रकार धनकी तृष्णा-करिकै युक्तहुए ते आसुरपुरुष अशुचि नरकविषे पतन होवैंहैं । इस प्रकारतें इस श्लोकका (पतंति नरकेऽशुचौ) इस वक्ष्यमाणवचनके साथि अन्वय करणा ॥ १३ ॥

इसप्रकार तिन आसुरपुरुषोंके तृष्णारूप लोभका वर्णन करिकै अब तिन आसुरपुरुषोंके अभिप्रायके कथनकरिकै तिन आसुरपुरुषोंके क्रोधकाभी वर्णन करैं हैं-

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ॥
ईश्वरोहमहं भोगी सिद्धोहं बलवान्सुखी ॥ १४ ॥

(पदच्छेदः) असौ । मया । हतः । शत्रुः । हनिष्ये । च । अपरान् । अपि । ईश्वरः । अहम् । अहम् । भोगी । सिद्धः । अहम् । बलवान् । सुखी ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हमनैं यह शत्रु हनन कर्या है तथा दूसरे शत्रुवोंकूं भी मैं हनन करूंगा मैं ईश्वर हूं तथा मैं भोगी हूं तथा मैं सिद्ध हूं तथा बलवान् हूं तथा सुखी हूं ॥ १४ ॥

भा० टी०-अत्यंत दुर्जय जो यह देवदत्तनामा हमारा शत्रु था सो यह शत्रु हमनैं हनन कर्या है। यातैं अबी मैं विनाही आयासतैं दूसरेभी सर्वशत्रुवोंकूं हनन करूंगा हमारेतैं कोईभी शत्रु जीवनकूं प्राप्त होवैगा नहीं। इहां (हनिष्ये च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है ता चकारकरिकै यह अभिप्राय सूचन कर्या-तिन शत्रुवोंकूं मैं केवल हननही नहीं करूंगा किंतु तिन शत्रुवोंके धनदारादिक पदार्थोंकूंभी मैं हरण करूंगा इति। शंका-तुम्हारे तुल्य अथवा तुम्हारेतैंभी अधिक दूसरे शत्रु विद्यमान हैं, यातैं सर्वशत्रुवोंके नाशकरणेका सामर्थ्य तुम्हारेविषे किस हेतुतैं है ? ऐसी शंकाके हुए वे आसुरपुरुष कहैं हैं-(ईश्वरोहमिति) मैं ईश्वर हूँ केवल मनुष्य नहीं हूँ । जिस मनुष्यपणेकरिकै हमारे तुल्य अथवा हमारेतैं अधिक कोई पुरुष होवै यह अत्यंत तुच्छबलवाले दीनजन हमारी क्या हानि करैंगे सर्वप्रकारतैं हमारे तुल्य कोईभी प्राणी नहीं है । इस अभिप्रायकरिकै वे आसुरपुरुष आपणे ईश्वरपणेकूं वर्णन करैं हैं (अहं भोगी इति) जिस कारणतैं मैंही भोगी हूं अर्थात् विषयभोगोंके सर्वसाधनोंकरिकै मैं ही

युक्त हूं तथा मैं ही सिद्ध हूं अर्थात् भ्राता पुत्र भृत्य इत्यादिक सहायकरिकै मैं ही संपन्न हूं तथा स्वतःभी मै बलवान् हूं अर्थात् अत्यंत ओजसवाला हूं तथा मै ही सुखी हूं अर्थात् सर्वप्रकारवें नीरोग हू इस कारणतैं मैं ईश्वरही हूं ॥ १४ ॥

धनकरिकै अथवा कुलकरिकै कोई पुरुष तुम्हारे तुल्य होवैगा। ऐसी शंकाके हुए ते आसुरपुरुष कहे हैं—

आढ्योभिजनवानस्मि कोन्योस्ति सदृशो मया॥
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः १५॥

(पदच्छेदः) आढ्यः। अभिजनवान्। अस्मि। कः। अन्यः। अस्ति। सदृशः। मया। यक्ष्ये। दास्यामि। मोदिष्ये। इति। अज्ञानविमोहिताः ॥ १५ ॥

(पदार्थः) धनवान् तथा कुलवान् मैंहीं हूं यातै हमारे सदृश दूसरा कौनहै मै यागकूं करूंगा तथा दानकूं करूंगा तिसतैं हर्षकूं प्राप्त होवूंगा इस प्रकार ते आसुरपुरुष अविवेककरिकै मोहित होवै हैं ॥ १५ ॥

भा०टी०—इस लोकविषे मैही धनवान् हूं तथा कुलीनभी मैंही हूं इस कारणतैं इसलोकविषे धनकरिकै तथा कुलकरिकै हमारे समान दूसरा कौन है किंतु हमारे समान दूसरा कोईभी पुरुष धनवान् तथा कुलवान् नहीं है। शंका—धनकरिकै तथा कुलकरिकै तुम्हारे तुल्य कोई मतहोवो तौभी यागकरिकै तथा दानकरिकै तुम्हारे तुल्य कोई होवैगा । ऐसी शंकाके हुए ते आसुरपुरुष कहै है—(यक्ष्ये दास्यामि इति) मैं आपणी प्रतिष्ठाके वास्तै इस प्रकारके महान् यागकूं करोंगा तिसयागकरिकैभी मैं दूसरे सर्वयागकरणेहारे पुरुषोंकूं अभिभव करोंगा। यातैं यागकरिकैभी हमारे तुल्य कोई है नहीं । और हमारी स्तुति करणेहारे जे नट भाट नर्त्तकी आदिक हैं तिन नटादिकोंके ताई मैं बहुत धन देवूंगा तिस धनके देणेतैं मैं नर्त्तकी आदिकोंके साथि बहुत हर्षकूं प्राप्त होवूंगा। यातैं दान-

करिकैभी हमारे तुल्य कोई है नहीं । इस प्रकारतें ते आसुरपुरुष अविवेकरूप अज्ञानकरिकै मोहित होवैं हैं अर्थात् तिस अविवेकरूप अज्ञानतें ते आसुरपुरुष भ्रमकी परंपरारूप विविधप्रकारके मोहकूं प्राप्त करीते हैं ॥ १५ ॥

अनेकचित्तविभ्रांता मोहजालसमावृताः ॥
प्रसक्ताःकामभोगेषु पतंति नरकेऽशुचौ ॥१६॥

(पदच्छेदः) अनेकचित्तविभ्रांताः । मोहजालसमावृताः । प्रसक्ताः । कामभोगेषु । पतंति । नरके । अशुचौ ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अनेक दुष्टसंकल्पोंकरिकै विभ्रांतहुए तथा मोहरूप जालकरिकै आवृतहुए तथा विषयभोगोंविषे अत्यंत आसक्तहुए ते आसुरपुरुष अशुचि नरकविषे पतनं होवैं हैं ॥ १६ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! पूर्वकथनकरे जे अनेकप्रकारके चित्तके दुष्टसंकल्प हैं तिन अनेक चित्तके दुष्टसंकल्पोंकरिकै विविधप्रकारकी भ्रांति हुई है जिन्होंकूं तिन्होंका नाम अनेकचित्तविभ्रांत है । अथवा नहीं है एकवस्तु चिंतनका विषय जिसका ताका नाम अनेक है । अनेक है क्या पूर्वउक्त बहुतविषयोंविषे संलग्न है चित्त जिन्होंका तिन्होंका नाम अनेकचित्त है । और यह कार्य आदिविषे करणेयोग्य है अथवा यह कार्य आदिविषे करणे अयोग्य है इस प्रकार विशेषकरिकै जे पुरुष भ्रांतिकारिकैं युक्त हैं तिन्होंका नाम विभ्रांत है । अनेक चित्त होवैं वेही विभ्रांत होवैं तिन्होंका नाम अनेकचित्तविभ्रांत है । अब ता भ्रांतिकी प्राप्तिविषे हेतु कहैं हैं—(मोहजालसमावृताः इति।) हे अर्जुन । जिसकारणतें ते आसुरपुरुष मोहरूप जालकरिकै आवृत हुए हैं तिस कारणतें ते आसुरपुरुष पूर्वउक्त अनेक दुष्टसंकल्पोंकरिकै विविध प्रकारकी भ्रांतिकूं प्राप्त होवैं हैं । तहां यह वस्तु हमारे हितका साधन है और यह वस्तु हमारे अहितका साधन है इस प्रकारके हित अहित विवेकका जो असामर्थ्य है ताका नाम मोह है । सो

मोहही आवरणरूपताकरिकै बंधनका हेतु होणेतैं लोक प्रसिद्ध जालकी न्याई जालरूप है ऐसे मोहरूप जालकरिकै ते आसुरपुरुष सम्यक् आवृत हुए हैं अर्थात् तिस मोहरूपजालनैं ते आसुरपुरुष सर्व ओरतैं वेष्टन करैं हैं। तात्पर्य यह–जैसे लोकप्रसिद्ध सूत्रमय जालनैं मत्स्यादिक जन्तु परवश करीते हैं तैसे तिस मोहरूप जालनैं ते आसुरपुरुष परवश करैं हैं इसी कारणतैं ही ते आसुरपुरुष आपणे अनिष्टके साधनरूपभी विषय भोगोंविषे प्रसक्त हुए हैं अर्थात् सर्वप्रकारकरिकै तिन विषयभोगोंविषे ही अत्यंत आसक्त हुए हैं तिस विषय भोगोंकी आसक्तिकरिकै क्षणक्षणविषे पापोंकूं संचय करते हुए ते आसुरपुरुष अशुचिनरकविषे पतन होवैं हैं। अर्थात् विष्ठा, श्लेष्म, रुधिर इत्यादिक मलिनपदार्थोंकरिकै पूर्ण जे वैतरणी आदिक नरक हैं तिन नरकोंविषे ही ते आसुरपुरुष पतन होवैं हैं ॥ १६ ॥

हे भगवन् ! तिन आसुरपुरुषोंके मध्यविषे भी कितनेक आसुर पुरुषोंकी यागादिक कर्मोंविषे प्रवृत्ति देखणेमैं आवै है यातैं तिन आसुरपुरुषोंका नरकविषे पतन कहणा अयुक्त है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं–

आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ॥
यजंते नामयज्ञैस्ते दंभेनाविधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥

(पदच्छेदः) आत्मसंभाविताः। स्तब्धाः। धनमानमदान्विताः। यजंते। नामयज्ञैः। ते। दंभेन। अविधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! आत्मसंभावित तथा स्तब्ध तथा धनमानमदकरिकै युक्त ते आसुरपुरुष नाममात्रयज्ञोंकरिकै अविधिपूर्वक दंभकरिकै यजन करैंहैं ॥ १७ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! पुनः कैसे हैं ते आसुरपुरुष–आत्मसंभावित अर्थात् हम सर्व गुणोंकरिकै युक्त होणेतैं अत्यंत श्रेष्ठ हैं इस प्रकार

करिकैभी हमारे तुल्य कोई है नहीं । इस प्रकारतैं ते आसुरपुरुष अविवेकरूप अज्ञानकरिकै मोहित होवैं हैं अर्थात् तिस अविवेकरूप अज्ञानतैं ते आसुरपुरुष भ्रमकी परंपरारूप विविधप्रकारके मोहकूं प्राप्त करीते हैं ॥ १५ ॥

अनेकचित्तविभ्रांता मोहजालसमावृताः ॥
प्रसक्ताःकामभोगेषु पतंति नरकेऽशुचौ ॥१६॥

(पदच्छेदः) अनेकचित्तविभ्रांताः । मोहजालसमावृताः । प्रसक्ताः । कामभोगेषु । पतंति । नरके । अशुचौ ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अनेक दुष्टसंकल्पोंकरिकै विभ्रांतहुए तथा मोहरूप जालकरिकै आवृतहुए तथा विषयभोगोंविषे अत्यंत आसक्तहुए ते आसुरपुरुष अशुचि नरकविषे पतन होवैं हैं ॥ १६ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! पूर्वकथनकरे जे अनेकप्रकारके चित्तके दुष्टसंकल्प हैं तिन अनेक चित्तके दुष्टसंकल्पोंकरिकै विविधप्रकारकी भ्रांति हुई है जिन्होंकूं तिन्होंका नाम अनेकचित्तविभ्रांत है । अथवा नहीं है एकवस्तु चिंतनका विषय जिसका ताका नाम अनेक है । अनेक है क्या पूर्वउक्त बहुतविषयोंविषे संलग्न है चित्त जिन्होंका तिन्होंका नाम अनेकचित्त है । और यह कार्य आदिविषे करणेयोग्य है अथवा यह कार्य आदिविषे करणे अयोग्य है इस प्रकार विशेषकरिकै जे पुरुष भ्रांतिकारिकै युक्त हैं तिन्होंका नाम विभ्रांत है । अनेक चित्त होवैं वेही विभ्रांत होवैं तिन्होंका नाम अनेकचित्तविभ्रांत है । अब ता भ्रांतिकी प्राप्तिविषे हेतु कहैं हैं–(मोहजालसमावृताः इति।) हे अर्जुन ! जिसकारणतैं ते आसुरपुरुष मोहरूप जालकरिकै आवृत हुए हैं तिस कारणतैं ते आसुरपुरुष पूर्वउक्त अनेक दुष्टसंकल्पोंकरिकै विविध प्रकारकी भ्रांतिकूं प्राप्त होवैं हैं । तहां यह वस्तु हमारे हितका साधन है और यह वस्तु हमारे अहितका साधन है इस प्रकारके हित अहित विवेकका जोअसामर्थ्य है ताका नाम मोह है । सो

मोहही आवरणरूपताकरिकै बंधनका हेतु होणेतैं लोक प्रसिद्ध जालकी न्याईं जालरूप है ऐसे मोहरूप जालकरिकै ते आसुरपुरुष सम्यक् आवृत हुए हैं अर्थात् तिस मोहरूपजालनैं ते आसुरपुरुष सर्व ओरतैं वेष्टन करैं हैं। तात्पर्य यह-जैसे लोकप्रसिद्ध सूत्रमय जालनैं मत्स्यादिक जन्तु परवश करीते हैं तैसे तिस मोहरूप जालनैं ते आसुरपुरुष परवश करैं हैं इसी कारणतैं ही ते आसुरपुरुष आपणे अनिष्टके साधनरूपभी विषय भोगोंविषे प्रसक्त हुए हैं अर्थात् सर्वप्रकारकरिकै तिन विषयभोगोंविषे ही अत्यंत आसक्त हुए हैं तिस विषय भोगोंकी आसक्तिकरिकै क्षणक्षणविषे पापोंकूं संचय करते हुए ते आसुरपुरुष अशुचिनरकविषे पतन होवैं हैं। अर्थात् विष्ठा, श्लेष्म, रुधिर इत्यादिक मलिनपदार्थोंकरिकै पूर्ण जे वैतरणी आदिक नरक हैं तिन नरकोंविषे ही ते आसुरपुरुष पतन होवैं हैं ॥ १६ ॥

हे भगवन् ! तिन आसुरपुरुषोंके मध्यविषे भी कितनेक आसुर पुरुषोंकी यागादिक कर्मोंविषे प्रवृत्ति देखणेमैं आवै है यातैं तिन आसुरपुरुषोंका नरकविषे पतन कहणा अयुक्त है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं-

आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ॥
यजंते नामयज्ञैस्ते दंभेनाविधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥

(पदच्छेदः) आत्मसंभाविताः। स्तब्धाः। धनमानमदान्विताः। यजंते। नामयज्ञैः। ते। दंभेन। अविधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! आत्मसंभावित तथा स्तब्ध तथा धनमानमदकरिकै युक्त ते आसुरपुरुष नाममात्रयज्ञोंकरिकै अविधिपूर्वक दंभकरिकै यजन करैंहैं ॥ १७ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! पुनः कैसे हैं ते आसुरपुरुष-आत्मसंभावित अर्थात् हम सर्व गुणोंकरिकै युक्त होणेतैं अत्यंत श्रेष्ठ हैं इस प्रकार

आपणे आपकरिकै ही पूज्यताकूं प्राप्त हुए हैं किसी श्रेष्ठ पुरुषोंकरिकै पूज्यताकूं प्राप्त हुए नहीं। अथवा आपणे स्त्रीपुत्रादिकोंकरिकै ही ते आसुरपुरुष पूज्यताकूं प्राप्त हुए हैं किसी श्रेष्ठ पुरुष करिकै पूज्यताकूं प्राप्त हुए नहीं। पुनः कैसे हैं ते आसुरपुरुष-स्तब्ध है अर्थात् नम्रभावतैं रहित हैं। ता नम्रताके अभावविषे हेतु कहैं है-(धनमानमदान्विताः इति) तहां सुवर्ण,पशु,अन्न,गृह,भूमि इत्यादिकोंका नाम धन है। सो धन है निमित्त जिसविषे ऐसा जो आपणेविषे पूज्यत्वरूप अतिशयताका अध्यास है ताका नाम मान है। सो मान है निमित्त जिसविषे ऐसा जो आपणेतैं भिन्न आपणे गुरुआदिकोंविषे भी अपूज्यत्वका अभिमान है ताका नाम मद है। ऐसे धन निमित्तक मानकरिकै तथा माननिमित्तक मदकरिकै युक्त हुए ते आसुरपुरुष नामयज्ञोंकरिकै यजन करैं हैं। तहां जे यज्ञ केवल 'नाममात्रकरिकै ही' यज्ञरूप होवैं वास्तवतैं यज्ञरूप होवै नहीं तिन यज्ञोंका नाम नामयज्ञ है। अथवा जे यज्ञ कर्त्तापुरुषविषे दीक्षित सोमयाजी इत्यादिक नाममात्रके ही संपादक होवैं हैं किसी धर्मके संपादक होते नहीं तिन यज्ञोंका नाम नामयज्ञ है। ऐसे नाममात्र यज्ञोंकूंभी ते आसुरपुरुष विधिपूर्वक करते नहीं किंतु अविधिपूर्वकही करैं हैं। अर्थात् वेदनैं विधान करे जे द्रव्य, देवता, मंत्र, दक्षिणा इत्यादिक यज्ञके अंग है तिन अंगोंकी संपूर्णतापूर्वक ते आसुरपुरुष तिन यज्ञोंकूं करते नहीं। ऐसे यज्ञोंकूंभी ते आसुरपुरुष कोई श्रद्धापूर्वक करते नहीं किंतु दंभकरिकै करतेहैं। तहां अंतरतैं धर्मनिष्ठातै रहित होइकैभी बाह्यतैं लोकोंके आगे आपणा धर्मात्मापणा प्रगट करणा याका नाम दंभ है। ऐसे दंभकरिकै ते आसुरपुरुष यज्ञोंकूं करैं हैं इस कारणतैं ते आसुरपुरुष तिन यज्ञोंके फलोंकूं प्राप्त होते नहीं॥ १७॥

तहां (यक्ष्ये दास्यामि) इस वचनकरिकै कथन कऱ्या जो दंभ अहंकारादिक है प्रधान जिसविषे ऐसा संकल्प है तिस संकल्पकरिकै प्रवृत्त हुए तिन आसुरपुरुषोंके बहिरंगसाधनरूप यागदानादिक कर्मभी सिद्ध होवे

नहीं तौ विचार, वैराग्य, भगवद्भक्ति इत्यादिक अंतरंगसाधन तिन आसुरपुरुषोंके कैसे सिद्ध होवैंगे ? किंतु ते अंतरंगसाधन तिन्होंके कदाचित्भी सिद्ध नहीं होवैंगे इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैहैं—

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ॥
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषंतोऽभ्यसूयकाः ॥१८॥

(पदच्छेदः) अहंकारम् । बलम् । दर्पम् । कामम् । क्रोधम् । च । संश्रिताः । माम् । आत्मपरदेहेषु । प्रद्विषंतः । अभ्यसूयकाः ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अहंकारकूं तथा बलकूं तथा दर्पकूं तथा कामकूं तथा क्रोधकूं आश्रयणकरणेहारे तथा आपणेदेह परदेहोंविषे स्थित मैं परमेश्वरका द्वेषकरणेहारे तथा असूयादोषवाले ते आसुरपुरुष नरकविषेही पडै हैं ॥ १८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! अहं अभिमानरूप जो अहंकार है सो अहंकार तौ सर्वप्राणियोंविषे साधारण है । यातैं सो साधारण अहंकार इहां अहंकारशब्दकरिकै ग्रहण करणा नहीं किंतु जे गुण आपणेविषे हैं नहीं तिन गुणोंका आपणेविषे आरोपणकरिकै तिन आरोपित गुणोंकरिकै जो आपणे महान्पणेका अभिमान है ताका नाम अहंकार है । इसप्रकार शरीरविषे कार्य करणेका सामर्थ्यरूप जो बल है सो बल तौ सर्वप्राणियोंविषे साधारण है । यातैं सो साधारण बल इहां बलशब्दकरिकै ग्रहण करणा नहीं किंतु अन्यप्राणियोंके पराभव करणेवासतै जो शरीरविषे स्थित सामर्थ्यविशेष है ताका नाम बल है । और अन्यप्राणियोंकी अवज्ञारूप तथा गुरु राजादिक महान् पुरुषोंके उल्लंघन करणेका कारणरूप ऐसा जो चित्तका दोषविशेष है ताका नाम दर्प है । और इष्टवस्तुविषयक जो अभिलाषा है ताका नाम काम है । और अनिष्टवस्तुविषयक जो द्वेष है ताका नाम क्रोध है । इहां (क्रोधं च) इस वचनविषे स्थित जो

चकार है तिस चकारकरिकै परगुणोंके नहीं सहन करणेका स्वभावरूप मात्सर्यका तथा अन्यभी महान् दोषोंका ग्रहण करणा । ऐसे अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध, मात्सर्य इत्यादिक महान् दोषोंकूं ते आसुरपुरुष सर्वदा आश्रयण करैंहै इसकारणतैं ते आसुरपुरुष नरकविषे ही पडैं हैं शंका–हे भगवन् ! इस प्रकारके पतितभी ते आसुरपुरुष आप परमेश्वरकी भक्तिकरिकै पावन हुए नरकविषे नहीं पडैंगे । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन आसुरपुरुषोंविषे भगवद्भक्तिका असंभव कथन करैं हैं–(मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषंतः इति) इहां देह शब्दका आत्माशब्दके अंतविषे तथा परशब्दके अंतविषे संबंध करणेतैं (मामात्मदेहेषु परदेहेषु प्रद्विषंतः) इसप्रकारका वाक्य सिद्ध होवैहै । तहां (आत्मदेहेषु) इस पदकरिकै तिन आसुरपुरुषोंके देहोंका ग्रहण करणा । और (परदेहेषु) इस पद-करिकै तिन आसुरपुरुषोंके पुत्रभार्यादिकोंके देहोंका ग्रहण करणा । यातैं (मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषंतः) इस वचनका यह अर्थ सिद्ध होवैहै तिन आसुरपुरुषोंके प्रेमका विषयभूत जे आपणे देह हैं तथा पुत्रभार्यादिकोंके देह है तिन सर्वदेहोंविषे तिन्होंके बुद्धिकर्मादिकोंका साक्षीरूपकरिकै विद्यमान तथा निरतिशयप्रीतिका विषय ऐसा जो मैं परमेश्वर हूं तिस मैं परमेश्वरविषयक द्वेषकूं ही ते आसुरपुरुष करैंहैं । तहां मैं परमेश्वरकी आज्ञारूप जो श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्र है तिस शास्त्रउक्त अर्थके अनुष्ठानतै रहितपणेकरिकै जो तिस शास्त्ररूप आज्ञाका उल्लंघन है यहही मै परमेश्वर-विषयक द्वेष है । और इस लोकविषेभी राजादिक महान् पुरुषोंके आज्ञाकूं जो पुरुष उल्लंघन करैहै तिस पुरुषकूं तिन राजादिकोंका द्वेषी कहैहैं । ऐसे मैं परमेश्वरके द्वेषकूं करणेहारे तिन आसुरपुरुषोंविषे मै परमेश्वरकी भक्ति होणी अत्यंत दुर्घट है इति । शंका–हे भगवन् ! ऐसे आसुरपुरु-षोंकूं आपणे गुरुआदिक महान् पुरुष क्यों नहीं शिक्षा करते ?-ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं (अभ्यसूयकाः इति) हे अर्जुन ! वेदप्रतिपादित मार्गविषे स्थित जे गुरुआदिक वृद्ध पुरुष है तिन गुरुआ-

दिकोंविषे स्थित करुणादिक गुणोंविषे वे आसुरपुरुष वंचनादिक दोषों-काही आरोपण करैं हैं ऐसे असूयादोषवाले आसुरपुरुषोंकूं तिन गुरु-वोंके वचनोंविषे श्रद्धाही होवी नहीं। यातें वे गुरुभी तिन आसुरपुरु-षोंकूं शिक्षा करते नहीं । इस प्रकार बहिरंगरूप तथा अंतरंगरूप सर्व-साधनोंतैं शून्यहुए वे आसुरपुरुष केवल नरकविषेही पडैहैं इति । अथवा (मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषंतः) इस वचनका यह दूसरा अर्थ करणा । तहां (आत्मदेहेषु) इस पदकरिकै तिन आसुरपुरुषोंके देहोंका ग्रहण करणा । और (परदेहेषु) इस पदकरिकै पशुआदिकोंके देहोंका ग्रहण करणा ताकरिकै यह अर्थ सिद्ध होवैहै—तिन आसुरपुरुषोंके देहोंविषे तथा पशुआदिकोंके देहोंविषे चैतन्यअंशकरिकै स्थित जो मैं परमेश्वर हूं तिस मैं परमेश्वरविषयक द्वेषकूं करतेहुए वे आसुरपुरुष यजन करैहैं । तहां दंभ-पूर्वक करेहुए तिनयज्ञोंविषे तिन आसुरपुरुषोंकी श्रद्धा है नहीं । यातें तिन श्रद्धाहीन यज्ञोंका दूसरा तौ कोई फल होवै नहीं किंतु दीक्षादिक निय-मोंकरिकै तिन आसुरपुरुषोंके आत्माकूं केवल व्यर्थ ही पीडाकी प्राप्ति होवैहै। इसप्रकार पशुआदिकोंकीभी अविधिपूर्वक हिंसाकरिकै दूसरा कोई फल होवै नहीं किंतु ता हिंसाकरिकै केवल चैतन्यका द्रोहमात्रही सिद्ध होवैहै। इस रीतिसैं आपणे देहोंविषे स्थित तथा पशुआदिकोंके देहोंविषे स्थित चैतन्यरूप मैं परमेश्वरका द्वेष करतेहुए ते आसुरपुरुष यजन करैहैं इति । अथवा (मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषंतः) इस वचनका यह तीसरा अर्थ करणा । इहां (आत्मदेहेषु) इस पदकरिकै परमेश्वरके लीला-विग्रहरूप रामकृष्णादिक नामवाले देहोंका ग्रहण करणा । और (परदे-हेषु) इस पदकरिकै प्रह्लाद, विभीषण इत्यादिक नामवाले भक्तजनोंके देहोंका ग्रहण करणा । ताकरिकै यह अर्थ सिद्ध होवैहै मैं परमेश्वरके लीलाविग्रहरूप वासुदेवादिक नामवाले देहोंविषे मनुष्यत्वबुद्धिरूप भ्रमक-रिकै ते आसुरपुरुष मैं परमेश्वरविषयक द्वेषकूं करैं है। तथा प्रह्लाद विभी-षण इत्यादिक नामोंवाले भक्तजनोंके देहोंविषे सर्वदा आविर्भावकूं प्राप्तहुआ

जो मैं परमेश्वर हूं तिस मैं परमेश्वरविषयक द्वेषकूं ते आसुरपुरुष करैहैं यह वार्त्ता पूर्व नवमअध्यायविषे (अवजानंति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् । परं भावमजानंतो मम भूतमहेश्वरम् ॥ मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः । राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥) इन दोश्लोकोंकरिकै कथन करीथी । तथा (अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यंते मामबुद्धयः ।) इस वचनकरिकैभी पूर्व कथन करीथी इति । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । जिस मैं परमेश्वरकी भक्तिकरिकै अधिकारी जन पावन होवैं हैं तिस मैं परमेश्वरविषे ही तिन आसुरपुरुषोंका द्वेष है ऐसे द्वेषी पुरुषोंविषे मैं परमेश्वरकी भक्ति होणी अत्यंत दुर्घट है । यातैं ते आसुरपुरुष किसी प्रकारकरिकैभी पावन होते नहीं ॥ १९ ॥

हे भगवन् ! आप परमेश्वरकी कृपाकरिकै तिन आसुरपुरुषोंकाभी कदाचित् निस्तार होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए तिन आसुरपुरुषोंका कदाचित्भी निस्तार होणेहारा नहीं है इस प्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् कथन करैहैं–

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ॥
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥१९॥

(पदच्छेदः) तान् । अहम् । द्विषतः । क्रूरान् । संसारेषु । नराधमान् । क्षिपामि । अजस्रम् । अशुभान् । आसुरीषु । एव । योनिषु ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! द्वेषकरणेहारे तथा क्रूर तथा नरोंविषे अधम तथा निरंतर अशुभकर्मोंकूं करणेहारे ऐसे तिन आसुरपुरुषोंकूं मैं परमेश्वर नरकजाणेके मार्गोंविषेही गेरताहूं तिसतैं अनंतर अत्यंत क्रूर व्याघ्रसर्पादिक योनियोंविषे ही गेरताहूं ॥ १९ ॥

भा॰टी॰–हे अर्जुन ! शास्त्रप्रतिपादित सन्मार्गके विरोधी जे आसुरपुरुष हैं कैसे हैं वे आसुरपुरुष–मैं परमेश्वरका तथा साधुजनोंका सर्वदा

द्वेष करणेहारे हैं । पुनःकैसे हैं वे आसुरपुरुष—क्रूर हैं अर्थात् सर्वदा जीवोंकी हिंसाविषे ही प्रीतिवाले हैं इसी कारणतें ही ते आसुरपुरुष सर्वनरोंविषे अधम हैं अर्थात् अत्यंत निंदित हैं । पुनःकैसे हैं वे आसुरपुरुष—अशुभ हैं अर्थात् निरंतर शास्त्रनिषिद्ध अशुभ कर्मोंकूं ही करणेहारे हैं । ऐसे तिन आसुरपुरुषोंकूं कर्मके फलका प्रदाता मैं परमेश्वर नरक जाणेके मार्गोंविषे ही गेरता हूं । और वे आसुरपुरुष आपणे पापकर्मोंके वशतें तिन नरकोंविषे बहुत कालपर्यंत अनेकप्रकारके दुःखोंकूं अनुभवकरिकै जबी तिस नरकतें आवें हैं तबी मैं परमेश्वर तिन आसुरपुरुषोंकूं पूर्वले कर्मवासनावोंके अनुसार व्याघ्रसर्पादिक अत्यंत क्रूरयोनियोंविषेही गेरताहूं । ऐसे मैं परमेश्वरके द्रोही तथा साधुपुरुषोंके द्रोही आसुरपुरुषोंऊपरि मैं परमेश्वरकी कदाचित्भी कृपा होती नहीं। तहां इस प्रकारके पापात्मा आसुरपुरुष नीचयोनियोंकूं ही प्राप्त होवैं हैं । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है । तहां श्रुति—(अथ कपूयचरणा अभ्यासोहयत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा शूकरयोनिं वा चांडालयोनिं वा इति ।) अर्थ यह—शास्त्रनिषिद्ध पापकर्मोंकूं करणेहारे पुरुष शीघ्रही नीचयोनियोंकूं प्राप्त होवैं हैं । कभी श्वानयोनिकूं प्राप्त होवैं हैं कभी शूकरयोनिकूं प्राप्त होवैंहैं कभी चांडालयोनिकूं प्राप्त होवैं हैं इसतें आदिलैके दूसरीभी अनेक नीचयोनियोंकूं प्राप्त होवैं हैं इति। इस प्रकार जीवोंके पूर्वपूर्वकर्मोंके अनुसार फलकी प्राप्तिकरणेहारे ईश्वरविषे विषमतादोषकी तथा निर्दयतादोषकी प्राप्ति होवै नहीं। यह वार्त्ता ब्रह्मसूत्रोंविषे श्रीव्यासभगवान्नैंभी कथन करी है । तहां सूत्र—(वैषम्यनैर्घृण्येन सापेक्षत्वात्तथा हि दर्शयति ।) अर्थ यह—इस लोकविषे कोई प्राणी सुखी है कोई प्राणी दुःखी है कोई प्राणी धनी है कोई प्राणी दरिद्री है कोई प्राणी पंडित है कोई प्राणी मूर्ख है । इस प्रकारके विषम जगत्की उत्पत्ति करणेहारे ईश्वरविषे विषमतादोषकी तथा निर्दयतादोषकी अवश्यकरिकै प्राप्ति होवैगी ? ऐसी शंकाके प्राप्तहुए श्रीव्यासभगवान् कहैं हैं—परमेश्वर जीवोंके

पुण्यपापकर्मकी अपेक्षाकरिकै इस विषम जगत्‌कूं उत्पन्न करै है तिस पुण्यपापकर्मके अनुसारही कोई प्राणी सुखी होवैहै कोई प्राणी दुःखी होवै है । यातैं परमेश्वरविषे विषमतादोषकी तथा निर्दयता-दोषकी प्राप्ति होवै नहीं । इसी प्रकारके अर्थकूं (अथ कपूयचरणाः) इत्यादिक श्रुतियां कथन करैं हैं इति । ऐसा सर्वजगत्‌का कारणरूप सो अंतर्यामी परमेश्वर तिन आसुरपुरुषोंकूं केवल पापकर्मही करावै है पुण्य-कर्म करावता नहीं । काहेतैं तिन आसुरपुरुषोंविषे केवल पापकर्मोंकाही बीज वियमान है पुण्यकर्मोंका बीज तिन्होंविषे है नहीं । और बीजके अनुसारही अंकुरकी उत्पत्ति होवैहै अन्य बीजतैं अन्य अंकुरकी उत्पत्ति होवै नहीं । जैसे निंबके बीजतैं निंबके अंकुरकी ही उत्पत्ति होवैहै तिस निंबके बीजतैं आम्रके अंकुरकी उत्पत्ति होवै नहीं । यद्यपि सो परमेश्वर परमकृपालु है तथापि सो परमेश्वर तिन आसुरपुरुषोंके पापोंकूं नाश करता नहीं काहेतैं तिन पापोंके नाशकरणेहारे जे पुण्यकर्म हैं ते पुण्यकर्म तिन आसुरपुरुषोंविषे हैं नहीं यातैं सो परमेश्वर तिन आसुरपुरुषोंके पापोंकूं नाश करता नहीं । और तिन आसुरपुरुषोंविषे पुण्यकर्मोंके करणेकी योग्यता है नहीं यातैं सो परमेश्वर तिन आसुरपुरुषोंकूं पुण्यकर्मभी करावता नहीं जिन पुण्यकर्मोंकरिकै तिन्होंके पापोंका नाश होवै है । काहेतैं कार्यकी उत्पत्ति करणेविषे समर्थ हुआभी सो परमेश्वर जिस वस्तुविषे जिस कार्यकी उत्पत्तिकी योग्यता होवै है तिस वस्तुतैंही तिस कार्यकी उत्पत्ति करै है अयोग्यवस्तुतैं तिस कार्यकी उत्पत्ति करता नहीं । जैसे पाषाणोंविषे यवअंकुरकी उत्पत्तिकी योग्यता है नहीं यातैं परमेश्वर तिन पाषाणोंविषे यवअंकुरकी उत्पत्ति करता नहीं । किंतु यवबीजोंविषे ही तिस यवअंकुरकी उत्पत्ति करै है । तैसे पुण्यकर्मकी उत्पत्तिके अयोग्य तिन आसुरपुरुषों-विषे सो ईश्वरभी पुण्यकर्मोंकूं उत्पन्न करता नहीं । और जो कोई वादी यह वचन कहै कार्यके करणेकूं तथा न करणेकूं तथा अन्यथा करणेकूं जो समर्थ होवै ताका नाम ईश्वर है ऐसा ईश्वर होणेतैं सो परमेश्वर

पुण्यकर्मोंके अयोग्यभी तिन आसुरपुरुषोंविषे पुण्यकर्मकी योग्यताके संपादन करणेमैं समर्थ ही है इति। सो यह कहणा यद्यपि सत्य है काहेतैं सो परमेश्वर सत्यसंकल्प है यातैं सो परमेश्वर जो कदाचित् इन आसुरपुरुषोंविषे पुण्यकर्मकी योग्यता होवै इस प्रकारका संकल्प करै तौ तिन आसुरपुरुषोंविषे पुण्यकर्मकी योग्यता होइजावै परंतु सो परमेश्वर इस प्रकारका संकल्प ही करता नहीं। काहेतैं परमेश्वरकी आज्ञारूप जो श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रहै तिस शास्त्रका उल्लंघन करणेहारे तथा परमेश्वरके भक्तोंके द्रोही ऐसे जे ते दुरात्मा आसुरपुरुष हैं तिन आसुरपुरुषों ऊपरि तिस परमेश्वरकी प्रसन्नता है नहीं ता प्रसन्नतातैं विना सो परमेश्वर तिस संकल्पकूं कैसे करैगा? किंतु कदाचित्भी नहीं करैगा। यह वार्त्ता श्रुतिविषे भी कथन करी है। तहां श्रुति—(एष ह्येव साधु कर्म कारयति तं यमुन्निनीषते एष एवासाधु कर्म कारयति तं यमधो निनीषते।) अर्थ यह—यह परमेश्वर प्रसन्न होइकै जिस पुरुषकूं ऊपरिले स्वर्गादिक लोकोंविषे लेजाणेकी इच्छा करैहै तिस पुरुषकूं तौ पुण्यकर्म करावै है और यह परमेश्वर अप्रसन्न होइकै जिस पुरुषकूं नरकादिक अधोलोकोंविषे लेजाणेकी इच्छा करै है तिस पुरुषकूं तौ पापकर्म ही करावैहै इति। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया—परमेश्वरकी प्रसन्नताका कारणरूप जो परमेश्वरकी वेदरूप आज्ञाका पालन है सो आज्ञाका पालन जिन पुरुषोंविषे विद्यमान है तिन पुरुषोंऊपारि तौ परमेश्वरकी प्रसन्नता होवै है। और जिन पुरुषोंविषे सो परमेश्वरकी आज्ञाका पालन नहीं है तिन पुरुषों ऊपरि परमेश्वरकी प्रसन्नता होती नहीं। और कारणके विद्यमान हुए ही कार्यकी उत्पत्ति होवै है कारणके अभाव हुए कार्यकी उत्पत्ति होवै नहीं यह वार्त्ता लोकविषेभी प्रसिद्ध ही है। इसविषे परमेश्वरकूं विषमता तथा निर्दयता कैसे प्राप्त होवैंगी? किंतु नहीं प्राप्त होवैंगी॥ १९॥

हे भगवन्! ऐसे आसुरपुरुषोंकाभी क्रमकरिकै बहुतजन्मोंके अंतविषे श्रेय होवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए ऐसे आसुरपुरुषोंका

कदाचित्‌भी श्रेय होणेहारा नहीं है इसप्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ॥
मामप्राप्यैव कौंतेय ततो यांत्यधमां गतिम् ॥२०॥

(पदच्छेदः) आसुरीम् । योनिम् । आपन्नाः । मूढाः । जन्मनि । जन्मनि । माम् । अप्राप्य । एव । कौंतेय । ततः । यांति । अधमाम् । गतिम् ॥ २० ॥

(पदार्थः) हे कौंतेय ! जे पुरुष कदाचित्‌भी आसुरी योनिकूं प्राप्तहुए हैं ते पुरुष जन्म जन्मविषे अविवेकी हुए वेदमार्गकूं न प्राप्त होइकै ही तिसतैंभी अधम गतिकूं प्राप्त होवैं हैं ॥ २० ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जे पुरुष कदाचित्‌भी आसुरी योनिकूं प्राप्त हुएहैं ते पुरुष जन्मजन्मविषे मूढहुए अर्थात् तमोगुणकी बाहुल्यताकरिकै विवेकतैं शून्यहुए मेरेकूं न प्राप्त होइकै अर्थात् मैं परमेश्वरउपदिष्ट वेदमार्गकूं न प्राप्त होइकै तिसतैं भी अत्यंत निकृष्टगतिकूं प्राप्त होवैं हैं । इहां (मामप्राप्यैव) इस वचनके अंतविषे स्थित जो एव यह शब्द है सो एवशब्द तिर्यक्स्थावरादिक योनियोंविषे वेदमार्गके प्राप्तिकी अयोग्यताकूं बोधन करै है अर्थात् तिन तिर्यक्स्थावरादिक योनियोंविषे वेदमार्गके प्राप्तिकी योग्यताही नहीं है यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । अत्यंत तमोगुणकी बाहुल्यताकरिकै ते आसुरपुरुष वेदमार्गकी प्राप्तिके अयोग्य होइकै पूर्वपूर्व निकृष्ट योनियोंतैं उत्तरउत्तर अत्यंत निकृष्ट अधमयोनियोंकूं प्राप्त होवैं हैं । जैसे व्याघ्रयोनितैं सर्पयोनि निकृष्ट है तिस सर्पयोनितैंभी कीट पतंगादिक योनि निकृष्ट है तिस कीटपतंगादिक योनितैंभी वृक्षादिक योनि निकृष्ट है इति । इहां यद्यपि (मामप्राप्य) इस वचनविषे स्थित मां इस पद करिकै परमेश्वररूप अर्थकी ही प्रतीति होवै है तथापि मां इस पदकरिकै परमेश्वरका ग्रहण करणा नहीं किंतु मां इस पदकरिकै परमेश्वर-

उपदिष्ट वेदमार्गका ही ग्रहण करणा । काहेतैं जिस वस्तुविषे जो अर्थ किसीभी प्रकारकरिकै प्राप्त होवै है तिस वस्तुविषे ही तिस अर्थका निषेध होवै है सर्वप्रकारतैं अप्राप्त अर्थका निषेध होता नहीं । और तिन आसुरपुरुषोंविषे परमेश्वरके प्राप्तिकी कोई शंकामात्रभी होती नहीं । जिस परमेश्वरकी प्राप्तिका (अप्राप्य) इस शब्दकरिकै निषेध होवै । यद्यपि तिन आसुरपुरुषोंविषे वेदमार्गकी भी प्राप्ति संभवती नहीं तथापि तिन आसुरपुरुषोंविषे वेदमार्गके प्राप्तिकी शंकामात्र कदाचित् होइसकै है तिस वेदमार्गके प्राप्तिकाही (अप्राप्य) यह शब्द निषेध करै है । यातैं मां इस पदकी लक्षणावृत्तितैं परमेश्वरउपदिष्ट वेदमार्गका ग्रहण करणा उचित है इति । और किसी टीकाविषे तौ मां इसपदकी लक्षणावृत्तिकरिकै परमेश्वरके प्राप्तिका साधनरूप अधिकारी मनुष्यदेहका ग्रहण कन्या है इति । यातैं इस श्लोकका यह समुदाय अर्थ सिद्ध होवै है । जिस कारणतैं एकवारभी आसुरीयोनिकूं प्राप्तहुए पुरुषोंकूं तिसतैं उत्तरउत्तर निकृष्टतर तथा निकृष्टतम योनियोंकी ही प्राप्ति होवै है । और अत्यंत तमोगुणकी बाहुल्यताकरिकै तिन आसुरपुरुषोंकूं तिन निकृष्टयोनियोंके निवृत्त करणेका सामर्थ्य होवै नहीं । तिस कारणतैं जितनैं कालपर्यंत अधिकारी मनुष्यदेहकी प्राप्ति है तितनैं कालपर्यंत महान् प्रयत्नकरिकै परमनिकृष्ट आसुरी संपदावोंके निवृत्त करणेवास्तै शीघ्रही इन श्रेयकी इच्छावान् पुरुषोंनैं यथाशक्तिपरिमाण दैवी संपदावोंका संपादन करणा । जो कदाचित् तिन आसुरी संपदावोंके निवृत्त करणेवास्तै यह पुरुष दैवीसंपदावोंका संपादन नहीं करैगा तो तिन आसुरीसंपदावोंके वशतैं व्याघ्रसर्पादिक नीचदेहोंके प्राप्त हुएतैं अनंतर श्रेयसाधनोंके अनुष्ठान करणेविषे अयोग्य होणेतैं इन पुरुषोंका कदाचित्भी निस्तार नहीं होवैगा । इस प्रकार सो पुरुष महान्संकटोंकूं प्राप्त होवैगा । यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथन करी है । तहां श्लोक—(इहैव नरकव्याधेश्चिकित्सां न करोति यः । गत्वा निरौषधं स्थानं सरुजः किं करिष्यति ॥) अर्थ यह—आसुरीसंपत्‌रूप

निमित्तकरिकै उत्पन्न होणेहारी जा नरकरूप व्याधि है तिस नरकरूप व्याधिकी निवृत्ति करणेहारी दैवीसंपद्रूप चिकित्साकूं जो पुरुष इस अधिकारी मनुष्यशरीरविषे नहीं करै है सो रोगीपुरुष दैवीसंपद्रूप औषधतैं रहित स्थानविषे जाइकै तिन नरकरूप व्याधिके निवृत्त करणेवासतै क्या उपाय करैगा किंतु तहां कोईभी उपाय नहीं करैगा ॥ २० ॥

हे भगवन् ! (दंभो दर्पोऽतिमानश्च) इत्यादिक वचनोंकरिकै पूर्व आपनैं कथन करी जा आसुरसंपत् है सा आसुरसंपत् अनेकप्रकारकी है यातैं सा सर्व आसुरसंपत् इस पुरुषनैं आपणे आयुषकी समाप्तिपर्यंत प्रयत्नकरिकैभी निवृत्त करणेकूं अशक्य है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिस आसुरीसंपत्तकूं संक्षेपकरिकै कथन करै हैं-

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ॥
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् २१

(पदच्छेदः) त्रिविधम् । नरकस्य । इदम् । द्वारम् । नाशनम् । आत्मनः । कामः । क्रोधः । तथा । लोभः । तस्मात् । एतत् । त्रयम् । त्यजेत् ॥ २१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इस पुरुषकूं अधमयोनियोंकी प्राप्तिकरणेहारा यह तीनप्रकारका नरकका द्वार है काम क्रोध तथा लोभ तिसकारणतैं इन तीनोंकूं परित्याग करै ॥ २१ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन! नरकके प्राप्तिका यह तीनप्रकारकाही द्वार कहिये साधन है सो यह तीन प्रकारका द्वार ही पूर्वउक्त सर्व आसुरसंपद्का मूलभूत है तथा आत्माके नाशकरणेहारा है अर्थात् धर्ममोक्षादिक सर्वपुरुषार्थोंकी अयोग्यताकूं संपादनकरिकै इन पुरुषोंकूं अत्यंत अधमयोनियोंकी प्राप्ति करणेहारा है । तहां सो तीनप्रकारका नरकका द्वार कौन है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहै हैं (कामः क्रोधस्तथा लोभः इति ।) हे अर्जुन ! काम, क्रोध, लोभ यह तीनोंही इस पुरुषकूं

नरककी प्राप्ति करणेहारे हैं। तथा व्याघ्र, सर्प, कीट, पतंग, वृक्ष इत्यादिक अत्यंत अधमयोनियोंकी प्राप्ति करणेहारे हैं। और इन तीनोंके प्राप्तहुएतें अनंतरही इस पुरुषकूं ते सर्व आसुरसंपत्तियां प्राप्त होवैं हैं। हे अर्जुन ! जिसकारणतें काम, क्रोध, लोभ यह तीनोंही इस पुरुषकूं सर्व अनर्थोंके मूलभूत हैं तिस कारणतें यह अधिकारी पुरुष इन तीनोंका अवश्यकरिकै परित्याग करै। इन तीनोंके परित्यागकरिकै ही पूर्वउक्त सर्वही आसुरसंपत् परित्याग करी जावै है। तहां चित्तविषे उत्पन्नहुए काम, क्रोध, लोभका जो अनर्थविषे प्रवृत्तिरूप कार्य है ता कार्यका विवेककरिकै जो प्रतिबंध है तथा तिसतैं अनंतर तिन कामादिकोंकी जो नहीं उत्पत्ति है यहही तिन कामादिक तीनोंका परित्याग है। तहां काम, क्रोध, लोभ इन तीनोंका स्वरूप इसी अध्यायविषे पूर्व कथन करि आये हैं॥ २१॥

हे भगवन् ! काम, क्रोध, लोभ इन तीनोंके त्याग करणेहारे पुरुषकूं कौन फल प्राप्त होवै है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं-

एतैर्विमुक्तः कौंतेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः॥
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्२२॥

(पदच्छेदः) एतैः। विमुक्तः। कौंतेय। तमोद्वारैः। त्रिभिः। नरः। आचरति। आत्मनः। श्रेयः। ततः। याति। पराम्। गतिम्॥ २२॥

(पदार्थः) हे कौंतेय। नरकके द्वारभूत इन काम क्रोध लोभ तीनोंनैं परित्याग कर्याहुआ यह पुरुष आपणे श्रेयकूंही सिद्धकरैहै तिसतैं परम गतिकूं प्राप्त होवैहै॥ २२॥

भा॰ टी॰-हे अर्जुन। नरकके प्राप्तिका साधनभूत तथा अत्यंत अधमयोनियोंके प्राप्तिका साधनभूत जे काम, क्रोध, लोभ यह तीन है इन तीनोंतें रहित हुआ यह पुरुष आपणे श्रेयकूंही सिद्ध करैहै अर्थात् इस अधिकारी पुरुषके प्रति वेद भगवान्नै हितरूपकरिकै विधान कर्ये जे

भगवत्भजनादिक अर्थ हैं तिन अर्थोंकूंही सो पुरुष अनुष्ठान करै है । हे अर्जुन ! इन काम, क्रोध, लोभ तीनोंके परित्यागतैं पूर्व तिन कामादिकोंकरिकै प्रतिबद्धहुआ यह पुरुष आपणे श्रेयकूं सिद्ध करता नहीं । जिस करिकै इस पुरुषकूं मोक्षरूप पुरुषार्थकी प्राप्ति होवै । उलटा यह पुरुष आपणे अश्रेयकूंही संपादन करैहै जिसकरिकै इस पुरुषका नरकविषे पतनही होवैहै । और अभी तिस कामक्रोधादिरूप प्रतिबंधतैं रहित हुआ यह पुरुष आपणे आश्रयकूं संपादन करता नहीं किंतु अभी आपणे श्रेयकूंही संपादन करै है । तिस श्रेयके संपादनतैं इस लोकके सुखकूं अनुभव करिकै अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा तथा आत्मज्ञानकी प्राप्तिद्वारा मोक्षरूप परमगतिकूंही प्राप्त होवै है । यातैं मोक्षकी इच्छावान् अधिकारी पुरुषोंनै यह कामादिक तीनों अवश्यकरिकै परित्याग करणे ॥ २२ ॥

जिस कारणतैं अश्रेयके नहीं आचरण करणेका तथा श्रेयके आचरण करणेका केवल शास्त्रही निमित्त है काहेतैं अश्रेयका नहीं आचरण तथा श्रेयका आचरण यह दोनों केवल शास्त्रप्रमाणकरिकै ही जान्येजावैं हैं अन्य किसी प्रमाणकरिकै जान्ये जावे नहीं । तिसकारणतैं तिस शास्त्रका परित्याग करिकै आपणी इच्छापूर्वक वर्त्तणेहारा पुरुष किसीभी पुरुषार्थकूं प्राप्त होवा नहीं । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करै हैं—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्त्तते कामकारतः ॥
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥ २३ ॥

(पदच्छेदः) यः । शास्त्रविधिम् । उत्सृज्य । वर्त्तते । कामकारतः । न । सः । सिद्धिम् । अवाप्नोति । न । सुखम् । न । पराम् । गतिम् ॥ २३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन । जो पुरुष शास्त्रविधिकूं परित्यागकरिकै आपणी इच्छामात्रतैं वर्त्तता है सो पुरुष अंतःकरणके शुद्धिकूंभी नहीं प्राप्त होवै है तथा इस लोकके सुखकूंभी नहीं प्राप्त होवैहै तथा स्वर्गमोक्षरूप उत्कृष्ट गतिकूंभी नहीं प्राप्तहोवैहै ॥ २३ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! अधिकारी जनोंके प्रति अपूर्व अर्थका बोधन करीता है जिसनैं ताका नाम शास्त्र है । ऐसे शास्त्ररूप ऋगादिक च्यारि वेद हैं तथा तिन वेदोंके अनुसारी स्मृति, पुराण, इतिहास, सूत्र इत्यादिकभी शास्त्ररूपही हैं । तिन शास्त्रोंकी जा विधिहै अर्थात् इस अधिकारी पुरुषनैं यह कार्य करणा यह कार्य नहीं करणा इस प्रकारके कर्तव्य अकर्तव्य ज्ञानके हेतुभूत जे प्रवर्त्तक निवर्तक विधिनिषेध वचन हैं तहां (अहरहः संध्यामुपासीत ।) अर्थ यह—यह त्रैवर्णिक पुरुष दिनदिनविषे संध्याकूं करैं इत्यादिक वचन तौ विधिवचन कहे जावैं हैं । और (परदारान्न गच्छेत् ।) अर्थ यह—यह पुरुष परस्त्रीके साथि मैथुन नहीं करैं इत्यादिक वचन निषेध वचन कहे जावैं हैं । ऐसे शास्त्रविधिकूं जो पुरुष अश्रद्धावैं परित्याग करिकै आपणी इच्छामात्रतैं वर्त्तता है अर्थात् जो पुरुष शास्त्रविहितभी कर्मकूं करता नहीं तथा शास्त्रनिषिद्धभी कर्मकूं करता है सो शास्त्रविधिके परित्याग करनेहारा पुरुष पुरुषार्थके प्राप्तिकी योग्यतारूप अन्तःकरणकी शुद्धिके कर्मोंकूं करवाहुआभी प्राप्त होता नहीं । तथा सो पुरुष इस लोकके सुखकूंभी प्राप्त होता नहीं । तथा सो पुरुष स्वर्गरूप उत्कृष्टगतिकूं अथवा मोक्षरूप उत्कृष्टगतिकूंभी प्राप्त होता नहीं किंतु सो शास्त्रके विधिका उल्लंघन करणेहारा पुरुष सर्व पुरुषार्थोंतैं भ्रष्टही होवैहै इति । इहां (शास्त्रविधिम्) इस वचनविषे जो भगवान्नैं विधि यह शब्द कथन कर्‍या है सो तिन विधिनिषेधवचनोंतैं अतिरिक्त प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मके प्रतिपादक जे तत्त्वमसि अहंब्रह्मास्मि इत्यादिक वेदांतवचन हैं ते वचनभी शास्त्ररूप ही हैं इस अर्थके सूचन करणेवासतै कथन कर्‍या है ॥ २३ ॥

जिस कारणतैं शास्त्रतैं विमुख होइकै आपणी इच्छापूर्वक प्रवर्त्त होणेहारे पुरुष सर्वपुरुषार्थोंतैं भ्रष्ट होवैं हैं तिसकारणतैं इनअधिकारी पुरुषोंनैं शास्त्रकी विधिकरिकैही कर्मोंकूं करणा । इस अर्थकूं कथन करतेहुए श्रीभगवान् इस षोडश अध्यायका उपसंहार करैं हैं—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ॥
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्त्तुमिहार्हसि ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसंपद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) तस्मात् । शास्त्रम् । प्रमाणम् । ते । कार्याकार्यव्यवस्थितौ । ज्ञात्वा । शास्त्रविधानोक्तम् । कर्म । कर्त्तुम् । इह । अर्हसि ॥ २४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिसकारणतैं तैं अर्जुनकूं कार्यअकार्यकी व्यवस्थाविषेही शास्त्रही प्रमाण है यातैं इसकर्मके अधिकारभूमिविषे शास्त्रविधानकरिकै कथन करेहुए कर्मकूं जानिकरिकै तूं युद्धादिक कर्मोंके करणेकूं योग्य है ॥ २४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जिसकारणतैं शास्त्रविधिका परित्याग करिकै आपणी इच्छापूर्वक वर्त्तणहारा पुरुष इस लोकके तथा परलोकके सर्वपुरुषार्थोंके अयोग्य होवै है । जिसकारणतैं श्रेयकी इच्छावान् तैं अर्जुनकूं कार्यअकार्यकी व्यवस्थाविषे केवल शास्त्रही प्रमाणरूप है अर्थात् हमारेकूं क्या करणेयोग्य है क्या नहीं करणे योग्य है इस प्रकारकी जा कर्त्तव्य अकर्त्तव्य अर्थकी व्यवस्था है तिस व्यवस्थाविषे श्रुति, स्मृति, पुराण इतिहासादिरूप शास्त्रप्रमाणही बोधक हैं । आपणी बुद्धि तथा वृद्धादिकोंके वाक्य तिस व्यवस्थाविषे प्रमाणरूप नहीं हैं । यातैं इस कर्मके अधिकारभूमिविषे इस पुरुषनैं यह कर्म करणा यह कर्म नहीं करणा इस प्रकारके प्रवर्तक निवर्तकरूप शास्त्रके विधाननैं कथन कऱ्या जो विहित प्रतिषिद्ध कर्म है तिस कर्मकूं भलीप्रकार जानिकै शास्त्रनिषिद्ध कर्मका परित्याग करिकै आपणे अन्तःकरणकी शुद्धिपर्यंत शास्त्रविहित आपणे युद्धादिक कर्मोंकेही करणेकूं तूं योग्य है इति । तहां इस षोडश अध्यायविषे श्रीभगवान्नैं यह अर्थ कथन कऱ्या-पूर्वउक्त दंभदर्पादिक सर्व आसुर संप-

त्का मूलभूत तथा सर्व अश्रेयकी प्राप्तिकरणेहारे तथा सर्व श्रेयके प्रतिबंधक ऐसे जे काम, क्रोध, लोभ यह तीन महान् दोष हैं तिन कामादिक महान् दोषोंका परित्याग करिकै श्रेयके प्राप्तिकी इच्छावान् इस अधिकारी पुरुषनैं अत्यंत श्रद्धापूर्वक शास्त्रके श्रवणपरायण होणा तथा तिस शास्त्रउपदिष्ट अर्थके अनुष्ठानपरायण होणा । यह अर्थ श्रीभगवान्नैं दैवीसंपत् आसुरीसंपत् इन दोनों संपदावोंके भिन्न भिन्न कथन करिकै निर्णय कऱ्या॥ २४ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां षोडशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशाऽध्यायप्रारंभः ।

तहां कर्मके अनुष्ठान करणेहारे पुरुष तीन प्रकारके होवैंहैं । केईक पुरुष तौ शास्त्रके विधिकूं जानिकरिकै भी अश्रद्धारूप दोषतैं तिस शास्त्रविधिका परित्याग करिकै आपणी इच्छामात्रतैं यत्किंचित् कर्मोंका अनुष्ठान करैं हैं ऐसे पुरुष तौ सर्व पुरुषार्थोंके अयोग्य होणेतैं आसुर कहेजावैं है । और केईक पुरुष तौ शास्त्रके विधिकूं जानिकरिकै अत्यंत श्रद्धावान होइकै तिस शास्त्रविधिके अनुसारही निषिद्धकर्मोंका परित्याग करिकै शास्त्रविहित कर्मोंका अनुष्ठान करैं हैं ऐसे पुरुष तौ सर्व पुरुषार्थोंके योग्य होणेतैं देव कहेजावैं हे । यह अर्थ पूर्व षोडश अध्यायके अंतविषे निर्णय कऱ्या । और जे पुरुष शास्त्रके विधिकूं आलस्यादिक दोषके वशतैं परित्याग करिकै आपणे पितापितामहादिक वृद्ध पुरुषोंके व्यवहारमात्रकरिकै श्रद्धापूर्वक निषिद्धकर्मोंका परित्याग करिकै विहितकर्मोंका अनुष्ठान करैंहैं तिन पुरुषोंविषे असुरोंका धर्म घटताहै । तथा देवतावोंका धर्मभी घटताहै । तहां शास्त्रके विधिका परित्याग करणा यह तौ असुरोंका

धर्म तिन्होंविषे घटैहै । और श्रद्धापूर्वक विहितकर्मोंका अनुष्ठान करणा यह देवतावोंका धर्म तिन्होंविषे घटै है । इसप्रकार असुरोंके धर्मकरिकै तथा देवतावोंके धर्मकरिकै युक्त हुए ते पुरुष क्या असुरोंविषे अंतर्भूत हैं अथवा देवतावोंविषे अंतर्भूत है इसप्रकार दोनों कर्मोंके दर्शनतैं तथा एक कोटिक निश्चय करावणेहारे अर्थके दर्शनतैं संशयकूं प्राप्त हुआ सो अर्जुन श्रीभगवान्‌के प्रति प्रश्न करै है-

अर्जुन उवाच।

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजंते श्रद्धयान्विताः ॥
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः॥१॥

(पदच्छेदः) ये । शास्त्रविधिम् । उत्सृज्य । यजंते । श्रद्धया । अन्विताः । तेषाम् । निष्ठा । तु । का । कृष्ण । सत्त्वम् । आहो । रजः । तमः ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे कृष्ण । जे पुरुष शास्त्रविधिकूं परित्यागकरिकै श्रद्धाकरिकै युक्तहुए देवपूजनादिकोंकूं करै है तिनपुरुषोंकी पुनः किसप्रकारकी निष्ठा है सात्त्विकी है अथवा राजसी तामसी है ॥ १ ॥

भा० टी०-हे कृष्ण । अर्थात् हे सत्य आनंदरूप । जैसे देवतापुरुष श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रके अनुसारी होवैहैं तैसे जे पुरुष शास्त्रके अनुसारी हैं नहीं किंतु जे पुरुष श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रके विधिकूं आलस्यादिक दोषके वशतैं परित्याग करिकै वर्त्तेहैं । और जैसे आसुरपुरुष श्रद्धातैं रहित होवैहैं तैसे जे पुरुष श्रद्धातैं रहित हैं नहीं किंतु जे पुरुष आपणे पितापितामहादिक वृद्ध पुरुषोंके व्यवहारके अनुसरणमात्रतैं श्रद्धाकरिकै युक्त हुए हैं, इसप्रकार आलस्यादिक दोषके वशतैं शास्त्रविधिका परित्याग करिकै तथा आपणे वृद्धपुरुषोंके व्यवहारके अनुसरणमात्रतैं श्रद्धाकरिकै युक्त हुए जे पुरुष देवपूजनादिक कर्मोंकूं करैहैं तिन पुरुषोंकी किसप्रकारकी निष्ठा है अर्थात् शास्त्रविधिकी उपेक्षा तथा वृद्धव्यवहारमात्रतैं श्रद्धा इन दोनों-

करिकै जे पुरुष पूर्व अध्यायउक्त देव असुरपुरुषोंतैं विलक्षण हैं तिन पुरुषोंकी सा शास्त्रविधिकी अपेक्षातैं रहित श्रद्धापूर्वक देवपूजनादिरूप क्रियाकी व्यवस्थिति किस प्रकारकी है क्या सात्त्विकी है अथवा राजसी तामसी है । तहां तिन पुरुषोंकी सा निष्ठा जो कदाचित् सात्त्विकी होवैगी तौ सात्त्विकस्वभाववाले होणेतैं ते पुरुष देवताही होवैंगे । और तिन पुरुषोंकी सा निष्ठा जो कदाचित् राजसी तामसी होवैगी तौ राजसताम-सस्वभाववाले होणेतैं ते पुरुष असुरही होवैंगे इति । इहां (सत्त्वम्) इस पदकरिकै अर्जुननैं संशयकी एक कोटि कथन करीहै । और (रज-स्तमः) इस वचनकरिकै ता संशयकी दूसरी कोटि कथन करी है । इसी विभागके जनावणेवास्तै तिन दोनोंके मध्यविषे (आहो) इस शब्दका कथन कऱ्या है यातैं सात्त्विकी, राजसी, तामसी यह तीन कोटि इहां ग्रहण करणी नहीं ॥ १ ॥

तहां जे पुरुष शास्त्रविधिका परित्यागकरिकै श्रद्धापूर्वक देवपूजनादिक कर्मोंकूं करैं हैं ते पुरुष तिस श्रद्धाके भेदकरिकै भेदवालेही होवैं हैं । तहां जे पुरुष सात्त्विकी श्रद्धाकरिकै युक्त होवैहैं । ते पुरुष तौ देव कहेजावैं हैं । ऐसे सात्त्विकश्रद्धावाले देवपुरुष तौ श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रउक्त साधनों-विषे अधिकारीभावकूं प्राप्त होवैं हैं । तथा तिन साधनोंजन्य फलकूंभी प्राप्त होवैं हैं । और जे पुरुष राजसी श्रद्धाकरिकै तथा तामसी श्रद्धाक-रिकै युक्त हैं ते पुरुष आसुर कहे जावैं हैं । ऐसे आसुरपुरुष तौ शास्त्रउक्त साधनोंविषे अधिकारीभावकूं प्राप्त होवैं नहीं तथा तिन साधनोंजन्य भाव-कूंभी प्राप्त होते नहीं । इसप्रकारकके विवेककरिकै अर्जुनके संशयके निवृत्त-करणेकी इच्छा करते हुए श्रीभगवान् तिन श्रद्धाके भेदकूं कथन करैं हैं—

श्रीभगवानुवाच ।

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ॥
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥२॥

(पदच्छेदः) त्रिविधा । भवति । श्रद्धा । देहिनाम् । सा । स्वभावजा । सात्त्विकी । राजसी । च । एव । तामसी । च । इति । ताम् । शृणु ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! देहाभिमानवाले पुरुषोंकी सा स्वभावजन्य श्रद्धा सात्त्विकी तथा राजसी तथा तामसी यह तीन प्रकारकी [12] ही [13] होवैहै तिस श्रद्धाकूं तूं श्रवण कर ॥ २ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जिस श्रद्धाकरिकै युक्तहुए यह प्राणी शास्त्रविधिका परित्याग करिकै देवपूजनादिक कर्मोंकूं करै हैं सा देहाभिमानी पुरुषोंकी स्वभावजन्य श्रद्धा तीनप्रकारकी होवैहै । तहां जन्मांतरोंविषे संपादन करे जे धर्म अधर्म आदिकोंके संस्कार हैं जिन संस्कारोंने इस जन्मका आरंभ कन्याहै तिन संस्कारोंका नाम स्वभाव है । सो जीवोंका स्वभाव सात्त्विक, राजस, तामस इस भेदकरिकै तीनप्रकारका होवै है तिस तीन प्रकारके स्वभावकरिकै जन्य जा श्रद्धा है सा श्रद्धाभी सात्त्विकी, राजसी, तामसी इस भेदकरिकै तीनप्रकारकी होवै है काहेतें लोकविषे जो जो कार्य होवै है सो सो कार्य आपणे कारणके सदृशही होवै है कारणतें विलक्षण कार्य होवै नहीं । तहां सात्त्विकस्वभावजन्य श्रद्धा सात्त्विकी श्रद्धा कही जावै है । और राजसस्वभावजन्य श्रद्धा राजसी श्रद्धा कहीजावै है । और तामसस्वभावजन्य श्रद्धा तामसी श्रद्धा कहीजावैहै । इसप्रकार संस्काररूप स्वभावके त्रिविधपणेकरिकै सा श्रद्धाभी तीनप्रकारकी ही होवै है इति । इहां (राजसी चैव) इस वचनविषे स्थित जो (च एव) यह दो शब्द है तिन दोनों शब्दोंविषे प्रथम च इस शब्दकरिकै श्रीभगवान्नें यह अर्थ बोधन कन्या–जो श्रद्धा आरंभहुए जन्मविषे केवल शास्त्रके संस्कारमात्र करिकैभी जन्य होवैहै सा विद्वान्पुरुषोंकी श्रद्धा कारणकी एकरूपताकरिकै एक सात्त्विकीरूपही होवैहै राजसीरूप तथा तामसीरूप होवै नहीं इति । और दूसरे एव इस शब्दकरिकै श्रीभगवान्नें यह अर्थ बोधन कन्या–

जा श्रद्धा शास्त्रकी अपेक्षातैं रहित है तथा प्राणीमात्रविषे साधारण है तथा पूर्वउक्त स्वभावकरिकै जन्य है। सा श्रद्धा ही तिस स्वभावके त्रिविधपणेकरिकै तीनप्रकारकी होवैहै इति । और (तामसी च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार तिन तीन प्रकारोंके समुच्चय करावणेवास्तै है इति । हे अर्जुन । जिस कारणतैं पूर्वजन्मके वासनारूप स्वभावका अभिभव करणेहारा शास्त्रजन्य विवेकविज्ञान तिन शास्त्रविधिके उल्लंघन करणेहारे पुरुषोंकूं है नहीं तिस कारणतैं तिन पुरुषोंके पूर्ववासनारूप स्वभावके वशतैं सा श्रद्धा तीन प्रकारकी ही होवै है तिस तीन प्रकारकी श्रद्धाकूं तूं श्रवण कर । तिस श्रद्धाकूं श्रवण करिकै तिन पुरुषोंविषे देवभावकूं अथवा आसुरभावकूं तूं आपेही निश्चय करैगा॥ २॥

तहां पूर्वश्लोकविषे अंतःकरणविषे स्थित पूर्वजन्मकी वासनारूप निमित्तकारणकी विचित्रताकरिकै तिस श्रद्धाकी विचित्रता कथन करी। अब श्रीभगवान् तिस श्रद्धाके उपादानकारणरूप अंतःकरणकी विचित्रता करिकैभी तिस श्रद्धाकी विचित्रताकूं कथन करैहैं—

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ॥
श्रद्धामयोयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥३॥

(पदच्छेदः) सत्त्वानुरूपा। सर्वस्य। श्रद्धा। भवति । भारत। श्रद्धामयः । अयम् । पुरुषः । यः । यच्छ्रद्धः । सः । एव । सः ॥ ३॥

(पदार्थः) हे भारत । सर्वप्राणीमात्रकी आपणे अंतःकरणके अनुसारही श्रद्धा होवैहै यह पुरुष श्रद्धामय होवैहै यातैं जो पुरुष जिसश्रद्धावाला होवैहै सो पुरुष तत्सदृश ही होवैहै ॥ ३ ॥

भा॰टी॰—हे अर्जुन । सत्त्वगुण है प्रधान जिन्होंविषे ऐसे जे त्रिगुणात्मक अपंचीकृत पंचमहाभूत हैं तिन पंचमहाभूतोंतैं उत्पन्न हुआ यह अंतःकरण प्रकाशस्वभाववाला होणेतैं सत्त्व इस नामकरिकै कह्याजावैहै। सो अंतःकरण किसीके शरीरविषे तौ उद्भूतसत्त्वगुणवालाही होवैहै।

जैसे देवतावोंका अंतःकरण है । और किसी शरीरविषे तौ सो अंतः-करण रजोगुणकरिकै अभिभूत सत्त्वगुणवाला होवैहै। जैसे यक्षादिकोंका अंतःकरण है और किसीके शरीरविषे तौ सो अंतःकरण तमोगुणकरिकै अभिभूत सत्त्वगुणवाला होवै है। जैसे भूतप्रेतादिकोंका अंतःकरण है। और मनुष्योंका तौ सो अंतःकरण बाहुल्यताकरिकै व्यामिश्रितही होवै है । सो मनुष्योंका अंतःकरण शास्त्रजन्य विवेकज्ञानकरिकै रजोतमो-गुणका अभिभवकरिकै उद्भूतसत्त्वगुणवाला कन्या जावै है । और जे पुरुष शास्त्रजन्य विवेकज्ञानतैं शून्य हैं तिन सर्व प्राणीमात्रकी तिस आपणे आपणे अंतःकरणके अनुसार ही श्रद्धा होवै है । अर्थात् तिस अंतःकर-णकी विचित्रतातैं तिन प्राणियोंकी सा श्रद्धाभी विचित्रही होवै है। तहां सत्त्वगुण है प्रधान जिसविषे ऐसे अंतःकरणविषे तौ सात्त्विकी श्रद्धा होवै है। और रजोगुण है प्रधान जिसविषे ऐसे अंतःकरणविषे तौ राजसी श्रद्धा होवै है। और तमोगुण है प्रधान जिसविषे ऐसे अंतःकरणविषे तौ तामसी श्रद्धा होवै है इति । हे अर्जुन ! तिन पुरुषोंकी किस प्रकारकी सा निष्ठा होवै है यह जो पूर्व तुमनै प्रश्न कन्याथा तिस प्रश्नके उत्तरकूं तूं अब श्रवण कर । यह शास्त्रजन्य ज्ञानतैं रहित तथा कर्मका अधिकारी त्रिगुणात्मक अंतःकरणविशिष्ट पुरुष श्रद्धामय होवै है । तहां जिसविषे श्रद्धाकी बाहुल्यता होवै है ताका नाम श्रद्धामय है। जैसे अन्नकी बाहु-ल्यतावाले यज्ञकूं अन्नमययज्ञ कहैं हैं । श्रद्धामय होणेतैं ही जो पुरुष जिस श्रद्धावाला है अर्थात् जो पुरुष जिस सात्त्विकी श्रद्धावाला है अथवा राजसी श्रद्धावाला है अथवा तामसी श्रद्धावाला है सो पुरुष तिस आपणी श्रद्धाके अनुसारही सात्त्विक कह्या जावै है अथवा राजस कह्या जावै है अथवा तामस कह्या जावै है । यातैं इस पुरुषकी श्रद्धाकरिकै ही सा निष्ठा जानीजावै है इति । तहां महान् भरतकुलविषे जो उत्पन्न हुआ होवै ताका नाम भारत है । अथवा शास्त्रजन्य ज्ञानका नाम भा है ताकेविषे

जो प्रीतिवाला होवै ताका नाम भारत है। इस भारत संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं अर्जुनविषे शुद्धसात्त्विकपणा सूचन कऱ्या ॥ ३ ॥

हे भगवन्! इस पुरुषकी श्रद्धाही इस पुरुषके निष्ठाकूं जनावै है यह वचन पूर्व आपनैं कथन कऱ्या सो सत्य है परन्तु सा श्रद्धा आप अज्ञात हुई तिस निष्ठाकूं जनावैगी नहीं किंतु आप ज्ञात हुई सा श्रद्धा तिस निष्ठाकूं जनावैगी यातैं इस पुरुषकी सा श्रद्धाही किस उपायकरिकै जानी जावै है? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए देवपूजनादिक कार्यरूप लिंगकरिकै सा श्रद्धा अनुमान करी जावै है, इसप्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

यजंते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ॥
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजंते तामसा जनाः ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) यजंते। सात्त्विकाः। देवान्। यक्षरक्षांसि। राजसाः। प्रेतान्। भूतगणान्। च। अन्ये। यजंते। तामसाः। जनाः ॥ ४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! जे पुरुष देवतावोंकूं पूजनकरैं हैं ते पुरुष सात्त्विक जानणे और जे पुरुष यक्षराक्षसोंकूं पूजनकरैं हैं ते पुरुष राजस जानणे और जे पुरुष प्रेतोंकूं तथा भूतगणोंकूं पूंजन करै हैं ते अन्यपुरुष तामस जानणे ॥ ४ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन! शास्त्रजन्य विवेकज्ञानतैं रहित जे पुरुष ता स्वभावजन्य श्रद्धाकरिकै वसुरुद्रादिक सात्त्विक देवताकूं पूजन करैं हैं ते अन्यपुरुष सात्त्विक जानणे। और शास्त्रजन्य विवेकज्ञानतैं रहित जे पुरुष तिस स्वभावजन्य श्रद्धाकरिकै रजोगुणवाले कुबेरादिक यक्षोंकूं तथा नैर्ऋत आदिक राक्षसोंकूं पूजन करैं हैं ते अन्यपुरुष राजस जानणे और शास्त्रजन्य विवेकज्ञानतैं रहित जे पुरुष ता स्वभावजन्य श्रद्धाकरिकै तमोगुणवाले प्रेतोंकूं तथा भूतगणोंकूं पूजन करैं हैं ते अन्य पुरुष

तामस जानणे । तहां जे ब्राह्मणादिक आपणे धर्मतें भ्रष्ट होवैं हैं ते ब्राह्मणादिक तिस शरीरके पात हुएतें अनंतर वायुमयदेहकूं प्राप्त होइकै उल्कामुख कट पूतनादिक नामवाले प्रेत होवैं हैं । अथवा पिशाचविशेषका नाम प्रेत है । और सप्तमातृका आदिकोंका नाम भूतगण है । इहां (भूतगणांश्चान्ये) इस वचनके अंतविषे स्थित जो अन्ये यह पद है ता पदका (सात्त्विकाः राजसाः तामसाः) इन तीनों पदोंविषे संबंध करणा ताकरिकै सात्त्विक, राजस, तामस, इन तीन प्रकारके पुरुषोंविषे परस्पर विलक्षणता सिद्ध होवै है ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रके परित्याग करणेहारे पुरुषोंकी सात्त्विकादिरूप निष्ठा देवपूजनादिक कार्यतें निर्णय करी । तहां केईक राजसतामसपुरुषभी पूर्वले किसी पुण्यकर्मके परिपाकतें सात्त्विक होइकै शास्त्रउक्त साधनोंविषे अधिकारीपणेकूं प्राप्त होवैं हैं । और जे पुरुष आपणे दुराग्रहकरिकै तथा पूर्वले किसी पापकर्मके परिपाकतें प्राप्त हुए दुर्जनसंगादिक दोषकरिकै तिस राजसतामसभावकूं नहीं परित्याग करैं हैं ते पुरुष शास्त्रप्रतिपादित सन्मार्गतें भ्रष्टहुए शास्त्रनिषिद्ध असन्मार्गके अनुसरणकरिकै इसलोकविषे तथा परलोकविषे केवल दुःखकेही भागी होवैं हैं । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् दोश्लोकोंकरिकै प्रतिपादन करैं हैं–

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यंते ये तपो जनाः ॥
दंभाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥ ५ ॥
कर्षयंतः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ॥
मां चैवांतः शरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥६॥

(पदच्छेदः) अशास्त्रविहितम् । घोरम् । तप्यंते । ये । तपः ॥ जनाः । दंभाहंकारसंयुक्ताः । कामरागबलान्विताः । कर्षयंतः । शरीरस्थम् । भूतग्रामम् । अचेतसः । माम् । च । एव । अन्तः । शरीरस्थम् । तान् । विद्धि । आसुरनिश्चयान् ॥ ५॥ ६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जे पुरुष अशास्त्रविहित घोर तपकूं करैं हैं तथा दंभअहंकार करिकै संयुक्त हैं तथा कामरागबलकरिकै युक्त हैं तथा शरीरविषे स्थित भूतोंके समूहकूं क्लेशकरैं हैं तथा अन्तर शरीरविषे स्थित मैं परमेश्वरकूंभी कृश करैं हैं तथा विवेकतैं रहित हैं तिनपुरुषोंकूं आसुरनिश्चयवालाही जाण ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जे पुरुष अशास्त्रविहित घोर तपकूं करैं हैं इहां ऋगादिक वेदोंका नाम शास्त्र है सो वेदरूप शास्त्र जितनाक इदानींकालविषे पठनपाठन करणेविषे प्रसिद्ध है सो तौ प्रत्यक्ष है । और जो वेदका भाग इदानींकालविषे कहांभी पठनपाठन करणेविषे प्रसिद्ध नहीं है सो तौ वेदका भाग स्मृति आदिकोंविषे कथन करे हुए अर्थका मूलरूप करिकै अनुमान कन्या जावै है । ऐसे प्रत्यक्षरूप शास्त्रनैं तथा अनुमेयरूप शास्त्रनैं जो तप नहीं विधान कन्या है ता तपका नाम अशास्त्रविहित तप है । अथवा वेदके विरोधी बौद्धादिकोंनैं रच्या जो आगम है ताका नाम अशास्त्र है । तिस अशास्त्रनैं विधान कन्या जो तप्तशिलाआरोहणादिक तप है ताका नाम अशास्त्रविहिततप है । कैसा है सो तप–घोर है अर्थात् कर्त्तापुरुपकूं तथा अन्य प्राणियोंकूं केवल पीडाकीही प्राप्तिकरणेहारा है । ऐसे अशास्त्रविहित घोरतपकूंही जे पुरुष सर्वदा करैंहैं । तथा जे पुरुष दंभ, अहंकार इन दोनों करिकै संयुक्त हैं। तहां सर्वलोक हमारेकूं धर्मात्मा कहैं या प्रकारकी इच्छाराखिकै तिन लोकोंविषे जो आपणा धार्मिकपणा प्रगटकरणा है ताका नाम दंभ है। और सर्वगुणोंकरिकै मैंही सर्वतैं श्रेष्ठ हूं या प्रकारका जो दुष्टअभिमान है ताका नाम अहंकारहै। ऐसे दंभ अहंकार दोनों करिकै जे पुरुष सम्यक् युक्त हैं। तहां दंभ अहंकारके योगविषे जो आयासतैं विनाही वियोगके उत्पत्तिकरणेका असामर्थ्य है यहही सम्यक्पणा है । तथा जे पुरुष कामरागबलकरिकै युक्त हैं तहां कामनाके विषयभूत जे शब्दस्पर्शादिक विषय हैं तिन विषयोंका नाम काम है। तिन विषयरूप कामोंविषे जो अत्यंत

आसक्ति है ताका नाम राग है। और सो राग है निमित्त जिसविषे ऐसा जो अतिउग्रदुःखोंके सहनकरणेका सामर्थ्य है ताका नाम बल है। ऐसे कामरागबलकरिकै जे पुरुष सर्वदा युक्त हैं अथवा शब्दस्पर्शादिक विषयोंविषे जा अभिलाषा है ताका नाम काम है। और सर्वदा तिन विषयोंविषे अभिनिविष्टत्वरूप जो अभिष्वंग है ताका नाम राग है। और इस विषयकूं मैं अवश्यकरिकै संपादन करूंगा या प्रकारका जो आग्रह है ताका नाम बल है। ऐसे काम, राग, बल इन तीनोंकरिकै जे पुरुष सर्वदा युक्तहैं, इसी कारणतैं ही बलवान् दुःखकूं देखिकैभी नहीं निवर्त्तमान हुए जे पुरुष शरीरविषे स्थित भूतोंके समूहकूं कृश करैं हैं अर्थात् देहइंद्रियादिरूप संघातके आकारकरिकै परिणामकूं प्राप्तहुए जे पृथिवी आदिक पंचभूत हैं तिन भूतोंके समूहकूं जे पुरुष व्यर्थ उपवासादिकोंकरिकै कृश करैं हैं तथा इस शरीरके अंतर भोक्तारूपकरिकै स्थित जो मैं परमेश्वर हूं तिस मैं परमेश्वरकूंभी जे पुरुष इस भोग्यशरीरके कृशकरणेकरिकै कृश करैंहैं। अथवा अंतर्यामीरूपकरिकै इस शरीरविषे स्थित जो बुद्धिका तथा बुद्धिके वृत्तियोंका साक्षीरूप मैं परमेश्वर हूं तिस मैं परमेश्वरकूं जे पुरुष हमारी शास्त्ररूप आज्ञाका उल्लंघनकरिकै कृश करैं हैं इसी कारणतैंही जे पुरुष अचेतस है अर्थात विवेकतैं शून्य हैं ऐसे इस लोकके सर्वभोगोंतैं विमुख तथा परलोकविषे अधमगतिकूं प्राप्त होणेहारे सर्वपुरुषार्थोंतैं भ्रष्ट तिन पुरुषोंकूं तूं अर्जुन आसुरनिश्चय जान। तहां आसुर है क्या विपरीतभावनायुक्त है वेदअर्थका विरोधी निश्चय जिन्होंका तिन्होंका नाम आसुरनिश्चय है। अर्थात् ते पुरुष यद्यपि मनुष्यरूपकरिकै प्रतीत होवैं हैं तथापि वे पुरुष असुरोंकेही कर्मोंकूं करैंहैं यातैं तिन पुरुषोंकूं तूं अर्जुन असुररूपही जान। अर्थात् तिन पुरुषोंकूं असुररूप जानिकै तिन्होंकी उपेक्षा कर इति। इहां (आसुरनिश्चयान्) इस वचनविषे तिन पुरुषोंके निश्चयविषे आसुरपणा कथन कऱ्या। यातैं तिस निश्चयपूर्वक जितनीक तिन पुरुषोंकी अंतःकरणकी वृत्तियां

हैं तिन सर्व वृत्तियोंविषेभी सो आसुरपणा ही जानणा । और असुरत्वजातिवैं रहित मनुष्योंविषे साक्षात् आसुरपणा रहता नहीं किंतु दुष्टकर्मोंके करणेकरिकै ही मनुष्योंविषे असुरपणा प्राप्त होवैहै । इसकारणतेंही श्रीभगवान्नैं (तान् असुरान्विद्धि)' इसप्रकार तिन पुरुषोंविषे साक्षात् असुरपणा कथन कऱ्या नहीं किन्तु आसुरनिश्चयकरिकै ही तिन्होंविषे असुरपणा कथन कऱ्याहै ॥ ५ ॥ ६ ॥

तहां जे सात्त्विक हैं ते तौ देव हैं और जे राजस हैं तथा तामस हैं ते विपरीतबुद्धिवाले होणेतें असुर हैं । यह अर्थ पूर्व निर्णय कऱ्या । अब श्रीभगवान् सात्त्विकोंके ग्रहण करावणेवासतै तथा राजसतामसोंके परित्याग करावणेवासतै आहार, यज्ञ, तप, दान इन च्यारोंके त्रिविधपणेकूं कथन करैंहैं—

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ॥
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) आहारः । तु । अपि । सर्वस्य । त्रिविधः । भवति । प्रियः । यज्ञः । तपः । तथा । दानम् । तेषाम् । भेदम् । इमम् । शृणु ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः सर्वप्राणियोंका प्रिय आहार भी तीनप्रकारकाही होवैहै तथा यज्ञ तप दान यहभी तीनप्रकारकेही होवैं हैं तिन आहारादिकोंके इस सात्त्विकादिक भेदकूं तूं श्रवण कर ॥ ७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पूर्व कथनकरीहुई श्रद्धाही केवल तीनप्रकारकी नहीं होवै है किंतु सर्वप्राणियोंका प्रिय आहारभी सात्त्विक राजस तामस इस भेदकरिकै तीन प्रकारकाही होवै हे च्यारि प्रकारका होवै नहीं । काहेतें सर्वपदार्थोंकूं त्रिगुणात्मक होणेतें तिसतें भिन्न चौथा कोई प्रकार संभवता नहीं । तहां भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य यह जो च्यारिप्रकारका अन्न है ताका नाम आहार है । हे अर्जुन !

क्षुधाकी निवृत्तिरूप दृष्ट अर्थकी सिद्धि करणेहारा सो आहार जैसे सात्त्विकादिक भेदकरिकै तीन प्रकारका है वैसे धर्मकी उत्पत्तिद्वारा स्वर्गादिरूप अदृष्ट अर्थकी सिद्धिकरणेहारे जे यज्ञ, तप, दान यह तीनों हैं वे यज्ञ, तप, दान, तीनोंभी सात्त्विक, राजस, तामस इस भेदकरिकै तीनप्रकारके ही होवैं हैं । तहां अग्नि आदिक देवतावोंका उद्देशकरिकै जो घृतादिक द्रव्यका परित्याग है ताका नाम यज्ञ है । और शरीरइंद्रियोंकूं शोषण करणेहारे जे कृच्छ्रचांद्रायणादिक हैं तिन्होंका नाम तप है । और आपणे ममत्वके विषयभूत जे सुवर्ण, गौ, अन्न, गृह इत्यादिक पदार्थ हैं, तिन सुवर्णादिक पदार्थोंविषे आपणे ममत्वका परित्यागकरिकै जो ब्राह्मणादिकोंका ममत्व संपादन करणा है ताका नाम दान है । ऐसे आहार, यज्ञ, तप, दान च्यारोंका जो सात्त्विक, राजस, तामस यह तीनप्रकारका भेद है सो यह भेद मैं तुम्हारे प्रति स्पष्टकरिकै कथन करताहूं, तिस भेदकूं तूं सावधान होइकै श्रवण कर ॥ ७ ॥

अब आहार, यज्ञ, तप, दान इन च्यारोंके सात्त्विक, राजस, तामस इन तीन प्रकारके भेदकूं श्रीभगवान् पंचदश श्लोकोंकरिकै कथन करैंहैं । तिसविषेभी प्रथम आहारके सात्त्विकादिक भेदकूं तीन श्लोकोंकरिकै कथन करैंहैं—

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ॥
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥ ८ ॥

(पदच्छेदः) आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः । रस्याः । स्निग्धाः । स्थिराः । हृद्याः । आहाराः । सात्त्विकप्रियाः ॥ ८

(पदार्थः) हे अर्जुन ! आयुर् सत्त्व बल आरोग्य सुख प्रीति इन सर्वोंकूं बधावणेहारे तथा रस्य स्निग्ध स्थिर हृद्य ऐसे आहार सात्त्विक पुरुषोंकूं प्रिय होवैंहैं ॥ ८ ॥

भा० टी०–तहां चिरकालपर्यंत जीवनका नाम आयुष् है। और बलवान् दुःखके प्राप्तहुएभी निर्विकारपणेका संपादक जो चित्तका धैर्य है ताका नाम सत्त्व है । अथवा उत्साहका नाम सत्त्व है। और आपणेकूं करणेविषे उचित जो कार्य हैं वा कार्यविषे परिश्रमके अभावका प्रयोजक जो शरीरका सामर्थ्य है ताका नाम बल है। और ज्वरशूलादिक व्याधियोंका जो अभाव है ताका नाम आरोग्य है और भोजनतैं अनंतर जो अंतर आह्लाद तृप्ति है ताका नाम सुख है । और भोजनकालविषे जो अरुचितैं रहितपणा है अर्थात् तिस भोजनविषयक इच्छाकी उत्कटता है ताका नाम प्रीति है । ऐसे आयुष, सत्त्व, बल, आरोग्य, सुख, प्रीति इन सर्वोंकूं जे आहार वधावणेहारे हैं। तथा जे आहार रस्य हैं अर्थात् मधुररसकी प्रधानताकरिकै जे आहार अत्यंतस्वादु हैं। तथा जे आहार स्निग्ध हैं अर्थात् स्वभावसिद्ध स्नेह-करिकै तथा आगंतुक घृतादिरूप स्नेहकरिकै जे आहार युक्त हैं। तथा जे आहार स्थिर हैं अर्थात् जे आहार रसादिकअंशकरिकै शरीरविषे चिरका-लपर्यंत स्थायी हैं । तथा जे आहार हृद्य हैं अर्थात् दुर्गन्ध अशुचित्वादिक दृष्ट अदृष्टदोषोंतैं रहित होणेतैं जे आहार आपणे दर्शनमात्रकरिकै ही हृदयकी प्रसन्नता करणेहारे हैं इस प्रकारके गुणोंकरिकै युक्त जे भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य यह च्यारिप्रकारके आहार हैं ते आहार सात्त्विक पुरुषोंकूं ही प्रिय होवैं हैं अर्थात् इन पूर्वउक्त लक्षणोंकरिकै ते आहार सात्त्विक जानणे ।तथा सात्त्विकपणेकी इच्छाकरणेहारे पुरुषोंनैं यह पूर्वउक्त आहार ही ग्रहण करणेयोग्य हैं ॥ ८ ॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ॥
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः । आहाराः । राजसस्य । इष्टाः । दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! कटु अम्ल लवण अतिउष्ण तीक्ष्ण रूक्ष दाहकरणेहारे तथा दुःख शोक रोग इन तीनोंकी प्राप्तिकरणेहारे ऐसे आहार राजसपुरुषोंकूंही प्रिय होवैं हैं ॥ ९ ॥

भा० टी०—इहां (अतिउष्ण) इस वचनविषे जो अति यह शब्द है तिस अतिशब्दका कटुआदिक सप्तशब्दोंके साथि अन्वय करणा ताकरिकै यह अर्थ सिद्ध होवै है । जे आहार अतिकटु हैं तथाअति अम्ल हैं तथा अतिलवण हैं तथा अतिउष्ण हैं तथा अतितीक्ष्ण है तथा अतिरूक्ष हैं तथा अतिदाहकरणेहारे हैं इति । तहां निंबादिक आहार अतिकटु कहे जावै हैं । और निंबुजंबीरादिक आहार अतिअम्ल कहे जावै हैं । और सैंधवादिक आहार अतिलवण कहेजावैं हैं । और जिस आहारके भक्षणकरतेहुए मुख तथा हस्त दाह होवैं हैं सो आहार अतिउष्ण कह्याजावै है । और मरीचादिक आहार अतितीक्ष्ण कहे जावै हैं । और स्नेहतें रहित जे कंगुकोद्रवादिक आहार हैं ते आहार अतिरूक्ष कहेजावै हैं । और अत्यंतसंतापकी प्राप्ति करणेहारे जे राजिकादिक आहार हैं ते आहार अतिविदाही कहे जावैं हैं इति । तथा जे आहार दुःख, शोक, आमय इन तीनोंकी प्राप्ति करणेहारे हैं । तहां तत्कालिक जा पीडा है ताका नाम दुःख है । और पश्चात् भावी जो दौर्मनस्य है ताका नाम शोक है । और ज्वरादिक रोगोंका नाम आमय है । ऐसे दुःख शोक आमयकूं जे आहार वातपित्तादिक धातुवोंकी विषमताद्वारा प्राप्त करैं हैं तिन आहारोंका नाम दुःखशोकामयप्रद है । ऐसे आहार राजसपुरुषोंकूं ही प्रिय होवैं हैं । अर्थात् इन पूर्वउक्त लक्षणोंकरिकै वे आहार राजस जानणे । ऐसे राजस आहार सात्त्विकपुरुषोंनैं अवश्यकरिकै परित्याग करे चाहियें ॥ ९ ॥

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ॥
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) यातयामम् । गतरसम् । पूति । पर्युषितम् । च । यत् । उच्छिष्टम् । अपि । च । अमेध्यम् । भोजनम् । तामसप्रियम् ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन । जो आहार यातयाम है तथा गतरस है तथा पूति है तथा पर्युषित है तथा उच्छिष्ट है तथा अमेध्य है सो आहार तामसपुरुषोंकूही प्रिय होवै है ॥ १० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन । जो आहार यातयाम है अर्थात् अर्धपक्कहुआ है तथा जो आहार गतरस है अर्थात् अत्यंतपकणेकरिकै शुष्कहुआ जो आहार विरसताकूं प्राप्तहुआ है । अथवा अग्निकरिकै पक्कहुआ जो ओदनादिक आहार प्रहरादिककालके व्यवधानकरिकै शीतलताकूं प्राप्त होवै है तिस आहारका नाम यातयाम है । और जिस आहारका सार-अंश निकासलिया है ता आहारका नाम गतरस है । जैसे मथनकरेहुए दुग्धादिक हैं । तथा जो आहार पूति है अर्थात् जो आहार दुर्गंधवाला है । तथा जो आहार पर्युषित है अर्थात् अग्निकरिकै पक्कहुआ जो आहार एकरात्रिके व्यवधानकरिकै भोजनकर्तापुरुषकूं तात्कालिक उन्मादकी प्राप्ति करणेहारा है । यहां (पर्युषितं च यत्) इस वचनविषे स्थित जो च यह शब्द है सो च शब्द इसप्रकारके अत्यंत दुष्टपणेकरिकै प्रसिद्ध अन्य आहारोंकेभी समुच्चय करावणेवासतै हैं । तथा जो आहार उच्छिष्ट है अर्थात् भोजनकरिकै पीछे रह्या जो अन्न है । तथा जो आहार अमेध्य है अर्थात् यज्ञके अयोग्य जे अशुचि मांसमत्स्यादिक हैं । इहां (उच्छिष्टमपि चामेध्यम्) इस वचनविषे स्थित जो (अपि च) यह शब्द है सो शब्द वैद्यकशास्त्रविषे कथन करे हुए अपथ्य आहारोंके समुच्चय करावणेवासतै है । इस प्रकारके लक्षणोंकरिकै युक्त जो आहार है सो आहार तामसपुरुषोंकूं ही प्रिय होवैहै । अर्थात् इन सर्व उक्तलक्षणोंकरिकै तिस आहारकूं तामस जानणा । ऐसा तामस आहार सात्त्विकपुरुषोंनैं अत्यंत दूरतेंही परित्याग करणा इति । ऐसे तामस आहा-

रविषे दुःखशोकादिकोंकी कारणता अत्यंत प्रसिद्धही है । यातैं श्रीभगवान्नैं साक्षात् मुखतैं कथन करी नहीं । इहां श्रीभगवान्नैं यथाक्रमकरिकै तीनप्रकारके आहारवर्ग कथन करे हैं । तहां (रस्याः) इत्यादिक तौ सात्त्विक आहारवर्ग कथन कऱ्या है । और (कट्वम्ल) इत्यादिक राजस आहारवर्ग कथन कऱ्याहै । और (यातयामम्) इत्यादिक तामस आहारवर्ग कथनकऱ्याहै । इस प्रकार तीनप्रकारके आहारवर्ग कथन करे हैं । तहां राजस आहारवर्ग तथा तामस आहारवर्ग इन दोनों वर्गोंविषे सात्त्विक आहारवर्गका विरोधीपणाही जानणा सो प्रकार दिखावैं हैं । तहां अतिकटुत्वादिक रस्यत्वके विरोधीही होवैं हैं । जिस कारणतैं अतिकटुत्वादिक आहार अत्यंत स्वादु होवैं नहीं । यह वार्चा सर्व लोकोंविषे प्रसिद्धही है । और रूक्षपणा स्निग्धपणेका विरोधी होवैहै । और अतितीक्ष्णपणा तथा अतिविदाहकपणा यह दोनों धातुवोंके पोषणका विरोधी होणेतैं स्थिरताके विरोधीही होवैं हैं । और अतिउष्णत्वादिक हृद्यत्वके विरोधी होवैं हैं । और आमयप्रदत्व आयुः, सत्त्व, बल, आरोग्य इन च्यारोंका विरोधी होवै है । और दुःखशोकप्रदत्व सुख प्रीति इन दोनोंका विरोधी होवैहै । इस रीतिसैं राजस आहारवर्गविषे सात्त्विक आहारवर्गका विरोधीपणा स्पष्टही है । इस प्रकार तामस आहारवर्गविषेभी गतरसत्व, यातयामत्व, पर्युषितत्व यह तीनों यथायोग्य रस्यत्व, स्निग्धत्व, स्थिरत्व इन तीनोंके विरोधीही हैं । और पूतित्व, उच्छिष्टत्व, अमेध्यत्व यह तीनों हृद्यत्वके विरोधी हैं । और तामस आहार वर्गविषे आयुः सत्त्वादिकोंका विरोधीपणा तौ स्पष्टही है । तहां राजस आहारवर्गविषे तौ केवल दृष्टविरोधमात्रही होवै है । और तामस आहारवर्गविषे तौ दृष्टविरोध तथा अदृष्टविरोध दोनोंही होवैं हैं इतनी दोनोंविषे परस्पर विशेषता है ॥ १० ॥

तहां पूर्व (आयुः सत्त्व-) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै श्रीभगवान्नैं यथाक्रमतैं सात्त्विक, राजस, तामस यह तीन प्रकारका आहार

कथन करया । अब (अफलाकांक्षिभिः) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै श्रीभगवान् यथाक्रमतैं सात्त्विक, राजस, तामस इन तीनप्रकारके यज्ञोंकूं कथन करैं हैं:-

अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ॥
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥११॥

(पदच्छेदः) अफलाकांक्षिभिः । यज्ञः । विधिदृष्टः । यः । इज्यते । यष्टव्यम् । एव । इति । मनः । समाधाय । सः । सात्त्विकः ॥ ११ ॥

(पदार्थ) हे अर्जुन ! फलकी इच्छातैं रहित पुरुषोंनैं यह अवश्य कर्त्तव्य ही है इसप्रकार मनकूं निश्चितकरिकै जो शास्त्रविहित यज्ञ अनुष्ठान करीताहै सो यज्ञ सात्त्विक कह्याजावै है ॥ ११ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, ज्योतिष्टोम इत्यादिकोंका नाम यज्ञ है । सो यज्ञ दो प्रकारका होवै है एक काम्ययज्ञ होवै है दूसरा नित्ययज्ञ होवैहै । तहां (दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत) इत्यादिक वचनोंनैं स्वर्गादिकफलके संयोगकरिकै विधानकरया जो यज्ञ है सो यज्ञ काम्ययज्ञ कह्याजावैहै । सो काम्ययज्ञ तौ सर्वअंगोंकी संपूर्णतापूर्वक इस पुरुषनैं आपही अनुष्ठान करीवाहै ब्राह्मणादिक प्रतिनिधिद्वारा अनुष्ठान करीवा नहीं और (यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति) इत्यादिक वचनोंनैं फलके संयोगतैं विनाही केवल जीवनादिकनिमित्तके संयोगकरिकै विधानकऱ्या जो यज्ञ है जो यज्ञ सर्वअंगोंकी पूर्णताके अभाव हुए ब्राह्मणादिक प्रतिनिधिकरिकैभी अनुष्ठान कऱ्याजावैहै सो यज्ञ नित्ययज्ञ कह्याजावै है तहां सर्वअंगोंकी संपूर्णताके अभाव हुएभी प्रतिनिधिकूं ग्रहणकरिकै हमारेकूं अवश्यकरिकै सो नित्यकर्म करणेयोग्य है जिसकारणतैं प्रत्यवायकी निवृत्ति करणेवासतै वेदभगवान्नैं आवश्यक जीवनादिक निमित्तकरिकै सो नित्यकर्म विधान कऱ्याहै इस प्रकारतैं

आपणे मनकूं निश्चितकरिकै अंतःकरणके शुद्धिकी इच्छावान् होणेतैं काम्यकर्मोंके अनुष्ठानतैं विमुख पुरुषोंनैं शास्त्रप्रमाणतैं निश्चय कऱ्या हुआ जो यज्ञ अनुष्ठान करीवा है सो शास्त्रप्रमाणतैं अंतःकरणकी शुद्धिवासतै अनुष्ठान कऱ्या नित्ययज्ञ सात्त्विक कह्या जावैहै ॥ ११ ॥

अभिसंधाय तु फलं दंभार्थमपि चैव यत् ॥
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥ १२॥

(पदच्छेदः) अभिसंधाय । तु । फलम् । दंभार्थम् । अपि । च । एव । यत् । इज्यते । भरतश्रेष्ठ । तम् । यज्ञम् । विद्धि । राजसम् ॥ १२॥

(पदार्थः) हे भरतवंशविषे श्रेष्ठ अर्जुन ! पुनः स्वर्गादिकफलकूं उद्देशकरिकै तथा दंभकेवासतै भी जो यज्ञ अनुष्ठान कऱ्याजावै है तिसैं यज्ञकूं तूं राजस जान ॥ १२ ॥

भा० टी०-हे भरतकुलविषे श्रेष्ठ अर्जुन ! पुरुषोंकी कामनाके विषयभूत जे स्वर्गादिफल हैं तिन स्वर्गादिकफलोंका उद्देशकरिकै जो यज्ञ अनुष्ठान करचा जावैहै अंतःकरणके शुद्धिका उद्देशकरिकै जो यज्ञ अनुष्ठान करचा जावा नहीं । और यह सर्वलोक हमारेकूं धर्मात्मा कहै या प्रकारकी इच्छाकरिकै जो लोकोंविषे आपणा धर्मात्मपणा प्रगट करणा है ताका नाम दंभ है ऐसे दंभवासतैभी जो यज्ञ अनुष्ठान करचाजावैहै । इहां (अपि चैव) यह वचन विकल्प समुच्चय इन दोनोंके कथनकरिकै तीनपक्षोंके सूचनकरणेवासतै है । तहां कोईक यज्ञ तौ दंभके वासतै नहीं करचा हुआभी पारलौकिक स्वर्गादिकफलका उद्देशकरिकै ही करचाजावैहै तथा कोईक यज्ञ तौ पारलौकिक स्वर्गादिक फलका नहीं उद्देशकरिकै भी केवल दंभके वासतैही कऱ्याजावैहै । इस प्रकारके विकल्पकरिकै दो पक्ष सिद्ध होवैं हैं । और कोईक यज्ञ तौ पारलौकिक स्वर्गादिक फलवासतैभी तथा इस लोकके दंभवासतैभी कऱ्याजावै है । इस

प्रकार दोनोंका समुच्चयकरिकै एकपक्ष सिद्ध होवैहै । इस प्रकारतैं दृष्टफलका उद्देशकरिकै अथवा अदृष्टफलका उद्देशकरिकै अथवा दृष्टअदृष्ट दोनों फलोंका उद्देशकरिकै शास्त्रके अनुसार जो यज्ञ अनुष्ठान कऱ्याजावै है तिस यज्ञकूं तूं राजस यज्ञ जान । अर्थात् तिस यज्ञकूं तूं राजस जानिकै परित्याग कर । इहां (हे भरतश्रेष्ठ !) इस संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नें अर्जुनविषे तिस राजसकर्मके परित्यागकरणेकी योग्यता सूचन करी । और (अभिसंधाय तु) इस वचनके अंतविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तु शब्द पूर्वश्लोकउक्त नित्यकर्मरूप सात्त्विक यज्ञतैं इस काम्यकर्मरूप राजस यज्ञविषे विलक्षणताके सूचन करणेवासतै है १२

विधिहीनमसृष्टान्नं मंत्रहीनमदक्षिणम् ॥
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) विधिहीनम् । असृष्टान्नम् । मंत्रहीनम् । अदक्षिणम् । श्रद्धाविरहितम् । यज्ञम् । तामसम् । परिचक्षते ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो यज्ञ शास्त्रविधितैं रहित है तथा अन्नदानतैं रहितहै तथा मंत्रतैं रहित है तथा दक्षिणातैं रहितहै तथा श्रद्धातैं रहित है ऐसे यज्ञकूं वेदवेत्ता शिष्टपुरुष तामस यज्ञ कहै हैं ॥ १३ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो यज्ञ विधिहीन है अर्थात् जिस प्रकारतै शास्त्रनैं तिस यज्ञ करणेका विधान कऱ्या है तिस शास्त्रउक्तरीतितैं जो यज्ञ विपरीत है तथा जो यज्ञ असृष्टान्न है अर्थात् जिस यज्ञविषे ब्राह्मणादिकोंके ताईं अन्नदान नहीं कऱ्या जावै है । तथा जो यज्ञ मंत्रहीन है अर्थात् उदात्तादिक स्वरोंकरिकै तथा ककारादिक वर्णोंकरिकै मंत्रोंतैं रहित है । तथा जो यज्ञ दक्षिणातैं रहित है तथा ऋत्विजब्राह्मणविषयक द्वेषादिकोंकरिकै जो यज्ञ श्रद्धातैं रहित है ऐसे यज्ञकूं वेदवेत्ता शिष्ट पुरुष तामसयज्ञ कहैहैं इति । तहां विधिहीनत्व, असृष्टान्नत्व, मंत्र-

हीनत्व अदक्षिणत्व, श्रद्धाविरहितत्व यह जे पांच विशेषण कथन करे हैं तिन पांचविशेपणोंके मध्यविषे एकएक विशेपणकरिकै युक्तहुआ सो तामसयज्ञ पंचप्रकारका सिद्ध होवै है । और तिन पांचोंविशेपणोंकरिकै युक्त हुआ सो तामसयज्ञ एकप्रकारका सिद्ध होवैहै । इस प्रकारतैं पट् तामसयज्ञ सिद्ध होवैहै । और तिन पांचोंविशेषणोंके मध्यविषे दोविशेपणोंकरिकै युक्तहुआ सो तामसयज्ञ भिन्नही सिद्ध होवैहै । और तीनविशेषणोंकरिकै युक्तहुआ सो तामसयज्ञ भिन्नही सिद्ध होवैहै । और च्यारि विशेषणोंकरिकै युक्त हुआ सो तामसयज्ञ भिन्नही सिद्ध होवैहै । इस प्रकारतैं तिस तामसयज्ञके बहुतप्रकारके भेद सिद्ध होवै हैं । तहां पूर्वउक्त राजस यज्ञविषे अंतःकरणकी शुद्धिके अभाव हुएभी स्वर्गादिक फलोंकी प्राप्ति करणेहारा धर्मरूप अपूर्व अवश्यकरिकै उत्पन्न होवैहै काहेतैं सो राजसयज्ञ शास्त्रकी विधिपरिमाण ही अनुष्ठान कऱ्याजावैहै । और यह तामसयज्ञ तौ शास्त्रकी विधिपरिमाण अनुष्ठान कऱ्याजाता नहीं यातैं तिस तामसयज्ञतैं कोईभी धर्मरूप अपूर्व उत्पन्न होता नहीं । इतना दोनोंविषे परस्पर भेद है ॥ १३ ॥

तहां (अफलाकांक्षिभिः) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै श्रीभगवान्नैं यथाक्रमतैं सात्त्विक, राजस, तामस यह तीनप्रकारके यज्ञ कथन करे।अब सात्त्विक, राजस, तामस इसतीनप्रकारके तपके कथन करणेवासतै श्रीभगवान् प्रथम श्लोकोंकरिकै यथाक्रमतैं शारीर, वाचिक, मानस; इस भेदकरिकै तिस तपकी तीनप्रकारताकूं कथन करैं हैं--

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ॥
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥ १४ ॥

(पदच्छेदः) देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनम् । शौचम् । आर्जवम् । ब्रह्मचर्यम् । अहिंसा । च । शारीरम् । तपः । उच्यते ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! देव द्विज गुरु प्राज्ञ इन सर्वोंका पूजन तथा शरीरकी शुद्धि तथा आर्जव तथा ब्रह्मचर्य तथा अहिंसा यह सर्व शारीर तप कह्या जावै है ॥ १४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, अग्नि, दुर्गा इत्यादिकोंका नाम देव है ऐसे ब्रह्मादिकदेवोंका जो पूजन है। और सदाचारकरिकै युक्त जे उत्तम ब्राह्मण हैं तिन्होंका नाम द्विज है ऐसे द्विजोंका जो पूजन है। और पिता, माता, आचार्य इत्यादिक वृद्धपुरुषोंका नाम गुरु है ऐसे गुरुवोंका जो पूजन है। और वेदोंके पाठकूं तथा वेदोंके अर्थकूं जानणेहारे जे पंडित हैं तिन्होंका नाम प्राज्ञ है ऐसे प्राज्ञोंका जो पूजन है। इहां शास्त्रकी विधिप्रमाण श्रद्धाभक्तिपूर्वक यथायोग्य जो तिन देवादिकोंके ताईं प्रणाम, शुश्रूषा, प्रदक्षिणा अन्नदान इत्यादिकोंका करणा है यहही तिन देवादिकोंका पूजन है इति। और मृत्तिकाजलकरिकै जो शरीरका शुद्धिरूप शौच है और आर्जव जो है। तहां अंतःकरणकी अकुटिलतारूप जो आर्जव है सो आर्जव तौ (भावसंशुद्धिः) इस शब्दकरिकै श्रीभगवान् आगे मानसतपविषे कथन करैंगे यातैं इहां आर्जवशब्दकरिकै ता अकुटिलताका ग्रहण करणा नहीं किंतु शास्त्रविहित कर्मविषे जा प्रवृत्ति है तथा शास्त्रनिषिद्ध कर्मतैं जा निवृत्ति है सा एकरूपप्रवृत्ति है सा एकरूपप्रवृत्तिही इहां आर्जवशब्दकरिकै ग्रहण करणी। और शास्त्रनिषिद्ध मैथुनतैं निवृत्तिरूप जो ब्रह्मचर्य है तथा शास्त्रनिषिद्ध प्राणियोंके पीडनका अभावरूप जा अहिंसा है। इहां (अहिंसा च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है ता चकारकरिकै अस्तेय अपरिग्रह इन दोनोंकाभी ग्रहण करणा। इसप्रकार देवपूजनतैं आदिलेके अहिंसापर्यन्त सर्वही शारीर तप कह्याजावै है। तहां शरीर है प्रधान जिन्होंविषे ऐसे जे कर्त्तादिक हैं तिन्होंकरिकै जो तप सिद्ध होवै है ताका नाम शारीर तप है। केवल शरीरमात्रकरिकै जो तप सिद्ध होवै है ताका नाम शारीर तप नहीं है। काहेतैं (अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणं च पृथग्विधम्। विविधाश्च पृथक्चेष्टा

दैवं चैवात्र पंचमम् ॥ शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः । न्याय्यं वा विपरीतं वा पंचैते तस्य हेतवः ॥) इन दोनों श्लोकोंकरिकै श्रीभगवान् आगे अष्टादश अध्यायविषे अधिष्ठान, कर्त्ता, करण, चेष्टा, दैव इन पांचोंविषेही सर्वकर्मोंकी कारणता कथन करेंगे । इसीप्रकारकी रीति आगे वाचिक तपविषे तथा मानस तपविषेभी जानिलेणी इति । और किसी टीकाविषे तौ प्राज्ञ इस शब्दकरिकै ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंका ग्रहण कऱ्या है । तहां मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारकी प्रज्ञा जिस पुरुषकूं प्राप्त हुई है ताका नाम प्राज्ञ है । इहां द्विज इस शब्दकरिकै कथन करे जे द्विजाति पुरुष हैं तिन द्विजातिपुरुषोंतैं श्रीभगवान्नै जो प्राज्ञपुरुषोंका पृथक् कथन कऱ्या है सो इस अर्थके सूचन करणेवासतै कथन कऱ्या है । पूर्वले अनेकजन्मोंके पुण्यकर्मोंकरिकै प्राप्त भई जा ईश्वरकी प्रसन्नता है तिस ईश्वरकी प्रसन्नताकरिकै सो ब्रह्मनिष्ठत्वरूप प्राज्ञत्व तिन द्विजातिपुरुषोंतैं भिन्न शूद्रादिकोंविषेभी संभव होइसकै है । जैसे विदुर धर्मव्याध इत्यादिकोंविषे सो ब्रह्मनिष्ठत्वरूप प्राज्ञत्व शास्त्रोंमैं प्रसिद्धही है । तथा (स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यांति परां गतिम् ।) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नै आपही पूर्व कथन कऱ्या है । ऐसे ब्रह्मनिष्ठत्वरूप प्राज्ञपणेकरिकै युक्त ते शूद्रादिकभी पूजनही करणेयोग्य हैं । इस अर्थके बोधन करणेवासतै श्रीभगवान्नैं द्विजाति पुरुषोंतैं तिन प्राज्ञपुरुषोंका पृथक् कथन कऱ्या है १४

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ॥
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते १५॥

(पदच्छेदः) अनुद्वेगकरम् । वाक्यम् । सत्यम् । प्रियहितम् । च । यत् । स्वाध्यायाभ्यसनम् । च । एव । वाङ्मयम् । तपः । उच्यते ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! दुःखकी नहीं प्राप्तिकरणेहारा तथा सत्य तथा प्रियहित ऐसा जो वाक्य है तथा वेदोंका जो अभ्यास है यह सर्व वाङ्मय तप कह्याजावे है ॥ १५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो वाक्य अनुद्वेगकर है अर्थात् जो वाक्य किसी भी श्रोताप्राणीकूं दुःखकी प्राप्ति करता नहीं। तथा जो वाक्य सत्य है अर्थात् जो वाक्य किसी प्रमाणमूलक है। तथा जिस वाक्यका अर्थ किसी अन्यप्रमाणकरिकै बाधित नहीं है। तथा जो वाक्य प्रिय है अर्थात् जो वाक्य आपणे उच्चारणकालविषेही श्रोता पुरुषके श्रोत्रइंद्रियकूं सुखकी प्राप्ति करणेहारा है तथा जो वाक्य हित है अर्थात् जो वाक्य आगे परिणामविषेभी तिस श्रोतापुरुषकूं सुखकीही प्राप्ति करणेहारा है। इहां (प्रियहितं च यत्) इस वचनविषे स्थित जो च यह शब्द है सो च शब्द अनुद्वेगकरत्व, सत्यत्व, प्रियत्व, हितत्व इन च्यारों विशेषणोंके समुच्चय करावणेवासतै है अर्थात् जो वाक्य अनुद्वेगकरत्व आदिक च्यारों विशेषणोंकरिकै विशिष्ट है किसी एक विशेषणकरिकैभी न्यून नहीं है। जैसे (शांतो भव वत्स स्वाध्यायं योगं चानुतिष्ठ तथा ते श्रेयो भविष्यति) इत्यादिक वाक्य हैं। अर्थ यह—हे पुत्र ! तूं शांत होउ तथा वेदाभ्यासकूं तथा चित्तके निरोधरूप योगकूं तूं कर तिस करिकै तुम्हारा श्रेय होवैगा इति। इस वचनविषे अनुद्वेगकरत्व, सत्यत्व, प्रियत्व, हितत्व यह च्यारों विशेषण वियमान हैं ऐसे वचनका उच्चारण वाङ्मय तप कह्या जावै है। अर्थात् वाचिक तप कह्या जावै है। और शास्त्रनें वेदोंके अध्ययनकालविषे जो जो नियम कथन करे हैं तिस शास्त्रउक्त नियमपूर्वक जो ऋगादिक वेदोंका अभ्यास है सो वेदोंका अभ्यासभी वाचिक तप कह्या जावैहै ॥ १५ ॥

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ॥
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) मनःप्रसादः । सौम्यत्वम् । मौनम् । आत्मविनिग्रहः । भावसंशुद्धिः । इति । एतत् । तपः । मानसम् । उच्यते ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मनका प्रसाद तथा सौम्यत्व तथा मौन तथा मनका विनिग्रह तथा हृदयकी शुद्धि इस प्रकारका यह सर्व तप मानसतप कह्यां जावै है ॥ १६ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! विषयोंकी चिंताकृत व्याकुलतातैं रहितता-रूप जा मनकी स्वस्थता है ताका नाम मनःप्रसाद है । और सर्व लोकोंके हितकी इच्छा करणी तथा शास्त्रनिषिद्धपदार्थोंका नहीं चिंतन करणा इस प्रकारका जो सौमनस्य है ताका नाम सौम्यत्व है । और एकाग्रताकरिकै आत्माका चिंतनरूप जो निदिध्यासन है ताकूं मुनिभाव कहैहैं वा मुनिभावका नाम मौनहै । अथवा वाक्इंद्रियके संयमका हेतुभूत जो मनका संयमहै ताका नाम मौन है । इस प्रकारका भाष्यकारोंनैं मौन शब्दका अर्थ कऱ्या है । और मनके सर्ववृत्तियोंका जो विशेषकरिकै निग्रह है जिसकूं असंप्रज्ञात-नामा निरोधसमाधि कहैं हैं ताका नाम आत्मविनिग्रह है । और हृदयरूप भावकी जा काम क्रोध लोभादिरूप मलकी निवृत्तिरूप सम्यक्शुद्धि है ताका नाम भावसंशुद्धि है । तहां तिस हृदयविषे कामक्रोधादिरूप अशु-द्धिकी जो पुनः नहीं उत्पत्ति होणीहै यह ही तिस शुद्धिविषे सम्यकपणा है अथवा अन्य पुरुषोंके साथि व्यवहारकालविषे जो छलकपटरूप मायातैं रहितपणा है ताका नाम भावसंशुद्धि है । इस प्रकारका अर्थ भाष्यकारोंनैं कऱ्या है। इस प्रकारका मनःप्रसादतैं आदिलैके भावसंशुद्धिपर्यंत यह सर्व तप मानसतप कह्या जावै है ॥ १६ ॥

तहां (देवद्विजगुरुप्राज्ञ) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै शारीर, वाचिक, मानस इस भेदकरिकै तीन प्रकारका तप कथन कऱ्या । अब तिस तीन प्रकारके तपके सात्त्विक, राजस, तामस, इस तीनप्रकारके भेदकूं श्रीभगवान् तीन श्लोकोंकरिकै कथन करैहैं–

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ॥
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥ १७ ॥

(पदच्छेदः) श्रद्धया । परया । तप्तम् । तपः । तत् । त्रिविधम् । नरैः । अफलाकांक्षिभिः । युक्तैः । सात्त्विकम् । परिचक्षते ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! फलकी इच्छातैं रहित एकाग्रचित्तवाले पुरुषोंनैं परम श्रद्धाकरिकै कन्याहुआ जो पूर्वउक्त तीनप्रकारका तप है तिस तपकूं शिष्टपुरुष सात्त्विक तप कहैं हैं ॥ १७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! फलकी अभिलाषातैं रहित ऐसे जे युक्तपुरुष हैं अर्थात् कार्यकी सिद्धि असिद्धि दोनोंविषे हर्षविषादरूप विकारभावतैं रहित जे समाहितचित्तवाले अधिकारी पुरुष हैं ऐसे निष्काम अधिकारी पुरुषोंनैं अप्रामाण्यशंकारूप कलंकतैं शून्य आस्तिक्यबुद्धिरूप श्रद्धाकरिकै अनुष्ठान कन्या जो सो पूर्वउक्त शारीर, वाचिक,मानस यह तीन प्रकारका तप है तिस तपकूं वेदवेत्ता शिष्टपुरुष सात्त्विक तप कथन करैं हैं ॥ १७॥

सत्कारमानपूजार्थं तपो दंभेन चैव यत् ॥
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥ १८ ॥

(पदच्छेदः) सत्कारमानपूजार्थम् । तपः । दंभेन । च । एव । यत् । क्रियते । तत् । इह । प्रोक्तम् । राजसम् । चलम् । अध्रुवम् ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन । पुनः जो तप सत्कारमानपूजाके वासतै दंभकरिकै ही कन्याजावैहै सो तप शिष्टपुरुषोंनैं राजस कह्याहै सो तप इसलोकविषेही फल देवैहै तथा चलै है तथा अध्रुव है ॥ १८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! यह तपस्वी ब्राह्मण बहुतश्रेष्ठहै इस प्रकारतैं अविवेकी पुरुषोंनैं करी जा स्तुति है ता स्तुतिका नाम सत्कार है । और अविवेकी पुरुषोंनैं करे जे अभ्युत्थानादिकहैं ताका नाम मान है। और अविवेकी पुरुषोंनैं कन्या जो पादोंका प्रक्षालन है तथा अर्चन है तथा धनादिक पदार्थोंका दान है ताका नाम पूजा है ऐसे सत्कारवासतै तथा मानवासतै तथा पूजा-

वासतै केवल दंभकरिकै जो तप कऱ्याजावैहै, आस्तिक्यबुद्धिरूप श्रद्धाकरिकै जो तप कऱ्याजाता नहीं सो तप शास्त्रवेत्ता शिष्टपुरुषोंनैं राजस तप कह्या है। सो राजसतप केवल इस लोकके फलकीही प्राप्ति करै है पारलौकिक फलकी प्राप्ति करता नहीं। कैसा है सो राजस तप–चल है अर्थात् अत्यंत अल्पकालविषे स्थायीफलका हेतु है। पुनः कैसा है सो राजस तप–अध्रुव है अर्थात् तिस फलकी जनकताके नियमतैं रहित है काहेतैं तिस राजस तपकूं करणेहारे जितनेक पुरुष है तिन सर्वोंकूं नियमकरिकै ते सत्कारमानपूजादिक प्राप्त होते नहीं किंतु किसी किसी पुरुषकूं ही वे सत्कारमानपूजादिक प्राप्त होवैहैं यातैं इस लोकके फलविषेभी सो राजसतप नियमकरिकै हेतु नहीं है ॥ १८ ॥

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ॥
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥ १९ ॥

(पदच्छेदः) मूढग्राहेण । आत्मनः । यत् । पीडया । क्रियते । तपः । परस्य । उत्सादनार्थम् । वा । तत् । तामसम् । उदाहृतम् ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो तप दुराग्रहकरिकै इस इंद्रियसंघातके पीडाकरिकै करयाजावैहै अथवा अन्यप्राणीके विनाशके करणेवासतै करयाजावै है सो तप शिष्टपुरुषोंनैं तामस कह्याहै ॥ १९ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन । अविवेककी अतिशयताकरिकै करयाहुआ जो दुराग्रह है तिस दुराग्रहकरिकै देहइंद्रियरूप संघातकी पीडाकरिकै जो तप करयाजावैहै अथवा अन्य किसी प्राणीके विनाश करणेवासतै जो तप करयाजावैहै सो तप शास्त्रवेत्ता शिष्टपुरुषोंनैं तामस कह्याहै ॥ १९ ॥

तहां पूर्व (श्रद्धया परया तप्तम्) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै यथाक्रमतैं तामस, सात्त्विक, राजस, यह तीन प्रकारका तप कथन करया। अब (दातव्यमिति यद्दानम्) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै

यथाक्रमतैं दानके सात्त्विक, राजस, तामस इस तीनप्रकारके भेदकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ॥
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥२०॥

(पदच्छेदः) दातव्यम्। इति। यत्। दानम्। दीयते। अनुपकारिणे। देशे। काले। च। पात्रे। च। तत्। दानम्। सात्त्विकम्। स्मृतम् ॥ २० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह दान अवश्यकर्त्तव्य है इसप्रकारका निश्चयकरिकै जो दान उत्तमदेशविषे तथा उत्तमकालविषे तथा अनुपकारी पात्रके ताईं दियाजावैहै सो दान सात्त्विक कह्याहै ॥ २० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रनैं यह दान हमारे प्रति विधान कऱ्या है यातैं तिस शास्त्रकी आज्ञाके वशतैं यह दान हमारेकूं अवश्य करणेयोग्य है इस प्रकारका निश्चयकरिकै तथा तिस दानके फलकी इच्छातैं रहित होइकै जो सुवर्ण, अन्न, भूमि, गौ इत्यादिक पदार्थोंका दान उत्तमदेशविषे तथा उत्तमकालविषे अनुपकारी पात्रके ताईं दियाजावैहै सो दान शास्त्रवेत्ता शिष्टपुरुषोंनैं सात्त्विक कह्याहै। तहां कुरुक्षेत्रादिक तीर्थभूमिका नाम उत्तम देश है। और सूर्यग्रहणादिक कालोंका नाम उत्तम काल है। और जो पुरुष आपणे ऊपरि कदाचित्भी कोई उपकार नहीं करता होवै ताका नाम अनुपकारी है। और विद्या तप दोनोंकरिकै जो पुरुष युक्त होवै ताका नाम पात्र है। अथवा आपणा तथा दातापुरुषका जो रक्षण करणेहाराहै ताका नाम पात्र है। तहां शास्त्रवचन—(विद्यातपोभ्यामात्मनो दातुश्च पालनक्षम एव प्रतिगृह्णीयात्।) अर्थ यह—जो ब्राह्मण विद्याकरिकै तथा तपकरिकै आपणे रक्षा करणेविषे तथा दातापुरुषके रक्षण करणेविषे समर्थ होवै सो ब्राह्मणही तिस दातापुरुषतैं धनादिक प्रतिग्रहकूं ग्रहण करै। जो ब्राह्मण विद्यावें

रहित है तथा तपतैं भी रहित है सो ब्राह्मण कदाचित्‌भी प्रतिग्रहकूं लेवै नहीं इति। ऐसे अनुपकारी पात्रके ताईं उत्तम देशकालविषे निष्काम होइकै शास्त्रकी विधिपूर्वक दिया जो सुवर्णादिक पदार्थोंका दान है सो दान सात्त्विक कह्या जावै है ॥ २० ॥

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ॥
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥ २१ ॥

(पदच्छेदः) यत् । तु । प्रत्युपकारार्थम् । फलम् । उद्दिश्य । वा । पुनः । दीयते । च । परिक्लिष्टम् । तत् । दानम् । राजसम् । स्मृतम् ॥ २१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः जो दान प्रतिउपकारवासतै अथवा स्वर्गादिक फलकूं उद्देशकरिकै तथा पश्चात्तापयुक्त दिया जावै है सो दान राजस कह्या है ॥ २१ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जो दान प्रतिउपकारवासतै दिया जावै है अर्थात् इस ब्राह्मणके ताईं जो मैं यह दान देवूंगा तौ यह ब्राह्मण किसी कालविषे हमारे ऊपरि कोई उपकार करैगा। इस प्रकारकी बुद्धिकरिकै केवल दृष्टप्रयोजनकी सिद्धिवासतैही जो दान दियाजावै है। अथवा इस दानकरिकै हमारेकूं यह स्वर्गादिकफल प्राप्त होवै इस प्रकारतैं स्वर्गादिक फलका उद्देशकरिकै जो दान दिया जावै है। तथा इतना धन हमनैं काहेवासतै खरच करचा इस प्रकारके पश्चात्तापवाला होइकै जो दान दिया जावै है सो दान शास्त्रवेत्ता शिष्टपुरुषोंनैं राजस दान कह्या है। इहां (यत्तु) इस वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तुशब्द पूर्वउक्त सात्त्विक दानतैं इस राजस दानविषे विलक्षणताके बोधन करणेवासतै है ॥ २१ ॥

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ॥
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥

(पदच्छेदः) अदेशकाले । यत् । दानम् । अपात्रेभ्यः । च । दीयते । असत्कृतम् । अवज्ञातम् । तत् । तामसम् । उदाहृतम् ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः जो दान अदेशकालविषे अपात्रोंके ताईं सत्कारतें रहित तथा अवज्ञापूर्वक दियाजावै है सो दान शिष्टपुरुषोंनैं तामस कह्या है ॥ २२ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! स्वभावतें अथवा दुर्जनपुरुषोंके सम्बन्धतैं पापका हेतुरूप जो अशुचि स्थान है ताका नाम अदेश है। और पुण्यका हेतुरूपकरिकै अप्रसिद्ध जो कोईक काल है ताका नाम अकाल है। अथवा अशौचकालका नाम अकाल है। ऐसे अदेशविषे तथा अकालविषे विद्यातपतैं रहित नटविटादिक अपात्रोंके ताईं जो सुवर्णादिक पदार्थोंका दान दिया जावै है सो दान शास्त्रवेत्ता शिष्टपुरुषोंनैं तामस कह्या है। और उत्तमदेश, उत्तमकाल, उत्तमपात्र इन तीनोंके प्राप्तहुए भी जो दान असत्कृत दियाजावै है अर्थात् प्रियभाषण, पादोंका प्रक्षालन, चंदन पुष्प अक्षतादिकोंकरिकै पूजन इत्यादिरूप सत्कारतें रहित जो दान दिया जावै है तथा जो दान अवज्ञात दिया जावै है अर्थात् दानके पात्ररूप ब्राह्मणादिकोंका निरादरकरिकै जो दान दिया जावै है सो दानभी शास्त्रवेत्ता शिष्टपुरुषोंनैं तामस ही कह्या है ॥ २२ ॥

तहां पूर्वप्रसंगविषे आहार, यज्ञ, तप, दान, इन च्यारोंका सात्त्विक, राजस, तामस यह तीन प्रकारका भेद कथन करिकै ते सात्त्विक आहारादिक अवश्यकरिकै ग्रहण करणेयोग्य हैं। और ते राजस तामस आहारादिक अवश्यकरिकै परित्याग करणेयोग्य हैं यह अर्थ कथन कऱ्या। तहां आहार तौ केवल क्षुधाकी निवृत्तिरूप दृष्टअर्थकी ही सिद्धि करै है। धर्मकी उत्पत्तिद्वारा स्वर्गादिरूप अदृष्टअर्थकी सिद्धि करता नहीं यातैं किसी अंगकी विगुणताकरिकै तिस आहारके फलके अभावकी शंका होवी नहीं। और धर्मकी उत्पत्तिद्वारा अंतःकरणकी शुद्धिरूप अथवा स्वर्गादि

रूप अदृष्टअर्थकी प्राप्तिकरणेहारे जे यज्ञ, तप, दान यह तीनों हैं तिन यज्ञ, तप, दान तीनोंके तौ किसी मंत्रादिरूप अंगकी विगुणतातैं धर्मरूप अपूर्वके नहीं उत्पन्न हुए तिस फलका अभाव ही होवै है इस कारणतै सात्त्विक भी तिस यज्ञ तप दानविषे निष्फलता ही प्राप्त होवै है। काहेतैं तिस यज्ञ तप दानके अनुष्ठान करणेहारे जे मनुष्यहैं तिन मनुष्योंविषे प्रमादकी बाहुल्यता होणेतै तिन यज्ञादिकोंके करते हुए किसी न किसी अंगकी विगुणता अवश्यकरिकै होवै है। इस कारणतैं तिस विगुणताके निवृत्तकरणे वासतै ओं तत्सत् इस भगवत्के नामका उच्चारणरूप सामान्य प्रायश्चित्तकूं परम कृपालु श्रीभगवान् अधिकारीजनोंके प्रति उपदेश करैहैं–

ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ॥
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥२३॥

(पदच्छेदः) ओंतत्सत् । इति । निर्देशः । ब्रह्मणः । त्रिविधः । स्मृतः । ब्राह्मणाः । तेन । वेदाः । च । यज्ञाः । च । विहिताः । पुरा ॥ २३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! ओंतत्सत् इसप्रकारका तीन अवयवोंवाला परब्रह्मका नाम स्मरण कऱ्या है तिस नाम करिकैही सृष्टि आदिकालविषे प्रजापतिनैं ब्राह्मणादिक कर्त्ता तथा कारणरूप वेद तथा कर्मरूप यज्ञ उत्पन्न करे हैं ॥ २३ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जैसे अकार, उकार, मकार इन तीन अवयवोंवाला एकही प्रणवनाम परब्रह्मका होवै है तैसे ओं तत् सत् यह तीन हैं अवयव जिसके ऐसा ओंतत्सत् यह एकही नाम परब्रह्मका वेदांतवेत्ता पुरुषोंनैं स्मरण कऱ्या है। हे अर्जुन ! जिस कारणतैं पूर्व वेदांतवेत्ता महर्षियोंनैंभी ओंतत्सत् यह परब्रह्मका नाम स्मरण कऱ्या है तिस कारणतैं इदानींकालके वेदांतवेत्ता पुरुषोंनैंभी ओंतत्सत् यह परब्रह्मका नाम अवश्य करिकै स्मरण करणा। ऐसे नामके स्मरण करणेतैं इसअधिकारी

पुरुषकूं तिन यज्ञ तपदानादिक कर्मोंविषे विगुणतादोषकी प्राप्ति होवै नहीं यह वार्त्ता स्मृतिविषेभी कथन करी है। तहां स्मृति- (प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्। स्मरणादेव तद्विष्णोः संपूर्णं स्यादितिश्रुतिः ॥) अर्थ यह- यज्ञादिक कर्मकूं करणेहारे पुरुषका किसी प्रमादके वशतैं तिन यज्ञादिक कर्मोंविषे जो कोई मंत्रादिरूप अंग भंग होइ जावै है सो मंत्रादिरूप अंग विष्णुभगवान्‌के स्मरणतैं ही परिपूर्ण होवै है इस प्रकार श्रुति भगवती कथन करै है इति। और वेदवेत्ता शिष्ट पुरुषभी जिस जिस वैदिक कर्मका आरंभ करै हैं तिस तिस कर्मके आरंभविषे ओंतत्सत् इस नामकूं स्मरण करिकै ही तिस तिस कर्मकूं करै हैं यातैं शिष्टाचाररूप प्रमाणतैंभी तिस नामके स्मरणका विगुणता दोषकी निवृत्तिरूप फल सिद्ध होवै है इति। अब ओंतत्सत् इस नामके स्मरणविषे यज्ञादिक कर्मोंके विगुणतादोषकी निवृत्ति करणेका सामर्थ्य कथन करणेवासतै श्रीभगवान् तिस ब्रह्मके नामकी स्तुति करै हैं (ब्राह्मणास्तेन इति) इहां ब्राह्मणशब्द ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णोंका उपलक्षण है यातैं यह अर्थ सिद्ध भया—पूर्व सृष्टिके आदिकालविषे प्रजापति ब्रह्मानैं जो ब्राह्मणादिक कर्मोंके कर्त्ता तथा कारणरूप वेद तथा कर्मरूप यज्ञ उत्पन्न करे हैं सो ओंतत्सत् इस ब्रह्मके नाम करिकै ही उत्पन्न करे हैं यातैं यज्ञादिक सृष्टिकाहेतु होणेतैं यहमहान् प्रभाववाला ब्रह्मकानाम तिसविगुणतादोषके निवृत्तकरणेविषे समर्थहीहै ॥ २३ ॥

तहां अकार, उकार, मकार, इन तीन अवयवोंके व्याख्यानकरिकै जैसे तिन अकारादिक तीन अवयवोंके समुदायरूप ओंकारका व्याख्यान होवै है। तैसे ॐ, तत्, सत्, इन तीन अवयवोंके व्याख्यान करिकै तिन ओंकारादिक तीन अवयवोंके समुदायरूप ओंतत्सत् इस ब्रह्मके नामकूं श्रीभगवान् च्यारि श्लोकों करिकै व्याख्यानकरैहैं। तिसब्रह्मकेनामकीस्तुतिके अतिशयतावासतै तहां प्रथम ओंकारशब्दका व्याख्यान करैं हैं—

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः ॥
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥ २४ ॥

(पदच्छेदः) तस्मात् । ओम् । इति । उदाहृत्य । यज्ञदान-तपःक्रियाः । प्रवर्त्तंते । विधानोक्ताः । सततम् । ब्रह्म-वादिनाम् ॥ २४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिसकारणतैं ॐ इसप्रकारके शब्दकूं उच्चारण करिकै ही वेदवेत्ता पुरुषोंकी विधिशास्त्रउक्त यज्ञदानतपरूप क्रिया निरंतर प्रवृत्त होवैं हैं ॥ २४ ॥

भा॰ टी॰—हे अर्जुन ! जिसकारणतैं (ओमिति ब्रह्म) इत्यादिक श्रुतियोंविषे ॐ यहशब्द ब्रह्मकानाम प्रसिद्ध है तिसकारणतैं ॐ इसशब्दका उच्चारण करिकैही वेदवेत्ता पुरुषोंकी विधिशास्त्रबोधित यज्ञदानतपरूप सर्व-क्रियानिरंतर प्रवर्तहोवैहैं अर्थात् वेदवेत्तापुरुष जिसजिस शास्त्रविहित यज्ञतप-दानादिरूप क्रियाकूं करैं हैं तिस तिस क्रियातैं पूर्व ॐ इस शब्दका उच्चारणकरिकैही पश्चात् तिस तिस क्रियाकूं करैं हैं । तिस ओंकारके उच्चारणके प्रभावतैं तिन वेदवेत्ता पुरुषोंकी ते यज्ञदानादिरूप क्रिया विगुणतादोषतैं रहित होइकै समाप्त होवैं हैं । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । जिस ओंतत्सत् इस नामके ॐ इस एक अवयवके उच्चारणतैंभी सर्व विगुणतादोषकी निवृत्ति होवै है तौ संपूर्ण नामके उच्चारणतैं तिस विगुणतादोषकी निवृत्ति होवै है याकेविषे पुनः क्या कहणा है ॥ २४ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे काम्ययज्ञादिककर्मोंविषे तथा निष्कामयज्ञादिक कर्मोंविषे साधारणतारूप करिकै ॐ इस शब्दका उपयोग कथन कन्या । अब मुमुक्षुजनकृत केवल निष्काम कर्मविषे तत् इस शब्दके उपयोगकूं कथन करतेहुए श्रीभगवान् तत् इस शब्दका व्याख्यान करैं हैं—

तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ॥
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकां-क्षिभिः ॥ २५ ॥

(पदच्छेदः) तत् । इति । अनभिसंधाय । फलम् । यज्ञतपःक्रियाः । दानक्रियाः । च । विविधाः । क्रियंते । मोक्षकांक्षिभिः ॥ २५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मोक्षकी इच्छावान् पुरुषोंनैं तत् इसशब्दका उच्चारणकरिकै फलकूं नं इच्छाकरिकै नानाप्रकारकी यज्ञतपरूपक्रिया तथा दानरूपक्रिया करीतियां हैं ॥ २५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! तत्त्वमसि इत्यादिक श्रुतियोंविषे प्रसिद्ध जो तत् यह ब्रह्मका नाम है इस तत् नामकूं उच्चारणकरिकै ही फलकी इच्छातैं रहित होइकै मुमुक्षुजनोंनैं आपणे अंतःकरणकी शुद्धिवासतै नानाप्रकारकी यज्ञरूपक्रिया करीहैं । तथा नानाप्रकारकी तपरूप क्रिया करी है । तथा नानाप्रकारकी दानरूप क्रिया करी हैं । तिस तत्शब्दके उच्चारणके प्रभावतैं तिन मुमुक्षुजनोंकी ते यज्ञतपदानादिरूप सर्वक्रिया निर्विघ्न समाप्त होवैं हैं यातैं यह तत् शब्दभी अत्यंत श्रेष्ठ है ॥ २५ ॥

अब श्रीभगवान् तीसरे सत् इस शब्दका दो श्लोकोंकरिकै व्याख्यान करैं हैं—

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ॥
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥२६॥

(पदच्छेदः) सद्भावे । साधुभावे । च । सत् । इति । एतत् । प्रयुज्यते । प्रशस्ते । कर्मणि । तथा । सच्छब्दः । पार्थ । युज्यते ॥ २६ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! सद्भावविषे तथा साधुभावविषे शिष्टपुरुषोंनैं सत् इसप्रकारका शब्द उच्चारण करीताहै तथा प्रशस्त कर्मविषेभी सत्शब्द उच्चारणकरीताहै ॥ २६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! (सदेव सोम्येदमग्र आसीत्) इत्यादिक श्रुतियोंविषे प्रसिद्ध जो सत् यह ब्रह्मका नाम है सो सत्शब्द शास्त्रवेत्ता शिष्टपुरुषोंनैं

सद्भावविषे उच्चारण करीता है अर्थात् जिस वस्तुके अविद्यमानपणेकी शंका होवै है तिस वस्तुके विद्यमानपणेविषे सो सत्शब्द उच्चारण करीता है। तथा शिष्टपुरुषोंनैं साधुभावविषेभी सो सत्शब्द उच्चारण करीताहै अर्थात् जिस वस्तुके असाधुपणेकी शंका होवैहै तिस वस्तुके साधुपणेविषेभी सो सत्शब्द उच्चारण करीताहै यातैं यह सत्शब्द विगुणतादोषकी निवृत्तिकरिकै तिन यज्ञादिक कर्मोंके साधुत्व करणेकूं तथा तिन यज्ञादिक कर्मोके फलकी विद्यमानता करणेकूं समर्थ है। हे अर्जुन ! जैसे सद्भावविषे तथा साधभावविषे यह सत्शब्द उचारण करीता है तैसे प्रतिबंधतैं रहित होइकै शीघ्रही सुखके जनक जे विवाहादिक मांगलिक कर्म हैं तिन कर्मोंविषेभी शिष्ट पुरुषोंनैं सो सत् शब्द उच्चारण करीताहै यातैं यह सत्शब्द विगुणतादोषकी निवृत्तिकरिकै तिन यज्ञादिक कर्मोंविषे प्रतिबंधतैं रहित शीघ्रही फलकी जनकता संपादन करणेविषे समर्थ है इस कारणतैं यह सत्शब्द अत्यंत श्रेष्ठहै ॥ २६ ॥

किंच—

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते॥
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥२७॥

(पदच्छेदः) यज्ञे । तपसि । दाने । च । स्थितिः । सत् । इति । च । उच्यते । कर्म । च । एव । तदर्थीयम् । सत् । इति । एव । अभिधीयते ॥ २७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः यज्ञविषे तथा तपविषे तथा दानविषे स्थितिभी सत् इस प्रकार कथन करीती है तथा तदर्थीय कर्म भी " सत् इसप्रकार ही " कथन करीता है ॥ २७ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! यज्ञविषे तथा तपविषे तथा दानविषे जा स्थिति है अर्थात् तत्परताकरिकै जा अवस्थितिरूप निष्ठा है सा निष्ठारूप स्थितिभी विद्वान् पुरुषोंनैं सत् इस नामकरिकै कथन करीती है तथा तद-

र्थीय जो कर्म है सो कर्मभी सत् इस नामकरिकै ही कथन करीता है। तहां तिन यज्ञ तप दानरूप अर्थोंविषे उत्पन्न हुआ जो तिन यज्ञादिकोंके अनुकूल कर्म विशेष है ताका नाम तदर्थीय कर्म है। अथवा जिस ब्रह्मका यह सत्नाम कथन कऱ्या है सो ब्रह्म है अर्थ क्या विषय जिसका ताका नाम तदर्थ है। ऐसा शुद्धब्रह्मविषयक ज्ञान है तिस ब्रह्मज्ञानके अनुकूल जे कर्म हैं तिन कर्मोंका नाम तदर्थीयकर्म है। अथवा भगवदर्पणबुद्धिकरिकै कऱ्या जो कर्म है ताका नाम तदर्थीयकर्म है। अथवा परमेश्वरकी प्राप्तिवासतै कऱ्या जो कर्म है ताका नाम तदर्थीयकर्म है। ऐसा तदर्थीयकर्मभी विद्वान् पुरुषोंनैं सत् इस नामकरिकै कथन कऱ्या है यातैं सत् यह नाम यज्ञादिक कर्मोंके विगुणतादोषकी निवृत्ति करणेविषे समर्थ होणेतैं अत्यंत श्रेष्ठ है यातैं यह भावार्थ सिद्ध भया—जिस ॐतत्सत् इस ब्रह्मके नामका एक एक ओंकारादिकरूप अवयवकाभी इस प्रकारका माहात्म्य है तिस ओंकारादिक तीन अवयवोंका समुदायरूप ॐ तत्सत् इस नामका अत्यंत अद्भुत माहात्म्य है याकेविषे क्या कहणा है ॥ २७ ॥

हे भगवन् ! आलस्यादिक दोषकरिकै शास्त्रीय विधिका परित्यागकरिकै श्रद्धावान् होइकै केवल वृद्धपुरुषोंके व्यवहारमात्रकरिकै यज्ञ तप दानादिक कर्मोंकूं करणेहारे जे पुरुष हैं तिन पुरुषोंकूं किसी प्रमादके वशतैं तिन कर्मोंविषे विगुणतादोषके प्राप्त हुए ओंतत्सत् इस ब्रह्मके नामकरिकै जबी तिस विगुणतादोषकी निवृत्ति होवै है तबी श्रद्धातैं रहितपणेकरिकै शास्त्रीय विधिका परित्यागकरिकै आपणी इच्छामात्रकरिकै यत्किंचित् यज्ञादिक कर्मोंकूं करणेहारे आसुर पुरुषोंकूंभी ओंतत्सत् इस नामकरिकै ही विगुणतादोषकी निवृत्ति होवैगी। यातैं यज्ञादिक कर्मोंके सात्त्विकपणेका हेतुभूत श्रद्धाका कोईभी प्रयोजन नहीं है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् श्रद्धातैं विना करेहुए सर्वकर्मोंके निष्फलताकूं कथन करै हैं—

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥२८॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

(पदच्छेदः) अश्रद्धया । हुतम् । दत्तम् । तपः । तप्तम् । कृतम् । च । यत् । असत् । इति । उच्यते । पार्थ । न । च । तत् । प्रेत्य । नो । इह ॥ २८ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! अश्रद्धाकरिकै जो हवन करीता है तथा जो दान करीता है जो तप करीता है तथा जो कोई अन्यभी कर्मकरीता है सो सर्व असत् इस नामकरिकै कहाजावै है जिसै कारणतै सो श्रद्धारहितकर्म परलोकविषेभी नहीं फल देवै है तथा इस लोकविषेभी नहीं फल देवै है ॥ २८ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! इस पुरुषनैं अश्रद्धाकरिकै अग्निविषे जो हवन करीता है तथा ब्राह्मणोंके ताईं जो सुवर्णादिक पदार्थोंका दान देता है तथा शारीरतप, वाचिकतप, मानसतप यह तीनप्रकारका जो तप करीता है तथा इसतैं अन्यभी जे स्तुति नमस्कारादिक कर्म करीते हैं ते अश्रद्धाकरिकै करेहुए हवनादिक सर्वही कर्म असत् इस प्रकारके नामकरिकै कहे जावैं हैं अर्थात् वे सर्वकर्म असाधु ही कहे जावैं हैं । यातैं श्रद्धातैं विना करे हुए तिन कर्मोंका ओंतत्सत् इस नामकरिकै सो साधुभाव कथ्या जाता नहीं । तात्पर्य यह-जैसे पाषाणकी शिलाविषे अंकुरके उत्पत्तिकी योग्यताही होती नहीं तैसे तिन श्रद्धातैं रहित कर्मोंविषे सर्वप्रकारकरिकै तिस साधुभावकी योग्यताही होती नहीं । ऐसे साधुभावके योग्य तिन कर्मोंविषे ओंतत्सत् इस नामकरिकै सो साधुभाव कदाचित् भी संभवता नहीं इति । शंका-हे भगवन् ! ते श्रद्धातैं रहित कर्म किस हेतुतैं असत् कहेजावैं हैं ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् ताकेविषे

हेतु कहैं हैं (न च तत्प्रेत्य नो इह इति) हे अर्जुन ! जिस कारणतैं अश्रद्धाकरिकै कऱ्या हुआ सो कर्म परलोकविषेभी फलकी प्राप्ति करता नहीं । काहेतैं ते श्रद्धारहित कर्म विगुणतादोषवाले होणेतैं धर्मरूप अपूर्वके उत्पादक होते नहीं । वा धर्मरूप अपूर्वतैं विना सो स्वर्गादिरूप पारलौकिक फल प्राप्त होता नहीं । तथा सो श्रद्धातैं विना कऱ्याहुआ कर्म इस लोकविषे भी यशरूप फलकी प्राप्ति करता नहीं । जिस कारणतैं श्रद्धाहीन पुरुषकी शिष्टपुरुष स्तुति करते नहीं किंतु निंदाही करते हैं यातैं श्रद्धातैं रहित होइकै कऱ्या जो यज्ञादिरूप कर्म है सो कर्म इस लोकके फलकी तथा पारलौकिक फलकी प्राप्ति करता नहीं । यातै अंतःकरणकी शुद्धिवासतै यह अधिकारी पुरुष सात्त्विकी श्रद्धाकरिकैही सात्त्विक यज्ञादिक कर्मकूं करै ऐसे श्रद्धापूर्वक करेहुए सात्त्विक यज्ञादिकोंविषे जो कदाचित् विगुणतादोषकी शंका प्राप्त होवै तौ यह अधिकारी पुरुष ॐतत्सत् इसप्रकारके ब्रह्मके नामकूं उच्चारण करिकै तिन यज्ञादिक कर्मोंकूं विगुणतादोषतैं रहित करै इति । तहां इस सप्तदश अध्यायविषे यह अर्थ निर्णय कऱ्या—आलस्यादिक दोषकरिकै शास्त्रविधिका परित्याग कऱ्या है जिन्होंनैं तथा श्रद्धापूर्वक पिता पितामहादिक वृद्धपुरुषोंके व्यवहारमात्र करिकै यज्ञादिक कर्मोंविषे प्रवृत्ति है जिनोंकी । तथा शास्त्रके विधिका परित्यागरूप जो असुरपुरुषोंका धर्म है तथा श्रद्धापूर्वक कर्मोंका अनुष्ठानरूप जो देवोंका धर्म है तिन दोनों धर्मोंकरिकै युक्त होणेतैं वे पुरुष क्या असुर हैं अथवा देव हैं इस प्रकारके अर्जुनके संशयके विषयभूत जे पुरुष हैं तिन पुरुषोंके मध्यविषे जे पुरुष राजस तामस श्रद्धापूर्वक राजस-तामसरूप यज्ञादिक कर्मोंकूंही करैहैं वे पुरुष तौ असुर कहे जावैहैं । ऐसे असुरपुरुष तौ शास्त्रप्रतिपादित ज्ञानसाधनोंके अधिकारीही हैं । और जे पुरुष सात्त्विक श्रद्धापूर्वक सात्त्विक यज्ञादिकोंकूं करैं हैं ते पुरुष तौ देव कहे जावैहैं । ते देवपुरुष तौ शास्त्रप्रतिपादित ज्ञानसाधनोंके अधिकारी

होवैहैं । इसप्रकारका निर्णय श्रीभगवान्नैं इस अध्यायविषे सात्त्विक राजस तामस इन तीन प्रकारकी श्रद्धाके प्रतिपादनद्वारा आहारादिकोंके सात्त्विकादिक त्रिविधपणेकरिकै सिद्ध कन्या ॥ २८ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथाष्टादशाऽध्यायप्रारंभः ।

तहां पूर्व सप्तदश अध्यायविषे श्रद्धाका सात्त्विक, राजस, तामस यह तीन प्रकारका भेद कथन करिकै तथा आहार, यज्ञ, तप, दान इन च्यारोंका सात्त्विक, राजस, तामस यह तीन प्रकारका भेद कथन करिकै कर्मीपुरुषोंका सात्त्विक, राजस तामस यह तीनप्रकारका भेद कथन कन्या। सात्त्विकोंके ग्रहण करावणेवासतै तथा राजस तामसोंके परित्याग करावणेवासतै अब संन्यासके सात्त्विक, राजस, तामस इस प्रकारके त्रिविधपणेकूं कथन करिकै संन्यासियोंकेभी सात्त्विक, राजस, तामस इस प्रकारके त्रिविधपणेकूं अवश्यकरिकै कह्या चाहिये। तहां आत्मसाक्षात्कारतैं अनंतर करणेयोग्य जो फलभूत सर्वकर्मोंका संन्यास है जिस संन्यासकूं शास्त्रविषे विद्वत्संन्यास कहेहैं सो फलभूतसंन्यास तौ पूर्व चतुर्दश अध्यायविषे गुणातीतरूपकरिकै व्याख्यान कन्या था । यातैं सो फलभूत विद्वत्संन्यास तौ सात्त्विक, राजस, तामस इसप्रकारके त्रिविधभेदके योग्य होवै नहीं । और आत्मसाक्षात्कारतैं पूर्व तिस आत्मसाक्षात्कारकी प्राप्ति अर्थ जो सर्वकर्मोंका संन्यास है, जो संन्यास आत्मसाक्षात्कारकी इच्छावान् पुरुषनैं वेदांतवाक्योंके विचारवासतै कन्या जावैहै । जिस संन्यासकूं शास्त्रविषे विविदिषासंन्यास कहेहैं सो विविदिषासंन्यासभी (त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।) इत्यादिक वचनोंकरिकै

पूर्व निर्गुणरूपकरिकै व्याख्यान कऱ्याथा । यातैं सो विविदिषासंन्यासभी सात्त्विक, राजस तामस इस प्रकारके त्रिविधपणेके योग्य है नहीं किंतु फलभूत विद्वत्संन्यास तथा विविदिषासंन्यास यह दोनों संन्यास गुणातीत संन्यास कहे जावैंहै । और जिन पुरुषोंकूं आत्मसाक्षात्कारकी उत्पत्ति हुई नहीं तथा आत्मसाक्षात्कारकी इच्छारूप विविदिषाकीभी उत्पत्ति हुई नहीं ऐसे तत्त्ववेत्तापणेतैं रहित तथा जिज्ञासुपणेतैं रहित पुरुषोंका जो कर्मोंका संन्यास है जो संन्यास (स संन्यासी च योगी च) इत्यादिक वचनों-करिकै पूर्व गौणसंन्यासरूपकरिकै व्याख्यान कऱ्याथा तिस संन्यासका सात्त्विक, राजस, तामस यह त्रिविधपणा संभव होइसकैहै । तिसी ही संन्यासके विशेषता जानणेकी इच्छा करताहुआ अर्जुन श्रीभगवान्‌के प्रति प्रश्न करैहै—

अर्जुन उवाच ।

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥ १ ॥

(पदच्छेदः) संन्यासस्य । महाबाहो । तत्त्वम् । इच्छामि । वेदितुम् । त्यागस्य । च । हृषीकेश । पृथक् । केशिनिषूदन ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे महाबाहु ! हे हृषीकेश ! हे केशिनिषूदन ! संन्यासके तथा त्यागके स्वरूपकूं मैं अर्जुन पृथक् जानणेकूं चाहताहूं सो कृपाकरिकै कहो ॥ १ ॥

भा० टी०—हे महाबाहो ! हे हृषीकेश ! हे केशिनिषूदन ! श्रीभगवन् ! जिन पुरुषोंकूं आत्मज्ञानकी प्राप्त हुई नहीं तथा जिन पुरुषोंकूं आत्मज्ञानकी इच्छारूप विविदिषाभी उत्पन्न हुई नहीं ऐसे जे कर्मोंके अधिकारी पुरुष हैं ऐसे कर्मोंके अधिकारी पुरुषोंनें करया जो किंचित्कर्मोंका ग्रहण करिकै किंचित्कर्मोंका परित्याग है सो कर्मोंका परित्याग त्यागअंशरूप गुणके योगतैं गौणीवृत्तितैं संन्यासशब्दकरिकै कह्या जावैहै । इसप्रकारका अंतः-

करणकी शुद्धिवासतै अविद्वान् कर्मके अधिकारी पुरुषनै कऱ्या जो संन्यास है जो संन्यास सर्वप्रकारतैं कर्मोंका त्यागरूप है नहीं किंतु किसीकरूपकरिकै कर्मोंका त्यागरूप है इसप्रकारके संन्यासके स्वरूपकूं मैं अर्जुन सात्त्विक राजस तामस इसप्रकारके भेदकरिकै जानणेकी इच्छा करताहूं। तथा त्यागके स्वरूपकूंभी मैं सात्त्विकादिक भेदकरिकै जानणेकी इच्छा करताहूं । तहां संन्यास त्याग यह दोनों शब्द घट पट इन दोनों शब्दोंकी न्याई भिन्नभिन्न जातिवाले अर्थके वाचक है अथवा घट कलश इन दोनों शब्दोंकी न्याई एकही जातिवाले अर्थके वाचक हैं । तहां इन दोनों पक्षोंविषे जबी आदिपक्ष अंगीकार होवै तबी त्यागके स्वरूपकूं संन्यासतैं पृथक् करिकै मैं जानणेकी इच्छा करताहूं । और जबी द्वितीयपक्ष अंगीकार होवै तबी संन्यास त्याग इन दोनोंके प्रवृत्तिका निमित्तभूत अवांतरउपाधिका भेदमात्र कह्या चाहिये । संन्यास त्याग इन दोनोंविषे एकके व्याख्यान करिकैही दोनोंका व्याख्यान सिद्ध होवैगा इति । तहां महान् हैं दोनों बाहु जिसकी ताका नाम महाबाहु है । और केशिनामा दैत्यकूं जो नाश करताभयाहै ताका नाम केशिनिषूदन है । इन दोनों संबोधनोंकरिकै अर्जुननैं श्रीभगवान्‌विषे बाह्य उपद्रवोंके निवृत्त करणेका सामर्थ्य सूचन कऱ्या । और हृषीक नाम इन्द्रियोंका है तिन इंद्रियोंका जो ईश होवै अर्थात् प्रवर्त्तक होवै ताका नाम हृषीकेश है इस संबोधनकरिकै अर्जुननैं श्रीभगवान्‌विषे अंतर कामक्रोधादिक उपद्रवोंके निवृत्त करणेका सामर्थ्य सूचन कऱ्या । इहां भगवत् विषयक अत्यंत अनुरागतैं अर्जुननैं भगवान्‌के तीन संबोधन करेहैं इति । तहां इस श्लोकविषे अर्जुनके दो प्रश्न सिद्ध हुए । तहां कर्मके अधिकारी अविद्वान् पुरुषोंनैं कऱ्या जो संन्यास है तिस संन्यासविषे पूर्वउक्त यज्ञादिक कर्मोंका साधर्म्यभी रहैहै । तथा पूर्वउक्त गुणातीतरूप दोप्रकारके संन्यासका साधर्म्यभी रहे है । तहां जैसे पूर्वउक्त यज्ञादिक कर्म कर्मके अधिकारी पुरुषनैंही करीतेहैं तैसे यह संन्यासभी कर्मके अधिकारी

पुरुषनैंही करचा है वहही इस संन्यासविषे पूर्वउक्त यज्ञादिक कर्मोंका समानधर्म है । और जैसे पूर्वउक्त गुणातीतनामा दो प्रकारका संन्यास संन्यासशब्दकरिकै प्रतिपादन करचा जावै है वैसे यह संन्यासभी संन्यासशब्दकरिकै प्रतिपादन करचा जावै है यह ही इस संन्यासविषे पूर्वउक्त गुणातीतनामा दो प्रकारके संन्यासका समानधर्म है । इस प्रकार यज्ञादिकों के समानधर्मकरिकै तथा गुणातीतनामा दोनों संन्यासोंके समानधर्मकरिकै जो इस संन्यासविषे त्रिगुणताके संभव असंभव दोनोंकरिकै संशय होवैहै सो संशय तौ प्रथम प्रश्नका बीजरूप है और संन्यास त्याग इन दोनों शब्दोंकूं घट कलश इन दोनों शब्दोंकी न्याईं पर्यायरूपता होणेतैं कर्मोंके त्यागरूपकरिकै तथा कर्मफलके त्यागरूपकरिकै तिन दोनोंके विलक्षणताके कथनतैं उत्पन्न हुआ जो संशय है सो संशय तौ द्वितीय प्रश्नका बीजरूपहै ॥ १ ॥

तहां सूचीकटाहन्यायकरिकै अंत्यप्रश्नके निवृत्त करणेवासतै श्रीभगवान् उत्तरकूं कथन करे है । तहां जैसे लुहारपुरुष बहुतप्रयत्नसाध्य कटाहकूं छोडिकै प्रथम अल्पप्रयत्नसाध्य सूचीकूं बनाइ देवै है, वैसे बहुत विस्तारवैं प्रतिपादन करणे योग्य अर्थकूं छोडिकै प्रथम थोडेमें प्रतिपादन करणे योग्य अर्थका कथन करणा याकूं सूचीकटाहन्याय कहै हैं—

श्रीभगवानुवाच ।

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ॥
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) काम्यानाम् । कर्मणाम् । न्यासम् । संन्यासम् । कवयः । विदुः । सर्वकर्मफलत्यागम् । प्राहुः । त्यागम् । विचक्षणाः ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! काम्य कर्मोंके त्यागकूं सूक्ष्मदर्शी पुरुष संन्यास जानैं हैं तथा विचारविषे कुशल पुरुष सर्व कर्मोंके फलके त्यागकूं त्याग कहै है ॥ २ ॥

भा० टी०— हे अर्जुन ! (स्वर्गकामो यजेत । पुत्रकामो यजेत । पशुकामो यजेत ।) इत्यादिक विधिवचनोंनैं स्वर्गादिफलकी कामनावाळे पुरुषके प्रति विधान करे जे ज्योतिष्टोमादिक काम्यकर्म है जे काम्यकर्म अंतःकरणकी शुद्धिविषे किंचित्‌मात्रभी उपयोग करते नहीं ऐसे काम्यकर्मोंका जो त्याग है तिस त्यागकूं केईक सूक्ष्मदर्शी पुरुष संन्यासरूप जानैं हैं । काहेतै (तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषंति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन ।) इसश्रुतिनैं नित्यकर्मोंकाही प्रतिबंधकपापोंकी निवृत्तिद्वारा आत्मज्ञानविषे उपयोग कथन करया है । तहां इस श्रुतिविषे वेदानुवचनशब्द ब्रह्मचारीके सर्वधर्मोंका उपलक्षण है । और यज्ञ दान यह दोनों शब्द गृहस्थके सर्वधर्मोंके उपलक्षण है और तप अनाशक यह दोनों शब्द वानप्रस्थके सर्वधर्मोंके उपलक्षण हैं इति और (ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः।) इत्यादिक वचनोंनैभी प्रतिबंधकपापकी निवृत्तिद्वारा नित्यकर्मोंकाही आत्मज्ञानकी उत्पत्तिविषे उपयोग कथन करया है । यातैं नित्यकर्मोंकाही आत्मविषे अथवा आत्मज्ञानकी इच्छारूप विविदिषाविषे उपयोग है। काम्यकर्मोंका आत्मज्ञानविषे तथा विविदिषाविषे किंचित्‌मात्रभी उपयोग नहीं है। यातैं अंतःकरणकी शुद्धिपूर्वक तथा विविदिषाकी उत्पत्तिपूर्वक आत्मज्ञानके प्राप्तिकी इच्छावान् पुरुषनैं भगवदर्पणबुद्धिकरिकै नित्यकर्मोंकाही अनुष्ठान करणा । और काम्यकर्म तौ तिसतिस फलसहित सर्वही परित्याग करणे यह एकमत कथन करया । अब द्वितीयमतका कथन करैं हैं (सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः । इति) हे अर्जुन ! सर्व काम्यकर्मोंके तथा सर्व नित्यकर्मोंके फलका जो त्याग है अर्थात् अंतःकरणके शुद्धिकी इच्छाकरिकै विविदिषाकी प्राप्तिवासतै जो तिन काम्यरूप नित्य सर्वकर्मोंका अनुष्ठान है तिस सर्वकर्मके फलके त्यागकूं विचारविषे कुशल पुरुष त्यागरूप कहैं हैं । यद्यपि (स्वर्गकामो यजेत । पुत्रकामो यजेत। पशुकामो यजेत ।)इत्यादिक वचनोंनैं ज्योतिष्टोमादिक-

काम्यकर्मोंके स्वर्ग, पुत्र, पशु, इत्यादिक भिन्नभिन्न फलही कथन करैं हैं तथापि इस अधिकारी पुरुषनैं तिसतिस स्वर्गादिक फलकी नहीं इच्छा करिकै ते काम्यकर्मभी अंतःकरणकी शुद्धिवासतेही करणे । काहेतें अग्निहोत्रादिक कर्मोंविषे स्वभावतें तौ नित्यपणा अथवा काम्यपणा होवा नहीं किंतु कर्त्तापुरुषके अभिप्रायविशेषकरिकै ही तिन अग्निहोत्रादिक कर्मोंविषे नित्यपणा अथवा काम्यपणा सिद्ध होवै है । तहां जो अग्निहोत्र स्वर्गादिकफलकी इच्छापूर्वक करचा जावै है तिस अग्निहोत्रविषे तौ काम्यपणा होवै है । और जो अग्निहोत्र स्वर्गादिक फलकी इच्छातें रहित होइकै केवल भगवदर्पणबुद्धिकरिकै करचा जावै है तिस अग्निहोत्रविषे नित्यपणा होवै है । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया—आत्मज्ञानकी इच्छारूप विविदिषाविषे केवल नित्यकर्मोंकाही उपयोग होवै है । तिस विविदिषाविषे काम्यकर्मोंका किंचित्मात्रभी उपयोग होवै नहीं । यातैं इन मुमुक्षुजनोंनैं तिन काम्यकर्मोंका तिस तिस फलसहित स्वरूपतैंही परित्याग करणा । यह तौ इस श्लोकके पूर्वार्धका अर्थ सिद्ध होवै है । और तिस विविदिषाविषे जैसे नित्यकर्मोंका उपयोग होवै है तैसे तिस तिस फलकी इच्छातैं रहित काम्यकर्मोंकाभी उपयोग होवै है । यातैं तिस विविदिषाकी प्राप्तिवासतै तिन काम्यकर्मोंका तथा नित्यकर्मोंका स्वरूपतैं अनुष्ठान कियेहुएभी इस अधिकारी पुरुषनैं तिस तिस कर्मके तिस तिस फलकी इच्छामात्रका परित्याग करणा । यह श्लोकके उत्तरार्धका अर्थ सिद्ध होवै है । इस कहणेकरिकै यह अर्थ सिद्ध भया—फलसहित काम्यकर्ममात्रका जो त्याग है सो त्याग तौ संन्यासशब्दका अर्थ है । और नित्यकाम्यरूप सर्व कर्मोंके फलकी इच्छामात्रका जो परित्याग है सो त्याग त्यागशब्दका अर्थ है । यातैं जैसे घट पट इन दोनों शब्दोंका भिन्नभिन्न जातिवाला अर्थ होवै है वैसे संन्यास त्याग इन दोनों शब्दोंका भिन्नभिन्न जातिवाला अर्थ नहीं है किंतु अंतःकरणकी शुद्धिवासतें स्वरूपतें कर्मोंके अनुष्ठान हुए भी तिस तिस कर्मके तिस तिस फलकी इच्छाका परित्यागरूप एकही अर्थ

विन दोनो शब्दोंका सिद्ध होवै है । इसप्रकारतैं इस श्लोककरिकै एक प्रश्नका निर्णय सिद्ध भया ॥ २ ॥

अब द्वितीयप्रश्नके उत्तर कहणेवासतै संन्यासशब्दके अर्थविषे तथा त्यागशब्दके अर्थविषे त्रिविधपणेके निरूपण करणेवासतै प्रथम तिस अर्थविषे वादियोंके विप्रतिपत्तिकूं श्रीभगवान् कथन करैं है-

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ॥
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) त्याज्यम् । दोषवत् । इति । एके । कर्म । प्राहुः । मनीषिणः । यज्ञदानतपःकर्म । न । त्याज्यम् । इति । च । अपरे ॥ ३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन । रागद्वेषादिक दोपकी न्याई कर्मभी परित्याग करणेयोग्य हैं इस प्रकार केईक बुद्धिमान् पुरुष कहते है तथा यज्ञदानतपरूप कर्म नहीं त्यागकरणेयोग्य हैं इसप्रकार दूसरे बुद्धिमान् पुरुष कहते है ॥ ३ ॥

भा॰ टी॰-हे अर्जुन । नित्य, नैमित्तिक, काम्य, प्रायश्चित्त इत्यादिक सर्वही कर्म इस पुरुषके बंधके हेतु होणेतैं दोपवत् है अर्थात् ते सर्वकर्म दोपवाले हैं।यातैं अंतःकरणकी शुद्धितैं रहित कर्मके अधिकारी पुरुषोंनैंभी ते सर्वही कर्म परित्यागही करणेयोग्य है इस प्रकार केईक बुद्धिमान् पुरुष कहैं हैं । अथवा इस वचनका यह दूसरा अर्थ करणा-जैसे रागद्वेषादिक दोप इस अधिकारी पुरुषनैं परित्याग करणे योग्य है तैसे नहीं उत्पन्न हुआ है आत्मज्ञान जिन्होंकूं तथा नहीं उत्पन्न हुई है विविदिषा जिन्होंकूं ऐसे कर्मोंके अधिकारी पुरुषोंनैंभी आपणे बंधका हेतु जानिकै ते सर्व कर्म परित्यागही करणे योग्य हैं यह श्लोकके पूर्वार्धकरिकै एक पक्ष सिद्ध भया । अब श्लोकके उत्तरार्धकरिकै द्वितीयपक्ष कथन करैं हैं (यज्ञदानतपःकर्म इति । हे अर्जुन । अन्तःकरणकी शुद्धितैं रहित कर्मोंके अधिकारी पुरुषोंनें अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा विविदिषाकी उत्पत्तिवासतै यज्ञदान

वपरूप कर्म कदाचित्‌भी नहीं परित्याग करणे । इस प्रकार केईक दूसरे बुद्धिमान् पुरुप कहैं हैं ॥ ३ ॥

इसप्रकार कर्मोंके परित्यागविषे वादियोंकी विप्रतिपत्तिकूं कथन करिकै अब श्रीभगवान् आपणे निश्चयकूं कथन करैं हैं—

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ॥
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) निश्चयम् । शृणु । मे । तत्र । त्यागे । भरतसत्तम । त्यागः । हि । पुरुषव्याघ्र । त्रिविधः । संप्रकीर्तितः ॥ ४ ॥

(पदार्थः) हे भरतकुलविषे श्रेष्ठ अर्जुन ! तिसकर्मत्यागविषे हमारे निश्चयकूं तूं श्रवणकर हे सर्वपुरुषोंविषे श्रेष्ठ अर्जुन ! जिसकारणतैं सो त्याग तीनप्रकारका कथन कऱ्या है ॥ ४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! अन्तकरणकी शुद्धितैं रहित जो कर्मोंका अधिकारी पुरुप है सो कर्मोंका अधिकारी पुरुप है कर्त्ता जिसका तथा संन्यास त्याग इन दोनों शब्दोंकरिकै प्रतिपादन कऱ्या हुआ ऐसा जो फलकी इच्छापूर्वक कर्मोंका परित्याग है जिस त्यागका स्वरूप पूर्व तुमनैं हमारेसैं पूछा है तिस त्यागविषे पूर्व आचार्योंनें कऱ्या जो निश्चय है तिस निश्चयकूं तूं अर्जुन मैं परमेश्वरके वचनतैं श्रवण कर । शंका—हे भगवन् ! तिस त्यागविषे ऐसी क्या दुर्विज्ञयता है जिसकूं मैं आपके वचनतैं श्रवण करूं ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्री-भगवान् तिस त्यागकी दुर्विज्ञेयताकूं कथन करैं हैं (त्यागो हि इति) हे अर्जुन ! कर्मोंका अधिकारी पुरुप है कर्त्ता जिसका ऐसा जो फलकी इच्छापूर्वक कर्मोंका त्यागहै सो त्याग जिस कारणतैं वेदवेत्ता पुरुषोंनैं तीन प्रकारका कथन कऱ्या है अर्थात् तामस, राजस, सात्त्विक इस भेद-करिकै सो त्याग तीन प्रकारका कथन कऱ्या है । अथवा (त्रिविधः संप्रकीर्तितः ।) इस वचनका यह अर्थ करणा—फलकी इच्छारूप विशे-पणकरिकै विशिष्ट जो कर्म है तिस इच्छाविशिष्ट कर्मका जो त्याग है

सो विशिष्टाभावरूप त्याग विशेषणके अभावतैं अथवा विशेष्यके अभावतै अथवा विशेषण विशेष्य दोनोंके अभावतै तीन प्रकारका कथन कऱ्या है सो प्रकार दिखावैं हैं । और कहां तौ विशेषणके अभावतैं विशिष्टका अभाव होवै है । और कहां तौ विशेष्यके अभावतैं विशिष्टका अभाव होवै है । और कहां तौ विशेषण विशेष्य दोनोंके अभावतैं विशिष्टका अभाव होवैहै । जैसे दण्डरूप विशेषणकरिकै विशिष्ट दण्डी पुरुषका जो अभाव है सो विशिष्टाभाव कह्या जावै है सो विशिष्टाभाव विशेषणके अभावतैं अथवा विशेष्यके अभावतैं अथवा विशेषण विशेष्य दोनोंके अभावतै होवै है । तहां जहां पुरुषरूप विशेष्यके विद्यमान हुए भी दंडरूप विशेषणका अभाव होवै है तहांभी दंडीपुरुष नहीं है या प्रकारकी विशिष्टाभावविषयक प्रतीति होवै है । इहां दंडरूप विशेषणके अभावतै दंडविशिष्टपुरुषका अभाव होवै है । और जहां दंडरूप विशेषणके विद्यमान हुएभी पुरुषरूप विशेष्यका अभाव होवै है तहांभी दंडीपुरुष नहीं है या प्रकारकी विशिष्टाभावविषयक प्रतीति होवै है । इहां पुरुषरूप विशेष्यके अभावतैं दंडविशिष्ट पुरुषका अभाव होवै है । और जहां दंडरूप विशेषणकाभी अभाव होवै है तथा पुरुषरूप विशेष्यकाभी अभाव होवै है तहांभी दंडी पुरुष नहीं है या प्रकारकी विशिष्टाभावविषयक प्रतीति होवै है । इहां दंडरूप विशेषणके तथा पुरुषरूप विशेष्यके दोनोंके अभावतैं दंडविशिष्ट पुरुषका अभाव होवै है तैसे इहां प्रसंगविषे फलकी इच्छारूप विशेषणकरिकै विशिष्ट जो कर्म है तिस विशिष्ट कर्मका त्यागरूप विशिष्टाभावभी इच्छारूप विशेषणके अभावतैं अथवा कर्मरूप विशेष्यके अभावतैं अथवा इच्छारूप विशेषणके तथा कर्मरूप विशेष्यके दोनोंके अभावतैं तीन प्रकारका होवै है । तहां कर्मरूप विशेष्यके विद्यमान हुएभी फलकी इच्छारूप विशेषणके परित्यागतैं जो इच्छा विशिष्ट कर्मका त्याग है सो इच्छारूप विशेषणके अभावतैं इच्छा विशिष्टकर्मका अभावरूप त्याग है । यह प्रथमत्याग है ।

और फलकी इच्छारूप विशेषणके विद्यमान हुएभी कर्मरूप विशेष्यकाजो परित्यागहै सोकर्मरूप विशेष्यकेअभावतैं इच्छाविशिष्टकर्मका अभावरूपत्याग है। यह दूसरा त्याग है। और फलकी इच्छारूप विशेषणके तथा कर्मरूप विशेष्यके दोनोंके परित्यागतैं जो इच्छाविशिष्ट कर्मका परित्याग है सो विशेषण विशेष्य दोनोंके अभावतैं इच्छाविशिष्टकर्मका अभावरूप त्याग है। यह तीसरा त्याग है। तहां प्रथम कर्मका त्याग तौ सात्त्विक होणेतैं ग्रहण करणेयोग्य है। और दूसरा त्याग तौ राजस, तामस इस भेदकरिकै दो प्रकारका होवै है । सो दोनों प्रकारकाही दूसरा त्याग परित्याग करणे योग्य है।तहां दुःखबुद्धिकरिकै करया हुआ सो कर्मोंका त्याग राजस कह्या जावै है और भ्रांतिरूप विपर्यासकरिकै करया हुआ सो कर्मोंका त्याग तामस कह्या जावै है। इसप्रकारका कर्मके अधिकारी पुरुषोंनैं करया जो कर्मोंका त्याग है सो त्यागही इहां अर्जुनके प्रश्नका विषय है। और शुद्ध अंतःकरणवाला होणेतैं कर्मोंका अनधिकारी जो पुरुष है सो कर्मोंका अनधिकारी पुरुष है कर्त्ता जिसका ऐसा जो तीसरा गुणातीतनामा त्याग है सो त्याग इहां अर्जुनके प्रश्नका विषय है नहीं। सो गुणातीतनामा कर्मोंका त्यागभी दो प्रकारका होवैहै। एकतौ साधनरूप होवै है और दूसरा फलरूप होवै है तहां फलकी इच्छाके त्यागपूर्वक कर्मोंका अनुष्ठानरूप जो सात्त्विक त्याग है तिस सात्त्विक त्याग करिकै शुद्ध हुआ है अंतःकरण जिसका तथा उत्पन्न हुई है आत्मज्ञानकी इच्छारूप विविदिषा जिसकूं तथा आत्मज्ञानके साधनभूत श्रवणमननरूप वेदांतविचारके वास्तै स्वर्गादिक सर्व फलोंकी इच्छातैं रहित ऐसा जो अधिकारी पुरुष है ऐसे अधिकारी पुरुषनैं अंतःकरणकी शुद्धितैं अनंतर कऱ्या जो तिस शुद्धिके साधनभूत सर्व कर्मोंका परित्याग है सो कर्मोंका परित्याग तौ प्रथम साधनरूप त्याग कह्या जावै है इसी साधनरूप त्यागकूं शास्त्रवेत्ता पुरुष विविदिषासंन्यास कहैं हैं । इसी साधनरूप विविदिषा . . . . . वानु आगे (नैष्कर्म्यसिद्धिं परमाम्) इस वचनकरिकै ।

और जन्मांतरोंविषे कऱ्या जो श्रवणादिक साधनोंका अभ्यास है तिस अभ्यासके परिपाकतैं इस जन्मविषे प्रथम ही उत्पन्नहुआ है आत्मसाक्षात्कार जिसकूं ऐसा जो कृतकृत्य विद्वान् पुरुष है ऐसे विद्वान् पुरुषनैं स्वतः ही कऱ्या जो फलकी इच्छाका तथा कर्मोंका परित्याग है सो कर्मोंका परित्याग दूसरा फलरूप त्याग कह्या जावै है । इसी फलरूप त्यागकूं शास्त्रवेत्ता पुरुष विद्वत्संन्यास कहैं हैं । सो फलभूत विद्वत्संन्यास श्रीभगवान्नैं (यस्त्वात्मरतिरेव स्यात्) इत्यादिक दो श्लोकोंकरिकै पूर्व व्याख्यान कऱ्या । तथा स्थितप्रज्ञ पुरुषके लक्षणादिकोंकरिकैभी पूर्व बहुत विस्तारतैं कथन कऱ्याहै इति । हे अर्जुन। जिस कारणतैं इस पूर्वउक्त रीतितैं त्यागका स्वरूप अत्यंत दुर्विज्ञेय है। और तुमनैं (त्यागस्य तत्त्वं वेदितुमिच्छामि) इस वचनकरिकै पूर्व त्यागके स्वरूप जानणेकी प्रार्थना करी है। तिस कारणतैं मैं सर्वज्ञपरमेश्वरके वचनतैं ही तिस त्यागके यथार्थ स्वरूपकूं तूं अर्जुन निश्चय कर इति । इहां (हे भरतसत्तम हे पुरुषव्याघ्र) इन दो सम्बोधनोंकरिकै श्रीभगवान्नैं अर्जुनविषे यथाक्रमतैं कुलनिमित्तक उत्कर्ष तथा स्वपौरुषनिमित्तक उत्कर्ष कथन कऱ्या ताकरिकै तिस अर्जुनविषे तिस त्यागके स्वरूपनिश्चय करणेकी योग्यता सूचन करी ॥ ४ ॥

हे भगवन् ! (त्याज्यं दोषवदित्येके) इस श्लोकविषे कथन करी जा वादियोंकी विप्रतिपत्ति है तिस विप्रतिपत्तिके कोटिभूत दोनों पक्षोंविषे कौन आपका निश्चय है ? क्या प्रथमपक्ष आपका निश्चय है अथवा द्वितीयपक्ष आपका निश्चय है ? अथवा इन दोनों पक्षोंतैं भिन्न कोई तीसरा ही पक्ष आपका निश्चय है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए (यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ।) इस वचनकरिकै कथन कऱ्या जो द्वितीयपक्ष है सो द्वितीयपक्ष ही हमारा निश्चय है । इस प्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् दो श्लोकोंकरिकै कथन करैं हैं—

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ॥
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ ५ ॥

(पदच्छेदः) यज्ञदानतपःकर्म । न । त्याज्यम् । कार्यम् । एव । तत् । यज्ञः । दानम् । तपः । च । एव । पावनानि । मनीषिणाम् ॥ ५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यज्ञदानतपरूप कर्म नहीं त्यागकरणे योग्य है किंतु सो कर्म करणे योग्य ही है जिसकारणतें यज्ञ दान तप यह तीनों फलकी इच्छावें रहित पुरुषोंकूं पावनकरणेहारे ही हैं ॥ ५ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! श्रौतस्मार्त्तरूप जो अग्निहोत्रादिरूप यज्ञ है । तथा उत्तम देशकालविषे सुपात्रके ताईं शास्त्रके विधिप्रमाण जो गौ, सुवर्ण, अन्नादिक पदार्थोंका दान है । तथा कृच्छ्रचांद्रायणादिरूप जो तप है । इहां यज्ञ, दान, तप यह तीनों कर्म ब्रह्मचारी, गृहस्थ वानप्रस्थ इन तीनों आश्रमोंके शास्त्रविहित सर्व कर्मोंके उपलक्षण हैं ऐसे यज्ञदानतपरूप कर्म तिन यज्ञादिक कर्मोंके स्वर्गादिक फलकी इच्छातैं रहित पुरुषोंकूं पावन करणेहारे हैं । अर्थात् ते यज्ञदानतपरूप कर्म ज्ञानके प्रतिबंधक पापरूप मलकी निवृत्तिकरिकै तथा ज्ञानके उत्पत्तिकी योग्यतारूप पुण्यगुणका आधानकरिकै फलकी इच्छावें रहित पुरुषोंके शोधक ही होवैं हैं । इहां अंतःकरणरूप उपाधिकी शुद्धिकरिकै ही तिस अंतःकरणउपहित पुरुषोंकी शुद्धि भगवानकूं अभिप्रेत है । हे अर्जुन ! जिस कारणतें ते यज्ञदानतपरूप कर्म फलकी इच्छावें रहित पुरुषके अंतःकरणकी शुद्धि करणेहारे हैं तिस कारणतें अंतःकरणके शुद्धिकी इच्छावान् कर्मके अधिकारी पुरुषनैं फलकी इच्छावें रहित यज्ञदानतपरूप कर्म कदाचित्भी परित्याग करणे नहीं । किंतु ते यज्ञदानतपरूप कर्म अवश्यकरिकै करणे। यद्यपि (न त्याज्यम्) इस वचनकरिकै श्रीभगवानूनैं यज्ञदानतपरूप कर्मका अत्यागपणा कथन कऱ्या । ता अत्यागपणेकरिकै ही अर्थतैं तिन यज्ञदानादिक कर्मोंकी

कर्तव्यता प्राप्त होवै है । यातैं पुनः (कार्यमेव तत्) इस वचनकरिकै तिन यज्ञदानादिक कर्मोंकी कर्त्तव्यता कथन करणी संभवती नहीं। तथापि तिस यज्ञदानादिरूप कर्मोंकी कर्त्तव्यताके अत्यंत आदरवास्तै श्रीभगवान्नैं पुनः (कार्यमेव तत्) यह वचन कथन कर्या है। अथवा (यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्) इस वचनका या प्रकारतैं अर्थ करणा—जिस कारणतैं यज्ञदानतपरूप कर्म कार्य है अर्थात् कर्त्तव्यतारूपकरिकै वेदनैं विधान कर्या है तिस कारणतैं सो यज्ञदानतपरूप कर्म इस अधिकारी पुरुषनै कदाचित्भी नहीं त्याग करणा ॥ ५ ॥

हे भगवन् ! यज्ञदानतपरूप कर्मोंका जो कदाचित् अंतःकरणकी शुद्धि करणेविषे सामर्थ्य होवै तौ स्वर्गादिक फलकी इच्छाकरिकै करेहुएभी वे यज्ञदानतपरूप कर्म तिस अंतःकरणके शोधक होवैंगे। यातैं फलकी इच्छाका परित्याग करणा व्यर्थही है । ऐसी अर्जुनकी शंका हुए श्रीभगवान् कहै हैं—

एतान्यपि तु कर्माणि संगं त्यक्त्वा फलानि च ॥
कर्त्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) एतानि । अपि । तु । कर्माणि । संगम् । त्यक्त्वा । फलानि । च । कर्तव्यानि । इति । मे । पार्थ । निश्चितम् । मतम् । उत्तमम् ॥ ६ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! पुनः यह पूर्वउक्त यज्ञदानादिक कर्म भी कर्तृत्व अभिमानकूं तथा स्वर्गादिक फलोंकूं परित्यागकरिकै करणेयोग्य है इस प्रकारका मैं परमेश्वरका निश्चित श्रेष्ठ मत है ॥ ६ ॥

भा० टी०—इहां (एतान्यपि तु) इस वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तु शब्द पूर्वउक्त शंकाके निवृत्त करणेवास्तै है । हे अर्जुन ! यद्यपि काम्यकर्मभी आपणे धर्मस्वभाववैं इस पुरुषके अंतःकरणकी शुद्धि करै हैं तथापि सा काम्यकर्मजन्य अंतःकरणकी शुद्धि तिन काम्यकर्मोंके

सुखरूप फलके भोगमात्रविषेही उपयोगी होवै है । सा अंतःकरणकी शुद्धि आत्मज्ञानविषे किंचित्मात्रभी उपयोगी होवै नहीं । यह वार्त्ता वार्त्तिकग्रंथके कर्त्ता श्रीसुरेश्वराचार्यनैंभी कथन करी है । तहां श्लोक-(काम्येपि शुद्धिरस्त्येव भोगसिद्ध्यर्थमेव सा । विड्वराहादिदेहेन न ह्यैंद्रं भुज्यते फलम् ॥) अर्थ यह-काम्यकर्मोंके कियेहुएभी अंतःकरणकी शुद्धि तौ होवै है परंतु सा काम्यकर्मजन्य अंतःकरणकी शुद्धि केवल भोगकी सिद्धिवासतै ही होवै है ज्ञानकी उत्पत्तिवासतै होवै नहीं । जिस कारणतैं इंद्रसंबंधी सुखरूप फल मलिन अंतःकरणवाले विड्वराहादिक देहकरिकै भोग्या जाता नहीं किंतु शुद्ध अंतःकरणवाले देवदेहकरिकै ही सो फल भोग्याजावै है इति । और जे यज्ञदानतपादिक कर्म ज्ञानविषे उपयोगी अंतःकरणकी शुद्धिकूं करैं हैं ते यज्ञदानादि कर्म स्वर्गादिकफलकी इच्छापूर्वक करेहुए बंधके हेतुरूप हुएभी फलकी इच्छातैं विना करेहुए ते यज्ञदानादिक कर्म बंधके हेतुरूप होवैं नहीं । यातैं मुमुक्षुजनोंनैं फलकी इच्छापूर्वक ते यज्ञदानादिक कर्म करणे नहीं किंतु मुमुक्षुजनोंनैं संगकूं तथा फलोंकूं परित्याग करिकै ही ते कर्म करणे योग्य हैं। तहां यौवनादिक अवस्था तथा ब्राह्मणादिक वर्ण तथा गृहस्थादिक आश्रम इत्यादिक हैं निमित्त जिसविषे ऐसा जो मैं इन कर्मोंका कर्त्ता हूं मैंने यह कर्म अवश्य करणेयोग्य है, या प्रकारका कर्तृत्व अभिमान है ताका नाम संग है। और कामनाके विषयभूत जे तिसतिस कर्मकरिकै प्राप्त होणेहारे स्वर्गादिकपदार्थ हैं तिनोंका नाम फल है । ऐसे संगकूं तथा फलोंकूं परित्यागकरिकै इस अधिकारी पुरुषनैं अंतःकरणकी शुद्धिवासतैही ते यज्ञदानादिक कर्म करणे योग्य हैं। इस प्रकारका मैं भगवान्का निश्चित मत है । इसी कारणतैं ही हे पार्थ ! कर्मके अधिकारी पुरुषोंनैं ते यज्ञदानादिक कर्म त्यागकरणे योग्य हैं अथवा नहीं त्यागकरणे योग्य हैं इन दोनों मतोंविषे ते कर्म नहीं त्याग करणे योग्य हैं इस प्रकारका मैं भगवान्का मत अत्यंत श्रेष्ठ है। तहां श्रीभगवान्नें, पूर्व (निश्चयं शृणु मे तत्र) इस

वचनकरिकैं जो आपणा निश्चय कथन करचा था सो आपणा निश्चय इस श्लोकविषे उपसंहार कऱ्या ॥ ६ ॥

तहां (यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ।) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नें पूर्व कथन कऱ्या जो आपणा पक्ष था सो आपणा पक्ष इतनेपर्यंत स्थापन करचा । अब (त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।) इस वचनकरिकै पूर्व कथन कऱ्या जो परपक्ष था तिस परपक्षके पूर्वउक्त त्यागके त्रिविधपणेके व्याख्यानकरिकै निषेधकरणेका आरंभ करैं हैं-

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ॥
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥७॥

(पदच्छेदः) नियतस्य । तु । संन्यासः । कर्मणः । न । उपपद्यते । मोहात् । तस्य । परित्यागः । तामसः । परिकीर्तितः ॥७॥

(पदार्थः) हे अर्जुन । पुनः कर्मका त्याग नहीं संभवैहै तिसँ नित्यकर्मका मोहतैं परित्याग तामसत्याग कथन कऱ्या है ॥ ७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन! स्वर्गादिक फलकी इच्छापूर्वक करे जे काम्यकर्म हैं ते काम्यकर्म अंतःकरणकी शुद्धिके हेतु होवैं नहीं उलटा ते काम्यकर्म इस पुरुषके बंधके ही हेतु होवैं हैं । यातैं ते काम्यकर्म दोषवाले ही हैं । इसी कारणतैं ही बंधकी निवृत्तिका कारणरूप जो आत्मज्ञान है तिस आत्मज्ञानकी इच्छावान् पुरुषनैं कऱ्याहुआ जो तिन काम्यकर्मोंका त्याग है सो त्याग तौ शास्त्रकरिकै तथा युक्तिकरिकै संभवताही है परंतु अंतःकरणकी शुद्धिके हेतु होणेतैं दोषतैं रहित ऐसे जे श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रविहित अग्निहोत्रसंध्योपासनादिक नित्यकर्म हैं ऐसे नित्यकर्मोंका त्याग करणा अंतःकरणके शुद्धिकी इच्छावान् मुमुक्षुजनोंकूं शास्त्रकरिकै तथा युक्तिकरिकै संभवता नहीं । किंतु अंतःकरणकी शुद्धिवास्तै मुमुक्षुजनोंनें तिन नित्यकर्मोंका अवश्यकरिकै अनुष्ठान करणा । यह अर्थ (आरुरुक्षोर्मुने-

योगं कर्म कारणमुच्यते ।) इस वचनकरिकै पूर्वभी प्रतिपादन करिआये हैं । हे अर्जुन ! ऐसे अंतःकरणकी शुद्धि करणेहारे नित्यकर्मोंका जो मोहके वशतैं परित्याग है सो परित्याग तामसत्याग कह्या जावै है । तहां वेदविहित तिन नित्यकर्मविषे जो निषिद्धपणेका ज्ञान है । तथा अनर्थके हेतुरूप तिन कर्मोंविषे जो अनर्थके हेतुपणेका ज्ञान है तथा धर्मरूप तिन कर्मोंविषे जो अधर्मपणेका ज्ञान है । तथा अनुष्ठान करणेयोग्य तिन कर्मोंविषे जो नहीं अनुष्ठानपणेका ज्ञान है इसप्रकारका भ्रांतिज्ञानरूप जो विपर्यास है ताका नाम मोह है । ऐसे मोहके वशतैं जो तिन नित्यकर्मोंका परित्याग है सो परित्याग तामसत्याग कह्या जावैहै । इति । सो इसप्रकारका विपर्यासरूप मोह सांख्यशास्त्रवाले पुरुषोंकूं होवैहै ! तहां तिन सांख्ययोंका यह अभिप्राय है । जैसे काम्यकर्म दोषवाले होवैं है तैसे अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, ज्योतिष्टोम इत्यादिक नित्यकर्मभी दोषवाले ही होवैं हैं । काहेतैं तिन नित्यकर्मोंविषेभी व्रीहिआदिकोंके कूटणेकरिकै तथा यज्ञशालाके मार्जनकरिकै तथा अग्निविषे होम करणेकरिकै जीवोंकी हिंसा होवैहै तथा पशुवोंकी हिंसा होवैहै यातैं वे नित्यकर्मभी हिंसारूप दोषवाले होणेतैं काम्यकर्मोंकी न्याईं दुष्ट ही हैं । और (न हिंस्यात्सर्वाभूतानि) इस श्रुतिनैं सर्वभूतोंकी हिंसाका निषेध कऱ्या है । यातैं यज्ञविषे जो पशुकी हिंसा है सा हिंसाभी निषिद्ध ही है और अंतःकरणकी शुद्धि तौ तिन हिंसाप्रधान नित्यकर्मोंतैं विना गायत्री आदिक मंत्रोंके जपकरिकै ही होइसकै है । यह वार्त्ता महाभारतविषेभी कथन करीहै । तहां श्लोक-(जपस्तु सर्वधर्मेभ्यः परमो धर्म उच्यते । अहिंसया हि भूतानां जपयज्ञः प्रवर्त्तते ।) अर्थ यह—गायत्रीमंत्रादिकोंका जो जप है सो जप तौ सर्वधर्मोंतैं परमधर्म कह्याजावै है । काहेतैं जपयज्ञतैं भिन्न जितनेक ज्योतिष्टोमादिक यज्ञ हैं ते सर्व यज्ञ भूतोंकी हिंसाकरिकै ही प्रवृत्त होवैं हैं । और यह जपयज्ञ तौ भूतोंकी अहिंसाकरिकै ही प्रवृत्त होवै है इस कारणतैं यह जपयज्ञ सर्वधर्मोंतै

परमधर्म कह्याजावैहै इति । यह वार्ता मनुनैभी कथन करी है । तहां श्लोक–(जाप्येनैव तु संसिद्ध्येद्ब्राह्मणो नात्र संशयः । कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥) अर्थ यह–गायत्रीमंत्रादिकोंके जपकरिकै ही ब्राह्मण अंतःकरणके शुद्धिकूं प्राप्त होवै है इसअर्थविषे किंचित्‌मात्रभी संशय नहीं है।तिस अंतःकरणकी शुद्धिवासतै यह अधिकारी पुरुष दूसरे किसी कर्मकूं करे अथवा नहीं करै । और अहिंसारूप मैत्रीवाला पुरुष ही ब्राह्मण कह्या जावै है इति । इत्यादिक शास्त्रके वचनोंनैं हिंसादोषवाले नित्यकर्मोंका निषेधकरिकै अंतःकरणकी शुद्धिवासतै गायत्रीमंत्रादिकोंके जपकाही विधान कऱ्या है । यातैं अंतःकरणकी शुद्धितै रहित कर्मके अधिकारी पुरुषोंनैंभी ते यज्ञादिक नित्यकर्म परित्यागही करणे इति । सो यह सांख्ययोंका कहणा अत्यंत विरुद्ध है । काहेतैं यज्ञविषे जो पशुआदिकोंकी हिंसा है सा हिंसा इस पुरुषके अनर्थका हेतु नहीं है किंतु यज्ञतैं विना जो पशुआदिकोंकी हिंसा है सा हिंसा ही इस पुरुषके अनर्थका हेतु होवै है । और (न हिंस्यात्सर्वाभूतानि) यह श्रुतिवचन जो भूतोंकी हिंसाका निषेध करैहै सोभी यज्ञ युद्धादिकोंतैं विना जीवोंके हिंसाका निषेध करैहै । जो कदाचित् (न हिंस्यात्सर्वाभूतानि) यह वचन सर्वहिंसामात्रका निषेध करता होवै तो (अग्नीषोमीयं पशुमालभेत) इत्यादिक वेदके वचन जे यज्ञविषे पशुहिंसाका विधान करैं हे ते सर्व वचन व्यर्थ होवैंगे सो वेदके वचनोंकूं व्यर्थ कहणा अत्यंत विरुद्ध है । यातैं तिन दोनोंप्रकारके वचनका परस्पर उत्सर्ग अपवादभाव मानिकै व्यवस्था करणी ही उचित है । (न हिंस्यात्सर्वाभूतानि) यह वचन तौ उत्सर्ग है । और (अग्नीषोमीयं पशुमालभेत) यह वचन ता उत्सर्गका अपवादहै ता अपवादस्थलकूं छोडिकै ही अन्यत्र ता उत्सर्ग वचनकी प्रवृत्ति होवैहै अर्थात् यज्ञयुद्धादिकोंतै विना इस पुरुषनैं किसी जीवकी हिंसा नहीं करणी इस प्रकारका तिस उत्सर्गवचनका अर्थ सिद्ध होवै है । यातै शास्त्र-

विहित यज्ञसंबंधी हिंसा दोषरूप नहीं है। और पूर्वउक्त महाभारतका वचन तथा मनुका वचन तौ केवल जपयज्ञकी स्तुतिपर है कोई सो वचन यज्ञ संबंधी हिंसाविषे अधर्मपणेकूं बोधन करता नहीं। काहेतैं यह यज्ञ-संबंधी हिंसा अधर्मरूप है इस अर्थविषे तिस वचनका तात्पर्य है नही किन्तु केवल जपकी स्तुतिविषे ही तिस वचनका तात्पर्य है। और जिस वचनका जिस अर्थविषे तात्पर्य होवै है तिस वचनका सोई ही अर्थ होवै है। यातैं सांख्ययोंकूं वेदविहित अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य इत्यादिक नित्य कर्मोंविषे जो निषिद्धपणेका ज्ञान है। तथा अनर्थके अहेतुरूप तिन कर्मोंविषे जो अनर्थक हेतुपणेका ज्ञान है। तथा धर्मरूप तिन कर्मोंविषे जो अधर्मपणेका ज्ञान है। तथा अनुष्ठानकरणे योग्य तिन कर्मोंविषे जो नहीं अनुष्ठान करणेका ज्ञान है सो यह सर्व-विपर्यासरूप ज्ञान मोहरूप ही है ऐसे मोहके वशतैं जो नित्यकर्मोंका परित्याग है सो परित्याग तामस त्याग कह्या जावै है। जिस कारणतैं मोह तमरूप ही है ॥ ७ ॥

इस प्रकार तामसत्यागके स्वरूपकूं कथन करिकै अब श्रीभगवान् राजसत्यागके स्वरूपकूं कथन करै हैं—

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ॥
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥ ८ ॥

(पदच्छेदः) दुःखम् । इति । एव । यत् । कर्म । कायक्लेशभयात् । त्यजेत् । सः । कृत्वा । राजसम् । त्यागम् । न । एव । त्यागफलम् । लभेत् ॥ ८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह कर्म दुःखरूप ही है इसप्रकारमानिकै शरीरके क्लेशके भयतैं नित्यकर्मकूं त्यागकरणा ऐसा जो त्याग सो त्याग राजस है ऐसे राजस त्यागकूं करिकै सो पुरुष त्यागके फलकूं कदाचित् भी नहीं प्राप्त होता ॥ ८ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! पूर्वउक्त मोहके अभाव हुएभी जिस पुरुषका अंतःकरण शुद्ध नहीं हुआ ऐसा जो कर्मोंका अधिकारी पुरुष है सो कर्मोंका अधिकारी पुरुष यह अग्निहोत्र संध्याउपासनादिक सर्व नित्यकर्म दुःखरूप ही है, या प्रकारतें तिन नित्यकर्मोंकूं दुःखरूप मानिकै तथा तिन नित्यकर्मोंके करणेकरिकै जो शरीरविषे क्लेश होवै है तिस क्लेशके भयतैं तिन नित्य कर्मोंका जो परित्याग करै है सो कर्मोंका त्याग राजसत्याग कह्या जावै है । जिस कारणतें सो दुःख रजोगुणरूपही होवै है । इस कारणतें पूर्वउक्त मोहतें रहित हुआभी सो राजस पुरुष तिस राजसत्यागकूं करिकै त्यागके फलकूं प्राप्त होता नहीं अर्थात् वक्ष्यमाण सात्त्विक त्यागका जो ज्ञाननिष्ठारूप फल है तिस फलकूं सो राजस त्यागवाला पुरुष प्राप्त होता नहीं ॥ ८ ॥

तहां पूर्व दो श्लोकोंकरिकै नित्य कर्मोंका तामसत्याग तथा राजसत्याग परित्याज्यतारूप करिकै दिखाया । यातैं तिस तामस राजस त्यागका परित्याग करिकै इस अधिकारी पुरुषनैं कौन कर्मोंका त्याग अंगीकार करणे योग्यहै ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाकेहुए इस अधिकारीपुरुषने सात्त्विकत्यागही ग्रहणकरणेयोग्यहै । इस अर्थकूं कथनकरतेहुए श्रीभगवान् ता सात्त्विकत्यागके स्वरूपकूं कथन करैहैं–

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ॥
संगं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागःसात्त्विको मतः॥९॥

(पदच्छेदः) कार्यम् । इति । एव । यत् । कर्म । नियतम् । क्रियते । अर्जुन । संगम् । त्यक्त्वा । फलम् । च । एव । सः । त्यागः सात्त्विकः । मतः ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह कर्मकरणेयोग्य ही है इसप्रकार मानिकै जो नित्य कर्म संगकूं तथा फलकूं त्यागकरिकै ही करीताहै सो "त्याग शिष्टपुरुषोंनैं सात्त्विक मान्या है ॥ ९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! अग्निहोत्र संध्या उपासना इत्यादिक नित्यकर्मोंका विधान करणेहारे जे (अग्निहोत्रं जुहोति अहरहः संध्यामुपासीत ।) इत्यादिक वचन हैं तिन वचनोंविषे यद्यपि तिन नित्यकर्मोंक फल कथन कऱ्या नहीं तथापि वेदविहित होणेतैं यह नित्यकर्म हमारेकूं अवश्य करिकै करणे योग्य है, इस प्रकारका निश्चय करिकै तिन नित्य कर्मोंके कर्तृत्वअभिनिवेशरूप संगकूं तथा स्वर्गादिक फलकूं परित्यागकरिकै इस अधिकारी पुरुषनैं आपणे अन्तःकरणकी शुद्धिपर्यंत जो अग्निहोत्र संध्यापासनादिक नित्यकर्म करीता है सो त्याग शिष्टपुरुषोंनैं सात्त्विक ही मान्या है अर्थात् फलकी इच्छाके त्यागपूर्वक तथा कर्तृत्वअभिमानके त्यागपूर्वक सो नित्यकर्मोंका अनुष्ठानरूप सात्त्विक त्याग शिष्टपुरुषोंकूं अन्तःकरणकी शुद्धिवास्तै ग्राह्यतारूपकरिकै अभिमत है । पूर्वउक्त राजस तामस त्यागकी न्याईं परित्याज्यतारूपकरिकै अभिमत नहीं है । शंका—(स्वर्गकामो यजेत । पुत्रकामो यजेत । पशुकामो यजेत ।) इत्यादिक वचनोंनैं जैसे स्वर्गपुत्रपशुआदिक फलोंका उद्देशकरिकै काम्यकर्मोंका विधान कऱ्या है तैसे नित्यकर्मोंके विधान करणेहारे वचनोंनैं स्वर्गादिक फलोंका उद्देशकरिकै तिन नित्यकर्मोंका विधान कऱ्या नहीं यातैं यह जान्या जावै है । तिन नित्यकर्मोंका कोई फलही है नहीं यातैं (फलं त्यक्त्वा) या प्रकारका वचन भगवान्नैं कैसे कह्या है । समाधान—यद्यपि नित्यकर्मोंके विधान करणेहारे वचनोंनैं स्वर्गादिक फलोंका उद्देशकरिकै तिन नित्यकर्मोंका विधान कऱ्या नहीं तथापि तिन नित्यकर्मोंका कोई फल अवश्य अंगीकार कऱ्या चाहिये । जो नित्यकर्मोंका फल नहीं अंगीकार करिये तौ (फलं त्यक्त्वा) यह भगवान्का वचन ही असंगत होवैगा । काहेतैं प्राप्तवस्तुकाही निषेध होवै है अप्राप्तवस्तुका निषेध होता नहीं । जो कदाचित् नित्यकर्मोंका कोई फल नहीं होता तौ (फलं त्यक्त्वा) इस वचनकरिकै श्रीभगवान् तिन नित्यकर्मोंके फलका निषेध नहीं करते यातैं तिन नित्यकर्मोंकाभी कोई फल

है यह अर्थ (फलं त्यक्त्वा) इस भगवान्‌के वचनतै ही जान्या जावै है । किंवा शास्त्रकारोंनैं या प्रकारका न्याय कथन कर्या है । (प्रयोजनमनुद्दिश्य न मंदोपि प्रवर्त्तते ।) अर्थ यह–फलरूप प्रयोजनका नहीं उद्देशकरिकै मूढपुरुषभी किसी कार्यविषे प्रवृत्त होता नहीं तौ बुद्धिमान् पुरुष तिस प्रयोजनके उद्देशतैं विना कार्यविषे कैसे प्रवृत्त होवैगा किन्तु नहीं प्रवृत्त होवैगा इति । यातैं तिन नित्यकर्मोंका जो कोईभी फल नहीं अंगीकार करियै तौ तिन निष्फल नित्यकर्मोंविषे कोईभी पुरुष प्रवृत्त होवैगा नहीं । या कारणतैंभी तिन नित्यकर्मोंका कोई फल अंगीकार कर्या चाहिये । किंवा आपस्तंब ऋषिनैंभी तिन नित्यकर्मोंका फल कथन कर्या है । तहां ऋषिवचन– (तद्यथाम्रे फलार्थे निर्मिते छायागंध इत्यनूत्पद्यते । एवं धर्मचर्यमाणमर्था अनूत्पद्यन्ते) अर्थ यह–जैसे जिस पुरुषनै आम्रफलोंकी प्राप्तिवास्तै आम्रका वृक्ष लगाया है तिस पुरुषकूं तिस आम्रवृक्षके छाया सुगंधरूप आनुषंगिक फल अवश्यकरिकै प्राप्त होवैं हैं । तैसे जिस पुरुषनै स्वधर्म जानिकै नित्यकर्मोंका अनुष्ठान कर्या है तिस पुरुषकूं तिन नित्यकर्मोंके स्वर्गादिरूप आनुषंगिक फल अवश्यकरिकै प्राप्त होवै है । तहां महान् फलकी प्राप्तितैं पूर्व इच्छातैं विना ही जो फल प्राप्त होवै है ताकूं आनुषंगिकफल कहैं है । तहां अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा आत्मज्ञानकी प्राप्ति करिकै जो मोक्षकी प्राप्ति है यह ही तिन नित्यकर्मोंका महान् फल है सो महान् फल जबपर्यंत इस पुरुषकूं नहीं प्राप्त होवै है तब पर्यंत इस पुरुषकूं तिन नित्यकर्मोंके वशतैं स्वर्गादिक आनुषंगिक फल अवश्यकरिकै प्राप्त होवैं हैं इति । इस आपस्तंबऋषिके वचनतैंभी तिन नित्यकर्मोंका फल सिद्ध होवै है । किंवा जिन अग्निहोत्र संध्याउपासनाआदिक नित्यकर्मोंके नहीं करणे करिकै जे प्रत्यवाय उत्पन्न होवैं हैं तिन नित्यकर्मोंके करणेकरिकै ते प्रत्यवाय उत्पन्न होवैं नहीं । यातै प्रत्यवायकी निवृत्तिभी तिन नित्यकर्मोंकाही फल है । तहां नित्यकर्मोंके नहीं करणेकरिकै इस अधिकारी पुरुषकूं प्रत्यवायकी प्राप्ति श्रुतिविषे तथा स्मृतिविषे कथन करी

है । तहां श्रुति– (अकृत्वा वैदिकं नित्यं प्रत्यवायी भवेन्नरः ।) अर्थ यह–वेद प्रतिपादित अग्निहोत्र संध्याउपासनादिक नित्यकर्मोंकूं न करिकै यह अधिकारी पुरुष पापरूप प्रत्यवायकूं प्राप्तहोवैहै इति । तहां स्मृतिवचन– (श्रौतं चापि तथा स्मार्तं कर्मालंब्य वसेद्द्विजः। तद्विहीनः पतत्येव ह्यालंब-रहितांधवत् ॥) अर्थ यह–श्रौतनित्यकर्मोंकूं तथा स्मार्त्तनित्यकर्मोंकूं आश्रयण करिकै ही यह द्विज स्थित होवै । तिन श्रौतस्मार्त्तकर्मोंतैं रहित हुआ यह द्विज अवश्यकरिकै अधःपतन होवै । जैसे यष्टिकादिक आलं-बनतैं रहित अंधपुरुष गर्तविषे पतन होवैहै इति । अन्य स्मृति–(एकाहं जपहीनस्तु संध्याहीनो दिनत्रयम् । द्वादशाहमनग्निश्च शूद्र एव न संशयः॥) अर्थ यह–जो अधिकारी ब्राह्मण एकदिनपर्यंत जपतैं रहित है तथा तीन दिनपर्यंत संध्यातैं रहित है तथा द्वादशदिनपर्यंत अग्निहोत्रतैं रहित है सो ब्राह्मण शूद्रही जानणा । इस अर्थविषे किंचित्मात्रभी संशय नहीं है इति । अन्य स्मृति–(त्र्यहं संध्याविरहितो द्वादशाहं निरग्निकः । चतुर्वे-दधरो विप्रः शूद्र एव न संशयः ॥) अर्थ यह–जो ब्राह्मण तीनदिनपर्यंत संध्योपासनतैं रहित है तथा द्वादशदिनपर्यंत अग्निहोत्रतैं रहित है सो ब्राह्मण च्यारिवेदोंका पाठक हुआभी शूद्रही जानणा । इस अर्थविषे किंचित्मात्रभी संशय नहीं है इति । अन्य स्मृति–(तस्मान्न लंघयेत्संध्यां सायंप्रातः समाहितः । उल्लंघयति यो मोहात्स याति नरकं ध्रुवम् ॥) अर्थ यह–जिसकारणतैं संध्याके उल्लंघन करणेतैं इस ब्राह्मणविषे शूद्रभावकी प्राप्ति होवै है, तिस कारणतैं यह अधिकारी ब्राह्मण तिस संध्याकूं कदा-चित्भी उल्लंघन नहीं करै किंतु सायंकालविषे तथा प्रातःकालविषे यह ब्राह्मण सावधान होइकै तिन संध्याकूं करै जो ब्राह्मण प्रमादके वशतैं तिस संध्याका परित्याग करै है सो ब्राह्मण निश्चयकरिकै नरककूं प्राप्त होवै है । इति । इत्यादिक श्रुतिस्मृतिवचनोंनैं अग्निहोत्र संध्योपासनादिक नित्यकर्मोंके नहीं करणेतैं इस अधिकारी पुरुषकूं प्रत्यवायकी प्राप्ति कथन करीहै। और (धर्मेण पापमपनुदति तस्माद्धर्मं परमं वदंति ।)

यह—यह अधिकारी पुरुष अग्निहोत्रादिक नित्यधर्मकरिकै प्रतिबंधकपापोंकूं निवृत्त करैहै, तिस कारणतैं वेदवेत्ता पुरुष इस नित्यधर्मकूं परमधर्म कहैं हैं इति । इत्यादिक श्रुतिवचनोंनैं ज्ञानके प्रतिबंधकपापोंकी निवृत्तिरूप तथा ज्ञानके उत्पत्तिकी योग्यतारूप पुण्यकी उत्पत्तिरूप आत्मसंस्कारही तिन नित्यकर्मोंका फल कथन कन्या है । और किसी शास्त्रविषे तौ संध्योपासनरूप नित्यकर्मका ब्रह्मलोककी प्राप्तिरूप फल कथन कन्या है । तहां श्लोक—(संध्यामुपासते ये तु सततं संशितव्रताः । विधूतपापास्ते यांति ब्रह्मलोकमनामयम् ।) अर्थ यह—जे अधिकारी पुरुष दृढव्रतवाले हुए संध्याकूं उपासना करैहैं ते पुरुष सर्वपापोंतैं रहित होइकै ब्रह्मलोककूं प्राप्त होवैहैं इति । इस प्रकारतैं श्रुतिस्मृति आदिक शास्त्रोंविषे तिन नित्यकर्मोंका भी फल कथन कन्याहै । तिस फलकी इच्छाका परित्याग करिकै ही इस अधिकारी पुरुषनैं वे नित्यकर्म करणे इसी अभिप्रायकरिकै श्रीभगवान्नैं इहां (फलं त्यक्त्वा) इस वचनकरिकै तिन नित्यकर्मोंके फलका परित्याग कथन कन्या है । यातैं श्रीभगवान्के वचनविषे किंचित्मात्रभी विरोधकी शंका संभवती नहीं इति । किंवा त्याग संन्यास यह दोनों शब्द घट पट इन दोनों शब्दोंकी न्याई भिन्न भिन्न जातिवाले अर्थके वाचक नहींहैं किन्तु फलकी इच्छापूर्वक जे कर्म हैं तिन कर्मोंका त्यागही तिन दोनों शब्दोंका अर्थ है । यह जो अर्थ पूर्व कथन कन्याथा तिस अर्थकाभी इहां विस्मरण करणा नहीं । तहां फलकी इच्छाके विद्यमान हुएभी पूर्वउक्त मोहके वशतैं अथवा शरीरके क्लेशके भयतैं जो नित्यकर्मोंका परित्याग है सो त्याग तौ कर्मरूप विशेष्यके अभावकृत विशिष्टभावरूप है सो विशेष्याभावप्रयुक्त विशिष्टाभावरूप त्याग तामसपणेकरिकै तथा राजसपणेकरिकै पूर्व निंदन कन्याथा और नित्यकर्मोंके विद्यमान हुएभी तिन कर्मोंके फलकी इच्छाका जो परित्याग है सो त्याग फलकी इच्छारूप विशेषणके अभावकृत विशिष्टाभावरूप है । सो विशेषणाभावप्रयुक्त विशिष्टाभावरूप

त्याग सात्त्विकपणेकरिकै स्तुति कऱ्या जावै है । इस प्रकार विशेष्यके अभावकृत विशिष्टाभावविषे तथा विशेषणके अभावकृत विशिष्टाभावविषे विशिष्टाभावपणा तुल्यही है यातैं श्रीभगवान्‌के पूर्व अपरवचनोंका विरोध होवै नहीं । और फलकी इच्छारूप विशेषणके तथा कर्मरूप विशेष्यके दोनोंके अभावकृत जो विशिष्टाभावरूप कर्मोंका त्याग है सो त्याग तौ सत्त्वादिक तीन गुणोंतैं रहित होणेतैं निर्गुणरूपही है । यातैं सो निर्गुण त्याग सात्त्विक, राजस, तामस इन तीनप्रकारके त्यागविषे गण्या जावै नहीं इति । इतने कहणेकरिकै इसप्रकारके दोषकीभी निवृत्ति करी। सो दोष यह है—तहां (त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः।) इस वचनकरिकै प्रथम तीन प्रकारके त्यागकी प्रतिज्ञा करिकै तिसतैं अनंतर दो प्रकारके कर्मत्यागकूं कथन करिकै पश्चात् तिस प्रतिज्ञाके प्रतिकूल कर्मके अनुष्ठानरूप तीसरे प्रकारकूं श्रीभगवान् कथन करताभया है । यातैं श्रीभगवान्‌कूं प्रगटही अकुशलतारूप दोष प्राप्त होवैहै । जैसे कोई पुरुष तीन ब्राह्मणोंको भोजन करावणा या प्रकारका वचन प्रथम कहै तिसतैं अनंतर यह वचन कहै दो तौ कठकौंडिन्यनामा ब्राह्मण तीसरा क्षत्रिय।इस प्रकारके वचन कहणेहारे पुरुषकूं प्रगटही अकुशलतादोषकी प्राप्ति होवै है । काहेतैं प्रथम तीन ब्राह्मणोंके भोजन करावणेकी प्रतिज्ञा करिकै पश्चात् दो तौ ब्राह्मण कहणे तीसरा क्षत्रिय कहणा । यह वार्त्ता पूर्वप्रतिज्ञाकी विस्मृतिरूप अकुशलतादोषतैं होवै है । तैसे प्रथम तीनप्रकारके त्यागकी प्रतिज्ञाकरिकै पश्चात् दोप्रकारका तौ कर्मोंका त्याग कहणा और तीसरा कर्मोंका अनुष्ठान कहणा यह वार्त्ता अकुशलतादोषतैं होवै है इति । सो यह दोष संभवता नहीं । काहेतैं तिन तीनों प्रकारोंविषे विशिष्टाभावरूप त्याग सामान्यपणेकरिकै एकजातीयपणा पूर्व विस्तारतैं प्रतिपादन करिआये हैं यातैं श्रीभगवान्‌विषे अकुशलताका कथन करणा यहही तिन पुरुषोंविषे महान् अकुशलता है ॥ ९ ॥

अब पूर्वउक्त सात्त्विकत्यागके ग्रहण करावणेवासतै श्रीभगवान् तिस सात्त्विकत्यागके अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा ज्ञाननिष्ठारूप फलकूं कथन करै हैं–

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ॥
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः॥१०॥

(पदच्छेदः) न । द्वेष्टि । अकुशलम् । कर्म । कुशले । न । अनुषज्जते । त्यागी । सत्त्वसमाविष्टः । मेधावी । छिन्नसंशयः ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो पूर्वउक्त सात्त्विकत्यागवाला पुरुष जबी सत्त्वकरिकै व्याप्तहोवै है तबी तत्त्वज्ञानवाला होवै है तथा सर्वसंशयोंतैं रहित होवै है तबी अशोभन कर्मकूं नहीं प्रतिकूलमानै है तथा शोभनकर्मविषे नहीं प्रीति करै है ॥ १० ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जो त्यागीपुरुष सात्त्विक त्यागकरिकै युक्त है अर्थात् पूर्वश्लोक उक्तप्रकारकरिकै कर्तृत्व अभिनिवेशकूं तथा स्वर्गादिक फलकी इच्छाकूं परित्यागकरिकै अंतःकरणकी शुद्धिवासतै वेदविहित नित्यकर्मोंका अनुष्ठान करै है सो त्यागी पुरुष तिस कालविषे सत्त्वकरिकै सम्यक् आविष्ट होवै है । तहां आत्मअनात्मविवेकज्ञानका हेतुभूत जो चित्तविषे स्थित सम्यक्ज्ञानका प्रतिबंधक रजतमरूप मलका राहित्यरूप अतिशयता है ताका नाम सत्त्व है । ता सत्त्वकरिकै सम्यक् व्याप्त होवै है । इहां उक्त सत्त्वकी व्याप्तिविषे जो नियमकरिकै आत्मज्ञानरूप फलका जनकपणा है यहही सम्यक्पणा है अर्थात् भगवदर्पित नित्यकर्मोंके अनुष्ठानतैं पापरूप मलका अपकर्षरूप संस्कारकरिकै तथा ज्ञानके उत्पत्तिकी योग्यतारूप पुण्यगुणका आधानरूप संस्कारकरिकै संस्कृत जबी अंतःकरण होवै है तबी सो त्यागी पुरुष मेधावी होवै है । तहां विवेक, वैराग्य, शमदमादि षट्संपत्, मुमुक्षुता तथा सर्वकर्मोंका विधिवत् परित्याग

तथा ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप गमन इत्यादिक साधनोंकरिकै तथा तिस ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखतैं वेदांतशास्त्रके श्रवण, मनन, निदिध्यासन इन तीन साधनोंकरिकै उत्पन्न हुआ तथा तत्त्वमसि आदिक वेदांतमहावाक्य है कारण जिसका तथा निवृत्त हुई है सर्व अप्रामाण्य शंका जिसतैं तथा अखंड अद्वितीय चैतन्यवस्तुकूं नहीं विषय करणेहारा ऐसा जो अहंब्रह्मास्मि या प्रकारका ब्रह्मात्म ऐक्यज्ञान है ताका नाम मेधा है । ऐसी मेधा-करिकै जो पुरुष नित्यही युक्त होवै ताका नाम मेधावी है । ऐसा मेधावी सो पुरुष होवै है अर्थात् स्थितप्रज्ञ होवै है। और तिस स्थित-प्रज्ञताकालविषे सो पुरुष छिन्नसंशय होवै है । तहां आत्मसाक्षात्कार-करिकै छिन्न हुए हैं क्या निवृत्त हुए हैं सर्व संशय जिसके ताका नाम छिन्नसंशय है । तात्पर्य यह—अहं ब्रह्मास्मि इस प्रकारकी ब्रह्मविद्यारूप मेधाकरिकै तिस पुरुषकी अविद्या निवृत्त होइजावै है और सा अविद्याही सर्व संशयोंकी उत्पत्तिविषे कारण है । यातैं ता कारणरूप अविद्याके निवृत्त हुएतैं अनंतर ता अविद्याके कार्यरूप सर्व संशयोंतैं तथा विपर्ययोंतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष रहित होवै है इति । तहां आत्मसाक्षात्कारकरिकै अविद्याकी निवृत्तिद्वारा जिन संशयोंकी निवृत्ति होवै है ते संशय यह हैं—संचित, आगामि, वर्तमान इन तीन प्रकारके कर्मोंकरिकै हमारेकूं कोई लेप है अथवा नहीं है । और कर्तृत्व भोक्तृत्व आदिक संसार आत्माकूं होवै है अथवा अंतःकरणादिक अनात्माकूं होवै है । और मोक्षका हेतु योग है अथवा उपासना है अथवा कर्म है अथवा आत्मसाक्षात्कार है । और सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य यहही मोक्ष है अथवा इसी जन्मविषे ब्रह्मात्मरूपकरिकै स्थिति मोक्ष है इति। इन सर्वसंशयोंविषे अंत्यकी कोटि सिद्धांतरूप जानणी । और आदिकी कोटि पूर्वपक्षरूप जानणी । इत्यादिक सर्वसंशयोंतैं तथा देहादिकोंविषे आत्मत्वबुद्धिरूप सर्व विपर्ययोंतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष रहित होवै है। तिसकालविषे सर्वकर्मोंतैं रहित होणेतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष अकुशलकर्मोंविषे द्वेष नहीं करै है अर्थात्

अज्ञानी पुरुषोंके बंधनका हेतु होणेतैं अशोभनरूप जे.काम्यकर्म हैं अथवा निषिद्ध कर्म हैं तिन काम्यकर्मोंकूं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष प्रतिकूलतारूपकरिकै मानता नहीं । और अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा आत्मज्ञानका हेतु होणेतैं शोभनरूप जे नित्यकर्म हैं तिन नित्यकर्मोंविषेभी सो तत्त्ववेत्ता पुरुष प्रीति करता नहीं । जिसकारणतैं कर्तृत्व भोक्तृत्व अभिमानतैं रहित होणेतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष कृत्यकृत्यही है । ऐसे कृत्यकृत्य तत्त्ववेत्तापुरुषका किसी कर्मविषे द्वेष तथा किसी कर्मविषे प्रीति संभवै नहीं । यह सर्व अर्थ श्रुतिविषेभी कथन कऱ्या है । तहां श्रुति—(भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः । क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।) अर्थ यह—मैं ब्रह्मरूप हूं इसप्रकारके ब्रह्मसाक्षात्कारके प्राप्त हुए इस तत्त्ववेत्ता पुरुषकी चिज्जडग्रंथि भेदन होवै है । तथा पूर्वउक्त सर्वसंशयभी छेदन होवैं हैं । तथा पुण्यपाप सर्व कर्मभी क्षय होवैं हैं इति । हे अर्जुन ! जिसकारणतैं तिस सात्त्विकत्यागका इस प्रकारका महान् फल है तिस कारणतैं इस अधिकारी पुरुषनैं महान् प्रयत्नकरिकैभी सो सात्त्विक त्यागही संपादन करणा ॥ १० ॥

—॰— तहां कर्मविषे प्रवृत्तिका हेतुभूत जे रागद्वेषादिक हैं ते रागद्वेषादिक ज्ञानवान् पुरुषविषे हैं नहीं । यातैं तिस ज्ञानवान् पुरुषविषे तौ सो सर्व कर्मोंका परित्याग संभव होइसकै है । यह अर्थ पूर्वश्लोकविषे कथन कऱ्या । अब ज्ञानीपुरुषविषे सो सर्व कर्मोंका परित्याग संभवता नहीं इस अर्थविषे श्रीभगवान् हेतु कहैंहैं—

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ॥
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते॥११॥

(पदच्छेदः) न । हि । देहभृता । शक्यम् । त्यक्तुम् । कर्माणि । अशेषतः । यः । तु । कर्मफलत्यागी । सः । त्यागी । इति । अभिधीयते ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिसकारणतैं देहाभिमानी पुरुषनैं निःशेषतैं कर्म त्यागणेकूं नहीं शक्यहै तिसकारणतैं जो अज्ञानीपुरुष कर्मोंके फलका त्यागीहै सो अज्ञानी पुरुषभी त्यागी इसनामकरिके कह्याजावै है ॥ ११ ॥

भा० टी०—मैं मनुष्य हूं मैं ब्राह्मण हूं मैं गृहस्थ हूं इसप्रकारके अबाधित अभिमानकरिके जो पुरुष देहकूं धारण करै है अथवा पोषण करै है ताका नाम देहभृत् है अर्थात् कर्मके अधिकारका हेतुभूत जे ब्राह्मणादिक वर्ण हैं तथा गृहस्थादिक आश्रम हैं तिन वर्णआश्रमोंका आश्रयरूप तथा कर्तृत्व भोक्तृत्व आदिकोंका आश्रयरूप ऐसा जो स्थूल सूक्ष्म शरीरइंद्रियादिकोंका संघातरूप देह है जो देह अनादिअविद्यावासनावोंके वशतैं व्यवहारके योग्यतारूपकरिके कल्पित होणेतैं असत्य है । ऐसे असत्यदेहकूं सत्यरूपकरिके देखताहुआ तथा आपणेतैं भिन्नभी तिस देहकूं आपणेतैं अभिन्नकरिके देखताहुआ जो पुरुष पूर्वउक्त अभिमानकरिकै तिस देहकूं धारण करै है अथवा पोषण करैहै ताका नाम देहभृत् है । तात्पर्य यह—नहीं निवृत्त हुआहै कर्मके अधिकारका हेतुभूत देहाभिमान जिसका ताका नाम देहभृत् है । कैसा है सो देहभृत् पुरुष—कर्मोंविषे प्रवृत्तिके हेतुभूत जे रागद्वेषादिक हैं तिन रागद्वेषादिकोंकी बाहुल्यताकरिकै निरंतर तिन कर्मोंविषे प्रवर्त्तमान है । ऐसे विवेकज्ञानतैं शून्य देहाभिमानी पुरुषनैं तत्त्ववेत्ता पुरुषकी न्याई ते कर्म निःशेषतैं परित्याग नहीं करिसकीते । काहेतैं जबपर्यंत कारणसामग्री विद्यमान होवैहै तबपर्यंत निःशेषतैं कार्यका परित्याग कऱ्या जाता नहीं । सो रागद्वेषादिरूप कारणसामग्री तिस अज्ञानी पुरुषविषे विद्यमान है यातैं जो अज्ञानी अधिकारी अंतःकरणकी शुद्धिवासतै तिन कर्मोंकूं करता हुआभी परमेश्वरकी कृपाके वशतैं तिन कर्मोंके फलका परित्याग करै है सो अधिकारी पुरुषभी त्यागी इस नामकरिकै कह्या जावैहै । अर्थात् सो कर्मकर्त्ता अज्ञानी पुरुष वास्तवतैं अत्यागी हुआभी स्तुतिके

वासतै त्यागशब्दकी गौणी वृत्तिकरिकै त्यागी इस नामकरिकै कह्या जावैहै। और सो निःशेषतै सर्वकर्मोंका परित्याग तौ देहाभिमानतैं रहित परमार्थदर्शी पुरुषनैही करिसकीता है। यातैं सो परमार्थदर्शी तत्त्ववेत्ता पुरुषही त्यागशब्दकी मुख्यवृत्तिकरिकै त्यागी इस नामकरिकै कह्या जावैहै। इहां (यस्तु) इस वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तुशब्द तिस कर्मफलत्यागी पुरुषके दुर्लभताके बोधन करणेवासतै है। अर्थात् फलकी इच्छाका परित्याग करिकै अंतःकरणकी शुद्धिवासतै तिन नित्यकर्मोंकूं करणेहारा पुरुषभी दुर्लभही है ॥ ११ ॥

हे भगवन् ! देहाभिमानवाला तथा परमात्मज्ञानतैं रहित ऐसा जो कर्मीपुरुष है सो कर्मीपुरुषभी फलकी इच्छाके परित्यागमात्रतैं गौणसंन्यासी कह्या जावैहै। और देहाभिमानतैं रहित तथा परमात्मज्ञानवाला ऐसा जो फलसहित सर्वकर्मोंके त्यागवाला तत्त्ववेत्ता पुरुष है सो तत्त्ववेत्ता पुरुष तौ मुख्यसंन्यासी कह्या जावैहै। यह अर्थ पूर्वश्लोकविषे आपनैं कथन कऱ्या। तहां गौणसंन्यासीके फलविषे तथा मुख्यसंन्यासीके फलविषे क्या विशेष है। जिसविशेषके अलाभकरिकै एक संन्यासीविषे तौ गौणपणा होवैहै और जिस विशेषके लाभकरिकै दूसरे संन्यासीविषे मुख्यपणा होवैहै। और कर्मके फलका त्यागीपणा तौ तिन दोनोंविषे तुल्यहीहै। यातैं ताकरिकै भी विशेषता संभवै नहीं किंतु इसतैं कोई अन्यही विशेष कह्या चाहिये। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं—

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ॥
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् १२

(पदच्छेदः) अनिष्टम्। इष्टम्। मिश्रम्। च। त्रिविधम्। कर्मणः। फलम्। भवति। अत्यागिनाम्। प्रेत्य। न। तु। संन्यासिनाम्। क्वचित् ॥ १२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिन गौणसंन्यासियोंकूं तौ मरणतैं अनंतर कर्मोंका अनिष्ट इष्ट तथा मिश्र यह तीनप्रकारका फल प्राप्तहोवैहै और मुख्यसंन्यासियोंकूं तौ कैवीभी सो त्रिविधफल नहीं प्राप्तहोवैहै ॥ १२ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! कर्मोंके स्वर्गादिक फलोंके त्यागवाले हुएंभी कर्मोंका अनुष्ठान करणेहारे, जे आत्मज्ञानकरणेहारे और जे आत्मज्ञानतैं रहित गौणसन्यासी हैं तिनोंका नाम अत्यागी है। जे अत्यागी पुरुष आत्मज्ञानकी इच्छारूप विविदिषाकी-उत्पत्तिपर्यंत अंतःकरणकी शुद्धिकूं नहीं संपादनकरिकै तिसतैं पूर्वही मरणकूं प्राप्त हुएहैं ऐसे अत्यागी पुरुषोंकूं मरणतैं अनंतर पूर्व करेहुए कर्मोंका शरीरका ग्रहणरूप फल अवश्यकरिकै प्राप्त होवैहै। इहां (कर्मणः) इस पदकरिकै यद्यपि एकही कर्म कथन कन्याहै तथापि एक कर्मविषे तीन प्रकारके फलकी जनकता संभवती नहीं। यातैं (कर्मणः) यह पद कर्मत्वजातिविशिष्ट पुण्य पाप मिश्रित इन तीनप्रकारकेही कर्मोंका वाचक है। सो शरीरका ग्रहणरूप कर्मका फल कारणरूप कर्मोंके त्रिविधपणेकरिकै अनिष्ट, इष्ट, मिश्र इन तीनप्रकारकाही होवैहै । इहां पापकर्मका तौ अनिष्टफल होवैहै और पुण्यकर्मका इष्टफल होवैहै और पुण्य पाप दोनों. कर्मोंका मिश्रफल होवैहै। तहां यह शरीर हमारेकूं मत प्राप्तहोवै याप्रकारके प्रतिकूलताज्ञानके विषय जे नारकीय तिर्यक् शरीर हैं तिन शरीरोंकी प्राप्ति अनिष्टफल कह्या जावैहै। और यह शरीर हमारेकूं प्राप्त होवै याप्रकारके अनुकूलताज्ञानके विषय जे देवादिक शरीर हैं तिन शरीरोंकी प्राप्ति इष्टफल कह्या जावैहै । और पापकर्मके फलयुक्त तथा पुण्यकर्मके फलयुक्त जे मनुष्यशरीरहैं तिन शरीरोंकी प्राप्ति मिश्रफल कह्याजावै है । यद्यपि (अनिष्टमिष्टं मिश्रं च) इस वचनकरिकैही तिस कर्मके फलविषे त्रिविधपणा सिद्ध होइसकैहै । यातैं पुनः (त्रिविधम्) यह वचन कहणा असंगत है । तथापि (त्रिविधम्) इस वचनकरिकै जो पुनः तिस फलके त्रिविधपणेका अनुवाद कन्याहै सो तिस त्रिविधफलके परित्याग

करावणेवासतै कऱ्या है अर्थात् मुमुक्षुजननैं इन तीनों प्रकारके फलका परित्याग करणा इति । इतने करिकै तिन गौण संन्यासियोंकूं मरणतैं अनंतर कर्मके वशतैं शरीरकी प्राप्ति अवश्यकरिकै होवैहै यह अर्थ कथन कऱ्या । अब तिन मुख्यसंन्यासियोंकूं तौ ब्रह्मसाक्षात्कारकरिकै कार्यसहित अविद्याके निवृत्तहुए विदेहकैवल्यरूप मोक्ष ही प्राप्त होवैहै । इस अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करहैं (न तु संन्यासिनां क्वचित् इति ।) हे अर्जुन ! विधिवत् सर्व कर्मोंका परित्याग कऱ्याहै जिनोंनैं तथा मैं ब्रह्मरूप हूं इसप्रकारके परमात्मसाक्षात्कार करिकै युक्त ऐसे जे परमहंस परिव्राजक मुख्यसंन्यासी हैं तिन मुख्यसंन्यासियोंकूं तौ मरणतैं अनंतर तिन कर्मोंका शरीरका ग्रहणरूप अनिष्टफल अथवा इष्टफल अथवा मिश्रफल किसीभी देशविषे तथा किसीभी कालविषे प्राप्त होतानहीं । काहेतैं तिन ब्रह्मवेत्ता मुख्यसंन्यासियोंका आत्मसाक्षात्कारकरिकै अज्ञान निवृत्त होइगयाहै । ता अज्ञानरूप कारणके निवृत्तहुए ता अज्ञानके कार्यरूप सर्वकर्मभी तिनोंके निवृत्त होइगये हैं । और जन्मकी प्राप्तिविषे अज्ञान तथा अज्ञानजन्यकर्महीं कारण हैं । तिनोंके निवृत्तहुए तिन तत्त्ववेत्ता मुख्यसंन्यासियोंकूं पुनः जन्मकी प्राप्ति होती नहीं । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करीहै । तहां श्रुति–(भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः । क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।) अर्थ यह–मैं ब्रह्मरूप हूं इसप्रकारतैं परमात्मादेवके साक्षात्कार हुए इस तत्त्ववेत्ता पुरुषकी चित् जड-ग्रंथि भेदन होवैहै । तथा सर्वसंशय छेदन होवैं हैं तथा सर्वकर्म क्षय होवैं है इति । यह वार्त्ता ब्रह्मसूत्रोंविषे श्रीव्यासभगवान्नैंभी कथन करीहै । तहां सूत्र–(तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात् ।) अर्थ यह–प्रत्यक् अभिन्नब्रह्मके साक्षात्कार हुए इस तत्त्ववेत्तापुरुषके पूर्वले संचितकर्म तौ विनाश होइजावैं है और तत्त्वसाक्षात्कारतैं उत्तर करेहुए कर्मोंका तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं स्पर्शही नहीं होवै है । इसप्रकारका अर्थ श्रुतिस्मृतिविषे कथन कऱ्या है इति ।

इत्यादिक श्रुति सूत्रवचन परमात्माके ज्ञानतैंही सर्वकर्मोंके नाशकूं कथन करैं हैं यातैं यह अर्थ सिद्ध भया-पूर्वउक्त गौणसंन्यासियोंकूं तौ पूर्वले पुण्यपापकर्मके वशतैं पुनः शरीरका ग्रहणरूप संसार अवश्यकरिकै प्राप्त होवै है। और तत्त्ववेत्ता मुख्यसंन्यासियोंकू तौ अविद्याकर्मादिकोंके अभावतैं पुनः सो संसार प्राप्त होवै नहीं किंतु मोक्षही प्राप्त होवै है। इस-प्रकारका तिन दोनोंके फलविषे विशेष है इति। इहां केईक वादी इस-प्रकार कहैं है-(अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः। स संन्यासी) इत्यादिक वचनोंविषे कर्मोंके फलका त्याग करिकै कर्मोंकू करणेहारे कर्मीपुरुषोंविषे भी संन्यासी इस शब्दका प्रयोग करचा है। यातैं (न तु संन्यासिनां क्वचित्।) इस वचनविषेभी संन्यासीशब्दकरिकै कर्मफलके त्याग करणेहारे कर्मीपुरुषही ग्रहण करणे। और (न तु संन्यासिनां क्वचित्।) इस वचनविषे जो पूर्वउक्त अनिष्ट, इष्ट, मिश्र इस तीनप्र-कारके फलका संन्यासियोंविषे निषेध कऱ्या है सो भी तिन सात्त्विक कर्मीपुरुषोंविषे संभव होइसकै है। काहेतैं जिन नित्यनैमित्तिक कर्मोंके नहीं करणेकरिकै तथा निषिद्धकर्मोंके करणेकरिकै इन पुरुषोंविषे जा पापकी उत्पत्ति होवै है सा पापकी उत्पत्ति तिन सात्त्विक कर्मीपुरुषोंविषे तिन नित्यनैमित्तिक कर्मोंके करणेकरिकै तथा निषिद्धकर्मोंके परित्याग करिकै होवै नहीं। यातै तिन कर्मीपुरुषोंकूं अनिष्टफलकी प्राप्ति होवै नहीं और ते कर्मीपुरुष काम्यकर्मोंकूं करते नहीं। तथा ईश्वरअर्पणबुद्धि-करिकै तिन कर्मीपुरुषोंनैं स्वर्गादिफलोंका परित्याग कऱ्या है। यातैं तिन कर्मीपुरुषोंकू इष्टफलकी प्राप्तिभी होवै नहीं। इसीकारणतैंही तिन कर्मीपुरुषोंकूं मिश्रफलकी प्राप्ति भी होवै नहीं। इसरीतिसैं तिन सात्त्विक कर्मीपुरुषोंविषे अनिष्ट, इष्ट, मिश्र यह तीनप्रकारकाही फल संभवता नहीं इसीकारणतैंही शास्त्रविषे यह वचन कह्या है। तहां श्लोक-(मोक्षार्थी न प्रवर्त्तेत तत्र काम्यनिषिद्धयोः। नित्यनैमित्तिके कुर्यात्प्रत्यवायजिहा-सया॥) अर्थ यह-मोक्षकी इच्छावान् अधिकारी पुरुष तिन काम्य-

कर्मोंविषे तथा निषिद्धकर्मोंविषे नहीं प्रवृत्त होवै किंतु जिन नित्य नैमित्तिक कर्मोंके नहीं करणेतैं जो प्रत्यवाय प्राप्त होवै है तिस प्रत्यवायके परित्यागकी इच्छा करिकै यह मोक्षार्थी पुरुष तिन नित्यनैमित्तिक कर्मोंकूही करै । इतनेमात्रकरिकैही इस अधिकारी पुरुषकूं संसारका अभाव होवै है इति । इसप्रकार एकभविकवादकी रीतिसैं भगवान्‌के वचनका व्याख्यान करणेहारे वादियोंके प्रति यह वचन कह्या चाहिये। शब्दकी मर्यादा तथा अर्थकी मर्यादा तुमोंनैं निर्णय करी नहीं । इसकारणतैंही श्रीभगवान्‌के वचनका तुम इस प्रकारका व्याख्यान करतेहो—तहां गौण अर्थ तथा मुख्य अर्थ इन दोनों अर्थोंके मध्यविषे किसी बाधकके अविद्यमान हुए मुख्य अर्थविषेही शब्दबोधकूं उत्पन्न करै है । यह तौ शब्दकी मर्यादा है । सो इहां प्रसंगविषे फलसहित सर्वकर्मोंका त्यागीपुरुष तौ ता संन्यासीशब्दका मुख्य अर्थ है । और जैसे मुख्यसंन्यासीविषे कर्मोंके फलका त्यागीपणा रहै है तैसे निष्कामकर्मीपुरुषविषेभी सो फलका त्यागीपणा रहै है । यातैं फलत्यागिस्वरूप समानगुणकूं लैके सो संन्यासीशब्द तिस कर्मी पुरुषविषेभी प्रवृत्त होवै है । यातैं सो कर्मीपुरुष तिस संन्यासीशब्दका गौण अर्थ है । और (न तु संन्यासिनां क्वचित्) इस वचनविषे स्थित संन्यासी इस शब्दके मुख्य अर्थके ग्रहण करणेविषे कोई बाधक है नहीं । यातैं तिस मुख्य अर्थकाही इहां संन्यासी इस शब्दकरिकै ग्रहण करणा उचित है । यह अर्थ शब्दकी मर्यादातैं सिद्ध होवै है इति । और कारणसामग्रीके विद्यमान हुए कार्यकी उत्पत्ति अवश्यकरिकै होवै है । यह अर्थमर्यादा कहीजावै है । तिस अर्थमर्यादाकरिकै भी सो पूर्वउक्त अर्थही सिद्ध होवै सो प्रकार दिखावैं हैं—जिस पुरुषनैं ईश्वरार्पणबुद्धिकरिकै कर्मोंके फलका परित्याग कऱ्या है तथा जो पुरुष अंतःकरणकी शुद्धिवासतै नित्यकर्मोंका अनुष्ठान करै है सो पुरुष अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा ज्ञाननिष्ठाकूं नहीं प्राप्त होइकै जबी मध्यविषेही मरणकूं प्राप्त होवै है तिस पुरुषकूं पूर्वले पुण्यपापकर्मोंके वशतैं तीनप्रकारके शरी-

रका ग्रहणरूप संसारकी प्राप्ति किस पुरुषनैं निवृत्त करिसकीती है किंतु कोईभी पुरुष तिसके निवृत्तकरणेविषे समर्थ नहीं है । तिस पुण्यपापरूप कारणके विद्यमान हुए शरीरका ग्रहणरूप कार्य अवश्यकरिकै उत्पन्न होवैगा। तहां आत्मज्ञानतैं रहित पुरुष पुण्यपापकर्मके वशतैं अवश्यकरिकै जन्मकूं प्राप्त होवैहै । यह वार्त्ता श्रुतिविषे कथन करी है । तहां श्रुति–(यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वास्माल्लोकात्प्रैति स कृपणः ।) अर्थ यह–हे गार्गि ! जो पुरुष इस अक्षरब्रह्मकूं न जानिकै इस मनुष्यलोकतैं गमन करै है सो पुरुष कृपणही जानणा इति । यातैं अंतःकरणकी शुद्धिका फलभूत जो आत्मज्ञान है ता ज्ञानकी उत्पत्तिवासतै तिस निष्काम कर्मीपुरुषकूं अधिकारी शरीरकी प्राप्ति अवश्यकरिकै अंगीकार करणी होवैगी इसी कारणतैंही पूर्व षष्ठअध्यायविषे (शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।) इत्यादिक वचनोंकरिकै यह अर्थ निर्णय कऱ्याथा । अंतःकरणकी शुद्धितैं अनंतर शास्त्रकी विधिपूर्वक फलसहित सर्वकर्मोंका परित्याग कऱ्या है जिसनैं तथा ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप जाइकै तिस ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखतैं वेदांतशास्त्रके श्रवणादिकोंकूं करताहुआ जो पुरुष आत्मज्ञानकूं न प्राप्त होइकै मध्यविषेही मरणकूं प्राप्त हुआ है ऐसा योगभ्रष्ट विविदिषासंन्यासी भोगइच्छाके विद्यमान हुए तिस मरणतै अनंतर पवित्र श्रीमान् पुरुषोंके गृहविषे जाइकै जन्मकूं प्राप्त होवैहै । और भोगइच्छाके अविद्यमान हुए सो योगभ्रष्ट पुरुष ब्रह्मवेत्ता योगी पुरुषोंके गृहविषे जाइकै जन्मकूं प्राप्त होवैहै इति। यह सर्व अर्थ पूर्व षष्ठअध्यायविषे कथन कऱ्याथा । इस कहणेकरिकै यह कैमुतिकन्याय सिद्ध होवै है । जबी आत्मज्ञानतैं रहित सर्वकर्मोंके त्यागी विविदिषासंन्यासीकूंभी शरीरका ग्रहण अवश्यकरिकै होवै है तबी आत्मज्ञानतैं रहित कर्मीपुरुषकूं सो शरीरका ग्रहण अवश्यकरिकै होवै है याके विषे क्या कहणा है इति । यातैं अज्ञानीपुरुषकूं पूर्वले कर्मके वशतैं शरीरका ग्रहण अवश्यकरिकै होवै है । यह अर्थ अर्थकी मर्यादाकरिकै

सिद्ध भया । यातैं (न तु संन्यासिनां कचित्) इस वचनविषे स्थित संन्यासीशब्दकरिकै निष्काम कर्मीपुरुषोंका ही ग्रहण करणा । यह एकभविकवादियोंका व्याख्यान अत्यंत असंगत है किंतु पूर्वउक्त भाष्यकारोंका व्याख्यानही समीचीन है इति । तहां इस श्लोकविषे श्रीभगवान्का यह अभिप्राय है । अकर्त्ता, अभोक्ता, परमानंद, अद्वितीय, सत्य, स्वप्रकाश ऐसा जो ब्रह्म है सो ब्रह्म मैं हूं, इसप्रकारका जो ब्रह्मात्मसाक्षात्कार है सो साक्षात्कार निर्विकल्प है । तथा वेदांतमहावाक्यकरिकै जन्य है । तथा विचारकरिकै निश्चित कन्या है प्रामाण्य जिसका तथा सर्वप्रकारतैं अप्रामाण्यशंकातैं रहित है ऐसे ब्रह्मात्मसाक्षात्कारकरिकै तिस ब्रह्मात्माके अज्ञानकी निवृत्ति हुएतैं अनंतर तिस अविद्याके कार्यरूप कर्तृत्वभोक्तृत्वादिक अभिमानतैं रहित ऐसा जो वास्तव मुख्य संन्यासी है सो संन्यासी तौ अविद्यासहित सर्वकर्मोंके नाशतैं केवल शुद्धस्वरूप हुआ अविद्याकर्मादिनिमित्तक पुनः शरीरके ग्रहणकूं कदाचित्भी अनुभव करता नहीं । जिसकारणतैं तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषके सर्वभ्रमोंका अविद्यारूप कारणके नाशकरिकै नाश होइगयाहै । और जो पुरुष अविद्यावाला है तथा कर्तृत्व भोक्तृत्व अभिमानवाला है तथा देहभृत् है सो अविद्यावान् देहभृत् पुरुष तौ तीनप्रकारका होवै है तहां रागद्वेषादिक दोषोंकी प्रबलतातैं आपणी इच्छामात्रतैं काम्यकर्मोंकूं तथा निषिद्धकर्मोंकूं करणेहारा ऐसा जो मोक्षशास्त्रका अनधिकारी पुरुष है सो तौ प्रथम है और पूर्व करेहुए पुण्यकर्मके वशतैं किंचित्मात्र

उत्पन्न हुई है आत्मज्ञानकी इच्छारूप विविदिषा जिसकूं तथा श्रवणादिक साधनोंकरिकै मोक्षके साधनरूप आत्मज्ञानके संपादन करणेकी इच्छावान् तथा शास्त्रकी विधिपूर्वक सर्वकर्मोंका परित्याग करिकै वेदांतशास्त्रके विचारवासतै श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठगुरुके शरणकूं प्राप्तहुआ ऐसा जो विविदिषासंन्यासी है सो विविदिषासंन्यासी तीसरा है। तहां प्रथमपुरुषकूं तौ सो शरीरका ग्रहणरूप संसारीपणा सर्वकूं प्रसिद्धही है। और दूसरे पुरुषकूं तौ सो संसारीपणा (अनिष्टमिष्टं मिश्रं च)इस वचनकरिकै कथन कऱ्याहै। और तीसरे पुरुषकूं तौ सो संसारीपणा षष्ठअध्यायविषे (अयतिः श्रद्धयोपेतः) इत्यादिक वचनोंनैं प्रश्नका उत्थापन करिकै निर्णय कऱ्या है। यातैं अविद्या कर्मादिक कारणसामग्रीके विद्यमान हुए अज्ञानी पुरुषकूं सो संसारीपणा अवश्यकरिकै प्राप्त होवै है। तहां किसी अज्ञानी पुरुषकूं तौ ज्ञानके प्रतिकूल शरीरकी प्राप्ति होवै है। और किसी अज्ञानी पुरुषकूं ज्ञानके अनुकूल शरीरकी प्राप्ति होवै है। इतनी तिनोंविषे विशेषता है। और तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं तौ अविद्याकर्मादिक संसारके कारणका अभाव होणेतैं स्वतःही कैवल्यमोक्षकी प्राप्ति होवै है। इसप्रकारतैं श्रीभगवान्नैं इस श्लोकविषे दो पदार्थ सूचन करेहैं॥ १२ ॥

तहां आत्मज्ञानतैं रहित अज्ञानी पुरुषके संसारीपणेविषे कर्मोंके परित्यागका असंभवरूप हेतु (न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।) इस वचनकरिकै पूर्व कथन कऱ्या । तहां तिस अज्ञानीपुरुषकूं कर्मोंके त्यागके असम्भवविषे कौन हेतु है अर्थात् किस हेतुतैं सो अज्ञानी पुरुष कर्मोंकूं नहीं त्यागसकै है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए कर्मके हेतुरूप जे अधिष्ठानादिक पंच हैं तिन पांचोंविषे जो अज्ञानी पुरुषोंका तादात्म्य अभिमान है सो तादात्म्य अभिमानही तिस कर्म त्यागके असंभवविषे हेतु है। इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् च्यारि श्लोकों करिकै वर्णन करैं हैं। तहां ते अधिष्ठानादिक पांचों वेदांतशास्त्ररूप प्रमाणमूलक हैं।

ऐसे अधिष्ठानादिक पांचों परित्याग करणेवासतैं, इस अधिकारी पुरुषनैं अवश्यकरिकै जानणे योग्य हैं । इस अर्थकूं श्रीभगवान् प्रथम श्लोक-करिकै कथन करै हैं—

पंचेमानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ॥
सांख्ये कृतांते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥१३॥

(पदच्छेदः) पंच । इमानि । महाबाहो । कारणानि । निबोध । मे । सांख्ये । कृतांते । प्रोक्तानि । सिद्धये । सर्वकर्मणाम् ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे महान्बाहुवाला अर्जुन ! सर्वकर्मोंकी सिद्धि-वासतै इन वक्ष्यमाण अधिष्ठानादिक पंचकारणोंकूं तूं हमारे वचनतैं निश्चयकर जे पंचकारण सर्व कर्मोंकी समाप्तिवाले वेदांतशास्त्रविषे कथन करे हैं ॥ १३ ॥

भा० टी०—हे महान्बाहुवाला अर्जुन ! लौकिक वैदिक जितनेक कर्म हैं तिन सर्व कर्मोंकी सिद्धिवासतै इन वक्ष्यमाण अधिष्ठानादिक पंचकारणोंकूं मैं सर्वज्ञ परमात्मा परमेश्वरके वचनतैं तूं निश्चय कर । अर्थात् तिन अधिष्ठानादिक पांचोंके स्वरूप जानणेवासतै तूं सावधान होउ । तहां यह अधिष्ठानादिक पंचकारण कोई अत्यंत दुर्विज्ञेय नहीं हैं किंतु सावधान चित्तवाले पुरुषनैं यह अधिष्ठानादिक पंचकारण जानि सकीते हैं । इस प्रकार तिन पांचों कारणोंके ज्ञानवासतै चित्तके समाधानके विधान करिकै श्रीभगवान् तिन अधिष्ठानादिक पंचकारणोंकी स्तुति करता भया है । और (हे महाबाहो) इस संबोधन करिकै श्रीभगवान्नें तिन पंचकारणोंकी स्तुतिवासतै यह अर्थ सूचन कऱ्या—इन अधिष्ठा-नादिक पंचकारणोंके जानणेविषे महान् पराक्रमवाले श्रेष्ठपुरुषही समर्थ होवैं हैं अश्रेष्ठ पुरुष समर्थ होवैं नहीं । ऐसा महान् पराक्रमवाला श्रेष्ठपुरुष तूं अर्जुनभी है सो तूं अर्जुनभी इन पांचोंकारणोंके जानणेविषे

समर्थ है इति । शंका—हे भगवन् ! जे अधिष्ठानादिक पंचकारण आपके वचनतैं जानणे योग्य हैं ते अधिष्ठानादिक पंचकारण किसी अन्यप्रमाणकरिकै भी सिद्ध हैं । अथवा केवल आपके वचनमात्रतैं ही सिद्ध हैं ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके प्राप्त हुए, श्रीभगवान् तिस आपणे वचनविषे अर्जुनके विश्वास करावणेवासतै तिन पंचकारणोंकी सिद्धिविषे वेदांतशास्त्ररूप प्रमाणकूं कथन करैं हैं—(सांख्ये कृतांते प्रोक्तानि इति ।) हे अर्जुन ते अधिष्ठानादिक पंचकारण कृतांतरूप सांख्यशास्त्रविषे कथन करे है तहां ब्रह्मानन्दरूप निरतिशय पुरुषार्थकी प्राप्तिवासतै तथा जन्ममरणादिक सर्व अनर्थोंकी निवृत्तिवासतै इस अधिकारी पुरुषनैं जानणे योग्य जे जीव ब्रह्म तिन दोनोंकी एकता है ता एकता बोधके उपयोगी श्रवणमननादिक साधन इत्यादिक पदार्थ हैं ते सर्व पदार्थ प्रतिपादन करे हैं जिस शास्त्रविषे ता शास्त्रका नाम सांख्य है । ऐसा सांख्य नामवाला उपनिषद्रूप वेदांशास्त्र है ऐसे सांख्यनामा वेदांतशास्त्रविषे ते अधिष्ठानादिक पंचकारण प्रतिपादन करे हैं । शंका—हे भगवन् ! केवल आत्मवस्तुमात्रका प्रतिपादक जो वेदांतशास्त्र है तिस वेदांतशास्त्रविषे यह लोकप्रसिद्ध अनात्मरूप तथा अवस्तुरूप पंचकर्मके कारण किसवासतै प्रतिपादन करे हैं ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए, श्रीभगवान् तिस वेदांतशास्त्रके विशेषणकूं कथन करैं हैं । (कृतांते इति) तहां (क्रियते इति कृतम् ।) अर्थ यह—इस पुरुषनैं प्रयत्नकरिकै जो करीता है ताका नाम कृत है । इस प्रकारकी व्युत्पत्तिकरिकै कृत यह शब्द सर्व कर्मोंका वाचक है । तिन सर्व कर्मोंका अन्त है क्या परिसमाप्ति है आत्मज्ञानकी उत्पत्तिकरिकै जिसविषे ता शास्त्रका नाम कृतांत है । अथवा (निष्कलं निष्क्रियं शांतम्) इत्यादिक वचनोंकरिकै कृत कहिये स्पष्ट कऱ्या है अन्त क्या आत्म अनात्म दोनोंका तत्त्वनिश्चय जिस शास्त्रविषे ता शास्त्रका नाम कृतांत है । अथवा वेदप्रतिपादित नित्यनैमित्तिक कर्मोंका नाम कृत है । तिन कर्मोंका अन्त है क्या परित्याग है जिस शास्त्रके

श्रवणवासतै वा शास्त्रका नाम कृतांत है। वहां (संन्यस्य श्रवणं कुर्यात्). इस श्रुतिनैं वेदांतशास्त्रके श्रवण करणेवासतै सर्व नित्यनैमित्तिक कर्मोंका संन्यास कथन कऱ्या है। ऐसे कृतांतरूप वेदांतशास्त्रविषे ते अधिष्ठानादिक पंचकारण कथन करे हैं अर्थात् लोकविषे प्रसिद्ध तथा अनात्मरूप ऐसे जे ते अधिष्ठानादिक पंचकारण है ते पांचोंही कारण मिथ्याज्ञानकृत अध्यारोपकरिकै लोकोंनैंआत्मारूपकरिकै ग्रहणकरे हैं ऐसे पंचकारणोंकूं आत्मतत्त्वज्ञानकरिकै बाध करणेवासतै परित्याज्यरूप करिकै वेदांतशास्त्रविषे कथन कऱ्या है। कोई तिन कारणोंके कथन करणेविषे तिस वेदांतशास्त्रका तात्पर्य है नहीं किंतु अद्वितीय आत्माके प्रतिपादनविषेही ता वेदांतशास्त्रका तात्पर्य है। इहां यह अभिप्राय है— देहादिक अनात्मपदार्थोंका धर्मरूप जो कर्म है सो कर्म ही असंग आत्माविषे अविद्याकरिकै अध्यारोपित हुआ है वास्तवतैं आत्माविषे सो कर्म है नहीं। इस प्रकारतैं जबी वेदांतशास्त्रनैं आत्माका वास्तवस्वरूप प्रतिपादन करीता है तबी शुद्धआत्माके ज्ञानकरिकै तिस अध्यारोपित कर्मका बाध होणेतैं तिन सर्व कर्मोंका अंत कऱ्या जावै है। तिस अधिष्ठान आत्माके ज्ञानतैं विना दूसरे किसीभी उपायकरिकै तिन कर्मोंका अंत कऱ्याजावा नहीं। इस कारणतै असंग आत्माविषे तिन कर्मोंके असंबंधके प्रतिपादन करणेवासतै ते मायाकल्पित अनात्मभूत पंचकर्मोंके कारण वेदांतशास्त्रविषे अनुवाद करे हैं। कोई तिन पंचकारणोंके प्रतिपादन करणेविषे वेदांतशास्त्रका तात्पर्य है नहीं। यातैं अद्वैत आत्ममात्रविषे जो वेदांतशास्त्रका तात्पर्य है तिस तात्पर्यकी इहां हानि होवै नहीं इति। यातैं (कृतांते) इस विशेषणकरिकै श्रीभगवान्नैं वेदांतशास्त्रविषे जो पूर्व कर्मोंका अंतपणा कथन कऱ्या है सो युक्त है। इसी अर्थकूं श्रीभगवान् (सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ।) इस वचनकरिकैभी कथन करता भया है इति। इहां कितनेक मूलपुस्तकोंविषे (पंचेमानि) इसप्रकारका पाठ है और कितनेक मूलपुस्तकों-

विषे (पंचैतानि) इसप्रकारका पाठ है। परंतु श्रीभाष्यकारोंनैं तथा श्रीमधुसूदननैं तथा नीलकंठ पंडितनैं (पंचेमानि) इसप्रकारका पाठ अंगीकार करिकै व्याख्यान कऱ्या है। यातें इस पुस्तकविषेभी (पंचेमानि) इस प्रकारका ही पाठ राख्या है ॥ १३ ॥

तहां वेदांतशास्त्र है प्रमाण जिनोंविषे ऐसे जे कर्मके पंचकारण हैं ते पंचकारण आत्माके अकर्त्तापणेकी सिद्धिवासतै परित्याज्यरूप करिकै जानणे योग्य हैं यह अर्थ पूर्व कथन कऱ्या। तहां ते पंचकारण कौन हैं? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् द्वितीय श्लोककरिकै तिन पांचोंके स्वरूपकूं कथन करैं हैं-

अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणं च पृथग्विधम् ॥
विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम् ॥१४॥

(पदच्छेदः) अधिष्ठानम् । तथा । कर्त्ता । करणम् । च । पृथग्विधम् । विविधाः । च । पृथक् । चेष्टाः । दैवम् । च । एव । अत्र । पंचमम् ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अधिष्ठान तथा कर्त्ता तथा नानाप्रकारका करण तथा नानाप्रकारकी भिन्नभिन्न चेष्टा तथा इन कारणोंविषे पांचवां दैव यह पांचों कर्मके कारण हैं ॥ १४ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, चेतना इत्यादिक धर्मोंके अभिव्यक्तिका आश्रयरूप जो यह पंचीकृत पंचभूतोंका कार्यरूप स्थूल शरीर है ता शरीरका नाम अधिष्ठान है। और मैं कर्त्ता हूं इसप्रकारके अभिमानवाला तथा ज्ञानशक्तिप्रधान अपंचीकृत पंचमहाभूतोंका कार्यरूप ऐसा जो अहंकार है जो अहंकार अंतःकरण, बुद्धि, विज्ञान इत्यादिक नामोंकरिकै कथन कऱ्या जावै है तथा जो अहंकार आत्माके साथि तादात्म्य अध्यासकरिकै स्वनिष्ठ कर्तृत्वादिक धर्मोंकूं आत्माविषे आरोपण करणेहारा है ता अहंकारका नाम कर्त्ता है। इहां (तथा कर्त्ता

इस वचनविषे स्थित जो तथा यह शब्द है तिस तथा शब्दकरिकै श्रीभगवान्नै तिस अहंकाररूप कर्त्ताविषे पूर्वउक्त शरीररूप अधिष्ठानकी सदृशता कथन करी है अर्थात् जैसे सो शरीररूप अधिष्ठान अनात्मारूप है तथा आकाशादिक पंचमहाभूतोंका कार्यरूप है। तथा स्वप्नके पदार्थोंकी न्यांई मायाकरिकै कल्पित है तैसे यह अहंकाररूप कर्त्ताभी. अनात्मारूप है। तथा भूतोंका कार्यरूप है। तथा स्वप्नपदार्थोंकी न्यांई कल्पित है। इहां यह तात्पर्य है—इस स्थूलशरीरकूं यद्यपि लोकायतिक पुरुषोंनैं आत्मारूप करिकै ग्रहण कऱ्या है तथापि अन्यशास्त्रवेत्ता पुरुषोंनैं तिस स्थूल शरीरकूं अनात्मारूप करिकै ही निश्चय कऱ्या है ऐसे स्थूलशरीरकूं जबी कर्त्ताविषे दृष्टांतरूप करिकै कथन कऱ्या तबी तार्किक पुरुषोंनैं आत्मारूपकरिकै ग्रहण कऱ्या जो कर्त्ता है तिस कर्त्ताविषे अनात्मरूपताका निश्चय अत्यंत सुगम होवै है इति। और अपंचीकृत पंचमहाभूतोंतैं उत्पन्न हुए तथा शब्दादिक विषयोंके उपलब्धिका साधनरूप ऐसे जे श्रोत्रादिक इंद्रिय हैं तिन इंद्रियोंका नाम करण है। कैसा है सो करण—पृथग्विध है अर्थात् श्रोत्रादिक पंच ज्ञानइंद्रिय तथा वागादिक पंच कर्मइंद्रिय तथा मन बुद्धि इस द्वादश भेदकरिकै नानाप्रकारका है। यद्यपि शास्त्रविषे मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार यह च्यारोंही अंतःकरणके भेद कथन करेहैं तथापि इहां करणवर्गविषे स्थित मन बुद्धि यह दोनों तिस अंतःकरणरूप अहंकारके वृत्तिविशेष लेणे। और तिन वृत्तियोंवाला जो अहंकार है सो अहंकार तौ केवल कर्त्तारूपही है करणरूप है नहीं। और चेतनका आभास तौ सर्वत्र तुल्यही है। तहां अंतःकरणरूप अहंकारविषे कर्त्तापणा (विज्ञानं यज्ञं तनुते।) इत्यादिक श्रुतियोंविषे प्रसिद्धही है। इहां (करणं च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार पूर्ववचनविषे स्थित तथा इस शब्दकी अनुवृत्ति करणेवासतै है अर्थात् जैसे पूर्वउक्त शरीररूप अधिष्ठान तथा अहंकाररूप अधिष्ठान तथा अहंकाररूप कर्त्ता अनात्मारूप है तथा भौतिक है तथा कल्पित है तैसे यह द्वादश प्रकारक

करणभी अनात्मारूप है तथा भौतिकरूप है तथा कल्पित है इति । और क्रियाशक्ति है प्रधान जिनोंविषे ऐसे जे अपंचीकृत पंचमहाभूत हैं तिन पंचमहाभूतोंका कार्यरूप तथा क्रियाप्रधानत्वरूप करिकै तथा वायवीयत्वरूप करिकै कथन करे हुए ऐसे जे क्रियारूप प्राणादिक हैं तिन क्रियारूप प्राणादिकोंका नाम चेष्टा है । कैसी है सा चेष्टा—विविधा है अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान इस भेदकरिकै तौ पंचप्रकारकी है । अथवा नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय इन पांचोंकू मिलाइकै दशप्रकारकी है । तहां यह नागादिक पंचप्राणादिक पांचोंके अंतर्भूत ही हैं । यातैं बहुत स्थलोंविषे पंचही प्राण कथन करे हैं । पुनः कैसी है ते प्राणरूपचेष्टा—पृथक् है अर्थात् स्थानके भेदतैं तथा कार्यके भेदतैं भिन्न भिन्न है । इहां (विविधाश्च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार पूर्ववचनविषे स्थित तथा इस शब्दकी अनुवृत्तिकरणेवासतैहै अर्थात् जैसे पूर्वउक्त अधिष्ठान, कर्ता, करण यह तीनों अनात्मारूप हैं तथा भौतिकरूप हैं तथा मायाकरिकै कल्पित हैं तैसे यह प्राणरूप चेष्टाभी अनात्मारूप है तथा भौतिकरूप है तथा मायाकरिकै कल्पित है इति । इहां केईक विद्वान् पुरुष तौ यह कहैं हैं—सुषुप्तिअवस्थाविषे कर्त्तारूप अंतःकरणके लय हुएभी प्राणका व्यापार देखणेविषे आवैहै । और जहांतहां प्राणकूं अंतःकरणतैं भिन्नकरिकै कथन कऱ्याहै । यातैं सो प्राण अंतःकरणतैं अत्यंतभिन्नकी न्याईं है इति । और केईक सूक्ष्मदर्शी विद्वान् पुरुष तौ यह कहैं हैं—क्रियाशक्तिवाला तथा ज्ञानशक्तिवाला एकही अपंचीकृत पंचमहाभूतोंका कार्य चेतनकेजीवपणेका उपाधि है । सो जीवपणेका उपाधिरूप एकही कार्य क्रियाशक्तिकी प्रधानताकरिकै तौ प्राण इस नामकरिकै कह्याजावैहै । और ज्ञान शक्तिकी प्रधानताकरिकै अंतःकरण इस नामकरिकै कह्या जावैहै । काहेतैं (स ईक्षांचक्रे कस्मिन्वाहमुत्क्रांते उत्क्रांतो भविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठां यास्यामीति स प्राणमसृजत ।) इस श्रुति-

विषे उत्क्रांति स्थिति आदिकोंका उपाधिपणा प्राणविषे कथन कऱ्याहै। और (सुधीः स्वप्नो भूत्वेमं लोकमतिक्रामति मृत्यो रूपाणि ध्यायतीव लेलायतीव ।) इत्यादिक श्रुतियोंविषे तिन उत्क्रांति आदिकोंका उपाधिपणा अंतःकरणरूप बुद्धिविषे कथन कऱ्या है । इहां जो कदाचित् प्राण अंतःकरण इन दोनों उपाधियोंका स्वतंत्रही भेद अंगीकार करिये तौ जीवात्माकेभी भेदकी प्राप्ति होवैगी । सो जीवका भेद सिद्धांतविषे अंगीकृत नहीं है । यातैं अंतःकरण प्राण इन दोनोंकूं एकरूपकरिकै ही उत्क्रांति आदिकोंका उपाधिपणा युक्त है । और प्राण, अंतःकरण इन दोनोंका जो भेद कथन कऱ्याहै सो भेद तौ तिनोंके एकभावविषेभी क्रियाशक्ति ज्ञानशक्तियोंके भेदकरिकै संभव होइसकैहै । और सुषुप्तिअवस्थाविषे ज्ञानशक्तिभागके लय हुएभी क्रियाशक्तिभागका जो दर्शन है सो दर्शन तौ प्राण अंतःकरणके एकभावविषे भी विरुद्ध नहीं है । और दृष्टि सृष्टि लयविषे सर्वके लयहुएभी सो प्राणव्यापारवाला सुप्तपुरुषका शरीर अन्यपुरुषोंनैं यह सोयाहुआ है इसप्रकारतैं कल्पना करीता है । यातैं दोनों प्रकारतैंभी प्राण अंतःकरण इन दोनोंके भेदका कथन संभव होइसकै है इति । और पूर्व उक्त शरीररूप अधिष्ठान तथा अहंकाररूप कर्त्ता तथा द्वादश प्रकारका करण तथा प्राणादिरूप चेष्टा इन सर्वोके ऊपरि यथाक्रमतैं अनुग्रह करणेहारे जे देवता हैं तिन देवतावोंका नाम दैव है सो दैव इहां कारणवर्गविषे पंचम है अर्थात् पंचत्वसंख्याके पूर्णकरणेहारा है । इहां (दैवं च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार पूर्व वचनविषे स्थित तथा इसशब्दकी अनुवृत्ति करावणेवासतै है अर्थात् पूर्वउक्त अधिष्ठानादिकोंकी न्याईं यह दैवभी अनात्मारूप है तथा भौतिक है तथा मायाकरिकै कल्पित है इति । तहां कर्त्ता, करण, चेष्टा इन तीनोंका अधिष्ठान जो शरीर है तिस शरीररूप अधिष्ठानका तौ पृथिवी देवता है काहेतें (यत्रास्य पुरुषस्य मृतस्याग्निं वागप्येति वातं प्राण-

श्चक्षुरादित्यं मनश्चंद्रं दिशः श्रोत्रं पृथिवी शरीरम् ।) इस श्रुतिविषे वाक्आदिकोंके अधिष्ठाता अग्निआदिकोंके साथि शरीरका अधिष्ठातारूपकरिकै पृथिवीका पठन कऱ्याहै । यातै इस श्रुतिप्रमाणतैं शरीररूप अधिष्ठानका पृथिवीही देवता सिद्ध होवैहै । और कर्तारूप अहंकारका रुद्रदेवता है सो पुराणादिकोंविषे प्रसिद्ध है इसप्रकार श्रोत्रादिक करणोंके अधिष्ठाता देवताभी प्रसिद्धही है । तहां श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसन, घ्राण इन पंच ज्ञानइंद्रियोंके यथाक्रमतैं दिक्, वात, अर्क, प्रचेता, अश्विनी यह पंच देवता हैं । और वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ इन पंच कर्मइंद्रियोंके यथाक्रमतैं वह्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, मित्र, प्रजापति यह पंच देवता हैं । और मन, बुद्धि इन दोनोंके यथाक्रमतैं चंद्र बृहस्पति यह दोनों देवता हैं । और प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान इन चेष्टारूप पंचप्राणोंके तौ यथाक्रमतैं सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष, ईशान यह पंच देवता हैं ते पुराणादिकोंविषे प्रसिद्धही हैं । और किसी टीकाविषे तौ दैवशब्दकरिकै धर्म अधर्मका ग्रहण कऱ्याहै ॥ १४ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे तिन अधिष्ठानादिक पंचकारणोंका स्वरूप कथन कऱ्या । अब इस तृतीय श्लोककरिकै श्रीभगवान् तिन पांचोंविषे सर्वकर्मोके कारणपणेकूं कथन करैं है-

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ॥
न्याय्यं वा विपरीतं वा पंचैते तस्य हेतवः १५॥

(पदच्छेदः) शरीरवाङ्मनोभिः । यत् । कर्म । प्रारभते । नरः । न्याय्यम् । वा । विपरीतम् । वा । पंच । एते । तस्य । हेतवः ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह पुरुष शरीरवाङ्मन इन तीनोंकरिकै जिस धर्मरूप अथवा अधर्मरूप कर्मकूं प्रारंभ करैहै तिन सर्वकर्मोके यह अधिष्ठानादिकपंचही कारणरूप हैं ॥ १५ ॥

भा०टी०—तहां शारीर, वाचिक, मानसिक यह विधिनिषेधरूप तीनप्रकारकाही कर्म धर्मशास्त्रविषे प्रसिद्ध है। तथा (प्रवृत्तिर्वाग्बुद्धिशरीरारंभः) इस वचनकरिकै अक्षपादनैंभी सो तीनप्रकारकाही कर्म कथन कर्‍याहै । यातैं प्रधानताके अभिप्रायकरिकै श्रीभगवान् कहैं हैं। हे अर्जुन ! यह अधिकारी पुरुष शरीरकरिकै अथवा वाक्करिकै अथवा मनकरिकै जिस न्यायरूप कर्मकूं अथवा विपरीतरूप कर्मकूं प्रारंभ करै है तिस सर्वही कर्मके यह पूर्वउक्त अधिष्ठानादिक पंचही कारणरूप हैं ॥ तहां श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रकरिकै विहित जे अग्निहोत्रादिक धर्म है ताकूं न्याय्य कहै है । और तिस श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रकरिकै निषिद्ध जे हिंसादिक अधर्महैं ताकूं विपरीत कहैं हैं। तहां जीवनके हेतुभूत जे उच्छ्वास, निःश्वास, निमेष, उन्मेष, क्षुत, जृंभण इत्यादिक स्वाभाविक कर्म हैं तथा अन्यभी जे केई विहित प्रतिषिद्धके समान कर्म हैं ते सर्व कर्म पूर्व करेहुए धर्मअधर्म दोनोंके ही कार्यरूप हैं । यातैं ते सर्व कर्म न्याय्य विपरीत इन दोनों कर्मोंविषे ही अंतर्भूत हैं यातैं श्रीभगवान्के वचनविषे न्यूनतादोषकी प्राप्ति संभवै नहीं। और शास्त्रका तथा शास्त्रउक्त कर्मका मनुष्य ही अधिकारी होवै है, इस अर्थके बोधन करणेवास्तै श्रीभगवान्नैं मनुष्यका वाचक (नरः) यह शब्द कथन कर्‍या है इति। और किसी टीकाविषे तौ इस श्लोकका यह अर्थ कर्‍या है। शंका—शरीर, वाक्, मन इनोंकरिकै जो कर्म प्रारंभ कर्‍या जावै है इस प्रकारका वचनकरिकै पश्चात् तिस सर्वकर्मके अधिष्ठानादिक पंच कारण हैं यह वचन कहणा अत्यंत विरुद्ध है। समाधान—इहां (शरीर) इस पदकरिकै अधिष्ठानका ग्रहण करणा। और (नरः) इस पदकरिकै कर्त्ताका ग्रहण करणा । और (वाङ्मनः) इस पदकरिकै करणका ग्रहण करणा। और (प्रारभते) इस पदकरिकै चेष्टाका ग्रहण करणा। और (न्याय्यं वा विपरीतं वा) इस वचनकरिकै धर्मअधर्मरूप दैवका ग्रहण करणा। यद्यपि सर्व कर्मोंविषे अधिष्ठानादिक पांचों कारणोंका उपयोग

समान है तिन पांचोंतैं विना कोईभी कर्म सिद्ध होवा नहीं तथापि श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रविषे विधि प्रतिषेधरूप शारीर, वाचिक, मानसिक यह तीनप्रकारकाही कर्म प्रसिद्ध है । यातैं यह कर्म शारीर है, यह कर्म वाचिक है,यह कर्म मानस है इस प्रकारका जो कथन है सो कथन तिसतिस कर्मविषे तिसतिस शरीरादिकोंकी प्रधानताकी अपेक्षाकरिकै है । कोई सो कथन तिन शरीरादिक कर्मोंविषे अधिष्ठानादिक पांचोंकी हेतुताकूं निवृत्त करता नहीं । यातैं किंचित्मात्र भी इहां विरोध होवै नहीं ॥ १५ ॥

तहां इन पूर्वउक्त अधिष्ठानादिक पांचोंकूंही सर्वकर्मोंका कर्त्तापणा होणेतैं असंग आत्माकूं तिन कर्मोंका कर्त्तापणा है नहीं । इसप्रकारका जो आत्माविषे अकर्त्तापणेका ज्ञान है तथा तिन अधिष्ठानादिक पांचोंविषे कर्त्तापणेका ज्ञानहै सो ज्ञान ही तिन अधिष्ठानादिक पांचोंके निरूपणका फल है । ऐसे फलकूं अब श्रीभगवान् आत्माकूं कर्त्ता मानणेहारे मूढपुरुषोंकी निंदापूर्वक इस चतुर्थ श्लोककरिकैकथन करैं हैं–

तत्रैवंसति कर्त्तारमात्मानं केवलं तु यः ॥
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) तत्र । एवंसति । कर्त्तारम् । आत्मानम् । केवलम् । तु । यः । पश्यति । अकृतबुद्धित्वात् । न । सः । पश्यति । दुर्मतिः ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिन सर्वकर्मोंविषे अधिष्ठानादिक पांचोंकरिकै जन्यताके हुएभी जो मूढपुरुष असंग उदासीनरूपही आत्माकूं कर्त्तारूप देखताहै सो दुर्मति पुरुष शास्त्रजन्य विवेक बुद्धितैं रहित होणेतैं नहीं देखता है ॥ १६ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! पूर्व कथन करे जे धर्म अधर्मरूप सर्व कर्म है तिन सर्वकर्मोंविषे पूर्वउक्त अधिष्ठानादिक पंचकारणोंकरिकै जन्यताके सिद्ध हुएभी वास्तवतैं असंग उदासीनरूपही आत्माकूं जो मूढपुरुष कर्त्ता-

रूप देखता है अर्थात् जो आत्मादेव सर्व जडप्रपंचका प्रकाशक है तथा सत्तास्फूर्त्तिरूप है तथा स्वप्रकाश परमानंदघन है तथा बाधतें रहित है तथा असंग उदासीन है तथा अकर्त्ता है तथा अविक्रिय है तथा अद्वितीय है वास्तवतें इस प्रकारका असंग उदासीन अकर्त्तारूप हुआभी जो आत्मादेव अविद्याकरिकै पूर्वउक्त अधिष्ठानादिक पांचोंकारणोंविषे प्रतिबिंबित होवै है । जैसे सूर्य जलविषे प्रतिबिंबित होवै है तहां जलादिकोंकूं प्रकाश करणेहारा सो सूर्य यद्यपि तिन जलादिकोंतें भिन्न है तथापि तिस जलके साथि तिस सूर्यका तादात्म्यभाव कल्पनाकरिकै मूढपुरुष जैसे तिस जलके चलन करिकै तिस सूर्यकूं चलायमान हुआ मानता है तैसे तिन अधिष्ठानादिकोंकूं प्रकाशकरणेहारे असंग अद्वितीय आत्माका तिन अधिष्ठानादिकोंके साथि तादात्म्यभावकूं कल्पनाकरिकै तिन अधिष्ठानादिकोंके कर्मोका असंग आत्माविषे आरोपणकरिकै जो पुरुष मैंही कर्मोका कर्त्ता हूं इस प्रकारतें सर्वके साक्षीरूपभी आत्माकूं क्रियाका आश्रयरूप देखता है । तात्पर्य यह—जैसे रज्जुके वास्तव स्वरूपकूं नहीं जानणेहारा पुरुष तिस रज्जुकूं भुजंगरूपकरिकै कल्पना करै है तैसे आत्माके असंग अकर्त्तारूप वास्तवस्वरूपकूं नहीं जानता हुआ जो पुरुष अविद्याकरिकै तिस असंग आत्माकूं तिन देहादिकोंके कर्मका आश्रयरूपकरिकै मानै है सो भ्रांतपुरुष इस प्रकारतें आत्माकूं देखता हुआ भी नहीं देखता है । जैसे रज्जुकूं सर्परूप करिकै देखता हुआ भी भ्रांतपुरुष तिस रज्जुकूं नहीं देखे है तैसे वास्तवतें असंग उदासीन अकर्त्ता आत्माकूं कर्त्तारूप करिकै देखता हुआ भी सो भ्रांतपुरुष तिस आत्माकूं नहीं देखै है । शंका—हे भगवन् ! सो मूढपुरुष भ्रांतिकरिकै आत्माकूं विपरीतही देखै है । आत्माके वास्तव स्वरूपकूं देखता नहीं इसविषे कौन हेतु है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिस विपरीत दर्शनविषे हेतु कहै है (अकृतबुद्धित्वात् इति) तहां गुरुशास्त्रके उपदेशकरिकै नहीं उत्पन्न करी है विवेकबुद्धि जिसनें ताका नाम अकृतबुद्धि है । ऐसा अकृतबुद्धि होणेतें सो

पुरुष आत्माकूं विपरीत ही देखै है अर्थात् वास्तवतैं असंग उदासीन अकर्त्तारूपभी आत्माकूं सो भ्रांतपुरुष कर्त्तारूप ही देखै है । तात्पर्य यह—जैसे इस पुरुषकूं जब पर्यंत रज्जुके वास्तवस्वरूपका साक्षात्कार नहीं हुआ तबपर्यंत यह पुरुष सर्प भ्रमकूं किसीभी उपायकरिकै निवृत्त करिं- सकता नहीं तैसे इस पुरुषकूं जबपर्यंत सत्य, ज्ञान, अनंत, अकर्त्ता, अभोक्ता, परमानंद, तीन अवस्थावोंतैं रहित, असंग, उदासीन ऐसा ब्रह्म मैं हूं इसप्रकारका ब्रह्मात्मसाक्षात्कार गुरुशास्त्रके उपदेश करिकै नहीं उत्प- न्नहुआ है तब पर्यंत यह पुरुष तिस कर्तृत्वभ्रमकूं किसीभी उपायकरिकै निवृत्त करिसकता नहीं इति । शंका—हे भगवन् ! सो पुरुष ब्रह्मवेत्तागु- रुके समीप जाइकै वेदांतवाक्योंके विचारकरिकै इस प्रकारके ब्रह्मात्म- साक्षात्कारकूं किसवास्तै नहीं उत्पन्न करता ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ताकेविषै हेतु कहै हैं—(दुर्मतिः इति) तहां विवेकके प्रतिबंधक पापकर्मोंकरिकै मलिन हुई है मति जिसकी ताका नाम दुर्मति है ऐसा दुर्मति होणेतैं ही सो भ्रांतपुरुष ब्रह्मवेत्तागुरुके समीप जायकै वेदांतवा- क्योंका विचार करता नहीं । तात्पर्य यह—पापकर्मोंकरिकै अशुद्धबुद्धि- वाला होणेतैं नित्य अनित्य वस्तुविवेकादिकोंतै रहितपणेकरिकै ब्रह्मात्मज्ञा- नके अयोग्य होणेतैं सो भ्रांतपुरुष अविद्याकरिकै अकर्त्तारूपभी आत्माकूं कर्त्तारूप कल्पना करता हुआ तथा केवलरूपभी आत्माकूं अकेवलरूप कल्पना करता हुआ तथा कर्मके कर्त्तारूप अधिष्ठानादिक पांचोंविषै तादात्म्य अभिमानतै कर्मोंके त्याग करणेविषै असमर्थ हुआ इसी कारणतैं ही संसारी कर्मका अधिकारी देहभृत् अकृतबुद्धि इत्यादिक संज्ञाकूं प्राप्त हुआ सर्व प्रकारतै जन्ममरणको प्राप्ति करिकै अनिष्ट, इष्ट, मिश्र इन तीनप्रकारके कर्मके फलकूं ही अनुभव करै है । इतनेक- रिकै जो तार्किक देहादिकोंतैं व्यतिरिक्त आत्माकूं ही केवल कर्त्ता देखै है सो तार्किकभी अकृतबुद्धिही जानणा यह अर्थ बोधन कऱ्या इति ।

और केईक वादी तौ (तत्रैवं सति कर्त्तारमात्मानं केवलं तु यः) इस श्लोकका यह अर्थ करैं है–आत्मा केवल कर्त्ता नहीं है किंतु पूर्वउक्त अधिष्ठानादिकोंके साथि मिल्याहुआ आत्मा कर्त्ता होवै है । इसप्रकार वास्तवतै तिन अधिष्ठानादिकोंके साथि मिलिकै कर्त्ताभावकूं प्राप्तहुए आत्माकूं जो पुरुष केवल कर्त्ता देखै है अर्थात् तिन अधिष्ठानादिकोंके सम्बन्धतैं विना केवल एक आत्माकूं ही कर्त्ता देखता है सो पुरुष दुर्मति है । इस प्रकारका अर्थ (केवलम्) इस शब्दके प्रयोगतै सिद्ध होवै है इति । सो यह वादियोका अर्थ समीचीन नहीं । काहेतैं सर्वक्रियावोंतैं रहित असंग आत्माका तिन अधिष्ठानादिकोंके साथि मिलनाही संभवता नही । और जलसूर्यकी न्याई तिन अधिष्ठानादिकोंके साथि असंग आत्माका जो आविद्यक मिलना अंगीकार करिये तौ तिस आविद्यक मिलनेकरिकै आत्माविषे सो कर्तृत्वभी आविद्यकही होवैगा । और ते अधिष्ठानादिक भी सर्व आविद्यक ही हैं । ऐसे कल्पित अधिष्ठानादिकोंके साथि आत्माका वास्तव संबन्धपणा संभवता नहीं । और (केवलम्) यह शब्द तौ स्वभावतैं सिद्ध ही आत्माके असंग अद्वितीयरूपकूं अनुवाद करै है। आत्माकूं कर्त्ता मानणेहारे पुरुषोंविषे दुर्मतिपणा बोधन करणेवासतै । यातै (केवलम्) इस शब्दतैं सो वादीका अर्थ सिद्ध होइसकै नहीं ॥ १६ ॥

तहां (पंचेमानि महाबाहो) इत्यादिक च्यारि श्लोकोंकरिकै (अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् । भवत्यत्यागिनां प्रेत्य) इन पूर्वउक्त श्लोकके तीन चरणोंका व्याख्यान कन्या । अब (न तु संन्यासिनां क्वचित्) इस चतुर्थचरणका श्रीभगवान् एक श्लोककरिकै व्याख्यान करैं हैं–

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ॥
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हंति न निबध्यते ॥ १७॥

(पदच्छेदः) यस्य। न। अहंकृतः। भावः। बुद्धिः। यस्य। न। लिप्यते। हत्वा। अपि। सः। इमान्। लोकान्। न। हंति। न। निबध्यते॥ १७॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! जिस विद्वान् पुरुषकी मैं कर्त्ता हूं इस प्रकारकी वृत्ति नहीं होवै है तथा जिस विद्वान् पुरुषकी बुद्धि नहीं लिपायमान होवै है सो विद्वान् पुरुष इन लोकोंकूं हनन करिकै भी नहीं हननकरै है तथा नहीं बंधायमान होवै है॥ १७॥

भा० टी०—हे अर्जुन! पूर्वश्लोकविषे कथन कऱ्या जो दुर्मति पुरुष है तिस दुर्मतिपुरुषतैं अत्यंत विलक्षण जो अधिकारी पुरुष है जो अधिकारी पुरुष पूर्वले पुण्यकर्मोंकरिकै विवेकके विरोधी पापकर्मोंके क्षय हुए विवेक, वैराग्य, शमादि षट्संपत्, मुमुक्षुता इन च्यारि साधनोंकूं प्राप्तहुआ है तथा गुरुशास्त्रके उपदेशतैं उत्पन्नहुआ है अकर्त्ता, अभोक्ता, स्वप्रकाश, परमानंद, अद्वितीय ब्रह्म मैं हूं या प्रकारका ब्रह्मात्मसाक्षात्कार जिसकूं ऐसे जिस विद्वान् पुरुषका अहंकृतभाव नष्ट होइ गया है अर्थात् तत्त्वसाक्षात्कारकरिकै कार्यसहित अज्ञानके बाधितहुए जिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकी मैं कर्त्ता हूं इस प्रकारकी वृत्ति कदाचित्भी नहीं होवै है। अथवा (यस्य नाहंकृतो भावः) इस वचनका यह दूसरा अर्थ करणा—जिस तत्त्ववेत्ता पुरुषका भाव कहिये सद्भाव अहंकृत कहिये अहं इस प्रकारके कथन योग्य नहीं है। काहेतै तत्त्वसाक्षात्कारकरिकै अहंकारके बाधहुए तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषका शुद्धस्वरूपमात्र ही परिशेषतैं रहै है। तिस शुद्धस्वरूपविषे मनवाणीकी विषयता है नहीं। अथवा (यस्य नाहंकृतो भावः) इस वचनका यह तीसरा अर्थ करणा—जिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं अहंकृतः कहिये—अहंकारका भाव कहिये तादात्म्य अध्यास नहीं है। काहेतैं तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषका सो तादात्म्य अध्यास विवेककरिकै निवृत्त होइगया है। यद्यपि व्यवहारकालविषे तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषविषे भी बाधितानुवृत्तिकरिकै सो कर्त्तापणा प्रतीत होवै है तथापि सो तत्त्व-

वेत्ता पुरुष इसप्रकारका विचारकरिकै आपणे आत्माविषे सो कर्त्तापणा मानता नहीं किंतु पूर्वउक्त अधिष्ठानादिक पांचोंविषे ही सो कर्त्तापणा मानता है सो विचार दिखावैं है । सर्वात्मारूप मेरेविषे मायाकरिकै कल्पित जो पूर्वउक्त अधिष्ठानादिक पंच हैं जे अधिष्ठानादिक पंच काल्पित संबं-धकरिकै मै स्वप्रकाश असंग चैतन्यनैं प्रकाश करीते हैं । ते अधिष्ठानादिक पंचही सर्वकर्मोंके कर्त्ता हैं।मैं असंग आत्मा कदाचित्भी तिन कर्मोंका कर्त्ता नहीं हूं किंतु मै आत्मादेव तौ तिन अधिष्ठानादिक पंच कर्त्तावोंका तथा तिनोंके व्यापारोंका साक्षीभूत हूं । तथा क्रियाशक्तिवाले प्राणरूप उपा-धिवैं तथा ज्ञानशक्तिवाले अंतःकरणरूप उपाधिवैं मैं रहित हूं । तथा मैं शुद्ध हूं । तथा सर्वकार्यकारणोंके संबंधतैं मैं रहित हूं । तथा मैं कूटस्थ नित्य हूं । तथा मै सर्व द्वैततैं रहित हूं । तथा जन्ममरणादिक सर्वविकारोंतैं मैं रहित हूं । इसी प्रकारके हमारे स्वरूपकूं (असंगो ह्ययं पुरुषः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च । अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्प-रतः परः ॥ अज आत्मा महान् ध्रुवः सलिल एको द्रष्टाद्वैतः । अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणः । निष्कलं निष्क्रियं शांतं निरवद्य निरंजनम् ॥) इत्यादिक श्रुतियांभी प्रतिपादन करैं है । तथा इसी प्रकारके हमारे स्वरूपकूं (अविकार्योयमुच्यते । प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः । अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते । तत्त्ववित्तु न सज्जते । शरीरस्थोपि कौंतेय न करोति न लिप्यते ॥) इत्यादिक स्मृतियांभी प्रतिपादन करैं हैं यातैं मै असंग आत्मा तिन कर्मोंका कर्ता नहीं हू । इसप्रकारका विचारकरिकै जो तत्त्ववेत्ता पुरुष असंग आत्माकूं कर्त्ता मानता नहीं किंतु पूर्वउक्त अधिष्ठानादिक पांचोंकूं ही सर्व कर्मोंका कर्ता मानै है इति । इसी कारणतैं ही जिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकी अंतःकरणरूप बुद्धि नहीं लिपायमान होवै है अर्थात् जिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकी बुद्धि अनुशयवाली होती नहीं । तहां इस कर्मकूं मैं करूंगा तथा इस कर्मके फलकूं मैं भोगोगा इस प्रकारका जो अनुसंधान है जो अनुसंधान

कर्त्ताभोक्तापणेकी वासनारूप निमित्तकरिकै जन्य है तिस अनुसंधानरूप लेपका नाम अनुशय है सो लेपरूप अनुशय पुण्यकर्मविषे तौ हर्षरूप होवै है और पापकर्मविषे पश्चात्तापरूप होवै है । इस प्रकारके दोनोंप्रकारके लेप करिकै जिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकी बुद्धि युक्त नहीं होवैहै । काहेतें अकर्त्ता अभोक्ता आत्माके साक्षात्कारकरिकै तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषका कर्तृत्व भोक्तृत्व अभिमान निवृत्त होइगया है । याकारणतें तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकी बुद्धि तिस अनुशयरूप लेपयुक्त होवी नहीं। यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करीहै । तहां श्रुति–(नैनं कृताकृते तपतः । एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य न वर्द्धते कर्मणा नो कनीयान् । तं विदित्वा न लिप्यते कर्मणापापकेन । यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यंत एवमेवं विदि पापकर्म न श्लिष्यते ।) अर्थ यह–जैसे अज्ञानी पुरुषकूं कन्याहुआ पापकर्म तथा नहीं कन्याहुआ पुण्यकर्म तपायमान करै है तैसे इस ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुषकूं कन्याहुआ पापकर्म तथा नहीं कन्याहुआ पुण्यकर्म तपायमान करता नहीं और इस । ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुषका यह महान् प्रभाव है । जो पुण्यकर्मकरिकै तौ हर्षकूं नहीं प्राप्त होता । तथा पापकर्मकरिकै परितापकूं नहीं प्राप्त होता । और मैं ब्रह्मरूप हूं इस प्रकारतें प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मकूं साक्षात्कारकरिकै यह तत्त्ववेत्ता पुरुष पुण्यपापकर्मोंकरिकै लिपायमान होवा नहीं । और जैसे जलविषे स्थित कमलके पत्रकूं जल स्पर्श करते नहीं तैसे इस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं पुण्यपाप कर्म स्पर्श करता नहीं इति । इतने कहणेकरिकै यह अर्थ सिद्ध भया–जिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं अहंकृतभाव नहीं है, तथा जिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकी बुद्धि लिपायमान नहीं होवैहै सो पूर्वउक्त दुर्मति पुरुषतें विलक्षण सुमति परमार्थदर्शी तत्त्ववेत्ता पुरुष आत्माकूं केवल अकर्त्ता ही देखै है कदाचित् भी आत्माकूं कर्त्ता मानता नहीं । ऐसा तत्त्ववेत्ता पुरुष कर्तृत्व भोक्तृत्व अभिमानके अभावतें अनिष्ट, इष्ट, मिश्र इस तीन प्रकारके कर्मके फलकूं कदाचितभी प्राप्त होता नहीं ।

इतनाही इस गीताशास्त्रका अर्थ है इति । अब श्रीभगवान् तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकी स्तुति करणेवासतै तिस पूर्वउक्त अहंकारके अभावकूं तथा बुद्धिलेपके अभावकूं कथन करैं हैं (हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हंति न निबध्यते इति।) हे अर्जुन ! ऐसा तत्त्ववेत्ता पुरुष इन सर्व प्राणियोंकूं हनन करिकैभी नहीं हनन करैहै । अर्थात् मैं असंग आत्मा सर्वदा अकर्ता हूं इस प्रकारके अकर्त्ता स्वरूपके साक्षात्कारतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष तिस हननरूप क्रियाका कर्त्ता होवै नहीं । इसी कारणतैं ही सो तत्त्ववेत्ता पुरुष बंधायमानभी होता नहीं अर्थात् तिस हननरूप क्रियाके कार्यरूप अधर्मफलके साथिभी सो तत्त्ववेत्ता पुरुष संबंधकूं प्राप्त होता नहीं । इहां (यस्य नाहंकृतो भावः) इस वचनके अर्थका तौ (न हंति) इस वचनका अर्थ फलरूप है । और (बुद्धिर्यस्य न लिप्यते) इस वचनके अर्थका तौ (न निबध्यते) इस वचनका अर्थ फलरूप है । इहां (हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हंति न निबध्यते।) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं तत्त्वसाक्षात्कारका महत्त्व कथन करया है । कोई तत्त्ववेत्ता पुरुष सर्व प्राणियोंका हनन करै इस अर्थविषे भगवान्का तात्पर्य है नहीं । और सर्वात्मदर्शी तत्त्ववेत्ता पुरुषविषे सर्व प्राणियोंका हनन करणा संभवता नहीं । और (हत्वापि स इमाँल्लोकान्) इस वचनकरिकै तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषविषे जो हननक्रियाका कर्त्तापणा कथन कर्या है सो लौकिक बाधिक कर्तृत्वदृष्टिकरिकै कथन करयाहै । और(न हंति) इस वचनकरिकै तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषविषे जो कर्तृत्वका निषेध करया है सो शास्त्रीयपारमार्थिक दृष्टिकरिकै निषेध कर्या है यातैं (हत्वा न हंति) इन दोनों वचनोंका परस्पर विरोध होवै नहीं इति । तहां इस गीताशास्त्रके आदिविषे (नायं हंति न हन्यते) इस वचनकरिकै आत्माविषे सर्व कर्मोंका अस्पर्शीपणा प्रतिज्ञाकरिकै (न जायते म्रियते) इत्यादिक हेतुरूप वचनोंकरिकै तिस प्रतिज्ञात अर्थकी सिद्धिकरिकै (वेदाविनाशिनं नित्यम् ।) इत्यादिक वचनोंकरिकै विद्वान् पुरुषकूं सर्व कर्मोंके अधिकारकी निवृत्ति संक्षेपकरिकै कथन करी थी और सोई ही

सर्व कर्मोंके अधिकारकी निवृत्ति मध्यविषे तिस तिस प्रसंगकरिकै विस्तारतैं प्रतिपादन करी थी । और इहां इतनाही इस गीताशास्त्रका अर्थ है, इस प्रकारतैं शास्त्रअर्थके एकत्वावत्त्व दिखावणेवासतै (न हंति न निबध्यते) इस वचनकरिकै सा सर्व कर्मोंके अधिकारकी निवृत्ति उपसंहार करीहै । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया—अविद्याकरिकै कल्पित तथा अधिष्ठानादिक पंच अनात्म-पदार्थोंकरिकै करे हुए ऐसे जे विहित निषिद्ध कर्म है तिन सर्व कर्मोंका अहं ब्रह्मास्मि इस प्रकारकी आत्मविद्याकरिकै मूलसहित उच्छेद होइजावै है । या कारणतैं परमार्थ संन्यासी पुरुषोंकूं अनिष्ट,इष्ट,मिश्र यह तीन प्रकारका कर्मका फल नहीं प्राप्त होवै है। यह जो अर्थ पूर्व कथन कऱ्या था सो युक्त ही है । तहां, मैं आत्मा अकर्त्ता हूं तथा अभोक्ता हूं इस प्रकारका जो अकर्त्ता आत्माका साक्षात्कार है इसीका नाम परमार्थ संन्यास है इसप्रकारका परमार्थ संन्यास जनक अजातशत्रु आदिक तत्त्ववेत्ता गृहस्थ पुरुषोंविषे भी विद्यमान है । यातैं ते जनकादिक तत्त्ववेत्ता पुरुषभी तिस परमार्थ संन्यासवाले ही हैं । यद्यपि जनकादिक गृहस्थज्ञानियोंविषे आपणे वर्णआश्रमके कर्म देखणेविषे आवैं हैं तथापि जैसे तत्त्ववेत्ता परमहंस संन्यासियोंविषे प्रारब्धकर्मके वशतैं बाधितानुवृत्तिकरिकै अथवा अन्यपुरुषोंकी कल्पनाकरिकै भिक्षा अटनादिक कर्म प्रतीत होवैं हैं वैसे प्रबल प्रारब्धकर्मके वशतैं बाधितानुवृत्तिकरिकै अथवा अन्य पुरुषोंकी कल्पनाकरिकै तिन जनकादिकोंविषे सो कर्मोंका दर्शन विरुद्ध नहीं है । इसी कारणतैंही आत्मज्ञानका फलभूत विद्वत्संन्यास कह्या जावै है । और साधनभूत जो विविदिषा संन्यास है सो विविदिषा संन्यास तौ प्रथम इस प्रकारका नहीं हुआ भी ज्ञानकी उत्पत्तितैं अनंतर इसी प्रकारकाही होवैहै ॥१७॥

तहां पूर्व अधिष्ठानादिक पांचोंकूं सर्वकर्मोंका हेतुरूप कथनकरिकै आत्माकूं तिनसर्वकर्मोंके स्पर्शतैंरहित कथनकऱ्या । अब तिसपूर्वउक्त अर्थकूंही ज्ञानज्ञे-यादिक प्रक्रियाकी रचनाकरिकै तथा त्रैगुण्यभेदके व्याख्यानकरिकै पूर्वतैंवि-लक्षण रीतितैं वर्णन करैंहैं—

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ॥
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥ १८ ॥

(पदच्छेदः) ज्ञानम् । ज्ञेयम् । परिज्ञाता । त्रिविधा । कर्मचोदना । करणम् । कर्म । कर्ता । इति । त्रिविधः । कर्मसंग्रहः ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! ज्ञान ज्ञेय परिज्ञाता यह तीनों कर्मके प्रवर्तक हैं तथा करण कर्म कर्त्ता यह तीनों कर्मका आश्रय है १८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जिसतैं वस्तुका यथार्थस्वरूप प्रकाशमान करीता है ताका नाम ज्ञान है अर्थात् प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंकरिकै जन्य जो घटादिक विषयोंका प्रकाशरूप क्रिया है ताका नाम ज्ञान है । और तिस ज्ञानरूपक्रियाके कर्मभूत जे घटादिक पदार्थ हैं तिन्होंका नाम ज्ञेय है । और तिस ज्ञानरूप क्रियाका आश्रयभूत तथा अन्तःकरणरूप उपाधिककरिकै परिकल्पित ऐसा जो भोक्ता है ताका नाम परिज्ञाता है । यह ज्ञान, ज्ञेय परिज्ञाता समुच्चयभावकूं प्राप्त होइकै ही इष्ट अनिष्टरूप सर्वकर्मोंका आरंभ करै है । इन तीनोंके समुच्चयतैं विना किसीभी कर्मका आरंभ होवै नहीं । काहेतैं ज्ञेयके तथा ज्ञाताके विद्यमान हुएभी ज्ञानके अभावहुए इस पुरुषकी प्रवृत्ति होती नहीं । यातैं प्रवृत्तिविषे तिस ज्ञानकूं अवश्य हेतु मान्या चाहिये । और ज्ञानके तथा ज्ञाताके विद्यमान हुएभी देशकाल करिकै ज्ञेयके व्यवहित हुए इस पुरुषकी प्रवृत्ति होती नहीं यातैं तिस प्रवृत्तिविषे ज्ञेयकूंभी अवश्य हेतु मान्या चाहिये । और सुषुप्तिअवस्थाविषे संस्काररूप ज्ञानज्ञेयके विद्यमान हुएभी ज्ञाताके अभावतैं इस पुरुषकी प्रवृत्ति होती नहीं । यातैं तिस प्रवृत्तिविषे परिज्ञाताकूंभी अवश्य हेतु मान्या चाहिये । यातैं ज्ञान, ज्ञेय, परिज्ञाता यह तीनों परस्पर समुच्चयभावकूं प्राप्त होइकै ही सर्वकर्मोंके आरंभक होवैं हैं । इस अर्थकूं श्रीभगवान् कहैं हैं । (त्रिविधा कर्मचोदना इति) यहां चोदना नाम प्रवर्त्तकका है अर्थात् ज्ञान, ज्ञेय, परिज्ञाता यह समुच्चितहुए तीनों ही कर्मके प्रवर्त्तक हैं ।

यद्यपि पूर्वमीमांसाविषे क्रियाविषे प्रवर्त्तक वचनकूं ही चोदना कह्या है तथापि इहां ज्ञानादिकोंविषे वचनरूपता संभवती नहीं यातें वचनपणेका परित्यागकरिकै क्रियाके प्रवर्त्तकमात्रविषे इहां चोदनाशब्दकी लक्षणा करणी। यातें यह अर्थ सिद्ध भया। अनात्मपदार्थोंविषे ही प्रेरणीयत्व है तथा प्रेरकत्व है। असंग आत्माविषे सो प्रेरणीयत्व तथा प्रेरकत्व है नहीं इति। इतने करिकै (ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना।) इस पूर्वार्द्धका अर्थ कथन कऱ्या। अब (करणं कर्म कर्त्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः।) इस उत्तरार्द्धका अर्थ वर्णन करैहैं। तहां जिसके व्यापारतें अनंतर क्रियाकी सिद्धि होवैहै ताका नाम करण है। सो करण बाह्य, अंतर भेदकरिकै दोप्रकारका होवैहै। तहां श्रोत्रादिक इंद्रिय तौ बाह्यकरण है। और मनबुद्धि आदिक अंतःकरण है। और कर्त्तापुरुषकूं क्रियाकरिकै प्राप्त होणेकूं इष्ट जो कारक है ताका नाम कर्म है सो कर्म उत्पाद्य, आप्य, संस्कार्य, विकार्य इस भेदकरिकै च्यारि प्रकारका होवैहै। तहां जो वस्तु उत्पत्तिके योग्य होवैहै ताकूं उत्पाद्य कहैं हैं। अथवा जो वस्तु पूर्व न होइकै पश्चात् उत्पन्न होवै ताकूं उत्पाद्य कहैं हैं। और जो वस्तु पूर्व सिद्ध हुआही प्राप्त होवै है ताकूं आप्य कहैहैं। और गुणाधान मलापकर्षरूप संस्कारके योग्य जो वस्तु है ताकूं संस्कार्य कहैहैं। और पूर्वअवस्थाका परित्यागकरिकै अवस्थांतरकी जा प्राप्ति है ताका नाम विकार है ता विकारकूं जो वस्तु प्राप्त होवै ताकूं विकार्य कहैहैं इति। और जो इतर कारकोंकरिकै अप्रयोज्य होवै तथा सकलकारकोंका प्रयोजक होवै ताका नाम कर्त्ता है सो कर्त्ता इहां चित्अचित्की ग्रंथिरूप लेणा। यह करण, कर्म, कर्त्ता तीनोंही परस्पर समुच्चयभावकूं प्राप्त होइकै कर्मसंग्रह है अर्थात् कर्मोंका आश्रयरूप है। तहां (करणं कर्म कर्त्तेति) इस वचनके अंतविषे स्थित जो इति यह शब्द है तिस इतिशब्दतें संप्रदान, अपादान, अधिकरण इन तीन कारकोंकाभी करणादिक तीन कारकोंविषे ही अंतर्भाव ग्रहण करणा। तहां

सम्यक् श्रेयबुद्धिकरिकै जिसके ताईं, वस्तु दई जावै है ताकूं संप्रदान कहैहैं । जैसे वेदवेत्ता ब्राह्मणके ताईं गौकूं देता है । इहां वेदवेत्ता ब्राह्मण संप्रदानकारकहै और संयोगपूर्वक विभागविषे जो अवधि है ताकूं अपादान कहैंहै । जैसे पर्वततैं श्रीगंगाजी उतरती हैं । इहां पर्वत अपादान कारक है । आधारका नाम अधिकरण है इति । इसप्रकारके कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान अपादान, अधिकरण यह षट् कारक व्याकरणविषे प्रसिद्ध है । तहां संप्रदान अपादान, अधिकरण इन तीनकारकोंका कर्त्तादिकोंविषे अंतर्भावकरिकै श्रीभगवान्नैं इहां कर्त्ता, कर्म, करण यह तीन प्रकारके कारक कथन करेहै । इस प्रकार त्रिविधभावकूं प्राप्तहुआ सो कारकषट्क ही सर्वक्रियाका आश्रय है। कूटस्थ आत्मा किसीभी क्रियाका आश्रय नहीं है इति । यातैं इस श्लोककरिकै यह भावार्थ सिद्ध भया । जेजे कर्मके प्रेरक होवै है तथा जे जे कर्मके आश्रय होवै हैं ते सर्व कारकरूपही होवैं है । तथा त्रिगुणात्मकही होवै है । और यह आत्मादेव तौ कारकभावतै रहित है तथा तीन गुणोंतैं भी रहित है यातै यह आत्मादेव सर्वकर्मोंके स्पर्शतैं रहित है ॥ १८ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे ज्ञान, ज्ञेय, परिज्ञाता तथा करण, कर्म, कर्त्ता यह दो त्रिक कथन करे । अब तिन दोनों त्रिकोंविषे त्रिगुणरूपता अवश्यकरिकै कहणे योग्य है । यातै श्रीभगवान् तिन दोनों त्रिकोंकूं संक्षेपतैं कथन करिकै तिन दोनों त्रिकोंविषे त्रिगुणरूपताकी प्रतिज्ञा करैं हैं—

ज्ञानं कर्म च कर्त्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ॥
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥१९॥

(पदच्छेदः) ज्ञानम् । कर्म । च । कर्त्ता । च । त्रिधा । एव । गुणभेदतः । प्रोच्यते । गुणसंख्याने । यथावत् । शृणु । तानि । अपि ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सांख्यशास्त्रविषे ज्ञान तथा कर्म तथा कर्त्ता सत्त्वादिक तीन गुणोंके भेदतैं तीनप्रकारका ही कथन कऱ्या है तिनैं ज्ञानादिकोंकूं तथा तिनोंके भेदोंकूं तूं यथावत् श्रवण कर ॥ १९ ॥

भा० टी०—तहां (ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता) इस पूर्वउक्त वचनविषे कथन कऱ्या जो प्रत्यक्षादिक प्रमाणजन्य वस्तुका प्रकाशरूप अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञान है सो ज्ञानही इहां ज्ञानशब्दकरिकै ग्रहण करणा । और वस्तुविषे जो ज्ञेयपणा होवै है सो ज्ञानरूप उपाधिकृत होवै है ज्ञानतैं विना ज्ञेयपणा होवै नहीं । यातैं पूर्वउक्त ज्ञेयका इस ज्ञानविषेही अंतर्भाव जानणा । और इहां कर्मशब्दकरिकै यज्ञादिरूप क्रियाका ग्रहण करणा । जा यज्ञादिरूप क्रिया (त्रिविधः कर्मसंग्रहः) इस वचनविषे पूर्व कर्मशब्दकरिकै कथन करी है । और (ज्ञानं कर्म च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है तिस चकारतैं पूर्वउक्त कर्म करण इन दोनों कारकोंकाभी इस क्रियाविषेही अंतर्भाव जानणा । काहेतैं वस्तुविषे जो कारकपणा होवै है सो क्रियारूप उपाधिकृत होवै है । क्रियातैं विना कारकपणा होवै नहीं । यातैं कर्म करण इन दोनों कारकोंका तिस क्रियाविषे अंतर्भाव युक्त ही है । और पूर्वश्लोकविषे (करणं कर्म कर्त्तेति) इस वचनविषे कथन कऱ्या जो क्रियाका उत्पादक कर्त्ता है तिसीही कर्त्ताका इहां कर्त्ताशब्दकरिकै ग्रहण करणा । और (कर्त्ता च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है तिस चकारतैं पूर्व कथन करेहुए परिज्ञाताका इस कर्त्ताविषे ही अंतर्भाव जानणा । यद्यपि करण कर्म इन दोनों कारकोंकी न्याईं कर्त्ताविषेभी सो क्रिया उपाधिकपणा तुल्यही है । यातैं करण कर्म इन दोनों कारकोंकी न्याईं कर्त्ताकाभी इहां पृथक् कथन नहीं कऱ्या चाहिये, तथापि कर्त्ताविषे जो पृथक् त्रिगुणतारूपका कथन है सो कुतार्किकपुरुषोंके भ्रमकरिकै कल्पित आत्मपणेके निवृत्तकरणेवासतै है । जिसकारणतैं ते कुतार्किक पुरुष कर्त्ताकूं ही आत्मा मानैं हैं । ऐसा ज्ञान तथा कर्म तथा कर्त्ता गुणसंख्यानविषे सत्त्व, रज, तम इन

तीनगुणोंके भेदतैं सात्त्विक, राजस, तामस यह तीनप्रकारका कथन कऱ्या है। तहां सत्त्व, रज, तम, यह तीनों गुण कार्यके भेदकरिकै प्रतिपादन करिये जिस शास्त्रविषे ता शास्त्रका नाम गुणसंख्यान है ऐसा कपिलमुनिकृत सांख्यशास्त्र है। ऐसे सांख्यशास्त्रविषे वे ज्ञान, कर्म, कर्त्ता तीनों सत्त्वादिक गुणोंके भेदकरिकै सात्त्विक, राजस, तामस यह तीनप्रकारके ही कथन करे हैं। इहां (त्रिधैव) इस वचनविषे स्थित जो एव यह शब्द है सो एव शब्द सात्त्विक, राजस, तामस इन तीन प्रकारोंतै भिन्न चतुर्थप्रकारके निवृत्त करणेवासतै हैं। यद्यपि कपिलमुनिरचित सांख्यशास्त्र परमार्थब्रह्मकी एकताविषे प्रमाणभूत नहीं है जिस कारणतै सांख्यशास्त्रविषे नाना आत्माही अंगीकार करे हैं तथापि सो सांख्यशास्त्र अपरमार्थरूप सत्त्वादिक गुणोंके गौणभेदके निरूपणविषे व्यावहारिक प्रमाणभावकूं प्राप्त होवै है। इस कारणतैं वक्ष्यमाण अर्थकी स्तुति करणेवासतै श्रीभगवान्नैं (गुणसंख्याने प्रोच्यते) यह वचन कथन कऱ्या है। अर्थात् यह ज्ञानादिकोंका त्रिविधपणा केवल इस गीताशास्त्रविषे ही प्रसिद्ध नहीं है किंतु कपिलमुनिरचित सांख्यशास्त्रविषेभी प्रसिद्ध है। इस प्रकारतैं वक्ष्यमाण अर्थकी स्तुति करणेवासतै श्रीभगवान्नैं 'सो वचन कथन कऱ्या है इति। हे अर्जुन! तिन ज्ञानादिक तीनोंकूं तथा सत्त्वादिक गुणकृत तिन ज्ञानादिकोंके भेदकूं तूं यथावत् श्रवण कर। अर्थात् शास्त्रविषे जिस प्रकारका तिनोंका स्वरूप कथन कऱ्या है तिसी प्रकारके तिनोंके स्वरूपकूं श्रवण करणेवासतै तूं सावधान होउ इति। यद्यपि पूर्व चतुर्दश अध्यायविषे तथा सप्तदश अध्यायविषेभी श्रीभगवान् सत्त्वादिक गुणोंकूं तथा तिन गुणोंकृत सात्त्विकादिक भेदकूं कथन करिआये हैं, यातैं पुनः इहां तिन गुणोंके तथा तिन गुणोंकृत भेदके कथन करणेतैं पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै है तथापि तिन वचनोंकी इस प्रकारतैं व्यवस्था करणेकरिकै पुनरुक्तिदोषकी निवृत्ति होवै है। तहां पूर्व चतुर्दश अध्यायविषे जो (तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्) इत्यादिक वचनोंकरिकै सत्त्वा-

दिक गुणोंविषे बंधके हेतुपणेका प्रकार निरूपण कर्याथा । गुणातीत पुरुषके जीवन्मुक्तपणेके निरूपण करणेवासतै और सप्तदश अध्यायविषे तौ (यजंते सात्त्विका देवान्) इत्यादिक वचनोंकरिकै सत्त्वादिक गुणकृत त्रिविधस्वभावके निरूपणकरिकै यह अर्थ सिद्ध कर्याथा । इस अधिकारी पुरुषनैं असुररूप राजस तामस स्वभावका परित्याग करिकै सात्त्विक आहारादिकोंके सेवनकरिकै देवरूप सात्त्विक स्वभाव ही संपादन करणा इति । और इस अष्टादश अध्यायविषे तौ स्वभावतै गुणातीत असंग आत्माका क्रिया, कारक, फल इन तीनोंके साथि किंचित्मात्रभी संबंध नहीं है, इस अर्थके बोधन करणेवासतै तिन क्रियाकारकादिक सर्वोंकूं त्रिगुणरूपता ही है इसतैं भिन्न दूसरा कोई स्वरूप तिन क्रियाकारकादिकोंका है नहीं जिसकरिकै इन क्रियाकारकादिकोंकू आत्माका सम्बन्धीपणा होवै इस अर्थकूं कथन कर्या है । इतनी तीनों अध्यायोंके वचनोंविषे विशेषता है । यातैं इहां पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै नहीं ॥ १९ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे ज्ञान, कर्म, कर्त्ता इन तीनोंका सात्त्विक, राजस, तामस यह त्रिविधपणा ज्ञातव्यरूपकरिकै प्रतिज्ञा कर्या । अब प्रथम ज्ञानके त्रिविधपणेकूं तीनश्लोकोंकरिकै श्रीभगवान् निरूपण करैं हैं । ताकेविषेभी प्रथम अद्वैत आत्मवादियोंके सात्त्विक ज्ञानकूं कथन करै हैं—

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ॥
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥ २० ॥

(पदच्छेदः) सर्वभूतेषु । येन । एकम् । भावम् । अव्ययम् । ईक्षते । अविभक्तम् । विभक्तेषु । तत् । ज्ञानम् । विद्धि । सात्त्विकम् ॥ २० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! परस्परभेदवाले सर्वभूतोंविषे सर्वत्र व्यापक एक अव्यय सत्तारूपभावकूं जिस ज्ञानकरिकै यह पुरुष साक्षात्कार करैहै तिसै ज्ञानकूं तूं सात्त्विक जान ॥ २० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! अव्याकृत, हिरण्यगर्भ, विराट् यह हैं नाम जिनोंके ऐसे जे बीज सूक्ष्म स्थूलरूप समष्टिव्यष्टिरूप सर्वभूत हैं जे सर्व भूत विभक्त हैं अर्थात् भिन्नभिन्न नामरूपकरिकै परस्पर व्यावर्त्य हैं तथा नानारस हैं ऐसे उत्पत्तिनाशवान् दृश्यवर्गरूप सर्वभूतोंविषे सत्तारूप भावकूं जिस वेदांतवाक्योंके विचारजन्य अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञानकरिकै यह अधिकारी पुरुष साक्षात्कार करैहै अर्थात् तिन सर्वभूतोंविषे परमार्थ-सत्तारूप स्वप्रकाश आनंदआत्माकूं जिस ज्ञानकरिकै यह अधिकारी पुरुष साक्षात्कार करैहै। कैसा है सो सत्तारूपभाव—एक है अर्थात् सजातीयभेद, विजातीयभेद, स्वगतभेद इन तीन भेदोंतै रहित होणेतैं अद्वितीयरूप है पुनः कैसा है सो सत्तारूपभाव—अव्यय है अर्थात् उत्पत्ति विनाशादिक सर्वविकारोंतैं रहित है तथा अदृश्यहै। पुनः कैसा है सो सत्तारूपभाव—अविभक्त है अर्थात् सर्व जडपदार्थोंका अधिष्ठानरूपकरिकै तथा सर्व कल्पित पदार्थोंके बाधका अवधिरूपकरिकै सर्वत्र व्यापक है। ऐसे सर्वत्र व्यापक अद्वितीय आत्मादेवकूं यह अधिकारी पुरुष जिस वेदांतवाक्यजन्य ज्ञानकरिकै साक्षात्कार करैहै तिस मिथ्याप्रपंचके बाधक आत्मज्ञानकूं तूं सात्त्विकज्ञान जान। और इस अद्वितीय आत्माके साक्षात्कारतैं भिन्न जितनाक द्वैतदर्शन है सो सर्वही द्वैतदर्शन राजस होणेतैं तथा तामस होणेतैं संसारकाही कारण है। यातैं तिस द्वैतदर्शनविषे कदाचित्भी सात्त्विकपणा होवै नहीं ॥ २० ॥

अब राजसज्ञानका स्वरूप वर्णन करैं हैं—

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ॥
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥ २१ ॥

(पदच्छेदः) पृथक्त्वेन । तु । यत् । ज्ञानम् । नानाभावान् । पृथग्विधान् । वेत्ति । सर्वेषु । भूतेषु । तत् । ज्ञानम् । विद्धि । राजसम् ॥ २१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः परस्परभेदकरिकै स्थित हुए देहादिक सर्व भूतोंविषे परस्परविलक्षण नानांआत्मावोंकूं जो ज्ञान जानै है तिसं ज्ञानेंकूं तूं राजस जान ॥ २१ ॥

भा० टी०—इहां (पृथक्त्वेन तु) इस वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तु शब्द पूर्वश्लोकउक्त सात्त्विकज्ञानतैं इस राजसज्ञानविषे विलक्षणताके बोधन करणेवासतै है । सा विलक्षणता कहैहैं—हे अर्जुन ! परस्परभेदकरिकै स्थित हुए जे देहादिक सर्वभूत हैं तिन सर्वभूतोंविषे जो ज्ञान पृथग्विध नानाभावोंकूं देखै है अर्थात् देहदेहविषे सुखित्व दुःखित्वादिरूपकरिकै परस्परविलक्षण भिन्न भिन्न आत्मावोंकूं जो ज्ञान देखै है । तात्पर्य यह—इस लोकविषे कोई प्राणी सुखी है, कोई प्राणी दुःखी है, कोई प्राणी पंडित है, कोई प्राणी मूर्ख है इत्यादिक अनेकप्रकारकी विलक्षणता देखणेविषे आवैहै । जो कदाचित् सर्वदेहोंविषे एकही आत्मा होवै तौ एक प्राणी सुखी हुए सर्वही प्राणी सुखी हुए चाहिये । तथा एक प्राणीके दुःखी हुए सर्वही प्राणी दुःखी हुए चाहिये । सो ऐसा देखणेविषे आवता नहीं । यातैं सर्व देहोंविषे एक आत्मा नहीं है किंतु देहदेहविषे भिन्नभिन्न आत्मा है इस प्रकारके कुतर्कोंकरिकैं उत्पन्न हुआ जो ज्ञान देहदेहविषे भिन्नभिन्न आत्माकूं देखै है तिस ज्ञानकूं तूं राजस ज्ञान जान । इहां यद्यपि (यज्ज्ञानं वेत्ति) इस वचनके स्थानविषे (येन ज्ञानेन वेत्ति) इस प्रकारका ही वचन कहणा योग्यथा । तथापि (यज्ज्ञानं वेत्ति) यह जो वचन श्रीभगवान्नैं कथन कऱ्या है सो तिस ज्ञानरूप करणविषे कर्तृत्वके उपचारतैं कथन कऱ्या है । जैसे (एधांसि पचंति) यह वचन पाकके करणरूप काष्ठोंविषे कर्तृत्वके उपचारतैं कह्या जावै है अथवा सो ज्ञान कर्तारूप अहंकारका वृत्तिरूप है । यातैं कर्तारूप अहंकारका तिस वृत्तिरूप ज्ञानके साथि अभेद मानिकै श्रीभगवान्नैं (यज्ज्ञानं वेत्ति) यह वचन कऱ्या है इति । और (यज्ज्ञानं वेत्ति) इस वचनविषे पूर्व ज्ञानपद कथन करिकै (तज्ज्ञानम्)

इस वचनविषे जो पुनः ज्ञानपद कथन कऱ्या है सो ज्ञानपद आत्माके भेदज्ञानकूं तथा तिन अनात्माके भेदज्ञानकूं जनावै है । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । देह देहविषे आत्मावोंका परस्परभेद १ तथा तिन आत्मावोंका ईश्वरतैं भेद २ तथा तिन आत्मावोंतैं अचेतन वर्गका भेद ३ तथा ईश्वरतैं अचेतन वर्गका भेद ४ तथा तिस अचेतन वर्गका परस्परभेद ५ इसप्रकारके अनौपाधिक पंच भेदोंकूं विषय करणेहारा जो कुतार्किक पुरुषोंका ज्ञान है । सो भेदज्ञान राजसही जानणा ॥ २१ ॥

अब तामसज्ञानका स्वरूप वर्णन करैंहैं-

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ॥
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥

(पदच्छेदः) यत् । तु । कृत्स्नवत् । एकस्मिन् । कार्ये । सक्तम् । अहैतुकम् । अतत्त्वार्थवत् । अल्पम् । च । तत् । तामसम् । उदाहृतम् ॥ २२॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः जो ज्ञान किसीएक कार्यविषे परिपूर्ण अर्थकीन्याई अभिनिवेशवाला है तथा युक्तितैं रहित है तथा परमार्थआलंबनतैं रहितहै तथा अल्प है सो ज्ञान शिष्टपुरुषोंनैं तामस कह्याहै॥२२॥

भा० टी०-यहां (यत्तु) इस वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तु शब्द पूर्वश्लोकउक्त राजसज्ञानतैं इस तामसज्ञानविषे विलक्षणताके बोधन करणेवासतै है । सा विलक्षणता दिखावैं हैं-आकाशादिक पंचभूतोंके बहुत कार्योंके विद्यमान हुएभी तिन सर्व कार्योंके मध्यविषे किसी एक देहरूप कार्यविषे अथवा प्रतिमादिरूप कार्यविषे जो ज्ञान परिपूर्ण अर्थकी न्याईं सक्त है अर्थात् इतना मात्र ही आत्मा है तथा इतनामात्र ही ईश्वर है इसतैं परे कोई आत्मा नहीं है तथा इसतैं परे कोई ईश्वर नहीं है इस प्रकारके अभिनिवेशकरिकै जो ज्ञान किसी देहरूप एक कार्य-

विषे अथवा किसी प्रतिमादिरूप एक कार्यविषे ही संलग्न हुआ है। जैसे आत्मा सावयव है तथा देह परिमाण है या प्रकारका दिगंबरोंका ज्ञान है । तथा जैसे यह स्थूल देह ही आत्मा है इस प्रकारका चार्वाकोंका ज्ञान है । तथा जैसे पाषाणकाष्ठादिरूप यह प्रतिमामात्र ही ईश्वर है इसतैं परे दूसरा कोई ईश्वर है नहीं इस प्रकारका शास्त्रसंस्कारोंतै रहित मूढपुरुषोंका ज्ञान है । तथा जो ज्ञान अहैतुक है क्या उत्पत्तिरूप हेतुवैं रहित है अर्थात् देहप्रतिमातैं भिन्न दूसरे जितनेक भूतोंके कार्यहैं तिन सर्व कार्योंविषे आत्मापणेके अभाव हुए तथा ईश्वरपणेके अभाव हुए इस भूतोंके कार्यरूप देहविषे सो आत्मापणा कैसे संभवैगा ? तथा इस भूतोंके कार्यरूप प्रतिमाविषे सो ईश्वरपणा कैसे संभवैगा किंतु नहीं संभवैगा । इस प्रकारके विचारतै जो ज्ञान रहित है । इसी कारणतैं ही जो ज्ञान अतत्त्वार्थवत् है । तहां जो अर्थ प्रमाणांतरकरिकै बाधित नहीं होवै है ता अर्थका नाम तत्त्वार्थ है । सो तत्त्वार्थ जिस ज्ञानका विषय नहीं होवै ता ज्ञानका नाम अतत्त्वार्थवत् है अर्थात् जो ज्ञान अयथार्थ अर्थविषयक है तथा जो ज्ञान अल्प है अर्थात् आत्माको नित्यत्वविभुत्वकूं नहीं विषय करणेतैं जो ज्ञान अत्यंत अल्प है । इस प्रकारका जो अनित्य परिच्छिन्न देहादिकोंविषे आत्मत्व अभिमानरूप चार्वाकादिकोंका ज्ञान है । जो ज्ञान आत्मा तथा ईश्वर दोनों नित्य हैं तथा विभु हैं तथा देहादिक संघाततैं भिन्न है इस प्रकारके तार्किकपुरुषोंके ज्ञानतैंभी अत्यंत विलक्षण है सो ज्ञान बुद्धिमान् पुरुषोंनैं तामस ज्ञान कह्या है ॥ २२ ॥

तहां एक अद्वितीय आत्माकूं विषय करणेहारा जो औपनिषद् पुरुषोंका सात्त्विकज्ञान है सो अद्वितीय आत्मविषयक सात्त्विक ज्ञान तौ मुमुक्षुजनोंनैं ग्रहण करणे योग्य है । और नित्य तथा विभु तथा परस्पर भिन्न ऐसे अनेक आत्मावोंकूं विषय करणेहारा जो द्वैतदर्शी तार्किक पुरुषोंका राजसज्ञान है तथा अनित्य परिच्छिन्न देहादिरूप आत्माकूं विषय करणेहारा जो चार्वाकादिकोंका तामस ज्ञान है ते राजस तामस दोनों

ज्ञान मुमुक्षुजनोंनैं परित्याग करणे योग्य है। यह अर्थ (सर्वभूतेषु येनैकम्) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै पूर्व कथन कऱ्या। अब (नियतं संगरहितम्) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै श्रीभगवान् सात्त्विक, राजस, तामस इस भेदकरिकै कर्मके त्रिविधपणेकूं कथन करैंहै। तहां प्रथम सात्त्विककर्मका स्वरूप वर्णन करैंहै—

नियतं संगरहितमरागद्वेषतः कृतम् ॥
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥ २३ ॥

(पदच्छेदः) नियतम्। संगरहितम्। अरागद्वेषतः। कृतम्। अफलप्रेप्सुना। कर्म। यत्। तत्। सात्त्विकम्। उच्यते ॥ २३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! फलकी इच्छातें रहित पुरुषनैं संगतें रहित तथा राग द्वेषतैं रहित जो नित्य कर्म करीता है सो कर्म सात्त्विक कह्या जावै है ॥ २३ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो कर्म नियत है अर्थात् तिस कर्मके जितनेक द्रव्य, देवता, मंत्र आदिक अंगहैं तिनसर्व अंगोंकी परिपूर्णता करणेविषेअसमर्थ पुरुषोंकूंभी जो कर्म आपणे फलकी प्राप्ति अवश्यकरिकै करैंहै। ऐसा अग्निहोत्र संध्योपासनादिक नित्यकर्म है। तथा जो कर्म संगरहित है। तहां मै ही महान् याज्ञिक हूं हमारे समान दूसरा कोई है नहीं इत्यादिक अभिमानरूप तथा अहंकार है नाम जिसका ऐसा जो राजस गर्वविशेष है ताका नाम संग है। तिस संगतैं जो कर्म रहित है अर्थात् जो कर्म इसप्रकारके अभिमानपूर्वक नहीं कऱ्याजावै है तहां जितने कालपर्यंत अज्ञान है तितने कालपर्यंत कर्तृत्व भोक्तृत्वका प्रवर्त्तक अहंकार सात्त्विकपुरुषविषेभी रहै है। और तिस अज्ञानतैं तथा अहंकारतैं रहित जो तत्त्ववेत्ता पुरुष है तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं तौ कर्मोंका अधिकारही नहीं है। यह वार्ता पूर्व अनेकवार कथन करिआये हैं। यातैं

सात्त्विकपुरुषविषे कर्तृत्व भोक्तृत्वके प्रवर्त्तक सामान्य अहंकारके विद्यमान हुएभी सो राजसगर्वरूप विशेष अहंकार रहता नहीं इति । तथा जो कर्म अरागद्वेषतें कऱ्याजावै है तहां इस कर्मकरिकै मैं राजसन्मान आदिकोंकूं प्राप्त होवौंगा इस प्रकारके अभिप्रायका नाम राग है और इस कर्मकरिकै मैं शत्रुकूं पराजय करूंगा इस प्रकारके अभिप्रायका नाम द्वेष है। तिस राग द्वेष दोनोंकरिकै जो कर्म नहीं कऱ्याहुआ है इस प्रकारका जो यज्ञ दान होमादिरूप नित्यकर्म फलकी इच्छातैं रहित निष्काम पुरुषनैं स्वधर्मजानिकै करीता है, सो यज्ञदानहोमादिरूप नित्यकर्म सात्त्विककर्म कह्या जावै है ॥ २३ ॥

अब राजसकर्मका स्वरूप वर्णन करैं हैं–

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ॥
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ २४ ॥

(पदच्छेदः) यत् । तु । कामेप्सुना । कर्म । साहंकारेण । वा । पुनः । क्रियते । बहुलायासम् । तत् । राजसम् । उदाहृतम् ॥ २४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः सकामपुरुषनैं तथा अहंकारयुक्त पुरुषनैं अनियत तथा बहुतक्लेशकी प्राप्ति करणेहारा जो काम्यकर्म करीता है सो काम्यकर्म शिष्टपुरुषोंनैं राजस कर्म कह्या है ॥ २४ ॥

भा० टी०–तहां (यत्तु) इस वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तु शब्द पूर्वउक्त सात्त्विककर्मतैं इस राजस कर्मविषे विलक्षणताके बोधन करणेवास्ते है सा विलक्षणता दिखावै हैं । हे अर्जुन ! स्वर्गादिक फलोंकी इच्छावान् सकामपुरुषनैं तथा पूर्वउक्त संगरूप गर्वयुक्त पुरुषनैं जो काम्यकर्म करीता है । जो कर्म बहुलायास है अर्थात् सर्व अंगोंकी संपूर्णतापूर्वक कऱ्याहुआही काम्यकर्म फलकी प्राप्ति करै है किंचितुमात्र अंगकी विगुणताके हुए काम्यकर्म फलका हेतु होवै नहीं । यातैं सर्व

अंगोंकी परिपूर्णता करणेकरिकै जो काम्यकर्म कर्त्तापुरुषकूं बहुतक्लेशकी प्राप्ति करणेहारा है । इहां (वा पुनः) इस वचनविषे स्थित जो पुनः यह शब्द है सो पुनः शब्द इस राजसकर्मविषे अनियतपणेकूं बोधन करै है । काहेतैं, जैसे नित्यकर्मविषे सर्वदा कर्त्तव्यता होवै है तैसे इस काम्यकर्मविषे सर्वदा कर्त्तव्यता होवै नहीं किंतु जबपर्यंत इस पुरुषविषे फलकी कामना रहै है तबपर्यंतही तिस काम्यकर्मकी कर्त्तव्यता रहै है । कामनाके निवृत्त हुएतैं अनंतर तिस काम्यकर्मकी कर्त्तव्यता रहै नहीं । यातैं तिस काम्यकर्मविषे सो अनियतपणा युक्तही है । इस प्रकारका काम्यकर्म शिष्टपुरुषोंनैं राजसकर्म कह्या है । इहां सर्व विशेषणोंकरिकै इस राजसकर्मविषे पूर्वश्लोकउक्त सात्त्विककर्मके सर्व विशेषणोंतै विपरीतपणा कथन कऱ्या है ॥ २४ ॥

अब तामसकर्मका स्वरूप वर्णन करैं हैं—

अनुबंधं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम् ॥
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥ २५ ॥

(पदच्छेदः) अनुबंधम् । क्षयम् । हिंसाम् । अनपेक्ष्य । च । पौरुषम् । मोहात् । आरभ्यते । कर्म । यत् । तत् । तामसम् । उच्यते ॥ २५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः अनुबंधकूं तथा क्षयकूं तथा हिंसाकूं तथा पौरुषकूं न विचारिकै केवल अविवेकतैं जो कर्म आरंभ करीता है सो कर्म तामसकर्म कह्या जावै है ॥ २५ ॥

भा० टी०— हे अर्जुन ! आगे होणेहारा जो अशुभफल है ताका नाम अनुबंध है । और शरीरके सामर्थ्यका तथा धनका तथा सेनाका जो विनाश है ताका नाम क्षय है । और प्राणियोंकी जा पीडा है ताका नाम हिंसा है । और आपणा जो सामर्थ्य है ताका नाम पौरुष है । ऐसे अनुबंधकूं तथा क्षयकूं तथा हिंसाकूं तथा

पौरुषकूं कर्मके प्रारंभतें पूर्व न विचारिकै केवल अविवेकरूप मोहके वशतें जो कर्म आरंभ करीता है सो कर्म तामस कर्म कह्या जावैहै । जैसे इस दुर्योधननें तिन अनुबंधादिक च्यारोंका नहीं विचारकरिकै केवल अविवेकरूप मोहतें इस युद्धरूप कर्मका आरंभ कर्याहै ॥ २५ ॥

तहां (नियतं संगरहितम्) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै पूर्व सात्त्विक, राजस, तामस इस भेदकरिकै तीन प्रकारका कर्म निरूपण कर्या । अब (मुक्तसंगः) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै श्रीभगवान् सात्त्विक, राजस, तामस इस भेदकरिकै तीनप्रकारके कर्त्ताका कथन करैहैं । तहां प्रथम सात्त्विककर्त्ताका स्वरूप वर्णन करै है-

मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ॥
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारःकर्त्ता सात्त्विक उच्यते२६

(पदच्छेदः) मुक्तसंगः । अनहंवादी । धृत्युत्साहसमन्वितः । सिद्ध्यसिद्ध्योः । निर्विकारः । कर्त्ता । सात्त्विकः । उच्यते२६

(पदार्थः) हे अर्जुन ! फलकी इच्छातें रहित तथा अनहंवादी तथा धृतिउत्साह दोनोंकरिकै युक्त तथा सिद्धिअसिद्धि दोनोंविषे निर्विकार ऐसा कर्त्ता सात्त्विककर्त्ता कह्याजावैहै ॥ २६ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जो पुरुष मुक्तसंग है अर्थात् त्याग करी है कर्मफलकी इच्छा जिसने । तथा जो पुरुष अनहंवादी है अर्थात् मैं कर्मका कर्त्ता हूं इस प्रकारके अभिमानपूर्वक वचनकूं जो नहीं उच्चारण करैहै अथवा जो पुरुष आपणे गुणोंकी श्लाघातें रहित है ताका नाम अनहंवादी है । तथा जो पुरुष धृति उत्साह इन दोनोंकरिकै युक्त है । तहां विघ्नआदिकोंके प्राप्त हुएभी प्रारंभ करेहुए कर्मके नहीं परित्यागका हेतुरूप जा अंतःकरणकी वृत्तिविशेष है जाकूं धैर्य कहैहैं ताका नाम धृति है । और इस कर्मकूं मैं अवश्यकरिकै सिद्ध करूंगा या प्रकारकी जा निश्चयात्मक बुद्धि है जा बुद्धि उक्त धृतिका कारणरूपहै

ताका नाम उत्साह है । ऐसे धृति उत्साह दोनोंकरिकै जो पुरुष युक्त है । तथा जो पुरुष करेहुए कर्मके फलकी प्राप्तिविषे तथा अप्राप्तिविषे निर्विकार है तहां करेहुए कर्मके फलकी प्राप्ति हुए जो हर्ष होवै है तथा तिस फलकी अप्राप्ति हुए जो शोक होवै है सो हर्ष है कारण जिसका ऐसा जो मुखका विकासपणा है तथा सो शोक है कारण जिसका ऐसा जो मुखका मलिनपणा है तिन दोनोंका नाम विकार है ता विकारतै जो पुरुष रहित है तथा जो पुरुष केवल शास्त्रप्रमाणकरिकै ही तिस कर्मविषे प्रवृत्त हुआ है फलकरिकै अथवा रागकरिकै जो पुरुष तिस कर्मविषे प्रवृत्त हुआ नहीं, इस प्रकारका कर्त्ता पुरुष सात्त्विककर्त्ता कह्या जावै है ॥ २६ ॥

अब राजसकर्त्ताका स्वरूप वर्णन करै हैं—

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ॥
हर्षशोकान्वितः कर्त्ता राजसः परिकीर्तितः ॥२७॥

(पदच्छेदः) रागी । कर्मफलप्रेप्सुः । लुब्धः । हिंसात्मकः । अशुचिः । हर्षशोकान्वितः । कर्त्ता । राजसः । परिकीर्तितः २७

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष रागवाला है तथा कर्मके फलकी इच्छावान् है तथा लुब्ध है तथा हिंसास्वभाववाला है तथा अशुचि है तथा हर्षशोककरिकै युक्त है ऐसा कर्त्ता शिष्टपुरुषोंनैं राजसकर्त्ता कथन कऱ्या है ॥ २७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो पुरुष रागी है अर्थात् कामादिकोंकरिकै युक्त है चित्त जिसका, इसी कारणतें ही जो पुरुष तिस तिस कर्मके स्वर्गादिक फलोंकी इच्छावाला है । तथा जो पुरुष लुब्ध है अर्थात् पराये धनादिक पदार्थोंकी अभिलाषा करणेहारा है । अथवा धनवान् हुआभी जो पुरुष धर्मके वास्तै धनके खर्च करणेमें असमर्थ है ताका नाम लुब्ध है । तथा जो पुरुष हिंसात्मक है । तहां आपणे अभिप्रायकूं

प्रगटकरिकै जो दूसरेके जीविकारूप वृत्तिका छेदन करणा है ताका नाम हिंसा है। सा हिंसा है स्वभाव जिसका ताका नाम हिंसात्मक है। और आपणे अभिप्रायकूं नहीं प्रगटकरिकै दूसरेके वृत्तिका छेदन करणे-हारा पुरुष नैष्कृतिक कह्या जावै है। इतना हिंसात्मक नैष्कृतिक दोनों-विषे भेद है। सो नैष्कृतिककर्त्ता अगले श्लोकविषे कथन करणा है इति। तथा जो पुरुष अशुचि है अर्थात् शास्त्रउक्त बाह्य अंतर दोप्र-कारके शौचतें रहित है। तहां जलमृत्तिकादिकोंकरिकै शरीरकी शुद्धिकूं बाह्य शौच कहैं हैं। और मैत्रीकरुणादिक शुभवासनावोंकरिकै चित्तकूं कामक्रोधादिकोंतें रहित करणा याका नाम अंतरशौच है। तथा जो पुरुष कर्मके फलकी सिद्धिविषे तथा असिद्धिविषे हर्षशोककरिकै युक्त है इस प्रकारका कर्त्ता शिष्टपुरुषोंनैं राजसकर्त्ता कह्या है ॥ २७ ॥

अब तामसकर्त्ताका स्वरूप वर्णन करै है–

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ॥
विषादी दीर्घसूत्री च कर्त्ता तामस उच्यते ॥२८॥

(पदच्छेदः) अयुक्तः। प्राकृतः। स्तब्धः। शठः। नैष्कृतिकः। अलसः। विषादी। दीर्घसूत्री। च। कर्त्ता। तामसः। उच्यते ॥ २८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः जो पुरुष अयुक्त है तथा प्राकृत है तथा स्तब्ध है तथा शठ है तथा नैष्कृतिक है तथा अलस है तथा विषादी है तथा दीर्घसूत्री है ऐसा कर्त्ता तामसकर्त्ता कह्या जावै है ॥२८॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जो पुरुष अयुक्त है अर्थात् सर्वकालविषे विषयोंविषे चित्तकी संलग्नताकरिकै जो पुरुष करणेयोग्य कर्मविषे चित्तकी सावधानतातैं रहित है तथा जो पुरुष प्राकृत है अर्थात् मूढबालककी न्याईं जो पुरुष शास्त्रसंस्कारतें रहितबुद्धिवाला है तथा जो पुरुष स्तब्ध है अर्थात् गुरु देवता आदिकोंके आगेभी जो पुरुष नम्रभावतें रहित है तथा जो

पुरुष शठ है अर्थात् अन्य पुरुषोंकी वंचना करणेवासतै जो पुरुष अन्य प्रकारतैं अर्थकूं जानताहुआभी अन्यप्रकारतैं ही ता अर्थका कथन करै है तथा जो पुरुष नैष्कृतिक है अर्थात् यह हमारा बहुत उपकारी है या प्रकारका उपकारित्वभ्रम आपणेविषे दूसरे पुरुषका उत्पन्न करिकै तिस पुरुषकी जीविकारूप वृत्तिका छेदनकरिकै जो पुरुष आपणे स्वार्थकी सिद्धि करणेहारा है तथा जो पुरुष अलस है अर्थात् अवश्य करणेयोग्य कर्मविषेभी जो पुरुष नहीं प्रवृत्त होणेहारा है तथा जो पुरुष विषादी है अर्थात् असंतुष्ट स्वभाववाला होणेतैं जो पुरुष निरंतर अनुशोचनस्वभाववाला है तथा जो पुरुष दीर्घसूत्री है अर्थात् निरंतर सहस्रशंकावोंकरिकै युक्तअंतःकरणवाला होणेतैं जो पुरुष अत्यंत शिथिलप्रवृत्तिवाला है। तात्पर्य यह–जो कार्य एकदिनविषे करणेयोग्य है तिस कार्यकूं एकमासकरिकै भी करिसकै है अथवा नहीं भी करिसकै है इस प्रकारका कर्तापुरुष तामसकर्ता कह्या जावै है ॥ २८ ॥

तहां पूर्व उन्नीसवें श्लोकविषे (ज्ञानं कर्म) इत्यादिक वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं ज्ञान, कर्म, कर्ता इन तीनोंके सत्त्वादिकगुणोंके भेदकरिकै त्रिविधपणेके व्याख्यान करणेकी प्रतिज्ञा करीथी। सो तिन ज्ञानादिकोंका त्रिविधपणा (सर्वभूतेषु येनैकम्) इत्यादिक नव श्लोकोंकरिकै प्रतिपादन कऱ्या। अब (मुक्तसंगोनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।) इस पूर्वउक्त वचनविषे सूचनकरी जा बुद्धि धृति है तिस बुद्धि धृति दोनोंके त्रिविधपणेके कथनकी प्रतिज्ञाकूं श्रीभगवान् कहैं हैं–

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ॥
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनंजय ॥ २९ ॥

(पदच्छेदः) बुद्धेः। भेदम्। धृतेः। च। एव। गुणतः। त्रिविधम्। शृणु। प्रोच्यमानम्। अशेषेण। पृथक्त्वेन। धनंजय॥२९॥

(पदार्थः) हे धनंजय ! बुद्धिका तथा धृतिका सत्त्वादिकगुणकरिकै त्रिविध ही भेद मैं परमेश्वरनैं तुम्हारे प्रति समग्र भिन्नभिन्नकरिकै कथन करीता है तिसकूं तूं श्रवण कर ॥ २९ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! निश्चयादिरूप वृत्तियोंवाली जा बुद्धि है तथा तिस बुद्धिकी वृत्तिविशेषरूप जा धृति है तिस बुद्धिका तथा तिस धृतिका सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणोंके भेदकरिकै सात्त्विक, राजस, तामस यह तीनप्रकारका ही भेद होवै है । सो तीन प्रकारका भेद आलस्यादिक दोषतैं रहित तथा परमआप्तरूप मैं परमेश्वरनैं तैं अर्जुनके प्रति अशेषकरिकै तथा पृथक्पणेकरिकै कथन करीता है अर्थात् समग्ररूपकरिकै तथा यह ग्रहणकरणेयोग्य है यह नहीं ग्रहणकरणेयोग्य है या प्रकारके विवेककरिकै कथन करीता है । ऐसे बुद्धिके तीनप्रकारके भेदकूं तथा धृतिके तीनप्रकारके भेदकूं तूं श्रवण कर । अर्थात् तिस त्रिविधभेदके श्रवणकरणेकूं तूं सावधान होउ । तहां (हे धनंजय) इस संबोधन करिकै दिग्विजयविषे अर्जुनके प्रसिद्ध महिमाकूं सूचन करताहुआ श्रीभगवान् तिस अर्जुनकूं तिस त्रिविधभेदके श्रवणकरणेविषे उत्साह करावताभया इति । इहां यह संदेह प्राप्त होवै है । (बुद्धेर्भेदम्) इस वचनविषे श्रीभगवान्नें जो बुद्धि यह शब्द कथन कऱ्या है तिस बुद्धिशब्दकरिकै श्रीभगवान्कूं केवल वृत्तिमात्र अभिप्रेत है । अथवा वा बुद्धिशब्दकरिकै वृत्तिवाला अंतःकरण अभिप्रेत है । तहां बुद्धिशब्दकरिकै केवल वृत्तिमात्र अभिप्रेत है इस प्रथमपक्षविषे तिस वृत्तिरूप बुद्धितैं ज्ञानका स्वरूप पृथक् कह्या चाहिये । और बुद्धिशब्दकरिकै वृत्तिवाला अंतःकरण अभिप्रेत है इस द्वितीयपक्षविषे तिस वृत्तिवाले अंतःकरणकूं ही 'कर्त्ताका स्वरूप पृथक् कह्या चाहिये । नहीं तौ पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवैगी । किंवा वृत्तियोंवाले अंतःकरणकूं ही कर्तापणा होणेतें ज्ञान धृति इन दोनोंका पृथक् कथन करणा व्यर्थही है । जो कोई यह कहै इच्छादिक वृत्तियोंके परिसंख्यावासतै तिस ज्ञान'धृति दोनोंका पृथक् कथन है ।

सो यह कहणाभी संभवता नहीं । काहेतैं वृत्तियोंवाले अंतःकरणकी त्रिविधपणेके कथन करिके ही तिस अंतःकरणके इच्छादिक सर्ववृत्तियोंका त्रिविधपणा इहां विवक्षित है । यातैं इच्छादिक वृत्तियोंके परिसंख्यावासतैभी तिस ज्ञान धृति दोनोंका पृथक् कथन संभवता नहीं इति । इस प्रकारके संदेहके प्राप्तहुए इहां या प्रकारका निर्णय करणा । पूर्व जो कर्ताका कथन कऱ्याथा सो अंतःकरणउपहित चिदाभासका नाम कर्त्ता है और इहां तौ तिस उपहितचिदाभाससे पृथक् करीहुई उपाधिमात्र ही कारणरूपकरिके विवक्षित है सर्वत्र करणउपहितकूं ही कर्त्तापणा होवै है । यद्यपि (कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव) इस श्रुतिविषे कथन करीहुई कामादिक सर्ववृत्तियोंका त्रिविधपणाही विवक्षित है, तथापि इहां बुद्धि धृति इन दोनोंका जो पृथक्पणा कथन कऱ्याहै सो ज्ञानशक्ति क्रियाशक्ति इन दोनोंके उपलक्षणवासतै कथन कऱ्याहै । कोई इच्छादिक वृत्तियोंके परिसंख्यावासतै कथन कऱ्या नहीं यातै इहां किंचिन्मात्रभी पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै नहीं ॥ २९ ॥

तहां प्रथम (प्रवृत्तिं च) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै बुद्धिका त्रिविधपणा कथन करैहैं । ताके विषेभी प्रथम सात्त्विकबुद्धिका स्वरूप कथन करैहैं—

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ॥
बंधं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिःसा पार्थ सात्त्विकी॥३०॥

(पदच्छेदः) प्रवृत्तिम् । च । निवृत्तिम् । च । कार्याकार्ये । भयाभये । बंधम् । मोक्षम् । च । या । वेत्ति । बुद्धिः । सा । पार्थ । सात्त्विकी ॥ ३० ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! जो बुद्धि प्रवृत्तिकूं तथा निवृत्तिकूं तथा कार्यअकार्यकूं तथा भयअभयकूं तथा बंधकूं तथा मोक्षकूं जानैहै सा बुद्धि सात्त्विकी कहीजावैहै ॥ ३० ॥

भा० टी०—इहां कर्ममार्गका नाम प्रवृत्ति है । और संन्यासमार्गका नाम निवृत्ति है । और तिस प्रवृत्तिमार्गविषे स्थित होइके जो कर्मोंका करणा है ताका नाम कार्य है । और तिस निवृत्तिमार्गविषे स्थित होइके जो कर्मोंका नहीं करणाहै ताका नाम अकार्य है और तिस प्रवृत्तिमार्गविषे जो गर्भवासादिक दुःख है ताका नाम भय है । और तिस निवृत्तिमार्गविषे जो तिन गर्भवासादिक दुःखोंका अभाव है ताका नाम अभय है । और तिस प्रवृत्तिमार्गविषे मिथ्याज्ञानकृत जो कर्तृत्वादिक अभिमान है ताका नाम बंध है । और तिस निवृत्तिमार्गविषे जो तत्त्वज्ञानकृत अज्ञानका तथा ताके कार्यका अभाव है ताका नाम मोक्ष है । ऐसे प्रवृत्तिकूं तथा निवृत्तिकूं तथा कार्यकूं तथा अकार्यकूं तथा भयकूं तथा अभयकूं तथा बंधकूं तथा मोक्षकूं जा बुद्धि जानैहै सा प्रमाणजन्यनिश्चयवाली बुद्धि सात्त्विकी बुद्धि कहीजावैहै । यद्यपि तिन प्रवृत्ति निवृत्ति आदिकोंके ज्ञानविषे बुद्धिकूं करणरूपता ही है कर्त्तारूपता है नहीं किंतु तिस बुद्धिवाले पुरुषकूं ही कर्त्तारूपता है । यातैं (यया बुद्ध्या पुरुषः वेत्ति) इस प्रकारकाही कथन करणा उचित था तथापि तिस करणरूप बुद्धिविषे कर्तृत्वके उपचारतैं श्रीभगवान्नैं (या बुद्धिः वेत्ति) इस प्रकारका वचन कथन कर्‍याहै । इस प्रकारकी रीति आगेभी जानिलेणी इति । और इस श्लोकविषे श्रीभगवान्नैं बंध मोक्ष इन दोनोंका प्रवृत्ति आदिकोंके अंतविषे कथन कर्‍याहै यातैं इहां तिस बंध मोक्षविषयक ही तिन प्रवृत्ति आदिकोंका व्याख्यान कर्‍याहै ॥ ३० ॥

अब राजसी बुद्धिका स्वरूप वर्णन करैहैं—

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ॥
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी॥३१॥

(पदच्छेदः) यया । धर्मम् । अधर्मम् । च । कार्यम् । च अकार्यम् । एव । च । अयथावत् । प्रजानाति । बुद्धिः । सा । पार्थ । राजसी ॥ ३१ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! यह पुरुष जिसे बुद्धिकरिकै धर्मकूं तथा अधर्मकूं तथा कार्यकूं तथा अकार्यकूं अयथावत् ही जानताहै सा बुद्धि राजसी कहीजावैहै ॥ ३१ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रकरिकै विहित जे अग्निहोत्रादिक कर्म हैं तिनका नाम धर्म है । और तिस श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रकरिकै निषिद्ध जे हिंसादिक कर्म हैं तिनका नाम अधर्महै । यह धर्म अधर्म दोनों अदृष्ट अर्थकी ही प्राप्ति करणेहारेहैं । ऐसे अदृष्ट अर्थकी प्राप्ति करणेहारे धर्म अधर्म दोनोंकूं तथा दृष्ट अर्थकी प्राप्ति करणेहारे कार्य अकार्य इन दोनोंकूं यह पुरुष जिसबुद्धिकरिकै अयथावत् ही जानताहै अर्थात् यह क्या है इसप्रकारके अनिश्चयकूं अथवा यह वस्तु इसप्रकारकी है वा अन्य प्रकारकी है इस प्रकारके संशयकूं यह पुरुष जिस बुद्धिकरिकै प्राप्त होवैहै सा बुद्धि राजसी बुद्धि कही जावैहै ॥ ३१ ॥

अब तामसी बुद्धिका स्वरूप वर्णन करैं हैं—

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ॥
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥३२॥

(पदच्छेदः) अधर्मम् । धर्मम् । इति । या । मन्यते । तमसा । आवृता । सर्वार्थान् । विपरीतान् । च । बुद्धिः । सा । पार्थ । तामसी ॥ ३२ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! तमकरिकै आवृतहुई जो बुद्धि अधर्मकूं धर्म इसप्रकार मानैहै तथा दूसरेभी सर्वअर्थोंकूं विपरीत ही मानैहै सा बुद्धि तामसी कहीजावैहै ॥ ३२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! विशेषदर्शनका विरोधी जो तमरूप दोष है तिस तमरूप दोषकरिकै आवृत हुई जा बुद्धि अधर्मकूं धर्मरूपकरिकै

मानै है अर्थात् अदृष्ट अर्थकी प्राप्ति करणेहारे सर्व कर्मोंविषे जा बुद्धि विपर्ययकूं प्राप्त होवैहै । तथा दृष्ट है प्रयोजन जिनोंका ऐसे जे सर्व ज्ञेय-पदार्थ हैं तिन सर्व ज्ञेयपदार्थोंकूंभी जा बुद्धि विपरीत ही मानै है अर्थात् सुखादिकोंके हेतुभूत पदार्थोंकूंभी जा बुद्धि दुःखादिकोंका हेतुभूतही मानै है, ऐसी विपर्ययवाली बुद्धि तामसी बुद्धि कहीजावै है ॥ ३२ ॥

तहां (प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै बुद्धिका त्रिविधपणा कथन कऱ्या । अब (धृत्या यया) इत्यादिक तीन श्लोकों-करिकै धृतिके त्रिविधपणेकूं कथन करैं हैं । तहां प्रथम सात्त्विक धृतिका स्वरूप वर्णन करैं हैं—

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेंद्रियक्रियाः ॥
योगेनाऽव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ३३

(पदच्छेदः) धृत्या । यया । धारयते । मनःप्राणेंद्रियक्रियाः । योगेन । अव्यभिचारिण्या । धृतिः । सा । पार्थ । सात्त्विकी ॥ ३३ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! योगकरिकै व्याप्त जिस धृतिकरिकै यह पुरुष मनप्राणइंद्रियोंके क्रियावोंकूं निरुद्धकरै है सा धृति सात्त्विकी कही-जावैहै ॥ ३३ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! समाधिरूप योग है तिस योगकरिकै व्याप्त जा धृति है ऐसी जिस धृतिकरिकै यह अधिकारी पुरुष मनकी चेष्टारूप क्रियावोंकूं तथा प्राणोंकी चेष्टारूप क्रियावोंकूं तथा इंद्रियोंकी चेष्टारूप क्रियावोंकूं धारण करैहै अर्थात् जिस धृतिकरिकै यह अधिकारी पुरुष तिन मन प्राण इंद्रियोंके चेष्टारूप क्रियावोंकूं शास्त्रनिषिद्धमार्गतैं निरुद्ध करै है । तथा जिस धृतिके विद्यमान हुए इस अधिकारी पुरुषकूं अवश्यक-रिकै समाधि होवैहै । तथा जिस धृतिकरिकै धारण करी हुई मन प्राण इंद्रियादिकोंकी क्रिया शास्त्रविधिका उल्लंघनकरिकै शास्त्रप्रतिपादित अर्थतैं अन्य अर्थकूं विषय करती नहीं । इस प्रकारकी सा धृति सात्त्विकी धृति कही जावै है ॥ ३३ ॥

अब राजसी धृतिका स्वरूप वर्णन करै हैं–

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन ॥
प्रसंगेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥३४॥

(पदच्छेदः) यया । तु । धर्मकामार्थान् । धृत्या । धारयते । अर्जुन । प्रसगेन । फलाकांक्षी । धृतिः । सा । पार्थ । राजसी३४

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः कर्तृत्वादिक अभिनिवेशकरिकै फलकी इच्छावान् हुआ यह पुरुष जिस धृतिकरिकै धर्म काम अर्थ इन तीनोंकूं ही धारणकरै हे पार्थ ! सा धृति राजसी कहीजावै है ॥ ३४ ॥

भा० टी०–इहां (यया तु) इस वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तु शब्द पूर्वउक्त सात्त्विक धृतितैं इस राजसधृतिविषे भिन्नपणेकूं कथन करै है । हे अर्जुन ! कर्तृत्व आदिक अभिनिवेशकरिकै स्वर्गादिक फलकी इच्छा करता हुआ यह पुरुष जिस धृतिकरिकै धर्मकूं तथा कामकूं तथा अर्थकूं धारण करै है अर्थात् धर्म काम अर्थ यह तीनोंही हमारेकूं अवश्यकरिकै संपादन करणे योग्य हैं । इस प्रकारतैं तिस धर्म काम अर्थकूं ही नित्यकर्तव्यतारूप करिकै निश्चय करै है । कदाचित्भी मोक्षके संपादन करणेका निश्चय करता नहीं । हे पार्थ ! इस प्रकारकी सा धृति राजसी धृति कही जावै है । इहां यज्ञादिक कर्मोंजन्य पुण्यरूप अपूर्वका नाम धर्म है । और विषयजन्य सुखका नाम काम है । और धनादिक पदार्थोंका नाम अर्थ है ॥ ३४ ॥

अब तामसधृतिका स्वरूप वर्णन करै है–

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च ॥
न विमुंचति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी॥३५॥

(पदच्छेदः) यया । स्वप्नम् । भयम् । शोकम् । विषादम् । मदम् । एव । च । न । विमुञ्चति । दुर्मेधाः । धृतिः । सा । पार्थ । तामसी ॥ ३५ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! दुर्बुद्धिपुरुष जिसै धृतिकरिकै स्वप्नकूं तथा भयकूं तथा शोककूं तथा विषादकूं तथा मेदकूं कदाचित्भी नहीं परित्याग करैहै सो धृति तामसी कहीजावैहै ॥ ३५ ॥

भा० टी०—इहां निद्राका नाम स्वप्न है। और प्रतिकूल वस्तुके दर्शनजन्यभासका नाम भय है । और इष्टवस्तुके वियोगजन्य जो संताप है ताका नाम शोक है । और इंद्रियोंकी जा व्याकुलता है ताका नाम विषाद है । और शास्त्रनिषिद्ध विषयोंके सेवन करणेकी जा अभिमुखता है ताका नाम मद है । ऐसे स्वप्नकूं तथा भयकूं तथा शोककूं तथा विषादकूं तथा मदकूं यह दुष्ट बुद्धिवाला अविवेकी पुरुष जिस धृतिकरिकै कदाचित्भी नहीं परित्याग करै है। किंतु जिस धृतिकरिकै यह दुर्बुद्धिपुरुष तिन स्वप्नभयादिकोंकूंही कर्त्तव्यतारूप करिकै निश्चय करैहै। सा धृति शिष्टपुरुषोंनैं तामसीधृति कहीहै ॥ ३५ ॥

तहां पूर्व क्रियावोंका तथा कर्त्तादिक कारकोंका सत्त्वादिक तीन गुणोंके भेदकरिकै सात्त्विक, राजस, तामस यह त्रिविधपणा कथन कऱ्या । अब तिन क्रियावोंकरिकै जन्य सुखरूप फलके त्रिविधपणेकूं श्रीभगवान् च्यारि श्लोकोंकरिकै कथन करै हैं । तहां प्रथम अर्द्ध-श्लोककरिकै तिससुखरूप फलके त्रिविधपणेकी प्रतिज्ञाकरिकैसार्द्धश्लोककरिकै सात्त्विक सुखका स्वरूप वर्णन करैहै—

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ॥
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखांतं च निगच्छति ॥ ३६॥

(पदच्छेदः) सुखम् । तु । इदानीम् । त्रिविधम् । शृणु । मे । भरतर्षभ । अभ्यासात् । रमंते । यत्र । दुःखांतम् । च । निगच्छति ॥ ३६ ॥

(पदार्थः) हे भरतवंशविषे श्रेष्ठ अर्जुन ! पुनः अबी हमारे वचनोंतें त्रिविधं सुखकूं तू श्रवणकर हे अर्जुन ! जिस समाधि सुख-

विषे यह पुरुष अभ्यासतैं रमण करै है तथा दुःखके अन्तकूं प्राप्त होवै है ॥ ३६ ॥

भा० टी०-हे भरतवंशविषे श्रेष्ठ अर्जुन ! अबी तूं मैं परमेश्वरके वचनतैं सात्त्विक, राजस, तामस इस भेदकरिकै सुखके त्रिविधपणेकूं श्रवण कर अर्थात् यह सुख परित्याग करणे योग्य है यह सुख ग्रहण करणे योग्य है इस प्रकारके विवेकवासतै तूं अन्य संकल्पोंका परित्याग करिकै ताके श्रवणविषे आपणे मनकूं स्थित कर । इहां (हे भरतर्षभ) इस संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं तिस अर्जुनविषे मनके स्थिरता करणेकी योग्यता सूचन करी इति । इस प्रकार अर्द्धश्लोककरिकै तिस सुखके त्रिविधपणेके कथनकी प्रतिज्ञा करी । अब (अभ्यासाद्रमते यत्र) इत्यादिक सार्द्धश्लोककरिकै श्रीभगवान् प्रथम सात्त्विकसुखका स्वरूप वर्णन करैं हैं । हे अर्जुन ! यह यमनियमादिक साधनसंपन्न अधिकारीपुरुष जिस समाधिसुखविषे अभ्यासतैं रमण करै है अर्थात् अत्यंत परिचयतैं परितृप्त होवै है जैसे विषयजन्य सुखविषे यह पुरुष शीघ्रही तृप्त होवै है तैसे जिस समाधि सुखविषे यह अधिकारी पुरुष शीघ्रही परितृप्त होता नहीं किंतु निरन्तर दीर्घकाल सत्कारपूर्वक सेवन करेहुए अत्यंत दृढपरिचयरूप अभ्यासतैं ही परितृप्त होवै है। जिस समाधि सुखविषे रमण करता हुआ यह अधिकारी पुरुष सर्व दुःखोंके अवसानरूप अन्तकूं प्राप्त होवै है। अर्थात् जैसेविषयजन्यसुखके अंतविषे यह पुरुष महान्दुःखकूं प्राप्तहोवैहैतैसे जिससुखके अंतविषे दुःखकीप्राप्ति होवी नहीं किंतु सर्वदुःखोंका परिअवसान रूपअंतही होवै है ॥ ३६ ॥

अब (दुखांतं च निगच्छति) इसवचनके अर्थकूं स्पष्टकरिकै वर्णनकरैं हैं-

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ॥
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्॥३७॥

(पदच्छेदः) यत्। तत्। अग्रे। विषम्। इव। परिणामे। अमृतोपमम्। तत्। सुखम्। सात्त्विकम्। प्रोक्तम्। आत्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ ३७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो सुख प्रथमप्रारंभविषे विषकी न्याई होवै है तथा परिणामविषे अमृतके तुल्य होवै है तथा आत्मविषयक बुद्धिके प्रसादतैं जन्य होवै है सो सुख योगीपुरुषोंनैं सात्त्विक कह्या है ॥ ३७ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जो समाधिसुख अग्रे विषकी न्याई होवै है अर्थात् ज्ञानवैराग्यकरिकै ध्यानसमाधिके आरंभकालविषे अत्यंत आयासकरिकै साध्यहोणेतैं प्रसिद्ध विषकी न्याई जो सुख द्वेषविशेषकी प्राप्ति करणेहारा है। तथा जो सुख परिणामविषे अमृतके तुल्य है अर्थात् तिस ज्ञानवैराग्यके परिपाकविषे जो सुख अमृतकी न्याई अत्यंत प्रीतिका विषय होवै है। तथा जो सुख आत्मबुद्धिप्रसादजन्य है। तहां आत्माकूं विषयकरणेहारी जा बुद्धि है ताका नाम आत्मबुद्धि है। ता आत्मबुद्धिका जो प्रसाद है अर्थात् निद्रा आलस्यादिक दोषोंतैं रहित होइकै जा स्वस्थतारूपकरिकै स्थिति है ताका नाम आत्मबुद्धिप्रसाद है। ऐसे आत्मविषयक बुद्धिके प्रसादतैं जो सुख उत्पन्न होवै है। राजससुखकी न्याई जो सुख विषय इंद्रियके संयोगतैं जन्य है नहीं। तथा तामससुखकी न्याई जो सुख निद्रा आलस्यादिकोंकरिकै भी जन्य है नहीं। इस प्रकारका अनात्मबुद्धिकी निवृत्तिकरिकै आत्मविषयक बुद्धिके प्रसादतैं जन्य जो समाधिका सुख है सो सुख योगीपुरुषोंनैं सात्त्विकसुख कह्या है इति। इहां केईक विद्वान् पुरुष (सुखं त्विदानीम्) इस श्लोकका यह अर्थ करै है। यह पुरुष पुनःपुनः सेवनरूप अभ्यासतैं जिस सात्त्विक सुखविषे वा राजससुखविषे वा तामससुखविषे रतिकूं प्राप्त होवै है। तथा जिस रतिकरिकै यह पुरुष पुत्रशोकादिरूप दुःखकेभी अवसानरूप अन्तकूं प्राप्त होवै है ताका नाम सुख है। सो सुख सत्त्वादिकगुणोंके भेदकरिकै तीन प्रकारका होवै है। तिस त्रिविधसुखकूं त

अबी श्रवण कर। इस प्रकारका तत् इस पदका अध्याहारकरिकै संपूर्णश्लोकका अन्वय कऱ्या है । तहां इस श्लोकके उत्तरार्द्धकरिकै तौ सामान्यतैं सुखमात्रका लक्षण कथन कऱ्या है । और इस श्लोकके पूर्वार्द्धकरिकै तिंस सुखके त्रिविधपणेके कथन करणेकी प्रतिज्ञा करी है । और (यत्तदग्रे विषमिव) इस श्लोककरिकै सात्त्विकसुखका लक्षण कथन कऱ्या है। श्रीभाष्यकारोंकाभी इसी प्रकारका अभिप्राय है ॥ ३७ ॥

अब राजससुखका स्वरूप वर्णन करैं हैं—

विषयेंद्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ॥
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥ ३८॥

(पदच्छेदः) विषयेंद्रियसंयोगात् । यत् । तत् । अग्रे । अमृतोपमम् । परिणामे । विषम् । इव । तत् । सुखम् । राजसम् । स्मृतम् ॥ ३८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो सुख विषयइंद्रियके संयोगतै जन्य है तथा प्रथम आरंभविषे अमृतके समान है तथा परिणामविषे विषके तुल्य है सो सुख राजस कह्या है ॥ ३८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन । जो सुख शब्दादिकविषयोंके तथा श्रोत्रादिक इंद्रियोंके सम्बन्धतैंही जन्य है । पूर्वउक्त आत्मविषयक बुद्धिके प्रसादतैं जो सुख जन्य है नहीं । तथा जो सुख प्रथम आरंभविषे मनइंद्रियोंके संयमादिरूप क्लेशके अभावतैं भोक्तापुरुषकूं अमृतके समान होवै है तथा जो सुख परिणामकालविषे तिस भोक्तापुरुषकूं इस लोकके दुःखोंका तथा परलोकके दुःखोंका प्रापक होणेतैं विषके समान है अर्थात् जैसे मरणका साधनरूप विष लोकोंकूं प्रतिकूल होवै है तैसे जो विषयसुख परिणामकालविषे तिस भोक्तापुरुषकूं अत्यंत प्रतिकूल होवै है ऐसा अत्यंत प्रसिद्ध जो स्रक्चंदनवनितासंगादिजन्य विषयसुख है सो विषयजन्य सुख शिष्टपुरुषोंनें राजस सुख कह्या है ॥ ३८ ॥

अब तामस सुखका स्वरूप वर्णन करै हैं–

यदग्रे चानुबंधे च सुखं मोहनमात्मनः ॥
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ ३९ ॥

(पदच्छेदः) यत् । अग्रे । च । अनुबंधे । च । सुखम् । मोहनम् । आत्मनः । निद्रालस्यप्रमादोत्थम् । तत् । तामसम् । उदाहृतम् ॥ ३९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो सुख प्रथमआरंभविषे तथा परिणामविषे बुद्धिकूं मोह करणेहारा है तथा निद्राआलस्यप्रमादतें उत्पन्नहुआ है सो सुख तामस कह्या है ॥ ३९ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जो सुख प्रथम आरंभविषे तथा परिणामविषे बुद्धिकूं मोहकी प्राप्ति करणेहारा है।तथा जो सुख निद्रा,आलस्य,प्रमाद इन तीनोंतैं ही उत्पन्नहुआ है । तहां निद्रा आलस्य यह दोनों तौ प्रसिद्ध ही है । और कर्तव्यअर्थके निश्चयतें विना जो केवल मनोराज्यमात्र है ताका नाम प्रमाद है । ऐसे निद्रा आलस्य प्रमादतें जो सुख उत्पन्न हुआ है । जो सुख सात्त्विक सुखकी न्याई आत्मविषयक बुद्धिके प्रसादतैंभी जन्य नहीं है । तथा राजस सुखकी न्याई जो सुख विषयइन्द्रियके संयोगतैं भी जन्य नहीं है । ऐसा निद्रा आलस्य प्रमादजन्य सुख शिष्टपुरुषोंनैं तामस सुख कथन कऱ्या है॥ ३९ ॥

अब पूर्व सात्त्विक, राजस तामस इस त्रिविधपणेकरिकै नहीं कथन करे हुएभी पदार्थोंका संग्रह करावते हुए श्रीभगवान् इस पूर्वउक्तप्रकारके अर्थकूं उपसंहार करै हैं–

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ॥
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥४०॥

(पदच्छेदः) न । तत् । अस्ति । पृथिव्याम् । वा । दिवि । देवेषु । वा । पुनः । सत्त्वम् । प्रकृतिजैः । मुक्तम् । यत् । एभिः । स्यात् । त्रिभिः । गुणैः ॥ ४० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पदार्थ प्रकृतिजन्य इन पूर्वउक्त तीन गुणोंकरिके रहित होवै सो पदार्थ इस पृथिवीविषे अथवा स्वर्गविषे वा देवतावोंविषे नहीं विद्यमान है ॥ ४० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणोंकी साम्य-अवस्थारूप जा प्रकृति है तिस प्रकृतितैं जन्य जे सात्त्वादिक तीन गुण हैं अर्थात् तिस प्रकृतितैं वैषम्य अवस्थाकूं प्राप्तहुए जे सत्त्वादिक तीन गुणहैं। तहां सत्त्व, रज, तम यह तीनगुणरूप ही प्रकृति होवै है। यातैं तिन गुणोंविषे साक्षात् प्रकृतिजन्यत्व संभवता नहीं किंतु तिन गुणोंकी साम्य-अवस्थारूप प्रकृतितैं जो तिन सत्त्वादिक गुणोंकी वैषम्य अवस्था है सा वैषम्य अवस्थाही तिन गुणोंकीउत्पत्ति है। अथवा इहां प्रकृतिशब्दकरिकै अनिर्वचनीय मायाका ग्रहण करणा।तिस मायारूप प्रकृति करिकै जन्य कहिये कल्पित जे सत्त्वादिक तीन गुण हैं। अथवा प्रकृतिशब्दकरिकै जन्मांतरके धर्मअधर्मके संस्कारोंका ग्रहण करणा। तिस संस्काररूप प्रकृतितैं जन्य जे सत्त्वादिक तीन गुण है। ऐसे प्रकृतिजन्य तथा बंधके हेतुरूप सत्त्वादिक तीन गुणोंकरिकै रहित जो प्राणीरूप वा अप्राणीरूप सत्त्व कहिये पदार्थ होवै सो प्राणीरूप वा अप्राणीरूप पदार्थ इस पृथिवीविषे स्थित मनुष्यादिकोंविषे तथा स्वर्गविषे स्थित देवतावोंविषे है नहीं अर्थात् किसीभी लोकविषे सत्त्वादिक तीनगुणोंतै रहित कोईभी अनात्मवस्तु है नहीं। सर्वही अनात्मवस्तु तीन गुणोंकरिकै युक्त है ॥ ४० ॥

तहां सत्त्व, रज, तम यह तीन गुणात्मक क्रियाकारकफलस्वरूप सर्वही संसार मिथ्याज्ञानकरिकै कल्पित अनर्थरूप ही है यह अर्थ पूर्व चतुर्दश अध्यायविषे कथन कऱ्या था सो पूर्वउक्त अर्थ इहां श्रीभगवाननें उपसंहार कऱ्या। और पूर्व पंचदश अध्यायविषे तौ वृक्षरूप कल्पनाकरिकै तिसी अनर्थरूप संसारकूं कथन करिकै (अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसंगशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा । ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्त्तंति भूयः ॥ इस श्लोककरिकै विषयोंविषे वैराग्यरूप

असंगशस्त्रकरिकैतिस संसारवृक्षका छेदन करिकै इस अधिकारी पुरुषनैं परमात्मारूप पद अन्वेषण करणेयोग्य है, यह अर्थ कथन कऱ्या था। तहां सर्वसंसारकूं त्रिगुणात्मक होणेतैं तिस त्रिगुणात्मक संसारवृक्षका कैसे छेदन होवैगा। और जिस असंगशस्त्रकरिकै इस संसारवृक्षका छेदन होवै है, तिस असंगशस्त्रकी प्राप्ति ही महादुर्घट है। इस प्रकारकी शंकाके प्राप्तहुए आपणे आपणे अधिकारके अनुसार वेदभगवान्नैं विधानकरे जे वर्णआश्रमके धर्म हैं तिन धर्मोंकरिकै प्रसन्नहुए परमेश्वरतैं इस अधिकारी पुरुषकूं तिस असंगशस्त्रकी प्राप्ति होवैहै। इस अर्थके कहणेवासतै तथा इतनाही सर्ववेदोंका अर्थ है सो अर्थ परमपुरुषार्थकी इच्छावान् अधिकारी पुरुषनैं अवश्यकरिकै अनुष्ठान करणेयोग्य है। इस प्रकारतैं इस गीताशास्त्रविषे सर्ववेदोंके अनर्थका उपसंहार करणेयोग्य है इस अर्थके कहणेवासतै इसतै उत्तरप्रकरणका आरंभ करैहै। तहां प्रथम सूत्ररूप श्लोक कथन करैहै–

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप ॥
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥ ४१ ॥

(पदच्छेदः) ब्राह्मणक्षत्रियविशाम् । शूद्राणाम् । च । परंतप कर्माणि । प्रविभक्तानि । स्वभावप्रभवैः । गुणैः ॥ ४१ ॥

(पदार्थः) हे परंतप ! ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनवर्णोंके तथा शूद्रोंके कर्म स्वभावजन्य गुणोंकरिकै पृथक् पृथक् व्यवस्थित हैं तिनोंकूं तूं श्रवण कर ॥ ४१ ॥

भा० टी०–हे परंतप ! अर्थात् हे अंतर्बाह्यशत्रुवोंकूं संतापकी प्राप्ति करणेहारा अर्जुन ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनोंके तथा शूद्रोंके कर्म परस्पर भिन्न भिन्न हुए स्थित हैं। इहां ब्राह्मणक्षत्रियविशाम्) इन तीनों पदोंका जो समास कऱ्या है सो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णोंविषे द्विजपणेकरिकै वेदोंका अध्ययन अग्निहोत्र इत्यादिक तुल्य धर्मोंके कथ

करणेवासतै और (शूद्राणाम्) इस वचनकरिकै ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णोंतै शूद्रोंका जो पृथक् कथन कऱ्या है सो तिन शूद्रोंविषे एकजातिपणेकरिकै वेदके अनधिकारीपणेके जनावणेवासतै है इति । यह वार्त्ता वसिष्ठमुनिनैं भी कथन करी है । तहां वसिष्ठवचन-(चत्वारो वर्णा ब्राह्मणक्षत्त्रियवैश्यशूद्रास्तेषां त्रयो वर्णा द्विजातयो ब्राह्मणक्षत्त्रियवैश्यास्तेषां—मातुरग्रे हि जननं द्वितीयं मौंजिबंधने । अत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते इति ॥) अर्थ यह—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह च्यारि वर्ण कहे जावैं हैं । तिन च्यारि वर्णोंविषे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यह तीन वर्ण तौ द्विजाति कहेजावैं है । तहां दो मातापितातैं जिसका जन्म होवै ताकूं द्विजाति कहै हैं तथा द्विज कहैं हैं। तहां इन ब्राह्मणादिक तीन वर्णोंका प्रथम जन्म तौ लोकप्रसिद्ध पितामातातैं होवै है और दूसरा जन्म तौ मौंजिबंधनकर्मविषे होवे है । तहां तिस द्वितीयजन्मविषे इन ब्राह्मणादिक तीन वर्णोंकी सावित्री माता होवै है । और उपदेश कर्त्ता आचार्य पिता होवै है इति । इस प्रकारके उत्पत्तिके स्थानविशेषते भी तिन च्यारि वर्णोंका विभागही सिद्ध होवै है। तहां श्रुति—(ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः । ऊरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत इति ॥) अर्थ यह—इस परमेश्वरके मुखस्थानतें ब्राह्मण उत्पन्न होते भये है और बाहुस्थानतै क्षत्रिय उत्पन्न होते भये है। और ऊरुस्थानतें वैश्य उत्पन्न होतेभये है । और दोनों पादोंतैं शूद्र उत्पन्न होतेभये हे । इस प्रकारका वर्णोंका विभाग अन्य श्रुतिविषेभी कथन कऱ्या है। तहां श्रुति—(गायत्र्या ब्राह्मणमसृजत्त । त्रिष्टुभा राजन्यम् । जगत्या वैश्यं, न केनचिच्छंदसा शूद्रमिति ॥) अर्थ यह—(परमेश्वर गायत्रीनामाछन्दकरिकै ब्राह्मणकूं उत्पन्न करता भया और त्रिष्टुभ्नामा छंदकरिकै क्षत्रियकूं उत्पन्न करता भया।और जगतीनामा छंदकरिकै वैश्यकूं उत्पन्न करता भया।और शूद्रकूं किसीभी छन्दकरिकै नहीं उत्पन्न करता भया इति । और (" शूद्रश्चतुर्थो वर्ण एकजातिः ।) अर्थ

यह—ब्राह्मणादिक तीन वर्णोंकी अपेक्षाकरिकै शूद्र चतुर्थ वर्ण कह्याजावै है सो शूद्र एकही जन्मवाला होवै है द्वितीय जन्मवाला होवै नहीं इति। इस प्रकारतैं गौतम ऋषिभी तिन च्यारि वर्णोंके विभागकूं कथन करता भया है इति । हे अर्जुन ! इस प्रकारके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इंन च्यारिवर्णोंके कर्म परस्पर भिन्न भिन्न हुए स्थित हैं । शंका—हे भगवन् ! तिन च्यारि वर्णोंके कर्म किनोंकरिकै भिन्न भिन्न हुए स्थित हैं ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् तिन कर्मोंके भिन्नभिन्नपणेविषे निमित्तकूं कथन करें हैं (स्वभावप्रभवैर्गुणैः इति ।) हे अर्जुन ! ब्राह्मणत्व क्षत्रियत्वादिकरूप स्वभावोंका प्रभव कहिये हेतुभूत जे सत्त्वादिक गुण हैं तिन सत्त्वादिक गुणोंकरिकै ही ते च्यारि वर्णोंके कर्म भिन्नभिन्न हुए स्थित हैं । सो प्रकार दिखावैं हैं । तहां ब्राह्मणस्वभावका तौ प्रशांतरूप होणेतैं सत्त्वगुणही हेतुभूत है । और क्षत्रियस्वभावका तौ ईश्वरस्वभाववाला होणेतैं सत्त्वउपसर्जन रजोगुणही हेतुरूप है । और वैश्य स्वभावका तौ इच्छास्वभाववाला होणेतैं तमउपसर्जन रजोगुणही हेतुरूप है । और शूद्रस्वभावका तौ मूढस्वभाववाला होणेतैं रजउपसर्जन तमोगुणही हेतुरूप है । इहां उपसर्जन नाम गौणका है इति । अथवा माया नामा प्रकृतिका नाम स्वभाव है । तिस मायारूप उपादानकारणतैं प्रभव कहिये उत्पत्ति है जिन गुणोंकी तिन सत्त्वादिक गुणोंका नाम स्वभावप्रभव गुण हैं । ऐसे स्वभावप्रभव गुणोंकरिकै ते च्यारिवर्णोंके कर्म भिन्नभिन्न हुए स्थित हैं । अथवा जो पूर्वजन्मका संस्कार इस वर्त्तमान जन्मविषे आपणे फल देणेकी अभिमुखता करिके अभिव्यक्तिकूं प्राप्त हुआ है ता संस्कारका नाम स्वभाव है। सो संस्काररूप स्वभाव निमित्तरूपकरिके है कारण जिन गुणोंका तिनोंका नाम स्वभावप्रभवगुण है। ऐसे स्वभावप्रभवगुणोंकरिकै ते च्यारि वर्णोंके कर्म भिन्न भिन्न हुए स्थित हैं । तहां धर्मोंका प्रतिपादक जो शास्त्र है सो शास्त्रभी इस पुरुषके स्वभावकी अपेक्षा अवश्य करै है । यातैं ते च्यारि वर्णोंके कर्म शास्त्रकरिकै भिन्न भिन्न करे

हुएभी तिन स्वभावप्रभावगुणोंकरिकै भिन्न भिन्न करे हुए हैं इस प्रकारतैं कहे जावैं है जिस कारणतैं शास्त्र पुरुषके संस्काररूप स्वभावकी अपेक्षा अवश्य करै है । इस कारणतैं ही शास्त्रकारोंनै यह न्याय कथन कऱ्या है । यज्ञादिक कर्मोंके विधान करणेहारे जे विधिवचन हैं तिनवचनोंकी अधिकारी पुरुषकीशक्ती सहकारी होवैहै इति । इसप्रकार स्वभावप्रभवगुणोंकरिकै ब्राह्मणादिक च्यारि वर्णोंके कर्म भिन्न भिन्न हुए स्थित हैं । यह वार्त्ता गौतमऋषिनैं भी कथन करी है । तहां गौतमवचन—(द्विजातीनामध्ययनमिज्यादानम् । ब्राह्मणस्याधिकाः प्रवचनयाजनप्रतिग्रहाः पूर्वेषु नियमस्तु राज्ञोऽधिकं रक्षणं सर्वभूतानां न्याय्यदंडत्वम् । वैश्यस्याधिकं कृषिवणिक् पशुपाल्यं कुसीदं च । शूद्रश्चतुर्थो वर्ण एकजातिस्तस्यापि सत्यमक्रोधः शौचमाचमनार्थे पाणिपादप्रक्षालनमेवैकश्राद्धकर्म भृत्यभरणं स्वदारवृत्तिः परिचर्योत्तरेषामिति ॥) अर्थ यह—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनवर्णोंका नाम द्विजाति है तिन द्विजाति पुरुषोंका तौ वेदोंका अध्ययन, अग्निहोत्रादिक कर्म, दान यह तीनों साधारणधर्म हैं। और वेदोंका अध्ययन करावणा तथा यज्ञ करावणा तथा प्रतिग्रह लेणा यह तीनों धर्म ब्राह्मणके अधिक है । क्षत्रिय वैश्यके यह तीनों धर्म हैं नहीं । और पूर्व कथन करे जे अध्ययन, इज्या, दान यह तीन धर्म हैं तिन तीनों धर्मोंकी अवश्यकर्तव्यता तथा सर्वभूतोंका रक्षण तथा दुष्टप्राणियोंकूं नीतिपूर्वक दण्ड करणा यह धर्म क्षत्रियके अधिक है । और कृषि, वाणिज्य, गौआदिक पशुवोंका पालन तथा वृद्धिके वासतै धनका प्रयोगरूप कुसीद यह धर्म वैश्यके अधिक हैं । और एकजन्मवाला जो शूद्र है तिस शूद्रके तौ सत्य, अक्रोध, शौच, आचमनके वासतै पाणिपादोंका प्रक्षालन, एक श्राद्धकर्म, भृत्योंका भरण, स्वदारवृत्ति, तीनवर्णोंकी सेवा इत्यादिक धर्म हैं इति । इस गौतमऋषिके वचनविषे ब्राह्मणादिक वर्णोंके साधारण धर्म तथा असाधारणधर्म कथन करें हैं । इसी प्रकारके च्यारिवर्णोंके धर्म वसिष्ठमुनिनैंभी कथन करे हैं। तहां

वसिष्ठवचन–षट्कर्माणि ब्राह्मणस्याध्ययनमध्यापनं यज्ञो याजनं दानं प्रतिग्रहश्चेति । त्रीणि राजन्यस्याध्ययनं यज्ञो दानं च शस्त्रेण च प्रजापालनस्वधर्मस्तेन जीवेत् । एवान्येव त्रीणि वैश्यस्य कृषिवणिक्पशुपाल्यं कुसीदं च तेषां परिचर्या शूद्रस्य इति ।) अर्थ यह आप वेदोंका अध्ययन करणा १ तथा दूसरे पुत्रशिष्यादिकोंके प्रति वेदोंका अध्ययन करावणा २ तथा आप यज्ञकरणा ३ तथा दूसरे यजमानके प्रति ऋत्विक् होइकै यज्ञ करावणा ४ तथा आप दान देणा ५ दूसरेतैं दान लेणा ६ यह षट्कर्म ब्राह्मणकेही होवैं हैं । और वेदोंका अध्ययन करणा तथा यज्ञ करणा दान देणा यह तीन कर्म क्षत्रियके होवैं हैं । तहां तीनों कर्म ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तीनोंके साधारण हैं । और शस्त्रकरिकै प्रजाका पालन करणा यह क्षत्रियका असाधारण स्वधर्म है । इस असाधारणधर्मकरिकै सो क्षत्रिय आपणा जीवन करै । और वेदोंका अध्ययन करणा तथा यज्ञ करणा तथा दान करणा यह पूर्वउक्त तीनों कर्म वैश्यकेभी हैं । परंतु यह तीनों धर्म ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनोंके साधारण धर्म हैं । और कृषि, वाणिज्य, पशुवोंका पालन, तथा वृद्धिके वास्तै धनका प्रयोगरूप कुसीद यह कर्म वैश्यके असाधारण हैं । और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णोंकी सेवा करणी ये शूद्रका कर्म है इति । इस प्रकारके च्यारि वर्णोंके भिन्न भिन्न धर्म आपस्तंब ऋषिनैंभी कथन करे हैं । तहां आपस्तंबवचन–(चत्वारो वर्णा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रास्तेषां पूर्वपूर्वो जन्मतः श्रेयान् स्वकर्म ब्राह्मणस्याध्ययनमध्यापनं यज्ञो याजनं दानं प्रतिग्रहणम्। एतान्येव क्षत्त्रियस्याध्यापनयाजनप्रतिग्रहणानीति परिहार्य्य युद्धदंडाधिकानि । क्षत्त्रियवद्वैश्यस्य दंडयुद्धवर्जं कृषिगोरक्षवाणिज्याधिकम् । परिचर्या शूद्रस्येतरेषां वर्णानाम् इति ।) अर्थ यह–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह च्यारि वर्ण कहे जावैं हैं । तिन च्यारिवर्णोंके मध्यविषे उत्तर उत्तर वर्णकी अपेक्षाकरिकै पूर्वपूर्व वर्ण जन्मतैं श्रेष्ठ होवै है । जैसे क्षत्रिय, वैश्य शूद्र इन तीनोंकी अपेक्षाकरिकै ब्राह्मण श्रेष्ठ है । और वैश्य, शूद्र इन

दोनोंकी अपेक्षा करिकै क्षत्रिय श्रेष्ठ है । और शूद्रकी अपेक्षाकरिकै वैश्य श्रेष्ठ है । तहां अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ, याजन; दान, प्रतिग्रह यह षट्कर्म ब्राह्मणके होवैं हैं । और इन षट्कर्मोंविषे अध्यापन, याजन, प्रतिग्रह इन तीनोंकूं छोडिकै अध्ययन, यज्ञ, दान यह तीन कर्म क्षत्रियके होवै है । और युद्ध तथा दुष्ट पुरुषोंकूं दंड यह दोनो कर्म क्षत्रियके ब्राह्मणतैं अधिक होवै हैं । और क्षत्रियकी न्याई वैश्यकेभी युद्धदंडकूं छोडिकै अध्ययन, यज्ञ, दान यह तीन कर्म साधारण होवै हैं । और कृषि, गौ आदिक पशुवोंका पालन वाणिज्य यह कर्म वैश्यके क्षत्रियतैं अधिक होवैं है । और ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य इन तीनों वर्णोंकी सेवा करणी यह शूद्रका धर्म है इति । इसीप्रकारके च्यारि वर्णोंके भिन्नभिन्न धर्म मनु भगवान्नैंभी कथन करे है । तहां श्लोक–(अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा । दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ १ ॥ प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च । विषयेष्वप्रसक्तिं च क्षत्रियस्य समादिशत् ॥२॥ पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च । वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥ ३ ॥ एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् । एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥ ४ ॥) अर्थ यह– सृष्टिके आदिकालविषे सर्वज्ञ परमेश्वर ब्राह्मणोंके अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान, प्रतिग्रह यह षट् कर्म कथन करताभया है । और प्रजाका रक्षण, दान, यज्ञ, अध्ययन, विषयोंविषे नहीं आसक्ति इत्यादिक धर्म क्षत्रियके कहता भया है । और पशुवोंका रक्षण, दान, यज्ञ, वेदोंका अध्ययन, वाणिज्य, वृद्धिवासतै धनका प्रयोगरूप कुसीद, कृषि इत्यादिक धर्म वैश्यके कहताभया है । और असूयातैं रहितहोइकै ब्राह्मणादिक तीनवर्णोंकी शुश्रूषा करणी यह एक कर्म शूद्रका कहताभया है इति । इस प्रकारतैं ब्राह्मणादिक च्यारिवर्णोंके कर्म सत्त्वादिक गुणोंके भेदकरिकै भिन्न भिन्न हुए स्थित हैं ॥ ४१ ॥

तहां प्रथम ब्राह्मणके स्वाभाविक गुणकृत कर्मोंकूं कथन करैं हैं-

शमो दमस्तपः शौचं क्षांतिरार्जवमेव च ॥
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥४२॥

(पदच्छेदः) शमः । दमः । तपः । शौचम् । क्षांतिः । आर्जवम् । एव । च । ज्ञानम् । विज्ञानम् । आस्तिक्यम् । ब्रह्मकर्म । स्वभावजम् ॥ ४२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! शम दम तप शौच क्षांति आर्जव तथा ज्ञान विज्ञान आस्तिक्य यह नव स्वभावजन्य ब्राह्मणके कर्म हैं ॥४२॥

भा० टी०—तहां अंतःकरणका जो निग्रह है ताका नाम शम है । और श्रोत्रादिक बाह्यकरणोंका जो निग्रह है ताका नाम दम है । और पूर्व सप्तदश अध्यायविषे कथन करया जो शारीर, वाचिक, मानस यह तीन प्रकारका तप है सो तपही इहां तपशब्दकरिकै ग्रहण करणा । और शौच बाह्यअंतरभेदकरिकै दोप्रकारका होवै है । तहां मृत्तिका जलकरिकै जो शरीरकी शुद्धि है ताकूं बाह्यशौच कहै हैं । और अंतःकरणके शुद्धिकूं अंतरशौच कहै हैं । सो दोनों प्रकारकाही शौच इहां शौचशब्दकरिकै ग्रहण करणा । और कठोरवचनों करिकै निरादर करेहुए भी तथा देहादिकोंकरिकै ताडन करे हुएभी इस पुरुषके मनविषे जो क्रोधादिक विकारोंतें रहितपणा है ताका नाम क्षमा है । वा क्षमाका ही इहां क्षांतिशब्दकरिकै ग्रहण करणा और कुटिलतातैं रहितपणेका नाम आर्जव है । और षट्अंगोंसहित वेदकूं तथा वा वेदके अर्थकूं विषय करणहारी जो अंतःकरणकी वृत्तिविशेष है ताका नाम ज्ञान है । और कर्मकांडविषे यज्ञादिक कर्मोंका जो कौशल है तथा ज्ञानकांडविषे ब्रह्मआत्माके एकताका जो अनुभव है ताका नाम विज्ञान है । और पूर्व कथन करी जा सात्त्विकी श्रद्धा है ताका नाम आस्तिक्य है । इस प्रकारके शम, दम, तप, शौच, क्षांति, आर्जव, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिक्य यह सत्त्वगुणके स्वभावकृत

नव धर्म ब्रह्मकर्म कहेजावैं हैं अर्थात् ब्राह्मणजातिके कर्म कहे जावै हैं। यद्यपि सात्त्विक अवस्थाविषे ब्राह्मणादिक च्यारोंही वर्णके यह शमदमादिक नवधर्म संभव होइसकैं हैं, तथापि यह शमदमादिक नवधर्म बाहुल्यता करिके ब्राह्मणविषेही होवैं है। जिस कारणतैं सो ब्राह्मण सत्त्वस्वभाववालाही है। और अन्य क्षत्रियादिकोंविषे तौ तिस सत्त्वगुणकी वृद्धिके वशतैं ते शमदमादिक धर्म कदाचित् ही उत्पन्न होवै हैं इसी कारणतैं ही अन्यशास्त्रविषे यह शमदमादिक धर्म ब्राह्मणादिक च्यारिवर्णोंके साधारणधर्मरूपकरिकै कथन करे हैं तहां शमदमादिक धर्म च्यारिवर्णोंके साधारणधर्म हैं इस वार्त्ताकूं विष्णु भगवान् भी कहता भया है। तहां श्लोक-(क्षमा सत्यं दमः शौचं दानमिंद्रियसंयमः। अहिंसा गुरुशुश्रूषा तीर्थानुसरणं दया ॥ १ ॥ आर्जवं लोभशून्यत्वं देवब्राह्मणपूजनम्। अनभ्यसूया च तथा धर्मः सामान्य उच्यते ॥ २ ॥) अर्थ यह-क्षमा, सत्य, दम, शौच, दान, इंद्रियोंका संयम, अहिंसा, गुरुकी शुश्रूषा, तीर्थोंका सेवन, दया, आर्जव, लोभतैं रहितपणा, देवता ब्राह्मणोंका पूजन, असूयादोषतैं रहितपणा यह सर्व धर्म सामान्यधर्म कहेजावैं हैं अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन च्यारि वर्णोंके तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास इन च्यारि आश्रमोंके साधारण धर्म कहेजावैं हैं इति। इसप्रकारके साधारणधर्मोंकूं बृहस्पतिभी कथन करता भया है। तहां श्लोक-(दया क्षमानसूया च शौचानायासमंगलम् ॥ अकार्पण्यमस्पृहत्वं सर्वसाधारणानि च ॥ १ ॥ परे वा बंधुवर्गे वा मित्रे द्वेष्टारि वा सदा ॥ आपन्ने रक्षितव्यं तु दयैषा परिकीर्त्तिता ॥ २ ॥ बाह्ये वाध्यात्मिके चैव दुःखे चोत्पादिते क्वचित् ॥ न कुप्यति न वा हंति सा क्षमा परिकीर्तिता ॥ ३ ॥ न गुणान्गुणिनो हंति स्तौति मंदगुणानपि ॥ नान्यदोषेषु रमते सानसूया प्रकीर्तिता ॥ ४ ॥ अभक्ष्यपरिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिर्गुणैः ॥ स्वधर्मे च व्यवस्थानं शौचमेतत्प्रकीर्तितम् ॥ ५ ॥ शरीरं पीड्यते येन सुशुभेनापि

कर्मणा ॥ अत्यंतं तन्न कर्त्तव्यमनायासः स उच्यते ॥ ६ ॥ प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तविसर्जनम् ॥ एतद्धि मंगलं प्रोक्तं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ७ ॥ स्तोकादपि प्रदातव्यमदीनेनांतरात्मना ॥ अहन्यहनि यत्किंचिदकार्पण्यं हि तत्स्मृतम् ॥ ८ ॥ यथोत्पन्नेन संतोषः कर्तव्यो ह्यर्थवस्तुनः ॥ परस्याचिंतयित्वार्थं साऽस्पृहा परिकीर्तिता ॥ ९ ॥) अब यथाक्रमतें इन नव श्लोकोंके अर्थकूं कथन करैं है । दया १, क्षमा २, अनसूया ३, शौच ४, अनायास ५, मंगल ६, अकार्पण्य ७, अस्पृहा ८, यह अष्ट धर्म च्यारि वर्णोंके तथा च्यारि आश्रमोंके साधारणधर्म हैं इति ॥ १ ॥ अब द्वितीयश्लोककरिकै दयाका स्वरूप कथन करैं हैं—आपत्तिकूं प्राप्त हुआ जो कोई अन्य प्राणी है अथवा आपणा बंधुवर्ग है अथवा आपणा मित्र है अथवा आपणा द्वेषकर्त्ता शत्रु है तिन सर्वोंका तिस आपत्तितैं जो रक्षण करणा है ताका नाम दया है ॥ २ ॥ अब तृतीयश्लोककरिकै क्षमाका स्वरूप कथन करैं है—आपणे प्रारब्धकर्मके वशतैं बाह्य आधिभौतिक दुःखके प्राप्त हुए तथा आध्यात्मिक दुःखके प्राप्त हुए तथा तिन दुखोंके उत्पादक शत्रु आदिकोंके प्राप्त हुए यह पुरुष जिसकरिकै क्रोधकूं नहीं करै है तथा तिनोंकूं हनन नहीं करैहै सा क्षमा कही जावै है ॥ ३ ॥ अब चतुर्थश्लोककरिकै अनसूयाका स्वरूप कथन करैं है—यह पुरुष जिसकरिकै गुणीपुरुषोंके गुणोंकूं नहीं हनन करै है तथा अन्यपुरुषके अल्पगुणोंकी भी स्तुति करै है तथा अन्यपुरुषोंके दोषोंके कथनविषे प्रीतिमान नहीं होवैहै सा अनसूया कही जावै है ॥ ४ ॥ अब पंचमश्लोककरिकै शौचका स्वरूप कथन करैं हैं—मांस मदिरादिक अभक्ष्य वस्तुवोंका जो परित्याग है । तथा विद्यादिक गुणवाले पुरुषोंका जो समागम है । तथा आपणे धर्मविषे जो स्थित है इसकूं शौच कहैं हैं ॥ ५ ॥ अब षष्ठश्लोककरिकै अनायासका स्वरूप कथन करैंहै—जिस शुभकर्मकरिकै भी शरीर अत्यंत पीडाकूं प्राप्त होवै ऐसा शुभकर्म भी इस पुरुषनैं करणा

सो अनायास कह्या जावै है ॥ ६ ॥ अब सप्तमश्लोककरिकै मंगलका स्वरूप कथन करैं है—शास्त्रविहित श्रेष्ठ आचरणका जो सर्वदा करणा है तथा शास्त्रनिषिद्ध अश्रेष्ठ आचरणका जो सर्वदा परित्याग है इसीकूं ही तत्त्ववेत्ता मुनिजनोंनैं मंगल कह्या है ॥ ७ ॥ अब अष्टमश्लोककरिकै अकार्पण्यका स्वरूप कथन करैंहै—आपणे गृहविषे जे अन्नादिक पदार्थ अल्पभी है तिन अल्पपदार्थोंवै भी दीनतातैं रहित मनकरिकै दिनदिन विषे अतिथि ब्राह्मणोंके ताईं यत्किंचित् अन्नादिक पदार्थ देणे इसकूं अकार्पण्य कहैहैं ॥ ८ ॥ अब नवमश्लोककरिकै अस्पृहाका स्वरूप कथन करैंहैं—परके अर्थकूं न चिंतन करिकै इस पुरुषोंनैं प्रारब्धवशतैं प्राप्तहुए धनादिक पदार्थोंकरिकै जो संतोष करीताहै सा अस्पृहा कहीजावैहै इति ॥९ ॥ यह दयातैं आदिलेकै अस्पृहापर्यंत अष्टगुण ही गौतमऋपिनैं आत्माके गुणरूप करिकै कथन करे हैं । तहां गौतमवचन—(अथाष्टावात्मगुणाःदया सर्वभूतेषु क्षांतिरनसूया शौचमनायासोमंगलमकार्पण्यमस्पृहा इति ॥) अर्थ यह—सर्व भूतोंविषे दया, क्षांति, अनसूया, शौच, अनायास, मंगल, अकार्पण्य, अस्पृहा यह अष्ट आत्माके गुण हैं इति । इसी प्रकारके साधारणधर्म महाभारतविषेभी कथन करे हैं । तहां श्लोक—(सत्यं दमस्तपः शौचं संतोषो ह्रीः क्षमार्जवम् । ज्ञानं शमो दया ध्यानमेष धर्मः सनातनः ॥ १ ॥ सत्यं भूतहितं प्रोक्तं मनसो दमनं दमः। तपः स्वधर्मवर्तित्वं शौचं संकरवर्जनम् ॥२॥संतोषो विषयत्यागो ह्रीरकार्यनिवर्तनम् । क्षमा द्वंद्वसहिष्णुत्वमार्जवं समचित्तता ॥ ३ ॥ ज्ञानं तत्त्वार्थसंबोधः शमश्चित्तप्रशांतता । दया भूतहितैषित्वं ध्यानं निर्विषयं मनः ॥ ४ ॥ इति) अर्थ यह—सत्य, दम, तप, शौच, संतोष, ह्री, क्षमा, आर्जव, ज्ञान, शम, दया, ध्यान यह सर्व ब्राह्मणादिक च्यारि वर्णोंके साधारण सनातन धर्म हैं ॥ १ ॥ अब तीन श्लोकोंकरिकै यथाक्रमतैं तिन सत्यादिकोंका स्वरूप कथन करैं हैं—सर्वभूतोंका जो हित करणा है ताका नाम सत्य है । और मनका जो निग्रह है ताका नाम

दम है । और आपणे धर्मविषे जो वर्त्तणा है ताका नाम तप है और वर्णसंकरका जो परित्याग है ताका नाम शौच है ॥ २ ॥ और विषयोंका जो परित्याग है ताका नाम संतोष है और शास्त्रनिषिद्ध कर्मतैं जा निवृत्ति है ताका नाम ह्री है। और शीतउष्णादिक द्वंद्व-धर्मोंके सहनकरणेका जो स्वभाव है ताका नाम क्षमा है । और समचित्तपणेका नाम आर्जव है ॥ ३ ॥ और तत्त्व अर्थका जो सम्यक् बोध है ताका नाम ज्ञान है।और चित्तकी जा प्रशांतता है ताका नाम शम है। और सर्वभूतोंके हितकी जा इच्छा है ताका नाम दया है—और विषयोंकी वासनातैं रहित जो मन है ताका नाम ध्यान है इति ॥ ४ ॥ इसप्रकारके साधारण धर्म देवलऋषिनैं भी कथन करैं हैं। तहां श्लोक–(शौचं दानं तपः श्रद्धा गुरुसेवा क्षमा दया । विज्ञानं विनयः सत्यमिति धर्मसमुच्चयः ॥ १ ॥ व्रतोपवासनियमैः शरीरोत्तापनं तपः । प्रत्ययो धर्मकार्येषु तथा श्रद्धेत्युदाहृता ॥ २ ॥ नास्ति ह्यश्रद्दधानस्य कर्म कृत्यं प्रयोजनम् । यत्पुनर्वैदिकीनां च लौकिकीनां च सर्वशः ॥ ३ ॥ धारणं सर्वविद्यानां विज्ञानमिति कीर्त्यते।विनयं द्विविधं प्राहुः शम्वदमशगाविति ॥ ४ ॥) अर्थ यह–शौच, दान, तप, श्रद्धा , गुरुसेवा, क्षमा, दया, विज्ञान, विनय, सत्य, यह साधारण धर्मोंका समुच्चय है इति । तहां व्रत उपवास नियमोंकरिकै जो शरीरका शोषण है ताका नाम तप है। और धर्मकार्योंविषे जो चित्तकी सावधानता है ताका नाम श्रद्धा है। जिस कारणतैं श्रद्धातैं रहित पुरुषकूं किसीभी कर्मका फल प्राप्त होता नहीं, इस कारणतैं इस पुरुषनैं जो जो कार्य करणा सो श्रद्धापूर्वक ही करणा । और लौकिक सर्व विद्यावोंका तथा वैदिक सर्व विद्यायोंका जो धारण है ताका नाम विज्ञान है । और शम, दम, यह दो प्रकारका विनय कह्या है इति । दुसरे सर्व धर्म पूर्व व्याख्यान करि आये हैं । यातैं तिन धर्मोंके प्रतिपादक वचन यहां लिखे नहीं। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया–यह

शम दमादिक धर्म जिस पुरुषविषे पायेजावैं है सो पुरुष जातिकरिकै शूद्र हुआभी इन शमदमादिक लक्षणोंकरिकै ब्राह्मणरूप ही, जानणे योग्य है । और यह शमदमादिक धर्म जिस पुरुषविषे नहीं पाये जावैं है सो, पुरुष जातिकरिकै ब्राह्मण हुआभी इन शमदमादिक धर्मोंके अभावकरिकै शूद्ररूप ही जानणे योग्य है । इसी कारणतैं ही महाभारतके आरण्यक पर्वविषे सर्पभावकूं प्राप्त हुए नहुषराजाके प्रति युधिष्ठिर राजानैं यह वचन कह्या है । तहां श्लोक-(सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपो घृणा ॥ दृश्यंते यत्र नागेंद्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥ यत्रैतल्लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः ॥ यत्रैतन्न भवेत्सर्प तं शूद्रमिति निर्दिशेत् ॥) अर्थ यह-हे नागेंद्र ! सत्य, दान, क्षमा, शील, क्रूरभावतैं रहितपणा, तप, दया यह सर्व धर्म जिस पुरुषविषे देखे जावैं है सो पुरुष ब्राह्मण ही जानणा । हे सर्प ! यह सत्यादिक धर्म जिसपुरुषविषे नहीं विद्यमान हैं तिस पुरुषकूं शूद्रही जानणा इति । यातैं यह सिद्ध भया । इस श्लोकविषे जे शमदमादिक धर्म कथन करे है ते सर्व धर्म दैवीसंपत्‌रूप है सा दैवीसंपत् पूर्व षोडश अध्यायविषे विस्तारतैं वर्णन करिआये है । सा शमदमादिरूप दैवीसंपत् ब्राह्मणकूं तौ स्वभावसिद्ध है और क्षत्रियवैश्यादिकोंकूं नैमित्तिक हैं । यातैं इहां किंचित्‌मामात्रभी विरोध होवै नहीं और ब्राह्मणके याजन,अध्यापन,प्रतिग्रह इत्यादिक असाधारणधर्म तौ स्मृतियोंविषे प्रसिद्धही है ॥ ४२ ॥

अब क्षत्रियके गुणस्वभावकृत कर्मोंकूं कथन करैंहैं-

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ॥
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ ४३ ॥

(पदच्छेदः) शौर्यम् । तेजः । धृतिः । दाक्ष्यम् । युद्धे । च । अपि । अपलायनम् । दानम् । ईश्वरभावः । च । क्षात्रम् । कर्म । स्वभावजम् ॥ ४३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! शौर्य तेज धृति दाक्ष्य तथा युद्धविषे भी अपलायन दान तथा ईश्वरभाव यह सर्व स्वभावजन्य क्षत्रियजातिके विहित कर्म हैं ॥ ४३ ॥

भा॰ टी॰—तहां अत्यंत बलवान् पुरुषोंकेभी प्रहार करणेविषे प्रवृत्तिरूप जो विक्रम है ताका नाम शौर्य है। और अन्यशत्रुवोंकरिकै नहीं पराभववारूप जो प्रागल्भ्य ताका नाम तेज है। और महान् विपत्तिके प्राप्त हुएभी देहइंद्रियरूप संघातका जो अव्याकुलीभाव है ताका नाम धृति है। और शीघ्र उत्पन्न हुए कार्योंविषे भी व्यामोहतैं रहित होइकै प्रवृत्तिरूप जो दक्षभाव है ताका नाम दाक्ष्य है। और युद्धविषे महान् शस्त्रोंके प्रहार हुएभी तिस युद्धतैं जो पीछे नहीं हटणा है ताका नाम अपलायन है। और संकोचतैं रहित होइकै सुवर्ण, गौ, गृह, अन्न, भूमि इत्यादिक धनविषे आपणे ममत्वका परित्याग करिकै जो ब्राह्मणादिकोंके ममत्वका आपादन है ताका नाम दान है। और प्रजाके पालन करणेवास्तै आपणे भृत्यादिकोंके समीप आपणे प्रभु शक्तिका जो प्रगट करणा है ताका नाम ईश्वरभाव है। अथवा शास्त्रनिषिद्धमार्गविषे प्रवृत्त होणेहारे दुष्ट प्राणियोंके नियमन करणेकी जा शक्ति है ताका नाम ईश्वरभाव है। हे अर्जुन ! यह शौर्यतैं आदिलैके ईश्वरभावपर्यंत सर्व कर्म क्षत्रिय जातिके शास्त्रविहित कर्म हैं। कैसे हैं ते कर्म स्वभावजहैं अर्थात् सत्त्वगुणहै गौणजिसविषेऐसाजो प्रधानभूतरजोगुणहैतिस रजोगुणके स्वभावजन्यहैं ॥ ४३ ॥

अब वैश्य शूद्र इनदोनोंके गुणस्वभावकृत कर्मोंकूं कथन करैहैं—

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ॥
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥ ४४ ॥

(पदच्छेदः) कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यम् । वैश्यकर्म । स्वभावजम् । परिचर्यात्मकम् । कर्म । शूद्रस्य । अपि । स्वभावजम् ॥ ४४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! कृषिगौवोंका रक्षण वाणिज्य यह स्वभावजन्य वैश्यका कर्म है तथा शूद्रका द्विजातिपुरुषोंका शुश्रूषारूप स्वभावजन्य कर्म है ॥ ४४ ॥

. भा० टी०—तहां व्रीहियवादिक अन्नोंकी उत्पत्तिवासतै जो भूमिका विलेखन है ताका नाम कृषि है । और गौआदिक पशुवोंका जो पालन है ताका नाम गोरक्ष्य है । और अन्नादिक पदार्थोंका क्रयविक्रयरूप जो व्यापार है ताका नाम वाणिज्य है । और वृद्धिवासतै धनका प्रयोगरूप जो कुसीद है वा कुसीदका भी इस वाणिज्यविषे ही अंतर्भाव जानणा यह तीनां वैश्यजातिका कर्म है । कैसा है सो कर्म—स्वभावज है अर्थात् तमोगुण है गौण जिसविषे ऐसा जो प्रधानभूत रजोगुण हैं ता रजोगुणके स्वभावजन्य है इति । अब शूद्रके गुणस्वभावकृत कर्मकूं कथन करै है (परिचर्यात्मकमिति) तहां ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णोंका नाम द्विजाति है ऐसे द्विजातिपुरुषोंकी शुश्रूषारूप जो कर्म है सो कर्म शूद्रजातिका स्वभावजन्य कर्म है अर्थात् रजोगुण है गौण जिसविषे ऐसा जो प्रधानभूत तमोगुण है तिस तमोगुणके स्वभावजन्य है ॥ ४४ ॥

तहां पूर्व (शमो दमस्तपः शौचम्) इत्यादिक तीनश्लोकोंकरिकै ब्राह्मणादिक च्यारिवर्णोंके स्वभावजन्य गौणनामा धर्म कथन करे तिन गौणधर्मोंतैं भिन्न दूसरेभी धर्म शास्त्रोंविषे कथन करे हैं । ते धर्म भविष्यपुराणविषे यह कहते हैं । तहां श्लोक—(धर्मः श्रेयः समुद्दिष्टं श्रेयोऽभ्युदयलक्षणम् ॥ स तु पंचविधः प्रोक्तो वेदमूलः सनातनः ॥ १ ॥ वर्णधर्मः स्मृतस्त्वेक आश्रमाणामतः परम् ॥ वर्णाश्रमस्तृतीयस्तु गौणो नैमित्तिकस्तथा ॥ २ ॥ वर्णत्वमेकमाश्रित्य यो धर्मः संप्रवर्त्तते ॥ वर्णधर्मः स उक्तस्तु यथोपनयनं नृप ॥ ३ ॥ यस्त्वाश्रमं समाश्रित्य अधिकारः प्रवर्त्तते ॥ स खल्वाश्रमधर्मः स्याद्भिक्षादंडादिको यथा ॥ ४ ॥ वर्णत्वमाश्रमत्वं च योऽधिकृत्य प्रवर्त्तते ॥ स वर्णाश्रमधर्मस्तु मौञ्जाया मेखला यथा ॥ ५ ॥

यो गुणेन प्रवर्त्तेत गुणधर्मः स उच्यते ॥ यथा मूर्द्धाभिषिक्तस्य प्रजानां परिपालनम् ॥ ॥ ६॥ निमित्तमेकमाश्रित्य यो धर्मः संप्रवर्त्तते ॥ नैमित्तिकः स विज्ञेयः प्रायश्चित्तविधिर्यथा ॥ ७ ॥) अब यथाक्रमतैं इन सप्त श्लोकोंके अर्थ वर्णन करै है—शास्त्रविहित धर्मही इस पुरुषके श्रेयका साधन होणेतैं श्रेयरूप कथन कऱ्या है । सो श्रेय स्वर्गादिक अभ्युदयरूप है। इस प्रकारका श्रेयरूपधर्म शास्त्रवेत्ता पुरुषोंनैं पंचप्रकारका कथन कऱ्या है । कैसा है सो धर्म—वेद है मूल जिसका या कारणतैं ही सो धर्म सनातन है ॥ १ ॥ तहां एक तौ वर्णधर्म होवै है। और दूसरा आश्रमधर्म होवै है । और तीसरा वर्णआश्रमधर्म होवै है। और चौथा गौणधर्म होवै है । और पांचवां नैमित्तिकधर्म होवै है ॥ २ ॥ तहां एक ब्राह्मणादिरूप वर्णमात्रकूं आश्रयकरिकै जो धर्म प्रवर्त्त होवै है सो वर्णधर्म कह्या जावै है । जैसे उपनयनरूप धर्म ब्राह्मणादिरूप वर्णमात्रकूं आश्रयकरिकै प्रवर्त्त होवै है, यातैं सो उपनयनरूप धर्म वर्णधर्म कह्या जावै है ॥ ३ ॥ और जो धर्म केवल आश्रममात्रकूं आश्रयकरिकै प्रवर्त्त होवै है सो धर्म आश्रमधर्म कह्या जावै है। जैसे भिक्षादंडादिरूप धर्म आश्रमकूं आश्रयकरिकै ही प्रवर्त्त होवै है । यातैं सो भिक्षादंडादिरूप धर्म आश्रमधर्म कह्याजावै है ॥ ४ ॥ और जो धर्म वर्णकूं तथा आश्रमकूं आश्रयकरिकै प्रवर्त्त होवै है सो धर्म वर्णाश्रमधर्म कह्याजावै है । जैसे मौंजादिक मेखलारूप धर्म वर्णकूं तथा आश्रमकूं आश्रयकरिकै प्रवर्त्त होवै है । यातैं सो मौंजादिक मेखलारूप धर्म वर्णाश्रमधर्म कह्या जावै है ॥ ५ ॥ और जो धर्म किसी गुणकूं आश्रयकरिकै प्रवर्त्त होवै है सो धर्म गौणधर्म कह्याजावै है। जैसे राज्याभिषेककूं प्राप्तहुए क्षत्रियका प्रजावोंका पालनरूप धर्म गुणकूं आश्रयकरिकै प्रवर्त्त होवै है । यातैं सो प्रजाका पालनरूप धर्म गौणधर्म कह्याजावै है॥६॥और जो धर्म केवल निमित्तमात्रकूं आश्रयकरिकै प्रवर्त्त होवै है सो धर्म नैमित्तिकधर्म कह्याजावै है । जैसे पापकी निवृत्तिवासतै कऱ्या जो प्रायश्चित्तरूपधर्म है सो धर्म पापरूपनिमि-

कथन कऱ्या है । तहां श्लोक-(श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्हि मानवः । इह कीर्त्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ।) अर्थ यह-श्रुतिस्मृतिकरिकै विधान कऱ्या जो वर्णआश्रमका धर्म है । तिस धर्मकूं अनुष्ठान करता हुआ यह पुरुष इस लोकविषे तौ कीर्तिकूं प्राप्त होवै है । और मरणतैं अनंतर स्वर्गादिक उत्तम सुखकूं प्राप्त होवै है इति । सो धर्मका फल आपस्तंब ऋषिनैंभी कथन कऱ्या है । तहां आपस्तंबवचन-(सर्ववर्णानां स्वधर्मानुष्ठानेन परमपरिमितं सुखं ततः परिवृत्तौ कर्मफलशेषेण जातिं रूपं वर्णं बलं वृत्तं मेधां प्रज्ञां द्रव्याणि धर्मानुष्ठानमिति प्रतिपद्यंते ।) अर्थ यह-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन च्यारों वर्णोंकूं आपणे आपणे धर्मके अनुष्ठानकरिकै उत्कृष्ट अपरिमित स्वर्गादिक सुख प्राप्त होवै है । तिस स्वर्गादिक सुखकूं भोगिकै जबी तिन कर्मीपुरुषोंकी पुनः इस भूमिलोकविषे आवृत्ति होवै है तबी बाकी रहेहुए कर्म शेषकरिकै ते कर्मीपुरुष इस लोकविषे जातिकूं तथा रूपकूं तथा वर्णकूं तथा बलकूं तथा वृत्तिकूं तथा मेधाकूं तथा द्रव्योंकूं तथा धर्मानुष्ठानकूं प्राप्त होवैंहैं इति । इस प्रकारका धर्मका फल गौतमऋषिनैं भी कथन कऱ्या है । तहां गौतमवचन-(वर्णाश्रमाश्च धर्मनिष्ठाः प्रेत्य कर्मफलमनुभूय ततः शेषेण विशिष्टदेशजातिकुलरूपायुःश्रुतवृत्तवित्तसुखमेधसो जन्म प्रतिपद्यंते विष्वंचो विपरीता नश्यंति ॥) अर्थ यह-ब्राह्मणादिक च्यारि वर्ण तथा ब्रह्मचर्यादिक च्यारि आश्रम आपणे आपणे धर्मविषे निष्ठावाले हुए मरणतैं अनंतर स्वर्गादिक लोकोंविषे किंचित् कर्मोंके सुखरूप फलकूं अनुभव करिकै तिसतैं अनंतर परिशेषतैं रहेहुए कर्मकरिकै श्रेष्ठ देश, उत्तम जाति, उत्तम कुल, सुंदर रूप, आयुष्, वेदोंका अध्ययन, वृत्त, सुख मेधा इत्यादिक गुणोंयुक्त जन्मकूं प्राप्त होवैंहैं । और शास्त्रनिषिद्ध मार्गविषे प्रवृत्त होणेहारे पापिष्ठ पुरुष तौ नरकादिकोंविषे जन्मकूं प्राप्त होइकै प्राप्त होवैंहैं अर्थात् वे पापीपुरुष कृमिकीटादिभाव

यो गुणेन प्रवर्त्तेत गुणधर्मः स उच्यते ॥ यथा मूर्द्धाभिषिक्तस्य प्रजानां परिपालनम् ॥ ॥ ६ ॥ निमित्तमेकमाश्रित्य यो धर्मः संप्रवर्त्तते ॥ नैमित्तिकः स विज्ञेयः प्रायश्चित्तविधिर्यथा ॥ ७ ॥) अब यथाक्रमतैं इन सप्त श्लोकोंके अर्थ वर्णन करैं हैं—शास्त्रविहित धर्मही इस पुरुषके श्रेयका साधन होणेतैं श्रेयरूप कथन कऱ्या है । सो श्रेय स्वर्गादिक अभ्युदयरूप है । इस प्रकारका श्रेयरूपधर्म शास्त्रवेत्ता पुरुषोंनैं पंचप्रकारका कथन कऱ्या है । कैसा है सो धर्म—वेद है मूल जिसका या कारणतैं ही सो धर्म सनातन है ॥ १ ॥ तहां एक तौ वर्णधर्म होवै है । और दूसरा आश्रमधर्म होवै है । और तीसरा वर्णआश्रमधर्म होवै है । और चौथा गौणधर्म होवै है । और पांचवां नैमित्तिकधर्म होवै है ॥ २ ॥ तहां एक ब्राह्मणादिरूप वर्णमात्रकूं आश्रयकरिकै जो धर्म प्रवर्त्त होवै है सो वर्णधर्म कह्या जावै है । जैसे उपनयनरूप धर्म ब्राह्मणादिरूप वर्णमात्रकूं आश्रयकरिकै प्रवर्त्त होवै है, यातैं सो उपनयनरूप धर्म वर्णधर्म कह्या जावै है ॥ ३ ॥ और जो धर्म केवल आश्रममात्रकूं आश्रयकरिकै प्रवर्त्त होवै है सो धर्म आश्रमधर्म कह्या जावै है । जैसे भिक्षादंडादिरूप धर्म आश्रमकूं आश्रयकरिकै ही प्रवर्त्त होवै है । यातैं सो भिक्षादंडादिरूप धर्म आश्रमधर्म कह्याजावै है ॥ ४ ॥ और जो धर्म वर्णकूं तथा आश्रमकूं आश्रयकरिकै प्रवर्त्त होवै है सो धर्म वर्णाश्रमधर्म कह्याजावै है । जैसे मौंजादिक मेखलारूप धर्म वर्णकूं तथा आश्रमकूं आश्रयकरिकै प्रवर्त्त होवै है । यातैं सो मौंजादिक मेखलारूप धर्म वर्णाश्रमधर्म कह्या जावै है ॥ ५ ॥ और जो धर्म किसी गुणकूं आश्रयकरिकै प्रवर्त्त होवै है सो धर्म गौणधर्म कह्याजावै है । जैसे राज्याभिषेककूं प्राप्तहुए क्षत्रियका प्रजावोंका पालनरूप धर्म गुणकूं आश्रयकरिकै प्रवर्त्त होवै है । यातैं सो प्रजाका पालनरूप धर्म गौणधर्म कह्याजावै है॥६॥और जो धर्म केवल निमित्तमात्रकूं आश्रयकरिकै प्रवर्त्त होवै है सो धर्म नैमित्तिकधर्म कह्याजावै है । जैसे पापकी निवृत्तिवासतै कऱ्या जो प्रायश्चित्तरूपधर्म है सो धर्म पापरूपनिमि-

त्तकूं आश्रय करिकै प्रवर्त्त होवै है । यातैं सो प्रायश्चित्तरूप धर्म नैमित्तिकधर्म कह्याजावै है इति ॥ ७ ॥ और हारीत ऋषि तौ च्यारिप्रकारका धर्म कथन करताभया है। तहां हारीतवचन-(अथाश्रमिणां पृथग्धर्मो विशेषधर्मः समानधर्मः कृत्स्नधर्मश्चेति ।) अर्थ यह-आश्रमी पुरुषोंका एक तौ पृथक्धर्म होवै है । और दूसरा विशेषधर्म होवै है । और तीसरा समानधर्म होवै है । और चौथा कृत्स्नधर्म होवै है । तहां जो धर्म एक ही आश्रमविषे पृथक् पृथक् अनुष्ठान कऱ्याजावै है सो धर्म पृथक् धर्म कह्याजावै है । जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र, इन च्यारि वर्णोंका स्वस्वधर्म है और जो धर्म आपणे आपणे आश्रमविषे ही अनुष्ठान कऱ्याजावै है सो धर्म विशेषधर्म कह्याजावै है । जैसे ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी इन च्यारि आश्रमियोंके आपणे धर्म हैं । और जो धर्म च्यारि वर्णोंका तथा च्यारि आश्रमोंका समानधर्म है सो धर्म समानधर्म कह्याजावै है । तहां च्यारि वर्णोंके समानधर्म तौ महाभारतविषे यह कहेहैं । तहां श्लोक-(आनृशंस्यमहिंसाचाप्रमादः संविभागिता ॥ श्राद्धकर्मातिथेयं च सत्यमक्रोध एव च ॥ १ ॥ स्वेषु दारेषु संतोषः शौचं नित्यानसूयता ॥ आत्मज्ञानं तितिक्षा च धर्मः साधारणो नृप ॥ २ ॥) अर्थ यह-क्रूरभावतैं रहितपणा, अहिंसा, अप्रमाद, भूखोंके ताईं अन्नादिकोंका विभाग देणा, श्राद्धकर्म, गृहविषे प्राप्तहुए अतिथिका सन्मान, सत्य, अक्रोध, स्वस्त्रियोंविषे संतोष, शौच, असूयातैं रहितपणा, आत्मज्ञान, तितिक्षा यह च्यारिवर्णोंके साधारण धर्म हैं इति । और सर्वआश्रमोंके साधारणधर्म तौ पूर्व (शमो दमस्तपः शौचम्) इस श्लोकके व्याख्यानविषे कथन करिआये हैं । और मोक्षका हेतुभूत जो आत्मज्ञान है तिस आत्मज्ञानकी उत्पत्तिके प्रतिबंधक जे प्रत्यवाय हैं तिन प्रत्यवायोंकी निवृत्ति करणेवास्तै जो निष्कामकर्मोंका अनुष्ठान है सो कृत्स्नधर्म कह्याजावै है । इसप्रकारतें हारीतऋषिनें च्यारि प्रकारका धर्म कथन कऱ्या है

इति। और शास्त्रोंविषे जैसे च्यारिही वर्ण कथन करे हैं वैसे शास्त्रोंविषे च्यारिही आश्रम कथन करे हैं। तहां गौतमवचन–(तस्याश्रमविकल्पमेके ब्रुवते ब्रह्मचारी गृहस्थो भिक्षुर्वैखानस इति।) अर्थ यह–वेदवेत्ता पुरुष तिस अधिकारी पुरुषकूं ब्रह्मचारी, गृहस्थ, भिक्षु, वैखानस यह च्यारिप्रकारका आश्रमविकल्प कथन करें हैं। इहां भिक्षु इस शब्दकरिकै संन्यासीका ग्रहण करणा और वैखानस इस शब्दकरिकै वानप्रस्थका ग्रहण करणा इति। इस प्रकारके च्यारिआश्रमोंकूं आपस्तंब ऋषिभी कथन करताभया है। तहां आपस्तंबवचन–(चत्वार आश्रमा गार्हस्थ्यमाचार्यकुलं मौनं वानप्रस्थमिति तेषु सर्वेषु यथोपदेशमव्यग्रो वर्तमानः क्षेमं गच्छति इति।) अर्थ यह–गार्हस्थ्य, आचार्यकुल, मौन, वानप्रस्थ, यह च्यारि ही आश्रम होवैं हैं इन च्यारोंतैं भिन्न पंचम कोई आश्रम होवै नहीं। इहां गार्हस्थ्यम् इस शब्दकरिकै गृहस्थआश्रमका ग्रहण करणा। और आचार्यकुलम् इस शब्दकरिकै ब्रह्मचर्यआश्रमका ग्रहण करणा। और मौनम् इस शब्दकरिकै संन्यास आश्रमका ग्रहण करणा। तिन च्यारों आश्रमोंके मध्यविषे जिस जिस आश्रमके प्रति शास्त्रनें जे जे धर्म विधान करे हैं तिस तिस आश्रमविषे स्थित होइकै यह अधिकारी पुरुष तिन तिन धर्मोंकूं श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करताहुआ शुभगतिकूं प्राप्त होवै है इति। इसी प्रकारके च्यारि आश्रमोंकूं वसिष्ठ मुनिभी कथन करताभया है। तहां वसिष्ठवचन–(चत्वार आश्रमा ब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थपरिव्राजकाः इति।) अर्थ यह–ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, परिव्राजक यह च्यार ही आश्रम होवैं हैं। इहां परिव्राजक इस शब्दकरिकै संन्यासीका ग्रहण करणा इति। इसप्रकार श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रोंविषे जैसे च्यारि वर्णआश्रम कथन करे हैं वैसे तिन च्यारि वर्णआश्रमोंके पृथक् पृथक् धर्मभी कथन करे हैं। वैसे अज्ञानी पुरुषोंके प्रति तिन वर्णआश्रमधर्मोंका यथायोग्यफलभी शास्त्रोंविषे कथन कऱ्या है, तहां मनु भगवान्नेंभी तिन वर्णआश्रमधर्मोंका फल

कथन कऱ्या है । तहां श्लोक-(श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्हि मानवः । इह कीर्त्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ।) अर्थ यह-श्रुतिस्मृतिकरिकै विधान कऱ्या जो वर्णआश्रमका धर्म है । तिस धर्मकूं अनुष्ठान करता-हुआ यह पुरुष इस लोकविषे तौ कीर्तिकूं प्राप्त होवै है । और मरणतैं अनंतर स्वर्गादिक उत्तम सुखकूं प्राप्त होवै है इति । सो धर्मका फल आपस्तंब ऋषिनैंभी कथन कऱ्या है । तहां आपस्तंबवचन-(सर्ववर्णानां स्वधर्मानुष्ठानेन परमपरिमितं सुखं ततः परिवृत्तौ कर्मफलशेषेण जातिं रूपं वर्णं बलं वृत्तं मेधां प्रज्ञां द्रव्याणि धर्मानुष्ठानमिति प्रतिपद्यंते ।) अर्थ यह-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन च्यारों वर्णोंकूं आपणे आपणे धर्मके अनुष्ठानकरिकै उत्कृष्ट अपरिमित स्वर्गादिक सुख प्राप्त होवै है । तिस स्वर्गादिक सुखकूं भोगिकै जबी तिन कर्मीपुरुषोंकी पुनः इस भूमिलोकविषे आवृत्ति होवै है तबी बाकी रहेहुए कर्म शेषकरिकै ते कर्मीपुरुष इस लोकविषे जातिकूं तथा रूपकूं तथा वर्णकूं तथा बलकूं तथा वृत्तिकूं तथा मेधाकूं तथा द्रव्योंकूं तथा धर्मानुष्ठानकूं प्राप्त होवैहैं इति । इस प्रकारका धर्मका फल गौतमऋषिनै भी कथन कऱ्या है । तहां गौतमवचन-(वर्णाश्रमाश्च धर्मनिष्ठाः प्रेत्य कर्मफलमनुभूय ततः शेषेण विशिष्टदेशजातिकुलरूपायुःश्रुतवृत्तवित्तसुख-मेधसो जन्म प्रतिपद्यंते विष्वंचो विपरीता नश्यंति ॥) अर्थ यह-ब्राह्मणादिक च्यारि वर्ण तथा ब्रह्मचर्यादिक च्यारि आश्रम आपणे आपणे धर्मविषे निष्ठावाले हुए मरणतैं अनंतर स्वर्गादिक लोकोंविषे किंचित् कर्मोंके सुखरूप फलकूं अनुभव करिकै तिसतैं अनंतर परिशेषतैं रहेहुए कर्मकरिकै श्रेष्ठ देश, उत्तम जाति, उत्तम कुल, सुंदर रूप, आयुष, वेदोंका अध्ययन, वृत्त, सुख मेधा इत्यादिक गुणोंयुक्त जन्मकूं प्राप्त होवैहैं । और शास्त्रनिषिद्ध मार्गविषे प्रवृत्त होणेहारे पापिष्ठ पुरुष तौ नरकादिकोंविषे जन्मकूं प्राप्त होइकै विनाशकूं प्राप्त होवैहैं अर्थात् ते पापीपुरुष कृमिकीटादिभाव करिकै सर्वपुरुषार्थोंतें

भ्रष्ट होवैं हैं इति । इसप्रकारका धर्मका फल हारीतऋषिनैं भी कथन कन्या है । तहां श्लोक-(काम्यैः केचिद्यज्ञदानैस्तपोभिर्लब्ध्वा लोकान्पुनरायांति जन्म । कामैर्मुक्ताः सत्ययज्ञाः सुदानास्तपोनिष्ठा अक्षयान्यांति लोकान् ॥ १ ॥) अर्थ यह-केईक सकाम पुरुष तौ काम्य यज्ञदानोंकरिकै तथा काम्य तपोंकरिकै स्वर्गादिक लोकोंकूं प्राप्त होइकै पुनः इस मनुष्यलोकविषे जन्मकूं प्राप्त होवैं हैं । और कामोंकरिकै मुक्तहुए तथा सत्यरूप यज्ञवाले तथा श्रेष्ठ दानवाले तथा तपविषे निष्ठावाले ऐसे केईक निष्काम पुरुष तौ अक्षयलोकोंकूं प्राप्त होवैं हैं । इहां कामनाके सद्भावतैं तथा कामनाके असद्भावतैं फलका भेद दिखायाहै इति । और भविष्यपुराणविषे तौ सो कर्मोंका फल इस प्रकारतैं कथन कन्या है । तहां श्लोक-(फलं विनाप्यनुष्ठानं नित्यानामिष्यते स्फुटम् ॥ काम्यानां स्वफलार्थं तु दोषघातार्थमेव तु ॥ १ ॥ नैमित्तिकानां करणे त्रिविधं कर्मणां फलम् ॥ क्षयं केचिदुपात्तस्य दुरितस्य प्रचक्षते ॥ २ ॥ अनुत्पत्तिं तथा चान्ये प्रत्यवायस्य मन्वते ॥ नित्यां क्रियां तथा चान्ये आनुषंगफलं विदुः ॥ ३ ॥) अर्थ यह-अग्निहोत्र संध्योपासनादिक नित्यकर्मोंका तौ फलतैं विनाभी अनुष्ठान कन्याजावै है । और ज्योतिष्टोमादिक काम्यकर्मोंका तौ तिस तिस स्वर्गादिक फलकी प्राप्तिवासतै ही अनुष्ठान कन्याजावै है ॥ १ ॥ और नैमित्तिक कर्मोंका तौ दोषकी निवृत्तिवासतै ही अनुष्ठान कन्याजावै है इस प्रकारतैं कर्मोंका तीनप्रकारका ही फल होवैहै । और केईक ऋषि तौ करेहुए पापकर्मका नाशही तिन नित्यकर्मोंका फल मानैं हैं ॥ २ ॥ और दूसरे केईक ऋषि तौ प्रत्यवायकी अनुत्पत्तिही तिन नित्यकर्मोंका फल मानैं हैं । और अन्य केईक आपस्तंबादिक ऋषि तौ तिन नित्यकर्मोंका स्वर्गादिरूप आनुषंगिकफल ही अंगीकार करैं हैं । सो आनुषंगिक-फल-(तद्यथाम्रे फलार्थे निर्मिते ।) इत्यादिक वचनकरिकै पूर्व कथन करि आये हैं इति ॥ ३ ॥ और (त्रयो धर्मस्कंधा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप एव द्वितीयो

ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यंतमात्मानमाचार्यकुलेवसादयन्निति ।) यह श्रुति तौ गृहस्थ, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी इन तीन आश्रमोंकूं कथन करिकै पश्चात् (सर्व एते पुण्यलोका भवंति ।) इस वचनकरिकै तिन तीनों आश्रमोंकूं अंतःकरणकी शुद्धिके अभाव हुए मोक्षकी अप्राप्ति कथन करिकै पश्चात् शुद्ध अंतःकरणवाले इन तीनोंही आश्रमोंकूं परिव्राजकभावकरिकै ज्ञाननिष्ठाके प्राप्त हुए मोक्षकी प्राप्तिकूं (ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति ।) इस वचनकरिकै कहतीभईहै । इस प्रकारकी व्यवस्थाके सिद्ध हुए जो मोक्षकी इच्छावान् ब्रह्मचारी वा गृहस्थ वा वानप्रस्थ फलकी इच्छाका परित्यागकरिकै तथा भगवदर्पण बुद्धिकरिकै शास्त्रविहित आपणे वर्णाश्रमके कर्मोंकूं करैहै सो मुमुक्षु ब्रह्मचारी वा गृहस्थ वा वानप्रस्थ अवश्यकरिकै संसिद्धिकूं प्राप्त होवैहै । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैहै-

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ॥
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विंदति तच्छृणु ॥४५॥

(पदच्छेदः) स्वे । स्वे । कर्मणि । अभिरतः । संसिद्धिम् । लभते । नरः । स्वकर्मनिरतः । सिद्धिम् । यथा । विन्दति । तत् । शृणु ॥ ४५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह मनुष्य आपणे आपणे कर्मविषे निष्ठावान् हुआ संसिद्धिकूं प्राप्त होवैहै आपणेकर्मविषे निष्ठावान् पुरुष जिस प्रकारतें सिद्धिकूं प्राप्त होवै है तिसे प्रकारकूं तूं श्रवणकर ॥ ४५ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रनैं तिस तिस वर्णआश्रमके प्रति जो जो कर्म विधान कऱ्या है तिस आपणे आपणे कर्मविषे अभिरतहुआ यह पुरुष अर्थात् तिस आपणे आपणे कर्मके सम्यक् अनुष्ठानपरायण हुआ यह वर्णाश्रमका अभिमानी मनुष्य संसिद्धिकूं प्राप्त होवैहै । अर्थात् देहइंद्रियरूप संघातकी अशुद्धिके क्षयकरिकै सम्यक्-

ज्ञानके उत्पत्तिकी योग्यताकूं प्राप्त होवैहै । तहां वेदोंविषे जितनाक कर्मकांड है तिस सर्वकर्मकांडका वर्णआश्रमका अभिमानी मनुष्यही अधिकारी होवैहै । और देवादिकोंविषे सो वर्णआश्रमकाअभिमान है नहीं । यातैं कर्मकांडकरिकै प्रतिपादित तिन वर्णाश्रमके धर्मविषे तिन देवादिकोंकूं अधिकार है नहीं । इस अर्थके बोधनकरणेवासतै इहां श्रीभगवान्नें मनुष्यका वाचक (नरः) यह शब्द कथन कन्या है। और वर्णाश्रमके अभिमानकी अपेक्षातैं रहित सगुण ब्रह्मकी उपासनावोंविषे तथा निर्गुणब्रह्मविद्याविषे तौ तिन देवादिकोंका भी अधिकार है । यह वार्ता देवताधिकरणविषे श्रीभाष्यकारोंनें विस्तारतैं वर्णन करी है इति । शंका— हे भगवन् ! (कर्मणा बध्यते जंतुः) इत्यादिक शास्त्रके वचनोंतैं कर्मोंकूं बंधका हेतुपणा ही सिद्ध होवैहै यातै बंधके हेतुरूप तिन कर्मोंविषे मोक्षका हेतुपणा कैसे संभवैगा ? किंतु नहीं संभवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए यद्यपि कर्म बंधके हेतु हैं तथापि उपायविषे तौ ते कर्म मोक्षके हेतु होवैं हैं । इस प्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं (स्वकर्मनिरतः इति) हे अर्जुन ! यह अधिकारी पुरुष शास्त्रविहित आपणे वर्णआश्रमकर्मविषे निष्ठावाला हुआ जिस प्रकारतैं तिस संसिद्धिकूं प्राप्त होवैहै तिस प्रकारकूं तूं अबी श्रवणकर अर्थात् श्रवणकरिकै तिस प्रकारकूं तूं निश्चय कर ॥ ४५ ॥

अब श्रीभगवान् तिस प्रकारकूं कथन करैं हैं—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ॥
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानवः ॥४६॥

(पदच्छेदः) यतः । प्रवृत्तिः । भूतानाम् । येन । सर्वम् । इदम् । ततम् । स्वकर्मणा । तम् । अभ्यर्च्य । सिद्धिम् । विंदति । मानवः ॥ ४६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस ईश्वरतैं आकाशादिक भूतोंकी उत्पत्ति होवै है तथा जिस ईश्वरनैं यह सर्वविश्व व्याप्त कऱ्या है तिस ईश्वरकूं स्वकर्मकरिकै संतुष्ट करिकै यह मनुष्य अन्तःकरणकी शुद्धिकूं प्राप्त होवै है ॥ ४६ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! माया उपाधिक चैतन्य आनन्दघनरूप तथा सर्वज्ञरूप तथा सर्वशक्तिसंपन्न तथा सर्व जगत्का अभिन्ननिमित्त उपादान कारणरूप ऐसे जिस अंतर्यामी ईश्वरतैं आकाशादिक सर्व भूतोंकी उत्पत्ति होवै है । अर्थात् जैसे स्वप्नविषे रथादिक पदार्थोंकी मायामयी उत्पत्ति होवै है । तैसे जिस अंतर्यामी ईश्वरतैं इन आकाशादिक सर्व भूतोंकी मायामयी उत्पत्ति होवैहै । तथा जिस एक अंतर्यामी ईश्वरनै आपणे सत्तारूपकरिकै तथा स्फुरणरूपकरिकै यह सर्व दृश्यप्रपंच तीनोंकालविषे व्याप्त कऱ्या है अर्थात् जिस अंतर्यामी चैतन्यनैं यह सर्व कल्पितप्रपंच आपणे अधिष्ठान स्वरूपविषे अंतर्भाव कऱ्या है । जिस कारणतैं कल्पित वस्तु अधिष्ठानतैं अतिरिक्त होवै नहीं । जैसे रज्जुविषे कल्पित सर्प रज्जुरूप अधिष्ठानतैं अतिरिक्त होवै नहीं । तैसे अधिष्ठान चैतन्यविषे कल्पित यह सर्व प्रपंच तिस अधिष्ठानचैतन्यतैं अतिरिक्त है नहीं । तहां अन्तर्यामी ईश्वरतैं ही सर्व जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, लय होवै है, यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है । तहां श्रुति–(यतो वा इमानि भूतानि जायंते येन जातानि जीवंति यत्प्रयंत्यभिसंविशंति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति॥) अर्थ यह–हे भृगु ! जिस कारणरूप वस्तुतैं यह आकाशादिक सर्व भूत उत्पन्न होवैं है तथा उत्पन्न हुए ते सर्व भूत जिस कारणरूप वस्तुकरिकै जीवते हैं तथा विनाशकूं प्राप्त हुए ते सर्व भूत जिस कारणरूप वस्तुविषे लयकूं प्राप्त होवैं हैं सो सर्व जगत्का अभिन्ननिमित्त उपादान कारणरूप वस्तुकूं ही तूं ब्रह्मरूप जान । ऐसे कारणरूप ब्रह्मका तूं विचार कर इति । इस श्रुतिनैं तिस अंतर्यामी ईश्वरतैं ही सर्व जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, लय प्रतीत होवै है । और (मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु

महेश्वरम् ।) इत्यादिक श्रुतितैं तिस अंतर्यामी ईश्वरविषे मायारूप उपाधिकी प्रतीति होवै है और (यः सर्वज्ञः सर्ववित्) इस श्रुतितैं तिस अंतर्यामी ईश्वरविषे सर्वज्ञपणा प्रतीत होवै है। यातैं (यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं श्रुतिप्रतिपादित अर्थही कथन कन्या है इति । ऐसे सर्व जगतके उपादानकारणरूप तथा निमित्तकारणरूप अंतर्यामी ईश्वरकूं यह अधिकारी पुरुष शास्त्रविहित आपणे वर्ण आश्रमके कर्मकरिकै संतुष्ट करिकै तिस अंतर्यामी ईश्वरके प्रसादतैं सिद्धिकूं प्राप्त होवै है अर्थात् ब्रह्मात्मैक्यज्ञाननिष्ठाकी योग्यतारूप अंतःकरणकी शुद्धिकूं प्राप्त होवै है। और वर्णआश्रमके कर्मोंके अनधिकारी जे देवादिक हैं ते देवादिक तौ केवल उपासनामात्रकरिकैही तिस सिद्धिकूं प्राप्त होवैं हैं ॥ ४६ ॥

जिस कारणतैं आपणे आपणे वर्ण आश्रमका धर्म ही इन मनुष्योंकूं परमेश्वरके प्रसादका हेतु है इस कारणतैं इन अधिकारी मनुष्योंनैं तिस स्वधर्मका ही अनुष्ठान करणा । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करै हैं–

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ॥
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥४७॥

(पदच्छेदः) श्रेयान् । स्वधर्मः । विगुणः । परधर्मात् । स्वनुष्ठितात् । स्वभावनियतम् । कर्म । कुर्वन् । न । आप्नोति । किल्बिषम् ॥ ४७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सम्यक् अनुष्ठानकरेहुए परधर्मतैं असम्यक् अनुष्ठान कन्याहुआ स्वधर्म अतिश्रेष्ठ होवै है स्वभावजन्य कर्मकूं करताहुआ यहपुरुष पापकूं नहीं प्राप्त होवा ॥ ४७ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! मंत्र, द्रव्य, देवता आदिक सर्वअंगोंकी संपूर्णता पूर्वक सम्यक् अनुष्ठान कन्याहुआजो परधर्म है तिस परधर्मतैं किंचित्

मन्त्रादिक अंगोंतै रहित असम्यक् अनुष्ठान कऱ्याहुआभी स्वधर्म अत्यंत श्रेष्ठ होवै है। यातैं यह युद्धादिरूपधर्म यद्यपि हिंसाकरिकै युक्त है और भिक्षाअटनादिरूप धर्म ता हिंसादोषतैं रहित है तथापि तैं क्षत्रियराजानैं सो युद्धादिरूप स्वधर्मही अनुष्ठान करणे योग्य है सो भिक्षाअटनादिरूप परधर्म तुम्हारेकूं अनुष्ठान करणेयोग्य नहीं है। यह वार्त्ता (स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ।) इत्यादिक वचनकरिकै पूर्वभी हम तुम्हारे प्रति कथन करिआये हैं। शंका–हे भगवन् ! यद्यपि युद्धादिक हमारा स्वधर्म है तथापि सो युद्धादि कर्म बांधवोंकी हिंसाजन्य प्रत्यवायका हेतु है, यातैं सो युद्धादिरूप कर्म हमारेकूं अनुष्ठान करणे योग्य नहीं है ! ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिस युद्धरूप कर्मविषे प्रत्यवायकी हेतुताकूं निषेध करैं हैं ।(स्वभावनियतमिति) हे अर्जुन ! पूर्व (शौर्य तेजो धृतिर्दाक्ष्यम्) इत्यादिक वचनकरिकै कथन कऱ्या जो क्षत्रियराजाका गुणकृत स्वभाव है तिस स्वभावकरिकै जन्य युद्धादिककर्मकूं करताहुआ यह क्षत्रियराजा बांधवोंकी हिंसानिमित्तक पापकूं नहीं प्राप्त होवै है यह वार्त्ता (सुखदुःखे समे कृत्वा) इत्यादिक वचनोंकरिकै पूर्वभी विस्तारतैं कथन करिआये हैं। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया–(अग्नीषोमीयं पशुमालभेत) इस वेदवचननैं यज्ञका अंगरूपकरिकै विधान करी जा पशुकी हिंसा है सो हिंसा वेदविहित होणेतैं जैसे प्रत्यवायका हेतु नहीं है तैसे वेदभगवान्नैं युद्धका अंगरूपकरिकै विधान करी जा बांधवादिकोंकी हिंसा है सा हिंसाभी वेदविहित होणेतैं प्रत्यवायका हेतु नहीं है। यह वार्त्ता अनेकवार कथन करिआये हैं ॥ ४७ ॥

जिस कारणतैं शास्त्रविहित हिंसादिकोंकूं प्रत्यवायका हेतुपणा नहीं है। तथा परका धर्म भयकी प्राप्ति करणेहारा है तथा सामान्यदोपकरिकै सर्वकर्म दुष्टही हैं, तिस कारणतैं आत्मज्ञानतैं रहित वर्णआश्रमका अभिमानी पुरुष स्वभावजन्य विहित कर्मकूं कदाचित्भी नहीं परित्याग करै। इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

सहजं कर्म कौंतेय सदोषमपि न त्यजेत् ॥
सर्वारंभा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥ ४८ ॥

(पदच्छेदः) सहजम् । कर्म । कौंतेय । सदोषम् । अपि । न । त्यजेत् । सर्वारंभाः । हि । दोषेण । धूमेन । अग्निः । इव । आवृताः ॥ ४८॥

(पदार्थः) हे कौंतेय ! स्वभावजन्य सदोष भी कर्मकूं यह पुरुष नहीं परित्याग करै जिस कारणतै सर्वही धर्म धूमकरिकै अग्निकी न्याई सामान्यदोषकरिकै आवृत हैं ॥ ४८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पूर्वउक्त स्वभावकरिकै जन्य जो स्ववर्ण-आश्रमका कर्म है सो कर्म सदोषभी होवै अर्थात् शास्त्रविहित हिंसारूप दोषकरिकै युक्तभी होवै । ऐसे दोषभी ज्योतिष्टोम युद्धादिक स्वकर्मकूं अंतःकरणकी शुद्धितै पूर्व तूं अर्जुन वा अन्य कोई पुरुष नहीं परित्याग करै । जिस कारणतै आत्मज्ञानतै रहित कोईभी अज्ञानी पुरुष एकक्षण-मात्रभी कर्मोंकूं नहीं करिकै स्थितहोणेकूं समर्थ होता नहीं किंतु सो अज्ञानी पुरुष यत्किंचित्कर्मकूं करताहुआभी स्थित होवै है । हे अर्जुन ! यह पुरुष स्वधर्मका परित्यागकरिकै परके धर्मकूं अनुष्ठान करताहुआ भी दोषतै मुक्त होता नहीं । काहेतै जैसे यह लोकप्रसिद्ध अग्नि धूम-करिकै आवृत होवै है तैसे जितनेक स्वधर्म हैं तथा जितनेक परधर्म है ते सर्वही धर्म सत्त्वादिक तीनगुणरूप सामान्यदोषकरिकै व्याप्त हैं । यातै ते सर्वही धर्म दोषयुक्तही हैं । यह वार्त्ता पूर्व (परिणामतापसं-स्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ।) इस योगसूत्र-करिकै कथन करिआये हैं । यातै जैसे विषतै उत्पन्नहुआ कृमि विषकूं नहीं परित्याग करै है तैसे यह अनात्मज्ञ पुरुष अगतितै कर्मोंकूं करता हुआ त्रिगुणात्मक सामान्यदोषकरिकै तथा बंधुवधादिनिमित्तक विशेष-दोषकरिकै युक्तभी स्वभावजन्य युद्धादिकर्मकूं कदाचित्भी नहीं परित्याग

करै। जिसकारणतैं यह अज्ञानी पुरुष सर्वकर्मोंके त्यागकरणेविषे समर्थ है नहीं । और सर्वकर्मोंके त्यागकरणेविषे समर्थ जो शुद्ध अंतःकरणवाला पुरुष है सो तौ तिन सर्व कर्मोंका परित्यागही करै ॥ ४८ ॥

वहां अशुद्ध अंतःकरणवाला अनात्मज्ञपुरुष जो सर्वकर्मोंके त्याग करणेविषे समर्थ नहीं है तौ तिन सर्वकर्मोंके त्याग करणेविषे कौन पुरुष समर्थ है ? ऐसी जिज्ञासाके प्राप्तहुए कहै हैं । जो अधिकारी पुरुष नित्य अनित्यवस्तुके विवेकवाला है अर्थात् एक आत्माही नित्य है आत्मातैं भिन्न देहादिक सर्व अनात्मपदार्थ अनित्य हैं इस प्रकारके नित्य अनित्यवस्तुके विवेकवाला है । और विवेकवाला होणेतैंही जो पुरुष वैराग्यवाला है अर्थात् इस लोकके जितनेक विषयभोग हैं तथा स्वर्गादिलोकोंके जितनेक विषयभोग हैं तिन सर्वविषयभोगोंविषे जो पुरुष रागतैं रहित है और वैराग्यवाला होणेतैंही जो पुरुष शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान इन षट्संपत्तिरूप साधनकरिकै संपन्न है । वहां विषयोंतैं मनकूं रोकणा याकूं शम कहैं हैं। और श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं शब्दादिकविषयोंतैं रोकणा याकूं दम कहैं हैं । और स्त्रीपुत्रधनादिक साधनों सहित सर्व कर्मोंका जो परित्याग है ताकूं उपरति कहैं हैं । और शीत, उष्ण, क्षुधा, पिपासा इत्यादिक द्वंद्वधर्मोंका जो सहन है ताका नाम तितिक्षा है । और वेदगुरुवोंके वचनोंविषे जो विश्वास है ताका नाम श्रद्धा है और मनके विक्षेपकी जा निवृत्ति है ताकूं समाधान कहैंहैं। इसप्रकारके शमदमादिक षट्संपत्तिरूप साधनकरिकै जो पुरुष संपन्न है तथा जो पुरुष भगवदर्पित निष्काम कर्मोंकरिकै अशुद्धकी निवृत्तिद्वारा अंतःकरणके शुद्धिकूं प्राप्त हुआ है तथा जो पुरुष शुद्धब्रह्मात्मऐक्यकी जिज्ञासाकूं प्राप्त हुआ है ऐसा मुमुक्षुजन तौ स्वइष्ट मोक्षका हेतुभूत ब्रह्मात्मऐक्यज्ञानके साधनरूप वेदांतवाक्योंके श्रवणादिकोंके करणेवास्तै सर्वविक्षेपोंकी निवृत्तिद्वारा तिन श्रवणादिकोंका अंगरूप तथा श्रुतिस्मृतिकरिकै

विहित ऐसे सर्व कर्मोंके संन्यासकूं अवश्यकरिकै करै । यह वार्त्ता श्रुतिविषे तथा स्मृतिविषेभी कथन करी है। तहां श्रुति–(तस्मादेवंविच्छांतो दांत उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वात्मन्येवात्मानं पश्येत् ।) अर्थ यह– जिसकारणतैं शमदमादिक साधनोंतैं रहित पुरुषकूं आत्मज्ञानकी प्राप्ति होवैनहीं तिसकारणतैं यह अधिकारी पुरुष शमयुक्त होइकै तथा दम-युक्त होइकै तथा उपरतिवाला होइकै तथा तितिक्षावाला होइकै तथा समाधानवाला होइकै आपणे अंतःकरणविषे आत्माकूं साक्षात्कार करै । इहां उपरतः इस शब्दकरिकै सर्वकर्मोंका संन्यास कथन कऱ्या है अर्थात् शमदमादिक साधनपूर्वक सर्व कर्मोंके संन्यासवाला होइकै यह अधिकारी पुरुष आत्माके साक्षात्कारवासतै वेदांतवाक्योंकूं विचार करै इति । यह वार्त्ता अन्य श्रुतिविषे भी कथन करी है । तहां श्रुति–(संन्यस्य श्रवणं कुर्यात् ।) अर्थ यह–यह अधिकारी पुरुष अंतःकरणकी शुद्धितैं अनंतर विधिपूर्वक सर्वकर्मोंका संन्यास करिकैही वेदांतवाक्योंका श्रवण करै इति । तहां स्मृति–(सत्यानृते सुखदुःखे विद्यानिमं लोकममुं च परित्यज्यात्मानमन्विच्छेत् ।) अर्थ यह–यह अधिकारी पुरुष सत्य अनृत, सुख दुःख, यहलोक परलोक इत्यादिक सर्वका परित्याग करिकै आत्मसाक्षात्कारवासतै वेदांतशास्त्रका विचार करै इति । इसप्रकारका परमहंस परिव्राजकही (ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति) इस श्रुतिनैं ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ इन तीन आश्रमोंतै विलक्षणरूपकरिकै प्रतिपादन कऱ्याहै । और इसप्रकारका परमहंस संन्यासीही परमहंस परिव्राजक कृतकृत्य गुरुके समीप जाइकै वेदांतवाक्योंके विचारकरणेविषे समर्थ होवैहै । तथा इसी मुमुक्षु परमहंस संन्यासीकूं उद्देशकरिकै श्रीव्यासभग-वानूनैं (अथातो ब्रह्मजिज्ञासा) इत्यादिक च्यारि अध्यायरूप उत्तरमीमांसाशास्त्रप्रारंभ कऱ्याहै । इसप्रकारके शुद्धअंतःकरणवाले मुमुक्षुजनका अब श्रीभगवान् कथन करै हैं–

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ॥
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति॥४९॥

(पदच्छेदः) असक्तबुद्धिः । सर्वत्र । जितात्मा । विगतस्पृहः । नैष्कर्म्यसिद्धिम् । परमाम् । संन्यासेन । अधिगच्छति॥ ४९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्वत्र आसक्तबुद्धि तथा जितात्मा तथा विगतस्पृह ऐसा अधिकारीपुरुष परम नैष्कर्म्यसिद्धिकूं संन्यासकरिकै प्राप्तहोवैहै ॥ ४९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! आसक्तिके निमित्तरूप जे धन, स्त्री, पुत्र, गृह इत्यादिक पदार्थ है तिन धनादिक पदार्थोंविषे भी जो पुरुष असक्तबुद्धि है अर्थात् मैं इन धनादिक पदार्थोंका हूं तथा यह धनादिक मेरे हैं इसप्रकारके अभिष्वंगतैं रहित है बुद्धि जिसकी ताका नाम असक्तबुद्धि है । अब तिस असक्तबुद्धिपणेविषे हेतु कहैं है (जितात्मा इति) इहां आत्मशब्दकरिकै अंतःकरणका ग्रहण करणा सो अंतःकरण सर्वविषयोंतैं निवृत्तकरिकै वश कऱ्याहै जिसनैं ताका नाम जितात्मा है । ऐसा जितात्मा होणेतैंही जो पुरुष सर्वत्र असक्तबुद्धि है । शंका—हे भगवन् ! विषयरागके विद्यमान हुए तिन विषयोंतैं अंतःकरणकी निवृत्ति कैसे संभवैगी ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (विगतस्पृहः इति ।) हे अर्जुन ! जो पुरुष देहजीवनके हेतुभूत अन्नपानादिक भोगोंविषेभी इच्छातैं रहित है अर्थात् सर्व दृश्यपदार्थोंविषे दोषदर्शनकरिकै तथा नित्य बोध परमानंदरूप मोक्षगुणोंके दर्शनकरिकै जो पुरुष सर्व अनात्मपदार्थोंतैं विरक्तहुआ है। इसप्रकारका जो शुद्धअंतःकरणवाला पुरुष (स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानवः ।) इस पूर्वउक्त वचनकरिकै प्रतिपादित कर्मजन्य अपरमसिद्धिकूं प्राप्त हुआहै अर्थात् आत्मज्ञानका साधनरूप जो वेदांतवाक्योंका विचार है ता विचारका अधिकाररूप तथा

ज्ञाननिष्ठाकी योग्यतारूप ऐसी जा निष्कामकर्मजन्य अंतःकरणकी शुद्धि-रूप अपरमसिद्धि है तिस अपरमसिद्धिकूं जो पुरुष प्राप्तहुआहै सो शुद्धअंतः-करणवाला अधिकारी पुरुष शिखायज्ञोपवीतादिक सहित सर्वकर्मोंके त्याग-रूप संन्यासकरिकै परमनैष्कर्म्यसिद्धिकूं प्राप्त होवैहै अर्थात् सो अधिकारी पुरुष संन्यासपूर्वक वेदांतविचारकरिकै परमनैष्कर्म्यसिद्धिकूं प्राप्त होवैहै । तहां (निष्कलं निष्क्रियं शांतम्) इस श्रुतिनैं ब्रह्मकूं क्रियारूप कर्मतैं रहित कथन कर्याहै यातैं ब्रह्मका नाम निष्कर्म है । तिस निष्कर्मकूं विषय करणेहारा जो वेदांतविचारतैं उत्पन्नहुआ आत्मज्ञान है ता ज्ञानका नाम नैष्कर्म्य है । अर्थात् अहंब्रह्मास्मि इसप्रकारके आत्म-साक्षात्कारका नाम नैष्कर्म्य है । ऐसी नैष्कर्म्यरूप जा सिद्धि है कैसी है सा नैष्कर्म्यसिद्धि, परमा है अर्थात् पूर्वउक्त निष्कामकर्मजन्य अंतः-करणकी शुद्धिरूप अपरमसिद्धिका फलरूप होणेतैं अत्यंत श्रेष्ठ है । ऐसी आत्मसाक्षात्काररूप परमनैष्कर्म्यसिद्धिकूं यह अधिकारी पुरुष संन्यासपूर्वक श्रवणादिक साधनोंके परिपाककरिकै प्राप्त होवै है । अथवा (संन्यासेन) इस वचनाविषे स्थित तृतीयाविभक्ति इत्थंभूतलक्षणविषे है । ताकरिकै यह अर्थ सिद्ध होवै है । सर्वकर्मोंका संन्यासरूप ऐसी जा नैष्कर्म्यसिद्धि है अर्थात् ब्रह्मसाक्षात्कारकी योग्यतारूप जा नैर्गुण्यलक्षण सिद्धि है । कैसी है सा सिद्धि—परम है अर्थात् पूर्वउक्त अंतः-करणकी शुद्धिरूप सात्त्विकसिद्धिका फलरूप होणेतैं श्रेष्ठ है । ऐसी सर्व-कर्मोंका संन्यासरूप परमनैष्कर्म्य सिद्धिकूं सो असक्तबुद्धि जितात्मा पुरुष ही प्राप्त होवै है ॥ ४९ ॥

तहां पूर्व कथन करे जे साधन हैं तिन सर्व साधनोंकरिकै संपन्न सर्व-कर्मोंके संन्यासीकूं ब्रह्मज्ञानकी उत्पत्तिविषे अब साधनोंके क्रमकूं श्रीभग-वान् कथन करैं हैं—

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे ॥
समासेनैव कौंतेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥ ५० ॥

(पदच्छेदः) सिद्धिम् । प्राप्तः । यथा । ब्रह्म । तथा । आप्नोति । निबोध । मे । समासेन । एव । कौंतेय । निष्ठा । ज्ञानस्य । या । परा ॥ ५० ॥

(पदार्थः) हे कौंतेय ! सिद्धिकूं प्राप्त हुआ यह पुरुष जिसप्रकारकरिकै ब्रह्मकूं साक्षात्कार करै है तिसप्रकारकूं तूं मेरे वचनतैं संक्षेपकरिकै ही निश्चयकर तथा तिस सिद्धिकूं प्राप्तहुए पुरुषकी जो ज्ञानकी परा निष्ठाहै तिसकूंभी तू निश्चय कर ॥ ५० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! आपणे वर्णआश्रमके कर्मोंसैं अंतर्यामी ईश्वरकूं आराधन करिकै तिस ईश्वरके प्रसादतैं उत्पन्न हुई जा सर्वकर्मोंके त्यागपर्यंत तथा ज्ञानके उत्पत्तिकी योग्यतारूप अंतःकरणकी शुद्धिरूप सिद्धि है ऐसी सिद्धिकूं प्राप्त हुआ यह अधिकारी पुरुष जैसे ब्रह्मकूं प्राप्त होवै है अर्थात् जिस प्रकारकरिकै प्रत्यक् अभिन्न शुद्धब्रह्मकूं साक्षात्कार करै है तिस प्रकारकूं तूं अर्जुन अनुष्ठान करणेवासतैं मेरे वचनतैं निश्चयकर । शंका—हे भगवन् ! बहुत विस्तारकरिकै कथन कऱ्याहुआ सो प्रकार हमारी बुद्धिविषे कैसे आरूढ होवैगा? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (समासेनैव इति) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरके वचनतैं संक्षेपकरिकै ही तूं तिस प्रकारकूं निश्चय कर । न बहुत विस्तारकरिकै । शंका—हे भगवन् ! तिस प्रकारके निश्चय करणेकरिकै क्या सिद्ध होवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (निष्ठा ज्ञानस्य या परा इति ।) हे अर्जुन ! श्रवणमननरूप विचार करिकै उत्पन्न भया जो आत्मज्ञान है तिस ज्ञानकी जा पारिसमाप्तिरूप निष्ठा है अर्थात् तिस निष्ठातैं अनंतर दूसरा कोई साधन अनुष्ठान कऱ्या जावे नहीं । कैसी है सा निष्ठा परा है अर्थात् अत्यंत

श्रेष्ठ है । अथवा साक्षात् मोक्षका हेतु होणेतैं जा निष्ठा सर्वके अंतविषे स्थित है । हे अर्जुन ! तिस पूर्वउक्त सिद्धिकूं प्राप्त हुए पुरुषकी इस प्रकारकी जा ब्रह्मकी प्राप्तिरूप परा ज्ञाननिष्ठा है तिस ज्ञाननिष्ठाकूंभी तूं मेरे वचनतैं संक्षेपकरिकै निश्चय कर इति । और किसी टीकाविषे तो (निष्ठा ज्ञानस्य या परा) यह ब्रह्मकाही विशेषण कथन कऱ्या है । तहां या कहिये जो प्राप्य ब्रह्मज्ञानकी परा निष्ठा है अर्थात् जिस ब्रह्मकी अपेक्षा करिकै दूसरा कोई पदार्थ सर्वतैं अंतरज्ञेयरूप नहीं है ऐसे ज्ञानकी परानिष्ठारूप ब्रह्मकूं यह शुद्ध अंतःकरणवाला मुमुक्षु जिस प्रकारकरिकै साक्षात्कार करै है तिस प्रकारकूं तूं हमारे वचनतैं संक्षेप करिकै निश्चय कर ॥ ५० ॥

अब श्रीभगवान् तिस प्रकार सहित इस ज्ञाननिष्ठाका कथन करैंहै—

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ॥
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ५१॥

(पदच्छेदः) बुद्ध्या । विशुद्धया । युक्तः । धृत्या । आत्मानम् । नियम्य । च । शब्दादीन् । विषयान् । त्यक्त्वा । रागद्वेषौ । व्युदस्य । च ॥ ५१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! विशुद्ध बुद्धिकरिकै युक्तहुआ यह पुरुष धैर्यकरिकै इस संघातकूं नियमकरिकै तथा शब्दादिक विषयोंकूं परित्यागकरिकै तथा रागद्वेषकूं परित्यागकरिकै ब्रह्मभावकूं प्राप्त होवै है ॥५१॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! सर्व संशयविपर्ययोंतैं शून्य होणेतैं विशुद्ध ऐसी जा अहंब्रह्मास्मि इसप्रकारके वेदांतवाक्योंतैं जन्य ब्रह्मात्मक ऐक्यविषयक बुद्धिकी वृत्ति है ता बुद्धिवृत्तिकरिकै सर्वदा युक्त हुआ यह अधिकारी पुरुष धैर्यरूप धृतिकरिकै शरीरइंद्रियसंघातरूप आत्माकूं नियमनकरिकै अर्थात् तिस संघातकूं शास्त्रनिषिद्धमार्गकी: प्रवृत्तितैं निवृत्तकरिकै अंतरआत्मापरायणकरिकै । इहां (आत्मानं नियम्य च) इस

वचनविषे स्थित जो च यह शब्द है तिस च शब्दकरिकै योगशास्त्रविषे कथन करेहुए दूसरे साधनोंकाभी समुच्चय करणा । तथा शब्दादिक विषयोंकूं परित्यागकरिकै अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह जे पंच विषय हैं जे शब्दादिक विषय आपणे भोगकरिकै इस भोक्ता-पुरुषके बंधन करणेविषे समर्थ हैं । तथा जे शब्दादिकविषय ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्तिवासतै शरीरकी स्थितिमात्ररूप प्रयोजनविषे उपयोगी नहीं हैं । तथा जे शब्दादिक विषय शास्त्रकरिकैभी निषिद्ध नहीं हैं । ऐसे शब्दादिकविषयोंकूं भी परित्यागकरिकै । और जे शब्दादिक विषय इस शरीरकी स्थितिमात्रविषे उपयोगी हैं; तिन विषयोंविषे भी राग-द्वेषकूं परित्यागकरिक । इहां (रागद्वेषौ व्युदस्य च) इस वचनविषे स्थित जो च यह शब्द है तिस च शब्दतै दूसरे भी जितनेक ज्ञानके विक्षेप करणेहारे हैं तिन सर्वोके परित्यागका ग्रहण करणा । इसप्रकार विशुद्धबुद्धिकरिकै युक्तहुआ यह अधिकारी पुरुष धृतिसैं संघातकूं नियमनकरिकै तथा शब्दादिक विषयोंका परित्याग करिकै तथा रागद्वेषादिकोंका परित्याग करिकै विविक्तसेवी आदिक विशेषणोंकरिकै युक्त होवै सो अधिकारी पुरुष ब्रह्मसाक्षात्कारवासतै समर्थ होवै है । इस रीतिवैं इस श्लोकका तथा अगलेश्लोकका (ब्रह्मभूयाय कल्पते) इस तृतीयश्लोकके वचनसाथि अन्वय करणा ॥ ५१ ॥

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ॥
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥५२ ॥

(पदच्छेदः) विविक्तसेवी । लघ्वाशी । यतवाक्कायमानसः । ध्यानयोगपरः । नित्यम् । वैराग्यम् । समुपाश्रितः ॥ ५२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष एकांतदेशका सेवन करणेहारा है तथा परिमित भोजन करणेहारा है तथा जीते हैं वाक् काय मन जिसनें तथा नित्यही ध्यानयोगपरायण है तथा वैराग्यकूं प्राप्तहुआ है सो पुरुष ब्रह्मसाक्षात्कारवासतै समर्थ होवै है ॥ ५२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जनोंके संसर्गतैं रहित तथा पवित्र ऐसा जो कोई वन है अथवा पर्वतकी गुहादिक है ताका नाम विविक्तदेश है। ऐसे विविक्तदेशके सेवन करणेका है स्वभाव जिसका ताका नाम विविक्तसेवी है। अर्थात् चित्तकी एकाग्रताके सिद्धिवासतै जो पुरुष तिस चित्तके विक्षेपकरणेहारे पदार्थोंके संसर्गतैं रहित है तथा जो पुरुष लघ्वाशी है तहां परिमित हित पवित्र ऐसे अन्नके भोजन करणेका है स्वभाव जिसका ताका नाम लघ्वाशी है। अर्थात् जो पुरुष निद्राआलस्यादिरूप चित्तके लय करणेहारे आहारके सेवनतैं रहित है। तथा जो पुरुष यतवाक्कायमानस है। तहां बहिर्मुखप्रवृत्तितैं निरुद्ध करे है वाक्, काय, मन यह तीनों जिसनैं ताका नाम यतवाक्कायमानस है अर्थात् जो पुरुष यम, नियम, आसन इत्यादिक साधनोंकरिकै संपन्न है तथा जो पुरुष नित्यही ध्यानयोगपरायण है। तहां चित्तविषे आत्माकारवृत्तियोंकी जा आवृत्ति है ताका नाम ध्यान है अर्थात् विजातीयवृत्तियोंके व्यवधानतैं रहित आत्माकार सजातीय वृत्तियोंका जो प्रवाह है ताका नाम ध्यान है। और तिस ध्यानकरिकै चित्तका जो सर्ववृत्तियोंतैं रहितपणेका संपादन है ताका नाम योग है। इसीप्रकारका योगका स्वरूप (योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः) इस सूत्रकरिकै पतंजलि भगवान्नैं भी कथन कऱ्याहै। जो पुरुष इस प्रकारके ध्यानके तथा योगके नित्य अनुष्ठानपरायण होवैहै तिस ध्यानयोगकूं छोडिकै जो पुरुष कदाचित्भी मंत्र जप तीर्थयात्रादिकोंके अनुष्ठानपरायण होता नहीं। तथा जो पुरुष वैराग्यकूं प्राप्त हुआ है। तहां इस लोकके विषयोंविषे तथा परलोकके विषयोंविषे स्पृहाका विरोधी जो चित्तका परिणामविशेष है ताका नाम वैराग्यहै ऐसे वैराग्यकूं जो पुरुष विवेकपूर्वक प्राप्तहुआहै सो पुरुष ब्रह्मसाक्षात्कारवासतै समर्थ होवै है ॥ ५२ ॥

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ॥
विमुच्य निर्ममः शांतो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥५३॥

(पदच्छेदः) अहंकारम् । बलम् । दर्पम् । कामम् । क्रोधम् । परिग्रहम् । विमुच्य निर्ममः । शांतः । ब्रह्मभूयाय । कल्पते ॥ ५३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अहंकारकूं तथा बलकूं तथा दर्पकूं तथा कामकूं तथा क्रोधकूं तथा परिग्रहकूं परित्यागकरिकै ममतातैं रहित हुआ तथा विक्षेपतैं रहित हुआ यह पुरुष ब्रह्मसाक्षात्कारवासतै समर्थ होवैहै ॥ ५३ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन तहां मैं महान् कुलाविषे उत्पन्न हुआ हूं तथा महान् पुरुषोंका मैं शिष्य हूं तथा मैं अतिविरक्त हूं दूसरा कोई हमारे समान है नहीं इस प्रकारका जो अभिमान है ताका नाम अहंकार है। और श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रतैं विरुद्ध जो असत् आग्रह है ताका नाम बल है । यद्यपि बहुतस्थलविषे शरीरके सामर्थ्यकूं बल कहा है तथापि इहां बलशब्द करिकै सो शारीरबल ग्रहण करणा नहीं । जिस कारणतैं स्वाभाविक होणेतैं सो शारीरबल त्याग करणेकूं अशक्य है । तथा आत्मज्ञानके साधनोंके संपादन करणेविषे अनुकूल है । और हर्ष-करिकै जन्य तथा धर्मके अतिक्रमणकरणेका कारणरूप ऐसा जो मद है ताका नाम दर्प है यह वार्ता स्मृतिविषे भी कथन करी है (हृष्टो दृप्यति दृप्तो धर्ममतिक्रामति ।) अर्थ यह—हर्षकूं प्राप्त हुआ यह पुरुष मदरूप दर्पकूं प्राप्त होवै है । और मदरूप दर्पकूं प्राप्त हुआ यह पुरुष धर्मका अति-क्रमण करै है इति । और इस लोकके अथवा परलोकके विषयोंकी जा अभिलाषा है ताका नाम काम है । और द्वेषका नाम क्रोध है । और स्पृहाके अभावहुएभी शरीरके रक्षणवासतै दूसरे लोकोंतैं प्राप्त करे हुए जे बाह्यभोगके साधन हैं तिन्होंका नाम परिग्रहहै । ऐसे अहंकारकूं तथा बलकूं तथा दर्पकूं तथा कामकूं तथा क्रोधकूं तथा परिग्रहकूं परित्याग

करिकै तथा शास्त्रकी विधिपूर्वक शिखायज्ञोपवीतादिकोंकूं परित्यागकरिकै तथा शरीरके निर्वाहवासतै शास्त्रविहित दंड, कमंडलु, कौपीन कंथा आदिकोंकूं ग्रहणकरिकै अर्थात् परमहंस परिव्राजक होइकै जो पुरुष निर्मम हुआ है अर्थात् देहके जीवनमात्रविषे भी जो पुरुष ममताअभिमानतैं रहित है इस कारणतैंही अहंकार ममकारके अभावकरिकै हर्षविषादतैं रहित होणेतैं जो पुरुष शांत है अर्थात् चित्तके सर्वविक्षेपोंतैं रहित है। इस प्रकारका परमहंस संन्यासी ही ज्ञान साधनोंके परिपाकक्रमकरिकै ब्रह्मसाक्षात्कार वासतै समर्थ होवै है अर्थात् अहंब्रह्मास्मि इस प्रकारके ब्रह्मसाक्षात्कारकूं प्राप्त होवै है। तहां पूर्व (वैराग्यं समुपाश्रितः) इस वचनकरिकै विषयोंकी अभिलाषारूप कामका परित्याग कथन करिकै पुनः (कामं परित्यज्य) इस वचन करिकै जो तिस कामका परित्याग कथन कन्याहै सो तिसकामके परित्यागकरणेविषे प्रयत्नकी अधिकता बोधनकरणेवासतै कथन कन्याहै ॥ ५३ ॥

हे भगवन्! इसप्रकारका परमहंससंन्यासी किस साधनक्रमकरिकै ब्रह्मसाक्षात्कारकूं प्राप्त होवैहै ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाकेहुए श्रीभगवान् तिस साधन क्रमकूं कथन करै हैं–

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ॥
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ ५४ ॥

(पदच्छेदः) ब्रह्मभूतः। प्रसन्नात्मा। न। शोचति। न। कांक्षति। समः। सर्वेषु। भूतेषु। मद्भक्तिम्। लभते। पराम् ॥ ५४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष ब्रह्मभूतहै तथा प्रसन्नात्मा है तथा नहीं शोककरैहै तथा नहीं इच्छाकरै है तथा सर्व भूतोंविषे सम है सो पुरुष परा मेरी भक्तिकूं प्राप्त होवै है ॥ ५४ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन । जो अधिकारी पुरुष ब्रह्मभूत है अर्थात् जो पुरुष वेदांतशास्त्रके श्रवणमननके अभ्यासतें अहंब्रह्मास्मि इस प्रकारके दृढनिश्चयवाला है । तथा जो पुरुष प्रसन्नात्मा है अर्थात् शमदमादिक साधनोंके अभ्यासतें जो पुरुष शुद्धचित्तवाला है । इसी कारणतें ही जो पुरुष नष्टहुए पदार्थका शोक नहीं करै है तथा अप्राप्तहुए पदार्थकी इच्छा नहीं करै है । इसी कारणतें ही निग्रह अनुग्रहके अनारंभतें जो पुरुष सर्वभूतोंविषे सम है अर्थात् जैसे आपणेकूं सुख प्रिय होवै तथा दुःख अप्रिय होवैहै तैसे जो पुरुष आपणे आत्माकी न्याई सर्वप्राणीमात्रके सुखकूंतौ प्रिय देखै है तथा दुःखकूं अप्रिय देखैहै । अथवा (समः सर्वेषु भूतेषु) इस वचनका यह अर्थ करणा। (ब्रह्मैवेदं सर्वम्) अर्थ यह—यह सर्वजगत् ब्रह्मरूप है इस प्रकारकी बुद्धिकरिकै जो पुरुष जरायुज, अंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज इन च्यारिप्रकारके भूतोंविषे विषमभावतें रहित है इति । इसप्रकारका ज्ञाननिष्ठ संन्यासी मैं परमात्मादेवकी भक्तिकूं प्राप्त होवैहै अर्थात् मैं निर्गुण शुद्धब्रह्मविषयक जो विजातीय वृत्तियोंके व्यवधानतें रहित सजातीय चित्तवृत्तियोंकी आवृत्तिरूप उपासना है जिस उपासनाकूं परिपक्वनिदिध्यासन कहैहैं । तथा जा उपासना श्रवणमननके अभ्यासका फलरूप है ऐसी निदिध्यासनरूप मेरी भक्तिकूं सो अधिकारी पुरुष प्राप्त होवैहै । कैसीहै सा मेरी भक्ति–परा है अर्थात् व्यवधानतें रहित ब्रह्मसाक्षात्काररूप फलका जनक होणेतें अत्यंत श्रेष्ठ है। अथवा परा कहिये (चतुर्विधा भजंते माम् ।) इस श्लोकविषे कथन करी जा च्यारिप्रकारकी भक्ति है तिस च्यारिप्रकारकी भक्तिविषे ज्ञानरूप अत्यंतभक्ति है । इस प्रकारकी पराभक्तिवाळा पुरुष श्रीभागवतविषे भी कथन कऱ्याहै । तहां श्लोक–(सर्वभूतेषु येनैकं भगवद्भावमीक्षते ॥ भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥) अर्थ यह–जिसकरिकै यह पुरुष स्थावरजंगमरूप सर्वभूतोंविषे एक भगवद्भावकूं देखै है अर्थात् (ब्रह्मैवेदं सर्वम्) इस श्रुतिप्रमाणतें सर्वभूतोंविषे अस्तिभातिप्रि-

यरूप ब्रह्मकूं ही व्यापक देखैहै । तथा सर्वप्राणियोंका आत्मरूप जो भगवान् परब्रह्म है तिस परब्रह्मविषे तिन सर्वभूतोंकूं कल्पित देखैहै । इस प्रकारका तत्त्ववेत्ता पुरुष ही सर्व भगवद्भक्तोंविषे उत्तम भक्त है ॥ ५४ ॥

हे भगवन् ! तिस निदिध्यासनरूप भक्तिकरिकै इस अधिकारी पुरुषकूं किस फलकी प्राप्ति होवैहै ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् तिस भक्तिके फलकूं कथन करैहैं—

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ॥
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनंतरम् ॥ ५५ ॥

(पदच्छेदः) भक्त्या । माम् । अभिजानाति । यावान् । यः । च । अस्मि । तत्त्वतः । ततः । माम् । तत्त्वतः । ज्ञात्वा । विशते । तदनंतरम् ॥ ५५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमात्मा देव जिस परिणामवाला हूं तथा जिसस्वरूपवाला ऐसे मैं परमात्माकूं तिस भक्तिकरिकै सो पुरुष यथावत् साक्षात्कार करैहै इसप्रकार तिसे भक्तितैं मैं परमात्माकूं यथावत् साक्षात्कारकरिकै देहपाततैं अनंतर सो तत्त्ववेत्तापुरुष मैं परब्रह्मविषे अभेदरूपतैं प्रवेश करैहै ॥ ५५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! तिस निदिध्यासनरूप ज्ञाननिष्ठानामा भक्तिकरिकै सो अधिकारी पुरुष मैं परमात्मा देवकूं यथावत् स्वरूपतैं साक्षात्कार करैहै । अब तिस यथार्थस्वरूपकूं वर्णन करैं हैं । (यावान्यश्चास्मि) वहां मैं अणुपरिमाणवाला हूं । अथवा मैं देहके तुल्य मध्यमपरिमाणवाला हूं । अथवा नैयायिकोंनैं कल्पनाकऱ्या जो आकाशकी न्याईं सर्वमूर्तद्रव्योंके साथि संयोगित्वरूप विभुत्व है तिस विभुत्वका मैं आश्रय हूं । अथवा सप्रपंच अद्वैतवादियोंकी न्याईं मैं स्वगतभेदवाला हूं अथवा मैं अखंड एकरस सर्वत्रव्यापक हूं इस प्रकारका विचारकरिकै श्रुतिविरुद्ध पक्षोंका बाधकरिकै सो पुरुष मैं परमात्मादेवकूं अखंड, एकरस, नित्य,

-विभुरूपही जानैहै । अणुरूप वा मध्यमपरिमाणवाला वा नैयायिकोंके विभुपरिमाणवाला वा स्वगतभेदवाला मैं परमात्मादेवकूं जानता नहीं । तथा मैं देहरूप हूं अथवा इंद्रियरूप हूं । अथवा प्राणरूप हूं । अथवा मनरूप हूं । अथवा कोईक कालस्थायी हूं । अथवा क्षणिक विज्ञानरूप हूं । अथवा शून्यरूप हूं । अथवा कर्त्ताभोक्तारूप हूं । अथवा जडरूप हूं । अथवा जडअजडरूप हूं । अथवा चित्रूप हूं । अथवा भोक्तारूप हूं । अथवा कर्तृत्वभोक्तृत्वतैं रहित आनंदघनरूप हूं । इसप्रकारका विचारकरिकै श्रुतिविरुद्ध सर्वपक्षोंका बांधकरिकै सो अधिकारी पुरुष मैं परमात्मादेवकूं परिपूर्ण, सत्य, ज्ञान, आनंदघन, सर्वउपाधियोंतैं रहित, अखंड, एकरस, अद्वितीय, अजर, अमर, अभय, अशोकरूपही जानैहै। देहइंद्रियादिरूप मेरेकूं जानता नहीं । इस प्रकारका तिस निदिध्यासनरूप भक्तितैं मैं परमात्मदेवकूं यथावत् जानिकै अर्थात् अखंड, एकरस, अद्वैतीय, आनंदरूप ब्रह्म मैंही हूं । इस प्रकारतैं मैं परमात्मादेवकूं साक्षात्कारकरिकै सो तत्त्ववेत्ता पुरुष मैं परमात्मादेवविषे ही प्रवेश करैहै । अर्थात् तत्त्वसाक्षात्कारकरिकै अज्ञानके निवृत्त हुए तथा ता अज्ञानके देहादिक कार्योंके निवृत्तहुए सर्व उपाधियोंतैं रहित हुआ सो परमहंस संन्यासी मैं निर्गुणब्रह्मरूप ही होवैहै । तहां सर्व उपाधियोंतैं रहित होइकै सो तत्त्ववेत्ता संन्यासी कबी ब्रह्मरूप होवैहै ? ऐसी जिज्ञासाके प्राप्त हुए कहै हैं (तदनंतरमिति) अर्थात् बलवान् प्रारब्धकर्मके भोगकरिकै देहके पातहुएतैं अनंतर सो तत्त्ववेत्ता संन्यासी देहादिक सर्वउपाधियोंतैं रहितहुआ ब्रह्मरूप होवैहै यद्यपि (तदनंतरम्) इस वचनका ज्ञानतैं अनंतर या प्रकारका अर्थ किसी टीकाकारनैं कऱ्या है तथापि यह अर्थ संभवता नहीं । काहेतैं आत्मज्ञान ब्रह्मविषे प्रवेश इन दोनोंका पूर्वउत्तरभाव तौ (ज्ञात्वा) इस वचनविषे स्थित क्त्वा इस प्रत्ययकरिकै ही सिद्ध होवै है । (तदनंतरम्) यह पद व्यर्थ होवैगा । यातैं (तदनंतरम्) इस वचनका देहपाततैं अनंतर यह अर्थही सम्यक्

है इति । तहां इस श्लोकविषे श्रीभगवान्नें (तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्षेऽथ संपत्स्ये) इस श्रुतिका अर्थ कथन कऱ्या है । इस श्रुतिका यह अर्थ है । तिस ब्रह्मवेत्ता पुरुषकूं विदेहमोक्षकी प्राप्तिविषे तितनेका-लपर्यंत ही विलंब है । जितनेकालपर्यंत प्रारब्धकर्मके भोगकरिकै इस देहका पात नहीं होवै है । देहके पातहुएतैं अनंतर सर्वउपाधियोंतैं रहित-हुआ सो ब्रह्मवेत्ता पुरुष निर्गुण अद्वितीय ब्रह्मकी प्राप्तिरूप विदेहमोक्षकूं प्राप्त होवै है इति । जो कदाचित् तत्त्वज्ञानके उत्पन्नहुएभी देहके पातप-र्यंत प्रारब्धकर्मोंकूं विदेहकैवल्यका प्रतिबंधक नहीं मानिये तौ तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिकालविषे ही देहका पात होवैगा । तहां ज्ञानके समकालही देहका पात न मानणेविषे एक तौ ब्रह्मविद्याके संप्रदायका उच्छेद प्राप्त होवैगा । और दूसरा जीवन्मुक्तिकी प्रतिपादक श्रुति असंगत होवैगी । सा श्रुति यह है (विमुक्तश्च विमुच्यते । भूयश्चांते विश्वमायानिवृत्तिः) अर्थ यह— तत्त्वज्ञानकरिकै मुक्त हुआभी यह विद्वान् पुरुष प्रारब्धकर्मके भोगकरिकै देहपाततैं अनंतर पुनः विशेषकरिकै मुक्त होवै है इति । और इस तत्त्व-वेत्ता पुरुषकी अज्ञानरूप माया पूर्व तत्त्वज्ञानकरिकै निवृत्ति हुई भी लेशरूपकरिकै रहीहुई सा माया पुनः देहपाततैं अनंतर निवृत्त होवै है इति । यह दोनों श्रुति मुक्तपुरुषकी पुनः मुक्तिकूं कथन करती हुई तथा निवृत्तिहुई सा माया पुनः निवृत्तिकूं कथन करती हुई विद्वान् पुरुषके जीवन्मुक्तिकूं कथन करै है ते दोनों श्रुति असंगत होवैंगी । यातैं तत्त्व-ज्ञानके उत्पन्न हुएभी देहके पातपर्यंत प्रारब्धकर्मोंकूं विदेहकैवल्यका प्रति-बंधकपणा अंगीकार करणा उचित है । यद्यपि जैसे दीपक अंधकारका विरोधि होवै है, यातैं सो दीपक आपणे उत्पत्तिकालविषे ही ता अंध-कारकी निवृत्ति करै है तैसे तत्त्वज्ञानभी अज्ञानका विरोधी है यातैं सो तत्त्वज्ञानभी आपणे उत्पत्तिकालविषे ही ता अज्ञानकूं निवृत्त करै है । और ता अज्ञानरूप उपादानकारणके निवृत्तहुए ताके कार्यरूप अहंकार देहादिक भी उसी कालविषे निवृत्त होणेचाहिये तथापि तत्त्वज्ञानकरिकै

उपादानकारणरूप अज्ञानके निवृत्त हुएभी ता ज्ञानके कार्यरूप अहंकार देहादिक· उपादानकारणतैं विनाही प्रारब्धकर्मके भोगपर्यंत स्थित होवैं है । जिस कारणतै तत्त्ववेत्ता पुरुषके अहंकार देहादिक प्रत्यक्षही देखणे-विषे आवै हैं । और (न हि दृष्टेरनुपपन्नं नाम) अर्थ यह—प्रत्यक्षप्रमाण-सिद्ध अर्थविषे किंचित्मात्रभी अनुपपत्ति होवै नहीं । यह सर्वशास्त्रकारोंका नियम है । ऐसे प्रत्यक्षप्रमाणकरिकै सिद्ध तिस तत्त्ववेत्ता पुरुपके अहंका-रदेहादिक किसीनैं निपेधकरिसकीते नहीं । और उपादानकारणके निवृत्त हुएतैं अनंतर कार्यकी स्थिति कहांभी देखीती नहीं । ऐसी जो कोई शंका करै सा शंकाभी संभवती नहीं । काहेतैं समवायिकारणके नाशतैं कार्य-द्रव्यके नाशकूं अंगीकार करणेहारे जे नैयायिक हैं तिन नैयायिकोंनैं भी उपादानकारणतैं रहित एकक्षणमात्र कार्यद्रव्यकी स्थिति अंगीकार करी है। और तिन नैयायिकोंके मतविषे नित्यपरमाणुवोंविषे समवेत जो द्व्यणुकरूप कार्यद्रव्य है, तिस द्व्यणुकका समवायिकारणके नाशतैं नाश होवै नहीं किंतु दो परमाणुवोंका संयोगरूप असमवायिकारणके नाशतैं ही ता द्व्यणुकका नाश होवै है । और जे नैयायिक सर्वत्र असमवा-यिकारणके नाशकूं ही कार्यद्रयके नाशविपे हेतु कहैं हैं । तिन नैया-यिकोंके मतविपे तौ आश्रयके नाशस्थलविषे उपादानतैं रहित हुआ कार्यद्रव्य दो क्षणपर्यंत स्थिररहै है । इस प्रकार नैयायिकोंने उपादानका-रणके नाश हुएभी कार्यद्रव्यकी एकक्षणपर्यंत स्थिति वा दो क्षणपर्यंत स्थिति अंगीकार करी है । तैसे सिद्धांतविषेभी अज्ञानरूप उपादानकार-णके निवृत्तहुएभी प्रारब्धकर्मरूप प्रतिबंधके विद्यमान हुए अहंकार देहादिरूप कार्यकी बहुतकालपर्यंत स्थिति किसीतैं भी निवृत्त होइसकै नहीं । और तत्त्ववेत्तापुरुपके अहंकार देहादिकोंकी निवृत्तिविपे प्रारब्ध-कर्मोंकूं प्रतिबंधकपणा है । यह अर्थ केवल स्वकल्पनामात्रतैं सिद्ध नहीं है किंतु (तस्य तावदेव चिरम्) इस पूर्वउक्त श्रुतिकरिकै ही सिद्ध है ।

तथा तत्त्ववेत्तापुरुषके अहंकार देहादिकोंके स्थितिकी अनुपपत्तिरूप अर्थापत्तिप्रमाणकरिकै भी सिद्ध है । किंवा तत्त्ववेत्ता पुरुषके अहंकार देहादिकोंकी निवृत्तिविषे केवल तिस तत्त्ववेत्तापुरुषके ही प्रारब्धकर्म प्रतिबंधक नहींहै किंतु तिस तत्त्ववेत्तापुरुषके उपदेशकरिकै कृतार्थ होणे-हारे शिष्यसेवकादिकोंके अदृष्टभी प्रतिबंधक हैं तिन प्रारब्धकर्मोंके अभावकी अपेक्षाकरिकै सो पूर्वसिद्धिही अज्ञानका नाश ता अज्ञानके कार्यरूप अंतः-करणदेहादिकोंकूं नाश करैहै । यातैं तिन अंतःकरणदेहादिकोंके नाश करणेवासतै तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं पुनः ज्ञानकी अपेक्षा होवै नहीं । यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषे भी कथन करीहै । तहां श्लोक–(तीर्थे श्वपचगृहे वा नष्टस्मृतिरपि परित्यजन्देहम् । ज्ञानसमकालमुक्तः कैवल्यं याति हतशोकः ॥) अर्थ यह–अहं ब्रह्मास्मि इसप्रकारके ज्ञानकी प्राप्तिकालविषे मुक्तहुआ तथा निवृत्तहुए हैं सर्व शोक जिसके ऐसा जो तत्त्ववेत्ता पुरुष है सो तत्त्ववेत्ता पुरुष श्रीकाशीआदिक तीर्थोंविषे देहकूं परित्याग करताहुआ । अथवा चांडालके गृहविषे देहकूं परित्याग करताहुआ । अथवा सन्निपातादिक रोगके वशतैं शास्त्र अर्थकी स्मृतितैं रहितहोइकै देहकूं परित्याग करताहुआ सर्वप्रकारतैं विदेहकैवल्य-कूं ही प्राप्त होवैहै । इति । और अहंब्रह्मास्मि इसप्रकारके तत्त्वज्ञानकरिकै निवृत्त हुआ है अज्ञान जिसका ऐसा जो ब्रह्मवेत्ता पुरुष है तिस ब्रह्मवे-त्तापुरुषकूं भी (न जानामि) इसप्रकारका प्रत्यय तौ होवै है परंतु जैसा अज्ञानी पुरुषका सो प्रत्यय अज्ञानतैं होवै है तैसे ब्रह्मवेत्ता पुरुषका सो प्रत्यय अज्ञानतैं होवै नहीं किंतु अज्ञानके नाशकरिकै जन्य तथा उपा-दानतैं रहित तथा साक्षात् आत्माके आश्रित तथा तत्त्वज्ञानके संस्कारों-करिकै निवर्त्य तथा अंतःकरणादिकोंके स्थितिका अवधिरूप ऐसा जो अज्ञानका संस्कार है तिस अज्ञानके संस्कारतैं ही तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं (न जानामि) यह प्रत्यय होवै है। इसप्रकारतै विवरणादिक ग्रंथोंविषे व्यवस्था करी है । तात्पर्य यह-अहंब्रह्मास्मि इस प्रकारके अंत्यसाक्षात्कारतैं

अनंतर (अहं ब्रह्म न भवामि अहं ब्रह्म न जानामि ।) अर्थ यह—मैं ब्रह्म नहीं हूं तथा मैं ब्रह्मकूं नहीं जानता हूं इसप्रकारका प्रत्यय तौ तत्ववेत्ता पुरुषकूं कदाचित्भी होवा नहीं । परंतु तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं जो कदाचित् व्यवहारकालविषे (अहं घटं न जानामि ।) अर्थ यह—मैं घटकूं नहीं जानता हूं इत्यादिक प्रत्यय होवै तिस प्रत्ययकी सिद्धिवासतै सो अज्ञानका संस्कार कल्पना कऱ्या है । यातैं इहां किंचित्मात्रभी अनुपपत्ति होवै नहीं । और तत्त्वज्ञानकरिकै अज्ञानके निवृत्तहुएवैं अनंतर शास्त्रकारोंनैं जो अज्ञानका लेश अंगीकार कऱ्या है तिस अज्ञानलेशपदकरिकै भी यह अज्ञानका संस्कार ही विवक्षित है । तिस संस्कारतैं भिन्न दूसरा कोई अवयवादिरूप अर्थ तिस अज्ञानलेशपदकरिकै विवक्षित नहीं है। काहेतैं घटपदादिक द्रव्योंकी न्याई सो अज्ञान कोई सावयवद्रव्य है नहीं। जिस सावयवताकरिकै तत्त्वज्ञानकरिकै कछुक अज्ञान निवृत्त होवै है कछुक अज्ञान वाकी रहैहै याप्रकारकी कल्पना होवै है । परन्तु सो अज्ञान सावयव है नहीं । और अज्ञानकूं अनिर्वचनीय होणेतैं जो कदाचित् तिस अज्ञानका कोईएक देश अंगीकार करिये तो तिस अज्ञानके एक देशकी निवृत्तिवासतै पुनः अहंब्रह्मास्मि इसप्रकारके अंत्यज्ञानकी अपेक्षा अवश्य होवैगी ! सो इसप्रकारका ज्ञान मरणकालविषे दुर्घटही है । यातैं तिस अज्ञानके एकदेशविषेभी पूर्वउत्पन्नहुए तत्त्वज्ञानके संस्कारकरिकै ही नाशता अंगीकार करणी होवैगी । ताकरिकै पूर्वउक्त संस्कारपक्षतैं इस एकदेशपक्षविषे किंचित्मात्रभी विशेषता सिद्ध नहीं होवैगी । यातैं सा पूर्वउक्त अज्ञानसंस्कारोंकी कल्पना ही श्रेष्ठ है । इसप्रकारके जीवन्मुक्तिकी अपेक्षाकरिकै ही पूर्व श्रीभगवान्नें अर्जुनके प्रति (उपदेक्ष्यंति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ।) इसप्रकारका वचन कथन कऱ्या था। तथा तत्त्ववेत्ता स्थितप्रज्ञ पुरुषके लक्षण कथन करेथे । यातैं (ततनंतरं मां विशते ।) इस वचनकरिकै तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं देहपाततैं अनंतर विदेहकैवल्यकी प्राप्ति जो भगवान्नें कथन करी है सो

युक्तही है इति। और किसी टीकाविषे तौ (ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनंतरम्।) इस उत्तरार्द्धविषे (मां तत्त्वतः ज्ञात्वा ततः भवति अनंतरं तत् विशते) इसप्रकारतैं भवति इस पदके अध्याहारपूर्वक पदोंकी योजनाकरिकै यह अर्थ कथन कऱ्या है। इहां (ततः) इस पदकरिकै सर्वत्रव्यापक मायाविशिष्ट कारणब्रह्मका ग्रहण करणा। और (तदिति वा एतस्य महतो भूतस्य नाम भवति।) इस श्रुतिविषे तत् यह नाम शुद्धब्रह्मका कह्या है। यातैं यह अर्थ सिद्ध होवै है—मैं ब्रह्मरूप हूं इसप्रकारतैं मैं परब्रह्मकूं साक्षात्कारकरिकै यह तत्त्ववेत्ता पुरुष प्रथम सर्वात्मभूत कारणब्रह्मरूप होवै है। तहां श्रुति—(य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवति।) अर्थ यह—जो तत्त्ववेत्ता पुरुष अहं ब्रह्मास्मि इस प्रकारतैं आत्माकूं साक्षात्कार करै है सो तत्त्ववेत्ता पुरुष सर्वरूप होवै है इति। इस श्रुतिनैं तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं प्रथम सर्वात्म्यरूप कारणब्रह्मभावकी प्राप्ति कथन करी है। और तिस कारणब्रह्मभावकी प्राप्तितैं अनंतर सो तत्त्ववेत्ता पुरुष शुद्धब्रह्मभावकूं प्राप्त होवै है अर्थात् मुक्तपुरुषोंकूं मायाउपाधिक कारणब्रह्मकी प्राप्तिद्वारा ही निर्गुण शुद्धब्रह्मकी प्राप्ति होवै है, इस पक्षका विस्तारतैं प्रतिपादन ग्रंथांतरोंविषे स्पष्ट है ॥ ५५ ॥

हे भगवन्! जो पुरुष अनात्मज्ञहै तथा अशुद्धअंतःकरणवालाहै सो पुरुष ता अंतःकरणकी शुद्धिपर्यंत आपणे वर्णआश्रमके कर्मोंकूं कदाचितभी नहीं परित्याग करै। और जो पुरुष शुद्धअंतःकरणवालाहै सो पुरुष तौ सर्वकर्मोंके संन्यासकरिकैही आत्मज्ञानकूं प्राप्त होवै है। यह वार्त्ता पूर्व आपनैं कथन करी। और सो सर्व कर्मोंका संन्यास ब्राह्मणनैंही करणे योग्यहै। क्षत्रिय वैश्यनैं सो सर्व कर्मोंका संन्यास करणे योग्य नहीं है इस अर्थकूंभी (कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।) इस वचन करिकै आप कथन करते भये हो। तहां शुद्ध हुआ है अंतःकरण जिनोंका ऐसे क्षत्रियादिकोंनैं क्या कर्मही अनुष्ठान करणे योग्य हैं अथवा सर्व कर्मोंका

सन्यास करणे योग्य है ? तहां शुद्ध अन्तःकरणवाले क्षत्रिय वैश्यनैं कर्मही करणे योग्य है । यह प्रथमपक्ष तौ संभवता नहीं । काहेतैं (आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते । योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ।) इत्यादिक वचन करिकै अन्तःकरणकी शुद्धिकूं कर्मोंके अनुष्ठानका निषेध पूर्व आप कथन करिआये हो । और शुद्ध अन्तःकरणवाले क्षत्रिय वैश्यनैं संन्यास करणे योग्य है, यह दूसरा पक्ष भी संभवता नहीं । काहेतैं (स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ।) इत्यादिक वचनोंकरिकै केवल ब्राह्मणका धर्मरूप जो सर्व कर्मोंका संन्यास है तिस संन्यासका क्षत्रिय वैश्यके प्रति आप निषेध करिआये हो । और कर्मोंका अनुष्ठान तथा तिन कर्मोंका त्याग इन दोनों प्रकारोंतैं विना तीसरा कोई प्रकार है नहीं । जिस तीसरे प्रकारकूं ते शुद्धअन्तःकरणवाले क्षत्रिय वैश्यादिक करैं । यातैं कर्मोंका अनुष्ठान तथा कर्मोंका त्यागरूप संन्यास इन दोनोंका शुद्धअंतःकरणवाले क्षत्रिय वैश्यके प्रति प्रतिपेध होणेतैं तथा अन्य प्रकारके अभाव होणेतैं एक प्रतिषेधका अतिक्रमण तौ अवश्यकरिकै प्राप्त होवैगा । तहां शुद्धअन्तःकरणवाले क्षत्रिय वैश्यकूं कर्मोंके अनुष्ठानतैं कर्मोंका त्यागही श्रेष्ठहै । काहेतै (कर्मणा बध्यते जंतुः ।) इत्यादिक वचनोंविषे कर्मोंकूं बंधका हेतुपणाही कथन कन्या है । ऐसे बंधके हेतुरूप कर्मोंके परित्याग करिकै इस पुरुषकूं मोक्षके साधनोंकी पुष्कलता ही प्राप्त होवै है । और शुद्धअन्तःकरणवाले क्षत्रिय वैश्यनैं ते कर्म अनुष्ठान करणे योग्य नहीं हैं । काहेतैं ते कर्म चित्तके विक्षेपके हेतु होणेतैं मोक्षके साधनरूप आत्मज्ञानके प्रतिबंधकही हैं । इसप्रकारके अर्जुनके अभिप्रायकूं जानिके श्रीभगवान् तिस अर्जुनके प्रति कहैहैं–

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ॥
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥५६॥

(पदच्छेदः) सर्वकर्माणि । अपि । सदा । कुर्वाणः । मद्व्यपाश्रयः । मत्प्रसादात् । अवाप्नोति । शाश्वतम् । पदम् । अव्ययम् ॥ ५६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्व कर्मोंकूं सदा करता हुआ भी मेरे शरणागतपुरुष मेरे अनुग्रहतैं शाश्वत अव्यय पदकूं प्राप्तहोवैहै ॥ ५६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो पुरुष पूर्वउक्त निष्कामकर्मोंकरिकै शुद्ध अंतःकरणवाला हुआ है सो शुद्धअंतःकरणवाला पुरुष अवश्यकरिकै भगवत् शरणकूं प्राप्त होवै है। काहेतैं निष्कामकर्मोंकरिकै जन्य जो अन्तःकणरकी शुद्धि है ता शुद्धिका भगवत् शरणकी प्राप्तिविषेही परिअवसान है । इस प्रकार निष्काम कर्मजन्य अंतःकरणकी शुद्धि पूर्वक भगवत् शरणकूं प्राप्त हुआ जो अधिकारी पुरुष है सो अधिकारी पुरुष जो कदाचित् ब्राह्मण होवै है तौ संन्यासका प्रतिबंधक क्षत्रियत्ववैश्यत्वजातिवैं रहित होणेतैं सो ब्राह्मण निःशंक होइके विधिपूर्वक सर्वकर्मोंका संन्यास करै । और अन्तःकरणकी शुद्धिपूर्वक तथा सर्वकर्मोंके संन्यासपूर्वक भगवच्छरणकूं प्राप्त हुए तिस ब्राह्मणका भी इस जन्ममरणरूप संसारतैं मोक्ष तौ एक भगवत्के प्रसादतैं ही होवै है । तिस भगवत्प्रसादतैं विना केवल कर्मोंके त्यागमात्रतैं तिस अधिकारी ब्राह्मणका संसारतैं मोक्ष होवै नहीं । और तिन निष्काम कर्मोंकरिकै अंतःकरणकी शुद्धिकूं प्राप्त हुआ जो अधिकारी पुरुष है सो अधिकारी पुरुष जो कदाचित् संन्यासका अधिकारी क्षत्रिय वैश्य होवै सो क्षत्रिय वैश्य अधिकारी पुरुष तौ कर्मोंकूं अवश्यकरिकै करै । परन्तु सो क्षत्रिय वैश्य मद्व्यपाश्रय हुआ कर्मोंकूं करै । तहां मैं भगवान् वासुदेवही हूं व्यपाश्रय कहिये शरण जिसका ताका नाम मद्व्यपाश्रयहै। अर्थात् एक मैं परमेश्वरके शरण होइकै मैं परमेश्वरविषे अर्पण कन्या है सर्वात्मभाव जिसनैं ताका नाम मद्व्यपाश्रय है। ऐसा मद्व्यपाश्रय हुआ यह क्षत्रिय वैश्यादिक अधिकारी पुरुष संन्यासका अनधिकारी होणेतैं सर्वदा सर्व कर्मोंकूं करता हुआभी

अर्थात् शास्त्रविहित स्ववर्ण आश्रमके धर्मरूप कर्मोंकूं अथवा लौकिक कर्मोंकूं अथवा प्रतिषिद्ध कर्मोंकूं करताहुआभी मैं परमेश्वरके अनुग्रहतैं हिरण्यगर्भकी न्याई अहं ब्रह्मास्मि इस प्रकारके ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति करिकै शाश्वत अव्यय पदकूं प्राप्त होवै है। अर्थात् (तद्विष्णोः परमं पदम्) इस श्रुतिकरिकै प्रतिपादित जो मोक्षरूप पद है जिस पदकूं प्राप्त होइकै तत्त्ववेत्ता पुरुष पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होवै नहीं, तिस मोक्षरूप पदकूं सो अधिकारी पुरुष प्राप्त होवै है। कैसा है सो पद—शाश्वत है। अर्थात् उत्पत्तिविनाशतैं रहित होणेतैं नित्यहै तथा अव्ययहै अर्थात् परिणामभावतैं रहित है। यद्यपि इसप्रकारका भगवत्शरण अधिकारी पुरुष कदाचित्भी प्रतिषिद्धकर्मोंकूं करता नहीं, तथापि जो कदाचित् सो भगवत्शरण अधिकारी पुरुष तिन प्रतिषिद्धकर्मोंकूं करैभी तौभी मैं परमेश्वरके अनुग्रहतैं प्रत्यवायकी अनुत्पत्ति करिकै अहंब्रह्मास्मि इस प्रकारके मेरे साक्षात्कारिकै सो अधिकारी पुरुष मोक्षकूंही प्राप्त होवैहै। इसप्रकारतैं तिस भगवत्शरणताकी स्तुति करणेवासतै श्रीभगवाननैं (सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणः) इसप्रकारका वचन कथन कऱ्याहै ॥ ५६ ॥

जिसकारणतैं एक मैं परमेश्वरकी शरणतामात्रही आत्मज्ञानकी प्राप्तिद्वारा मोक्षका साधन है तिसतैं अन्य कर्मोंका अनुष्ठान व कर्मोंका संन्यास मोक्षका साधन है नहीं। तिसकारणतैं तूं क्षत्रिय अर्जुन केवल मैं परमेश्वरपरायणही होउ। इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं है—

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ॥
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥ ५७ ॥

(पदच्छेदः) चेतसा। सर्वकर्माणि। मयि। संन्यस्य। मत्परः। बुद्धियोगम्। उपाश्रित्य। मच्चित्तः। सततम्। भव ॥५७॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! चित्तकरिकै सर्वकर्मोंकूं मैं परमेश्वरविषे समर्पणकरिकै मत्परहुआ तूं बुद्धियोगकूं स्वीकारकरिकै सर्वदा मच्चित्त होउ ॥ ५७ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! इसलोकके दृष्टअर्थोंकी प्राप्ति करणेहारे तथा स्वर्गादिकलोकोंके अदृष्टअर्थोंकी प्राप्ति करणेहारे जितनेक लौकिक वैदिक कर्म हैं तिन सर्वकर्मोंकूं विवेकयुक्त बुद्धिकरिकै मैं परमेश्वरविषे अर्पण करिकै अर्थात् (यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् । यत्तपस्यसि कौंतेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥) इस पूर्वश्लोकउक्तरीतिसें तिन लौकिक वैदिक सर्वकर्मोंकूं मैं परमेश्वरविषे अर्पण करिकै मत्परहुआ तुं तहां मैं भगवान् वासुदेवही हूं अत्यंत प्रिय जिसकूं ताका नाम मत्पर है । ऐसा मत्पर हुआ तूं पूर्व कथनकऱ्या जो कर्मफलकी सिद्धि असिद्धिविषे समत्वबुद्धिरूप बुद्धियोग है जो बुद्धियोग बंधके हेतुरूपभी कर्मोंविषे मोक्षके हेतुपणेका संपादक है । ऐसे बुद्धियोगकूं अनन्यशरणरूपतें स्वीकार करिकै सर्वदा मच्चित्त होउ । तहां मैं भगवान् वासुदेवविषेही है चित्त जिसका दूसरे किसी राजाविषे वा कामिनी आदिकोंविषे जिसका चित्त है नहीं ताका नाम मच्चित्त है । इसप्रकारका मच्चित्त तूं अर्जुन सर्वदा होउ । इहां किसी मूलपुस्तकविषे (बुद्धियोगमपाश्रित्य) इस प्रकारकाभी पाठ होवैहै । ऐसे पाठविषेभी सो पूर्वउक्त अर्थही जानणा ॥ ५७ ॥

हे भगवन् ! तिस मच्चित्त होणेतें कौन प्रयोजन सिद्ध होवै है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान कहैं हैं । अथवा इस पूर्वउक्त भक्तियोगके करणेविषे गुणकूं तथा न करणेविषे दोषकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ॥
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि ॥ ५८ ॥

(पदच्छेदः) मच्चित्तः । सर्वदुर्गाणि । मत्प्रसादात् । तरिष्यसि । अथ । चेत् । त्वम् । अहंकारात् । न । श्रोष्यसि । विनंक्ष्यसि ॥ ५८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मच्चित्तहुआ तूं मेरे प्रसादतैं दुस्तर कामक्रोधादिकोंकूंभी तरिजावैगा और जो कदाचित् तूं अर्जुन अहंकारतैं मेरे वचनकूं नहीं श्रवणकरैगा तौ तूं नष्टहोवैगा ॥ ५८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! मच्चित्त हुआ तूं मेरे प्रसादतैं सर्वदुर्गोंकूं तरिजावैगा । तहां संसारदुःखके साधनरूप जे अतिदुस्तर कामक्रोधादिक हैं तिनोंका नाम दुर्ग है ऐसे कामक्रोधादिरूप सर्वदुर्गोंकूं तूं आपणे प्रयत्नतैंविनाही केवल मैं परमेश्वरके अनुग्रहतैं सुखेनही अतिक्रमण करैगा। और जो कदाचित् तूं अर्जुन मैं परमेश्वरके वचनोंविषे अविश्वास करिकै मैं पंडित हूं इस प्रकारके गर्वरूप अहंकारतैं तिस हमारे वचनकूं नहीं श्रवण करैगा अर्थात् जो कदाचित तूं हमारे वचनोंके अर्थकूं नहीं अनुष्ठान करैगा तौ तूं अर्जुन नष्ट होवैगा । अर्थात् आपणी इच्छातैं युद्धादिक स्वधर्मका परित्याग करिकै संन्यासादिक परधर्मके अनुष्ठानतैं तूं सर्वपुरुषोंतैं भ्रष्ट होवैगा ॥ ५८ ॥

हे भगवन् ! युद्धादिककर्मोंके करणेविषे अथवा नहीं करणेविषे मैं अर्जुन स्वतंत्र हूं । यातैं तुम्हारे वचनके अर्थकूं मैं नहीं करूंगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं है—

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ॥
मिथ्यैव व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति॥५९॥

(पदच्छेदः) यत् । अहंकारम् । आश्रित्य । न । योत्स्ये । इति । मन्यसे । मिथ्या । एव । व्यवसायः । ते । प्रकृतिः । त्वाम् । नियोक्ष्यति ॥ ५९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तूं अहंकारकूं आश्रयकरिकै मैं नहीं युद्धकरूंगा इसप्रकार जो मानताहै सो तुम्हारा निश्चय मिथ्या ही है जिसकारणतैं तुम्हारेकूं प्रकृति अवश्य युद्धविषे प्रेरणा करैगी ॥ ५९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! मैं धर्मात्मा हूं यातैं इस युद्धरूप क्रूरकर्मकूं मैं नहीं करूंगा इसप्रकारके मिथ्या अभिमानकूं आश्रय करिकै इस

युद्धकूं मैं नहीं करूंगा इसप्रकार जो तूं मानता है सो तुम्हारा निश्चय निष्फलही है। जिस कारणतें क्षत्रियजातिका आरंभक रजोगुणस्वरूप जा प्रकृति है सा प्रकृति तुम्हारेकूं इस युद्धरूप कर्मविषे अवश्यकरिकै प्रवर्त्त करैगी। इसीकारणतैंही (प्रकृतिं यांति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।) इस वचनकरिकै पूर्व सर्वजीवोंकी प्रवृत्ति आपणी आपणी प्रकृतिके अधीन कथन करि आयेहैं यातैं तूं अर्जुन स्वतंत्र नहीं है किंतु आपणी प्रकृतिके अधीन है ॥ ५९ ॥

अब श्रीभगवान् अर्जुनका स्वप्रकृतिके अधीनपणा निरूपण करै हैं।

स्वभावजेन कौंतेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ॥
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोपि तत्॥६०॥

(पदच्छेदः) स्वभावजेन। कौंतेय। निबद्धः। स्वेन। कर्मणा। कर्तुम्। न। इच्छसि। यत्। मोहात्। करिष्यसि। अवशः। अपि। तत् ॥ ६० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! स्वभावजन्य आपणे कर्मकरिकै वशीकृत हुआ मोहके वशतें जिसयुद्धकूं करणेवास्तै नहीं इच्छताहै तिसयुद्धकूं तूं अवशहुआ भी करैगा ॥ ६० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पूर्वउक्त क्षत्रियस्वभावकरिकै जन्य जे शौर्यादिक अनागंतुक कर्म हैं तिन कर्मोंकरिकै वशीकृत हुआ तूं अर्जुन मोहके वशतैं जिस युद्धके करणेकूं नहीं इच्छताहै अर्थात् मैं अर्जुन स्वतंत्र हूं यातैं जिस जिस अर्थकी इच्छा करूंगा तिसी ही अर्थकूं संपादन करूंगा इसप्रकारके भ्रमरूप मोहके वशतैं जो तूं बंधुवधादिकोंका निमित्तभूत इस युद्धके करणेकूं नहीं इच्छताहै तिस युद्धरूप कर्मकूं तूं अर्जुन अवश हुआभी करैगा अर्थात् तिस युद्धरूप कर्मके करणेकी नहीं इच्छा करताहुआभी तूं पूर्वउक्त स्वाभाविक कर्मोंके परतंत्र हुआ तथा अंतर्यामी परमेश्वरके परतंत्र हुआ तिस युद्धकूं अवश्यकरिकै करैगा ॥ ६० ॥

तहां (अवशः) इस पूर्वउक्त वचनकरिकै श्रीभगवान्नें अर्जुनविषे स्वभावरूप प्रकृतिका अधीनपणा तथा अंतर्यामी ईश्वरका अधीनपणा सूचन कऱ्या । तहां स्वभावरूप प्रकृतिका अधीनपणा तौ पूर्वश्लोकविषे प्रतिपादन कऱ्या । अब अंतर्यामी ईश्वरका अधीनपणा स्पष्टकरिकै प्रतिपादन करैं हैं-

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ॥
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ॥ ६१ ॥

(पदच्छेदः) ईश्वरः । सर्वभूतानाम् । हृद्देशे । अर्जुन । तिष्ठति । भ्रामयन् । सर्वभूतानि । यंत्रारूढानि । मायया ॥ ६१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अंतर्यामी ईश्वर यंत्रविषे आरूढ काष्ठमय प्रतिमावोंकी न्याईं सर्वप्राणियोंकूं मायाकरिकै जहां तहां भ्रमणकरावताहुआ सर्वप्राणियोंके हृदयदेशविषे स्थित होवैहै ॥ ६१ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जीवोंके पुण्यपापकर्मोंके अनुसार तिन सर्व जीवोंकूं शुभअशुभकर्मविषे प्रवर्त्तक जो अंतर्यामी नारायण है जो अंतर्यामी नारायण-(यः पृथिव्यां तिष्ठन्पृथिव्या अंतरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमंतरोयमयति । यच्च किंचिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ॥ अंतर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥) इत्यादिक श्रुतियोंकरिकै प्रतिपादित है । इन दोनों श्रुतियोंका यह अर्थ है-जो अंतर्यामी ईश्वर पृथिवीविषे स्थितहुआ तिस पृथिवीके अंतर है । तथा जिस अंतर्यामी ईश्वरकूं सा पृथिवी नहीं जानती है । तथा जिस अंतर्यामी ईश्वरका सा पृथिवी शरीर है । तथा जो अंतर्यामी ईश्वर तिस पृथिवीकूं प्रवृत्त करै है सोही अंतर्यामी ईश्वर तुम्हारा आत्मा है इति । और जितनाक सर्व जगत् देखणेविषे आवै है तथा श्रवण करणेविषे आवता है तिस नामरूपात्मक सर्व जगत्कूं अंतर्बाह्य व्याप्य करिकै नारायण स्थित है इति । इस प्रकारका अंतर्यामी

नारायणरूप ईश्वर सर्वप्राणियोंके अंतःकरणरूप हृदयदेशविषे स्थित है अर्थात् जैसे सामान्यतैं सर्वत्र व्यापकभी सूर्यका प्रकाश दर्पणादिक स्वच्छउपाधियोंविषे विशेषरूपकरिकै अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होवै है। तथा जैसे सर्वद्वीपोंका अधिपतिभी श्रीराम उत्तरकोशलविषे विशेषरूपकरिकै अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होवैहै तैसे सामान्यतैं सर्वव्यापक हुआभी सो अंतर्यामी ईश्वर तिन अंतःकरणोंविषे विशेषकरिकै अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होवै है । याकारणतैं तिस अंतर्यामी ईश्वरकी हृदयदेशविषे स्थिति कथन करी है । शंका—हे भगवन् ! सो अंतर्यामी ईश्वर क्या कार्य करताहुआ तिन सर्वप्राणियोंके हृदयदेशविषे स्थित होवै है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (भ्रामयन् इति) हे अर्जुन ! सो अंतर्यामी ईश्वर आपणी मायाकरिकै तिन सर्वप्राणियोंकूं आपणे आपणे पुण्यपापकर्मोंके अनुसार तथा पूर्वले संस्कारोंके अनुसार जहां तहां शुभ अशुभ कर्मविषे प्रवृत्त करताहुआ तिन सर्वप्राणियोंके हृदयदेशविषे स्थित होवै है। अब इस अर्थविषे दृष्टांतकूं कथन करैं हैं (यंत्रारूढानि इति) हे अर्जुन ! यंत्रविषे आरूढ जे काष्ठरचित पुरुष अश्वादिरूप प्रतिमा हैं जे प्रतिमा अत्यंत परतंत्र हैं तिन काष्ठमय प्रतिमाओंकूं जैसे सूत्रधारी मायावी पुरुष भ्रमण करावैहै तैसे यह अंतर्यामी ईश्वरभी आपणी मायाकरिकै तिन सर्वप्राणियोंकूं जहां तहां भ्रमण करावै है इति । यातैं इस युद्धके करणेकी नहीं इच्छा करताहुआभी तूं अर्जुन तिस अंतर्यामी ईश्वरकी प्रेरणातैं अवश्य इस युद्धकूं करैगा । इहां (हे अर्जुन) इस संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं अर्जुनविषे शुद्धअंतःकरणवत्त्व कथन कऱ्या ताकरिकै यह अर्थ बोधन कऱ्या । शुद्धिअंतःकरणवाला तूं अर्जुन ऐसे सर्वांतर्यामी ईश्वरके जानणेकूं योग्य है ॥६१॥

शंका—हे भगवन् ! परतंत्र सर्वप्राणियोंकूं जो कदाचित् अंतर्यामी ईश्वरही प्रेरणा करता होवै तो (स्वर्गकामो यजेत परदारान्न गच्छेत्)

इत्यादिक विधिनिषेधशास्त्रकूं तथा सर्व पुरुषप्रयत्नकूं अनर्थकता प्राप्त होवैगी ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहै है—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ॥
तत्प्रसादात्परां शांतिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥ ६२ ॥

(पदच्छेदः) तम् । एव । शरणम् । गच्छ । सर्वभावेन । भारत । तत्प्रसादात् । पराम् । शांतिम् । स्थानम् । प्राप्स्यसि । शाश्वतम् ॥ ६२ ॥

(पदार्थः) हे भारत ! सर्वप्रकारकरिकै तिस ईश्वररूप आश्रयकूं ही तूं आश्रयण कर तिस ईश्वरके प्रसादतैं तूं परा शांतिकूं तथा शाश्वत स्थानकूं प्राप्त होवैगा ॥ ६२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो अंतर्यामी ईश्वर सर्वप्राणियोंके हृदयदेशविषे स्थित होइकै तिन सर्वप्राणियोंकूं शुभअशुभकार्यविषे प्रवृत्त करैहै । ऐसे सर्वके आश्रयरूप अंतर्यामी ईश्वरकूं ही इस संसारसमुद्रके उत्तरणवासतै तूं सर्वभावकरिकै आश्रयण कर । अर्थात् शरीरकरिकै तथा मनकरिकै तथा वाणीकरिकै सर्वप्रकारकरिकै तिस ईश्वरकूं तूं आश्रयण कर । इसप्रकार जबी तूं अर्जुन सर्वप्रकारकरिकै तिस अंतर्यामी ईश्वरकूं ही आश्रयण करैगा तबी अंतर्यामी ईश्वरके अनुग्रहतैं तूं अर्जुन पराशांतिकूं प्राप्त होवैगा । अर्थात् तत्त्वज्ञानकी उत्पत्तिपर्यंत तिस ईश्वरके अनुग्रहतैं तूं कार्यसहित अविद्याकी निवृत्तिरूप पराशांतिकूं प्राप्त होवैगा । तथा शाश्वतस्थानकूं प्राप्त होवैगा । वहां अद्वितीय स्वप्रकाश परमानंद ब्रह्मरूपकरिकै जो अवस्थान है ताका नाम स्थान है । कैसा है सो स्थान—शाश्वत है अर्थात् उत्पत्तिनाशतैं रहित होणेतैं नित्य है । ऐसे नित्यस्थानकूं तूं प्राप्त होवैगा अर्थात् तिस ईश्वरके अनुग्रहतैं प्राप्त भया जो अहंब्रह्मास्मि इसप्रकारका तत्त्वज्ञान है तिस तत्त्वज्ञानतैं कार्य-

सहित अविद्याकी निवृत्तिरूप तथा परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्षकूं तूं प्राप्त होवैगा । इहां किसी टीकाविषे (परां शांतिम्) इस वचनकरिकै समाधिका ग्रहण कऱ्या है तिस समाधिकी प्राप्ति इस पुरुषकूं ईश्वरके अनुग्रहतैं ही होवै है । यह वार्त्ता (समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ।) इस सूत्रकरिकै पतंजलिभगवान्नैं भी कथन करीहै ॥ ६२ ॥

अब इस सर्व गीताशास्त्रके अर्थका उपसंहार करतेहुए श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति कहैं हैं ।

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ॥
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६३ ॥

(पदच्छेदः) इति । ते । ज्ञानम् । आख्यातम् । गुह्यात् । गुह्यतरम् । मया । विमृश्य । एतत् । अशेषेण । यथा । इच्छसि । तथा । कुरु ॥ ६३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरनैं तुम्हारेताईं इस पूर्वउक्तप्रकारकरिकै गुह्यपदार्थतैंभी अत्यंतगुह्य आत्मज्ञान कथन कऱ्याहै यातैं इस गीताशास्त्रकूं आदिअंत पर्यंत विचारकरिकै जिसप्रकार इच्छैताहोवै तिसप्रकार तूं कैर ॥ ६३ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! हमारा अनन्यभक्त तथा अत्यंतप्रिय ऐसा जो तूं अर्जुन है तिस तुम्हारे ताईं मैं परम आप्त सर्वज्ञ परमेश्वरनैं इस पूर्वउक्त प्रकारकरिकै मोक्षका साधनरूप आत्मविषयकज्ञान कथन कऱ्याहै । कैसा है सो ज्ञान–गुह्यपदार्थतैंभी अत्यंत गुह्य है अर्थात् परम रहस्यरूप ऐसा जो संन्यासपर्यंत निष्कामकर्मयोग है तिस गुह्यकर्मयोगतैंभी यह आत्मज्ञान गुह्यतर कहिये अत्यंत रहस्यरूप है । जिसकारणतैं तिस संन्यासपर्यंत कर्मयोगका यह आत्मज्ञान फलरूपही है । साधनकी अपेक्षाकरिकै फलविषे रहस्यरूपता युक्तही है । अथवा इसलोकविषे गुह्यराखणेयोग्य जे मंत्र, तंत्र, मणि, रसायन आदिक पदार्थ हैं तिन गुह्यप-

दार्थोंतैंभी यह आत्मज्ञान अत्यंतगुह्य है। काहेतैं ते मंत्रतंत्रादिक इसपुरुषकूं केवल सांसारिक अनित्यसुखकीही प्राप्ति करैं हैं और यह आत्मज्ञान तौ इस पुरुषकूं ब्रह्मानंदरूप नित्यसुखकीही प्राप्ति करैहै। यातैं तिन मंत्रतंत्रादिकोंतै इस आत्मज्ञानविषे अत्यंत गुह्यरूपता युक्तही है। यातैं हे अर्जुन! मैं परमेश्वरनैं तुम्हारे ताई उपदेश कऱ्या जो यह गीताशास्त्र है तिस गीताशास्त्रकूं पूर्वउत्तरवाक्योंकी एकवाक्यतापूर्वक आदिअंतपर्यंत समग्र विचारकरिकै पश्चात् आपणे अधिकारके अनुसार जिस अर्थके अनुष्ठान करणेकी तूं इच्छा करता होवै तिस अर्थके अनुष्ठानकूं तूं कर। परंतु इस गीताशास्त्रकूं आदि अंतपर्यंत भलीप्रकारतैं नहीं विचार करिकै केवल आपणी इच्छामात्रकरिकै तुम्हारेकूं किंचित्भी कार्य करणेयोग्य नहीं है। इहां श्रीभगवान्का यह तात्पर्य है—जो मुमुक्षु अशुद्धअन्तःकरणवाला है तिस मुमुक्षुजनकूं तौ प्रथम मोक्षके साधनभूत आत्मज्ञानके उत्पत्तिकी योग्यताके प्रतिबंधक पापकर्मोंके नाश करणेवास्तै स्वर्गादिक फलकी इच्छाका परित्याग करिकै तथा भगवदर्पणबुद्धि करिकै आपणे वर्णआश्रमके धर्मोंकाही अनुष्ठान करणेयोग्य है। तिन निष्कामकर्मोंके अनुष्ठानकरिकै शुद्ध हुआहै अंतःकरण जिसका ऐसा सो अधिकारी पुरुष जो कदाचित् ब्राह्मणशरीर होवै तौ सो ब्राह्मण अधिकारी पुरुष आत्मज्ञानकी इच्छारूप विविदिषाके उत्पन्न हुएतैं अनंतर ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप जाइकै आत्मज्ञानके साधनरूप वेदांतवाक्योंके विचारवास्तै शास्त्रप्रतिपादित विधितैं शिखा यज्ञोपवीतके त्यागपूर्वक सर्वकर्मोंके संन्यासकूं ही करै। सो संन्यासके ग्रहणकरणेका विधि आत्मपुराणके एकादश अध्यायविषे हम विस्तारतैं निरूपण करिआये हैं। यातैं इहां लिख्या नहीं। तिस संन्यासतैं एक भगवत्शरणताकरिकै पूर्वउक्त विविक्तदेशसेवादिक ज्ञानसाधनोंके अभ्यासतैं श्रवण मनन निदिध्यासनकरिकै आत्मज्ञानकी उत्पत्तिकरिकै तिस अधिकारी पुरुषकूं मोक्षकी प्राप्ति होवैहै। और सर्वकर्मोंके संन्यास करणेविषे अनधिकारी

ऐसे जे क्षत्रिय वैश्यादिक मुमुक्षु है तिन मुमुक्षु क्षत्रियवैश्यादिकोंनें वी अंतःकरणकी शुद्धितैं अनंतरभी आपणे वर्णआश्रमके कर्मोंकूंही करणा। यद्यपि अंतःकरणकी शुद्धिवासतैही कर्मोंका अनुष्ठान होवै है। ता अंतःकरणकी शुद्धितैं अनंतर तिन कर्मोंके अनुष्ठानका कोई प्रयोजन नहीं है तथापि श्रुतिस्मृतिरूप भगवत्की आज्ञाके पालनवासतै तथा अन्यलोकोंकूं शुभकर्मोंविषे प्रवर्त्तनरूप लोकसंग्रहवासतै तिन क्षत्रियवैश्यादिकोंनें अंतःकरणकी शुद्धितैं अनंतरभी तिन कर्मोंकूंही करणा। इसप्रकार निष्कामकर्मोंके करतेहुए तिन क्षत्रियवैश्यादिक मुमुक्षुजनोंकूं एक भगवत्शरणगताकी प्राप्तिकरिकै पूर्वजन्मविषे करेहुए संन्यासादिक साधनोंके परिपाकतै अथवा हिरण्यगर्भकी न्याई संन्यासकी अपेक्षातैं विनाही केवल परमेश्वरके अनुग्रहमात्रकरिकै अहंब्रह्मास्मि इसप्रकारके आत्मज्ञानकी उत्पत्तिकरिकै मोक्षकी प्राप्ति होवै है। अथवा तिन मुमुक्षु क्षत्रियवैश्यादिकोंकूं अगले जन्मविषे ब्राह्मणशरीरकी प्राप्ति होइकै वहां संन्यासादिक साधनपूर्वक आत्मज्ञानकी उत्पत्तिकरिकै मोक्षकी प्राप्ति होवै है इति। हे अर्जुन! इसप्रकारके विचार कियेहुए इहां मोहके प्राप्तिका अवकाश होवै नहीं ॥ ६३ ॥

तहां अत्यंत गंभीर जो यह गीताशास्त्र है ता गीताशास्त्रके आदिअंतपर्यंत समग्र विचार करणेतैं जन्य परिश्रमकी निवृत्ति करणेवासतै आपही श्रीभगवान् कृपाकरिकै तिस सर्वगीताशास्त्रके सारअर्थकूं संक्षेपकरिकै कथन करै हैं—

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ॥
इष्टोसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥६४॥

(पदच्छेदः) सर्वगुह्यतमम्। भूयः। शृणु। मे। परमम्। वचः। इष्टः। असि। मे। दृढम्। इति। ततः। वक्ष्यामि। ते। हितम् ॥ ६४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सेंवतैं अत्यंतगुह्य हमारे परम वैचनकूं तूं पुनैः भी श्रवण कर जिसकारणतैं हैमारेकूं तूं अतिशयकरिकै प्रिय है[11] विसकारणतैं मैं तुम्हारे हितकूं कैथन करूंहूं ॥ ६४ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! पूर्व हमनैं संन्यासपर्यंत निष्कामकर्मयोगकूं गुह्य कह्याथा । तथा तिस निष्कामकर्मयोगतैं ज्ञानकूं गुह्यतर कह्याथा अब तिसी निष्कामकर्मयोगतैं तथा ताके फलभूत ज्ञानतैं सर्वतैं गुह्यतम तथा सर्वतैं उत्कृष्ट ऐसे हमारे वचनकूं तूं पुनःभी श्रवण कर । अर्थात् पूर्व तिस तिस प्रसंगविषे विस्तारतैं कथन कऱ्याहुआ भी सो वचन केवल तुम्हारे अनुग्रहवासतै मैं भगवान् पुनः तिस वचनकूं संक्षेपकरिकै कथन करताहूं तिस वचनकूं तूं श्रवण कर । तहां गुह्यपदार्थतैं जो अतिगुह्य होवै है ताका नाम गुह्यतर है । और ता गुह्यतर पदार्थतैंभी जो अतिगुह्य होवै है ताका नाम गुह्यतम है । हे अर्जुन ! किसी पदार्थके लाभवासतै अथवा आपणी पूजावासतै अथवा आपणी ख्यातिवासतै मैं परमेश्वर सो वचन तुम्हारे ताई नहीं कहताहूं किंतु तूं अर्जुन हमारेकूं जिसकारणतैं अतिशयकरिकै प्रिय है तिसकारणतैं तुम्हारे करिकै नहीं पूँछाहुआभी मैं परमेश्वर कृपाकरिकै तुम्हारे परमश्रेयरूप हितकूं कथन करताहूं ॥ ६४ ॥

श्रीभगवान् तिस परमश्रेयरूप हितकूं कथन करैं हैं–

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ॥
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोसि मे ॥ ६५ ॥

(पदच्छेदः) मैन्मनाः । भैव । मेंद्भक्तः । मैंद्याजी । मांम् । नमैंः । कुरुँ । मांम् । एव । ऐंष्यसि । सैंत्यम् । ते[11] । प्रैंतिजाने । प्रियैंः । असि । मे[14] ॥ ६५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तूं मैंन्मना तथा मेंराभक्त तथा मैंद्याजी होउँ तथा मैं पैरमेश्वरकूं नमस्कार कैंर ऐसे करताहुआ तूं मैं पैरमेश्वरकूं ही प्राप्त होवैगा तुम्हारेसमीप मैं सैंत्य प्रतिज्ञा करता हूं जिसकारणतैं तूं हैमारेकूं प्रियैं है[11] ॥ ६५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! तूं मन्मना होउ। तहां मैं भगवान् वासुदेवविषेही है मन जिसका ताका नाम मन्मना है ऐसा मन्मना तूं होउ। अर्थात् सर्वकालविषे मैं परमेश्वरकाही तूं चिंतन कर। शंका—हे भगवन् कंसशिशुपालादिकभी द्वेषकरिकै सर्वदा तुम्हाराही चिंतन करतेभये हैं। इसप्रकारतें मैंभी तुम्हारा चिंतन करूं ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहै हैं (मद्भक्तः इति) हे अर्जुन ! तूं मैं परमेश्वरका भक्त होउ। तहां परमप्रेमकरिकै मैं परमेश्वरविषे जो अनुरागरूप अनुरक्ति है ताका नाम मेरी भक्ति है ऐसी मेरी भक्तिकरिकै तूं युक्त होउ। अर्थात् मैं परमेश्वरविषयका अनुरागकरिकै सर्वदा मैं परमेश्वरविषयक आपणे मनकूं तूं कर। यद्यपि ते कंस शिशुपालादिक मनकरिकै सर्वदा मैं परमेश्वरका चिंतन करतेभये हैं तथापि ते कंस शिशुपालादिक परमप्रेमकरिकै मैं परमेश्वरविषे अनुराग हुए मैं परमेश्वरका चिंतन नहीं करतेभये हैं किन्तु केवल द्वेषकरिकैही मेरा चिंतन करतेभये हैं। यातें ते कंसशिशुपालादिक मैं परमेश्वरके भक्त कहेजाते नहीं और तूं अर्जुन तौ मैं परमेश्वरका भक्त हुआ हमारा चिंतन कर। शंका—हे भगवन् ! तैं परमेश्वरविषयक सा अनुरागरूप भक्तिही किस उपायकरिकै प्राप्त होवै है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिस भक्तिके उपायकूं कथन करैं हैं—(मद्याजी इति) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरविषयक अनुरागरूप भक्तिकी प्राप्तिवासतै तूं मद्याजी होउ। तहां मैं भगवान् वासुदेवके पूजनकरणेका है स्वभाव जिसका ताका नाम मद्याजी है। अर्थात् सर्वकालविषे तूं अर्जुन मैं परमेश्वरके पूजापरायण होउ। शंका—हे भगवन् ! पूजन करणेकी सामग्रीके अभावहुए तिस अनुरागरूप भक्तिकी प्राप्तिवासतै क्या उपाय करणेयोग्य है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (मां नमस्कुरु इति) हे अर्जुन ! तिस पूजाकी सामग्रीके अभावहुए मैं परमेश्वरकूं तूं नमस्कार कर अर्थात् अत्यंत निम्रतापूर्वक शरीरमनवाणीकरिकै तूं मैं परमेश्वरकूं ही आराधन कर। यहां (मद्याजी) इस पदकरिकै

कथन कऱ्या जो पूजारूप अर्चन है। तथा (नमः) इस पदकरिकै कथन कऱ्या जो नमस्काररूप वंदन है ते अर्चन वंदन दोनों भागवतधर्म दूसरेभी भागवतधर्मोंके उपलक्षण हैं। ते भागवतधर्म श्रीभागवतविषे यह कथन करे हैं। तहां श्लोक-(श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्) अर्थ यह-विष्णुभगवानका श्रवण, तथा कीर्त्तन, तथा स्मरण, तथा पादोंका सेवन, तथा अर्चन तथा दासभाव, तथा सखाभाव, तथा आत्माका अर्पण यह नव भागवतधर्म कहे जावैं हैं। इसीकूं ही नवधा भक्तिभी कहैं हैं इति। हे अर्जुन! इसप्रकारके भागवतधर्मोंका अनुष्ठान करिकै सर्वदा मैं परमेश्वरविषे अनुरागकी उत्पत्ति करिकै मैं परमेश्वरके चिंतनपरायण हुआ तूं अर्जुन मैं भगवान् वासुदेवकूं ही प्राप्त होवैगा अर्थात् (तत्त्वमसि। अहं ब्रह्मास्मि) इत्यादिक वेदांतवाक्योंतैं जन्य आत्मसाक्षात्कारकरिकै तूं अभेदरूपकरिकै मैं अद्वितीय निर्गुणरूप परब्रह्मकूं ही प्राप्त होवैगा। हे अर्जुन! इस उक्त अर्थविषे तूं संशयकूं मतकर। मै परमेश्वर तुम्हारे आगे इस उक्तअर्थविषे सत्यप्रतिज्ञाकूं करता हूं। जिस कारणतैं तूं अर्जुन मैं परमेश्वरकूं अत्यंत प्रिय है तिस कारणतैं प्रिय अर्जुनके साथि वंचना करणी हमारेकूं उचित नहीं है इति। अथवा (सत्यं ते) इस वचनविषे (सति अंते) इस प्रकारके पदच्छेदकरिकै यह अर्थ करणा-प्रारब्धकर्मके नाश हुए तूं अर्जुन मैं परमेश्वरकूं प्राप्त होवैगा इति। परंतु इस द्वितीय व्याख्यानतैं सो प्रथम व्याख्यान ही समीचीन है काहेतैं (विशते तदनन्तरम्।) इस वचनकरिकै पूर्व प्रारब्धकर्मके नाश हुएतैं अनंतर तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं ब्रह्मभावकी प्राप्ति कथन करिआये हैं। तिस पूर्व उक्त अर्थका ही (मामेवैष्यसि सत्यं ते) इस वचनकरिकै अनुवाद अंगीकार करणा होवैगा। तिस अनुवादकी अपेक्षाकरिकै अर्जुनके विश्वासकी दृढता करावणेहारा सो प्रथम व्याख्यान ही समीचीन है इति। तहां इस श्लोककरिकै (यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्। स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य

सिद्धिं विंदति मानवः ॥) इस पूर्व उक्त श्लोकका व्याख्यान कऱ्या इति और किसीटीकाविषे तौ (मन्मना भव) इस श्लोकका यह अर्थ कऱ्या है—तहां मैं ही प्रत्यगआत्मा आनंदघन परिपूर्ण ब्रह्मरूप हूं इस प्रकारतैं प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्माकार है मन जिसका ताका नाम मन्मना है ऐसा मन्मना तूं अर्जुन होउ । इतने कहणे करिकै श्रीभगवान्नैं ज्ञानकांडरूप तृतीयपट्कका जीवब्रह्मका अभेदरूप अर्थ संक्षेपकरिकै कथन कऱ्या शंका हे भगवन् ! इस प्रकारकी ज्ञाननिष्ठा किस उपायकरिकै प्राप्त होवै है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवन् कहैं हैं (मद्भक्तः इति ।) हे अर्जुन ! तिस ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्ति वासतै तूं मैं परमेश्वरका अनन्यभक्त होउ । इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं उपासनाकांडरूप द्वितीयपट्कका भगवद्भक्तिरूप अर्थ संक्षेपकरिकै कथन कऱ्या । शंका—हे भगवन् ! अल्पपुण्यवाले पुरुषकूं सा भगवद्भक्तिभी कैसे उत्पन्न होवैगी ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं है (मद्याजी इति) तहां मैं परमेश्वरकी प्रसन्नतावासतै आपणे वर्णआश्रमके कर्मोंके करणेका है स्वभाव जिसका ताका नाम मद्याजी है ऐसा मद्याजी तूं होउ अर्थात् मैं परमेश्वरकी प्रसन्नतावासतै तूं आपणे वर्णआश्रमके कर्मोंकूं कर । इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं कर्मकांडरूप प्रथमपट्कका निष्काम कर्मरूप अर्थ संक्षेपकरिकै कथन कऱ्या । शंका—हे भगवन् यज्ञादिक कर्मोंका साधनरूप जो धन है तिस धनके अभावतैं तथा स्त्री आदिकों के अभावतै जो पुरुष तिन यज्ञादिक कर्मोंके करणेविषे असमर्थ है तिस पुरुषकूं सा भगवद्भक्ति दुर्लभही होवैगी । ता भक्तिके दुर्लभवातैं ब्रह्मतैंकार चित्तकी वृत्ति अत्यंत दुर्लभ होवैगी । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् अत्यंत सुलभउपायकूं कथन करैं हैं (मां नमस्कुरु इति) हे अर्जुन ! तिन यज्ञादिक कर्मोंके करणेका असामर्थ्य हुए तूं प्राकृतभक्तिकरिकै ही प्रतिमादिकोंविषे मैं भगवान्कूं धूप दीपादिक सर्व उपचारोंके समर्पण पूर्वक नमस्कारादिकोंकरिकै आराधन कर ।

तहां (यज्ञोवै नमः) इत्यादिक वचनोंकरिकै आश्वलायनऋषि नमस्कारकूंभी यज्ञरूप कहता भया है । अब सोपानक्रमतैं नमस्कार, निष्कामकर्म, भगवद्भक्ति इन तीन साधनोंकी प्राप्तिपूर्वक ज्ञाननिष्ठाकूं प्राप्तहुए पुरुषके फलकूं कथन करै है (मामेवैष्यसि इति) हे अर्जुन ! इस प्रकार साधन संपत्ति पूर्वक ज्ञाननिष्ठाकूं प्राप्त हुआ तूं सर्व जगत्के कारणरूप तथा सर्वके ईश्वररूप तथा सर्व शक्ति संपन्न तथा अखंड एकरस ऐसे मैं तत्पदार्थ परमेश्वरकूं ही प्राप्त होवैगा । जैसे दर्पणादिक उपाधिके निवृत्त हुए प्रतिबिंब बिंबभावकूं प्राप्त होवै है तथा जैसे घटरूप उपाधिके निवृत्तहुए घटाकाश महाकाश भावकूं प्राप्त होवै है तैसे तूं अर्जुन मैं परमेश्वरकूं ही प्राप्त होवैगा । अब इस उक्तअर्थ विषे अर्जुनके दृढविश्वास करावणे वास्तै श्रीभगवान् शपथकरिकै कहै हैं (सत्यं ते प्रतिजाने इति) हे अर्जुन ! अहंब्रह्मास्मि इस प्रकारकी ज्ञाननिष्ठावाला हुआ तूं मैं परमात्मादेवकूं ही अभेदरूपकरिकै प्राप्त होवैगा । इस प्रकारकी सत्यप्रतिज्ञाकूं मैं तुम्हारे आगे करता हूं । जिस कारणतै तूं अर्जुन मैं परमेश्वरकूं अत्यंत प्रियहै । इसकारणतैं वंचनाकरणेके अयोग्य तैं अर्जुनके प्रति मैं भगवान् यह सत्यप्रतिज्ञा करूं हूं ॥ ६५ ॥

तहां(ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेर्जुन तिष्ठति । तमेव सर्वभावेन शरणंगच्छ) यह जो वचन पूर्व कथन कऱ्या था। अब तिसी वचनके अर्थकूं स्पष्टकरिकै निरूपण करै है-

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ॥
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ६६

(पदच्छेदः) सर्वधर्मान् । परित्यज्य । माम् । एकम् । शरणम् । व्रज । अहम् । त्वा । सर्वपापेभ्यः । मोक्षयिष्यामि । मा । शुचः ६६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्वधर्मोकूं परित्यागकरिकै एक मैं परमेश्वररूप शरणकूं तूं प्राप्तहोउ मैं परमेश्वर तुम्हारेकूं सर्वपापोंतैं मुक्त करूंगा तूं मत शोक कर ॥ ६६ ॥

भा० टी०–तहां केईक धर्म तौ वर्णधर्म होवैं हैं। और केईक धर्म तौ आश्रमधर्म होवैं हैं। और केईक धर्म तौ सामान्यधर्म होवैं हैं । तहां श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रनैं ब्राह्मणादिक वर्णमात्रके प्रति जे धर्म विधान करे हैं ते धर्म वर्णधर्म कहे जावैं हैं । और तिस शास्त्रनैं ब्रह्मचर्यादिक आश्रममात्रके प्रति जे धर्म विधान करे हैं ते धर्म आश्रमधर्म कहे जावैं हैं । और तिस शास्त्रनैं वर्ण आश्रम दोनोंके प्रति साधारणरूपतैं विधान करे जे धर्म हैं ते धर्म सामान्यधर्म कहेजावैं हैं । ते तीनोंप्रकारके धर्म इसी अध्यायविषे पूर्वविस्तारतैं कथन करि आये हैं । तिन सर्वधर्मोंकूं परित्याग करिकै अथवा जितनेक अविद्यमान धर्म हैं तथा जितनेक अविद्यमान धर्म हैं तिन सर्व धर्मोंकूं परित्यागकरिकै अर्थात् स्वरूपतैं तिन धर्मोंके विद्यमानहुएभी यह धर्म ही हमारा शरणरूप है इसप्रकार स्वशरणतारूपतैं तिन धर्मोंकूं नहीं स्वीकार करिकै तूं अर्जुन सर्वधर्मोंके अधिष्ठानरूप तथा सर्वधर्मोंके फलप्रदातारूप मैं अद्वितीय ईश्वररूप शरणकूं प्राप्त होउ अर्थात् वे पूर्वउक्त धर्म होवो अथवा नहीं होवो । अन्यकी अपेक्षावाले तिन धर्मोंकरिकै क्या प्रयोजन सिद्ध होवैहै। और अन्यकी अपेक्षातैं रहित ऐसा जो भगवत्का अनुग्रह है तिस भगवत्के अनुग्रहतैं ही मैं कृतार्थ होवौंगा इसप्रकारके निश्चयकरिकै तिन धर्मोंविषे अतिआदरकूं न करिकै मैं परमानंदघनमूर्ति श्रीभगवान् वासुदेवकूं ही तूं निरंतरभावनाकरिकै भज ! अर्थात् यह परमात्मा देवका चिंतन ही परमतत्त्व है। इसतैं परे दूसरा कोई अधिक तत्त्व है नहीं । इसप्रकारके विचारपूर्वक प्रेमकी उत्कटताकरिकैं सर्व अनात्मचिंतनतैं शून्य तथा तैलधाराकी न्याई अनवच्छिन्न ऐसी मनकी वृत्तियोंकरिकै तूं मैं परमात्मादेवकूं निरंतर चिंतन कर । इहां (मामेकं शरणं व्रज) इतने वचनमात्रकरिकै ही सर्वधर्मोंके त्यागका लाभ होइसकै है । यातैं पुनः (सर्वधर्मान्परित्यज्य) इस वचनकरिकै जो तिन सर्वकर्मोंके निषेधका अनुवाद कऱ्या है सो अनुवाद परमेश्वरविषे सर्वधर्मकार्योंकी कारिताके लाभवासतै कऱ्या है अर्थात् मैं अंतर्यामी

परमेश्वरकूं ही सर्वधर्मकार्योंकी कारिता होणेतें मैं परमेश्वरके शरणागत पुरुषकूं अवश्यकरिकै तिन धर्मोंकी अपेक्षा होवै नहीं। इतने कहणेकरिकै इस प्रकारके व्याख्यानकाभी खंडन कऱ्या । सो व्याख्यान यह हैं— (सर्वधर्मान्परित्यज्य) इतने कहणेकरिकै केवल धर्ममात्रका परित्याग प्रतीत होवै है । अधर्मका त्याग प्रतीत होवै नहीं । और इहां धर्म अधर्म दोनोंका परित्याग विवक्षित है। यातें इहां धर्मपद धर्मअधर्मरूप कर्ममात्रका बोधक है । ऐसे धर्म अधर्मरूप कर्ममात्रकूं परित्यागकरिकै मैं परमेश्वररूप शरणकूं तूं प्राप्त होउ इति । सो इसप्रकारका व्याख्यान संभवता नहीं । काहेतें (सर्वधर्मान्परित्यज्य) इस वचनकरिकै श्रीभगवानूनैं स्वरूपतैं तिन कर्मोंका त्याग विधान नहीं कऱ्या किंतु स्वरूपतैं तिन कर्मोंके विद्यमान हुएभी तिन कर्मोंविषे अतिआदरकूं न करिकै एक भगवच्छरणमात्र ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी इन च्यारि आश्रमियोंके प्रति साधारणरूपतैं विधान कऱ्या है । तहां तिन च्यारि आश्रमियोंका शास्त्रप्रतिपादित स्वधर्मविषे तौ अति आदर संभव होइसकै है । यातें तिन कर्मोंविषे अतिआदरके निवृत्त करणेवासतै श्रीभगवानूनैं (सर्वधर्मान्परित्यज्य) यह वचन कथन कऱ्या है । और अनर्थरूप फलकी प्राप्ति करणेहारा जो अधर्म है तिस अधर्मविषे किसीभी बुद्धिमान पुरुषका आदर संभवता नहीं । तथा तिन अधर्मोंका परित्याग दूसरे प्रतिषेधशास्त्रोंकरिकै भी प्राप्त है । यातें (सर्वधर्मान्परित्यज्य) इस वचनविषे स्थित धर्मपदकूं धर्मअधर्म साधारण कर्ममात्रका उपलक्षण मानिकै इस वचनकूं अधर्मके त्यागका बोधक अंगीकार करणा संभवता नहीं । यातें यह अर्थ सिद्ध भया—शास्त्रप्रतिपादित वर्णआश्रमके धर्मोंकूं जैसे स्वर्गादिरूप अभ्युदयकी कारणता शास्त्रविषे प्रसिद्ध है तैसे तिन धर्मोंकूं मोक्षकी कारणता भी होवैगी । इस प्रकारकी शंकाके निवृत्त करणेवासतै ही श्रीभगवानूनैं (सर्वधर्मान्परित्यज्य) यह वचन कथन कऱ्या है । कोई स्वरूपतैं तिन कर्मोंके परित्यागवासतै श्रीभगवानूनैं सो वचन नहीं

कह्या है । तहां जो कोई वादी यह वचन कहै । (सर्वधर्मान्प-
रित्यज्य) इस वचन करिकै श्रीभगवान्नैं सर्व धर्म अधर्मरूप कर्मोंका
परित्याग ही विधान कऱ्या है । सो यह कहणा संभवता नहीं । काहेतैं -
शास्त्रविहित सर्वधर्मोंका त्याग तौ संन्यासके विधायक वचनोंकरिकै ही
प्राप्त है । तैसे अधर्मोंका त्यागभी प्रतिषेधशास्त्रकरिकै ही प्राप्त है । और
जो अर्थ पूर्व किसीभी प्रमाणकरिकै नहीं प्राप्त होवै है तिसीही अर्थका
विधान होवै है । अन्यप्रमाणकरिकै प्राप्त अर्थका विधान संभवै नहीं ।
यातैं (सर्वधर्मान्परित्यज्य) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं धर्म अधर्मरूप
सर्वकर्मोंका त्याग विधान नहीं कऱ्या है । और जो कोई वादी यह
वचन कहै (सर्वधर्मान्परित्यज्य) यह भगवान्का वचनभी सर्व कर्मोंके
त्यागरूप संन्यासका विधायक ही है सो यह कहणाभी संभवता नहीं ।
काहेतैं (मामेकं शरणं व्रज) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं एक भग-
वत्शरणतामात्र ही विधान करी है यातैं (सर्वधर्मान्परित्यज्य) यह
वचन केवल अनुवादमात्रही है । कर्मोंके त्यागका विधायक नहीं है ।
और सर्वशास्त्रोंका परम रहस्य ईश्वरशरणता ही है।या कारणतैं श्रीभगवा-
न्नैं तिस ईश्वरशरणताविषेही इस गीताशास्त्रकी परिसमाप्ति करी है ।
तिस ईश्वरशरणतातैं विना तिस संन्यासकाभी आपणे फलविषे परिअ-
वसान होवै नहीं किंतु तिस ईश्वरशरणताकी प्राप्तिकरिकै ही तिस संन्या-
सका आपणे फलविषे परिअवसान होवै है।किंवा क्षत्रिय होणेतैं संन्यास आश्र-
मका अनधिकारी जो अर्जुन है तिस अर्जुनके प्रति (सर्वधर्मान्परित्यज्य)
इस वचनकरिकै सर्वकर्मोंके त्यागरूप संन्यासका उपदेश सम्भवताभी
नहीं । काहेतैं जो पुरुष जिस धर्मके करणेविषे अधिकारी होवै है तिस
पुरुषके प्रतही तिस धर्मका उपदेश संभवै है । तिस धर्मके अनधिकारी
पुरुषके प्रति तिस धर्मका उपदेश संभवै नहीं । और जो कोइ वादी
यह वचन कहै । इहां श्रीभगवान्नैं अर्जुनके व्याजकरिकै अधिकारी
ब्राह्मणोंके प्रति ही (सर्वधर्मान्परित्यज्य) इस वचनकरिकै संन्यासका

विधान कर्या है सो यह कहणाभी संभवता नहीं । काहेतैं-(वक्ष्यामि ते हितम् । त्वां मोक्षयिष्यामि सर्वपापेभ्यः त्वं मा शुचः) इस प्रकारके उपक्रम उपसंहार वाक्योंविषे अर्जुनके प्रति यह उपदेश प्रतीत होवै है जो कदाचित् अर्जुनके व्याजकरिकै संन्यासके अधिकारी ब्राह्मणोंके प्रति ही यह भगवान्का उपदेश अंगीकार करिये तौ ते उपक्रमउपसंहारवाक्य असंगत होवैंगे । यातैं (सर्वधर्मान्परित्यज्य) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं सर्वकर्मोंका त्यागरूप संन्यास विधान नहीं कर्या है किंतु वर्णआश्रमके धर्मोंकी न्याईं संन्यासधर्मोंविषे भी अनादरकरिकै एक भगवत्शरणतामात्रविषेही श्रीभगवान्का तात्पर्य है इति । हे अर्जुन ! जिस कारणतैं सर्व धर्मोंविषे नहीं आदरकरिकै तूं एक मैं परमेश्वरके शरणकूं प्राप्तहुआ है इस कारणतैं सर्वधर्मकार्योंका प्रवर्त्तक मैं परमेश्वर तुम्हारेकूं बंधुवधादिनिमित्तिक तथा संसारके हेतुभूत ऐसे सर्वपापोंतैं प्रायश्चित्तैं विनाही मुक्त करूंगा । तात्पर्य यह-(धर्मेण पापमपनुदति) इस श्रुतिविषे धर्मकूं पापनिवृत्तिका हेतु कथन कर्या है सो धर्मरूप मैं परमेश्वरही हूं । यातैं प्रायश्चित्त विनाही मैं धर्मरूप परमेश्वर तुम्हारेकूं तिन सर्व पापोंतैं मुक्त करूंगा इसकारणतैं तूं शोककूं मतकर । अर्थात् इस युद्धविषे प्रवृत्त हुए मैं अर्जुनका बंधुवधादिनिमित्तक प्रत्यवायतैं किसप्रकार निस्तार होवैगा इसप्रकारके शोककूं तूं मतकर इति । तहां (मामेकं शरणं व्रज) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं भगवच्छरणका विधान कर्या सो भगवच्छरण शास्त्रविषे तीन प्रकारका कथन कर्या है । तहां श्लोक-(तस्यैवाहं ममैवासौ स एवाहमिति त्रिधा । भगवच्छरणत्वं स्यात्साधनाभ्यासपाकतः ।) अर्थ यह-इस अधिकारी पुरुषकूं साधनोंके अभ्यासके परिपाकतैं तीनप्रकारका भगवच्छरण प्राप्त होवै है । तहां एक तौ तिस परमेश्वरकाही मैं हूं इस प्रकारका भगवच्छरण होवै है । और दूसरा यह परमेश्वर मेराही है इसप्रकारका भगवत्शरण होवै है । और तीसरा सो परमेश्वर मैंही हूं. इसप्रकारका भगवच्छरण होवै है ।

तहां प्रथम भगवच्छरण तौ मृदु कह्या जावै है। जैसे (सत्यपि भेदाप-गमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम् । सामुद्रो हि तरंगः क्वचन समुद्रो न तारंगः ॥) अर्थ यह-हे सर्व जगत्के नाथ परमेश्वर ! जैसे समुद्रका तथा तरंगोंका भेद नहीं है तौभी समुद्रके तरंग कहेजावैं हैं कोई समुद्र तरंगोंका कह्या जावै नहीं । तैसे तुम्हारा तथा हमारा यद्यपि भेद नहीं है तथापि मैं तुम्हारा ही हूं तूं परमेश्वर हमारा नहीं है इति इत्यादिक वचनोंविषे सो प्रथम भगवच्छरण कथन कन्या है। और दूसरा भगवच्छरण मध्यम कह्याजावै है । जैसे (हस्तमुत्क्षिप्य यातोसि बलात्कृष्ण किमद्भुतम् । हृदयाद्यदि निर्यासि पौरुषं गणयामि ते ।) अर्थ यह-हे कृष्ण भगवन् ! बलात्कारसे, हमारे हस्तकूं छुडाइकै तूं जाता भया है इसकरिकै तुम्हारा कोई अद्भुत पौरुष सिद्ध नहीं होता । जबी तूं हमारे हृदयतैं निकसि जावैगा तबी मैं तुम्हारे पौरुषकूं मानूंगा । सो हमारे हृदयतैं कदाचित्भी तूं जाणेवाला नहीं है इति । इत्यादिक वचनोंविषे सो दूसरा भगवच्छरण कथन कन्या है । और तीसरा भगवच्छरण अतिमात्र कह्याजावै है । जैसे (सकलमिदमहं च वासुदेवः परमपुमान्परमेश्वरः स एकः।इति मतिरचला भवत्यनंते हृदयगते व्रज तान्विहाय दूरात् ॥) अर्थ यह-यह स्थावरजंगमरूप सर्व जगत् तथा मैं वासुदेवरूपही हैं । सो परमपुरुष परमेश्वर एक अद्वितीयरूप ही है । इस प्रकारकी अचलमति जिन पुरुषोंकी हृदयदेशविषे स्थित परमात्मादेवविषे होवै है हे दूत ! ऐसे सर्वत्र ब्रह्मदृष्टिवाले पुरुषोंके समीप तुमनै कदाचित्भी नहीं जाणा किंतु ऐसे तत्ववेत्ता पुरुषोंकूं दूरतैं परित्यागकरिकै तूं गमन कर। यह दूतके प्रति यमराजाका वचन है इति । इत्यादिक वचनोंविषे सो तीसरा भगवच्छरण कथन कन्या है । इस प्रकारकी भगवच्छरणरूप भूमिकाविषे अंबरीष, प्रह्लाद, गोपी आदिक बहुत भक्तजन दृष्टांतरूपकरिकै कथन करे हैं । यह तीनों प्रकारका भगवच्छरण भक्तिरसायननामा ग्रंथविषे श्रीमधुसूदन स्वामीनैं विस्तारतैं वर्णन कन्या है इति । तहां इस गीता-

शास्त्रविषे श्रीभगवान्कूं कर्मनिष्ठा, ज्ञाननिष्ठा, भगवद्भक्तिनिष्ठा यह तीनों निष्ठा परस्पर साध्यसाधनभावकूं प्राप्त हुई विवक्षित हैं । ते तीनों निष्ठा पूर्व बहुत विस्तारते कथन करिआये हैं और यह अष्टादशअध्याय सर्व गीताशास्त्रका उपसंहाररूप है । यातें इहां प्रथम सर्व कर्मोंके संन्यासपर्यंत कर्मनिष्ठा तौ (स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानवः ।) इस वचनविषे उपसंहार करी है । और दूसरी संन्यासपूर्वक श्रवणादिक साधनोंकेपरिपाकसहित ज्ञाननिष्ठा तौ (ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनंतरम् ।) इस वचनविषे उपसंहार करी है और तीसरी भगवद्भक्तिनिष्ठा तौ उक्त दोनों निष्ठावोंका साधनरूपभी है तथा फलरूपभी है । यातें सा तीसरी भगवद्भक्तिनिष्ठा श्रीभगवान्नैं अन्तविषे (सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।) इस वचनविषे उपसंहार करी है इति । और श्रीभाष्यकार भगवान् तौ (सर्वधर्मान्परित्यज्य) इस वचनकरिकै श्रीभगवान् सर्व कर्मोके संन्यासका अनुवादकरिकै (मामेकं शरणं व्रज) इस वचनकरिकै ज्ञाननिष्ठाका उपसंहार करता भया है इस प्रकारका व्याख्यान करते भये है । तथा दूसरेभी अनेक प्रकारके दुर्मतोंका खंडन करते भये है । सो सर्वप्रसंग इहां ग्रन्थके विस्तारभयतें लिख्या नहीं ॥ ६६ ॥

तहां श्रीभगवान्नैं (सर्वधर्मान्परित्यज्य) इसश्लोकपर्यंत सर्वगीताशास्त्रका अर्थ समाप्त कर्या।अब श्रीभगवान् इस ब्रह्मविद्यारूप गीताशास्त्रके संप्रदायविधिकूं कथन करैंहैं–

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ॥
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योभ्यसूयति ॥६७॥

(पदच्छेदः) इदम् । ते । न । अतपस्काय । न । अभक्ताय । कदाचन । न । च । अशुश्रूषवे । वाच्यम् । न । च । माम् । यः । अभ्यसूयति ॥ ६७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तुम्हारे हितवासतै हमनैं कथन कऱ्याहुआ यह गीताशास्त्र इंद्रियोंके निग्रहतैंरहित पुरुषके ताईं कदाचित्भी नहीं उपदेश करणे योग्य है तथा भक्तितैं रहित पुरुषके ताईं भी नहीं उपदेश करणे योग्य है तथा शुश्रूषातैं रहित पुरुषके ताईं भी नहीं उपदेशकरणेयोग्यहै तथा जो पुरुष मैं परमेश्वरविषयक असूया करैहै तिसकेताईं भी नहीं उपदेशकरणे योग्यहै ॥ ६७ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! तुम्हारे जन्ममरणरूप संसारकी निवृत्ति करणेवासतै मैं सर्वज्ञ परम आप्त परमेश्वरनैं सर्व शास्त्रोंके अर्थका रहस्यरूप जो यह गीताशास्त्र उपदेश कऱ्या है सो यह गीताशास्त्र अतपस्क पुरुषके ताईं कदाचित् भी नहीं उपदेश करणे योग्य है। तहां जो पुरुष शब्दादिक विषयोंतैं श्रोत्रादिक इंद्रियोंके निग्रहतैं रहित है ताका नाम अतपस्क है। ऐसे इंद्रियोंके निग्रहतैं रहित पुरुषके ताईं यह गीताशास्त्र किसीभी अवस्थाविषे नहीं उपदेशकरणेयोग्य है अर्थात् महान् संकटके प्राप्त हुए भी ऐसे अजितइंद्रिय पुरुषके ताईं यह गीताशास्त्र नहीं उपदेश करणेयोग्य है। इहां (कदाचन) इस पदका वक्ष्यमाण तीनों पर्यायोंविषे संबंध करणा। हे अर्जुन ! जो पुरुष इंद्रियोंके निग्रहवाला तौ है परंतु ब्रह्मविद्याके उपदेष्टा गुरुविषे तथा ईश्वरविषे भक्तितैं रहित है ऐसे अभक्तपुरुषके ताईं भी यह गीताशास्त्र कदाचित् भी नहीं उपदेश करणेयोग्य है। हे अर्जुन ! जो पुरुष इंद्रियोंके निग्रहवालाभी है तथा भक्तिवाला भी है परंतु जो पुरुष गुरुकी पादप्रक्षालनादि सेवारूप शुश्रूषातैं रहित है ऐसे पुरुषके ताईं भी यह गीताशास्त्र कदाचित्भी नहीं उपदेश करणेयोग्य है। हे अर्जुन ! जो पुरुष इंद्रियोंके निग्रहवालाभी है तथा भक्तिवालाभी है तथा शुश्रूषावालाभी है परंतु जो पुरुष मैं भगवान् वासुदेवकूं मनुष्य मानिकै तथा असर्वज्ञत्वादिक गुणोंवाला मानिकै असूया करै है अर्थात् मैं परमेश्वरविषे आत्मप्रशंसादिक दोषोंका आरोपण करिकै हमारे ईश्वरपणेकूं नहीं

सहनकरता हुआ जो पुरुष हमारे द्वेषकूंही करैहै ऐसे मैं परमेश्वरकी उत्कृष्टताकूं नहीं सहनकरणेहारे पुरुषके ताईंभी यह गीताशास्त्र कदाचित्भी नहीं उपदेशकरणेयोग्य है। किंतु जो पुरुष मनसहित श्रोत्रादिक इंद्रियोंके निग्रहरूप तपवाला है तथा गुरुईश्वरविषे भक्तिवाला है तथा गुरुकी सेवारूप शुश्रूषावाला है, तथा मैं परमेश्वरविषे अनुरागवाला है ऐसे अधिकारी पुरुषके ताईं ही यह गीताशास्त्र उपदेश करणेयोग्य है। तहां इस श्लोकविषे एक नकारके कथन करणेकरिकै ही उक्तअर्थकी सिद्धि होइसकै है ता एक नकारकूं न कहिकै श्रीभगवान्नैं जो इहां च्यारि नकार कथन करैहैं। सो एकएक विशेषणके अभाव हुएभी इस गीताशास्त्रके उपदेशकी अयोग्यताके बोधन करणेवास्तै कथन करैहै और (मेधाविने तपस्विने वा विद्या देया।) अर्थ यह—शास्त्रके अर्थ धारण करणेकी शक्तिवाले मेधावी पुरुषके ताईं अथवा इंद्रियोंके निग्रहवाले तपस्वी पुरुषके ताईं यह ब्रह्मविद्या देणेयोग्य है। इस वचनविषे विद्याके अधिकारीका विकल्प देखणेविषे आवैहै। यातैं शुश्रूषा, गुरुभक्ति, भगवदनुरक्ति इन तीन विशेषणोंयुक्त तपस्वी पुरुषके ताईं यह विद्या देणेयोग्य है। अथवा तिन तीन विशेषणोंयुक्त मेधावी पुरुषके ताईं यह विद्या देणेयोग्य है। तहां विद्याकी प्राप्तिविषे मेधा तप इन दोकूं पाक्षिकत्वहुएभी भगवदनुरक्ति, गुरुभक्ति, शुश्रूषा इन तीनोंका सर्वत्र नियमही है। इसप्रकार श्रीभाष्यकार भगवान् कथन करतेभये हैं। तहां श्लोकविषे श्रीभगवान्नैं कथन कऱ्या जो विद्याउपदेशके संप्रदायका प्रकार है सो प्रकार श्रुतिविषेभी कथन कऱ्याहै। तहां श्रुति—(विद्याह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपायमाशेवधिष्टेहमस्मि। असूयकायानृजवेऽयताय न मा ब्रूया अवीर्यवती तथा स्याम्। यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मनः॥) अर्थ यह—एककालविषे अनधिकारी पुरुषकूं प्राप्त होइकै खेदकूं प्राप्तहुई वेदविद्या विद्याके उपदेष्टा ब्राह्मणोंके समीप जाइकै यह वचन कहतीभई—हे ब्राह्मणो! तुम हमारेकूं गुप्त राखो। ताकरिकै मैं

विषा तुम्हारेकूं भोग मोक्ष दोनोंकी प्राप्ति करूंगी। और जो कदाचित लोकोंके ऊपरि कृपादृष्टिकरिकै तुम हमारेकूं गुह्य नहीं राखिसकेंवे होवौ तौभी जो पुरुष गुणोंविषे दोषोंका आरोपणरूप असूयादोषवाला है तथा ऋजुभावतैं रहित है तथा मनसहित इंद्रियोंके निग्रहतैं रहित है तथा गुरुकी सेवाभक्तितैं रहित है ऐसे अनधिकारी पुरुषके ताईं तुमोंनैं कदाचित्भी हमारा उपदेश नहीं करणा। जो तुम धनादिक पदार्थोंके लोभकरिकै ऐसे अनधिकारी पुरुषोंके ताईं हमारा उपदेश करोगे तौ मैं वंध्यास्त्रीकी न्याईं निष्फल होवैंगी किंतु जो पुरुष असूयादोषतैं रहित है तथा ऋजुभाववाला है तथा इंद्रियोंके निग्रहरूप तपवाला है तथा गुरुकी सेवाभक्तिवाला है तथा ईश्वरविषे अनुरागवाला है ऐसे अधिकारीपुरुषोंके ताईं तुमोंनैं हमारा उपदेश करणा इति। किंवा जिस पुरुषकी परमात्मादेवविषे परमभक्ति है तथा जैसे परमात्मादेवविषे परमभक्ति है तैसेही ब्रह्मविद्याके उपदेष्टा गुरुविषे परमभक्तिहै तिस महात्मा-पुरुषकूं ही यह वेदांतप्रतिपादित अर्थ बुद्धिविषे प्रकाशमान होवैहै ॥ ६७ ॥

इसप्रकार इस ब्रह्मविद्यारूप गीताशास्त्रके संप्रदायविधिकूं कथनक-रिकै अब श्रीभगवान् तिस संप्रदायके प्रवर्त्तक पुरुषके फलकूं कथन करैं हैं—

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ॥
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥६८॥

(पदच्छेदः) यः। इमम्। परमम्। गुह्यम्। मद्भक्तेषु। अभि-धास्यति। भक्तिम्। मयि। पराम्। कृत्वा। माम्। एव। एष्यति। असंशयः ॥ ६८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष मैं परमेश्वरविषे परा भक्तिकूं करिकै इस परम गुह्य शास्त्रकूं मेरेभक्तोंविषे स्थापन करैहै सो पुरुष मैं परमेश्वरकूं ही प्राप्त होवै है इस अर्थविषे संशय नहीं है ॥ ६८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन । तुम्हारा हमारा संवादरूप जो यह गीताशास्त्र है कैसा है यह गीताशास्त्र—परम है अर्थात् मोक्षरूप निरतिशय पुरुषार्थका साधन होणेतैं सर्वतैं उत्कृष्ट है । पुनः कैसा है यह गीताशास्त्र—गुह्य है अर्थात् सर्व शास्त्रोंके रहस्य अर्थका प्रतिपादक होणेतैं जिसीकिसी पुरुषके तांई उपदेश करणेयोग्य नहीं है । ऐसे इस परमगुह्य गीताशास्त्रकूं जो संप्रदायप्रवर्त्तक विद्वान् पुरुष मैं परमेश्वरके भक्तोंविषे स्थापन करै है अर्थात् मैं परमेश्वरविषे अनुरागवाले भक्तिवाले पुरुषोंविषे जो विद्वान् पुरुष इस गीताशास्त्रकूं पाठरूपतैं तथा अर्थरूपतैं स्थापन करै है । इहां (मद्भक्तेषु) इस वचनकरिकै जो पुनः भक्तिका ग्रहण कन्या है सो पूर्वउक्त तपस्वीआदिक तीनविशेषणोंतैं रहित पुरुषकूंभी भगवद्भक्तिमात्रकरिकै पात्ररूपताके सूचन करणेवासतै है इति । तहां सो संप्रदायका प्रवर्त्तक विद्वान् पुरुष क्या बुद्धिकरिकै यह गीताशास्त्र तिन भक्तजनोंविषे स्थापन करै है । ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं । (भक्तिं मयि परां कृत्वा इति ।) अधिकारी भक्तजनोंके ताईं जो हमनैं यह गीताशास्त्र उपदेश करीता है सो यह हमनैं परमगुरुरूप भगवान्की शुश्रूषाही करीती है । इसप्रकारका निश्चयकरिकै जो विद्वान् पुरुष हमारे भक्तोंके ताईं यह गीताशास्त्र उपदेश करैहै सो उपदेशकरता पुरुष मैं भगवान् वासुदेवकूं प्राप्तही होवैहै अर्थात् सो विद्वान् पुरुष इस जन्ममरणरूप संसारतैं शीघ्र मुक्तही होवैहै । हे अर्जुन। इस अर्थविषे तुमनैं कदाचित्भी संशय नहीं करणा । अथवा (भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ।) इस वचनका यह अर्थ करणा—मैं परमेश्वरविषे पराभक्तिकूं करिकै सर्वसंशयोंतैं रहित हुआ सो विद्वान् पुरुष मैं परमेश्वरकूं अवश्य प्राप्तही होवैहै इति। अथवा सो विद्वान् पुरुष मैं परमेश्वरविषे पराभक्तिकूं करिकै मैं परमेश्वरकूं ही प्राप्त होवैहै । अन्य किसीलोककूं प्राप्त होवै नहीं इति । और किसी टीकाविषे तो (य इमं परमं गुह्यम्) इस श्लोकका यह अर्थ कन्याहै—जो पुरुष भगवद्भक्तितैं रहित हुआभी केवल

आपणे मानसपूजाकी इच्छावाला हुआ इस परमरहस्यरूप गीताशास्त्रकूं मैं परमेश्वरके भक्तोंविषे प्राप्त करैहै सो पुरुषभी तिस पुण्यविशेषके प्रभावतैं मैं चिदेकरस परमेश्वरविषे अद्वैतभावनारूप उपासनारूप भक्तिकूं करिकै अर्थात् तिस उपासनारूप पराभक्तिविषे अति आदरकूं प्राप्त होइकै तथा तिस परमभक्तिकूं अनुष्ठानकरिकै मैं परमात्माकूं ही प्राप्त होवैहै । अर्थात् अहंब्रह्मास्मि इसप्रकारके आत्मज्ञानकी प्राप्तिकरिकै ब्रह्मभावकी प्राप्तिरूप मुक्तिकूंही प्राप्त होवैहै । हे अर्जुन ! इस अर्थविषे किंचित्मात्रभी संशय नहीं है । इतने कहणेकरिकै श्रीभगवानूंनें यह कैमुतिकन्याय सूचन कन्या । परमेश्वरके भक्तिके लेशमात्रतैंभी रहित ऐसे जे अजामिलादिक हुए हैं ते अजामिलादिक आपणे पुत्रविषे स्नेहके वशतैं तिस पुत्रके नारा- यण इस नामकारिकै परमेश्वरका स्मरण करतेभये हैं । तिस नारायण- नामके उच्चारणमात्रतैं प्रसन्नताकूं प्राप्तहुआ परमेश्वर तिन अजामिलादि- कोंके वाई शुभगतिकी प्राप्ति करताभया है। जबी नारायणनामके उच्चा- रणमात्रकरिकै ही अजामिलादिक शुभगतिकूं प्राप्त होवतेभये हैं, तबी जो पुरुष वाणीकरिकै इस गीताशास्त्रके रहस्य अर्थकूं प्रतिपादन करै है तिस पुरुषकूं भगवद्भक्तिलाभादिक क्रमकरिकै कृतकृत्यता होवैहै याकेविषे क्या कहणाहै इति । इहां किसीक मूलपुस्तकविषे (य इमं परमं गुह्यम्) इस वचनके स्थानविषे (य इदं परमं गुह्यम्) इसप्रकारकाभी पाठ होवैहै । इस प्रकारके पाठविषे भी सो पूर्वउक्त अर्थही जानणा ॥ ६८ ॥

किंच–

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ॥
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥६९॥

(पदच्छेदः) नँ । चँ । तँस्मात् । मँनुष्येषु । कँश्चित् । मेँ । प्रियँकृत्तमः । भँविता । नँ । चँ । मेँ । तस्मातँ । अँन्यः । प्रियँ- तरः । भुँवि ॥ ६९ ॥

(·पदार्थः) हे अर्जुन ! तथा सर्वमनुष्योंके मध्यविषे तिसपुरुषतें अन्य कोईभी मनुष्य मैं परमेश्वरविषयक अतिशयप्रीतिवाला नहीं है नहीं होवैगा तथा मैं परमेश्वरकूंभी तिसतें अन्यपुरुष इसें पृथिवीविषे अत्यंत प्रिय नहीं है ॥ ६९ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरके भक्तोंविषे इस गीताशास्त्रके संप्रदायकी प्रवृत्तिकरणेहारा जो विद्वान् पुरुष है तिस विद्वान् पुरुषतें अन्य सर्वमनुष्योंके मध्यविषे कोईभी मनुष्य मैं परमेश्वरविषयक अतिशय प्रीतिवाला इस वर्त्तमानकालविषे है नहीं तथा पूर्व कोई हुआ नहीं तथा आगे कोई होवैगा नहीं किंतु सो संप्रदायका प्रवर्त्तक विद्वान् पुरुष ही मैं परमेश्वरविषयक अतिशयप्रीतिवाला है । हे अर्जुन ! केवल सो विद्वान् पुरुष ही मै परमेश्वरविषयक अतिशय प्रीतिवाला नहीं किंतु मैं परमेश्वरकूंभी तिस संप्रदायप्रवर्त्तक विद्वान् पुरुषतें अन्य कोईभी पुरुष अतिशयप्रीतिका विषयक पूर्व नहीं होताभया है तथा अबी इस भूमिलोकविषे है नहीं तथा आगे होवैगा नहीं किंतु सो संप्रदायका प्रवर्त्तक विद्वान् पुरुष ही मै परमेश्वरकूं अतिशयप्रीतिका विषय है ॥ ६९ ॥

तहां (य इमं परमं गुह्यम्) इत्यादिक दो श्लोकोंकरिकै श्रीभगवान्नैं इस ब्रह्मविद्यारूप गीताशास्त्रके अध्यापकके फलकूं कथन कऱ्या । अब श्रीभगवान् इस गीताशास्त्रके अध्ययन करणेहारे पुरुषके फलकूं कथन करैहैं-

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ॥
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः॥७०॥

(पदच्छेदः) अध्येष्यते । च । यः । इमम् । धर्म्यम् । संवादम् । आवयोः । ज्ञानयज्ञेन । तेन । अहम् । इष्टः । स्याम् । इति मे । मतिः ॥ ७० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! पुनः जो पुरुष तुम हम दोनोंके संवादरूप तथा धर्म्यरूप इस गीताशास्त्रकूं अध्ययन करैगा तिस पुरुषकरिकै मैं परमेश्वर ज्ञानयज्ञकरिकै पूजित होवौं हूं इसप्रकारका मैं परमेश्वरका निश्चय है ७०

भा० टी०—हे अर्जुन! मोक्षके प्राप्तिका कारणरूप जो आत्मज्ञान है ता आत्मज्ञानरूप धर्मका कारण होणेतैं धर्म्यरूप अथवा धर्मतैं अविरुद्ध होणेतैं धर्म्यरूप जो यह तुम्हारा हमारा संवादरूप गीताशास्त्र है इस गीताशास्त्रकूं जो अधिकारी पुरुष अध्ययन करैगा अर्थात् जपरूपकरिकै पाठ करैगा तिस पाठ करणेहारे पुरुषकरिकै मैं परमेश्वर ज्ञानयज्ञकरिकै पूजित होऊंगा। अर्थात इस गीताशास्त्रके चतुर्थ अध्यायविषे द्रव्ययज्ञादिक सर्वयज्ञोंतैं श्रेष्ठरूपकरिकै कथन कऱ्या जो ज्ञानरूपयज्ञ है तिस ज्ञानरूप यज्ञकरिकै मैं परमेश्वर तिस पाठक पुरुषकरिकै पूजित होऊंगा। इसप्रकारका मैं परमेश्वरका निश्चय है। यद्यपि यह पुरुष इस गीताशास्त्रके अर्थकूं नहीं जानता हुआही इस गीताशास्त्रके पाठमात्रकूं करै है तथापि तिस पाठकूं श्रवण करणेहारे मैं परमेश्वरकूं यह पुरुष इस गीताके पाठकरिकै मै परमेश्वरकूं ही चिंतन करै है याप्रकारकी बुद्धि होवैहै। इसकारणतैं सो पाठक पुरुष तिस पाठमात्रतैंभी ज्ञानयज्ञके फलरूप मोक्षकूं अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा तथा आत्मज्ञानकी उत्पत्तिद्वारा प्राप्त होवै है। जबी यह पुरुष इस गीताशास्त्रके पाठमात्रतैंभी परंपराकरिकै मोक्षरूप फलकूं प्राप्त होवैहै तबी इस गीताशास्त्रके अर्थके अनुसंधानपूर्वक इस गीताशास्त्रकूं पठनकरता हुआ यह पुरुष साक्षातही तिस मोक्षरूप फलकूं प्राप्त होवै है याकेविषे क्या कहणा है। वहां (श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप) इस वचनकरिकै पूर्व चतुर्थ अध्यायविषे द्रव्यमयादिक सर्वयज्ञोंतैं ज्ञानयज्ञकी श्रेष्ठता कथन करिआये हैं ॥ ७० ॥

तहां पूर्व इस गीताशास्त्रके वक्तापुरुषके फलकूं तथा अध्ययन करणेहारे पुरुषके फलकूं कथन कऱ्या । अब श्रीभगवान् इस गीताशास्त्रके श्रोतापुरुषके फलकूं कथन करैहैं—

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ॥
सोऽपि मुक्तःशुभाल्लँलोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ७१

(पदच्छेदः) श्रद्धावान् । अनसूयः । च । शृणुयात् । अपि । यः । नरः । सः । अपि । मुक्तः । शुभान् । लोकान् । प्राप्नुयात् । पुण्यकर्मणाम् ॥ ७१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष श्रद्धावान् हुआ तथा असूयादोषतैं रहित हुआ इस गीताशास्त्रकूं केवल श्रवणमात्रही करैहै श्रोतापुरुष भी सर्वपापोंतै मुक्तहुआ पुण्यकर्मवाला पुरुषोंके शुभ लोकोंकूं प्राप्तहोवै है ७१

भा० टी०—हे अर्जुन ! लोकोंऊपरि करुणाकरिकै इस गीताशास्त्रका उच्चैस्वरतैं पाठ करणेहारा जो अन्यपुरुष है तिस अन्यपुरुषके मुखतैं जो कोई पुरुष आस्तिक्य बुद्धिरूप श्रद्धावान् हुआ तथा दोषका आरोपणरूप असूयादोषतैं रहितहुआ इस गीताशास्त्रकूं केवल श्रवणमात्रही करैहै अर्थात् यह पुरुष इस गीताशास्त्रका उच्चैस्वर करिकै पाठ किसवासतै करता है अथवा यह पुरुष इस गीताशास्त्रका असंबद्ध पाठ करताहै इत्यादिक दोषोंकूं वक्तापुरुषविषे नहीं आरोपण करताहुआ जो पुरुष श्रद्धावान् होइकै इस गीताशास्त्रके केवल पाठमात्रकूंभी श्रवण करैहै सो केवल पाठमात्रका श्रोतापुरुषभी सर्वपापोंतैं मुक्तहुआ अश्वमेधादिक पुण्यकर्मोंके करणेहारे धर्मात्मा पुरुषोंके शुभलोकोंकूं प्राप्त होवैहै अर्थात् जिन उत्तम लोकोंकूं अश्वमेधादिक पुण्यकर्मोंके करणेहारे पुरुष प्राप्त होवैं हैं तिन उत्तमलोकोंकूं ही सो गीताके पाठमात्रकूं श्रवण करणेहारा पुरुष प्राप्त होवैहै । इहां (शृणुयादपि सोऽपि) इस वचनविषे स्थित जो अपि यह शब्द है ता अपिशब्दकरिकै श्रीभगवान्नैं यह कैमुतिकन्याय सूचन कर्‌या । इस गीताशास्त्रके अर्थज्ञानतैं रहित केवल अक्षरमात्रका श्रोता पुरुषभी जबी उत्तमलोकोंकूं प्राप्त होवैहै तबी इस गीताशास्त्रके अर्थज्ञानपूर्वक इस गीताशास्त्रका श्रवण करणेहारा पुरुष तिन उत्तमलोकोंकूं प्राप्त होवैहै

सूक्केविषे क्या कहणा है इति । तहां इसप्रकारका फल श्रीभागवतविषेभी कथन कर्‍या है । तहां श्लोक-(वासुदेवकथाप्रश्नःपुरुषाँस्त्रीन्पुनाति हि । वक्तारं पृच्छकं श्रोतॄँस्तत्पादसलिलं यथा ॥) अर्थ यह-परमेश्वररूप वासुदेवकी कथाका जो प्रश्न है सो प्रश्न तीन पुरुषोंकूं पावन करैहै-एक तौ वक्तापुरुषकूं पावन करैहै और दूसरा प्रश्नकरणेहारे पुरुषकूं पावन करै है और तीसरा श्रोतापुरुषकूं पावन करैहै जैसे विष्णुके पादका उदक पावन करैहै ॥ ७१ ॥

तहां जबपर्यंत शिष्यकूं संशयविपर्ययरहित आत्मज्ञानकी उत्पत्ति होवैहै तबपर्यंत ब्रह्मवेत्ता कृपालु गुरुवोंनैं उपदेश करणेका प्रयास करणा इसप्रकारके गुरुके धर्मकी शिक्षा करणेअर्थ सर्वज्ञभी श्रीकृष्णभगवान् अर्जुनके प्रति अभी तुम्हारेकूं उपदेशकी अपेक्षा नहींहै इस अर्थके जनावणेवास्तै पूछैं हैं-

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ॥
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ॥ ७२ ॥

(पदच्छेदः) कच्चित् । एतत् । श्रुतम् । पार्थ । त्वया । एकाग्रेण । चेतसा । कच्चित् । अज्ञानसंमोहः । प्रनष्टः । ते । धनंजय ॥ ७२ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! तुमनैं यह गीताशास्त्र एकाग्र चित्तकरिकै क्या श्रवण कर्‍या हे धनंजय ! तुम्हारो अज्ञानकृतसंमोह कैंधा नष्टहुओ यह तू हमारेप्रति कहु ॥ ७२ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! मैं परम आप्त सर्वज्ञ परमेश्वरनैं तुम्हारे ताईं उपदेश कर्‍या जो यह ब्रह्मविद्यारूप गीताशास्त्र है सो यह गीताशास्त्र तुमनैं एकाग्रचित्तकरिकै क्या श्रवण कर्‍या अर्थात् तुमनैं यह गीताशास्त्र क्या अर्थसहित निश्चय कर्‍या । हे धनंजय ! इस गीताशास्त्रके श्रवण-करिकै तुम्हारा अज्ञानकृत विपर्ययरूप संमोह अज्ञानरूप कारण सहित क्या नष्ट हुआ । तात्पर्य यह-सो अज्ञानकृत संमोह कदाचित् अबपर्यंत

भी तुम्हारा नष्ट नहीं हुआ होवै तौ मैं भगवान् वासुदेव तुम्हारे ताईं पुनःभी उपदेश करूं यह आपणे चित्तका वृत्तांत तूं हमारे आगे कथन कर इति । इहां (कच्चित्) यह दोनों शब्द प्रश्नके वाचक हैं । तहां अनात्मारूप देहादिकोंविषे जो आत्मत्वबुद्धि है तथा स्वधर्मरूप युद्धविषे जो अधर्मत्वबुद्धि है सो विपर्यय ही इहां अज्ञानकृत संमोह जानणा॥ ७२॥

इसप्रकार श्रीभगवान्करिकै पूंछा हुआ अर्जुन मैं अभी कृतार्थ हुआ हूं यातैं हमारेकूं पुनः उपदेशकी अपेक्षा नहींहै इस प्रकारके आपणे अभिप्रायकूं कथन करैहै—

अर्जुन उवाच ।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ॥
स्थितोस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ॥ ७३ ॥

(पदच्छेदः) नष्टः । मोहः । स्मृतिः । लब्धा । त्वत्प्रसादात् । मया । अच्युत । स्थितः । अस्मि । गतसंदेहः । करिष्ये । वचनम् । तव ॥ ७३ ॥

(पदार्थः) हे अच्युत ! मैं अर्जुननैं तुम्हारेप्रसादतैं आत्मज्ञानरूप स्मृति पाई है ताकरिकै हमारा सो मोह नष्ट होताभयाहै याकारणतैं सर्वसंशयोंतैं रहितहुआ मैं तुम्हारी शासनाविषे स्थित हुवाहूं सो तुम्हारा वचन मैं करूंगा ॥ ७३ ॥

भा० टी०—अच्युत ! अर्थात् यह कृष्ण भगवान् हमारा आत्मारूप ही है । इस प्रकारतैं आत्मारूपकरिकै निश्चित होणेतैं वियोगहोणेके अयोग्य हे कृष्ण ! हमारा सो अज्ञानकृत विपर्ययरूप मोह नष्ट होताभया है । हे अर्जुन ! सो तुम्हारा विपर्ययरूप मोह किसकरिकै नष्ट होताभया है ? ऐसी शंकाके प्राप्तहुए अर्जुन ता मोहनाशके कारणकूं कथन करै है (स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मया इति ।) हे भगवन् ! जिस कारणतैं मैं अर्जुननैं तुम्हारे इस ब्रह्मविद्यारूप गीताशास्त्रके उपदेशतैं सर्वसंशयोंतैं

रहित अहं ब्रह्मास्मि इसप्रकारकी आत्मज्ञानरूप स्मृति पाईहै, इस कारणतैं सर्वप्रतिबंधतैं शून्य तिस आत्मज्ञानकरिकै सो हमारा अज्ञानकृत विपर्ययरूप मोह नष्ट होताभयाहै । तहां (स्मृतिलाभे सर्वग्रंथीनां विमोक्षः ।) अर्थ यह–मैंही परब्रह्मरूपहूं इसप्रकारकी स्मृतिके प्राप्तहुए इस पुरुषके सर्व चिज्जडग्रंथियोंका विनाश होवैहै इस श्रुतिके अर्थकूं अनुभवकरताहुआ अर्जुन कहैहै (स्थितोस्मि गतसंदेहः इति) हे भगवन् ! तिस आत्मज्ञानरूप स्मृतिकी प्राप्तिकरिकै मैं अर्जुन सर्व संदेहोंतैं रहितहुआ तुम्हारे युद्धकी कर्तव्यतारूप शासनाविषे स्थित हुवाहूं । हे भगवन् ! जबपर्यंत हमारा जीवन है तबपर्यंत मैं अर्जुन तुम्हारे वचनकूं सत्य करूंगा अर्थात् तैं परमगुरुरूप भगवान्‌की आज्ञाकूं मैं अवश्यकरिकै पालन करूंगा । इस प्रकार श्रीभगवान्‌कृत उपदेशके प्रयासकी सफलताके कथन करिकै अर्जुन श्रीभगवान्‌कूं संतुष्ट करताभया । इतनै कहणेकरिकै इस गीताशास्त्रके अध्ययन करणेहारे पुरुषकूं श्रीभगवान्‌के प्रसादतैं मोक्षरूप फलपर्यंत आत्मज्ञान अवश्यकरिकै प्राप्त होवैहै । इसप्रकारका इस गीताशास्त्रका फल उपसंहार कऱ्या । जैसे (तद्धास्यविजज्ञौ) इस श्रुतिविषे मोक्षपर्यंत आत्मज्ञानरूप फलका उपसंहार कऱ्याहै । इहां (गतसंदेहः) इस वचनकरिकै अर्जुननैं देहादिक अनात्मपदार्थोंविषे आत्मत्वबुद्धिरूप मोहका नाश दिखाया । और (करिष्ये वचनं तव) इस वचनकरिकै अर्जुननैं स्वधर्मरूप युद्धविषे अधर्मत्वबुद्धिरूप मोहका नाश दिखाया । तहां देहादिक अनात्मपदार्थोंविषे आत्मत्वबुद्धिरूप मोह तौ सर्वप्राणीमात्रविषे विद्यमान होणेतैं साधारणमोह कह्याजावै है । और युद्धरूप स्वधर्मविषे अधर्मत्वबुद्धिरूप मोह तौ केवल अर्जुनविषे ही विद्यमान होणेतैं असाधारणमोह कह्याजावैहै इन दोनों प्रकारके मोहके निवृत्तकरणेवासतै श्रीभगवान्‌नैं अर्जुनके प्रति यह गीताशास्त्र उपदेश कऱ्या है । सो प्रकार गीताशास्त्रके द्वितीय अध्यायके आदिविषे कथन करिआयेहैं ॥ ७३ ॥

तहां इतनेपर्यंत इस गीताशास्त्रके अर्थकूं समाप्तकरिके अब संजय पूर्वउक्त कथाके संबंधकूं अनुसंधान करताहुआ धृतराष्ट्रके प्रति कहैहै-

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ॥
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ ७४ ॥

(पदच्छेदः) इति । अहम् । वासुदेवस्य । पार्थस्य । च । महात्मनः । संवादम् । इमम् । अश्रौषम् । अद्भुतम् । रोमहर्षणम् ॥ ७४ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! मैं संजय महानुभाव वासुदेवके तथा अर्जुनके इस अद्भुत रोमहर्षण संवादकूं पूर्वउक्त प्रकारतैं श्रवणकरताभयाहूं ७४

भा० टी०-हे धृतराष्ट्र ! मैं संजय महानुभाव श्रीवासुदेवके तथा अर्जुनके इस पूर्वउक्त गीताशास्त्ररूप संवादकूं श्रवण करताभया हूं । कैसा है यह संवाद अद्भुत है अर्थात् चित्तकूं अत्यंत विस्मयकी प्राप्ति करणेहारा है । पुनः कैसा है यह संवाद-रोमहर्षण है अर्थात् लोकोंविषे असंभाव्यमान होणेतैं तथा अद्भुतरसवाला होणेतैं शरीरके रोमोंकूं खडा करणेहारा है ॥ ७४ ॥

हे संजय ! दूरदेशविषेस्थित श्रीकृष्णभगवान् अर्जुनके संवादकूं तूं इहां बैठा कैसे श्रवण करताभया है जिसकारणतैं समीपस्थित पुरुषका ही वचन श्रवणकरणेविषे आवैहै। ऐसी शंकाके प्राप्त हुए संजय आपणेविषे तिस संवादके श्रवण करणेकी योग्यताकूं कथन करै है-

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानिमं गुह्यमहं परम् ॥
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ७५

(पदच्छेदः) व्यासप्रसादात् । श्रुतवान् । इमम् । गुह्यम् । अहम् । परम् । योगम् । योगेश्वरात् । कृष्णात् । साक्षात् । कथयतः । स्वयम् ॥ ७५ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र! श्रीव्यासके प्रसादतैं मैं संजय इस परम गुह्य योगकूं साक्षात् आपही कथनकरतेहुए योगेश्वर कृष्णभगवान्तैं साक्षात् श्रवण करताभयाहूं ॥ ७५ ॥

भा० टी०—हे धृतराष्ट्र! श्रीव्यास भगवान्नैं हमारेकूं प्राप्तकरे जे दिव्य चक्षुश्रोत्रादिक हैं यह ही श्रीव्यासभगवान्का हमारेपर प्रसाद है। तिस व्यासभगवान्के प्रसादतैं मैं संजय इस सम्वादकूं साक्षात् आपणे परमेश्वररूप करिकै कथन करतेहुए सर्वयोगीजनोंके ईश्वररूप श्रीकृष्ण भगवान्तैं साक्षात्ही श्रवण करताभया हूं। कोई परंपराकरिकै मैं तिस संवादकूं नहीं श्रवण करताभया हूं। इतने कहणेकरिकै संजयनैं आपणी अहोभाग्यता सूचनकरी। कैसा है सो संवाद—गुह्यहै अर्थात् सर्वशास्त्रोंका रहस्यरूप होणेतैं जिसीकिसी पुरुषके ताईं नहीं देणेयोग्य है। पुनः कैसा है संवाद—पर है अर्थात् मोक्षका साधन होणेतैं सर्वतैं श्रेष्ठ है पुनः कैसा है सो संवाद—योग है। अर्थात् नियमपूर्वक चित्तके निरोधरूप योगका हेतु होणेतैं योगरूप है। अथवा ज्ञानयोगरूप है इहां किसी मूल-पुस्तकविषे (श्रुतवानिमम्) इस वचनके स्थानविषे (श्रुतिवानेवत्) इसप्रकारकाभी पाठ होवै है सो पाठभी समीचिनही है ॥ ७५ ॥

अब संजय तिस संवादके स्मरणजन्य आपणे आह्लादकूं कथन करैहै-

राजन्संस्मृत्यसंस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ॥
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृषामि च मुहुर्मुहुः ॥ ७६ ॥

(पदच्छेदः) राजन्। संस्मृत्य। संस्मृत्य। संवादम्। इमम्। अद्भुतम्। केशवार्जुनयोः। पुण्यम्। हृष्यामि। च। मुहुर्मुहुः ॥ ७६ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र! श्रीकृष्ण अर्जुनके इस पुण्यरूप अद्भुत संवादकूं स्मरणकरिकै स्मरणकरिकै मैं वारंवार हर्षकूं प्राप्तहोवूंहूं ॥ ७६ ॥

तहां इतनेपर्यंत इस गीताशास्त्रके अर्थकूं समाप्तकरिकै अब संजय पूर्वउक्त कथाके संबंधकूं अनुसंधान करताहुआ धृतराष्ट्रके प्रति कहैहै-

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ॥
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ ७४ ॥

(पदच्छेदः) इति। अहम्। वासुदेवस्य। पार्थस्य। च। महात्मनः। संवादम्। इमम्। अश्रौषम्। अद्भुतम्। रोमहर्षणम् ॥ ७४ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र। मैं संजय महानुभाव वासुदेवके तथा अर्जुनके इस अद्भुत रोमहर्षण संवादकूं पूर्वउक्त प्रकारतैं श्रवणकरताभयाहूं ७४

भा० टी०-हे धृतराष्ट्र ! मैं संजय महानुभाव श्रीवासुदेवके तथा अर्जुनके इस पूर्वउक्त गीताशास्त्ररूप संवादकूं श्रवण करताभया हूं । कैसा है यह संवाद अद्भुत है अर्थात् चित्तकूं अत्यंत विस्मयकी प्राप्ति करणेहारा है। पुनः कैसा है यह संवाद-रोमहर्षण है अर्थात् लोकोंविषे असंभाव्यमान होणेतैं तथा अद्भुतरसवाला होणेतैं शरीरके रोमोंकूं खडा करणेहारा है ॥ ७४ ॥

हे संजय ! दूरदेशविषेस्थित श्रीकृष्णभगवान् अर्जुनके संवादकूं तूं इहां बैठा कैसे श्रवण करताभया है जिसकारणतै समीपस्थित पुरुषका ही वचन श्रवणकरणेविषे आवैहै। ऐसी शंकाके प्राप्त हुए संजय आपणेविषे तिस संवादके श्रवण करणेकी योग्यताकूं कथन करै है-

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानिमं गुह्यमहं परम् ॥
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम्७५

(पदच्छेदः) व्यासप्रसादात्। श्रुतवान्। इमम्। गुह्यम्। अहम्। परम्। योगम्। योगेश्वरात्। कृष्णात्। साक्षात्। कथयतः। स्वयम् ॥ ७५ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! श्रीव्यासके प्रसादतैं मैं संजय इस परम गुह्य योगकूं साक्षात् आपही कथनकरतेहुए योगेश्वर कृष्णभगवान्तैं साक्षात् श्रवण करताभयाहूं ॥ ७५ ॥

भा० टी०–हे धृतराष्ट्र ! श्रीव्यास भगवान्नैं हमारेकूं प्राप्तकरे जे दिव्य चक्षुश्रोत्रादिक हैं यह ही श्रीव्यासभगवान्का हमारेपर प्रसाद है। तिस व्यासभगवान्के प्रसादतैं मैं संजय इस सम्वादकूं साक्षात् आपणे परमेश्वररूप करिकै कथन करतेहुए सर्वयोगीजनोंके ईश्वररूप श्रीकृष्ण भगवान्तैं साक्षातही श्रवण करताभया हूं। कोई परंपराकरिकै मैं तिस संवादकूं नहीं श्रवण करताभया हूं। इतने कहणेकरिकै संजयनैं आपणी अहोभाग्यता सूचनकरी। कैसा है सो संवाद–गुह्य है अर्थात् सर्वशास्त्रोंका रहस्यरूप होणेतैं जिसीकिसी पुरुषके ताईं नहीं देणेयोग्य है। पुनः कैसा है संवाद–पर है अर्थात् मोक्षका साधन होणेतैं सर्वतैं श्रेष्ठ है पुनः कैसा है सो संवाद–योग है। अर्थात् नियमपूर्वक चित्तके निरोधरूप योगका हेतु होणेतैं योगरूप है। अथवा ज्ञानयोगरूप है इहां किसी मूलपुस्तकविषे (श्रुतवानिमम्) इस वचनके स्थानविषे (श्रुतिवानेवत्) इसप्रकारकाभी पाठ होवै है सो पाठभी समीचिनही है ॥ ७५ ॥

अब संजय तिस संवादके स्मरणजन्य आपणे आह्लादकूं कथन करैहै-

राजन्संस्मृत्यसंस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ॥
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥ ७६ ॥

(पदच्छेदः) राजन् । संस्मृत्य । संस्मृत्य । संवादम् । इमम् । अद्भुतम् । केशवार्जुनयोः । पुण्यम् । हृष्यामि । च । मुहुर्मुहुः ॥ ७६ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! श्रीकृष्ण अर्जुनके इस पुण्यरूप अद्भुत संवादकूं स्मरणकरिकै स्मरणकरिकै मैं वारंवार हर्षकूं प्राप्तहोवूंहूं ॥ ७६ ॥

भा० टी०—हे धृतराष्ट्र ! श्रीकृष्णभगवान्का तथा अर्जुनका जो यह गीताशास्त्ररूप सम्वाद है कैसा है यह सम्वाद—अद्भुत है अर्थात् चित्तकूं विस्मयकी प्राप्ति करणेहारा है। पुनः कैसा है यह सम्वाद—पुण्य है अर्थात् केवल श्रवणमात्रकरिकैभी सर्वपापोंकूं नाश करणेहारा है। ऐसे अद्भुतसम्वादकूं मैं संजय केवल श्रवणही नहीं करता भयाहूं किंतु तिस श्रवण करेहुए सम्वादकूं अभी पुनःपुनः स्मरण करिकै वारंवार हर्षकूंभी प्राप्त होताहूं। अथवा (हृष्यामि) इस वचनका यह अर्थ करणा—तिस सम्वादकूं पुनःपुनः स्मरण करिकै वारंवार हमारे शरीरके रोम खडे होवैंहैं तात्पर्य यह—पूर्व अनेक जन्मोंविषे हमनैं ऐसा कौन पुण्य कर्म कन्या है तथा ऐसा कौन तप कन्या है तथा ऐसा कौन दान कन्या है जिसके प्रभावतैं यह श्रीकृष्णभगवान् और अर्जुनका सम्वादरूप गीताशास्त्र हमारेकूं श्रवण हुआहै। तिस पुण्यविशेषकूं मैं जानिसकता नहीं ॥ ७६ ॥

तहां श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति ध्यान करणेवासतै जो आपणा विश्वरूपनामा सगुणरूप दिखावता भयाहै तिस विश्वरूपकूं स्मरण करताहुआ संजय धृतराष्ट्रके प्रति कहैं हैं—

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ॥
विस्मयो मे महान्राजन्हृष्यामि च पुनःपुनः ॥७७॥

(पदच्छेदः) तत् । च । संस्मृत्य । संस्मृत्य । रूपम् । अत्यद्भुतम् । हरेः । विस्मयः । मे । महान् । राजन् । हृष्यामि । च । पुनःपुनः ॥ ७७ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! पुनः कृष्णभगवान्के तिस अतिअद्भुत विश्वरूपकूं स्मरणकरिकै स्मरणकरिकै हमारेकूं महान् विस्मय होवैहै इसकारणतैंही मैं पुनःपुनः हर्षकूं प्राप्त होवूंहूं ॥ ७७ ॥

भा० टी०—हे धृतराष्ट्र ! श्रीभगवान्नैं अर्जुनके प्रति ध्यानकरणेवासतै दिखाया जो आपणा विश्वरूपनामा सगुणरूप है, तिस श्रीकृष्ण-

भगवान्के अतिअद्भुत विश्वरूपनामा सगुणरूपकूं पुनः पुनः स्मरणकरिकै हमारेकूं महान् विस्मय होवैहै । इसी कारणतैंही मैं संजय पुनः पुनः हर्षकूं प्राप्त होवूंहूं ॥ ७७ ॥

हे धृतराष्ट्र ! तूं आपणे दुर्योधनादिक पुत्रोंके विजयादिकोंकी आशाका परित्याग करिकै इन पांडवोंके साथि मिलाप कर । इस अर्थकूं अब संजय धृतराष्ट्रके प्रति कथन करैहै–

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ॥
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ ७८ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसंन्यासयोगोनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

(पदच्छेदः) यत्र । योगेश्वरः । कृष्णः । यत्र । पार्थः । धनुर्धरः । तत्र । श्रीः । विजयः । भूतिः । ध्रुवा । नीतिः । मतिः । मम ॥ ७८ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! जिसपक्षविषे योगेश्वर श्रीकृष्णभगवान् हैं तथा जिसपक्षविषे धनुषकूं धारणकरणेहारा अर्जुन है तिसपक्षविषे श्री विजय भूति और नीति अवश्य होवैंगी इसप्रकारका हमारा निश्चयहै ॥ ७८ ॥

भा० टी०–हे धृतराष्ट्र ! जिस युधिष्ठिरके पक्षविषे सर्वयोगसिद्धियोंका ईश्वर तथा सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिसंपन्न तथा भक्तजनोंके दुःखकूं नष्ट करणेहारा नारायणनामवाला श्रीकृष्णभगवान् स्थितहै तथा जिस युधिष्ठिरके पक्षविषे गांडीवनामा धनुषकूं धारण करणेहारा नरनामा अर्जुन स्थित है तिस नर नारायणकरिकै आश्रित युधिष्ठिरके पक्षविषे श्री, विजय, भूति, नीति, यह च्यारों अवश्यकरिकै प्राप्त होवैंगे। तहां राज्यलक्ष्मीका नाम श्री है। और शत्रुवोंके पराजयनिमित्तक जो उत्कर्ष है ताका नाम विजय है। और उत्तरोत्तर राज्यलक्ष्मीकी जा वृद्धि है ताका नाम भूति है। और न्यायका नाम नीति है। हे धृतराष्ट्र ! इसप्रकारका हमारा

निश्चय है सो हमारा निश्चय यथार्थही है। यातें तूं आपणे दुर्योधनादिक पुत्रोंके विजयकी व्यर्थ आशाकूं परित्याग करिकै भगवत्करिकै अनुगृहीत तथा लक्ष्मीविजयादिकोंकरिकै युक्त ऐसे युधिष्ठिरादिक पांडवोंके साथि मिलापकूंही कर ॥ ७८ ॥

श्लोक-"कांडत्रयात्मकं शास्त्रं गीताख्यं येन निर्मितम्। आदिमध्यांतषट्केषु तस्मै भगवते नमः ॥ १ ॥ कालकूटसमो दोषो यस्य कंठे लवायते। गुणोपि वा कलामात्रो यस्य भूपायते सतः॥ तमहं पुरुषं वंदेऽविद्यादोपहरं परम् ॥ २ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां गीतागूढार्थदीपिकाख्यायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास;

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-मुम्बई.